મળવાનું ઠેકાણું:
શ્રી અ. ભા. શ્વે. સ્થાનકવાસી
જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
ગ્રીન લૌજ પાસે, **રાજકોટ.**

પ્રથમ આવૃત્તિ : પ્રત ૧૦૦૦
વીર સંવત : ૨૪૮૩
વિક્રમ સંવત : ૨૦૧૩
ઈસ્વી સન : ૧૯૫૭

મુદ્રક :
મણિલાલ છગનલાલ શાહ
ધી નવપ્રભાત પ્રિન્ટીંગ પ્રેસ
ઘીકાંટા રોડ : : અમદાવાદ

શ્રી-વર્ધમાન-શ્રમણ-સંઘના આચાર્યશ્રી

પૂજ્ય આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ

આપેલ

સમ્મતિપત્ર

*

ઉપરાંત

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ-રચિત

બીજા સૂત્રોની ટીકા માટે તેઓશ્રીના મંતવ્યો

*

તેમજ

અન્ય મહાત્માઓ, મહાસતીજીઓ, અદ્યતન-પદ્ધતિવાળા કોલેજના પ્રોફેસરો

તેમજ

શાસ્ત્રજ્ઞ શ્રાવકોના અભિપ્રાયો

ઠે. ગ્રીન લોજ પાસે
ગરેડીયા કુવારોડ
રાજકોટ : સૌરાષ્ટ્ર

શ્રી. અખિલ ભારત શ્વે. સ્થા. જૈન.
શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

जैनागमवेत्ता जैनधर्मदिवाकर उपाध्याय श्री १००८ श्री आत्मारामजी महाराज तथा न्याय व्याकरण के ज्ञाता परम पण्डित मुनिश्री १००८ श्री हेमचन्द्रजी महाराज, इन दोनों महात्माओंका दिया हुआ श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रका प्रमाणपत्र निम्न प्रकार है—

सम्मइवत्तं

सिरि-वीरनिव्वाण-संवच्छर २४५८ आसोई
पुण्णमासी १५ सुक्कवारो लुहियाणाओ ।

मए मुणिहेमचंदेण य पंडियरयणमुणिसिरि-घासीलालविणिम्मिया सिरिउवासगसुत्तस्स अगारधम्मसंजीवणीनामिया वित्ती पंडियमूलचंदवासाओ अज्जोवंतं सुया, समीईणं, इयं वित्ती जहाणामं तहा गुणेवि धारेइ, सच्चं, अगाराणं तु इमा जीवण (संजमजीवण) दाई एव अत्थि । वित्तिकत्तुणा मूलसुत्तस्स भावो उज्जुसेलीओ फुडीकओ, अहय उवासयस्स सामण्णविसेसधम्मो, णयसियवायवाओ, कम्मपुरिसट्ठवाओ समणोवासयस्स धम्मदढत्ता य, इच्चाइविसया अस्सिं फुडरीइओ वण्णिया, जेण कत्तुणो पडिहाए सुट्ठुप्पयारेण परिचओ होइ, तह इइहासदिट्ठिओवि सिरिसमणस्स भगवओ महावीरस्स समए वट्टमाण—भरहवासस्स य कत्तुणा विसयप्पयारेण चित्तं चित्तिं, पुणो सक्कयपाढीणं, वट्टमाणकाले हिन्दीणामियाए भासाए भासीणं य परमोवयारो कडो, इमेण कत्तुणो अरिहत्ता दीसइ, कत्तुणो एयं कज्जं परमप्पसंसणिज्जमत्थि । पत्तेयजणस्स मज्झत्थभावाओ अस्स सुत्तस्स अवलोयणमईव लाहप्पयं, अवि उ सावयस्स तु (उ) इमं सत्थं सव्वस्समेव अत्थि, अओ कत्तुणो अणेगकोडीसो धन्नवाओ अत्थि, जेहिं अच्चंतपरिस्समेण जइजणतोवरि असीमोवयारो कडो, अहय सावयस्स वारस नियमा उ पत्तेयजणस्स पढणिज्जा अत्थि, जेसिं पहावओ वा गहणाओ आया निव्वाणाहिगारी भवइ, तहा भवियव्वयावाओ पुरिसकारपरक्कमवाओ य अवस्समेव दंसणिज्जो, किंवहुणा इमीसे वित्तीए पत्तेयविसयस्स फुडसद्देहिं वण्णणं कयं, जइ अन्नोवि एवं अम्हाणं पसुत्तप्पाए समाजे विज्जं भवेज्जा तया नाणस्स चरित्तस्स तहा संघस्स य खिप्पं उदयो भविस्सई, एवं हं मन्ने॥

भवईओ—

उवज्झाय—जइणमुणि—आयाराम,-पंचनईओ,

सम्मतिपत्र

(भाषान्तर)

श्रीवीरनिर्वाण सं० २४५८ आसोज–
शुक्ला (पूर्णिमा) शुक्रवार लुधियाना

मैंने और पंडितमुनि हेमचन्द्रजीने पण्डितरत्न मुनि श्रीघासीलाल-जीकी रची हुई उपासकदशांग सूत्रकी गृहस्थधर्मसंजीवनी नामक टीका पंडित मूलचन्द्रजी व्याससे आद्योपान्त सुनी है। यह वृत्ति यथानाम–तथागुणवाली–अच्छी बनी है। सच यह गृहस्थोंके तो जीवनदात्री–संयमरूप जीवनको देनेवाली ही है। टीकाकारने मूलसूत्र के भावको सरल रीतिसे वर्णन किया है, तथा श्रावकका सामान्य धर्म क्या है? और विशेष धर्म क्या है? इसका खुलासा इस टीकामें अच्छे ढंगसे बतलाया है। स्याद्वादका स्वरूप कर्म–पुरुषार्थ–वाद और श्रावकको धर्मके अन्दर दृढता किस प्रकार रखना, इत्यादि विषयोंका निरूपण इसमें भलीभांति किया है। इससे टीकाकारकी प्रतिभा खूब झलकती है। ऐतिहासिक दृष्टिसे श्रमण भगवान् महावीर के समय जैनधर्म किस जाहोजलाली पर था? और वर्तमान समय जैनधर्म किस स्थितिमें पहुंचा है? इस विषयका तो ठीक चित्र ही चित्रित कर दिया है। फिर संस्कृत जाननेवालों को तथा हिन्दीभाषाके जाननेवालों को भी पूरा लाभ होगा, क्यों कि टीका संस्कृत है उसकी सरल हिन्दी कर दी गई है। इसके पढने से कर्ताकी योग्यताका पता लगता है कि वृत्तिकारने समझानेका कैसा अच्छा प्रयत्न किया है। टीकाकार का यह कार्य परम प्रशंसनीय है। इस सूत्रको मध्यस्थ भावसे पढने-वालोंको परम लाभकी प्राप्ति होगी। क्या कहें श्रावकों (गृहस्थों) का तो यह सूत्र सर्वस्व ही है, अतः टीकाकार को कोटिशः धन्यवाद दिया जाता है, जिन्होंने अत्यन्त परिश्रमसे जैन–जनताके ऊपर असीम उपकार किया है। इसमें श्रावकके बारह नियम प्रत्येक पुरुषके पढने योग्य हैं, जिनके प्रभावसे अथवा यथायोग्य ग्रहण करनेसे आत्मा मोक्षका अधिकारी होता है। तथा भवितव्यतावाद और पुरुषकार-

पराक्रमवाद हरएकको अवश्य देखना चाहिये। कहां तक कहें इस टीकामें प्रत्येक विषय सम्यक् प्रकारसे बताये गये हैं। हमारी सुप्तप्राय (सोई हुईसी) समाजमें अगर आप जैसे योग्य विद्वान् फिर भी कोई होंगे तो ज्ञान चारित्र तथा श्रीसंघका शीघ्र उदय होगा, ऐसा मैं मानता हूं-

आपका

उपाध्याय जैनमुनि आत्माराम पंजाबी.



इसी प्रकार लाहोरमें विराजते हुए पण्डितवर्य विद्वान् मुनिश्री १००८ श्री भागचन्दजी महाराज तथा पं. मुनिश्री त्रिलोकचन्दजी महाराजके दिये हुए, श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रके प्रमाणपत्रका हिन्दी सारांश निम्न प्रकार है—

श्री श्री स्वामी घासीलालजी महाराज कृत श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रकी संस्कृत टीका व भाषाका अवलोकन किया, यह टीका अतिरमणीय व मनोरञ्जक है, इसे आपने बडे परिश्रम व पुरुषार्थ से तैयार किया है सो आप धन्यवादके पात्र हैं। आप जैसे व्यक्तियोंकी समाजमें पूर्ण आवश्यकता है। आपकी इस लेखिनीसे समाजके विद्वान् साधुवर्ग पढ कर पूर्ण लाभ उठावेंगे, टीकाके पढनेसे हमको अत्यानन्द हुवा, और मनमें ऐसे विचार उत्पन्न हुए कि हमारी समाजमें भी ऐसे २ सुयोग्य रत्न उत्पन्न होने लगे-यह एक हमारे लिये बडे गौरवकी बात है।

वि. सं. १९८९ मा. आश्विन
कृष्णा १३ वार भौम लाहोर.



श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्रकी 'अनगारधर्माऽमृतवर्षिणी' टीका पर
जैनदिवाकर साहित्यरत्न जैनागमरत्नाकर परमपूज्य श्रद्धेय
जैनाचार्य श्री आत्मारामजी महाराजका

सम्मतिपत्र

लुधियाना, ता. ४-८-५१

मैंने आचार्यश्री घासीलालजी म. द्वारा निर्मित 'अनगार-धर्मामृत-वर्षिणी' टीकावाले श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्रका मुनि श्री रत्नचन्द्रजीसे आद्योपान्त श्रवण किया।

यह निःसन्देह कहना पडता है कि यह टीका आचार्यश्री घासीलालजी म. ने बडे परिश्रम से लिखी है। इसमें प्रत्येक शब्दका प्रामाणिक अर्थ और कठिन स्थलों पर सार-पूर्ण विवेचन आदि कई एक विशेषतायें हैं। मूल स्थलों को सरल बनाने में काफी प्रयत्न किया गया है, इससे साधारण तथा असाधारण सभी संस्कृतज्ञ पाठकों को लाभ होगा ऐसा मेरा विचार है।

मैं स्वाध्यायप्रेमी सज्जनों से यह आशा करूंगा कि ये वृत्तिकारके परिश्रम को सफल बना कर शास्त्रमें दी गई अनमोल शिक्षायों से अपने जीवन को शिक्षित करते हुए परमसाध्य मोक्षको प्राप्त करेंगे।

श्रीमान्‌जी जयवीर

आपकी सेवामें पोष्ट द्वारा पुस्तक भेज रहे हैं और इस पर आचार्यश्रीजी की जो सम्मति है वह इस पत्रके साथ भेज रहे हैं पहुंचने पर समाचार देवें।

श्री आचार्यश्री आत्मारामजी म. ठाने ६ सुखशान्तिसे विराजते हैं। पूज्य श्री घासीलालजी म. सा. ठाने ४ की हमारी ओरसे वन्दना अर्ज कर सुखशाता पूछें।

पूज्य श्री घासीलालजी म. जी का लिखा हुआ (विपाकसूत्र) महाराजश्रीजी देखना चाहते हैं इसलिये १ कापी आप भेजने की कृपा करें, फिर आप को वापिस भेज देवेंगे। आपके पास नहीं हो तो जहां से मिले वहां से १ कापी जरूर भिजवाने का कष्ट करें, उत्तर जल्द देनेकी कृपा करें। योग्य सेवा लिखते रहें।

लुधियाना ता. ४-८-५१

निवेदक
प्यारेलाल जैन

जैनागमवारिधि–जैनधर्मदिवाकर–उपाध्याय–पण्डित–मुनि श्री आत्मारामजी महाराज (पंजाब)का आचाराङ्गसूत्रकी आचारचिन्तामणि टीका पर

सम्मति–पत्र ।

मैंने पूज्य आचार्यवर्य श्री घासीलालजी (महाराज) की बनाई हुई श्रीमद् आचाराङ्ग सूत्रके प्रथम अध्ययन की आचारचिन्तामणि टीका सम्पूर्ण उपयोगपूर्वक सुनी।

यह टीका–न्याय सिद्धान्त से युक्त, व्याकरण के नियम से निबद्ध है। तथा इसमें प्रसङ्ग २ पर क्रम से अन्य सिद्धान्त का संग्रह भी उचित रूप से मालूम होताहै।

टीकाकारने अन्य सभी विषय सम्यक् प्रकार से स्पष्ट किये हैं, तथा प्रौढ विषयों का विशेषरूप से संस्कृत भाषा में स्पष्टतापूर्वक प्रतिपादन अधिक मनोरंजक है, एतदर्थ आचार्य महोदय धन्यवाद के पात्र हैं।

मैं आशा करता हूं कि–जिज्ञासु महोदय इसका भली–भांति पठन द्वारा जैनागम – सिद्धान्तरूप अमृत पी–पी कर मन को हर्षित करेंगे, और इसके मनन से दक्ष जन चार अनुयोगों का स्वरूपज्ञान पावेंगे। तथा आचार्यवर्य इसीप्रकार दूसरे भी जैनागमों के विशद विवेचन द्वारा श्वेताम्बर–स्थानकवासी समाज पर महान उपकार कर यशस्वी बनेंगे।

वि. सं. २००२ — जैनमुनि–उपाध्याय आत्माराम
मृगसर सुदि १ — लुधियाना पंजाब शुभमस्तु



बीकानेरवाला समाजभूषण शास्त्रज्ञ भेरूदानजी शेठिआनो अभिप्राय



आप शास्त्रका कार्य कर रहे हैं यह बडा उपकारका कार्य है। इससे जैनजनता को काफी लाभ पहुंचेगा।
(ता. २८–३–५६ना पत्रमांथी)

॥ श्रीः ॥

जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर-जैनाचार्य-पूज्य-श्री आत्मारामजी-
महाराजानां पञ्चनद-(पंजाव)स्थानामनुत्तरोपपातिकसूत्राणा-
मर्थबोधिनीनामटीकायामिदम्-

सम्मतिपत्रम्.

आचार्यवर्यैः श्री घासीलालमुनिभिः सङ्कलिता अनुत्तरोपपातिकसूत्राणामर्थबोधिनीनाम्नी संस्कृतवृत्तिरुपयोगपूर्वकं सकलाऽपि स्वशिष्यमुखेनाऽश्रावि मया, इयं हि वृत्तिर्मुनिवरस्य वैदुष्यं प्रकटयति। श्रीमद्भिर्मुनिभिः सूत्राणामर्थान् स्पष्टयितुं यः प्रयत्नो व्यधायि तदर्थमनेकशो धन्यवादानर्हन्ति ते। यथा चेयं वृत्तिः सरला सुवोधिनी च तथा सारवत्यपि। अस्याः स्वाध्यायेन निर्वाणपदमभीप्सुभिर्निर्वाणपदमनुसरद्भिर्ज्ञान-दर्शन-चारित्रेषु प्रयतमानैर्मुनिभिः श्रावकैश्च ज्ञानदर्शन-चारित्राणि सम्यक् सम्प्राप्याऽन्येऽप्यात्मानस्तत्र प्रवर्तयिष्यन्ते।

आशासे श्रीमदाशुकविर्मुनिवरो गीर्वाणवाणीजुषां विदुषां मनस्तोषाय जैनागमसूत्राणां सारावबोधाय च अन्येषामपि जैनागमानामित्थं सरलाः सुस्पष्टाश्च वृत्तीर्विधाय तांस्तान् सूत्रग्रन्थान् देवगिरा सुस्पष्टयिष्यति।

अन्ते च "मुनिवरस्य परिश्रमं सफलयितुं सरलां सुवोधिनीं चेमां सूत्रवृत्तिं स्वाध्यायेन सनाथयिष्यन्त्यवश्यं सुयोग्या हंसनिभाः पाठकाः।" इत्याशास्ते—

विक्रमाब्द २००२
श्रावणकृष्णा प्रतिपदा
लुधियाना.

उपाध्याय आत्मारामो जैनमुनिः।

(श्री दशवैकालिकसूत्रका सम्मतिपत्र)

॥श्री वीरगौतमाय नमः॥

सम्मतिपत्रम्.

मए पंडियमुणि-हेमचंदेण य पंडिय-मूलचन्दवासवारा पत्ता पंडिय-रयण-मुणि-घासीलालेण विरइया सक्कय-हिंदी-भासाहिं जुत्ता सिरि-दसवेयालिय-नाम-सुत्तस्स आयारमणिमंजूसा वित्ती अवलोइया, इमा मणोहरा अत्थि, एत्थ सद्दाणं अइसयजुत्तो अत्थो वण्णिओ विउजणाणं पाययजणाण य परमोवयारिया इमा वित्ती दीसइ ! आयारविसए वित्तीकत्तारेण अइसयपुव्वं उल्लेहो कडो, तहा अहिंसाए सरूवं जे जहा-तहा न जाणंति तेसिं इमाए वित्तीए परमलाहो भविस्सइ, कत्तुणा पत्तेयविसयाणं फुडरूवेण वण्णणं कडं, तहा मुणिणो अरिहत्ता इमाए वित्तीए अवलोयणाओ अइसयजुत्ता सिज्झइ ! सक्कयछाया सुत्तपयाणं पयच्छेओ य सुबोहदायगो अत्थि, पत्तेयजिण्णासुणो इमा वित्ती दट्ठव्वा । अम्हाणं समाजे एरिसविज्ज-मुणिरयणाणं सब्भावो समाजस्स अहोभग्गं अत्थि, किं? उत्तविज्जमुणिरयणाणं कारणाओ जो अम्हाणं समाजो सुत्तप्पाओ, अम्हकेरं साहिच्चं च लुत्तप्पायं अत्थि तेसिं पुणोवि उदओ भविस्सइ जस्स कारणाओ भवियप्पा मोक्खस्स जोग्गो भवित्ता पुणो निव्वाणं पाविहिइ अओहं आयारमणि-मंजूसाए कत्तुणो पुणो पुणो धन्नवायं देमि— ॥

वि. सं. १९९० फाल्गुन- शुक्लत्रयोदशी-मङ्गले (अलवर स्टेट)	इइ- उवज्झाय-जइण-मुणी, आयारामो (पंचनईओ)

ऐसेही :—

मध्यभारत सैलाना-निवासी श्रीमान् रतनलालजी डोसी श्रमणोपासक जैन लिखते हैं कि :—

श्रीमान् की की हुई टीकावाला उपासकदशांग सेवक के दृष्टिगत हुवा, सेवक अभी उसका मनन कर रहा है यह ग्रन्थ सर्वाङ्गसुन्दर एवम् उच्चकोटि का उपकारक है ।

निरयावलिका का सम्मतिपत्र.
आगमवारिधि–सर्वतन्त्रस्वतन्त्र–जैनाचार्य–पूज्यश्री
आत्मारामजी महाराजकी तरफ का आया हुवा

सम्मतिपत्र

लुधियाना. ता. ११ नवम्बर ४८

श्रीयुत गुलाबचन्दजी पानाचन्दजी। सादर जयजिनेन्द्र ॥

पत्र आपका मिला ! निरयावलिका विषय पूज्यश्रीजीका स्वास्थ्य ठीक न होने से उनके शिष्य पं. श्री हेमचन्द्रजी महाराजने सम्मतिपत्र लिख दिया है आपको भेज रहे हैं। कृपया एक कोपी निरयावलिकाकी और भेज दीजिये और कोई योग्य सेवा कार्य लिखते रहें !

भवदीय गुजरमल–बलवंतराय जैन

॥ सम्मतिः ॥

(लेखकः–जैनमुनि पं. श्री हेमचन्द्रजी महाराज)

सुन्दरबोधिनीटीकया समलंकृतं हिन्दी–गुर्जर भाषानुवादसहितं च श्रीनिरयावलिकासूत्रं मेधाविनामल्पमेधसां चोपकारकं भविष्यतीति सुदृढं मेऽभिमतम् , संस्कृतटीकेयं सरला सुबोधा सुललिता चात एव अन्वर्थनाम्नी चाप्यस्ति। सुविशदत्वात् सुगमत्वात् प्रत्येकदुर्बोधपद–व्याख्यायुतत्वाच्च टीकैषा संस्कृतसाधारणज्ञानवतामप्युपयोगिनी भाविनीत्यभिप्रैमि। हिन्दी–गुर्जर भाषानुवादावपि एतद् भाषाविज्ञानां महीयसे लाभाय भवेतामिति सम्यक् संभावयामि।

जैनाचार्य – जैनधर्मदिवाकर – पूज्यश्री घासीलालजी महाराजानां परिश्रमोऽयं प्रशंसनीयो धन्यवादार्हश्च ते मुनिसत्तमाः। एवमेव श्री–समीरमल्लजी–श्री कन्हैयालालजी मुनिवरेण्ययोर्नियोजनकार्यमपि श्लाघ्यं, तावपि च मुनिवरौ धन्यवादार्हौ स्तः।

सुन्दरप्रस्तावनाविषयानुक्रमादिना समलंकृते सूत्ररत्नेऽस्मिन् यदि शब्दकोषोऽपि दत्तः स्यात्तर्हि वरतरं स्यात्। यतोऽस्यावश्यकतां सर्वेऽप्यन्वेषकविद्वांसोऽनुभवन्ति।

पाठकाः सूत्रस्यास्याध्ययनाध्यापनेन लेखकनियोजकमहोदयानां परिश्रमं सफलयिष्यन्तीत्याशास्महे। इति।

श्री उपासकदशाङ्ग सूत्र परत्वे जैन समाजना अग्रगण्य जैनधर्मभूषण महान् विद्वान् संतोए तेमज विद्वान श्रावकोए सम्मतिओ समर्पी छे तेमना नामो नीचे प्रमाणे छे.

(१) लुधियाना–संवत् १९८९, आश्विन पूर्णिमा का पत्र, श्रुतज्ञान के भंडार आगमरत्नाकर जैनधर्मदिवाकर श्री १००७ श्री उपाध्याय श्री आत्मारामजी महाराज, तथा न्यायव्याकरणवेत्ता श्री १००७ तच्छिष्य श्री मुनि हेमचन्दजी महाराज.

(२) लाहौर–वि० सं० १९८९ आश्विन वदि १३ का पत्र, पण्डितरत्न श्री १००८ श्री भागचंदजी महाराज तथा तच्छिष्य पण्डिरत्न श्री १००७ श्री त्रिलोकचंदजी महाराज.

(३) खिचन–से ता. ९–११–३६ का पत्र, क्रियापात्र स्थविर श्री १००८ श्री भारतरत्न श्री समरथमलजी महाराज.

(४) वालाचोर–ता. १४–११–३६ का पत्र, परम प्रसिद्ध भारतरत्न श्री १००८ श्री शतावधानी श्री रतनचंदजी महाराज.

(५) बम्बई–ता. १६–११–३६ का पत्र, प्रसिद्ध कवीन्द्र श्री १००८ श्री कवि नानचंद्रजी महाराज.

(६) आगरा–ता. १८–१२–३६, जगत् वल्लभ श्री १००८ जैनदिवाकर श्री चौथमलजी महाराज, गुणवन्त गणीजी श्री १००७ श्री साहित्यप्रेमी श्री प्यारचन्दजी महाराज.

(७) हैद्राबाद–(दक्षिण) ता. २५–११–३६ का पत्र, स्थिवरपदभूषित भाग्यवान पुरुष श्री ताराचंदजी महाराज तथा प्रसिद्ध वक्ता श्री १००७ श्री सोभागमलजी महाराज.

(८) जयपुर–ता. २७–११–३६ का पत्र, संप्रदाय के गौरववर्धक शांत–स्वभावी श्री १००८ श्री पूज्य श्री खूबचन्दजी महाराज.

(९) अम्बाला–ता. २९–११–३६ का पत्र, परमप्रतापी पंजावकेशरी श्री १००८ श्री पूज्य श्री रामजी महाराज.

(१०) सेलाना–ता. २९–११–३६ का पत्र, शास्त्रों के ज्ञाता श्रीमान् रतनलालजी डोसी.

(११) खीचन–ता. ९–११–३६ का पत्र, पंडितरत्न न्यायतीर्थ सुश्रावक श्रीयुत् माधवलालजी.



ता० २५–११–३६

सादर जय जिनेन्द्र

आपका भेजा हुवा उपासकदशांग सूत्र तथा पत्र मिला यहां विराजित प्रवर्तक वयोवृद्ध श्री १००८ श्री ताराचंदजी महाराज पण्डित श्री किशनलालजी महाराज आदि ठाणा १४ सुख शांती में विराजमान हैं आपके वहां विराजित जैनशास्त्राचार्य पूज्यपाद श्री १००८ श्री घासीलालजी महाराज आदि ठाणा नव से हमारी बन्दना अर्ज कर सुख शांति पूछे आपने उपासकदशांग सूत्र के विषय में यहां विराजित मुनिवरों की सम्मती मंगाई उसके विषय में वक्ता श्री सोभागमलजी महाराजने फरमाया है कि वर्तमान में स्थानकवासी समाज में अनेकानेक विद्वान मुनि महाराज मौजूद हैं मगर जैनशास्त्र की वृत्ति रचने का साहस जैसा घासीलालजी महाराज ने किया है वैसा अन्यने किया हो ऐसा नजर नहीं आता दूसरा यह शास्त्र अत्यन्त उपयोगी तो यों हैं संस्कृत प्राकृत हिन्दी और गुजराती भाषा होने से चारों भाषा वाले एक ही पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं जैन समाज में ऐसे विद्वानोंका गौरव बढे यही शुभ कामना है आशा है कि स्थानकवासी संघ विद्वानों की कदर करना सीखेगा।

योग्य लिखें शेष शुभ — भवदीय

जमनालाल रामलाल कीमती



आगरा से:—

श्री जैनदिवाकर प्रसिद्धवक्ता जगद्वल्लभ मुनि श्री चोथमलजी महाराज व पंडितरत्न सुव्याख्यानि गणीजी श्री प्यारचन्दजी महाराजने इस पुस्तकको अतीव पसन्द की है।

श्रीमान् न्यायतीर्थ पण्डित

माधवलालजी खचिन से लिखते हैं कि–

उन पंडितरत्न महाभाग्यवंत पुरुषों के सामने उनकी अगाध–तत्त्वगवेषणा के विषय में मैं नगण्य क्या सम्मति दे सकता हूं।

परन्तुः—

मेरे दो मित्रों ने जिन्होंने इसको कुछ पढा है बहुत सराहना की वास्तव में ऐसे उत्तम व सबके समझने योग्य ग्रन्थों की बहुत आवश्यकता है और इस समाज का तो ऐसे ग्रन्थ ही गौरव बढा सकते हैं–ये दोनों ग्रन्थ वास्तव में अनुपम हैं ऐसे ग्रन्थरत्नों के सुप्रकाशसे यह समाज अमावास्या के घोर अन्धकार में दीपावली का अनुभव करती हुई महावीर के अमूल्य वचनों का पान करती हुई अपनी उन्नति में अग्रसर होती रहेगी।



ता. २९–११–३६
अम्बाला (पंजाब)

पत्र आपका मिला श्री श्री १००८ पंजाबकेसरी पूज्य श्री काशीरामजी महाराज की सेवा में पढ़ कर सुना दिया। आपकी भेजी हुई उपासकदशाङ्ग सूत्र तथा गृहिधर्मकल्पतरु की एक २ प्रति भी प्राप्त हुई। दोनों पुस्तकें अति उपयोगी तथा अत्यधिक परिश्रम से लिखी हुई हैं। ऐसे ग्रन्थरत्नों के प्रकाशित करवानेकी बड़ी आवश्यकता है। इन पुस्तकों से जैन तथा अजैन सबका उपकार हो सकता है। आपका यह पुरुषार्थ सराहनीय है।

आपका
शशिभूषण शास्त्री
अध्यापक जैन हाई स्कूल
अम्बाला शहर

शान्तस्वभावी वैराग्यमूर्ति तत्ववारिधि, धैर्यवान श्री जैनाचार्य पूज्यवर श्री श्री १००८ श्री खूबचन्दजी महाराज साहेबने सूत्र श्री उपासकदशाङ्गजी को देखा। आपने फरमाया कि पण्डित मुनि घासीलालजी महाराज ने उपासकदशाङ्ग सूत्रको टीका लिखने में वडा ही परिश्रम किया है। इस समय इस प्रकार प्रत्येक सूत्रों की संशोधनपूर्वक सरल टीका और शुद्धहिन्दी अनुवाद होने से भगवान निर्ग्रन्थों के प्रवचनों के अपूर्व रस का लाभ मिल सकता है।



बालाचोर से भारतरत्न शतावधानी पंडित मुनि श्री १००८ श्री रतनचन्दजी महाराज फरमाते हैं कि :—

उत्तरोत्तर जोतां मूल सूत्रनी संस्कृत टीकाओ रचवामां टीकाकारे स्तुत्य प्रयास कर्यो छे, जे स्थानकवासी समाज माटे मगरूरी लेवा जेवुं छे, वली करांचीना श्री संघे सारा कागळमां अने सारा टाईपमां पुस्तक छपावी प्रगट कर्युं छे जे एक प्रकारनी साहित्य सेवा बजावी छे.



बम्बई शहेरमें विराजमान कवि मुनि श्री नानचन्दजी महाराजने फरमाया है कि पुस्तक सुन्दर है प्रयास अच्छा है।



खीचन से स्थविर क्रियापात्र मुनि श्री रतनचन्दजी महाराज और पंडित रत्न मुनिश्री समर्थमलजी महाराज श्री फराते हैं कि—विद्वान महात्मा पुरुषोंका प्रयत्न सराहनीय है, जैनागम श्रीमद् उपासकदशाङ्गसूत्र की टीका, एवं उसकी सरल सुबोधनी शुद्ध हिन्दी भाषा बड़ी ही सुन्दरता से लिखी है।



श्री वीतरागाय नमः ॥

श्री श्री श्री १००८ जैनधर्म दिवाकर जैनागमरत्नाकर श्रीमज्जैनाचार्य श्री पूज्य घासीलालजी महाराज चरणवन्दन स्वीकार हो।

अपरञ्च समाचार यह है कि आपके भेजे हुए ९ शास्त्र मास्टर शोभालालजी के द्वारा प्राप्त हुए, एतदर्थ धन्यवाद! आपश्रीजीने तो ऐसा कार्य किया है जो कि हजारों वर्षों से किसी भी स्थानकवासी जैनाचार्य ने नहीं किया।

आपने स्थानकवासीजैनसमाज के ऊपर जो उपकार किया है वह कदापि भुलाया नहीं जा सकता और नहीं भुलाया जा सकेगा।

हम तीनों मुनि भगवान महावीर से अथवा शासनदेव से प्रार्थना करते हैं कि आपकी इस वज्रमयी लेखनी को उत्तरोत्तर शक्ति प्रदान करें ताकि आप जैन समाज के ऊपर और भी उपकार करते रहें और आप चिरञ्जीव हों।

हम हैं आप के मुनि तीन

मुनि सत्येन्द्रदेव–मुनि लखपतराय–मुनि पद्मसेन

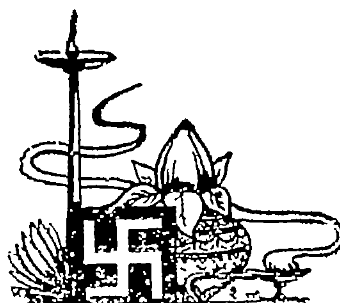


इतवारी बाजार
नागपुर ता. १९-१२-५६

प्रखर विद्वान जैनाचार्य मुनिराज श्री घासीलालजी महाराजद्वारा जो आगमोद्धार हुआ और हो रहा है सचमुच महाराजश्री का यह स्तुत्य कार्य है। हमने प्रचारकजी के द्वारा नौ सूत्रों का सेट देखा और कइ मार्मिक स्थलोंको पढा, पढ़ कर विद्वान मुनिराजश्री की शुद्ध श्रद्धा तथा लेखनीके प्रति हार्दिक प्रसन्नता फूट पडी।

वास्तव में मुनिराज श्री जैन समाज पर ही नहीं इतर समाज पर भी महा उपकार कर रहे हैं। ज्ञान किसी एक समाज का नहीं होता वह सभी समाज की अनमोल निधि है जिसे कठिन परिश्रम से तैयार कर जनता के सम्मुख रक्खा जा रहा है जिसका एक एक सेट हर शहर गांव और घर घर में होना आवश्यक है।

साहित्यरत्न
मोहनमुनि सोहनमुनि जैन



શ્રી દશવૈકાલિક સૂત્રનું સમ્મતિ પત્ર

શ્રમણ સંઘના મહાન આચાર્ય આગમ વારિધિ સર્વતન્ત્ર સ્વતંત્ર જૈનાચાર્ય પૂજ્યશ્રી આત્મારામજી મહારાજે આપેલા સમ્મતિપત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ.



મે તથા પંડિત મુનિ હેમચન્દ્રજીએ પંડિત મુલચંદ વ્યાસ (नागौर मारवाडवाला) દ્વારા મળેલી પંડિત રત્ન શ્રી ઘાસીલાલજી મુનિ વિરચિત સંસ્કૃત અને હિન્દી ભાષા સહિત શ્રી દશવૈકાલિક સૂત્રની આચારમણિમંજૂષા ટીકાનું અવલોકન કર્યું આ ટીકા સુંદર બની છે. તેમાં પ્રત્યેક શબ્દનો અર્થ સારી રીતે વિશેષભાવ લઇને સમજાવવામાં આવેલ છે.

તેથી વિદ્વાનો અને સાધારણ બુદ્ધિવાળાઓ માટે પરમ ઉપકાર કરવાળી છે. ટીકાકારે મુનિના આચાર વિષયનો સારો ઉલ્લેખ કરેલ છે. જે આધુનિક-મતાવલંબી અહિંસાના સ્વરૂપને નથી જાણતા, દયામાં પાપ સમજે છે તેમને માટે 'અહિંસા શું વસ્તુ છે' તેનુ સારી રીતે પ્રતિપાદન કરેલ છે. વૃત્તિકારે સૂત્રના પ્રત્યેક વિષયને સારી રીતે સમજાવેલ છે. આ વૃત્તિના અવલોકનથી વૃત્તિકારની અતિશય યોગ્યતા સિદ્ધ થાય છે.

આ વૃત્તિમાં એક બીજી વિશેષતા એ છે કે મૂલસૂત્રની સંસ્કૃત છાયા હોવાથી સૂત્ર, સૂત્રનાં પદ અને પદચ્છેદ સુબોધદાયક બનેલ છે.

પ્રત્યેક જીજ્ઞાસુએ આ ટીકાનું અવલોકન અવશ્ય કરવું જોઇએ. વધારે શું કહેવું. અમારી સમાજમાં આવા પ્રકારના વિદ્વાન મુનિ રત્નનું હોવું એ સમાજનુ અહોભાગ્ય છે. આવા વિદ્વાન મુનિરત્નોના કારણે સુપ્તપ્રાય—સુતેલો સમાજ અને લુપ્તપ્રાય એટલે લોપ પામેલું સાહિત્ય એ બન્નેનો ફરીથી ઉદય થશે. અમો વૃત્તિકારને વારંવાર ધન્યવાદ આપીએ છીએ.

વિક્રમ સંવત ૧૯૯૦ ફાલ્ગુન શુકલ
તેરસ મંગળવાર
(અલવર સ્ટેટ)

ઈઈ
ઉવજઝાય જઇણ
મુણી આયારામો
પંચનઈઓ

શ્રમણ સંઘના પ્રચારમંત્રી પંજાબકેશરી મહારાજ **શ્રી પ્રેમચંદજી મહારાજ** જેઓશ્રી રાજકોટમાં પધારેલા હતા ત્યારે તેઓના તરફથી શાસ્ત્રોને માટે મળેલો અભિપ્રાય.

*

શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ તરફથી પૂજ્યપાદ શાસ્ત્રવારિધિ પંડિતરાજ સ્વામીશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજદ્વારા શાસ્ત્રોદ્ધારનું જે કાર્ય થઈ રહ્યુ તે કાર્ય જૈન સમાજ તેમાં ખાસ કરીને સ્થાનકવાસીજૈનસમાજને માટે મૂળભૂત મૌલિક સંસ્કૃતિની જડને મજબુત કરવાવાળું છે.

એટલા ખાતર આ કાર્ય અતિ પ્રશંસનીય છે માટે દરેક વ્યક્તિએ તેમાં યથાશકિત ભોગ દેવાની ખાસ આવશ્યકતા છે અને તેથી એ ભગીરથ કાર્ય જલ્દીથી જલ્દી સંપૂર્ણપણે પાર પાડી શકાય અને જનતા શ્રુતજ્ઞાનનો લાભ મેળવી શકે.

*

દરીયાપુરી સંપ્રદાયના પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઇશ્વરલાલજી મહારાજ સાહેબના

સૂત્રો સંબંધે વિચારો

નમામિ વીરં ગિરિસારધીરં

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનિપ્રવરશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તથા પંડિતશ્રી કનૈયાલાલજી મહારાજ આદિ થાણા છની સેવામાં—

અમદાવાદ શાહપુર ઉપાશ્રયથી મુનિ દયાનંદજીના ૧૦૮ પ્રણિપાત.

આપ સર્વે થાણાઓ સુખ સમાધિમાં હશો નિરંતર ધર્મધ્યાન ધર્મારાધનમાં લીન હશો.

સૂત્ર પ્રકાશન કાર્ય ત્વરિત થાય એવી ભાવના છે દશવૈકાલિક તથા આચારાંગ એક એક ભાગ અહીં છે ટીકા ખૂબ સુંદર, સરળ અને પંડિતજનોને સુપ્રિય થઈ પડે તેવી છે. સાથે સાથે ટીકા વિનાના મુળ અને અર્થ સાથે પ્રકાશન થાય તો શ્રાવકગણ તેનો વિશેષ લાભ લઈ શકે અત્રે પૂજ્ય આચાર્ય ગુરૂદેવને આંખે મોતીયો ઉતરાવ્યો છે અને સારૂં છે એજ.

આસો શુદ ૧૦, મંગળવાર તા. ૨૫–૧૦–૫૫

પુનઃ પુનઃ શાતા ઇચ્છતો,
દયા મુનિના પ્રણિપાત.

*

દરીયાપુરી સંપ્રદાયના પંડિત રત્ન ભાઇચંદજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શ્રી

રાણપુર તા. ૧૯-૧૨-૧૯૫૫

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનિપ્રવર પંડિત રત્ન પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આદિ મુનિવરોની સેવામા, આપ સર્વ સુખસમાધીમાં હશો.

સૂત્રપ્રકાશનનું કામ સુદર થઇ રહ્યું છે તે જાણી અત્યંત આનંદ. આપના પ્રકાશિત થયેલાં કેટલાંક સૂત્રો જોયાં. સુંદર અને સરલ સિદ્ધાંતના ન્યાયને પુષ્ટિ કરતી ટીકા પંડિતરત્નોને સુપ્રિય થઈ પડે તેવી છે સૂત્રપ્રકાશનનુ કામ ત્વરિત પૂર્ણ થાય અને ભવિ આત્માઓને આત્મકલ્યાણ કરવામા સાધનભૂત થાય એજ અભ્યર્થના.

લી. પંડિતરત્ન બાળબ્રહ્મચારી
પૂ૦ શ્રી **ભાઈચંદ મહારાજની**
આજ્ઞાનુસાર શાન્તિમુનીના
પાયવંદન સ્વીકારશો.

*

તા. ૧૧-૫-૫૬
વીરમગામ

ગચ્છાધિપતિ પૂજ્ય મહારાજ શ્રી જ્ઞાનચંદ્રજી મહારાજના સંપ્રદાયના આત્માર્થી, ક્રિયાપાત્ર, પંડિતરત્ન, મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજનો અભિપ્રાય

ખીચનથી આવેલ તા ૧૨-૨-૫૬ના પત્રથી ઉદ્ધૃત.

પૂજ્ય આચાર્ય ઘાસીલાલજી મહારાજના હસ્તક જે સૂત્રોનું લખાણ સુંદર અને સરળ ભાષામાં થાય છે. તે સાહિત્ય; પંડિત મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજ, સમય ઓછો મળવાને કારણે સંપૂર્ણ જોઇ શકયા નથી. છતાં જેટલુ સાહિત્ય જોયુ છે, તે બહુ જ સારૂં અને મનન સાથે લખાયેલું છે, તે લખાણ શાસ્ત્ર-આજ્ઞાને અનુરૂપ લાગે છે. આ સાહિત્ય દરેક શ્રદ્ધાળુ જીવોને વાંચવા યોગ્ય છે. આમાં સ્થાનકવાસી સમાજની શ્રદ્ધા, પ્રરૂપણા અને ફરસણાની દૃઢતા શાસ્ત્રાનુકૂળ છે. આચાર્યશ્રી અપૂર્વ પરિશ્રમ લઇ સમાજ ઉપર મહાન ઉપકાર કરે છે.

લી. કીશનલાલ પૃથ્વીરાજ માલુ
મુ. ખીચન.

*

લીંબડી સંપ્રદાયના સદાનંદી મુનિશ્રી છોટાલાલજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શ્રી વીતરાગદેવે જ્ઞાનપ્રચારને તીર્થંકર–નામ–ગોત્ર બાંધવાનું નિમિત્ત કહેલ છે. જ્ઞાનપ્રચાર કરનાર, કરવામા સહાય કરનાર, અને તેને અનુમોદન આપનાર જ્ઞાનાવરણીય કર્મને ક્ષય કરી કેવળ જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરી પરમ પદનાં અધિકારી બને છે. શાસ્ત્રજ્ઞ, પરમ શાન્ત અને અપ્રમાદી પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે અવિશ્રાન્તપણે જ્ઞાનની ઉપાસના અને તેની પ્રભાવના અનેક વિકટ પ્રસંગોમા પણ કરી રહ્યા છે તે માટે તેઓશ્રી અનેકશઃ ધન્યવાદના અધિકારી છે. વંદનીય છે, તેમની જ્ઞાનપ્રભાવનાની ધગશ ઘણા પ્રમાદિઓને અનુકરણીય છે જેમ પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે જ્ઞાનપ્રચાર માટે અવિશ્રાન્ત પ્રયત્ન કરે છે. તેમજ–શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના કાર્યવાહકો પણ એમા સહાય કરીને જે પવિત્ર સેવા કરી રહેલ છે. તે પણ ખરેખર ધન્યવાદના પૂર્ણ અધિકારી છે.

એ સમિતિના કાર્યકરોને મારી એક સુચના છે કે:—

શાસ્ત્રોદ્ધારક પ્રવર પંડિત અપ્રમાદી સંત ઘાસીલાલજી મહારાજ જે શાસ્ત્રોદ્ધારનુ કામ કરી રહેલ છે. તેમાં સહાય કરવા માટે–પંડિતો વિગેરેના માટે જે ખર્ચો થઈ રહેલ છે. તેને પહોંચી વળવા માટે સારૂં સરખું ફંડ જોઈએ. એના માટે મારી એ સુચના છે કે:–શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના મુખ્ય કાર્યવાહકો–જો બની શકે તો પ્રમુખ પોતે અને બીજા બે ત્રણ જણાઓ ગુજરાત, સૌરાષ્ટ્ર, અને કચ્છમાં પ્રવાસ કરી મેમ્બરો બનાવે અને આર્થિક સહાય મેળવે.

જો કે અત્યારની પરિસ્થિતિ વિષમ છે. વ્યાપારીઓ, ધંધાદારીઓને પોતાના વ્યવહાર સાચવવા પણ મુશ્કેલ બન્યા છે. છતાં જો સંભાવિત ગૃહસ્થો પ્રવાસે નીકળે તો જરૂર કાર્ય સફળ કરે એવી મને શ્રદ્ધા છે.

આર્થિક અનુકુળતા થવાથી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પણ વધુ સરલતાથી થઇ શકે. પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જ્યાં સુધી આ તરફ વિચરે છે ત્યા સુધીમાં એમની જ્ઞાનશક્તિનો જેટલો લાભ લેવાય તેટલો લઈ લેવો, કદાચ સૌરાષ્ટ્રમાં વધુ વખત રહેવાથી તેમને હવે બહાર વિહરવાની ઈચ્છા થતી હોય તો શાન્તિભાઈ શેઠ જેવાએ વિનંતી કરી અમદાવાદ પધારવા, અને ત્યા અનુકુળતા મુજબ બે–ત્રણ વર્ષની સ્થિરતા કરાવીને તેમની પાસે શાસ્ત્રોદ્ધારનુ કામ પૂર્ણ કરાવી લેવું જોઈએ.

થોડા વખતમાં જામજોધપુરમાં શાસ્ત્રોદ્ધારકમીટી મળવાની છે, તે વખતે ઉપરની સૂચના વિચારાય તો ઠીક.

ફરી શાસ્ત્રોદ્ધારક પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજને એમની આ સેવા અને પરમ કલ્યાણકારક પ્રવૃત્તિને માટે વારવાર અભિનંદન છે. શાસનનાયક દેવ તેમના શરીરાદિને સશક્ત અને દીર્ઘાયુ રાખી સમાજ ધર્મની વધુ ને વધુ સેવા કરી શકે. ૐ અસ્તુ

ચાતુર્માસ સ્થળ, લીંબડી
સાં. ૨૦૧૦ શ્રાવણ વદ ૧૩ ગુરૂ.

લી
સદાનંદી જૈનમુનિ **છોટાલાલજી**

*

શ્રી વર્ધમાન સંપ્રદાયના પૂજ્ય શ્રી પુનમચંદ્રજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શાસ્ત્રવિશારદ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ જૈન આગમો ઉપર જે સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચેલ છે તે માટે તેઓશ્રી ધન્યવાદને પાત્ર છે. તેમણે આગમો ઉપરની સ્વતંત્ર ટીકા રચીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજનું ગૌરવ વધાર્યું છે, આગમો ઉપરની તેમની સંસ્કૃતટીકા ભાષા અને ભાવની દૃષ્ટિએ ઘણી જ સુંદર છે. સંસ્કૃતરચના માધુર્ય તેમજ અલંકાર વગેરે ગુણોથી યુક્ત છે. વિદ્વાનોએ તેમજ જૈન સમાજના આચાર્યો, ઉપાધ્યાયો વગેરે એ શાસ્ત્રો ઉપર રચેલી આ સંસ્કૃતરચનાની કદર કરવી જોઈએ અને દરેક પ્રકારનો સહકાર આપવો જોઈએ.

આવા મહાન કાર્યમાં પંડિતરત્ન પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જે પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે તે અલૌકિક છે. તેમનું આગમ ઉપરની સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચવાનું ભગીરથકાર્ય શીઘ્ર સફળ થાય એ જ શુભેચ્છા સાથે.

અમદાવાદ
તા. ૨૨-૪-૫૬ રવિવાર
મહાવીર જયંતિ

મુનિ પૂર્ણચંદ્રજી

*

ખંભાત સંપ્રદાયના મહાસતી શારદાબાઇ સ્વામીનો અભિપ્રાય

લખતર તા. ૨૫-૪-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાંતીલાલભાઈ મંગળદાસભાઇ
પ્રમુખ સાહેબ અખિલ ભારત શ્વે૦ સ્થા૦ જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
મુ. અમદાવાદ

અમો અત્રે દેવગુરૂની કૃપાએ સુખરૂપ છીએ. વિ. મા આપની સમિતિદ્વારા પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સાહેબ જે સૂત્રોનુ કાર્ય કરે છે તે પૈકીનાં સૂત્રોમાથી ઉપાસકદશાંગસૂત્ર, આચારાંગસૂત્ર, અનુત્તરોપપાતિકસૂત્ર

દશવૈકાલિકસૂત્ર વિગેરે સૂત્રો જોયાં તે સૂત્રો સંસ્કૃત હિન્દી અને ગુજરાતી ભાષાઓમાં હોવાને કારણે વિદ્વાન અને સામાન્ય જનોને ઘણુ જ લાભદાયિક છે. તે વાંચન ઘણુંજ સુંદર અને મનોરંજન છે. આ કાર્યમાં પૂજ્ય આચાર્યશ્રી જે અઘાત પુરૂષાર્થે કાર્ય કરે છે તે માટે વારંવાર ધન્યવાદને પાત્ર છે. આ સૂત્રોથી સમાજને ઘણુ લાભનું કારણ છે.

હંસ સમાન બુદ્ધિવાળા આત્માઓ સ્વપરના ભેદથી નિખાલસ ભાવનાએ અવલોકન કરશે તો આ સાહિત્ય સ્થાનકવાસી સમાજ માટે અપૂર્વ અને ગૌરવ લેવા જેવુ છે. માટે દરેક ભવ્ય આત્માઓને સૂચન કરૂં છું કે આ સૂત્રો પોતપોતાના ઘરમાં વસાવાની સુદર તકને ચુકશો નહિ. કારણ આવા શુદ્ધ પવિત્ર અને સ્વપરંપરાને પુષ્ટીરૂપ સૂત્રો મળવાં બહુ મુશ્કેલ છે. આ કાર્યને આપશ્રી તથા સમિતિના અન્ય કાર્યકરો જે શ્રમ લઇ રહ્યા છો તેમાં મહાન નિર્જરાનું કારણ જોવામાં આવે છે તે બદલ ધન્યવાદ. એ જ

લી. **શારદાબાઇ સ્વામી**
ખંભાત સંપ્રદાય.

*

બરવાળા સંપ્રદાયના વિદુષી મહાસતીજી મોંઘીબાઇ સ્વામીનો અભિપ્રાય

ધંધુકા તા. ૨૭-૧-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તીલાલ મંગળદાસભાઈ

પ્રમુખ અ૦ ભ૦ શ્વે૦ સ્થા૦ જૈનશાસ્ત્ર ઉદ્ધાર સમિતિ

મુ૦ રાજકોટ

અત્રે બીરાજતા ગુ૦ ગુ૦ના ભંડાર મહાસતીજી વિદુષી મોંઘીબાઈ સ્વામી તથા હીરાબાઇ સ્વામી આદિઠાણાં બન્ને સુખશાતામાં બીરાજે છે, આપને સુચન છે કે અપ્રમત્ત અવસ્થામાં રહી નિવૃત્તિ ભાવને મેળવી ધર્મધ્યાન કરશો એજ આશા છે.

વિશેષમાં અમને પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના રચેલાં સૂત્રો ભાઈ પોપટ ધનજીભાઇ તરફથી ભેટ તરીકે મળેલાં તે સૂત્રો તમામ આદ્યોપાન્ત વાંચ્યાં મનન કર્યા અને વિચાર્યા છે તે સૂત્રો સ્થાનકવાસી સમાજને અને વીતરાગમાર્ગને ખુબ જ ઉન્નત બનાવનાર છે. તેમાં આપણી શ્રદ્ધા એટલી ન્યાયરૂપથી ભરેલી છે તે આપણા સમાજ માટે ગૌરવ લેવા જેવુ છે. હંસ સમાન

આત્માએ જ્ઞાનઝરણાઓથી આત્મરૂપ વાડીને વિકસિત કરશે. ધન્ય છે આપને અને સમિતિના કાર્યકરોને જે સમાજ ઉત્થાન માટે કોઇની પણ પરવા કર્યા વગર જ્ઞાનનુ દાન ભવ્ય આત્માઓને આપવા નિમિત્તરૂપ થઈ રહ્યા છો આવા સમર્થ વિદ્વાન પાસેથી સંપૂર્ણ કાર્ય પુરૂં કરાવશો તેવી આશા છે.

એજ લિ. બરવાળા સંપ્રદાયના વિદુષી
મહાસતીજી **મોંઘીબાઈ સ્વામી**
ના ફરમાનથી લી ખોડીદાસ ગણેશભાઇ—ધધુકા
સ્થાનકવાસી જૈન સંઘના પ્રમુખ

*

અદ્યતન પદ્ધતિને અપનાવનાર વડોદરા કોલેજના એક વિદ્વાન પ્રોફેસરનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયના મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જૈનશાસ્ત્રોના સંસ્કૃત ટીકાબદ્ધ, ગુજરાતીમાં અને હિન્દીમાં ભાષાંતરો કરવાના ઘણા વિકટ કાર્યમાં વ્યાપ્ત થયેલા છે શાસ્ત્રો પૈકી જે શાસ્ત્રો પ્રસિદ્ધ થયાં છે તે હું જોઈ શકયો છું, મુનિશ્રી પોતે સસ્કૃત, અર્ધમાગધી હિંદી ભાષાઓના નિષ્ણાત છે, એ એમનો ટુંક પરિચય કરતા સહજ જણાઈ આવે છે. શાસ્ત્રોનું સંપાદન કરવામાં તેમને પોતાના, શિષ્ય વર્ગનો અને વિશેષમા ત્રણ પંડિતોનો સહચાર મળ્યો છે, તે જોઈ મને આનંદ થયો. સ્થાનકવાસી સપ્રદાયના અગ્રેસરોએ પંડિતોનો સહકાર મેળવી આપી, મુનિશ્રીના કાર્યને સરળ અને શિષ્ટ બનાવ્યું છે સ્થાનકવાસી સમાજમા વિદ્વત્તા ઘણી ઓછી છે, તે દિગંબર મૂર્તિપૂજક શ્વેતાંબર વગેરે જૈનદર્શનના પ્રતિનિધિઓના ઘણા સમયથી પરિચયમાં આવતાં હું વિરોધના ભય વગર, કહી શકુ. પૂ૦ મહારાજનો આ પ્રયાસ સ્થાનકવાસી સપ્રદાયમાં પ્રથમ છે એવી મારી માન્યતા છે. સંસ્કૃત સ્પષ્ટીકરણો સારા આપવામાં આવ્યા છે, ભાષા શુદ્ધ છે એમ ચોક્કસ કહી શકુ છુ, ગુજરાતી ભાષાતરો પણ શુદ્ધ અને સરળ થયેલા છે. મને વિશ્વાસ છે કે મહારાજશ્રીના આ સ્તુત્ય પ્રયાસને જૈનસમાજ ઉત્તેજન આપશે અને શાસ્ત્રોના ભાષાંતરોને વાચનાલયમાં અને કુટુબોમાં વસાવી શકાય તેપ્રમાણે વ્યવસ્થા કરશે.

પ્રતાપગંજ, વડોદરા — કામદાર કેશવલાલ હિંમતરામ
તા. ૨૭-૨-૧૯૫૬ — એમ. એ.

*

મુંબઇની બે કોલેજોના પ્રોફેસરોનો અભિપ્રાય

મુંબઇ તા. ૩૧-૩-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાંતીલાલ મંગળદાસ
પ્રમુખ : શ્રી અખિલ ભારત શ્વે. સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ,
રાજકોટ.

પૂજ્યાચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે તૈયાર કરેલાં આચારાંગ દશવૈકાલિક, આવશ્યક, ઉપાસકદશાંગ વગેરે સૂત્રો અમે જોયાં. આ સૂત્રો ઉપર સંસ્કૃતમાં ટીકા આપવામાં આવી છે અને સાથે સાથે હિંદી અને ગુજરાતી ભાષાંતરો પણ આપવામાં આવ્યાં છે સંસ્કૃતટીકા અને ગુજરાતી તથા હિંદી ભાષાંતરો જોતાં આચાર્યશ્રીના આ ત્રણે ભાષા પરના એકસરખા અસાધારણ પ્રભુત્વની સચોટ અને સુરેખ છાપ પડે છે. આ સૂત્ર ગ્રંથોમાં પાને પાને પ્રગટ થતી આચાર્યશ્રીની અપ્રતિમ વિદ્વત્તા મુગ્ધ કરી દે તેવી છે. ગુજરાતી તથા હીંદીમાં થયેલાં ભાષાંતરમાં ભાષાની શુદ્ધિ અને સરળતા નોંધપાત્ર છે. એથી વિદ્વદ્જન અને સાધારણ માણસ ઉભયને સંતોષ આપે એવી એમની લેખિનીની પ્રતીતિ થાય છે. ૩૨ સૂત્રોમાંથી હજુ ૧૩ સૂત્રો પ્રગટ થયાં છે. બીજાં ૭ સૂત્રો લખાઈને તૈયાર થઇ ગયાં છે. આ બધાંજ સૂત્રો જ્યારે એમને હાથે તૈયાર થઈને પ્રગટ થશે ત્યારે જૈન-સૂત્ર-સાહિત્યમાં અમૂલ્ય સંપત્તિરૂપ ગણાશે એમાં સંશય નથી. આચાર્યશ્રી આ મહાન કાર્યને જૈનસમાજનો વિશેષતઃ સ્થાનકવાસી સમાજનો સંપૂર્ણ સહકાર સાંપડી રહેશે એવી અમે આશા રાખીએ છીએ.

પ્રો. **રમણુલાલ ચીમનલાલ શાહ**
સેંટ ઝેવિયર્સ કોલેજ, **મુંબઈ.**
પ્રો. **તારા રમણુલાલ શાહ**
સોફીયા કોલેજ, **મુંબઇ**

*

રાજકોટની ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજના પ્રોફેસર સાહેબનો અભિપ્રાય

જયમહાલ
જાગનાથ પ્લોટ
રાજકોટ, તા. ૧૮-૪-૫૬

પૂજ્યાચાર્ય પં. મુનિ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આજે જૈનસમાજ માટે એક એવા કાર્યમાં વ્યાપ્ત થએલા છે કે જે સમાજ માટે બહુ ઉપયોગી થઈ પડશે. મુનિશ્રીએ તૈયાર કરેલાં આચારાંગ, દશવૈકાલિક, શ્રી વિપાકશ્રુત વિ મેં જોયાં.

આ સૂત્રો જોતાં પહેલી જ નજરે મહારાજશ્રીનો સંસ્કૃત, અર્ધમાગધી, હિન્દી તથા ગુજરાતી ભાષાઓ ઉપરનો અસાધારણ કાબુ જણાઇ આવે છે. એક પણ ભાષા મહારાજશ્રીથી અજાણી નથી. આપણે જાણીએ છીએ કે એ સૂત્રો ઉચ્ચ અને પ્રથમ કોટિના છે. તેની વસ્તુ ગંભીર, વ્યાપક અને જીવનને તલસ્પર્શી છે, આટલા ગહન અને સર્વગ્રાહ્ય સૂત્રોનું ભાષાંતર પૂ ઘાસીલાલજી મહારાજ જેવા ઉચ્ચ કોટિના મુનિરાજને હાથે થાય છે તે આપણાં અહોભાગ્ય છે. યંત્રવાદ અને ભૌતિકવાદના આ જમાનામાં જ્યારે ધર્મભાવના ઓસરતી જાય છે એવે વખતે આવા તત્ત્વજ્ઞાન આધ્યાત્મિકતાથી ભરેલાં સૂત્રોનું સરળ ભાષામાં ભાષાતર દરેક જીજ્ઞાસુ, મુમુક્ષુ અને સાધકને માર્ગદર્શક થઈ પડે તેમ છે. જૈન અને જૈનેતર, વિદ્વાન અને સાધારણ માણુસ સાધુ અને શ્રાવક દરેકને સમજણ પડે તેવી સ્પષ્ટ, સરળ અને શુદ્ધ ભાષામાં સૂત્રો લખવામાં આવ્યાં છે. મહારાજશ્રીને જ્યારે જોઈએ ત્યારે તેમના આ કાર્યમાં સંકળાયેલા જોઈએ છીએ એ ઉપરથી મુનિશ્રીના પરિશ્રમ અને ધગશની કલ્પના કરી શકાય તેમ છે તેમનું જીવન સૂત્રોમાં વણાઇ ગયું છે.

મુનિશ્રી આ અસાધારણ કાર્યમાં પોતાના શિષ્યોનો તથા પંડિતોનો સહકાર મળ્યો છે- મને આશા છે કે જો દરેક મુમુક્ષુ આ પુસ્તકોને પોતાના ઘરમાં વસાવશે અને પોતાના જીવનને સાચા સુખને માર્ગે વાળશે તો મહારાજશ્રીએ ઉઠાવેલો શ્રમ સંપૂર્ણપણે સફળ થશે.

પ્રો. **રસિકલાલ કસ્તુરચંદ ગાંધી**
એમ. એ. એલ. એલ. બી.
ધર્મેન્દ્રસિંહજી કૉલેજ
રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર)

*

મુંબઇ અને ઘાટકોપરમાં મળેલી સભાએ ભિનાસર કોન્ફરન્સ તથા સાધુ સંમેલનમાં મોકલાવેલ ઠરાવ

હાલ જે વખતે શ્રી. શ્વેતાંબર સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ માટે આગમ સંશોધન અને સ્વતંત્ર ટીકાવાળા શાસ્ત્રોદ્ધારની અતિ આવશ્યક્તા છે અને જે મહાનુભાવોએ આ વાત દીર્ઘદૃષ્ટિથી પહેલી પોતાના મગજમા લઈ તે પાર પાડવા મહેનત લઇ રહ્યા છે તેવા મુનિ મહારાજ પંડિતરત્ન શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કે જેઓને સાદડી અધિવેશનમાં સર્વાનુમતે સાહિત્ય મંત્રી નીમ્યા છે તેઓશ્રીની દેખરેખ નીચે અ. ભા. શ્વે. સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ જે એક મોટી વગવાળી કમિટી છે તેની મારફતે કામ થઈ રહ્યુ છે. જેને પ્રધાનાચાર્યશ્રી તથા પ્રચાર મંત્રીશ્રી

તથા અનેક અનુભવી મહાનુભાવોએ પોતાની પસંદગીની મહોર છાપ આપી છે અને છેલ્લામાં છેલ્લા વડોદરા યુનિવર્સીટીના પ્રોફેસર કેશવલાલ કામદાર એમ. એ. પોતાનું સવિસ્તર પ્રમાણપત્ર આપ્યું છે તે શાસ્ત્રોદ્ધાર કમિટીના કામને આ સંમેલન તથા કોન્ફરન્સ હાર્દિક અભિનંદન આપે છે અને તેમના કામને જ્યાં જ્યાં અને જે જે જરૂર પડે-પંડિતની અને નાણાંની-પોતાની પાસેના ફંડમાંથી અને જાહેર જનતા પાસેથી મદદ મળે તેવી ઇચ્છા ધરાવે છે.

આ શાસ્ત્રો અને ટીકાઓને જ્યારે આટલી બધી પ્રશંસાપૂર્વક પસંદગી મળી છે ત્યારે તે કામને મદદ કરવાની આ કોન્ફરન્સ પોતાની ફરજ માને છે અને જે કોઇ ત્રુટી હોય તે પં. ર. શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજની સાનિધ્યમાં જઈ, બતાવીને સુધારવા પ્રયત્ન કરવો. આ કામને ટલ્લે ચઢાવવા જેવું કોઈ પણ કામ સત્તા ઉપરના અધિકારીઓના વાણી કે વર્તનથી ન થાય તે જોવા પ્રમુખ સાહેબને ભલામણ કરે છે.

(સ્થા. જૈન પત્ર તા. ૪-૫-૫૬)

*

સ્વતંત્ર વિચારક અને નિડર લેખક 'જૈન સિદ્ધાંત'ના તંત્રીશ્રી શેઠ નગીનદાસ ગીરધરલાલનો અભિપ્રાય

શ્રી સ્થાનકવાસી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સ્થાપીને પૂ. ઘાસીલાલજી મહારાજને સૌરાષ્ટ્રમાં બોલાવી તેમની પાસે બત્રીસે સૂત્રો તૈયાર કરવાની હિલચાલ ચાલતી હતી ત્યારે તે હિલચાલ કરનાર શાસ્ત્રજ્ઞ શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ સાથે મારે પત્રવ્યવહાર ચાલેલો ત્યારે શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈએ તેમના એક પત્રમાં મને લખેલું કે—

> "આપણા સૂત્રોના મૂળ પાઠ તપાસી શુદ્ધ કરી સંસ્કૃત સાથે તૈયાર કરી શકે તેવા સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયમાં મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મ. સિવાય મને કોઇ વિશેષ વિદ્વાન મુનિ જોવામાં આવતા નથી. લાંબી તપાસને અંતે મેં મુનિ શ્રી ઘાસીલાલજીને પસંદ કરેલા છે."

શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઇ પોતે વિદ્વાન હતા. શાસ્ત્રજ્ઞ હતા તેમ વિચારક પણ હતા. શ્રાવકો તેમજ મુનિઓ પણ તેમની પાસેથી શિક્ષા વાંચના લેતા, તેમ જ્ઞાનચર્ચા પણ કરતા. એવા વિદ્વાન શેઠશ્રીની પસંદગી યથાર્થ જ હોય એમા

નવાઇ નથી. અને પૂ. શ્રી ઘાસીલાલજીના બનાવેલાં સૂત્રો જોતાં સૌ કોઈને ખાત્રી થાય તેમ છે કે દામોદરદાસભાઈએ તેમજ સ્થાનકવાસી સમાજે જેવી આશા શ્રી ઘાસીલાલજી મ. પાસેથી રાખેલી તે બરાબર ફળીભૂત થયેલ છે.

શ્રી વર્ધમાન શ્રમણસંઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજે શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સૂત્રો માટે ખાસ પ્રશસા કરી અનુમતિ આપેલ છે તે ઉપરથી જ શ્રી ઘાસીલાલજી મ. ના સૂત્રોની ઉપયોગિતાની ખાત્રી થશે.

આ સૂત્રો વિદ્યાર્થીને, અભ્યાસીને તેમજ સામાન્ય વાંચકને સર્વને એક સરખી રીતે ઉપયોગી થઇ પડે છે. વિદ્યાર્થીને તેમજ અભ્યાસીને મૂળ તથા સસ્કૃત ટીકા વિશેષ કરીને ઉપયોગી થાય તેમ છે. ત્યારે સામાન્ય હિંદી વાંચકને હિંદી અનુવાદ અને ગુજરાતી વાંચકને ગુજરાતી અનુવાદથી આખું સૂત્ર સરળતાથી સમજાય જાય છે.

કેટલાકનો એવો ભ્રમ છે કે સૂત્રો વાંચવાનુ કામ આપણું કામ થહિ, સૂત્રો આપણને સમજાય નહિ. આ ભ્રમ તદ્દન ખોટો છે. બીજા કોઇપણ શાસ્ત્રીય પુસ્તક કરતાં આ સૂત્રો સામાન્ય વાચકને પણ ઘણી સરળતાથી સમજાઇ જાય છે. સામાન્ય માણસ પણ સમજી શકે તેટલા માટે જ ભગવાન મહાવીરે તે વખતની લોક ભાપામાં (અર્ધ માગધી ભાષામાં) સૂત્રો બનાવેલાં છે. એટલે સૂત્રો વાંચવાં તેમજ સમજવામાં ઘણાં સરળ છે.

માટે કોઈપણ વાચકને એનો ભ્રમ હોય તો તે કાઢી નાંખવો અને ધર્મનુ તેમજ ધર્મના સિદ્ધાંતોનુ સાચુ જ્ઞાન મેળવવા માટે સૂત્રો વાંચવાને ચૂકવું નહિ. એટલું જ નહિ પણ જરૂરથી પહેલાં સૂત્રો જ વાંચવાં.

સ્થાનકવાસીઓમાં આ શ્રી સ્થા૦ જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ જે કામ કર્યું છે અને કરી રહી છે તેવું કોઈ પણ સંસ્થાએ આજ સુધી કર્યું નથી. સ્થા૦ જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના છેલ્લા રિપોર્ટ પ્રમાણે બીજા છ સૂત્રો લખાયેલ પડ્યાં છે, બે સૂત્રો–અનુયોગદ્વાર અને ઠાણાંગ સૂત્રો–લખાય છે તે પણ થોડા વખતમાં તૈયાર થઈ જશે. તે પછી બાકીના સૂત્રો હાથ ધરવામાં આવશે.

તૈયાર સૂત્રો જલ્દી છપાઇ જાય એમ ઇચ્છીએ છીએ અને સ્થા. બંધુઓ સમિતિને ઉત્તેજન અને સહાયતા આપીને તેમનાં સૂત્રો ઘરમા વસાવે એમ ઇચ્છીએ છીએ. 'જૈન સિદ્ધાન્ત' પત્ર – મે ૧૯૫૫

*

શ્રુત ભકિત

(પૂ૦ આચાર્ય શ્રી ઇશ્વરલાલજી મ૦ સા૦ ની આજ્ઞા અનુસાર લખનાર)

દ. સં. ના જૈન મુનિ શ્રી દયાનંદજી મહારાજ

તા૦ ૨૩-૯-૫૬ શાહપુર, અમદાવાદ

આજે લગભગ ૨૦ વર્ષથી શ્રદ્ધેય પરમપૂજ્ય, જ્ઞાનદિવાકર પં૦ મુનિશ્રી **ઘાસીલાલજી** મ૦ ચરમ તીર્થંકર ભગવાન મહાવીરના અનુત્તર, અનુપમ ન્યાય યુક્ત, પૂર્વાપર અવિરોધ, સ્વપર કલ્યાણકારક, ચરમ શીતળ વાણીના દ્યોતક એવા શ્રી **જિનાગમ** પર પ્રકાશ પાડે છે, તેઓશ્રી પ્રાચીન, પૌર્વાત્ય સંસ્કૃતાદિ અનેક ભાષાના પ્રખર પંડિત છે અને જિનવાણીનો પ્રકાશ સંસ્કૃત, ગુજરાતી અને હિંદીમાં મૂળ શબ્દાર્થ, ટીકા, વિસ્તૃત વિવરણ સાથે પ્રકાશમાં લાવે છે એ જૈન સમાજ માટે અતિ ગૌરવ અને આનંદનો વિષય છે.

ભ૦ મહાવીર અત્યારે આપણી પાસે વિદ્યમાન નથી, પરંતુ તેમની વાણી રૂપે અક્ષરદેહ ગણધર મહારાજોએ શ્રુત પરંપરાએ સાચવી રાખ્યો શ્રુતપરંપરાથી સચવાતું જ્ઞાન જ્યારે વિસ્મૃત થવાનો સમય ઉપસ્થિત થવા લાગ્યો ત્યારે શ્રી દેવર્ધિગણિ ક્ષમાશ્રમણે વલ્લભીપુર-વળામાં તે આગમોને પુસ્તકો રૂપે આરૂઢ કર્યાં. આજે આ સિદ્ધાંતો આપણી પાસે છે. તે અર્ધ માગધી પાલી ભાષામાં છે. અત્યારે આ ભાષા ભગવાનની, દેવોની તથા જનગણની ધર્મભાષા છે. તેને આપણા શ્રમણો અને શ્રમણીઓ તથા મુમુક્ષુ શ્રાવક શ્રાવિકાઓ મુખપાઠ કરે છે, પરન્તુ તેનો અર્થ અને ભાવ ઘણા થોડાઓ સમજે છે

જિનાગમ એ આપણાં શ્રદ્ધેય પવિત્ર ધર્મસૂત્રો છે. એ આપણી આંખો છે. તેનો અભ્યાસ કરવો એ આપણી સૌની-જૈન માત્રની ફરજ છે. તેને સત્ય સ્વરૂપે સમજાવવા માટે આપણા સદ્ભાગ્યે જ્ઞાનદિવાકર શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે સત્ સંકલ્પ કર્યો છે અને તે લિખિત સૂત્રોને પ્રગટાવી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિદ્વારા જ્ઞાન પરબ વહેતી કરી છે. આવા અનુપમ કાર્યમાં સકળ જૈનોનો સહકાર અવશ્ય હોવો ઘટે અને તેનો વધારેમાં વધારે પ્રચાર થાય તે માટે પ્રયત્નો કરવા ઘટે.

ભ૦ મહાવીરને ગણધર ગૌતમ પૂછે છે કે હે ભગવાન, સૂત્રની આરાધના કરવાથી શું ફળ પ્રાપ્ત થાય છે? ભગવાન તેનો પ્રતિ ઉત્તર આપે છે કે શ્રુતની આરાધનાથી જીવોના અજ્ઞાનનો નાશ થાય છે. અને તેઓ સંસારના કલેશોથી નિવૃત્તિ મેળવે છે. અને સંસાર કલેશોથી નિવૃત્તિ અને અજ્ઞાનનો નાશ થતાં મોક્ષ ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે.

આવા જ્ઞાન કાર્યમાં મૂર્તિપૂજક જૈનો, દિગંબરો અને અન્ય ધર્મીઓ હજારો અને લાખો રૂપીયા ખર્ચે છે. હિંદુ ધર્મમાં પવિત્ર મનાતા ગ્રંથ ગીતાના સેંકડો નહિ પણ હજારો ટીકા ગ્રંથો દુનિયાની લગભગ સર્વ ભાષાઓમાં પ્રગટ થયા છે. ઇસાઇ ધર્મના પ્રચારકો તેમના પવિત્ર ધર્મગ્રન્થ બાઇબલના પ્રચારાર્થે તેનુ જગતની સર્વ

ભાષાઓમાં ભાષાંતર કરી, તેને પડતર કરતાં પણ ઘણી ઓછી કિંમતે વેચી ધર્મ-સૂત્રોનો પ્રચાર કરે છે. મુસ્લિમ લોકો પણ તેમના પવિત્ર મનાતા ગ્રન્થ કુરાનનુ અનેક ભાષાઓમા ભાષાંતર કરી સમાજમાં પ્રચાર કરે છે. આપણે પૈસા પરનો મોહ ઉતારી ભગવાનના સિદ્ધાંતોનો પ્રચાર કરવા માટે તન, મન, ધન સમર્પણ કરવાં જોઈએ. અને સૂત્ર પ્રકાશનના કાર્યને વધુ ને વધુ વેગ મળે તે માટે સક્રિય પ્રયત્નો કરવા જોઈએ. આવા પવિત્ર કાર્યમા સાંપ્રદાયિક મતભેદો સૌએ ભૂલી જવા જોઇએ અને શુદ્ધ આશયથી થતા શુદ્ધ કાર્યને અપનાવી લેવું જોઈએ. સમિતિના નિયમાનુસાર રૂ. ૨૫૧) ભરી સમીતીના સભ્ય બનવું જોઈએ. ધાર્મિક અનેક ખાતાંઓના મુકાબલે સૂત્ર પ્રકાશનનું – જ્ઞાન પ્રચારનું આ ખાતું સર્વશ્રેષ્ઠ ગણાવું જોઇએ.

આ કાર્યને વેગ આપવાની સાથે સાથે એ આગમો–ભગવાનની એ મહાવાણીનુ પાન કરવા પણ આપણે હરહંમેશ તત્પર રહેવુ જોઇએ. જેથી પરમ શાંતિ અને જીવનસિદ્ધિ મેળવી શકાય. (સ્થા જૈન તા. ૫–૭–૫૬)

*

શ્રી. અ. ભા શ્વે. સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનાં પ્રમુખશ્રી વગેરે. **રાણપુર**

પરમ પવિત્ર સૌરાષ્ટ્રની પુણ્ય ભૂમિ પર જ્યારથી શાત–શાસ્ત્રવિશારદ અપ્રમાદિ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનાં પુનિત પગલા થયાં છે ત્યારથી ઘણા લાંબા કાળથી લાગુ પડેલ જ્ઞાનાવરણીય કર્મનાં પડળ ઉતારવાનો શુભ પ્રયાસ થઈ રહ્યો છે. અને જે પ્રવચનની પ્રભાવના તેઓશ્રી કરી રહ્યા છે તે અનંત ઉપકારક કાર્યમાં તમે જે અપૂર્વ સહાય આપી રહ્યા છો તે માટે તમો સર્વને ધન્ય છે અને એ શુભ પ્રવૃત્તિના શુભ પરિણામોનો જનતા લાભ લે છે, મને તો સમજાય છે કે સાધુજી છઠે ગુણસ્થાનકે હોય છે. પણ પૂન્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તો બહુધા સાતમે અપ્રમત્ત ગુણસ્થાનકે જ રહે છે એવા અપ્રમત્ત માત્ર પાચ–સાત સાધુઓ જો સ્થાનકવાસી જૈનસમાજમાં હોય તો સમાજનુ શ્રેય થતા જરાએ વાર ન લાગે. સમાજાકાશમાં સ્થા. જૈન સંપ્રદાયનો દિવ્ય પ્રભાકર જળહળી નીકળે પ. ..ણ વો દિન....

શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને મારી એક નમ્ર સુચના છે કે–પૂજ્યશ્રીની વૃદ્ધાવસ્થા છે; અને કાર્યપ્રણાલિકા યુવાનોને શરમાવે તેવી છે. તેમને ગામોગામ વિહાર કરવા અને શાસ્ત્રોદ્ધારનુ કાર્ય કરવું તેમાં ઘણી શારીરિક–માનસિક અને વ્યવહારિક મુશ્કેલી વેઠવી પડે છે, તો કોઇ ચોગ્ય સ્થળ કે જ્યાના શ્રાવકો ભક્તિ વાળા હોય. વાડાનાં રાગના વિષયથી અલિપ્ત હોય એવા કોઈ સ્થળે શાસ્ત્રોદ્ધારનુ કાર્ય પૂર્ણ થાય ત્યાં સુધી સ્થિરતા કરી શકે એના માટે પ્રબંધ કરવો જોઈએ. બીજા કોઈ એવા સ્થળની અનુકુળતા ન મળે તો છેવટ અમદાવાદમા ચોગ્ય સ્થળે રહેવાની સગવડતા કરી અપાય તો વધુ સારૂં. મ્હારી આ સુચના પર ધ્યાન આપવા ફરી યાદ આપુ છું. ફરીવાર પૂજ્ય આચાર્યશ્રીને અને તેમના સતકાર્યના સહાયકોને મારા અભિનંદન પાઠવું છુ તે સ્વીકારશોજી. લી. **સદાનંદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી**

રૂા. ૧૦,૦૦૦) આપનાર આદ્ય મુરબ્બીશ્રી,
સમિતિના પ્રમુખ; દાનવીર શેઠશ્રી,



શેઠ શાંતિલાલ મંગળદાસભાઈ
અમદાવાદ.

સમિતિના પ્રમુખ અને આદ્ય મુરબ્બીશ્રી શેઠ શાંતિલાલ મંગળદાસનો ટુંક પરિચય

*

શ્રી શાન્તિલાલ મંગળદાસનો જન્મ ઈ. સ. ૧૯૦૧ નાં ઓગસ્ટની ત્રીજી તારીખે તેમનાં મોસાળ ચોરવડોદરામાં થયો હતો.

વિદ્યાર્થી અવસ્થામાંજ એમનામાં રહેલી તીવ્ર બુદ્ધિ જુદી તરી આવતી હતી. ઈ. સ. ૧૯૧૯ માં અમદાવાદ કેન્દ્રમાંથી મેટ્રીક પાસ થનાર પ્રથમ દસ વિદ્યાર્થીઓમાંના તેઓ એક હતાં. ત્યારબાદ ઇ સ. ૧૯૨૩માં અર્થશાસ્ત્રનો વિષય લઈ તેઓ B. A. થયા. એ જમાનામા બહુ થોડાં ધનિક કુટુંબો ઉચ્ચ અભ્યાસમાં રસ લેતા હતા

ગ્રેજ્યુએટ થયા બાદ તુરતજ એમના ઉપર ધંધાની જવાબદારી આવી પડી. યુવાન વય, તિવ્ર બુદ્ધિ, વિશાળ વાંચન અને મનને તેમને નવીજ દૃષ્ટિ આપી હતી અને તેમની સમક્ષ આવના ઉદ્યોગના અનેક વિકટ સવાલોને તેમણે બહુ કુશળતાથી ઉકેલવા માંડયા. ૧૯૪૫ માં એ અમદાવાદ મિલ માલિક મંડળના પ્રમુખ બન્યા. હિંદની તેમજ ખાસ કરીને ગુજરાત–સૌરાષ્ટ્રનાં વેપારનાં પ્રાણ પ્રશ્નોનાં તળપદા અભ્યાસે મિલમાલિક મંડળના પ્રમુખ તરીકેની કામગીરીને વધુ દીપાવી.

૧૯૪૮ થી હિંદી વેપારી મહામંડળના તેઓ સભ્ય છે અને ૧૯૫૪–૫૫ અને ૧૯૫૫–૫૬નાં વર્ષ માટેના દેશના આ સૌથી મોટા વેપારી મહામંડળના તેઓ અનુક્રમે ઉપપ્રમુખ અને પ્રમુખ હતા. આજે તો ગુજરાત–સૌરાષ્ટ્રને ખૂબજ ઉપયોગી નિવડેલી તેમની અસાધારણ શક્તિઓને દેશવ્યાપી ક્ષેત્ર મળ્યું છે.

૧૯૩૮–૩૯માં ઇન્ટરનેશનલ લેબર ઓર્ગેનિઝેશન (I. L O.)માં ભાગ લેવા ગયેલ ભારતીય પ્રતિનિધિ મંડળના તેઓ સરકાર તરફથી નિયુક્ત થયેલ સલાહકાર હતા. ૧૯૪૬ માં અને ૧૯૪૮મા બ્રુસેલ્સ અને જીનીવા મુકામે ભરાયેલ I. L. O. માં તેઓએ માલિકોના પ્રતિનિધિ તરીકે અગત્યનો ભાગ લીધો હતો.

સામાન્ય નિયમ છે કે શ્રી અને સરસ્વતીને બહુ સંબંધ હોતો નથી. શ્રી શાંતિલાલ અને તેમનું કુટુંબ આમાં અપવાદરૂપ છે. ધનપતિ હોવા છતાં એ સાહિત્ય અને સંસ્કારિતાના પૂજક છે. એમની વિનમ્રતા અને સાદાઇ હજુએ

એ જાળવી રહ્યા છે અનેક શિક્ષણ સંસ્થાઓ માટે આજે પણ એ પોતાની અનેકવિધ પ્રવૃત્તિઓમાંથી સમય બચાવી લે છે, એજ તેમનાં વિદ્યાપ્રેમનો સચોટ પુરાવો છે. ઉદ્યોગ તો તેમને વારસામા જ મળ્યો છે અને એ વારસાને તેમણે શોભાવ્યો છે.

એમની દૃષ્ટિ આજનાં પ્રશ્નોને વૈજ્ઞાનિક રીતે છણવાની તો છે જ પણ આવતી કાલને પણ તેઓ એ જ વૈજ્ઞાનિક અને વ્યવહારિક દૃષ્ટિથી નિહાળતાં હોય છે અને એટલે જ તો એમના સંચાલન તળે ચાલતી ચાર મિલો કાપડ ઉદ્યોગમાં સુંદર પ્રતિષ્ઠા જમાવી શકેલ છે. આ ઉપરાંત જુદી જુદી વ્યાપારી પ્રવૃત્તિઓ કરતી ઘણી કંપનીઓમાં તેઓ ડીરેકટર તરીકે રહી યોગ્ય માર્ગ-દર્શન અને દોરવણી આપી રહ્યા છે. સૌરાષ્ટ્ર ફાઇનેન્સીયલ કોરપોરેશનનાં તેઓ ડીરેકટર છે સૌરાષ્ટ્ર મિલ માલિક મંડળમાં તો તેઓ તેમની સ્થાપના થઈ ત્યારથી ઉંડો રસ દાખવે છે. હજુ હમણાં સુધી સતત પાચ પાંચ વર્ષ સુધી તેનાં પ્રમુખપદે રહી તેમણે સૌરાષ્ટ્રના આ ઉદ્યોગની કરેલી સેવાઓ ખરેખર અભિનંદનને યોગ્ય છે. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનાં તેઓ પ્રમુખ છે અને તેની પ્રવૃત્તિમાં ઘણા ઉત્સાહથી હંમેશાં મદદ કરી રહ્યા છે. આ ઉપરાંત અનેક જૈન ને જૈનેતર સામાજીક સંસ્થાઓને તેઓ સેવાઓ આપી રહ્યા છે



આદ્ય મુરબ્બીશ્રી ભાણુવડનિવાસી શેઠ હરખચંદ કાલીદાસ વારીયાનું જીવનચરિત્ર

આ સંસ્થાને રૂ. ૬૦૦૦) છ હજાર જેવી રકમનું વાતવાતમાં દાન આપનાર સ્વ૦ શ્રીમાન્ હરખચંદ કાલીદાસ વારીયા ભાણુવડનિવાસીનું ટુંક જીવનચરિત્ર અત્રે આપવા પ્રયાસ કરીએ છીએ. સૂત્રમાં તેઓશ્રીનો ફોટો આપવા માટે તેઓશ્રીની હયાતીમાં વાત થયેલ, પરંતુ તેઓ આ જાતની જાહેરાતથી વિરૂદ્ધ હતા. તેમના અવસાન બાદ તેમના સુપુત્રો આગળ પણ ફોટાની માગણી કરી પરંતુ તેઓએ પણ તેમના પૂ૦ પિતાજીના પગલે ચાલી ફોટો આપવામાં નારાજી બતાવી. એટલે તેઓશ્રીનું ટુંક જીવન આપીએ છીએ. આશા છે કે આવા ઉદાર અને વિચારશીલ મહાનુભાવના જીવનમાંથી વાચકોને ઘણું મળી રહેશે.

જન્મસ્થાન—ઘડેચી (ઓખામંડળ) તા. ૨૫-૧૧-૧૮૮૫

પિતાનું નામ—વારીયા કાલીદાસ મેઘજીભાઇ

માતાનું નામ—કેસરબાઇ

અભ્યાસ—ભાણુવડ અને પોરબંદરમાં રહી ફક્ત ગુજરાતી જરૂરત પૂરતું ભણ્યા

પરદેશગમન—માત્ર બાર વર્ષની વયે તેમના કાકા નથુભાઈ મેઘજીને ત્યાં જેલા ખાતે અનુભવ મેળવવા રહ્યા દરમ્યાન **જેલા** (બ્રી. સોમાલીલેન્ડ) **જીબુટી** (ફ્રેન્ચ સોમાલીલેન્ડ) **એડન** અને **ઇથીઓપીઆ** તરફ પણ અનુભવ મેળવ્યો.

પ્રથમ ભાગીદારી—બુલહારમાં શ્રી. કાલીદાસ વેલજીના ભાગમાં ભળ્યા પરંતુ સંવત ૧૯૬૭માં તે દુકાન વીંટી લીધી અને લગ્ન માટે સ્વદેશ આવ્યા.

લગ્ન—સંવત ૧૯૬૭ માં તેમનાં લગ્ન બાજુના ગામ ગુંદા મુકામે ખૂબ જ પ્રતિષ્ઠિત કુટુંબ મહેતા સુદરજી પ્રેમજીના જ્યેષ્ટ પુત્ર ભોવાન સુદરજીનાં સુપુત્રી મણીબેન સાથે થયાં.

પરિવાર—અત્યારે તેમના પાંચે પુત્રો શ્રી લાલચંદભાઈ, જયચંદ્રભાઇ, નગિનદાસભાઇ, વૃજલાલભાઇ અને વલ્લભદાસભાઈ એ પાંચે ભાઈઓ તેઓશ્રીનો બહોળો વ્યવહાર અને વ્યાપાર બરાબર સુયોગ્ય રીતે સંભાળી રહ્યા છે.

ભાગીદારી—લગ્ન પછી સં. ૧૯૬૮ માં પાછા પરદેશગમન થયું. શરૂમાં વસનજી નથુભાઈ કુા. ના નામથી પેઢી ચાલતી હતી તેમાં તેઓ ભાગમાં ભળ્યા. તેમાં શ્રી વારીયા નથુભાઇ મેઘજી, શ્રી વારીયા નથુભાઇ મુળજી, શ્રી વારીયા હરખચંદ કાલીદાસ, ફોફરીયા દેવજી જીવાભાઈ તથા શા. વસનજી હીરજીભાઈ એમ પાંચ ભાગીદાર હતા તે પેઢી સંવત ૧૯૭૨ માં જુદી થઈ અને શ્રી વસનજી હીરજી કે જે સ્વબળે આગળ વધ્યા હતા તેમણે પોતાની પેઢી શા વસનજી હીરજીના નામથી જુદી કરી અને શા. નથુભાઈ મુળજીના નામથી પેઢી ખોલવામાં વારીયા નથુભાઈ મુળજી જેટલો જ હીસ્સો હરખચંદભાઇનો હતો.

ઉપરની પેઢી—ઉપરોકત નામથી એટલે કે શા. નથુભાઈ મુળજીના નામથી જે પેઢી શરૂ થઈ તેના પ્રાણસમા શ્રીયુત હરખચંદભાઇ તેમના જીવનના અંત સુધી રહ્યા હતા અત્યારે પણ તે નામને શ્રી નથુભાઈ મુળજી તેમજ શ્રી હરખચદ કાલીદાસના વારસો ઝળહળાવી રહ્યા છે. દૂર દૂરના દેશાવરોમાં એકધારૂં લગભગ ૪૫ વર્ષ થયાં કામકાજ ચાલે છે. તેના સંચાલનની દોર શ્રી હરખચંદભાઈના હાથમાં અંત સુધી રહી હતી અને તેઓશ્રીના અવસાન પછી પણ તેમના દોરેલા ચીલા ઉપર પેઢીનો વ્યવહાર સરળ રીતે અત્યારે પણ ચાલે છે અત્યારના સુકાનીઓએ પોતાના પૂર્વજ શ્રી નથુભાઈ તથા શ્રી હરખચંદભાઈના અંકિત કરેલ માર્ગે પોતાની સફર ચાલુ રાખી છે અને તે સદાયે અવિચળ રહે તેવું આશિર્વચન કોઇ પણ હિન્દી ઉચ્ચાર્યા વિના રહી શકે નહીં તેવી તેની ઉત્તમ છાપ ત્યાં પડી છે અને તે નર્યું સત્ય જ છે.

હિન્દની શાન—વર્ષો થયાં એકધારૂં ' બીઝનેસ ' ચાલતું હોવા છતાં એક શાહ સોદાગરની જેમ નથુભાઇ મુળજીની પેઢી ઉત્તરોત્તર ફુલતી ફાલતી રહી છે વ્યાપારી આંટ અને ઇજ્જતનો એ નાદર નમુનો આજે પણ એ જ ધીર ગભીરપણે પોતાનું કાર્ય ધપાવ્યે જાય છે. એકધારી લગભગ અડધી સદી થયાં ચાલતી આ પેઢીને રજ માત્ર ડાઘ લાગ્યો નથી તે તો સૌ કોઈ જાણે છે અને શાહ નથુભાઇ મુળજીની પુરાણી પેઢી માટે આજે પ્રત્યેક હિન્દી અભિમાન લઇ શકે છે. તેમાં શ્રી નથુભાઈ વારીયાનું ધર્મપ્રધાનપણું અને શ્રી. હરખચંદભાઈનુ દુરંદેશીપણું, કાર્યપ્રણાલીની ઉત્તમતા અને એકનિષ્ટા મુખ્ય ગણાય.

વાંચન અને મનન—ઉપરની વાતો તો તેમના વ્યાપારી જીવનની સફ્-ળતા અને એક નાનામાં નાની વ્યક્તિ આગળ કઈ રીતે વધી શકે છે તેનો આછો ખ્યાલ આપવા પૂરતી થઈ, ત્યારે તેની બીજી એક ખાસ બાજુ છે અતિ સામાન્ય અભ્યાસ પરંતુ સ્વાનુભવે મેળવેલ જ્ઞાનસિદ્ધિ. જે કાળમાં અણખેડાયેલા દેશોમાં આવવા જવાનાં સાધનો પણ ન હતાં, એડન સુધીની મુસાફરી પછી જેલા બરબરા જવામાં નાના વહાણોથી સફર થતી, જીબુટીથી ઇથોપિયા જવામાં દીરદવા પછી (બગલ) ખચ્ચરો ઉપર અને પગપાળા મુસાફરી થતી. દેશો બધા ખુબ જ જંગલી અવસ્થામાં હતા તેવા યુગમાં હિમ્મત હાર્યા વિના આંગળીને વેઢે ગણાય તેટલા હિન્દીઓ વ્યાપારમાં આગળ વધ્યા હતા તે યુગમાં શ્રી હરખચંદભાઈ હતા. ખુબ જ અંધકારમાંથી પ્રકાશ મેળવવાનો હતો. અત્યારે ઇથોપિયાના પાટનગર આડીસ અબાબા જવા માટે Air રસ્તે ૧૦ થી ૧૨ કલાકમાં પહોંચાય છે ત્યારે તે જમાનામાં આગબોટ, વહાણ ખડખડપાંચમ જેવી રેલ્વે અને તે પછી ખચ્ચરો ઉપર અને થોડુંક પગપાળા અગર તો ગધેડા ઉપર પણ સફર કરવી પડતી. જુનો જમાનો હતો એટલે હિન્દુ તરિકેનો ધર્મ જાળવવામાં પણ લોકો ચુસ્ત હતા, કોઈનું અડેલું ખવાય નહીં રસોઈ તૈયાર હોય પણ એક **સોમાલી કે આરબ** અગર **ઇથોપિયનનો** હાથ અડકી જાય એટલે ખાવાનુ તેને આપી દઈ કડાકા કરવા પડે અગર તો પલાળેલા ચણા કે મકાઇ ખાઈને ગુજારો કરવો પડે તેવા જમાનામાં શ્રી હર-ખચદભાઇએ ખુબ જ ધંધાકિય સફળતા મેળવી હતી તે સામાન્ય વાત તો નથી જ, અને પોતે ખુબ જ ઓછું ભણ્યા હોવા છતાં ભણ-તર કરતાં ગણતર તેઓમાં ઘણું હતું. સાહિત્ય અને તે પણ ધાર્મિક અને ગુજરાતી શિષ્ટ સાહિત્યનુ વાંચન મનન એટલુ બધું તેઓએ કરેલું કે પોતાનો અભ્યાસ બહુ જ ઓછો છે એમ તેઓ ખુલાસો કરે ત્યારે જ ખબર પડે, અજાણ્યા માણસને તો તેમનુ અંગ્રેજી જ્ઞાન પણ સારૂં હશે તેમ લાગતું. વ્યાપારી તાર લખવા ઓછા શબ્દોમાં ઘણું સમજાવી દેવું ઉપરાંત અગ્રેજી પત્ર વ્યવહારના બહારથી આવતા પત્રો આંટીઘુંટી સહિત હોય તો પણ યથેચ્છ રીતે સમજી લેવામા તેઓ એટલા બધા પારગત થઈ ગયેલા કે જોનારને તેમની શક્તિ ઉપર માન થઇ જતું. અને તેઓ નિખાલસ ભાવથી જ્યારે કહેતા કે હું તો માત્ર ગુજરાતી ચાર પાંચ ચોપડી ભણ્યો છું એમ વાત થતી ત્યારે તે માન અનેકગણુ વધી જતું.

અભ્યાસી—ધાર્મિક ઉંડામાં ઉંડું જ્ઞાન તેમણે વાંચનથી મેળવેલું. દેશ પરદેશની વાતો થતી હોય ત્યારે તેમના આગળ પ્રખર અભ્યાસીઓ પણ ઝાંખા પડતા, વર્તમાન પત્રોનો શોખ તેમનો અજોડ હતો દેશ પરદેશના નાણાકિય વહેવારો અને હુંડિયામણુની વાતો સાંભળીએ ત્યારે તેમના જ્ઞાનના અગાધપણાની સાંભળનારને અતિ ઉત્તમ છાપ પડતી.

ધાર્મિક—ધાર્મિક અભ્યાસ તેમનો એટલો બધો બહોળો હતો કે તેમના આગળથી રોજ અવનવું જાણવા મળતું દરેક ધર્મનો અભ્યાસ તેમણે જીજ્ઞાસાવૃત્તિથી કર્યો હતો. ધર્મે તેઓ ચુસ્ત સ્થાનકવાસી શ્વેતાંબરી જૈન હતા છતાં ધર્માધતાનો તેમનામા અશ પણ ન હતો. મારૂં એટલુ સારૂં એમ નહી પણ સારૂં એટલુ મારૂં એમ માનતા તેથી કદાગ્રહી-પણુ તેમનામા જનમ્યું જ ન હતું. જૈન ધર્મના દરેક ફીરકા ઉપર તેમને માન હતું. શ્વેતાંબર મંદિરમાર્ગિ ભાઇઓના વરઘોડાઓમા તેઓ આનંદ અને ઉત્સાહથી જતા, પ્રસગ આવે ભાઇચારો નભાવવા વ્યવ-હારૂપણાનો ઉપયોગ કરી દેરાસરમા ઘી બોલવાનો પ્રસંગ આવે ત્યારે પણ તેઓ ઉત્સાહથી બોલતા. વરઘોડામાં પોતાના ઘરની પુત્રવધુઓને કળશ લેવડાવતાં તેમને અનેરો આનંદ મળતો, જૈન ધર્મના દરેક ફીર· કાઓની એકતાના તેઓ પ્રખર ચાહક હતા છેલ્લે છેલ્લે સૌરાષ્ટ્રમાં જૈન શ્વેતામ્બર તેરાપંથી સાધુઓ આવતા અને એમને સૌરાષ્ટ્રના જૈનો અને જૈન સાધુઓ તેરાપથી સાધુને સ્થાન અને આહારપાણી ન આપવાં તેવો પ્રયાસ જોર શોરથી કરતા તે બાબતને પોતે ગાંડપણુ માનતા અને પોતાના ઘેર તેરાપંથી સાધુઓને માનથી ગોચરી આપતા સમાજથી જરા પણુ ડરતા નહીં. 'વિચારભેદ તો દરેક જગ્યાએ બુદ્ધિવાદી લોકોમાં હોય મુર્ખાને વિચારભેદ શાનો ?' આમ તેઓ કહેતા પરંતુ એવા વિચારભેદોને લઇને સાધુનું અને તે પણુ પરદેશી સાધુઓનું અપમાન કરવું તેમાં માનવતા ક્યાં રહી ? જૈનત્વ ક્યાં રહ્યું ? તેમ તેઓએ જામનગરમાં એક વખત કહેલું તે મને બરાબર યાદ છે.

પ્રેમાળ—અસત્ય અગર તો જુઠ દગો આચરનાર તરફ તેમને ઘણો જ રોપ હતો એટલે ઉગ્રતાથી આવા લોકોની ખબર લઈ નાખતા છતા તેનુ દિલ દુભાવ્યું તે ઠીક ન કર્યું તેમ માની તે જ વ્યકિત સાથે પ્રેમ અને મમત્વથી વાતો કરતા બીજાનુ સારૂં જોઇ તેઓ ખરેખર રાચતા તેમની આખમા પ્રેમનુ અમૃત ભારો

ભાર ભર્યું હતું. પોતાને ત્યાં નોકરી કરી ગએલ મુનિમ કે કોઈ પણ વ્યક્તિ કમાણી કરીને ખુબ જ આગળ આવે, સારા અને સંસ્કારી થાય વ્યવહારમાં સવાયા થાય તેને ત્યાં લગ્નપ્રસંગ હોય અગર તો સારામાં સારાં મકાનો તેણે કર્યાં હોય તેવા પ્રસંગે જવાનું થાય ત્યારે તેમના આનંદનો અવધી થઈ જતો. તે વખતે તેઓની આંખોનુ અમૃત જેમણે નજરોનજર જોયું હશે તે તેમને જીવનભર નહીં ભૂલે. આવી એક મહાન્ વિભૂતિના જીવનનો ટુંક સાર જ આપી શકાય. સાંગોપાંગ જીવન તો કયાંથી લખાય?

કાળ—જનમ્યું તે જવાનું જ તે કુદરતનો ક્રમ છે તેને આધીન તો સારા નરસા દરેકને થવું જ પડે. સંવત ૨૦૦૭મા તેઓશ્રી ૬૮ વર્ષનું આયુષ્ય ભોગવી ક્ષણભંગુર દેહને છોડી ગયેલા. પરતુ તેમની સુવાસ સદાય પ્રસરતી જ રહેવાની. ભાણવડ જેવડા નાનકડા ગામમાં અને આસપાસના ગામોમાં જ્યાં જ્યાં તેઓ ગએલા અગર તો તેમનું કાર્યક્ષેત્ર હતું ત્યાં ત્યાં તેમના અવસાનથી સન્નાટો છાઈ ગયેલો. એમનું મૃત્યુ વીશ વર્ષના કંધોતરનો શોક હોય તેવો શોક સર્વત્ર આપતું ગયેલું. નામ ઠામના લોભ વિના કરેલાં તેમનાં ગુપ્ત દાનો એટલાં બધાં હતાં કે તેમના જવાથી નાના મોટા દરેકને એકસરખી ખોટ લાગતી હતી. છતાં તેઓ જીવતર જીવી ગયા. આવું ધન્ય જીવન અને ધન્ય મૃત્યુ જોઈને આર્તધ્યાન રૌદ્રધ્યાન ધરવું તે કરતાં તેમના જેવા થવાના પ્રયત્નો કરવા. અને તેમના અમર આત્માની શાન્તિ માટે પ્રાર્થના કર્યા સિવાય બીજો માર્ગ જ કયાં છે? ૐ શાન્તિ! શાન્તિ!! શાન્તિ!!!



આદ્ય સુરબ્બીશ્રી કોઠારી હરગોવીંદભાઇ જેચંદનો ટુંક પરિચય

*

પુ૦ શ્રી ૧૦૦૮ ઘાસીલાલજી મહારાજ રાજકોટ પધારતા **પ્રાતઃસ્મરણીય સ્તવનાવલી** રાજકોટના રહીશ શુદ્ધ શ્રાવક વૃતધારી જેચંદ અજરામર કોઠારીના સુપુત્ર હરગોવિંદ કાકા તરફથી ૨૦૦૩ મા છપાવવામા આવી અને તે હિંદભરમાં જાહેર મૂકી તેનો ઉપયોગ હાલ સર્વ જૈન જૈનેતર કરી રહેલ છે. કાકા રાજકોટમાં જ નહિ પણ સૌરાષ્ટ્ર, કચ્છ, ગુજરાત, મુંબઇ, દિલ્હી સુધી એક અજોડ ઉત્સાહી પુરૂષ છે. એમનો પ્રજા અને રાજા ઉપર ઘણો જ સારો પ્રભાવ છે. વેસ્ટર્ન ઈન્ડીયા સ્ટેટ એજન્સી અને ગુજરાત સ્ટેટસ મહીકાંઠા, સાબરકાઠા બનાસકાંઠામા રેસીડેન્સીમા પણ કાકા પ્રત્યે ઘણો જ સારો ભાવ છે. તેઓને ધર્મ પ્રત્યે ઘણી જ સારી ધગશ હોઈ અંગત ખર્ચે પોતાના ઘર આંગણે ધર્મ ધ્યાન માટે પોષધશાળા બંધાવી છે તેમજ આજી નદીને કિનારે વિશાળ વ્યાખ્યાન ભુવન હોલ બે માળનો પાચ હજાર માણસો વ્યાખ્યાન સાભળી શકે તેવો બંધાવેલ છે. ઉદાર દિલના સખી માણસ છે. કોઈ પણ ગરીબ ગુન્હાહીત માણસ દાદ માગવા આવે તો તરત જ બનતા ઉપાયે તેમને મદદ આપવા ચોવીસ કલાક તૈયાર રહે છે. કાકાનું કુટુબ પણ ઘણુજ ધર્મીષ્ટ છે. તેમનાં ધર્મપત્નિ શ્રીમતી અખડ સૌભાગ્યવતી રૂક્ષ્મણીબેન વહેવારદક્ષ પ્રેમાળુ અને પૂર્ણ ધર્માત્મા છે સાધુ, સાધ્વી પ્રત્યે તથા દરેક કુટુબ સજ્જન સ્નેહી અને સ્વધર્મીઓ મહેમાનો સાથે ઘણો જ સારો ઉચિત વહેવાર રાખવામાં પૂર્ણ નિષ્પન્ન છે. નિત્ય પોતાની ધર્મ પરાયણુતા પ્રત્યેજ વફાદાર રહે છે.

પૂ૦ ઘાસીલાલજી મહારાજ આદી થાણા ૭ (સમીરમુનિ, કનૈયાલાલ મુનિ દેવમુનિ, તપસ્વી માંગીલાલ, મદનલાલજી) મેવાડથી દામનગરના રહીસ દામોદરભાઇના આગ્રહથી પાલનપુર નહીં રોકાતા તેમણે વિહાર શરૂ કર્યો, અને મોરબી મુકામે તપસ્વી મદનલાલજી અને માગીલાલજીની ૭૧ ઉપવાસની તપશ્ચર્યા ચાતુમાસમાં થયેલી જે પ્રસંગે રાજકોટથી હરગોવિંદકાકા કુટુબ સહિત ગોકળ અષ્ટમીને દીવસે દર્શનાર્થે આવ્યા અને રાજકોટ પધારવાની વિનતી કરી. અને નવેમ્બર ૧૯૪૬ મા ઘાસીલાલજી મહારાજ રાજકોટ પધાર્યા કાકાના વ્યાખ્યાન ભુવનમાં બીરાજ્યા બંને તપસ્વીજીએ માસખમણાની તપશ્ચર્યા કરી. સ્થાનિક રાજકોટ સકલ સંઘે ઘણોજ ભક્તિભાવ બતાવ્યો. અને રતાગઢ ખેડાના રહીશ જવારલાલજી ઉર્ફે ચાંદમલજી ભંડારીની ૨૦૦૨ તા. ૨૭–૧–૪૭ના રોજ દીક્ષા વસ તપંચમીને

રૂા. ૨૫૫૧) આપનાર આદ્ય મુરબ્બીશ્રી,



કોઠારી હરગોવિંદભાઈ જેચંદ
રાજકોટ.

દીવસે હોવાથી સંઘમાં વધારે ઉત્સાહ આનંદ આવ્યો. મહાસુદિ એકમથી પાંચમ સુધી ૬ વરઘોડાઓ જુદે જુદે ઠેકાણેથી ચડ્યા. મહા સુદી ૪ ના દિવસે કાકાને ઘેરથી દીક્ષા ઉત્સવનો વરઘોડો રાજકોટ ઠાકોર સાહેબ પ્રદ્યુમનસિંહજી અને કુ. શ્રી બનેસિંહજીની સંપૂર્ણ મદદથી રાજેશ્રીના ઠાઠને પણ વટાવી જાય તે રીતે સરકારી અને સ્ટેટ બેન્ડ પોલીસ ઘોડેસ્વાર ગાડીઘોડા મોટરો તથા હજારો જૈન જૈનેતર માનવમેદની સાથે આખા શહેર સદરના રસ્તા પર ફર્યો હતો. પાંચમના દિવસે તપગચ્છના ચાંદીના રથમાં દીક્ષાર્થીને બેસાડી ૪ ચાર બેલ જોડેલ રથને કાકા પોતે સારથી બની હાંકતા હતા. બંને દીવસે સોના રૂપાનાં ફુલ તથા પૈસા દિક્ષીત ઉડાવી રહેલ હતા. ઠેકાણે ઠેકાણે પોલીસો ગોઠવવામાં આવી હતી. આ સરઘસ શહેર સદરમાં ફરી જુબીલી બાગમાં આવ્યું અને દસ હજાર માણસોની હાજરીમાં પૂ૦ શ્રી ઘાસીલાલજીની જેનેશ્રાય નીચે દીક્ષા આપવામાં આવી તે પ્રસગે શાંતિ જળવાયેલી. આ પ્રસંગે બંને દીવસોએ ફોટાઓ તથા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિની કમિટિના ફોટાઓ લેવામાં આવ્યા અને ૩૦-૧-૪૭ના દીવસે શાસ્ત્રોદ્ધારની મિટીંગ મળી જેમાં કાકા તરફથી સૂત્રને માટે રૂપીઆ પાંચ હજારની ભેટ મળી તે ઉપરાંત પ્રસંગોપાત સૂત્ર માટે જુદી ભેટ રોકડી રકમની આપવામાં આવી છે તેમજ જીવદયાના પ્રખર હિમાયતી પૂ૦ ૧૦૦૮ જેઠમલજી મ૦ ની નેશ્રાય નીચે તન મન ધનથી જીવદયાનું કાર્ય કરે છે અને જીવદયાનું પત્ર પોતાને ખર્ચે છપાવી પ્રસિદ્ધ કરી હિંદભરમાં તેમજ યુરોપ અમેરીકા આફ્રીકામાં મોકલે છે હાલ પોતે સેવાભાવી કાર્યની પ્રવૃત્તિ કાયમ કર્યા કરે છે.

રાજકોટની ફ્લોર મીલોના ઓનરરી પ્રમુખ : જૈન બોર્ડીંગના ઓનરરી કાર્યકર્તા તથા જીવદયા મંડળના મંત્રી અને S. P. C A. ના મંત્રી, રાજકોટ શહેરી મંડળના સેક્રેટરી તરીકે ઓનરરી સેવા કરી દરેકને પોતાની સેવાનો સાથ આપવામાં તન મન ધનથી કોઈની પણ સેવા કરવામાં કાયમ તત્પર રહે છે.

*

આદ્ય સુરબ્બીશ્રી મર્હુમ ધારશીભાઇ જીવનભાઇનો ટુંક પરિચય

મરહુમ ધારશીભાઇ જીવનભાઈ શાહ, જેનો ઓઇલ જીનપ્રેસ સાથે આ સૈકાની શરૂઆતથી સંબંધ, પુના સાતે ડીવીઝનના જુદા જુદા સ્થળોના જુનામાં જુના અને અગ્રગણ્ય એજન્ટ તરીકે જાણીતા છે તેનો જન્મ કાઠીયાવાડમાં પીપળીયા ગામમાં થયેલ, માત્ર પ્રાથમીક કેળવણી લઈ, ૧૧ વર્ષની નાની ઉંમરે આગળ વધવાની ધગશ સાથે, માત્ર ખીસ્સામાં ૨ રૂ. જેટલી નજીવી રકમ સાથે વતન છોડયું મુંબઈ આવી મનજી નથુભાઈની પેઢીમાં ઓફીસ બોય તરીકે નોકરી લીધી, ત્યાં ઉત્તરોત્તર દરેક કામમાં ખંત રાખી સંતોષ આપતાં તેમને પુના મોકલવામાં આવ્યા. પુનાથી કરમાલા આવી ખભા ઉપર તેલ ઉપાડી ફેરી પણ કરી અને ત્યાંના સબ એજન્ટોને એકદમ પ્રમાણીકપણે સખત કામ બતાવી, કરમાલા ગામમાં તેલની સબડીલરશીપ પ્રાપ્ત કરી ધીરે ધીરે તે જ પ્રમાણે મહેનત ચાલુ રાખતાં ૧૯૩૧માં જ્યારે બર્માશેલ અને એસ. વી. ઓ સી. વચ્ચે ભાવની હરીફાઈ ઉપડી ત્યારે પોતાની સતત સેવા બતાવી બર્માશેલ પાસેથી ઘડીયાલ બક્ષીસ મેળવી અને તે લાઇનના તમામ કાર્યવાહકોની ચાહના પ્રાપ્ત કરી.

ધીરે ધીરે પોતાની ખંતથી તેવી જ એજન્સીઓ લીપ્ટન કું, સીમેન્ટ કું., આઈ. સી. આઈ. વીગેરેની પણ મેળવી પોતાના વ્યાપારની સારી જમાવટ કરી.

સોલાપુર ડીસ્ટ્રીકટમાં સારા આબરૂદાર શહેરી તરિકે વગ તેમજ ચાહના મેળવી અને લોકસેવા પણ સાથોસાથ ચાલુ રાખી કરમાલા મ્યુ૦ના પ્રેસીડન્ટ થયા સોલાપુર ડીસ્ટ્રીકટમાં દેશહિતના અનેક કામોમાં તન, મન, ધનથી સારી સેવા બજાવી.

તેનું ખાનગી જીવન પણ બહુ સાદું હોવાથી બધા તેને ચાહતા અને ધંધામાં સારો લાભ મળ્યો અને તે જ પ્રમાણે સેવાના તથા ધર્માદાના અનેક કાર્યોમાં સારી રકમો વાપરી.

પોતાના કુટુંબના વડા તરીકે પણ કુટુંબીજનો, સગાં, સંબંધીઓને દરેક રીતે માર્ગદર્શન આપી જુદા જુદા ધંધા તેમજ એજન્સીઓ વિગેરે મેળવી સ્થિરતા પ્રાપ્ત કરવામાં ઘણો પરિશ્રમ લીધો.

યાંત્રિક ખેતીની પ્રગતીના કાર્યસર વિલાયત જઈ આવ્યા, અમેરીકા જવા પણ ધારણા હતી. ત્યાં લંડનમાં ૧૪–૭–૪૯ના રોજ હૃદય બંધ પડી જતાં સ્વર્ગવાસ કર્યો. તેમની પાછળ બહોળું કુટુંબ, ઘણાં સગાં તેમજ સ્નેહીઓ મૂકી ગએલ છે. જેઓ સર્વને પોતાની મીઠી યાદગીરી મુકી જીવનનું સાર્થક કરી ગએલ છે.

*

રૂા. ૫૦૦૧) આપનાર આદ્ય મુરબ્બીશ્રી,



(સ્વ.) શેઠ ધારસીભાઈ જીવણભાઈ
સોલાપુર.

॥ आचाराङ्गसूत्रके २, ३, ४ अध्ययनों की विषयानुक्रमणिका ॥

(द्वितीय अध्ययन-प्रथम उद्देश)

॥ इति द्वितीयोद्देशः ॥

*

॥ अथ तृतीयोद्देशः ॥

॥ इति तृतीयोद्देशः ॥

*

॥ अथ चतुर्थोद्देशः ॥

॥ इति चतुर्थोद्देशः ॥

*

॥ अथ पञ्चमोद्देशः ॥

॥ इति पञ्चमोद्देशः ॥

*

॥ अथ षष्ठोद्देशः ॥

॥ इति द्वितीयाध्ययनम् ॥

*

॥ अथ तृतीयाध्ययनम् ॥

॥ अथ प्रथमोद्देशः ॥

॥ इति प्रथमोद्देशः ॥

*

॥ अथ द्वितीयोद्देशः ॥

विषय पृष्ठाङ्क

॥ इति द्वितीयोद्देशः ॥

*

॥ अथ तृतीयोद्देशः ॥

विषय पृष्ठाङ्क

॥ इति तृतीयोद्देशः ॥

*

॥ अथ चतुर्थोद्देशः ॥

विषय पृष्ठाङ्क

*

विषय पृष्ठाङ्क

॥ अथ तृतीयोद्देशः ॥

॥ इति तृतीयोद्देशः ॥

*

॥ अथ चतुर्थोद्देशः ॥

॥ इति चतुर्थोद्देशः ॥



अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठम्	पंक्तिः
तात्पर्यम्। "वहुं परघरे	तात्पर्यम्। तथा-'गृहस्था मे=मह्यम् अनशनादिकं न ददाति' इति हेतोः वीरो न न कुप्येत्=न कोपं कुर्यात्। "वहुं परघरे-	२६०	२
-आदानाकोपनम्,	, आदानाकोपनम्,	२६१	१
प्राथेयं	पाथेयं	२६८	२
सर्वामगन्धम्=अशु-	सर्वामगन्धम्=सर्वम् अशु-	२७१	८
आदिस्समाणे	अदिस्समाणे	२७३	२
आदिस्समाणे	अदिस्समाणे	२७३	३
आदिश्यमानः	अदिश्यमानः	२७३	५
'आदिश्यमान' इति।	'अदिश्यमान इति	२७३	७
आदिश्यमानः	अदिश्यमानः	२७३	८
द्रव्यक्षेत्रकालभावपेक्षया	द्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षया	२७८	५
-रनेपणीयमयि	रनेपणीयमपि	२८३	४
लद्धुं	लद्धु	२८५	५
माद्येत	माद्येत्	२८५	८
स्निह्यात्	स्निह्येत्	२८५	८
-मवष्वष्केत्	-मवष्वष्केत	२८५	९
माद्येत	माद्येत्	२८६	८
माद्येत	माद्येत्	२८७	१
स्निह्यात्	स्निह्येत्	२८८	१
अवष्वष्केत्=	अवष्वष्केत=	२८८	३
कुशलो	कुसलो	२९१	५
ना-	प्रा-	३२३	८
तं	तत्	३३४	८
'त'-मित्यादि।	'त'-दित्यादि।	३३४	१०

अशुद्धम्	शुद्धम्	पृष्ठम्	पंक्तिः
तं	तम्	३३४	१०
सहइ	सहई	३३६	७
सहइ	सहई	३३६	७
अचइ	अच्चेइ	३४३	६
पमुचइ	पवुच्चइ	३४३	६
वर्त्तयेत्	वर्त्तकः	३४३	७
यस्य दुर्वसुः	यस्य स दुर्वसुः	३४३	१०
वर्तमानः	वर्त्तकः	३४४	२
अणोद्घातन-	अणोद्घातन-	३५६	३
घटते=	घटते,	३६४	९
वयवं	वेयवं	३८४	७
दुःखा	दुक्खा	३८९	४
विदित्वा	विदित्वा	४०५	१
मतिमान्=	मतिमान् मेधावी=	४०५	१
रागद्वेषरहित इत्यर्थः, न छिद्यते	रागद्वेषरहित इत्यर्थः, सर्वलोके=समस्तजीवलोके न छिद्यते	४४६	७
पुव्वे	पुव्वं	४४८	२
एतनुदर्शी	एतदनुदर्शी	४५०	६
स्पृष्टो सन्	स्पृष्टः सन्	४६५	६
सम्यक्त्वं	सम्यक्त्वं	५४४	५
ज्ञनावरणीया-	ज्ञानावरणीया-	५६१	१०
काष्टहारादय-	काष्ठहारादय-	५९२	६
तिर्थंकरै-	तीर्थंकरै-	५९४	८
तत्परतो	तत्पुरतो	५९६	४
-कतव्य-	-कर्त्तव्य-	५९७	१
पुद्गल परिणा-	पुद्गलपरि-	५९७	८
वालम्नाना-	वालम्लाना-	६०९	४
भवे देवे वित्यर्थः	भवेदेवेत्यर्थः।	६१६	४

तत्र निखिलजीवभेदेन सकलोपाधिरहितेनोत्तमगुणरञ्जितेन स्वीकृतपञ्चमहा-
तेन षट्कायसंयमोपस्थितमतिना मुनिना स्वजनादिषु नाभिष्वङ्गो विधेय इति
दर्शयति सूत्रकारः—"जे गुणे" इत्यादि.

न, वचन और काय से विरति परिणाम ही जगता रहेगा। पंचम
देशमें–समस्त प्रकार के सावद्य कार्यों से परे रहनेवाले उस संयमी को
पने स्वीकृत संयमयात्रानिर्वाह के लिये, जो अपने निमित्त बनाये हुए
ाहारपानी आदि में प्रवृत्त हैं उनकी नेश्रायमें विहार करना चाहिये।
ठवें उद्देश में–लोक के नेश्राय से विहार करते हुए भी उसके मनमें
पने परिचित अपरिचित परिजनों से मिलने के लिये उत्सुक परिणाम
हीं होना चाहिये, इन्हीं सब बातों का इन छह उद्देशों में विशेषरूप
 खुलासा किया जावेगा।

इसमें सर्वप्रथम प्रथम उद्देशका प्रारंभ करने के लिये सूत्रकार–जीवों
 भेदज्ञानसे समन्वित, सकल उपाधि से रहित, उत्तमोत्तमगुणविशिष्ट,
चमहाव्रताराधक, छहकाय के जीवों की रक्षा करने में दत्तावधान, संयमी
ुनिको अपने आप्तजन मातापितादिक में ममताभाव नहीं रखना चाहिये।
सका विवेचन करते हैं–'जे गुणे से मूलट्ठाणे' इत्यादि।

તેના હૃદયમાં તેના પ્રતિ સદા મન–વચન અને કાયાથી વિરતિપરિણામ જ જાગતો રહેશે. (૫) પાંચમા ઉદ્દેશમાં–સમસ્ત પ્રકારના સાવદ્ય કાર્યોથી દૂર રહેનાર તે સંયમીએ પોતાના સ્વીકૃત સંયમયાત્રા–નિર્વાહ માટે જે પોતાના નિમિત્તે બનાવેલા આહાર-પાણી આદિમાં પ્રવૃત્ત છે તેની નેશ્રાયમા વિહાર કરવો જોઈએ. (૬) છઠ્ઠા ઉદ્દેશમાં લોકની નેશ્રાયે વિહાર કરવા છતાં મનમાં પોતાના પરિચિત અને અપરિચિત પરિજનોથી મળવાને ઉત્સુકતા રાખે નહિ. આ બધી વાતોનો આ છ ઉદ્દેશોમાં–વિશેષ રૂપથી ખુલાસા કરવામાં આવશે

એમાં સર્વપ્રથમ–પ્રથમ ઉદ્દેશનો આરંભ કરવાને માટે સૂત્રકાર–જીવોના ભેદજ્ઞાનથી સમન્વિત, સકળ ઉપાધિથી રહિત, ઉત્તમોત્તમગુણવિશિષ્ટ, પંચ-મહાવ્રતારાધક, છ કાયના જીવોની રક્ષા કરવામાં દત્તાવધાન સંયમી મુનિને પોતાના આપ્તજન–માતાપિતાદિકમા મમતાભાવ નહિ રાખવો જોઈએ. તેનું વિવેચન કરે છે —'जे गुणे से मूलट्ठाणे' इत्यादि।

मूलम्—जे गुणे से मूलट्ठाणे, जे मूलट्ठाणे से गुणे इति से गुणट्ठी महया परियावेणं पुणो पुणो वसे पमत्ते, तंजहा–नाया मे पिया मे भइणी मे भज्जा मे पुत्ता मे धूआ मे ण्हुसा मे सहि-सयण-संगंथ-संथुआ मे विवित्तुवगरणपरिवट्टणभोयण-च्छायणं मे, इच्चत्थं गढिए लोए वसे पमत्ते अहो य राओ य परितप्पमाणे कालाकालसमुट्ठाई संजोगट्ठी अट्ठालोभी आलुंपे सहसाकारे विणिविट्ठचित्ते एत्थ सत्थे पुणो पुणो ।

छाया—यो गुणः स मूलस्थानं, यन्मूलस्थानं तद्गुणः, इति स गुणार्थी महता परितापेन पुनः-पुनः वसति प्रमत्तः, तद्यथा–माता मे पिता मे भगिनी मे भार्या मे पुत्रा मे दुहिता मे स्नुषा मे सखिस्वजनसंग्रन्थसंस्तुता मे, विविक्तोपकरणपरिवर्तनभोजनाच्छादनं मे, इत्यर्थं गृद्धो लोको वसति प्रमत्तः अहश्च रात्रिं च परितप्यमानः कालाकालसमुत्थायी संयोगार्थी अर्थालोभी आलुम्पः सहसाकारः विनिविष्टचित्तः अत्र शस्त्रे पुनः पुनः ॥१॥

शब्दार्थ—जो मुनि छहकाय के जीवों के स्वरूप को भली–भाँति जानकर कृत कारित अनुमोदित एवं मन, वचन, कायसे उनके आरंभ का त्याग कर देता है वह अपने कर्तव्यमार्ग का ज्ञाता कहा जाता है और वही गुणस्थान एवं मूलस्थान के ज्ञानपूर्वक कषायादिरूप लोक पर विजय प्राप्त करनेवाला होता है। अथवा–अपनी बुद्धि से या दूसरे किसी के कथन से अथवा तीर्थंकरों के उपदेश से या किसी आचार्य के समीप सुनकर यह जान लेता है कि जो गुण है वही मूलस्थान है। जो मूल है वही गुणस्थान है। इसलिये वह गुणार्थी अपरिमित दुःखसे

શબ્દાર્થ—જે મુનિ છ કાયના જીવોના સ્વરૂપને ભલી ભાંતી જાણીને કૃત-કારિત અનુમોદિત અને મન, વચન કાયાથી તેના આરંભનો ત્યાગ કરે છે તે પોતાના કર્તવ્ય માર્ગનો જ્ઞાતા કહેવાય છે, અને તે ગુણસ્થાન તેમજ મૂળ સ્થાનના જ્ઞાનપૂર્વક કષાયાદિરૂપ લોકપર વિજય પ્રાપ્ત કરનાર થાય છે. અથવા – પોતાની બુદ્ધિથી અગર બીજા કોઈના કથનથી અથવા તીર્થંકરોના ઉપદેશથી અથવા આચાર્યને સમીપે સાંભળીને એ જાણી લે છે કે જે ગુણ છે તે મૂળસ્થાન છે. જે મૂળ છે તે ગુણસ્થાન છે. માટે તે ગુણાર્થી–અપરિમિત દુઃખથી ગુણ-

रागद्वेषरूपप्रमत्तदशासंपन्न होता है। इस प्रकार यह गुणार्थी वारंवार विषयमें आसक्त होता हुआ यह मानता है कि-यह मेरी माता है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरी पुत्री है, यह मेरी वहू है, ये मेरे मित्र हैं। ये मेरे मातामह आदि हैं, ये मेरे संबंधी जनों के संबंधीजन है, ये मेरे परिचित वन्धु हैं, ये मेरे सुन्दर उपकरण हैं, यह मेरा विनिमय-एक वस्तुको वेंचकर उसके प्राप्त मूल्य से खरीदा हुआ पदार्थ है, ये मेरे खाने के पदार्थ हैं, ये मेरे पहिरने के कपड़े हैं। इस प्रकार यह जीव इन पूर्वोक्त पदार्थों में ही प्रमादी बना हुआ है। और इनके लिये ही रात-दिन शारीरिक, मानसिक एवं वाचनिक अनेक कष्टों को झेलता हुआ काल-अकालके विचार से रहित होकर मनमाना कार्य करता रहता है। कारण कि यह संयोग का अभिलाषी है। इसलिये सव प्रकारसे धनका अभिलाषी बना हुआ है। अनुचित मार्ग से भी धन के संग्रह करने में जरा भी संकोच नहीं करता है। लोभरूपी महासर्प से ग्रसित हो कर्तव्य और अकर्तव्य के ज्ञान से रहित हो कर जिस किसी भी रीतिसे जो धनका संग्रह करता है उसका नाम आलुम्प है-यह जीव प्रमादी बनकर इसी प्रकार से धन के संग्रह करने में लवलीन होता रहता है। इस तरह यह

દ્વેષરૂપપ્રમત્તદશાસંપન્ન થાય છે. આ પ્રકારે તે ગુણાર્થી વારંવાર વિષયમા આસક્ત થઇને માને છે કે-આ મારી માતા છે. આ મારો પુત્ર છે, આ મારી પુત્રી છે, આ મારી વહુ છે, આ મારો મિત્ર છે, આ મારા માતામહ આદિ છે. આ મારા સંબંધીજનોના સંબંધીજન છે, આ મારા પરિચિત બંધુ છે, આ મારા સુંદર ઉપકરણ છે, આ મારો વિનિમય-એક વસ્તુને વેચીને તેની કિંમતથી ખરીદેલી વસ્તુ-છે, આ મારો ખાવાનો પદાર્થ છે, આ મારા પહેરવાના કપડા છે. આ પ્રકારે આ જીવ આવા પૂર્વોક્ત પદાર્થોમા જ પ્રમાદી બનેલો છે, અને તેના માટે જ રાતદિન, શારીરિક, માનસિક અને વાચનિક અનેક કષ્ટોને ઉઠાવતો કાળ અકાળના વિચારથી રહિત થઈને મનમાન્યુ કાર્ય કરવા લાગે છે, કારણ કે તે સંયોગનો અભિલાષી છે. તેથી બધા પ્રકારથી ધનનો અભિલાષી બની રહે છે. આ અનુચિત માર્ગથી પણ ધનનો સંગ્રહ કરવામાં જરા પણ સંકોચ કરતો નથી. લોભરૂપી મહાસર્પથી ગ્રસિત હોઈને કર્તવ્ય અકર્તવ્યના જ્ઞાનથી રહિત થઈ ને કોઈ પણ રીતે જે ધનનો સંગ્રહ કરે છે તેનું નામ આલુમ્પ છે. આ જીવ પ્રમાદી બનીને આ પ્રકારથી ધનનો સંગ્રહ કરવામાં રચ્યો પચ્યો રહે છે, આ

टीका—अस्याध्ययनस्य अनन्तरपरम्परसूत्रैरित्थं सम्बन्धः—अनन्तरसूत्रसम्बन्धो यथा—षट्कायस्वरूपं सम्यग्ज्ञात्वा त्रिकरणत्रियोगेन तदारम्भं परित्यजति स मुनिः परिज्ञातकर्मा भवति, स एव च गुणमूलस्थानज्ञानपूर्वकं कषायादिलोकविजयी भवति। परम्परसूत्रसम्बन्धो यथा—स्वबुद्ध्या परव्याकरणेन तीर्थङ्करोपदेशादन्येषां

अपने हित और अहित का कुछ भी विचार न कर सहसाकर्मकारी हो जाता है इस प्रकार यह शब्दादिविषयों में आसक्तचित्त हो उनके रक्षणके साधनोंको संग्रह करनेके लिये अपने हित और अहित के विवेक से विकल बन रात-दिन छहकायके जीवोंके उपमर्दन करनेमें ही बारम्बार प्रवृत्ति करता रहता है।

टीकार्थः—इस अध्ययन का अनन्तर और परम्पर सूत्रोंसे संबंध है-उसमें अनन्तर सूत्रोंका संबंध इस प्रकार है-जो मुनि छहकाय के जीवों का स्वरूप अच्छी तरह जानकर कृत कारित और अनुमोदित एवं मन, वचन और कायसे उनके आरंभ का त्याग कर देता है वही अपने कर्तव्य को निर्दोष रीतिसे पालता है, और वही अपने तपसंयम में पूर्णरूप से निष्णात बन जाता है। ऐसा वह संयमी जन गुणस्थान और मूलस्थान को जानता हुआ कषायादिकरूप लोक पर विजय प्राप्त करने वाला हो जाता है। परम्पर सूत्रोंसे इस अध्ययन का संबंध इस प्रकार है-वह संयमी जन अपनी बुद्धि से या दूसरों के कथन से अथवा तीर्थंकर

રીતે પોતાના હિત અને અહિતનો જરા પણ વિચાર ન કરતાં સહસા કર્મકારી થઈ જાય છે. તેવી જ રીતે તે શબ્દાદિ વિષયોમાં આસક્ત ચિત્ત કરીને તેના રક્ષણને માટે રક્ષણના સાધનોનો સંગ્રહ કરવામાં પોતાના હિતાહિતનો વિચાર કર્યા વગર વ્યાકુળ રાતદિવસ છકાયના જીવોનું ઉપમર્દન (ઘાત) કરવામાં જ વારંવાર પ્રવૃત્તિ કરે છે.

ટીકાર્થ—આ અધ્યયનનો અનન્તર અને પરમ્પર સૂત્રોથી સંબંધ છે. તેમાં અનન્તર સૂત્રોના સંબંધ આ પ્રકાર છે—

જે મુનિ છકાયના જીવોનું સ્વરૂપ સારી રીતે જાણીને કૃત કારિત અને અનુમોદિત તેમજ મન, વચન, કાયાથી તેના આરંભનો ત્યાગ કરે છે, તે પોતાના કર્તવ્યને નિર્દોષ રીતિથી પાળે છે, અને તે પોતાના તપસંયમમાં પૂર્ણરૂપથી નિષ્ણાત બને છે. એવો તે સંયમીજન ગુણસ્થાન અને મૂળસ્થાનનો જાણકાર કષાયાદિકરૂપ લોકપર વિજય પ્રાપ્ત કરવાવાળા હોય છે. પરમ્પર સૂત્રોમાં આ અધ્યયનનો સંબંધ આ પ્રકાર છે-તે સંયમીજન પોતાની બુદ્ધિથી અગર બીજાના કથનથી અથવા તીર્થંકર પ્રભુના ઉપદેશથી અથવા બીજા કોઈ આચાર્યની પાસેથી

वा केषाञ्चिदाचार्यादीनां समीपे गत्वा जानीयात्। किं तदित्याह 'जे गुणे' इत्यादि। यो गुणः। गुण्यते=आवर्त्यते—चतुर्गतिषु गमनागमनादिरूपेण परिणम्यते आत्माऽनेनेति गुणः।

प्रभु के उपदेश से या अन्य किसी आचार्य के समीप सुनकर यह जान लेता है कि जो गुण है वही मूलस्थान है इत्यादि। चार गतियों—नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति और देवगति—में गमन और आगमन रूप से आत्मा जिसके द्वारा भ्रमण करता है उसका नाम गुण है। इस गुण शब्दका वाच्यार्थ—शब्दादिक विषय होता है। यह प्रत्येक इन्द्रियका अपना-अपना स्वतंत्र गुण है।

जो मुनि छहकाय के जीवों के स्वरूप को अपने आप या किसी के उपदेश से जानकर छकाय के आरंभ से विरत होता है वह मुनि अपने अंगीकृत संयम का निर्दोष रीति से पालन करने वाला होनेसे कुशल माना जाता है। छकाय के आरंभ से निवृत्ति तब तक संभव नहीं हो सकती कि जब तक वह पंचेन्द्रियों के विषयों में—चाहे वे मनोज्ञ हों चाहे अमनोज्ञ—रागद्वेष करने का त्याग नहीं करे, अतः यह निश्चित है कि छहकाय के आरंभ का त्याग, पंचेन्द्रियों के विषयों में रागद्वेष के त्याग करने से ही होता है। इनके विषयों में लोलुपी उनके आरंभ का

સાભળી એવું જાણે છે કે 'જે ગુણ છે તે મૂળસ્થાન છે' ઈત્યાદિ. ચાર ગતિઓ નરકગતિ, તિર્યંચગતિ, મનુષ્યગતિ અને દેવગતિમાં ગમન અને આગમનરૂપથી આત્મા જે દ્વારા ભ્રમણ કરે છે તેનું નામ ગુણ છે. આ ગુણ—શબ્દનો વાચ્યાર્થ (મુખ્ય અર્થ) શબ્દાદિક વિષય થાય છે. તે પ્રત્યેક ઇન્દ્રિયને પોતપોતાનો સ્વતંત્ર ગુણ છે.

જે મુનિ છ કાયના જીવોના સ્વરૂપને પોતાની જાતે, અગર બીજાના ઉપદેશથી જાણીને છ કાયના આરંભથી વિરત થાય છે, તે મુનિ પોતાના અંગીકૃત સંયમનું નિર્દોષ રીતિથી પાલન કરનાર હોવાથી કુશળ માનવામાં આવે છે. જ્યાં સુધી પાંચ ઈન્દ્રિયોના વિષયો જે મનોજ્ઞ કે અમનોજ્ઞ હોય તેમાં રાગ દ્વેષ રાખે ત્યાં સુધી છ કાયના આરંભથી નિવૃત્તિ થતી નથી. તેથી તે નિશ્ચિત છે કે—છકાયના આરંભનો ત્યાગ પાંચ ઇન્દ્રિયોના વિષયોમાં રાગ દ્વેષનો ત્યાગ કરવાથી જ થાય છે. તેના વિષયોમાં મગ્ન રહેનાર તેના આરંભનો ત્યાગ કરી શકતા નથી.

यद्वा गुण्यते=विशिष्यते निश्चयनयेन शुद्धस्वरूपोऽप्यात्मा नरामरतिर्यगादि-भेदेन भिद्यते येनेति गुणः-शब्दादिरूपः कामगुणः। स एव मूलस्थानम्।

मूलस्थानपदस्य व्युत्पत्तिभेदेन बहवोऽर्था भवन्ति। यथा-मूलं=मोहनीयं

त्याग नहीं कर सकता-"न यारंभो विणा वहा-न चारम्भो विना वधात्" इस वाक्य के अनुसार विना हिंसा के आरंभ नहीं होता-जहाँ हिंसा है वहाँ सर्व प्रकारसे संयम का आराधन नहीं है। अतः निर्दोष संयम को पालने के लिये छहकाय के जीवों के आरंभ करनेका त्याग अवश्य२ करना पड़ता है।

गुण शब्दका अर्थ—शब्दादिक विषय हैं, क्योंकि इन्हींके सेवन से यह आत्मा चतुर्गतिरूप संसार में भटकता फिरता है। आना-जाना यही तो एक बड़ा भारी गमनागमन का चक्कर इस जीव के पीछे पड़ा हुआ है। कभी नरकमें जाकर रोता है तो कभी मानवपर्याय की प्राप्ति से विषयभोगोंमें अपने जन्म को निष्फल कर देता है, कभी स्वर्गमें जाकर वहाँ की दिव्य ऋद्धि आदि पाकर इठलाता गर्विष्ठ होता है, तो कभी पशुपर्याय में जाकर बिलखता है।

यही बात—"यो गुणः" इन शब्दोंसे सूत्रकारने प्रकट की है।

मूलस्थान शब्दका अर्थ प्रकट करने के लिये टीकाकार कहते हैं कि मूलस्थान शब्द के व्युत्पत्ति के भेद से अनेक अर्थ होते हैं, जैसे-"मूलं

"न यारंभो विणा वहा" न चारम्भो विना वधात्"

આ વાકય અનુસાર હિંસા વિના આરંભ થતો નથી. જ્યાં હિંસા છે ત્યાં સર્વ પ્રકારથી સયમનુ આરાધન નથી, માટે નિર્દોષ સંયમ પાળવામા છકાય જીવોનો આરભ કરવાનો ત્યાગ અવશ્ય ર કરવો પડે છે.

ગુણ શબ્દનો અર્થ—શબ્દાદિક વિષય છે, કારણ કે તેના સેવનથી આ આત્મા ચતુર્ગતિરૂપ સંસારમા ભટકતો ફરે છે જવું-આવવું એ તો એક ભારી ગમનાગમનનુ ચક્કર આ જીવના પાછળ પડયું છે. કોઈ વખત નરકમાં જઈ રોવે છે તો ક્યારેક માનવપર્યાયની પ્રાપ્તિથી વિષયભોગોમાં પોતાના જન્મને નિષ્ફળ કરે છે ક્યારેક સ્વર્ગમાં જઈ ત્યાંની દિવ્યઋદ્ધિ આદિ જોઈને ગર્વિષ્ઠ થાય છે ક્યારેક પશુપર્યાયમાં જઈ રોવે છે.

આ વાત—"यो गुण." આ શબ્દોથી સૂત્રકારે પ્રકટ કરી છે. મૂળસ્થાન શબ્દનો અર્થ પ્રકટ કરવાને ટીકાકાર કહે છે કે-મૂળસ્થાન શબ્દના વ્યુત્પત્તિના ભેદથી અનેક અર્થ થાય છે. જેમ-"मूलं संसारस्तस्य स्थानमाश्रय' कारणम्"

तस्य स्थानमाश्रयः। अथवा संसारस्य मूलभूतत्वान्मूलमिव मूलं कारणं ज्ञानावरणादिरूपमष्टविधं कर्म, तस्य स्थानमाधारः। यद्वा मूलमिति नरामरनारकतिर्यग्लक्षणस्य संसारस्य कारणं कषायास्तेषां स्थानमाश्रयो मूलस्थानम्, यतो मनोज्ञामनोज्ञशब्दादिप्राप्तौ कषायाणामुदयो भवति तेन संसार इति।

यद्वा 'मूल'-मिति प्रधानं, 'स्थान'-मिति कारणं, मूलं च तत्स्थानं चेति मूलस्थानं, शब्दादिक एव कामगुणः, कषाया वा प्रधानं कारणं संसारस्य भवतीत्याशयः।

संसारस्तस्य स्थानमाश्रयः कारणम्" अर्थात्-मूल नाम संसार का है स्थान नाम कारण का है-संसार के जो कारण हैं उनका नाम मूलस्थान है। वे शब्दादिक विषय अथवा कषाय हैं। अथवा-मूल-मोहनीय का जो स्थान-आश्रय है उसका नाम मूलस्थान है। अथवा-संसारका मूल स्वरूप होनेसे मूलके जैसा जो है, वह मूल है-ज्ञानावरणादिक आठ प्रकार के पौद्गलिक कर्मोंका नाम मूल है और उसका जो आधार है उसका नाम मूलस्थान है। अथवा-मूल नाम-मनुष्यगति, देवगति, तिर्यञ्चगति और नरकगतिरूप संसारके कारणभूत कषायोंका भी है, उनके अधार का नाम मूलस्थान है, वे शब्दादिक विषय हैं, क्योंकि मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्दादिक विषयोंकी प्राप्ति होने पर कषायोंका उदय होता है और इसीसे जीवको संसार की प्राप्ति होती है।

प्रधान कारणको भी मूलस्थान कहते हैं, संसार के प्रधान कारण शब्दादिक विषय अथवा कषाय हैं।

અર્થાત્ મૂળ નામ સંસારનું છે સ્થાન નામ કારણનુ છે. સંસારનું જે કારણ છે તેનું નામ મૂળસ્થાન છે. તે શબ્દાદિક વિષય અથવા કષાય છે, અથવા મૂળ-મોહનીયનું જે સ્થાન-આશ્રય છે તેનું નામ મૂળસ્થાન છે, અથવા સંસારનું મૂળ સ્વરૂપ હોવાથી મૂળના જેવું છે, તે મૂળ છે જ્ઞાનાવરણાદિક આઠ પ્રકારના પૌદ્ગલિક કર્મોનુ નામ મૂળ છે, અને તેનો જે આધાર છે તેનું નામ મૂળસ્થાન છે. અથવા મૂળ નામ, મનુષ્યગતિ, દેવગતિ, તિર્યંચગતિ અને નારકગતિરૂપ સંસારના કારણભૂત કષાયો પણ છે, તેના આધારનુ નામ મૂળસ્થાન છે, તે શબ્દાદિક વિષય છે કારણ કે મનોજ્ઞ અને અમનોજ્ઞ શબ્દાદિક વિષયોની પ્રાપ્તિ થવાથી કષાયોનો ઉદય થાય છે, અને તેથી જીવને સંસારની પ્રાપ્તિ થાય છે.

પ્રધાન કારણને પણ મૂળસ્થાન કહે છે. સંસારનું પ્રધાન કારણ શબ્દાદિક વિષય અથવા કષાય છે,

गुण–मूल–स्थानयोः परस्परमपेक्षा वर्तते यथा–यो गुणः स मूलस्थानं, यन्मूलस्थानं तद् गुण इति तदुपात्तानां विषयकषायादीनामण्डपक्षिवद् अनादिः कार्यकारणभावो यथा–पक्षितोऽण्डम्, अण्डाच्च पक्षी संजायते। एवमेव मूलस्थानाद्गुणो, गुणाच्च मूलस्थानमिति।

अत्र च सप्तम्यन्तपाठमाश्रित्यैवं योजना—यो गुणे गुणेषु वा वर्तते स मूलस्थाने मूलस्थानेषु वा वर्तते, यश्चात्मा शब्दादिके कामगुणे वर्तते स एव संसारमूले कषायादिस्थाने वर्तते–इति, एवं दर्शितरीत्या गुणमूलस्थानानां कार्यकारण-

---

गुण और मूलस्थान, इनकी परस्पर में अपेक्षा है, इस बातको प्रकट करने के लिये "यो गुणः स मूलस्थानं, यन्मूलस्थानं तद् गुणः" यह वाक्य भगवानने कहा है। जिस प्रकार पक्षी से अण्डा पैदा होता है और अण्डासे पक्षी पैदा होता है उसी प्रकार मूलस्थान से गुण और गुणसे मूलस्थान होता है। इनका यह परस्पर कार्य–कारणभाव अनादि कालका है। पंचेन्द्रिय के विषयोंसे जीवको कषायभाव और कषायभावसे पंचेन्द्रियोंके विषयका ग्रहण होता है। "जे गुणे से मूलट्ठाणे" इस वाक्यमें "जे" की छाया "यः" मानकर "गुणे" को सप्तमी विभक्तिका एकवचन मानकर इस प्रकारसे भी अर्थ किया जा सकता है कि जो गुणमें स्थित है वह मूल स्थानमें स्थित है। अर्थात्–जो आत्मा शब्दादिक पांच इन्द्रियोंके विषय में लवलीन है वही आत्मा संसारके मूल कारण कषायादि स्थानमें लवलीन है। इस प्रकार इस पद्धति से गुण और मूल स्थानोंका परस्परमें सूत्रकारने कार्य–कारणभाव प्रकट किया है। "इति" शब्द

ગુણ અને મૂળસ્થાન, એની પરસ્પરમાં અપેક્ષા છે, આ વાતને પ્રગટ કરવાને માટે "यो गुणः स मूलस्थानं यन्मूलस्थानं तद् गुणः" આ વાકચ ભગવાને કહ્યું છે–જે પ્રકારે પક્ષીથી ઇંડુ પેદા થાય છે અને ઇંડાથી પક્ષી પેદા થાય છે તે પ્રકાર મૂળસ્થાનથી ગુણ અને ગુણથી મૂળસ્થાન થાય છે. તેનો પરસ્પર કાર્ય-કારણ ભાવ અનાદિ કાળનો છે. પાંચ ઇન્દ્રિયોના વિષયોથી જીવને કષાયભાવ અને કષાયભાવથી પાંચ ઇન્દ્રિયોનો વિષય ગ્રહણ થાય છે. "जे गुणे से मूलट्ठाणे" આ વાકચમાં "जे"ની છાયા "यः" માનીને "गुणे"ને સપ્તમી વિભક્તિનું એકવચન માનીને આ પ્રકારે પણ અર્થ થાય છે કે જે ગુણમાં સ્થિત છે તે મૂળસ્થાનમાં સ્થિત છે. અર્થાત્ જે આત્મા શબ્દાદિક પાંચ ઇન્દ્રિયોના વિષયમાં રાચેલો છે તે આત્મા સંસારનું મૂળ કારણ કષાયાદિ સ્થાનમાં રાચેલો છે. આ પ્રકારે આવી પદ્ધતિથી ગુણ અને મૂળસ્થાનનો પરસ્પરમાં સૂત્રકારે કાર્યકારણ-

भावो वर्णितः । "यो गुणः स मूलस्थानं, यन्मूलस्थान तद् गुणः"–इत्यनेन किमायातमित्याह–"इति स गुणार्थी" इति ।

इतिर्हेतौ, यतो हि संसारस्थाः सर्वेऽपि प्राणिनो गुणार्थिनः सन्ति, अनादिकालत आत्मनो मोहावेशेनावेष्टितत्वात्, अतः स गुणार्थी कषायादिमूलस्थाने वर्तते । गुणस्य=शब्दादिगुणस्य अर्थः=प्रयोजनं यस्य स गुणार्थी । यद्वा–गुणे=शब्दादौ अर्थोऽनुरागो यस्य स गुणार्थी । सर्वो हि प्राणिगणः प्रायशः कामगुणार्थी भवति । शब्दादिगुणगणस्यालाभे तं मुहुरिच्छति, सम्प्राप्तस्य नाशे च शोकाविष्टो भवति । महता=अपरिमितेन परितापेन=मानसिककायिकवाचिकेन दुःखेन प्रमत्तः, प्रमादोऽत्र रागद्वेषरूपस्तद्वान् प्राणी विषयेषु रागाधिक्येन प्रवर्तते, इष्टविषयाप्राप्तावनिष्टोपगमे

हेत्वर्थ में है–उसका अभिप्राय यह है–संसार के समस्त प्राणी गुणार्थी हैं, क्योंकि ये अनादिकाल से ही मोह के आवेश से युक्त हैं, इसलिये गुणार्थी आत्मा–कषायादि मूलस्थान में स्थित ही है, शब्दादिक पांचइन्द्रियों का विषय जिसका प्रयोजन है वह, अथवा शब्दादिक विषयों में जिसे अनुराग है वह गुणार्थी है । प्रायः सांसारिक समस्त प्राणी शब्दादिक विषयों का प्रार्थी होता है उनके नहीं मिलने पर उन्हें प्राप्त करनेकी वह वार २ चेष्टा करता रहता है । मिलने पर वे नष्ट न हो जावें–इस प्रकार का वह प्रयत्न भी करता रहता है । यदि प्राप्त हुए वे नष्ट हो जाते हैं–तो उनके अभाव में अत्यंत शोकाकुल वह मानसिक वाचिक और कायिक कष्टों को झेलता है । सत्य है, प्रमत्त–रागद्वेषाविष्ट आत्मा विषयों में रागकी अधिकता से ही तो प्रवृत्ति करता है । तथा इष्ट वस्तुके नहीं प्राप्त होने पर अथवा प्रतिकूल वस्तु के मिलने पर उस विषयसे द्वेष करता

ભાવ પ્રકટ કર્યો છે. "इति" શબ્દ हेत्वर्थમાં છે. તેનો અભિપ્રાય એ છે–સંસારના સમસ્ત પ્રાણી ગુણાર્થી છે, કારણ કે તે અનાદિકાળથી મોહના આવેશથી યુક્ત છે માટે ગુણાર્થી આત્મા કષાયાદિ મૂળસ્થાનમા સ્થિત જ છે, શબ્દાદિક પાંચ ઇન્દ્રિયોનો વિષય જેનુ પ્રયોજન છે તે, અથવા શબ્દાદિક વિષયોમાં જેને અનુરાગ છે તે ગુણાર્થી છે સાસારિક સમસ્ત પ્રાણી શબ્દાદિક વિષયોના પ્રાર્થી થાય છે, તેના અભાવમા તેની પ્રાપ્તિ માટે વારવાર ચેષ્ટા કરતા જ રહે છે મળવાથી ફરી તેનો નાશ ન થાય તેનો પ્રયત્ન કરતા રહે છે. કદાચ પ્રાપ્ત થયેલાઓનો નાશ થાય તો તેના અભાવમાં તે અત્યંત શોકાકુળ બને છે, અને માનસિક વાચિક અને કાયિક કષ્ટોને ભોગવે છે સત્ય છે, પ્રમત્ત રાગદ્વેષાવિષ્ટ આત્મા વિષયોમાં રાગની અધિકતાથી જ પ્રવૃત્તિ કરે છે, તથા ઇષ્ટ વસ્તુ પ્રાપ્ત નહિ થવાથી અથવા પ્રતિકૂળ

च तं विषयं द्वेष्टि। एवंविधः संस्तत्र पुनः पुनः=वारं वारं वसति=विषयासक्त्या तिष्ठति, मूर्च्छितो भवतीत्यर्थः। रागद्वेषौ हि यत्र यत्र प्रायशो भवतस्तत्तद्दर्शयति। तद्यथा—"माता मे पिता मे" इत्यादि।

'इयं मे माता, अयं मे पिता' एवंरूपो मातरि पितरि च रागस्तु संसारेऽनादिकालतो मोहनीयसद्भावाद् बाल्यावस्थायां लालनपालनादिकारकत्वाच्चोपजायते। रागाविष्टचेता हि चिन्तयति–कथं मयि जीवति सति मे माता-पितरौ क्षुत्पिपासादिकं दुःखमनुभवतः–इति, इत्थं विचिन्त्य बहुप्राणिसंहारजनितपापवान् कृषिवाणिज्यसेवादिरूपां वृत्तिं स्वीकरोति। समुद्रमपि दुरुल्लङ्घं गोष्पदं मन्वानो द्वीपाद्द्वीपान्तरं परिभ्रमति। अकार्यशतमपि करोति। अहो कीदृशं रागस्य साम्राज्यम्?।

है। इस प्रकार वह उन विषयों में आसक्ति–परिणाम से ही प्रवृत्ति करता रहता है। संसारी जीवों के राग और द्वेष के विषयभूत पदार्थों को सूत्रकार स्पष्ट करते हुए कहते हैं–"माता मे" इत्यादि। यह मेरी माता है, यह मेरा पिता है, इस प्रकार का उनमें इस जीव को जो राग होता है उसका प्रधान कारण मोह है, वह मोह इस संसारमें अनादिकाल से इस जीव के साथ लगा हुआ है। तथा दूसरा कारण बाल्यावस्था में उन्होंने इसका पालन पोषण किया है। रागाविष्ट यह जीव सदा यही विचारता रहता है कि मेरे जीते–जी मेरे माता–पिता कभी भी भूख प्यास आदि से जनित दुःखोंका अनुभव न करें। इस ख्यालसे वह कृषि, वाणिज्य आदि अनेक आरंभों को करता है, जिससे हिंसादिजन्य अनेक पापोंका संचय करता रहता है, दुरुल्लंघ्य समुद्रको भी पारकर एक द्वीपसे दूसरे द्वीपोंमें जाकर

વસ્તુ મળવાથી તે વિષયમાં દ્વેષ કરે છે. આ પ્રકારે તે આવા વિષયોમા આસક્તિ–પરિણામથી પ્રવૃત્તિ કરે છે. સસારી જીવોના રાગ અને દ્વેષના વિષયભૂત પદાર્થોને સૂત્રકાર સ્પષ્ટ કરે છે અને કહે છે—"माता मे" ઇત્યાદિ. આ મારી માતા છે, આ મારા પિતા છે. આ પ્રકારે જીવને જે રાગ થાય છે તેનું પ્રધાન કારણ મોહ છે. આ મોહ આ સંસારમાં અનાદિ કાળથી જીવની સાથે લાગેલો છે. તથા બીજું કારણ બાલ્યાવસ્થામાં તેણે તેનું પાલન કર્યું છે. રાગાવિષ્ટ આ જીવ હમેશાં એ જ વિચારતો રહે છે કે મારા માતા પિતા મારા જીવતાં કોઈ વખત પણ ભૂખ તરસથી દુઃખી ન થાય. આવા ખ્યાલથી તે કૃષિ, વાણિજ્ય, આદિ અનેક આરંભ કરે છે જેનાથી હિંસાદિજન્ય અનેક પાપોનો સંચય કરે છે. દુરુલ્લંઘ સમુદ્રને ઓળંગીને એક દ્વીપથી બીજા દ્વીપોમા જઈ વ્યાપાર ધંધા નિમિત્તે

"भगिनी मे भार्या मे पुत्रा मे दुहिता मे स्नुषा मे"। इति।

भगिनी=स्वसा, सा मे=मम, अस्यां रागकारणं तु समानमातापितृजत्वम्। भार्यायां रागस्तु यावज्जीवं स्वानुकूल्येन वर्तनशीलत्वात्। पुत्रे च रागकारणं सेवादिकार्यप्रवर्तकत्वम्। स्नुषा=पुत्रवधूः तस्याश्च रागकारणं सकलगृहकार्यसम्पादकत्वम्, पुत्राद्युत्पादनद्वारा पौत्रादिसुखाद्यनुभवकर्तृत्वञ्च। चेतसि च मूढो विचिन्तयति–कदा मे पुत्रो भविता, कदा मदीयमङ्कमलङ्करिष्यति। जाते पुत्रे च कथमयं विद्याधनादिकं प्राप्स्यति। पत्नी कदा मां सुखिता आनन्दयिष्यति। कदा मे दुहिता दौहित्रं जनयिष्यति, श्वशुरकुले धनादिकं प्राप्स्यति न वेति। तदर्थं चानेक-

---

व्यापार धंधा के निमित्त भ्रमण करता है। पैसा कमाने के लिये अनेक अकार्य भी कर डालता है। देखो रागका साम्राज्य कैसा आश्चर्यकारी है।

यह मेरी बहिन, इस प्रकार उसमें रागका कारण एक माता-पितासे उत्पन्न होना है। स्त्रीमें रागका हेतु यह है कि–जीवन भर तक वह अपने अनुकूल प्रवृत्ति करती है। पुत्रमें राग होनेका कारण यह है कि वह रातदिन सेवादि कार्यमें तल्लीनता रखता है। पुत्रीमें भी–यह अपनेसे पैदा हुई यही रागका कारण है। सम्पूर्ण घरके भारको संभालने तथा पुत्रादिकों को उत्पन्न करने द्वारा पौत्रादिसुखका अनुभव करानेसे पुत्रवधू में राग होता है। पुत्र–कलत्रादि में महामूढ़ बनकर यह जीव विचारता है–मेरे पुत्र कब होगा, कब मेरी गोदी को वह सुशोभित करेगा, कैसे वह विद्याध्ययन एवं धनादिक प्राप्त करेगा, मेरी स्त्री कब मुझे स्वयं सुख चैन भोगती हुई आनंदित करेगी। मेरी पुत्री कब दोहिते को जन्म देगी, वह अपने श्वशुरगृह में

ભ્રમણ કરે છે પૈસા કમાવા માટે અનેક અકાર્ય પણ કરે છે. જુવો! રાગનું સામ્રાજ્ય કેવું આશ્ચર્યકારી છે?

આ મારી બહેન છે, એ પ્રકારના રાગનું કારણ એક માતા–પિતાથી ઉત્પન્ન થવું તે. સ્ત્રીમાં રાગનું કારણ, જીવનભર તે પોતાના અનુકૂળ પ્રવૃત્તિ કરે છે. પુત્રમાં રાગનું કારણ તે રાતદિવસ સેવાદિ કાર્યમા તલ્લીનતા રાખે છે. પુત્રીમાં પણ રાગનું કારણ પોતાથી પેદા થઈ છે માટે. સંપૂર્ણ ઘરનો ભાર સંભાળવામાં તથા પુત્રાદિકોની ઉત્પત્તિ દ્વારા પૌત્રાદિસુખનો અનુભવ કરાવવાથી પુત્રવધુમા રાગ પેદા થાય છે. પુત્રકલત્રાદિમાં મહામૂઢ બનીને આ જીવ વિચારે છે કે–મારે પુત્ર ક્યારે થશે, ક્યારે મારી ગોદીમાં તે બેસીને મને સુશોભિત કરશે, કેવી રીતે તે વિદ્યાધ્યયન તેમજ ધનાદિક પ્રાપ્ત કરશે. મારી સ્ત્રી ક્યારે તેણી સુખચેન ભોગવતી મને આનંદિત કરશે. ક્યારે મારી પુત્રી દોહિતને જન્મ આપશે, તેણીના

सावद्यानुष्ठानपरायणो भवति। असौ ममकारमहाग्रहगृहीतस्वान्तो नितान्तं परितपति। रागान्धो हि रागग्राहग्रहिलः परमरमणीयमपि सम्यग्ज्ञानादिकं व्यर्थमेवेति निश्चिन्वानो मोहशय्याशयानो भार्यापुत्रभगिनीगृहक्षेत्राराममरमणीयमपि रमणीयं मन्यते।

तथा 'सखि-स्वजन-संग्रन्थ-संस्तुता मे' इति। सखा च स्वजनश्च संग्रन्थश्च संस्तुतश्चेति इतरेतरयोगद्वन्द्वसमासः। सखा=मित्रं, स्वजनो=मातामहादिः, संग्रन्थः=स्वजनस्यापि सम्बन्धी यथा-मातामहश्यालकादिः। संस्तुतो मुहुर्मुहुर्दर्शनसम्मेलना-

धनकी अधिकारिणी होगी या नहीं। इस प्रकार यह ममत्वरूपी महाग्रह-पिशाचादि द्वारा युक्त होकर रातदिन उनकी चिन्तामें ही अपने भीतर ही भीतर जलता रहता है, ठीक है रागसे अंधा हुआ प्राणी असुन्दर भी परपदार्थों को सुन्दर माने तथा उपादेय-सुन्दर पदार्थों को हेय-असुन्दर माने, इसमें कौनसी अचरजकी बात है। संसारमें सम्यग्ज्ञानादिक इस जीवके उपादेय धर्म हैं-उन्हें यह रागरूपी ग्रह से ग्रस्त होकर अशोभनीय मानता है, तथा जो स्त्री, पुत्र, भगिनी, घर-क्षेत्र आदि अशोभनीय परपदार्थ हेय हैं, उन्हें मोहरूपी प्रबल मदिराके नशे से आकुलितबुद्धि होता हुआ रमणीय-उपादेय मान रहा है। तथा "सखि-स्वजन-संग्रन्थ-संस्तुता मे" सखा-मित्र, स्वजन-मातामहादि, संग्रन्थ-स्वजन के संबंधीजन, संस्तुत-बारम्बार देखने से मेल मिलाप से जिनके साथ परिचय हुआ है वे, अथवा-पूर्व में परिचित पिता काका वगैरह, पश्चात्-परिचित ससुर साले वगैरह, ये मित्र स्वजन

શ્વશુરગૃહમાં ધનની અધિકારિણી થશે કે નહિ? આ પ્રકાર તે મમત્વરૂપી મહાગ્રહ-પિશાચાદિ દ્વારા યુક્ત બનીને રાતદિન તેની જ ચિંતામાં પોતાના ભીતરની અંદર જ બળતો રહે છે. ઠીક છે, રાગથી અંધ બનેલ પ્રાણી અસુંદર પણ પરપદાર્થોને સુંદર માને તથા ઉપાદેય-સુંદર પદાર્થોને હેય - અસુંદર માને, આમાં કોઈ અચરજની વાત નથી સંસારમા સમ્યગ્જ્ઞાનાદિક આ જીવનો ઉપાદેય ધર્મ છે. તેને રાગરૂપી ગ્રહથી અશોભનીક માને છે. તથા જે સ્ત્રી, પુત્ર, ભગિની, ઘર, ક્ષેત્ર આદિ અશોભનીય પરપદાર્થ હોય છે, તેને મોહરૂપી પ્રબળ મદિરાના નશાથી આકુળિત બુદ્ધિ થઈ રમણીય-ઉપાદેય માને છે તથા "सखि-स्वजन-संग्रन्थ-संस्तुता मे" સખા-મિત્ર, સ્વજન-માતામહાદિ, સગ્રન્થ-સ્વજનના સંબંધીજન, સંસ્તુત-વારંવાર દેખવાથી, મેળમેળાપથી જેની સાથે પરિચય થયો છે તે, અથવા પૂર્વમાં પરિચિત પિતા, કાકા વિગેરે, પાછળથી પરિચિત સસરા સાળા વિગેરે, આ

दिना परिचितः पिता पितृव्यादिः। पश्चात्संस्तुतः=श्वशुरश्यालकादिः। इति चेमे मे सर्वे सर्वदा सुखिनो भवेयुरिति चिन्तयन् रागग्रस्तो भवति।

'विविक्तोपकरणपरिवर्तनभोजनाच्छादनं मे' विविक्तं=सुन्दरं मनोहरं प्रभूतं वा उपकरणं=गृहारामादिकं हस्त्यश्वरथासनपल्यङ्कादिकं च, परिवर्तनं=विनिमयः हस्त्यश्वादे-महार्घसमये विक्रयणम्, तन्मूल्येनैव सुलभसमये चानेकेषां क्रयणम्। मयैवैकेन हस्तिनाऽनेके हस्त्यादयः सम्पादिताः-इत्यादिलक्षणं परिवर्तनम्। क्वचित्

संग्रन्थ संस्तुत मेरे हैं और इनके लिये भी यह "ये सदा सुखी होवें" इस प्रकार विचार करता हुआ राग से ग्रस्त होता है। अपने संबंधीजन को तथा संबंधीजन के सबंधीजन को सुखी होने की कल्पना करना संयमी जन के लिये राग होनेसे बंध का ही कारण शास्त्रकारों ने प्रकट किया है। इस प्रकार का राग मोहकी पर्याय होने से संयमी जन के लिये स्वानुभूति में बाधक होता है, अतः इससे निवृत्ति ही सर्वश्रेष्ठ है।

'विवित्तुवगरण'—इत्यादि-मनोहर अथवा प्रचुर उपकरणरूप घर, बगीचा, हस्ती, अश्व, रथ, आसन, पलंग वगैरह वस्तुएँ विविक्त उपकरण कहलाते हैं। परिवर्तन शब्द का अर्थ विनिमय है, तेजी के समय हस्ति वगैरह पदार्थों का वेचना तथा मंदी के समय उसी पैसे से अनेक हस्त्यादिक पदार्थों का खरीदना यह विनिमय है। कहीं "विचित्र" यह पाठान्तर भी है-जिसका अर्थ होता है कि घर में शोभा के लिये अनेक

મિત્ર, સ્વજન, સંગ્રન્થ, સંસ્તુત મારા છે. તેને માટે પણ તે "તેઓ સદા સુખી રહે" આ પ્રકારનો વિચાર કરીને રાગથી ગ્રસ્ત થાય છે. પોતાના સંબંધીજનના તથા સંબંધીના સંબંધી તેના સુખની કલ્પના કરવી સંયમીજનને માટે રાગરૂપ હોવાથી બંધનું જ કારણ શાસ્ત્રકારે પ્રકટ કર્યું છે. આ પ્રકારનો રાગ મોહની પર્યાય હોવાથી સયમીજનને માટે સ્વાનુભૂતિમાં બાધક થાય છે માટે તેમાં નિવૃત્તિ જ સર્વશ્રેષ્ઠ છે.

વિવિક્તોપકરણ—ઈત્યાદિ-મનોહર અથવા પ્રચુર ઉપકરણરૂપ ઘર, બગીચા હસ્તી, અશ્વ, રથ, આસન, પલંગ વિગેરે વસ્તુઓને વિવિક્ત ઉપકરણ કહે છે.

પરિવર્તન શબ્દનો અર્થ વિનિમય છે. તેજીના સમયમાં હસ્તિ વિગેરે પદાર્થોનું વેચવું અને મંદિના મમયમાં તે પૈમાથી હસ્તિ આદિ પદાર્થોનું ખરીદવું તે વિનિમય છે. કોઈ ઠેકાણે "વિચિત્ર" આવું પાઠાન્તર પણ છે જેનો અર્થ

'विचित्रे'-ति पाठः। तत्र विचित्रमुपकरणं गृहादौ शोभार्थं बहुशिल्पिविनिर्मितं नानाविधं नयनमनोहारि वस्तुजातं मयैव सम्पादितम्।

भोजनं=मोदकादिकं, मयैवेदृशं भोज्यं भुक्तम्। आच्छादनं=वस्त्रम्=एकेन्द्रिय-निष्पन्नं कार्पासादिकं, विकलेन्द्रियनिष्पन्नं चीनांशुकादिकं, पञ्चेन्द्रियनिष्पन्नं रत्न-कम्बलादिकम्, एतत्सर्वं कदाचिदपि मा विनाशमाप्नुयात्। यत्र यत्र विषये रागस्त-

---

कारीगरों द्वारा निर्मित नेत्र और मन को लुभानेवाली अनेक प्रकार की वस्तुओं का संग्रह करना। प्रमत्त-दशा-सम्पन्न प्राणी ऐसा गर्व करता है कि मैंने ही इस घर में एक हाथी की जगह अनेक हाथियों का संग्रह किया है, तथा पहिले इस घरमें शोभा के लिये कोई सुन्दर वस्तु नहीं थी वह मैंने ही अब इन तमाम नेत्र और मन को लुभानेवाली वस्तुओं को एकत्रित किया है।

मोदकादिक भक्ष्य पदार्थ भोजन है। आच्छादन नाम वस्त्र का है। एकेन्द्रिय से निष्पन्न कार्पास (सूती) आदिक, विकलेन्द्रियों से पैदा हुआ चीनांशुक (रेशमी) वगैरह, तथा पंचेन्द्रियों से बनाया गया रत्न-कम्बलादिक पदार्थ मेरे कभी नष्ट न हो जावें। इस प्रकार के विचारों से वह मोही जीव सदा संतप्त रहा करता है। प्रतिकूल भोजन मिलने पर पहिले सुन्दर खाये गये भोजन की याद कर व्याकुल-चित्त हो जाता है, सोचता है-मैंने पहिले ऐसा भोजन कभी नहीं किया, सुन्दर २ मोद-कादिक भक्ष्य पदार्थों का ही सेवन किया है। यह सब इस प्रकार की

એ થાય છે કે ઘરમા શોભાને માટે કારીગરોદ્વારા આંખ અને મનને લોભાવવા-વાળી અનેક પ્રકારની વસ્તુઓનો સંગ્રહ કરવો

પ્રમત્તદશાસમ્પન્ન પ્રાણી એવો ગર્વ કરે છે કે-મેં આ ઘરમાં એક હાથીની જગ્યા અનેક હાથિઓનો સંગ્રહ કર્યો છે, તથા પહેલાં આ ઘરમાં શોભા માટે કોઈ સુંદર વસ્તુ ન હતી પણ મેં જ હમણા આ તમામ નેત્ર તથા મનને લોભાવવાળી વસ્તુઓ ભેગી કરી છે

મોદકાદિક ભક્ષ્ય પદાર્થ ભોજન છે. આચ્છાદન નામ વસ્ત્રનું છે. એકેન્દ્રિ-યથી નિષ્પન્ન સૂતરાઉ આદિક, વિકલેન્દ્રિયોથી પેદા થયેલા રેશમી વિગેરે, તથા પંચે-ન્દ્રિયોથી બનાવેલા મારા રત્નકંબલાદિક પદાર્થોનો નાશ ન થઈ જાય, આવા પ્રકારના વિચારોથી તે મોહી જીવ સદા સંતપ્ત રહે છે. પ્રતિકૂળ ભોજનના મળવાથી પહેલાં સુંદર ખાધેલાં ભોજનની યાદ કરીને વ્યાકુળચિત્ત થાય છે. અને વિચારે છે કે-મેં પહેલા આવું ભોજન કોઈ વખત ખાધુ નથી સુંદર મોદકાદિક ભક્ષ્ય પદાર્થો જ

स्यैवेष्टलात्तस्यालाभे द्वेष उपजायते, अतो यस्मिन् रागस्तस्मिन्नेव द्वेषो भवति-इति स्वभावसिद्धम्। इत्यर्थे गृद्धो लोक इत्येवमर्थमेतेषामर्थं मातापितृ-पुत्रभार्यादिष्वेव रागादिकारणेषु यावज्जीवति तावत्प्रमत्तो 'ममेमे, एषां चाहं'-मित्यनिशं रागादिमान् अज्ञानमोहितचित्तो वसति=तिष्ठति तत्र मूर्च्छां प्राप्नोती-

विचारधारा का प्रधान कारण पदार्थों में अतिशय उसकी गृद्धता ही है। क्योंकि इससे ही उसे जिस २ विषय में राग होता है वही उसे इष्ट प्रतीत होता है। अनिष्ट प्राप्त होने पर या इच्छित पदार्थ न मिलने पर उसकी आत्मा में उससे द्वेष की भावना जागृत होती है। इस प्रकार इन रागादिकों के कारणभूत इन माता पिता स्त्री आदिक पदार्थों में गृद्ध बना हुआ यह जीवलोक जब तक जीता है तब तक प्रमत्त-दशायुक्त ही बना रहता है। 'ये पदार्थ मेरे हैं-मैं इनका हूँ' इस प्रकार की कल्पना से रातदिन रागादिक भावों से लिप्त बनकर अज्ञान से आच्छादित हो उन्हीं पदार्थों में आसक्त होता रहता है। 'ममकार' यह जीवों का एक प्रबल शत्रु है। बकरे की तरह "मैं-मैं" इस प्रकार के शब्द को करता हुआ यह जीव अन्त में कसाई के तुल्य इस भयंकर काल के द्वारा ग्रसित हो जाया करता है। ममकार को प्रबल शत्रु इस लिये बत-लाया गया है कि जिस प्रकार अपने बलिष्ठ शत्रु के समक्ष जीव विवेक-शून्य बन बावला जैसा हो जाता है, ठीक इसी प्रकार इस ममकार के समक्ष भी जीव अपने हित और अहित के भान से रहित हो उन्मत्त

બાંધેલાં છે. આ બધા પ્રકારની વિચારધારાનું મુખ્ય કારણ પદાર્થોમાં તેની અતિશય ગૃદ્ધતા જ છે. કારણ કે આથી તેને જે જે વિષયમાં રાગ થાય છે તેથી તે ઈષ્ટ પ્રતીત થાય છે. અનિષ્ટ પ્રાપ્ત થવાથી અથવા ઈચ્છિત પદાર્થ ન મળ-વાથી તેના આત્મામાં તેથી દ્વેષની ભાવના જાગ્રત થાય છે આ પ્રકાર આવા રાગાદિકના કારણભૂત માતા-પિતા સ્ત્રી આદિક પદાર્થોમાં ગૃદ્ધ બનીને જ્યા સુધી આ જીવલોક જીવે છે ત્યાં સુધી પ્રમત્તદશાયુક્ત રહે છે. 'આ પદાર્થ મારા છે, હું તેનો છુ' આવા પ્રકારની કલ્પનાથી રાત દિવસ રાગાદિક ભાવોથી લિપ્ત બનીને અજ્ઞાનથી આચ્છાદિત જ્ઞાનવાળા હોઈ તેવા પદાર્થોમા આસક્ત હોય છે મમકાર એ જીવોનો એક પ્રબળ શત્રુ છે. બકરાની માફક "મૈ-મૈં" આ પ્રકારના શબ્દ બોલતા બોલતા આ જીવ અતમા કસાઈ તુલ્ય ભયંકર કાળદ્વારા ગ્રસિત બને છે મમકારને પ્રબળ શત્રુની ઉપમા તે માટે આપી છે કે જેમ પોતાના બલિષ્ઠ શત્રુ સમક્ષ જીવ વિવેકશૂન્ય બની બાવળો (ગાંડો) બને છે, ઠીક તે પ્રકાર આ મમકારની સમક્ષ પણ જીવ પોતાના હિતાહિતના ભાનથી રહિત થઈ ઉન્મત્ત જેવો બને છે. તે વખતે

स्यर्थः। ममकारो हि प्राणिनो महाञ्छत्रुः, ममशब्दं कुर्वाणो हि करालकालव्याल-कवलितो भवति प्राणिगणः। यथा चोक्तम्।

अशनं मे वसनं मे, जाया मे बन्धुवर्गो मे।
इति मे-मे-कुर्वाणं, कालवृको हन्ति पुरुषाजम्॥
पुत्रा मे भ्राता मे स्वजना मे गृहकलत्रवर्गो मे।
इति कृत-मे-मे-शब्दं, पशुमिव मृत्युर्जनं हरति॥
पुत्रकलत्रपरिग्रहममत्वदोषैर्नरो व्रजति नाशम्।
कृमिक इव कोशकारः, परिग्रहाद्दुःखमाप्नोति॥

जैसा बन जाता है। उसे उस समय इस बात का भी ध्यान नहीं होता कि मेरा स्वरूप क्या है और इन परपदार्थों का स्वरूप क्या है? कसाई का बकरा जिस प्रकार "मैं-मैं" करता हुआ कसाई के द्वारा अंत में मौत के घाट उतार दिया जाता है उसी प्रकार "मैं-मैं" करनेवाला यह जीव भी अन्त में एक न एक दिन इस दुष्ट भयंकर काल के द्वारा मारा जाता है। कहा भी है—

"अशनं मे वसनं मे, जाया मे बन्धुवर्गो मे।
इति 'मे-मे'-कुर्वाणं, कालवृको हन्ति पुरुषाजम्॥ १॥
पुत्रा मे भ्राता मे, स्वजना मे गृह-कलत्र-वर्गो मे
इति कृत-'मे-मे'-शब्दं, पशुमिव मृत्युर्जनं हरति॥ २॥
पुत्र-कलत्र-परिग्रह-ममत्वदोषैर्नरो व्रजति नाशम्,
कृमिक इव कोशकारः, परिग्रहाद्दुःखमाप्नोति॥ ३॥" इति।

इनका अर्थ ऊपर आ चुका है।

તેને એ પણ ધ્યાન નથી હોતું કે મારૂં સ્વરૂપ શું છે અને આ પરપદાર્થોનું સ્વરૂપ શું છે? કસાઇનો બકરો જેમ "મૈં-મૈં" કરતો કસાઇદ્વારા અંતમાં મોતને તાબે થાય છે તે પ્રકારે "મૈ-મૈ" કરવાવાળા આ જીવ પણ અંતમાં એક દિવસ આ દુષ્ટ ભયંકર કાળદ્વારા મરે છે. કહ્યુ પણ છે—

अशनं मे वसनं मे, जाया मे बन्धुवर्गो मे।
इति 'मे-मे'-कुर्वाणं, कालवृको हन्ति पुरुषाजम्॥ १॥
पुत्रा मे भ्राता मे, स्वजना मे गृहकलत्रवर्गो मे।
इति कृत-'मे-मे'-शब्दं, पशुमिव मृत्युर्जनं हरति॥ २॥
पुत्रकलत्रपरिग्रहममत्वदोषैर्नरो व्रजति नाशम्।
कृमिक इव कोशकार, परिग्रहाद् दुःखमाप्नोति॥ ३॥ इति॥

આનો અર્થ ઉપર આવેલ છે,

इति ममकारग्राहगृहीतविग्रहेण पुरुषेण सततं चिन्त्यते । शब्दादिविषयासक्तो नरो मातापित्राद्यर्थं धननिवहोपार्जनपरो दुःखमेवानुभवति । सदैव परितप्यमानो भ्रमतीत्याह—"अहश्च रात्रिश्च परितप्यमानः" । अहो=दिनं रात्रिं, चशब्दात्पक्षमास-

इन्द्रियों के शब्दादिक विषयों में गृद्ध पुरुष इन माता पिता आदि को सुखी करने के लिये धनादि कमाने के अभिप्राय से सदा दुःख का ही अनुभव करता है और रातदिन संक्लिष्टपरिणामी हो उसके संग्रह की चिन्ता में इतस्ततः घूमता है, एवं शारीरिक और कायिक अनेक कष्टों का सामना करता है ।

"अहश्च रात्रिं च" यहाँ पर "च" शब्द से पक्ष–मास–ऋतु–वर्ष आदि का ग्रहण होता है। विचारता रहता है कि कब ऐसा अवसर मिले कि जब मैं बाहर जाऊँ और क्रय विक्रय की वस्तुओं को खरीद बेंच कर उनसे खूब लाभ उठाऊँ। कौनसी ऐसी जगह है जहाँ इस वस्तु की अधिक खपत होनेसे बिक्री तेजी से होती है। कौनसी चीज खरीदने में इस समय अधिक फायदा होगा?, तथा कौनसी वस्तुका संग्रह करने से भविष्य में अधिक लाभ होगा?, इत्यादि बातों की ही उसके हृदय में सदा उथल–पुथल मची रहती है। यहाँ तक कि सोते समय में अथवा सोते हुए उसे इसी बात के स्वप्न आते हैं और कभी २ वह इन्हीं विचारों को लेकर बड़बड़ाने भी लगता है। उसे निद्रा भी ठीक २ नहीं आती। बिचारा

પાંચ ઇન્દ્રિયોના શબ્દાદિક વિષયોમાં ગુ થાયેલો પુરૂષ માતા–પિતા આદિને સુખી કરવાના હેતુથી ધન કમાવામાં જ હમેશા દુ:ખનો અનુભવ કરે છે. અને રાત દિવસ વ્યાકુળ બની તેના સંગ્રહની ચિંતામા અહીં–તહીં ઘૂમ્યા કરે છે, અને શારીરિક માનસિક અને કાયિક અનેક કષ્ટોનો સામનો કરે છે.

"अहश्च रात्रिं च" આ ઠેકાણે "च" શબ્દથી પક્ષ, માસ, ઋતુ, વર્ષ આદિનું ગ્રહણ થાય છે. વિચારતો રહે છે કે ક્યારે એવો વખત મળે જ્યારે હું બહાર જાઉં અને ક્રયવિક્રયની વસ્તુઓને ખરીદી વેચી તેનાથી ખૂબ લાભ ઉઠાવું. એવી કયા જગ્યા છે જ્યાં અમુક વસ્તુઓ સસ્તી મળતી હોય તથા એવી કયા જગ્યા છે જ્યા આ વસ્તુઓ અધિક ખપત હોવાથી તેજીથી વેચાઈ જાય આ વખતે કઈ ચીજ ખરીદવાથી ફાયદો થશે, તથા કઇ વસ્તુનો સંગ્રહ કરવાથી ભવિષ્યમા અધિક લાભ થશે, ઈત્યાદિ વાતોની તેના હૃદયમાં સદા ઉથલપાથલ મચી રહે છે. એટલે સુધી કે સુવા વખતે તથા સુતા સુતાં તેને આ વિષયના સ્વપ્ના આવે છે અને કોઇ વખતે તે આવા વિચારોથી બડબડવા પણ લાગે છે. તેને નિદ્રા પણ ઠીક

तुवर्षादिकं ग्राह्यम्। प्रवृत्तसावद्यानुष्ठानः परि=सर्वतः, तप्यमानः=शारीरिकमानसिकवाचिकदुःखेन क्लिश्यमानः अन्तर्दाहदग्धो भवतीति यावत्।

कदा मे विदेशगमनं? कदा कुत्र भाण्डनयने मे लाभो भविता? कीदृशश्च क्रयविक्रयावसरः? इत्यनिशं तप्यमानः। पुनः कथम्भूतः? कालाकालसमुत्थायी, कालः=कार्यकरणावसरः, अकालस्तद्विपरीतः, सम्-सर्वथा उत्थातुं शीलं यस्येति स समुत्थायी, कालाकालयोः समुत्थायी कालाकालसमुत्थायी। यथैवावसरे करोति तथैवानसरेऽपि करोतीत्यर्थः। यद्वा यथाऽनवसरे न करोति तथैवावसरेऽपि न करोति। मातापितृपुत्रभार्याद्यर्थनिखिलकार्यव्यासक्तान्यमनस्कतया ग्रहग्रहिल इव कालाकालज्ञानकलाविकलो भवति।

रात दिन इन्हीं विचारों में मग्न बनकर संतप्त होता रहता है। काल और अकाल का वह कुछ भी विचार नहीं करता, उसके जैसा ही अवसर वैसा ही अनवसर, उसके लिये अवसर और अनवसर में कोई भेद नहीं। वह तो अपनी इच्छानुसार अनर्गल प्रवृत्ति किया करता है। अथवा जिस प्रकार भूताद्याविष्ट प्राणी भले बुरे की परीक्षा नहीं कर सकता है, वह तो मनमाना ही काम करता है, उसी प्रकार मातापिता आदि सांसारिक पदार्थों में ही आसक्त मन वाला प्राणी अन्य आत्महितकारी कार्यों से उपेक्षितवृत्तिवाला बन काल-अकाल की ज्ञानकलासे सदा विकल ही बना रहता है। अवसर न होने पर जिस प्रकार कार्य नहीं करता उसी प्रकार अवसर में भी कार्य नहीं करता, जभी कार्य करने की इच्छा जागृत हुई चाहे समय हो चाहे असमय हो कार्य करने लग जाता है। जैसे कोई अरिमर्दन नाम का राजा जो शत्रुओं को नष्ट करने में शक्तिशाली था

આવતી નથી બિચારા રાતદિન આવા જ વિચારોમા મગ્ન બની સંતપ્ત થાય છે. કાળ અકાળનો તે જરા પણ વિચાર કરતો નથી. તેને જેવો અવસર તેવો જ અનવસર, તેને માટે અવસર અને અનવસરમા કોઈ ભેદ નથી, તે તો પોતાની ઈચ્છાનુસાર અનર્ગળ પ્રવૃત્તિ કરે છે. અથવા જેમ ભૂતાદ્યાવિષ્ટ-(ભૂતના વળગાડવાળા) ભલા-બૂરાનો વિચાર નથી કરી શકતા તે તો મનમાન્યો કામ કરે છે. તે પ્રકારે માતા-પિતા આદિ સાસારિક પદાર્થોમા જ આસક્ત મનવાળાં પ્રાણી અન્ય આત્મહિતકારી કાર્યોથી ઉપેક્ષિત વૃત્તિવાળા બની કાળ-અકાળની જ્ઞાનકળાથી હમેશા વિકળ જ બને છે. અવસર નહિ હોવાથી જેમ કાર્ય નથી કરતા તેમ અવસરમા પણ કાર્ય નથી કરતા પણ જ્યાં ઇચ્છા થઈ કે સમય-અસમય જોયાં વિના કામ કરવા લાગે છે. જેમ અરિમર્દન નામનો રાજા સમયનો જાણકાર નહિ

इति ममकारग्राहगृहीतविग्रहेण पुरुषेण सततं चिन्त्यते। शब्दादिविषयासक्तो नरो मातापित्राद्यर्थं धननिवहोपार्जनपरो दुःखमेवानुभवति। सदैव परितप्यमानो भ्रमतीत्याह—"अहश्च रात्रिश्च परितप्यमानः"। अहो=दिनं रात्रिं, चशब्दात्पक्षमास-

इन्द्रियों के शब्दादिक विषयों में गृद्ध पुरुष इन माता पिता आदि को सुखी करने के लिये धनादि कमाने के अभिप्राय से सदा दुःख का ही अनुभव करता है और रातदिन संक्लिष्टपरिणामी हो उसके संग्रह की चिन्ता में इतस्ततः घूमता है, एवं शारीरिक और कायिक अनेक कष्टों का सामना करता है।

"अहश्च रात्रिं च" यहाँ पर "च" शब्द से पक्ष-मास-ऋतु-वर्ष आदि का ग्रहण होता है। विचारता रहता है कि कब ऐसा अवसर मिले कि जब मैं बाहर जाऊँ और क्रय विक्रय की वस्तुओं को खरीद बेंच कर उनसे खूब लाभ उठाऊँ। कौनसी ऐसी जगह है जहाँ इस वस्तु की अधिक खपत होनेसे बिक्री तेजी से होती है। कौनसी चीज खरीदने में इस समय अधिक फायदा होगा?, तथा कौनसी वस्तुका संग्रह करने से भविष्य में अधिक लाभ होगा?, इत्यादि बातों की ही उसके हृदय में सदा उथल-पुथल मची रहती है। यहाँ तक कि सोते समय में अथवा सोते हुए उसे इसी बात के स्वप्न आते हैं और कभी २ वह इन्हीं विचारों को लेकर बड़बड़ाने भी लगता है। उसे निद्रा भी ठीक २ नहीं आती। विचारा

પાંચ ઇન્દ્રિયોના શબ્દાદિક વિષયોમા ગુથાયેલો પુરૂષ માતા-પિતા આદિને સુખી કરવાના હેતુથી ધન કમાવામાં જ હમેશા દુ.ખનો અનુભવ કરે છે અને રાત દિવસ વ્યાકુળ બની તેના સગ્રહની ચિંતામા અહીં-તહીં ઘૂમ્યા કરે છે, અને શારીરિક માનસિક અને કાયિક અનેક કષ્ટોનો સામનો કરે છે.

"अहश्च रात्रिं च" આ ઠેકાણે "च" શબ્દથી પક્ષ, માસ, ઋતુ, વર્ષ આદિનું ગ્રહણ થાય છે. વિચારતો રહે છે કે ક્યારે એવો વખત મળે જ્યારે હું બહાર જાઉ અને ક્રયવિક્રયની વસ્તુઓને ખરીદી વેચી તેનાથી ખૂબ લાભ ઉઠાવું એવી કયા જગ્યા છે જ્યા અમુક વસ્તુઓ સસ્તી મળતી હોય તથા એવી કયાં જગ્યા છે જ્યા આ વસ્તુઓ અધિક ખપત હોવાથી તેજીથી વેચાઈ જાય. આ વખતે કઈ ચીજ ખરીદવાથી ફાયદો થશે, તથા કઈ વસ્તુનો સંગ્રહ કરવાથી ભવિષ્યમા અધિક લાભ થશે, ઇત્યાદિ વાતોની તેના હૃદયમા સદા ઉથલપાથલ મચી રહે છે. એટલે સુધી કે સુવા વખતે તથા સુતાં સુતાં તેને આ વિષયના સ્વપ્ના આવે છે અને કોઈ વખતે તે આવા વિચારોથી બડબડવા પણ લાગે છે. તેને નિદ્રા પણ ઠીક

तुवर्षादिकं ग्राह्यम् । प्रवृत्तसावद्यानुष्ठानः परि=सर्वतः, तप्यमानः=शारीरिकमानसिक-वाचिकदुःखेन क्लिश्यमानः अन्तर्दाहदग्धो भवतीति यावत् ।

कदा मे विदेशगमनं ? कदा कुत्र भाण्डनयने मे लाभो भविता ? कीदृशश्च क्रय-विक्रयावसरः ? इत्यनिशं तप्यमानः । पुनः कथम्भूतः ? कालाकालसमुत्थायी, कालः=कार्यकरणावसरः, अकालस्तद्विपरीतः, सम्-सर्वथा उत्थातुं शीलं यस्येति स समुत्थायी, कालाकालयोः समुत्थायी कालाकालसमुत्थायी । यथैवावसरे करोति तथैवानवसरेऽपि करोतीत्यर्थः । यद्वा यथाऽनवसरे न करोति तथैवावसरेऽपि न करोति । मातापितृपुत्रभार्याद्यर्थनिखिलकार्यव्यासक्तान्यमनस्कतया ग्रहग्रहिल इव कालाकालज्ञानकलाविकलो भवति ।

रात दिन इन्हीं विचारों में मग्न बनकर संतप्त होता रहता है । काल और अकाल का वह कुछ भी विचार नहीं करता, उसके जैसा ही अवसर वैसा ही अनवसर, उसके लिये अवसर और अनवसर में कोई भेद नहीं । वह तो अपनी इच्छानुसार अनर्गल प्रवृत्ति किया करता है । अथवा जिस प्रकार भूताद्याविष्ट प्राणी भले बुरे की परीक्षा नहीं कर सकता है, वह तो मनमाना ही काम करता है, उसी प्रकार मातापिता आदि सांसारिक पदार्थों में ही आसक्त मन वाला प्राणी अन्य आत्महितकारी कार्यों से उपेक्षितवृत्तिवाला बन काल-अकाल की ज्ञानकलासे सदा विकल ही बना रहता है । अवसर न होने पर जिस प्रकार कार्य नहीं करता उसी प्रकार अवसर में भी कार्य नहीं करता, जभी कार्य करने की इच्छा जागृत हुई चाहे समय हो चाहे असमय हो कार्य करने लग जाता है । जैसे कोई अरिमर्दन नाम का राजा जो शत्रुओं को नष्ट करने में शक्तिशाली था

આવતી નથી. બિચારા રાતદિન આવા જ વિચારોમાં મગ્ન બની સંતપ્ત થાય છે. કાળ અકાળનો તે જરા પણ વિચાર કરતો નથી. તેને જેવો અવસર તેવો જ અનવસર, તેને માટે અવસર અને અનવસરમાં કોઈ ભેદ નથી, તે તો પોતાની ઈચ્છાનુસાર અનર્ગળ પ્રવૃત્તિ કરે છે. અથવા જેમ ભૂતાદ્યાવિષ્ટ-(ભૂતના વળગાડ-વાળાં) ભલા-બૂરાનો વિચાર નથી કરી શકતા તે તો મનમાન્યો કામ કરે છે. તે પ્રકારે માતા-પિતા આદિ સાંસારિક પદાર્થોમા જ આસક્ત મનવાળા પ્રાણી અન્ય આત્મહિતકારી કાર્યોથી ઉપેક્ષિત વૃત્તિવાળા બની કાળ-અકાળની જ્ઞાનકળાથી હમેશાં વિકળ જ બને છે. અવસર નહિ હોવાથી જેમ કાર્ય નથી કરતા તેમ અવસરમા પણ કાર્ય નથી કરતા પણ જ્યાં ઇચ્છા થઈ કે સમય-અસમય જોયાં વિના કામ કરવા લાગે છે. જેમ અરિમર્દન નામનો રાજા સમયનો જાણકાર નહિ

यथा कश्चिदरिमर्दननामा नराधिपो विपक्षपक्षदलनदक्षोऽप्यवसरानभिज्ञो नगरीं सिंहादिश्वापदाकुलितामवलोक्यापि बहुषु प्राणिगणेषु नाशमुपगतेषु पश्चाच्च रक्षार्थं प्राकारं कारितवान् तथैव कालाकालसमुत्थायी चावसरानवसरानभिज्ञो भवतीति भावः।

यस्तु सम्यक् कालोत्थायी स च कालपरिज्ञानार्थं सततं सावधानो यथावसरं सकलां क्रियां विदधाति। किन्तु यथा जन्मादेरकालो नास्ति तथा धर्मेऽपि नाऽकालः, "धम्मो हि बुहेहिं परिसेवियव्वो" इति वचनात्। यो हि रागवान् स कालाकालसमुत्थायी किमर्थमित्याह–"संयोगार्थी" संयुज्यते, संयोजनं वा संयोगः, सोऽर्थः–प्रयोजनं यस्यास्तीति संयोगार्थी। संयोगः=शब्दादिविषयः, मातापित्रादिभिश्च संयोगस्तदर्थी=तत्प्रयोजनवान्।

परन्तु अनवसरज्ञ होने से उसने अपनी प्रजाकी रक्षा उस समय–जब कि उसे सिंहादि नष्ट–भ्रष्ट कर रहे थे; नहीं की, पश्चात् जब लोग हर तरह से बर्बाद हो चुके तब उस समय जोकि उनकी रक्षा का अवसर नहीं था उसने रक्षा के लिये नगर का कोट बनवा दिया। जिस प्रकार वह राजा कालाकालसमुत्थायी होने से विवेकी नहीं माना जा सकता, उसी प्रकार जो प्राणी कालाकालसमुत्थायी होता है वह भी अवसर और अनवसर का यथार्थ ज्ञाता नहीं होता, जो कार्य के उचित काल में कार्य करने के स्वभाववाला होता है वह निरन्तर अवसर के अनुसार ही सावधान होकर उसी समय में समस्त क्रियाओं को करता है। रागवान प्राणी कालाकालसमुत्थायी क्यों होता है? इसके लिये सूत्रकार कहते हैं–"संयोगार्थी" इत्यादि। वह संयोगार्थी है। संयोग ही जिसका प्रयोजन है वह संयोगार्थी है शब्दादिक विषयों के साथ,

---

હોવાથી જ્યારે સિંહાદિ હિંસક પ્રાણી પ્રજાનો નાશ કરી રહ્યાં હતા ત્યારે પ્રજાની રક્ષા કરી નહિ પણ જ્યારે પ્રજાની બરબાદી થઈ ગઈ ત્યારે જો કે અવસર નહિ હોવા છતા પ્રજાની રક્ષા માટે કોટ બનાવ્યો. તો જે પ્રકારે તે રાજા કાળાકાળ-સમુત્થાયી હોવાથી વિવેકી મનાતો નથી તે પ્રકારે જે પ્રાણી કાળાકાળસમુત્થાયી છે તે પણ સમય અસમયનો જ્ઞાતા નથી, જે કાર્યના ઉચિત કાળમાં કાર્ય કરવાના સ્વભાવવાળા હોય છે તે નિરંતર અવસર અનુસાર જ સાવધાન થઇ તે સમયમા સમસ્ત ક્રિયાઓ કરે છે. રાગવાળો પ્રાણી કાળાકાળસમુત્થાયી કેમ બને છે? તેને માટે સૂત્રકાર કહે છે—"संयोगार्थी" ઇત્યાદિ. તે સંયોગાર્થી છે. સંયોગ જ જેનુ પ્રયોજન છે તે સંયોગાર્થી છે. શબ્દાદિક વિષયોમા તેમ જ માતાપિતાદિકની

यद्वा हस्त्यश्वरथकलत्रमित्रद्विपदचतुष्पदादिरूपः संयोगस्तत्प्रयोजनवान्। यतः संयोगार्थी अतएव कालाकालसमुत्थायी, इति हेतुगर्भं विशेषणम्। संयोगव्यग्रतयैवानवगतकालाकालव्यवस्थ इति यावत्। अतएव अर्थालोभी-अर्थो धनं कुप्यमकुप्यं चेति, तत्र सुवर्णादिभिन्नं रत्नादि कुप्यम्, सुवर्णरजतादिरूपमकुप्यं चेति भेदः। आ=समन्तात् सर्वत इति यावत्, लोभो=लालसा विद्यते यस्य स आलोभी अर्थस्यालोभी अर्थालोभी, अत्रापि कालाकालसमुत्थायीति विशेषणम्। यस्माद्धनाभिलाषी तस्मात्कालाकालसमुत्थायी, अनिर्ज्ञातकालाकालनियमः, यो हि धनं कामयते

अथवा मातापितादिक के साथ जो संबंध है। उसी का नाम संयोग है। अथवा-हस्ति, अश्व, रथ, स्त्री, मित्र, द्विपद, चतुष्पदादि रूप परिग्रह के साथ संबंध भी संयोग है। तत्प्रयोजनवान् प्राणी संयोगार्थी कहलाता है। यह संयोगार्थी है इसीलिये कालाकालसमुत्थायी है। कालाकालसमुत्थायी होने में संयोगार्थित्व यह हेतु है। संयोग में व्यग्रता ही कालाकाल की अव्यवस्था का कारण होती है। "अर्थालोभी"-सब प्रकार से अर्थ का अभिलाषी जो होता है-वह अर्थालोभी है। कुप्य और अकुप्य के भेद से धन दो प्रकार का बतलाया गया है। रत्नादिक कुप्य है। सुवर्ण-रजतरूप द्रव्य अकुप्य है। अर्थ-आ-लोभी-इस प्रकार इस वाक्य में पदच्छेद करने से यह अर्थ निष्पन्न होता है कि जो आ-सर्व प्रकार से अर्थलोभी है। यहाँ पर भी 'कालाकालसमुत्थायी' इस विशेषण की योजना कर लेनी चाहिये। इससे यह फलितार्थ होता है कि यह धनाभिलाषी है इसीलिये कालाकालसमुत्थायी है, काल और

સાથે જે સબંધ છે તેનું નામ સંયોગ છે, અથવા હસ્તિ, અશ્વ, રથ, સ્ત્રી, મિત્ર, દ્વિપદ, ચતુષ્પદાદિ રૂપ પરિગ્રહની સાથે સંબંધ પણ સંયોગ છે એવા પ્રયોજનવાળો પ્રાણી સંયોગાર્થી કહેવાય છે. તે સંયોગાર્થી છે માટે કાળાકાળસમુત્થાયી છે. કાળાકાળસમુત્થાયી હોવામા સંયોગાર્થીત્વ હેતુ છે, સયોગમાં વ્યગ્રતા જ કાળાકાળની અવ્યવસ્થાનું કારણ થાય છે "**अर्थालोभी**" બધા પ્રકારે અર્થનો અભિલાષી થાય છે. તે અર્થ-લોભી છે. કુપ્ય અને અકુપ્યના ભેદથી ધન બે પ્રકારનું બતાવ્યું છે. રત્નાદિક કુપ્ય છે, સુવર્ણ-રજતરૂપ દ્રવ્ય અકુપ્ય છે. 'અર્થ-આ-લોભી' આ પ્રકારે આ વાકયમાં પદચ્છેદ કરવાથી એવો અર્થ નિષ્પન્ન થાય છે કે જે આ સર્વ પ્રકારથી અર્થ-કુપ્ય અને અકુપ્યરૂપ દ્રવ્યનો લોભી-અભિલાષી-છે તે અર્થલોભી છે આ ઠેકાણે પણ 'કાળાકાળસમુત્થાયી' આ વિશેષણની યોજના કરવી જોઈએ તેથી એ ફલિતાર્થ થાય-છે કે ધનાભિલાષી છે માટે કાળકાળસમુત્થાયી છે. કાળ અને અકાળના

सोऽवसरादिकं न किमपि जानाति। अनवसरमपि शोभमानावसरमेव मन्यमानो यस्मात्कस्माद् येन केन प्रकारेणार्थं वाञ्छति। अर्थलुब्धो हि सततमर्थोपार्जन-व्यासक्तमानसः प्रावृषि मुशलधाराझर्झरिते काले दुरधिगतजलस्थलसुपथविपथायां पदमपि गन्तुमक्षमायां क्षमायां वाणिज्यार्थं नावाऽपारपारावारमपि तितीर्षुर्द्वीपाद्-द्वीपान्तरे गमनागमनादिकं करोति, सर्वत्र धनलोभ एव कारणम्। धनार्थी प्राणमपि

अकाल के नियम का ज्ञाता नहीं है। जो धनका अभिलाषी होता है वह समय की प्रतीक्षा नहीं किया करता है। धनार्जन करने का अवसर नहीं होने पर भी यह " धन कमाने का सुन्दर अवसर ही है " ऐसा मान कर जिस किसी भी रीति से धन की अभिलाषा किया करता है। जो द्रव्य का लुब्धक होता है वह निरन्तर द्रव्य के उपार्जन करने में आसक्त-चित्त बन कर वर्षाकाल में मूसलधार पानी वरसने पर भी रात्रि के समय ही उस भूमि में कि जिसमें जल स्थल सममार्ग और विषममार्ग की कुछ भी खबर नहीं पड़ती और जहाँ एक कदम भी चलना बड़ा मुश्किल होता है ऐसी भूमि में भी व्यापार के लिये गाड़ी आदि किसी साधन द्वारा एक नगर से दूसरे नगर में, और नौका से अपार समुद्र को भी पार कर एक द्वीप से दूसरे द्वीप में आता जाता रहता है। प्राणों को भी संकट में डाल धनाभिलाषी धन कमाने के लिये दुर्गम प्रदेशों में जाकर धन का उपार्जन करता है, उसमें सिर्फ धन का लोभ ही कारण है। द्रव्यलोलुपी अपने प्राणों की वाजी लगाकर भी इधर उधर द्रव्य

નિયમનો જ્ઞાતા નથી, જે ધનનો અભિલાષી છે તે સમયની પ્રતીક્ષા કરતો નથી, ધન ઉપાર્જન કરવાનો અવસર નહિ હોવા છતાં " ધન કમાવાનો સુંદર અવસર છે' એમ માની કોઈ પણ પ્રકારે ધનની અભિલાષા કર્યા કરે છે જે દ્રવ્યનો લુબ્ધક હોય છે તે નિરંતર દ્રવ્ય ઉપાર્જન કરવામાં આસક્ત બની વર્ષાકાળમાં મૂસળધાર પાણી વરસતો હોય છતાં રાત્રિ સમય તે ભૂમિમાં કે જ્યા જળ સ્થળ સમમાર્ગ અને વિષમમાર્ગની કાંઇ પણ ખબર પડતી નથી અને જ્યાં એક ડગલું પણ ભરવું મુશ્કેલ થઇ પડે છે તેવી ભૂમિમાં પણ વ્યાપાર કરવા ગાડા આદિ કોઈ સાધનદ્વારા એક ગામથી બીજા ગામમાં અને નૌકાથી અપાર સમુદ્રનો પણ પાર કરી એક દ્વીપથી બીજા દ્વીપમાં આવે જાય છે, પ્રાણને પણ જોખમમાં મૂકીને ધનાભિલાષી ધન કમાવા દુર્ગમ પ્રદેશોમાં જઇ ધનનું ઉપાર્જન કરે છે તેમાં ફક્ત ધનનો લોભ જ કારણ છે. દ્રવ્યલોલુપી પોતાના પ્રાણના ભોગે પણ અહીં–તહીં

तृणवन्मन्यमानो मुहुर्भ्रमति। उपार्जितार्थरक्षणाय रात्रावपि चौरादिभयान्न निद्रामनुभवति। मम्मणश्रेष्ठिवद् दुःखी भवति। तथा चोक्तम्–

'उत्खनति खनति निदधाति, रात्रौ न स्वपिति दिवापि च सशङ्कः।
लिम्पति स्थगयति सततं, लाञ्छितप्रतिलाञ्छितं करोति॥ १॥

को कमाने के ही ख्याल से घूमता है तथा उपार्जित द्रव्य के रक्षण के लिये रात्रिमें भी चौरादिक के भय से यथेच्छ निद्रा नहीं लेता। मम्मण सेठ की तरह दुःख का ही अनुभव करता है। कहा भी हैः—

"उत्खनति खनति निदधाति, रात्रौ न स्वपिति दिवापि च सशङ्कः।
लिम्पति स्थगयति सततं, लाञ्छितप्रतिलाञ्छितं करोति॥१॥
भुङ्क्ष्व न तावन्निर्व्यापारो जिमितुं नापि चाद्य भङ्क्ष्यामि।
नापि च वत्स्यामि गृहे, कर्तव्यमिदं बह्वद्य॥ २॥
जनयन्त्यर्जने दुःखं, तापयन्ति विपत्तिषु।
मोहयन्ति च संपत्तौ, कथमर्थाः सुखावहाः"॥ ३॥

अर्थः—धनलोभी पुरुष जमीन में गडे हुए अपने धनको कभी बाहर निकालता है कभी फिर जमीन में गाड़ता है कभी पेटी आदि में रखता है। वह चोर आदि के भय से रातको सोता नहीं और दिन में भी शंका करता रहता है कि 'मेरे धन को कोई चुरा न ले जाय।' वह धन को डाट कर ऊपर से लीपता है, तथा उस लीपे हुए पर उस धन को

દ્રવ્ય કમાવાના ખ્યાલથી રખડતો ફરે છે, તથા કમાયેલા દ્રવ્યનુ રક્ષણ કરવા રાત્રિના સમયમાં ચૌરાદિકના ભયથી સુખથી નિદ્રા પણ લેતો નથી. મમ્મણ શેઠ માફક દુઃખનો જ અનુભવ કરે છે કહ્યું છે કેઃ—

"उत्खनति खनति निदधाति, रात्रौ न स्वपिति दिवापि च सशङ्कः।
लिम्पति स्थगयति सततं, लाञ्छित-प्रतिलाञ्छितं करोति॥ १॥
भुङ्क्ष्व न तावन्निर्व्यापारो जिमितुं नापि चाद्य भङ्क्ष्यामि।
नापि च वत्स्यामि गृहे, कर्तव्यमिदं बह्वद्य॥ २॥
जनयन्त्यर्जने दुःखं, तापयन्ति विपत्तिषु।
मोहयन्ति च सम्पत्तौ, कथमर्थाः सुखावहाः"॥ ३॥

અર્થઃ-ધનલોભી પુરૂષ જમીનમાં દાટેલું પોતાનું ધન કોઇ વખત બહાર કાઢે છે, કોઈ વખત જમીનમાં દાટે છે, ક્યારેક પેટી આદિમાં રાખે છે, વળી રાત્રે ચોર આદિના ભયથી સુતો નથી અને દિવસે પણ શંકા કરે છે કે–"મારૂં ધન કોઇ ચોરી ન જાય" વળી ધનને દાટીને ઉપરથી લીંપે છે. તથા તે લીંપેલી

भुङ्क्ष्व न तावन्निर्व्यापारो, जिमितुं नापि चाद्य मङ्क्ष्यामि ।
नापि च वत्स्यामि गृहे, कर्तव्यमिदं बह्वद्य ॥ २ ॥ अपि च–
जनयन्त्यर्जने दुःखं, तापयन्ति विपत्तिषु ।
मोहयन्ति च सम्पत्तौ, कथमर्थाः सुखावहाः ? ॥ ३ ॥

पुनरप्यर्थालोभिनोऽनुचितकरणे प्रवृत्तिं दर्शयति–"आलुम्पः" इति, आ= समन्ताल्लुम्पतीत्यालुम्पो लुण्टाको हठाद्धनापहारकः, स च लोभमहाशीविषदष्टो विस्मृतकर्तव्याकर्तव्यो धनमेवार्जनीय-मिति मन्यमानः कटुककटुकतरविपाकजनकं

पहिचानने के लिए पुनः पुनः मुद्रा–निशान करता रहता है ॥ १ ॥ वह न पूरा खाता है न अच्छा खाने के लिये प्रवृत्त होता है तथा बोलता है कि–मैं आज न स्नान करूँगा और न घर पर ही रह सकूँगा, क्योंकि आज मुझे बहुत काम करना है ॥ २ ॥ यह धन उपार्जनकाल में दुःख उत्पन्न करनेवाला है, उसके नष्ट होने पर वह परमदुःख का कारण होता है, बढ़ जाने पर यह मोहकषाय को बढ़ाता है तो फिर कहो कि धन सुखका कारण कैसे हो सकता है ? अर्थात् नहीं हो सकता । अर्थ अनर्थ का ही मूल है किन्तु सुख का नहीं ॥ ३ ॥

अर्थलोभी और भी अयोग्यकार्य में प्रवृत्ति करता है इसे प्रकट करते हैं–आलुम्पः–'आ–समन्तात् लुम्पति–इति आलुम्पः लुण्टाकः हठाद्धनापहारकः' जो जबर्दस्ती से दूसरों का धन लूटे–उसे आलुम्प कहते हैं । लूट यह इसलिये मचाता है कि यह लोभरूपी महासर्प से डसा हुआ रहता है । अतः इसे अपने कर्तव्याकर्तव्य का कुछ भी भान

જગ્યા ઉપર તે ધનની પિછાણ માટે નિશાની પણ કરે છે ॥ ૧ ॥ તે પુરૂં ખાતો પણ નથી તેમજ સારૂં ખાવાને પ્રવૃત્ત થતો નથી. અને બોલે છે કે–હું આજે સ્નાન કરવાનો નથી તેમજ ઘેર પણ રહેવાનો નથી, કારણકે આજે મારે ઘણુ કામ છે (૨) આ ધન, ઉપાર્જનકાળમાં દુ:ખ ઉત્પન્ન કરવાવાળું છે અને તેનો નાશ થવાથી વધારે દુ:ખનું કારણ થાય છે. વધી જતા ઉપર તે મોહકષાયનો વધારો કરે છે તો હવે કહો ! ધન સુખનુ કારણ કેવી રીતે થાય ? અર્થાત્ થઈ શકતું નથી. અર્થ અનર્થનું જ મૂળ છે પણ સુખનું નહિ ॥ ૩ ॥

અર્થલોભી વળી અયોગ્ય કાર્યમા પણ પ્રવૃત્તિ કરે છે તે પ્રકટ કરે છે–આલુમ્પઃ 'आ–समन्तात् लुम्पति–इति आलुम्प'–लुण्टाक हठाद्धनापहारकः' જે જબરાઇથી બીજાનુ ધન લુંટે–તેને આલુમ્પ કહે છે. લુટ તે એવી મચાવે છે કે જાણે લોભરૂપી મહાસર્પથી ડસાયેલો હોય, અને તેવે વખતે કર્તવ્યા-

निर्लाञ्छन–गलकर्तन–गृहदाहादिकं क्रूरकर्म करोति 'धनमेव सारं' मन्यमानो हि सततं तल्लाभाय मोहाविष्टो भ्रमति। स चार्थलाभाय किं करोतीत्याह–" सहसाकारे " इति आर्षत्वात्कर्तरि घञ्। सहसा करोतीति सहसाकारः। स्वहिताहितमविचार्य कर्मकारी। यथा मृगादिः क्षेत्रे जालादिकं विलोक्यापि तमवज्ञाय धान्यादिभक्षण-लोभेन स्ववधमप्यविचार्य जाले बद्धो भवति म्रियते च पश्चात्तेनैव निमित्तेन। तथैव लोभाकुलितचेता धनलाभपरायणः स्वपरप्राणघातकरमपि कर्म करोति। अर्थलाभाय

नहीं रहता, उस समय एक यही उसका लक्ष्य रहता है कि किसी भी तरह से द्रव्य एकत्रित करना चाहिये। इस ख्याल से वह भयंकर से भी भयंकर भविष्यत्कालीन कटुक विपाक की परवाह न करके लोक-निंदित निर्लाञ्छन, दूसरों का गला घोंटना, दूसरों का घर–बार फूंकना आदि क्रूर कर्म कर डालता है। 'संसार में सार वस्तु एक द्रव्य ही है' ऐसा मान कर निरंतर उसके लाभ के लिये मोहाधीन हो घूमता रहता है। और इसके लाभ के लिये वह " सहसाकारः " हिताहित के विवेक से विकल हो अयोग्य कर्म करने के लिये तत्पर हो जाता है। जैसे मृगादि पशु क्षेत्र में विस्तीर्ण जाल को देख कर भी उसकी कुछ भी परवाह न कर धान्यादिक खाने के लोभ से अपने वध (मृत्यु) की भी उपेक्षा कर जाल में फंस जाते हैं और उसी में फंसे २ मर जाते हैं। उसी प्रकार लोभ से आकुलितमति होकर धन के लाभ के लिये तत्पर हुआ जीव भी स्व और पर के प्राणों को घात करने वाले क्रूर कर्मों को किया करता है। द्रव्य के लाभ के लिये प्रयत्नशील बना हुआ यह प्राणी जिस प्रकार

કર્તવ્યનું કાંઈ પણ ભાન નહિ રાખતા ફક્ત એક જ લક્ષ્ય રાખે છે કે કોઈ પણ પ્રકારે દ્રવ્ય એકત્રિત કરી લઉં આવા ખ્યાલથી તે ભયંકરમાં ભયંકર ભવિષ્યત્કાલીન કટુક વિપાકની પરવાહ પણ ન કરતાં લોકનિંદિત–નિર્લાંછન, બીજાનું ગળું દબાવવું, બીજાનું ઘર બાળવુ, આદિ ક્રૂર કર્મ કરે છે 'સંસારમાં સાર વસ્તુ એક દ્રવ્ય જ છે' એવું માનીને નિરંતર તેની પ્રાપ્તિ માટે મોહાધીન થઈ ફરતો રહે છે. દ્રવ્યપ્રાપ્તિ માટે તે "સહસાકાર" હિતાહિતના વિવેકથી વિકળ થઈ અયોગ્ય કર્મ કરવા તત્પર થાય છે. જેમ મૃગાદિ પશુ ક્ષેત્રમાં વિસ્તીર્ણ જાળને દેખીને પણ તેની પરવાહ નહિ કરતા ધાન્યાદિક ખાવાના લોભથી પોતાના મૃત્યુની પણ ઉપેક્ષા કરી જાળમાં ફસે છે અને તેની અંદર ફસીને તેમાં જ મરે છે. તે પ્રકારે લોભથી આકુલિતમતિનો બનીને ધનના લાભ માટે તત્પર થયેલ જીવ પણ પોતાના અને બીજાના પ્રાણોનો ઘાત કરવામાં ક્રૂર કર્મોને કરે છે; દ્રવ્યના લાભ માટે પ્રયત્નશીલ બની તે પ્રાણી જેમ ધન કમાવાના

प्रयतमानो हि यथोपायान् पश्यति तथा नापायान्। अर्थातुरो हि न स्वजनादिकमपि गणयति तमपि वञ्चयति। पुनरर्थालोभी कीदृशो भवतीत्याह–"विनिविष्टचित्तः" इति, वि=विविधं निविष्टम् अनेकधा स्थितं धनार्जने चित्तं यस्य स विनिविष्टचित्तः।

यद्वा—मातापित्राद्यभिसम्बन्धे विनिविष्टं चित्तमन्तःकरणं यस्य स विनिविष्टचित्तः, सततं तस्य चित्ते धनलाभाभिनिवेश उपजायत इति भावः। एवंभूतः किं करोतीत्याह–"अत्र शस्त्रे पुनः पुनः" इति। अत्र=अस्मिन् मातापितृभ्रातृ-भगिनी–भार्या–पुत्र–दुहितृ–स्नुषा-मित्र–पितृव्य–श्वशुर–हस्त्य–श्वादिके, शब्दादिकामगुणे वा विनिविष्टचित्तः शस्त्रे=षड्जीवनिकायोपमर्दनलक्षणे पुनः पुनः प्रवर्तते। रागाद्याविष्टचेता संयोगार्थी अर्थालोभी आलुम्पः सहसाकारस्तत्र विनिविष्टचित्तः षड्जीवनिकायस्यारम्भे वारं वारं प्रवर्तत इति सूत्राशयः॥ १॥

धन कमाने के उपायों की ओर देखता है उस प्रकार से कष्टों की तरफ नहीं देखता, अर्थात् प्राणी अपने निज जन की भी इज्जत नहीं करता, प्रत्युत उन्हें भी ठगने की फिराक में रहता है। क्योंकि वह "विनिविष्टचित्तः" अनेक प्रकार से धन के उपार्जन करने में आसक्तचित्तवाला होता है। इस प्रकार वह "अत्र शस्त्रे पुनः पुनः" माता, पिता, भाई, बहिन, स्त्री, पुत्र, पुत्री, वहू, मित्र, काका, ससुर और हस्ति आदि पदार्थों में अथवा शब्दादिकविषयों में विनिविष्टचित्त–तल्लीन बनकर षड्जीवनिकाय के उपमर्दनरूप शस्त्रमें वारंवार प्रवृत्ति करता रहता है। इस सूत्र का फलितार्थ यह हुआ कि रागादिकों में तल्लीनचित्तवाला संयोगार्थी, अर्थालोभी, आलुम्प सहसाकारी प्राणी, उन २ पदार्थों में तत्पर होकर षड्जीवनिकाय के आरंभ में वारंवार प्रवृत्ति करता है॥१॥

ઉપાયો તરફ જ દેખે છે તે પ્રમાણે કષ્ટો તરફ દેખતો નથી અર્થાત્ પ્રાણી પોતાના નિજ જનની પણ ઇજ્જત કરતો નથી, ઉલ્ટુ તેને પણ લુટવાની ફિકર કરે છે, કારણકે તે " विनिविष्टचित्त· " અનેક પ્રકારથી ધન ઉપાર્જન કરવામાં આસક્તચિત્તવાળો થાય છે. આ પ્રકારે તે " अत्र शस्त्रे पुन पुन " માતા, પિતા, ભાઈ, બહિન, સ્ત્રી, પુત્ર, પુત્રી, વહુ, મિત્ર, કાકા, સસરા અને હસ્તિ આદિ પદાર્થોમા અથવા શબ્દાદિકવિષયોમાં વિનિવિષ્ટચિત્ત–તલ્લીન બનીને ષડ્જીવનિકાયના ઉપમર્દનરૂપ શસ્ત્રમાં વારંવાર પ્રવૃત્તિ કરે છે. આ સૂત્રનો ફલિતાર્થ એ થાય છે કે રાગાદિકોમા તલ્લીનચિત્તવાળા સંયોગાર્થી, અર્થાલોભી, આલુમ્પ સહસાકારી પ્રાણી તેવા પદાર્થોમાં તત્પર બનીને ષડ્જીવનિકાયના આરંભમાં વારંવાર પ્રવૃત્તિ કરે છે. ૧

यदि मनुष्यो दीर्घायुरजरामरो वा भवेत्तदा युक्तो माता-पित्रादिष्वभिष्वङ्गस्तस्य, किन्तु नैवमस्ति। मनुष्यशिरसि च मृत्युरनिशं भ्रमति। जराजीर्णस्य कर्तव्याकर्तव्यशून्यस्य प्राणिनो वार्धके मातापित्रादिष्वभिष्वङ्गेऽपि तदर्थप्रयासाक्षमत्वेन मूढता जायत इति दर्शयति-" अप्पं च " इत्यादि।

मूलम्-अप्पं च खलु आउयं इहमेगेसिं माणवाणं, तं जहा सोयपरिण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं, चक्खुपरिण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं, घाणपरिण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं, रसणपरिण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं, फासपरिण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं, अभिक्कंतं च खलु वयं संपेहाय तओ से एगया मूढभावं जणयइ (सू. २)

यदि मनुष्य दीर्घायु होता अथवा अजर अमर होता तो माता-पितादिक में इसका ममत्व करना भी युक्तियुक्त था, किन्तु ऐसा तो है नहीं क्योंकि निरन्तर ही इसके मस्तक पर मृत्यु घूमती रहती है। और जरा से समयानुसार यह जीर्णकाय भी होता रहता है। इस परिस्थिति में मृत्यु और जरा के वश में पड़े हुए इसके हृदय में सदा आकुल-व्याकुल परिणामों की परिणति जागृत होती रहती है तब उसमें ही रातदिन मग्न हुआ यह जब स्वयं अपने कर्तव्याकर्तव्य के बोध से ही विकल रहता है तब यह अपने सगे-सम्बन्धी मातापितादिक का अभिष्वंग-संबंध होने पर भी अपनी तरफ से उनके लिये थोड़ा सा भी प्रयास-उद्यम नहीं कर सकता है, जब प्रयास नहीं कर सकता है तब वह किंकर्तव्यमूढ़ बन जाता है। इसी बातको सूत्रकार प्रकट करते हैं:-'अप्पं च खलु आउयं' इत्यादि।

કદાચ મનુષ્ય દીર્ઘાયુ હોત અથવા અજર અમર હોત તો માતાપિતાદિકમાં તેનું મમત્વ કરવું યુક્તિયુક્ત હતું પણ એવું તો છે નહિ, કારણકે નિરંતર તેના માથા ઉપર મોત ભમે છે, અને ઘડપણથી સમયાનુસાર તે જીર્ણકાય પણ થાય છે. આવી પરિસ્થિતિમાં મૃત્યુ અને જરાની વશમાં પડેલો તેના હૃદયમાં હમેશાં આકુળ-વ્યાકુળ પરિણામોની પરિણતિ જાગ્રત રહે છે તેમા જ રાતદિવસ મગ્ન થએલો તે પોતે પોતાના કર્તવ્યા-કર્તવ્યના બોધથી જ વિકળ રહે છે ત્યારે તે પોતાના સગાં સબંધી માતા પિતાદિકના અભિષ્વંગ-સંબંધ હોવા છતાં પણ પોતાની તરફથી તેમને માટે થોડો પણ પ્રયાસ કરી શકતો નથી:-જ્યારે પ્રયાસ કરી શકતો નથી ત્યારે તે કિંકર્તવ્યમૂઢ બની જાય છે. પૂર્વોકત વાતને જ સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે-'अप्पं च खलु आउयं' इत्यादि

छाया—अल्पं च खलु आयुष्कमिहैकेषां मानवानाम् । तद्यथा-श्रोत्रपरिज्ञानैः परिहीयमानैः, चक्षुःपरिज्ञानैः परिहीयमानैः, घ्राणपरिज्ञानैः परिहीयमानैः, रसनपरिज्ञानैः परिहीयमानैः, स्पर्शपरिज्ञानैः परिहीयमानैः, अभिक्रान्तं च खलु वयः सम्प्रेक्ष्य ततः स एकदा मूढभावं जनयति ॥ २ ॥

टीका—अल्पं=स्तोकं, 'च' शब्देन दीर्घायुष्कपरिग्रहः । खलु शब्दोऽवधारणे, 'आयुः' पूर्वकृतकर्मभोगार्थमेति=समागच्छतीत्यायुः । यद्वेति=समागच्छति स्वकृतकर्मप्राप्तनरकादिगतिस्थितजन्तोः प्रतिबन्धकतामित्यायुः, भवस्थितिहेतुः कर्मपुद्गलपुञ्जमित्यर्थः । आयुर्हि सुखदुःखाधारं देहस्थितं जीवं तत्तद्गतौ धरति । उक्तञ्च—

" दुक्खं न देइ आऊ, न वि य सुहं देइ चउसुवि गईसु ।
दुक्खसुहाणाधारं, धरइ देहट्ठियं जीवं ॥ १ ॥ "

छाया—दुःखं न ददात्यायुर्नापि च सुखं ददाति चतसृष्वपि गतिषु ।
दुःखसुखानामाधारं, धरति देहस्थितं जीवम् ॥ इति ।

इस संसार में कितनेक मनुष्यों की आयु अल्प है, पूर्ण आयु को भोगते हुए भी जब यह प्राणी वृद्धावस्थासंपन्न होता है तब इसकी श्रोत्र-इन्द्रिय अपने विषय के ग्रहण करने में असमर्थ हो जाती है, चक्षु-इन्द्रिय रूप के देखने में क्षीण शक्तिवाली हो जाती है, घ्राण-इन्द्रिय सुगंध-दुर्गन्ध के बोध करने से विमुख हो जाती है, रसना-इन्द्रिय ५ प्रकार के रसास्वादनरूप अपने कार्य से शिथिल बन जाती है और स्पर्शन-इन्द्रिय भी ८ प्रकार के स्पर्शों को बतलाने में अक्षम हो जाती है । इस प्रकार प्रत्येक इन्द्रियाँ जब इस अवस्था में अपने २ कर्तव्य से विमुख हो जाती हैं, तब यह प्राणी उस अवस्था में कर्तव्याकर्तव्य के ज्ञान से शून्य हो जाता है ।

આ સંસારમાં કેટલાક મનુષ્યોની આયુ ઓછી છે પૂર્ણ આયુને ભોગવતો છતાં પણ જ્યારે તે પ્રાણી વૃદ્ધાવસ્થાસંપન્ન થાય છે ત્યારે તેની શ્રોત્ર ઇન્દ્રિય પોતાનો વિષય ગ્રહણ કરવામાં અસમર્થ બને છે. ચક્ષુઇન્દ્રિય, રૂપ દેખવામા ક્ષીણશક્તિવાળી થાય છે. ઘ્રાણઇન્દ્રિય સુગંધ દુર્ગન્ધનો બોધ કરવામા વિમુખ થઈ જાય છે. રસના-ઇન્દ્રિય પાંચ પ્રકારના રસાસ્વાદન રૂપ પોતાના કાર્યથી શિથિલ બની જાય છે અને સ્પર્શન-ઇન્દ્રિય પણ આઠ પ્રકારના સ્પર્શ બતાવવામાં અક્ષમ થાય છે આ પ્રકારે પ્રત્યેક ઇન્દ્રિય જ્યારે આ અવસ્થામા પોત-પેતાના કાર્યથી વિમુખ થાય છે ત્યારે આ પ્રાણી આ અવસ્થામા કર્તવ્યાકર્તવ્યના જ્ઞાનથી શૂન્ય થાય છે.

टीकार्थः–सूत्र में "अप्पं च" यहाँ पर जो "च" शब्द है उससे दीर्घ आयु का भी ग्रहण होता है। "खलु" शब्द अवधारण–निश्चय अर्थ में आया है। पूर्वकृत कर्म के भोगने के लिये जो जीवों को प्राप्त होता है वह आयु है अथवा जिसके द्वारा जीव एक गति से दूसरी गति को प्राप्त करता है वह आयु है अथवा अपने द्वारा किये गये कर्म के अनुसार प्राप्त नरकादि गति में रहनेवाले जीव को जो अपनी स्थिति तक और दूसरी गति में न जाने देवे वह आयु है। अथवा–अञ्जलि में रहे हुए जल की तरह जो प्रतिक्षण ह्रास को प्राप्त हो वह आयु है। इन तमाम व्युत्पत्तियों द्वारा यही निष्कर्ष निकलता है कि जो कर्म-पुद्गलपुञ्ज इस जीव को प्राप्त हुए भव में रोक रखे वह आयु है। क्यों कि सुख दुःख का आधारभूत और देह में रहने वाले जीव को आयु ही उस २ गति में अपने उदयपर्यन्त रोके रहता है। आयु कर्मजीव को चारों ही गतियों में न तो दुःख देता है और न वैषयिक सुख ही देता है। किन्तु जो जीव जिस गति के आयु को बांध कर उस पर्याय का भोग करता है सुख दुःख के आधारभूत उस जीवको वह उस गति में उस विवक्षित पर्याय में रोके रखता है।

ટીકાર્થ.—સૂત્રમાં "अप्पं च" આ ઠેકાણે જે "च" શબ્દ છે તેનાથી દીર્ઘ આયુનું ગ્રહણ થાય છે "खलु" શબ્દ અવધારણ–નિશ્ચય–અર્થમાં આવ્યો છે. પૂર્વકૃત કર્મ ભોગવવાને જે જીવને પ્રાપ્ત થાય છે તે આયુ છે, અથવા જે દ્વારા જીવ એક ગતિથી બીજી ગતિમાં જાય છે તે આયુ છે, અથવા પોતાના દ્વારા કરેલા કર્માનુસાર પ્રાપ્ત નરકાદિ ગતિમાં રહેવાવાળા જીવને જે પોતાની સ્થિતિ સુધી બીજી ગતિમાં ન જવાદે તે આયુ છે, અથવા અંજલિમા રહેલાં પાણીની માફક જે પ્રતિક્ષણ ઘટતું જાય છે તે આયુ છે આવી તમામ વ્યુત્પત્તિયો દ્વારા એ નિષ્કર્ષ નિકળે છે કે જે કર્મપુદગલપુંજ આ જીવને પ્રાપ્ત થએલા ભવમા રોકી રાખે તે આયુ છે, કારણકે સુખ–દુઃખના આધારભૂત અને દેહમાં રહેનાર જીવને આયુ જ તે તે ગતિમા પોતાના ઉદયપર્યન્ત રોકી રાખે છે, આયુકર્મ જીવને ચારે ગતિમાં દુઃખ અને વૈષયિક સુખ નથી આપતું પણ જે જીવ જે ગતિની આયુને બાંધીને તે પર્યાયનો ભોગ કરે છે. સુખ દુઃખના આધારભૂત તે જીવને તે ગતિમાં વિવક્ષિત પર્યાયમાં રોકી રાખે છે.

पुरुषस्यायुर्विद्युदिव क्षणभङ्गुरं, तैलरहितो दीपो यथा स्वल्पेनैव कालेन नाशमेति तथाऽऽयुरपि तत्तद्भवसम्बन्धिभोग्यकर्माभावे स्वल्पेनैव कालेन समाप्तिमुपगच्छति। आयुर्हि जलतरङ्गमिव, जलस्थितेन्दुप्रतिबिम्बमिव, विद्युदिव धर्तुमशक्यं भवतीत्यायुषोऽल्पत्वं मानवानामित्यभिप्रायमेव मनसि निधाय दर्शयति-"इह एकेषां मानवानामल्पमायुष्कम्"। अत्रैकेषामिति कथनेन संयमरहितानां सावद्यानुष्ठानेन दीर्घमप्यायुरल्पमिव भवति, तथैव संयमिनां च स्वल्पमप्यायुर्निरवद्यानुष्ठानेन दीर्घा-

---

जिस प्रकार तैलसे रहित दीपक थोडे ही समय में बुझ जाता है उसी प्रकार आयुकर्म भी तत्तद्भवसम्बन्धी कर्म पुद्गलों के अभावसे थोडेसे ही कालमें समाप्त हो जाता है। जिस प्रकार जलकी तरङ्ग और पानीमें प्रतिबिम्बित चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब, अथवा बिजली लाख प्रयत्न करने पर भी नहीं स्थिर किये या ठहरायी जा सकती हैं उसी प्रकार तत्तद्भवसम्बन्धी आयुकी समाप्ति होने पर उसे एक क्षण भी फिर नहीं बढाया या ठहराया जा सकता। इसी अभिप्राय को चित्तमें धारण कर सूत्रकारने-"इह एकेषां मानवानाम् अल्पम् आयुष्कम्" यह कहा है। अब इसी बातको स्पष्ट करते हैं—

यहां पर कितनेक मनुष्यों का जो आयु अल्प कहा गया है उससे यह समझना चाहिये कि जो मनुष्य रात-दिन सावद्यकार्यों के अनुष्ठानमें ही लवलीन हो रहे हैं-संयमभावसे रहित हैं उन मनुष्यों का दीर्घकालिक आयुकर्म भी उस अनुष्ठानसे अल्प जैसा हो जाता है, तथा संयमी जीवों का अल्प भी आयुकर्म निरवद्य अनुष्ठानसे दीर्घ जैसा हो

જેવી રીતે તેલ વગરનો દીવો થોડાજ સમયમાં બુઝાઈ જાય છે તે પ્રકારે આયુકર્મ પણ તત્તદ્ભવસંબંધી કર્મપુદ્ગલોના અભાવથી થોડા જ કાળમાં સમાપ્ત થાય છે. જેમ પાણીનુ મોજું, અને ચન્દ્રમાનો પાણીમાં પડતો પ્રતિબિમ્બ, અથવા વિજળી લાખ પ્રયત્ન કરવા છતાં પણ સ્થિર કરાતી નથી તેવી રીતે તત્તદ્ભવસંબધી આયુની સમાપ્તિ થવાથી તે એક પણ ક્ષણ રોકી અગર વધારી શકાતું નથી. આ અભિપ્રાય ચિત્તમાં ધારણ કરી સૂત્રકારે "इह एकेषां मानवानाम् अल्पम् आयुष्कम्" એમ કહ્યુ છે હવે આ વાતને સ્પષ્ટ કરે છેઃ—

આ જગ્યાએ કેટલાક મનુષ્યોની જે આયુ અલ્પ કહેવામાં આવી છે તેથી એમ સમજવાનું છે કે જે મનુષ્ય રાતદિન સાવદ્ય કાર્યોના અનુષ્ઠાનમાં જ રચેલો રહે છે, સંયમભાવથી રહિત છે તેવા મનુષ્યોના દીર્ઘકાલિક આયુકર્મ પણ આવા અનુષ્ઠાનથી ટુંકા જેવા થઈ જાય છે, તથા સંયમી જીવોના ટુંકા પણ આયુકર્મ

युरिव वर्तते, दीर्घकालिकजन्ममरणोच्छेदेनायुषः साफल्यात्। इह=संसारे एकेषां =कतिपयानां मानवानामायुरल्पं भवतीत्यन्वयः। आयुषोऽल्पत्वञ्च क्षुल्लकभवापेक्ष-याऽन्तर्मुहूर्तमात्रं जघन्यम्। च शब्दादधिकं चोत्तरोत्तरसमयादिवृद्ध्या युगलिकमा-श्रित्य पल्योपमत्रयपरिमितं भवति। पल्योपमत्रयायुरपि संयमकालाभावादधिकम-प्यल्पमेव।

अन्तर्मुहूर्तादारभ्य देशोनपूर्वकोटिपरिमितायुषि संयमायुष्कस्यालपत्वात्तद-प्यल्पमेव भवति।

जाता है। दीर्घकालिक जन्म-मरण के विनाश से ही तो आयु की सफलता है।

"अल्पं च खलु आयुष्कम् इह एकेषां मानवानाम्॥ यहां पर "इह एकेषां मानवानाम् आयुः अल्पं भवति" इस प्रकार अन्वय लगाना चाहिए। आयुकी अल्पता क्षुल्लक-सबसे छोटे-भवकी अपेक्षासे प्रकट की गई है, क्योंकि मनुष्य और तिर्यञ्चों के आयुकर्मकी स्थिति शास्त्रमें दो प्रकारसे वर्णित है-(१) जघन्य और (२) उत्कृष्ट। जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्तकी है, और उत्कृष्ट उत्तरोत्तर एकसमयादि की वृद्धिसे लगा कर तीन पल्य की है। यह युगलियों की अपेक्षासे है। भोगभूमि में जीवको संयम की प्राप्ति होनेका अवसर ही नहीं है, इस लिये तीन पल्य परिमित दीर्घ आयु भी अल्प जैसा ही है, अर्थात् उससे जीवका निज कोई भी परमार्थ नहीं सधता, केवल भोगादिकों के उपभोगसे ही वह निष्फल हो जाता है। संयमाराधन से ही काल के

નિરવદ્ય અનુષ્ઠાનથી દીર્ઘ જેવા થાય છે દીર્ઘકાલિક જન્મ-મરણના વિનાશથી જ આયુની સફળતા છે

"अल्पं च खलु आयुष्कम् इह एकेषां मानवानाम्"

અહી "इह एकेषां मानवानाम् आयुः अल्पं भवति"

આ પ્રકારે અન્વય લગાડવો જોઈએ આયુની અલ્પતા ક્ષુલ્લક-બધાથી નાના-ભવની અપેક્ષાથી પ્રકટ કરેલ છે કારણકે મનુષ્ય અને તિર્યંચોના આયુ-કર્મની સ્થિતિ શાસ્ત્રમા બે પ્રકારે વર્ણિત છે (૧) જઘન્ય અને (૨) ઉત્કૃષ્ટ. જઘન્ય સ્થિતિ અન્તર્મુહુર્તની છે અને ઉત્કૃષ્ટ ઉત્તરોતર એક સમયાદિની વૃદ્ધિથી લગાવી ત્રણ પલ્યની છે, આ યુગલિયાની અપેક્ષાથી છે. ભોગભૂમિમા જીવને સંયમની પ્રાપ્તિ થવાનો અવસર નથી, માટે ત્રણ પલ્યની પરિમિત દીર્ઘ આયુ પણ અલ્પ જેવી છે. અર્થાત્ તેથી જીવનો નિજ કોઈ પણ પરમાર્થ સધાતો નથી, કેવળ ભોગાદિકોના ઉપભોગથી જ તે નિષ્ફળ થાય છે. સંયમારાધનથી જ

यद्वा त्रिपल्योपमपरिमितमप्यायुरल्पमेव, यतोऽन्तर्मुहूर्तं विहाय शेषसर्वस्याप्यायुषोऽपवर्तनशीलत्वात्, प्रतिक्षणमायुषः क्षीयमाणत्वाच्च । अपवर्तनं नाम दीर्घस्थितिकालिककर्मपरमाणूनपगमय्य तेषां ह्रस्वस्थितिकालिकतासम्पादनम् । आयुश्च सोपक्रम-निरुपक्रमभेदेन द्विविधम्, उक्तञ्च भगवता भगवत्याम्—

"जीवा णं भंते ! किं सोवक्कमाउया निरुवक्कमाउया ? गोयमा ! जीवा सोवक्कमाउयावि णिरुवक्कमाउयावि" इति (भगवती. श. २० उ. १०)

छाया—जीवाः खलु भदन्त ! किं सोपक्रमायुष्का निरुपक्रमायुष्काः ? गौतम ! जीवाः सोपक्रमायुष्का अपि निरुपक्रमायुष्का अपि ॥ इति ॥

एक क्षण तक की सफलता मानी गई है। उसी प्रकार अन्तर्मुहूर्त्तसे लगा कर देशोनपूर्वकोटि-देश ऊन एक करोड पूर्व-परिमित आयु प्राप्त होने पर भी उसमें संयम कालका अभाव होने से वह भी अल्प ही है।

अथवा—अन्तर्मुहूर्त्तकाल परिमित आयुको छोड कर शेष समस्त आयु अपवर्त्तनशील-होने से और क्षण २ में आयुका क्षय होने से त्रिपल्योपम परिमित-तीन पल्योपम का-आयु भी अल्प ही है।

दीर्घकालिक आयुकर्म के परमाणुओं को खींच कर थोडी स्थितिवाले आयुकर्म के परमाणुओं में स्थापित करने का नाम अपवर्त्तन है।

सोपक्रम और निरुपक्रम के भेद से आयु दो प्रकार का है। भगवती सूत्रमें भगवानने यही बात कही है—

"जीवा णं भंते ! किं सोवक्कमाउया निरुवक्कमाउया?, गोयमा ! जीवा सोवक्कमाउया वि णिरुवक्कमाउया वि" इति। (भ. श. २० उ. १०)

કાળની એક ક્ષણ સુધીની સફળતા મનાય છે, તે પ્રકાર અન્તર્મુહૂર્ત્તથી લગાવી દેશોનપૂર્વ કોટિ-દેશ ઉન એક કરોડ પૂર્વ-પરિમિત આયુ પ્રાપ્ત થવાથી પણ તેમાં સંયમકાળનો અભાવ હોવાથી તે પણ અલ્પજ છે, અથવા અન્તર્મૂહુર્ત્તકાળપરિમિત આયુને છોડીને શેષ સમસ્ત આયુ અપવર્તનશીલ હોવાથી અને ક્ષણક્ષણમાં આયુનો ક્ષય હોવાથી त्रिपल्योपमपरिमित ત્રણ પલ્યોપમ આયુ પણ અલ્પજ છે.

દીર્ઘકાલિક આયુકર્મના પરમાણુઓને ખેંચીને થોડી સ્થિતિવાળા આયુકર્મના પરમાણુઓમા સ્થાપિત કરવાનું નામ अपवर्त्तन છે

સોપક્રમ અને નિરૂપક્રમના ભેદથી આયુ બે પ્રકારની છે ભગવતી સૂત્રમાં ભગવાને આ વાત કહી છે.—

"जीवा णं भंते ! किं सोवक्कमाउया निरुवक्कमाउया ?,
गोयमा ! जीवा सोवक्कमाउया वि णिरुवक्कमाउया वि"
इति (भ. श २० उ. १०).

सोपक्रमायुर्नाम अप्राप्तकालस्यायुषो निर्जरणम् । तद्भिन्नं निरुपक्रमायुः । यदा जीवः स्वायुषस्तृतीयभागे तृतीयभागतृतीयभागे वा जघन्यत एकेन द्वाभ्यां वोत्कृष्टतः सप्तभिरष्टभिर्वाऽऽकर्षैरथवाऽन्तर्मुहूर्त्तप्रमाणस्वरूपेऽन्तकाले स्वात्मप्रदेशनाडिकान्तर्वर्तिन आयुष्कर्मवर्गणापुद्गलान्प्रयत्नविशेषेणायुष्कतया रचयति तदा निरुपक्रमायुर्भवति, तद्भिन्नं सोपक्रमायुः । आकर्षश्च तथाविधेन प्रयत्नेन कर्मपुद्गलोपादानम् ।

ननु कथमेकेन द्वाभ्यां त्रिभिः सप्तभिरष्टभिर्वाऽऽकर्षैरायुर्बध्नातीति चेदाह—

हे भदन्त ! जीव सोपक्रम-आयुवाले होते हैं या निरुपक्रम-आयुवाले ? हे गौतम ! जीव दोनों प्रकार के आयुवाले होते हैं सोपक्रमआयुवाले भी होते हैं और निरुपक्रमआयुवाले भी ।

जीवको जितना अपने भवके आयुका बंध हुआ है उतने का उदयानुसार भोग हुए विना ही किसी निमित्त के वश पहिले ही क्षय होनेका नाम सोपक्रम आयु है । इससे विपरीत निरुपक्रम आयु है ।

जिस समय जीव अपनी आयु के तृतीय भागमें अथवा तृतीय भाग के भी तृतीय भागमें कमसे कम एक या दो आकर्षों से ज्यादा से ज्यादा सात या आठ आकर्षोंसे अथवा अन्तसमय के अन्तर्मुहूर्त्त–प्रमाण–कालमें अपनी आत्माके प्रदेशों की नाडिका के भीतर रहे हुए आयुकर्मकी वर्गणा के पुद्गलस्कन्धोंको प्रयत्नविशेष से आयुपने परिणमाता है उस समय निरुपक्रम आयु का बन्ध होता है । इससे विपरीत सोपक्रम आयु का बन्ध होता है । उस प्रकार के प्रयत्न से कर्मपुद्गलों का ग्रहण करना आकर्ष है ।

હે ભદન્ત ! જીવ સોપક્રમ આયુવાળા હોય છે કે નિરૂપક્રમ આયુવાળાં ? હે ગૌતમ ! જીવ બન્ને પ્રકારની આયુવાળા થાય છે. સોપક્રમ આયુવાળા પણ થાય છે અને નિરૂપક્રમ આયુવાળાં પણ થાય છે.

જીવને જેટલો પોતાના ભવની આયુનો બંધ થયો છે તેટલાનો ઉદયાનુસાર ભોગ થયા વગર કોઈ નિમિત્તથી પહેલાં જ ક્ષય હોવાનું નામ સોપક્રમ આયુ છે, તેનાથી વિપરીત નિરૂપક્રમ આયુ છે. જે વખતે જીવ પોતાની આયુના તૃતીય ભાગમાં અથવા તૃતીય ભાગના પણ તૃતીય ભાગમા ઓછામાં ઓછાં એક અગર બે આકર્ષોથી વધારેમાં વધારે સાત અગર આઠ આકર્ષોથી અથવા અન્ત સમયના અન્તર્મુહૂર્ત પ્રમાણ કાળમા પોતાના આત્માના પ્રદેશોની નાડિની અંદર રહેલાં આયુકર્મની વર્ગણાના પુદ્ગલસ્કન્ધોને પ્રયત્નવિશેષથી આયુપણે પરિણામે છે, તે સમય નિરૂપક્રમ આયુનો બંધ કરે છે તેનાથી વિપરીત સોપક્રમ આયુ બાંધે છે. આ પ્રકારના પ્રયત્નથી કર્મપુદ્ગલોનું ગ્રહણ કરવું આકર્ષ છે.

यदा जीवस्तीव्रेणायुर्बन्धाध्यवसायेन जातिनामनिधत्तायुर्बध्नाति तदैकेनैवाकर्षेण बध्नाति। मन्देन द्वाभ्यामाकर्षाभ्यां, मन्दतरेण त्रिभिराकर्षैः, मन्दतमेन चाध्यवसायेन चतुर्भिः पञ्चभिः षड्भिः सप्तभिरुत्कृष्टेनाष्टाभिर्वाऽऽकर्षैर्जातिनामनिधत्तायुर्बध्नाति।

एवं गतिस्थित्यवगाहनाप्रदेशानुभावनामनिधत्तायुष्काण्यपि जीवो बध्नाति। निधत्तं हि आयुषा सह जातिगत्यादीनां नियमत एकरूपेण बन्धनमिति। उक्तञ्च—

'जीवा णं भंते! जाइनामनिधत्ताउयं कइहिं आगरिसेहिं पकरंति? गोयमा! जहन्नेणं एक्केण दोहिं वा तिहिं वा उक्कोसेणं अट्ठहिं" इति॥

छाया—जीवाः खलु भदन्त! जातिनामनिधत्तायुष्कं कतिभिराकर्षैः प्रकुर्वन्ति? गौतम! जघन्येन एकेन द्वाभ्यां वा त्रिभिर्वा उत्कर्षेणाष्टभिः। इति।

शङ्का—यह जीव कैसे एक आकर्षसे अथवा दो आकर्षोंसे एवं तीन अथवा सात आठ आकर्षोंसे आयु बांधता है?

उत्तर—जिस समय जीव आयु बांधने के तीव्र अध्यवसाय से जातिनामनिधत्त आयु का बंध करता है उस समय एक आकर्ष से ही उसका बन्ध करता है, मन्द अध्यवसाय से दो आकर्षों से, मन्दतर अध्यवसाय से तीन आकर्षों से, मन्दतम अध्यवसाय से पांच छह और सात और ज्यादा से ज्यादा आठ आकर्षों से जातिनामनिधत्त आयुका बंध किया करता है। इसी तरह से गति–स्थिति–अवगाहना–प्रदेश-अनुभाव-नामनिधत्त आयुओं का भी यह जीव बन्ध करता है। आयुबंध के साथ अन्य जाति गति आनुपूर्वी आदि का नियम से जो बंध होता है उसका नाम निधत्त है, कहा भी है—

આ જીવ કેવી રીતે એક આકર્ષથી અથવા બે આકર્ષોથી તેમજ ત્રણ અથવા સાત આઠ આકર્ષોથી આયુ બાંધે છે?

જે વખતે જીવ આયુ બાંધવાના તીવ્ર અધ્યવસાયથી જાતિનામનિધત્ત આયુનો બંધ કરે છે, તે વખતે એક આકર્ષથી જ તેનો બંધ કરે છે, મન્દ અધ્યવસાયથી બે આકર્ષોથી, મન્દતર અધ્યવસાયથી ત્રણ આકર્ષોથી, મન્દતમ અધ્યવસાયથી પાંચ, છ, સાત અને વધારેમા વધારે આઠ આકર્ષોથી જાતિનામનિધત્ત આયુનો બંધ કરે છે. આવી રીતે ગતિ–સ્થિતિ–અવગાહના–પ્રદેશ–અનુભાવ–નામ-નિધત્ત આયુઓનો પણ એ જીવ બંધ કરે છે આયુબંધની સાથ અન્ય જાતિ ગતિ આનુપૂર્વી આદિનો નિયમથી જે બંધ થાય છે તેનું નામ નિધત્ત છે. કહ્યુ છે કેઃ—

सोपक्रमायुश्चोपक्रमकारणैर्दण्डकशाशस्त्ररज्जुवह्निजलपतनविषव्यालशीतोष्णारति-भयक्षुत्पिपासाव्याधिमूत्रपुरीषनिरोधातिभोजनाजीर्णभोजनघर्षणश्वासप्रतिरोधनपीडनरूपैरकाले यस्यायुषो नाशस्तत्।

उक्तञ्च—दण्ड–कस–सत्थ–रज्जू, अग्गी–उदग–पडणं विसं वाला।
सी–उण्हं अरइ भयं, खुहा पियासा य वाही य ॥ १ ॥
मुत्तपुरीसनिरोहे, जिण्णाजिण्णे य भोयणं बहुसो।
घंसण–घोलण–पीलण, आउस्स उवक्कमा एए ॥ २ ॥

छाया—दण्डः कशा शस्त्रं रज्जुरग्निरुदकं पतनं विषं व्यालाः।
शीतमुष्णमरतिर्भयं क्षुत्पिपासा च व्याधिश्च ॥ १ ॥
मूत्रपुरीषनिरोधो जीर्णेऽजीर्णे च भोजनं बहुशः।
घर्षणं घोलनं पीडनमायुष उपक्रमा एते ॥ २ ॥ इति।

"जीवा णं भंते! जाइनामनिधत्ताउयं कतिहिं आगरिसेहिं पकरंति? गोयमा! जहन्नेणं दोहिं वा तिहिं वा उक्कोसेणं अट्ठहिं।" इति।

इस सूत्र का अर्थ पूर्वोक्तरूप से ही है।

सोपक्रम आयु वह है जिसका–उपक्रम के कारणभूत दण्ड, चाबुक, शस्त्र, रज्जु, अग्नि, जल, विष, सर्प, शीत, उष्ण, अरति, भय, क्षुधा, तृष्णा, व्याधि, मूत्र-पुरीष-लघुनीत बडीनीत–का निरोध, अतिभोजन, अजीर्ण भोजन, डोरी आदि बांधकर घसीटना, श्वास का निरोध और यंत्र आदि में पीडना आदि से अकाल में ही अन्त हो जाय, कहा भी है-

"दंड-कस-सत्थ-रज्जू-अग्गी-उदग–पडणं-विसं-वाला।
सी-उण्हं-अरइ-भयं, खुहा पिवासा य वाही य ॥ १ ॥

"जीवा णं भंते! जाइनामनिधत्ताउयं कतिहिं आगरिसेहिं पकरंति? गोयमा! जहन्नेणं दोहिं वा तिहिं वा उक्कोसेणं अट्ठहिं।" इति।

આ સૂત્રનો અર્થ પૂર્વોક્ત રૂપથી જ છે.

સોપક્રમ આયુ તે છે જેના ઉપક્રમના કારણભૂત દંડ, ચાબુક, શસ્ત્ર, રજ્જુ, અગ્નિ, જળ, વિષ, સર્પ, શીત, ઉષ્ણ, અરતિ, ભય, ક્ષુધા, તૃષા, વ્યાધિ, મૂત્ર–પુરીષ,–લઘુનીત–બડીનીત નો નિરોધ, અતિભોજન, અજીર્ણ ભોજન, દોરી આદિ બાંધીને ઘસડવું, શ્વાસનો નિરોધ અને યંત્ર આદિથી પીડવું, આદીથી અકાળમા જ અંત થાય. કહ્યું છે—

" दंड–कस–सत्थ–रज्जू, अग्गी उदग पडणं विसं वाला।
सी–उण्हं अरइ भयं, खुहा पिवासा य वाही य ॥ १ ॥

एतेन संयमरहितमानवानां स्वल्पमेवायुस्तत्र शतशो विघ्नसमूहाः। तथा हि मनुजानामायुः प्रायशः शतवर्षपरिमितं भवति। तदर्द्धं रात्रिषु गतम्, अवशिष्टार्द्धे च वालत्वे वृद्धत्वे च न श्रुतचारित्रधर्माचरणकर्तृत्वं जीवस्य भवति। कियदवशिष्टमायुर्नानाविधरोगशोकवियोगादिभिरेवाक्रान्तं भवति, कस्मात्तर्हि सौख्यं प्राणिनां भवेत्।

मुत्त-पुरीसनिरोहे, जिण्णाजिण्णे य भोयणे बहुसो।
घंसण घोलण पीलण, आउस्स उवक्कमा एए ॥ २ ॥

अर्थ पहले आचुका है।

अतः संयमरहित जीवों का दीर्घकालिक आयु भी अल्प जैसा ही है, इसमें भी हजारों विघ्न आते रहते हैं। विचारिये तो—

इस पञ्चम काल में ज्यादा से ज्यादा सौ वर्ष का आयु है। इस सौ वर्ष के आयु का हिसाब लगाया जाय तो पता लगेगा कि आधा आयु तो सोते २ व्यतीत हो जाता है वाकी जो आधा बचता है उसमें वाल-अवस्था वृद्धावस्था आती है। इन अवस्थाओं में जीव किसी भी प्रकार से धर्मादिक शुभ कार्यों का आचरण नहीं कर सकता। अनेक प्रकार के रोग शोक और वियोगादिजन्य दुःख इसके अवशिष्ट जीवन को सदा त्रस्त किये रहते हैं। यौवन अवस्था में स्त्री का प्रेम इसे आराम नहीं लेने देता। इस पर यह छन्द है—

"वालपने में ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणीरत रह्यो।
अर्धमृतक सम बूढापनो, कैसे रूप लखे अपनो ॥ १ ॥

मुत्त-पुरीस-निरोहे, जिण्णाजिण्णे य भोयणे बहुसो।
घंसण घोलण पीलण आउस्स उवक्कमा एए ॥ २ ॥

અર્થ પહેલા આવેલ છે.

માટે સંયમરહિત જીવોની દીર્ઘકાલિક આયુ પણ અલ્પ જેવી જ છે, તેમા પણ હજારો વિઘ્નો આવે છે વિચારીએ તો આ પાચમાં કાળમા વધારેમા વધારે સો વર્ષની આયુ છે આ સો વર્ષની આયુનો હિસાબ કરીએ તો માલુમ પડશે કે અડધી આયુ તો સુવામા જ જાય છે બાકીની જો અડધી આયુ છે તેમાં બાલઅવસ્થા અને વૃદ્ધાવસ્થાનો સમાવેશ છે આ અવસ્થાઓમા જીવ કોઈ પણ પ્રકારે ધર્માદિક શુભ કાર્યોનુ આચરણ કરી શકતો નથી. અનેક પ્રકારના રોગ-શોક અને વિયોગાદિજન્ય દુઃખ તેના અવશિષ્ટ જીવનને સદા ત્રસ્ત કરતા રહે છે. યૌવન અવસ્થામાં સ્ત્રીનો પ્રેમ તેને આરામ લેવા દેતો નથી, આ ઉપર છંદ છેઃ—

एतादृशस्वल्पायुषः कृते च शिरसि परिभ्राम्यदनेकमहाविपत्तिकलापः संयोगाद्यर्थी विवेकविकलो मानवोऽनिशमितस्ततः परिभ्रमति। स्वल्पेनैव कालेनायुषः क्षयोऽवश्यं भावीत्यहो मौढ्यं प्राणिनो यदर्थं सततं परितप्यमानो धावतीति भावः।

यह हालत है इस जीव की; फिर कहो इसे सुख कैसे प्राप्त हो सकता है? फिर भी इतनी छोटी सी आयु को लेकर यह अनेक प्रकार की शिर पर घूमनेवाली आपत्तिविपत्तियों का कुछ भी ख्याल न कर रात-दिन पर पदार्थों के अपनाने में ही मस्त हो रहा है, और अपने कर्तव्य का कुछ भी ख्याल कहीं कर रहा है। अन्त में आयु के समाप्ति होने पर मृत्युशय्या पर विलाप करते हुए इस जीव का कोई भी रक्षक नहीं होगा। वे सब कुटुम्बी-जिनके लिये यह रात-दिन परिश्रम करके अपने खून का पानी कर रहा था-इससे जुदे हो जावेंगे और इसे फाल्गुन मास की होली की तरह चिता में जला देंगे।

इस प्रकार आयु की अल्पता को देखता हुआ यह जो नहीं चेत रहा है यही एक इसकी बडी भारी मूर्खता है। जो इससे जुदे हो जाने वाले हैं उन्हीं के लिये यह रात-दिन महा परिश्रम करने में लगा हुआ है। इसकी इस महा अज्ञानता पर ज्ञानियों को बडा भारी आश्चर्य होता है। यहां तक-"अप्पं खलु आउयं इहमेगेसिं माणवाणं" इस वाक्य का अर्थ हुआ है।

"बालपनमें ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणीरत रह्यो।
अर्धमृतकसम बूढापनो, कैसे रूप लखे अपनो ॥ १ ॥

આવી હાલત છે આ જીવની હવે કહો તેને સુખ કેવી રીતે પ્રાપ્ત થાય? આટલી થોડી આયુ હોવા છતાં તે અનેક પ્રકારની શિર પર ઘૂમવાવાળી આપત્તિ વિપત્તિઓનો પણ જરા ખ્યાલ ન કરતાં રાત-દિન પર પદાર્થોને અપનાવવામાં જ મચ્યો રહે છે, અને પોતાના કર્તવ્યનો જરા પણ ખ્યાલ કરતો નથી અંતમાં આયુની સમાપ્તિ થવાથી મૃત્યુશય્યા પર વિલાપ કરે છે. આ જીવનો કોઈ પણ રક્ષક થશે નહિ. આ બધા કુટુંબીજનો માટે પોતાના લોહીનું પાણી કરતો હતો તેનાથી જુદા થઈ જશે અને તેને ફાગણ માસની હોળી માફક ચિતામાં સળગાવી દેશે.

આ પ્રકારે આયુની અલ્પતાને દેખીને પણ ચેતતો નથી, એજ એક, જીવની મૂર્ખતા છે. જેનાથી જુદું થવાનું છે તેવાઓના માટે રાત-દિન પરિશ્રમ ઉઠાવે છે. આ તેની અજ્ઞાનતા ઉપર જ્ઞાનીઓને મોટું આશ્ચર્ય થાય છે. અહીં સુધી- "अप्पं खलु आउयं इहमेगेसिं माणवाणं" આ વાકયનો અર્થ થયો છે.

दण्डकशादिरूपोपक्रमाभावेऽपि पुनस्ते वार्द्धककालव्यालकवलिता मानवा मरणादपि गुरुतरां दुर्दशामनुभवन्ति । सकलानि चेन्द्रियाणि जराभिभूततया शिथिलतां गतानि, तरुणायमानया च तृष्णया व्याकुला मूढा भवन्तीति दर्शयति–"तद्यथे"-ति । वार्द्धक्ये सर्वेषामिन्द्रियाणां स्वकार्यकरणाक्षमता जायते तदा "श्रोत्रपरिज्ञानैः परिहीयमानैः" शृणोति भाषावर्गणापरिणतान् पुद्गलानिति श्रोत्रम् । तच्च द्रव्यभावभेदेन द्विविधम् । तत्र कदम्बपुष्पसदृशं द्रव्यात्मकं, भावरूपं हि भाषाद्रव्यग्रहणलब्ध्युपयोगस्वभावात्मकम् ।

दण्ड कशा आदिरूप उपक्रम के अभाव से यदि आयु की पूर्णता भी जीव को प्राप्त हुई तो यह जीव वृद्धावस्था में मरणान्तिक कष्टों को भोगता है, यही बात आगे के वाक्यों से स्पष्ट की जाती है ।

जब यह वृद्धावस्थासंपन्न होता है उस समय इसका श्रोत्रेन्द्रियजन्य ज्ञान बिलकुल अल्प हो जाता है, अर्थात् जिस प्रकार इसकी श्रोत्रेन्द्रिय तरुणावस्था में काम देती थी उस प्रकार से इस अवस्था में नहीं देती । इस समय जबकि प्रत्येक इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं तब एक चीज इसकी तरुण होती रहती है वह है इसकी तृष्णा–"तृष्णा च तरुणायते" ।

"शृणोति भाषावर्गणापरिणतपुद्गलान् इति श्रोत्रम्" भाषावर्गणा के रूप में परिणत पुद्गलों को जो सुनता है उसका नाम श्रोत्र है । वह श्रोत्र द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार का है । जिसका आकार कदम्ब पुष्प के समान है वह द्रव्य श्रोत्र है, जिसके द्वारा भाषावर्गणा

દંડ કશા આદિ રૂપ ઉપક્રમના અભાવથી કદાચ આયુની પૂર્ણતા પણ જીવની પુરી થઈ તો આ જીવ વૃદ્ધાવસ્થામા મરણાન્તિક કષ્ટોને ભોગવે છે આ વાત આગળના વાક્યોથી સ્પષ્ટ છે.

જ્યારે તે વૃદ્ધાવસ્થાસંપન્ન થાય છે ત્યારે તેનું શ્રોત્રેન્દ્રિયજ્ઞાન બિલકુલ અલ્પ થઈ જાય છે અર્થાત્ જે પ્રકારે તેની શ્રોત્રેન્દ્રિય તરૂણાવસ્થામા કામ દેતી હતી તે પ્રકારે વૃદ્ધાવસ્થામાં દેતી નથી. આ સમયે દરેક ઇન્દ્રિય શિથિલ થઈ જાય છે ત્યારે એક જ ચીજ તેની તરૂણા રહે છે, તે ફક્ત તૃષ્ણા. "तृष्णा च तरुणायते।"

"शृणोति भाषावर्गणापरिणतपुद्गलान् इति श्रोत्रम् ।"

ભાષાવર્ગણાના રૂપમા પરિણત પુદ્ગલોને જે સુણે છે (સાંભળે છે) તેનું નામ શ્રોત છે. તે શ્રોત્ર દ્રવ્ય અને ભાવથી બે પ્રકારે છે. જેનો આકાર કદમ્બપુષ્પ સમાન છે, તે દ્રવ્ય શ્રોત્ર છે. જે દ્વારા ભાષાવર્ગણાના રૂપમા

परि=सर्वतो घटपटादिशब्दविषयकाणि ज्ञानानि=परिज्ञानानि श्रोत्रेण परिज्ञानानि श्रोत्रपरिज्ञानि, तैः श्रोत्रपरिज्ञानैः, वार्द्धक्येन परिहीयमानैः=क्षीयमाणैरेकदात्मनो मूढतां जनयति, इत्युत्तरेण सम्बन्धः। वार्द्धक्ये च श्रोत्रेन्द्रियस्य शिथिलतामुपगतस्य क्षीयमाणस्वशक्तिकस्य शब्दादिविषयग्रहणे चाक्षमता संजायते, येन च बधिरो भवति, घटं टमिव शृणोति न शृणोति वेति तात्पर्यम्। एवं रोगेणापि श्रोत्रपरिज्ञानानि क्षीयमाणानि भवन्तीति बोध्यम्। एवं सर्वत्र योज्यम्।

के रूप में परिणत पुद्गलस्कन्धों का ग्रहण किया जाता है वह भावश्रोत्र है। इसके भी दो भेद हैं—(१) लब्धि, और (२) उपयोग। भाषा के रूप में परिणत पुद्गलस्कन्धों को जाननेरूप जो क्षयोपशम है उसका नाम लब्धि है, अर्थात् शब्दों के जानने की शक्ति का नाम लब्धि है, और उन शब्दों के जाननेरूप आत्मा का जो व्यापार-प्रयत्नविशेष है उसका नाम उपयोग है। परिज्ञान शब्द का अर्थ है-सर्व प्रकार से अथवा सब तरफ से घट पट आदि शब्दों का विषय करने वाला ज्ञान। वृद्धावस्था में श्रोत्रजन्य ज्ञान क्षीणप्राय हो जाता है-कोई कहता कुछ है वृद्ध सुनता कुछ है, अतः इस अवस्था में इस प्रकार की हालत आत्मा में मूढता को उत्पन्न करती है। " एकदा आत्मनो मूढतां जनयति " इस उत्तर पदका सम्बन्ध प्रत्येक के साथ लगा लेना चाहिये, अर्थात्-" वार्द्धक्ये परिहीयमानैः श्रोत्रपरिज्ञानैः अभिक्रान्तं वयः समीक्ष्य मूढभावं जनयति, परिहीयमानैः चक्षुर्ज्ञानैः अभिक्रान्तं वयः समीक्ष्य मूढभावं जनयति," इत्यादि।

પરિણત પુદ્ગલ સ્કન્ધોને ગ્રહણ કરે છે તે ભાવશ્રોત્ર છે. તેના પણ બે ભેદ છે—(૧) લબ્ધિ, અને (૨) ઉપયોગ ભાષાના રૂપમાં પરિણત પુદ્ગલસ્કન્ધોના જાણવારૂપ ક્ષયોપશમ છે તેનું નામ લબ્ધિ છે, અર્થાત્ શબ્દોની શક્તિનું જાણવું તેનું નામ લબ્ધિ, અને તે શબ્દોને જાણવારૂપ આત્માનો જે વ્યાપાર-યત્નવિશેષ છે તેનુ નામ ઉપયોગ પરિજ્ઞાન શબ્દનો અર્થ, સર્વ પ્રકારથી અથવા સર્વ તરફથી ઘટ પટ આદિ શબ્દોનો વિષય કરવાવાળું જ્ઞાન. વૃદ્ધાવસ્થામાં શ્રોત્રજન્ય જ્ઞાન ક્ષીણપ્રાય થાય છે. કોઈ કહે છે કાંઈ અને વૃદ્ધ માણુસ સાંભળે છે બીજુ, તેથી આ અવસ્થામાં આ પ્રકારની હાલત આત્મામાં મૂઢતાને ઉત્પન્ન કરે છે.

" एकदा आत्मनो मूढतां जनयति " આ ઉત્તરપદનો સંબંધ પ્રત્યેકની સાથે લગાડવો જોઈએ, અર્થાત્ " वार्द्धके परिहीयमानैः श्रोत्रपरिज्ञानै अभिक्रान्तं वय· समीक्ष्य मूढभावं जनयति, परिहीयमानै· चक्षुर्ज्ञानैः अभिक्रान्तं वयः समीक्ष्य मूढभावं जनयति " इत्यादि,

चक्षुःपरिज्ञानैः—चक्षुषा मसूरसंस्थानेन परिज्ञानानि—शुक्लनीलादिरूपविषयकाणि चक्षुःपरिज्ञानानि, तैः, परिहीयमानैः=नश्यमानैः। घ्राणपरिज्ञानैः—घ्राणेन

प्राणी वृद्धावस्था में बहिरा हो जाता है, क्योंकि उस समय इसकी श्रोत्रेन्द्रिय शिथिल हो जाती है जिससे अपने विषय को स्पष्टरूप से नहीं जानती, अर्थात् इस समय प्रत्येक इन्द्रिय शब्दादिकविषयों को ग्रहण करने में क्षीणशक्ति-(नाकाविल) हो जाती है, अतः वह उन्हें ग्रहण करने में असमर्थ होती है, इसीकारण से बहिरा व्यक्ति घट (घडा) शब्द कहे जाने पर उसे पट (वस्त्र) शब्द जैसा सुनता है, अथवा धीरे बोलने पर नहीं भी सुनता है। जिस प्रकार वृद्धावस्था के कारण सब इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं उसी प्रकार रोगादिक कारणों से भी उनमें शिथिलता आजाती है, यह स्वयं समझ लेना चाहिये, और इसका सम्बन्ध भी प्रत्येक इन्द्रिय की परिहीनता के साथ जोड लेना चाहिये। अर्थात्—जिस प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय में स्वविषयग्रहणरूप व्यापार के प्रति परिहीनता का कारण रोगादिक से उत्पन्न शिथिलता है उसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय में भी अपने-अपने विषय को ग्रहण करने रूप व्यापार की परिहीनता में रोगादिक कारण है।

चक्षु-इन्द्रिय का आकार मसूर की दाल के तुल्य है, इसका विषय शुक्ल, नील आदि वर्ण है, इस अवस्था में अथवा रोगादिक कारणों से

પ્રાણી વૃદ્ધાવસ્થામાં બહેરો થાય છે, કારણકે તે વખતે તેની શ્રોત્રેન્દ્રિય શિથિલ થાય છે, જે પોતાના વિષયને સ્પષ્ટ રૂપથી નથી જાણતી, અર્થાત્ આ વખતે દરેક ઇન્દ્રિય શબ્દાદિક વિષયને ગ્રહણ કરવામાં શક્તિહીન થાય છે અને તેને ગ્રહણ કરવામાં અસમર્થ બને છે આ કારણે બહેરો માણસ ઘડાને વસ્ત્ર શબ્દના રૂપમાં સાંભળે છે અને હળવેથી બોલવા આવે તો સાંભળતો નથી. જેમ વૃદ્ધાવસ્થાના કારણે સઘળી ઇન્દ્રિયો શિથિલ બને છે તે પ્રકારે રોગાદિક કારણોથી પણ તેમાં શિથિલતા આવે છે તે પોતાની મેળે જાણવું જોઈએ, અને તેનો સંબંધ પણ દરેક ઇન્દ્રિયની પરિહીનતા સાથે જોડવો જોઇએ, અર્થાત્ જેમ શ્રોત્રેન્દ્રિયમાં સ્વવિષય ગ્રહણ કરવા રૂપ વ્યાપાર પ્રતિ પરિહીનતાનું કારણ રોગાદિકથી ઉત્પન્ન થતી શિથિલતા છે તેમ પ્રત્યેક ઇન્દ્રિયને પોતપોતાના વિષયને ગ્રહણ કરવા રૂપ વ્યાપારની પરિહીનતામાં રોગાદિક કારણ છે.

ચક્ષુ ઇન્દ્રિયનો આકાર મસૂરની દાળ જેવો છે. તેનો વિષય શુકલ, નીલ આદિ વર્ણ છે. આ અવસ્થામાં અથવા રોગાદિક કારણોથી ચક્ષુ ઇન્દ્રિય જ્યારે

अतिमुक्तककुसुमाकारेण परिज्ञानानि–गन्धविषयकाणि, तैः, परिहीयमानैः=परित्यज्यमानैः। रसनपरिज्ञानैः–रसनेन क्षुरप्राकारेण परिज्ञानानि–मधुरतिक्तादिरसविषयकाणि ज्ञानानि, तैः, परिहीयमानैः=क्षीयमाणैः। स्पर्शपरिज्ञानैः–स्पर्शेन–स्पर्शनेन्द्रियेण नानाविधाकारेण परिज्ञानानि–शीतोष्णस्पर्शादिविषयकाणि ज्ञानानि, तैः, परिहीयमानैः=विलीयमानैः। इति सकलानामपीन्द्रियाणां वार्द्धक्येन रोगोदयेन च स्वस्वविषयग्राहकशक्तयः परिक्षीणा भवन्तीति भावः। अभिक्रान्तं च खलु वयः सम्प्रेक्ष्य स एकदा मूढभावं जनयतीत्युत्तरेणान्वयः। श्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनाना-

चक्षुइन्द्रिय जब शुक्ल-नीलादिरूप अपने विषय को ग्रहण करने वाले ज्ञान से रिक्त हो जाती है; घ्राण-इन्द्रिय-जिसका आकार अतिमुक्तक पुष्प के समान है, वह जब इस अवस्था में अथवा रोगादिक कारणों से अपने गन्धग्रहण करने वाले ज्ञान से शून्य हो जाती है, रसना-इन्द्रिय-जिसका आकार खुरपा के सदृश है, और जो मधुर, तिक्त आदि रसों को विषय करती है वह भी जब इस अवस्थामें अथवा रोगादि कारणों से अपने विषयको ग्रहण करनेवाले ज्ञानमें असमर्थ हो जाती है; स्पर्शन–इन्द्रिय–जिसका आकार नियत नहीं है किन्तु अनेक प्रकारके आकार को धारण करनेवाली है, और जिसका विषय आठ प्रकार का शीत–उष्ण आदि स्पर्श है वह जब इस अवस्थामें अथवा रोगादिक कारणोंसे शिथिल हो जाती है तब इस आत्मामें मूढता उत्पन्न होती है यह अनुभवसिद्ध बात है। मूढता उत्पन्न होनेका कारण यही है कि इस हालतमें प्रत्येक इन्द्रिय अपने २ विषयको ग्रहण करने के बोधसे विकल हो जाती

શુક્લ–નીલાદિ રૂપ પોતાના વિષયને ગ્રહણના જ્ઞાનથી રિક્ત થાય છે, ઘ્રાણ–ઇન્દ્રિય જેનો આકાર અતિમુક્તક પુષ્પ સમાન છે. તે જ્યારે આ અવસ્થામાં અથવા રોગાદિક કારણોથી પોતાને ગન્ધ ગ્રહણ કરવાના જ્ઞાનથી શૂન્ય થાય છે, રસના–ઇન્દ્રિય જેનો આકાર તાવેથા જેવો છે અને જે મધુર, તિક્ત આદિ રસોનો વિષય કરે છે તે પણ આવી અવસ્થામાં અથવા રોગાદિ કારણોથી પોતાના વિષયને ગ્રહણ કરવાના જ્ઞાનમાં અસમર્થ થાય છે, સ્પર્શન–ઇન્દ્રિય જેનો આકાર નિયત નથી પરંતુ અનેક પ્રકારના આકારને ધારણ કરે છે અને જેના વિષય આઠ પ્રકારના શીત–ઉષ્ણ આદિ સ્પર્શ છે તે પણ આ અવસ્થામા અથવા રોગાદિક કારણોથી શિથિલ થાય છે ત્યારે આત્મામા મૂઢતા ઉત્પન્ન થાય છે તે અનુભવસિદ્ધ વાત છે. મૂઢતા ઉત્પન્ન રવાનું કારણ એ છે કે આવી હાલતમાં દરેક બધી

चक्षुःपरिज्ञानैः-चक्षुषा मसूरसंस्थानेन परिज्ञानानि-शुक्लनीलादिरूपविषयकाणि चक्षुःपरिज्ञानानि, तैः, परिहीयमानैः=नश्यमानैः। घ्राणपरिज्ञानैः-घ्राणेन

प्राणी वृद्धावस्था में बहिरा हो जाता है, क्योंकि उस समय इसकी श्रोत्रेन्द्रिय शिथिल हो जाती है जिससे अपने विषय को स्पष्टरूप से नहीं जानती, अर्थात् इस समय प्रत्येक इन्द्रिय शब्दादिकविषयों को ग्रहण करने में क्षीणशक्ति-(नाकाबिल) हो जाती है, अतः यह उन्हें ग्रहण करने में असमर्थ होती है, इसीकारण से बहिरा व्यक्ति घट (घडा) शब्द कहे जाने पर उसे पट (वस्त्र) शब्द जैसा सुनता है, अथवा धीरे बोलने पर नहीं भी सुनता है। जिस प्रकार वृद्धावस्था के कारण सब इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं उसी प्रकार रोगादिक कारणों से भी उनमें शिथिलता आजाती है, यह स्वयं समझ लेना चाहिये, और इसका सम्बन्ध भी प्रत्येक इन्द्रिय की परिहीनता के साथ जोड लेना चाहिये। अर्थात्-जिस प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय में स्वविषयग्रहणरूप व्यापार के प्रति परिहीनता का कारण रोगादिक से उत्पन्न शिथिलता है उसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय में भी अपने-अपने विषय को ग्रहण करने रूप व्यापार की परिहीनता में रोगादिक कारण है।

चक्षु-इन्द्रिय का आकार मसूर की दाल के तुल्य है, इसका विषय शुक्ल, नील आदि वर्ण है, इस अवस्था में अथवा रोगादिक कारणों से

પ્રાણી વૃદ્ધાવસ્થામા બહેરો થાય છે, કારણકે તે વખતે તેની શ્રોત્રેન્દ્રિય શિથિલ થાય છે, જે પોતાના વિષયને સ્પષ્ટ રૂપથી નથી જાણતી, અર્થાત્ આ વખતે દરેક ઇન્દ્રિય શબ્દાદિક વિષયને ગ્રહણ કરવામાં શક્તિહીન થાય છે અને તેને ગ્રહણ કરવામાં અસમર્થ બને છે. આ કારણે બહેરો માણસ ઘડાને વસ્ત્ર શબ્દના રૂપમાં સાભળે છે અને હળવેથી બોલવા આવે તો સાભળતો નથી જેમ વૃદ્ધાવસ્થાના કારણે સઘળી ઇન્દ્રિયો શિથિલ બને છે તે પ્રકારે રોગાદિક કારણોથી પણ તેમાં શિથિલતા આવે છે તે પોતાની મેળે જાણવું જોઈએ, અને તેનો સબંધ પણ દરેક ઇન્દ્રિયની પરિહીનતા સાથે જોડવો જોઇએ, અર્થાત્ જેમ શ્રોત્રેન્દ્રિયમા સ્વવિષય ગ્રહણ કરવા રૂપ વ્યાપાર પ્રતિ પરિહીનતાનુ કારણ રોગાદિકથી ઉત્પન્ન થતી શિથિલતા છે તેમ પ્રત્યેક ઇન્દ્રિયને પોતપોતાનાં વિષયને ગ્રહણ કરવા રૂપ વ્યાપ્યારની પરિહીનતામાં રોગાદિક કારણ છે.

ચક્ષુ ઇન્દ્રિયનો આકાર મસૂરની દાળ જેવો છે તેનો વિષય શુકલ, નીલ આદિ વર્ણ છે આ અવસ્થામાં અથવા રોગાદિક કારણોથી ચક્ષુ ઇન્દ્રિય જ્યારે

अतिमुक्तककुसुमाकारेण परिज्ञानानि-गन्धविषयकाणि, तैः, परिहीयमानैः=परित्यज्यमानैः। रसनपरिज्ञानैः-रसनेन क्षुरप्राकारेण परिज्ञानानि-मधुरतिक्तादिरसविषयकाणि ज्ञानानि, तैः, परिहीयमानैः=क्षीयमाणैः। स्पर्शपरिज्ञानैः-स्पर्शन-स्पर्शनेन्द्रियेण नानाविधाकारेण परिज्ञानानि-शीतोष्णस्पर्शादिविषयकाणि ज्ञानानि, तैः, परिहीयमानैः=विलीयमानैः। इति सकलानामपीन्द्रियाणां वार्द्धक्येन रोगोदयेन च स्वस्वविषयग्राहकशक्तयः परिक्षीणा भवन्तीति भावः। अभिक्रान्तं च खलु वयः सम्प्रेक्ष्य स एकदा मूढभावं जनयतीत्युत्तरेणान्वयः। श्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनाना-

चक्षुइन्द्रिय जब शुक्ल-नीलादिरूप अपने विषय को ग्रहण करने वाले ज्ञान से रिक्त हो जाती है; घ्राण-इन्द्रिय-जिसका आकार अतिमुक्तक पुष्प के समान है, वह जब इस अवस्था में अथवा रोगादिक कारणों से अपने गन्धग्रहण करने वाले ज्ञान से शून्य हो जाती है, रसना-इन्द्रिय-जिसका आकार खुरपा के सदृश है, और जो मधुर, तिक्त आदि रसों को विषय करती है वह भी जब इस अवस्थामें अथवा रोगादि कारणों से अपने विषयको ग्रहण करनेवाले ज्ञानमें असमर्थ हो जाती है; स्पर्शन-इन्द्रिय-जिसका आकार नियत नहीं है किन्तु अनेक प्रकारके आकार को धारण करनेवाली है, और जिसका विषय आठ प्रकार का शीत-उष्ण आदि स्पर्श है वह जब इस अवस्थामें अथवा रोगादिक कारणोंसे शिथिल हो जाती है तब इस आत्मामें मूढता उत्पन्न होती हैं यह अनुभवसिद्ध बात है। मूढता उत्पन्न होनेका कारण यही है कि इस हालतमें प्रत्येक इन्द्रिय अपने २ विषयको ग्रहण करने के बोधसे विकल हो जाती

શુકલ-નીલાદિ રૂપ પોતાના વિષયને ગ્રહણના જ્ઞાનથી રિક્ત થાય છે, ઘ્રાણ-ઇન્દ્રિય જેનો આકાર અતિમુક્તક પુષ્પ સમાન છે. તે જ્યારે આ અવસ્થામાં અથવા રોગાદિક કારણોથી પોતાને ગન્ધ ગ્રહણ કરવાના જ્ઞાનથી શૂન્ય થાય છે, રસના-ઇન્દ્રિય જેનો આકાર તાવેથા જેવો છે અને જે મધુર, તિક્ત આદિ રસોનો વિષય કરે છે તે પણ આવી અવસ્થામાં અથવા રોગાદિ કારણોથી પોતાના વિષયને ગ્રહણ કરવાના જ્ઞાનમા અસમર્થ થાય છે, સ્પર્શન-ઇન્દ્રિય જેનો આકાર નિયત નથી પરંતુ અનેક પ્રકારના આકારને ધારણ કરે છે અને જેના વિષય આઠ પ્રકારના શીત-ઉષ્ણ આદિ સ્પર્શ છે તે પણ આ અવસ્થામા અથવા રોગાદિક કારણોથી શિથિલ થાય છે ત્યારે આત્મામાં મૂઢતા ઉત્પન્ન થાય છે તે અનુભવસિદ્ધ વાત છે. મૂઢતા ઉત્પન્ન રવાનુ કારણ એ છે કે આવી હાલતમાં દરેક બધી

चिच्च ह्रस्वमित्याद्यनेकप्रकारा। आभ्यन्तरा तु निर्वृत्तिः सर्वेषां समाना भवति। चतुर्णामेवेन्द्रियाणां बाह्याभ्यन्तरभेदो भवति, न स्पर्शनेन्द्रियस्येति बोध्यम्। उपक्रियत इत्युपकरणम्, उपकरणेन्द्रियश्च खड्गस्थानीयबाह्यनिर्वृत्तेः खड्गधारासदृशस्वच्छतरपुद्गलसमूहरूपाऽभ्यन्तरनिर्वृत्तेश्च शक्तिविशेषः। अनुपघातानुग्रहाभ्यां निर्वृत्तीन्द्रियस्योपकारित्वेनोपकरणम्। तदपि बाह्याभ्यन्तरनिर्वृत्त्युपकारकत्वेन द्विविधम्। निर्वृत्त्युपकरणरूपमुभयमेतत्पुद्गलपरिणामात्मकमपि सदिन्द्रियशब्दव्यवहारं लभते।

और किसीकी छोटी। आभ्यन्तर निर्वृत्ति समस्त इन्द्रियों की एकसी होती है। निर्वृत्ति–इन्द्रिय के जो बाह्य और आभ्यन्तर भेद किये हैं वे स्पर्शन–इन्द्रिय को छोड कर शेष चार इन्द्रियों के ही हैं, ऐसा समझ लेना चाहिये।

द्रव्येन्द्रिय का जो दूसरा भेद उपकरण है उसका अर्थ 'निर्वृत्ति का जो उपकार करे' यह है। यह खड्ग–तलवार–स्थानीय बाह्यनिर्वृत्ति तथा उसकी धारास्थानीय स्वच्छतरपुद्गलसमूहरूप आभ्यन्तर निर्वृत्ति की एक विशेष शक्ति है–जो अनुपघात और अनुग्रह से निर्वृत्ति–इन्द्रिय की उपकारिका मानी गई है।

यह उपकरण द्रव्येन्द्रिय भी आभ्यन्तर और बाह्य निर्वृत्ति का उपकारक होने की वजहसे दो प्रकार की है–(१) आभ्यन्तर–उपकरण और (२) बाह्य–उपकरण। आभ्यन्तर निर्वृत्ति का जो उपकार करे वह आभ्यन्तर–उपकरण और बाह्य निर्वृत्तिका जो उपकार करे वह बाह्य–उपकरण है। निर्वृत्तिरूप और उपकरणरूप द्रव्येन्द्रिय यद्यपि पुद्गलपरिणामा-

---

નિર્વૃત્તિ સમસ્ત ઇન્દ્રિયોની એક સરખી છે નિર્વૃત્તિ ઇન્દ્રિયના જે બાહ્ય અને આભ્યન્તર ભેદ છે તે સ્પર્શન ઇન્દ્રિયને છોડીને શેષ ચાર ઇન્દ્રિયોના છે તેમ સમજવાનું છે

દ્રવ્યેન્દ્રિયનો બીજો ભેદ ઉપકરણ છે, એનો અર્થ 'નિર્વૃત્તિનો જે ઉપકાર કરે' એ છે આ તલવારસ્થાનીય બાહ્ય નિર્વૃત્તિનો તથા તેની ધારાસ્થાનીય સ્વચ્છતરપુદ્‌ગલસમૂહરૂપ આભ્યન્તર નિર્વૃત્તિની એક વિશેષ શક્તિ છે જે અનુપઘાત અને અનુગ્રહથી નિર્વૃત્તિ ઇન્દ્રિયની ઉપકારિકા માની છે.

આ ઉપકરણ દ્રવ્યેન્દ્રિય પણ આભ્યન્તર અને બાહ્ય નિર્વૃત્તિનું ઉપકારક હોવાથી બે પ્રકારનું છે (૧) આભ્યન્તર ઉપકરણ, અને બાહ્ય ઉપકરણ, આભ્યન્તર નિર્વૃત્તિનો જે ઉપકાર કરે તે આભ્યન્તર ઉપકરણ છે અને બાહ્યનિર્વૃત્તિનો જે ઉપકાર કરે તે બાહ્ય ઉપકરણ છે. નિર્વૃત્તિ રૂપ અને ઉપકરણ રૂપ દ્રવ્યેન્દ્રિય

तच्च भावेन्द्रियसहयोगं प्राप्यैवात्मनः साहाय्यं करोति प्रस्थकाष्ठवत् 'पायलीकाठ' इति भाषा। आत्मपरिणतिरूपं भावेन्द्रियमपि लब्ध्युपयोगभेदाद्द्विविधम्, तत्र तत्तदिन्द्रियावारककर्मणां क्षयोपशमो लब्धिः। इन्द्रियाणां स्वस्वविषयेषु परिच्छेद्यव्यापार उपयोगः। अत्र लब्धौ वर्तमानायां सत्यां निर्वृत्त्युपकरणोपयोगानां त्रयाणामप्यपेक्षा। निर्वृत्तौ वर्तमानायां सत्यामुपकरणोपयोगयोरपेक्षा। सत्युपकरणे चोपयो-

---

त्मक है तो भी उसका जो इन्द्रिय शब्दसे व्यवहार किया गया है उसका मतलब यही है कि यह आत्माको पदार्थज्ञानमें सहायक है, क्योंकि विना द्रव्येन्द्रिय के आत्मा को पदार्थज्ञान नहीं हो सकता। यही कारण है कि विग्रहगति में भावेन्द्रियके होने पर भी द्रव्येन्द्रिय के अभावमें जीवको बाह्य पदार्थज्ञान नहीं होता। द्रव्येन्द्रिय यद्यपि आत्माको पदार्थज्ञान करानेमें सहायक है तो भी वह भावेन्द्रिय के सहयोग के विना आत्माको पदार्थबोधमें सहायक नहीं हो सकता।

आत्मपरिणतिरूप भावेन्द्रिय भी लब्धि और उपयोगके भेद से दो प्रकार की है। उन-उन इन्द्रियों को आवरण करनेवाले कर्मोंका जो क्षयोपशम है उसका नाम लब्धि है। एवं इन्द्रियोंका अपने २ विषयों के जानने रूप जो व्यापार है उसका नाम उपयोग है। आत्मामें लब्धि-जानने की योग्यता-होनेपर भी उसे निर्वृत्ति, उपकरण एवं उपयोग की अपेक्षा रहती है। लब्धि के होते हुए भी इनके विना आत्माको पदार्थ-

---

યદ્યપિ પુદ્‌ગલપરિણામાત્મક છે તો પણ તેનો જે ઇન્દ્રિય શબ્દથી વ્યવહાર કરેલ છે તેનું કારણ એ છે કે તે આત્માને પદાર્થજ્ઞાનમાં સહાયક છે, કારણકે દ્રવ્ય ઇન્દ્રિય વિના આત્માને પદાર્થજ્ઞાન થતું નથી, એજ કારણ છે કે વિગ્રહગતિમાં ભાવેન્દ્રિય થવાથી પણ દ્રવ્યેન્દ્રિય ના અભાવમા જીવને બાહ્ય પદાર્થજ્ઞાન થતું નથી. દ્રવ્યેન્દ્રિય યદ્યપિ આત્માને પદાર્થજ્ઞાન કરાવવામાં સહાયક છે, તો પણ તે ભાવેન્દ્રિયના સહયોગ વિના પદાર્થબોધમાં આત્માનો સહાયક થઈ શકતો નથી.

આત્મપરિણતિરૂપ ભાવેન્દ્રિય પણ લબ્ધિ અને ઉપયોગના ભેદથી બે પ્રકારે છે તે તે ઇન્દ્રિયોના આવરણ કરનાર કર્મોના જે ક્ષયોપશમ છે તેનું નામ લબ્ધિ છે. ઇન્દ્રિયોના પોત-પોતાના વિષયોને જાણવા રૂપ જે વ્યાપાર છે તેનું નામ ઉપયોગ છે.

આત્મામાં લબ્ધિ-જાણવાની યોગ્યતા-હોવા છતા તેને નિર્વૃત્તિ, ઉપકરણ, અને ઉપયોગની અપેક્ષા રહે છે લબ્ધિના હોવા છતાં પણ તેના વિના આત્માને પદાર્થ-

चिच्च ह्रस्वमित्याद्यनेकप्रकारा। आभ्यन्तरा तु निर्वृत्तिः सर्वेषां समाना भवति। चतुर्णामेवेन्द्रियाणां बाह्याभ्यन्तरभेदो भवति, न स्पर्शनेन्द्रियस्येति बोध्यम्। उपक्रियत इत्युपकरणम्, उपकरणेन्द्रियञ्च खड्गस्थानीयबाह्यनिर्वृत्तेः खड्गधारासदृशस्वच्छतरपुद्गलसमूहरूपाऽभ्यन्तरनिर्वृत्तेश्च शक्तिविशेषः। अनुपघातानुग्रहाभ्यां निर्वृत्तीन्द्रियस्योपकारित्वेनोपकरणम्। तदपि बाह्याभ्यन्तरनिर्वृत्त्युपकारकत्वेन द्विविधम्। निर्वृत्त्युपकरणरूपमुभयमेतत्पुद्गलपरिणामात्मकमपि सदिन्द्रियशब्दव्यवहारं लभते।

और किसीकी छोटी। आभ्यन्तर निर्वृत्ति समस्त इन्द्रियों की एकसी होती है। निर्वृत्ति-इन्द्रिय के जो बाह्य और आभ्यन्तर भेद किये हैं वे स्पर्शन-इन्द्रिय को छोड कर शेष चार इन्द्रियों के ही हैं, ऐसा समझ लेना चाहिये।

द्रव्येन्द्रिय का जो दूसरा भेद उपकरण है उसका अर्थ 'निर्वृत्ति का जो उपकार करे' यह है। यह खड्ग-तलवार-स्थानीय बाह्यनिर्वृत्ति तथा उसकी धारास्थानीय स्वच्छतरपुद्गलसमूहरूप आभ्यन्तर निर्वृत्ति की एक विशेष शक्ति है-जो अनुपघात और अनुग्रह से निर्वृत्ति-इन्द्रिय की उपकारिका मानी गई है।

यह उपकरण द्रव्येन्द्रिय भी आभ्यन्तर और बाह्य निर्वृत्ति का उपकारक होने की वजहसे दो प्रकार की है-(१) आभ्यन्तर-उपकरण और (२) बाह्य-उपकरण। आभ्यन्तर निर्वृत्ति का जो उपकार करे वह आभ्यन्तर-उपकरण और बाह्य निर्वृत्तिका जो उपकार करे वह बाह्य-उपकरण है। निर्वृत्तिरूप और उपकरणरूप द्रव्येन्द्रिय यद्यपि पुद्गलपरिणामा-

---

निर्वृत्ति समस्त ઇન્દ્રિયોની એક સરખી છે. નિર્વૃત્તિ ઇન્દ્રિયના જે બાહ્ય અને આભ્યન્તર ભેદ છે તે સ્પર્શન ઇન્દ્રિયને છોડીને શેષ ચાર ઇન્દ્રિયોના છે તેમ સમજવાનું છે.

દ્રવ્યેન્દ્રિયનો બીજો ભેદ ઉપકરણ છે, એનો અર્થ 'નિર્વૃત્તિનો જે ઉપકાર કરે' એ છે આ તલવારસ્થાનીય બાહ્ય નિર્વૃત્તિનો તથા તેની ધારાસ્થાનીય સ્વચ્છતરપુદ્ગલસમૂહરૂપ આભ્યન્તર નિર્વૃત્તિની એક વિશેષ શક્તિ છે જે અનુપઘાત અને અનુગ્રહથી નિર્વૃત્તિ ઇન્દ્રિયની ઉપકારિકા માની છે.

આ ઉપકરણ દ્રવ્યેન્દ્રિય પણ આભ્યન્તર અને બાહ્ય નિર્વૃત્તિનું ઉપકારક હોવાથી બે પ્રકારનું છે (૧) આભ્યન્તર ઉપકરણ, અને બાહ્ય ઉપકરણ, આભ્યન્તર નિર્વૃત્તિનો જે ઉપકાર કરે તે આભ્યન્તર ઉપકરણ છે અને બાહ્યનિર્વૃત્તિનો જે ઉપકાર કરે તે બાહ્ય ઉપકરણ છે. નિર્વૃત્તિ રૂપ અને ઉપકરણ રૂપ દ્રવ્યેન્દ્રિય

तच्च भावेन्द्रियसहयोगं प्राप्यैवात्मनः साहाय्यं करोति प्रस्थकाष्ठवत् 'पायलीकाठ' इति भाषा । आत्मपरिणतिरूपं भावेन्द्रियमपि लब्ध्युपयोगभेदाद्द्विविधम् , तत्र तत्त-दिन्द्रियावारककर्मणां क्षयोपशमो लब्धिः । इन्द्रियाणां स्वस्वविषयेषु परिच्छेद्यव्या-पार उपयोगः । अत्र लब्धौ वर्तमानायां सत्यां निर्वृत्त्युपकरणोपयोगानां त्रयाणामप्य-पेक्षा । निर्वृत्तौ वर्तमानायां सत्यामुपकरणोपयोगयोरपेक्षा । सत्युपकरणे चोपयो-

त्मक है तो भी उसका जो इन्द्रिय शब्दसे व्यवहार किया गया है उसका मतलब यही है कि यह आत्माको पदार्थज्ञानमें सहायक है, क्योंकि विना द्रव्येन्द्रिय के आत्मा को पदार्थज्ञान नहीं हो सकता । यही कारण है कि विग्रहगति में भावेन्द्रियके होने पर भी द्रव्येन्द्रिय के अभावमें जीवको बाह्य पदार्थज्ञान नहीं होता । द्रव्येन्द्रिय यद्यपि आत्माको पदा-र्थज्ञान करानेमें सहायक है तो भी वह भावेन्द्रिय के सहयोग के विना आत्माको पदार्थबोधमें सहायक नहीं हो सकता ।

आत्मपरिणतिरूप भावेन्द्रिय भी लब्धि और उपयोगके भेद से दो प्रकार की है । उन-उन इन्द्रियों को आवरण करनेवाले कर्मोंका जो क्षयोपशम है उसका नाम लब्धि है। एवं इन्द्रियोंका अपने २ विषयों के जानने रूप जो व्यापार है उसका नाम उपयोग है। आत्मामें लब्धि-जानने की योग्यता-होनेपर भी उसे निर्वृत्ति, उपकरण एवं उपयोग की अपेक्षा रहती है । लब्धि के होते हुए भी इनके विना आत्माको पदार्थ-

યદ્યપિ પુદ્ગલપરિણામાત્મક છે તો પણ તેનો જે ઇન્દ્રિય શબ્દથી વ્યવહાર કરેલ છે તેનું કારણ એ છે કે તે આત્માને પદાર્થજ્ઞાનમાં સહાયક છે, કારણકે દ્રવ્ય ઇન્દ્રિય વિના આત્માને પદાર્થજ્ઞાન થતું નથી, એજ કારણ છે કે વિગ્રહગતિમાં ભાવેન્દ્રિય થવાથી પણ દ્રવ્યેન્દ્રિય ના અભાવમાં જીવને બાહ્ય પદાર્થજ્ઞાન થતું નથી. દ્રવ્યેન્દ્રિય યદ્યપિ આત્માને પદાર્થજ્ઞાન કરાવવામાં સહાયક છે, તો પણ તે ભાવેન્દ્રિયના સહયોગ વિના પદાર્થબોધમાં આત્માનો સહાયક થઈ શકતો નથી.

આત્મપરિણતિરૂપ ભાવેન્દ્રિય પણ લબ્ધિ અને ઉપયોગના ભેદથી બે પ્રકારે છે તે તે ઇન્દ્રિયોના આવરણ કરનાર કર્મોના જે ક્ષયોપશમ છે તેનું નામ લબ્ધિ છે. ઇન્દ્રિયોના પોત-પોતાના વિષયોને જાણવા રૂપ જે વ્યાપાર છે તેનું નામ ઉપયોગ છે.

આત્મામાં લબ્ધિ-જાણવાની યોગ્યતા-હોવા છતાં તેને નિર્વૃત્તિ, ઉપકરણ, અને ઉપયોગની અપેક્ષા રહે છે. લબ્ધિના હોવા છતા પણ તેના વિના આત્માને પદાર્થ-

गस्यापेक्षेति विज्ञेयम् । अत्रायं विशेषः-श्रोत्रं द्वादशयोजनागतं शब्दं गृह्णाति, चक्षुरपि सातिरेकैकविंशतिलक्षयोजनस्थितं रूपं गृह्णाति, अन्यानि त्रीणीन्द्रियाणि नवयोजनागतस्वस्वविषयग्राहकाणि भवन्ति । जघन्यतस्तु चक्षुरङ्गुलसंख्येयभाग-मितदेशवर्तिरूपं गृह्णाति । अन्यानि चत्वारीन्द्रियाणि चाङ्गुलासंख्येयभागप्रमित-देशस्थितं स्वस्वविषयं गृह्णन्तीति भावः । तत्र श्रोत्रादीनां चतुर्णां प्राप्यकारित्वं, शब्दादिपुद्गलानां कर्णादिसंयोगेनैव निर्णयात् । चक्षुषश्चाप्राप्यकारित्वं रूपस्य संयोगं विना दूरत एव निश्चयादिति विशेषः ।

बोध नहीं होता है । इसी प्रकार निर्वृत्ति के होने पर भी उसे उपकरण और उपयोगकी अपेक्षा रहा करती है, और उपकरण के सद्भावमें उपयोग की । श्रोत्र-इन्द्रिय बारह योजन से आये हुए शब्द को ग्रहण करती है । चक्षु-इन्द्रिय कुछ अधिक २१ इक्कीस लाख योजन स्थित रूप को जानती है । बाकी की तीन इन्द्रियाँ नव योजन से आये हुए अपने २ विषय को ग्रहण करनेवाली होती हैं । यह उत्कृष्ट की अपेक्षा इन्द्रियों का विषय बतलाया है । जघन्य की अपेक्षा चक्षु-इन्द्रिय अङ्गुल के संख्यातवें भागमें स्थित रूपको ग्रहण करती है । बाकी की चार इन्द्रियाँ अङ्गुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण देशमें रहे हुए अपने २ विषय को जाननेवाली हैं ।

स्पर्शन, रसन, घ्राण और श्रोत्र, ये चार इन्द्रियाँ अपने २ पौद्गलिक विषयों को छू (स्पर्श) कर ही जानती हैं इस लिये ये प्राप्यकारी हैं ।

બોધ થતો નથી, એ પ્રકારે નિર્વૃત્તિ થવા છતાં પણ તેને ઉપકરણ અને ઉપયોગની અપેક્ષા રહે છે, અને ઉપકરણના સદ્ભાવમાં ઉપયોગની રહે છે

શ્રોત્ર ઇન્દ્રિય બાર યોજનથી આવેલા શબ્દને ગ્રહણ કરે છે. ચક્ષુઇન્દ્રિય કાંઇક અધિક એકવીસ લાખ યોજનથી રૂપ જાણે છે બાકીની ત્રણ ઇંદ્રિયો નવ યોજનથી આવેલાં પોત-પોતાનાં વિષયને ગ્રહણ કરી શકે છે. આ ઉત્કૃષ્ટની અપેક્ષા ઇન્દ્રિયોનો વિષય બતાવ્યો છે જઘન્યની અપેક્ષા ચક્ષુઇન્દ્રિય અંગુળના સંખ્યાતમાં ભાગમાં સ્થિત રૂપને ગ્રહણ કરે છે બાકીની ચાર ઇન્દ્રિયો અંગુલના અસંખ્યાતમાં ભાગ પ્રમાણ દેશમા રહેલાં પોત-પોતાનાં વિષયને જાણે છે.

સ્પર્શન, રસન, ઘ્રાણ અને શ્રોત્ર, આ ચાર ઇન્દ્રિયો પોત-પોતાનાં પૌદ્ગલિક વિષયોનો સ્પર્શ કરી જાણે છે માટે એ પ્રાપ્યકારી છે. ચક્ષુઇન્દ્રિય પોતાના વિષયને સ્પર્શ કર્યા વિના જાણી લે છે માટે તે અપ્રાપ્યકારી છે, અર્થાત્ આ

नन्विन्द्रियाण्येव वस्तु निर्णेतुं प्रभवन्तु किमधिकेनातिरिक्तात्मस्वीकारेणेति चेन्न, तत्तदिन्द्रियनाशेऽपि तत्तदिन्द्रियपूर्वानुभूतार्थस्मरणस्यान्यथानुपपत्त्याऽतिरिक्तस्यात्मनोऽवश्यं सिद्धेः। आत्मनो विज्ञानोत्पत्तौ श्रोत्रादीनि प्रकृष्टोपकारकाणि भवन्ति, तेन करणरूपकारकतया तृतीया विभक्तिः सिद्ध्यति, ततोऽनेन श्रोत्रेण मया शब्दः श्रुतः, अनेन च मन्दतरः शब्दः श्रुतः, इत्यादयः प्रयोगाः सङ्गच्छन्ते।

चक्षु-इन्द्रिय अपने विषय को विना छूए (स्पर्श किये) ही जान लेती है अतः वह अप्राप्यकारी है, अर्थात् यह इन्द्रिय अपने साथ अपने विषय का संयोग हुए विना दूरसे ही अपने रूप-विषय का प्रकाशक है।

शङ्का—इन्द्रियों को ही अपने २ विषयरूप ज्ञेय का निर्णय करनेवाली मानलेनी चाहिये, उनसे अतिरिक्त आत्माके माननेकी क्या आवश्यता है?।

उत्तर—यह बात कहना ठीक नहीं है, कारण कि-जब इन्द्रियाँ नष्ट हो जाती हैं तब उनके द्वारा पूर्वानुभूत पदार्थका स्मरण होता है। यदि इन्द्रियाँ ही पदार्थ की ज्ञाता मानी जायें तो फिर जो उनके विनाश होने पर अनुभूत पदार्थ की स्मृति होती है वह नहीं होनी चाहिये अतः अन्यथानुपपत्ति (जिसके नहीं होने पर नहीं होना) रूप अनुमान से इन्द्रियोंके अतिरिक्त आत्माके अस्तित्वकी सिद्धि होती है।

शङ्का—यदि इन्द्रियों से भिन्न आत्माके अस्तित्व की स्वीकृति मानी जावेगी तो फिर "चक्षुषा दृश्यते, श्रोत्रेण श्रूयते' इत्यादि जो व्यवहार होता है वह नहीं होना चाहिये।

ઇન્દ્રિય પોતાની સાથે પોતાના વિષયનો સંયોગ થયા વિના દૂરથી જ પોતાના રૂપ વિષયનો પ્રકાશક છે.

શંકા—ઇન્દ્રિયોનેજ પોત-પોતાના વિષયરૂપ જ્ઞેયનો નિર્ણય કરનાર માનવી જોઇએ એથી અતિરિક્ત આત્માને માનવાની શું આવશ્યકતા છે?

ઉત્તર—આમ કહેવું વ્યાજબી નથી. કારણકે જ્યારે ઇન્દ્રિયો નષ્ટ થાય છે ત્યારે તેના દ્વારા પૂર્વાનુભૂત પદાર્થનું સ્મરણ થાય છે. કદાચ ઇન્દ્રિયોનેજ પદાર્થની જ્ઞાતા માનવામાં આવે તો પછી જે તેના વિનાશ પછી અનુભૂત પદાર્થની સ્મૃતિ થાય છે તે થવી જોઇએ નહિ માટે અન્યથાનુપપત્તિ (જેના નહિ હોવાથી નથી થતું) રૂપ અનુમાનથી ઇન્દ્રિયોથી અતિરિક્ત આત્માના અસ્તિત્વની સિદ્ધિ થાય છે.

શંકા—કદાચ ઇન્દ્રિયોથી ભિન્ન આત્માના અસ્તિત્વની સ્વીકૃતિ માનવામાં આવે તો પછી "चक्षुषा दृश्यते, श्रोत्रेण श्रूयते" ઇત્યાદિ જે વ્યવહાર થાય છે તે થવો જોઇએ નહિ

नन्वेवं करणत्वादिन्द्रियस्वीकारे तु वाक्पाणिपादपायूपस्थानामपि करणत्वादिन्द्रियत्वमन्यत्र स्वीकृतमिहापि कुतो नाभिहितमिति चेन्न, आत्मनो विज्ञानोत्पत्तौ तेषां प्रकृष्टोपकारकत्वाभावादिन्द्रियत्वस्यासिद्धेः, सामान्यतः करणत्वादिन्द्रियत्वस्वीकारे तु स्वस्वव्यापारवत उदरादेरपि करणत्वादिन्द्रियत्वापत्तेश्च।

उत्तर—शङ्का ठीक है परन्तु विचारने पर स्वतः ही इस शङ्काका समाधान हो जाता है, क्योंकि इन्द्रियाँ आत्माके ज्ञानकी उत्पत्ति में प्रकृष्ट साधक हैं इस कारण वहा पर " चक्षुषा दृश्यते, श्रोत्रेण श्रूयते " इत्यादि में करण रूप कारक पने तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है। जभी ये आत्माके विज्ञानकी उत्पत्तिमें प्रकृष्ट उपकारक हैं तभी तो 'मैंने इस श्रोत्र इन्द्रियसे मन्द शब्द सुना और इस श्रोत्र इन्द्रियसे मन्दतर शब्द सुना-इत्यादि प्रयोग ठीक बैठ जाते हैं।

शङ्का—आत्माके विज्ञान रूप कार्यकी उत्पत्ति में अत्यन्त साधक होनेसे स्पर्शनादिकों को यदि आप इन्द्रिय रूपसे स्वीकार करते हैं तो फिर वाक्, पाणि, पाद, पायु (गुदा), और उपस्थ (जननेन्द्रिय), इन को भी इन्द्रियरूपसे आपको स्वीकार करना चाहिये, क्योंकि ये भी आत्माके अपने २ अनुरूप कार्यमें प्रकृष्ट साधक होते हैं इसीलिये सांख्य सिद्धान्तमें इन्हें इन्द्रियरूपसे स्वीकार किया है फिर आपने इन्हें इन्द्रियरूपसे यहां पर क्यों स्वीकार नहीं किया ?।

ઉત્તર—શંકા ઠીક છે, પરંતુ વિચારવાથી આપમેળે જ તે શંકાનુ સમાધાન થાય છે કારણકે ઇન્દ્રિયો આત્માને જ્ઞાનની ઉત્પત્તિમાં પ્રકૃષ્ટ સાધકો છે. આ કારણે ત્યા " चक्षुषा दृश्यते, श्रोत्रेण श्रुयते " ઇત્યાદિ કરણત્વ રૂપ કારકપણે ત્રીજી વિભક્તિનો પ્રયોગ થાય છે, માટે જ્યારે આત્માને વિજ્ઞાનની ઉત્પત્તિમાં પ્રકૃષ્ટ ઉપકારક છે તેથી જ મે આ શ્રોત્ર ઇન્દ્રિયથી મન્દ શબ્દ સાંભળ્યો અને આ શ્રોત્ર ઇન્દ્રિયથી મન્દતર શબ્દ સાંભળ્યો ઇત્યાદિ પ્રયોગ ઠીક બેસે છે.

શંકા—આત્માના વિજ્ઞાન રૂપ કાર્યની ઉત્પત્તિમાં અત્યન્ત સાધક હોવાથી સ્પર્શનાદિકોને કદાચ આપ ઇન્દ્રિય રૂપે સ્વીકાર કરો છો તો પછી વાક્ પાણિ, પાદ, પાયુ (ગુદા) અને જનનેન્દ્રિય આ સઘળાંને ઇન્દ્રિય રૂપે આપે સ્વીકારવાં જોઈએ કારણ કે આ બધા આત્માને પોત–પોતાના અનુરૂપ કાર્યથી પ્રકૃષ્ટ સાધક થાય છે માટે સાંખ્ય સિદ્ધાતમા તેઓને ઇન્દ્રિય રૂપે સ્વીકાર્યા છે તો પછી આપે ઇન્દ્રિય રૂપે આ ઠેકાણે કેમ સ્વીકાર ન કર્યો ?

ननु श्रोत्रेणैव रूपादीनामपि कथं न प्रत्यक्षमिति चेन्न, इन्द्रियाणां भिन्न-भिन्न-विषयकत्वेन तत्तदिन्द्रियेण स्वस्वविषयकातिरिक्तज्ञानासम्भवात् ।

उत्तर—यह कहना ठीक नहीं है, यहां पर तो आत्माके लिये जो विज्ञानकी उत्पत्तिमें अत्यन्त उपकारक हैं वे इन्द्रियाँ हैं और वे स्पर्शन आदि हैं, वाक् पाणि वगैरह सांख्यादि सिद्धान्तकी मानी हुई इन्द्रियाँ आत्माको विज्ञानकी उत्पत्तिमें श्रोत्र आदि की तरह प्रकृष्ट उपकारक नहीं हैं अतः उन वाक् आदि में इन्द्रियत्वका व्यपदेश ही सिद्ध नहीं होता। सामान्य रीतिसे जो यह बात मान ली जावे कि—जो करण होते हैं वे इन्द्रियां होती हैं अतःकरण होनेसे वाक् पाणि वगैरहमें भी इन्द्रियत्व स्वीकार करलेना चाहिये, तो फिर इस प्रकारसे आत्माके लिये अपने २ व्यापारमें निरत उदरादिक-पेट वगैर-को भी करण होने से इन्द्रिय मानना पडेगा, तब इन्द्रियोंकी जो सांख्यादि सिद्धान्तकारोंने ११ ग्यारह संख्या नियत की है वह सिद्ध नहीं होगी, इससे भी अधिक इन्द्रियां इस प्रकार सिद्ध होती हैं।

शङ्का—श्रोत्र इन्द्रियसे ही रूपादिक अन्य इन्द्रियों के विषयों का प्रत्यक्ष क्यों नहीं होता ?

उत्तर—यह कहना ठीक नहीं, कारण कि प्रत्येक इन्द्रिय का अपना२

ઉત્તર—આમ કહેવું ઠીક નથી. અહીંતો આત્માને જે વિજ્ઞાનની ઉત્પત્તિમાં અત્યન્ત ઉપકારક છે તે ઇન્દ્રિયો છે અને તે સ્પર્શનઆદિ છે. વાક્ (વાણી) પાણિ (હાથ), વિગેરે સાંખ્યાદિ સિદ્ધાંતની માનેલી ઇન્દ્રિયો આત્માને વિજ્ઞાનની ઉત્પત્તિમાં શ્રોત્ર આદિની માફક પ્રકૃષ્ટ ઉપકારક નથી માટે તે વાક્ આદિમાં ઇન્દ્રિયત્વનો વ્યપદેશ જ સિદ્ધ થતો નથી. સામાન્ય રીતિથી જો આ વાત માની લેવા આવે કે જે કરણ થાય છે તે ઇંદ્રિયો હોય છે માટે કરણ થવાથી વાક્, પાણિ વિગેરેમાં પણ ઇન્દ્રિયત્વનો સ્વીકાર કરવો જોઈએ તો પછી આ પ્રકારે આત્માને માટે પોત-પોતાના વ્યાપારમાં સાંમાન્ય રુપે કરણ થવાવાળાં ઉદરાદિક-પેટ વિગેરેનું પણ ઇન્દ્રિયપણુ માનવું પડે ત્યારે ઇંદ્રિયોની જે સાખ્ય સિદ્ધાન્તકારોએ અગીયાર સખ્યા નક્કી કરેલ છે તે સિદ્ધ થતી નથી, તેથી પણ અધિક ઇન્દ્રિયો આવી રીતે સિદ્ધ થાય છે.

શંકા—શ્રોત્ર ઇન્દ્રિયથી જ રૂપાદિક અન્ય ઇન્દ્રિયોના વિષયોની પ્રત્યક્ષ કેમ થતાં નથી?

ઉત્તર—આમ કહેવું ઠીક નથી. કારણકે પ્રત્યેક ઇન્દ્રિયને પોત-પોતાનો વિષય

नन्वेवं तर्हि रसप्रतीतिकाले शीतोष्णकर्कशकठोरादिस्पर्शज्ञानमपि कथं भवतीति चेदाह—स्पर्शनेन्द्रियस्य सर्वव्यापित्वेन रसनेन्द्रियप्रदेशेऽपि तस्य सत्त्वेन रसप्रतीतिकालेऽपि स्पर्शज्ञानस्य सुलभत्वात् ।

ननु श्रोत्रादिवन्मनसः कुतो नेन्द्रियत्वमिति चेदाह—

विषय नियत है अतः वह दूसरे विषयकी ग्राहक नहीं हो सकती। शास्त्रकार भी तो यही कहते हैं कि इन्द्रियाँ भिन्न२ विषयवाली हैं इस लिये वे अपने२ विषयके सिवाय अन्य इन्द्रियोंके विषयकी बोधक नहीं होती हैं।

शङ्का—यदि यही बात स्वीकार की जावे तो फिर रसना इन्द्रिय से रसके ज्ञानके समयमें शीत, उष्ण, कर्कश, कठोरादिक स्पर्शका जो ज्ञान होता है वह कैसे होगा ?

उत्तर—स्पर्शन इन्द्रिय सर्व व्यापक है इसलिये रसना इन्द्रियके प्रदेशमें भी उसकी सत्ता होने से रस प्रतीतिके समयमें भी स्पर्शके ज्ञानकी सुलभता होती है।

शङ्का—जिस प्रकार श्रोत्रादिकों में इन्द्रियत्वका व्यपदेश होता है उसी प्रकार मनमें भी इन्द्रियत्वका व्यपदेश क्यों नहीं होता है ?।

उत्तर—श्रोत्रादिक इन्द्रियाँ अपने२ विषयको ग्रहण करनेमें जिस प्रकार स्वतन्त्र हैं उस प्रकार मन नहीं है, क्योंकि वह उन इन्द्रियोंका

નિયત છે તેથી તે બીજા વિષયની ગ્રાહક બનતી નથી. શાસ્ત્રકાર પણ એમ કહે છે કે ઇન્દ્રિયો ભિન્ન ભિન્ન વિષયવાળી છે માટે તેઓ પોત-પોતાના વિષય સિવાય અન્ય ઇન્દ્રિયોના વિષયની બોધક થતી નથી.

શંકા—માનો, આ વાત સ્વીકારવામાં આવે તો પછી રસના ઇન્દ્રિયથી રસના જ્ઞાનનાં સમયમાં શીત, ઉષ્ણ, કર્કશ, કઠણાદિક સ્પર્શનું જે જ્ઞાન થાય છે તે કેમ થાય છે ?

ઉત્તર—સ્પર્શન ઇન્દ્રિય સર્વવ્યાપક છે, માટે રસના ઇન્દ્રિયના પ્રદેશમાં પણ તેની સત્તા હોવાથી રસપ્રતીતિના સમયમાં પણ સ્પર્શના જ્ઞાનની સુલભતા થાય છે

શંકા—જે પ્રકારે શ્રોત્રાદિકોમાં ઇન્દ્રિયના વ્યપદેશ થાય છે તેમ મનમાં પણ ઇન્દ્રિયત્વનો વ્યપદેશ કેમ થતો નથી ?

ઉત્તર—શ્રોત્રાદિક ઇન્દ્રિયો પોત-પોતાના વિષયો ગ્રહણ કરવામાં જે પ્રકારે સ્વતંત્ર છે તે પ્રકારે મન નથી. કારણકે તે તે ઇન્દ્રિયોનું ઉપકારક માત્ર

श्रोत्रादीनि च शब्दादिविषयग्रहणे स्वतन्त्राणि सन्ति, मनस्तु तेषामुपकारिमात्रं, स्वतन्त्रतया तस्य पदार्थनिर्णायकत्वाभावात्। यतस्तत्तदिन्द्रियनिर्णीतपदार्थ एव तस्य प्रवृत्तिर्भवति नातस्तस्येन्द्रियत्वं भवितुमर्हति। एकस्मिंश्च समय एकेनेन्द्रियेणैक एवोपयोगो भवति, एकसमये उपयोगद्वयासम्भवात्।

नन्वेवं तर्हि पर्पट ('पापड' इति भाषाप्रसिद्धपदार्थ) भक्षणकाले पञ्चभिरिन्द्रियैः सर्वं ज्ञानं भवति यथा-श्रोत्रेण शब्दं शृणोति, चक्षुषा रूपं पश्यति, घ्राणेन

उपकारक मात्र है। यह विना इन्द्रियोंसे जाने पदार्थ का स्वतन्त्र रूपसे निर्णायक नहीं होता है, क्योंकि भिन्न भिन्न इन्द्रियों से निर्णीत पदार्थ में ही उसकी प्रवृत्ति होती है इसलिये उसमें स्वतन्त्र रूपसे इन्द्रियपना नहीं है। एक समय में एक इन्द्रियसे एक ही उपयोग होता है-एक समयमें दो उपयोग नहीं होते।

शङ्का—यदि एक समयमें दो उपयोग नहीं होते हैं तो फिर जिस समय पापड़ खाया जाता है उस समय जो पञ्चेन्द्रिय-जन्य उसका ज्ञान होता है वह नहीं होना चाहिये ?, देखिये-खाते समय पापडकी चर-चर आवाज होती है अतः इस शब्द का श्रोत्रेन्द्रियसे प्रत्यक्ष होता है, उस समय चक्षु-इन्द्रिय उसके रूपकी बोधिका होती है। घ्राण-इन्द्रिय उसके गन्धकी, रसना-इन्द्रिय उसके रसकी और स्पर्शन-इन्द्रिय उसके कर्कश कठोर आदि स्पर्श को बोधिका होती है। ये प्रत्येक इन्द्रियसे एक ही समयमें उस२ विषयके भिन्न२ बोध होते हैं, सो क्यों होते हैं ?।

છે, તે ઇન્દ્રિયોથી જાણ્યા વગર પદાર્થનો સ્વતંત્ર રૂપે નિર્ણાયક થતું નથી, કારણકે જુદી જુદી ઇન્દ્રિયોથી નિર્ણીત પદાર્થમા જ તેની પ્રવૃત્તિ છે માટે તેમા સ્વતંત્ર રૂપે ઇન્દ્રિયપણુ નથી. એક સમયમાં એક ઇન્દ્રિયથી એક જ ઉપયોગ થાય છે. એક સમયમાં બે ઉપયોગ થતા નથી.

શંકા—કદાચ એક સમયમા બે ઉપયોગ થતા નથી તો પછી જે વખતે પાપડ ખાવામા આવે છે તે સમયે જે પચેન્દ્રિયજન્ય તેનું જ્ઞાન છે તે ન હોવું જોઈએ ? દેખો, ખાતી વખતે પાપડનો ચર-ચર અવાજ થાય છે અને તે શબ્દ શ્રોત્રેન્દ્રિયથી પ્રત્યક્ષ છે તે વખતે ચક્ષુઇન્દ્રિય તેના રૂપની બોધક થાય છે, ઘ્રાણઇન્દ્રિય તેના ગંધની, રસના ઇન્દ્રિય તેના રસની, અને સ્પર્શન ઇન્દ્રિય તેના કર્કશ કઠણ આદિ સ્પર્શની બોધક થાય છે તે પ્રત્યેક ઇન્દ્રિયથી એક જ સમયમા તે તે વિષયનો ભિન્ન ભિન્ન બોધ થાય છે તો શા માટે થાય છે ?

नन्वेवं तर्हि रसप्रतीतिकाले शीतोष्णकर्कशकठोरादिस्पर्शज्ञानमपि कथं भवतीति चेदाह—स्पर्शनेन्द्रियस्य सर्वव्यापित्वेन रसनेन्द्रियप्रदेशेऽपि तस्य सत्त्वेन रसप्रतीतिकालेऽपि स्पर्शज्ञानस्य सुलभत्वात् ।

ननु श्रोत्रादिवन्मनसः कुतो नेन्द्रियत्वमिति चेदाह—

विषय नियत है अतः वह दूसरे विषयकी ग्राहक नहीं हो सकती। शास्त्रकार भी तो यही कहते हैं कि इन्द्रियाँ भिन्न२ विषयवाली हैं इस लिये वे अपने२ विषयके सिवाय अन्य इन्द्रियोंके विषयकी बोधक नहीं होती हैं।

शङ्का—यदि यही बात स्वीकार की जावे तो फिर रसना इन्द्रिय से रसके ज्ञानके समयमें शीत, उष्ण, कर्कश, कठोरादिक स्पर्शका जो ज्ञान होता है वह कैसे होगा ?

उत्तर—स्पर्शन इन्द्रिय सर्व व्यापक है इसलिये रसना इन्द्रियके प्रदेशमें भी उसकी सत्ता होने से रस प्रतीतिके समयमें भी स्पर्शके ज्ञानकी सुलभता होती है।

शङ्का—जिस प्रकार श्रोत्रादिकों में इन्द्रियत्वका व्यपदेश होता है उसी प्रकार मनमें भी इन्द्रियत्वका व्यपदेश क्यों नहीं होता है ?।

उत्तर—श्रोत्रादिक इन्द्रियाँ अपने२ विषयको ग्रहण करनेमें जिस प्रकार स्वतन्त्र हैं उस प्रकार मन नहीं है, क्योंकि वह उन इन्द्रियोंका

નિયત છે તેથી તે બીજા વિષયની ગ્રાહક બનતી નથી. શાસ્ત્રકાર પણ એમ કહે છે કે ઇન્દ્રિયો ભિન્ન ભિન્ન વિષયવાળી છે માટે તેઓ પોત-પોતાના વિષય સિવાય અન્ય ઇન્દ્રિયોના વિષયની બોધક થતી નથી.

શંકા—માનો, આ વાત સ્વીકારવામાં આવે તો પછી રસના ઇન્દ્રિયથી રસના જ્ઞાનનાં સમયમા શીત, ઉષ્ણ, કર્કશ, કઠણાદિક સ્પર્શનું જે જ્ઞાન થાય છે તે કેમ થાય છે ?

ઉત્તર—સ્પર્શન ઇન્દ્રિય સર્વવ્યાપક છે, માટે રસના ઇન્દ્રિયના પ્રદેશમાં પણ તેની સત્તા હોવાથી રસપ્રતીતિના સમયમાં પણ સ્પર્શના જ્ઞાનની સુલભતા થાય છે.

શંકા—જે પ્રકારે શ્રોત્રાદિકોમાં ઇન્દ્રિયના વ્યપદેશ થાય છે તેમ મનમાં પણ ઇન્દ્રિયત્વનો વ્યપદેશ કેમ થતો નથી ?

ઉત્તર—શ્રોત્રાદિક ઇન્દ્રિયો પોત-પોતાના વિષયો ગ્રહણ કરવામા જે પ્રકારે સ્વતન્ત્ર છે તે પ્રકારે મન નથી. કારણકે તે તે ઇન્દ્રિયોનું ઉપકારક માત્ર

श्रोत्रादीनि च शब्दादिविषयग्रहणे स्वतन्त्राणि सन्ति, मनस्तु तेषामुपकारिमात्रं, स्वतन्त्रतया तस्य पदार्थनिर्णायकत्वाभावात्। यतस्तत्तदिन्द्रियनिर्णीतपदार्थ एव तस्य प्रवृत्तिर्भवति नातस्तस्येन्द्रियत्वं भवितुमर्हति। एकस्मिंश्च समय एकेनेन्द्रियेणैक एवोपयोगो भवति, एकसमये उपयोगद्वयासम्भवात्।

नन्वेवं तर्हि पर्पट ('पापड' इति भाषाप्रसिद्धपदार्थ) भक्षणकाले पञ्चभिरिन्द्रियैः सर्वं ज्ञानं भवति यथा-श्रोत्रेण शब्दं शृणोति, चक्षुषा रूपं पश्यति, घ्राणेन

उपकारक मात्र है। यह विना इन्द्रियोंसे जाने पदार्थ का स्वतन्त्र रूपसे निर्णायक नहीं होता है, क्योंकि भिन्न भिन्न इन्द्रियों से निर्णीत पदार्थ में ही उसकी प्रवृत्ति होती है इसलिये उसमें स्वतन्त्र रूपसे इन्द्रियपना नहीं है। एक समय में एक इन्द्रियसे एक ही उपयोग होता है-एक समयमें दो उपयोग नहीं होते।

शङ्का—यदि एक समयमें दो उपयोग नहीं होते हैं तो फिर जिस समय पापड़ खाया जाता है उस समय जो पञ्चेन्द्रिय-जन्य उसका ज्ञान होता है वह नहीं होना चाहिये?, देखिये-खाते समय पापडकी चर-चर आवाज होती है अतः इस शब्द का श्रोत्रेन्द्रियसे प्रत्यक्ष होता है, उस समय चक्षु-इन्द्रिय उसके रूपकी बोधिका होती है। घ्राण-इन्द्रिय उसके गन्धकी, रसना-इन्द्रिय उसके रसकी और स्पर्शन-इन्द्रिय उसके कर्कश कठोर आदि स्पर्श को बोधिका होती हैं। ये प्रत्येक इन्द्रियसे एक ही समयमें उस२ विषयके भिन्न२ बोध होते हैं, सो क्यों होते हैं?।

છે, તે ઇન્દ્રિયોથી જાણ્યા વગર પદાર્થનો સ્વતંત્ર રૂપે નિર્ણાયક થતું નથી, કારણકે જુદી જુદી ઇન્દ્રિયોથી નિર્ણીત પદાર્થમાં જ તેની પ્રવૃત્તિ છે. માટે તેમાં સ્વતંત્ર રૂપે ઇન્દ્રિયપણુ નથી એક સમયમાં એક ઇન્દ્રિયથી એક જ ઉપયોગ થાય છે. એક સમયમાં બે ઉપયોગ થતા નથી.

શંકા—કદાચ એક સમયમા બે ઉપયોગ થતા નથી તો પછી જે વખતે પાપડ ખાવામા આવે છે તે સમયે જે પંચેન્દ્રિયજન્ય તેનું જ્ઞાન છે તે ન હોવુ જોઈએ? દેખો, ખાતી વખતે પાપડનો ચર-ચર અવાજ થાય છે અને તે શબ્દ શ્રોત્રેન્દ્રિયથી પ્રત્યક્ષ છે તે વખતે ચક્ષુઇન્દ્રિય તેના રૂપની બોધક થાય છે, ઘ્રાણઇન્દ્રિય તેના ગંધની, રસના ઇન્દ્રિય તેના રસની, અને સ્પર્શન ઇન્દ્રિય તેના કર્કશ કઠણુ આદિ સ્પર્શની બોધક થાય છે તે પ્રત્યેક ઇન્દ્રિયથી એક જ સમયમા તે તે વિષયનો ભિન્ન ભિન્ન બોધ થાય છે તો શા માટે થાય છે?

गन्धं जिघ्रति, रसनेन रसमास्वादयति, स्पर्शनेन कर्कशकठोरादिकं स्पृशति, इति कथमेकस्मिन् समये शब्दादिविषयकज्ञानं संजायते? इति चेन्न, समयभेदेऽपि कमलपत्रशतवेधनवत्सूक्ष्मतया तस्य ज्ञातुमशक्यत्वात् ।

एष चोपयोगक्रमः—आत्मा मनसा युज्यते, मनश्चेन्द्रियेण, इन्द्रियाणि च विषयसंयुक्तानि भूत्वा तत्तद्विषयग्राहकाणि भवन्ति, अतो मनसोऽन्तःकरणत्वं सर्वानुगामित्वञ्चोपपद्यते ॥

उत्तर—इन पांच इन्द्रियों से होने वाले ज्ञानोंमें भी समयका भेद अवश्य है परन्तु यह समयका भेद अति सूक्ष्म होनेसे जाना नहीं जाता है। जिस प्रकार कमलके सैंकडों पत्ते तीर के ऊपर रखकर वेधने से वे 'एक साथ ही विंध गये' ऐसा बोध होता है परन्तु वे एक साथ नहीं विंधे, एक साथ विंधनेका उनमें भ्रम ही होता है, क्रम-क्रमसे ही वे विंधते हैं परन्तु उनके विंधनेका समय अति सूक्ष्म होनेसे उसमें क्रमिकताका बोध नहीं होता। उपयोगका क्रम इस प्रकार है—आत्मा मनसे संबंधित होता है, मन इन्द्रियों से, इन्द्रियाँ पदार्थोंसे संबंधित होकर अपने२ विषयकी ग्राहक होती हैं; इसीलिये मनका, 'अन्तःकरण' यह संज्ञा सार्थक है, क्योंकि यह अन्तरङ्ग करण है और इन्द्रियाँ बहिरंग करण हैं। प्रत्येक इन्द्रियके साथ इसका क्रम२ से ही गमनरूप सम्बन्ध है इसलिये यह सर्वानुगामी है।

ઉત્તર:—આ પાંચ ઇન્દ્રિયોથી થવાવાળાં જ્ઞાનમા પણ સમયનો ભેદ અતિ સૂક્ષ્મ હોવાથી જાણી શકાતો નથી. જેમ કમલના સેંકડો પત્તા વિંધવાથી તે 'એક સાથ જ વિંધાઈ ગયા' એવો બોધ થાય છે, પરંતુ તેઓ એકી સાથ વિંધાએલ નથી, એકી સાથ વિંધાવાનો તેમાં ખાલી ભ્રમજ છે. ક્રમ ક્રમથીજ તે વિંધાય છે, પરંતુ તેના વિંધાવાનો સમય અતિ સૂક્ષ્મ હોવાથી તેમાં ક્રમિકતાનો બોધ થતો નથી ઉપયોગનો ક્રમ આ પ્રકારેઃ- છે. આત્મા મનથી સંબંધિત છે, મન ઇન્દ્રિયોથી ઇન્દ્રિયો પદાર્થોથી સંબંધિત થઈ પોત-પોતાના વિષયની ગ્રાહક થાય છે માટે મનની 'અંત:કરણ' એ સંજ્ઞા સાર્થક છે, કારણકે તે અન્તરંગ કરણ છે અને ઇન્દ્રિયો બહિરંગ કરણ છે. પ્રત્યેક ઇન્દ્રિયની સાથ તેનો ક્રમ-ક્રમથી જ ગમન રૂપ સંબંધ છે માટે તે સર્વાનુગામી છે.

इन्द्रियविषयको विचारो गतः, साम्प्रतं प्रकृतार्थमनुसरामः। वृद्धावस्थायां रोगोदये च सर्वेषामिन्द्रियाणां स्वस्वसामर्थ्यहीनतामवलोक्य स प्राणी मौढ्यमापद्यते, इति दर्शयति-'अभिक्रान्तं च खलु वयः सम्प्रेक्ष्य स एकदा मूढभावं जनयति' इति। प्राणिनां कालकृता बाल्ययौवनादिरूपा शरीरावस्था वयस्तत् अभिक्रान्तम्-अतिक्रान्तम्, यद्वा अभि=जरामृत्यू अभिमुखीकृत्य क्रान्तं=प्राप्तं, तिस्रो हि मानवानामवस्था भवन्ति, तासु च बाल्य-यौवनद्वयमतीतं विलोक्य सकलेन्द्रियसामर्थ्यस्य क्षीणतां मृत्युकालसामीप्यञ्च समालोच्य ततः=तदनन्तरं स प्राणी, एकदा=वृद्धाव-

---

यहां तक इन्द्रिय सम्बन्धी विचार किया, अब प्रकृत अर्थका प्रतिपादन करते हैं—

वृद्धावस्था में अथवा किसी के रोगादि कारण जब यह प्राणी समस्त इन्द्रियोंको अपने२ विषयोंके ग्रहण करने में शक्तिविकल देखता है, तब यह कर्त्तव्यमूढ बन जाता है, इस बातका वर्णन करते हैं-" अभिक्कंतं च खलु वयं " इत्यादि।

प्राणियोंकी कालकृत जो बाल्य-यौवनादि रूप अवस्था होती है उसका नाम वय है, उसको अभिक्रान्त-अभि=जरा और मृत्युके संमुख क्रान्त=प्राप्त देखकर यह प्राणी एकदा=वृद्धावस्था अथवा रोगोदयमें मूढभाव=कर्त्तव्याकर्त्तव्यके विवेककी शून्यताको प्राप्त होता है।

प्राणियोंकी तीन प्रकार की अवस्थाएँ हैं-एक बाल्यावस्था, दूसरी यौवनावस्था, और तीसरी वृद्धावस्था। इनमें बाल्य और तरुण अव-

---

આટલે સુધી ઈન્દ્રિયસંબંધી વિચાર કર્યો, હવે પ્રકૃત અર્થનું પ્રતિપાદન કરે છે.

વૃદ્ધાવસ્થામાં અથવા કોઈ રોગાદિક કારણે જ્યારે પ્રાણી સમસ્ત ઈન્દ્રિયોને પોતપોતાના વિષયોને ગ્રહણ કરવામાં શક્તિવિકલ દેખે છે ત્યારે તે કર્તવ્યમૂઢ બને છે. આ વાતનું વર્ણન કરે છે. " **अभिक्कंतं च खलु वयं** " ઇત્યાદિ।

પ્રાણિયોની કાલકૃત જે બાલ્ય-યૌવનાદિરૂપ અવસ્થા છે તેનું નામ વય છે. તેનું અભિક્રાન્ત-અભિ=જરા અને મૃત્યુના સંમુખ ક્રાન્ત=પ્રાપ્ત દેખીને પ્રાણી એકદા-વૃદ્ધાવસ્થા અથવા રોગોદયમાં કર્ત્તવ્યા-કર્ત્તવ્યના વિવેકની શૂન્યતાને પ્રાપ્ત થાય છે.

પ્રાણીઓની ત્રણ પ્રકારની અવસ્થા છે એક બાલ્યાવસ્થા, બીજી યૌવનાવસ્થા અને ત્રીજી વૃદ્ધાવસ્થા, તેમાં બાલ્ય અને તરૂણ અવસ્થાને વ્યતીત દેખીને

स्थायां रोगोदये चात्मनो मूढतां=कर्तव्याकर्तव्यविचारशून्यतां जनयति=अज्ञानभावं प्राप्नोतीत्यर्थः। प्रतिसमयं श्रोत्र-चक्षु-घ्राण-रसन-स्पर्शन-विज्ञानैः सकलैरेकैकशो वा, देशतः सर्वतो वा नश्यमानैः करणरूपैः कर्तव्यमूढो भवति।

यद्वा-'सोयपरिण्णाणेहिं, परिहीयमाणेहिं' इत्यादौ प्रथमार्थे तृतीयाऽऽर्षत्वात्तदा तानि परिज्ञानानि क्षीयमाणानि कर्तृरूपाणि मूढतां जनयन्तीत्यर्थो भवति।

स्थाको व्यतीत देखकर वृद्धावस्था को सकल इन्द्रियोंकी शक्तिसे रिक्त, एवं मृत्युकाल के समीप आई हुई देख कर उस कालमें यह प्राणी मूढ भावको प्राप्त होता रहता है-'मेरा कर्त्तव्य क्या है और अकर्त्तव्य क्या है' इस बातका उस समय विचार ही जाता रहता है। उस समय श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना और स्पर्शन, ये समस्त इन्द्रियाँ अपने२ विषयके ज्ञानसे क्रम२ करके अथवा एकही साथ, या कुछ-कुछ अंशमें रिक्त हो जाती हैं फिर इसे कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यका भान भी कैसे हो सकता है, क्योंकि कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का भान इन्द्रियों द्वारा ही ग्रहण किये हुए विषयोंमें मानसिक विचारधारा से होता है। जब वे इन्द्रियाँ अपने२ विषयके बोधसे विकल बनजाती हैं तब उनके विषयों में जो मानसिक विचारधारा बंधती थी वह कैसे बंध सकेगी? अतः यह उस समय इस प्रकार के बोधसे रहित होकर एक तरह का उन्मत्त जैसा कर्त्तव्यमूढ हो जाता है।

अथवा-आर्षवाक्य होने से-"सोयपरिण्णाणेहिं परिहीयमाणेहिं"

વૃદ્ધાવસ્થાને સકળ ઇન્દ્રિયની શક્તિથી રિક્ત અને મૃત્યુકાળ નજીક આવેલી દેખીને આ કાળમાં પ્રાણી મૂઢ ભાવને પ્રાપ્ત થાય છે. 'મારૂં કર્ત્તવ્ય શુ છે અને અકર્ત્તવ્ય શું છે' એ વાતનો તે સમયે તેવો વિચાર જ વિસરાય જાય છે, તે વખતે શ્રોત્ર, ચક્ષુ, ઘ્રાણુ, રસના અને સ્પર્શન, આ બધી ઈન્દ્રિયો પોતપોતાના વિષયના જ્ઞાનથી ક્રમે ક્રમે અથવા એકી સાથે, અથવા થોડા થોડા અંશમાં રિક્ત થાય છે. પછી તેને કર્ત્તવ્ય અને અકર્ત્તવ્યનું ભાન કેવી રીતે રહે, કારણ કે કર્ત્તવ્ય અકર્ત્તવ્યનું ભાન ઈન્દ્રિયોદ્વારા જ ગ્રહણ કરેલાં વિષયોમાં માનસિક વિચારધારાથી થાય છે, જ્યારે આ ઈન્દ્રિયો પોતપોતાના વિષયના બોધથી વિકલ બને છે ત્યારે તેના વિષયોમાં જે માનસિક વિચારધારા બંધાતી હતી તે કેવી રીતે બંધાઈ શકે? માટે તે વખતે તે આ પ્રકારના બોધથી રહિત થઈને એક પ્રકારનો ઉન્મત્ત અને કર્ત્તવ્યમૂઢ થાય છે.

અથવા—આર્ષવાકય હોવાથી-सोयपरिण्णाणेहिं परिहीयमाणेहिं" ઈત્યાદિ

वृद्धो हि सन्ततं चिन्तानुतप्तः प्रणष्टेन्द्रियसामर्थ्यः क्षुत्पिपासातुरस्तरुणाग्रसानतृष्णाभिभूतः कल्याणसरणिविच्युतो भवतीति तात्पर्य्यम् ॥ २ ॥

वृद्धावस्थायां कीदृशी दशा जायते? इत्याह–' जेहिं वा सद्धिं ' इत्यादि ।

मूलम्–जेहिं वा सद्धिं संवसइ तेऽवि णं एगया नियगा पुव्विं परिवयंति, सोऽवि ते नियए पच्छा परिवएज्जा, नालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा, तुमंपि तेसिं नालं ताणाए वा सरणाए वा, से न हासाए, न किड्डाए, न रईए, न विभूसाए ॥ ३ ॥

छाया—यैर्वा सार्द्धं संवसति तेऽपि खलु एकदा निजकाः पूर्वं परिवदन्ति, सोऽपि तान् निजकान् पश्चात्परिवदति, नालं ते तव त्राणाय वा शरणाय वा, त्वमपि तेषां नालं त्राणाय वा शरणाय वा, स न हासाय, न क्रीडायै, न रतये, न विभूषायै ॥ ३ ॥

इत्यादि वाक्यों में प्रथमा विभक्ति के स्थानमें तृतीया विभक्ति का प्रयोग किया है। अतः प्रथमा विभक्ति का आश्रय लेकर उसका अर्थ इस प्रकार होगा-नष्ट होनेवाले वे श्रोत्रादिक-परिज्ञान, उस समय-वृद्धावस्था या रोगोदयमें इस जीवको कर्त्तव्यमूढ बना देते हैं, क्योंकि वृद्ध उस समय निरन्तर चिन्तासे जलता रहता है, उसके प्रत्येक इन्द्रिय की शक्ति नष्ट हो जाती है, वह क्षुधा तृषासे पीडित रहता है, उसके तृष्णा की वृद्धि होती रहती है, ऐसी हालतमें उसे आत्मकल्याण की बात ही नहीं सुहाती, अतः वह कल्याणमार्गसे बहुत ही दूर रहता है, अर्थात् वह आत्मकल्याण नहीं कर सकता ॥ २ ॥

વાક્યોમાં પ્રથમા વિભક્તિના સ્થાનમાં ત્રીજી વિભક્તિનો પ્રયોગ કરેલ છે, માટે પ્રથમા વિભક્તિનો આશ્રય લઈ તેનો અર્થ આ પ્રકાર થશે-નષ્ટ થનારા તે શ્રોત્રાદિક-પરિજ્ઞાન તે વખત-વૃદ્ધાવસ્થા અગર રોગોદયમાં જીવને કર્ત્તવ્યમૂઢ બનાવે છે, કારણ કે વૃદ્ધ તે વખતે નિરંતર ચિન્તાથી બળતો રહે છે. તેની પ્રત્યેક ઈન્દ્રિયની શક્તિ નષ્ટ થાય છે, તે ક્ષુધા તૃષાથી પીડિત રહે છે. તેના તૃષ્ણાની વૃદ્ધિ થતી જ રહે છે. આવી હાલતમાં તેને આત્મકલ્યાણની વાત જ સારી લાગતી નથી માટે તે કલ્યાણ માર્ગથી ઘણો દૂર રહે છે. અર્થાત્ તે આત્મકલ્યાણ કરી શકતો નથી ૨

टीका—"यैर्वा सार्द्धं संवसति" इति, वा-शब्दोऽर्थान्तरसूचकः तेन यैः सह न संवसति ते परिवदन्तीति किमाश्चर्यं, परं यैर्वा सार्द्धं संवसति तेऽपि निन्दन्तीत्यर्थः। यैर्वा पुत्रभ्रातृभार्यादिभिः सार्द्धं=सह संवसति=सानुरागं निवसति यान् यौवनावस्थायां सर्वथा धनोपार्जनादिना परमादरेणोपकृत्य पुपोषेत्यर्थः। तेऽपि

वृद्धावस्थामें इस जीवकी कैसी दशा हो जाती है इसके लिये कहते हैं-"जेहिं वा सद्धिं" इत्यादि।

मूलार्थ—जिनके साथ यह रहता है वे आत्मीय जन भी वृद्धावस्थामें अथवा रोगादिके समयमें इसका तिरस्कार करने लग जाते हैं। यह भी उन आत्मीय जनोंकी उस हालतमें निन्दा करने लग जाता है इसलिये हे आत्मन्! वे परिचित बन्धु तेरी रक्षा करनेके लिये, तुझे शरण देनेके लिये समर्थ नहीं हैं, और न तू भी उन अपने परिचित बन्धुओंकी रक्षा करनेके लिये, उन्हें शरण प्रदान करनेके लिये समर्थ है। उस अवस्थामें वह वृद्ध न हास्यके योग्य होता है न क्रीडाके लायक रहता है, न रतिमें समर्थ होता है और न विभूषाके लायक रहता है॥ ३॥

"यैर्वा सार्धं संवसति" यहां जो वा शब्द है वह अर्थान्तर का सूचक है, इससे यह बात प्रकट होती है कि यह जिनके साथ नहीं रहता है वे यदि इसका तिरस्कार या इसकी निन्दा करते हैं तो कोई अचरज की बात नहीं है, परन्तु आश्चर्य तो इस बातका है कि चिरपालित जिन

વૃદ્ધાવસ્થામાં આ જીવની કેવી દશા થઈ જાય છે તેના માટે કહે છેઃ- "जेहिं वा सद्धिं" ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ-જેની સાથે તે રહે છે તે આત્મીયજન પણ વૃદ્ધાવસ્થામાં અથવા રોગાદિક સમયમાં તેનો તિરસ્કાર કરવા લાગી જાય છે. તે પણ તે આત્મીયજનોની તેવી હાલતમાં નિંદા કરવા લાગી જાય છે. માટે હે આત્મન્! તે પરિચિત બંધુ તારી રક્ષા કરવા માટે, તને શરણ દેવામાં સમર્થ નથી, અને તુ પણ પોતાના પરિચિત બંધુઓની રક્ષા કરવામાં તેમજ શરણ દેવામાં સમર્થ નથી તે અવસ્થામાં તે વૃદ્ધ હાસ્યને યોગ્ય હોતો નથી, તેમજ ક્રીડાને લાયક પણ રહેતો નથી, અને રતિમા પણ સમર્થ થતો નથી, તેમજ વિભૂષાને લાયક પણ રહેતો નથી.

"यैर्वा सार्धं संवसति" આ ઠેકાણે જે वा શબ્દ છે તે અર્થાન્તરનુ સૂચક છે તેથી એ વાત પ્રગટ થાય છે કે-એ જેની સાથે નહિ રહેતા તે કદાચ તેનો તિરસ્કાર અગર તેની નિંદા કરે તો કોઈ અચરજની વાત નથી, પરંતુ આશ્ચર્ય તો એ વાતનુ છે કે ચિરપાલિત જે પુત્ર ભાઈ અને સ્ત્રી સાથે તે ઘણા અનુ-

खलु एकदा निजकाः पूर्वं परिवदन्तीति, ते चिरपरिपालिता अपि स्त्रीपुत्रभृत्यादयः खलु=निश्चयेन एकदा=वृद्धावस्थायां रोगोदये च निजकाः=आत्मीयाः परिवदन्ति= तिरस्कुर्वन्तीत्यर्थः। तं पूर्वोपकारिणं वृद्धं सम्प्रति शत्रुमिव मन्यन्त इति भावः। "अयं वाचालः परुषवाग् न म्रियते, नापि मौनं तिष्ठति, नापि स्थानान्तरं गच्छति,

पुत्र भाई और भार्या के साथ यह बड़े अनुरागसे रहता है, और जिनका इसने अपनी जवानी अवस्थाके समय सर्व प्रकारसे धनादिक के अर्जन द्वारा बड़े आदरके साथ संरक्षण किया है, पालन-पोषण किया है ऐसे वे आत्मीय जन भी अपने इस उपकारी जनका इस वृद्धावस्थामें, अथवा इसके रोगाक्रान्त हो जाने पर तिरस्कार करने लगते हैं, वे इसके प्रति इस प्रकारसे व्यवहार करते हैं जैसे कोई अपने शत्रुके साथ व्यवहार करता है। नौकर चाकर भी इसकी एक भी बात नहीं सुनना चाहते हैं, अथवा सुनकर भी वे उसकी बातका कोई महत्त्व ही नहीं समझते। घरवाले उस समय यही कहते हैं कि-इसकी इस अवस्थामें बुद्धि मारी गई है, 'साठ वर्षमें मनुष्यकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है' यह बात सत्य है, इसे बोलने तकका भी अब तमीज नहीं है-रात दिन बड़बडाता ही रहता है, हर एकसे यद्वा-तद्वा कठोर वचन बोल दिया करता है, क्या करें, इसे मौत भी नहीं आती है, इससे हजारों बार कह दिया है कि ज्यादा मत बोला करो, चुप रहा करो, परन्तु यह नहीं मानता, रात-दिन यहीं पर अड्डा बैठा रहता है, इससे इतना भी नहीं बनता कि

રાગથી રહે છે અને જેનો તેણે પોતાની જુવાન અવસ્થાને સમયે સર્વ પ્રકારથી ધનાદિક કમાઈને આદરથી રક્ષણ કર્યું છે. એવા તે આત્મીય જન પણ પોતાના આવા ઉપકારી માણસને આ વૃદ્ધાવસ્થામાં અથવા રોગા-ક્રાન્ત થવાથી તેનો તિરસ્કાર કરવા લાગી જાય છે. તે તેના પ્રતિ એવા પ્રકારથી વ્યવહાર કરે છે કે જાણે પોતાના શત્રુની સાથે વ્યવહાર કરતા હોય. નોકર-ચાકર પણ તેની કોઈ વાત સાંભળતા નથી, અથવા સાંભળે તો તેની વાતનો કોઈ મહત્વ સમજતા નથી. ઘરવાળા આ સમયમા એ કહે છે કે-એની આ અવસ્થાએ બુદ્ધિ મારી ગઈ છે. "સાઠ વર્ષે મનુષ્યની બુદ્ધિ ભ્રષ્ટ થાય છે." આ વાત સત્ય છે, જેને બોલવાનો પણ ઢંગ નથી, રાત-દિવસ બડ-બડ કર્યા કરે છે. દરેકથી જેમ-તેમ ખરાબ ખરાબ શબ્દો બોલી નાખે છે. શું કરવું એને મોત પણ આવતી નથી. એને હજાર વાર કહ્યું કે ઝાઝું બોલો નહિ, ચુપ રહ્યા કરો, પરંતુ એ માનતો જ નથી, રાત-દિન આ ઠેકાણે અડ્ડો લગાવી બેસી જ રહે છે, એનાથી

खट्वादिकमपि न परित्यजति इत्येवं नानाविधकठोरवाक्यैस्तर्जन्यादिना तर्जयन् "किमनेन वराकेणे"–त्येवं सततं तं धिक्कुर्वन्ति । अन्येषां का वार्ता किन्तु स्वयमपि स्वात्मानं नाद्रियते, तथा हि–उत्थातुकामोऽपि नोत्थातुं शक्नोति, श्रोतुं द्रष्टुं घ्रातुमास्वादयितुं स्प्रष्टुमिच्छति, परन्तु तत्तदिन्द्रियसामर्थ्यस्य परिक्षीणतया न शृणोति शब्दं, न पश्यति रूपं, न जिघ्रति गन्धं, नापि रसमास्वादयति, न चैव कर्कशक-

यहांसे दूसरी जगह भी जाकर बैठ जावे, जब देखो तब खाट पर ही पड़ा रहता है, यों तो इसके कोई मतलब ही नहीं है, क्योंकि कमा कर तो हम ही लाते हैं। इस प्रकार के अनेक कठोर वचनोंसे अथवा तर्जनी ऊंगली दिखा२ कर इसका अनादर करते हैं, उसे सदा धिक्कारा करते हैं।

इस अवस्थामें दूसरोंकी क्या बात कहना, अर्थात् दूसरे व्यक्ति अथवा अपने सगे संबन्धी लोग इस वृद्ध की सेवा चाकरी आदर सत्कार न करे तो कोई अचरज की बात नहीं, परन्तु यह स्वयं अपने शरीर सम्बन्धी कार्य करनेमें भी असमर्थ हो जाता है–यह उठना चाहता है तो भी उठ नहीं सकता, सुननेकी, देखनेकी, सूंघनेकी और चखनेकी तथा छूनेकी इच्छा करता है तो भी अपनी उन२ पदार्थोंको विषय करनेवाली इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण होनेसे न शब्द को सुन सकता है, न रूपको देख सकता है, न गन्धको सूंघ सकता है, न रसको चख सकता है और न कर्कश कठोर आदि स्पर्शको पहचान सकता है।

એટલું પણ નથી બનતું કે અહીંયાથી ઉઠી બીજી જગ્યાએ જઇ બેસે. જ્યારે દેખો ત્યારે ખાટ પર જ પડી રહે છે. આમ તો એને કોઈ મતલબ જ નથી, કારણ કે કમાઈ કમાઈને તો અમે લાવીએ છીએ. આવા પ્રકારના અનેક કઠોર વચનોથી અથવા અંગુઠો બતાવી બતાવીને તેનો અનાદર કરતા જ રહે છે અને તેને ધિક્કાર્યા જ કરે છે.

આ અવસ્થામાં બીજાની શું વાત કહેવી – અર્થાત્ બીજી વ્યક્તિ અને પોતાનાં સગાં સબંધી લોક આ વૃદ્ધની સેવા ચાકરી આદર સત્કાર ન કરે તો કોઈ અચરજની વાત નહિ. પરંતુ તે પોતે પોતાના શરીર સંબંધી કાર્ય કરવામાં પણ અસમર્થ બને છે. તે ઉઠવા ચાહે છે તો પણ ઉઠી શકતો નથી, સાંભળવાની દેખવાની સુંઘવાની અને ચાખવાની તથા સ્પર્શની ઈચ્છા કરે છે તો પણ પોતાની તે તે પદાર્થોથી વિષય કરવાવાળી ઈન્દ્રિયોની શક્તિ ક્ષીણ હોવાથી ન તો શબ્દને સાંભળી શકતો, ન તો રૂપને દેખી શકતો, નથી ગંધને પારખી શકતો, નથી રસને ચાખી શકતો અને કઠોર તેમજ કર્કશ સ્પર્શને પીછાણી શકતો નથી.

ठोरादिकं स्पृशति। इति नानाविधां दुर्दशामनुभूय नवद्वारेभ्यो विनिःसृतं कर्णमलादिकं घृणास्पदं वस्तु दर्शं दर्शमत्यर्थं क्लान्तमना भवति ततः 'कथमेतादृशस्य मम मरणं नायाती-'त्यनिशं खट्वारूढः कासश्वासादिरोगाभिभूतः कफावृतशय्यावसनादिको मुहुरुपतप्तो भवतीति निजशरीरं स्वस्मै सर्वथा न रोचते। उक्तञ्च—

ऐसी अनेक प्रकारकी दुर्दशाको भोगता हुआ यह वृद्ध सदा चित्तमें सन्तप्त होता रहता है। तथा शरीर के नव द्वारोंसे सदा निकलनेवाले कानके मेल तथा खेंखार आदि अपवित्र वस्तुओंको देख-देख कर नित्य ग्लानि करता रहता है परन्तु कर कुछ नहीं सकता, यह तो यही विचारता है कि मेरी मृत्यु कब आवे, ताकि इस दुःखसे छुटकारा मिल जावे, परन्तु इसके इस विचारसे कुछ होना जाना नहीं है, यह तो बिचारा अपनी खटिया पर पडा-पडा ही कफ खाँसी श्वास आदि रोगोंसे दुःखित होता रहता है, कफ आदि मलोंको यह बाहर फेंकनेकी इच्छा करता है तो भी शारीरिक अशक्ति की वजहसे वे कपडों पर ही गिर जाते हैं, बाहरमें मलत्यागकी भावना होनेपर भी उठनेकी अशक्ति की वजह से खटिया पर ही ट्टी पेशाब हो जाती है, यह उसमें ही लथ-पथ हो कर पडा रहता है और दुःखी भी होता है, परन्तु कर-धर कुछ नहीं सकता। ऐसी परिस्थितिमें इसे स्वयं भी अपना शरीर रुचिकर प्रतीत नहीं होता। कहा भी है—

એવી અનેક પ્રકારની દુર્દશાને ભોગવતાં તે વૃદ્ધ સદા ચિત્તમાં સંતપ્ત રહ્યા કરે છે, તથા શરીરના નવ દ્વારોથી સદા નીકળતાં કાનનો મેલ તથા ખેંખાર આદિ અપવિત્ર વસ્તુઓને દેખીને નિત્ય ગ્લાનિ ભોગવ્યા કરે છે. પરંતુ કાંઈ પણ કરી શકતો નથી. એ તો એ જ વિચારે છે કે મારી મૃત્યુ ક્યારે આવે જેથી આ દુઃખથી છુટકારો મળી જાય, પરંતુ તેના આ વિચારથી કાંઈ બની શકતું નથી. એ તો બિચારો ખાટલા ઉપર પડ્યો પડ્યો કફ-ખાંસી શ્વાસ આદિ રોગોથી દુઃખી થતો રહે છે. કફ આદિ મળોને તે બાહર ફેંકવાની ઈચ્છા કરે છે તો પણ શારીરિક અશક્તિથી તે તેના કપડા ઉપર જ પડી જાય છે. બાહર મલ ત્યાગની ભાવના હોવા છતાં પણ ઉઠવાની અશક્તિથી ખાટલા ઉપર જ ઝાડો પેશાબ થઈ જાય છે તે તેમાં જ લથ-પથ પડ્યો રહે છે, અને દુઃખી પણ થાય છે. પરંતુ કાંઈ પણ કરી શકતો નથી. આવી પરિસ્થિતિમાં તેને પોતાને પણ પોતાનું શરીર રૂચિકર પ્રતીત થતું નથી. કહ્યું છે—

शिरः श्वेतं दन्तावलिरपि गता स्नायुनिचयः,
प्रयातः शैथिल्यं पललमपि नैरस्यवलितम् ॥
स्वयं स्वं संनिन्दन् लगुडशरणो मन्दकरणो,-
मनोभावाभिज्ञा किमु जरसि कान्ता न हसति? ॥ १ ॥
शरीरं सङ्कोचं व्रजति चरणौ मन्दगतिकौ
मुखं लालापन्नं नयनमपि नालोकितुमलम् ॥
न वाक्यं मन्यन्ते परिजनगणाः स्त्री न भजते
जरायां हा! कष्टं तनुजनुरपि द्वेष्टि जनकम् ॥ २ ॥

सकलपरिवारो वृद्धावस्थायां जुगुप्सते तद्विषये कथानकमत्र, तथा हि—

" शिरः श्वेतं दन्तावलिरपि गता स्नायुनिचयः,
प्रयातः शैथिल्यं पललमपि नैरस्यवलितम् ।
स्वयं स्वं संनिन्दन् लगुडशरणो मन्दकरणो,-
मनोभावाभिज्ञा किमु जरसि कान्ता न हसति? ॥ १ ॥
शरीरं सङ्कोचं व्रजति चरणौ मन्दगतिकौ,
मुखं लालापन्नं नयनमपि नालोकितुमलम् ।
न वाक्यं मन्यन्ते परिजनगणाः स्त्री न भजते,
जरायां हा! कष्टं, तनुजनुरपि द्वेष्टि जनकम् ॥ २ ॥ इति ।
अर्थ स्पष्ट है ॥

वृद्धावस्थामें उसके समस्त अपने जन इससे घृणा करने लगजाते हैं, इस विषयमें एक कथा लिखी जाती है—

" शिरः श्वेतं दन्तावलिरपि गता स्नायुनिचयः
प्रयातः शैथिल्यं पललमपि नैरस्यवलितम् ।
स्वयं स्वं संनिन्दन् लगुडशरणो मन्दकरणो,
मनोभावाभिज्ञा किमु जरसि कान्ता न हसति? ॥ १ ॥
शरीरं सङ्कोचं व्रजति चरणौ मन्दगतिकौ,
मुखं लालापन्नं नयनमपि नालोकितुमलम् ।
न वाक्यं मन्यन्ते परिजनगणा स्त्री न भजते,
जरायां हा! कष्टं तनुजनुरपि द्वेष्टि जनकम् ' ॥ २ ॥ इति ।
અર્થ ખુલ્લો છે.

વૃદ્ધાવસ્થામા તેના સમસ્ત પોતાના જન જેનાથી ઘૃણા કરવા લાગી જાય છે. આ વિષયમાં એક કથા આપવામા આવી છેઃ—

आसीद्राजगृहे नगरे गुणगणविभूषितः संसारसारसुचारुसौन्दर्यालङ्कृतो निखिलगजवाजिरथवसनविभवोपार्जको 'देवदास'—नामा कश्चिच्छ्रेष्ठी। स च यौवने भाग्यातिरेकेण दशकोटिमितसुवर्णमुद्रां वाणिज्यकर्म्मणा समर्ज्य सकलस्त्री—पुत्रादिपरिपोषकश्चन्द्र इवाह्लादकस्तेषां बभूव। तस्य चत्वारः पुत्रा आसन्। स एकदा वार्द्धके रत्नादिकं सकलधनं विभज्य पुत्रेभ्यः समर्प्य निश्चिन्तोऽभूत्स्वयम्। पुत्रा अपि निज—निजपत्नीः पितृशुश्रूषार्थं समादिश्य स्वस्वकार्यसमासक्ता अभूवन्। गतेषु

राजगृह नामके प्रसिद्ध नगरमें देवदास नामक एक सेठ रहता था जो अनेक गुणों से अलङ्कृत था। जिसका शरीर संसारमें सारबुद्धिको उत्पन्न करानेवाले सुन्दर सौन्दर्यसे सुशोभित था। जिसका घर हाथी घोडों और रथोंसे सदा भरा—हुवा था। सुन्दर २ कीमती वस्त्रोंकी जिसके यहां पर कमी नहीं थी। सम्पत्ति जिसकी दासी थी। किसी समय उसने यौवन अवस्थामें शुभ कर्मके उदयसे व्यापारके जरिये दस करोड सुवर्ण मुद्राओंका उपार्जन किया। वह स्त्री—पुत्रादिक परिजनोंके लिये चन्द्रमाकी तरह आनन्द उत्पन्न करता था। उसके चार पुत्र थे। उसने एक समय अपनी वृद्धावस्थामें अपनी धनसम्पत्ति अपने समस्त पुत्रों को बाँट दी और उनकी तर्फसे स्वयं निश्चिन्त हो गया। वे पुत्र भी अपनी २ स्त्रियोंको "तुम हमारे पिताकी अच्छी तरहसे सेवा करना" ऐसा आदेश देकर अपने २ काममें लग गये। कुछ दिनोंके बाद बड़े पुत्र की स्त्री अपने ससुर की सेवा करने में आलस्य करने लगी। पुत्र

રાજગૃહ નામના પ્રસિદ્ધ નગરમાં દેવદાસ નામનો એક શેઠ રહેતો હતો. જે અનેક ગુણોથી અલંકૃત હતો. જેનું શરીર સંસારમાં સારબુદ્ધિને ઉત્પન્ન કરવાવાળા સુંદર સૌન્દર્યથી સુશોભિત હતું, જેના ઘરે સુંદર કીંમતી વસ્ત્રોની કમીના ન હતી જેનું ઘર હંમેશા હાથી—ઘોડા અને રથોથી ભરેલું રહેતું હતું. સંપત્તિ જેની દાસી હતી. એક વખત તેણે યૌવન અવસ્થામાં શુભ કર્મના ઉદયથી વ્યાપારથી દસ કરોડ સુવર્ણમુદ્રા કમાયો. તે સ્ત્રી પુત્રાદિક પરિજનો માટે ચંદ્રમાની માફક આનંદ ઉત્પન્ન કરતો હતો. તેને ચાર પુત્રો હતા. તેણે એક વખત પોતાની વૃદ્ધાવસ્થામાં પોતાની ધનસંપત્તિ પોતાના સમસ્ત પુત્રોમાં વહેંચી આપી, અને તેમના તરફથી બિલકુલ નિશ્ચિત થઈ ગયો. તે પુત્ર પણ પોતપોતાની સ્ત્રીઓને "તમે અમારા પિતાની સારી રીતે સેવા કરજો" એવો આદેશ આપીને પોતપોતાના કામે લાગી ગયા. થોડા સમય પછી મોટા પુત્રની સ્ત્રી પોતાના સસરાની સેવા કરવામાં આળસ કરવા લાગી. પુત્ર જે વખત ઘેર આવે અને

च कतिपयेषु दिवसेषु सा ज्येष्ठपुत्रवधूस्तस्य शुश्रूषायां सालसा बभूव। यदा पुत्रो गृहमागत्य पितरं कुशलं शुश्रूषादि च पृच्छति तथा स्थविरः कथयति–नेयं स्नुषा मां शुश्रूषते। सा तु पत्या निर्भर्त्सिता स्वामिनमाह–भवतां न ममोपरि विश्वासोऽस्ति ततश्चान्या एव शुश्रूषन्ताम्। ततश्चान्या स्नुषा तदीयसेवाकर्मणि नियुज्यमानाऽपि तथैव कृतमन्दादरा पुनः स्वपतिभर्त्सिता सेवाधर्माद्विरता बभूव। एवमन्या स्नुषा दुहिता पौत्री पौत्रो भृत्यवर्गश्च क्रमेण सेवात उपरता आसन्। ततश्च सततमनुतप्तो गुरुतरखेदखिन्नो ग्रहगृहीत इव दुखशतमनुभवति। ततः सर्वैः परित्यक्त एकपदमपि

जिस समय घर आकर अपने पितासे कुशल समाचार तथा सेवा करने की बात पूछता तो वह वृद्ध कहता कि भाई क्या कहूँ यह वहू तो मेरी जरा भी टहल नहीं करती है। इस बातको सुन कर जब उसका पति उससे नाराज होता तो वह अपने पतिसे कहती कि यदि आपका मेरे ऊपर विश्वास नहीं है तो आप अपने पिता की सेवा दूसरी वहूसे करा क्यों नहीं लेते ?। इस प्रकार उसके कहने पर जब उसने पिता की सेवा के लिये दूसरी वहू को नियुक्त किया तो वह भी पहिली वहू जैसी ही उसकी सेवामें मन्द आदरवाली होने लगी तब उसके भी पतिने उसको बुरा भला कहा तो वह भी उसकी सेवा करने से विमुख हो गयी। इसी प्रकार अन्य और भी वहुएँ तथा पुत्री, पौत्री एवं नौकर चाकर भी उसकी सेवा करने से क्रम २ से विमुख बन गये। जब यह अपनी हालत उस वृद्धने देखी तो उसके चित्तमें बहुत ही ज्यादा सन्ताप हुआ और वह अत्यन्त खेदखिन्न हो पागल जैसा बन कर अनेक प्रकारके कष्टोंका

પિતાને કુશલ સમાચાર તથા સેવા કરવાની વાત પૂછે ત્યારે તે વૃદ્ધ કહેતો કે ભાઈ શું કહું ? આ વહુ તો મારી જરા પણ ખાતર બરદાસ કરતી નથી, આવી વાત સાંભળીને જ્યારે તેનો પતિ તેણીથી નારાજ થાય છે ત્યારે તેણી પોતાના પતિને કહે છે કે તમને મારા ઉપર વિશ્વાસ નથી તો પછી તમારા પિતાજીની સેવા બીજી વહુથી કેમ કરાવતાં નથી ? આવા પ્રકારના તેણીના કહેવા પરથી જ્યારે તેણે પિતાની સેવા માટે બીજી વહુને નિયુક્ત કરી તો તે પણ પહેલી વહુની માફક તેની સેવામાં મન્દ મન્દ આદરવાલી થવા લાગી. ત્યારે તેનો પતિ પણ જ્યારે તેને ભલું બુરૂં કહેતો તો તે પણ તેની સેવા કરવાથી વિમુખ બની જતી. આ પ્રકારે બીજી વહુઓ તથા પુત્ર, પૌત્રી અને નોકર ચાકર પણ તેની સેવા કરવામાં ક્રમે–ક્રમે વિમુખ બની ગયાં જ્યારે આ પોતાની હાલત તે વૃદ્ધે દેખી તો તેના ચિત્તમાં ઘણોજ સંતાપ પેદા થયો અને તે અત્યંત ખેદખિન્ન

गन्तुमक्षमस्तृणकुब्जीकरणेऽप्यसमर्थः शय्यासविधे कृतमूत्रपुरीषोऽतिमलिनवसनो विगलितदशनः कुक्कुरपिण्डमिवाहर्निशं भोजनं लभमानो वृद्धश्चेतसि व्यचिन्तयत् —'अहं यौवने धनार्जनपरायणः कुटुम्बपोषणपरः कदापि कल्याणमार्गं नाराधितवान् किमधुना करोमि कोऽपि मां न गणयति, ते पूर्वमुपलालिताश्चिरपालिताः पुत्रादि-परिवारा आत्मसाधनविकलितं कृतकलकलं मामुपहसन्तीत्येवं भृशं विलपति, पश्चात्ता-

अनुभव करने लगा, सब घरवालों ने उसे छोड दिया। वह बिलकुल कमजोर हो गया। एक पैर भी चलनेकी उसमें शक्ति नहीं रही। वह अपनी खाटके पास ही मल-मूत्र का त्याग करने लगा। वस्त्र भी उसके अत्यन्त मलिन रहने लगे। उसके दाँत पहिलेसे ही गिर चुके थे। घर-वालों में से भी किसीका उसके प्रति जरा भी स्नेह नहीं रहा। भोजन भी उसे अनादरपूर्वक दिया जाने लगा। इस अपनी हालत को देख कर वह विचार करने लगा कि-हाय! मैंनें यौवन अवस्थामें धन कमानेमें ही अपना समय व्यतीत किया, कुटुम्बके भरण-पोषण करने में ही चित्तको लगाया, कल्याण मार्गकी तर्फ सदा उदासीन रहा, उसकी थोडीसी भी आराधना नहीं की, अब इस अवस्थामें मैं क्या कर सकता हूँ। इतना सब कुछ करने पर भी तो ये लोग मेरी तर्फ जरा भी ध्यान नहीं देते। जिनका मैंने पहिले अच्छी तरह से लालन-पालन किया, और जिनके साथ मेरा घनिष्ट प्रेम रहा है। संसारमें जिन्हें आत्मीय

બની ગાંડાની માફક બની અનેક પ્રકારના કષ્ટોનો અનુભવ કરવા લાગ્યો. બધા ઘરવાળાએ તેને છોડી દીધો. તે બીલકુલ કમજોર થઈ ગયો. એક ડગલું પણ ચાલવાની તેનામાં શક્તિ ન રહી. તે પોતાના ખાટલાની પાસે જ ઝાડા પેશાબનો ત્યાગ કરવા લાગ્યો. તેના વસ્ત્રો પણ મેલા રહેવા લાગ્યા. તેના દાંતો પહેલાથી જ પડી ગયા હતા. ઘરવાળામાંથી કોઈનો પણ તેના પ્રતિ જરા જેટલો પણ પ્રેમ ના રહ્યો. ભોજન પણ તેને અનાદરપૂર્વક આપવામાં આવતું હતું. આ પોતાની હાલતને દેખીને તે વિચાર કરવા લાગ્યો કે-“હાય! મેં યૌવન અવસ્થામાં ધન કમાવામાં જ પોતાનો સમય વ્યતીત કર્યો. કુટુંબનું ભરણ પોષણ કરવામાં જ ચિત્તને લગાવ્યું. કલ્યાણમાર્ગની તરફ સદા ઉદાસી રહ્યો, તેનું થોડું પણ આરાધન ન કર્યું હવે આવી અવસ્થામાં હું શું કરી શકું? આટલું આટલું કરવા છતાં પણ આ લોકો મારા તરફ પણ જોતા નથી. જેનું મેં પહેલાં સારી રીતે લાલન-પાલન અને જેની સાથે મારો ઘનિષ્ટ પ્રેમ રહ્યો છે, સંસારમાં જેને

पानुतप्तः 'कथं शीघ्रं न म्रिये' इति वारं-वारं वदन् विषीदति च। वृद्धावस्थायां कृषिवाणिज्यगजवाजिरथादिविषया जिज्ञासा जागर्ति, प्रत्यहं पृच्छति पुत्रादिकं, परं पुत्रेण 'तिष्ठ तिष्ठ जाल्म! काक इवारुन्तुदां गिरं किं मुधा प्रलपसि? किं ते ज्ञातेन? किमत्र तव प्रयोजनम्? मौनं कृत्वा यन्मिलति चाशनवसनादिकं तद् गृहाण' इत्यादिनानाविधपरुषवाग्भिर्भूयोभूयस्तर्जितो भर्त्सितश्च भवति।

कहते हैं वे ही मेरी उपेक्षा कर रहे हैं तो अब और कौन ऐसा है जो आत्मसाधनासे रहित मुझ अभागे की ओर ध्यान देगा? ये सब लोग मुझे देख २ कर हँसते हैं, हाय! अब मैं क्या करूँ? इत्यादि रूप से वह विलाप करने लगा, और पश्चात्तापकी अग्निमें जलता हुवा "मैं शीघ्र क्यों नहीं मर जाता हूँ" इस प्रकार वारंवार विचारने लगा और दुःखी होने लगा।

जब जब वह इस अवस्थामें कृषि, वाणिज्य, हाथी, घोडा और रथ आदि के विषयमें अपने पुत्रों से पूछता तो वे इससे कहते कि-अरे! बड़-बड़ क्यों करते हो? चुप-चाप क्यों नहीं बैठे रहते हो? तुमको इनसे अब क्या मतलब है? व्यर्थ ही कौए के समान हमको नहीं सुहानेवाली वाणी क्यों बोलते हो?, क्या हो रहा है, क्या नहीं हो रहा है?; इसके जाननेकी तुम्हें क्या जरूरत है?, इस प्रकार के जानने से भी तुम्हारा कौनसा स्वार्थ सिद्ध होता है?, तुम तो चुप ही रहा करो, और जो कुछ भी खाने-पीने को मिल जाता है उसीमें सन्तोष रक्खो। इत्यादि

આત્મીય કહે છે તેજ મારી ઉપેક્ષા કરી રહ્યાં છે. તો હવે એવો કોણ છે જે આત્મસાધનાથી રહિત મારા જેવા અભાગીની તરફ ધ્યાન આપે? આ બધા લોકો મને દેખીને હસે છે. હાય! હવે હું શું કરૂ" ઈત્યાદિ રૂપથી તે વિલાપ કરવા લાગ્યો અને પશ્ચાત્તાપની અગ્નિમાં જલીને "હું જલદી કેમ મરતો નથી?" આ પ્રકારે વારંવાર વિચારવા લાગ્યો અને દુઃખી થવા લાગ્યો

જ્યારે જ્યારે તે આ અવસ્થામા ખેતી, વ્યાપાર, હાથી, ઘોડા અને રથ આદિ વિષયમાં પોતાના પુત્રોથી પૂછતો તો તેઓ કહેતા કે-"અરે! બડબડ શું કર્યા કરો છો? ચુપચાપ કેમ બેસતા નથી? તમારે તેનાથી શું મતલબ છે? ખાલી કાગડા સમાન અમારે નહિ સાભળવા જેવી વાણીને સંભળાવો છો. 'શુ થઈ રહ્યું છે? શુ નથી થઈ રહ્યુ?' એ બધું જાણવાની તમારે શું જરૂર છે? આ પ્રકારનું જાણવાથી પણ તમારો કયો સ્વાર્થ સિદ્ધ થવનો છે? તમે તો ચુપ જ રહ્યા કરો અને જે કાંઇ પણ ખાવા પીવાનુ મળે છે તેમાં સતોષ રાખો" ઈત્યાદિ

वृद्धावस्थायां बहुमलपनशीलो निजपरिवारकृताननादरान् यस्मै कस्मैचिदपि प्रातिवेशिकाय कथयतीति दर्शयति–' सोऽपि तान् निजकान् पश्चात्परिवदति' इति, सः=वृद्धोऽपि तान्=पुत्र–कलत्र–भृत्यादीन् निजकान्=आत्मीयान्, पश्चात्=वृद्धावस्थायां, परिवदति=परिभवति, पूर्वं यान् पुत्रादीन् पोषयितुं धनोपार्जनासक्तः ' स्त्री पुत्रादिभरणमेव श्रेयः ' इति मत्वा विहितनिखिलानर्थनिवहो व्यग्रविग्रहः कल्याणमार्ग-

अनेक प्रकार के कठोर वचनोंसे वारंवार वे उसका तिरस्कार करते हुए उस वृद्ध सेठको दुःखित करते थे।

वृद्धावस्थामें एक तो मनुष्यको स्वभावतः पहिले की अपेक्षा अधिक वाचालता आजाती है अतः अपने सगे संबंधियों द्वारा जो कुछ भी अनादरसूचक व्यवहार उसके साथ होता है वह जब तक अपने पडोसियोंसे न कह दे तब तक उसे शान्ति भी नहीं मिलती, अब इसी बातको सूत्रकार सूचित करते हैं–" सोऽपि तान् निजकान् पश्चात् परिवदति " वह वृद्ध उन अपने पुत्र कलत्र और नौकर चाकर आदि अपने आत्मीय जनों की इस प्रकार से निन्दा करने लगता है कि जिनके पालन-पोषण करने में मैंने जरा भी कसर नहीं की, जिनकी सेवामें रात दिन एक कर दिया, यह समझ कर कि स्त्री पुत्रादिकों का पालन–पोषण करना ही सर्वोत्तम कार्य है। मैंने धन उपार्जन करनेमें भी कुछ कसर नहीं रखी, संसार भर के सब अनर्थ किये और आकुलव्याकुल चित्त बन असावधानीपूर्वक अपनी प्रवृत्ति चालू रखी, और अभी तक भी मैं

અનેક પ્રકારનાં કઠોર વચનોથી વારંવાર તેઓ તેનો તિરસ્કાર કરીને તે વૃદ્ધ શેઠને દુ.ખી કરતા હતા.

વૃદ્ધાવસ્થામાં એક તો મનુષ્યને સ્વભાવત· પહેલાની અપેક્ષા અધિક વાચાલતા આવે છે માટે પોતાના સગા સંબધીઓ દ્વારા જે કાંઈ પણ અનાદરસૂચક વ્યવહાર તેની સાથે થાય છે, તે જ્યાં સુધી પોતાના પાડોશીઓને તે ન કહે ત્યાં સુધી તેને શાતિ થતી નથી. હવે આ વાતને સૂત્રકાર સૂચિત કરે છે—

" सोऽपि तान् निजकान् पश्चात् परिवदति "

તે વૃદ્ધ તે પોતાના પુત્ર કલત્ર અને નોકર આદિ પોતાના આત્મીયજનોની આ પ્રકારે નિંદા કરવા લાગે છે કે–જેનું પાલન પોષણ કરવામાં મેં જરા પણ કસર નહિ રાખી, જેની સેવામા રાત દિવસ એક જ માન્યો, એવું સમજીને કે સ્ત્રી પુત્રાદિકોનું પાલન પોષણ કરવું એ સર્વોત્તમ કાર્ય છે. મેં ધન ઉપાર્જન કરવામાં કાંઇ કસર રાખી નહિ સસારભરના સર્વ અનર્થ કર્યા, અને આકુળ-

पानुतसः 'कथं शीघ्रं न म्रिये' इति वारं-वारं वदन् विषीदति च। वृद्धावस्थायां कृषिवाणिज्यगजवाजिरथादिविषया जिज्ञासा जागर्ति, प्रत्यहं पृच्छति पुत्रादिकं, परं पुत्रेण 'तिष्ठ तिष्ठ जाल्म ! काक इवारुन्तुदां गिरं किं मुधा प्रलपसि ? किं ते ज्ञातेन? किमत्र तव प्रयोजनम्? मौनं कृत्वा यन्मिलति चाशनवसनादिकं तद् गृहाण' इत्यादिनानाविधपरुषवाग्भिर्भूयोभूयस्तर्जितो भर्त्सितश्च भवति।

कहते हैं वे ही मेरी उपेक्षा कर रहे हैं तो अब और कौन ऐसा है जो आत्मसाधनासे रहित मुझ अभागे की ओर ध्यान देगा ? ये सब लोग मुझे देख २ कर हँसते हैं, हाय ! अब मैं क्या करूँ ? इत्यादि रूप से वह विलाप करने लगा, और पश्चात्तापकी अग्निमें जलता हुवा "मैं शीघ्र क्यों नहीं मर जाता हूँ" इस प्रकार वारंवार विचारने लगा और दुःखी होने लगा।

जब जब वह इस अवस्थामें कृषि, वाणिज्य, हाथी, घोडा और रथ आदि के विषयमें अपने पुत्रों से पूछता तो वे इससे कहते कि-अरे ! बड़-बड़ क्यों करते हो ? चुप-चाप क्यों नहीं बैठे रहते हो? तुमको इनसे अब क्या मतलब है ? व्यर्थ ही कौए के समान हमको नहीं सुहानेवाली वाणी क्यों बोलते हो ?, क्या हो रहा है, क्या नहीं हो रहा है ?; इसके जाननेकी तुम्हें क्या जरूरत है ?, इस प्रकार के जानने से भी तुम्हारा कौनसा स्वार्थ सिद्ध होता है ?, तुम तो चुप ही रहा करो, और जो कुछ भी खाने-पीने को मिल जाता है उसीमें सन्तोष रक्खो। इत्यादि

આત્મીય કહે છે તે જ મારી ઉપેક્ષા કરી રહ્યાં છે. તો હવે એવો કોણ છે જે આત્મસાધનાથી રહિત મારા જેવા અભાગીની તરફ ધ્યાન આપે ? આ બધા લોકો મને દેખીને હસે છે. હાય ! હવે હું શું કરૂં" ઈત્યાદિ રૂપથી તે વિલાપ કરવા લાગ્યો અને પશ્ચાત્તાપની અગ્નિમાં જલીને "હું જલદી કેમ મરતો નથી ?" આ પ્રકારે વારંવાર વિચારવા લાગ્યો અને દુખી થવા લાગ્યો.

જ્યારે જ્યારે તે આ અવસ્થામાં ખેતી, વ્યાપાર, હાથી, ઘોડા અને રથ આદિ વિષયમાં પોતાના પુત્રોથી પૂછતો તો તેઓ કહેતા કે-"અરે ! બડબડ શું કર્યા કરો છો ? ચુપચાપ કેમ બેસતા નથી ? તમારે તેનાથી શું મતલબ છે ? ખાલી કાગડા સમાન અમારે નહિ સાંભળવા જેવી વાણીને સંભળાવો છો. 'શું થઈ રહ્યું છે ? શું નથી થઈ રહ્યું ?' એ બધું જાણવાની તમારે શું જરૂર છે ? આ પ્રકારનું જાણવાથી પણ તમારો કયો સ્વાર્થ સિદ્ધ થવાનો છે ? તમે તો ચુપ જ રહ્યા કરો અને જે કાંઈ પણ ખાવા પીવાનું મળે છે તેમાં સંતોષ રાખો" ઈત્યાદિ

वृद्धावस्थायां बहुमलपनशीलो निजपरिवारकृताननादरान् यस्मै कस्मैचिदपि प्रातिवेशिकाय कथयतीति दर्शयति-'सोऽपि तान् निजकान् पश्चात्परिवदति' इति, सः=वृद्धोऽपि तान्=पुत्र-कलत्र-भृत्यादीन् निजकान्=आत्मीयान्, पश्चात्=वृद्धावस्थायां, परिवदति=परिभवति, पूर्वं यान् पुत्रादीन् पोषयितुं धनोपार्जनासक्तः 'स्त्री पुत्रादिभरणमेव श्रेयः' इति मत्वा विहितनिखिलानर्थनिवहो व्यग्रविग्रहः कल्याणमार्ग-

---

अनेक प्रकार के कठोर वचनोंसे वारंवार वे उसका तिरस्कार करते हुए उस वृद्ध सेठको दुःखित करते थे।

वृद्धावस्थामें एक तो मनुष्यको स्वभावतः पहिले की अपेक्षा अधिक वाचालता आजाती है अतः अपने सगे संबंधियों द्वारा जो कुछ भी अनादरसूचक व्यवहार उसके साथ होता है वह जब तक अपने पडोसियोंसे न कह दे तब तक उसे शान्ति भी नहीं मिलती, अब इसी बातको सूत्रकार सूचित करते हैं-"सोऽपि तान् निजकान् पश्चात् परिवदति" वह वृद्ध उन अपने पुत्र कलत्र और नौकर चाकर आदि अपने आत्मीय जनों की इस प्रकार से निन्दा करने लगता है कि जिनके पालन-पोषण करने में मैंने जरा भी कसर नहीं की, जिनकी सेवामें रात दिन एक कर दिया, यह समझ कर कि स्त्री पुत्रादिकों का पालन-पोषण करना ही सर्वोत्तम कार्य है। मैंने धन उपार्जन करनेमें भी कुछ कसर नहीं रखी, संसार भर के सब अनर्थ किये और आकुलव्याकुल चित्त बन असावधानीपूर्वक अपनी प्रवृत्ति चालू रखी, और अभी तक भी मैं

અનેક પ્રકારનાં કઠોર વચનોથી વારંવાર તેઓ તેનો તિરસ્કાર કરીને તે વૃદ્ધ શેઠને દુ:ખી કરતા હતા.

વૃદ્ધાવસ્થામાં એક તો મનુષ્યને સ્વભાવત પહેલાની અપેક્ષા અધિક વાચાલતા આવે છે માટે પોતાના સગાં સંબંધીઓ દ્વારા જે કાંઈ પણ અનાદરસૂચક વ્યવહાર તેની સાથે થાય છે, તે જ્યાં સુધી પોતાના પાડોશીઓને તે ન કહે ત્યાં સુધી તેને શાંતિ થતી નથી. હવે આ વાતને સૂત્રકાર સૂચિત કરે છે—

"सोऽपि तान् निजकान् पश्चात् परिवदति"

તે વૃદ્ધ તે પોતાના પુત્ર કલત્ર અને નોકર આદિ પોતાના આત્મીયજનોની આ પ્રકારે નિંદા કરવા લાગે છે કે-જેનું પાલન પોષણ કરવામાં મેં જરા પણ કસર નહિ રાખી, જેની સેવામા રાત દિવસ એક જ માન્યો, એવું સમજીને કે સ્ત્રી પુત્રાદિકોનું પાલન પોષણ કરવું એ સર્વોત્તમ કાર્ય છે. મે ધન ઉપાર્જન કરવામાં કાંઇ કસર રાખી નહિ. સંસારભરના સર્વ અનર્થ ક્યાં, અને આકુળ-

भ्रष्टो जातोऽहं, त एव साम्प्रतं ममाशनवसनादिकार्येऽपि विमनसो भवन्तीति महत्कष्टम्, किमधिकेन मद्वचनमपि तेषां विषायते, इत्येवंविधवाक्यैर्निजपरिवारान् वृद्धो धिक्करोतीति भावः। अतो हे आत्मन्! 'नालं ते तव त्राणाय वा शरणाय वेति' 'त्राणाय वा' दौर्बल्यपीडादिरूपापदुद्धरणाय, शरणाय वा=निर्भयावस्थानाय वा न अलं=समर्थाः। अत्र वा-शब्दोऽर्थान्तरद्योतकस्तेन कदाचि-

जिनके कारण कल्याणमार्गसे दूर रहा वेही अब मेरे खाने-पीने पहिनने के इन्तजाम करनेमें भी मन नहीं लगा रहे हैं, यह कितने कष्ट की बात है? अरे! अधिक क्या कहा जाय उन लोगोंको तो अब मेरा बोलना भी विष जैसा मालूम पडता है। इस प्रकार के वचनोंसे वह वृद्ध उन आत्मीय जनों की निन्दा करता है और उन्हें धिक्कारता है, इसलिये सूत्रकार कहते हैं कि—

" नालं ते तव त्राणाय वा शरणाय वा " इति।

हे आत्मन्! जिन पर पदार्थोंका तूने अपनी रक्षाके ख्याल से पालन पोषण किया है वे कोई तेरी इस वृद्धावस्थाजन्य दुर्बलतासे अथवा उस समयमें होनेवाले अनेक कष्टरूप आपत्तियों से तेरा उद्धार नहीं कर सकते हैं और न तुझे शरण देनेके लिये ही समर्थ हो सकते हैं। इस वाक्यमें जो " वा " शब्द आया है वह इस बातका सूचक है कि यदि पूर्व पुण्यके उदयसे कोई ऐसे आत्मीय जन मिले हों जो मातापिताके

વ્યાકુળ ચિત્ત રાખી અસાવધાનીપૂર્વક પોતાની પ્રવૃત્તિ ચાલુ રાખી, અને હજુ સુધી પણ મેં જેના કારણે કલ્યાણ માર્ગથી દૂર રહ્યો તે આજ મારા ખાવામાં -પીવામાં પહેરવામાં સગવડ કરી આપવા જરા પણ મન લગાડતા નથી, તે કેટલા દુઃખની વાત છે? અરે! અધિક શું કહેવું, તે લોકોને તો હવે મારૂં બોલવું પણ ઝેર જેવું લાગે છે. આ પ્રકારના વચનોથી તે વૃદ્ધ તે આત્મીય જનોની નિંદા કરે છે અને તેને ધિક્કારે છે તેને માટે સૂત્રકાર કહે છે કે—

" नाल ते तव त्राणाय वा शरणाय वा " इति

હે આત્મન્! જે પરપદાર્થોનું તે પોતાની રક્ષા માટે પાલન પોષણ કર્યું છે તે કોઇ તારી આ વૃદ્ધાવસ્થાજન્ય દુર્બલતાથી અથવા આ સમયમાં થનાર અનેક કષ્ટરૂપ આપત્તિઓથી તારો ઉદ્ધાર કરી શકતા નથી, અને તને શરણ દેવામાં પણ સમર્થ નથી. આ વાક્યમા જે "वा" શબ્દ આવ્યો છે તે આ વાતનો સૂચક છે કે કદાચ પૂર્વ પુણ્યના ઉદયથી કોઈ આવા આત્મીય જન મળ્યાં હોય જે માતા-પિતાની વૃદ્ધાસ્થામાં ભક્તિ કરતા હોય, તેમની દરેક પ્રકારની સેવા

स्पूर्वपुण्योदयेन वृद्धावस्थायां पुत्रादयोऽतिभक्तास्तवापमानं नैव कुर्वन्ति तथापि ते वृद्धावस्थाजनितदुःखपरिमोचका न भवितुमर्हन्तीति तात्पर्यमवगम्यते ।

अथ यदि पुत्रकलत्रादयः सेवापरा दुःखभारभरमग्नाः सन्तीत्यालोच्य तेषां दुःखोद्धाराय तव चेतसि चिन्ता स्यादपि तथापि तदुद्धारः कर्तुमशक्य इति दर्शयति– 'त्वमपि तेषां नालं त्राणाय वा शरणाय वे'–ति, त्वं वृद्धो न तेषां दुर्दशापदुद्धारको- नापि तदाश्रयो भवितुमर्हसि सामर्थ्याभावादिति भावः ।

वृद्धावस्था में भी अतिभक्त हों, उनकी हर तरहसे सेवा चाकरी करनेमें कोई कर–कसर न रखते हों, उनका जरा भी तिरस्कार नहीं करते हों तो भी इस वृद्धावस्थामें होनेवाले जो अनेक कष्ट हैं चाहें वे शारीरिक हों चाहें मानसिक हों, चाहें वाचिक हों उनसे वे उनका उद्धार नहीं कर सकते ।

वृद्धावस्थामें यदि वह वृद्ध चाहे कि–मैं–अपने सेवक पुत्र कलत्रा- दिकों का जो रात दिन मेरी सेवा करनेमें ही लगे रहते हैं, और जो विचारे दुःखों से पीडित हो रहे हैं मैं उन्हें कष्टसे निर्मुक्त करदूँ' तो इस प्रकारका भी उसका विचार करना व्यर्थ ही है, इसी बातको प्रकट करते हुए सूत्रकार कहते हैं–"त्वमपि तेषां नालं त्राणाय वा शरणाय वा" इति। भाई ! वृद्धावस्थामें तुझे इस प्रकारकी चिन्ता करना ठीक नहीं है, कारण कि तुम स्वयं अशक्त हो तब तुम उन दुर्दशामें फँसे हुए अपने पुत्र कलत्रादिकों के उद्धारक कैसे हो सकते हो और कैसे उनके

ચાકરી કરવામા કોઈપણ પ્રકારની કસર રાખતા ન હોય, તેનો જરા પણ તિર- સ્કાર કરતા નથી તો પણ આ વૃદ્ધાવસ્થામા થનાર જે કષ્ટો છે ભલે તે શારીરિક હોય કે માનસિક હોય, અગર વાચિક હોય, તેનાથી તેઓ તેમનો ઉદ્ધાર કરી શકતા નથી.

વૃદ્ધાવસ્થામાં કદાચ તે વૃદ્ધ ચાહે કે–' હું મારા સેવક પુત્ર કલત્રાદિકો, જે રાત દિવસ મારી સેવા કરવામાં જ લાગ્યા રહે છે અને જે બિચારા દુઃખોથી પીડિત થઇ રહ્યા છે, હું તેમને કષ્ટથી નિર્મુક્ત કરી દઉ ' તો તેનો આ પ્રકા- રનો પણ વિચાર વ્યર્થ જ છે. આ વાતને પ્રગટ કરવા સૂત્રકાર કહે છે—

" त्वमपि तेषां नालं त्राणाय वा शरणाय वा " इति

ભાઇ ! વૃદ્ધાવસ્થામાં તારે આ પ્રકારની ચિંતા કરવી ઠીક નથી, કારણ કે તું પોતે અશક્ત છે ત્યારે તું આવી દુર્દશામાં ફસેલાં પોતાના પુત્ર કલત્રાદિકોનો

त्राण-शरणपदयोरर्थस्तूक्त एव। अत्रापि वा-शब्देन तव पुत्र-कलत्रादयो यदि दुःखमग्नास्त्वत्सेवापरा अपि स्युस्तथापि न तेषां त्वं रक्षको भवितुं शक्नोषि, इत्येवं गम्यते। स्वकायिककार्यकरणेऽप्यसमर्थस्त्वं कथं महायाससाध्यं तेषां भरणपोषणादिकार्यं कर्तुमध्यवस्यसीति भावः।

स तस्यामवस्थायां स्वयं हासयोग्यो नान्यं जनमुपहसितुं प्रभवतीति दर्शयति- 'स न हासाये-' ति, सः=वृद्धो हासाय निन्दिताचारमुपहसितुं न योग्यो भवति।

आश्रयप्रदाता हो सकते हो, तुम तो स्वयं इस समय रक्षा करने योग्य एवं आश्रय पाने योग्य हो रहे हो।

इस सूत्रमें भी जो 'वा' शब्द आया है उससे यह बोध होता है कि-तेरे पुत्र कलत्रादिक यदि दुःखमग्न हैं और तेरी सेवामें भी तत्पर हैं तो भी तूं उनका रक्षक नहीं हो सकता, क्योंकि जब तूं स्वयं अपना शारीरिक कार्य करने तकमें भी असमर्थ हो रहा है तो फिर कैसे महाकष्ट-साध्य उनके भरण-पोषण आदि कार्य करनेके लिये विचार कर सकता है।

वृद्ध अपनी अवस्थामें स्वयं हँसीका पात्र है वह दूसरोंकी हँसी कैसे कर सकता है? इसका वर्णन करते हैं-"स न हासाय" जो स्वयं ही हँसी-मजाक का पात्र होता है वह दूसरोंकी हँसी भी कैसे कर सकता है अतः कोई यदि निन्दित आचारवाला है तो वह उसकी हँसी करनेके योग्य ही नहीं है।

ઉદ્ધારક કેવી રીતે બની શકે છે, અને કેવી રીતે તેને આશ્રય આપી શકાય. તમે પોતે આ સમયે રક્ષા કરાવવા યોગ્ય અને આશ્રય લેવા યોગ્ય છો.

આ સૂત્રમાં પણ જે 'वा' શબ્દ આવ્યો છે તેનાથી એ બોધ થાય છે કે તારા પુત્ર કલત્રાદિક કદાચ દુઃખમગ્ન છે અને તારી સેવામાં પણ તત્પર છે તો પણ તું તેમનો રક્ષક બની શકતો નથી. કારણ કે જ્યારે તું સ્વય પોતાના શારીરિક કાર્ય કરવામાં અસમર્થ છે તો પછી કેવી રીતે મહાકષ્ટસાધ્ય તેનુ ભરણ પોષણ આદિ કાર્ય કરવા વિચાર પણ કરી શકે.

વૃદ્ધ પોતાની અવસ્થામા સ્વયં હાંસીને પાત્ર છે, તે બીજાની હાંસી કેવી રીતે કરી શકે? તેનું વર્ણન કરે છેઃ-"स न हासाय" જે સ્વયં હાંસી મજાકનો પાત્ર છે તે બીજાઓની હાંસી કેવી રીતે કરી શકે, માટે કોઈ કદાચ નિંદિત આચારવાળા છે તો તેઓ તેની હાસી કરવાને યોગ્ય જ નથી.

यः स्वयमुपहासपात्रं स कथमन्यमुपहसेदिति तात्पर्यम् । वृद्धावस्थायां पुरुषः क्रीडाकरणाक्षमो भवति, यदा कामचेष्टाभिभूतो भवति तदा स प्राणपणेनापि युवतिं कामयते परं सा निजानन्दाक्षमं तं विदित्वाऽवहेलयतीति दर्शयति-'न क्रीडायै न रतये' इति, क्रीडा=अक्षादिना खेलनं, लङ्घनप्रधावनास्फोटनादिकं वा, तस्यै न स प्रभवति। रतिर्नाम वनिताविषयक आलिङ्गनादिनानारूपः क्षणिकसुखविशेषस्तस्यै न समर्थो भवतीत्यर्थः। वृद्धावस्थायां युवतिं वशीकर्तुं न पारयति प्रत्युत 'न लज्जतेऽयं पलितकेशोऽचारुवेशो मम हृदयेशो बुभूषुर्दुहितृतुल्यामपि मामभिकामयते' इत्यादिवाक्यैस्तं सा भर्त्सयति ।

युवतिं लब्धुकामो धृतभूषणोऽपि न शोभत इति दर्शयति-'न विभूषायै' इति, विभूषा=कटककुण्डलकेयूराद्यलङ्काररूपा, तस्यै स न योग्यो भवति, वृद्धस्य विभूषा न शोभत इति भावः ।

"न क्रीडायै न रतये" इस सूत्रमें यह प्रकट किया है कि वृद्धावस्थामें पुरुष क्रीडा करनेमें असमर्थ हो जाता है तथा वह विषयसेवनके भी योग्य नहीं रहता है ।

यहां क्रीडा का अर्थ अक्षादिकों-पासों-से खेलना, लांघना, दौडना तथा व्यायाम करना, इत्यादि है । यह क्रीडा वृद्ध कैसे कर सकता है? क्यों कि वह वृद्धावस्था में बिलकुल असक्त हो जाता है। रति का अर्थ है आलिंगनादिक । इसका भी उपभोक्ता वह नहीं हो सकता कारण कि वृद्धावस्थामें प्रत्येक इन्द्रिय शिथिल हो जाती है । अर्थात् शोभाके लिये धारण किये गये अलंकार भी इसे कभी शोभा प्रदान नहीं कर सकते। कडे, कुण्डल, केयूर-भुजबन्ध आदि अलंकार उसकी शोभा के अभिवर्द्धक न होकर प्रत्युत उसके लिये हास्य के कारण ही बनते हैं । कहा भी है-

---

"न क्रीडायै न रतये" આ સૂત્રમાં એ પ્રગટ કરેલ છે કે વૃદ્ધાવસ્થામાં પુરૂષ ક્રીડા કરવાને અસમર્થ બની જાય છે તથા તે વિષયસેવન માટે પણ યોગ્ય રહેતો નથી.

આ ઠેકાણે ક્રીડાનો અર્થ અક્ષાદિકો-પાસાઓથી ખેલવું, ઠેકવું, કુદવું, દોડવું તથા વ્યાયામ કરવો, ઇત્યાદિ છે. આ ક્રીડા વૃદ્ધ કેવી રીતે કરી શકે, કારણ કે તે વૃદ્ધાવસ્થામાં બિલકુલ અશક્ત થઈ જાય છે. રતિનો અર્થ છે આલિંગનાદિક તેના પણ ઉપભોક્તા તે બની શકતો નથી, કારણ કે વૃદ્ધાવસ્થામાં પ્રત્યેક ઈન્દ્રિયો શિથિલ બને છે. અર્થાત્ શોભા માટે પણ ધારણ કરેલાં અલંકાર પણ તેને શોભા આપી શકતાં નથી કડા, કુંડલ, કેયૂર-ભુજબંધ આદિ અલંકાર તેની શોભામાં વૃદ્ધિ કરતા નથી પણ તેના માટે હાસ્યનું કારણ બને છે. કહ્યું છે કે.—

उक्तञ्च—"न भूषणं भाति न हास्यमस्य, न विभ्रमो नैव जना अधीनाः।
प्रवर्त्तते तत्र यदा तु वृद्धो, विडम्बनां याति परां तदा सः" ॥१॥ इति

एवं च वृद्धावस्थायां निजतनयवनितादितिरस्कृतस्य जराजर्जरितदेहस्य क्रीडा-रतिविभूषादिकं न किमपि शोभत इति सूत्राशयः ॥ ३ ॥

उक्तमप्रशस्तमूलस्थानं, संप्रति प्रशस्तमूलस्थानमाह—यद्वा—यतस्ते पुत्रकलत्रादयो नालं मे त्राणाय वा शरणाय वा भवितुमर्हन्तीति विचार्य धीरः क्षणमपि न प्रमादं कुर्यादिति दर्शयति–'इच्चेवं' इत्यादि।

"न भूषणं भाति न हास्यमस्य, न विभ्रमो नैव जना अधीनाः।
प्रवर्तते तत्र यदा तु वृद्धो, विडम्बनां याति परां तदा सः ॥१॥" इति।

इस प्रकार इसको न भूषण शोभा देते हैं–न इसकी हँसी ही इसकी सुन्दरता बढ़ा सकती है, न विभ्रम–विलास ही यह कर सकता है, इसके अपने पास में रहे हुए जन भी कहने में नहीं रहते। अगर वह ऊपर की बातों में प्रवृत्ति करे तो वह इस वृद्धावस्था में विडम्बना पाता हुवा अपने पुत्र–स्त्री आदि से तिरस्कार को ही पाता है, तथा जरासे जर्जरित काय बने हुए इसके लिये क्रीडा–रति–विभूषादिक कुछ भी शोभा नहीं देते ॥ ३ ॥

अप्रशस्त मूलस्थानों का वर्णन हो चुका, अब प्रशस्त मूलस्थानों का वर्णन किया जाता है, अथवा–वे पुत्र कलत्रादिक मेरी रक्षा के लिये या मुझे शरण प्रदान करने के लिये समर्थ नहीं हो सकते हैं, ऐसा विचार

"न भूषण भाति न हास्यमस्य, न विभ्रमो नैव जना अधीनाः।
प्रवर्तते तत्र यदा तु वृद्धो, विडम्बनां याति परां तदा स" ॥ १ ॥ इति।

આ પ્રકારે તેને ભૂષણુ શોભા દેતા નથી. તેની હાંસી પણુ તેની સુંદરતા વધારી શકતી નથી. તે વિલાસ પણુ કરી શકતો નથી. તેની પાસે રહેતા માણુસો પણુ તેના કહેવામાં રહેતા નથી. અગર તે ઉપર કહેલી વાતોમાં પ્રવૃત્તિ કરે તો તે આ વૃદ્ધાવસ્થામાં વિડંબના પામીને પોતાના પુત્ર સ્રી આદિથી તિરસ્કાર જ પામે છે. તથા ઘડપણુથી જર્જરિત શરીર બનેલું હોઇ તેના માટે ક્રીડા, રતિ, વિભૂષાદિક કોઈ પણુ શોભા માટે યોગ્ય નથી

અપ્રશસ્ત મૂલસ્થાનોનું વર્ણુન થઈ ચુકયું. હવે પ્રશસ્ત મૂલસ્થાનોનું વર્ણુન કરે છેઃ—અથવા તે પુત્ર કલત્રાદિક મારી રક્ષા માટે અગર મને શરણુ પ્રદાન કરવા માટે સમર્થ બની શકતા નથી, એવો વિચાર કરી ધીર વીર પુરૂષનું

मूलम्—इच्चेवं समुट्ठिए अहोविहाराए, अंतरं च खलु इमं संपेहाए धीरे मुहुत्तमवि णो पमायए वओ अच्चेति जोव्वणं वा ॥ सू० ४ ॥

छाया—इत्येव समुत्थितः अहोविहाराय अन्तरं च खलु इमं संप्रेक्ष्य धीरो मुहूर्त्तमपि नो प्रमादयेत्, वयोऽत्येति यौवनं वा ॥ सू० ४ ॥

कर धीर वीर पुरुष का कर्तव्य है कि वह एक क्षण भी प्रमाद न करे- इसी बातकी पुष्टि करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

"इच्चेव समुट्ठिए' इत्यादि-यौवन अवस्था में पुत्र-मित्रादिकों में आसक्त बना हुआ यह प्राणी सावद्य व्यापार में लवलीन रहता है और जब वृद्धावस्था आती है तब वह उन सकल कार्यों के वेदने में असमर्थ हो जाता है, ऐसा विचार कर संयम पालन करने के लिये उद्युक्त हुआ संयमी मुनि संयम को पालन करने के इस अवसर का अच्छी तरह विचार कर एक मुहूर्त्त भी प्रमाद न करे, क्यों कि आयु और यौवन दोनों बीत रहे हैं।

सूत्र में "इत्येवं" यह शब्द पूर्वोक्त कथन की पुष्टि करता है, अर्थात्- जब यह बात प्रमाणित हो चुकी कि यौवन अवस्था में पुत्र मित्र कलत्रादिकों में आसक्त बना हुआ प्राणी सावद्यकार्यों के करने में लवलीन होता है परन्तु वही प्राणी जब वृद्धावस्था आती है तब उन समस्त कार्यों के करने में अपने को सर्वथा असमर्थ पाता है, जब यह हालत है

કર્તવ્ય છે કે તે એક ક્ષણ પણ પ્રમાદ ન કરે. આ વાતની પુષ્ટિ કરવા સૂત્ર- કાર કહે છે કે—

"इच्चेव समुट्ठिए" इत्यादि, યૌવન અવસ્થામાં પુત્ર–મિત્રાદિકમાં આસક્ત બનીને આ પ્રાણી સાવદ્ય વ્યાપારમા લવલીન રહે છે અને જ્યારે વૃદ્ધાવસ્થા આવે છે ત્યારે તે એ બધા કાર્યોને કરવામાં અશક્ત બની જાય છે, એવો વિચાર કરી સંયમ પાલન કરવા માટે ઉદ્યુક્ત થઈને સંયમી મુનિ સંયમનું પાલન કરવાને આ અવસરનો સારી રીતે વિચાર કરી એક ક્ષણનો પણ પ્રમાદ ન કરે, કારણ કે આયુષ્ય અને યૌવન બન્ને વીતી જાય છે.

સૂત્રમાં "इत्येव" આ શબ્દ પૂર્વોક્ત કથનની પુષ્ટિ કરે છે. અર્થાત્ જ્યારે આ વાત પ્રમાણભૂત બની ચૂકી છે કે યૌવન અવસ્થામાં પુત્ર મિત્ર કલત્રાદિકોમાં આસક્ત બનેલ પ્રાણી સાવદ્ય વ્યાપાર કરવામા લવલીન થાય છે. પરંતુ તે પ્રાણી જ્યારે વૃદ્ધાવસ્થા આવે છે ત્યારે આ બધા કાર્યો કરવામાં પોતાને સર્વથા અસ-

टीका—'इत्येवम्' इतिशब्दः पूर्वप्रदर्शितवस्तुसूचकस्तेन यौवने पुत्रकलत्रासक्तः सावद्यानुष्ठानरतः स एव वृद्धावस्थायां सकलकार्याक्षमो भवतीत्यर्थः। एवं=यथोपदर्शितेन प्रकारेण 'समुत्थितः अहोविहाराये'ति।

अहो इत्याश्चर्यजनको विहारो=विहरणं यस्मिन् सः=अहोविहारः संयमानुपालनं, तस्मै=तदर्थं समुत्थितः=सम्यगुद्युक्तः सन् मुहूर्तमपि न प्रमादयेदित्यनेन सम्बन्धः।

तो वह इस प्रकार की परिस्थिति को दूर करने के लिये यह सर्वोत्तम प्रयत्न करे कि वह संयम में अपने को लगा दे, कारण कि संयम का अनुष्ठान करना ही इस रोगका इलाज है, इसके पालन-सेवन किये विना यह भवर का रोग दूर नहीं हो सकता-संयमाराधन मनुष्यगति के सिवाय अन्य और किसी भी गति में हो नहीं सकता-इसलिये सूत्रकार प्रकट करते हैं कि इस संयमरूपी ओषधि का पान भी वही कर सकता है जो धीर हो-परीषह और उपसर्ग के आने पर भी जो अपने कर्तव्यपथ से च्युत नहीं होता हो, उसका नाम सिद्धान्त की परिभाषा में धीर है। इसी बात की पुष्टि-"अहोविहाराय" इस पदसे तथा "धीरे" इस पद से सूत्रकारने की है। अहोविहार शब्द का अर्थ संयम है, कारण कि इसमें विचरण करनेवाला प्राणी देह में ममत्वबुद्धि रखनेवालों के लिये आश्चर्य पैदा करनेवाला होता है, उस की अनेक प्रकार की तपश्चर्या एवं कायक्लेशादिक बाह्य तपको देखकर संसारी बहिरात्मा जीव आश्चर्यचकित हो जाते हैं, वे विचारते हैं-धन्य है इस

મર્થ માને છે. જ્યારે આવી હાલત છે તો તે આ પ્રકારની પરિસ્થિતિને દૂર કરવા માટે સર્વોત્તમ પ્રયત્ન કરે કે સંયમમાં પોતાને લગાવી દે, કારણ કે સંયમનું અનુષ્ઠાન કરવું તે જ આ રોગનો ઉપાય છે. તેનું પાલન-સેવન કર્યા વગર આ ભવોભવનો રોગ મટતો નથી. સંયમારાધન, મનુષ્યગતિ સિવાય અન્ય કોઈ ગતિમાં થઈ શકતું નથી. તેથી સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે કે આ સયમરૂપી ઔષધિનું પાન તે કરી શકે છે જે ધીર છે અને પરીષહ ઉપસર્ગ આવવા છતા પણ જે પોતાના કર્તવ્યથી દૂર થતાં નથી. તેનું નામ સિદ્ધાતની પરિભાષામાં ધીર છે. આ વાતની પુષ્ટિ—"अहोविहाराए" આ પદથી તથા "धीरे" આ પદથી સૂત્રકારે કરેલ છે. અહોવિહાર શબ્દનો અર્થ સંયમ છે, કારણ કે તેમાં વિચરણ કરવાવાળાં પ્રાણી દેહમાં મમત્વબુદ્ધિ રાખવાવાળાઓને માટે આશ્ચર્ય પેદા કરવાવાળા હોય છે. તેની અનેક પ્રકારની તપશ્ચર્યા અને કાયક્લેશાદિક બાહ્ય તપને દેખીને સંસારી બહિરાત્મા જીવ આશ્ચર્યચકિત થાય છે તે વિચારે છે-ધન્ય છે

संयमी जन को, इस प्रकार की तपश्चर्या को–जिससे शरीर पर भी ममता नहीं रहती है, अतः इस प्रकार का संयमाराधन "पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनं" इस महारोग का अचूक महौषध है। उसकी प्राप्ति के लिये हे प्राणी! तूं एक मुहूर्त की भी देरी मत कर, मत सोच इस बातको कि–"अभी तो खाने पीने के दिन हैं–ऐश-आराम भोगने का यह समय है, बाद जब वृद्धावस्था आवेगी। तब संयमाराधन करलूंगा" कारण कि कौन कह सकता है कि वृद्धावस्था आवेगी। वृद्धावस्था आने के पहिले ही यदि तूं इस पर्याय से पर्यायान्तरित हो गया तो फिर तेरी यह कल्पना कोरी ही रह जावेगी। तथा वृद्धावस्था में जब कि प्रत्येक इन्द्रिय शिथिल हो जाती है, शरीर भी अशक्त बन जाता है, करने की भावना होने पर भी जिसमें कुछ भी करते धरते नहीं बनता तो इस संयम का आराधन हो भी कैसे सकता है। यदि पहिले से संयमाराधन की शक्ति आत्मामें आई हुई हो तो वृद्धावस्था में संयमाराधन पूर्वसंस्कार के वश से हो भी जाय, परन्तु इस प्रकार की योग्यता तो तूने अभीतक प्राप्त ही नहीं की, यह योग्यता जब प्रत्येक इन्द्रिय बलवान् थी, शरीर भी सशक्त था, द्रव्य, क्षेत्र, काल और

તે સંયમીજનને, આ પ્રકારની તપશ્ચર્યાને, જેથી શરીરમાં પણ મમતા રહેતી નથી. માટે આ પ્રકારનું સંયમારાધન "**पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनं**" આ મહારોગનું જરૂર મહા ઔષધ છે, તેની પ્રાપ્તિ માટે હે પ્રાણી, તું એક ક્ષણ પણ ઢીલ ન કર. એ વાતનો વિચાર પણ ન કર કે–"હમણા તો ખાવા પીવાના દિવસો છે–એશઆરામ ભોગવવાનો સમય છે, જ્યારે વળી વૃદ્ધાવસ્થા આવશે ત્યારે સંયમારાધન કરી લઈશ." કારણ કે કોણ કહી શકે છે કે વૃદ્ધાવસ્થા આવશે. વૃદ્ધાવસ્થા આવ્યા પહેલાં જ કદાચ તું આ પર્યાયથી પર્યાયાન્તરિત થઈ ગયો તો પછી તારી આ કલ્પના નકામી જ રહી જવાની. અને વૃદ્ધાવસ્થામા જ્યારે પ્રત્યેક ઈન્દ્રિય શિથિલ થાય છે, શરીર પણ અસક્ત બને છે, કરવાની ભાવના હોવા છતા પણ કાંઈ પણ કરી શકતો નથી તો પછી આ સંયમનું આરાધન કેવી રીતે બની શકે. કદાચ પહેલાથી સંયમારાધનની શક્તિ આત્મામાં આવી ગઈ હોત તો વૃદ્ધાવસ્થામાં સંયમારાધન પૂર્વ સંસ્કારને વશથી થઈ પણ જાય પરંતુ આ પ્રકારની યોગ્યતા તો તને હજુ સુધી પ્રાપ્ત જ નથી થઇ. આ યોગ્યતા જ્યારે પ્રત્યેક ઈન્દ્રિય બળવાન હતી, શરીર પણ સશક્ત હતું, દ્રવ્ય–ક્ષેત્ર–કાળ–ભાવ રૂપ સામગ્રી અનુકૂળ હતી, તે અવસ્થામાં આવી શકત.

भाव रूप सामग्री अनुकूल थी उस अवस्था में आती, परन्तु वह अवस्था तो तूने मित्र पुत्र कलत्रादिकों में आसक्ति के वशवर्त्ती होकर गमा दी और सावद्यानुष्ठानों के करने से अपनी आत्मपरिणति को कलुषित कर दिया, तब भला, कहो तो सही, सहसा यह कार्य तुझ से अब कैसे बन सकेगा ?। इस पर सूत्रकार कहते हैं कि–हे भव्य प्राणी ! तू "मुहुत्तमवि नो पमायए" एक मुहूर्त भी प्रमाद मत कर, और मन वचन एवं काय से, तथा कृत कारित और अनुमोदना से, अर्थात् नव कोटि से इस संयम का आराधन कर, कनक कामिनी आदि पदार्थ जिन्हें तू भ्रमके वश से अभी तक अपने मानता आया है, और जिनके पाने में तथा पालन पोषण करने में तूने अपने हित और अहित का भी विवेक लुप्त कर दिया है, भला! उनके स्वरूप का विचार कर और देख कि इनके संयोग से तेरी आत्मा में कहां तक शान्ति जागृत होती है? यदि ये वास्तविक शांति प्रदान करने में असमर्थ हैं तो तू इनका नवकोटि से परित्याग कर दे, इस परित्याग से तेरी आत्मा में वह अपूर्व संस्कार जागृत होगा जो तेरी इन दीनदशा का अन्त करनेवाला हो जायगा, इन पदार्थोंका भोग अथवा संग्रह खाज को खुजलाने के समान है-जिस प्रकार खाजको खुजलानेवाला व्यक्ति

પરંતુ તે અવસ્થા તો તેં પુત્ર મિત્ર કલત્રાદિકોમાં આસક્તિને વશવર્ત્તી બની ગુમાવી અને સાવદ્યાનુષ્ઠાનો કરવાથી પોતાની આત્મપરિણતિને કલુષિત કરી, ત્યારે ભલા કહો તો ખરા; સહસા આ કાર્ય તારાથી હવે કેવી રીતે બની શકશે?, આ ઉપર સૂત્રકાર કહે છે કે:—હે ભવ્ય પ્રાણી ! તું "मुहुत्तमवि नो पमायए" એક ક્ષણનો પણ પ્રમાદ ન કર અને મન વચન અને કાયાથી તથા કૃત, કારિત અને અનુમોદનાથી અર્થાત્ નવ કોટિથી આ સંયમનું આરાધન કર, કનક કામિની આદિ પદાર્થ જેને તું ભ્રમવશ હજુ સુધી પોતાના માનતો આવ્યો છે અને જેને મેળવવામા અને પાલન પોષણ કરવામા તે પોતાના હિત અહિતનો પણ વિવેક લુપ્ત કરી નાખેલ છે. ભલા ! તેના સ્વરૂપનો વિચાર કર અને દેખ કે તેના સંયોગથી તારા આત્મામા કયા સુધી શાતિ જાગ્રત થાય છે. કદાચ તે વાસ્તવિક શાતિ પ્રદાન કરવામાં અસમર્થ છે તો તુ તેનો નવકોટિથી પરિત્યાગ કરી દે. આ પરિત્યાગથી તારા આત્મામા અપૂર્વ સંસ્કાર જાગ્રત થશે તો આ તારી દીનદશાનો અંત કરી દેશે, આ પદાર્થોનો ભોગ અથવા સગ્રહ ખુજલીને ખણવા બરાબર છે જે પ્રકારે ખુજલીને ખણવાવાળો વ્યક્તિ, તે વખતે ખણવાથી આનદ આવે તેમ માને છે. અને કહ્યુ પણ છે.—

खुजलाते समय आनंद में गोते लगाने लगता है और कहा भी है–

"जो नहीं मजा देखा हलवा पुरी खाने में, सो मजा देखा एक खाज के खजुवाने में"

ज्यों ही उस खुजलाने रूप कार्य को बंद कर देता है तो उसको जो जलनरूप वेदना होती है वह वही जानता है, इसी प्रकार इन विषयों का सेवन भी है, ऐसा विचार कर मन, वचन आदि रूप नव कोटि से इनका त्याग कर। इसी बातकी पुष्टि "अहो विहाराए" इस पद में लगा हुआ "अहो" यह पद करता है यह तो निश्चित है कि आत्मा में पूर्व संस्कार जितना कार्य करते हैं उतना वर्तमान संस्कार नहीं। बच्चा जब माता के पेट से उत्पन्न होता है तो उसकी स्तन्यपानप्रवृत्ति में पूर्व संस्कार ही सर्व प्रथम काम करता है। हम यह भी प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं कि कुंभकार अपने घटरूप कार्य को निष्पन्न करने के लिये चाक में जबर्दस्त भ्रमी पैदा करता है, यह जबर्दस्त भ्रमी सिर्फ वर्तमान में ही उसने उसमें उत्पन्न नहीं की है, किन्तु एक के बाद एक जो वह उसमें भ्रमी किया करता है–वारंवार उसे दंड से घुमाता है उससे ही यह उत्पन्न हुई है, इसी भ्रमीरूप संस्कार के द्वारा उसने घटरूप अपने कार्य को निष्पन्न किया है, इसी प्रकार आत्मा भी पूर्व पूर्व पर–पदार्थों के भोगने आदि रूप वासना–संस्कार से सांसारिक परपदार्थों को भोगने

"जो नहीं मजा देखा हलवा पुरी खानेमें, सो मजा देखा एक खाजके खजुवानेमें"

જ્યારે તે ખણુવારૂપ કાર્યને બંધ કરવામાં આવે અને પછી તેની જે જલનરૂપ વેદના થાય છે તે તેજ જાણે છે. તે પ્રકારે આ વિષયોનુ સેવન પણ છે. તેવો વિચાર કરી મન વચન આદિ રૂપ નવ કોટિથી તેનો ત્યાગ કરીદે. આ વાતની પુષ્ટિ "अहो विहाराए" આ પદમા લાગેલા "अहो" એ પદ કરે છે. એ તો નિશ્ચિત છે કે આત્મામાં પૂર્વસંસ્કાર જેટલું કાર્ય કરે છે તેટલુ વર્તમાન સંસ્કાર નહિ બચ્ચુ જ્યારે માતાના પેટથી ઉત્પન્ન થાય છે તો તેની સ્તન્ય-પાન–પ્રવૃત્તિમા પૂર્વસંસ્કાર જ સર્વ પ્રથમ કામ કરે છે. અમે એ પણ પ્રત્યક્ષ અનુભવ કરીએ છીએ કે કુંભાર પોતાના ઘટરૂપ કાર્યને નિષ્પન્ન કરવા માટે ચાકમા જબર્દસ્ત ભ્રમી પેદા કરે છે, આ જબરજસ્ત ભ્રમી ફક્ત વર્તમાનમાં જ તેને તેમાં ઉત્પન્ન કરેલ નથી પણ એકની પછી એક જે તે તેમાં ભ્રમી કર્યા કરે છે–વારંવાર લાકડીથી ઘુમાવ્યા કરે છે તેથી જ તે ઉત્પન્ન થયેલ છે, આ ભ્રમીરૂપ સંસ્કાર દ્વારા તેણે ઘટરૂપ પોતાના કાર્યને નિષ્પન્ન કર્યું છે, તે પ્રકારે આત્મા પણ પૂર્વ પૂર્વ પરપદાર્થોના ભોગવવા આદિરૂપ વાસના–સંસ્કારથી સાંસારિક

अथवा अपनाने की ओर झुकता है। इन संस्कारों को सर्वथा प्रक्षीण करने की शक्ति यदि कहीं है तो वह सिर्फ एक संयम में ही है, इस संयम का आराधन नव कोटि से ही होना चाहिये, ऊपर की दिखावटीसे नहीं। "अहो विहाराए" इस पदमें जो "अहो" यह शब्द है वह आश्चर्य वाचक है, पूर्वोक्त प्रकार से एक तो इस पदकी सार्थकता प्रकट की है, दूसरे इस प्रकार से भी इस पदकी सार्थकता टीकाकार प्रकट करते हुए कहते हैं कि-यह भी एक आश्चर्य की बात है कि जब यह आत्मा सांसारिक वासनाओं से वासित था। उस समय किसी को अपना मित्र, किसी को अपना शत्रु मानकर रातदिन राग और द्वेष के फंदे में आपाद-शिख -एडी से चोटी तक जकड़ा हुआ था, इष्टानिष्ट पदार्थों की कल्पना से रातदिन आर्त रौद्र ध्यान करने में मस्त रहता था, परन्तु ज्यों ही संयम की बागडोर इसके हाथ में आती है यह उस प्रकार की कल्पना से सर्वथा रहित हो जाता है, कारण कि पदार्थों में इष्ट की कल्पना इन्द्रियों के अनुकूल पदार्थों में ही होती है, प्रतिकूल पदार्थों में अनिष्ट की कल्पना। पर जब संयम की बागडोर इसे प्राप्त हो जाती है तब क्या तो अनुकूल क्या प्रतिकूल सब एक हो जाते हैं-एक जैसे ही मालूम पड़ते हैं।

પરપદાર્થોને ભોગવવા તથા અપનાવવાની તરફ જ ઝુકે છે આ સંસ્કારોને સર્વથા પ્રક્ષીણ કરવાની શક્તિ કદાચ કોઇ જગ્યોએ હોય તો તે ફક્ત સંયમમાં જ છે. આ સંયમનું આરાધન નવકોટિથી હોવું જોઈએ, ઉપર ઉપરના દેખાવ પુરતું ન હોવું જોઇએ.

"अहो विहाराए" આ પદમાં જે "अहो" એ શબ્દ છે તે આશ્ચર્ય-વાચક છે, પૂર્વોક્ત પ્રકારથી એક તો આ પદની સાર્થકતા પ્રગટ કરી છે. બીજું આ પ્રકારથી પણ આ પદની સાર્થકતા ટીકાકાર પ્રગટ કરીને કહે છે કે-એ પણ એક આશ્ચર્યની વાત છે કે જ્યારે આ આત્મા સાંસારિક વાસનાઓથી વાસિત હતો તે વખતે કોઈને પોતાને મિત્ર, કોઇને પોતાનો શત્રુ માનીને રાત દિવસ રાગ અને દ્વેષથી પુરેપુરો પગથી માથા સુધી ફસાએલો હતો, અર્થાત્ જકડાએલો હતો. ઇષ્ટ અનિષ્ટ પદાર્થોની કલ્પનાથી રાતદિવસ આર્ત રૌદ્ર ધ્યાન કરવામાં મસ્ત રહેતો હતો. પરંતુ જ્યાં સંયમની લગામ તેના હાથમા આવે છે ત્યાં તે એવા પ્રકારની કલ્પનાથી સર્વથા રહિત થાય છે. કારણ કે પદાર્થોમા ઇષ્ટની કલ્પના ઈન્દ્રિયોના અનુકૂળ પદાર્થોમાં જ થાય છે. પ્રતિકૂળ પદાર્થોમાં અનિષ્ટની કલ્પના. પરંતુ જ્યારે સંયમની દોરી તેને પ્રાપ્ત થાય છે ત્યારે અનુકૂળ અને પ્રતિકૂળ બધું એક

आश्चर्यकारित्वश्चात्र त्रिकरणत्रियोगैः कनककामिन्यादिसकलवस्तुपरित्यागित्वेन। यद्वा सकलप्राणिगणेषु मित्रभावेन। अथवाऽन्तर्मुहूर्तान्तर्गताऽष्टसमयमात्रसंस्पृष्टत्वेऽप्यनन्तकर्मनिर्जरकत्वेन बोध्यम्।

लगाम ही तो घोडे को बैठने वाले के अधीनस्थ करती है, इन्द्रियांरूपी घोडे भी इसी संयम की बागडोर–लगाम से आत्मा के अधीन बन जाते हैं, तब "समो निंदापसंसासु तहा माणावमाणओ" अर्थात् वह निन्दा और प्रशंसाको तथा मान और अपमानको समान समझता है। यह कहने की ही बात नहीं है–अनुभव सिद्ध विषय है। क्या संयमियों के समक्ष परस्पर विरोधी जीव मैत्रीभाव धारण कर बैठे हुए नहीं सुने हैं ?, संयम वह अंजन है कि जिसके लगते ही आंतर चक्षुओंकी यह कल्पना कि "यह मित्र है, यह शत्रु है" बिलकुल नष्ट हो जाती है। यह संयमी जीव यद्यपि बाह्य जगत में विचरण करता है तो भी बाह्य जगत में वह जल में कमल की तरह अलिप्त ही रहता है, अतः शत्रु, मित्र, इष्ट, अनिष्ट आदि समस्त कल्पनाओं को ममत्वजन्य बुद्धि का विकार मानकर वह उनसे इकदम परे हो जाता है। इसी अभिप्राय को लेकर टीकाकार ने "यद्वा सकलप्राणिगणेषु मैत्रीभावेन" इस पद से इसका खुलासा किया है। समताभाव संयमका सर्वप्रथम गुण है। जिस

જ થઇ જાય છે–એક જ જેવું માલૂમ પડે છે. લગામ જ તો ઘોડાને બેસનારના અધીનમાં કરે છે. ઇન્દ્રિયો રૂપી ઘોડા પણ આ સંયમરૂપ લગામથી આત્માને આધીન થઈ રહે છે ત્યારે "समो निंदापससासु तहा माणावमाणओ" અર્થાત્ તે નિંદા અને પ્રશંસાને તથા માન અને અપમાનને સમાન સમજે છે એ કહેવાની જરૂર રહેતી નથી, કારણ કે આ અનુભવસિદ્ધ વિષય છે. શું સંયમીઓના સમક્ષ પરસ્પર વિરોધી જીવ મૈત્રીભાવ ધારણ કરીને બેઠેલાં નથી સાંભળ્યાં ?, સંયમ તે અંજન છે કે જેનાથી આંતરચક્ષુઓની એ કલ્પના કે "આ મિત્ર છે, આ શત્રુ છે" બિલકુલ નષ્ટ થઇ જાય છે. તે સંયમી જીવ હજુ સુધી બાહ્ય જગતમાં વિચરણ કરે છે તો પણ તે બાહ્ય જગતમાં તે જલમા કમલની માફક અલિપ્ત જ રહે છે, માટે શત્રુ, મિત્ર, ઇષ્ટ, અનિષ્ટ, એ બધી કલ્પનાઓ મમત્વજન્ય બુદ્ધિનો વિકાર માનીને તે તેનાથી એકદમ દૂર થઈ જાય છે. આ અભિપ્રાયને લઇને ટીકાકારે "यद्वा सकलप्राणिगणेषु मैत्रीभावेन" એ પદથી તેનો ખુલાસો કરેલ છે. સમતાભાવ સંયમનો સર્વપ્રથમ ગુણ છે. જેમ સૂર્યના ઉદયથી અંધકારનો નાશ

प्रकार सूर्य के उदित होने पर अंधकार का अभाव हो जाता है उसी प्रकार संयमरूपी सूर्य के उदित होते ही आत्मा से विषमता की कल्पनारूप अंधकार विलीन हो जाता है।

इस प्रकार से भी 'अहो विहाराए" इस सूत्रमें 'अहो' पद की सार्थकता टीकाकार प्रकट करते हैं-"अन्तर्मुहूर्तान्तर्गताष्टसमयमात्र-संस्पृष्टत्वेऽपि अनन्तकर्मनिर्जरकत्वेन" ४८ मिनट के समयको एक मुहूर्त कहते हैं, इस मुहूर्त के भीतर के समयको अन्तर्मुहूर्त कहते हैं। यह असंख्यात समयों का एक काल है। समय, व्यवहारकाल का सब से सूक्ष्मातिसूक्ष्म हिस्सा है। काल दो प्रकार का है १-निश्चयकाल, २-व्यवहारकाल। समय, घडी, घंटा, पल, मुहूर्त, वर्ष आदि सब व्यवहार काल है। वर्तना जिसका लक्षण है वह निश्चयकाल है, क्यों कि शास्त्रमें 'वट्टणालक्खणो कालो' कहा है।

सद्भावों से यदि अष्टसमयमात्र भी संयम का आराधन कर लिया जावे तो वह अनन्त कर्मों की निर्जरा का कारण माना गया है। हम देखते हैं-अग्नि की थोड़ी सी भी चिनगारी जब रुई के पुंजपर पड़ जाती है तो वह उसे भस्म कर देती है। इसी प्रकार अष्टसमयमात्र

થાય છે તે પ્રકારે સંયમરૂપી સૂર્યના ઉદયથી આત્માથી વિષમતાની કલ્પનારૂપ અંધકારનો નાશ થાય છે

આ પ્રકારથી પણ "अहो विहाराए" આ સૂત્રમાં 'अहो' પદની સાર્થકતા ટીકાકાર પ્રગટ કરે છે-"अन्तर्मुहूर्तान्तर्गताष्टसमयमात्रसंस्पृष्टत्वेऽपि अनन्तकर्मनिर्जरकत्वेन" ૪૮ મીનીટના સમયને એક મુહૂર્ત કહે છે. આ મુહૂર્તના ભીતરના સમયને અન્તર્મુહૂર્ત કહે છે. તે અસંખ્યાત સમયોનો એક કાળ છે, સમય, વ્યવહાર કાળનો બધાથી સૂક્ષ્માતિસૂક્ષ્મ હિસ્સો છે કાલ બે પ્રકારનો છે. ૧ નિશ્ચયકાલ, ૨ વ્યવહારકાલ, સમય, ઘડી, ઘંટા, પલ, મુહૂર્ત, વર્ષ આદિ બધો વ્યવહારકાલ છે, વર્તવું જેનું લક્ષણ છે તે નિશ્ચયકાળ છે, કારણ કે શાસ્ત્રમાં 'वट्टणालक्खणो कालो' કહેલ છે

સદ્ભાવોથી કદાચ અષ્ટ સમય માત્ર પણ સંયમનું આરાધન કરી લેવામાં આવે તો તે અનંત કર્મોની નિર્જરાનું કારણ માનેલ છે અમે દેખીએ છીએ અગ્નિની થોડી પણ ચિનગારી જ્યારે રૂના ઢગલા ઉપર પડી જાય છે તે બધુ રૂ બાળી નાખે છે, તે પ્રકારે અષ્ટ સમય માત્ર પણ સંયમનું સેવન જીવોના અનન્ત કર્મોના નિર્જરાનું કારણ બને છે તેમાં કઈ અચરજની વાત છે?

किं कृत्वा संयमानुपालनतत्परो भवेदित्याह–' अन्तरं च खलु इमं सम्प्रेक्ष्य' इमं=तपःसंयमकरणरूपम् अन्तरम्=अवसरम्, च=समुच्चये, खलु=निश्चयेन सम्प्रेक्ष्य =सम्यग्दृष्ट्वा अनन्तकालदुर्लभमानुपजन्मार्यक्षेत्रशोभनकुलोत्पत्तिबोधिलाभसर्वविरति-प्राप्तिरूपावसरोऽनादौ संसारे जीवेन लब्ध इत्यनुभूय " धीरो मुहूर्तमपि नो प्रमाद-येत् " धीरः=परीषहोपसर्गसहने दृढः संयमी नो प्रमादयेत्=प्रमादं न कुर्यात् ।

भी संयम का सेवन जीवों के अनन्तकर्मों की निर्जरा का कारण हो तो इस में कौनसी अचरज की वात है ? ।

अज्ञानी जीव करोड़ो भवों से भी जितने कर्मों की निर्जरा नहीं कर सकता है उतने कर्मों की निर्जरा तीन गुप्ति के धारक–संयमी महात्मा उच्छ्वास मात्र में कर देता है, यह सब महिमा संयम की ही है इसी लिये संयम भाव अचरजकारी है। इसलिये मनुष्य–जन्म को सफल बनाने के लिये यह आवश्यक कर्तव्य है कि संयम का आराधन किया जावे। यह दृढ विश्वास रखना चाहिये कि–संयमप्राप्ति की योग्यता मनुष्यजन्म में ही है, इसमें भी यदि अनार्य क्षेत्र में जन्म हुवा वहां अनार्यों की संगति मिली तो जिस प्रकार कड़वी तुंबड़ी के संग से दूध की हालत होती है ठीक यही हालत इस आत्मा की भी हो जाती है। रातदिन दुर्विचारों का उनकी संगति में पड़ने से तांता लगा रहता है, धर्म कर्मका उस अवस्था में भान नहीं रहता–बेहोशी का नशा ही सवार रहता है, मेरा शुभ कर्तव्य क्या है? हेय क्या है? उपादेय क्या है? भक्ष्य क्या है? अभक्ष्य क्या है? इत्यादि समस्त बातों का बिचार उससे दूर रहता है।

અજ્ઞાની જીવ કરોડો ભવોથી પણ જેટલા કર્મોની નિર્જરા નથી કરી શકતો તેટલા કર્મોની નિર્જરા ત્રણ ગુપ્તિના ધારક સંયમી મહાત્મા ઉચ્છ્વાસમાત્રમાં કરી લે છે, આ બધો મહિમા સંયમનો જ છે. માટે સંયમભાવ અચરજકારી છે, માટે મનુષ્યજન્મને સફળ બનાવવા માટે એ આવશ્યક કર્તવ્ય છે કે સંય-મનું આરાધન કરવામાં આવે એ દઢ વિશ્વાસ રાખવો જોઈએ કે–સંયમ-પ્રાપ્તિની યોગ્યતા મનુષ્યજન્મમાં જ છે. તેમાં પણ કદાચ અનાર્ય ક્ષેત્રમાં જન્મ થયો ત્યાં અનાર્યોની સંગતિ મળી તો જે પ્રકારે કડવી તુંબડીના સંગથી દૂધની હાલત થાય છે ઠીક તે જ હાલત આ આત્માની પણ થાય છે, રાતદિવસ દુર્વિ-ચારોનું તેની સંગતિમાં પડવાથી તાંતો લાગ્યો રહે છે, ધર્મકર્મનું આ અવ-સ્થામા ભાન નહિ રહેતું હોવાથી બેહોશીનો નશો રહ્યા કરે છે મારૂ શુભ કર્તવ્ય શું છે ? હેય શું છે ? ઉપાદેય શું છે ? ભક્ષ્ય શું છે ? અભક્ષ્ય શું છે ? ઇત્યાદિ સમસ્ત

जब इस प्रकार की परिस्थिति अनार्यों के संग से उपस्थित होती है तब वहां पर संयम जैसी शुद्ध प्रवृत्ति की प्राप्ति कैसे हो सकती है? किन्तु नहीं। यदि आर्यक्षेत्र में जन्म हुवा तो भी दुष्कुल में जन्म मिला तो वहां उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती; कारण कि वहां पर इतनी योग्यता ही नहीं कि जिससे संयमभावको धारण करने की भावना जागृत हो, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह जैसे पांच आस्रवों का ही विशेषतर वहां संग्रह होता रहता है जिससे उस मनुष्यजन्म का पाना न पाने के ही तुल्य हो जाता है। मनुष्य पर्याय भी मिली, आर्यक्षेत्र मिला और उत्तम कुलमें जन्म मिला, परन्तु जो मूल में ही कमी हुई तो उस जन्म से भी क्या लाभ हो सकता है? अतः वह जन्म तभी सफल हो सकता है जो बोधि की प्राप्ति हो। यदि बोधि की प्राप्ति ही न हुई तो सर्वविरति कहां से होगी। सर्वविरति-साधुका चारित्र ही श्रेय की प्राप्तिका प्रधान कारण कहा गया है इसलिये इन तमाम बातों की प्राप्ति की उत्तरोत्तर दुर्लभता जानकर धीर पुरुष को चाहिये कि वह अपने जन्म को सफल करने के लिये संयमाराधन के प्रति मुहूर्त्त मात्र भी प्रमाद नहीं करे। इसी बात का टीकाकारने-" अनन्तकालदुर्लभमानु-

---

વાતોનો વિચાર તેનાથી દૂર રહે છે. જ્યારે આ પ્રકારની પરિસ્થિતિ રહે છે ત્યારે આ ઠેકાણે સંયમ જેવી શુદ્ધ પ્રવૃત્તિની પ્રાપ્તિ કેવી રીતે થઈ શકે? બલ્કે નહિ જ. કદાચ આર્ય ક્ષેત્રમાં જન્મ થયો તો પણ દુષ્કુલમાં જન્મ થયો તો ત્યા પણ તેની પ્રાપ્તિ થઈ શકતી નથી, કારણ કે તે જગ્યાએ એટલી યોગ્યતા જ નથી કે જેનાથી સંયમભાવને ધારણ કરવાની ભાવના જાગ્રત થાય. હિંસા, જુઠ, ચોરી, કુશીલ અને પરિગ્રહ જેવા પાંચ આશ્રવોનું જ વિશેષતર ત્યાં સંગ્રહ થયા કરે છે તેથી તે મનુષ્યજન્મ મળ્યો ના મળ્યા બરાબર જ થઇ જાય છે. મનુષ્યપર્યાય પણ મળી આર્યક્ષેત્ર મળ્યું. ઉત્તમ કુળમાં જન્મ પણ મળ્યું. પરંતુ મૂળમાં જ કમીના બની તો તે જન્મથી જ કયો લાભ મળી શકે? માટે તે જન્મ ત્યારે સફળ બની શકે છે જ્યારે તેનાથી બોધિની પ્રાપ્તિ થાય કદાચ બોધિની પ્રાપ્તિ જ ન થઈ તો સર્વવિરતિ ક્યાંથી થશે. સર્વવિરતિ-સાધુનુ ચારિત્ર જ શ્રેયની પ્રાપ્તિનુ પ્રધાન કારણ કહેવામાં આવ્યું છે, માટે આ તમામ વાતોની પ્રાપ્તિની ઉત્તરોત્તર દુર્લભતા જાણીને ધીર પુરૂષને જોઇએ કે પોતાના જન્મને સફળ કરવા સંયમારાધન પ્રતિ મુહૂર્ત માત્ર પણ પ્રમાદ ન કરે. આ વાતનો ટીકાકારે-

षजन्मा–ऽऽर्यक्षेत्र–शोभनकुलोत्पत्ति–बोधिलाभ–सर्वविरतिप्राप्तिरूपावसरोऽनादौ संसारे जीवेन लब्धः, इत्यनुभूय धीरो मुहूर्तमपि नो प्रमादयेत्" इन पङ्क्तियोंसे खुलाशा किया है। अर्थात् दुर्लभ मनुष्य-जन्म, आर्यक्षेत्र, उच्चकुल में जन्म, बोधिका लाभ, सर्वविरतिरूप चारित्र की प्राप्तिरूप अवसर जीवने अनन्तकालसे प्राप्त किया है, ऐसा विचार कर धीर वीर संयमीजन मुहूर्त मात्र भी संयमाराधन करने में प्रमाद-शील न बनें। मनुष्यजन्म का पाना बहुत ही दुर्लभ है। इसकी दुर्लभता शास्त्रकारोंने दश १० दृष्टान्तों से शास्त्रमें प्रकट की है। प्रथम तो मनुष्यजन्म की प्राप्ति होना दुर्लभ है, उसमें भी आर्यक्षेत्र में जन्म मिलना यह और भी महादुर्लभ है, आर्यक्षेत्र में भी उच्चकुल में जन्म पाना यह और भी दुर्लभ है, इस में भी बोधिका लाभ होना और कठिनतर है, इसमें भी सर्वविरतिरूप चारित्र का आराधन करना और भी दुर्लभतम है, अतः इस अनादि संसार में यदि इस पूर्ण साधनसामग्रीकी प्राप्ति तेरे हाथ आई है तो हे प्राणी! तू संयमभाव से एक मुहूर्त भी प्रमादी मत बन, धीर वीर होकर इसका–कितने ही उपसर्ग आवें कितने ही चाहे परीषहों का ढेर तेरे मार्ग में आडा पड़ा हो तो भी आराधन

"अनन्तकालदुर्लभमानुषजन्माऽऽर्यक्षेत्रशोभनकुलोत्पत्तिबोधिलाभसर्वविरतिप्राप्तिरूपावसरोऽनादौ संसारे जीवेन लब्ध', इत्यनुभूय धीरो मुहूर्त्तमपि नो प्रमादयेत्' આ પંક્તિઓથી ખુલાસો કરેલ છે, અર્થાત્ દુર્લભ મનુષ્યજન્મ, આર્યક્ષેત્ર, ઉંચકુળમાં જન્મ, બોધિનો લાભ, સર્વવિરતિરૂપ ચારિત્રની પ્રાપ્તિરૂપ અવસર જીવે અનંતકાળથી પ્રાપ્ત કરેલ છે. એવો વિચાર કરી ધીર વીર સંયમી જન મુહૂર્ત માત્ર પણ સંયમારાધન કરવામાં પ્રમાદશીલ ન બને. મનુષ્યજન્મનુ મળવું ઘણુ જ દુર્લભ છે, તેની દુર્લભતા શાસ્ત્રકારોએ ૧૦ દૃષ્ટાન્તોથી શાસ્ત્રમાં પ્રગટ કરી છે. પ્રથમ તો મનુષ્યજન્મની પ્રાપ્તિ થવી દુર્લભ છે, તેમાં પણ આર્યક્ષેત્રમાં જન્મ મળવો એ મહાદુર્લભ છે, આર્યક્ષેત્રમાં પણ ઉંચ કુળમાં જન્મ થવો એ પણ દુર્લભ છે, તેમાં પણ બોધિનો લાભ થવો ઘણુ જ કઠિનતર છે. તેમાં પણ સર્વવિરતિરૂપ ચારિત્રનું આરાધન કરવું તે દુર્લભતમ છે. માટે આ અનાદિ સંસારમાં કદાચ આ પૂર્ણ સાધન સામગ્રીની પ્રાપ્તિ તારે હાથે આવી છે તો હે પ્રાણી! તું સંયમભાવથી એક મુહૂર્ત પણ પ્રમાદી બનીશ નહિ. ધીર વીર થઇ તેમાં કેટલાએ ઉપસર્ગ આવે અને ગમે તેટલા પરિષહોના ઢગલા તારા માર્ગમાં આડા આવે તો પણ સંયમનું આરાધન કર. જેથી પ્રાપ્ત થયેલો આવો અવસર તારા

छद्मस्थोपयोगो मुहूर्तमात्रमवतिष्ठते, तेनात्र मुहूर्तमिति कथितम्; शास्त्रसम्मतं तु समयमात्रमपीत्यर्थः "समयं गोयम मा पमायए" इति वचनात्।

पूर्वपुण्योदयेन मानवजन्म लब्धवान्, तत्रापि संसारासारतासमालोचनेन विरतो भूत्वा क्षणमपि प्रमादी न भवेदित्यत्र हेतुमुपदर्शयति–"अत्येति वयो यौवनं वा" इति, वयः=कौमारयौवनादि अत्येति=अतिगच्छति व्यतीतं भवतीत्यर्थः, यौवनं वा व्यतिगच्छति, वयोमध्येऽपि यौवनस्य सत्त्वात्पुनरुपादानं तस्यैव प्राधान्यं नान्यस्येति ज्ञापनाय, धर्मार्थकामादिसाधनानां तदधीनत्वात्, मेघच्छायासन्ध्यारागवद् यौवनं स्वल्पकालस्थायीति मत्वा यथा व्यर्थं तन्न व्यतीयात्तथा संयमिना चाप्रमादिना कार्यमिति भावः॥ सू० ४॥

कर, ताकि प्राप्त हुआ यह अवसर तेरे हाथ से न निकलने पावे। परीषह और उपसर्ग के आने पर भी जो संयम पथसे विचलित न हो उसका ही नाम धीर है। सच्चा धीर वीर वही है–जो इस पवित्र संयम का आराधन कर अपने जन्मको सफल बनाता है।

यहां पर जो 'एक मुहूर्त भी प्रमाद न करे' ऐसा कहा है वह छद्मस्थ जीवों के उपयोग की अपेक्षा कथन समझना चाहिये, क्यों कि छद्मस्थों का उपयोग एक मुहूर्त तक ही स्थिर रहता है-फिर उपयोगान्तर हो जाता है।

शास्त्रीय सिद्धान्त तो इस बात का प्रतिपादन करता है कि एक समय भी प्रमाद मत करो–"समयं गोयम! मा पमायए"–हे गौतम एक समय भी प्रमादी मत बन।

इसलिये सूत्रकार इस बात का विचार कर संबोधन करते हुए कहते हैं कि–हे प्राणि! किसी विशिष्ट पूर्वपुण्योदय से ही तुझे इस दुर्लभतम

હાથથી ચાલ્યો ન જાય. પરીષહ અને ઉપસર્ગ આવવા છતાં જે સંયમમાર્ગથી વિચલિત ન થાય તેનું નામ જ ધીર છે. સાચો ધીરવીર તે છે જે આ પવિત્ર સંયમનું આરાધન કરી પોતાના જન્મને સફળ બનાવે છે.

આ ઠેકાણે જે 'એક મુહૂર્ત પણ પ્રમાદ ન કરે' એવું કહ્યું છે તે છદ્મસ્થ જીવોના ઉપયોગની અપેક્ષા કથન સમજવું જોઈએ. કારણ કે છદ્મસ્થોનો ઉપયોગ એક મુહૂર્ત સુધી જ સ્થિર રહે છે પછી ઉપયોગાન્તર થઈ જાય છે. શાસ્ત્રીય સિદ્ધાન્ત તો આ વાતનું પ્રતિપાદન કરે છે કે એક સમય પણ પ્રમાદ ન કરે. "समयं गोयम! मा पमायए" હે ગૌતમ! એક સમય પણ પ્રમાદી ન બન.

આના માટે સૂત્રકાર આ વાતનો વિચાર કરી સંબોધન કરી કહે છે કે–હે પ્રાણી! કોઈ વિશિષ્ટ પૂર્વપુણ્યોદયથી જ તને આ દુર્લભતમ મનુષ્યભવની પ્રાપ્તિ થઈ

मनुष्यभव की प्राप्ति हुई है तो उसे सफल बनाने के लिये तू संसार की असारता का विचार कर, ताकि तेरा मन सांसारिक पदार्थों में लुब्ध न बने। संसार की असारता का विचार ही तो सांसारिक पदार्थों में तुच्छता की भावना जागृत करता है। जिन पदार्थों के लिये यह रात दिन एक कर डालता है, उन पदार्थों का जब स्वरूप विचार करता है तो नियमतः इसके चित्तमें उनसे विरक्तिभाव जागृत होता है, दृष्टिका भेद ही तो विरक्तिभाव है। जिन पदार्थों के परिणमन में यह अपना परिणमन मानता था, तथा प्राप्ति न होने पर आकुलित हो उठता था, उन्हीं पदार्थों में असारता या तुच्छता की भावना जागृत होने पर उनसे इसकी दृष्टि बदल जाती है और 'भोगों के निमित्त से आत्मा में कर्म का बन्ध होता है' ऐसा समझ कर उनसे उदासीन वृत्ति धारण कर लेता है, तब जिस प्रकार एक घास के तिनखे में साधारण मनुष्यको भी न राग होता है और न द्वेष होता है, ठीक इसी प्रकार की प्रवृत्ति, परपदार्थों में दृष्टिभेद होने से इसकी हो जाती है, तब यह प्रत्येक पदार्थ के परिणमन में ज्ञाता-द्रष्टा-स्वरूप ही रहता है, आकुलित या मोही नहीं बनता। यही परिस्थिति इसे संयमभाव में दृढ रूपसे स्थिर रखती है अतः यह एक क्षण भी प्रमादी नहीं बनता, इसी बात का खुलाशा-" अच्चेति वयो यौवनं च" इस वाक्य से सूत्र-

છે તો તેને સફળ બનાવવા માટે તું સંસારની અસારતાનો વિચાર કર, જેથી તારૂં મન સાંસારિક પદાર્થોમાં લુબ્ધ ન બને. સંસારની અસારતાનો વિચાર જ તો સાંસારિક પદાર્થોમાં તુચ્છતાની ભાવના જાગ્રત કરે છે, જે પદાર્થો માટે તે રાત દિવસ એક કરી નાખે છે, જ્યારે તે પદાર્થોનું સ્વરૂપ વિચાર કરે છે તો નિયમતઃ તેના ચિત્તમાં તેનાથી વિરક્તિભાવ જાગ્રત થાય છે. દૃષ્ટિનો ભેદ તે જ વિરક્તિભાવ છે. જે પદાર્થોના પરિણમનમાં તે પોતાનું પરિણમન માનતો હતો તથા પ્રાપ્તિ ન થવાથી આકુલિત બનતો હતો, તે પદાર્થોમાં અસારતા અગર તુચ્છતાની ભાવના જાગ્રત થવાથી તેનાથી તેની દૃષ્ટિ બદલી જાય છે, અને "ભોગોના નિમિત્તથી આત્મામાં કર્મનો બંધ થાય છે" એવું સમજીને તેનાથી ઉદાસીનવૃત્તિ ધારણ કરી લે છે, ત્યારે જે પ્રકારે એક ઘાસના તણખલા માટે સાધારણ મનુષ્યને પણ રાગ થતો નથી તેમ દ્વેષ થતો નથી, ઠીક તે પ્રકારની પ્રવૃત્તિ, પર પદાર્થોમાં દૃષ્ટિભેદ થવાથી તેની થઈ જાય છે. ત્યારે તે પ્રત્યેક પદાર્થના પરિણમનમાં જ્ઞાતા-દ્રષ્ટા-સ્વરૂપ જ રહે છે, આકુલિત અગર મોહી બનતો નથી. આ પરિસ્થિતિ આ સંયમભાવમાં દૃઢ રૂપથી સ્થિર રાખે છે, માટે તે એક ક્ષણ પણ પ્રમાદી બનતો નથી. આ વાતનો

कारने किया है। प्रमादी नहीं बनने में यह हेतुरूपसे कथन किया है। कौमार यौवनादि अवस्थाओं का नाम वय है, सूत्रकार कहते हैं कि-देखो हे भव्य जीव ! परपदार्थों में रागी द्वेषी या मोही होतेर कौमार यौवनादि कई पूर्व भवों की अवस्थाएँ व्यतीत हो चुकी हैं, परन्तु तूने अपना कुछ भी सुधार नहीं किया, अतः यह वर्तमान समय जो तुझे मिला है इसे सफल करने की कोशिश कर, इस भवकी भी ये बालयौवनादि अवस्थाएँ व्यतीन हो जानेवाली हैं-स्थिर रहनेवाली नहीं हैं, इस लिए अब तो इनसे अपना कुछ कल्याण करले । माना कि-बाल अवस्था में अल्पज्ञान होने से आत्मा कल्याणमार्ग के पथ पर अग्रसर न हो सके तो भी यौवन अवस्था में तो हो सकता है, परन्तु तू तो उसे भी व्यर्थ खो बैठता है, क्यों कि सब अवस्थाओं में यौवन अवस्था की ही मुख्यता है, इस अवस्था में ही यह प्राणी सब कुछ करता रहता है, धर्म, अर्थ और कामादि साधन सब इसी अवस्था में प्राप्त किये जाते हैं, इसी ख्याल से 'वय' इस में उसका समावेश होनेपर भी "यौवन" इस पद का पृथक् रूपसे ग्रहण किया है, अतः वह यौवन अवस्था व्यर्थ व्यतीत न हो इस प्रकार से संयमी पुरुष को वह अवस्था अप्रमाददशासमन्वित होकर

ખુલાસો—" अत्येति वयो यौवनं च " આ વાક્યથી સૂત્રકારે કરેલ છે. પ્રમાદી નહિ બનવામા આ હેતુરૂપથી કથન કરેલ છે કૌમાર યૌવનાદિ અવસ્થાઓનું નામ વય છે. સૂત્રકાર કહે છે કે-દેખો હે ભવ્ય જીવ ! પરપદાર્થોમાં રાગી દ્વેષી અગર મોહી થતા કૌમાર-યૌવનાદિ અનેક પૂર્વભવોની અવસ્થાઓ વ્યતીત થયેલ છે. પરંતુ તેં પોતાનો કાંઇ પણ સુધાર કર્યો નહિ, માટે આ વર્તમાન સમય જે તને મળેલ છે તેને સફળ કરવાની કોશિશ કર. આ ભવની પણ એ બાલ યૌવનાદિ અવસ્થાઓ વ્યતીત થઈ જવાની છે-સ્થિર રહેવાવાળી નથી, માટે હવે તો તેનાથી પોતાનું કલ્યાણ કરી લ્યો. માનીલ્યો કે-બાલ અવસ્થામાં અલ્પજ્ઞાન હોવાથી આત્મા કલ્યાણ માર્ગમાં અગ્રેસર ન બની શકે તો પણ યૌવન અવસ્થામાં તો બની શકે છે, પરંતુ તું તો તેને પણ વ્યર્થ ખોઇ બેસે છે, કારણ કે બધી અવસ્થાઓમાં યૌવન અવસ્થાની જ મુખ્યતા છે. આ અવસ્થામાં જ પ્રાણી કાંઈક પણ કરી શકે છે. ધર્મ, અર્થ અને કામાદિ સાધન બધું આ અવસ્થામાં પ્રાપ્ત થાય છે, એ ખ્યાલથી 'वय' તેમા તેનો સમાવેશ હોવા છતાં પણ "यौवन" આ પદનું પૃથક્ રૂપથી ગ્રહણ કરેલ છે. માટે તે યૌવન અવસ્થા વ્યર્થ વ્યતીત ન થાય એ પ્રકારથી સંયમી પુરૂષે તે અવસ્થા અપ્રમાદદશાસમન્વિત બની

'संयमानुपालनं श्रेयः' इति यो न जानाति पुत्रकलत्रासक्तः संसारासारसरणिमनुवर्तमानोऽनाराधितकल्याणमार्गोऽसंयमजीवितामिनिवेशवान् प्राणी बहुशः सत्त्वोपघातकारिणीं क्रियां करोतीति दर्शयति—" जीविए "-इत्यादि ॥

मूलम्—जीविए इह जे पमत्ता से हंता छेत्ता भेत्ता लुंपिता विलुंपिता उद्दविता उत्तासइता अकडं करिस्सामित्ति मण्णमाणे ॥ सू० ५ ॥

छाया—जीवित इह ये प्रमत्ताः स हन्ता छेत्ता भेत्ता लुम्पयिता विलुम्पयिता अपद्रावयिता उत्रासकोऽकृतं करिष्यामीति मन्यमानः ॥ सू० ५ ॥

सफल बना लेनी चाहिये, क्योंकि यह अवस्था सदा स्थायी नहीं है, संध्याराग और मेघछायाकी तरह स्वल्पकाल में ही देखते २ नष्ट होजानेवाली है, अतः इसकी सफलता करने में ही बुद्धिमानी है ॥ सू० ४ ॥

जो व्यक्ति इस बात को नहीं समझता है कि–'संयम का पालन करना हितावह है' वह पुत्र कलत्रादि पदार्थों में आसक्तचित्त होकर इस असार संसार में ही भ्रमण करता रहता है, कल्याणमार्ग का आराधन नहीं करने के कारण असंयम जीवन में ही वह अपना समय व्यतीत करता है, और संयम जीवन धारण करने की बात कहे जाने पर वह अपने दुरभिनिवेश के वशावर्ती हो उस तर्फ जरा भी ध्यान नहीं देता, तथा ऐसे २ कार्य करता रहता है कि जिनके करने में अनेक त्रस जीवों का घात होता है इसी बातको सूत्रकार प्रकट करते हैं—

સફળ બનાવી લેવી જોઈએ, કારણ કે આ અવસ્થા સદા સ્થાયી નથી, સંધ્યાના રાગ અને મેઘછાયા ની માફક સ્વલ્પકાળમાં જ દેખતાં–દેખતાં નષ્ટ થવાવાળી છે, માટે તેની સફળતા કરવામાં જ બુદ્ધિમાની છે. ॥ સૂ૦૪ ॥

જે વ્યક્તિ, 'સંયમનું પાલન કરવું તે હિતાવહ છે' તેમ સમજતો નથી તે પુત્રકલત્રાદિ પદાર્થોમાં આસક્તચિત્ત થઈ આ અસાર સંસારમાં જ ભ્રમણ કરતો રહે છે, કલ્યાણ માર્ગનું આરાધન નહિ કરવાના કારણે અસંયમ જીવનમાં તે પોતાનો સમય વ્યતીત કરે છે. અને સંયમ જીવન ધારણ કરવાની વાત કહેવા ઉપર તે દુરભિનિવેશવશવર્તી હોઈ તેના તરફ જરા પણ ધ્યાન આપતો નથી. તથા એવું કાર્ય કરતો રહે છે કે જે કરવામાં અનેક ત્રસ જીવોનો ઘાત થાય છે તે વાતને સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે—

टीका—"जीवित इह ये प्रमत्ताः" इति, इहास्मिन् जीविते प्रत्यहं वयोऽतिक्रमेऽप्यसंयमजीविते, प्रमत्ताः=विषयकषाये प्रमादवन्तो भवन्तीति सम्बन्धः, प्रमत्तो हि षड्जीवनिकायोपमर्दने प्रवृत्तोऽनेकानर्थकरी विविधां विरुद्धां सावद्यां क्रियां विदधातीत्याह—"स हन्ता" इति सः=शब्दादिविषयगृद्धः प्रमादी हन्ता=पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसानां प्राणिनां नाशकः 'छेत्ता' वनस्पतिप्रभृतीनां, कर्णनासिकादीनां च, 'भेत्ता' पृथिव्यादिनिकायानां, 'लुम्पयिता' ग्रन्थिभेदनादिना, 'विलुम्पयिता' ग्रामघातादिकर्मणा, 'अपद्रावयिता' विषशस्त्रादिप्रयोगेण मारकः, 'उत्त्रासकः' लोष्टप्रक्षेपादिनोद्वेजको लोकानां भवतीति सर्वत्र योज्यम्।

'जीविए इह जे' इत्यादि। इस जीवन में जो प्रमादी बना हुआ है वह 'यह कार्य मेरे पूर्वजोंने नहीं किया है, इसे मैं करूँगा' ऐसा समझकर त्रस स्थावर जीवों का घातक होता है, उनका छेदन करनेवाला होता है, उनका भेदन करनेवाला होता है, उनका लुम्पन करनेवाला होता है, विलुम्पन करनेवाला होता है, अपद्रावक होता है, उत्त्रासक होता है।

जीवन उनका ही सफल है जो इस अल्पजीवन में भी संयम द्वारा अपना आत्महित कर लेते हैं। धन्य है उन महात्माओं को जो विपुल विभूति के भोक्ता होकर भी उसे जीर्ण तृण के समान छोड़ देते हैं, और आत्मकल्याण के मार्ग में अग्रसर हो जाते हैं, चक्रवर्तियों या तीर्थंकरों के पास किस वस्तुकी कमी थी, जिनका वैभव अतुल्य था, छह खंडकी विभूतिके जो भोक्ता थे, देवता तथा इन्द्र जिनकी सेवा में सदा

'जीविए इह जे' ઇત્યાદિ આ જીવનમાં જે પ્રમાદી બનેલ છે તે 'આ કાર્ય મારા પૂર્વજોએ કરેલ નથી એ હું કરીશ' એવું સમજીને ત્રસ સ્થાવર જીવોનો ઘાતક થાય છે, તેનું છેદન કરવાવાળો થાય છે, તેનું ભેદન કરવાવાળો થાય છે, તેનું લુમ્પન કરવાવાળો થાય છે, વિલુમ્પક થાય છે, અપદ્રાવક થાય છે, ઉત્રાસક થાય છે.

જીવન તેનું જ સફળ છે જે આ અલ્પ જીવનમાં પણ સંયમદ્વારા પોતાનું આત્મહિત કરી લે છે. ધન્ય છે તે મહાત્માઓને જે વિપુલ વિભૂતિના ભોક્તા બનીને પણ તેને જીર્ણતૃણની સમાન છોડી દે છે, અને આત્મકલ્યાણના માર્ગમાં અગ્રેસર થાય છે. ચક્રવર્તિઓ અગર તીર્થંકરોની પાસે કઇ વસ્તુની ખોટ હતી, જેનો વૈભવ અતુલ્ય હતો. છ ખંડની વિભૂતિના જે ભોક્તા હતા દેવતા અને ઇંદ્ર જેની સેવામાં સદા ઉપસ્થિત રહેતા હતા. એક ક્ષણ માત્ર પણ જેણે સાંસા-

अत्र मूले पूर्वं 'प्रमत्ताः' इति बहुवचनप्रसङ्गे हन्तेत्यादौ सर्वत्रैकवचनं तु जात्येकत्वविवक्षया विज्ञेयम्। अनेकानर्थकरक्रियाप्रदर्शनं च संसाराभिष्वङ्गपरः कालाकालसमुत्थायी सततं परहननादिरूपां नानाविधां क्रियां करोतीत्यर्थबोधनायेति तात्पर्यम्।

उपस्थित रहते थे। एक क्षण मात्र भी जिन्हें सांसारिक कष्ट का अनुभव नहीं होता था, वे भी इस संयम जीवन की प्राप्ति के लिये उसे तृणवत् त्याग कर आत्मकल्याण के मार्ग में अग्रगामी हुए।

यह जानी हुइ बात है कि–सब भरत चक्रवर्ती जैसे नहीं हैं। जहां आरंभ और परिग्रह का निवास है, वहां शान्तिमय जीवन नहीं, निराकुलतामय आत्मपरिणति नहीं, यत्नाचारपूर्वक प्रवृत्ति नहीं, इन्द्रियसंयम अथवा प्राणिसंयम जैसी सुन्दर वस्तुके वहां पर दर्शन नहीं। रातदिन आधि–व्याधि और उपाधि के भार से दबा हुआ यह प्राणी आत्मिक शांतिके सच्चे निर्मल स्रोत से वञ्चित ही रहा करता है–सिर्फ झूठी कल्पना से ही अपने को सुखी और शांति का उपभोक्ता मानता रहता है। जहां जितना अधिक आरंभ होगा वहां उतना ही अधिक जीवों का उपमर्दन होगा। आरंभ परिग्रह के सद्भाव में यतनापूर्वक प्रवृत्ति ही नहीं हो सकती। अयतनापूर्वक प्रवृत्तिका नाम ही प्रमत्त दशा है। इस प्रमत्त दशाकी निवृत्ति, सर्वविरतिरूप संयम के अनुष्ठान विना नहीं हो सकती!, क्यों कि संयमके अनुष्ठान में त्रस और स्थावर

રિક કષ્ટનો અનુભવ કરેલ નથી. તે પણ આ સંયમ જીવનની પ્રાપ્તિ માટે તેનો તૃણવત્ ત્યાગ કરી આત્મકલ્યાણના માર્ગમાં અગ્રગામી થયા.

એ જાણેલી હકીકત છે બધા ભરત ચક્રવર્તી જેવા નથી. જ્યા આરંભ અને પરિગ્રહનો નિવાસ છે કે ત્યાં શાંતિમય જીવન નહિ. નિરાકુલતામય આત્મ–પરિણુતિ નહિ યત્નાચારપૂર્વક પ્રવૃત્તિ નહિ. ઈન્દ્રિયસંયમ અથવા પ્રાણિસંયમ જેવી સુંદર વસ્તુનુ જ્યાં દર્શન નથી. રાત–દિવસ આધિ–વ્યાધિ અને ઉપાધિના ભારથી દબાએલો આ પ્રાણી આત્મિક શાંતિના સાચા નિર્મળ સ્રોતથી દૂર જ રહ્યા કરે છે. ફક્ત જુઠી કલ્પનાથી જ પોતાને સુખી અને શાંતિનો ઉપભોક્તા માનતો રહે છે. જ્યા જેટલો અધિક આરંભ થશે ત્યાં તેટલું જ અધિક જીવોનુ ઉપમર્દન થશે. આરંભ પરિગ્રહના સદ્ભાવમાં યતનાપૂર્વક પ્રવૃત્તિ જ બની શકતી નથી, અયતનાપૂર્વક પ્રવૃત્તિનું નામ જ પ્રમત્તદશા છે. આ પ્રમત્તદશાની નિવૃત્તિ –સર્વવિરતિરૂપ સંયમના અનુષ્ઠાન વિના બની શકતી નથી, કારણ કે સંયમના અનુ-

जीवोंके उपमर्दन का त्याग नवकोटिसे हो जाता है।

इस संयमाराधन के लिये यह नहीं कहा जा सकता है कि-अभी समय नहीं है, समय आने पर संयमका आराधन कर लेंगे। वे तो एक बहाना लेकर संयमाराधन से विमुख हो रहे हैं, उनकी यह आत्माकी कमजोरी है, जब तक यह कमजोरी नहीं हटाई जावेगी, तब तक असंयम जीवन से छुटकारा भी नहीं मिल सकता है। संयमाराधन के सम्मुख होने के लिये आत्मकमजोरी को जानने की और जान कर उसे दूर करने की सख्त आवश्यकता है। हम जानते हैं कि हमारे घरमें सांप घुसा बैठा है परन्तु जब तक उसे हम नहीं निकाल देते तब तक हमारा जानना हमारे लिये किस मतलब का।

जीवन अल्प है। स्त्री पुत्रादिकों की प्राप्ति इस जीवको अनन्त वार हो चुकी है। संयोग और वियोग, ये दो ही नाटक संसार के पर्दे पर होते रहते हैं। हमारे साथ जो जन्मे थे वे चले गये, हम भी कभी न कभी चले जावेंगे, परन्तु सर्वविरति-संयमाराधन का अवसर इस जीव को हाथ नहीं आया। यदि आया होता तो-जो हमारा भव भवमें संसार में चक्कर लग रहा है-वह कभी का बंद हो जाता, अतः जब जीवन

ષ્ઠાનમાં ત્રસ અને સ્થાવર જીવોના ઉપમર્દનનો ત્યાગ નવ કોટિથી થઇ જાય છે.

આ સંયમારાધન માટે એમ કહેવામાં નથી આવતું કે હમણા સમય નથી પણ સમય આવશે ત્યારે સંયમનું આરાધન કરી લેશું. એ તો એક બહાનું માત્ર છે. જે સમયનું બહાનુ લઈ સંયમારાધનથી વિમુખ થઈ જાય છે તે તેના આત્માની કમજોરી છે. જ્યાંસુધી એ કમજોરી દૂર કરવામાં નહિ આવે ત્યાંસુધી અસંયમ જીવનથી છુટકારો પણ મળી શકતો નથી.

સંયમારાધનસન્મુખ હોવા માટે આત્મકમજોરી જાણવાની અને જાણીને તેને દૂર કરવાની સખ્ત આવશ્યકતા છે અમે જાણીએ છીએ કે અમારા ઘરમાં સાપ ઘુસેલો છે પરંતુ જ્યાં સુધી અમે તેને નહિ બહાર નિકાલીએ ત્યા સુધી અમારૂં જાણપણું નકામું છે.

જીવન અલ્પ છે. સ્ત્રી પુત્રાદિકોની પ્રાપ્તિ આ જીવને અનંતવાર થયેલ છે. સંયોગ અને વિયોગ, એ બે સંસારના પર્દાપર નાટક થતાં જ રહે છે. અમારી સાથે જે જન્મ્યા હતાં તે ચાલી ગયાં, અમે પણ ક્યારેક ચાલ્યા જઈશું, પરંતુ સર્વવિરતિ-સંયમારાધનનો અવસર આ જીવને હાથ નહિ આવ્યો. કદાચ આવ્યો હોત તો જે અમારા ભવોભવના સંસારમાં ચક્કર લાગી રહ્યા છે તે ક્યારના

क्षणभंगुर है तो उसके द्वारा संयमकी जितनी भी आराधना हो सके शुद्ध मन, वचन और काय से कर लेनी चाहिये, इसी में बुद्धिमानी है। शुद्ध आराधित थोड़ा भी संयम अनन्त कर्मों की निर्जरा का कारण माना गया है। जिस प्रकार संतप्त लोहेका गोला पानीको चारों ओर से खींचता है, उसी तरह असंयम जीवन भी विषयकषायों के द्वारा चारों ओर से कार्मणवर्गणाओंको खींचकर उन्हें कर्मरूप से परिणत कर उनसे लिप्त होता रहता है। असंयमी कार्मणवर्गणाओं को खेंच उन्हें कर्मरूप में क्यों परिणमाता है? इसका उत्तर देते हुए सूत्रकार कहते हैं—

'जीविए इह जे पमत्ता से हंता' इत्यादि।

निरन्तर आयुष व्यतीत हो रही है–अंजलि में रखे हुए जल की तरह क्षण २ में आयुकर्म की स्थिति घट रही है–फिर भी प्राणी असंयम-जीवनवाला ही बना हुआ है, विषय और कषायों में लवलीन हो रहा है, रातदिन विकथा और कषाय एवं पांचइन्द्रियों के विषय सेवन करने में ही जुटा हुआ है। प्रमादी व्यक्ति सकषाय योगवाला होता है–सकषाय योगवाला होने से ही उसकी प्रवृत्ति षड्जीवनिकाय के उपमर्दन करने में होती रहती है। उसे इस बातका जरा भी विचार नहीं आता कि मेरी

પણ બંધ થઇ જાત. માટે જ્યારે જીવન ક્ષણભંગુર છે તો તે દ્વારા સંયમની જેટલી પણ આરાધના થઇ શકે તેટલી શુદ્ધ મન–વચન–કાયાથી કરી લેવી જોઈએ. તેમા જ બુદ્ધિમાની છે. શુદ્ધ આરાધિત થોડો પણ સંયમ અનંત કર્મોની નિર્જરાનું કારણ મનાય છે. જે પ્રકારે સંતપ્ત લોઢાનો ગોળો ચારે બાજુથી પાણીને ખેંચે છે, તે પ્રકારે અસંયમ જીવન પણ વિષય કષાયોદ્વારા ચારો તરફથી કામણ વર્ગણાઓને ખેંચીને તેને કર્મરૂપ પરિણમન કરી તેનાથી લિપ્ત થઇ જાય છે. અસંયમી કામણ વર્ગણાઓને ખેંચી તેને કર્મરૂપ શા માટે પરિણમાવે છે? તેનો ઉત્તર આપતા સૂત્રકાર કહે છે–'**जीविए इह जे पमत्ता से हंता**' ઇત્યાદિ

નિરંતર આયુષ્ય વ્યતીત થઈ રહ્યું છે, અંજળીમાં રાખેલા પાણી માફક ક્ષણ ક્ષણમાં આયુકર્મની સ્થિતિ ઘટી રહી છે તો પણ પ્રાણી અસંયમ જીવનવાળા જ બની રહે છે. વિષય અને કષાયોમાં જ લવલીન થઈ રહે છે. રાતદિન વિકથા અને કષાય અને પાંચ ઇન્દ્રિયોના વિષય સેવન કરવામાં જ મચ્યા રહે છે. પ્રમાદી વ્યક્તિ સકષાય યોગવાલા થાય છે સકષાય યોગવાલા હોવાથી જ તેની પ્રવૃત્તિ ષડજીવનિકાયનુ ઉપમર્દન કરવામાં જ બની રહે છે. તેને આ વાતનો જરા પણ વિચાર આવતો નથી કે–

इस प्रवृत्ति से त्रस अथवा स्थावर जीवोंका घात हो रहा है। अनेक अनर्थकारी सावद्य क्रियाओं को वह करते हुए नहीं हिचकता है। इस लिये वह प्रमादी व्यक्ति शब्दादि विषयों में गृद्ध बनकर उन-त्रस स्थावर जीवोंका हनन करनेवाला होता है। जहां अयतनापूर्वक प्रवृत्ति है वहां प्रमत्तयोग होने से हिंसा होती ही है, इसलिये प्रमादी व्यक्ति 'हंता' कहा जाता है। जो रातदिन अपनी प्रवृत्ति को कुत्सित करनेवाली क्रियाओं के सेवन में लगाता रहता है वह एक प्रकार से उस तर्फ से इतना विवेकशून्य हो जाता है कि फिर उसे उस काम से जरा भी घृणा या संकोच नहीं होता, दया जैसी वस्तु उसके हृदय में देखने को ही नहीं मिलती। जिस प्रकार ठक २ शब्द होते रहने पर भी ठठेरे का कबूतर निर्भय होकर अपने स्थान पर बैठा रहता है अर्थात् उस जगह उसे बैठने में जरा भी संकोच नहीं होता है, उसी प्रकार जो बार बार हिंसा-झूठ-आदि पांच आस्रवों के सेवन करने में तत्पर रहते हैं वे इतने दयारहित और उस कार्य के करने में इतने विवेकशून्य बन जाते हैं कि उन कामों को करते हुए जरा भी नहीं लजाते, या उनके किये बिना उन्हें चैन नहीं पडता। यदि वे बाहर में उस तरह की प्रवृत्ति न भी करें तो भी उनकी मानसिक प्रवृत्ति

भारी आ प्रवृत्तिथी त्रस अने स्थावर જીવોનો ઘાત થઇ રહ્યો છે. અનેક અનર્થકારી પાપમય ક્રિયાઓને કરતાં જરા પણ થડકતો નથી. માટે તે પ્રમાદી વ્યક્તિ શબ્દાદિ વિષયોમા ગૃદ્ધ બનીને આ ત્રસ સ્થાવર જીવોનો ઘાત કરવાવાળો બને છે, જ્યાં અયતનાપૂર્વક પ્રવૃત્તિ છે ત્યા પ્રમત્ત યોગ હોવાથી હિંસા થયા કરે છે, માટે પ્રમાદી વ્યક્તિ 'हंता' કહેવાય છે જે રાતદિવસ પોતાની પ્રવૃત્તિને કુત્સિત કરવાવાળી ક્રિયાઓના સેવનમા લગાડતો રહે છે. તે એક પ્રકારે એક તરફથી એવો વિવેકશૂન્ય થઈ જાય છે કે તેને તે કામથી જરા પણ ઘૃણા અગર સંકોચ થતો નથી. દયા જેવી વસ્તુ તેના હૃદયમાં દેખવામાં આવતી નથી. જે પ્રકારે ઠક ઠક શબ્દ થવા છતાં પણ કસારાની જગ્યા પાસેનુ કબુતર નિર્ભય બની પોતાના સ્થાન પર જ બેસી જ રહે છે અર્થાત્ તે જગ્યા ઉપર બેસવામા તેને જરા પણ સંકોચ થતો નથી, તે પ્રકારે જે વારંવાર હિંસા, જુઠ, આદિ પાંચ આશ્રવોનું સેવન કરવામાં તત્પર રહે છે તે એટલા દયારહિત અને તે કાર્ય કરવામાં વિવેકશૂન્ય બની જાય છે કે તેવા કામો કરવામાં તે જરા પણ લાજ મર્યાદા રાખતો નથી, અગર તેવા કામ કર્યા વિના તેને ચેન પડતું નથી. કદાચ તે બહારમાં તેવા પ્રકારની પ્રવૃત્તિ ન કરે તો પણ માનસિક પ્રવૃત્તિ તેની સુતાં ઉઠતાં બેસતાં

सोते उठते बैठते उस तरफ सचेत बनी रहती है। शास्त्रकारों ने हिंसा के मुख्य दो भेद किये हैं–१ द्रव्यहिंसा और २ भावहिंसा। प्राणियों के अपने२ योग्य प्राणों का वियोग करना द्रव्यहिंसा, तथा भाव–अन्तःकरणकी कलुषित वृत्ति करना भावहिंसा है। पर्याप्तावस्था में एकेन्द्रिय जीवों के ४ प्राण होते हैं, द्वीन्द्रिय जीवों के ६, तेन्द्रिय जीवोंके ७, चतुरिन्द्रिय जीवों के ८, असंज्ञि पंचेन्द्रिय जीवों के ९ और संज्ञि पंचेन्द्रिय जीवों के १०। एकेन्द्रिय जीव सूक्ष्म और बादर के भेद से दो प्रकार के होते हैं। सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव जो इस लोक में सर्वत्र व्याप्त हैं उनका किसी भी निमित्त से घात नहीं होता है, बादर एकेन्द्रिय जीवोंका ही घात होता है। अतः प्रमादी व्यक्ति अपनी प्रवृत्ति से पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक एवं वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय जीवों का तथा द्वीन्द्रियादिक त्रस जीवों का घातक माना गया है। रागादिक भावों का उद्रेक प्रत्येक अवस्थामें रहता है, इनके विना कोई भी प्राणी जीवों के घात करने में प्रवृत्त नहीं होता, अतः इनकी उद्रेकता ही भावहिंसा है। अथवा रागादिकों की उत्पत्ति स्वयं भावहिंसा है, अतः प्रमादी व्यक्ति बाहरमें हिंसादिक कार्यों में प्रवृत्त न भी हो तो भी वह

તે તરફ જ સચેત બની રહે છે. શાસ્ત્રકારોએ હિંસાના મુખ્ય બે ભેદ કહ્યાં છે. ૧ દ્રવ્યહિંસા, અને ૨ ભાવહિંસા. પ્રાણીઓના પોતપોતાના યોગ્ય પ્રાણોનો વિયોગ કરવું તે દ્રવ્યહિંસા, તથા ભાવ–અંતઃકરણની કલુષિત વૃત્તિ કરવી તે ભાવહિંસા છે. પર્યાપ્તાવસ્થામા એકેન્દ્રિય જીવોને ૪ પ્રાણ હોય છે, બેઈન્દ્રિય જીવોને ૬, તેન્દ્રિય જીવોને ૭, ચોરેન્દ્રિય જીવોને ૮, અસંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય જીવોને ૯ અને સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય જીવોને ૧૦

એકેન્દ્રિય જીવ સૂક્ષ્મ અને બાદરના ભેદથી બે પ્રકારના હોય છે, સૂક્ષ્મ એકેન્દ્રિય જીવ જે આ લોકમાં સર્વત્ર વ્યાપ્ત છે, તેનો કોઇ પણ નિમિત્તથી ઘાત થતો નથી. બાદર એકેન્દ્રિય જીવોનો ઘાત થાય છે, માટે પ્રમાદી વ્યક્તિ પોતાની પ્રવૃત્તિથી પૃથિવીકાયિક, અપ્કાયિક, તેજસ્કાયિક, વાયુકાયિક અને વનસ્પતિકાયિક એકેન્દ્રિય જીવોનો તથા બેઈન્દ્રિય આદિ ત્રસ જીવોનો ઘાતક માનેલ છે. રાગાદિક ભાવોનો ઉદ્રેક પ્રત્યેક અવસ્થામાં રહે છે. તેના વિના કોઇ પણ પ્રાણી જીવોનો ઘાત કરવામાં પ્રવૃત્ત નથી થતો. માટે તેની ઉદ્રેકતા જ ભાવહિંસા છે. અને રાગાદિકોની ઉત્પત્તિ સ્વયં ભાવહિંસા છે માટે પ્રમાદી વ્યક્તિ બહારમાં હિંસાદિક કાર્યોમાં પ્રવૃત્ત ન હોય તો પણ તે પ્રમત્ત હોવાથી હિંસક માનવામાં

किमर्थं चैतान् व्यापारान् विदधातीत्याह–'अकृतं करिष्यामीति मन्यमानः' इति, यदन्यैः पूर्वैः सद्भिर्न कृतं=नानुष्ठितं तत्सर्वं करिष्यामि=विधास्यामि, इति मन्यमानः=स्वीकुर्वाणः सन् हननादिकर्मकर्ता भवति। पुत्रकलत्रासक्तोऽप्राप्तविविधविभवोऽनर्थकरं कर्म करिष्यामीति निश्चित्य हननादौ प्रवर्तते।

प्रमत्त होने से हिंसक माना जाता है। इसीलिये प्रमादी को शास्त्रकारों ने हिंसक कहा है। प्रमादी जिस प्रकार पांचइन्द्रियों के विषय में लोलुपी बन कर त्रस स्थावरों का घात करता है उसी प्रकार वह उनका छेदन भेदन भी करता है। फिर वह लुम्पयिता–किसी की गांठ काटना, खिसा कतरना आदि कार्य करता है, विलुम्पयिता–ग्रामघातादि कार्य करता है, अपद्रावयिता–विष शस्त्रादि के प्रयोग से किसीको मारता है, उत्त्रासयिता–कंकर पत्थर फेंकर किसीको डराता है। अनेक अनर्थों को करनेवाली हनन–छेदन–भेदन आदि क्रियाओं का जो यहां पर प्रदर्शन किया है उसका अभिप्राय सिर्फ इतना ही है कि जो संसार में ही फँसा है वह कालाकाल के ज्ञान से रहित होकर पर जीवों के विषय में अनेक अनर्थोंको पैदाकरनेवाली अनेकप्रकार की घातादिक क्रियाओं को निरन्तर करता रहता है। शंका—अनर्थकारी क्रियाओं को यह प्राणी क्यों करता है?

उत्तर—" अकृतं करिष्यामीति मन्यमानः" अर्थात्–'जो पहिले अन्य पूर्वजों नें कार्य नहीं किये हैं वे सब मैं करूंगा' इस अभिप्राय के वशवर्ती होकर ही यह प्राणी उन अनर्थोत्पादक क्रियाओं के करने में

આવે છે. માટે પ્રમાદીને શાસ્ત્રકારોએ હિંસક કહ્યો છે, પ્રમાદી જે પ્રકારે પાંચ ઇન્દ્રિયોના વિષયમા લોલુપી બનીને ત્રસ સ્થાવરોનો ઘાત કરે છે તે પ્રકારે તે તેનું છેદન ભેદન પણ કરે છે, પછી તે લુમ્પયિતા–કોઈની ગાઠ કાપવી, ખિસ્સુ કાતરવું, આદિ કાર્ય કરે છે. વિલુમ્પયિતા–ગ્રામઘાતાદિ કાર્ય કરે છે. અપદ્રાવયિતા –વિષ શસ્ત્રાદિકોના પ્રયોગથી કોઈને મારે છે. ઉત્ત્રાસયિતા–કંકર પત્થર ફેંકીને કોઈને ડરાવે છે, અનેક અનર્થોને કરવાવાળી, હણવું, છેદવું, ભેદવું, આદિ ક્રિયાઓનું જે આ ઠેકાણે પ્રદર્શન કર્યું છે, તેનો અભિપ્રાય ફક્ત એટલો જ છે કે જે સંસારમાં જ ફસેલા છે તે કાલાકાલના જ્ઞાનથી રહિત બની પર જીવો વિષે અનેક અનર્થોને પેદા કરવાવાળી અનેક પ્રકારની ઘાતાદિક ક્રિયાઓને નિરંતર કરતા રહે છે. શંકા—અનર્થકારી ક્રિયાઓને આ પ્રાણી કેમ કરે છે? ઉત્તર—" अकृतं करिष्यामीति मन्यमानः"

અર્થાત્ 'જે પહેલાનાં અન્ય પૂર્વજોએ કાર્ય નથી કર્યું તે બધું હું કરીશ.' આવા અભિપ્રાયને વશવર્તી બનીને તે પ્રાણી તેવા અનર્થોત્પાદક ક્રિયાઓને કર-

यद्वा-यदन्यैः कैरप्याश्चर्यगृहोद्यानादिकं पूर्वं न कृतं तत्सर्वं करिष्यामीति मन्यमानः प्रयतत इति तात्पर्यम्। सततं व्यग्रो भूत्वा नानाविधशस्त्रोपघातप्रवृत्तो भवतीति भावः ॥ सू० ५ ॥

प्रवृत्त होता है। यह संसारमें फंसा है-स्त्रीपुत्रादिकों में गृद्ध बना हुआ है। उनके निर्वाह के लिये सर्वप्रथम द्रव्यकी इसे जरूरत होती है परन्तु निर्वाह लायक साधनोंको करते हुए भी मनमाना द्रव्य इसे प्राप्त नहीं होता है, इसलिये उसकी प्राप्ति के लिये यह न्याय अन्याय मार्गका विचार न कर येन केन प्रकारेण द्रव्य के संग्रहके लिये हननादि क्रियाओं में प्रवृत्ति करता है।

अथवा—" अकृतं करिष्यामि " इसका यह भी अर्थ होता है कि 'जो मकान वगैरह, अथवा बगीचा वगैरह हमारे पूर्वजोंने नहीं करवाये उन्हें अब मैं करवाऊंगा' ऐसा सोच कर जब वह उनकी तैयारी कराने में प्रयत्नशील होता है उस समय जिस स्थान पर इसे बगीचा वगैरह की तैयारी करानी है उस स्थान की वह सफाई कराने में प्रवृत्त होता है। यदि उस स्थान पर कोई झाडी वगैरह खड़ी होती है तो यह उसे कटवाता है, अथवा जो शक्य होता है तो उसे स्वयं भी काटता है। इस प्रकार यह प्रमादी व्यक्ति स्त्रीपुत्रादिकों में गृद्ध बनकर अकृत के करने में लग जाता है, अतः इस स्थिति में वह षड्जीवनिकाय का घातक होता है ॥ सू० ५ ॥

વામાં પ્રવૃત્ત થાય છે. તે સંસારમાં ફસેલા છે. સ્ત્રી-પુત્રાદિકોમાં ગૃદ્ધ બનેલા છે. તેના નિર્વાહ માટે સર્વ પ્રથમ દ્રવ્યની તેને જરૂરત પડે છે, પરંતુ નિર્વાહલાયક સાધનોને કરતાં છતાં પણ મનમાન્યું દ્રવ્ય તેને પ્રાપ્ત થતું નથી માટે તેની પ્રાપ્તિ માટે તે ન્યાય અન્યાય માર્ગનો પણ વિચાર ન કરીને યેન કેન પ્રકારેણ દ્રવ્યના સંગ્રહ માટે હણવાદિ ક્રિયાઓમાં પ્રવૃત્તિ કરે છે.

અથવા—" अकृतं करिष्यामि " એનો એ પણ અર્થ થાય છે કે-'જે મકાન વિગેરે અથવા બગીચા વિગેરે અમારા પૂર્વજોએ નહિ બનાવ્યા તે હું બનાવીશ' એવો વિચાર કરીને જ્યારે તે તેની તૈયારી કરાવવામાં પ્રયત્નશીલ થાય છે તે વખતે જે સ્થાન પર તેને બગીચા વિગેરેની તૈયારી કરાવવાની છે તે સ્થાનની તે સફાઈ કરાવવમાં પ્રવૃત્ત થાય છે કદાચ તેવા સ્થાનપર કોઈ ઝાડી વિગેરે આડું ખડું હોય તો તેને તે કપાવી નાંખે છે, અથવા જે શકય હોય છે તેને પોતે કાપે છે. આ પ્રકાર આ પ્રમાદી વ્યક્તિ સ્ત્રી પુત્રાદિકોમાં ગૃદ્ધ બની અકૃત કરવામાં લાગી જાય છે માટે આ સ્થિતિમાં તે ષડ્જીવનિકાયનો ઘાતક થાય છે ॥ સૂ૦ ૫ ॥

एवं हननादि प्रकारानुचितव्यापारकरणोद्यतो द्वीपान्तरगमनेऽपि समग्रकार्य-साधनभूतप्रभूतधनालाभाद्विषण्णचेताः किं करोतीति दर्शयति-"जेहिं वे"-त्यादि॥

मूलम्-जेहिं वा सद्धिं संवसइ ते वा णं एगया नियगा ते पुव्विं पोसेंति, सो वा ते नियगे पच्छा पोसिज्जा, नालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा, तुमं पि तेसिं नालं ताणाए वा सरणाए वा ॥ सू० ६ ॥

छाया—यैर्वा सार्द्धं संवसति, ते वा खलु एकदा निजकास्तं पूर्वं पोषयन्ति, स वा तान् निजकान् पश्चात्पोषयति नालं ते तव त्राणाय वा शरणाय वा, त्वमपि तेषां नालं त्राणाय वा शरणाय वा ॥ सू० ६ ॥

टीका—'यैर्वेति' यैः=मातापित्रादिभिः सार्द्धं संवसति=प्रेम्णा निवसति ते खलु=निश्चयेन, एकदा=बाल्ये वयसि निजकाः=स्वकीयाः मातापित्रादयः, तं=पुत्रादिकं पूर्वं=बाल्यावस्थायां पोषयन्ति, वा-शब्दोऽप्यर्थे स वा=सोऽपि तान्=मातापित्रादीन्, निजकान्=आत्मीयान्, पश्चात्=वृद्धावस्थायां धनादिना पोषयति किन्तु ते=माता-पित्रादयः तव नालं त्राणाय वा शरणाय वा, त्वमपि तेषां नालं त्राणाय वा शरणाय वा, ऐहिक-पारत्रिक-दुःखोदयेषु न कोऽपि पोष्यः पोषको वा कस्यापि त्राण शरणभूतो भवतीति भावः ॥ सू० ६ ॥

इस तरह हननादि प्रकारवाले अनुचित व्यापारों के करने में उद्यत यह प्राणी धन कमाने की इच्छा से अन्य दूसरे द्वीपों में भी जाता है, परन्तु यदि वहां पर भी समग्र कार्यका साधनभूत प्रभूत धन अर्थात् यथेच्छ धनका लाभ जब इसे नहीं होता है तब यह अतिशयखेदखिन्न होता है और इस परिस्थिति में यह क्या करता है सो प्रकट करते हैं—

'जेहिं वा सद्धिं संवसइ' इत्यादि । अर्थ स्पष्ट है ।

આવી રીતે હણવાના પ્રકારવાળા અનુચિત વ્યાપારો કરવામાં પ્રયત્નશીલ તે પ્રાણી ધન કમાવાની ઈચ્છાથી બીજા અન્ય દ્વીપોમાં પણ જાય છે, પરંતુ કદાચ ત્યાં પણ સમગ્ર કાર્યનું સાધનભૂત પ્રભૂત ધન અર્થાત્ યથેચ્છ ધનનો લાભ જ્યારે ત્યાં પણ મળતો નથી તો તે ઘણો ખિન્ન થઈ જાય છે, અને આ પરિસ્થિતિમાં તે શું કરે છે તે પ્રકટ કરવામાં આવે છેઃ—'जेहिं वा सद्धिं संवसइ' ઇત્યાદિ અર્થ ખુલ્લો છે.

विशेषार्थ-जिन मातापिता आदिकों के साथ यह रहता है वे इसकी बाल्य अवस्था में सर्वप्रथम सेवा-चाकरी करते हैं, इसकी सहायता करते हैं, इसका पालन पोषण करते हैं। वह भी जब युवावस्था आदि से समृद्ध हो जाता है तब इन अपने मातापिता आदि की वृद्धावस्था में धन आदि से सहायता, सेवा, या इनका पालन पोषण करता है। इस प्रकार पारस्परिक पोष्यपोषक भाव होने पर भी यह उनकी रक्षा के लिये, अथवा उनको शरण देने के लिये समर्थ नहीं होता है, वे भी इसकी रक्षाके लिये, अथवा इसके शरण देने के लिये समर्थ नहीं होते हैं।

संसार की यह रीति है-प्रत्येक प्राणी अपने २ कुटुम्बियों की-स्त्री पुत्रादिकों की मोहाधीन हो हरतरह से सेवा शुश्रूषा संरक्षण पालन पोषण किया करता है। यह वृत्ति सिर्फ मनुष्यों में ही नहीं है, पशु-पक्षियों तक में भी इसी प्रकार की पाई जाती है। वे भी इष्ट के संयोग में हर्षाते हैं और उनके वियोग में दुःखी होते हैं। जैसे चिडिया घोसले में रहती है और बच्चाबच्ची देती है, जब बाहर से खाना लेकर आती है तब उसके छोटे २ बच्चे उसे देखते ही चैं-चैं कर बाहर निकलते हैं और उसके आस पास फुदक २ कर उसकी ओर अपनी २ चंचु खोलकर

વિશેષાર્થ—જે માતાપિતા આદિની સાથે તે રહે છે તે તેની બાલ્ય અવસ્થામાં સર્વ પ્રથમ સેવા ચાકરી કરે છે તેની સહાયતા કરે છે, તેનું પાલણ-પોષણ કરે છે, તે પણ જ્યારે યુવાવસ્થા આદિથી સમૃદ્ધ થઈ જાય છે ત્યારે તે પોતાના માતાપિતા આદિની વૃદ્ધાવસ્થામા ધન આદિથી સહાયતા, સેવા, અને તેમનું પાલન-પોષણ કરે છે. આ પ્રકારે પારસ્પરિક પોષ્ય-પોષક ભાવ હોવા છતાં પણ તે તેમની રક્ષા માટે કે શરણ દેવામા સમર્થ થતો નથી, તેમજ તેઓ પણ તેની રક્ષા અને શરણ દેવામાં અસમર્થ બને છે.

સંસારની એ રીતિ છે કે પ્રત્યેક પ્રાણી પોતપોતાના કુટુંબીઓની સ્ત્રી-પુત્રાદિકોની મોહાધીન થઈ દરેક પ્રકારથી સેવા, સુશ્રૂષા, સંરક્ષણ પાલન પોષણ કર્યા કરે છે. આવી વૃત્તિ ફક્ત મનુષ્યોમા જ છે તેમ નહિ પણ પશુપક્ષીઓમા પણ છે તેમ દેખવામાં આવે છે તેઓ પણ ઇષ્ટ સંયોગમાં હર્ષ પામે છે અને તેના વિયોગમાં દુઃખી થાય છે. જેમ ચકલીઓ માળામાં રહે છે અને બચ્ચાં બચ્ચી દે છે, અને જ્યારે બહારથી ખાવાનું લઈ આવે છે ત્યારે તેના નાંના નાનાં બચ્ચા તેને દેખતાં જ ચૈં-ચૈં કરી બહાર નીકળે છે અને તેની આસપાસ કુદવા માંડે છે અને તેની તરફ પોતપોતાની ચાચ ખોલીને બેસી જાય છે. તે પોતાની ચાચથી

यथा स्वजनादिर्न तव त्राणाय प्रभवति तथैव कष्टसम्पादितं सुरक्षितं धनमपि न त्राणायेति दर्शयति–"उवाइये"–त्यादि ।

मूलम्–उवाइयसेसेण वा संनिहिसंनिचओ किज्जइ इहमेगेसिं असंजयाण भोयणाए, तओ से एगया रोगसमुप्पाया समुप्पज्जंति, जेहिं वा सद्धिं संवसइ ते वा णं एगया नियगा तं पुव्विं परिहरंति, सो वा ते नियगे पच्छा परिहरिज्जा, नालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा, तुमंपि तेसिं नालं ताणाए वा सरणाए वा ॥ सू० ७ ॥

छाया–उपादितशेषेण वा सन्निधिसंनिचयः क्रियते, इहैकेषामसंयतानां भोजनाय, ततस्तस्यैकदा रोगसमुत्पादाः समुत्पद्यन्ते, यैर्वा सार्द्धं संवसति ते वा खलु एकदा निजकास्तं पूर्वं परिहरन्ति, स वा तान् निजकान् पश्चात्परिहरति, नालं ते तव त्राणाय वा शरणाय वा, त्वमपि तेषां नालं त्राणाय वा शरणाय वा ॥ सू० ७ ॥

बैठ जाते हैं। वह अपनी चंचु से इनकी चंचु में कुछ खाना धर देती है, वे खा जाते हैं, बड़े खुश होते हैं।

जब पशुपक्षियों की यह परिस्थिति है तो फिर मनुष्य जो समझदार प्राणी माना गया है उसकी अपने इष्ट बंधु जनों के–पुत्रादिकों के पालन पोषण करने की वृत्ति सबसे बढ़ कर हो इसमें कोई आश्चर्य जैसी बात नहीं, किन्तु इहलोक परलोक सम्बन्धी दुःखों का उदय होने पर न वे तेरे त्राण और शरण होते हैं और न तूं उनकेलिये त्राण और शरण हो सकता है ॥ सू० ६ ॥

તેની ચાંચમાં કાંઇક ખાવાનું ધરે છે તે તેઓ ખાઈ જાય છે અને ઘણા ખુશ થાય છે.

જ્યારે પશુ પક્ષિઓની આ પરિસ્થિતિ છે તો પછી મનુષ્ય તો સમજદાર વ્યક્તિ માનવામાં આવે છે તેને પોતાના ઇષ્ટ બધુ જનોને, પુત્રાદિકોને પાળવામા વૃત્તિ બધાથી વધારે હોઇ શકે તેમાં કોઈ આશ્ચર્યની વાત નથી. પરંતુ આલોક પરલોક સંબંધી દુ:ખોનો ઉદય થવાથી નથી તું તેમનો ત્રાણ અને શરણ દેવામાં સમર્થ થતો, અને નથી તેઓ તને ત્રાણ અને શરણ દેવામાં સમર્થ થતાં ॥ સૂ० ૬ ॥

टीका–'उपादिते–'त्यादि इह=संसारे एकेषां=कतिपयानाम्, असंयतानां= गृहस्थानां सन्निधिसंनिचयः=सन्निधेर्विद्यमानधनस्य संनिचयः=एकत्रीकरणं, यद्वा– संनिचयो=बाहुल्यम्, उपभोग्यधनसमूह इति यावत्, उपादितशेषेण=उपादितस्य[1]= उपभुक्तस्य शेषेण=अवशिष्टभागेन भोजनाय=भोजनमुपभोगस्तस्मै=तदर्थं क्रियते। यद्वा–असंयताना-मित्यत्रार्षत्वात्तृतीयार्थे षष्ठी, तेन चोपादितशेषेण सङ्ग्रहलिप्सुभिः कैरप्यसंयतैर्नानाविधसावद्यक्रियोपार्जितमनर्थजनकं धनं सम्पाद्य भविष्यत्काले कुटुम्बपोषणाय स्वोपभोगाय वा क्रियत इत्यर्थः। संसारमूर्च्छितो गृहस्थो भविष्यत्काले उपभोगार्थं धनसंचयं करोतीति भावः। किन्तु सोऽपि धनसंचयो न तस्योपभोगायेत्याह–'ततः' इत्यादिना, ततो=धनसंचयानन्तरमुपभोगकाल इति यावत्, तस्योपभोक्तुरेकदा द्रव्यक्षेत्रकालभावनिमित्तमकटवेदनीयकर्मोदये 'रोगसमुत्पादाः' रोगाणां=कासश्वासराजयक्ष्मकुष्ठार्शआदीनां समुत्पादाः=प्रादुर्भावाः

१ उपपूर्वकात् 'अद्'-धातोः स्वार्थेणिचिक्तः।

जिस प्रकार स्वजन वगैरह इस जीवके रक्षक नहीं हो सकते हैं उसी प्रकार कष्टसंपादित सुरक्षित धन भी इसका रक्षक नहीं होता है इसी बात को सूत्रकार कहते हैं—

'उवाइयसेसेण वा' इत्यादि। इस संसार में कितनेक असंयत संसारी जीव अपने उपभोग के लिये नाना प्रकार की सावद्य क्रियाओं द्वारा अनर्थकारी धनका उपार्जन कर खाने पीने से अवशिष्ट धनका संचय करते हैं और उसका उपभोग करते समय इच्छानुकूल आहार विहार करते हैं, परन्तु जब असाता का उदय आता है तब उनके शरीर में कास–श्वास आदि अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इस अवस्था में इसके नेत्र और नासिका से पानी गिरने लगता है, कुष्ठ

જે પ્રકારે સ્વજન વિગેરે આ જીવના રક્ષક નથી બની શકતા તે પ્રકારે કષ્ટસંપાદિત સુરક્ષિત ધન પણ તેનું રક્ષક બનતુ નથી આ વાતને સૂત્રકાર કહે છે—

'उवाइयसेसेण वा' ઈત્યાદિ–આ સંસારમા કેટલાક અસંયત સંસારી જીવ પોતાના ઉપભોગ માટે નાના પ્રકારની સાવદ્ય ક્રિયાઓદ્વારા અનર્થકારી ધનનુ ઉપાર્જન કરી ખાવા–પીવાથી અવશિષ્ટ ધનનો સંચય કરે છે, અને તેનો ઉપભોગ કરી તે સમય ઇચ્છાનુકૂળ આહાર વિહાર કરે છે, પરંતુ જ્યારે અશાતાનો ઉદય આવે છે ત્યારે તેના શરીરમા કાસ શ્વાસ આદિ અનેક પ્રકારના રોગ ઉત્પન્ન થાય છે. આ અવસ્થામા તેના નેત્ર અને નાસિકાથી પાણી નીકળવા લાગે છે.

समुत्पद्यन्ते=जायन्ते, धनोपभोगे मानवानां स्वेच्छाहारक्रीडादिना झटिति धातुवैषम्योदयान्नानाविधरोगा भवन्तीति भावः ।

ततः किं भवतीत्याह–'येर्वा सार्द्ध'–मित्यादि । यैः=पुत्रकलत्रादिभिः सार्द्धं संवसति त एव निजकाः=आत्मीया एकदा=रोगाभिभवे पूर्वं=प्रथमं परस्पररोगसंसर्गभयात् तं गलन्नेत्रनासिकं विशीर्णपाणिपादं रोगिणं परिहरन्ति । कदाचित् स वा=सोऽपि पश्चात् तान् निजकान्=आत्मीयान् पुत्रकलत्रादीन् परिहरति, किन्तु यदि कथञ्चित्ते शुश्रूषणपरा अपि न तव रक्षकाः, नापि तेषां त्वं रक्षकः, ऐहिक–पारत्रिक–दुःखविमोचनाय परस्परं समर्था न भवन्तीति भावः ॥ सू० ७ ॥

यावद्वार्धक्यादिकं नायातं तावदेव श्रुतचारित्रादिलक्षणे धर्मे यत्नः कर्तव्य इति दर्शयति–' एवं जाणित्तु ' इत्यादि ।

मूलम्–एवं जाणित्तु दुक्खं पत्तेयं सायं, अणभिक्कंतं च खलु वयं संपेहाए, खणं जाणाहि पंडिया ! ॥ सू० ८ ॥

छाया–एवं ज्ञात्वा दुःखं प्रत्येकं सातम्, अनभिक्रान्तं च खलु वयः सम्प्रेक्ष्य क्षणं जानीहि पण्डित ! ॥ सू० ८ ॥

आदि रोग के कारण हाथ पैर गलने लगते हैं, उस समय इसके अपने कुटुम्बी–पुत्र कलत्रादिक–भी 'हमको भी रोग न लग जाय' इस भय से इसे छोड़ देते हैं । अथवा किसी समय यह भी किसी कारणवश उन्हें छोड़ देता है । यदि परस्पर कोई किसीको न भी छोडे तो भी ऐहिक और पारत्रिक दुःखों से कोई किसी की रक्षा नहीं कर सकता है ॥ सू० ७ ॥

जब तक वृद्धावस्था वगैरह नहीं आई है तब तक श्रुतचारित्ररूप धर्म सेवन करने में प्रयत्न करते रहना चाहिये । इसी बातको सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—

કુષ્ઠ આદિ રોગના કારણે હાથ પગ ગળવા લાગે છે, તે વખત તેના પોતાના કુટુંબી–પુત્રકલત્રાદિક પણ 'અમને પણ રોગ ન લાગી જાય' આ ભયથી તેને છોડી દે છે. અથવા કોઇ વખત તે પણ કોઇ કારણવશ તેઓને છોડી દે છે. કદાચ પરસ્પર કોઈ કોઈને ન પણ છોડે તો પણ ઐહિક અને પારત્રિક દુઃખોથી કોઈ કોઈની રક્ષા કરી શકતા નથી. ॥ સૂ૦ ૭ ॥

જ્યા સુધી વૃદ્ધાવસ્થા વિગેરે નથી આવી ત્યા સુધી શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મ સેવન કરવામા પ્રયત્ન કરતો રહેવો જોઈએ, આ વાતને સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે:–

टीका—हे पण्डित !=हे परमार्थज्ञ—मेधाविन् ! एवं=" केऽपि स्वजनादयस्त्राणाय वा शरणाय वा न भवन्ति " इति पूर्वोक्तप्रकारेण प्रत्येकं=प्रत्येकप्राणिनः सर्वेषां प्राणिनामित्यर्थः, दुःखं, तथा सातं=सुखं च ज्ञात्वा=' स्वकृतशुभाशुभकर्मविपाकानुभवोऽवश्यं भवती '—तिबुद्ध्वा अनभिक्रान्तम्=अव्यतीतं वयः=शरीरस्य कालकृतावस्थां संप्रेक्ष्य=परिवाददोषवतो वार्द्धक्यस्य, पोषणदोषवतो बाल्यस्य, परिहारदोषवतो रोगस्य च दूरवर्त्तित्वं यत्रास्ति तादृशं वयः समालोच्य, क्षणम्=अवसरं जानीहि=बुध्यस्व हे पण्डित ! इति सम्बन्धः ।

' एवं जाणित्तु ' इत्यादि । हे मेधावी !—हे सर्वविरतिसम्पन्न ! हे परमार्थ के जाननेवाले मुनि ! कोई भी स्वजनादिक एक दूसरे को त्राण और शरण के लिए समर्थ नहीं हो सकता है । इसप्रकार पूर्वोक्त रीति से प्रत्येक प्राणी के सुख दुःख को जानकर—अर्थात् अपने किये हुए पुण्य-पाप का फल अवश्य भोगना पड़ता है, ऐसा समझकर तथा अवस्था को भी अनभिक्रान्त देख कर, तथा जब तक रोगादि का उदय नहीं हुवा है—सब इन्द्रियां अपनी २ शक्ति में समर्थ हैं और स्वजनादिकों ने नहीं छोड़ा है अर्थात् जबतक स्वजनादि आदर करते हैं तबतक ही आत्मा का श्रेय साध लेना चाहिये, ऐसी अवस्था को अर्थात् परिवाद—दोषयुक्त वृद्धावस्था, पोषण—दोषवाली बाल्यावस्था और परिहार—दोषवाली रोगावस्था को सोचकर तूं संयमाराधन के अवसरको भली—भाँति जान ।

' एवं जाणित्तु ' ઈત્યાદિ—હે મેધાવી!—હે સર્વવિરતિસંપન્ન ! હે પરમાર્થના જાણકાર મુનિ ! કોઈ પણ સ્વજનાદિક એક બીજાને ત્રાણ અને શરણ માટે સમર્થ બનતા નથી. આ પ્રકારે પૂર્વોક્ત રીતિથી પ્રત્યેક પ્રાણીના સુખ દુઃખને જાણીને અર્થાત્ 'પોતાના કરેલા પાપ પુન્યના ફળ અવશ્ય ભોગવવા પડે છે' એવું સમજીને તથા અવસ્થાને પણ અનભિક્રાન્ત દેખીને, તથા જ્યાં સુધી રોગાદિકનો ઉદય થયો નથી, બધી ઈન્દ્રિયો પોતપોતાની શક્તિમા સમર્થ છે, અને સ્વજનાદિએ છોડેલ નથી, અર્થાત્ જ્યાસુધી સ્વજનાદિ આદર કરે છે ત્યાસુધી આત્માનું શ્રેય સાધી લેવું જોઈએ એવી અવસ્થાને અર્થાત્ પરિવાદદોષયુક્ત વૃદ્ધાવસ્થા, પોષણ-દોષવાળી બાલ્યાવસ્થા અને પરિહારદોષવાળી રોગાવસ્થાને સોચીને તું સંયમારાધનના અવસરને ભલિભાતિ જાણ.

चाहे सुखी हो चाहे दुःखी हो-प्रत्येक मनुष्य को अपने कृत-किये हुए शुभाशुभ कर्म के फल का भोग अवश्य भोगना पड़ता है। यह निश्चित सिद्धान्त है कि विना फल दिये कर्म कभी भी नष्ट नहीं होते। आत्मा को जो पौद्गलिक वर्गणाएँ परतन्त्र करती हैं, उनका नाम ही कर्म है। इस लोक में कज्जल की कुप्पी की तरह सर्वत्र कार्मणवर्गणाएँ भरी हुई हैं-ये पौद्गलिक हैं। आत्मा के क्रोधादि कषायों के निमित्त से उनमें स्थितिवन्ध और अनुभागवन्ध रूप फल देने की शक्ति आती है। कर्मवन्ध की शास्त्रकारोंने ४ प्रकार की अवस्थाएँ वतलाई हैं। १ प्रकृतिवन्ध, २ स्थितिवन्ध, ३ अनुभागवन्ध और ४ प्रदेशवन्ध। ज्ञानावरणीयादिक अष्टविध कर्मों में आत्मा के उन २ गुणों के घात करने की जो शक्ति है उस का नाम प्रकृतिवन्ध है। प्रकृति नाम स्वभाव का है। जिस प्रकार नीमका स्वभाव कडुवा होता है उसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म का स्वभाव आत्मा के ज्ञान गुण को घात करने का होना है, दर्शनावरणीय कर्म का स्वभाव आत्मा के दर्शनगुण को घात करने का है, वेदनीय कर्मका स्वभाव आत्मा को सुख और दुःख देनेका है, मोहनीय कर्मका स्वभाव, आत्माके स्वभाव को परपदार्थों में गृद्ध वनाने का है,

---

ભલે સુખી હોય યા દુઃખી પ્રત્યેક મનુષ્યને પોતાના કૃત-કરેલા શુભાશુભ કર્મના ફળને ભોગવવુ પડે છે એ નિશ્ચિત સિદ્ધાન્ત છે કે ફળ આપ્યા વિના કર્મ કોઈ વખત નાશ થતાં નથી.

આત્માને પૌદ્ગલિક વર્ગણા પરતંત્ર કરે છે તેનું નામ જ કર્મ છે. આ લોકમાં કાજળની શીશી માફક સર્વત્ર કાર્મણ વર્ગણાઓ ભરેલી છે. એ પૌદ્ગલિક છે. આત્માના ક્રોધાદિ કષાયોના નિમિત્તથી તેમા સ્થિતિબંધ અને અનુભાગ બંધરૂપ ફળ દેવાની શક્તિ આવે છે. કર્મબંધની શાસ્ત્રકારોએ ૪ પ્રકારની અવસ્થાઓ બતાવેલી છે. ૧ પ્રકૃતિબંધ, ૨ સ્થિતિબંધ, ૩ અનુભાગબંધ, અને ૪ પ્રદેશબંધ જ્ઞાનાવરણીયાદિક અષ્ટવિધ કર્મોમાં આત્માના તે તે ગુણની ઘાત કરવાની જે શક્તિ છે તેનુ નામ પ્રકૃતિબંધ છે પ્રકૃતિ નામ સ્વભાવનું છે. જેમ લીંબડાનો સ્વભાવ કડવો હોય છે તે પ્રકાર જ્ઞાનાવર્ણીય કર્મનો સ્વભાવ આત્માના જ્ઞાનગુણનો ઘાત કરવાનું હોય છે દર્શનાવરણીય કર્મનો સ્વભાવ આત્માના દર્શનગુણનો ઘાત કરવાનો છે. વેદનીય કર્મનો સ્વભાવ આત્માને સુખ અને દુઃખ આપવાનો છે. મોહનીય કર્મનો સ્વભાવ આત્માના સ્વભાવને પરપદાર્થોમાં

आयु कर्मका स्वभाव नियत समय तक जीवको उस २ पर्यायमें रोक रखने का है, नाम कर्मका स्वभाव चित्रकार की तरह शरीरादिकों को अनेक रूपमें परिणमाने का है, गोत्रका स्वभाव ऊँच नीच कुलमें पैदा कराने का तथा अन्तराय कर्म का स्वभाव आत्मा के वीर्य के घात करने का है। प्रदेशबन्ध वह है-जिसकी वजह से दूध और पानी की तरह आत्मा और कर्म के अनन्तानन्त प्रदेशों का एकीभाव जैसा संबंध हो जाता है। यह दोनों प्रकार का बंध, मन वचन काय के योगों से होता है। स्थितिबंध-कर्मों में आत्मा के साथ रहने की मर्यादा को कहते हैं। फल देने की शक्ति की हीनाधिकता को अनुभागबंध कहते हैं। ये स्थितिबंध और अनुभागबंध कषायों से होते हैं। कर्मोंका आत्माके साथ बंध होता है, इसका यह मतलब नहीं है कि आत्मा कर्म हो जाता है, अथवा कर्म आत्मा रूप हो जाते हैं। प्रत्येक द्रव्यमें एक अगुरु-लघु नामकी शक्ति रहा करती है, जिसकी वजह से एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप नहीं हो सकता। इस शक्ति के सद्भाव से प्रत्येक द्रव्य अपनेस्वरूप में सदा कायम बना रहता है। हर एक द्रव्य में इन छह गुणों का कि जिनको सामान्य गुण कहते हैं सदा निवास रहता है। (१) अस्तित्व-इस गुण के निमित्त से द्रव्य

ગૃદ્ધ બનાવવાનો છે. આયુકર્મનો સ્વભાવ નિયત સમય સુધી જીવને તે તે પર્યાયમાં રોકી રાખવાનો છે. નામકર્મનો સ્વભાવ ચિત્રકારની માફક શરીરાદિકોને અનેક રૂપમાં પરિણમાવવાનો છે. ગોત્રનો સ્વભાવ ઉંચ નીચ કુળમાં પેદા કરાવવાનો અને અન્તરાય કર્મનો સ્વભાવ આત્માના વીર્યનો ઘાત કરવાનો છે પ્રદેશબંધ તે જ છે, જેની મારફત દૂધ અને પાણી માફક આત્મા અને કર્મને અનન્તાનન્ત પ્રદેશોનો એકીભાવ જેવો સબંધ થઈ જાય છે એ બન્ને પ્રકારના બંધ મન વચન કાયાના યોગોથી થાય છે. સ્થિતિબંધ-કર્મોમાં આત્માની સાથે રહેવાની મર્યાદાને કહે છે, ફળ દેવાની શક્તિની હીનાધિકતાને અનુભાગબંધ કહે છે. એ સ્થિતિબંધ અને અનુભાગબંધ કષાયોથી થાય છે. કર્મોનો આત્મા સાથે બંધ થાય છે, તેનો એ મતલબ નથી કે આત્મા કર્મ બની જાય છે, અથવા કર્મ આત્મારૂપ બની જાય છે પ્રત્યેક દ્રવ્યમાં એક અગુરૂલઘુ નામની શક્તિ રહ્યા કરે છે, જેની મારફત એક દ્રવ્ય બીજા દ્રવ્યરૂપ બની શકતું નથી. આ શકિતના સદ્દભાવથી પ્રત્યેક દ્રવ્ય પોતાના સ્વરૂપમા સદા કાયમ બની રહે છે દરેક દ્રવ્યમાં આ છ ગુણો કે જેને સામાન્ય ગુણ કહે છે તે સદા નિવાસ કરી રહેલા છે ૧ **અસ્તિત્વ**-આ ગુણના નિમિત્તથી દ્રવ્યનો કોઈ વખત નાશ નથી થતો.

चाहे सुखी हो चाहे दुःखी हो-प्रत्येक मनुष्य को अपने कृत-किये हुए शुभाशुभ कर्म के फल का भोग अवश्य भोगना पड़ता है। यह निश्चित सिद्धान्त है कि विना फल दिये कर्म कभी भी नष्ट नहीं होते। आत्मा को जो पौद्गलिक वर्गणाएँ परतन्त्र करती हैं, उनका नाम ही कर्म है। इस लोक में कज्जल की कुप्पी की तरह सर्वत्र कार्मणवर्गणाएँ भरी हुई हैं-ये पौद्गलिक हैं। आत्मा के क्रोधादि कषायों के निमित्त से उनमें स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध रूप फल देने की शक्ति आती है। कर्मबन्ध की शास्त्रकारोंने ४ प्रकार की अवस्थाएँ बतलाई हैं। १ प्रकृतिबन्ध, २ स्थितिबन्ध, ३ अनुभागबन्ध और ४ प्रदेशबन्ध। ज्ञानावरणीयादिक अष्टविध कर्मों में आत्मा के उन २ गुणों के घात करने की जो शक्ति है उस का नाम प्रकृतिबन्ध है। प्रकृति नाम स्वभाव का है। जिस प्रकार नीमका स्वभाव कडुवा होता है उसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म का स्वभाव आत्मा के ज्ञान गुण को घात करने का होना है, दर्शनावरणीय कर्म का स्वभाव आत्मा के दर्शनगुण को घात करने का है, वेदनीय कर्मका स्वभाव आत्मा को सुख और दुःख देनेका है, मोहनीय कर्मका स्वभाव, आत्माके स्वभाव को परपदार्थों में गृद्ध बनाने का है,

---

ભલે સુખી હોય યા દુખી પ્રત્યેક મનુષ્યને પોતાના કૃત-કરેલા શુભાશુભ કર્મના ફળને ભોગવવું પડે છે. એ નિશ્ચિત સિદ્ધાન્ત છે કે ફળ આપ્યા વિના કર્મ કોઈ વખત નાશ થતા નથી.

આત્માને પૌદ્ગલિક વર્ગણા પરતંત્ર કરે છે તેનુ નામ જ કર્મ છે આ લોકમા કાજળની શીશી માફક સર્વત્ર કાર્મણ વર્ગણાઓ ભરેલી છે. એ પૌદ્ગલિક છે. આત્માના ક્રોધાદિ કષાયોના નિમિત્તથી તેમા સ્થિતિબંધ અને અનુભાગ બંધરૂપ ફળ દેવાની શક્તિ આવે છે કર્મબંધની શાસ્ત્રકારોએ ૪ પ્રકારની અવસ્થાઓ બતાવેલી છે. ૧ પ્રકૃતિબંધ, ૨ સ્થિતિબંધ, ૩ અનુભાગબંધ, અને ૪ પ્રદેશબંધ. જ્ઞાનાવરણીયાદિક અષ્ટવિધ કર્મોમા આત્માના તે તે ગુણની ઘાત કરવાની જે શક્તિ છે તેનુ નામ પ્રકૃતિબંધ છે. પ્રકૃતિ નામ સ્વભાવનું છે. જેમ લીંબડાનો સ્વભાવ કડવો હોય છે તે પ્રકાર જ્ઞાનાવર્ણીય કર્મનો સ્વભાવ આત્માના જ્ઞાનગુણનો ઘાત કરવાનું હોય છે. દર્શનાવરણીય કર્મનો સ્વભાવ આત્માના દર્શનગુણનો ઘાત કરવાનો છે વેદનીય કર્મનો સ્વભાવ આત્માને સુખ અને દુઃખ આપવાનો છે. મોહનીય કર્મનો સ્વભાવ આત્માના સ્વભાવને પરપદાર્થોમાં

आयु कर्मका स्वभाव नियत समय तक जीवको उस २ पर्यायमें रोक रखने का है, नाम कर्मका स्वभाव चित्रकार की तरह शरीरादिकों को अनेक रूपमें परिणमाने का है, गोत्रका स्वभाव ऊँच नीच कुलमें पैदा कराने का तथा अन्तराय कर्म का स्वभाव आत्मा के वीर्य के घात करने का है। प्रदेशबन्ध वह है–जिसकी वजह से दूध और पानी की तरह आत्मा और कर्म के अनन्तानन्त प्रदेशों का एकीभाव जैसा संबंध हो जाता है। यह दोनों प्रकार का बंध, मन वचन काय के योगों से होता है। स्थितिबंध–कर्मों में आत्मा के साथ रहने की मर्यादा को कहते हैं। फल देने की शक्ति की हीनाधिकता को अनुभागबंध कहते हैं। ये स्थितिबंध और अनुभागबंध कषायों से होते हैं। कर्मोंका आत्माके साथ बंध होता है, इसका यह मतलब नहीं है कि आत्मा कर्म हो जाता है, अथवा कर्म आत्मा रूप हो जाते हैं। प्रत्येक द्रव्यमें एक अगुरु–लघु नामकी शक्ति रहा करती है, जिसकी वजह से एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप नहीं हो सकता। इस शक्ति के सद्भाव से प्रत्येक द्रव्य अपनेस्वरूप में सदा कायम बना रहता है। हर एक द्रव्य में इन छह गुणों का कि जिनको सामान्य गुण कहते हैं सदा निवास रहता है। (१) अस्तित्व–इस गुण के निमित्त से द्रव्य

ગૃદ્ધ બનાવવાનો છે. આયુકર્મનો સ્વભાવ નિયત સમય સુધી જીવને તે તે પર્યાયમાં રોકી રાખવાનો છે. નામકર્મનો સ્વભાવ ચિત્રકારની માફક શરીરાદિકોને અનેક રૂપમાં પરિણમાવવાનો છે ગોત્રનો સ્વભાવ ઉચ્ચ નીચ કુળમાં પેદા કરાવવાનો અને અન્તરાય કર્મનો સ્વભાવ આત્માના વીર્યનો ઘાત કરવાનો છે પ્રદેશબંધ તે જ છે, જેની મારફત દૂધ અને પાણી માફક આત્મા અને કર્મને અનન્તાનન્ત પ્રદેશોનો એકીભાવ જેવો સંબંધ થઈ જાય છે એ બન્ને પ્રકારના બંધ મન વચન કાયાના યોગોથી થાય છે. સ્થિતિબંધ–કર્મોમાં આત્માની સાથે રહેવાની મર્યાદાને કહે છે, ફળ દેવાની શક્તિની હીનાધિકતાને અનુભાગબંધ કહે છે. એ સ્થિતિબંધ અને અનુભાગબંધ કષાયોથી થાય છે કર્મોનો આત્મા સાથે બંધ થાય છે, તેનો એ મતલબ નથી કે આત્મા કર્મ બની જાય છે, અથવા કર્મ આત્મારૂપ બની જાય છે પ્રત્યેક દ્રવ્યમાં એક અગુરૂલઘુ નામની શક્તિ રહ્યા કરે છે, જેની મારફત એક દ્રવ્ય બીજા દ્રવ્યરૂપ બની શકતું નથી. આ શક્તિના સદ્ભાવથી પ્રત્યેક દ્રવ્ય પોતાના સ્વરૂપમાં સદા કાયમ બની રહે છે દરેક દ્રવ્યમાં આ છ ગુણો કે જેને સામાન્ય ગુણ કહે છે તે સદા નિવાસ કરી રહેલા છે ૧ અસ્તિત્વ –આ ગુણના નિમિત્તથી દ્રવ્યનો કોઈ વખત નાશ નથી થતો.

का कभी नाश नहीं होता, (२) वस्तुत्व-इस गुण के निमित्त से द्रव्य क्षण २ में कुछ न कुछ काम किया ही करता है। (३) द्रव्यत्व-इस गुण के निमित्त से द्रव्य में एकसी व भिन्न प्रकार की अवस्थाएँ बदला करती हैं, (४) अगुरुलघुत्व-इसके निमित्त से द्रव्य सदा अपनी मर्यादा में ही रहता है-कोई भी इसका गुण दूसरे गुणरूप नहीं हो सकता, कोई दूसरा गुण भी उसमें बाहर से आ कर नहीं मिल सकता, (५) प्रदेशवत्त्व-इस गुण के निमित्त से द्रव्यका कोई न कोई आकार अवश्य होता है, (६) प्रमेयत्व-इस गुण के निमित्त से द्रव्य किसी न किसी ज्ञानका विषय होता रहता है।

आत्मा और पुद्गल में एक ऐसी वैभाविक शक्ति है कि जिससे ये दोनों अनादिकाल से अन्योन्यसंपृक्त होने के कारण स्वभाव से अन्यथा होने रूप विभाव अवस्था में पड़े हुए हैं। इनकी यह विभाव अवस्था अनादिकाल की है-आज नई पैदा नहीं हुई है, इसी से जीव में पुद्गल के निमित्त से विभाव-अन्यथाभाव रूप परिणमन और विभाव-दशासंपन्न जीव के निमित्त से पुद्गल में विभाव-(कर्म)-रूप परिणमन हुआ करता है। इनका यह परिणमन अनादिकालका है-आजका नहीं।

---

२ वस्तुत्व—આ ગુણના નિમિત્તથી દ્રવ્ય ક્ષણ-ક્ષણમાં કાંઈને કાંઈ કામ કર્યા જ કરે છે. ૩ द्रव्यत्व-આ ગુણના નિમિત્તથી દ્રવ્યમા એક અને ભિન્ન પ્રકારની અવસ્થાઓ બદલ્યાં કરે છે. ૪ अगुरुलघुत्व-એના નિમિત્તથી દ્રવ્ય સદા પોતાની મર્યાદામાં જ રહે છે, કોઇ પણ તેનો ગુણ બીજા ગુણરૂપ બની શકતો નથી, અને બીજો ગુણ પણ તેમાં બહારથી આવી મળી શકતો નથી ૫ प्रदेशवत्त्व-આ ગુણના નિમિત્તથી દ્રવ્યનો કોઈ ને કોઇ આકાર અવશ્ય થાય છે ૬ प्रमेयत्व-આ ગુણના નિમિત્તથી દ્રવ્ય કોઈ ને કોઈ જ્ઞાનનો વિષય થઈ રહે છે

આત્મા અને પુદ્ગલમાં એક એવી વૈભાવિક શક્તિ છે કે જેનાથી એ બન્ને અનાદિ કાળથી અન્યોન્ય સંયુક્ત હોવાને કારણે સ્વભાવથી અન્યથા હોવારૂપ વિભાવ અવસ્થામાં પડેલ છે, તેની આ વિભાવ અવસ્થા અનાદિ કાળની છે. આજ નવી પેદા થયેલ નથી.

એનાથી જીવમાં પુદ્ગલના નિમિત્તથી વિભાવ-અન્યથા ભાવરૂપ પરિણમન અને વિભાવદશાસંપન્ન જીવના નિમિત્તથી પુદ્ગલમાં વિભાવ-(કર્મ)-રૂપ પરિણમન થયા કરે છે. તેનું આ પરિણમન અનાદિ કાળનું છે. આજનું નહિ.

प्रश्न—यदि आत्मा पहले शुद्ध था ऐसा मान लिया जावे तो क्या हानि है ?

उत्तर—बड़ी भारी हानि है। इस प्रकार की मान्यता में कर्म के संबंध के पहिले आत्मा शुद्ध ठहरेगा, और फिर उसको कर्मका संबंध मानने से सिद्धात्माओं को भी कर्म का संबंध मानना पड़ेगा। ऐसा तो है नहीं-शुद्ध में अशुद्धता आ सकती नहीं। सिद्ध अवस्था शुद्ध अवस्था है। अशुद्ध से शुद्ध होता है, इसीलिये बन्ध से ही मोक्ष कहा गया है।

प्रश्न—कर्म के फल देने की कोई विशेष विधि है ?

उत्तर—हां, है। जब कर्म बंधते हैं तब उनके पकने के लिये कुछ काल चाहिये, बांधे हुए कर्म उसी समय उदयमें नहीं आने लगते। इनका हिसाब तो खेतमें पड़े हुए बीज की तरह है। जिस प्रकार खेत में बोया गया बीज कुछ काल के बाद ही पकता है ठीक इसी प्रकार बांधे हुए कर्म को पकने में भी समय लगता है। इस समयका नाम अबाधाकाल है। इस आबाधाकाल का यह हिसाब है कि-एक कोड़ा-कोड़ी सागर की स्थितिवाले कर्म में उसका अबाधाकाल १०० वर्ष का पड़ता है, सत्तर ७० कोडाकोडी सागर की स्थितिवाले मोहकर्म में ७००० वर्षका

પ્રશ્ન—કદાચ આત્મા પહેલાં શુદ્ધ હતો તેમ માની લેવામાં આવે તો શું હરકત છે ?

ઉત્તર—ઘણી ભારી હાનિ છે આ પ્રકારની માન્યતામાં કર્મના સંબંધના પહેલા આત્માને શુદ્ધ માનવું પડશે. અને પછી તેને કર્મનો સંબંધ માનવાથી સિદ્ધાત્માઓને પણ કર્મનો સંબંધ માનવો પડશે. એવું તો છે નહિ. શુદ્ધમા અશુદ્ધતા આવી શકતી નથી સિદ્ધ અવસ્થા શુદ્ધ અવસ્થા છે અશુદ્ધથી શુદ્ધ છે. માટે બંધથી જ મોક્ષ કહેવાય છે

પ્રશ્ન-કર્મના ફળ દેવાની બીજી કોઈ વિશેષ વિધિ છે ?

ઉત્તર—હા. છે જ્યારે કર્મ બધાય છે ત્યારે તેને પાકવા માટે થોડો વખત જોઈએ, બાંધેલા કર્મ તે વખત ઉદયમાં આવવા લાગતા નથી તેનો હિસાબ તો ખેતરમા પડેલા બી માફક છે. જે પ્રકારે ખેતરમાં વાવેલા બી થોડા વખત પછી પાકે છે તે પ્રકારે બાંધેલા કર્મને પાકવામા પણ થોડો વખત લાગે છે. તે સમયનુ નામ અબાધાકાલ છે આ અબાધાકાલનો એ હિસાબ છે કે એક કોડાકોડી સાગરની સ્થિતિવાળા કર્મમાં તેની અબાધા ૧૦૦ વર્ષની પડે છે ૭૦ કોડાકોડી સાગરની સ્થિતિવાલા મોહકર્મમા ૭૦૦૦ વર્ષનો અબાધાકાળ

अबाधाकाल पड़ता है। इस हिसावसे करोड़ सागर की स्थितिवाले कर्मका अबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त मात्र ही पडेगा, इससे यह वात जानी जाती है कि-जितने कम स्थिति के कर्म बंधेंगे, वे जल्दी फल देने को तैयार हो जावेंगे, और यही वजह है कि इसी भवमें बांधे हुए कर्म जीव को इसी भवमें उदय आ जाते हैं।

प्रश्न—बांधे हुए कर्मका वैसा ही फल मिलता है? या उस में कुछ परिवर्तन भी हो सकता है?।

उत्तर—जीवों के परिणामों के निमित्त से फलोपभोग में परिवर्तन भी हो जाता है। उस परिवर्तन को-उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण, और उदीरणा कहते हैं। बांधे हुए कर्मों की स्थिति या उनके अनुभाग में जीवों के भावों के निमित्त से जो वृद्धि हो जाती है उसे उत्कर्षण कहते हैं। पहिले बांधे हुए कर्मों की स्थिति व अनुभाग में जीवों के भावों के निमित्त से जो घटती होती है उसे अपकर्षण कहते हैं। जीवों के भावों के निमित्त से पाप का पुण्य में या पुण्य का पाप में जो परिवर्तन-बदलना होता है उसका नाम संक्रमण है। किन्हीं कर्मों को किसी निमित्त के वश अपनी ठीक स्थिति के पहिले उदय में लाकर खपा देनेका नाम उदीरणा है।

પડે છે આ હિસાબથી કરોડ સાગરની સ્થિતિવાળા કર્મનો અબાધાકાળ અન્ત-મુંહૂર્ત માત્ર જ પડે છે. આથી તે વાત જણાય છે કે જેટલો થોડી સ્થિતિનો કર્મ બંધાશે તેટલો જલ્દી ફળ દેવાને તૈયાર થઈ જશે, અને એજ કારણથી આ ભવમાં બાંધેલા કર્મ જીવને આ ભવમાં ઉદય આવે છે

પ્રશ્ન—બાંધેલા કર્મનું તેવું જ ફળ મળે છે અગર તેમાં કાંઇ પરિવર્તન પણ થાય છે ?

ઉત્તર—જીવોના પરિણામોના નિમિત્તથી ફલોપભોગમાં પરિવર્તન પણ થઈ જાય છે, આ પરિવર્તનને-ઉત્કર્ષણ, અપકર્ષણ, સંક્રમણ, અને ઉદીરણા કહે છે. બાંધેલા કર્મોની સ્થિતિ અગર તેના અનુભાગમાં જીવોના ભાવોના નિમિત્તથી જે વૃદ્ધિ થાય છે તેને ઉત્કર્ષણ કહે છે. પહેલાં બાંધેલા કર્મોની સ્થિતિ અને અનુ-ભાગમાં જીવોના ભાવોના નિમિત્તથી જે ઘટતી થાય તેને અપકર્ષણ કહે છે. જીવોના ભાવોના નિમિત્તથી પાપનો પુણ્યમાં, અને પુણ્યનો પાપમા જે પરિવર્તન થાય છે, તેનું નામ સંક્રમણ છે. કોઈ કર્મને કોઈ નિમિત્તના કારણથી પોતાની ઠીક સ્થિતિના પહેલાં ઉદયમાં લાવીને જે ખપાવી નાંખે છે તેનું નામ ઉદીરણા છે.

इन कर्मों की उत्तर प्रकृतियां कितनी हैं ? और उनका क्या स्वरूप है ? तथा देशघाति और सर्वघाति, पुण्यरूप और पापरूप प्रकृतियां कितनी और कौन २ हैं ? तथा देशघाति प्रकृतियां में सर्वघाति स्पर्द्धक कितने हैं ? इत्यादि समस्त बातोंका विचार शास्त्रों में अच्छी तरह किया गया है। इस प्रकार कर्मों का संक्षेप में स्वरूप समझ कर यह प्रकट किया है कि इसी कर्म के निमित्त से आत्मा इस संसार में भटकता और अनेक दुःखों को सहन करता रहता है। कर्म आत्मा को संसार में भमाता है। आत्मा भी स्वयं इनका निमित्त पाकर संसार में भमता रहता है। कर्मों से दुःखी होनेवाले जीव ही संसारी हैं। वे सदा इस संसार में इसी की वजह से भ्रमण किया करते हैं। इस के इस परिभ्रमण को देख कर ज्ञानीजन इसे संबोधन करते हुए कहते हैं कि—

"आघ्रातं मरणेन जन्म जरया विद्युच्चलं यौवनं,
सन्तोषो धनलिप्सया शमसुखं भोगाशया देहिनाम्।
लोकैर्मत्सरिभिर्गुणा वनभुवो व्यालैर्नृपा दुर्जनै,-
रस्थैर्येण विभूतिरप्यपहृता ग्रस्तं न किं केन वा ?" ॥१॥

આ કર્મોની ઉત્તર પ્રકૃતિઓ કેટલી છે? અને તેનુ શું સ્વરૂપ છે? તથા દેશ-ઘાતિ અને સર્વઘાતિ પુણ્યરૂપ અને પાપરૂપ પ્રકૃતિઓ કેટલી અને કઈ કઈ છે? તથા દેશઘાતિ પ્રકૃતિઓમાં સર્વઘાતિસ્પર્દ્ધક કેટલાં છે.? ઇત્યાદિ સમસ્ત વાતોનો વિચાર શાસ્ત્રોમાં સારી રીતે કરવામા આવેલ છે. આ પ્રકાર કર્મોનો સંક્ષેપમાં સ્વરૂપ સમજીને એવું પ્રગટ કરેલ છે કે આ કર્મના નિમિત્તથી આત્મા આ સંસારમાં ભટકતો અને અનેક દુઃખોને સહન કરતો રહે છે. કર્મ આત્માને સંસારમાં ભમાવે છે. આત્મા પણ સ્વયં તેનો નિમિત્ત બનીને સંસારમાં ભમતો રહે છે. કર્મોથી દુઃખી થવાવાળા જીવ સંસારી છે. તે સદા આ સંસારમાં એજ કારણથી ભ્રમણ કર્યા કરે છે. તેના આ પરિભ્રમણને દેખીને જ્ઞાની જન તેને સંબોધન કરીને કહે છે કે—

"आघ्रातं मरणेन जन्म जरया विद्युच्चलं यौवनं,
सन्तोषो धनलिप्सया शमसुखं भोगाशया देहिनाम्।
लोकैर्मत्सरिभिर्गुणा वनभुवो व्यालैर्नृपा दुर्जनै,—
रस्थैर्येण विभूतिरप्यपहृता ग्रस्तं न किं केन वा ?" ॥१॥

हे संसार के जीवों! कहो दुनिया में ऐसी कौनसी वस्तु है जो निर्भय हो। देखो-मृत्यु ने जन्मको, बुढ़ापे ने विजली के समान चंचल युवावस्था को, धन की तृष्णा ने संतोष को, भोगों की आशा ने मानसिक शांति को, मत्सर-भाववाले दुर्जनों ने गुणों को, सर्प और हिंसकों ने जंगली जानवरों को, दुष्टों ने राजाओं को और अस्थिरता ने ऐश्वर्य को भयभीत कर रखा है। एक को एकका भय लगा हुआ है। एकसे एक ग्रसित है, फिर इसमें शांति की भावना रखना मानों कूप के किनारे पर बैठ कर निर्भयताके साथ ऊंघना जैसा है। इसी लिये तो ज्ञानी पद पद पर संबोधित कर कहते रहते हैं कि-अरे भव्य!

"तत्त्वं चिन्तय सततं चित्ते, परिहर चिन्तां नश्वरवित्ते"

सदा तूं सारासार का विचार करता रह। क्यों नाशवान धनादिक की चिन्ता से व्यर्थ ही अपने को व्याकुल किया करता है?, क्या तुझे पता नहीं कि जिस प्रकार मांसके ऊपर गीध मंडराया-घूमा-करते हैं उसी प्रकार तुझे खाने के लिये यह काल तेरे शिर पर मंडरा-घूम-रहा है। लोगों को तू मरते हुए नित्य देखता है, प्रत्येक दिवस वृद्धों को असह्य कष्ट की यातनाओं से पीडित निहारता है और संसार को भी

હે સંસારી જીવો! કહો દુનીયામાં એવી કઈ વસ્તુ છે કે જે નિર્ભય છે. દેખો મૃત્યુનો જન્મને, ઘડપણનો વિજળી સમાન ચંચળ યુવાવસ્થાને, ધનની તૃષ્ણાનો સંતોષને, ભોગની આશાનો માનસિક શાંતિને, મત્સરભાવવાળા દુર્જનોનો ગુણોને, સર્પો અને હિંસકોનો જંગલી જનાવરોને, દુષ્ટોનો રાજાઓને, અને અસ્થિરતાનો ઐશ્વર્યને મહાભય છે. એકને એકનો ભય લાગેલો છે. એકથી એક અસિત છે, પછી તેમાં શાંતિની ભાવના રાખવી કુવાના કિનારા ઉપર બેસીને નિર્ભયતાની સાથે ઉંઘ લેવા બરાબર છે. માટે તો જ્ઞાની પદે પદે સંબોધિત કરી કરીને કહેતાં રહે છે કે અરે ભવ્ય!

"तत्त्वं चिन्तय सततं चित्ते, परिहर चिन्तां नश्वरवित्ते"

સદા તું સારાસારનો વિચાર કરતો રહે, કારણ કે નાશ થનારા ધનાદિકની ચિન્તાથી વ્યર્થ પોતાની જાતને વ્યાકુલ બનાવીશ નહિ. શું તને ખબર નથી કે જેવી રીતે માંસ ઉપર ગીધ અવારનવાર ઘૂમ્યા કરે છે તે પ્રકારે તને ખાવા માટે કાલ તારા શિર ઉપર ઘૂમી રહ્યો છે. લોકોને મરતા તું નિત્ય જુવે છે. પ્રત્યેક દિવસ વૃદ્ધોને અસહ્ય કષ્ટની યાતનાઓથી પીડિત ભાળે છે. અને સંસારીજીવોને પણ તરેહ તરેહના ભયોથી ઘેરાએલાં અને નાના પ્રકારના સંકટોને સહન કરતા

तरह २ के भयों से घिरा हुआ एवं नाना प्रकार के संकटों को झेलता हुआ तूं स्वयं अपनी आंखों से देखता है, फिर भी तूं विषय रूप चारे के लोभ से ममता के कांटे में फंस कर अपना नाश कर रहा है। मछली और बन्दर की तरह बन्धन में फँसता हुआ भी वहां से नहीं निकलना चाहता। क्या तुझे नहीं मालूम कि तेरी भी एक दिन यही दशा होने-वाली है, अतः यही अवसर कल्याण करने का है। कहा भी है—

" यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा,
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्,
प्रोद्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ?" ॥ १ ॥

हे भव्य ! जब तक तेरा यह शरीर ठीक हालत में है, इसमें कोई भी रोग ने निवास नहीं किया है, जब तक बुढ़ापा दूर है, जब तक इन्द्रियों की शक्ति बनी हुई है, जब तक आयु के दिन बांकी हैं, तब तक तूं आत्म-कल्याण करने की चेष्टा अच्छी तरह करता रह। घर जलने पर कूप खोदने से क्या लाभ ? ॥१॥

इन पूर्वोक्त बातों को ध्यानमें रखते हुए सूत्रकार कहते हैं-' एवं जाणित्तु ' इत्यादि। ' हे पण्डित !' इस शब्द के अर्थ का टीकाकार-

---

તું સ્વયં પોતાની આંખોથી દેખે છે, છતા તું વિષયના લોભથી મમતાના કાંટામાં ફસી પોતાનો નાશ કરી રહ્યો છે. માછલી અને વાંદરાની માફક તું બંધનમાં ફસેલો પણ ત્યાંથી બહાર નીકળવા ચાહતો નથી. શુ તને ખબર નથી કે તારી પણ એક દિવસ આ દશા થવાની છે. માટે એજ અવસર કલ્યાણ કરવાનો છે. કહ્યુ પણ છેઃ—

"यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा,
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्य प्रयत्नो महान्,
प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यम कीदृशः ?" ॥ १ ॥

હે ભવ્ય ! જ્યાં સુધી આ તારૂં સરીર સારી હાલતમાં છે, તેમા કોઈ પણ રોગે નિવાસ નથી કર્યો, જ્યાં સુધી ઘડપણ દૂર છે, જ્યાં સુધી ઈન્દ્રિયોની શક્તિ બની રહી છે, જ્યાં સુધી આયુના દિવસો બાકી છે, ત્યાં સુધી તું આત્મ-કલ્યાણ કરવાની ચેષ્ટા સારી રીતે કરતો રહે. ઘર બળવા લાગે ત્યારે કુવો ખોદવાનો શુ અર્થ ? ॥ ૧ ॥

આ પૂર્વોક્ત વાતોને ધ્યાનમાં રાખીને સૂત્રકાર કહે છે—" एवं जाणित्तु " ઇત્યાદિ. ' હે પંડિત !' આ શબ્દના અર્થનું ટીકાકાર–હે મેધાવી !, હે સર્વવિરતિસંપન્ન !,

हे मेधावी! हे सर्वविरतिसंपन्न! हे परमार्थज्ञ! इन तीन पदों से विवेचन करते हैं। सार और असारतत्त्व का विवेचन करनेवाली बुद्धि का नाम मेधा-प्रज्ञा है। इसके बलपर ही प्राणी 'उपादेय क्या वस्तु है? हेय क्या है?' इस बात का विचार कर सकता है। इस पवित्र विचारधारा से उसकी आत्मामें भेदविज्ञान जागृत होता है। इससे वह यह भली भांति जान लेता है कि "एगो हं नत्थि मे कोई" "मैं स्वतंत्र एक हूं, मेरा इस संसार में कोई नहीं है। इन पर-पदार्थों का केवल मेरे साथ संयोग संबंध हैं, तादात्म्य संबंधवाले ज्ञानादिगुण मेरी आत्मा के साथ सदा रहनेवाले है। इन संयोगी पदार्थों का नियम से वियोग होगा, जिनका तादात्म्य संबंध है वे तो इस आत्मा से त्रिकाल में भी दूर नहीं हो सकते। जो अपना निज गुण है वही हमें उपादेय है, बाकी हेय हैं" इस प्रकार की विशुद्ध भावना से उसकी आत्मा में उन पदार्थों से वैराग्यवृत्ति उत्पन्न होती है, इस वैराग्यवृत्ति से आत्मा में कोई अपूर्व वीर्योल्लास पैदा होता है, इसकी वजह से आत्मा से अनंतानुबंधी चोकड़ी का और दर्शनमोहनीय की प्रकृतियों का क्षय, क्षयोपशम या उपशम होता है। इसी परिस्थिति में इसे उपशम क्षयोपशम या क्षायिक समकित पैदा हो जाता है। अभी आत्मा में चारित्रमोहनीय कर्म की सत्ता मौजूद है,

---

હે પરમાર્થજ્ઞ !, આ ત્રણ પદોથી વિવેચન કરે છે-સાર અને અસાર તત્ત્વનું વિવેચન કરવાવાળી બુદ્ધિનું નામ મેધા-પ્રજ્ઞા છે. તેના બળ ઉપર હે પ્રાણી 'ઉપાદેય શું વસ્તુ છે. હેય શું છે' આ વાતનો વિચાર કરી શકે છે. આવી પવિત્ર વિચારધારાથી તેના આત્મામા ભેદવિજ્ઞાન જાગ્રત થાય છે, તેથી તે આ સારી રીતે જાણી લે છે કે-" एगो ह नत्थि मे कोई " " હું એકલો છું મારૂં આ સંસારમાં કોઈ નથી. આ પર પદાર્થોનો કેવલ મારા આત્માની સાથે સંયોગ સંબંધ છે. તાદાત્મ્ય સંબધવાળા જ્ઞાનાદિગુણ મારી આત્માની સાથે સદા રહેવાવાળા છે. આ સંયોગી પદાર્થોનું નિયમથી વિયોગ થશે, જેનો તાદાત્મ્ય સંબંધ છે તેઓ તો આ આત્માથી ત્રિકાળમા પણ દૂર થઈ શકતા નથી. જે પોતાનો-નિજગુણ છે તે અમને ઉપાદેય છે, બાકી હેય છે" આવા પ્રકારની વિશુદ્ધ ભાવનાથી તેના આત્મામાં તે પદાર્થોથી વૈરાગ્યવૃત્તિ ઉત્પન્ન થાય છે. તે વૈરાગ્ય વૃત્તિથી આત્મામાં કોઇ અપૂર્વ વીર્યોલ્લાસ પેદા થાય છે. તેની મારફતે આત્માથી અનંતાનુબંધી ચોકડીનો અને દર્શનમોહનીયની પ્રકૃતિયોનો ક્ષય, ક્ષયોપશમ, અગર ઉપશમ થાય છે. આવી પરિસ્થિતિમાં તેને ઉપશમ, ક્ષયોપશમ, અને ક્ષાયિક સમકિત પેદા થાય છે. હજુ આત્મામાં ચારિત્રમોહનીય કર્મની સત્તા મોજુદ છે,

इससे इसे देशविरति या सर्वविरति की प्राप्ति नहीं हुई है, परन्तु समकित की प्राप्ति होने के बाद ज्यों ही यह आगे बढनेका प्रयास करता है त्यों ही इसको या तो देशविरति होती है या सर्वविरति। देशविरति से मुक्ति नहीं, अतः जब यह अपने पुरुषार्थ की दिशाको आगे बढ़ाता है तब सर्वविरति के लाभ से यह अपने को पवित्र करता है और वास्तविक तप संयम का आराधक बन जाता है, अतएव परमार्थज्ञ-परम=उत्कृष्ट जो अर्थ= आत्मा का स्वरूप, उसका ज्ञ=ज्ञाता हो जाता है। देशविरति में आत्मा प्राणातिपातादिक पांच आस्रवोंका एक देशसे त्यागी होता है और सर्व विरतिमें उनका सर्व प्रकार से त्याग हो जाता है। वहां समस्त जीवों पर समताभाव रहता है। आत्माका निजस्वरूप जो ज्ञाता-द्रष्टापना है वह इस तपसंयमकी अवस्था में प्रकट हो जाता है।

सूत्रमें-"दुक्खं पत्तेयं सायं" जो पद है वह इस बातकी पुष्टि करता है-यह दुःख और सुख, पाप और पुण्य से होते हैं, अतः "संसार के समस्त प्राणियों को रोगादिक वेदना आदि के समय अपने द्वारा किये गये कर्मका विपाक अवश्य भोगना पड़ता है" ऐसा समझकर हे भव्य! जब तक अपने शरीरमें रोगादिकों का उदय नहीं होता, और जब तक सचेष्टता बनी हुई है, तथा जब तक स्वजन संबंधी अपने से

તેનાથી તેને દેશવિરતિ અને સર્વવિરતિ પણ પ્રાપ્ત થયેલ નથી પરંતુ સમકિતની પ્રાપ્તિ થયા બાદ જ્યારે તે આગળ વધવાનો પ્રયાસ કરે છે ત્યારે તેને દેશવિરતિ થાય છે, અથવા સર્વવિરતિ. દેશવિરતિથી મુક્તિ નહિ માટે જ્યારે એ પોતાના પુરૂ-પાર્થની દિશાને આગળ વધારે છે, ત્યારે સર્વવિરતિના લાભથી તે પોતાને પવિત્ર કરે છે, અને વાસ્તવિક તપ સંયમનો આરાધક બની જાય છે, એટલે પરમાર્થજ્ઞ-પરમ=ઉત્કૃષ્ટ જે અર્થ=આત્માનુ સ્વરૂપ તેનો જ્ઞ=જ્ઞાતા થાય છે. દેશવિરતિમાં આત્મા પ્રાણાતિ-પાતાદિક પાચ આશ્રવોનો એક દેશથી ત્યાગી થાય છે અને સર્વવિરતિમા તેનો સર્વ પ્રકારથી ત્યાગ થઇ જાય છે. ત્યાં સમસ્ત જીવો ઉપર સમતાભાવ રહે છે. આત્માનું નિજ સ્વરૂપ જે જ્ઞાતા-દ્રષ્ટાપન છે તે આ તપ સંયમની અવસ્થામાં પ્રગટ થઇ જાય છે.

સૂત્રમાં "दुक्खं पत्तेयं सायं" જે પદ છે તે આ વાતની પુષ્ટિ કરે છે-તે દુઃખ અને સુખ પાપ અને પુણ્યથી થાય છે, માટે "સંસારના સમસ્ત પ્રાણી-ઓને રોગાદિક વેદના આદિના સમયે પોતાનાથી કરેલા કર્મનો વિપાક અવશ્ય ભોગવવો પડે છે." એવું સમજીને હે ભવ્ય! જ્યાં સુધી પોતાના શરીરમાં રોગા-દિકનો ઉદય નથી થતો, અને જ્યાં સુધી સચેષ્ટતા બનેલ છે, અને જ્યાં સુધી

विरक्त नहीं होते तब तक आत्मकल्याण करने में अग्रसर हो जा, और इस संयमाराधनरूप पवित्र कार्यको न छोड़। क्यों कि-

"हाथ पांवमें जब तक बल है, आंखों में है तेज प्रकाश,
श्रवणशक्ति है, बुद्धि उपस्थित, रोगादिक का हुआ न ग्रास।
धर्म आचरण करले प्राणी, धरकर मन में उत्तम साज,
को जाने कल रहा न कल तो, क्यों जाने देते हो आज ॥ १ ॥"

"अनभिक्रान्तं च वयः सम्प्रेक्ष्य"

समय समय आयु घटती है, क्षण क्षण काया क्षीण होती है। जिस प्रकार मिट्टीका ढेला भीजते ही गल जाता है, उसी तरह देखते २ यह शरीर गल जाता है, इसलिये तूं अपने आत्म-कल्याण की तरफ प्रवृत्ति कर। क्यों कि वय के व्यतीत होने पर परिवाद, पोषण और परिहार आदिक दोष उत्पन्न हो जाते हैं। इस लिये उस हालत में संयमका पालन अशक्य होता है। इस लिये सूत्रकार कहते हैं कि-जब तक संयम धारण करने योग्य अवस्था व्यतीत नहीं हुई है तब तक धर्माचरण रूप अवसर को हाथसे मत जाने दो, अर्थात् यही अवस्था है जिसमें प्राणी धर्माचरण कर सकता है। सूत्र में 'च' शब्द अर्थान्तर का बोधक है इस से यह

સ્વજન સંબંધી પોતાનાથી વિરક્ત નથી થતાં ત્યાં સુધી આત્મકલ્યાણ કરવામાં અગ્રેસર બની જા, અને આ સંયમારાધન રૂપ પવિત્ર કાર્યને ન છોડ, કારણ કે-

"हाथ पांवमें जब तक बल है, आखोंमें है तेजप्रकाश,
श्रवणशक्ति हैं, बुद्धि उपस्थित, रोगादिकका हुआ न त्रास।
धर्म आचरण कर ले प्राणी, धरकर मनमें उत्तम साज,
को जाने कल रहा न कल तो, क्यों जाने देते हो आज ॥ १ ॥"

"अनभिक्रान्तं च वयः सम्प्रेक्ष्य"

સમય સમય આયુ ઘટે છે, ક્ષણે ક્ષણે કાયા ક્ષીણ થાય છે. જેમ માટીનું ઢેફું પાણી લાગતાં જ ગળી જાય છે તેમ દેખતાં દેખતાંમાં આ શરીર ગળી જાય છે, માટે તું પોતાના આત્મકલ્યાણ તરફ પ્રવૃત્તિ કર. કારણ કે વયના વ્યતીત થવાથી પરિવાદ, પોષણ અને પરિહાર આદિક દોષ ઉત્પન્ન થાય છે, તેથી તેવી હાલતમાં સંયમનું પાલન થવું અશક્ય છે, માટે સૂત્રકાર કહે છે કે- જ્યાં સુધી સંયમ ધારણ કરવાની યોગ્ય અવસ્થા વ્યતીત થઈ નથી ત્યાં સુધી ધર્માચરણરૂપ અવસરને હાથથી જવા દો નહિ અર્થાત્ આજ અવસ્થા છે જેમાં ધર્માચરણ પ્રાણી કરી શકે છે. સૂત્રમાં 'च' શબ્દ અર્થાન્તરનો બોધક છે

यद्वा–अवसीदतो विनेयस्योत्साहवर्धनपरमिदं वाक्यम्–हे पण्डित! सम्प्रति स्वमनतिक्रान्तवया असि, अथ च परिवादादिदोषत्रयरहितोऽसि तावदेव संयमाय यतस्वेत्यर्थः, अत्रेदृशक्षणाभिज्ञत्वेन पण्डित! इति सम्बोधनं सङ्गच्छते।

प्रतीत होता है कि पूर्वोक्त परिवादादि ३ दोषों में से किसी एक भी दोष से जो अस्पृष्ट–रहित है और अवस्था भी धर्माचरण करने की जिसकी निकल गई है, परन्तु यदि वह दृढसंहनन वाला है तो भी प्रव्रज्या––भागवती दीक्षा के योग्य है। जिस प्रकार भगवान् के माता पिताने–देवानन्दा और ऋषभदत्तने अपनी वृद्धावस्थामें दीक्षा धारण की थी।

अथवा–"अनभिक्रान्तं च खलु वयः संप्रेक्ष्य क्षणं जानीहि पण्डित!" यह वाक्य संयम में सीदाते हुए शिष्यजनों में जो निरुत्साहित हो रहे हैं उनका उत्साह बढ़ाने के लिये कहा गया है। उनका उत्साह बढ़ाते हुए वे कह रहे हैं कि–हे पण्डित! इस समय तुम प्रव्रज्या ग्रहण करने की अवस्था वाले हो, तथा परिवादादिक दोषत्रय रहित भी हो, सो तुम जब तक इस अवस्था में हो तब तक संयम ग्रहण के लिये प्रयत्नशील रहो। इसी अभिप्राय से सूत्रकार ने 'पण्डित!' इस संबोधन से उन्हें संबोधित किया है, कारण कि शिष्यजन स्वयं इस प्रकार की अपनी अवस्था को समझ रहे हैं, अतः यह संबोधन उनके लिये संगत बैठता है।

તેથી એ પ્રતીત થાય છે કે–પૂર્વોક્ત પરિવાદાદિ ત્રણ દોષોમાંથી કોઈ એક પણ દોષથી જે અસ્પૃષ્ટ–રહિત છે અને અવસ્થા પણ ધર્માચરણ કરવાની જેની વીતી ગઈ છે પરંતુ કદાચ તે દૃઢ સંહનનવાલા છે તો પણ પ્રવ્રજ્યા–ભાગવતી દીક્ષાને યોગ્ય છે. જેમ ભગવાનના માતાપિતાએ દેવાનંદા અને ઋષભદત્તે પોતાની વૃદ્ધાવસ્થામા દીક્ષા ધારણ કરી હતી

અથવા––"अनभिक्रान्तं च खलु वय· संप्रेक्ष्य क्षणं जानीहि पण्डित!" આ વાકચ, સંયમમાં કષ્ટ પામતા શિષ્યજનોમા જે નિરૂત્સાહિત બનેલ છે, તેનો ઉત્સાહ વધારવા માટે કહેવામાં આવેલ છે. તેનો ઉત્સાહ વધારીને તેઓ કહે છે કે–હે પંડિત! આ વખત તમે પ્રવ્રજ્યા ગ્રહણ કરવાની અવસ્થાવાળા છો, તથા પરિવાદાદિક દોષત્રય વગર પણ છો જેથી તમે જ્યા સુધી આ અવસ્થામાં છો ત્યા સુધી સંયમ ગ્રહણ કરવા માટે પ્રયત્નશીલ રહો, આ અભિપ્રાયથી સૂત્રકારે 'પંડિત' આ સંબોધનથી તેને સંબોધિત કરેલ છે, કારણ કે-શિષ્યજન સ્વયં આ પ્રકારની પોતાની અવસ્થાને સમજી શકે છે માટે આ સંબોધન તેને માટે સંગત બેસે છે.

अथवा—हे अनभिक्रान्तयौवन ! शिष्य ! क्षणं द्रव्य–क्षेत्र–काल–भावभेदेन चतुर्विधं जानीहि । तत्र द्रव्यक्षणश्च स्थावरजङ्गमयोर्जङ्गमत्वं, तत्रापि द्वीन्द्रियादिपरिहारेण पञ्चेन्द्रियत्वं, तत्रापि सञ्ज्ञित्वं, तत्रापि मनुष्यत्वं, तेष्वपि विशिष्टजातिशोभनकुलोत्पत्तिदीर्घायुष्ट्वनैरुज्यादिकमुपलभ्य चारित्रप्राप्तिरूपोऽवसरो लब्धः। यतो देवनारकभवे सम्यक्त्वं ज्ञानाववोधरूपश्रुतसामायिकोपलब्धिश्च भवति, तिर्यक्षु कस्यचिद्देशविरतिरुपजायते, सर्वविरतिरूपं चारित्रं मनुष्यजन्मन्येव लभते, स एव द्रव्यक्षणः। सामायिकश्चतुर्विधः—सम्यक्त्व–श्रुत–देशविरति–सर्वविरतिरूपो बोध्यः ।

अथवा—शिष्य के लिये सूत्रकार फिर कहते हैं कि–हे अनभिक्रान्तयौवन शिष्य ! द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेदसे क्षण (अवसर) चार प्रकार का है।

(१) सर्वविरतिरूप अवस्था जीव को जिस क्षण में प्राप्त होती है उसका नाम द्रव्यक्षण है, क्यों कि यह जीव अव्यवहार राशिसे व्यवहार राशि में आता है वहां पर पृथिवीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीवों में जन्म ग्रहण करता है। फिर वह कर्म स्थितिको भोगता हुआ क्रम से द्वीन्द्रियादिक जीवों में उत्पन्न होता है। इस प्रकार स्थावर और त्रसपर्याय में। त्रसपर्याय की प्राप्ति द्रव्यक्षण है। इसमें भी द्वीन्द्रियादिक पर्यायों के सिवाय पंचेन्द्रियपर्याय की प्राप्ति; इसमें भी संज्ञिपन की प्राप्ति; उसमें भी मनुष्यपर्याय की प्राप्ति; वहां भी विशिष्ट जाति–उच्चकुल में जन्म, दीर्घायु का पाना, निरोग शरीर की प्राप्ति होना, इस में भी चारित्र की प्राप्ति

અથવા શિષ્ય માટે સૂત્રકાર ફરીવાર કહે છે કે–હે અનભિક્રાન્તયૌવન શિષ્ય ! દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવ ના ભેદથી ક્ષણ (અવસર) ચાર પ્રકાર છે.

(૧) સર્વવિરતિરૂપ અવસ્થા જીવને જે ક્ષણે પ્રાપ્ત થાય છે તેનું નામ દ્રવ્ય ક્ષણ છે કારણ કે–આ જીવ અવ્યવહાર રાશિથી વ્યવહાર રાશિમાં આવે છે ત્યા પૃથિવીકાયિક આદિ એકેન્દ્રિય જીવોમાં જન્મ ગ્રહણ કરે છે, પછી તે કર્મસ્થિતિને ભોગવતાં ક્રમથી બેઇન્દ્રિય જીવોમા ઉત્પન્ન થાય છે, આ પ્રકાર સ્થાવર અને ત્રસ પર્યાયની પ્રાપ્તિ દ્રવ્યક્ષણ છે. તેમા પણ બેઇન્દ્રિયાદિક પર્યાયો સિવાય પંચેન્દ્રિય પર્યાયની પ્રાપ્તિ, તેમાં પણ સંજ્ઞીપણાની પ્રાપ્તિ, તેમાં પણ મનુષ્યપર્યાયની પ્રાપ્તિ, ત્યા પણ વિશિષ્ટ જાતિ–ઉંચ કુળ–મા જન્મ, દીર્ઘાયુ મેળવવું, નિરોગ શરીર પ્રાપ્ત થવું, તેમાં પણ ચારિત્રની પ્રાપ્તિ થવી, ઇત્યાદિ. એ બધું દ્રવ્ય

होना; इत्यादि, ये सब द्रव्यक्षण हैं। ये सब बातें तुझे प्राप्त हुई हैं, क्यों कि–देवगति और नरकगति में तत्त्वश्रद्धानरूप सम्यक्त्वसामायिक, और तत्त्वावबोधरूप श्रुतसामायिक की उपलब्धि जीवको प्राप्त होती है, तिर्यञ्चगति में किसी २ जीव को देशविरति का लाभ होता है, सर्वविरति रूप चारित्र की प्राप्ति तो इस जीवको मनुष्यजन्म में ही होती है। इसी लिये यहां पर वही द्रव्यक्षण है। सामायिक ४ प्रकार का है–१ सम्यक्त्व,–२ श्रुत, ३ देशविरति और ४ सर्वविरति।

यहां पर द्रव्यक्षण का विचार किया है, सर्वविरतिरूप चारित्र की उत्पत्ति अथवा प्राप्ति की मुख्यता से मनुष्य पर्याय को ही प्रधानतया द्रव्यक्षण कहा है, क्यों कि सर्वविरतिरूप चारित्र के सिवाय आत्मा दूसरी किसी अवस्था से कर्मोंका क्षय कर मोक्ष प्राप्त नहीं करता। मोक्षप्राप्त करना यह इस की स्वाभाविक अवस्था है। जिस प्रकार तुंबड़ी के ऊपर मिट्टीका लेप लगाने से वह पानी के नीचे बैठ जाती है, ठीक उसी प्रकार यह जीव भी कर्ममल से लिप्त होने के कारण संसाररूप समुद्र के अन्दर बैठ जाता है। जैसे उस तुंबड़ीका लेप ज्यों२ पानी से गल कर हटता जाता है त्यों २ वह तुंबड़ी पानी के ऊपर आती जाती है, बिलकुल निर्लेप होने

ક્ષણ છે. આ બધી વાતો તને પ્રાપ્ત થયેલ છે, કારણ કે દેવગતિ અને નરકગતિમાં તત્ત્વશ્રદ્ધાનરૂપ સમ્યકત્વસામાયિક અને તત્ત્વાવબોધરૂપ શ્રુતસામાયિકની ઉપલબ્ધિ જીવને પ્રાપ્ત થાય છે. તિર્યંચગતિમાં કોઇ કોઈ જીવને દેશવિરતિનો લાભ થાય છે. સર્વવિરતિરૂપ ચારિત્રની પ્રાપ્તિ તો આ જીવને મનુષ્ય જન્મમાં જ થાય છે માટે આ ઠેકાણે તેજ દ્રવ્યક્ષણ છે. સામાયિક ચાર પ્રકારનું છે. ૧ સમ્યકૃત્વ, ૨ શ્રુત, ૩ દેશવિરતિ અને ૪ સર્વવિરતિ.

અહીં દ્રવ્યક્ષણનો વિચાર કર્યો છે. સર્વવિરતિરૂપ ચારિત્રની ઉત્પત્તિ અથવા પ્રાપ્તિની મુખ્યતાથી મનુષ્યપર્યાયને જ પ્રધાનતયા દ્રવ્યક્ષણ કહ્યું છે, કારણ કે સર્વવિરતિરૂપ ચારિત્ર સિવાય આત્મા બીજી કોઇ અવસ્થાથી કર્મોનો ક્ષય કરી મોક્ષ પ્રાપ્ત કરતા નથી. મોક્ષપ્રાપ્ત કરવો તે તેની સ્વાભાવિક અવસ્થા છે. જેમ તુંબડી ઉપર માટીનો લેપ લગાડવાથી તે પાણીની નીચે બેસી જાય છે, ઠીક તે પ્રકારે આ જીવ પણ કર્મમલથી લિપ્ત હોવાના કારણે સંસારરૂપ સમુદ્રની અંદર બેસી જાય છે. જેમ જેમ જેવો તે તુંબડી ઉપરનો માટીનો લેપ પાણીથી ગળીને હઠી જાય છે તેમ તેમ તે તુંબડી પાણી ઉપર આવે જાય છે. બિલકુલ નિર્લેપ થવાથી તે

पर वह पानी के ऊपर तैरने लगती है, ठीक इसी प्रकार ज्यों २ कर्ममलका लेप इस जीवात्मा से छूटता जाता है त्यों २ यह भी अपनी शुद्ध अवस्था को प्राप्त करता जाता है, एक दिन यह भी आता है जब यह कर्ममल के लेप से सर्वथा निर्लेप हो जाता है। सर्वथा निर्लेप होना ही इसकी शुद्ध अवस्था की प्राप्ति है। यह कर्मों को नाश करने की दशा, सर्वविरतिरूप चारित्र की प्राप्ति से ही जीव को प्राप्त होती है, एकेन्द्रियादिक पर्यायों में इसकी प्राप्ति जीव को नहीं होती, क्यों कि सर्वविरतिरूप चारित्र की प्राप्ति विना ज्ञान के विकाश के नहीं हो सकती, ज्ञान का विकाश मनुष्य पर्याय के सिवाय अन्यत्र नहीं होता। इसीलिये प्रधानतया इसीको ही द्रव्यक्षण कहा है। ज्ञानके विकाश का अभिप्राय पांच आस्रवों की निवृत्ति से है। ज्ञानसे पांच आस्रवों की सर्वथा निवृत्ति हो वही ज्ञान का विकाश है। यद्यपि देवपर्याय में भवप्रत्यय अवधि होता है तथापि वहां पर जो सर्वविरतिरूप चारित्र की योग्यता नहीं है उसका खास कारण यही है। उस ज्ञान से वहां पर पांच आस्रवों की निवृत्ति नहीं हो सकती। इसी प्रकार नरक में भी पांच आस्रवों की निवृत्ति के अभाव से देशविरति और सर्वविरति की प्राप्ति नहीं हो सकती।

પાણી ઉપર તરવા લાગે છે. તે પ્રકારે જેમ જેમ કર્મમલનો લેપ આ જીવાત્માથી છુટી જાય છે તેમ તેમ તે પણ પોતાની શુદ્ધ અવસ્થાને પ્રાપ્ત કરતો રહે છે. એક દિવસ એવો પણ આવે છે કે તે કર્મમલના લેપથી સર્વથા નિર્લેપ થઈ જાય છે. સર્વથા નિર્લેપ થવુ તે તેની શુદ્ધ અવસ્થાની પ્રાપ્તિ છે. આ કર્મોનો નાશ કરવાની દશા, સર્વવિરતિરૂપ ચારિત્રની પ્રાપ્તિથી જ જીવને પ્રાપ્ત થાય છે. એકેન્દ્રિયાદિક પર્યાયોમાં તેની પ્રાપ્તિ જીવને થતી નથી, કારણ કે સર્વવિરતિરૂપ ચારિત્રની પ્રાપ્તિ જ્ઞાનના વિકાસ સિવાય થતી નથી. જ્ઞાનનો વિકાસ મનુષ્ય પર્યાય સિવાય અન્યત્ર નથી થતો, માટે પ્રધાનતયા તેને જ દ્રવ્યક્ષણ કહેલ છે. જ્ઞાનના વિકાસનો અભિપ્રાય પાંચ આશ્રવોની નિવૃત્તિથી છે. જ્ઞાનથી પાંચ આશ્રવોની સર્વથા નિવૃત્તિ થાય તે જ્ઞાનનો વિકાસ છે. જોકે દેવપર્યાયમાં ભવપ્રત્યય અવધિ હોય છે તથાપિ તે જગ્યાએ જે સર્વવિરતિરૂપ ચારિત્રની યોગ્યતા નથી તેનું ખાસ કારણ એ છે કે તે જ્ઞાનથી ત્યાં પાંચ આશ્રવોની નિવૃત્તિ થતી નથી. એ પ્રકારે નરકમાં પણ પાંચ આશ્રવોની નિવૃત્તિના અભાવથી દેશવિરતિ અને સર્વવિરતિની પ્રાપ્તિ થઈ શકતી નથી.

क्षेत्रक्षणस्तु यस्मिन् क्षेत्रे सर्वविरतिस्वरूपचारित्रोपलब्धिर्जायते, तथा हि-अधोलोकग्रामसंवलिततिर्यग्लोक एव, तत्रापि समयक्षेत्र एव, तत्रापि पञ्चदशकर्मभूमिष्वेव, तास्वपि भरतक्षेत्रापेक्षया सार्द्धपञ्चविंशतिदेशेष्वेव चारित्रावाप्तिर्भवति। स चायं क्षेत्ररूपोऽवसरो दुर्लभः। यतोऽन्यक्षेत्रेषु सम्यक्त्वश्रुतसामायिकयोरेवोपलब्धिः, कस्यचिद्देशविरतिसम्भवः, किन्तु न सर्वविरतिप्राप्तिर्भवति।

इदमुक्तं भवति-क्षेत्रम् ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्लोकरूपम्। तत्रोर्ध्वलोके देशविरति-सर्वविरतिरूपसामायिकयोः क्षणो नास्ति, अवशिष्टयोः क्षणोऽस्ति। अधोलोके-

---

जिस क्षेत्र में सर्वविरतिरूप चारित्र की प्राप्ति इस जीव को होती है उसका नाम क्षेत्रक्षण है। अधोलोक-ग्राम-संवलित अर्थात् सलिलावतीविजययुक्त तिर्यग्लोक में ही, वहां पर भी समयक्षेत्र में ही, वहां भी पन्द्रह कर्मभूमियों में ही, वहां पर भी भरतक्षेत्र की अपेक्षा से २५॥ देशों में ही इस जीव को चारित्र की प्राप्ति होती है। यह क्षेत्र रूप अवसर भी दुर्लभ है, क्यों कि अन्यक्षेत्रों में सम्यक्त्वसामायिक और श्रुतसामायिक, इन दो की उपलब्धि, तथा किन्हीं २ को देशविरति रूप चारित्रकी उपलब्धि की संभावना है, परन्तु वहां पर जीवों को सर्वविरति का लाभ नहीं होता है।

ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, और तिर्यग्लोक, इस प्रकार क्षेत्र ३ प्रकार का है। इनमें ऊर्ध्वलोक में देशविरति और सर्वविरति रूप सामायिक धारण करने का अवसर ही नहीं है। सम्यक्त्वसामायिक और श्रुतसामायिक इन दो की जीव को वहां प्राप्ति हो सकती है। अधोलोक में भी अधो-

---

જે ક્ષેત્રમા સર્વવિરતિરૂપ ચારિત્રની પ્રાપ્તિ આ જીવને થાય છે તેનુ નામ ક્ષેત્રક્ષણ છે. અધોલોકગ્રામસંવલિત અર્થાત્ સલિલાવતીવિજયયુક્ત તિર્યગ્લોકમાં, ત્યાં પણ સમયક્ષેત્રમાં જ, ત્યાં પણ પંદર કર્મભૂમિઓમાં જ, ત્યાં પણ ભરતક્ષેત્રની અપેક્ષાથી સાઢાપચ્ચીસ (૨૫ાા) દેશોમાં આ જીવને ચારિત્રની પ્રાપ્તિ થાય છે. તે ક્ષેત્રરૂપ અવસર પણ દુર્લભ છે. કારણ કે અન્ય ક્ષેત્રોમાં સમ્યક્ત્વસામાયિક અને શ્રુતસામાયિક, આ બન્નેની ઉપલબ્ધિ, તથા કોઈ કોઈ ને દેશવિરતિરૂપ ચારિત્રની ઉપલબ્ધિની સંભાવના છે, પરંતુ તે જગ્યાએ જીવોને સર્વવિરતિનો લાભ થતો નથી

ઉર્ધ્વલોક, અધોલોક અને તિર્યગ્લોક, આ પ્રકારે ક્ષેત્ર ત્રણ પ્રકારના છે. તેમાં ઉર્ધ્વલોકમાં દેશવિરતિ અને સર્વવિરતિરૂપ સામાયિક ધારણ કરવાનો અવસર જ નથી, સમ્યક્ત્વસામાયિક અને શ્રુતસામાયિક, આ બેની જીવને ત્યાં પ્રાપ્તિ થઈ

ऽधोलोकग्रामं (सलिलावतीविजयं) वर्जयित्वोर्ध्वलोकवद्विज्ञेयम्, अधोलोकग्रामेषु च चतुर्णां सामायिकानां क्षणोऽस्ति। तिर्यग्लोके मनुष्यक्षेत्राद्बहिः सर्वविरतिं विहाय त्रयाणां सामायिकानां क्षणोऽस्ति, तेन मनुष्यक्षेत्र एव चतुर्विधसामायिकप्राप्तिरिति बोध्यम्।

कालक्षणः–कालरूपोऽवसरः, स हि अवसर्पिण्यां सुषमदुष्षमा–दुष्षमसुषमा–दुष्षमा–रूपेषु तृतीय–चतुर्थ–पञ्चमात्मकेषु त्रिष्वरकेषु, उत्सर्पिण्यां दुष्षमसुषमा–सुषमदुष्षमारूपयोस्तृतीय–चतुर्थारकयोश्च सर्वविरतिरूपसामायिकोपलब्धिरुपजायते। एतच्च नूतनधर्मप्राप्तिमपेक्ष्य कथितम्। पूर्वप्रतिपन्नापेक्षया संहरणावस्थायां लोकत्रये सर्वारकेषु सर्वविरतिसामायिकोपलब्धिर्जायते।

लोकग्राम (सलिलावतीविजय) को छोड़कर ऊर्ध्वलोक की तरह ही समझना चाहिये। अर्थात् अधोलोक में–अधोलोकग्राम–सलिलावती विजय में चारों ही सामायिक को प्राप्त करने का अवसर है, परन्तु बाकी जगह सम्यक्त्व और श्रुत, इन दो सामायिकों की प्राप्ति का ही अवसर है। तिर्यग्लोक में मनुष्यक्षेत्र से बाहिर सर्वविरतिरूप सामायिक के अतिरिक्त बाकी तीन सामायिकों की उपलब्धि का अवसर जीव को प्राप्त होता है, परन्तु चारों प्रकार के सामायिक की प्राप्ति तो जीव को मनुष्यक्षेत्र–ढाईद्वीप में ही होती है।

जिसकाल में सर्वविरतिरूप चारित्र की प्राप्ति इस जीव को होती है उसका नाम कालक्षण है। काल दो प्रकारका है–उत्सर्पिणीकाल और अवसर्पिणीकाल। इसमें उत्सर्पिणीकाल ६ प्रकार का, और अवसर्पिणीकाल भी ६ प्रकारका है। उत्सर्पिणी के ६ भेद–१ दुष्षमदुष्षमा,

શકે છે. અધોલોકમાં પણ અધોલોકગ્રામ (સલિલાવતીવિજય) ને છોડીને ઉર્ધ્વલોકની માફક જ સમજવું જોઈએ, અર્થાત્ અધોલોકમા–અધોલોકગ્રામ–સલિલાવતી વિજયમાં ચારે સામાયિકને પ્રાપ્ત કરી લેવાનો અવસર છે, પરંતુ બીજી જગ્યાએ સમ્યક્ત્વ અને શ્રુત એ બે સામાયિકોને પ્રાપ્ત કરવાનોજ અવસર છે, તિર્યગ્લોકમા મનુષ્યક્ષેત્રથી બહાર સર્વવિરતિરૂપ સામાયિકના અતિરિક્ત બાકીના ત્રણ સામાયિકોની ઉપલબ્ધિનો અવસર જીવને પ્રાપ્ત થાય છે, પરંતુ ચારે પ્રકારની સામાયિકની પ્રાપ્તિ તો જીવને મનુષ્યક્ષેત્ર–અઢીદ્વીપમા જ થાય છે

જે કાળમાં સર્વવિરતિરૂપ ચારિત્રની પ્રાપ્તિ આ જીવને થાય છે તેનું નામ કાલક્ષણ છે. કાલ બે પ્રકારે છે–ઉત્સર્પિણીકાલ અને અવસર્પિણીકાલ, આમાં ઉત્સર્પિણીકાલ છ પ્રકારે, અને અવસર્પિણીકાલ પણ છ પ્રકારે છે, ઉત્સર્પિણીના

भावक्षणस्तु द्विविधः—कर्मभावक्षणो, नोकर्मभावक्षणश्च। कर्मभावक्षणश्च कर्मणामुपशम-क्षयोपशम-क्षया-न्यतमप्राप्तिरूपः। तत्रोपशमचारित्रक्षण उपशमश्रेण्यां

---

२ दुष्षमा, ३ दुष्षम-सुषमा, ४ सुषमदुष्षमा, ५ सुषमा, ६ सुषम-सुषमा, ये हैं। इसी प्रकार अवसर्पिणी के भी-(१) सुषमसुषमा, (२) सुषमा, (३) सुषमदुष्षमा, (४) दुष्षमसुषमा, (५) दुष्षमा, (६) दुष्षम-दुष्षमा, ये ६ भेद हैं। जिसकाल में जीवों के ज्ञानादि शुभभावों की वृद्धि तथा आयुष्य अवगाहना आदि की और वर्ण गन्ध रस स्पर्श के पर्यायों की वृद्धि होती है वह उत्सर्पिणी है, और जिस काल में जीवों के ज्ञानादि शुभभावों का ह्रास, तथा आयुष्य अवगाहना आदि का और वर्ण गन्ध रस स्पर्श की पर्यायों का ह्रास होता है वह अवसर्पिणी है। इनमें अवसर्पिणी के सुषमदुष्षमा-तीसरे काल में, दुष्षमसुषमा-चतुर्थकाल में और दुष्षमा-पंचमकाल में, तथा उत्सर्पिणी के दुष्षमसुषमा-तीसरे काल में और सुषमदुष्षमानामक चतुर्थकाल में सर्वविरतिरूप सामायिक की प्राप्ति जीव को होती है। यह कथन नवीन धर्मप्राप्ति की अपेक्षा से कहा है। पूर्वप्रतिपन्न की अपेक्षासे संहरणावस्था में लोकत्रय में समस्तकालों में सर्वविरतिरूप सामायिक की उपलब्धि जीव को हो सकती है।

भावक्षण दो प्रकार का है १ कर्मभावक्षण और २ नोकर्मभावक्षण।

---

૬ ભેદ-૧ દુષ્ષમદુષ્ષમા, ૨ દુષ્ષમા, ૩ દુષ્ષમસુષમા, ૪ સુષમદુષ્ષમા, ૫ સુષમા, ૬ સુષમસુષમા, એ છે. આ પ્રકારે અવસર્પિણીના પણ (૧) સુષમસુષમા, (૨) સુષમા (૩) સુષમદુષ્ષમા, (૪) દુષ્ષમસુષમા, ૫ દુષ્ષમા, ૬ દુષ્ષમદુષ્ષમા, આ છ ભેદ છે. જે કાળમાં જીવોને જ્ઞાનાદિ શુભ ભાવોની વૃદ્ધિ તથા આયુષ્ય અવગાહના આદિની અને વર્ણ ગંધ રસ સ્પર્શના પર્યાયોની વૃદ્ધિ થાય છે તે ઉત્સર્પિણી છે, અને જે કાળમાં જીવોને જ્ઞાનાદિ શુભ ભાવોનો હ્રાસ તથા આયુષ્ય અવગાહના આદિનો અને વર્ણ ગંધ રસ સ્પર્શની પર્યાયોનો હ્રાસ થાય છે તે અવસર્પિણી છે. તેમા અવસર્પિણીના સુષમદુષ્ષમા-ત્રીજા કાળમાં દુષ્ષમસુષમા-ચોથા કાળમા અને દુષ્ષમા-પંચમ કાળમાં, તથા ઉત્સર્પિણીના દુષ્ષમસુષમા-ત્રીજા કાળમાં અને સુષમદુષ્ષમા નામક ચોથા કાળમા સર્વવિરતિરૂપ સામાયિકની પ્રાપ્તિ જીવને થાય છે. આ કથન નવીન ધર્મપ્રાપ્તિની અપેક્ષાથી કહ્યુ છે પૂર્વપ્રતિપન્નની અપેક્ષાથી સંહરણાવસ્થામા લોકત્રયમાં સમસ્ત કાળોમાં સર્વવિરતિરૂપસામાયિકની ઉપલબ્ધિ જીવને થાય છે.

ભાવક્ષણ બે પ્રકારના છે ૧ કર્મભાવક્ષણ અને ૨ નોકર્મભાવક્ષણ. ચારિત્ર-

चारित्रमोहनीय कर्मका-क्षय, क्षयोपशम और उपशम-रूप अवस्थाओं में से किसी भी अवस्थारूप होना-सो कर्मभावक्षण है। उसमें उपशम-श्रेणी में चारित्रमोहनीय कर्म की २१ प्रकृतियों के उपशम होने पर अन्त-र्मुहूर्तपरिमित जो उपशमचारित्र होता है वह उपशमचारित्र का क्षण है। चारित्रमोहनीय कर्मकी २१ प्रकृतियों के सर्वथा क्षय होने पर अन्त-र्मुहूर्तपरिमित जो छद्मस्थ और यथाख्यात चारित्रकी प्राप्ति होती है तत्स्वरूप क्षायिकचारित्र का क्षण है। क्षयोपशमचारित्रक्षण चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से होता है। उसका काल उत्कृष्ट देश ऊन एक करोड पूर्वका है।

कर्मभावक्षण का मतलब है-चारित्र के आवारक-(रोकनेवाला) चारित्रमोहनीय कर्मके क्षय, क्षयोपशम, और उपशम की प्राप्तिका अवसर। उसमें चारित्रमोहनीय कर्म की अप्रत्याख्यानावरणादि २१ प्रकृतियों के उपशमसे जो चारित्र प्राप्त होता है उसका नाम उपशम-चारित्र है। यह उपशमश्रेणि में होता है, इसका काल अन्तर्मुहूर्त है। अप्रत्याख्यानावरणादि २१ प्रकृतियों के सर्वथा क्षय से जीव को जो चारित्र प्राप्त होता है उसका नाम क्षायिकचारित्र है। उपशमश्रेणी में उपशमचारित्र और क्षपकश्रेणी में क्षायिकचारित्र होता है। उपशम-

---

મોહનીય કર્મનો-ક્ષય, ક્ષયોપશમ અને ઉશમ-રૂપ અવસ્થાઓમાં કોઇ પણ અવસ્થારૂપ થવું, તે કર્મભાવક્ષણ છે, તેમાં ઉપશમશ્રેણીમાં ચારિત્રમોહનીય કર્મની ૨૧ પ્રકૃતિઓનો ઉપશમ થવાથી અન્તર્મુહૂર્ત પરિમિત જે ઉપશમચારિત્ર થાય છે તે ઉપશમચારિત્રનો ક્ષણ છે. ચારિત્રમોહનીય કર્મની ૨૧ પ્રકૃતિયોનો સર્વથા ક્ષય થવાથી અન્તર્મુહૂર્તપરિમિત જે છદ્મસ્થ અને યથાખ્યાત ચારિત્રની પ્રાપ્તિ થાય છે તત્સ્વરૂપ ક્ષાયિકચારિત્રનું ક્ષણ છે, ક્ષયોપશમચારિત્ર ક્ષણનું ચારિત્રમોહનીય કર્મના ક્ષયોપશમથી થાય છે, તેનો કાળ ઉત્કૃષ્ટ દેશઉન એક કરોડ પૂર્વનો છે

કર્મભાવક્ષણનો મતલબ છે ચારિત્રનો આવારક (રોકવાવાળા) ચારિત્રમોહનીય કર્મનો ક્ષય, ક્ષયોપશમ અને ઉપશમની પ્રાપ્તિનો અવસર, તેમાં ચારિત્રમોહનીય કર્મની અપ્રત્યાખ્યાનાદિ ૨૧ પ્રકૃતિઓનું ઉપશમ જે ચારિત્રથી પ્રાપ્ત થાય છે તેનુ નામ ઉપશમચારિત્ર છે. આ ઉપશમશ્રેણિમાં થાય છે. તેનો કાળ અન્તર્મુહૂર્ત છે. અપ્રત્યાખ્યાનાદિ ૨૧ પ્રકૃતિયોના સર્વથા ક્ષયથી જીવને જે ચારિત્ર પ્રાપ્ત થાય છે તેનું નામ ક્ષાયિકચારિત્ર છે. ઉપશમશ્રેણિમાં ઉપશમચારિત્ર અને ક્ષપક શ્રેણિમાં ક્ષાયિકચારિત્ર થાય છે. ઉપશમશ્રેણિના સ્થાન ૮-૯-૧૦ અને ૧૧માં

चारित्रमोहनीयोपशमे सत्यन्तर्मुहूर्तपरिमितः, चारित्रमोहनीयक्षये चान्तर्मुहूर्तपरिमितश्छद्मस्थयथाख्यातचारित्रप्राप्तिरूपः। क्षयोपशमचारित्रक्षणः कर्मणः क्षयोपशमेन भवति, स चोत्कृष्टतो देशोनपूर्वकोटिवर्षपरिमितो विज्ञेयः।

नोकर्मभावक्षणश्च–आलस्यमोहावर्णवादस्तम्भादेरभावे सति सम्यक्त्वादिसामायिकोपलब्धिरूपः। आलस्यमोहाद्युपहतः संसारोच्छेदनसमर्थं मनुष्यभवं प्राप्यापि न बोध्यादिकं लभत इति तात्पर्यम्। केचित्तु–नोकर्मभावक्षणं 'रिक्तक्षण' इत्यभिदधति।

श्रेणी के स्थान ८ वां ९ वां १० वां और ११ वां गुणस्थान हैं। १२ वें गुणस्थान तक जीव को छद्मस्थावस्था रहती है। यथाख्यातचारित्र ११ वें १२ वें १३ वें और १४ वें गुणस्थान में होता है। छद्मस्थावस्था के चारित्र को छद्मस्थचारित्र और संपूर्ण मोहनीय कर्म के क्षय अथवा उपशम से आत्मा के शुद्ध स्वरूप में स्थिर होने को यथाख्यात चारित्र कहते हैं। अनंतानुबंधी आदि १२ कषायों का उदयभावी क्षय तथा उन्हींके निषेकों का सदवस्थारूप उपशम और संज्वलन तथा नोकषाय का यथासंभव उदय होने पर जो चारित्र होता है उसे क्षायोपशमिक चारित्र कहते हैं। इसका दूसरा नाम सरागसंयम भी है।

नोकर्मभावक्षण–आलस्य, मोह, अवर्णवादादिक के अभाव होने पर जो सम्यक्त्वादिरूप सामायिक की प्राप्ति हुआ करती है वह नोकर्मभावक्षण है, क्यों कि आलस्य और मोहादिक से उपहत हुआ प्राणी संसार का निर्मूल उच्छेदन करने में समर्थ मनुष्य भवको प्राप्त करके

ગુણસ્થાન છે. ક્ષપકશ્રેણિનું સ્થાન ૮–૯–૧૦ અને ૧૨મું ગુણસ્થાન છે. ૧૨ મા ગુણસ્થાન સુધી જીવને છદ્મસ્થાવસ્થા રહે છે. યથાખ્યાતચારિત્ર ૧૧–૧૨–૧૩ અને ૧૪ માં ગુણસ્થાનમાં થાય છે. છદ્મસ્થાવસ્થાના ચારિત્રનું છદ્મસ્થ ચારિત્ર અને સંપૂર્ણ મોહનીય કર્મના ક્ષય અથવા ઉપશમથી આત્માના શુદ્ધ સ્વરૂપમાં સ્થિર હોવું તેને યથાખ્યાતચારિત્ર કહે છે. અનતાનુબંધી આદિ ૧૨ કષાયોનો ઉદયભાવી ક્ષય તથા તેના નિષેકોનો સદવસ્થારૂપ ઉપશમ. અને સંજ્વલન તથા નોકષાયનું યથાસંભવ ઉદય હોવા પર જે ચારિત્ર થાય છે તેને ક્ષાયોપશમિકચારિત્ર કહે છે તેનું બીજું નામ સરાગસંયમ પણ છે

નોકર્મભાવક્ષણ—આળસ, મોહ, અવર્ણવાદાદિકનો અભાવ થવાપર જે સમ્યક્ત્વાદિરૂપ સામાયિકની પ્રાપ્તિ થયા કરે છે તે નોકર્મભાવક્ષણ છે, કારણ કે આળસ અને મોહાદિકથી ઉપહત થયેલ પ્રાણી સંસારનો નિર્મૂળ ઉચ્છેદન

अत्रायं प्रकरणार्थः संक्षिप्तः–द्रव्यक्षणो जङ्गमत्वादिविशिष्टमानवभवरूपः। क्षेत्रक्षण आर्यक्षेत्ररूपः। कालक्षणो धर्मानुष्ठानसमयः। भावक्षणः क्षयोपशमादिरूपो विज्ञेयः। अतो हे पण्डित! एतादृशं चतुर्विधं धर्माचरणायातिदुर्लभं क्षणमवगम्य संयमानुपालनतत्परोऽवश्यं भवेति भावः॥ सू० ८॥

इत्थमतिदुरापक्षणमवाप्य यावच्च श्रोत्रादीनां शक्तयो न परिहीनास्तावदात्मार्थे प्रयासो विधेय इति दर्शयति–'जावे–'त्यादि।

मूलम्–जाव सोयपरिण्णाणा अपरिहीणा, नेत्तपरिण्णाणा अपरिहीणा, फरिसपरिण्णाणा अपरिहीणा, इच्चेएहिं विरूवरूवेहिं पण्णाणेहिं अपरिहीणेहिं आयट्ठं सम्मं समणुवासिज्जासि-त्ति बेमि॥ सू० ९॥

भी बोधि आदि को प्राप्त नहीं कर सकता है। नोकर्मभावक्षण को कोई २ आचार्य रिक्तक्षण भी कहते हैं।

इस प्रकरण को संक्षिप्त करते हुए टीकाकार कहते हैं–त्रसपर्यायविशिष्ट मानवभवस्वरूप (१) द्रव्यक्षण है, आर्यक्षेत्ररूप (२) क्षेत्रक्षण, धर्मानुष्ठान का समय–(३) कालक्षण और क्षयोपशमादिरूप (४) भावक्षण है, इसलिये हे परमार्थज्ञ! मेधावी! इस प्रकार के इस चतुर्विध क्षण को धर्माचरण करने के लिये अत्यन्त दुर्लभ मान कर संयम के पालन करने में अवश्य २ मन को लगाओ, नहीं तो समय के हाथसे निकल जाने पर अन्त में पश्चात्ताप के सिवाय और कुछ हाथ न आयेगा, इस लिये प्राप्त हुए इस चतुर्विध क्षण को संयमाराधन से सफलित करो॥सू० ८॥

કરવામાં સમર્થ મનુષ્યભવને પ્રાપ્ત કરીને પણ બોધિ આદિને પ્રાપ્ત કરી શકતા નથી. નોકર્મભાવક્ષણને કોઈ કોઇ આચાર્ય રિક્તક્ષણ પણ કહે છે

આ પ્રકરણને સંક્ષિપ્ત કરતા ટીકાકાર કહે છેઃ– ત્રસપર્યાયવિશિષ્ટ માનવ–ભવસ્વરૂપ (૧) દ્રવ્યક્ષણ છે, આર્યક્ષેત્રરૂપ (૨) ક્ષેત્રક્ષણ, ધર્માનુષ્ઠાનનો સમય (૩) કાલક્ષણ અને ક્ષયોપશમાદિરૂપ (૪) ભાવક્ષણ છે, માટે હે પરમાર્થજ્ઞ! મેધાવી! આ પ્રકારના ચતુર્વિધ ક્ષણને ધર્માચરણ કરવા માટે અત્યંત દુર્લભ માનીને સંયમપાલન કરવામાં લગાવો નહિ તો સમય નીકળી જવા પછી અંતમા પશ્ચાત્તાપ સિવાય કાંઈ પણ હાથ આવશે નહિ, માટે આ પ્રાપ્ત થયેલ ચતુર્વિધ ક્ષણને સંયમારાધનથી સફલિત કરો ॥ સૂ૦ ૮॥

छाया—यावच्छ्रोत्रपरिज्ञानानि अपरिहीनानि, नेत्रपरिज्ञानानि अपरिहीनानि, घ्राणपरिज्ञानानि अपरिहीनानि, जिह्वापरिज्ञानानि अपरिहीनानि, स्पर्शपरिज्ञानानि अपरिहीनानि, इत्येतैर्विरूपरूपैः प्रज्ञानैरपरिहीनैरात्मार्थं समनुवासयेत्, इति ब्रवीमि ॥ सू० ९ ॥

टीका—'याव–'दित्यादि। यावज्जरया रोगेण च श्रोत्रस्य परिज्ञानानि अपरिहीनानि=न नश्यमानानि तावदात्मार्थं समनुवासयेदिति सम्बन्धः। एवं यावच्छब्दः सर्वत्र योज्यः। एवमन्येषामपि नेत्रादीनां परिज्ञानानि यावन्न क्षीयमाणानि सन्ति तावच्छ्रेयो विचिन्तनीयमिति तात्पर्यम्।

इस प्रकार अत्यंत कठिनता से प्राप्त करने योग्य इस क्षण को पाकर के जब तक श्रोत्रादिक प्रत्येक इन्द्रिय की अपने २ विषय को जानने की शक्ति कमजोर नहीं पड़ती है तब तक आत्मकल्याण के लिये प्रयास करते रहना चाहिये, यह बात सूत्रकार कहते हैं–'जाव सोयपरिण्णाणा' इत्यादि।

जब तक वृद्धावस्था या किसी रोग से तेरा कर्ण–इन्द्रियजन्य ज्ञान अपने विषय को ग्रहण करने की शक्ति से विकल नहीं हुआ है, नेत्र–इन्द्रियजन्य ज्ञान जब तक अपने विषय ग्रहण करने की सामर्थ्य से रहित नहीं हुआ है, घ्राण–इन्द्रियजन्य ज्ञान जब तक अपने ज्ञेय को जानने की शक्ति से क्षीण नहीं हुआ है, जिह्वा-इन्द्रियजन्य ज्ञान जब तक अपने पदार्थ को ग्रहण करने की सामर्थ्य से रहित नहीं हुआ है, स्पर्शन–इन्द्रियजन्य ज्ञान जबतक कर्कश–कठोरादि अपने विषय को ग्रहण करने की शक्ति से हीन नहीं हुआ

આ પ્રકાર અત્યંત કઠિનતાથી પ્રાપ્ત કરવાયોગ્ય આ ક્ષણુને મેળવીને જ્યાં સુધી શ્રોત્રાદિક પ્રત્યેક ઇન્દ્રિયની પોતપોતાનાં વિષયને જાણુવાની શક્તિ કમજોર થતી નથી ત્યા સુધી આત્મકલ્યાણુ માટે પ્રયાસ કરતા રહેવો જોઇએ, એ વાત સૂત્રકાર કહે છેઃ––

'**जाव सोयपरिण्णाणा**' ઇત્યાદિ. જ્યા સુધી વૃદ્ધાવસ્થા અગર કોઇ રોગથી તારૂં કર્ણુ–ઇન્દ્રિયજન્ય જ્ઞાન પોતાના વિષયને ગ્રહણુ કરવાની શક્તિથી વિકલ નથી થયુ, નેત્ર–ઇન્દ્રિયજન્ય જ્ઞાન જ્યાસુધી પોતાનો વિષય ગ્રહણુ કરવાનાં સામર્થ્યથી રહિત નથી થયું, ઘ્રાણુ–ઇન્દ્રિયજન્ય જ્ઞાન જ્યાસુધી પોતાના જ્ઞેયને જાણુવાની શક્તિથી ક્ષીણુ નથી થયું, જિહ્વા–ઇન્દ્રિયજન્ય જ્ઞાન જ્યા સુધી પોતાના પદાર્થને ગ્રહણુ કરવાના સામર્થ્યથી રહિત નથી થયુ, સ્પર્શન–ઇન્દ્રિયજન્ય જ્ઞાન જ્યા સુધી કર્કશ કઠોરાદિ પોતાના વિષયને ગ્રહણુ કરવાની શક્તિથી હીન

है तब तक अर्थात् इन्द्रियों के ज्ञान की विद्यमानता में ही हे भव्य प्राणी! तू अपना कल्याण–अर्थात् ज्ञानदर्शनचारित्र–आराधन रूप निज प्रयोजन को सिद्ध करले। यह निश्चित है–वृद्धावस्था आने पर, या किसी भयंकर रोग के होने पर–इन्द्रियों की शक्तियां या स्वयं इन्द्रियां ही क्षीण हो जाती हैं। जिस समय चेचक निकला करती है कई व्यक्तियों की आंखें फूट जाती हैं, कान भी वहिरे हो जाते हैं। लकवा की बीमारी में स्पर्शन इन्द्रिय शून्य हो जाती है, वचन वर्गणा ठीक नहीं निकलती, चलते समय पैर कहीं रखते हैं पड़ते हैं कहीं। कहा भी है—

"गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलिः,
दृष्टिर्नश्यति वर्धते वधिरता वक्त्रं च लालायते।
वाक्यं नाद्रियते च बान्धवजनो भार्या न शुश्रूषते,
हा! कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते" ॥१॥

"दृष्टि घटी पलटी तनकी छवि, वंक भई गति लंक नई है,
रूप रही परनी घरनी, अतिरंक भयो परयंक लई है।
कांपत नार (नाड) वहै मुख लार, महामति संगति छार गई है,
अंग उपंग पुराने परे, तिसना उर और नवीन भई है" ॥१॥

નથી થયું ત્યાં સુધી અર્થાત્ ઇન્દ્રિયોના જ્ઞાનની વિદ્યમાનતામાં જ હે ભવ્ય પ્રાણી! તું પોતાનુ કલ્યાણ અર્થાત્ જ્ઞાનદર્શન ચારિત્ર આરાધનરૂપ નિજ પ્રયોજનને સિદ્ધ કરી લે. એ નિશ્ચિત છે વૃદ્ધાવસ્થા આવવાથી અગર કોઇ ભયંકર રોગ થવાથી ઇન્દ્રિયોની શક્તિઓ અગર સ્વયં ઇન્દ્રિયો જ ક્ષીણ થાય છે. જે વખતે શીતલા નીકળે છે તે વખતે કઇ વ્યક્તિઓની આંખો ફૂટી જાય છે, કાન પણ બહેરા થઇ જાય છે, લકવાની બીમારીમાં સ્પર્શન ઇન્દ્રિય શૂન્ય બની જાય છે, વચન–વાણી પણ ઠીક નીકળતી નથી, ચાલતી વખતે પગ ક્યાંય રાખે છે અને પગ પડે છે ક્યાંય કહ્યુ પણ છે—

"गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलि-,
दृष्टिर्नश्यति वर्धते वधिरता वक्त्रं च लालायते।
वाक्यं नाद्रियते च बान्धवजनो भार्या न शुश्रूषते,
हा! कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयस पुत्रोऽप्यमित्रायते" ॥१॥

"दृष्टि घटी पलटी तनकी छवि वंक भई गति लंक नई है,
रूप रही परनी घरनी अति रंक भयो परयंक लई है।
कांपत नार (नाड) वहै मुख लार महामति संगति छार गई है,
अंग उपंग पुराने परे तिसना उर और नवीन भई है" ॥१॥

"व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती,
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम्।
आयुः परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो,
लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम्" ॥१॥

यह वृद्धावस्था अर्धमृतक जैसी है। इस अवस्थामें बुद्धि प्रायः नष्ट हो जाती है, कूबड निकल आती है, दांत गिर पड़ते हैं, बाल सफेद हो जाते हैं, बल भी कम हो जाता है, आँखों से कम सूझने लगता है, कानों से शब्द सुनाई नहीं पड़ते, हाथ पैर ढीले और चलते फिरने से लाचार हो जाते हैं, कफ और श्वासका जोर बढ़ता है, वैरियों की तरह समस्त रोग इस अवस्था में अपना बदला लेनेके लिये ही मानों इकदम टूट पड़ते हैं, तृष्णा की प्रबलता इस अवस्था में हो जाती है, प्रत्येक इन्द्रिय विषय ग्रहण करने की शक्ति से शून्य हो जाती है। जिस तरह कबूतर पर बाज झपटने की ताकमें रहता है, अथवा बिल्ली चूहे पकड़ने की ताक लगाए बैठी रहती है, ठीक इसी तरह मौत भी इस अवस्था में प्राण पखेरु को पकड़ने के लिये तैयार रहती है। उसी प्रकार इस अवस्था में जवानी का बल छिप जाया करता है। मयूरों की ध्वनि सुनने से जैसे

"व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती,
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम्।
आयु· परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो,
लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम्" ॥१॥

આ વૃદ્ધાવસ્થા અર્ધમૃતક જેવી છે, આ અવસ્થામાં બુદ્ધિ નષ્ટપ્રાય થાય છે, બલ પણ ઓછું થાય છે, વાંકાપણુ આવે છે, દાંત પડી જાય છે, બાલ સફેદ થાય છે, આંખોથી ઓછું દેખાય છે, કાનોથી શબ્દ સંભળાતો નથી, હાથ પગ ઢીલા અને ચાલવા ફરવાથી લાચાર બને છે, કફ અને શ્વાસનું જોર વધે છે, વૈરીઓની માફક સમસ્ત રોગ આ અવસ્થામાં બદલો લેવા માટે જાણે એકદમ તુટી પડે છે, તૃષ્ણાની પ્રબલતા આ અવસ્થામાં થાય છે, પ્રત્યેક ઇન્દ્રિય વિષય ગ્રહણ કરવાની શક્તિથી શૂન્ય થાય છે. જેવી રીતે કબુતર પર બાજ ઝડપ મારવાની તક શોધે છે, અથવા બિલાડી ઉંદર પકડવાની તાક લગાવી બેસે છે, તેવી રીતે મોત પણ આ અવસ્થામા પ્રાણપખેરૂને પકડવા તૈયાર રહે છે. જે પ્રકારે વાદળોની અંદર સૂર્યનો પ્રકાશ ઢંકાઇ જાય છે તે પ્રકારે આ અવસ્થામાં જુવાનીનું બળ છુપાઈ જાય છે. મોરની ધ્વનિ સાભળવાથી જેમ ચંદનવૃક્ષોમાં

इत्येतैः=पूर्वोक्तैर्विरूपरूपैः-इष्टानिष्टस्वभावतया नानाप्रकारैः प्रज्ञानैः=प्रकृष्टज्ञानैरपरिहीनैः=अपरिक्षीणैः सद्भिः आत्मार्थम्=आत्मनोऽर्थ आत्मार्थः, स च ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूपस्तम् ।

यद्वा-आत्मनेऽर्थो हितं प्रयोजनमिति यावत्, तच्चारित्रानुष्ठानम्, तम्,

समनुवासयेत्=भावयेत्, रञ्जयेदिति वा, यथोक्तानुष्ठानेनात्मानं समनुपालयेदिति भावः ।

इति=पूर्वोक्तं ब्रवीमि=सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनमाह-यद्भगवतः सकाशात् श्रुतं तदेवाहं सूत्रात्मना कथयामि॥ सू० ९ ॥ इति ॥

इति द्वितीयाध्ययनस्य प्रथमोद्देशः सव्याख्य समाप्तः ॥ १ ॥

चन्दनवृक्षों में लपटे हुए भुजंगों के वन्धन ढीले पड़ जाते हैं वैसे ही खांसी के खुल्ल, खुल्ल शब्द से इस अवस्था में अस्थियों की संधियां शिथिल हो जाया करती हैं। यह जरा एक भयंकर व्याघ्री की तरह सामने आकर निर्भय रूप से खड़ी हो जाती है, उस समय शत्रुओं की तरह रोग इस पर प्रहार करने से नहीं चूकते, फूटे घड़े में से पानी की तरह आयु निकलनी चली जाती है तो भी आश्चर्य की बात है कि-प्राणी अपने आत्म कल्याण की तरफ ध्यान नहीं देता ?।

इसलिए जब तक वृद्धावस्था या किसी रोगसे तेरी शारीरिक शक्ति क्षीण नहीं हुई है और प्रत्येक इन्द्रिया जब तक सशक्त बनी हुई है तब तक सूत्रकार कहते हैं कि-"आत्मार्थं समनुवासयेत्" आत्माके लिये हितकारी सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र की प्राप्ति से अपने आपको भावित करो।

લટકેલા સાપોના બંધન ઢીલા પડે છે તેમ ખાંસીના ખુલ્લ-ખુલ્લ શબ્દથી આ અવસ્થામાં હાડકાઓની સંધિયો શિથિલ બની જાય છે

આ વૃદ્ધાવસ્થા એક ભયંકર વ્યાધિની માફક સામે આવીને નિર્ભય રૂપથી ખડી થઇ જાય છે, તે વખતે શત્રુઓની માફક રોગ પણ પ્રહાર કરવામાં ચુકતા નથી, ફુટેલા ઘડામાંથી પાણીની માફક આયુ નિકળવા માંડે છે, તો પણ આશ્ચર્યની વાત છે કે પ્રાણી પોતાના આત્મકલ્યાણની તરફ ધ્યાન દેતા નથી. માટે જ્યાં સુધી વૃદ્ધાવસ્થા અગર કોઇ રોગથી તારી શારીરિક શક્તિ ક્ષીણ નથી થઈ, અને પ્રત્યેક ઇન્દ્રિય જ્યાં સુધી સશક્ત બનેલી છે ત્યાં સુધી સૂત્રકાર કહે છે કે-" आत्मार्थं समनुवासयेत् " આત્મા માટે હિતકારી સમ્યગ્દર્શન સમ્યગ્જ્ઞાન અને સમ્યક્ચારિત્રની પ્રાપ્તિથી પોતાને ભાવિત કરો

यहां आत्मा के लिये हितकारी सम्यक्चारित्र का प्रधानतया ग्रहण होता है। क्यों कि यथाख्यातचारित्रके विना केवलज्ञान तथा केवलदर्शन नहीं हो सकते। चौदहवें गुणस्थानमें यथाख्यात चारित्र की पूर्णता होते ही यह आत्मा " अ इ उ ऋ लृ " इन पांच ह्रस्व अक्षरों के उच्चारण काल तक वहां रहकर मुक्तिमें जा विराजता है। इस अपेक्षा से चारित्र की यहां पर प्रधानता कही है। सम्यग्दर्शन की पूर्णता चतुर्थ गुणस्थानमें, सम्यग्ज्ञानकी पूर्णता तेरहवें गुणस्थान में और सम्यक् चारित्र की पूर्णता चौद हवें गुणस्थान में शास्त्रकारों ने बतलाई है।

इस पूर्वोक्त अर्थ को सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामी से कहते हैं कि-हे जम्बू! मैंने जैसा भगवान से सुना है वैसा ही तुझे कहता हूँ ॥ सू० ९॥

॥ यह द्वितीय अध्ययन का प्रथम उद्देश समाप्त हुआ ॥ २-१ ॥

અહીં આત્મા માટે હિતકારી સમ્યક્ચારિત્રનું પ્રધાનતયા ગ્રહણ થાય છે, કારણ કે યથાખ્યાતચારિત્ર વિના કેવળજ્ઞાન તથા કેવળદર્શન નથી થતું. ચૌદમા ગુણસ્થાનમા યથાખ્યાતચારિત્રની પૂર્ણતા થતાં જ આ આત્મા " अ इ उ ऋ लृ " આ પાંચ હ્રસ્વ અક્ષરોનુ ઉચ્ચારણ કાલ તક ત્યાં રહીને મુક્તિમાં બિરાજે છે. આ અપેક્ષાથી ચારિત્રની આ ઠેકાણે પ્રધાનતા કહી છે. સમ્યગ્દર્શનની પૂર્ણતા ચોથા ગુણસ્થાનમાં, સમ્યગ્જ્ઞાનની પૂર્ણતા તેરમા ગુણસ્થાનમાં, અને ચારિત્રની પૂર્ણતા ચૌદમા ગુણસ્થાનમાં શાસ્ત્રકારોએ બતાવી છે

આ પૂર્વોક્ત અર્થને સુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામીથી કહે છે કે-હે જમ્બૂ! મેં જેવી રીતે ભગવાન પાસેથી સાંભળ્યુ છે તેવું જ તમને કહું છું. ॥ સૂ૦ ૯ ॥

॥ બીજા અધ્યયનનો પહેલો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૨-૧ ॥

॥ आचाराङ्ग सूत्रे द्वितीयाध्ययनस्य द्वितीयोद्देशः ॥

उक्तः प्रथमोद्देशः, साम्प्रतं द्वितीयो व्याख्यायते, तत्रायं सम्बन्धः-प्रथमे विषयकषाय माता पित्रादि लोकविजयेन संयमिनो मोक्षकारणचारित्रस्य प्राप्तिः, किञ्च लोकविजयेन यावद्रोगजरादयो नायातास्तावदात्मार्थं संयमो विधेय इत्यपि प्रतिपादितम् ।

॥ आचाराङ्ग सूत्रके दूसरे अध्ययनका दूसरा उद्देश ॥

प्रथम उद्देश का वर्णन हो चुका, अब द्वितीय उद्देश का वर्णन करते हैं-इस के वर्णन करने का अभिप्राय यह है कि-प्रथम उद्देश में जो यह बात बतलाई गई है कि-" विषय कषाय और माता पिता आदि जो लोक हैं उन पर विजय प्राप्त करने से, अर्थात् कषायों को जीतने और माता पिता आदि के स्नेह निवारण से संयमी को मोक्ष के कारणभूत चारित्रकी प्राप्ति होती है। तथा लोक पर विजय करलेने से जब तक रोगादिक अथवा जरावस्था वगैरह जो संयम को धारण करने में प्रतिबंधक हैं, वे इस शरीर को आकर नहीं घेरते हैं इसके पहिले आत्मकल्याण के लिये संयम का आराधन करलेना चाहिये " ॥

આચારાંગ સૂત્રના બીજા અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશ

પહેલાં ઉદ્દેશનું વર્ણન સમાપ્ત થયું. હવે બીજા ઉદ્દેશનું વર્ણન કરે છે. તેનું વર્ણન કરવાનો અભિપ્રાય એ છે કે પહેલા ઉદ્દેશમાં જે વાત બતાવવામાં આવી છે કે " વિષયકષાય અને માતાપિતા આદિ જે લોક છે તે ઉપર વિજય પ્રાપ્ત કરવાથી અર્થાત્ કષાયોને જીતવાથી અને માતાપિતા આદિનો સ્નેહ નિવારણથી સંયમીને મોક્ષના કારણભૂત ચારિત્રની પ્રાપ્તિ થાય છે. અને લોક ઉપર વિજય કરવાથી જ્યાં સુધી રોગાદિક અને જરાવસ્થા વિગેરે જે સંયમને ધારણ કરવામાં પ્રતિબંધક છે. તે આ શરીરને આવીને ઘેરતા નથી. તેનાં પહેલાં આત્મકલ્યાણ માટે સંયમનું આરાધન કરી લેવું જોઈએ.

अत्र च संयमिनः कदाचिन्मोहनीयोदयादज्ञानलोभादिसमुदयादात्मदोषाद्वा संयमे चारतिराविर्भूता तस्या निरसनं, तथा येऽपि विषयिणोऽल्पमधिकं वा कालं संयममनुपाल्यापि पूर्वोक्तदोषेण मोहोदयात्संयमे शैथिल्यं प्राप्नुवन्ति तेषां संयमे दृढता, विषयेषु चादृढता यथा भवेत्तथाऽऽह ' अरइं ' इत्यादि।

संयमी को कदाचित् मोह के उदय से या अज्ञान एवं लोभादि किसी कषाय के उदयसे अथवा अपने ही किसी दोष के वश से संयम में जो अरतिभाव उत्पन्न हो जाता है उसको जैसे भी दूर किया जा सके; तथा जो शब्दादि विषयों में लोलुपी बने हुए हैं और संयम का पालन भी कर रहे हैं वे उस संयम को अल्पकाल तक या अधिक समय तक पालन करके भी पूर्वोक्त दोष से अथवा मोहके उदय से संयम में शिथिल बन जाते हैं वे संयम में शिथिल न बनने पावें अर्थात् संयम में उनकी दृढ़ता ही बनी रहे तथा विषयों की ओर से उनकी आसक्ति घटे–इसी बातका वर्णन इस द्वितीय उद्देश में सूत्रकार करते हैं— 'अरइं इत्यादि'।

अथवा–चारित्र को अंगीकार करने के लिये जिनकी इच्छा जागृत तो हो चुकी है परन्तु मोह के उदय से उनके मन में अभी तक अरति-भाव विद्यमान है, एवं जिन्होंने चारित्र को धारण तो कर लिया है परन्तु उसके धारणके बाद लोभादि से किसी २ समय उन्हें उससे अरतिभाव भी पैदा हो जाता है, उस समय उन्हें क्या करना चाहिये ? इसीका निरू-

---

સંયમીને કદાચિત્ મોહના ઉદયથી અજ્ઞાન અને લોભાદિ કોઈ કષાયના ઉદયથી અથવા પોતાના કોઈ દોષના વશથી સંયમમાં જે અરતિભાવ ઉત્પન્ન થાય છે, તેને જેમ તેમ પણ દૂર કરવામાં આવે, અને જે શબ્દાદિ વિષયોમાં લોલુપી બનેલાં છે અને સંયમનું પાલન કરે છે તેઓ સંયમનું અલ્પ કાળ સુધી અગર અધિક સમય સુધી પાલન કરીને પણ પૂર્વોક્ત દોષથી અથવા મોહના ઉદયથી સંયમમાં જેઓ શિથિલ બની જાય છે તેઓ સંયમમાં શિથિલ બની ન જાય અર્થાત્ સંયમમાં તેઓની દૃઢતા બની રહે અને વિષયોની તરફથી તેઓની આસક્તિ ઘટે આ વાતનું વર્ણન આ બીજા ઉદ્દેશમાં સૂત્રકાર કરે છે:–'अरइं' ઇત્યાદિ.

અને ચારિત્રને અંગીકાર કરવા માટે જેની ઇચ્છા જાગૃત બનેલી છે પરંતુ મોહના ઉદયથી તેના મનમાં હજુ સુધી અરતિભાવ મોજુદ છે અને જેઓએ ચારિત્રને ધારણ કરી લીધું છે પરંતુ લીધા પછી લોભાદિથી કોઈ કોઈ સમય તેને તેમાં અરતિભાવ પેદા થાય છે. તે વખતે તેણે શું કરવું જોઈએ તેનું નિરૂપણ

यद्वा समुत्पद्यमानरुचेरपि मोहोदयादरतिर्जायते, कस्यचिच्च चारित्रग्रहणानन्तरं लोभादिना कदाचिदरतिर्भवति तत्र किं कर्तव्यमित्याह–'अरइं' इत्यादि।

मूलम्—अरइं आउट्टे से मेहावी खणंसि मुक्के ॥ सू० १ ॥

छाया—अरतिम् आवर्तेत स मेधावी क्षणे मुक्तः ॥ सू० १ ॥

टीका—'अरति'–मित्यादि, सः=कृतचारित्रग्रहणो मेधावी परिज्ञातनिःसार-संसारः सन् 'अरतिम्' रमणं=रतिः संयमे धृतिस्तस्याभावोऽरतिस्तां पश्चाचार-

---

पण करते है–'अरइं' इत्यादि।

जिसने संसार की असारता जान ली है और चारित्र को भी अंगीकार कर लिया है वह अरतिभाव को दूर करे तो क्षण भर में मुक्त हो जावे। चारित्र को जिसने अंगीकार कर लिया है उसका यह धर्म है कि वह कितने भी परीषहों और उपसर्गों के उत्पन्न होने पर भी अपने चारित्र धर्मका निर्दोष रीति से पालन करे। परन्तु जब तक कषायों का पूर्णतया विनाश नहीं हो जाता, तब तक जीव से इस प्रकार की प्रवृत्ति नहीं होती है। क्यों कि जिस चारित्रका यहां पर वर्णन किया जा रहा है वह क्षायोपशमिक है, क्षायोपशमिक चारित्र तभी होता है जब चारित्र मोहनीय कर्म के २१ प्रकृतियों में से सर्वघाति प्रकृतियों के कुछ स्पर्द्धकों का–अनन्तानन्त कर्म वर्गणाओं के समुदायका एक स्पर्द्धक होता है उनका–उदयभावी क्षय हो तथा कुछ सर्वघातिस्पर्द्धकों का सदवस्थारूप उपशम हो एवं देशघातिप्रकृतिका उदय हो। इस अवस्था का नाम क्षायोपशम है।

આ બીજા ઉદ્દેશમાં સૂત્રકાર કહે છે–"अरइं" ઇત્યાદિ.

જેણે સંસારની અસારતા જાણી છે, અને ચારિત્રને પણ અંગીકાર કરેલ છે તે અરતિભાવને દૂર કરે તો ક્ષણ ભરમાં મુક્ત થઈ જાય ચારિત્રને જેણે અંગીકાર કરેલ છે તેનો એ ધર્મ છે કે કેટલા પણ પરિષહો અને ઉપસર્ગો ઉત્પન્ન થાય તો પણ પોતાના ચારિત્રધર્મનું નિર્દોષ રીતિથી પાલન કરે, પરંતુ જ્યાં સુધી કષાયોનો પૂર્ણ વિનાશ નથી થતો ત્યાં સુધી જીવથી તેવા પ્રકારની પ્રવૃત્તિ થતી નથી, કારણ કે જે ચારિત્રનું આ ઠેકાણે વર્ણન આપવામાં આવ્યું છે તે ક્ષાયોપશમિક છે. ક્ષાયોપશમિક ચારિત્ર ત્યારે જ થાય છે–જ્યારે ચારિત્ર મોહનીય કર્મની ૨૧ પ્રકૃતિઓથી સર્વઘાતી પ્રકૃતિઓના થોડાં સ્પર્દ્ધકોના–અનન્તાનન્ત કર્મ વર્ગણાઓના સમુદાયનો એક સ્પર્દ્ધક થાય છે. તેના ઉદયભાવી ક્ષય થાય તથા થોડા સર્વઘાતિ સ્પર્દ્ધકોના સદવસ્થારૂપ ઉપશમ થાય અને દેશઘાતિ પ્રકૃતિનો ઉદય થાય. આ અવસ્થાનું નામ ક્ષાયોપશમ છે.

विषयारुचिं कषायसंसर्गोत्पन्नां माता-पितृ-कलत्र-मित्राद्युत्पादिताम् आवर्तेत=निवर्तयेत्, विषयाभिष्वङ्गे रतिसत्त्वे संयमे चारतिर्भवति, तथा च कण्डरीकसदृशस्य संयमिनो नरकादिगतिर्जायते, विषये रत्यभावे संयमे रतिरुत्पद्यते, तथा च पुण्डरीकसदृशस्य सद्गतिर्भवति। संयमे रतिं विदधानस्य न किमपि दुःखं पराभवति, उक्तञ्च—

इस दशामें देशघाति प्रकृतिका तो उदय रहता है। यह चारित्र का बिगाड़ नहीं करती। किन्तु जिनका उपशम हुआ है-वे यदि निमित्त पाकर उदय में आजाती हैं तो वे अवश्य २ चारित्र में जीव को अरतिभाव या उससे भ्रष्ट कर देती हैं। इसी बात को लक्ष्य में रखकर सूत्रकार संयमी जन को कहते हैं कि-'अरतिं आवर्तेत' इति संयमधारी मेधावी संयम में अरति को दूर करे। संयम में धृति धारण करना-इस का नाम रति है, रति का अभाव अरति है, पाँच आचारका पालन करना संयम है। इस विषय में संयमी जनको कषायों के संसर्ग से अथवा माता-पिता-मित्र-स्त्री आदि के संसर्ग से अरतिभाव पैदा हो सकता है। टीकाकार इस पर अपना अभिप्राय प्रकट करते हुए कहते हैं कि-बात भी ठीक है, क्यों कि विषयों में अभिष्वंग (आसक्ति) रूप रति के सद्भाव होने पर संयममें अरतिभाव जीवों को उत्पन्न हो जाता है, परन्तु मेधावी मुनि संसार की असारता को भली भांति जानता है तो उसका कर्तव्य है कि वह अरतिभाव को दूर करे, नहीं तो कंडरीक की तरह उसे नरक गामी होना पडेगा, और संयम में रति करने से पुण्डरीक की तरह उसे

આ દશામાં દેશઘાતિ પ્રકૃતિનો તો ઉદય રહે છે, તે ચારિત્રનો બિગાડ કરતી નથી, પરંતુ જેનો ઉપશમ થયેલ છે તે કદાચ નિમિત્ત બનીને ઉદયમા આવી જાય છે તો તે અવશ્ય જ ચારિત્રમાં જીવને અરતિભાવ અગર તેનાથી ભ્રષ્ટ કરે છે. આ વાતને લક્ષમા રાખીને સૂત્રકાર સયમી જનને કહે છે કે— '**अरतिं आवर्तेत**' સંયમધારી મેધાવી સંયમમાં અરતિને દૂર કરે. સંયમમાં ધૃતિ ધારણ કરવી, તેનું નામ રતિ છે. રતિનો અભાવ અરતિ છે. પાચ આચારનુ પાલન કરવું સયમ છે. આ વિષયમાં સંયમી જનને કષાયોના સંસર્ગથી અથવા માતા-પિતા-મિત્ર-સ્ત્રી આદિના સંસર્ગથી અરતિભાવ પેદા થઈ જાય છે ત્યારે ટીકાકાર આ વાત પર પોતાનો અભિપ્રાય પ્રગટ કરતાં કહે છે કે-વાત પણ ઠીક છે. કારણ કે વિષયોમાં આસક્તિરૂપ રતિનો સદ્‌ભાવ થવાથી સંયમમા અરતિભાવ જીવોને ઉત્પન્ન થાય છે. પરતુ મેધાવી મુનિ સંસારની અસારતાને ભલીભાંતિ જાણે છે. તેથી તેનું કર્તવ્ય છે કે તે અરતિભાવને દૂર કરે, નહીં તો કડરીકની માફક તેને નરકગામી થવું પડશે, અને સંયમમાં રતિ કરવાથી પુંડરીકની માફક તેને

" क्षितितलशयनं वा, प्रान्तभैक्षाशनं वा,
सहजपरिभवो वा, दुष्टदुर्भाषितं वा ।
महति फलविशेषे, नित्यमभ्युद्यतानां,
न मनसि न शरीरे, दुःखमुत्पादयन्ति " ॥ १ ॥

" तणसंथारनिसण्णोऽवि मुणिवरो नट्ठरागमयमोहो ॥
जं पावइ मुत्तिसुहं, तं कत्तो चक्कवट्टी वि " ॥ १ ॥

छाया—तृणसंस्तारनिषण्णोऽपि मुनिवरो नष्टरागमदमोहः ॥
यत्प्राप्नोति मुक्तिसुखं तत्कुतश्चक्रवर्त्यपि ॥ १ ॥ इति, किमधिकेन ।

सद्गतिका लाभ होगा । जीवों को अरति का कारण दुःख होता है। परन्तु संयम को निर्दोष रीति से पालन करनेवाले को कोई भी दुःख नहीं होता है। यदि किसी प्रकार के कर्मोदय से उसे दुःख भी आ पडे तो वह दुःख उस जीव को संयम में अरतिभाव का कारण नहीं होता है । यही बात नीचे लिखे श्लोकसे प्रकट की है, जैसे—

क्षितितलशयनं वा प्रान्तभैक्षाशनं वा,
सहजपरिभवो वा दुष्टदुर्भाषितं वा ।
महति फलविशेषे नित्यमभ्युद्यतानां,
न मनसि न शरीरे दुःखमुत्पादयन्ति ॥ १ ॥

फिर भी—" तणसंथारनिसण्णो वि मुनिवरो नट्ठरागमयमोहो ।
जं पावइ मुत्तिसुहं, तं कत्तो चक्कवट्टी वि ॥ १ ॥ "

સદ્‌ગતિનો લાભ થશે. જીવોને અરતિનાં કારણે દુઃખ થાય છે, પરંતુ સંયમને નિર્દોષ રીતિથી પાલન કરવાથી કોઈ પણ દુઃખ થતું નથી. કદાચ કોઈ પ્રકારના કર્મોદયથી તેને દુઃખ પણ આવી પડે તો તે દુઃખ તે જીવને સંયમમાં અરતિ ભાવનું કારણ થતું નથી, એ વાત નીચે લખેલા શ્લોકથી પ્રગટ કરી છે—

" क्षितितलशयनं वा, प्रान्तभैक्षाशनं वा,
सहजपरिभवो वा, दुष्टदुर्भाषितं वा ।
महति फलविशेषे, नित्यमभ्युद्यतानां,
न मनसि न शरीरे, दुःखमुत्पादयन्ति " ॥ १ ॥

फिरभी—" तणसंथारनिसण्णो वि मुणिवरो नट्ठरागमयमोहो ।
जं पावइ मुत्तिसुहं, तं कत्तो चक्कवट्टी वि " ॥ १ ॥

मोहनीयक्षयोपशमेनाधिगतचारित्रस्य कदाचित्पुनर्मोहनीयोदयादरतिरुत्पन्ना, तस्याः क्षयार्थमुपदिश्यत–इति तात्पर्यम्।

नन्वनेनारतिमते मेधाविन उपदेशो, यश्च मेधावी स परिज्ञातभवस्वरूप एव भवति, तस्मिंश्चारतिमत्त्वस्यासम्भवाच्छायातपयोरिव सहानवस्थानरूपविरोध–सत्त्वान्मेधावित्वारतिमत्त्वयोः कथमेकत्र स्थितिः?। उक्तञ्च—

इसका भाव यही है–कि भूमि पर सोना, अन्तप्रान्त भिक्षा का सेवन करना चाहे, कोई तिरस्कार करे, चाहे दुष्ट खोटे २ वचन भी कहें, तो भी जिन साधु पुरुषों की प्रवृत्ति उत्तम फल के लाभ करने में सावधान है उनके लिये इन बातों से मन में और शरीर में कोई भी कष्ट नहीं होता है। "तणसंथारनिसण्णो" घासकी शय्या पर बैठे हुए रागमदमोह रहित मुनि निवृत्तिभावसे जिस सुखका अनुभव करता है उस प्रकार के सुख का अनुभव रत्नसिंहासन पर बैठा हुवा चक्रवर्त्ती भी नहीं कर सकता॥१॥

शंका—चारित्र मोहनीय कर्मके क्षयोपशम से चारित्र की जिसे प्राप्ति हो चुकी है और फिर बाद में चारित्रमोहनीय की किसी एक प्रकृति के उदय से उसमें जिसे अरतिभाव हो गया है ऐसे अरतिभावयुक्त मेधावी के लिये आपका यह उपदेश कि–"गृहीत–चारित्र में अरतिभाव को दूर करे" लागू होता है। परन्तु जो मेधावी है वह तो संसार के स्वरूप का जानकार ही होता है, उसमें अरतिपने का सद्भाव तो असंभव ही है। क्यों कि जिस प्रकार छाया और आतप–धूप का एक जगह एक साथ

એનો ભાવ એ છે કે—ભૂમિ ઉપર સુવું, અન્ત પ્રાન્ત–ભિક્ષા સેવન કરવી, ભલે કોઈ તિરસ્કાર કરે અને દુષ્ટ ખોટા ખોટા વચન પણ બોલે તો પણ જે સાધુપુરૂષ ઉત્તમ ફળનો લાભ કરવામાં સાવધાન છે તેને આવી વાતોથી મનમા અને શરીરમાં કોઇ પણ કષ્ટ થતું નથી "तणसंथारनिसण्णो" ઘાસની શય્યા પર બેઠેલા, રાગ મદ મોહ રહિત મુનિ નિવૃત્તિ ભાવથી જે નિર્લોભતારૂપ સુખનો અનુભવ કરે છે તે સુખનો અનુભવ રત્નસિંહાસન ઉપર બેઠેલો ચક્રવર્તી પણ કરી શકતો નથી. ॥ ૧ ॥

શઙ્કા–ચારિત્રમોહનીય કર્મના ક્ષયોપશમથી ચારિત્રની જેને પ્રાપ્તિ થયેલી છે, અને પછી ચારિત્ર મોહનીયની કોઇ એક પ્રકૃતિના ઉદયથી તેમાં જેને અરતિ ભાવ થયો છે એવા અરતિભાવયુક્ત મેધાવી માટે આપનો એ ઉપદેશ–"ગૃહીત–ચારિત્રમાં અરતિભાવને દૂર કરે" લાગુ થાય છે પરંતુ જે મેધાવી છે તે તો સંસારના સ્વરૂપનો જાણકાર હોય છે, તેમા અરતિપણાના સદ્ભાવનો તો અસભવ જ છે, કારણ કે જે પ્રકારે છાયા અને તડકાનો એક જગ્યાએ એકી સાથ રહેવું

"तज्ज्ञानमेव न भवति, यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणः ।
तमसः कुतोऽस्ति शक्तिर्दिनकरकिरणाग्रतः स्थातुम् ॥ १ ॥" इति ।

मोहग्रहग्रहिलोऽज्ञानी संयमेऽरतिं, विषयाभिष्वङ्गे कामिन्यादौ रतिं च करोति, मेधावी तु यथा हस्ती लघुवृक्षे घर्षणं न करोति तथैव तुच्छे कामिन्यादौ रतिं न विदधाति, कथं तर्हि प्रकृते मेधाविनोऽरतिसम्भवो विरोधसत्त्वादिति चेन्न।

रहना विरुद्ध है, उसी प्रकार मेधावित्व का और अरतिमत्त्व का भी एक जगह एक साथ रहना विरुद्ध ही है। फिर इन दोनों का एक जगह युगपत् कहना कैसे संभव हो सकता हैं ? यही बात अन्यत्र भी कही है—

" नज्ज्ञानमेव न भवति, यस्मिन्नुदिते विभाति रागगणः ।
तमसः कुतोऽस्ति शक्ति,-र्दिनकरकिरणाग्रतः स्थातुम ॥१॥" इति॥

वह ज्ञान ज्ञान ही नहीं है कि जिस के उदित होने पर रागादि गणका सद्भाव रहे। क्या सूर्य के उदय होने पर भी अंधकार रह सकता है ? कभी नहीं ॥ १ ॥ जो मोह रूपी ग्रहसे उन्मत्त हो रहे हैं-ऐसे अज्ञानी जीव ही संयम में अरति और शब्दादि विषयों में रति किया करते हैं। परन्तु जो मेधावी होते हैं-वे जिस प्रकार हाथी एक छोटे वृक्ष से घर्षण नहीं करता उसी प्रकार संसार के तुच्छ पदार्थों में भी रति नहीं करते। किन्तु उनकी उनमें अरति और संयम में रति रहती है। फिर यहां पर मेधावी को अरति होने का संभव कैसे कहा ?

અશક્ય છે તે પ્રકારે મેધાવિત્વને અરતિભાવને પણ એક જગ્યાએ સાથ રહેવું વિરૂદ્ધ જ છે, પછી એ બન્નેનું એક જગ્યાએ જોડાણ કહેવું કેવી રીતે સંભવ થઇ શકે, આ વાત બીજી જગ્યાએ પણ બતાવી છે કે—

" तज्ज्ञानमेव न भवति, यस्मिन्नुदिते विभाति रागगण. ।
तमसः कुतोऽस्ति शक्ति-र्दिनकरकिरणाग्रतः स्थातुम्" ॥ १ ॥

તે જ્ઞાન જ્ઞાન જ નથી કે જેના ઉદય થવાથી રાગાદિગણનો સદ્‌ભાવ રહે, સૂર્યનો ઉદય થવાથી શું અંધકાર રહી શકે છે? કદિ નહિ ॥ ૧ ॥

જે મોહરૂપી ગ્રહથી ઉન્મત્ત થઇ રહેલ છે એવા અજ્ઞાની જીવ જ સંયમમા અરતિ અને શબ્દાદિ વિષયોમાં રતિ કરે છે. પરંતુ જે મેધાવી હોય છે તે જેમ હાથી નાના વૃક્ષથી ઘર્ષણ કરતો નથી તે પ્રકારે સંસારના તુચ્છ પદાર્થોમાં રતિ નથી કરતાં પણ તેની તેમાં અરતિ અને સંયમમાં રતિ જ રહે છે. વળી આ ઠેકાણે મેધાવીને અરતિ હોવાનો સંભવ પણ કેમ હોય

अनेन च समधिगतचारित्रस्योपदेशं प्रदातुकाम सूत्रकारः। चारित्रं प्रति ज्ञानस्य हेतुतया ज्ञानरूपकारणाभावाच्चारित्रकार्यासत्त्वं सर्वसम्मतं, न पुनरत्र ज्ञानारत्यो-र्विरोधः सम्भवति, किन्तु रत्यरत्योर्विरोधाच्चारित्रमोहनीयोदयात्संयमे भवत्येवारति-र्ज्ञानाज्ञानयोरेव विरोधात्, न संयमारतिज्ञानयोर्विरोध इति प्रकृतेऽपि मेधाविनोऽ-रतिसत्त्वे विरोधाभावात्। संयमारतिनिवृत्तस्य किं भवतीत्याह 'क्षणे' इति, परम-स्तोकः कालः क्षणस्तत्र मुक्तो भवति।

उत्तर—चारित्र के प्रति ज्ञान हेतु होता है, ज्ञान रूप कारण के अभाव में चारित्र रूप कार्यका अभाव रहता है, यह सब मानते हैं। यहां पर ज्ञान में और अरति में विरोध का कथन नहीं किया है किन्तु रति और अरति का विरोध होने से चारित्र मोहनीय के उदय से संयम में अरति होती है। ज्ञान और अज्ञान में ही विरोध है संयम में अरति का और ज्ञान का कोई विरोध नहीं है। इसलिये मेधावी होने पर भी संयम में अरति का सद्भाव होता है। इस में किसी प्रकारका विरोध नहीं है।

टीकाकार का यह अभिप्राय है कि जिसने चारित्र–संयम अंगीकार कर लिया है वह यदि ज्ञानी है तो भी उसे चारित्र मोहके उदय से उसमें अरतिभाव उत्पन्न हो सकता है। क्योंकि चारित्र के प्रति ज्ञान हेतु–कारण है, जहां कारण का अभाव है वहां कार्यका भी अभाव होता है जब ज्ञान रूप कारण का सद्भाव ही नहीं है तब उसके कार्य रूप चारित्र का सद्भाव कैसे हो सकता है? नहीं हो सकता। इसलिये उसे ज्ञानसंपन्न होना ही चाहिये।

उत्तर–ચારિત્રને પ્રતિ જ્ઞાન હેતુ હોય છે. જ્ઞાનરૂપ કારણના અભાવમાં ચારિત્રરૂપ કાર્યનો અભાવ રહે છે, એ બધા માને છે. આ ઠેકાણે જ્ઞાનમાં અને અરતિમાં વિરોધનું કથન નથી કર્યું. પણ રતિ અરતિનો વિરોધ હોવાથી ચારિત્ર-મોહનીયના ઉદયથી સંયમમાં અરતિ થાય છે. જ્ઞાન અને અજ્ઞાનમાં જ વિરોધ છે. સંયમમાં અરતિનો અને જ્ઞાનનો કોઈ વિરોધ નથી માટે મેધાવી હોવા છતાં પણ સંયમમાં અરતિનો સદ્ભાવ થાય છે તેથી કોઇ પ્રકારનો આમાં વિરોધ નથી.

ટીકાકારનો એ અભિપ્રાય છે કે જેણે ચારિત્ર–સંયમ અંગીકાર કરેલ છે તે જ્ઞાની છે તો પણ તેને ચારિત્રમોહના ઉદયથી તેમાં અરતિભાવ ઉત્પન્ન થઈ શકે છે. કેમકે ચારિત્રના પ્રતિ જ્ઞાન હેતુ–કારણ છે, જ્યાં કારણનો અભાવ છે ત્યાં કાર્યનો પણ અભાવ થાય છે. જ્યાં જ્ઞાનરૂપ કારણનો સદ્ભાવ જ નથી ત્યાં તેના કાર્યરૂપ ચારિત્રનો સદ્ભાવ કેવી રીતે હોઈ શકે? બલ્કે નથી થતો. માટે તેને જ્ઞાનસંપન્ન થવું જ જોઇએ. તેને અરતિભાવ ઉત્પન્ન

उसके अरति भाव उत्पन्न होने में कौन विरोध आता है? सहानवस्थालक्षण-साथमें नहीं रहने रूप विरोध वहीं पर होता है जो परस्पर में विरोधी होते हैं, जैसे शीत और उष्ण। ये परस्पर में विरोधी हैं इनका एक-साथ एक जगह रहना नहीं हो सकता। प्रकृत में ज्ञान और अज्ञान, रति और अरति ये परस्पर विरोधी दो धर्म हैं इनका भी एक जगह अवस्थान (रहना) नहीं हो सकता। गृहीत-चारित्र में रति ज्ञानपूर्वक होगी अतः वह ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम के साथ चारित्र मोहनीय के क्षयोपशम का कार्य है और अरति ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम के साथ चारित्र मोहनीय के उदय का कार्य है। उदय में और क्षयोपशम में बड़ा भारी अन्तर है, एक क्षयोपशम का कार्य है-एक उदय का कार्य है। अतः ये दोनो -रति और अरति-परस्पर विरोधी बातें युगपत् एकत्र नहीं रह सकतीं।

शंका—रति और अरति ये चारित्र मोहनीय के भेद स्वरूप नोकषाय के कार्य हैं इन्हें क्षयोपशम और उदय जन्य कैसे कहते हैं?

उत्तर—शंका ठीक है। वहां पर रति और अरति जो नोकषाय के उदय से मानी गई हैं उनसे इनमें भेद है। यहां पर रति शब्द का वाच्यार्थ चारित्र को निर्दोष रूप से पालन करने की भावना और तद-

---

થવામાં કયો વિરોધ આવે છે? સહાનવસ્થાનરૂપ સાથે નહિ રહેવા રૂપ વિરોધ ત્યાં જ થાય છે જે પરસ્પરમાં વિરોધી હોય છે. જેમ ઠંડી અને ગરમી એ પરસ્પરમાં વિરોધી છે તેનું એકી સાથે એક જગ્યાએ રહેવું બની શકતું નથી. પ્રકૃતમાં જ્ઞાન અને અજ્ઞાન, રતિ અને અરતિ, એ પરસ્પર વિરોધી બે ધર્મ છે તેઓનું પણ એક જગ્યાએ અવસ્થાન (રહેવું) બની શકતું નથી, લીધેલાં ચારિત્રમાં રતિ જ્ઞાનપૂર્વક જ થશે. માટે તે જ્ઞાનાવરણીયના ક્ષયોપશમ સાથે ચારિત્ર મોહનીયના ક્ષયોપશમનું કાર્ય છે અને અરતિ જ્ઞાનાવરણીયના ક્ષયોપશમ સાથે ચારિત્ર મોહનીયના ઉદયનું કાર્ય છે, ઉદયમાં અને ક્ષયોપશમમાં ઘણો જ અંતર છે, એક ક્ષયોપશમનું કાર્ય છે. એક ઉદયનું કાર્ય છે માટે એ બન્ને-રતિ અને અરતિ પરસ્પર વિરોધી વાતો યુગપત્ એકત્ર રહી શકતી નથી.

શંકા—રતિ અને અરતિ એ ચારિત્રમોહનીયના ભેદસ્વરૂપ નોકષાયનું કાર્ય છે તેને ક્ષયોપશમ અને ઉદયજન્ય કેમ કહે છે?

ઉત્તર—શંકા ઠીક છે. ત્યાં જે રતિ અને અરતિ જે નોકષાયના ઉદયથી માનેલ છે તેનાથી એમાં ભેદ છે. આ ઠેકાણે રતિ શબ્દના વાચ્યાર્થ ચારિત્રના નિર્દોષ રૂપથી પાલન કરવાની ભાવના અને તદનુકૂલ પ્રવૃત્તિ છે, અને અરતિનો

यद्वा-आर्षत्वात्तृतीयार्थे सप्तमी, क्षणेन=स्तोककालेन अ-इ-उ-ऋ-ऌ-इत्येवं-रूपपञ्चह्रस्वाक्षरोच्चारणसमकालेनेति यावत्; यथाख्यातचारित्रे सम्यग्रतो मुक्तो भवति, संयमस्य सम्यक्परिपालनात्स्वल्पकालेनैव मोक्षभागी भवतीति भावः ॥सू० १॥

नुकूल प्रवृत्ति है, और अरतिका अर्थ यह है कि-लिये हुए संयम के पालन करने में प्रमाद को नहीं हटाना-यद्वा तद्वा प्रवृत्ति करना। नोकषाय के उदय से जो रति और अरति होती है वे राग और द्वेष के वाचक हैं। अतः पूर्वोक्त कथन निर्दोष है।

जिसको संयम में अरति नहीं है उसको क्या होता है? वह कहते हैं-'क्षणे' इति।

जिसे संयम में अरति नहीं है वह क्षण में मुक्त हो जाता है। अत्यन्त सूक्ष्मकाल को क्षण कहते हैं। क्षण, काल का सबसे छोटा हिस्सा है इससे सूक्ष्म काल का और कोई अंश नहीं है। संयम में वह शक्ति है कि जीव को एक क्षण में मुक्ति प्राप्त करा देता है। ईंधन को जिस प्रकार अग्नि जलाती है उसी प्रकार संयम भी कर्मरूपी ईंधन को भस्म कर इस जीव को एक क्षण में शुद्ध कर देता है।

अथवा—'क्षणे मुक्तः' यहां पर आर्षवाक्य होने से तृतीया के अर्थ में सप्तमी विभक्ति समझनी चाहिये। तथा च-'क्षणेन मुक्तः' इस प्रकार परिवर्तन होने से एक क्षण के द्वारा मुक्त हो जाता है, यह

અર્થ એ છે કે-લીધેલા સંયમનુ પાલન કરવામાં પ્રમાદને નહિ છોડતા તે. આડી અવળી પ્રવૃત્તિ કરવી. નોકષાયના ઉદયથી જે રતિ અને અરતિ થાય છે તે રાગ અને દ્વેષનુ વાચક છે માટે પૂર્વોક્ત કથન નિર્દોષ છે

જેને સંયમમાં આરતિ નથી તેને શું થાય છે? તે કહે છે—

જેને સંયમમાં અરતિ નથી તે ક્ષણમા મુક્ત થાય છે. અત્યન્ત સૂક્ષ્મ કાળને ક્ષણ કહે છે ક્ષણ કાળનો બધાથી નાનો હિસ્સો છે માટે સૂક્ષ્મ કાળનો બીજો કોઇ અંશ નથી. સંયમમાં તે શક્તિ છે કે જીવને એક ક્ષણમાં મુક્તિ પ્રાપ્ત કરાવી આપે છે. અગ્નિ લાકડાને જે પ્રકારે બાળે છે તે પ્રકારે સંયમ પણ કર્મરૂપી ઇંધનને ભસ્મ કરી આ જીવને એક ક્ષણમા શુદ્ધ કરી નાંખે છે

અથવા '**क्षणे मुक्त** આ ઠેકાણે આર્ષ વાકય હોવાથી ત્રીજી વિભક્તિના અર્થમાં સાતમી વિભક્તિ સમજવી જોઇએ, અને '**क्षणेन मुक्तः**' આ પ્રકારે પરિવર્તન હોવાથી એક ક્ષણથી મુક્ત થઇ જાય છે. એ અર્થ થાય છે, તેનો

ये चारित्रविषयारतिमन्तस्ते चतुर्गतिकसंसारे दुःखसागरमग्नाश्चेतस्ततः परिभ्रमन्तीति दर्शयति-'अणाणाए'-इत्यादि ।

मूलम्-**अणाणाए पुट्ठावि एगे नियट्टंति, मंदा मोहेण पाउडा, अपरिग्गहा भविस्सामो समुट्ठाय लद्धे कामे अभिगाहइ, अणाणाए मुणिणो पडिलेहंति, एत्थ मोहे पुणो पुणो सन्ना नो हव्वाए नो पाराए ॥ सू० २ ॥**

छाया—अनाज्ञया स्पृष्टा अप्येके निवर्तन्ते, मन्दा मोहेन प्रावृताः, अपरिग्रहा भविष्यामः, समुत्थाय लब्धान् कामानभिगाहते, अनाज्ञया मुनयः प्रत्युपेक्षन्ते, अत्र मोहे पुनः पुनः सन्ना नो हव्याय नो पाराय ॥ सू० २ ॥

टीका—'अनाज्ञये'-त्यादि, आज्ञा=ज्ञानाचारादिप्रवृत्तिरूपो जिनादेशः, तद्विपरीता अनाज्ञा, तया स्पृष्टाः=परीषहोपसर्गैश्चलितचेतसः, एके=कण्डरीकप्रभृतयो

अर्थ होता है । इस का भाव यह है कि यथाख्यात चारित्र में जब इस जीव की रति-रमण-हो जाती है तब यह 'अ इ उ ऋ लृ' इन पाँच ह्रस्व अक्षरों के उच्चारण करने में जितना समय लगता है उतने समय मात्र में सिद्ध गति को प्राप्त कर लेता है अर्थात्-संयम को निर्दोष रीति से पालने से थोडे ही काल में यह जीव मुक्तिका लाभ कर लेता है ॥ सू०॥१॥

जिनकी चारित्र में रति नहीं है वे इस चतुर्गतिरूपसंसार सागर में दुःखों की अनन्त बोझे को झेलते हुए इतस्ततः भ्रमण करते रहते हैं। इस बात को सूत्रकार प्रकट करते हैं—

'अणाणाए' इत्यादि । ज्ञानाचारादिकों में प्रवृत्ति करने रूप जो जिनेन्द्र भगवान् का आदेश है उसका नाम आज्ञा है इससे विपरीत

ભાવ એ છે કે યથાખ્યાત ચારિત્રમાં જ્યારે આ જીવની રતિ-રમણ થાય છે, ત્યારે તે 'અ ઇ ઉ ઋ લૃ' આ પાંચ હ્રસ્વ અક્ષરોના ઉચ્ચારણ કરવામાં જેટલો સમય લાગે છે તેટલા સમય માત્રમાં સિદ્ધગતિને પ્રાપ્ત કરી લે છે અર્થાત્ સંયમને નિર્દોષ રીતિથી પાળવાથી થોડા જ કાળમાં તે જીવ મુક્તિનો લાભ કરી લે છે. ॥ સૂ૦ ૧ ॥

જેની ચારિત્રમાં રતિ નથી તે આ ચતુર્ગતિરૂપ સંસારસાગરમાં દુઃખોના અનંત બોજને ઉઠાવતાં આંહીતહીં ભ્રમણ કરે છે, એ વાતને સૂત્રકાર પ્રગટ કરેછે-

'અણાણાએ' ઇત્યાદિ. જ્ઞાનાચારાદિકમાં પ્રવૃત્તિ કરવા રૂપ જે જિનેન્દ્ર ભગવાનનો આદેશ છે તેનું નામ આજ્ઞા છે, તેનાથી વિપરીત પ્રવૃત્તિ અનાજ્ઞા છે.

मन्दाः=जडा अनवगतकर्तव्यविवेका इति यावत्, मोहेन=अज्ञानेन मिथ्यात्व-मोहनीयेन वा, प्रावृताः=सर्वतोऽवगुण्ठिता मोहाश्लिष्टात्मान इति यावत्, 'अपि'-शब्दस्य निवर्तन्त इत्यनेन सम्बन्धः, सकलसावद्यविरति रूपात्संयमान्निवर्तन्ते, अपि-निश्चयेन, प्राप्तचारित्रोऽपि मोहनीयोदयेन परीषहोपसर्गाविर्भावात्परिधृतसाधुवेषोऽपि भ्रष्टचारित्रो भवतीत्यर्थः ।

प्रवृत्ति अनाज्ञा है। इस अनाज्ञा से जो स्पृष्ट हैं अर्थात् जो परीषह और उपसर्गों के आने पर चञ्चलचित्त हो जाते हैं–गृहीत चारित्र में अरतिभाव रखनेवाले बन जाते हैं वे कंडरीक आदि कर्त्तव्याकर्त्तव्य–विवेकशून्य मनुष्य अज्ञान अथवा मिथ्यात्व मोहनीय से सर्वथा युक्त होते हुए उस चारित्र से अवश्य भ्रष्ट हो जाते हैं। सूत्र में 'अपि' शब्द निश्चय अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसका संबंध 'निवर्तन्ते' इस क्रिया के साथ होता है। जिसने सर्वसावद्यनिवृत्तिरूप चारित्रधर्म को प्राप्त कर लिया है–ऐसा व्यक्ति यदि मोह के उदयसे परीषह और उपसर्ग के आने पर अपने चारित्र से विचलित हो जाता है तो उसे चारित्रभ्रष्ट ही समझना चाहिये अर्थात् वह भ्रष्टचारित्री है। ऐसे व्यक्ति अपने को साधु के वेष से सुसज्जित कर लोगों की दृष्टि में साधुपने का ढोंग रचते हैं। यद्यपि इनके अन्तरंग में उस वेष से जरा भी प्रेम नहीं होता है तो भी बाह्य में वे अपनी प्रवृत्ति इस प्रकार से प्रदर्शित करते हैं–कि जैसे ये सच्चे

આ અનાજ્ઞાથી જે સ્પૃષ્ટ છે અર્થાત્ જે પરિષહ અને ઉપસર્ગોના આવવા પર ચંચલ થઈ જાય છે. લીધેલા ચારિત્રમાં અરતિભાવ રાખવાવાળાં બની જાય છે તે કંડરીક આદિ કર્તવ્યા–કર્તવ્ય વિવેકશૂન્ય મનુષ્ય અજ્ઞાન અથવા મિથ્યાત્વ મોહનીયથી સર્વથા યુક્ત હોવાથી તે ચારિત્રથી અવશ્ય ભ્રષ્ટ થઇ જાય છે.

સૂત્રમાં 'अपि' શબ્દ નિશ્ચય અર્થમાં પ્રયુક્ત થયો છે તેનો સંબંધ 'निवर्त्तन्ते' આ ક્રિયા સાથે થાય છે, જેણે સર્વસાવદ્યનિવૃત્તિરૂપ ચારિત્ર ધર્મને પ્રાપ્ત કરી લીધો છે તેવો માણસ કદાચ મોહના ઉદયથી પરિષહ અને ઉપસર્ગ આવવાથી પોતાના ચારિત્રથી વિચલિત થાય છે તો તેને ચારિત્ર ભ્રષ્ટજ સમજવો જોઈએ. અર્થાત્ તે ભ્રષ્ટચારિત્રી છે. એવી વ્યક્તિ પોતાને સાધુના વેષથી સુસજ્જિત કરી લોકોની દૃષ્ટિમાં સાધુપણાનો ઢોંગ રચે છે, જો કે તેના અંતરંગમાં તે વેષથી જરા પણ પ્રેમ હોતો નથી તો પણ બાહ્યમાં તે પોતાની પ્રવૃત્તિ આ પ્રકારથી પ્રદર્શિત કરે છે કે–જાણે તે સાચો નિર્ગ્રન્થ છે આ વાતનો

असाधवोऽपि स्वात्मानं साधुं मन्यमानाः किं कुर्वन्तीत्याह–'अपरिग्रहा'–इति अपरिग्रहाः=परि–सर्वतो मूर्च्छाभावेन गृह्यत इति परिग्रहः, अविद्यमानः परिग्रहो येषामित्यपरिग्रहाः=निर्ग्रन्था वयं भविष्याम इति दण्डिशाक्यादयोऽवसन्नपार्श्वस्थादयो वा समुत्थाय=साधुवेषं चारित्रं च गृहीत्वा ततो लब्धान्=प्राप्तान् कामान्=शब्दादिविषयान् अभिगाहन्ते=संश्रयन्ते। अत्र मूले आर्षत्वादेकवचनम्। अत्र 'अपरिग्रहा' इति पञ्चममहाव्रतोपादानादवशिष्टानि चत्वारि महाव्रतान्यपि विज्ञेयानि, अपरिग्रहे सर्वेषामन्तर्भावात्।

निर्ग्रन्थ हैं। इसी बात का खुलाशा 'अपरिग्रहाः' इस पद से सूत्रकारने किया है। जो मूर्छाभाव से ग्रहण किया जाता है उसका नाम परिग्रह है। यह परिग्रह जिनके विद्यमान नहीं है–वे अपरिग्रह हैं। दण्डी शाक्यादिक अथवा अवसन्न पासत्थादिक 'हम निर्ग्रन्थ हैं अथवा आगे चलकर निर्ग्रन्थ हो जावेंगे' इस अभिप्रायसे साधुवेष को और चारित्र को ग्रहण कर उसकी आड से अपनी वैषयिक वासना की तृप्ति करते हैं। इनकी इस प्रकार की बाह्य प्रवृत्ति देखकर लोग धार्मिक भावना से उनकी हर एक प्रकार से सेवा करते हैं, जिस वस्तु की उन्हें आवश्यकता होती है उसकी पूर्ति करते रहते हैं। इस साधुपने के बहाने से उन्हें जो कुछ भी मिलता है सिर्फ वे उससे अपनी वैषयिक वासना की ही पूर्त्ति करते रहते हैं वास्तविक सर्वसावद्य विरति रूप चारित्र का आचरण उनसे दूर ही रहता है। इसी बात की पुष्टि 'समुत्थाय लब्धान् कामान् अभिगाहन्ते' इस पङ्क्ति से सूत्रकार ने की है। सर्वसावद्य–विरतिरूप चारित्र को प्राप्त

ખુલાસો 'अपरिग्रहाः' આ પદથી સૂત્રકારે કર્યો છે જે મૂર્છાભાવથી ગ્રહણ કરે છે તેનુ નામ પરિગ્રહ છે આ પરિગ્રહ જેને વિદ્યમાન નથી તે અપરિગ્રહ છે. દંડી શાક્યાદિક અને અવસન્ન પાસત્થાદિક 'અમે નિર્ગ્રન્થ છીએ' 'અથવા આગળ ચાલીને નિર્ગ્રન્થ થઈ જશું' આ અભિપ્રાયથી સાધુવેષ અને ચારિત્રને ગ્રહણ કરી તેની આડથી પોતાની વૈષયિક વાસનાની તૃપ્તિ કરી લે છે તેની આ પ્રકારે બાહ્ય પ્રવૃત્તિ દેખીને લોક ધાર્મિક ભાવનાથી તેની દરેક પ્રકારથી સેવા કરે છે. જે વસ્તુની તેને આવશ્યકતા હોય તેની પૂર્તિ કરતા રહે છે, આ સાધુપણાના બહાનાથી જે કંઈ પણ મળે છે ફક્ત તેનાથી પોતાની વૈષયિક વાસનાની જ પૂર્તિ કરે છે. વાસ્તવિક સર્વસાવદ્યવિરતિરૂપ ચારિત્રનું આચરણ તેનાથી દૂર જ રહે છે. આ વાતની પુષ્ટિ 'समुत्थाय लब्धान् कामान् अभिगाहन्ते' આ પંક્તિથી સૂત્રકારે કહ્યું છે સર્વસાવદ્યવિરતિરૂપ ચારિત્રને પ્રાપ્ત કરવાને માટે બાહ્ય અને

करने के लिये बाह्य और आभ्यन्तर कारणों की जरूरत होती है। बाह्य कारण से इतना काम नहीं बनता जितना अन्तरंग से। चारित्र को अंगीकार करने में यद्यपि उपादान कारण आत्मा है परन्तु इन दो बाह्य आभ्यन्तर कारणों से उपादान में वह शक्ति आजाती है कि जिससे उसे अपने लिये हुए संयम में रति एवं संसार-शरीर और भोगों में अरति स्वतः आजाती है। प्रकृत में यहाँ चारित्रमोहनीय का उपशमादिक अन्तरंग कारण है और पंचेन्द्रियों के विषयों से सर्वथा विरतिभाव की जागृति बाह्य कारण है। जैसे अग्नि और धूम की (परस्पर अनियति) विषम व्याप्ति है उस प्रकार सम्यक् चारित्र के साथ अन्तरंग कारण चारित्र मोहनीय के उपशम की विषम व्याप्ति नहीं है-अर्थात् परस्पर समनियत हैं, जहां पर चारित्रमोहनीय का उपशमादि है वहां पर नियम से सम्यक् चारित्र है और जहां पर सम्यक् चारित्र है वहां पर नियम से चारित्र मोहनीय का उपशमादि है। इस प्रकार सम्यक् चारित्र और चारित्र मोहनीय के उपशमादिकों की समव्याप्ति (परस्पर नियति) है। परन्तु अन्तरंग में चारित्र मोहनीय के उपशमादिक के अभाव में जो बाह्य में सर्व-सावद्यविरति रूप चारित्र की सत्ता मालूम पड़ती है-वह

આભ્યન્તર કારણોની જરૂરત હોય છે. બાહ્ય કારણોથી આટલું કામ નથી બનતું જેટલુ અન્તરંગથી. ચારિત્રના અંગીકાર કરવામાં યદ્યપિ ઉપાદાન કારણ આત્મા છે પરંતુ આ બે-બાહ્ય, આભ્યન્તર-કારણોથી ઉપાદાનમાં તે શક્તિ આવી જાય છે કે જેનાથી તેને પોતાને માટે સંયમમાં રતિ અને સંસાર શરીર અને ભોગોમાં અરતિ આપમેળે આવે છે. પ્રકૃતમા અહીંઆ ચારિત્રમોહનીયનો ઉપશમાદિક અતરગ કારણ છે, અને પાંચે ઇન્દ્રિયોના વિષયોથી સર્વથા વિરતિભાવની જાગૃતિ બાહ્ય કારણ છે, જેમ અગ્નિ અને ધૂમની (પરસ્પર અનિયતિ) વિષમ વ્યાપ્તિ છે તે પ્રકારે સમ્યક્ચારિત્રની સાથે અંતરગ કારણ ચારિત્રમોહનીયના ઉપશમની વિષમ વ્યાપ્તિ નથી. અર્થાત્ પરસ્પર સમનિયત છે. જ્યાં ચારિત્રમોહનીયનો ઉપશમાદિ છે ત્યા નિયમથી સમ્યક્ચારિત્ર છે. અને જ્યા સમ્યક્ચારિત્ર છે ત્યાં નિયમથી ચારિત્રમોહનીયનો ઉપશમાદિ છે. આ પ્રકારે સમ્યક્ચારિત્ર અને ચારિત્રમોહનીયના ઉપશમાદિકોની સમ વ્યાપ્તિ (પરસ્પર નિયતિ છે) પરંતુ અન્તરંગમાં ચારિત્ર મોહનીયના ઉપશમાદિકના અભાવમાં જે બાહ્યમાં સર્વસાવદ્ય વિરતિરૂપ ચારિત્રની સત્તા માલમ પડે છે તે કેવળ એક ઢોંગ છે. તે ઢોંગ ઉલ્ટો

केवल एक ढोंग है। वह ढोंग उल्टा जीव को कर्मबन्ध का कारण होता है। ऐसे व्यक्ति चारित्र का ढोंग रच कर उसकी आड में अपने विषय-कषायों की ही पुष्टि किया करते हैं। यद्यपि सूत्रमें 'अपरिग्रह' इस शब्द से केवल पांचवें महाव्रत का ही ग्रहण बतलाया है परन्तु अवशिष्ट चार महाव्रतोंका भी इसी एक पद से ग्रहण हो जाता है।

इसी प्रकार जो वास्तविक रूप से अपरिग्रही नहीं हैं किन्तु परिग्रह-त्याग का ढोंग रचते हैं, उसीसे यह भी समझ लेना चाहिये कि जो वास्तविक रूपसे अहिंसादिमहाव्रतधारी नहीं हैं, किन्तु अहिंसामहाव्रती आदि होने का ढोंग करते हैं, वे केवल लोकों की प्रतारणा करने के लिए ही अपनी ऐसी प्रवृत्ति करते हैं। द्रव्यलिङ्गी साधुओं की प्रवृत्ति इसी ढंग की ही होती है। इनके आत्मा में उस समकितज्योति का बिलकुल ही प्रकाश नहीं होता है कि जिसके सद्भाव से महाव्रतों में सम्यक्पना आता है। इनके उपर के महाव्रत हैं। जिस प्रकार नट अनेक वेषों को धारण करता हुआ भी अन्तरङ्ग में उन २ वेषोंके परिणामों से सर्वथा शून्य रहता है उसी प्रकार ये द्रव्यलिङ्गी भी बाह्य में महाव्रती होनेका केवल एक ढोंग ही किया करते हैं उससे उनकी आत्मा

જીવને કર્મબંધનું કારણ થાય છે, એવી વ્યક્તિ ચારિત્રનો ઢોંગ રચીને તેની આડમાં પોતાના વિષય કષાયોની જ પુષ્ટિ કરે છે, યદ્યપિ સૂત્રમાં 'अपरिग्रह' આ શબ્દથી કેવળ પાંચમા મહાવ્રતનું જ ગ્રહણ બતાવ્યું છે પરંતુ અવશિષ્ટ ચાર મહાવ્રતોનું પણ એમ એક પદથી ગ્રહણ થાય છે.

આ પ્રકારે જે વાસ્તવિક રૂપથી અપરિગ્રહી નથી પણ પરિગ્રહત્યાગનો ઢોંગ રચે છે તેનાથી એ પણ સમજી લેવું જોઈએ કે જે વાસ્તવિક રૂપથી અહિંસાદિ મહાવ્રતધારી નથી પણ અહિંસા–મહાવ્રતી આદિ હોવાનો ઢોંગ કરે છે તેઓ કેવળ લોકોની પ્રતારણા કરવા માટે જ પોતાની એવી પ્રવૃત્તિ કરે છે. દ્રવ્યલિંગી સાધુઓની પ્રવૃત્તિ આ ઢબની હોય છે તેના આત્મામાં સમકિત જ્યોતિનો બિલકુલ જ પ્રકાશ નથી હોતો કે જેના સદ્‌ભાવથી મહાવ્રતોમાં સમ્યક્‌પણું આવે. તેના ઉપરના મહાવ્રતો છે. જે પ્રકારે નટ અનેક વેષોને ધારણ કરે છે પણ અંતરંગમાં તે તે વેષોના પરિણામોથી સર્વથા શૂન્ય રહે છે, તે પ્રકારે એ દ્રવ્યલિંગી પણ બાહ્યથી મહાવ્રતી હોવાનો કેવળ એક ઢોંગ જ કરે છે, જેનાથી તેનો આત્મા બિલકુલ રંજિત થતો નથી, ભલે તેની પ્રવૃત્તિથી બાહ્યજન રંજિત થાય, પરંતુ તેનો આત્મા સ્વતઃ તદનુકૂળ પ્રવૃત્તિથી શૂન્ય હોવાથી બિલકુલ

तदित्थं द्रव्यलिङ्गिनो नटा इव ते हिंसामृषाऽदत्तादानादिना लोकान् वञ्चयन्ति। ते पुनस्तल्लाभाय प्रवृत्ता भवन्तीत्याह–'अनाज्ञये'–ति।

अनाज्ञया=भगवदाज्ञाबहिर्भूतया स्वच्छन्दमत्या मुनयः=मुनिवेषधारिणः, शब्दादिकामोपाये प्रत्युपेक्षन्ते=प्रवर्तन्ते कामभोगविनिविष्टचित्ता भवन्तीत्यर्थः। अत्र=अस्मिन् कामभोगासक्तिरूपे मोहे, द्रव्यमोहे=मद्यादौ, भावमोहे=संसारेऽज्ञाने

बिलकुल ही रंजित नहीं होती है। भले ही–इनकी प्रवृत्ति से बाह्य जन रंजित नहीं होती है, भले ही–इनकी प्रवृत्ति से बाह्यजन रंजित हो जावें, परन्तु इनका आत्मा स्वतः तदनुकूल–प्रवृत्ति से शून्य होने से बिलकुल भी रंजित नहीं हो पाता है; हिंसा, झूठ, चोरी आदि आस्रवों में ही इनका अन्तरङ्ग लालसायुक्त बना रहता है। इसीसे ये लोकों को ठगते रहते हैं। ऐसी प्रवृत्ति इनकी क्यों होती है? इस का कारण बताते हुए सूत्रकार कहते हैं कि–'अनाज्ञया मुनयः प्रत्युपेक्षन्ते' महाव्रतों को धारण करने का ढोंग ये लोग इसी लिये करते हैं कि ये भगवदाज्ञा से बहिर्भूत हैं। भगवान की आज्ञा–ग्रहण किये हुए महाव्रतों को अन्तरङ्ग की सच्ची लगन के साथ पालने की है। पांच आस्रवों का नवकोटि से त्याग किये विना उनका शुद्ध पालन नहीं हो सकता है। जो इस प्रकार की आज्ञा से बहिर्भूत हैं और "जो हम कहते हैं वह सत्य एवं शुद्ध है" इस प्रकार की स्वच्छन्द्र प्रवृत्तिशाली हैं वे मुनि वेषधारी साधु शब्दादिक पांच इन्द्रियों के विषयों में प्रवृत्त रहते हैं। "अत्र मोहे पुनः पुनः संज्ञा नो हव्याय नो पाराय" मोह दो प्रकार का है–एक द्रव्यमोह

પણ રંજિત થતો નથી, હિંસા, જુઠ, ચોરી, આદિ આશ્રવોમાં જ તેની અંતરંગ લાલસા બની રહે છે જેથી તે લોકોને ઠગતા રહે છે. એવી પ્રવૃત્તિ તેની કેમ થાય છે તેનું કારણ બતાવતાં સૂત્રકાર કહે છે કે—

'अनाज्ञया मुनय प्रत्युपेक्षन्ते' મહાવ્રતોને ધારણ કરવાનો ઢોંગ તે લોક એ માટે કરે છે કે–તેઓ ભગવદ્આજ્ઞાથી બહિર્ભૂત છે. ભગવાનની આજ્ઞા ગ્રહણ કરેલા મહાવ્રતોને અંતરંગની સાચી લાગણીથી પાળવાની છે. પાંચ આશ્રવોના નવ કોટિથી ત્યાગ કર્યા વિના તેનું પાલન થતું નથી. જે આ પ્રકારની આજ્ઞાથી બહિર્ભૂત છે અને "જે અમે કહીએ છીએ તે સત્ય અને શુદ્ધ છે" આ પ્રકારની સ્વચ્છંદ પ્રવૃત્તિશાલી છે તે મુનિવેષધારી સાધુ શબ્દાદિક પાંચ ઇન્દ્રિયોના વિષયોમાં પ્રવૃત્ત રહે છે. 'अत्र मोहे पुन पुन सन्ना नो हव्याय नो पाराय' મોહ બે પ્રકારનો છે–એક દ્રવ્યમોહ અને બીજો ભાવમોહ. મદ્યાદિક દ્રવ્યમોહ

च पुनः पुनः=अत्यन्तं मुहुर्वा सन्नाः=विषयाभिलाषिणो मूढा निमग्नाः सन्तो नो हव्याय, हव्यं=गार्हस्थ्यं प्रकामकामभोगित्वं तस्मै, पारः संयमस्तस्मै=तदर्थं न भवति, नैतल्लोकाय न परलोकाय च, न ते गृहस्था नापि मुनयो, यथा मध्येनदिनिमग्नास्ते न कथमपि पारं गन्तुं शक्नुवन्ति, अपि तु निमज्जन्त्येव, तथैव ते भवन्तीत्यर्थः, ये परिधृतसाधुवेषाः कामोपायेषु सज्जन्ते ते न गृहस्था नापि मुनयो वा भवितुमर्हन्तीति तात्पर्यम्। अदृढचित्तानां मुनिवेषधारिणां पूर्वं हिरण्य–सुवर्ण–धन–धान्य–गृह–गृहिणी –पुत्र–मित्रादेः परित्यक्ततया न गृहस्थत्वं, चारित्रस्य सम्यगपरिपालनेन वान्ताभिलाषितया नाप्यनगारत्वमुपपद्यत इति भावः ॥ सू० २ ॥

और दूसरा भावमोह। मद्यादिक द्रव्यमोह है, संसार एवं अज्ञान भावमोह है। कामभोगों में आसक्तिका नाम मोह है। इन भोगोंकी आसक्तिमें जीव की प्रवृत्ति अज्ञान से होती है। कामभोगों की प्रवृत्ति को उत्तेजना मद्यादिक के सेवन से जीवों को मिलती है। इसलिये उन्हें द्रव्यमोह कहा है। विषयाभिलाषी मूढ जीव इस मोह में अत्यन्त अथवा वारंवार प्रवृत्ति करते हुए न तो यथेच्छ कामभोगादि भोग सकते हैं और न संयम ही पाल सकते हैं। जैसे नदी की मझधार में निमग्न हुआ प्राणी न इस पारका रहता है और न उस पार का रहता है, उसी प्रकार ऐसे प्राणी न इस लोक के रहते हैं और न उस लोक के ही रहते हैं– न वे सच्चे गृहस्थ ही वन पाते हैं और न सच्चे मुनि ही। नदी की मझधार में निमग्न प्राणी जिस प्रकार मझधार में ही डूब जाता है, उसी तरह से ये प्राणी भी साधुवेष छोड़कर विषयों में लवलीन वन बीच

છે, સંસાર અને અજ્ઞાન ભાવમોહ છે. કામભોગોમાં આસક્તિ તેનું નામ મોહ છે, તે ભોગોની આશક્તિમાં જીવની પ્રવૃત્તિ અજ્ઞાનથી થાય છે. કામભોગોની પ્રવૃત્તિને ઉત્તેજના મદ્યાદિકના સેવનથી જીવોને મળે છે, માટે તેને દ્રવ્યમોહ કહ્યો છે, વિષયાભિલાષી મૂઢ જીવ આ મોહમાં અત્યંત અને વારંવાર પ્રવૃત્તિ કરવા છતાં પણ નથી યથેચ્છ કામભોગાદિ ભોગવી શકતા, અને નથી સંયમનું પાલન કરી શકતા. જેમ નદીની મઝધારમાં નિમગ્ન થયેલ પ્રાણી નથી આ પાર જઈ શકતું કે નથી તે પાર જઈ શકતું. એ પ્રકારે આવા પ્રાણી, નથી આ લોકના રહેતા અગર નથી પરલોકના રહેતા. નથી તેઓ સાચા ગૃહસ્થી બની શકતા, અને નહિ સાચા મુનિ. નદીની મઝધારમાં નિમગ્ન પ્રાણી જેમ મઝધારમાં જ ડુબી જાય છે તે પ્રકારે આ પ્રાણી પણ સાધુવેષ છોડીને વિષયોમા લવલીન

ये संयमे रतिं, शब्दादिविषये चारतिं विदधानास्ते कीदृशा भवन्तीति दर्शयति- 'विमुत्ता' इत्यादि।

मूलम्—विमुत्ता हु ते जणा जे जणा पारगामिणो, लोभमलोभेन दुगुंछमाणे लद्धे कामे नाभिगाहइ, विणावि लोभं निक्खम्म एस अकम्मे जाणइ पासइ, पडिलेहाए नावकंखइ, एस अणगारि-त्ति पवुच्चइ ॥ सू० ३ ॥

छाया—विमुक्ता हु ते जना ये जनाः पारगामिनः, लोभमलोभेन जुगुप्समानो लब्धान् कामान्नाभिगाहते, विनापि लोभं निष्क्रम्य एषः अकर्मा जानाति पश्यति प्रत्युपेक्ष्य नावकाङ्क्षति एषः अनगार इति प्रोच्यते ॥ सू० ३ ॥

टीका—'विमुक्ता' इत्यादि, 'पारगामिनः' पारो मुक्तिस्तद्धेतुर्ज्ञानदर्शनचारित्राण्यपि पारः कार्यकारणयोरभेदात्, तेन पारं मोक्षं तद्धेतुञ्च ज्ञानादिकं गन्तुं=प्राप्तुं

ही में लटकते रहते हैं, न वे साधु ही हैं और न गृहस्थ ही। संयम पालन करने में जिनके चित्त में दृढ़ता तो है नहीं, परन्तु मुनि का वेष धारण कर लिया है, हिरण्य-सुवर्ण, धन-धान्य, गृह-गृहिणी पुत्र-मित्रादिक का मुनिव्रत धारण करने के पहिले त्याग भी कर दिया है अतः गार्हस्थिक जीवन के लिये उपयोगी वस्तु का उनके पास सद्भाव न होने से न उनमें गृहस्थता है, और चारित्र का सम्यक् रीति से पालन नहीं करने की वजह से मुनिपना ही है ॥ सू० ॥ २ ॥

जो संयम में रति एवं शब्दादि विषयों में अरति करते हैं, वे कैसे होते हैं? इस बात का खुलाशा करते हैं—

'विमुत्ता हु ते जणा' इत्यादि। कार्यकारण में अभेद-विवक्षा होने से

બની વચમાં જ લટકતા રહે છે. નથી તેઓ સાધુ છે અગર નથી તેઓ ગૃહસ્થી. સંયમ પાળવામાં જેના ચિત્તમાં દ્રઢતા છે જ નહિ, પરંતુ મુનિનો વેષ ધારણ કરી લીધો છે. હિરણ્ય-સુવર્ણ ધન-ધાન્ય, ગૃહ-ગૃહિણી પુત્ર-મિત્રાદિકનો મુનિવ્રત ધારણ કરવા પહેલાં જ ત્યાગ કરેલ છે માટે ગૃહસ્થી જીવન માટે ઉપયોગી વસ્તુનો સદ્‌ભાવ ન હોવાથી નથી તેનામાં ગૃહસ્થીપણું અને આ ચારિત્રને સમ્યક્ રીતિથી પાલન નહિ કરવાથી મુનિપણું પણ નથી ॥ સૂ૦ ૨ ॥

જે સંયમમાં રતિ અને શબ્દાદિ વિષયોમાં અરતિ કરે છે તે કેવા હોય છે? તેનો ખુલાસો કરે છે.—

'विमुत्ता हु ते जणा' ઈત્યાદિ—કાર્યકારણમા અભેદવિવક્ષા હોવાથી પાર

शीलं येषां ते पारगामिनो ये जना मुमुक्षवस्ते विमुक्ता विविधभावनया द्रव्यतो वित्तपरिवारसंसर्गेण, भावतो विषयकषायादितः प्रतिसमयं मुच्यमाना मोक्ष्यमाणा वा विमुक्ताः हु=निश्चयेन भवन्तीति सम्बन्धः। विमुक्ताः कुतस्ते भवन्तीत्याह- 'लोभ'-मिति 'लोभः'=लोभमोहनीयोदयेन परवस्तुग्रहणेच्छा, तम् अलोभेन=

पार शब्द का अर्थ मुक्ति तथा-मुक्ति के कारणभूत सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है। इस पार को प्राप्त करने का जिनका स्वभाव है वे पारगामी कहे जाते हैं। जो मुमुक्षु हैं वे अनेक प्रकार की सांसारिक भावनाओं से रहित होते हैं। 'विमुक्त' इस पद में 'वि' उपसर्ग और 'मुक्त' ऐसे दो शब्द हैं। 'वि' का अर्थ अनेक प्रकार की भावना है। 'मुक्त' शब्द का अर्थ द्रव्य और भाव से रहित होना है 'हु' शब्द का अर्थ निश्चय है। अर्थात् जिनको मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा होती है ऐसे प्राणी नियमतः द्रव्य से-धनादिक एवं परिवार के संसर्ग से तथा भावसे-विषयकषायादिकों से प्रतिसमय रहित होते हैं।

लोभमोहनीय के उदय से परवस्तु के ग्रहण करने की इच्छा का नाम लोभ है। इससे विपरीत अलोभ है। 'जुगुप्समान' शब्द का अर्थ जीतने वाला, या निग्रह करने वाला है। विमुक्त होने में यह हेतुगर्भित विशेषण है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वे विमुक्त इसलिये हैं कि उन्होंने लोभ को संतोष से निगृहीत कर दिया है।

શબ્દનો અર્થ મુક્તિ અને મુક્તિના કારણભૂત સમ્યગ્દર્શન, સમ્યગ્જ્ઞાન અને સમ્યક્ ચારિત્ર છે આ પારને પ્રાપ્ત કરવાનો જેનો સ્વભાવ છે તે પારગામી કહેવાય છે.

જે મુમુક્ષુ છે તે અનેક પ્રકારની સાંસારિક ભાવનાઓથી રહિત હોય છે. 'विमुक्त' આ પદમાં 'वि'નો અર્થ અનેક પ્રકારની ભાવના છે. 'मुक्त' શબ્દનો અર્થ દ્રવ્ય અને ભાવથી રહિત થવું 'हु' શબ્દનો અર્થ નિશ્ચય છે. અર્થાત્ જેને મુક્તિ પ્રાપ્ત કરવાની ઈચ્છા થાય છે એવો પ્રાણી નિયમતઃ દ્રવ્યથી-ધનાદિક અને પરિવારના સંસર્ગથી, તથા ભાવથી-વિષયકષાયાદિકોથી પ્રતિસમય રહિત થાય છે.

લોભમોહનીયના ઉદયથી પરવસ્તુને ગ્રહણ કરવાની ઈચ્છા તેનું નામ લોભ છે. તેથી વિપરીત અલોભ છે. 'जुगुप्समान' શબ્દનો અર્થ જીતવાવાલા અને નિગ્રહ કરવાવાળા છે. વિમુક્ત હોવામાં તે હેતુગર્ભિત વિશેષણ છે તેથી એ નિષ્કર્ષ નીકળે છે કે તે વિમુક્ત એટલા માટે છે કે તેઓએ લોભને સંતોષથી નિગૃહીત કરેલ છે.

तद्विरुद्धेन सन्तोषेण जुगुप्समानः=निन्दन्, सूत्रेऽस्मिन् पूर्वे बहुवचनप्रसङ्गेऽग्रेऽपि सर्वत्रैकवचनं तु जात्येकत्वविवक्षया समर्थनीयम्। लोभो हि संसारगर्तपातने प्रथमो गण्यते। लोभस्तु जीवस्य विमोहनमाकुलीकरणमिति यावत्, लुब्धो

सूत्र में पहिले बहुवचन का प्रयोग किया है, बाद में जो सर्वत्र एक वचन का प्रयोग हुआ है वह जाति की अपेक्षा से समझना चाहिये।

परवस्तु को अपनाने की इच्छा लोभमोहनीय के उदय से जीवों को होती है। लोभ दो प्रकार का है-एक बादरलोभ, दूसरा सूक्ष्मलोभ। बादरलोभ का सद्भाव आगम में ९वें गुणस्थान तक, तथा सूक्ष्मलोभ का सद्भाव १०वें गुणस्थान तक प्रकट किया है। इसलिये जबतक आगे २ के गुणस्थानों की प्राप्ति नहीं हुई है तब तक ऐसे जीवों को लोभ का उदय रहता ही है, अतः जब लोभ का उदय है तो उसका कार्य भी वहां होना चाहिये? इस शंका का निराकरण करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि-'लोभम् अलोभेन जुगुप्समानः' वे जीव लोभकषाय को संतोष से जीतते हैं। मुमुक्षु जीव परवस्तु के लाभ से आकृष्ट एवं अलाभ से असंतुष्ट नहीं होते।

लोभ का निराकरण करते हुए टीकाकार कहते हैं कि-जीवों को संसाररूपी गड्ढे में गिराने का सर्वप्रथम कारण लोभ माना गया है जो जीवों को आकुलितपरिणामी बना देता है। लुब्धक रात-दिन व्याकुल ही

સૂત્રમાં પહેલાં બહુવચનનો પ્રયોગ કરેલ છે બાદમાં જે સર્વત્ર એક વચનનો પ્રયોગ થયેલ છે તે જાતિની અપેક્ષાથી સમજવું જોઈએ.

પરવસ્તુને અપનાવવાની ઇચ્છા લોભમોહનીયના ઉદયથી થાય છે. લોભ બે પ્રકારના છે. એક બાદરલોભ, બીજો સૂક્ષ્મલોભ.

બાદરલોભનો સદ્‌ભાવ આગમમાં ૯મા ગુણસ્થાન સુધી, તથા સૂક્ષ્મલોભનો સદ્‌ભાવ ૧૦માં ગુણસ્થાન સુધી પ્રગટ કરેલ છે, માટે જ્યાંસુધી આગળ આગળના ગુણસ્થાનોની પ્રાપ્તિ નથી થઇ ત્યાં સુધી એવા જીવોને લોભનો ઉદય રહે જ છે, માટે જ્યારે લોભનો ઉદય છે તો તેનું કાર્ય પણ ત્યા હોવું જોઈએ? આ શંકાનું નિરાકરણ કરતા સૂત્રકાર કહે છે કે-'लोभम् अलोभेन जुगुप्समानः' તે જીવ લોભકષાયને સંતોષથી જીતે છે મુમુક્ષુ જીવ પરવસ્તુના લાભથી આકૃષ્ટ અને અલાભથી અસંતુષ્ટ થતાં નથી.

લોભનું નિરાકરણ કરતાથકા ટીકાકાર કહે છે કે-જીવોને સંસારરૂપી ખાડામાં પડવાનું સર્વ પ્રથમ કારણ લોભ જ છે. લોભ જીવોને આકુલિતપરિણામી બનાવી

हि रात्रिन्दिवं समाकुल एवावतिष्ठते, 'कदा कुतः कथं कुत्र धनादिकं लप्स्ये' इत्याशाग्रस्तो दुर्लङ्घपर्वतमपि लिलङ्घयिषति, अपारपारावारमपि तितीर्षति, दुर्गमगिरिकुञ्जेषु बंभ्रमीति, निजबान्धवनिकरमपि मिमारयिषति, दुर्गममपि जिगमिषति, बहु भारं वावहीति, दुःसहां क्षुधमपि सोढुमिच्छति, पापं चिकीर्षति, कुलशीलजातिधैर्याणि च परिजिहासति, किमधिकेन ? अज्ञानान्धकारावृतायां लोभरात्रौ प्राणातिपातादिदोषतस्करैरात्मधनं लुण्ठयति, चित्तमहारण्ये मोहान्धकारे लोभपिशाचं नर्त्तयति। लोभाकुलितचेता हि जले जीर्णपत्रमिव, वायौ लघुतृणमिव, गगने शरन्मेघ इवेतस्ततः संसारे परिभ्रमति। लोभिनो जनस्य सकलोऽपि गुणो दोषायते। लुब्धो हि सर्वापदास्पदं भवति, उक्तञ्च—

बना रहता है। वह 'किस समय कहां से कैसे धनादिक का अर्जन करूँगा' इस आशा से प्रेरित हो दुर्लंघ्य पर्वतादिकों को भी पार करने की इच्छा रखता है, अपार समुद्र को भी तैरने की भावना रखता है, दुर्गम-पहाड़ी झाड़ियों में भी भ्रमण करने की कामना करता है, अपने बांधवों को भी मारने का मनोरथ करता रहता है, जहां कोई नहीं जा सकता ऐसे भयंकर स्थान में भी जाने की चाहना करता है, बहुत भारी बोझ को भी ढोता है, दुःसह क्षुधा को भी सहन कर लेता है, पाप करने के लिये भी उतारू हो जाता है, अपने कुल, शील, जाति और धैर्य को मौका पड़ने पर छोड़ने के लिये कटिबद्ध हो जाता है। अधिक क्या कहा जाय? अज्ञान रूपी अन्धकार से अच्छादित इस लोभरूपी महारात्रि में यह जीव आत्मधन को प्राणातिपातादिकपापरूपी चोरों से सदा चुराता रहता है।

રે છે. લુબ્ધક રાત દિવસ વ્યાકુળ જ બની રહે છે, 'કયા વખતે ક્યારે કેવી રીતે ધનાદિકનું અર્જન કરૂં' આવી આશાથી પ્રેરિત થઈ ઓળંગી ન શકાય તેવા પર્વતોને પણ પાર કરવાની ઇચ્છા કરે છે, અપાર સમુદ્રને તરવાની પણ ભાવના રાખે છે, દુર્ગમ-પહાડી ઝાડીઓમાં પણ ભ્રમણ કરવાની ઇચ્છા રાખે છે, પોતાના ભાઈઓને પણ મારવાના મનોરથો સેવે છે, જ્યાં કોઈ જઈ શકતું નથી તેવા ભયંકર સ્થાનમા જવાની પણ હિંમત કરે છે, ઘણા ભારે બોજા પણ ઉઠાવે છે, દુઃસહ ભૂખને પણ સહન કરી લે છે, પાપ કરવાને માટે પણ તૈયાર થઈ જાય છે, પોતાનું કુળ, શીલ, જાતિ અને ધૈર્યને પણ વખત આવતાં છોડવાને તૈયાર થઈ જાય છે અધિક કેટલું કહેવું – અજ્ઞાનરૂપી અંધકારથી આચ્છાદિત આ લોભરૂપી મહારાત્રિમાં આ જીવ આત્મધનને પ્રાણાતિપાતાદિકપાપરૂપી ચોરોથી

"लोभेन बुद्धिश्चलति, लोभो जनयते तृषाम्।
तृषार्तो दुःखमाप्नोति, परत्रेह च मानवः ॥ १ ॥" इति।

अत्र लोभमलोभेन जुगुप्समानः, इति कथनात् प्रधानान्त्यपरित्यागप्रदर्शनेन 'प्राधान्येन व्यपदेशाः' इति नियमात् क्रोधादीनामपि हेयता प्रदर्शिता। अन्यत्रापि प्रोक्तम्—

मोहरूपी अंधकार से युक्त लोभी जीव चित्तरूपी गहन जंगल में लोभरूपी पिशाच को सदा नचाता रहता है। जिस तरह जल में जीर्णपत्र इतस्ततः चक्कर काटा करता है, वायु के झोकों में लघुतृण जिस प्रकार उडता रहता है, आकाश में शरत्कालीन मेघमाला जैसे यहां से वहां. वहां से यहां घूमा करती है, उसी प्रकार लोभाकुलितचित्तवाला प्राणी भी संसार में यहां वहां भ्रमता रहता है। लोभी जन के समस्त गुण दोष रूप में ही परिणत हो जाते हैं। जैसे कहा है—

**"लोभेन बुद्धिश्चलति, लोभो जनयते तृषाम्।
तृषार्तो दुःखमाप्नोति, परत्रेह च मानवः" ॥१॥**

लोभ से बुद्धि चलित हो जाती है, लोभ तृष्णा को पैदा करता है, तृष्णा से पीडित प्राणी इस लोक में और परलोक में दुःखों को पाता है ॥१॥ सूत्र में लोभकषाय को संतोष से निग्रह करने का जो कथन किया गया है वह एक उपलक्षण है, इससे क्रोध, मान, माया का भी

હમેશા લુટાવતો રહે છે. મોહરૂપી અંધકારથી યુક્ત લોભી જીવ ચિત્તરૂપી ગહન જંગલમા લોભરૂપી પિસાચને હમેશાં નચાવતો રહે છે. જેવી રીતે પાણીમાં જીર્ણપાનડા અહીંતહીં ચક્કર ફર્યા કરે છે, વાયુની લહેરોમાં લઘુ તૃણ જેમ ઉડતા રહે છે, આકાશમાં શરતકાલીન મેઘમાલા અહીંથી તહીં અને તહીંથી અહીં જેમ ઘૂમ્યા કરે છે તે પ્રકારે લોભાકુલિત ચિત્તવાળા પ્રાણી પણ સંસારમા આહી તહીં ભમ્યા કરે છે, લોભી જનના સમસ્ત ગુણો દોષરૂપમા જ પરિણત થાય છે. જેમ કહ્યુ છે—

"लोभेन बुद्धिश्चलति, लोभो जनयते तृषाम्
तृषार्तो दुःखमाप्नोति, परत्रेह च मानवः" ॥ १ ॥

લોભથી બુદ્ધિ ચલિત થાય છે. લોભ તૃષ્ણાને પેદા કરે છે. તૃષ્ણાથી પીડિત પ્રાણી આ લોકમાં અને પરલોકમાં દુઃખોને પામે છે ॥ ૧ ॥

સૂત્રમાં લોભકષાયને સંતોષથી નિગ્રહ કરવાનુ જે કથન કરવામાં આવ્યુ છે તે એક ઉપલક્ષણ છે. તેથી ક્રોધ, માન, માયાનો પણ પોતપોતાના પ્રતિપક્ષી

" त्रिविधं नरकस्येदं, द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् " ॥ १ ॥

' लोभं सन्तोषेण जये '-दित्याशयेन लोभमलोभेनेत्युक्तम्, लोभादीन् केन केन जयेदित्याह दशवैकालिके—

" उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे ।
मायमज्जवभावेण, लोहं संतोसओ जिणे " ॥ गाथा ३८ ॥

अपने २ प्रतिपक्षी भावों से निग्रह करना समझ लेना चाहिये। क्योंकि लोभ की तरह मुमुक्षुओं के लिये वे क्रोध आदि भी हेय हैं। चार कषायों में अन्तिम कषाय लोभ है। उसके त्याग के उपदेश से क्रोधादि का त्याग करना स्वतः सिद्ध हो जाता है। कहा भी है—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

इस श्लोक से अन्यत्र भी काम, क्रोध एवं लोभ को नरक का द्वार एवं अपने नाश का कारण बतलाया है।

शंका—लोभ को जिस तरह से संतोष से जीता जाता है उसी प्रकार क्रोधादिकषायों को जीतने के लिये किन २ भावों की जरूरत होनी है ?

उत्तर—दशवैकालिक सूत्र में इन कषायों को जीतने के लिये इन भावों को प्रकट किया है—

ભાવોથી નિગ્રહ કરવાનું સમજી લેવું જોઈએ. કારણ કે લોભની માફક મુમુક્ષુઓને માટે ક્રોધ માન આદિ પણ હેય છે. ચાર કષાયોમાં અંતિમ કષાય લોભ છે. તેના ત્યાગના ઉપદેશથી ક્રોધાદિકનો ત્યાગ કરવો સ્વત. સિદ્ધ થઈ જાય છે. કહ્યું પણ છે—

"त्रिविधं नरकस्येदं, द्वारं नाशनमात्मन ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् " ॥ १ ॥

આ શ્લોકથી અન્યત્ર પણ કામ ક્રોધ અને લોભને "નરકનું દ્વાર અને પોતાના નાશનું કારણ બતાવ્યું છે

શંકા—લોભને જેમ સંતોષથી જીતાય છે તેમ ક્રોધાદિ કષાયોને જીતવા કયા કયા ભાવોની જરૂરત હોય છે ?

ઉત્તર—દશવૈકાલિક સૂત્રમાં આ કષાયોને જીતવા માટે એ ભાવોને પ્રગટ કર્યા છે—

छाया–उपशमेन हन्यात्क्रोधं, मानं मार्दवेन जयेत् ।
मायामार्जवभावेन, लोभं सन्तोषतो जयेत् ॥

इति क्रोधादीनां चतुर्णां त्यागोपायः प्रदर्शितः, असन्तोषरोगस्य लोभपरित्याग एवौषधमिति, उक्तञ्च—

" यथाऽऽहारपरित्यागो, ज्वरितस्यौषधं मतम् ।
लोभस्यैवं परित्याग,–स्त्वसन्तोषस्य भेषजम् " ॥ १ ॥

" उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे ।
मायमज्जवभावेण, लोभं संतोसओ जिणे ॥"

उपशम से क्रोध को, मार्दव-नम्रभाव से मानको, आर्जव भाव से माया को और संतोष से लोभ को जीतना चाहिये । असन्तोषरूपी रोग का औषध लोभपरित्याग है । कहा भी है—

" यथाऽऽहारपरित्यागो,–ज्वरितस्यौषधं मतम् ।
लोभस्यैवं परित्याग,–स्त्वसन्तोषस्य भेषजम् ॥ १ ॥"

जैसे रोगी के ज्वर को नष्ट करने के लिए आहार का परित्याग दवा का काम करता है उसी तरह से असन्तोष को नष्ट करने के लिए लोभ का परिहार भी उत्तम ओषधि का काम देता है । इस कथन से यह सिद्धान्त भलीभांति पुष्ट हो जाता है कि जो लोभादिकों को उनके प्रतिपक्षी संतोषादिकों के द्वारा नष्ट कर देते हैं वे ही वास्तव में पारगामी हैं । ऐसे व्यक्ति प्राप्त हुए कामभोगों में नहीं फसते । इसी बात की पुष्टि " लब्धान् कामान्

" उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे ।
मायमज्जवभावेण, लोभं संतोषओ जिणे " ॥

ઉપશમથી ક્રોધને, માર્દવ–નમ્ર ભાવથી માનને, આર્જવભાવથી માયાને અને સંતોષથી લોભને જીતાય છે. અસંતોષરૂપી રોગનું ઓષધ લોભપરિત્યાગ છે. કહ્યું પણ છે—

" यथाऽऽहारपरित्यागो,–ज्वरितस्यौषधं मतम् ।
लोभस्यैवं परित्याग,–स्त्वसन्तोषस्य भेषजम् " ॥ १ ॥

જેમ રોગીના જ્વરને નષ્ટ કરવા માટે આહારનો પરિત્યાગ દવાનું કામ કરે છે તે પ્રકારે અસંતોષને નષ્ટ કરવા માટે લોભનો પરિહાર પણ ઉત્તમ ઓષધીનું કામ આપે છે. આ કથનથી એ સિદ્ધાન્ત ભલીભાંતિ પુષ્ટ થાય છે કે–જે લોભાદિકોને તેના પ્રતિપક્ષી સંતોષાદિકોના મારફત નષ્ટ કરે છે તે જ વાસ્તવમાં પારગામી છે. એવી વ્યક્તિ પ્રાપ્ત થયેલ કામભોગોમાં ફસતી નથી, એ વાતની પુષ્ટિ ' लब्धान् कामान् नाभिगाहते ' એ ઉપદેશથી સૂત્રકારે

सर्वथा ये लोभादीन् संन्तोषादिना जयन्ति त एव पारगामिनो भवन्तीति तात्पर्यम्। ततः किमित्याह–लब्धान्=समधिगतान्, कामान्=कामभोगान् नाभिगाहते=न श्रयते, यो हि परित्यक्तलोभादिस्तं कामादयः कदाचिदपि न पराजयन्त इति भावः।

कोऽपि केनापि हेतुना परिहीनलोभादिः कृतचारित्रग्रहणो भवति, कदाचित्पुनर्लोभोदयस्तस्य चेतसि स्यात्तस्य हेयतामदर्शनाय, यश्च सर्वदैव लोभादिरहितः संयमं गृह्णाति स एवानगार इति प्रतिपादनाय चाह–'विनापी'–त्यादि, एषः=लोभमलोभेन निन्दन् लोभं=पूर्वोक्तं विनाऽपि=लोभराहित्येनाऽपि निष्क्रम्य=चारित्रं गृहीत्वा अकर्मा=घातिकर्मचतुष्टयापनयनेन प्राप्तकेवलज्ञानकेवलदर्शनो भरतादिकल्पो भूत्वा जानाति=विशेषेणानुभवति, पश्यति=सर्वं वस्तुजातं यथार्थरूपेणावलोकते।

नाभिगाहते' इस उपदेश से सूत्रकार ने की है। क्योंकि जिसने लोभादिक का परिहार कर दिया है उसे कामभोगादिक कभी भी परास्त नहीं कर सकते।

कोई व्यक्ति लोभादिकषायों से हीन है, परन्तु किसी वजह से यदि उसने चारित्र ग्रहण कर लिया है तो उक्त व्यक्ति के चित्त में कदाचित् फिर से भी लोभ का उदय हो जाता है, उसकी उस प्रकार की प्रवृत्ति छोड़ने योग्य है, यह दिखाने के लिये, तथा जो सर्वदा लोभ रहित होकर संयम को धारण करता है वही अनगार-साधु है, इस बात का प्रतिपादन करने के लिये आगे सूत्रांश का अवतरण करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि–जो व्यक्ति इस पूर्वोक्त लोभ के विना–अर्थात् लोभ से रहित होकर चरित्र को ग्रहण करते हैं वे चार घातिया कर्मों को नष्ट कर भरतादि जैसे हो-

---

કરી છે, કારણ કે જેણે લોભાદિકનો પરિહાર કરેલ છે તેને કામભોગાદિક કદી પણ પરાસ્ત કરી શકતા નથી.

કોઈ વ્યક્તિ લોભાદિ કષાયોથી હીન છે, પરંતુ કોઈ કારણથી કદાચ તેણે ચારિત્ર ગ્રહણ કરેલ છે તો તે વ્યક્તિના ચિત્તમાં કદાચ ફરીથી પણ લોભનો ઉદય થાય છે તેની તે પ્રકારની પ્રવૃત્તિ છોડવાયોગ્ય છે. આ દેખાવા માટે, અને જે સર્વદા લોભરહિત થઈ સંયમને ધારણ કરે છે તે અણગાર–સાધુ છે, આ વાતનું પ્રતિપાદન કરવા માટે આગળના સૂત્રનું અવતરણ કરીને સૂત્રકાર કહે છે કે–જે વ્યક્તિ આ પૂર્વોક્ત લોભ વિના અર્થાત્ લોભથી રહિત થઈને ચારિત્રને ગ્રહણ કરે છે તે ચાર ઘાતિયા કર્મોને નષ્ટ કરી ભરતાદિ જેવા બનીને કેવળજ્ઞાન

ननु लोभनाशे कुतः कर्माभावो भवितुमर्हतीति चेन्न। लोभनाशान्मोहनीयनाशः, तस्मिंश्च घातिकर्मक्षयः, तस्मिंश्च केवलज्ञानाधिगमः, तेन च भवोपग्राहिकर्मक्षयः, इत्येवंरूपपरम्परया लोभापगमेन अकर्मेतिविशेषणसार्थक्यात्।

कर केवल ज्ञान और केवल दर्शन को पाकर दुनियां के चर अचर समस्त पदार्थों को स्पष्टरूप से समस्त गुण और समस्त पर्यायों से युक्त जानते हैं और देखते हैं।

शंका—लोभ के नाश से कर्मों का अभाव कैसे हो सकता है?

उत्तर—ऐसा नहीं कहना चाहिये; क्योंकि लोभ के क्षय से मोहनीय का क्षय होता है, उसके क्षय होने पर शेष घातिया कर्मों का क्षय होता है, घातिया कर्मों के अभाव होते ही केवल ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है, केवल ज्ञान की प्राप्ति होने से भवोपग्राही अघातिया कर्मों का क्षय हो जाता है। इस प्रकार परम्परा का सम्बन्ध को लेकर लोभ के विनाश से आत्मा अकर्मा हो जाता है, इस विशेषण की सार्थकता सिद्ध हो जाती है। सर्व प्रथम मोहनीय कर्म का क्षय होता है। समस्त कर्मों में मोहनीय कर्म सेनापति है, जिस प्रकार सेनापति के परास्त होने पर सेना अशक्त हो जाती है उसी प्रकार मोहनीय कर्म के क्षय होते ही कर्मों की सेना भी क्षीण हो जाती है। मोहनीय के क्षय से ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय और अन्तराय का क्षय होता है, उस से केवल ज्ञान की प्राप्ति होती है।

અને કેવળદર્શન પામીને દુનિયાના ચર–અચર સમસ્ત પદાર્થોને સ્પષ્ટ રૂપથી સમસ્ત ગુણ અને સમસ્ત પર્યાયોથી યુક્ત જાણે છે અને દેખે છે.

શંકા—લોભના નાશથી કર્મોનો અભાવ કેવી રીતે થઇ શકે?

ઉત્તર—એમ કહેવું ન જોઇએ, કારણ કે લોભના ક્ષયથી મોહનીયનો ક્ષય થાય છે. તેનો ક્ષય થવા પછી શેષ ઘાતિયા કર્મોનો ક્ષય થાય છે, ઘાતિયા કર્મોનો અભાવ થતાં જ કેવળજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થાય છે, કેવળજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થવાથી ભવોપગ્રાહી અઘાતિઆ કર્મોનો ક્ષય થાય છે. આ પ્રકાર પરંપરા સંબંધને લઈને લોભના વિનાશથી આત્મા અકર્મા બને છે. આ વિશેષણની સાર્થકતા સિદ્ધ થઈ જાય છે સર્વ પ્રથમ મોહનીય કર્મનો ક્ષય થાય છે, સમસ્ત કર્મોમાં મોહનીય કર્મ સેનાપતિ છે. જેમ સેનાપતિ પરાસ્ત થવાથી સેના અશક્ત બને છે તે પ્રકારે મોહનીય કર્મનો ક્ષય થતાં જ કર્મોની સેના પણ ક્ષીણ થઈ જાય છે. મોહનીયના ક્ષયથી જ્ઞાનાવરણીય દર્શનાવરણીય અને અંતરાયનો ક્ષય થાય છે, તેનાથી કેવળજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થાય છે.

कर्मनाशानन्तरं किं कुरुते ? इति दर्शयति–'मत्युपेक्ष्ये'–ति, मत्युपेक्ष्य लोभो निखिलानर्थकरो भवति, 'लोहो सव्वविणासणो' इतिवचनात्, तं पर्यालोच्य नावकाङ्क्षति=किमपि नेच्छति, यश्चैवंभूतः स एषोऽनगारः=यथाख्यातचारित्रवान् मुनिः प्रोच्यते तत्त्वदर्शिभिरिति शेषः ॥ सू० ३ ॥

यस्तु सत्त्वोपघातिनीं क्रियां विदधानः सकर्मा पापमोक्षकामनयाऽऽशंसया वा यद्यत्करोति तत्तद्दर्शयति–'अहो य' इत्यादि ।

मूलम्—अहो य राओ परितप्पमाणे कालाकालसमुट्ठाई संजोगट्ठी अट्ठालोभी आलुंपे सहसक्कारे विणिविट्ठचित्ते एत्थ सत्थे पुणो पुणो, से आयबले, से नाइबले, से मित्तबले, से पिच्चबले, से देवबले, से रायबले, से चोरबले, से अतिहिबले, से किविणबले, से समणबले, इच्चेएहिं विरूवरूवेहिं कज्जेहिं दंडसमायाणं संपेहाए भया कज्जइ, पावमुक्खुत्ति मन्नमाणे, अदुवा आसंसाए ॥सू० ४॥

छाया—अहश्च रात्रिश्च परितप्यमानः कालाकालसमुत्थायी संयोगार्थी अर्थालोभी आलुम्पः सहसाकारः विनिविष्टचित्तः, अत्र शस्त्रे पुनः पुनः, तदात्मबलं, तज्ज्ञातिबलम्, तन्मित्रबलम्, तत्प्रेत्यबलम्, तद्देवबलम्, तद्राजबलम्, तच्चोरबलम्, तदतिथिबलम्, तत्कृपणबलम् तत् श्रमणबलम्, इत्येतैर्विरूपरूपैः कार्यैर्दण्डसमादानं सम्प्रेक्ष्य भयात् क्रियते पापमोक्ष इति मन्यमानः अथवा आशंसायै ॥ सू० ४ ॥

'लोहो सव्वविणासणो' लोभ समस्त अनर्थों की जड है, इस प्रकार पर्यालोचन करके वह संयमी किसी भी सांसारिक पदार्थों की इच्छा नहीं करता है। इस प्रकार जिसकी प्रवृत्ति है वही सच्चा अनगार है—अर्थात् वही तत्त्वदर्शियों द्वारा यथाख्यान–चारित्र–समन्वित मुनि कहा जाता है ॥ सू० ३ ॥

जो प्राणियों को कष्ट देने वाली या उनके प्राणों को नाश करने वाली क्रियाओं को करता है वह सकर्मा है। वह पापों को दूर करने की

'लोहो सव्वविणासणो' લોભ સમસ્ત અનર્થોની જડ છે. એ પ્રકારે પર્યાયલોચન કરીને તે સંયમી કોઈ પણ સાંસારિક પદાર્થોની ઇચ્છા કરતા નથી. એ પ્રકારે જેની પ્રવૃત્તિ છે તે જ સાચો અણગાર છે. અર્થાત્ તે જ તત્વદર્શિયોદ્વારા યથાખ્યાતચારિત્રસમન્વિત મુનિ કહેવામાં આવે છે. ॥ સૂ. ૩ ॥

જે પ્રાણિઓને કષ્ટ દેવાવાળી અને તેના પ્રાણોનો નાશ કરવાવાળી ક્રિયાઓ કરે છે તે સકર્મા છે. તે પાપોને દૂર કરવાની ભાવનાથી અને આશંસા–અવશ્ય

टीका—'अहश्चे'-त्यादि, 'अहो य राओ' इत्यारभ्य 'एत्थ सत्थे पुणो पुणो' इत्यन्तस्य व्याख्या प्रथमोद्देशे प्रोक्तेति तत एव विज्ञेया। विषयासक्तो रात्रिन्दिवं परितप्तो धनार्थी सत्त्वोपमर्दने प्रवृत्तो भवतीत्यर्थः, अपि च पुनः किं करोतीत्याह—'तत् आत्मबल'-मित्यादि, आत्मनो=जीवस्य बलं=सामर्थ्यम् आत्मबलं मेऽवश्यं स्यादितीच्छया बहूपायैः स्वतुष्ट्यर्थं सत्त्वोपघातं करोति, किञ्च-स्वमांसपरिवर्धनाय मांसादिकमप्यश्नाति, तदर्थं पञ्चेन्द्रियादीनपि हन्ति। तत्स्वजनबलं तन्मित्रबलं च मे भविष्यति, येन समापतन्तीमपि विपदं सुखेन तरिष्यामि। प्रेत्यबलं=परलोकबलं

कामना से, अथवा आशंसा-अलभ्य वस्तु की लाभ की इच्छा से जो जो क्रियायें करता है उन्हें इस सूत्र में प्रकट करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

'अहो य राओ' इत्यादि। 'अहो य राओ' यहां से लेकर 'एत्थ सत्थे पुणो पुणो' यहां तक के पदों का व्याख्यान प्रथम उद्देश में लिखा जा चुका है वहीं से जान लेना चाहिये। विषयों में आसक्त धन का इच्छुक प्राणी रात-दिन संतप्तचित्त हो जीवों के उपमर्दन करने में प्रवृत्ति करता रहता है। तथा मुझे आत्मबल प्राप्त हो इस ख्याल से वह अपने सन्तोष के लिये प्राणियों के प्राणों का उपघात करता है। अपना मांस बढ़ाने के लिए मांस खाता है और उसके लिये वह पंचेन्द्रियादिक प्राणियों की हिंसा करता है—'जो मांस मुझे प्राप्त हुआ, जिसे मैं शिकार करके लाया हूं उसे मैं ही अकेला खाऊँ, अपने सगे सम्बन्धियों में तथा मित्रों में भी उसका वितरण करूं, क्योंकि परस्पर के इस प्रकार के आदान

વસ્તુના લાભની ઇચ્છાથી જે જે ક્રિયાઓ કરે છે તેને આ સૂત્રમાં પ્રગટ કરતાં સૂત્રકાર કહે છે—

'अहो य राओ' ઇત્યાદિ. 'अहो य राओ' અહીંયાથી લઈને 'एत्थ सत्थे पुणो पुणो' અહીં સુધીના પદોનું વ્યાખ્યાન પ્રથમ ઉદ્દેશામાં આપવામાં આવેલ છે ત્યાંથી જાણી લેવું જોઇએ. વિષયોમાં આસક્ત ધનનો ઇચ્છુક પ્રાણી રાત દિવસ સંતપ્તચિત્ત બની જીવોના ઉપમર્દન કરવામાં પ્રવૃત્તિ કરતો રહે છે. અને 'મને આત્મબળ પ્રાપ્ત થાય' એવા ખ્યાલથી તે પોતાના સંતોષ માટે પ્રાણિયોના પ્રાણોનો ઉપઘાત કરે છે. પોતાનું માંસ વધારવા માટે માંસ ખાય છે અને તેને માટે તે પંચેન્દ્રિયાદિક પ્રાણિઓની હિંસા કરે છે—'જે માંસ મને પ્રાપ્ત થયું છે, જેને હું શિકાર કરીને લાવ્યો છું તેને હું એકલો જ ખાઉં. પોતાના સગાસંબંધિઓમાં તથા મિત્રોમાં પણ તેનું વિતરણ કરૂ, કારણ કે પરસ્પરના આવા પ્રકારના આદાન

मे, इत्याशया मेषादिकं हिनस्ति। देवबलं मे स्यादित्याशया पचनपाचनादौ प्रवर्तते। राजबलं स्यादितीच्छया राजसेवा क्रियते। चौरबलं=चौरभागो भविष्यतीति चौरसमीपे तिष्ठति। अतिथिबलम्, "अतिथिः" न विद्यते तिथिरागमनस्य यस्य सोऽतिथिः, अतिथिसेवया मे बलमिति स्पृहया तं सेवते, तदर्थं सत्त्वो-

प्रदान से मुझे उनका बल प्राप्त होगा, जिससे कभी मेरे ऊपर यदि कोई आपत्ति आ जायगी तो वे उसमें मुझे मददगार बनेंगे, उनकी प्राप्त सहायता से अथवा सहानुभूति से मैं उस आपत्ति से विना किसी कष्ट के सुरक्षित हो जाऊँगा'। 'देवों का बल मुझे प्राप्त होगा' इस विचार से वह नैवेद्य आदि के लिये पचन-पाचनादिक आरंभ करता है। 'राजा की कृपा मुझ पर बनी रहे' इस भावना से वह उनकी झूठी खुशामद करता है, सेवा करता है, उसकी प्रत्येक भली बुरी बातों में हां में हां मिलाता है, 'खुशामद में ही आमद है' इस तुच्छ कामना से वह हर एक प्रकार से अपने को कष्ट में डालकर भी उनकी प्रत्येक बात को शिर-माथे-का मुकुट बनाने में भी संकोच नहीं करता। 'मैं यदि चोरों की मदद करूंगा, या उन्हें मदद पहुँचाऊंगा या उनका सहवास करूंगा तो मुझे उनसे लूट के द्रव्य में से हिस्सा भी मिलता रहेगा' इस चाहना से वह चोरों का भी बल प्राप्त करता है। जिसके आने की कोई निश्चित तिथि नहीं है उसका नाम अतिथि है, ऐसे अतिथियों की वह सिर्फ 'इनका आशी-

प्रदानथी मने तेओनुं बळ प्राप्त थशे, कदाच मारा उपर कोई आपत्ति आवे तो तेओ मने मददगार बनशे, तेमनी सहायताथी अने सहानुभूतिथी हुं आवेली आपत्तिथी कोई पण जातना कष्ट वगर सुरक्षित थई जईश' 'देवोनुं बळ मने प्राप्त थशे.' तेथी ते नैवेद्य आदि माटे पचन-पाचनादिक आरंभ करे छे. 'राजानी कृपा मारा उपर बनी रहे' ते भावनाथी ते तेनी जुठी खुशामत करे छे, सेवा करे छे, तेनी प्रत्येक सारी नठारी वातोमा हा मां हा मिलावे छे. 'खुशामतमां ज आमद छे' आवी तुच्छ कामनाथी ते दरेक प्रकारथी पोताने कष्टमा नाखीने पण तेनी प्रत्येक वातने शिरनो मुगट बनाववामां संकोच करतो नथी 'हुं जो चोरोने मदद करीश अने तेमने मदद पहोंचाडीश अगर तेमनो सहवास करीश तो मने तेमनी लुंटना द्रव्यमांथी हिस्सो-(भाग) मळतो रहेशे' आ भावनाथी ते चोरोनुं पण बळ प्राप्त करे छे जेनी आववानी कोई निश्चित तिथि नथी तेनुं नाम अतिथि छे. एवा अतिथियोनी ते फक्त 'तेमना

पमर्दनं करोति। कृपणबलं स्यादित्यभिलाषेण तं परिचरति। 'श्रमणबलं' श्रमणः शाक्यादिस्तस्य बलं स्यादिति वाञ्छया तदर्थं पचनादिसावद्यक्रियामाचरति। अत्रानेकेषां बलप्रदर्शनं यं यं चेतसि स्वाभिमतसाधकतया पश्यति तं तं सम्यगुपचरतीति द्योतनाय बोध्यम्। इत्येतैः=पूर्वोक्तैः, विरूपरूपैः=बहुविधैः कार्यैः दण्डसमादानं, दण्ड्यन्ते=हन्यन्ते सत्त्वानि येन स दण्डस्तस्य सर्वत आदानं ग्रहणं दण्डसमादानम् 'अहमिदं नाकरिष्यं तदात्मबलादिकं मे नाभविष्य'-दिति सम्प्रेक्ष्य=पर्यालोच्य भयात्=आत्मबलाद्यलाभभयात् सत्त्वोपघातः क्रियते, अनेकानर्थकरं

र्वादरूप बल मुझे मिले' इस विचार से सेवा करता है, उनके निमित्त प्राणियों की हिंसा भी करता है। कृपण की सेवा भी उनके बल को प्राप्त करने की इच्छा से वह करता है। 'शाक्यादि श्रमणों का सहारा मुझे मिले' इस अभिप्राय से वह उनके लिये पचन-पाचनादि करता है। सूत्र में जो इस प्रकार से अनेकों के बल का कथन किया गया है उसका भाव यही है कि वह जिसे अपने इष्ट अर्थ का साधक समझता है उनका बल प्राप्त करने के लिये उनकी भले प्रकार परिचर्या करता है। जिससे प्राणी की हिंसा होती है उसका नाम दण्ड है, इसका वह अनेक प्रकार के कार्यों से सर्वतः आदान-ग्रहण करता है। व्यर्थ के पापारंभ कार्यों में प्रवृत्त होकर वह प्राणियों के प्राणों का अपहरण कर पाप का भारी बोझ अपने माथे रखता है। 'यदि मैं इस काम को नहीं करूँगा तो मुझे पूर्वोक्त आत्मबलादिकों का लाभ नहीं होगा' इस बात का विचार कर उनके

આશિર્વાદરૂપ બળ મને મળે' એ વિચારથી સેવા કરે છે. તેમના નિમિત્તે પ્રાણિઓની હિંસા પણ કરે છે. કૃપણની સેવા પણ તેનુ બળ પ્રાપ્ત કરવાની ઇચ્છાથી કરે છે. 'શાક્યાદિ શ્રમણોનો સાથ મને મળે' તે માટે તે તેમને માટે પચન-પાચનાદિ કરે છે સૂત્રમાં જે આ પ્રકારથી અનેક બળોનુ કથન કરેલ છે તેનો ભાવ એ છે કે-તે જેને પોતાનાં ઇષ્ટ અર્થનો સાધક સમજે છે તેનું બળ પ્રાપ્ત કરવા માટે તેની ભલી પ્રકાર પરિચર્યા કરે છે જેનાથી પ્રાણીની હિંસા થાય છે તેનુ નામ દંડ છે તેનો તે અનેક પ્રકારના કાર્યોથી સર્વતઃ આદાન-ગ્રહણ કરે છે. વ્યર્થના પાપારંભ કાર્યોમાં પ્રવૃત્ત થઈને તે પ્રાણીઓના પ્રાણોનુ અપહરણ કરી પાપનો ભારી બોજ પોતાના માથે રાખે છે. 'કદાચ હુ આ કામને નહિ કરૂં તો મને પૂર્વોક્ત આત્મબળાદિનો લાભ થશે નહિ' આ વાતનો વિચાર કરી તેના અલાભના ભયથી પ્રાણિઓની હિંસાદિક ક્રિયાઓને-અનેક અનર્થકારી સાવદ્ય વ્યાપારોને તે કરે છે. એ આત્મબળાદિક જે આ જીવને આ લોકમાં દંડ

सावद्यव्यापारं करोतीति तात्पर्यम्। एतान्यात्मबलादीनि चैहिकदण्डग्रहणकारणानि। न केवलं तदर्थमेवानर्थं करोति किन्तु पारलौकिकार्थमपि परमार्थानभिज्ञो दण्ड-ग्रहणं करोतीत्याह–'पापमोक्ष' इति, पापमोक्षः–पातयति नरकनिगोदादाविति पापं, तस्मान्मोक्षो मे भविष्यतीति मन्यमानः=चेतसि चिन्तयन्,

अत्र 'इति'–शब्दो हेतौ, यस्मान्मे पापमोक्षो भवितेति मन्यमानः, इति सम्बन्धः। असौ नानाविधहवनीयद्रव्यैर्जुहोति। तथा पितृतर्पणार्थं दर्भ-तिल-जलादिना समा-रम्भं करोति च। एवंविधसावद्यव्यापारैर्नानाविधदुर्गतिदायकमनेकजन्मदुर्मोचमधि-कमघमेवार्जयति।

अलाभ के भय से प्राणियों की हिंसादिक क्रियाओं को–अनेक अनर्थ-कारी सावद्य व्यापारों को वह करता है। ये आत्मबलादिक जो इस जीव को इस लोक में दण्ड ग्रहण के कारण हैं, केवल उनके निमित्त ही अनर्थों को यह नहीं करता है, किन्तु पारलौकिक कार्यों के लिये भी पर-मार्थ से अनभिज्ञ बना हुआ यह दण्ड का पात्र बनता है। इसी अभि-प्राय को 'पापमोक्षः' इस पद से सूत्रकार प्रकट करते हैं–नरक नि-गोदादि गतियों को जीव जिसके द्वारा प्राप्त करते हैं उसका नाम पाप है। 'पाप से मेरी मुक्ति हो जायगी, अर्थात् मैं पापरहित हो जाऊँगा' इस धारणा से ओतप्रोत होकर वह नानाविध हवनीय द्रव्य से हवन करता है, अनेक अनर्थविधायक सावद्य कार्यों के करने से दण्ड-प्राणा-तिपातादि-का अधिकारी होता है, इन कार्यों से पापमुक्त न होकर उल्टे नरक निगोदादि गतियों में उस जीव का पतन होता है। सूत्र में 'इति' यह शब्द हेतु-अर्थ का बोधक है, जिसका भाव यह है–वह यह सम-

---

ગ્રહણનું કારણ છે, કેવળ તેના નિમિત્ત જ અનર્થોને તે નથી કરતો પણ પાર લૌકિક કાર્યો માટે પણ પરમાર્થથી અનભિજ્ઞ બનીને આ દંડનુ પાત્ર બને છે. આ અભિપ્રાયને 'पापमोक्षः' આ પદથી સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે–નરક નિગોદાદિ ગતિઓને જીવ જેના દ્વારા પ્રાપ્ત કરે છે તેનું નામ પાપ છે. 'પાપથી મારી મુક્તિ થઈ જશે, અર્થાત્ હું પાપરહિત થઈ જઈશ' એ ધારણાથી ઓતપ્રોત થઈને તે નાનાવિધ હવનીય દ્રવ્યોથી હવન કરે છે. અનેક અનર્થવિધાયક સાવદ્ય કાર્યોને કરવાથી દંડ–પ્રાણાતિપાતાદિ–નો અધિકારી થાય છે. આવા કાર્યોથી પાપમુક્ત બનતો નથી પણ નરક નિગોદાદિ ગતિઓમાં તે જીવનું પતન થાય છે સૂત્રમાં 'इति' એ શબ્દ હેતુ અર્થનો બોધક છે, જેનો ભાવ એ છે કે તે એમ સમજે છે કે

अथवा 'आशंसायै' आशंसा चालभ्यलाभस्पृहा तस्यै=तदर्थं दण्डं समारभते। ममैतत् परुत्परारि परलोके वा भविष्यतीत्याशया दण्डं समाददातीति तात्पर्यम्॥सू.४॥

एवं कटुकविपाकं दण्डसमादानं सम्यगवबुध्य यत्कर्तव्यं तदाह-'तं परिण्णाय' इत्यादि।

मूलम्-तं परिण्णाय मेहावी नेव सयं एएहिं कज्जेहिं दंडं समारंभिज्जा, नेव अन्नं एएहिं कज्जेहिं दंडं समारंभिज्जाविज्जा, एएहिं कज्जेहिं दंडं समारंभंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा, एस मग्गे आरिएहिं पवेइए, जहेत्थ कुसले नोवलिंपिज्जासित्तिबेमि॥ सू०५॥

छाया-तत्परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयमेतैः कार्यैर्दण्डं समारभेत, नैवान्यम् एतैः कार्यैर्दण्डं समारम्भयेत्, एतैः कार्यैर्दण्डं समारभमाणानप्यन्यान्न समनुजानीयात्, एष मार्ग आर्यैः प्रवेदितः, यथाऽत्र कुशलो नोपलिम्पेः, इति ब्रवीमि ॥सू० ५॥

झता है कि-'पापों सी मेरी मुक्ति हो जायगी-मैं निष्कलंक बन स्वर्गादि लाभ कर लूंगा'-ऐसा मानकर वह पारलौकिक कार्य करने के लिये भी छहकाय का आरंभ करता है। इस प्रकार के सावद्य व्यापारों से नानाविध दुर्गतियों को देने वाले तथा अनेक जन्म जन्मान्तरों में भी जो न नष्ट हो सके ऐसे पाप का ही वह अर्जन करता है। 'आशंसायै' इस पद से यह बात सूत्रकार सूचित करते हैं कि-वह अलभ्यवस्तु को पाने की इच्छा से भी दण्ड का समारंभ करता है "यह वस्तु मेरे पास नहीं है, आत्मबलादि कार्यों के करने से वह मुझे आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों मिल जावेगी, यदि यहां न भी मिलेगी तो पारलोक में मिल जालेगी" इस भाव से दण्ड का समादान (छहकाय का आरंभ) करता है॥ सू० ४॥

'પાપોથી મારી મુક્તિ થઇ જશે, હું નિષ્કલંક બની સ્વર્ગાદિ લાભ કરી લઇશ' એવું માનીને તે પારલૌકિક કાર્યો કરવા માટે છ કાયનો આરંભ કરે છે. આ પ્રકારના સાવદ્ય વ્યાપારોથી નાનાવિધ દુર્ગતિઓને દેવાવાળા અને અનેક જન્મ જન્માન્તરોમાં પણ જેનો નાશ ન થાય તેવો પાપનો ભાર જ તે વહે છે 'आशंसायै' આ પદથી આ બાત સૂત્રકાર સૂચિત કરે છે કે-તે અલભ્ય વસ્તુને પામવાની ઇચ્છાથી પણ દંડનો સમારંભ કરે છે, 'આ વસ્તુ મારી પાસે નથી પણ આત્મબલાદિ કાર્યો કરવાથી તે મને આજ નહિ તો કાલ, કાલ નહિ તો પરમ દિવસ મળી જશે, કદાચ અહીં નહિ મળે તો પરલોકમાં મળશે' આ ભાવથી દંડનું સમાદાન (છ કાયનો આરંભ) કરે છે. ॥ સૂ૦ ૪ ॥

'त'-दित्यादि, मेधावी=संयमरतिमान् विदितसंसारस्वभावः, तत्=पूर्वोक्त-सङ्ग्राहकं शस्त्रपरिज्ञाकथितम् अप्रशस्तगुणमूलस्थानं विषयकषायादिकं चात्मबलाद्यर्थं दण्डसमादानादिकं च परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा मेधावी स्वयम्=आत्मना एतैः=आत्मबलादानादिकैः कार्यैः दण्डं=प्राणिहिंसां नैव समारभेत=दण्डग्रहणारम्भं न कुर्यात्, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेदित्यर्थः, अन्यमपि एतैः कार्यैर्दण्डं न समारम्भयेदित्यन्वयः, तथा समारभमाणानप्यन्यान् न समनुजानीयात्=नानुमोदयेत्, सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं प्राह-एष मार्गः मृग्यतेऽन्विष्यते मोक्षपदमनेनेति मार्गः=रत्नत्रयस्वरूपः,

---

इस प्रकार कटुक विपाक वाले दण्ड के आदान को अच्छी तरह जानकर क्या करना चाहिये? सो कहते हैं—

'तं परिण्णाय' इत्यादि। संयम में जिसे प्रेम है, संसार का स्वभाव भी जिसने भली प्रकार जान लिया है ऐसा मेधावी मुनि शस्त्रपरिज्ञा में प्रतिपादित अप्रशस्त गुण एवं मूलस्थानस्वरूप विषयकषायादिकों को तथा आत्मबलादिलाभ के लिये दण्डसमादान (आरम्भ समारम्भ) को ज्ञपरिज्ञा से जानकर स्वयं आत्मबल को प्राप्त करने के खोटे अभिप्राय से आचरित इन पूर्वोक्त कार्यों से प्राणातिपात आदि दण्ड का समारम्भ नहीं करे। क्योंकि इन कार्यों के करने वाले प्राणी को पापारंभ के सिवाय अन्य किसी भी प्रशस्त फल का लाभ नहीं होता है। इस बात को जानकर प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उनका त्याग कर देवे। इतना ही नहीं किन्तु दूसरे से भी इन पूर्वोक्त कार्यों से वह दण्ड का

આવા પ્રકાર કડવા વિપાકવાળા દંડના આદાનને સારી રીતે જાણીને શું કરવું જોઈએ તે કહે છે—

'तं परिण्णाय' ઇત્યાદિ સંયમમાં જેને પ્રેમ છે, સંસારનો સ્વભાવ જેણે ભલી પ્રકારે જાણી લીધો છે એવા મેધાવી મુનિ શસ્ત્રપરિજ્ઞામાં પ્રતિપાદિત અપ્રશસ્ત ગુણ અને મૂળસ્થાનસ્વરૂપ વિષયકષાયાદિકને તથા આત્મબળાદિ લાભ માટે દંડસમાદાન (આરંભ-સમારંભ) ને જ્ઞપરિજ્ઞાથી જાણીને સ્વયં આત્મબળ પ્રાપ્ત કરવાના ખોટા અભિપ્રાયથી આચરિત એ પૂર્વોક્ત કાર્યોથી પ્રાણાતિપાત આદિ દંડનો સમારંભ કરવો નહિ, કારણ કે આ કાર્યોના કરનાર પ્રાણીને પાપારંભ સિવાય બીજો કોઈ પ્રશસ્ત ફળનો લાભ થતો નથી. એ વાતને જાણીને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી તેનો ત્યાગ કરે, એટલું જ નહિ પણ બીજાથી પણ તે પૂર્વોક્ત કાર્યોથી તે દંડનો સમારંભ ન કરાવે, અને આ પ્રકારથી દંડનો સમારંભ

" आर्यैः " आराद्धहिर्गता हेयधर्मेभ्यो ये ते आर्याः तीर्थङ्कर-गणधरादयः, तैः प्रवेदितः=द्वादशविधपरिषदि प्रकर्षेणोक्तः । तद् बुद्धा किं कार्यमित्याह—

" यथाऽत्र कुशलो नोपलिम्पे "-रिति, हे शिष्य ! यथा=येन प्रकारेणात्मा कर्मणोपलिप्तो न भवेत्तथा कुशलः=चतुर आत्मार्थी त्वमत्र=दण्डसमारम्भे नोपलिम्पेः=नं संश्लिष्येः, सर्वथा सर्वसमारम्भादात्मानं परिरक्षेदित्यर्थः । कमलपत्रं यथा जलेन स्पृष्टं न भवति तथैव दण्डसमादानेनात्मा यथा स्पृष्टो न भवेत्तथा कुरुष्वेति तात्पर्यम् । इति ब्रवीमीत्यस्यार्थस्तूक्त एव ॥ सू० ५ ॥

॥ इति द्वितीयाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ २-२ ॥

समारम्भ न करावे, तथा इस प्रकार से दण्ड का समारंभ करने वालों की अनुमोदना भी न करे, अर्थात् दण्ड समारंभ का सर्वथा त्याग करे ।

इस प्रकार श्रीसुधर्मा स्वमी जम्बू स्वामी को कहते हैं कि-यही रत्नत्रयरूप मोक्ष का मार्ग है, मोक्ष का अन्वेषण जिससे किया जाता है यही मार्ग शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ है । इस मार्ग का निरूपण आर्य-तीर्थंकर एवं गणधरादिकों ने बारह प्रकार की परिषद में किया है। विषय-कषायादिक जो आत्मा का पतन करने वाले हैं-उनसे जो शीघ्रातिशीघ्र विरक्त होते हैं वे आर्य हैं, और वे तीर्थंकर गणधरादि देव हैं, क्योंकि ये स्वयं उनसे विरक्त होकर दूसरों को भी उनसे विरक्त होने का उपदेश देते हैं । ये आत्मकल्याणकारी मोक्ष मार्ग के अनुपम पथिक होते हैं, और दूसरों को भी इस मार्ग के पथिक बनने के लिये उपायों का प्रतिपादन करते हैं । इस पंचम काल में जो मोक्षमार्ग की प्ररूपणा मुनि

કરવાવાળાની અનુમોદના પણ ન કરે, અર્થાત્ કરવા, કરાવવા, અને અનુમોદવારૂપ, એ દંડસમારભનો સર્વથા ત્યાગ કરે.

આ પ્રકાર શ્રીસુધર્માસ્વામી જંબૂસ્વામીને કહે છે કે-તે રત્નત્રયરૂપ મોક્ષનો માર્ગ છે, મોક્ષનુ અન્વેષણ જેનાથી થાય છે તે માર્ગ શબ્દનો વ્યુત્પત્યર્થ છે. આ માર્ગનુ નિરૂપણ આર્ય-તિર્થંકર અને ગણધરાદિકોએ બાર પ્રકારની પરિષદમાં કર્યું છે. વિષયકષાયાદિક જે આત્માનું પતન કરવાવાળા છે તેનાથી જે જલદી વિરક્ત થાય છે તે આર્ય છે, અને તે તીર્થંકર ગણધરાદિ દેવ છે. કારણ કે તેઓ સ્વયં તેનાથી વિરક્ત બની બીજાઓને તેનાથી વિરક્ત થવાનો ઉપદેશ આપે છે. તેઓ આત્મકલ્યાણકારી મોક્ષમાર્ગના અનુપમ પથિક હોય છે, અને બીજાઓને પણ તે માર્ગના પથિક બનવા માટે ઉપાયોનું પ્રતિપાદન કરે છે. આ પાંચમા કાળમાં જે મોક્ષમાર્ગની પ્રરૂપણા મુનિ અને આચાર્યોદ્વારા થાય છે તેનું

एवं आचार्यों द्वारा होती है उसका मूलस्रोत तीर्थंकरादि ही है। ऐसा समझकर कुशल आत्मार्थी का कर्तव्य है कि वह अपनी आत्मा को इस दण्डसमारंभ द्वारा आने वाले कर्मों से लिप्त न बनावे। ऐसा उपदेश करते हुए सूत्रकार कहते हैं–"यथाऽत्र कुशलो नोपलिम्पेः" हे भव्य जीव! तूं पूर्वोक्त कथन से यह भली प्रकार जान चुका है कि इन आत्मबलादिक कार्यों से दण्डसमादान होता हैं, और इससे कर्मबन्ध के सिवाय आत्मा को कोई लाभ नहीं होता है, अतः तूं इस बात का विचार कर, आत्मर्थी बन, और जिस प्रकार से तेरी आत्मा कर्मों से लिप्त न बनें इस तरह की प्रवृत्ति से इन समारंभों से सर्वथा अपनी रक्षा कर। जैसे जल में रहता हुआ कमल जल से लिप्त नहीं होता है उसी प्रकार दण्डसमादान से आत्मा लिप्त न बने ऐसा कर। 'इति ब्रवीमि' इसका अर्थ पहिले किया जा चुका है ॥ सू० ५ ॥

॥ द्वितीय अध्ययन का द्वितीय उद्देश समाप्त ॥ २–२ ॥

મૂળસ્રોત તીર્થંકરાદિ જ છે. એવું સમજીને કુશળ આત્માર્થીનું કર્તવ્ય છે. કે–તે પોતાના આત્માને આ દંડસમારંભદ્વારા આવવાવાળા કર્મોથી લિપ્ત ન બનાવે, એવો ઉપદેશ કરતાં સૂત્રકાર કહે છે—

"यथाऽत्र कुशलो नोपलिम्पे" હે ભવ્ય જીવ! તું પૂર્વોક્ત કથનથી એ ભલી પ્રકારે જાણી ચુકયો છે કે આ આત્મબલાદિક કાર્યોથી દંડસમાદાન થાય છે, અને તેનાથી કર્મબંધ સિવાય આત્માને કોઈ લાભ થતો નથી, માટે તું એ બાતનો વિચાર કરી આત્માર્થી બન, અને જે પ્રકારથી તારો આત્મા કર્મોથી લિપ્ત ન બને એવા પ્રકારની પ્રવૃત્તિથી તેવા સમારંભોથી સર્વથા પોતાની રક્ષા કર. જેમ પાણીમાં રહેલાં કમળ પાણીથી લિપ્ત નથી થતાં તે પ્રકારે દંડસમાદાનથી આત્મા લિપ્ત ન બને તેવું કર. 'इति ब्रवीमि' આનો અર્થ પહેલાં કરવામાં આવેલ છે. ॥ સૂ૦ ૫ ॥

બીજા અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશ સમાપ્ત. ૨–૨.



टीका-'स' इत्यादि। सः=प्राणी, असकृत्=बहुवारम् उच्चैर्गोत्रे=लोकमान्य उग्रकुलादौ समुत्पन्न इति शेषः, तथा असकृत् नीचैर्गोत्रे काष्ठहारादिकुले चोत्पन्नः, अत्र गोत्रपदस्य कुलपरत्वं विज्ञेयम्। तयोरुभयोर्गोत्रयोरनुभावबन्धाध्यवसाय-स्थानकण्डकानि समानान्येव सन्तीत्याह-'न हीन' इति, हीनो=न्यूनो न भवति, एवमतिरिक्तः=अधिकोऽपि न भवति। उच्चनीचगोत्रयोः समसंख्यकान्येवानु-बन्धाध्यवसायस्थानकण्डकानि वर्तन्त इत्याशयः।

जीवात्मा का जन्म-मरण जब तक उसे मुक्ति की प्राप्ति नहीं हुई है तब तक होता रहता है। कभी यह नीच गोत्र के उदय से लोकनिंदित कुल में जन्म लेता है तो कभी उच्च गोत्र के उदय से लोकपूजित कुल में। यह उच्च-नीच गोत्र में जन्म की प्राप्ति होना कर्म का कार्य है। इसमें किसी की इच्छा काम नहीं करती। अतः उच्च गोत्र में जन्म लेने से हर्षित होना और नीच गोत्र में जन्म लेने से दुःखित होना आत्मा के लिये योग्य नहीं। कारण कि पर्यायों में उलट-फेर होता ही रहता है; क्योंकि संसारी जीव कर्मों से युक्त हैं। अतः जो नीच गोत्र में उत्पन्न होने से अपना अपमान समझता है उसके लिये सूत्रकार कहते हैं कि-वह तू अनेक बार लोकमान्य उग्रकुल भोगकुल आदि में उत्पन्न हो चुका है। तथा जो उच्चकुल में जन्म लेने से अपना मान-बड़प्पन समझता है उसके प्रति सूत्रकार कहते हैं कि-भाई तू भी नीचकुल जो काष्ठहार आदि का वंश है, उसमें अनेक बार जन्म ले चुका है। गोत्र

જીવાત્માના જન્મ મરણ જ્યાં સુધી તેને મુક્તિની પ્રાપ્તિ નથી થઈ ત્યા સુધી થતાં રહે છે, કોઈ વખત તે નીચ ગોત્રના ઉદયથી લોકનિંદિત કુળમાં જન્મ લે છે તો કોઈ વખત ઉંચ ગોત્રના ઉદયથી લોકપૂજિત કુળમાં. આ ઉંચ નીચ ગોત્રમાં જન્મની પ્રાપ્તિ થવી તે કર્મનું કાર્ય છે. તેમાં કોઈની ઇચ્છા કામ કરતી નથી. માટે ઉચ ગોત્રમાં જન્મ લેવાથી હર્ષિત થવું, અને નીચ ગોત્રમા જન્મ લેવાથી દુ.ખી થવુ આત્માને માટે તે યોગ્ય નથી, કારણ કે પર્યાયોમાં ઉલટ ફેર થયા જ કરે છે. સંસારી જીવ કર્મોથી યુક્ત છે, માટે જે નીચ ગોત્રમાં ઉત્પન્ન હોવાથી પોતાનું અપમાન સમજે છે તેને માટે સૂત્રકાર કહે છે કે-તૂં અનેકવાર લોકમાન્ય ઉગ્રકુળ ભોગકુળ આદિમાં ઉત્પન્ન થઈ ચુકેલ છે, તથા જે ઉચ્ચ કુળમાં જન્મ લેવાથી પોતાનું માન-મોટાપણુ સમજે છે તેના પ્રત્યે સૂત્ર-કાર કહે છે કે-ભાઈ તું પણ નીચ કુળ જે કઠીઆરા આદિનો વંશ છે તેમાં અનેકવાર જન્મ લઈ ચુકેલ છે. ગોત્ર શબ્દનો અર્થ કુળ છે. ઉંચ ગોત્રમાં

परम्परसूत्रसम्बन्धस्तु—'से आयबले' इत्यादिना, स्वसमानार्थमात्मबलादि-दण्डसमारम्भो न त्वया कर्तव्य इति।

उच्चगोत्रोत्पत्त्या मानं, नीचगोत्रोत्पत्त्या चापमानं ज्ञात्वा हर्ष-क्रोधौ त्वया न विधेयौ, यतस्तौ मानापमानौ बहुषु जन्मसु प्राप्तपूर्वाविति दर्शयति—"से असइं" इत्यादि।

मूलम्—से असइं उच्चागोए, असइं नीआगोए, नो हीणे, नो अइरित्ते, नोऽपीहए, इयपरिसंखाय को गोयावाई, को माणावाई, कंसि वा एगे गिज्झे, तम्हा पंडिए नो हरिसे नो कुज्झे ॥ सू० १॥

छाया—सोऽसकृदुच्चैर्गोत्रेऽसकृन्नीचैर्गोत्रे न हीनो नातिरिक्तः, नो ईहेतापि, इति परिसंख्याय को गोत्रवादी को मानवादी, कस्मिन् वैकस्मिन् गृध्येत्, तस्मात्पण्डितो न हृष्येत् न क्रुध्येत् ॥ सू० १ ॥

उत्पत्ति के अभिमानादिकों में जिस तरह से न फँसे इस प्रकार से अपनी प्रवृत्ति कर।

'से आयबले' इत्यादि परम्परासूत्र के साथ भी संबंध है, जिससे शिष्य को संबोधन करते हुए आचार्य इस बात का उपदेश देते हैं कि अपने मान के लिये आत्मबल आदि द्वारा तुझे दण्डसमारंभ नहीं करना चाहिये।

नीचे के सूत्र का अवतरण करने के लिये सूत्रकार शिष्य से कहते हैं कि—हे शिष्य! उच्चगोत्र में उत्पत्ति से मान और नीच गोत्र में जन्म लेने से अपमान का विचार कर हर्ष और क्रोध करना तुझे योग्य नहीं है, क्योंकि कर्म के प्रभाव से तूने पूर्व के अनेक भवों में इन्हें प्राप्त किया है। यही बात प्रकट की जाती है—"से असइं" इत्यादि।

અભિમાનાદિમા જેવી રીતે ન ફસે તેવી પ્રવૃત્તિ પોતાની કર

'से आयबले' ઇત્યાદિ પરંપરાસૂત્ર સાથે પણ સંબંધ છે જેથી શિષ્યને સંબોધન કરતાં આચાર્ય એ વાતનો ઉપદેશ આપે છે કે પોતાના માન માટે આત્મબલ આદિ દ્વારા તારે દંડસમારંભ ન કરવો જોઈએ.

નીચેના સૂત્રનું અવતરણ કરવા માટે સૂત્રકાર શિષ્યને કહે છે કે-હે શિષ્ય! ઉચ્ચ ગોત્રમા ઉત્પત્તિથી માન, અને નીચ ગોત્રમાં જન્મ લેવાથી અપમાનનો વિચાર કરી હર્ષ અને ક્રોધ કરવો તને યોગ્ય નથી. કારણ કે કર્મના પ્રભાવથી તેં પૂર્વના અનેક ભવોમાં તે પ્રાપ્ત કર્યા છે એ વાત પ્રગટ કરવામાં આવે છે-'से असइं' ઇત્યાદિ

टीका-'स' इत्यादि। सः=प्राणी, असकृत्=बहुवारम् उच्चैर्गोत्रे=लोकमान्य उग्रकुलादौ समुत्पन्न इति शेषः, तथा असकृत् नीचैर्गोत्रे काष्ठहारादिकुले चोत्पन्नः, अत्र गोत्रपदस्य कुलपरत्वं विज्ञेयम्। तयोरुभयोर्गोत्रयोरनुभावबन्धाध्यवसाय-स्थानकण्डकानि समानान्येव सन्तीत्याह-'न हीन' इति, हीनो=न्यूनो न भवति, एवमतिरिक्तः=अधिकोऽपि न भवति। उच्चनीचगोत्रयोः समसंख्यकान्येवानु-बन्धाध्यवसायस्थानकण्डकानि वर्तन्त इत्याशयः।

जीवात्मा का जन्म-मरण जब तक उसे मुक्ति की प्राप्ति नहीं हुई है तब तक होता रहता है। कभी यह नीच गोत्र के उदय से लोकनिंदित कुल में जन्म लेता है तो कभी उच्च गोत्र के उदय से लोकपूजित कुल में। यह उच्च-नीच गोत्र में जन्म की प्राप्ति होना कर्म का कार्य है। इसमें किसी की इच्छा काम नहीं करती। अतः उच्च गोत्र में जन्म लेने से हर्षित होना और नीच गोत्र में जन्म लेने से दुःखित होना आत्मा के लिये योग्य नहीं। कारण कि पर्यायों में उलट-फेर होता ही रहता है; क्योंकि संसारी जीव कर्मों से युक्त हैं। अतः जो नीच गोत्र में उत्पन्न होने से अपना अपमान समझता है उसके लिये सूत्रकार कहते हैं कि-वह तूं अनेक बार लोकमान्य उग्रकुल भोगकुल आदि में उत्पन्न हो चुका है। तथा जो उच्चकुल में जन्म लेने से अपना मान-बड़प्पन समझता है उसके प्रति सूत्रकार कहते हैं कि-भाई तूं भी नीचकुल जो काष्ठहार आदि का वंश है, उसमें अनेक बार जन्म ले चुका है। गोत्र

જીવાત્માના જન્મ મરણ જ્યાં સુધી તેને મુક્તિની પ્રાપ્તિ નથી થઈ ત્યાં સુધી થતાં રહે છે, કોઈ વખત તે નીચ ગોત્રના ઉદયથી લોકનિંદિત કુળમાં જન્મ લે છે તો કોઈ વખત ઉંચ ગોત્રના ઉદયથી લોકપૂજિત કુળમાં. આ ઉંચ નીચ ગોત્રમાં જન્મની પ્રાપ્તિ થવી તે કર્મનું કાર્ય છે. તેમાં કોઈની ઇચ્છા કામ કરતી નથી. માટે ઉંચ ગોત્રમા જન્મ લેવાથી હર્ષિત થવું, અને નીચ ગોત્રમાં જન્મ લેવાથી દુ:ખી થવું આત્માને માટે તે યોગ્ય નથી, કારણ કે પર્યાયોમાં ઉલટ ફેર થયા જ કરે છે. સંસારી જીવ કર્મોથી યુક્ત છે, માટે જે નીચ ગોત્રમાં ઉત્પન્ન હોવાથી પોતાનુ અપમાન સમજે છે તેને માટે સૂત્રકાર કહે છે કે-તું અનેકવાર લોકમાન્ય ઉગ્રકુળ ભોગકુળ આદિમાં ઉત્પન્ન થઈ ચુકેલ છે, તથા જે ઉચ્ચ કુળમાં જન્મ લેવાથી પોતાનું માન-મોટાપણું સમજે છે તેના પ્રત્યે સૂત્ર-કાર કહે છે કે-ભાઈ તું પણ નીચ કુળ જે કઠીઆરા આદિનો વંશ છે તેમાં અનેકવાર જન્મ લઈ ચુકેલ છે. ગોત્ર શબ્દનો અર્થ કુળ છે. ઉંચ ગોત્રમાં

(कण्डकमिति कर्मांश उच्यते) तस्मात् न ईहेतापि=जाति-कुल-बल-रूपादिमद-स्थानेष्वन्यतमं नो इच्छेदपि, मनसाऽप्युच्चकुलाद्यभिमानं न चेष्टेतेति तात्पर्यम्। ततः किमायातमित्याह-'इती'ति, इति=पूर्वोक्तप्रकारमनन्तवारं प्राप्तपूर्वोच्चनीच-कुलादिकं समानकर्मांशत्वं च परिसंख्याय=बुद्ध्वा, 'गोत्रवादी' गोत्रं वदितुं शीलं यस्येति स गोत्रवादी=गोत्राभिमानी 'ममैवैतादृशं परमसम्माननीयं सुन्दरं गोत्रं, कस्याप्यन्यस्य तादृशं नास्ति' इति को भवेत्, किञ्च "मानवादी" मानं=स्वगुणो-त्कीर्तनमभिमानं वदितुं शीलं यस्येति स मानवादी=स्वोत्कर्षवादी को भवेत्? न कोऽपि भवेदित्यर्थः। अपि च-कस्मिन् वा एकस्मिन् प्रकृष्टगोत्रा-

शब्द का अर्थ कुल है। उच्च गोत्र में उत्पन्न होने से न तो आत्मा अधिक बड़ा हो जाता है और न नीच गोत्र में जन्म लेने से हीन ही। क्योंकि दोनों गोत्रों के बन्धाध्यवसायस्थान के कण्डक एक सरीखे हैं। उनकी संख्या समान है। (कर्म के अंश का नाम कण्डक है)। इसलिये "नो ईहेत" जीव का कर्तव्य है कि वह जातिमद, कुलमद, बलमद और रूप वगैरह के मद करने की कभी मनसे भी चेष्टा तक न करे। इस प्रकार जब यह जीव उच्च-नीच गोत्र को अनेक वार पूर्व जन्मों में प्राप्त कर चुका है, और इनके बंध के भी जब समान कर्म के अंश हैं तो ऐसा कौन प्राणी होगा जो इस परिस्थिति को जान बूझकर भी गोत्रवादी-गोत्राभिमानी होगा कि-"मेरा ही ऐसा परममाननीय सुन्दर गोत्र है किसी अन्य का ऐसा नहीं है" इस प्रकार कहने का स्वभाववाला-साहस करने वाला होगा, तथा अपने उत्कर्ष को दूसरों के प्रति प्रकट करने की

ઉત્પન્ન હોવાથી નથી આત્મા અધિક મોટો થઈ જતો અને નથી નીચ ગોત્રમાં ઉત્પન્ન થવાથી નીચો થઈ જતો. કારણ કે બન્ને ગોત્રોના બન્ધાધ્યવસાય સ્થાનના કંડકો એકસરખા છે. તેઓની સંખ્યા સમાન છે. (કર્મના અંશનું નામ કંડક છે.) માટે "नो ईहेत" જીવનું કર્તવ્ય છે કે-તે જાતિમદ, કુળમદ, બળમદ અને રૂપ વિગેરેનો મદ કરવાની કદિ પણ મનથી ચેષ્ટા પણ ન કરે આ પ્રકારે જ્યારે આ જીવ ઉંચનીચ ગોત્રને અનેક વાર પૂર્વ જન્મોમાં પ્રાપ્ત કરી ચુકેલ છે, અને તેના બંધનો પણ જ્યારે સમાન કર્મનો અંશ છે તો એવો કયો પ્રાણી હશે જે આ પરિસ્થિતિને જાણી જોઈને પણ ગોત્રવાદી-ગોત્રાભિમાની થશે કે-"મારૂં જ એવું પરમ માનનીય સુંદર ગોત્ર છે બીજા કોઈનું તેવું ગોત્ર નથી" આ પ્રકારે કહેવાના સ્વભાવ વાળા-સાહસ કરવાવાળા હશે, અને ઉત્કર્ષને બીજાઓના પ્રતિ પ્રગટ કરવાના ભાવનાવાળા હશે? માટે જ્યારે એ નિશ્ચિત છે

भावनाशाली होगा?। इसलिये जब यह निश्चित है कि उच्च गोत्र में अथवा नीच गोत्र में अनेक वार जन्म-मरण यह जीव कर चुका है तो फिर "मेरा जन्म उच्चकुल में हो" इस प्रकार वहां पर उत्पन्न होने के लिये अभिलाषी भी कौन होगा?। अतः जो हेयोपादेय के विवेक से युक्त हैं, ऐसे पण्डित-भव्यात्मा जीव उच्चकुल में उत्पन्न होने से न तो हर्ष करें और न नीचकुल में जन्म लेने से विषाद ही करें। इस बात का विद्वान् को कभी अहंकार नहीं करना चाहिये-कि मैं उच्चकुलका हूँ, तथा इसका कभी विषाद भी नहीं करना चाहिये कि मैं नीचकुल का हूं। क्योंकि इस संसार का प्रवाह अनादिकाल से इसी प्रकार से चल रहा है, आगे भी ऐसा ही चलता रहेगा कि-जो आज उच्चकुल का है कल वही नीच-कुल का बन जाता है, तथा दूसरे स्वर्ग के देव जिनके उच्चगोत्र का उदय है वे च्यवकर एकेन्द्रिय पृथिवी पानी वनस्पति जीवों में जन्म लेकर नीच गोत्र के उदय वाले बन जाते हैं। तब उच्च गोत्र और नीच गोत्र ये सदा एक जीव में स्थिर रहने वाले धर्म तो हैं नहीं; फिर इस विषय में हर्ष विषाद करना निष्कारण है। जब अनेक जन्मों में इस जीव को प्रकृष्ट कुलों की एवं अपकृष्टकुलों की अनेक वार प्राप्ति हो चुकी है तब हर्ष और विषाद करने से आत्मा को कौन सा लाभ हो सकता है?। यदि ये

કે ઉંચ ગોત્રમાં અને નીચ ગોત્રમા અનેકવાર જન્મ મરણુ આ જીવે કરેલ છે તો પછી "મારો જન્મ ઉંચ કુળમાં જ હોય" આ પ્રકાર ત્યાં ઉત્પન્ન થવા માટે કોણુ અભિલાષી હશે? માટે જે હેયોપાદેયના વિવેકથી યુક્ત છે એવો પંડિત-ભવ્યાત્મા જીવ ઉંચ કુળમાં ઉત્પન્ન થવાથી ન તો હર્ષ કરે, અને નીચ કુળમાં જન્મ લેવાથી ન વિષાદ કરે. આ વાતનો વિદ્વાને કોઈ વખત અહંકાર કરવો ન જોઈએ કે-હું ઉંચ કુળનો છું. અને તેનો પણુ વિષાદ નહિ કરવો જોઇએ કે-હું નીચ કુળનો છું. કારણુ કે આ સંસારનો આ પ્રવાહ અનાદિ કાળથી આ પ્રકારે ચાલી રહ્યો છે. આગળ પણુ એવો જ ચાલશે. જે આજ ઉંચ કુળના છે કાલ તેજ નીચ કુળના બની જાય છે. બીજા સ્વર્ગના દેવ જેનો ઉંચ ગોત્રનો ઉદય છે તે ચ્યવીને એકેન્દ્રિય-પૃથિવી-પાણી-વનસ્પતિ જીવોમાં જન્મ લઈ નીચ ગોત્રના ઉદયવાળા બની જાય છે, તો પછી ઉંચ ગોત્ર અને નીચ ગોત્ર એ સદા એક જીવમાં સ્થિર રહેવાવાળો ધર્મ તો છે જ નહિ, પછી આ વિષયમાં હર્ષવિષાદ કરવો નિષ્કારણુ છે. અનેક જન્મોમાં આ જીવને પ્રકૃષ્ટ કુલોની અને અપકૃષ્ટ કુલોની અનેકવાર પ્રાપ્તિ થયેલી છે પછી હર્ષ અને શોક કરવાથી આત્માને કયો લાભ મળી શકે

दिकेऽनेकधा प्राप्तपूर्वे न गृध्येत्=नाभिलष्येत्=उच्चकुलोत्पन्नोऽहमित्युत्कर्षं नेच्छे-दित्यर्थः। ततः किमित्याह–'तस्मा'–दिति, यस्मादनादिभवे परिभ्रमता बहूनि प्रकृष्टानि कुलानि प्राप्तानि, तथाऽपकृष्टानि च लब्धानि, तस्माद्धेतोः पण्डितः= परमार्थज्ञो ज्ञातहेयोपादेयो न हृष्येत्, 'ममैवेदृशं कुल'–मिति न मोदेत, न क्रुध्येत्= 'मम कथमधमतरे कुले जन्माभू'–दिति स्वात्मने न कुप्येत्, न विषादमपि कुर्यात्। अनेकजनिषु प्रकृष्टानि कुलानि प्राप्तानीति कथं हर्षसम्भवः?, नीचकुलानि बहुशः सम-धिगतानीति वृथैव क्रोधः। अभूतपूर्वयोः सुखदुःखयोरेव सतोर्हर्ष-क्रोधसम्भवादिति तात्पर्यम्।

उक्तञ्च–

अभूतपूर्व कुल जीवों के प्राप्त हुए होते तो उनकी प्राप्ति में हर्ष विषाद करना उचित माना जाता, परन्तु ऐसा तो है नहीं। अतः ऐसा विचार कर ज्ञानी को इस विषय में हर्ष विषाद नहीं करना चाहिये; किन्तु सदा ऐसा ख्याल करते रहना चाहिये कि—

इस संसार में अनादिकाल से नाना योनियों में भ्रमण करने वाले इस आत्मा ने अनेक बार सर्व सुख दुःख के स्थानभूत उच्च नीच गोत्रों को प्राप्त किया है, फिर इनकी प्राप्ति में तुझे आश्चर्य ही कौन सा है। अनन्त जन्मजन्मान्तरों में इस जीवने अनेक सुखों को प्राप्त किया है, तथा–अपमान से, स्थान आदि के च्युत होने से वधबंधन एवं धन के नाश से अनेक रोगों को तथा अनेक प्रकार के दुःखों को झेला है।

कहा भी है–

છે. કદાચ તે અભૂતપૂર્વ કુળ જીવને પ્રાપ્ત થયેલ હોય તો તેની પ્રાપ્તિમાં હર્ષ વિષાદ કરવો ઉચિત મનાત, પરંતુ તેવું તો છે નહિ, માટે એવો વિચાર કરી જ્ઞાનીએ આ વિષયમાં હર્ષ વિષાદ નહિ કરવો જોઈએ. પણ સદા હમેશાં એવો ખ્યાલ રાખવો જોઈએ કે—

આ સંસારમાં અનાદિ કાળથી અનેકયોનિયોમાં ભ્રમણ કરવાવાળા આ આત્માને અનેકવાર સર્વ સુખદુ:ખના સ્થાનભૂત ઉંચ નીચ ગોત્રોને પ્રાપ્ત કરેલ છે. પછી તેની પ્રાપ્તિમાં તને આશ્ચર્ય શું છે. અનન્ત જન્મ જન્માન્તરોમાં આ જીવે અનેક પ્રકારના સુખોને પ્રાપ્ત કર્યા છે. અને અપમાનથી, સ્થાન આદિના ચ્યુત હોવાથી, વધ બંધન અને ધનના નાશથી અનેક રોગોને તથા અનેક પ્રકારના દુ:ખોને સહન કર્યા છે.

કહ્યું પણ છે—

"सर्वसुखान्यपि बहुशः, प्राप्तान्यटता मयाऽत्र संसारे।
उच्चैःस्थानानि तथा, तेन न मे विस्मयस्तेषु" ॥१॥
तथा–"अवमानात्परिभ्रंशाद्वधबन्धधनक्षयात्।
प्राप्ता रोगाश्च शोकाश्च जात्यन्तरशतेष्वपि" ॥१॥ इति।

किमधिकेन वर्तमानेऽपि जन्मनि नानाविधा अवस्था अनुभूयन्ते, अत-आत्मार्थिभिर्हर्षक्रोधौ न कार्यावित्याशयः। अत्र गोत्रपदमुपलक्षणं, तेन जात्यादीनां सर्वेषां मदो न विधेय इति प्रकरणार्थः।

"सर्वसुखान्यपि बहुशः, प्राप्तान्यटता मयाऽत्र संसारे।
उच्चैः स्थानानि तथा, तेन न मे विस्मयस्तेषु" ॥ १ ॥
तथा—"अवमानात्परिभ्रंशाद्वधबन्धधनक्षयात्।
प्राप्ता रोगाश्च शोकाश्च, जात्यन्तरशतेष्वपि" ॥ १ ॥ इति।

अधिक क्या कहा जाय? जब वर्तमान पर्याय में ही इस जीव की अनेक अवस्थाएँ होती देखी जाती हैं तो जन्म-जन्मान्तरों में इसकी अनेक अवस्थाएँ हुई हों, अनेक वार उच्च नीच कुलों में जन्म हुआ हो तो इसमें आश्चर्य की बात ही कौनसी है। ऐसा दृढ़ विश्वास कर आत्मार्थी के लिये इन अवस्थाओं में कभी भी हर्ष और विषाद के लिये स्थान नहीं होना चाहिये।

सूत्र में गोत्र पद उपलक्षण है इससे आठ मदों का–(१) जातिमद (२) कुलमद, (३) बलमद, (४) रूपमद, (५) लाभमद, (६) तपमद,

---

"सर्वसुखान्यपि बहुशः, प्राप्तान्यऽटता मयाऽत्र संसारे।
उच्चै स्थानानि तथा, तेन न मे विस्मयस्तेषु" ॥ १ ॥
तथा—"अवमानात्परिभ्रंशाद्वधबन्धधनक्षयात्।
प्राप्ता रोगाश्च शोकाश्च, जात्यन्तरशतेष्वपि" ॥ २ ॥ इति

અધિક શું કહેવામાં આવે જ્યારે વર્તમાન પર્યાયમાં જ આ જીવની અનેક અવસ્થાઓ થાય છે તે નજરે દેખાય છે તો જન્મ જન્માંતરોમાં તેની અનેક અવસ્થાઓ થાય, અનેક વાર ઉંચ નીચ ગોત્રમા જન્મો થાય છે એમાં આશ્ચર્યની વાત કઈ છે. એવો દૃઢ વિશ્વાસ કરી આત્માર્થીને માટે આ અવસ્થાઓમાં કોઈ વખત પણ હર્ષ અને શોકનું સ્થાન હોવું ન જોઈએ

સૂત્રમાં ગોત્રપદ ઉપલક્ષણ છે માટે આઠ મદોનું–(૧) જાતિમદ, (૨) કુળમદ, (૩) બળમદ, (૪) રૂપમદ, (૫) લાભમદ, (૬) તપમદ, (૭) સૂત્રમદ,

मानादिनिरसनेन कपायव्युदासस्तेन च संयमे दृढता विपये चादृढता, तया च सम्यग्ज्ञानाद्यधिगमस्तेन च मोक्ष इति क्रमेण सर्वथा मानापमानादौ हर्षक्रोधौ त्याज्याविति भावः।

यथा देशदेशान्तरं भ्रमन् पथिकः कचित् सुखं कचिद् दुःखं लभते, कचिद् ग्रामे कचिदरण्ये वसति, कचित्समभूमिपु कचिच्च विपमभूमिपु शेते, कचित्स्वच्छजलं कचिद् दूपितजलं च पिवति, न च सुखदुःखे गणयति लक्ष्यगम्यदेशमाप्तिकामः, तथैव प्रकृतेऽपि उच्चगोत्रादिमाप्तौ न हर्ष-शोकौ मुक्तिमाप्तुकामेन संयमिना कार्या-विति वर्तुलकार्थः ॥ सू० १ ॥

---

(७) सूत्रमद, (८) ऐश्वर्यमद का ग्रहण हो जाता है। मद भी अहंकार ही है, अतः इनका परित्याग कर देना चाहिये; क्योंकि जाति वगैरह से हीन होने पर भी आत्मा काल लब्धि आदि के प्राप्त होने पर धर्म का अधिकारी बन जाता है। धर्मप्राप्ति में जाति वगैरह बाधक नहीं होते हैं।

जिस प्रकार देश-देशान्तर में भ्रमण करने वाले प्राणी को कभी किसी स्थान पर सुख, कभी किसी जगह दुःख मिलता है। कभी वह ग्राम में वस जाता है कभी उसे वन में भी वसने का अवसर आता है, कभी प्रशस्त भूमि पर वह सो जाता है कभी कंटकाकीर्ण भूमि में ही पड़ रहता है, कभी मीठा स्वच्छ जल उसे पीने को मिलता है कभी खारा मलिन जल भी वह पी लेता है, तो भी इस विषय में वह सुख और दुःख नहीं मानता। उसे अपने लक्ष्य स्थान पर पहुंचने के लिये यह सब करना पड़ता है। उसी प्रकार प्रकृत में भी मुक्ति को चाहने वाले संयमी मुनि के

---

(८) ઐશ્વર્યમદનું ગ્રહણ થાય છે. મદ પણ અહંકાર જ છે માટે તેનો પણ પરિત્યાગ કરી દેવો જોઈએ, કારણ કે જાતિ વિગેરેનું હીનપણું હોવા છતાં પણ આત્મા કાલ લબ્ધિ આદિના પ્રાપ્ત થવાથી ધર્મનો અધિકારી બની જાય છે, ધર્મપ્રાપ્તિમાં જાતિ વિગેરે બાધક થતા નથી.

જેવી રીતે દેશદેશાન્તરમાં ભ્રમણ કરવાવાળા પ્રાણીને કોઈ વખત કોઈ સ્થાનપર સુખ, કોઈ વખત કોઈ જગ્યાએ દુઃખ મળે છે. કોઈ વખત ગામમાં વસે છે કોઈ વખત વગડામાં પણ રહેવાનો પ્રસંગ આવે છે કોઈ વખત પ્રશસ્ત ભૂમિ પર તે સુઈ જાય છે કોઈ વખત કાંટાવાળી ભૂમિમાં પણ પડયું રહેવું પડે છે. કોઈ વખત મીઠું સ્વચ્છ પાણી પીવા મળે છે કોઈ વખત ખારૂં મલિન પાણી પણ પીવા મળે છે તો પણ આ બધા વિષયોમાં તે સુખ અગર દુઃખ માનતો નથી. તેને પોતાના લક્ષ્ય સ્થાને પહોંચવા માટે આ બધું કરવું પડે છે તે પ્રકારે પ્રકૃતમાં પણ મુક્તિને ચાહવાવાળા સંયમીમુનિ માટે ઉંચ નીચ ગોત્રની

प्राणिनां सातं प्रियं भवतीति विचार्य्य केषाञ्चिदपि प्राणिनामहितं न कर्त्तव्यम्। तदहिताचरणस्य यत्फलं भवति तद्दर्शयति—' भूएहिं ' इत्यादि।

मूलम्—भूएहिं जाण पडिलेह सायं, समिए एयाणुपस्सी, तं जहा—अंधत्तं बहिरत्तं मूयत्तं काणत्तं कुंटत्तं खुज्जत्तं वडभत्तं सामत्तं सबलत्तं, सह पमाएणं अणेगरूवाओ जोणीओ संधायइ, विरूवरूवे फासे संपरिवेयइ ॥ सू० २ ॥

छाया—भूतेषु जानीहि सातम् समित एतदनुदर्शी, तद्यथा—अन्धत्वं वधिरत्वं मूकत्वं काणत्वं कुब्जत्वं वडभत्वं श्यामत्वं शवलत्वं सह प्रमादेन अनेकरूपा योनीः सन्दधाति विरूपरूपान् स्पर्शान् परिसंवेदयते ॥ सू० २ ॥

लिये उच्च नीच गोत्र की प्राप्ति में भी हर्ष विषाद करना उचित नहीं है। इस प्रकार के विचार से मान आदि का जब आत्मा से अभाव हो जाता है तब कषाय का अभाव स्वतः सिद्ध होने से संयमी को संयमभाव में दृढ़ता, और विषयादिकों में अदृढ़ता आ जाती है, इससे सम्यग्ज्ञानादिक सद्गुणों की प्राप्ति होने से संयमी मुनि को मुक्ति का लाभ कालान्तर में या उसी भव में होजाता है। इस पूर्वोक्त कथन से संयमी मुनि को इस बात का भी सदा विचार करते रहना चाहिये कि मान और अपमान के कारण-कलापों की उपस्थिति होने पर मुझे हर्ष और विषाद नहीं करना चाहिये ॥ सू० १ ॥

सांसारिक प्राणियों को सातावेदनीय के उदय से सुख एवं सुखकारक सामग्री, तथा असातावेदनीय के उदय से दुःख एवं दुःखकारक

प्राप्तिमां पण हर्ष शोक करवो उचित नथी. आ प्रकारना विचारथी मान आदिनो ज्यारे आत्माथी अभाव थई जाय छे त्यारे कषायनो अभाव स्वतः सिद्ध होवाथी संयमीने संयम भावमां दृढता अने विषयादिकोमां अदृढता आवी जाय छे. माटे सम्यग्ज्ञानादिक सद्‌गुणोनी प्राप्ति होवाथी संयमी मुनिने मुक्तिनो लाभ कालान्तरमां अगर आ भवमां थाय छे.

આ પૂર્વોક્ત કથનથી સંયમી મુનિએ આ વાતનો પણ સદા વિચાર રાખવો જોઈએ કે–માન અને અપમાનના કારણકલાપોની ઉપસ્થિતિ હોવાથી હર્ષ અને વિષાદ કરવું મારૂં કર્તવ્ય નથી. ॥ સૂ૦ ૧ ॥

સાંસારિક પ્રાણિયોને સાતાવેદનીયના ઉદયથી સુખ અને સુખકારક સામગ્રી, અને અસાતાવેદનીયના ઉદયથી દુઃખ અને દુઃખકારક સામગ્રી પ્રાપ્ત થાય છે,

मानादिनिरसनेन कषायव्युदासस्तेन च संयमे दृढता विषये चादृढता, तया च सम्यग्ज्ञानाद्यधिगमस्तेन च मोक्ष इति क्रमेण सर्वथा मानापमानादौ हर्षक्रोधौ त्याज्याविति भावः।

यथा देशदेशान्तरं भ्रमन् पथिकः क्वचित् सुखं क्वचिद् दुःखं लभते, क्वचिद् ग्रामे क्वचिदरण्ये वसति, क्वचित्समभूमिषु क्वचिच्च विषमभूमिषु शेते, क्वचित्स्वच्छजलं क्वचिद् दूषितजलं च पिबति, न च सुखदुःखे गणयति लक्ष्यगम्यदेशप्राप्तिकामः, तथैव प्रकृतेऽपि उच्चगोत्रादिप्राप्तौ न हर्ष-शोकौ मुक्तिमाप्तुकामेन संयमिना कार्याविति वर्तुलकार्थः ॥ सू० १ ॥

---

(७) सूत्रमद, (८) ऐश्वर्यमद का ग्रहण हो जाता है। मद भी अहंकार ही है, अतः इनका परित्याग कर देना चाहिये; क्योंकि जाति वगैरह से हीन होने पर भी आत्मा काल लब्धि आदि के प्राप्त होने पर धर्म का अधिकारी बन जाता है। धर्मप्राप्ति में जाति वगैरह बाधक नहीं होते हैं।

जिस प्रकार देश-देशान्तर में भ्रमण करने वाले प्राणी को कभी किसी स्थान पर सुख, कभी किसी जगह दुःख मिलता है। कभी वह ग्राम में बस जाता है कभी उसे वन में भी बसने का अवसर आता है, कभी प्रशस्त भूमि पर वह सो जाता है कभी कंटकाकीर्ण भूमि में ही पड़ रहता है, कभी मीठा स्वच्छ जल उसे पीने को मिलता है कभी खारा मलिन जल भी वह पी लेता है, तो भी इस विषय में वह सुख और दुःख नहीं मानता। उसे अपने लक्ष्य स्थान पर पहुंचने के लिये यह सब करना पड़ता है। उसी प्रकार प्रकृत में भी मुक्ति को चाहने वाले संयमी मुनि के

---

(८) ઐશ્વર્યમદનું ગ્રહણ થાય છે મદ પણ અહંકાર જ છે માટે તેનો પણ પરિત્યાગ કરી દેવો જોઈએ, કારણ કે જાતિ વિગેરેનું હીનપણું હોવા છતાં પણ આત્મા કાલ લબ્ધિ આદિના પ્રાપ્ત થવાથી ધર્મનો અધિકારી બની જાય છે, ધર્મપ્રાપ્તિમાં જાતિ વિગેરે બાધક થતા નથી.

જેવી રીતે દેશદેશાન્તરમાં ભ્રમણ કરવાવાળા પ્રાણીને કોઇ વખત કોઈ સ્થાનપર સુખ, કોઈ વખત કોઇ જગ્યાએ દુઃખ મળે છે. કોઇ વખત ગામમાં વસે છે કોઈ વખત વગડામાં પણ રહેવાનો પ્રસંગ આવે છે કોઇ વખત પ્રશસ્ત ભૂમિ પર તે સુઇ જાય છે કોઈ વખત કાંટાવાળી ભૂમિમાં પણ પડ્યું રહેવું પડે છે. કોઇ વખત મીઠું સ્વચ્છ પાણી પીવા મળે છે કોઇ વખત ખારૂં મલિન પાણી પણ પીવા મળે છે તો પણ આ બધા વિષયોમાં તે સુખ અગર દુઃખ માનતો નથી. તેને પોતાના લક્ષ્ય સ્થાને પહોંચવા માટે આ બધું કરવું પડે છે તે પ્રકારે પ્રકૃતમાં પણ મુક્તિને ચાહવાવાળા સંયમીમુનિ માટે ઉંચ નીચ ગોત્રની

प्राणिनां सातं प्रियं भवतीति विचार्य्य केषाञ्चिदपि प्राणिनामहितं न कर्त्तव्यम्। तदहिताचरणस्य यत्फलं भवति तद्दर्शयति—'भूएहिं' इत्यादि।

मूलम्—भूएहिं जाण पडिलेह सायं, समिए एयाणुपस्सी, तं जहा—अंधत्तं बहिरत्तं मूयत्तं काणत्तं कुंटत्तं खुज्जत्तं वडभत्तं सामत्तं सबलत्तं, सह पमाएणं अणेगरूवाओ जोणीओ संधायइ, विरूवरूवे फासे संपरिवेयइ ॥ सू० २ ॥

छाया—भूतेषु जानीहि सातम् समित एतदनुदर्शी, तद्यथा—अन्धत्वं बधिरत्वं मूकत्वं काणत्वं कुब्जत्वं वडभत्वं श्यामत्वं शबलत्वं सह प्रमादेन अनेकरूपा योनीः सन्दधाति विरूपरूपान् स्पर्शान् परिसंवेदयते ॥ सू० २ ॥

लिये उच्च नीच गोत्र की प्राप्ति में भी हर्ष विषाद करना उचित नहीं है। इस प्रकार के विचार से मान आदि का जब आत्मा से अभाव हो जाता है तब कषाय का अभाव स्वतः सिद्ध होने से संयमी को संयमभाव में दृढ़ता, और विषयादिकों में अदृढ़ता आ जाती है, इससे सम्यग्ज्ञानादिक सद्गुणों की प्राप्ति होने से संयमी मुनि को मुक्ति का लाभ कालान्तर में या उसी भव में होजाता है। इस पूर्वोक्त कथन से संयमी मुनि को इस बात का भी सदा विचार करते रहना चाहिये कि मान और अपमान के कारण-कलापों की उपस्थिति होने पर मुझे हर्ष और विषाद नहीं करना चाहिये ॥ सू० १ ॥

सांसारिक प्राणियों को सातावेदनीय के उदय से सुख एवं सुखकारक सामग्री, तथा असातावेदनीय के उदय से दुःख एवं दुःखकारक

પ્રાપ્તિમાં પણ હર્ષ શોક કરવો ઉચિત નથી. આ પ્રકારના વિચારથી માન આદિનો જ્યારે આત્માથી અભાવ થઈ જાય છે ત્યારે કષાયનો અભાવ સ્વતઃ સિદ્ધ હોવાથી સંયમીને સંયમ ભાવમાં દઢતા અને વિષયાદિકોમાં અદઢતા આવી જાય છે. માટે સમ્યગ્જ્ઞાનાદિક સદ્ગુણોની પ્રાપ્તિ હોવાથી સંયમી મુનિને મુક્તિનો લાભ કાલાન્તરમાં અગર આ ભવમાં થાય છે.

આ પૂર્વોક્ત કથનથી સંયમી મુનિએ આ વાતનો પણ સદા વિચાર રાખવો જોઈએ કે—માન અને અપમાનના કારણકલાપોની ઉપસ્થિતિ હોવાથી હર્ષ અને વિષાદ કરવું મારૂ કર્તવ્ય નથી. ॥ સૂ૦ ૧ ॥

સાંસારિક પ્રાણિયોને સાતાવેદનીયના ઉદયથી સુખ અને સુખકારક સામગ્રી, અને અસાતાવેદનીયના ઉદયથી દુઃખ અને દુ.ખકારક સામગ્રી પ્રાપ્ત થાય છે,

टीका-' भूतेषु ' इति। अत्र मूले ' भूएहिं ' इति तृतीयान्तपाठः सप्तम्यर्थे, भूतेषु=भवन्ति, भविष्यन्ति, अभूवन् च सत्तारूपेणेति भूतानि=प्राणिनस्तेषु सातं= सुखं तद्विरुद्धं चासातं=दुःखं प्रत्युपेक्ष्य=सूक्ष्मधिया विचार्य जानीहि=बुध्यस्व। उपयोगलक्षणो जीवः कालत्रयेऽपि सत्तां दधाति, अतः प्राणिनस्त्रैकालिकसत्ताप्रतिपादनायात्र भूतशब्दोपादानं कृतमिति बोध्यम्।

सामग्री प्राप्त होती है, ऐसा विचार कर किसी भी प्राणी का जरा भी अहित नहीं करना चाहिये। अहित आचरण का जो फल होता है सो कहते हैं—

'भूएहिं जाण' इत्यादि। प्रत्येक जीवात्मा-चाहे वह दरिद्री हो; चाहे भिक्षुक हो; चाहे धनी हो; चाहे गुणी हो; कोई भी क्यों न हो; यही चाहता है कि हमको शांतिलाभ हो, सुख प्राप्त हो। चाहे आस्तिक हो या नास्तिक; सबका एक यही लक्ष्य है। इससे प्रतिकूल कोई भी नहीं मिलेगा। एक भिक्षुक जो दर दर का भिखारी बनकर अपने उदर का निर्वाह करता है उससे भी यदि प्रश्न किया जाय तो वह भी यही कहेगा कि, क्या करूँ; मुझे शाता-सुख नहीं है। अतः इस प्रकार के उसके कथन से यह बात सत्य साबित होती है कि वह भी शाता-सुख पाने का अभिलाषी है। किड़ी को भी कोई छूता है तो वह भय के मारे भागती है। वृक्ष के नीचे किसीने अग्नि जलाई हो तो, वह उसके आताप से मुरझा जाता है। लजवंती एक जात की वनस्पति होती है जो छूते ही संकुचित

એવો વિચાર કરી કોઇ પણ પ્રાણિનું જરા પણ અહિત નહિ કરવું જોઈએ. અહિત આચરણનું જે ફળ હોય છે તે કહે છે—

' भूएहिं जाण ' ઇત્યાદિ. પ્રત્યેક જીવાત્મા ભલે તે દરિદ્રી હોય અગર ભિક્ષુક હોય, ભલે ધની હોય ચાહે ગુણી હોય. ભલે કોઇ પણ પ્રકારના હોય પણ 'અમોને શાંતિનો લાભ થાઓ, સુખ થાઓ' ભલે નાસ્તિક હોય કે આસ્તિક પણ બધાનું આ એક જ લક્ષ્ય છે. એનાથી પ્રતિકૂળ કોઈ પણ કારણ મળશે નહિ. એક ભિક્ષુક જે ઘરઘરનો ભિખારી બનીને પોતાના પેટનો નિર્વાહ કરે છે તેનાથી પણ એ પ્રશ્ન કરવામાં આવે તો તે પણ એ જ કહેશે કે શું કરૂં મને શાતા-સુખ નથી, માટે આ પ્રકારના તેના કથનથી એ વાત સત્ય સાબિત થાય છે કે તે પણ શાતા-સુખ મેળવવાનો અભિલાષી છે. કિડીને પણ કોઇ અડે છે તો તે પણ ભયથી દૂર ભાગે છે. વૃક્ષની નીચે કોઇએ અગ્નિ સળગાવી હોય તો તે તેના આ તાપથી સુકાઇ જાય છે. લજ્જવંતી એક જાતની વનસ્પતિ હોય છે જે અડકવાથી

हो जाती है। इन सबकी इन बाह्य चेष्टाओं से यही मालूम किया जा सकता है कि-इनके अन्दर रहने वाली आत्मा भी शाता अर्थात् सुख का अभिलाषी है। मतलब यही है कि-चाहे कोई भी जात का जीव क्यों न हो; सभी इस शाता-सुख के अभिलाषी हैं। यहां पर यह प्रश्न हो सकता है कि वह शाता-सुख कैसे और कहां प्राप्त हो सकता है?। भवाभिनंदी जीव इस बात का सहसा उत्तर देंगे कि-वह शाता-सुख सांसारिक पदार्थों के सेवन से ही मिल सकता है। परन्तु यह धारणा उनकी गलत है। यदि ऐसा ही होता तो फिर चक्रवर्ती जैसे विशाल वैभव के भोक्ता इनका परित्याग क्यों करते?। कोई आर्थिक शास्त्रवेत्ता कहेगा कि-धन की प्राप्ति में ही शान्ति-सुख समाया हुआ है। परन्तु यह विचार भी ठीक नहीं। क्योंकि यदि यही सिद्धान्त स्वीकृत किया जाय, तो फिर आज जो भीख मांगकर अपना गुजारा करने वाले दरिद्री जीव हैं उनसे जाकर यदि यह कहा जावे कि हम तुम को दो लाख रुपया देते हैं, तुम अपने शरीर का पाव भर भी मांस निकालकर हमको दे दो, तो वह कभी भी आपकी मांग की पूर्ति नहीं करेगा। अतः अधिक क्या कहा जाय, यह बात निश्चित है कि-इन क्षणिक विनश्वर पदार्थों में सच्ची सुख-

---

સંકુચિત થઇ જાય છે આ બધાની આ બાહ્ય ચેષ્ટાઓથી એ માલમ થાય છે કે-તેની અંદર રહેવાવાળો આત્મા પણ શાતા અર્થાત્ સુખનો અભિલાષી છે. મતલબ એ છે કે ભલે કોઇ પણ જાતનો જીવ હોય પણ તે શાતા-સુખનો અભિલાષી છે. આ ઠેકાણે એ પ્રશ્ન થાય છે કે તે શાતા-સુખ કેવી રીતે અને કઇ જગ્યોએ પ્રાપ્ત થઇ શકે? ભવાભિનંદી જીવ આ વાતનો સહસા ઉત્તર આપશે કે-તે શાતા-સુખ સાંસારિક પદાર્થોના સેવનથી જ મળી શકે છે. પરંતુ એવું ધારવું તે ગલત છે. જો એ જ પ્રમાણે હોય તો પછી ચક્રવર્તી જેવા વિશાળ વૈભવના ભોકતા તેનો પરિત્યાગ કેમ કરત? કોઈ આર્થિકશાસ્ત્રવેત્તા કહેશે કે ધનની પ્રાપ્તિમાં જ શાતા-સુખ સમાયા છે. પરંતુ તે વિચાર પણ ઠીક નથી, કારણ કે કદાચ તે સિદ્ધાંત સ્વીકૃત કરવામાં આવે તો પછી આજ જે ભીખ માંગી પોતાનો ગુજારો કરવાવાળા દરિદ્રી જીવ છે તેની પાસે જઇને તેને કહેવામાં આવે કે-'અમે તને બે લાખ રૂપિયા આપીશું તું પોતાના શરીરનુ પાશેર માંસ અમને કાપીને આપી દે' તો તે પણ તમારી આ માંગણી પુરી કરશે નહિ માટે શું વધારે કહેવું? એ વાત નિશ્ચિત છે કે આવા ક્ષણિક વિનશ્વર પદાર્થોમાં સાચી સુખશાંતિ પ્રદાન કરવાની

शान्ति प्रदान करने की योग्यता नहीं है। यह तो हमारी कल्पना है, जो हमने इनमें सुखशान्ति मान रक्खी है। जिन जड़ स्थूल वस्तुओं में सुख की कल्पना करके साधारण मनुष्य भी जी-तोड परिश्रम कर रहे हैं, उनकी प्राप्ति होने पर भी उन्हें सुख नहीं मिलता, क्योंकि उनमें सुख प्रदान करने की शक्ति है नहीं। इसी से आज सारा संसार, चाहे वैभवसम्पन्न हो; चाहे दरिद्रावस्थापन्न हो; दुःखी ही है। यह दुःख तबतक नहीं मिट सकता जब तक सुख के वास्तविक स्वरूप का पता न लगा लिया जायगा, अथवा उसके स्थान का पूर्ण ज्ञान न हो जावेगा।

वास्तविक सुख क्या है? इसका एक मात्र उत्तर है-निराकुलता। क्योंकि संसार में जब कभी इच्छाओं के शांत होने पर यत्-किञ्चित् सुख की अनुभूति होती है तब इससे इस बात का अनुमान भी लगाया जा सकता है कि कोई ऐसी भी अवस्था है कि जहां पर इसका पूर्णरूप से विकाश है। वह निराकुलता के सिवाय और कोई दूसरी अवस्था नहीं है। इस निराकुलता का पूर्णभोक्ता परमात्मा है। इसी का अभिलाषी प्रत्येक संसारी जीव है। इसी अभिप्राय को हृदय में रखकर सूत्रकार कहते हैं कि "भूतेषु जानीहि प्रत्युपेक्ष्य सातम्'-हे भव्य! प्रत्येक जीवों में व्यक्त और अव्यक्तरूप से शातारूप जो सुख है उसकी अभिलाषा

યોગ્યતા નથી, એ તો અમારી કલ્પના છે, જે અમે તેમા સુખ શાન્તિ માની રાખેલ છે. જે જડ અને સ્થૂળ વસ્તુઓમાં સુખની કલ્પના કરીને સાધારણ મનુષ્ય પણ જીવતોડ પરિશ્રમ કરે છે. તેના પ્રાપ્તિ થવા છતાં પણ તેને સુખ મળતું નથી. કારણ કે તેમાં સુખ પ્રદાન કરવાની શક્તિ છે જ નહિ. એટલા માટે આજ સારો સંસાર ભલે વૈભવસંપન્ન હોય અગર દરિદ્રાવસ્થાપન્ન હોય, દુઃખી જ છે. એ દુઃખ ત્યાં સુધી મટી શકતું નથી જ્યાં સુધી સુખનું વાસ્તવિક સ્વરૂપ હાથ ન લાગે, અગર તેના સ્થાનનુ પૂર્ણ જ્ઞાન ન થાય.

વાસ્તવિક સુખ શું છે? તેનો એક માત્ર ઉત્તર છે-નિરાકુળતા. કારણ કે સંસારમાં જ્યારે કોઈ વખત ઇચ્છાઓના શાંત થવાથી જરાક સુખની અનુભૂતિ થાય છે ત્યારે તેથી એ વાતનો અનુમાન કરવામાં આવે છે કે-કોઈ એવી પણ અવસ્થા છે કે જે ઠેકાણે તેનો પૂર્ણ રૂપથી વિકાશ છે, તે નિરાકુળતા સિવાય બીજી કોઈ અવસ્થા નથી. આ નિરાકુળતાનો પૂર્ણ ભોક્તા પરમાત્મા છે. તેનો અભિલાષી પ્રત્યેક સંસારી જીવ છે આ અભિપ્રાયને હૃદયમાં રાખીને સૂત્રકાર કહે છે કે—"भूतेषु जानीहि प्रत्युपेक्ष्य सातम्" હે ભવ્ય! પ્રત્યેક જીવમાં વ્યક્ત અને અવ્યક્ત રૂપથી શાતારૂપ જે સુખ છે, તેની અભિલાષા છુપાયેલી છે, તે

छुपी हुई है, इस बात का तूं अपनी सूक्ष्म बुद्धि से विचार कर। इस सूत्र के अवतरण में जो सातवेदनीयजन्य सुख के अभिलाषी प्रत्येक जीव को बतलाया गया है वह इसी निराकुलतारूप सुख का परम्पराकारण होने से ही प्रकट किया गया है। क्योंकि यह निश्चित सिद्धान्त है जो सातावेदनीय कर्म के उदय से सांसारिक वैभवजन्य सुख प्राप्त होगा वह क्षणिक-विनश्वर होगा, तथा उसका उदय दुःखों से अन्तरिम-छुपा हुवा होगा। इसलिये ऐसे सुख से आत्मा साक्षात् निराकुलतारूप परिणति का सदा भोक्ता नहीं बन सकता। हां! सांसारिक सुख की सामग्री यदि जीवों के पास है, और यदि उनके चित्त में हेयोपादेय का विवेक जागृत है तो वे उसके द्वारा कुछ अंशों में सांसारिक कार्यों से निराकुल बनकर शुभ धार्मिक क्रियाओं का आराधन भलीभांति कर सकते हैं। इस अवस्था में उनके शुभभावों की क्रमशः जागृति होती है, और वह उन्हें परम्परारूप से आत्मकल्याणकारी मार्ग का अधिकारी बना देती है। जो भवाभिनंदी है अथवा जिस किसी प्रकार से अपना स्वार्थ साधन करने में ही मस्त है, 'अपने सुख में ही सबका सुख समाया हुआ है'-जो इस दुर्भावना का वशवर्ती है, "सातवेदनीय के उदय से जिस प्रकार

વાતને તું તારી પોતાની સૂક્ષ્મ બુદ્ધિથી વિચાર કર. આ સૂત્રના અવતરણમાં જે સાતાવેદનીયજન્ય સુખના અભિલાષી પ્રત્યેક જીવને બતાવવામાં આવ્યા છે, તે આ 'નિરાકુલતારૂપ સુખના પરંપરાકારણ હોવાથી પ્રકટ કર્યા છે, કારણ કે એ નિશ્ચિત સિદ્ધાંત છે-જે સાતાવેદનીય કર્મના ઉદયથી સાંસારિક વૈભવજન્ય સુખ પ્રાપ્ત થશે તે ક્ષણિક વિનશ્વર હશે, અને તેનો ઉદય દુઃખોથી અન્તરિમ -છુપાયેલો હશે માટે એવા સુખથી આત્મા સાક્ષાત્ નિરાકુલતારૂપ પરિણતિનો સદા ભોક્તા બની શકતો નથી. હાં, સાંસારિક સુખની સામગ્રી કદાચ જીવોની પાસે છે, અને કદાચ તેના ચિત્તમાં હેયોપાદેયનો વિવેક જાગ્રત છે તો તે તેના દ્વારા થોડા અંશોમાં સાંસારિક કાર્યોથી નિરાકુળ બનીને શુભ ધાર્મિક ક્રિયાઓનું આરાધન ભલીભાંતિ કરી શકે છે. આ અવસ્થામાં તેના શુભ ભાવોની ક્રમશ: જાગ્રતિ થાય છે, અને તે તેને પરંપરાથી આત્મકલ્યાણકારી માર્ગનો અધિકારી બનાવી દે છે. જે ભવાભિનંદી છે અથવા જેકોઈ પ્રકારથી પોતાનો સ્વાર્થ સાધવામાં જ મસ્ત છે 'પોતાના સુખમાં જ બધાના સુખ સમાયેલા છે' જે આવી દુર્ભાવનાને વશવર્તી છે, "સાતાવેદનીયના ઉદયથી જેવા પ્રકારે

समितः=पञ्चसमितिभिः समितः सन् एतदनुदर्शी=एतत्सुखं दुःखं वा वक्ष्यमाणं वाऽन्धत्वादिकं द्रष्टुं=विलोकितुं शीलं यस्य स एतदनुदर्शी=प्राणिशुभाशुभावलोकी त्वं जातिकुलादिमदजनितकटुकर्मविपाकमन्धत्वादिकं ज्ञात्वा भूतेषु सातं जानीहि, इति सम्बन्धः। तदेव दर्शयति—'तद्यथे'-त्यादिना।

हम सांसारिक वैभव के भोक्ता बनें हैं, वैसे ही दीन दुःखी जीव असातावेदनीय के उदय से दुःख दरिद्रावस्था के भोक्ता बने हैं, फिर हमें इनके दुःख को दूर करने की और इन्हें सुख पहुंचाने की क्या आवश्यकता है? क्योंकि हम किसी के कर्मोदय को तो मेट सकते नहीं हैं।" इत्यादि दुर्भावनाओं से जिनका अन्तःकरण दूषित है—वे 'प्रत्येक संसारी जीव सुखाभिलाषी है' इस बात को नहीं समझ सकते। इसे समझने के लिये सूक्ष्म-सद्ज्ञानरूपी बुद्धि, एवं संयम जीवन की आवश्यकता है। इसीका खुलासा करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि—'समिए एयाणुपस्सी समितः एतदनुदर्शी'। जो समितियों के पालन करने में सावधान है, जिसकी चित्तवृत्ति जीवों को दुःखित देखकर द्रवित हो जाती है, जो जीवों की रक्षा करने में सदा सावधान रहते हैं, जिनकी प्रत्येक क्रिया यतनापूर्वक होती है, ऐसे समितिपालक संयमी मुनि ही 'एतदनुदर्शी' इस बात का अनुभव कर सकते हैं। पांच समितियों के आराधन करने का उद्देश्य जीवों की एकमात्र रक्षा करना है, इसमें स्व और पर दोनों की रक्षा आजाती है। ईर्यासमिति में लवलीन साधु—त्रसराप्रमाण दृष्टि से

અમો સાંસારિક વૈભવનાં ભોક્તા બન્યા છીએ તેવી જ રીતે એ દીન દુઃખી જીવ અસાતાવેદનીયના ઉદયથી દુ ખ દરિદ્રાવસ્થાના ભોક્તા બન્યા છે. પછી અમને તેના દુઃખોને દૂર કરવાની અને તેમને સુખ પહોંચાડવાની શું આવશ્યકતા છે? કારણ કે અમો કોઈના કર્મોદયને મિટાવી શકતા નથી" ઈત્યાદિ દુર્ભાવનાઓથી જેનું અંતઃકરણ દૂષિત છે તે "પ્રત્યેક સંસારી જીવ સુખાભિલાષી છે' એ વાતને સમજી શકતા નથી. તેને સમજવાને માટે સૂક્ષ્મ સદ્જ્ઞાનરૂપી બુદ્ધિ અને સંયમ જીવનની આવશ્યકતા છે, તેનો ખુલાસો કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે—'समिए एयाणुपस्सी' समितः एतदनुदर्शी, જે સમિતિઓના પાલન કરવામાં સાવધાન છે, જેની ચિત્તવૃત્તિ જીવોની રક્ષા કરવામાં સદા સાવધાન રહે છે, જેની પ્રત્યેક ક્રિયા યતનાપૂર્વક થાય છે, એવા સમિતિપાળક સંયમી મુનિ જ 'एतदनुदर्शी' એ વાતનો અનુભવ કરી શકે છે. પાંચ સમિતિઓનું આરાધન કરવાનો ઉદ્દેશ્ય જીવોની એક માત્ર રક્ષા કરવાની છે. તેમાં સ્વ અને પર બન્નેની રક્ષા આવી જાય છે ઈર્યાસમિતિમાં લવલીન સાધુ

मार्ग को देखकर चलता हुवा मुनि सदा इस बात का पक्का ध्यान रखता है कि कहीं कोई छोटा मोटा जीव मेरे पैर के नीचे आकर प्राणों से वियुक्त न हो जाय। इसमें पर के प्राणों का रक्षण के साथ २ अपने अहिंसारूप महाव्रत का संरक्षण अच्छी तरह से होता रहता है। १। भाषासमिति में प्रवृत्त साधु सदा हित-मित-वचन बोलेगा, दूसरे जीवों को जिस वचन से कष्ट पैदा हो, इस प्रकार के सावद्य व कठोर वचन नहीं बोलता है। इस समिति से सत्य महाव्रत की रक्षा होती है। २। एषणासमिति में प्रवृत्त संयमी मुनि सिर्फ संयम यात्रा का निर्वाह के लिये भ्रमरभिक्षा द्वारा शुद्ध-निर्दोष प्रासुक आहार ग्रहण करता है। ३। आदाननिक्षेपण-समिति में मुनि अपने संयम के उपकरणों की उभय –दोनों काल प्रतिलेखना कर उनके लेने और रखने में यतना करता है। ४। प्रतिष्ठापना–समिति में मुनि जीवरहित स्थान में मल-मूत्रादिक परिठवता है। ५। इन समितियों में प्रवृत्ति करने वाले संयमी मुनि 'सब ही जीव सुख चाहते हैं' ऐसा अनुभव करते हैं। जो वर्तमान में सत्तारूप से रहते हैं, भविष्यत् काल में भी जो सत्तारूप से रहेंगे, एवं भूतकाल में जो सत्तारूप से रहे हैं वे भूत हैं। सूत्रकार ने जीव प्राणी आदि शब्दों का प्रयोग न कर उसकी त्रैकालिक सत्ता प्रतिपादन करने के लिये "भूत"

ઝુસરાપ્રમાણુ દૃષ્ટિથી માર્ગને દેખીને ચાલતાં સદા આ વાતનો ખ્યાલ રાખે છે કે–કોઈ નાના મોટા જીવ મારા પગ નીચે આવી પ્રાણોથી વિમુક્ત ન થઈ જાય. તેમાં બીજાના પ્રાણોના રક્ષણની સાથે સાથે પોતાના અહિંસારૂપ મહાવ્રતનું સંરક્ષણ સારી રીતે થાય છે (૧). ભાષાસમિતિમાં પ્રવૃત્ત સાધુ સદા હિત–મિત વચન બોલશે, બીજા જીવોને જે વચનથી કષ્ટ પેદા થાય તે પ્રકારના સાવદ્ય કઠોર વચન બોલતા નથી, આ સમિતિથી સત્યમહાવ્રતની રક્ષા થાય છે (૨). એષણાસમિતિમાં પ્રવૃત્ત સંયમી મુનિ ફક્ત સંયમયાત્રાના નિર્વાહ માટે ભ્રમર-ભિક્ષા દ્વારા શુદ્ધ નિર્દોષ પ્રાસુક આહાર ગ્રહણ કરે છે (૩). આદાનનિક્ષેપણ સમિતિમાં મુનિ પોતાના સંયમના ઉપકરણોની ઉભય–બંને કાળ પ્રતિલેખના કરી તેના લેવામાં અને રાખવામાં યતના કરે (૪). પ્રતિષ્ઠાપનાસમિતિમાં મુનિ જીવરહિત સ્થાનમાં મળ મૂત્રાદિક પરિઠવે (૫). આ સમિતિઓમા પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા સંયમી મુનિ 'બધા જીવો સુખ ચાહે છે' એવો અનુભવ કરે છે. જે વર્તમાનમાં સત્તા રૂપથી રહે છે, ભવિષ્ય કાળમાં પણ જે સત્તારૂપથી રહેશે અને ભૂતકાળમાં જે સત્તા રૂપથી રહેલા છે તે ભૂત છે. સૂત્રકારે જીવ પ્રાણી આદિ શબ્દોના પ્રયોગ ન કરી તેની ત્રૈકાલિક સત્તા પ્રતિપાદન કરવા માટે "भूत" એ શબ્દનો સૂત્રમાં પ્રયોગ

अन्धत्वम्=उपहतनेत्रत्वं द्रव्यतो भावतोऽपि भवति, तथैकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिया द्रव्यभावान्धाः। चतुरिन्द्रियो मिथ्यादृष्टिपञ्चेन्द्रियश्चोभौ भावान्धौ, द्रव्यभावभेद-भिन्नमन्धत्वं नियमतो दुःखजनकं भवति । एवं बधिरत्वं=कर्णापाटवं, द्रव्यतो बधिरः श्रवणशक्तिरहितः, भावबधिरो जिनवचनश्रवणविकलः। मूकत्वं=वचनविकलत्वं द्रव्यतः, भावतो मूको मिथ्यात्वाद्यभिनिवेशेन स्वदोषापह्नवाय जिनवचनाप्रतिपादकः।

इस शब्द का सूत्र में प्रयोग किया है। उपयोगलक्षणवाला जीव तीनों काल में भी सत्ता से रहित नहीं होता है, इसलिये प्राणी की त्रैकालिक सत्ता प्रतिपादन करने के लिये सूत्रकारने इस सूत्र में "भूत" शब्द का प्रयोग किया है। अतः जब संसार का प्रत्येक प्राणी सुखाभिलाषी है, तब उसके साथ अत्याचार-अनर्थ कर उन्हें दुःखित करनेवाला प्राणी स्वयं अपने को दुःखित करने की चेष्टा करता है। जाति और कुलादिक के अभिमान से उन्मत्त बनकर जो दूसरों को हीन समझता है, तथा 'तूं अंधा है, तूं बहिरा है, तूं मूगा है' इत्यादि प्रकार के कर्कश शब्दों द्वारा जो दूसरों का तिरस्कार करता है वह अपनी कषायपरिणति से आत्मा को मलिन करता हुआ तदुपार्जित कर्म के कटुक विपाक को अवश्य भोगता है। इसी बात का दिग्दर्शन कराते हुए सूत्रकार कहते हैं कि-"अन्धत्वं मूकत्वं" इत्यादि। देखने की शक्ति की अभिव्यक्ति से रहित होना इसका नाम अन्धत्व है, यह अंधापना द्रव्य और भाव के भेद से २ प्रकार का है। एकेन्द्रिय, जीव दोइन्द्रिय जीव और तीनइन्द्रिय जीवों में दोनों प्रकार से अंधता है। पौद्गलिक द्रव्यइन्द्रियरूप चक्षु-इन्द्रिय की विकलता द्रव्य-अन्धता है,

---

કરેલ છે. ઉપયોગ લક્ષણવાળા જીવ ત્રણે કાળમાં પણ સત્તાથી રહિત થતા નથી, માટે પ્રાણીની ત્રૈકાલિક સત્તા પ્રતિપાદન કરવા માટે સૂત્રકારે આ સૂત્રમાં ભૂત શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો છે.માટે જ્યારે સંસારના દરેક પ્રાણી સુખાભિલાષી છે ત્યારે તેની સાથે અત્યાચાર-અનર્થ કરી તેને દુઃખ દેવાવાળા પ્રાણી સ્વયં પોતાની જાતને જ દુઃખિત કરવાની ચેષ્ટા કરે છે. જાતિ અને કુળાદિકના અભિમાનથી ઉન્મત્ત બનીને જે બીજાને હીન સમજે છે, અને 'તું આંધળો છે, તું બહેરો છે, તું મુંગો છે' ઈત્યાદિ પ્રકારનાં કર્કશ શબ્દો દ્વારા જે બીજાનો તિરસ્કાર કરે છે તે પોતાની કષાયપરિણતિથી આત્માને મલિન કરે છે. તદુપાર્જીત કર્મના કટુક વિપાકને અવશ્ય ભોગવે છે. આ વાતનો દિગ્દર્શન કરાવતાં સૂત્રકાર કહે છે કે-" अन्धत्व मूकत्वं " ઈત્યાદિ. દેખવાની શક્તિની અભિવ્યક્તિથી રહિત થવું તેનું નામ અંધત્વ છે. તે આંધાપણુ દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી બે પ્રકાર છે. એકેન્દ્રિય જીવ, બેન્દ્રિય જીવ અને ત્રણ ઈન્દ્રિય જીવોમાં બે પ્રકારથી અંધતા છે. પૌદ્ગલિક દ્રવ્ય-ઈન્દ્રિયરૂપ ચક્ષુ-ઈન્દ્રિયની વિકલતા

किञ्च-काणत्वम्=एकाक्षत्वं द्रव्यतः, भावतः काणत्वं—निश्चयव्यवहारयोर्ज्ञान-क्रिययोर्वैकपक्षग्राहित्वम् । कुण्टत्वं=कुटिलहस्तत्वादिकं द्रव्यतः, भावतः कुण्टत्वं प्रतिलेखनादिक्रियाराधने वक्रत्वम् । कुब्जत्वं=वक्रशरीरत्वं द्रव्यतः, भावतः कुटिल-क्रियत्वम् । वडभत्वं=वक्रपृष्ठत्वादिकं द्रव्यतः, भावतः परमर्मप्रकाशकत्वम् । श्याम-त्वं=कालिमा द्रव्यतः, भावतो मलिनाचारत्वम्, शवलत्वम्=श्वेतकुष्ठत्वादिकं द्रव्यतः, भावतः शवलदोषवत्त्वम् । अत्रान्धत्वादिकमुपलक्षणं पङ्गुत्वादेर्बोध्यम् ।

और भावइन्द्रिय की विकलता भाव-अन्धता है। चतुरिन्द्रिय और मिथ्या-दृष्टि पंचेन्द्रिय जीव भावान्ध हैं, क्योंकि बाह्य में द्रव्येन्द्रियरूप चक्षुरिन्द्रिय होने पर भी ये पदार्थ के यथार्थ स्वरूपावलोकन से रहित होते हैं। दोनों प्रकार से अन्धता होनी, यह प्राणी के लिये नियम से दुःखोत्पादक होती है। इसी प्रकार बधिरत्व, मूकत्व, काणत्व आदि भी द्रव्य और भाव के भेद से दो दो प्रकार के होते हैं। उनमें अपने विषय को ग्रहण करने की शक्ति से श्रवणेन्द्रिय की विकलता का नाम बधिरता है। सुनने की शक्ति से रहित होना यह द्रव्य-बधिरता, और जिनेन्द्र वचनों को सुनने में अप्रेम तथा अनादर भाव का होना, या उनके वचनों को श्रवण करने की विकलता होनी यह भाव-बधिरता है। वचन बोलने की शक्ति की अभिव्यक्ति से रहित होना इसका नाम मूकत्व है। प्राकृत-संस्कृतादिरूप अपनी २ मातृभाषा में बोलने की हीनता का नाम द्रव्य-मूकता, एवं मिथ्यात्वादिक के अभिनिवेश के वश से अपने दोषों को छुपाने के लिये

દ્રવ્યઅંધતા છે. અને ભાવ–ઈન્દ્રિયની વિકલતા ભાવઅંધતા છે. ચાર ઇંદ્રિય-વાળા અને મિથ્યાદષ્ટિ પંચેન્દ્રિય જીવ ભાવાન્ધ છે, કારણ કે બાહ્યમાં દ્રવ્યેન્દ્રિય રૂપ ચક્ષુરિન્દ્રિય થવાથી પણ તે પદાર્થનું યથાર્થ સ્વરૂપાવલોકનથી રહિત હોય છે બન્ને પ્રકારથી અંધતા થવી તે પ્રાણી માટે નિયમથી દુઃખોત્પાદક થાય છે. આ પ્રકાર બહેરાપણું, મુંગાપણું, આંધલાપણું આદિ પણ દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી બે પ્રકારે હોય છે. તેમાં પોતાના વિષયને ગ્રહણ કરવાની શક્તિથી શ્રવણેન્દ્રિયની વિકલતાનું નામ બધિરતા છે. સાંભળવાની શક્તિથી રહિત થવું તે દ્રવ્ય–બહેરા-પણું, અને જીનેન્દ્રવચનો સાંભળવામાં અપ્રેમ અને અનાદર ભાવ હોવો, અગર તેમના વચનો સાંભળવાની વિકલતા થવી તે ભાવ–બધિરતા છે. વચન બોલવાની શક્તિની અભિવ્યક્તિથી રહિત થવું તેનુ નામ મૂકત્વ છે પ્રાકૃતસંસ્કૃતાદિરૂપ પોતપોતાની માતૃભાષામાં બોલવાની હીનતાનુ નામ દ્રવ્યમૂકતા, અને મિથ્યાત્વાદિકના અભિનિવેશનાવશથી પોતાના દોષોને છુપાવા માટે જિનવચનોનું પ્રતિપાદન નહિ

जिनवचनों का प्रतिपादन नहीं करना इसका नाम भाव-मूकत्व है। एक आंख का होना यह द्रव्य से काणत्व है, और निश्चय एवं व्यवहार नय में से, अथवा ज्ञान और चारित्र में से किसी एक का एकान्तरूप से पक्ष ग्रहण करना भाव से काणत्व है। हाथ पांव आदि अंग उपांगों की वक्रता द्रव्य-कुंटत्व, और प्रतिलेखनादि क्रियाओं के करने में अनादर या छल-कपट करना यह भाव-कुंटत्व है। सामान्यतया शरीर का टेढापन अथवा शरीर में कूबड वगैरह का निकलना यह द्रव्य से कुब्जत्व है। कुटिलक्रियापने का नाम भाव से कुब्जत्व है। पृष्ठ भाग वगैरह का वक्र होना यह द्रव्य से वडभत्व है, दूसरों के गुप्त कार्यों एवं अनेक रहस्यों का प्रकाशन करना यह भाव से वडभत्व है। शरीर में कृष्णता का होना यह द्रव्य से श्यामता-मलिनता, तथा हीन आचरणी होना यह भाव से श्यामता है। शरीर में सफेद कुष्ठ वगैरह का होना द्रव्य से शबलता, तथा दोषविशिष्टता भाव से शबलत्व है। सूत्र में अन्धत्वादि पद उपलक्षण रूप है, इससे पङ्गुपने आदि का भी ग्रहण कर लेना चाहिये। इन सब बातों को दिखाने का अभिप्राय यही है कि प्राणी किसी भी मद के आवेश में आकर दूसरों के प्रति ऐसे कषायविशिष्ट बनकर अपशब्दों या दूसरों के मर्मस्थल को भेदने वाले कठोर शब्दों का प्रयोग न करे।

કરવું તેનું નામ ભાવમૂકત્વ છે. એક આંખનું હોવું તે દ્રવ્યથી કાણત્વ છે, અને નિશ્ચય અને વ્યવહાર નયમાંથી અથવા જ્ઞાન અને ચારિત્રમાંથી કોઈ એકનું એકાન્તરૂપે પક્ષ ગ્રહણ કરવો તે ભાવથી કાણત્વ છે. હાથ-પગ આદિ અંગ ઉપાંગોની વક્રતા દ્રવ્યકુન્ટત્વ અને પ્રતિલેખનાદિ ક્રિયાઓ કરવામા અનાદર અગર છલકપટ કરવું એ ભાવકુન્ટત્વ છે. સામાન્ય રીતે શરીરનું વાંકાપણું અને શરીરમાં કોઢ વિગેરેનુ નિકળવુ તે દ્રવ્યથી કુબ્જત્વ છે. કુટિલક્રિયાપણાનું નામ ભાવથી કુબ્જત્વ છે. પૃષ્ટભાગ વિગેરેનું વક્ર થવું તે દ્રવ્યથી વડભત્વ છે. બીજાના ગુપ્ત કાર્યો અને અનેક રહસ્યોનું પ્રકાશન કરવું તે ભાવથી વડભત્વ છે. શરીરમાં કાળાશ થવી તે દ્રવ્યથી શ્યામતા-મલિનતા, અને હીન આચરણી થવું તે ભાવથી શ્યામતા છે. શરીરમા સફેદ કોઢ નીકળવો તે દ્રવ્યથી શબલતા અને શબલ દોષવિશિષ્ટતા ભાવથી શબલતા છે. સૂત્રમાં અન્ધત્વાદિ પદ ઉપલક્ષણરૂપ છે. તેથી લંગડાપણું આદિનું પણ ગ્રહણ કરી લેવું જોઈએ. આ બધી વાતને દેખાડવાનો અભિપ્રાય એ છે કે-પ્રાણી કોઇ પણ મદના આવેશમા આવીને બીજાઓના પ્રતિ એવા કષાયવિશિષ્ટ બની અપશબ્દોનો અગર બીજાના મર્મસ્થળને ભેદવા-

दुःखं च कोऽपि नेच्छति परन्तु कर्मवशात्प्रायशः सर्वेऽपि सावद्यक्रियावन्तो नितान्तदुःखिता भवन्तीति भावः।

अपिच-'सहे'ति, प्रमादेन=अनवधानेन सह=सार्द्धं समितिविकलोऽनवधानवान् अनेकरूपाः=संवृत-विवृत-रूपा योनीः सन्दधाति=सन्धत्ते, चतुरशीतिलक्षयोनि-सम्बन्धाविच्छेदेनात्मना सह संघट्टनं करोति। तासु च योनिषु विरूपरूपान्=बहुविधान् स्पर्शान्=दुःखानि परिसंवेदयते=जानाति, नानाविधयोनिषूत्पन्नो जीवो बहुविधां नरकनिगोदादियातनां समनुभूय नितान्तं खिन्नो भवतीति तात्पर्यम्।

क्यों कि इस प्रकार के वचनों से एक तो बोलनेवालों के लिए भाव-हिंसा का दोष लगता है और दूसरों के चित्त में शोक आदि का उत्पादक होने से द्रव्यहिंसा का भी दोष आता है। इस हिंसा से अनेक अशुभ कर्मों का बंध होता है। आत्मप्रशंसा एवं पर की निंदा करना, तथा अपने दुर्गुणों को सद्गुण का रूप देकर गर्वोन्मत्त बन उन्हें प्रकाशित करना, और दूसरों के सद्गुणों में भी दूषण लगाना या उन्हें दुर्गुणरूप में प्रकट करना इससे नीच गोत्र का बन्ध होता है, इससे जीव अनेक कुयोनियों में जन्म धारण कर हीनआचरणी आदि होता है। किसी धर्मात्मा के ज्ञान एवं दर्शन के विषय में प्रशंसा का नहीं सुहाना, किसी कारण से अपने ज्ञान का छुपाना, मात्सर्य भाव का रखना, किसी के ज्ञान अथवा दर्शन में विघ्न करना, इनसे ज्ञानावरण, तथा दर्शनावरण कर्म का जीव बंध करता है। इसका फल जीवों के ज्ञान एवं दर्शन गुणों का घात होना है।

વાળા કઠોર શબ્દોનો પ્રયોગ ન કરે, કારણ કે આ પ્રકારે વચનોથી એક તો બોલવાવાળાને ભાવહિંસાનો દોષ લાગે છે, અને બીજાના ચિત્તમા શોક આદિના ઉત્પાદક થવાથી દ્રવ્યહિંસાનો પણ દોષ લાગે છે. આ હિંસાથી અનેક અશુભ કર્મોનો બંધ થાય છે. આત્મપ્રશંસા અને પારકાની નિંદા કરવી અને પોતાના દુર્ગુણોને સદ્ગુણનું રૂપ આપીને ગર્વોન્મત્ત બની તેને પ્રકાશિત કરવું, અને બીજાના સદ્ગુણોમાં પણ દૂષણ લગાડવું અગર તેને દુર્ગુણ રૂપમાં પ્રગટ કરવુ તેનાથી નીચ ગોત્રનો બંધ થાય છે, તેનાથી જીવ અનેક કુયોનિઓમાં જન્મ ધારણ કરી હીનાચરણી આદિ થાય છે. કોઇ ધર્માત્માના જ્ઞાન અને દર્શન વિષયમા થતી પ્રશંસાને સહન નહિ કરવી, કોઈ કારણથી પોતાના જ્ઞાનને છુપાવવું, માત્સર્ય ભાવ રાખવો, કોઇના જ્ઞાન અને દર્શનમા વિઘ્ન કરવું, તેનાથી જીવ જ્ઞાનાવરણ, અને દર્શનાવરણ કર્મનો બંધ કરે છે. તેનું ફળ જીવોને જ્ઞાન અને દર્શન ગુણોનાં

निज और पर के विषय में दुःख, शोक आदि करने कराने से असातवेदनीय कर्म का बन्ध होता है, जिसका फल जीव को कभी भी साता नहीं मिलना है। संसार के समस्त प्राणी और व्रती–अणुव्रती या महाव्रती जीवों की सेवा करना, निज और पर के उपकार के लिये योग्य वस्तु का दान देना, सरागसंयम का पालन करना, क्रोधादिकषायों की शान्ति होनी और लोभ का त्याग करना आदि कार्यों से जीव के सातवेदनीय कर्म का बंध होता है इसकी वजह से जीवों को सदा सुखकारी वस्तुओं का समागमरूप सांसारिक सुखों की प्राप्ति होती है। केवली का अवर्णवाद, श्रुतका अवर्णवाद, तथा संघ आदि का अवर्णवाद करना, इससे दर्शनमोहनीय कर्म का बंध होता है, जिसका फल समकित गुण की प्राप्ति जीव को नहीं होती। कषाय के उदय से परिणामों में तीव्रता रहना, इससे चारित्र मोहनीय का बन्ध होता है, जिसका फल जीव कभी भी चारित्र धर्म को अंगीकार नहीं कर सकता। योगों की कुटिलता का होना तथा शास्त्रप्रतिपादित मार्ग से अन्यथा प्रवृत्ति करना, इससे अशुभ नाम कर्म का बंध होता है। इससे जीव एकेन्द्रियादि अनेक कुयोनियों में जन्म धारण करता है। कभी चक्षुविकल होता है, कभी

આઘાતરૂપ થાય છે. બીજાના અને પોતાના વિષયમા દુ.ખ શોકાદિ કરવા–કરાવવાથી અસાતવેદનીય કર્મનો બંધ થાય છે. જેનાથી જીવને કોઇ વખત પણ સાતા મળતી નથી. સંસારના સમસ્ત પ્રાણી અને વ્રતી–અણુવ્રતી કે મહાવ્રતી જીવોની સેવા કરવી, પોતાના અને પારકાના ઉપકાર માટે યોગ્ય વસ્તુનું દાન દેવું, સરાગસંયમનુ પાલન કરવું, ક્રોધાદિ કષાયોની શાંતિ થવી, અને લોભનો ત્યાગ કરવો આદિ કાર્યોથી જીવને સાતાવેદનીય કર્મનો બંધ થાય છે, તેનાથી જીવોને સદા સુખકારી વસ્તુઓના સમાગમરૂપ સાંસારિક સુખોની પ્રાપ્તિ થાય છે. કેવળીનો અવર્ણવાદ, શ્રુતનો અવર્ણવાદ, અને સંઘ આદિનો અવર્ણવાદ કરવો, એનાથી દર્શનમોહનીય કર્મનો બંધ થાય છે. જેનાથી સમકિત ગુણની પ્રાપ્તિ જીવને થતી નથી કષાયના ઉદયથી પરિણામોમાં તીવ્રતા રહેવી, તેનાથી ચારિત્ર-મોહનીયનો બંધ થાય છે જેનુ ફળ જીવ કોઇ વખત પણ ચારિત્રધર્મને અંગીકાર કરી શકતો નથી.

યોગોમા કુટિલતા હોવી, અને શાસ્ત્રપ્રતિપાદિત માર્ગથી અન્યથા પ્રવૃત્તિ કરવી તેનાથી અશુભ નામકર્મનો બંધ થાય છે, તેનાથી જીવ એક ઇન્દ્રિય આદિ અનેક કુયોનિયોમાં જન્મ ધારણ કરે છે. કોઈ વખત ચક્ષુવિકલ થાય છે,

मूंगा बनता है, कभी कुब्जक और कभी बहिरा होता है। सूत्र में जो अन्धत्व, बधिरत्व, मूकत्व, काणत्व आदि अनेक शारीरिक दोष प्रकट किये गये हैं वे सब इसी अशुभनामकर्म के उपार्जन से जीवों को प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार चित्रकार किसी चित्र का कभी हाथ टेढा बना देता है, कभी एक आंख बना देता है, कभी उसे छोटा या कभी बड़ा अपनी इच्छानुसार जिसे जैसा बनाना चाहे बना देता है, इसी प्रकार यह नामकर्म भी इस जीव को कभी अन्धा, कभी बहिरा आदि बना दिया करता है। योगों की वक्रता नहीं होनी, एवं विसंवाद-अन्यथा प्रवृत्तिका अभाव होना, इससे शुभनामकर्म का उपार्जन होता है, जिस का फल प्रत्येक अंग की पूर्णता एवं सौष्ठव-सुन्दरता आदि की प्राप्ति होना है। उत्तम योनियों में जन्म तथा मुक्तिप्राप्ति लायक वज्रऋषभ-नाराच संहननादि शुभ संहननों की एवम् समचतुरस्रादि शुभ संस्थानों की प्राप्ति जीव को इसी के उदय से होती है। तीर्थंकर जैसी प्रकृति इसी शुभनामकर्म का भेद है।

यद्यपि प्रति समय आयुकर्म को छोड़ शेष सात कर्मों का बन्ध हुआ करता है तथापि पूर्वोक्त इन भावों द्वारा जो ज्ञानावरणादि विशेष २ कर्मों का बन्ध होना प्रकट किया है सो स्थितिबन्ध और अनुभाग-

વખતે મુંગા થાય છે, વળી કુબ્જ અને બહેરા પણ થાય છે. સૂત્રમાં જે અધત્વ, બધિરત્વ, મૂકત્વ, કાણુત્વ આદિ અનેક શારીરિક દોષ પ્રગટ કરેલાં છે તે બધા આ અશુભનામકર્મના ઉપાર્જનથી જીવને પ્રાપ્ત થાય છે. જેમ ચિત્રકાર કોઇ ચિત્રમાં હાથ આડા બતાવે છે, એક આંખ બતાવે છે, કોઈ છોટું કોઇ મોટું પોતાની ઈચ્છાનુસાર જેને જેમ બનાવવા માગે તેમ બનાવે છે. તે પ્રકારે આ નામકર્મ પણ આ જીવને કોઇ વખત આંધળો, બહેરો આદિ બનાવે છે. યોગોની વક્રતા ન થવી અને વિસંવાદ – અન્યથા પ્રવૃત્તિ–નો અભાવ થવો એથી શુભનામકર્મનું ઉપાર્જન થાય છે. જેનું ફળ પ્રત્યેક અંગની પૂર્ણતા અને સૌષ્ઠવ – સુંદરતા આદિની પ્રાપ્તિ થાય છે. ઉત્તમ યોનિયોમાં જન્મ અને મુક્તિપ્રાપ્તિલાયક વજ્રઋષભનારાચ સંહનનાદિ શુભ સંહનનોની અને સમચતુરસ્રાદિ શુભ સંસ્થાનોની પ્રાપ્તિ જીવને આના ઉદયથી થાય છે. તીર્થંકર જેવી પ્રકૃતિ તે શુભનામકર્મનો ભેદ છે.

હજુ પ્રતિસમય આયુકર્મને છોડી સાત શેષ કર્મના બંધ થયા કરે છે, તથાપિ પૂર્વોક્ત આ ભાવોદ્વારા જે જ્ઞાનાવરણાદિ વિશેષ વિશેષ કર્મોના બંધ થવા પ્રકટ કરેલ છે તે સ્થિતિબંધ અને અનુભાગબંધની અપેક્ષા સમજવી જોઇએ.

बन्ध की अपेक्षा समझना चाहिये। अर्थात् उस समय प्रकृति और प्रदेशबन्ध तो सब कर्मों का हुआ करता है, किन्तु स्थिति और अनुभागबन्ध ज्ञानावरणादि विशेष २ कर्मों का अधिक होगा। अन्धा होना, बहिरा होना, काणा इत्यादि होना, तथा इन्द्रियादिकों की पूर्णता होने पर भी शारीरिक शांति के लाभ से वञ्चित रहना, दुःखोत्पादक सामग्री की प्राप्ति होना, इष्टानिष्ट संयोगवियोगजन्य कष्टों को झेलना आदि कष्टों को कोई भी सांसारिक प्राणी नहीं चाहता है, परन्तु कर्मों के द्वारा परतन्त्र हुए प्रत्येक सांसारिक जीवों को अपने २ योग एवम् कषायों द्वारा उपार्जित किये कर्मों का फल अवश्य २ भोगना पडता है, इस में जीव की इच्छा काम नहीं करती। कर्माधीन बन यह प्राणी प्रायः सावद्य क्रियाओं के करने में ही दत्तावधान रहा करता है, जिसके कारण रात दिन दुःखी का दुःखी ही रहा करता है।

प्रश्न—कर्मों के फलों को भोगते हुए भी आगे के लिये कर्मों का बन्ध नहीं हो ऐसा भी कोई उपाय है? उत्तर—है।

प्रश्न—क्या है? उत्तर—समताभाव। कर्मों के फलों का अनुभव न करने वाला प्राणी यदि उनके फलों को भोगते समय हर्ष विषाद एवम् आर्त-

---

અર્થાત્ તે વખત પ્રકૃતિ અને પ્રદેશબંધ તો બધા કર્મોના થયા કરે છે પણ સ્થિતિ અને અનુભાગબંધ જ્ઞાનાવરણાદિ વિશેષ વિશેષ કર્મોના અધિક થશે. અંધ થવું, બહેરા થવું, કાણા થવું ઇત્યાદિ. તથા ઇન્દ્રિયાદિકોની પૂર્ણતા હોવાથી પણ શારીરિક શાંતિના લાભથી વંચિત રહેવું, દુઃખોત્પાદક સામગ્રીની પ્રાપ્તિ થવી, ઇષ્ટાનિષ્ટ સંયોગવિયોગજન્ય કષ્ટોને સહન કરવા કોઇ પણ સાંસારિક પ્રાણી ચાહતો નથી, પરંતુ કર્મોદ્વારા પરતંત્ર થયેલ દરેક સાંસારિક જીવને પોતપોતાના યોગ અને કષાયોદ્વારા ઉપાર્જિત કરેલા કર્મોના ફળ અવશ્ય અવશ્ય ભોગવવા પડે છે, તેમાં જીવની ઇચ્છા કામ કરતી નથી. કર્માધીન બની તે પ્રાણી પ્રાયઃ સાવદ્ય ક્રિયાઓ કરવામાં જ દત્તાવધાન રહ્યા કરે છે, જેના કારણે રાત દિન દુઃખીના દુ.ખી જ રહ્યા કરે છે.

પ્રશ્ન—કર્મોના ફળને ભોગવતાં છતાં પણ આગળ માટે કર્મોનો બંધ ન થાય એવો કોઇ ઉપાય છે? ઉત્તર—છે.

પ્રશ્ન—શું છે? ઉત્તર—સમતાભાવ. કર્મોના ફળોનો અનુભવ ન કરવાવાળા પ્રાણી કદાચ તેના ફળોને ભોગવતી વખત હર્ષ વિષાદ આદિ અને આર્ત રૌદ્રરૂપ પરિણામોથી

रौद्ररूप परिणमों से युक्त नहीं होना है, और अपने उपार्जित कर्मों का फल भोगे विना छुटकारा नहीं है अतः इनका फल अवश्य भोगना ही पड़ेगा- चाहे किसी भी परिस्थिति में जीव क्यों न हो। जिस प्रकार अपने उपार्जित पुण्य का फल भोगते हुए विषादपरिणति आत्मा में नहीं होती उसी प्रकार अपने उपार्जित पाप कर्म के फल को भोगते हुए भी मुझे विषादपरिणति नहीं होनी चाहिये, इत्यादि शुभाध्यवसाय से प्रेरित होकर समताभाव से शुभाशुभ कर्मों के फल को जो प्राणी भोगता है उसके लिये नवीन कर्मों का बन्ध नहीं होता। नवीन कर्मों का बन्ध कराने वाली कषायपरिणति ही है। हर्ष और विषाद ये कषायपरिणति-रूप ही है। समताभाव इस कषायपरिणति से रहित अवस्था है।

प्रश्न—इस समताभाव की प्राप्ति जीव को कैसे होती है?

उत्तर—समकित की प्राप्ति से।

समकितशाली जीव घर में-संसार में रहता हुआ भी अपनी वृत्ति कमलपत्र के, अथवा तप्तलोहपादन्यास (तपे हुए लोहे पर पैर रखने) के समान रखता है इससे वह समभावी होता है।

યુક્ત બનતા નથી અને પોતાના ઉપાર્જિત કર્મોના ફળ ભોગવ્યા વિના છુટકો નથી માટે તેનું ફળ અવશ્ય ભોગવવું જ પડશે ભલે કોઇ પણ પરિસ્થિતિમાં જીવ કેમ ન હોય, જેવી રીતે પોતાના ઉપાર્જિત પુણ્યનું ફળ ભોગવતી વખતે વિષાદ પરિણતિ આત્મામાં થતી નથી તે પ્રકારે પોતાના ઉપાર્જિત પાપ કર્મના ફળને ભોગવતાં પણ મને વિષાદ પરિણતિ થવી ન જોઇએ. ઇત્યાદિ શુભાધ્યવસાયથી પ્રેરિત થઈ સમતાભાવથી શુભાશુભ કર્મના ફળને જે પ્રાણી ભોગવે છે તેને માટે નવીન કર્મોનો બંધ થતો નથી. નવીન કર્મોના બંધ કરાવવાવાળી કષાયપરિણતિ જ છે, હર્ષ અને વિષાદ એ કષાયપરિણતિરૂપ જ છે. સમતાભાવ આ કષાય-પરિણતિથી રહિત અવસ્થા છે.

પ્રશ્ન—આ સમતાભાવની પ્રાપ્તિ જીવને કેવી રીતે થાય છે?

ઉત્તર—સમકિતની પ્રાપ્તિથી.

સમકિતશાળી જીવ ઘરમાં-સંસારમાં રહેવા છતાં પણ પોતાની વૃત્તિ કમ-લપત્ર અથવા તપ્તલોહપાદન્યાસ (તપેલા લોઢા ઉપર પગ રાખવા) સમાન રાખે છે માટે તે સમભાવી છે.

इदमत्र हृदयम्—यः स्वोत्कर्षं समासाद्य जात्यादिमदसम्पन्नोऽन्यं प्रति 'अन्धस्त्व'-मित्यादिकं परुषं ब्रवीति, मनसा तस्याप्रियमाचरति च, स जन्मान्तरे स्वयमेव नीचगोत्रत्वादिकमन्धत्वादिकं फलं लभत इति भयान्मनोवाकाययोगैः कस्याप्यप्रियमात्महितार्थी नाचरेदिति बोध्यम् ॥ सू० २ ॥

उत्कृष्टकुलोत्पत्तिगर्वोन्मत्तचित्तोऽधमकुलतया दीनोऽन्धत्वादिकमुपलभमानो वा कर्तव्याकर्तव्यानभिज्ञः कर्मविपाकमविज्ञाय तत्रैवोच्चकुलादिके विपर्यासं गच्छतीति दर्शयति–' से अबुज्झमाणे ' इत्यादि ।

मूलम्—**से अबुज्झमाणे हओवहए जाइमरणं अणुपरियट्टमाणे, जीवियं पुढो पियं इहमेगेसिं माणवाणं खित्तवत्थुममायमाणाणं, आरत्तं विरत्तं मणिं कुंडलं सह हिरण्णेण इत्थियाओ परिगिज्झ तत्थेव रत्ता, न इत्थ तवो वा दमो वा नियमो वा दिस्सइ, संपुण्णं बाले जीविउकामे लालप्पमाणे मूढे विप्परिआसमुवेइ ॥सू० ३॥**

छाया—सः, अबुध्यमानो हतोपहतो जातिमरणमनुपरिवर्तमानः, जीवितं पृथक् प्रियम् इहैकेषां मानवानां क्षेत्रवास्तुममायमानानाम्, आरक्तं विरक्तं मणिं कुण्डलं सह हिरण्येन स्त्रीः परिगृह्य तत्रैव रक्ताः, नात्र तपो वा दमो वा नियमो वा दृश्यते, सम्पूर्णं बालो जीवितुकामो लालप्यमानो मूढो विपर्यासमुपैति ॥ सू० ३ ॥

इस सूत्र का सारांश यही है कि "जो मनुष्य अपने उत्कर्ष को प्राप्त कर जात्यादिमदावेश में आकर दूसरों के प्रति "तूं अन्धा है" इत्यादि कठोर भाषा का प्रयोग करता है, मनसे भी उसका अप्रिय करने का विचार करता है वह दूसरे जन्म में स्वयं ही नीच गोत्रादिक अथवा अन्धत्वादिक फल का भोक्ता बनता है, अतः ऐसा विचार कर आत्मार्थी जन कभी भी मन वचन और कायरूप योगों से किसी का भी अप्रिय-अनिष्ट न करे ॥ सू० २ ॥

આ સૂત્રનો સારાંશ એ છે કે 'જે મનુષ્ય પોતાના ઉત્કર્ષને પ્રાપ્ત કરી જાત્યાદિમદાવેશમા આવીને બીજા પ્રતિ " તું આંધળો છે " ઇત્યાદિ કઠોર ભાષાનો પ્રયોગ કરે છે, મનથી પણ તેનું અપ્રિય કરવાનો વિચાર કરે છે તે બીજા જન્મમાં સ્વયં જ નીચ ગોત્રાદિક અથવા અન્ધત્વાદિક ફળનો ભોક્તા બને છે, માટે એવો વિચાર કરી આત્માર્થી જન કોઇ વખત પણ મન વચન અને કાયાથી કોઇનું પણ અપ્રિય-અનિષ્ટ નહિ કરે. ॥ સૂ० ૨ ॥

टीका—'स' इत्यादि। सः=उच्चकुलोत्पन्नः, अन्धत्वादिकमनुभवन, अबुध्यमानः=पूर्वकृतकर्मफलमजानानः, हतोपहतः=अन्धत्वादिनानारोगग्रस्तत्वेन क्षतकायत्वाद् हतः, सकलजननिन्द्यत्वेनोपहतः;

उच्चकुल में जन्म लेने के गर्व से संयमी मुनि अधमकुल में उत्पन्न होकर दीन अथवा अन्धत्वादिक फल का भोक्ता बन कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य से विकल होता हुआ कर्म के फल को नहीं जानकर इसी उच्च गोत्रादिक में विपर्यास-विपरीत भाव को प्राप्त करता है, इसी का वर्णन करते हैं—" से अबुज्झमाणे " इत्यादि।

सूत्रकार ने इस सूत्र के पहिले यह बात अच्छी तरह से खुलाशा कर प्रकट कर दी है कि-" जो संयमी मुनि उच्चगोत्र में जन्म लेने के अभिमान से उन्मत्त बन दूसरों का तिरस्कार करता है, अथवा मन से भी उनका अहित विचारता है वह इस कर्म के कटुक फल का जन्मान्तर में या इसी भव में भोक्ता बनता है" इसी बात को फिर से दृढ़ करने के अभिप्राय से दोहराते हुए सूत्रकार कहते हैं कि-वह संयमी मुनि जो उच्चकुल में उत्पन्न हुआ है और अपने अहंकारजन्य अन्धत्वादिक फलविशेष का भोक्ता बना हुआ है, तथा " जो अन्धत्वादिक फल मुझे मिला है वह मेरे ही द्वारा उपार्जित कर्म का कटुक फल है" इस बोध से जो अनभिज्ञ है, तथा जो हतोपहत बना हुआ है-अर्थात् अन्धत्वादिक

ઉંચ કુળમાં જન્મ લેવાના ગર્વથી સંયમી મુનિ અધમ કુળમાં ઉત્પન્ન થઈને દીન અન્ધત્વાદિક ફળનો ભોક્તા બની કર્તવ્ય અને અકર્તવ્યના ભાનથી વિકલ થઇને તેમજ કર્મના ફળને નહિ જાણીને તે જ ઉંચ ગોત્રાદિકમાં વિપર્યાસ-વિપરીત ભાવને પ્રાપ્ત કરે છે. તેનુ વર્ણન કરે છે—" से अबुज्झमाणे " ઇત્યાદિ

સૂત્રકારે આ સૂત્રના પહેલાં આ વાત સારી રીતે ખુલાસો કરીને પ્રગટ કરી છે, કે "જે સચમી મુનિ ઉંચ ગોત્રમાં જન્મ લેવાના અભિમાનથી ઉન્મત્ત બની બીજાઓને તિરસ્કાર કરે છે અથવા મનથી પણ તેનું અહિત કરવા વિચારે છે તે આ કર્મના કટુક ફળનો જન્માન્તરમાં અગર આ ભવમાં ભોક્તા બને છે. આ વાતને ફરીથી દૃઢ કરવાના અભિપ્રાયથી સૂત્રકાર કહે છે કે—તે સંયમી મુનિ જે ઉંચ કુળમાં ઉત્પન્ન થયેલ છે, અને પોતાના અહંકારજન્ય અન્ધત્વાદિક ફળ વિશેષનો ભોક્તા થયેલ છે, તથા "જે અન્ધત્વાદિક ફળ મને મળ્યું છે તે મારા જ દ્વારા ઉપાર્જિત કર્મનું કટુક ફળ છે" એ બોધથી જે અનભિજ્ઞ છે, તથા જે હતોપહત બનેલ છે, અર્થાત્ અન્ધત્વાદિક અને નાના રોગોથી જેનું શરીર ક્ષત

यद्वा—उच्चगोत्रादिसमुद्भवगर्वात्कर्तव्यच्युतत्वेनापवादवान् जगज्जनानादरवचनदण्डेन पटह इव हतः, श्रुतचारित्रलक्षणधर्मरहितत्वेनोपहतः, एवं 'जातिमरणं' जातिश्च मरणं च जातिमरणम् अनुपरिवर्तमानः=पारावारतरलतरतरङ्गवत् पुनर्जन्म पुनर्मरणं चेति संसारसागरे परिभ्रमन् भूयो भूयो जन्ममरणमुपलभमानोऽनित्यत्वेऽपि नित्यत्वमनुभवन् विपर्यासमुपैतीति सम्बन्धः।

एवम् नाना रोगों से जिसका शरीर क्षत जीर्ण शीर्ण हो रहा है, तथा सकलजन जिसकी निंदा करते हैं, अथवा उच्चगोत्रादिक में जन्म प्राप्त करने के गर्व से जो कर्तव्यच्युत हो रहा है, "मेरा क्या कर्तव्य है" इस बात को ही जो नहीं समझता है, यद्वातद्वा प्रवृत्ति करने से लोगों के अनेक अपवादों का जो पात्र बना हुआ है, तथा जिस प्रकार दण्डे से ढोल पीटा जाता है उसी प्रकार जगत के जीवों के अनादरकारी वचनरूपी दण्डों की चोट से जो आहत-ताडित है, एवम् जो वास्तविक अपने श्रुतचारित्ररूप धर्म की आराधना से वंचित है, जिस प्रकार समुद्र की तरल तरंगें समुद्र से उठती हैं और समुद्र में ही विलीन होती रहती हैं, उसी प्रकार जो इस संसाररूपी अथाह सागर में वारंवार जन्म मरण के गोते खाता रहता है, अहितकारी पदार्थों को हितकारी एवम् अनित्य परपदार्थों को नित्य मानकर जो उनके ही अपनाने में लगा हुआ है, ऐसा प्राणी विपरीतकल्पनावाला ही माना गया है, और वह अपनी इस कल्पना की वजह से ही रातदिन दुःखी होता रहता है।

જીર્ણ શીર્ણ થઈ રહ્યું છે, તથા સકલજન જેની નિંદા કરે છે, અને ઉંચ ગોત્રાદિકમાં જન્મ પ્રાપ્ત કરવાના ગર્વથી જે કર્તવ્યચ્યુત થઈ રહેલ છે, " મારૂં શું કર્તવ્ય છે" એ વાતને પણ પોતે સમજતો નથી, આડી અવળી પ્રવૃત્તિ કરવાથી લોકોના અનેક અપવાદોનો જે પાત્ર બનેલ છે, તથા જે પ્રકાર દંડાથી ઢોલ પીટવામાં આવે છે તે પ્રકાર જગતના જીવોના અનાદરકારી વચનરૂપી દંડોની ચોટથી જે આહત–તાડિત છે, અને વાસ્તવિક પોતાના શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મની આરાધનાથી વંચિત છે. જે પ્રકારે સમુદ્રની તરલ તરંગો સમુદ્રથી ઉઠે છે અને સમુદ્રમાંજ વિલીન થાય છે તે પ્રકાર જે આ સંસારરૂપી અથાગ સાગરમાં વારંવાર જન્મ મરણના ગોથા ખાતા રહે છે. અહિતકારી પદાર્થોને હિતકારી અને અને અનિત્ય પદાર્થોને નિત્ય માનીને જે તેને અપનાવવામાં લાગેલ છે. એવા પ્રાણી વિપરીત કલ્પનાવાળા જ માનેલ છે, અને તે પોતાની આવી કલ્પનાના જોરે જ રાતદિવસ દુઃખી થાય છે

किञ्च-इह संसारे 'क्षेत्रवास्तु' क्षेत्रं=धान्याद्युत्पत्तिस्थलं, वास्तु=प्रासादादिकं सर्वं ममेत्येवमाचरन्तो ममायमानास्तेषां क्षेत्रवास्तुप्रभृतिषु ममत्वं कुर्वताम् एकेषाम्=केषाञ्चिद्विपर्यस्तमतीनां मानवानाम्, उपलक्षणात् प्राणिनां जीवितम्=असंयमजीवितम् पृथक्=विभिन्नरूपेण स्वस्वापेक्षया प्रियम्=इष्टम्, भवतीति शेषः।

जो संयमी क्षेत्र-धान्यादिक का उत्पत्ति स्थान; वास्तु-महल मकान आदि बाह्य पदार्थों में ममत्वशाली बने हुए हैं, वे वास्तविक संयमी नहीं हैं, क्योंकि जीवों में बाह्यपदार्थों से ममत्व हटे विना संयमभाव ही नहीं उत्पन्न हो सकता है। जिस प्रकार ऊँट पर नींद लेने वाले व्यक्ति का प्रायः अधःपतन होता है उसी प्रकार जो संयम का ढोंग रचकर बाह्यपदार्थों में ही मूर्च्छित हो रहे हैं उनका भी अधःपतन उससे अवश्य होता है। संयम शब्द का अर्थ तो यही है कि-इन्द्रियों एवम् चित्त की वृत्ति जो बाह्यपदार्थों में आसक्त बनी हुई है उसका निरोध हो जाना, परन्तु जिनकी ममता बाह्य-पर-वस्तुओं में जागृत है कैसे माना जा सकता है कि उनके सत्य संयमभाव है, अतः ऐसे प्राणी संयमभाव से बहुत दूर ही रहा करते हैं, इन्हें अपना असंयम जीवन चाहे ये जिस किसी भी अवस्था में रहें प्रिय होता है, क्योंकि शुरु से इनका अभ्यास ही ऐसा पड़ा हुआ है, अर्थात् संयम जीवन व्यतीत करने लिये चित्तवृत्ति एवम् इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने की बड़ी भारी जरूरत होती है, इस प्रकार का उपदेश इन्हें नहीं मिला है, क्योंकि इनका जीवन तो बकरे

જે સંયમી ક્ષેત્ર-ધાન્યાદિકનુ ઉત્પત્તિ સ્થાન, વાસ્તુ-મહેલ, મકાન, આદિ બાહ્ય પદાર્થોમાં મમત્વશાળી બનેલાં તેઓ વાસ્તવિક સંયમી નથી, કારણુ કે જીવોમા બાહ્ય પદાર્થોથી મમત્વ દૂર થયા વિના સંયમભાવ જ ઉત્પન્ન થતો નથી. જે પ્રકારે ઉંટ ઉપર ઉંઘ લેવાવાળી વ્યક્તિનો પ્રાયઃ અધઃપતન થાય છે તે પ્રકારે જે સંયમનો ઢાગ રચીને બાહ્ય પદાર્થોમાં જ મૂર્છિત થાય છે તેનું પણુ અધઃપતન તેનાથી અવશ્ય થાય છે. સંયમ શબ્દનો અર્થ તો એ છે કે-ઇન્દ્રિયો અને ચિત્તની વૃત્તિ જે બાહ્ય પદાર્થોમા આસક્ત બની છે તેનો નિરોધ થઇ જવો. પરંતુ જેની મમતા બાહ્ય પરવસ્તુઓમા જાગ્રત છે, કેવી રીતે માનવામા આવે કે તેનો સત્ય સંયમભાવ છે, માટે એવો પ્રાણી સંયમભાવથી જીવન ગમે તે સ્થિતિમા રહે તેને તે પ્રિય લાગે છે, કારણુ કે શરૂઆતથી તેનો અભ્યાસ તેવો થયેલ છે, અર્થાત્ સંયમ જીવન વ્યતીત કરવા માટે ચિત્તવૃત્તિ અને ઇન્દ્રિયો ઉપર વિજય પ્રાપ્ત કરવાની મોટી જરૂરત હોય છે, આ પ્રકારનો ઉપદેશ તેને મળેલ નથી, કારણુ કે તેનુ જીવન તો બકરાની માફક "મૈ મૈ" કરતાં કરતાં

अन्यच्च–आरक्तम्=रुचिररागरञ्जितम्, विरक्तम्=विविधरागरञ्जितं पटादिकम् 'मणिम्' मणिः=पद्मरागादिस्तं, कुण्डलम्=प्रसिद्धम्, उपलक्षणमेतत्कटककेयूरादीनाम्, हिरण्येन=सुवर्णेन सह स्त्रीः परिगृह्य=स्वायत्तीकृत्य तत्रैव क्षेत्रवास्तुविविधवस्त्रमणिकुण्डलकामिन्यादौ रक्ताः=गृध्नवो मूढमतयो विपर्यासमुपयन्ति, वदन्ति च–अत्र संसारे तपो वा=अनशनादिस्वरूपम्, दमो वा=इन्द्रियनोइन्द्रियोपशमरूपः, नियमो वा=अहिंसाव्रतं न दृश्यते=न फलवदनुभूयते, तपोदमनियमवतां जनानां कायक्लेश एवान्यन्न किमपि फलम्, अपि च दृष्टस्य सुखादेर्हानिः, अदृष्टसुखस्य कल्पनं महदनुचितं, भवान्तरे चैतत्फलं भावीति ग्रहग्रहिलस्य प्रलाप एवेति वदन्

की तरह "मैं मैं" करता हुआ परपदार्थों में आसक्तिसंपन्न हो रहा है। अचित्तपरिग्रहरूप भडकीले रंग बिरंगे कपड़ों के, पद्मरागादिक मणियों के, कटक केयूर कुण्डल आदि के, सुवर्ण आदि धातुओं के, एवं स्त्री आदि सचित्त परिग्रह के अपनाने, एवम् उनके रक्षणादि करने में ही इनकी जीवनयात्रा समाप्त हो जाती है, अर्थात् सचित्त और अचित्त परिग्रह के संग्रह एवम् रक्षण करने में ही ऐसे जीव गृद्ध बने रहते हैं, और संयमजीवन को दोष देते हुए कहते हैं कि–"इस संसार में अनशनादिक तप, इन्द्रिय और मन को वश में करने रूप दम, अहिंसाव्रतादिरूप नियम कुछ भी कार्यकारी नहीं है। क्योंकि इनका आचरण करने वाले व्यक्तियों को कायक्लेश के सिवाय और किसी भी फल की प्राप्ति नहीं होती है, ऐसा भला संसार में कौन समझदार होगा जो प्रत्यक्ष अनुभूत सुखादिकों की कामना से प्रेरित होकर इनका परित्याग

પદાર્થોમાં આસક્તિસંપન્ન હોય છે. અચિત્ત પ્રરિગ્રહરૂપ જાતજાતના રંગબેરંગી કપડાના, પદ્મરાગાદિક મણિઓના, કટક, કેયૂર, કુડલ આદિના, સુવર્ણ આદિ ધાતુઓના, અને સ્ત્રી આદિ સચિત્ત પરિગ્રહના અપનાવવામા અને તેના રક્ષણાદિ કરવામાં જ તેની જીવનયાત્રા સમાપ્ત થઇ જાય છે, અર્થાત્ સચિત્ત અને અચિત્ત પરિગ્રહનો સંગ્રહ અને રક્ષણ કરવામાં જ એવા ગૃદ્ધ બની રહે છે, અને સંયમ જીવનને દોષ દેતા દેતા કહે છે કે "આ સંસારમા અનશનાદિક તપ, ઇન્દ્રિય અને મનને વશ કરવારૂપ દમ, અહિંસાવ્રતાદિરૂપ નિયમ કોઈપણ કાર્યકારી નથી, કારણ કે તેનું આચરણ કરવાવાળા વ્યક્તિઓને કાયકલેશ સિવાય બીજા કોઇ પ્રકારનું ફળ મળતું નથી. એવો ભલો! સંસારમા કોણ સમજદાર હશે જે પ્રત્યક્ષ અનુભૂત સુખાદિકોને છોડીને અદૃષ્ટ સુખાદિકોની કામનાથી પ્રેરિત બનીને તેનો પરિત્યાગ કરશે?

बालः=परिग्रहकटुकफलानभिज्ञः, सम्पूर्णं यथासमयप्राप्तकामिन्याद्यासक्तिपूर्वकं यथा स्यात्तथा जीवितुकामः असंयमेन दीर्घकालजीवनार्थी लालप्यमानः=कामभोगतीव्राभिलाषेण व्यर्थं प्रलपन् मूढः=विवेकविकलः पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टः, विपर्यासम्=वैपरीत्यम् मिथ्यात्वमित्यर्थस्तद्यथा–तत्त्वेऽतत्त्वबुद्धिम्, अतत्त्वे तत्त्वबुद्धिम्, कुदेव–कुगुरु–कुधर्मेषु सुदेव–सुगुरु–सुधर्मबुद्धिम्, इष्टेष्वनिष्टबुद्धिम्, अनिष्टेष्विष्टबुद्धिम्, इत्थम् विपर्ययम् उपैति=प्राप्नोति। उक्तञ्च–

करेगा?, यह तो एक इस प्रकार की कल्पना है कि–जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने घर में झरते हुए अमृत को छोड़कर किसी के बहकावे में आकर "पर्वत में अमृत झरता है" इस ख्याल से उसकी चाहना में उसे छोड़ वहां दौडा जाता है। जो हमारी इन्द्रियों के गोचर है वही वास्तविक है, इसके परे स्वर्ग नरकादि कुछ भी नहीं है, प्रत्यक्ष इन्द्रियों के सुख सिवाय परोक्ष स्वर्गादिक सुख है, यह सिर्फ एक श्रद्धा की ही वस्तु है वास्तविक कुछ नहीं है। तथा "तपश्चर्या का फल इस भव में न मिले तो न सही परभव में तो मिलेगा ही" इस प्रकार की कल्पना भी ग्रहगृहीत पुरुष के प्रलाप जैसी ही है। जैसे भूतादि के आवेश से युक्त प्राणी का प्रलाप निरर्थक होता है उसी प्रकार "इस भव में तप संयमरूप कष्ट को झेलकर प्राणी परलोकसंबंधी सुख समृद्धि को प्राप्त करता है" यह कहना भी निरर्थक है। इस प्रकार की विपरीत मान्यता उन अज्ञानी पुरुषों की है जो परिग्रह के फल से अनभिज्ञ हैं। रातदिन परिग्रह के बटोरने एवम् उसकी वृद्धि करने में दत्तावधान प्राणी की दृष्टि में संयम जीवन जैसे सुन्दर सिद्धांत

એ તો એક આ પ્રકારની કલ્પના છે કે–જે પ્રકારે કોઈ વ્યક્તિ પોતાના ઘરમાં ઝરતાં અમૃતને છોડીને કોઈના ભરમાવવાથી "પર્વતમાં અમૃત ઝરે છે" તેવા ખ્યાલથી તેની ચાહનામાં તેને છોડીને ત્યાં દોડી જાય છે. જે અમારી ઈન્દ્રિયોને ગોચર છે તે વાસ્તવિક છે. તેના સિવાય સ્વર્ગ નરકાદિ કંઇ પણ નથી, પ્રત્યક્ષ ઇન્દ્રિયોના સુખ સિવાય પરોક્ષ સ્વર્ગાદિક સુખ છે તે ફક્ત એક શ્રદ્ધાની વસ્તુ છે–વાસ્તવિક કંઇ પણ નથી. અને "તપશ્ચર્યાનું ફળ આ ભવમાં નહિ મળે તો નહિ પરભવમાં તો મળશે જ." આવા પ્રકારની કલ્પના પણ ગ્રહગૃહીત પુરૂષના પ્રલાપ જેવી જ છે. જેમ ભૂતાદિકના આવેશથી યુક્ત પ્રાણીનો પ્રલાપ નિરર્થક બને છે તે પ્રકારે "આ ભવમાં તપસંયમરૂપ કષ્ટને ભોગવી પ્રાણી પરલોક સંબંધી સુખ સમૃદ્ધિને પ્રાપ્ત કરે છે" એમ કહેવું પણ નિરર્થક છે. આવી વિપરીત માન્યતા તેવા અજ્ઞાની પુરૂષોની છે જે પરિગ્રહના કટુક ફળથી અનભિજ્ઞ છે. રાત દિન પરિગ્રહના વધારવામાં દત્તાવધાન પ્રાણીની દૃષ્ટિમાં સંયમ

का कोई महत्व न हो तो इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है, कारण कि कहावत है-जो नृत्य करने में सिद्धहस्त नहीं है, वह आंगन को टेड़ा कहता है। परिग्रहादि के बोझ से प्राणी की तमाम शक्तियाँ इतस्ततः बिखर जाती हैं अतः वे बिखरी हुई शक्तियां "संयमित जीवन बिखरी हुई शक्तियां को केन्द्रित करने वाला है" इस प्रकार कैसे महत्त्व दे सकती हैं. परन्तु यह मानना अवश्य पड़ेगा कि-जिस प्रकार सूर्य की किरणें जब किसी विशेष काच में केन्द्रित करली जाती हैं तो उनसे सहसा अग्नि प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार असंयम अवस्था में जो आत्मिक शक्तियां इधर उधर विषय कषायों में फँसकर अस्तव्यस्त हो रही थीं-जब वे संयमित जीवन से केन्द्रित करली जाती हैं तो इनसे भी एक ऐसा प्रवाह निकलता है जो प्राणी के जीवन में अपूर्व परिवर्तन कर देता है। लगाम जिस प्रकार स्वच्छंद घोड़े को, अंकुश मदोन्मत्त गजराज को वश में कर देता है, उसी प्रकार संयम भी जीवन को योग्य मार्ग पर पहुंचा देता है। यही एक ऐसा मार्ग है जो असंयम जीवन से प्राणी की रक्षा करता है। अतः ऐसे सुन्दर और हितावह मार्ग का सच्चे भावों से जो आराधन नहीं करते हैं वे प्राणी कैसे इससे उत्पन्न होने वाले लाभ को पा सकते हैं?। माना जा सकता है कि-संयम जीवन को

જીવન જેવા સુંદર સિદ્ધાંતનો કોઈ મહત્વ ન હોય તો તેમાં આશ્ચર્ય થાય તેવી કોઈ વાત નથી, કારણ કે કહેવત છે-જે નૃત્ય કરવામાં સિદ્ધહસ્ત નથી તે આંગણાને વાંકું કહે છે. પરિગ્રહાદિના બોજથી પ્રાણીની તમામ શક્તિઓ આડી અવળી વિખરાઈ જાય છે માટે તે વિખરાયેલી શક્તિઓ "સંયમિત જીવન જે વિખરાઈ ગયેલી શકિતઓને કેન્દ્રિત કરવાવાળું છે" આ પ્રકારે તે કેવી રીતે મહત્વ દઈ શકે. પરંતુ તે અવશ્ય માનવું પડશે કે જે પ્રકાર સૂર્યની કિરણો જ્યારે કોઈ વિશેષ કાચમાં કેન્દ્રિત કરવામાં આવે છે તો તેનાથી સહેજે અગ્નિ પ્રજ્વલિત થાય છે, તેવા પ્રકારે અસંયમ અવસ્થામાં જે આત્મિક શક્તિઓ આડી અવળી વિષય કષાયોમાં ફસીને અસ્તવ્યસ્ત થઈ રહી હતી, જ્યારે તે સંયમિત જીવનથી કેન્દ્રિત કરવામાં આવે છે તો તેનાથી પણ એક એવો પ્રવાહ નીકળે છે જે પ્રાણીના જીવનમાં અપૂર્વ પરિવર્તન કરે છે. લગામ જેવી રીતે સ્વચ્છંદ ઘોડાને, અંકુશ મદોન્મત્ત ગજરાજને વશમાં કરે છે તે પ્રકારે સંયમ પણ જીવનને યોગ્ય માર્ગ ઉપર પહોંચાડે છે. તે એક જ માર્ગ છે જે અસંયમ જીવનથી પ્રાણીની રક્ષા કરે છે, માટે આવા સુંદર અને હિતાવહ માર્ગને સાચા ભાવોથી જે આરાધન કરતા નથી તે પ્રાણી કેવી રીતે તેનાથી ઉત્પન્ન થતાં લાભને મેળવી શકે?

"दाराः परिभवकारा, बन्धुजनो बन्धनं विषं विषयाः।
कोऽयं जनस्य मोहो, ये रिपवस्तेषु सुहृदाशा" ॥ १ ॥ इति ।

पूर्णरूप से व्यतीत करने के लिये, तथा उसके रक्षण के लिये कषायों पर विजय प्राप्त करने की सर्व प्रथम बड़ी भारी जरूरत है। परिग्रह को अपनाना यह लोभकषाय के उदय में ही होता है। असंयमी जीव असंयम अवस्था में रहते हुए ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं, तथा यह चाहते हैं कि "मैंने जो यह परिग्रहादिक संगृहीत किया है उसके भोगने के लिये मैं अधिक से अधिक जीऊं"। असंयमी जीव परपदार्थों के उपभोग करने में ही अधिक आसक्तिसंपन्न होते हैं-इन्हें जितनी इन परपदार्थों को भोगने की तीव्र अभिलाषा रहती है उससे शतांश भी आत्मकल्याणमय संयमिजीवन की तर्फ इनकी रुचि नहीं होती। जन्मान्तर से मिथ्यात्व का संसर्ग चला आता है। जैनकुल में उत्पन्न होने पर भी उनके इस मिथ्यात्व का नाश नहीं होता। ऐसे ही जीव अनादिमिथ्यादृष्टि कहलाते हैं। जो वर्तमान भव में कुगुरु कुदेव और कुधर्म की संगति में पड़कर अपने में अतत्त्वरुचि को स्थान देते हैं वे मिथ्यादृष्टि जीव हैं। ये जीव इष्ट पदार्थों को अनिष्टकारी, तथा अनिष्ट पदार्थों को इष्टकारी माना करते हैं। वे यह नहीं विचारते हैं कि-

માનવામાં આવે છે કે-સંયમ જીવનને પૂર્ણ રૂપથી વ્યતીત કરવા માટે તથા તેના રક્ષણુ માટે કષાયો પર વિજય પ્રાપ્ત કરવાની સર્વ પ્રથમ જરૂરત છે. પરિગ્રહને અપનાવવો તે લોભકષાયના ઉદયમાં જ થાય છે. અસંયમી જીવ અસંયમ અવસ્થામાં રહીને પોતાનું જીવન વ્યતીત કરે છે, તથા એ ચાહે છે કે "મે જે આ પરિગ્રહાદિક સંગ્રહ કર્યો છે તેને ભોગવવાને માટે હું વધારેમાં વધારે જીવું" અસયમી જીવ પરપદાર્થોનો ઉપયોગ કરવામા જ અધિક આસકિતસંપન્ન હોય છે તેને જેટલી પરપદાર્થો ભોગવવાની તીવ્ર અભિલાષા રહે છે તેનાથી સોમાં ભાગની આત્મકલ્યાણુમય સંયમ જીવનની તરફ તેની રૂચી થતી નથી. જન્માન્તરથી મિથ્યાત્વનો સંસર્ગ ચાલ્યો આવે છે. જૈન કુળમાં ઉત્પન્ન થવા છતાં પણુ તેના આ મિથ્યાત્વનો નાશ થતો નથી એવા જીવ અનાદિમિથ્યાદષ્ટિ કહેવાય છે. જે વર્તમાન ભવમા કુગુરૂ કુદેવ અને કુધર્મની સંગતિમાં પડીને પોતાનામાં અતત્ત્વરૂચિને સ્થાન આપે છે તે મિથ્યાત્વદષ્ટિ જીવ છે. તે જીવ ઈષ્ટ પદાર્થોને અનિષ્ટકારી તથા અનિષ્ટ પદાર્થોને ઇષ્ટકારી માને છે. તે એવું વિચારતા નથી કે—

सर्वथा विपर्यस्तोऽनेकभवेषु परिभ्रमन् भ्रान्तः संयमात्मघातमेव करोतीति तात्पर्यम् । सूत्रे उपैतीत्यत्रैकवचनमार्षत्वात् ॥ सू० ३ ॥

ये पुनरविपर्यस्ताः संयमिनस्तेषां कर्तव्यमुपदिशति-'इणमेव' इत्यादि ।

मूलम्—इणमेव नावकंखंति, जे जणा धुवचारिणो। जाइमरणं परिन्नाय, चरेऽसंकमणे दढे ॥ नत्थि कालस्सऽणागमो ॥ सू० ४॥

छाया—इदमेव नावकाङ्क्षन्ति, ये जना ध्रुवचारिणः । जातिमरणं परिज्ञाय, चरेदशङ्कमना दृढः ॥ नास्ति कालस्याऽनागमः ॥ सू० ४ ॥

"दाराः परिभवकारा,-बन्धुजनो बन्धनं विषं विषयाः ।
कोऽयं जनस्य मोहो, ये रिपवस्तेषु सुहृदाशा" ॥ १ ॥

ये जो स्त्री आदिक पदार्थ हैं वे मेरा तिरस्कार करने वाले हैं । बन्धु जन एक बन्धन हैं । विषयादिक विष हैं। ऐसा क्या इस प्राणी का मोह है जो अपने शत्रुओं को भी मित्र समझ रहा है। इस प्रकार यह प्राणी विपरीतबुद्धिवाला बनकर अनेक भवों में परिभ्रमण कर हेयोपादेय के विवेक से रहित होकर संयमरूप अपनी आत्मा का घात करता रहता है । आत्मा का स्वभाव संयमस्वरूप है, इसको पालन नहीं करना, अथवा आत्मा को संयमी नहीं बनाना आत्मा की घात करना है ॥ सू० ३ ॥

जो सच्चे चारित्र से युक्त हैं वे इस असंयमिजीवन को पसन्द नहीं करते हैं, यह बात इस सूत्र में प्रदर्शित करते हैं—"इणमेव नावकंखंति' इत्यादि ।

"दाराः परिभवकारा, बन्धुजनो बन्धनं विषं विषयाः ।
कोऽयं जनस्य मोहो, ये रिपवस्तेषु सुहृदाशा" ॥ १ ॥

આ જે સ્ત્રી આદિક પદાર્થ છે તે મારો તિરસ્કાર કરવાવાળા છે બંધુજન એક બંધન છે. વિષયાદિક વિષ છે. એવો કયો આ પ્રાણીનો મોહ છે જે પોતાના શત્રુઓને પણ મિત્ર સમજે છે. આ પ્રકારે આ પ્રાણી વિપરીત બુદ્ધિવાલો બનીને અનેક ભવોમાં પરિભ્રમણ કરી હેયોપાદેયના વિવેકથી રહિત થઇને સંયમરૂપ પોતાના આત્માનો ઘાત કરતા રહે છે. આત્માનો સ્વભાવ સંયમસ્વરૂપ છે તેનું પાલન નહિ કરવું અથવા આત્માને સંયમી નહિ બનાવવો તે આત્માની ઘાત કરવા બરાબર છે ॥ સૂ૦ ૩ ॥

જે સાચા ચારિત્રથી યુક્ત છે તે આવા અસંયમિજીવનને પસંદ કરતા નથી. આ વાત આ સૂત્રમાં પ્રદર્શિત કરે છે-"इणमेव नावकंखंति' ઇત્યાદિ.

'इद '-मित्यादि। " ध्रुवचारिणः " ध्रुवति=व्रजति आत्मतः पृथग्भवति कर्मचयो येन तद् ध्रुवं=चारित्रं, तच्चरितुं शीलं येषां ते ध्रुवचारिणः।

यद्वा-ध्रुवो मोक्षस्तद्धेतुत्वात्तपोज्ञानक्रियादिकं कार्यकारणयोरभेदात्, तच्चरणशीला ध्रुवचारिणः। ये जना ध्रुवचारिणः, ते इदमेव असंयमजीवितं पूर्वभुक्तभोगादिकं वा नावकाङ्क्षन्ति=नेच्छन्ति। 'जातिमरणं' जातिश्च मरणं च जातिमरणं, जातिमरणं यत्र स जातिमरणः=संसारस्तं वा ज्ञ-परिज्ञया ज्ञात्वा 'अशङ्कितमनाः' अशङ्कितं मनो यस्य सोऽशङ्कितमनाः=तपोदमनियमवैफल्याशङ्काशून्यो जिनवचनश्रद्धावान्, अत एव दृढः=विश्रोतसिकारहितः, परीषहोपसर्गैर्निष्प्रकम्पो वा चरेत्=विहरेत्।

ध्रुव शब्द का अर्थ चारित्र है, क्योंकि-" ध्रुवति-व्रजति आत्मनः पृथग्भवति कर्मचयो येन तत् ध्रुवम् " कर्मसमूह जिसके द्वारा आत्मा से पृथक् होता है वह ध्रुव है, वह चारित्रस्वरूप आत्मा का निजधर्म है।

भावार्थ—चारित्र आराधन के द्वारा आत्मा ज्यों ज्यों अविरति, प्रमाद, कषाय और अशुभ योगों का निग्रह करता जाता है, त्यों त्यों इस आत्मा में अपूर्व अपूर्व उज्ज्वलता की जागृति होती जाती है। इस उज्ज्वलता की जागृति में आत्मा संवर और निर्जरा के द्वारा समस्त कर्मों का नाश कर देता है, अर्थात् समस्त कर्म आत्मा से पृथक् हो जाते हैं। तप श्रुत और व्रतों का पालन करने वाला आत्मा ही ध्यानरूप रथ पर आरूढ होकर संवर और निर्जरा के सुन्दर मैदान में आकर अपने अन्तिम मोक्ष पुरुषार्थ को प्राप्त कर लेता है। सुवर्ण जैसे जैसे अग्नि में तपाया जाता है वैसे वैसे वह बिलकुल निर्मल होता जाता है, उसी प्रकार कर्मों के अनादि संबंध से आवृत यह आत्मा भी मलिनदशासंपन्न है, उसकी इस

ધ્રુવ શબ્દનો અર્થ ચારિત્ર છે, કારણ કે " ध्रुवति व्रजति आत्मनः पृथग्भवति कर्मचयो येन तत् ध्रुवम् " કર્મસમૂહ જે દ્વારા આત્માથી પૃથક્ થાય છે તે ધ્રુવ છે, તે ચારિત્રસ્વરૂપ આત્માનો નિજધર્મ છે.

ભાવાર્થ—ચારિત્ર આરાધનદ્વારા આત્મા જેમ જેમ અવિરતિ, પ્રમાદ, કષાય અને અશુભ યોગોનો નિગ્રહ કરતા રહે છે તેમ તેમ આ આત્મામા અપૂર્વ અપૂર્વ ઉજ્જવલતાની જાગ્રતિ થાય છે. આ ઉજ્જવલતાની જાગ્રતિમાં આત્મા સંવર અને નિર્જરાદ્વારા સમસ્ત કર્મોનો નાશ કરે છે, અને સમસ્ત કર્મ આત્માથી પૃથક્ થઈ જાય છે. તપ શ્રુત અને વ્રતોના પાલન કરવાવાળા આત્મા જ ધ્યાનરૂપ રથ પર આરૂઢ થઈ સંવર અને નિર્જરાના સુદર મેદાનમાં આવીને પોતાના અંતિમ મોક્ષ પુરૂષાર્થને પ્રાપ્ત કરી લે છે સુવર્ણને અગ્નિમા જેમ જેમ વધારે તપાવવામા આવે તેમ તેમ તે વધારે નિર્મળ બને છે. તે પ્રકારે કર્મોના અનાદિ સંબંધથી

मलिनता को दूर करने में चारित्र की अराधना अग्नि का काम देती है। कर्मों का संबंध आत्मा के साथ आज का नहीं है किन्तु यह तो अनादिकाल का है, यह बात कई वार लिखी जा चुकी है। ये कर्मपुद्गल अचेतन होने से स्वयं आत्मा के पास नहीं जाते किन्तु अनादिकाल से बद्धरूप इस आत्मा के योगरूप परिणाम में ऐसी आकर्षक शक्ति है कि जिसके द्वारा वे कर्मरूप पुद्गल खींचे जाते हैं–अर्थात् आत्मा जब कषायों के द्वारा अत्यन्त संतप्त हो जाता है तब योग द्वारा कर्मपुद्गलों को–तपा हुआ लोहा जिस तरह पानी को चारों ओर से खींचता है ठीक उसी तरह खींचता है, और वे खाये हुए भोजन के इस रुधिरादिरूप की तरह अपने ही आप भिन्न-भिन्न रूप से परिणत हो जाते हैं। कर्मपुद्गल नवीन-नवीन तयार नहीं होते, कारण कि "सतो न विनाशः असतश्च उत्पत्तिर्न" सत् का विनाश और असत् की उत्पत्ति नहीं होती। आत्मा कषायों से जब संतप्त हो जाता है तब मन, वचन और कायरूप योगों के द्वारा जिन कार्मण वर्गणाओं को खींचता है उन्हीं की कर्मसंज्ञा हो जाती है।

प्रश्न—आपने अभी तो यह कहा है कि–आत्मा कर्मों के साथ अनादिकाल से बंध रहा है, और अब आप कहते हैं कि–जिन कार्मण

આવૃત આ આત્મા પણ મલિનદશાસંપન્ન છે, તેની આ મલિનતાને દૂર કરવામાં ચારિત્રની આરાધના અગ્નિનુ કામ આપે છે. કર્મોનો સંબંધ આત્માની સાથે આજનો નથી પણ અનાદિ કાળનો છે, એ વાત ઘણી વખત લખાઈ ચુકી છે. આ કર્મ પુદ્ગલ અચેતન હોવાથી પોતે આત્માની પાસે નથી જતા પણ અનાદિ કાળથી બદ્ધરૂપ આ આત્માને યોગરૂપ પરિણામમાં એવી આકર્ષક શક્તિ છે કે જેના દ્વારા તે કર્મરૂપ પુદ્ગલ ખેંચાઈ જાય છે. અર્થાત્ આત્મા જ્યારે કષાયોદ્વારા અત્યન્ત સંતપ્ત થાય છે ત્યારે યોગદ્વારા કર્મ પુદ્ગલોને–તપેલુ લોઢું જેવી રીતે પાણીને ચારે બાજુથી ખેંચે છે, ઠીક તે પ્રમાણે ખેંચે છે. અને તે ખવાયેલાં ભોજનનું આ રૂધિરાદિ રૂપની માફક પોતાની મેળે જ ભિન્ન ભિન્ન રૂપથી પરિણત થાય છે. કર્મપુદ્ગલ નવીન નવીન તૈયાર થતાં નથી. કારણ કે "सतो न विनाशः असतश्च उत्पत्तिर्न" સત્‌નો વિનાશ અને અસત્‌ની ઉત્પત્તિ થતી નથી. આત્મા કષાયોથી જ્યારે સંતપ્ત થાય છે ત્યારે મન, વચન અને કાયા રૂપ યોગોદ્વારા જે કાર્મણ વર્ગણાઓને ખેંચે છે તેની કર્મસંજ્ઞા થઇ જાય છે.

પ્રશ્ન—આપે હમણા તો એ કહ્યુ કે આત્મા કર્મોની સાથે અનાદિ કાળથી બંધી રહ્યો છે, અને હવે આપ કહો છો કે જે કાર્મણ વર્ગણાઓને ખેંચે છે

वर्गणाओं को खींचता है उन्हीं की कर्मसंज्ञा हो जाती है। इससे तो आत्मा और कर्म का संबंध सादि सिद्ध होता है।

उत्तर—अभिप्राय को समझे विना ही यह प्रश्न किया गया है। कहने का तात्पर्य यही है कि–यह जीवात्मा अनादि से ही कर्मबन्ध सहित है। इसके साथ कोई नियमित समय से कर्मबंध नहीं हुआ। ऐसा नहीं था कि जीव अलग-न्यारा था और कर्म न्यारे थे, पीछे से इन दोनों का संयोग हुआ हो। किन्तु जिस प्रकार मेरुगिरि आदि अकृत्रिम स्कन्धों में अनंत पुद्गलपरमाणु अनादि से ही बन्धरूप हो रहे हैं, और उनमें पुराने पुद्गलपरमाणु भिन्न होते रहते हैं, और नवीन आकर मिलते हैं। इसी प्रकार इस संसार में एक जीवद्रव्य और अनन्त कर्मरूप पुद्गल-परमाणुओं का परस्पर में अनादिकाल से संबन्ध है। इनमें से कई कर्म-परमाणु भिन्न होते रहते हैं और कई कर्मपरमाणु मिलते रहते हैं। इस प्रकार इन कर्मपरमाणुओं में परस्पर मिलना बिछुड़ना होता रहता है।

प्रश्न—पुद्गलपरमाणु तो रागादिक के निमित्त को पाकर कर्मरूप हुआ करते हैं, फिर वे अनादि से कर्मरूप अवस्था वाले कैसे माने जा सकते, कारण कि कार्मण वर्गणा, जिससे कर्मपर्याय उत्पन्न होती है वह स्वयं पुद्गल द्रव्य है ?।

તેની કર્મસંજ્ઞા થાય છે તેથી તો આત્મા અને કર્મનો સંબંધ સાદિ સિદ્ધ થાય છે.

ઉત્તર—અભિપ્રાયને સમજ્યા વિના જ પ્રશ્ન કર્યો છે. કહેવાનો તાત્પર્ય એ છે કે–આ જીવાત્મા અનાદિથી જ કર્મબંધસહિત છે. તેની સાથે કોઇ નિયમિત સમયથી કર્મબંધ થયેલ નથી. એવું ન હતું કે જીવ અલગ–જુદો હતો અને કર્મ પણ જુદા હતાં, પાછળથી એ બન્નેનો સંયોગ થયો હોય, પણ જેવી રીતે મેરૂગિરિ આદિ અકૃત્રિમ સ્કન્ધોમાં અનંત પુદ્ગલપરમાણુ અનાદિથી જ બંધરૂપ થઇ રહેલ છે, અને તેમાં પુરાણા પુદ્ગલપરમાણુ ભિન્ન થતાં રહે છે અને નવા આવીને મળે છે. આ પ્રકાર આ સંસારમા એક જીવદ્રવ્ય અને અનંત કર્મરૂપ પુદ્ગલપરમાણુઓના પરસ્પરમાં અનાદિ કાળથી સબંધ છે, તેમાંથી કોઇ કર્મપરમાણુ ભિન્ન થતાં રહે છે અને કોઈ પુદ્ગલપરમાણુ મળતાં રહે છે. આ પ્રકાર આ કર્મપરમાણુઓમાં પરસ્પર મળવું, છુટા થવું વિગેરે થતું જ રહે છે.

પ્રશ્ન—પુદ્ગલપરમાણુ તો રાગાદિકના નિમિત્તને લઇને કર્મરૂપ થયા કરે છે, પછી તે અનાદિથી કર્મરૂપ અવસ્થાવાળા કેવી રીતે માનવામા આવે કારણ કે કાર્મણવર્ગણા જેનાથી કર્મપર્યાય ઉત્પન્ન થાય છે તે સ્વય પુદ્ગલદ્રવ્ય છે?

उत्तर—निमित्त की संभावना तो नवीन कार्य की उत्पत्ति में ही कार्यकारी मानी जाती है। अनादि अवस्था में निमित्त की कल्पना करना उसकी अनादिता पर बट्टा लगाना है। जहां पर निमित्त है वहां अनादिता नहीं, और जहां अनादिता है वहां पर निमित्त नहीं। निमित्त का सम्बन्ध सादिता के साथ हुआ करता है। जैसे नवीन पुद्गलपरमाणु का दो गुण अधिक बंध स्निग्ध और रूक्ष के द्वारा होता है। यहां पर नवीन पुद्गल परमाणुओं के बंध के सम्बन्ध में स्निग्ध और रूक्षरूप निमित्त की कल्पना करनी पड़ती है, परन्तु मेरुगिरिआदि अकृत्रिम स्कन्धों में अनादि पुद्गलपरमाणु के बंध के सम्बन्ध में निमित्त की कल्पना करना कोई महत्त्व नहीं रखता। ठीक इसी प्रकार नवीन पुद्गलपरमाणुओं का कर्मरूप होना रागादिकनिमित्ताधीन है, परन्तु जिन पुद्गलपरमाणुओं की अनादिकाल से ही कर्मरूप अवस्था हो रही है, उसमें निमित्त की कल्पना करना कोई भी प्रयोजन की पुष्टि नहीं करता। शास्त्र में इसी बात का समाधान यों लिखा है—

"नैवम्, अनादिप्रसिद्धद्रव्यकर्मसम्बन्धस्य तत्र हेतुत्वेनोपादानात्"

कोई वादी प्रश्न करता है कि जब रागादिक भावकर्म का कारण द्रव्यकर्म

ઉત્તર—નિમિત્તની સંભાવના તો નવીન કાર્યની ઉત્પત્તિમાં જ કાર્યકારી માનવામાં આવે છે, અનાદિ અવસ્થામા નિમિત્તની કલ્પના કરવી તે તેની અનાદિતા ઉપર બટ્ટો લગાડવા બરાબર છે. જે ઠેકાણે નિમિત્ત છે ત્યા અનાદિતા નહીં અને જ્યા અનાદિતા છે ત્યા નિમિત્ત નહિ. નિમિત્તનો સંબંધ સાદિતાની સાથે થયા કરે છે. જેમ નવીન પુદ્ગલપરમાણુના બે ગુણ અધિક બધ સ્નિગ્ધ અને રૂક્ષ દ્વારા થાય છે. આ ઠેકાણે નવીન પુદ્ગલ પરમાણુઓના બંધના સબંધમાં સ્નિગ્ધ અને રૂક્ષરૂપ નિમિત્તની કલ્પના કરવી પડે છે, પરતુ મેરૂગિરિ આદિ અકૃત્રિમ સ્કન્ધોમાં અનાદિ પુદ્ગલ પરમાણુના બધના સબંધમા નિમિત્તની કલ્પના કરવી તે કોઇ મહત્વ રાખતું નથી ઠીક તે પ્રકાર નવીન પુદ્ગલપરમાણુઓનુ કર્મરૂપ હોવું રાગાદિક નિમિત્તાધીન છે, પરતુ જે પુદ્ગલપરમાણુઓની અનાદિ કાળથી જ કર્મરૂપ અવસ્થા થઈ રહેલ છે, તેમાં નિમિત્તની કલ્પના કરવી કોઇપણ પ્રયોજનની પુષ્ટિ નથી કરતી. શાસ્ત્રમા આ વાતનુ સમાધાન આમ લખેલ છે—

"नैवम्, अनादिप्रसिद्धद्रव्यकर्मसम्बन्धस्य तत्र हेतुत्वे नोपादानात्"

કોઇ વાદી પ્રશ્ન કરે છે કે—જ્યારે રાગાદિક ભાવકર્મનું કારણ દ્રવ્યકર્મ છે,

है, और द्रव्यकर्म का कारण रागादिक भावकर्म है तो ऐसी परिस्थिति में इतरेतराश्रय दोष आकर उपस्थित होता है। इस दोष में किसीकी भी स्वतन्त्र सत्ता की सिद्धि नहीं होती है। तब आचार्य कहते हैं-ऐसा मत कहो, कारण कि अनादि से ही द्रव्यकर्म का सम्बन्ध स्वयं सिद्ध है, और इसी की वजह से जीव में रागादिक भावों की उत्पत्ति होती है। अनुभव से भी यही बात प्रतीतकोटि में आती है कि-यदि रागादिक भाव जीव के विना किसी निमित्त के स्वीकार किये जावें तो वे जीव के निजस्वभाव हो जाने से विभाव भाव कैसे माने जा सकेंगे?। ऐसी परिस्थिति में जीव का निजभाव रागादिक भी मानना होगा। परन्तु ऐसी मान्यता शास्त्र से बहिर्भूत है।

प्रश्न—कर्म और आत्मा का आप अनादि सम्बन्ध कहते हैं परन्तु यह बात ठीक नहीं बैठती, कारण कि इन दोनों का जो सम्बन्ध है वह संयोगसम्बन्ध ही है, तादात्म्यसम्बन्ध नहीं। पहिले दूध और पानी की तरह ये दोनों स्वतन्त्र हों और फिर परस्पर मिलें तब इनका सम्बन्ध मानना ठीक हो सकता है।

उत्तर—जैसे जल और दूध का सुवर्ण और किट्टिक का तुष और कण का, तिल और तैल का सम्बन्ध जनादि का माना जाता है, उसी

દ્રવ્યકર્મનું કારણ રાગાદિક ભાવકર્મ છે તો આવી પરિસ્થિતિમાં ઇતરેતરાશ્રય દોષ આવીને ઉપસ્થિત થાય છે. આ દોષમાં કોઈની પણ સ્વતત્ર સત્તાની સિદ્ધિ થતી નથી. ત્યારે આચાર્ય કહે છે-એવું ન કહો, કારણ કે અનાદિથી દ્રવ્ય-કર્મનો સંબંધ સ્વયસિદ્ધ છે. અને એજ કારણથી જીવમાં રાગાદિક ભાવોની ઉત્પત્તિ થાય છે. અનુભવથી પણ એ વાત પ્રતિતીકોટિમાં આવે છે, કે-કદાચ રાગાદિક ભાવ જીવને વિના કોઈ નિમિત્તે સ્વીકાર કરવામાં આવે. તો તે જીવના નિજ ભાવ થઈ જવાથી વિભાવ ભાવ કેવી રીતે માની શકાશે? આવી પરિસ્થિ-તિમાં જીવનો નિજભાવ રાગાદિક પણ માનવો પડશે, પરંતુ એવી માન્યતા શાસ્ત્રથી બહિર્ભૂત છે.

પ્રશ્ન—કર્મ અને આત્માનો આપ અનાદિ સંબંધ કહો છો પરંતુ એ વાત ઠીક બેસતી નથી, કારણ કે બન્નેનો જે સંબંધ છે તે સયોગસંબંધ જ છે. તાદાત્મ્યસંબંધ નહિ, પહેલાં દૂધ અને પાણીની માફક બન્ને સ્વતંત્ર હોય અને પછી પરસ્પર મળે ત્યારે સંબંધ માનવો તે ઠીક લાગે છે

ઉત્તર—જેવી રીતે પાણી અને દૂધ, સુવર્ણ અને કિટ્ટિક, ચોખા અને ફોતરી, તલ અને તેલનો સબધ અનાદિનો માનવામાં આવે છે, તે પ્રકારે તેનો

प्रकार इनका भी सम्बन्ध अनादि का ही है। नवीन इनका सम्बन्ध नहीं हुआ है। इनका परस्पर में संयोगसम्बन्ध ही है, ऐसा जो कहा जाता है वह आगामी काल में इनकी भिन्नता को देखकर ही। अनादि से मिले हुए होने पर भी ये जुदे-जुदे हो जाते हैं, इससे अनुमान होता है कि ये पहिले से भी जुदे हैं। परस्पर संयोगसंबंधविशिष्ट होने पर भी ये दोनों पदार्थ स्वस्वरूपापेक्षया भिन्न भिन्न ही है। यदि भिन्न न हों तो फिर मुक्ति इन के पृथक् होने से जो जीवात्मा को प्राप्त होती है, वह कैसे हो सकेगी। अतः जीव और कर्म का संबंध अनादि का ही है सादि नहीं।

प्रश्न—कर्म जब पुद्गलपिंडरूप हैं, तब वे घटपटादिक की तरह इन्द्रियगम्य क्यों नहीं होते।

उत्तर—स्थूल-स्थूल १, स्थूल २, स्थूल-सूक्ष्म ३, सूक्ष्म-स्थूल ४, सूक्ष्म ५, और सूक्ष्म-सूक्ष्म ६, इस प्रकार सिद्धान्तकारों ने पुद्गल को इन छह विभागों में विभक्त किया है। इनमें कागज, लकड़ी, कलम, दावात आदि स्थूल-स्थूल पुद्गल हैं, इनमें कठोर वस्तुओं का समावेश है। स्थूल-स्थूल वस्तुएँ आपस में छिन्न भिन्न होने पर अपने आप फिर मिल नहीं सकती १।

પણ સબંધ અનાદિ કાળનો છે નવીન તેનો સંબંધ થયો નથી. તેનો પરસ્પરમાં સંયોગસબંધ જ છે એવું જે કહેવામાં આવે છે તે આગામી કાળમાં તેની ભિન્નતાને દેખીને જ કહેવામાં આવે છે. અનાદિથી તેઓ મળેલ છે છતાં તે જુદા જુદા થઇ જાય છે, તેથી અનુમાન થાય છે કે પહેલાંથી જ જુદા છે. પરસ્પર સયોગસંબંધવિશિષ્ટ હોવા છતાં પણ એ બન્ને પદાર્થ સ્વસ્વરૂપાપેક્ષયા ભિન્ન જ રહેલ છે. જો જુદા નહિ હોત તો પછી મુક્તિ તેના પૃથક્ થવાથી જે જીવાત્માને પ્રાપ્ત થાય છે તે કેવી રીતે થઈ શકે, માટે જીવ અને કર્મનો સંબંધ અનાદિ છે સાદિ નહિ

પ્રશ્ન—કર્મ જ્યારે પુદ્ગલપિંડરૂપ છે, ત્યારે તે ઘટપટાદિકની માફક ઇન્દ્રિયગમ્ય કેમ નથી થતાં.

ઉત્તર—સ્થૂલ-સ્થૂલ ૧, સ્થૂલ ૨, સ્થૂલ-સૂક્ષ્મ ૩, સૂક્ષ્મ-સ્થૂલ ૪, સૂક્ષ્મ ૫, અને સૂક્ષ્મ-સૂક્ષ્મ ૬, આ પ્રકારે સિદ્ધાંતકારોએ પુદ્ગલોને છ વિભાગોમાં વિભક્ત કરેલ છે. તેમાં કાગળ, લાકડી, કલમ, ખડીઓ આદિ સ્થૂલ-સ્થૂલ પુદ્ગલ છે, તેમાં કઠોર વસ્તુઓનો સમાવેશ છે, સ્થૂલ-સ્થૂલ વસ્તુઓ અંદરોઅંદર છિન્નભિન્ન થવાથી પોતાની મેળે ફરી મળી શકતી નથી ૧, સ્થૂલ-વહેવાવાળી ચીજો, જેમ

स्थूल–बहने वाली चीजें, जैसे पानी दूध घृत वगैरह २। स्थूल-सूक्ष्म–जो देखने में मोटी हों, परन्तु हाथों से पकडी न जा सकें, जैसे प्रकाश धूप और छाया आदि ३। सूक्ष्म-स्थूल–जो देखने में न आवें ऐसी सूक्ष्म हों, परन्तु भारी कार्य कर सकें, जैसे हवा शब्द इत्यादि ४। सूक्ष्म–जो पुद्गल-पिंड इतने सूक्ष्म हैं कि वे किसी भी इन्द्रिय से ग्रहण न हो सकें, जैसे कार्मणवर्गणाएँ ५। सूक्ष्म-सूक्ष्म–दो परमाणुओं का स्कंध या एक परमाणु ६। इन छह भेदों में कर्मपुद्गलपिंड सूक्ष्म है, अतः वह इन्द्रियगम्य नहीं हो सकता।

प्रश्न—कर्म की सत्ता तब कैसे जानी जाती है?

उत्तर—उसके कार्य से।

प्रश्न—इन कर्मों का कार्य क्या है?

उत्तर—आत्मा के ज्ञानादिक गुणों का घात करना, केवलज्ञान की ज्ञानावरण, अनन्त दर्शन की दर्शनावरण, अव्याबाध की वेदनीय, क्षायिक सम्यक्त्व की मोहनीय, अवगाहनत्व का आयु, सूक्ष्मत्व गुण का नाम, अगुरुलघु गुण का गोत्र और अनन्तवीर्य का अन्तराय घात करता है। तथा एक जीव सुखी है और एक जीव दुःखी है, एक विद्वान् है एक

પાણી, દૂધ, ઘી વિગેરે ૨, સ્થૂલ–સૂક્ષ્મ–જે દેખવામાં મોટી હોય છે પરંતુ હાથોથી પકડી શકાતી નથી, જેમ પ્રકાશ, ધૂપ, છાયા આદિ ૩, સૂક્ષ્મ–સ્થૂલ–જે દેખવામા ન આવે એવી સૂક્ષ્મ હોય પણ ભારી કામ કરી શકે, જેમ હવા, શબ્દ ઇત્યાદિ ૪, સૂક્ષ્મ–જે પુદ્ગલપિંડ એટલા સૂક્ષ્મ છે કે તે કોઇપણ ઇન્દ્રિયથી ગ્રહણ થઈ ન શકે, જેમ કાર્મણવર્ગણાઓ ૫, સૂક્ષ્મ–સૂક્ષ્મ–બે પરમાણુઓના સ્કંધ અને એક પરમાણુ ૬, આ છ ભેદોમાં કર્મપુદ્ગલપિંડ સૂક્ષ્મ છે, માટે તે ઇન્દ્રિયગમ્ય થઇ શકતા નથી.

પ્રશ્ન—કર્મની સત્તા ત્યારે કેવી રીતે જાણી શકાય?

ઉત્તર—તેના કાર્યથી.

પ્રશ્ન—તે કર્મોનું કાર્ય શુ છે?

ઉત્તર—આત્માના જ્ઞાનાદિ ગુણોનો ઘાત કરવો, કેવળજ્ઞાનનો જ્ઞાનાવરણ, અનન્તદર્શનનો દર્શનાવરણ, અવ્યાબાધનો વેદનીય, ક્ષાયિક સમ્યક્ત્વનો મોહનીય, અવગાહ તત્ત્વનો આયુ, સૂક્ષ્મત્વ ગુણનો નામ, અગુરૂલઘુગુણનો ગોત્ર અને અનંત વીર્યનો અન્તરાય ઘાત કરે છે. તેથી એક જીવ સુખી છે અને એક જીવ દુઃખી છે, એક વિદ્વાન છે એક મૂર્ખ છે, એક સબલ છે એક કમજોર છે, એક રાત

मूर्ख है, एक सबल है एक कमजोर है, एक रातदिन सुख चैन में मस्त बना रहता है एक दर दर का भिखारी बना हुआ है, यह सब किस का कार्य है? कहना पड़ेगा कर्म का। यह ज्ञानावरणादिकर्मरूप पर्याय कार्मणवर्गणाओं की हुई है। कार्मणवर्गणा पुद्गल द्रव्य है, जो जीव के रागादिक भावों के निमित्तवश ज्ञानावरणादि पर्यायरूप परिणत हो जाता है, जिस प्रकार मृतिका में निमित्ताधान घटपर्याय हुआ करती है। इस प्रकार की पर्याय उन कार्मणवर्गणाओं में अनादिकालीन है- नवीन नहीं है, और यह जीवात्मा भी उन कर्मपर्यायों से अनादिकाल से ही परतन्त्र हो रहा है। इसकी इस परतन्त्रतारूप बंधदशा का कोई निश्चित समय नहीं है, अतः अनादिकाल से यह कर्मों के जाल में फँसा है, ऐसा कहा जाता है। अनादिता और अनंतता एवं सादिता का संबंध है सिर्फ अनंतता का ही नहीं।

चारित्राराधन करने से आत्मा के कर्मों का नाश होता है, इसका अभि-प्राय यही है कि–आत्मा के कर्मपर्यायों का नाश हो जाता है, क्यों कि कर्मद्रव्य का कभी भी नाश नहीं होता। कर्मपर्याय का ही नाश होता है। जिस कार्मण द्रव्य में पहिले कषायादिक के निमित्त से कर्मरूप पर्यायें

દિવસ સુખચેનમાં મસ્ત બન્યો રહે છે, એક ઘરઘરનો ભિખારી બનેલ છે. આ બધા કેના કાર્યો છે? કહેવુ પડશે કે કર્મના. આ જ્ઞાનાવરણાદિ કર્મરૂપ પર્યાય કાર્મણ વર્ગણાઓની થયેલી છે. કાર્મણવર્ગણા તે પુદ્ગલદ્રવ્ય છે જે જીવના રાગા-દિક ભાવોના નિમિત્તવશ જ્ઞાનાવરણાદિપર્યાયરૂપ પરિણત થાય છે જે પ્રકારે મૃત્તિકામાં નિમિત્તાધાન ઘટપર્યાય થાય છે તે પ્રકારની પર્યાય તે કાર્મણ વર્ગણાઓમાં અનાદિ કાલીન છે, નવીન છે નહિ. અને આ જીવાત્મા પણ તે કર્મપર્યાયોથી અનાદિ કાળથી જ પરતંત્ર થઇ રહેલ છે. તેની આ પરતંત્રતારૂપ બંધદશાનો કોઈ નિશ્ચિત સમય નથી, માટે અનાદિ કાળથી આ કર્મોની જાળમાં ફસેલ છે એવું કહેવામા આવે છે. અનાદિતા અને અનંતતા એવં સાદિતાનો સંબંધ છે ફક્ત અનંતતાનો જ નહિ

ચારિત્રારાધન કરવાથી આત્માનાકર્મોનો નાશ થાય છે. તેનો અભિપ્રાય એ છે કે આત્માના કર્મપર્યાયોનો નાશ થાય છે, કારણ કે કર્મદ્રવ્યનો કોઇ વખત નાશ થતો નથી, કર્મપર્યાયોનો જ નાશ થાય છે. કાર્મણ દ્રવ્યમાં પહેલાં કષા યાદિકના નિમિત્તથી કર્મરૂપ પર્યાયો બની હતી, તે નિમિત્ત દૂર થવાથી તે દ્રવ્ય અકર્મરૂપ પર્યાયથી સ્થિત થાય છે, કાર્મણવર્ગણારૂપ દ્રવ્ય સામાન્ય છે. તેમાં

होती थीं, उस निमित्त के हट जाने पर वही द्रव्य अकर्मरूप पर्याय से स्थित हो जाता है। कार्मणवर्गणारूप द्रव्य सामान्य है, उस में ज्ञानावरणादिरूप कर्मप्रकार नहीं है। जब वह कर्मरूप बनता है, तब उसमें ज्ञानावरणादि प्रकार होते हैं। ज्ञानावरणादि कर्मप्रकार की स्थिति जब पूर्ण हो जाती है, अथवा तप संयम के द्वारा जब उसका विनाश किया जाता है तब वह आत्मा से पृथक् हो जाता है, इस का भाव यही है कि वह कार्मण द्रव्य उन२ पर्यायों से रहित होकर अपने मूल स्वभाव से वहां स्थित रहता है, द्रव्य का कभी भी विनाश नहीं होता। सुवर्ण अथवा मणि से जिस प्रकार उनके मल की निवृत्ति होती है, उसी प्रकार आत्मा से भी कर्मपर्याय की निवृत्ति होती है। ऐसा होने पर जीव की आत्यन्तिक शुद्धि हो जाती है। सकलकर्मपर्याय के विनाश होने पर मूल द्रव्य का विनाश नही होता है। जिस प्रकार घटपर्याय के विनाश होने पर मृत्तिका अघट पर्याय से स्थित रहती है, इसी प्रकार सकलपर्याय के विनाश होने पर भी कर्मद्रव्य अकर्मपर्याय से आक्रान्त हो जाता है, द्रव्य अनन्त पर्यायवाला है। जिस प्रकार कार्मण द्रव्य की पर्याय कर्म है उसी प्रकार अकर्म भी उसकी एक पर्याय है। विवक्षित जीव की अपेक्षा से ही उसमें कर्म और अकर्म पर्याय रहती है। संसारी

જ્ઞાનાવરણાદિરૂપ કર્મપ્રકાર નથી. જ્યારે તે કર્મરૂપ બને છે ત્યારે તેમાં જ્ઞાનાવરણાદિ પ્રકાર થાય છે જ્ઞાનાવરણાદિ કર્મપ્રકારની સ્થિતિ જ્યારે પૂર્ણ થાય છે, અથવા તપ સંયમ દ્વારા જ્યારે તેનો વિનાશ કરવામાં આવે છે ત્યારે તે આત્માથી પૃથક્ થાય છે. તેનો ભાવ એ છે કે તે કાર્મણ દ્રવ્ય તે તે પર્યાયોથી રહિત થઈને પોતાના મૂલ સ્વભાવમા ત્યાં સ્થિત રહે છે. દ્રવ્યનો કોઈ વખત પણ વિનાશ થતો નથી. સુવર્ણ અથવા મણિથી જે પ્રકારે તેના મલની નિવૃત્તિ થાય છે તે પ્રકારે આત્માથી પણ કર્મપર્યાયની નિવૃત્તિ થાય છે. એવું બનવાથી જીવની આત્યન્તિક શુદ્ધિ થાય છે. સકલ કર્મપર્યાયનો વિનાશ થવાથી મૂલ દ્રવ્યનો વિનાશ થતો નથી. જે પ્રકારે ઘટપર્યાયનો વિનાશ થવાથી મૃતિકા અઘટપર્યાયથી સ્થિત રહે છે તે પ્રકારે સકલ પર્યાયનો વિનાશ થવાથી કર્મ દ્રવ્ય અકર્મપર્યાયથી આક્રાન્ત થાય છે. દ્રવ્ય અનન્ત પર્યાયવાલા છે.

જે પ્રકારે કાર્મણ દ્રવ્યની પર્યાય કર્મ છે તે પ્રકારે અકર્મપર્યાય પણ તેની એક પર્યાય છે. વિવક્ષિત જીવની અપેક્ષાથી જ તેમા કર્મ અને અકર્મપર્યાય

जीवों में इस वर्गणा का कर्मरूप पर्याय से परिणमन है, और शुद्ध आत्मद्रव्य की अपेक्षा अकर्मपर्यायरूपसे।

जिस प्रकार सुवर्ण से उसके किट्टकादिरूप मैल का संबंध पुटपाकादि द्वारा दूर होता हुआ देखा जाता है उसी प्रकार आत्मा में अनादिकाल से संबंधित इन कर्मोंका वियोग भी तप संयम रूप साधन द्वारा दूर हो जाता है। इस मैल के पृथक् होने पर शुद्ध सुवर्ण की तरह यह आत्मा भी शुद्ध होकर अपनी असली स्वरूप को पाता है।

संयमी मुनि के लिये उपदेश देते हैं–'इणमेव' इत्यादि। कर्मों को आत्मा से पृथग् करनेवाले चारित्र की जो आराधना करते हैं वे ध्रुवचारी कहलाते हैं। अथवा ध्रुव नाम मोक्ष का है। कार्य और कारण में अभेद संबंध होने से मोक्ष के कारणभूत सम्यग्दर्शन, तप, ज्ञान और क्रिया आदि भी ध्रुव हैं। इनको भी पालन करने के स्वभाववाले ध्रुवचारी हैं। जो मुनि ध्रुवचारी हैं वे असंयम जीवन को, अथवा पूर्व में भोगे हुए विषयादिक भोगों की कभी भी इच्छा नहीं करते हैं। ज्ञ–परिज्ञा से संसारका स्वरूप अथवा इस बात को जान कर कि–'असंयम जीवन व्यतीत करने से जीव को इस संसार में वारंवार जन्म और मरण के चक्कर में

રહે છે. સંસારી જીવોમાં આ વર્ગણાના કર્મરૂપ પર્યાયથી પરિણમન છે, અને શુદ્ધ આત્મદ્રવ્યની અપેક્ષા અકર્મપર્યાય રૂપથી.

જેવી રીતે સુવર્ણથી તેના કિટ્ટકાદિરૂપ મેલનો સંબંધ પુટપાકાદિદ્વારા દૂર થતો દેખવામાં આવે છે તેવી રીતે આત્મામા અનાદિ કાળથી સંબંધિત આ કર્મોનો વિયોગ પણ તપસંયમરૂપ સાધનદ્વારા દૂર થાય છે. આ મેલના પૃથક્ થવાથી શુદ્ધ સુવર્ણની માફક આ આત્મા પણ શુદ્ધ બની પોતાના અસલ સ્વરૂપને મેળવે છે.

સંયમી મુનિ માટે ઉપદેશ આપે છે—'इणमेव' ઈત્યાદિ. કર્મોને આત્માથી પૃથગ્ભૂત કરવાવાળા ચારિત્રની જે આરાધના કરે છે તે ધ્રુવચારી કહેવાય છે. અને ધ્રુવ નામ મોક્ષનુ છે. કાર્ય અને કારણમા અભેદસંબંધ હોવાથી મોક્ષના કારણભૂત સમ્યગ્દર્શન તપ જ્ઞાન અને ક્રિયા આદિ પણ ધ્રુવ છે. તેનું પણ પાલન કરવાવાળા સ્વભાવી ધ્રુવચારી છે જે મુનિ ધ્રુવચારી છે તે અસંયમ જીવનની અથવા પૂર્વમાં ભોગવેલા વિષયાદિક ભોગોની કદી પણ ઈચ્છા કરતા નથી. જ્ઞ પરિજ્ઞાથી સંસારનું સ્વરૂપ અથવા તે વાતને જાણીને પણ અસંયમ જીવન વ્યતીત કરવાથી જીવને આ સંસારમા વારવાર જન્મ અને મરણના ચક્કરમા પડવું પડે છે.

यद्वा—'सङ्क्रमणे' इतिच्छाया, तत्र सङ्क्रम्यते=प्राप्यते मोक्षोऽनेनेति सङ्क्रमणं=ज्ञानादित्रिकं, तत्रैव चरेत्=तत्परो भवेत्, आत्महितार्थिभिः संयमे दृढे-

पड़ना पड़ता है, इस लिये तप, संयम और नियमों का पालन सर्व श्रेयस्कर है, इनका पालन कभी भी विफल नहीं हो सकता' इस प्रकार जिसका मन उनके पालन करने में अडोल और अंकप है, मन की लगन से जो तप संयम आदि के पालन करने में दत्तावधान है, तथा जिस के हृदयमें जिनेन्द्रवचनों के प्रति दृढ आस्था है, जो ये अच्छी तरह से समझता है कि-'भगवान् वीतराग प्रभु का बनाया हुआ यह मार्ग है किसी छद्मस्थ का नहीं, संयम की आराधना से कर्मों की निर्जरा होती है, अतः मुझे इसका परिपालन सम्यक् रीति से ही करना चाहिये अन्यथा अनन्त संसार का पथिक बनना पड़ेगा, यदि मुझे अपने गृहीत मार्ग से च्युत करने के लिये परीषह और उपसर्ग भी आडे आवें तो मुझे उनकी भी कुछ पर्वाह नहीं है, मैं अकंप बन उनका भी सामना करने के लिये तैयार हूँ' इस प्रकार अशंकितमन और दृढप्रतिज्ञ होकर अपने गृहीत मार्गको संयमी आराधना करे।

सूत्र में "संकमणे" इस शब्द की छाया टीकाकार ने एक तो "अशंकमनाः" यह की है जिसका अर्थ 'निःशंकितमन हो कर तप संयम का पालन करे' यह होता है। दूसरी "संकमणे" की छाया

માટે તપ-સંયમ અને નિયમોનુ પાલન સર્વ શ્રેયસ્કર છે. તેનું પાલન કોઈ વખત પણ વિફળ થતું નથી. આ પ્રકારથી જેનું મન તેના પાળવામા મક્કમ અને અકંપ છે, મનની લગનથી જે તપ સયમ આદિના પાલન કરવામા દત્તાવધાન છે, તથા જેના હૃદયમાં જિનેન્દ્રવચનો પ્રતિ દૃઢ આસ્થા છે, જે સારી રીતે જાણે છે કે ભગવાન વીતરાગ પ્રભુનો બનાવેલો આ માર્ગ છે, કોઈ છદ્મસ્થનો નથી સંયમની આરાધનાથી કર્મોની નિર્જરા થાય છે, માટે મારે તેનું પરિપાલન સમ્યક્ રીતિથી જ કરવું જોઈએ, અન્યથા અનંત સંસારનો પથિક બનવો પડશે, જો મારે પોતાના ગૃહીત માર્ગથી ચ્યુત કરવા માટે પરીષહ અને ઉપસર્ગ પણ આડા આવે તો મને તેની પણ કોઈ પરવાહ નથી હું અકંપ બની તેનો પણ સામનો કરવા તૈયાર છું, તેવા પ્રકારે અશંકિતમન અને દૃઢપ્રતિજ્ઞ બનીને પોતાના ગૃહીત માર્ગની સંયમી આરાધના કરે.

સૂત્રમા "संकमणे" આ શબ્દની ટીકાકારે એક તો "अशकमना" છાયા કરી છે જેનો અર્થ 'નિઃશંકિતમન થઈ, તપ સંયમનુ પાલન કરે' તેમ થાય છે.

भाव्यम्। वार्धक्ये परुत्परारि वा धर्मं करिष्यामीति चेतसि न चिन्तयेदित्यर्थः, यतः 'कालस्य' कालः=मृत्युस्तस्य, अनागमः=अप्राप्तिर्नास्ति=न वर्तते, यतः कोऽपि क्षणो न तादृग् यस्मिन्मृत्योरागमनसम्भवो नास्ति, तस्मादहिंसादिषु सावधानेन क्षण-लवमुहूर्तादिसमयेष्वप्रतिबन्धविहारिणाऽऽत्मौपम्येन भवितव्यमिति तात्पर्यम्॥सू०४॥

"संक्रमणे" ऐसी भी होती है। जिसके द्वारा मुक्ति की प्राप्ति जीव को होती है उसका नाम संक्रमण है। वह सम्यग्दर्शनादिक रत्नत्रय है। इनके द्वारा ही जीव मुक्ति का लाभ करता है, अतः सावधान मन होकर इनके परिपालन करने में संयमी मुनि को तत्पर रहना चाहिये, यह सूत्रकार का आदेश वचन है। 'पर परार जब समय आवेगा तब धर्मा-चरण करूँगा, अभी समय नहीं है' इस प्रकार का धर्माचरण के लिये बहाना नहीं करना चाहिये। ऐसा बहाना आत्महितार्थी के लिये उचित नहीं है। पहले कहा गया है कि-"नास्ति कालस्यानागमः" ऐसा कोई भी समय नहीं है कि जिसमें मृत्युके आने की संभावना न हो, अतः यह समझ कर कि-"काल पीछे लगा हुवा है, कब यहां से जाना पड़ेगा" धर्माचरण के लिये प्रमादी न बनें। जो भी जितना भी समय मिले-धर्म की आराधना करता रहे। संयमी मुनि अपने गृहीत अहिं-सादिव्रतों में सावधान होकर एक क्षण एक लव एक मुहूर्त भी प्रति-बन्धविहारी न बने, अर्थात् अप्रतिबन्धविहारी होकर विचरे॥ सू० ४॥

જેના દ્વારા જીવને મુક્તિની પ્રાપ્તિ થાય છે. તેનું નામ સંક્રમણ છે તે સમ્ય-ગ્દર્શનાદિક રત્નત્રય છે તેના દ્વારા જ જીવ મુક્તિનો લાભ કરે છે માટે સાવધાન મન રાખીને તેનુ પરિપાલન કરવામાં સંયમીમુનીએ તત્પર રહેવું જોઈએ, એ સૂત્ર-કારનું આદેશ વચન છે 'આવતી કે તેની આગલની શાલ જ્યારે સમય આવશે ત્યારે ધર્મ કરીશ, હમણા સમય નથી' આવા પ્રકારનું ધર્માચરણ માટે બહાનુ કરવું જોઈએ નહિ. એવું બહાનુ આત્મહિતાર્થી માટે ઉચિત નથી પહેલાં કહેવામાં આવેલ છે કે-"नास्ति कालस्यानागम" એવો કોઈ પણ સમય નથી જેમાં મૃત્યુને આવવાની સંભાવના ન હોય, માટે એવું સમજીને કે "કાળ પછવાડે જ લાગેલો છે, ક્યારે અહીંથી જવુ પડશે" ધર્માચરણ માટે પ્રમાદી ન બને જેટલો પણ વખત મળે તેટલો વખત ધર્મની આરાધના કરતો જ રહે

સંયમી મુનિ પોતાના ગૃહીત અહિંસાદિ વ્રતોમા સાવધાન બનીને એક ક્ષણ એક લવ એક મુહૂર્ત પણ પ્રતિબન્ધવિહારી ન બને, અર્થાત્ અપ્રતિબન્ધ-વિહારી બનીને વિચરે ॥ સૂ૦ ૪ ॥

उक्तं संयमिजीवनस्वरूपम्, अथासंयमिजीवनस्वरूपमाह—'सव्वे पाणा' इत्यादि।

मूलम्—सव्वे पाणा पियाउया सुहसाया दुक्खपडिकूला अप्पियवहा पियजीवणा जीविउकामा सव्वेसिं जीवियं पियं, तं परिगिज्झ दुपयं चउप्पयं अभिजुंजियाणं संसिंचियाणं तिविहेण जाऽवि से तत्थ मत्ता भवइ अप्पा वा बहुया वा से तत्थ गड्ढिए चिट्ठइ भोयणाए ॥ सू० ५ ॥

छाया—सर्वे प्राणाः प्रियायुषः सुखास्वादाः दुःखप्रतिकूला अप्रियवधाः प्रियजीवना जीवितुकामाः सर्वेषां जीवितं प्रियम्, तत्परिगृह्य द्विपदं चतुष्पदमभियुज्य खलु संसिच्य खलु त्रिविधेन याऽपि तस्य तत्र मात्रा भवत्यल्पा वा बहुका वा स तत्र गृद्धस्तिष्ठति भोजनाय ॥ सू० ५ ॥

टीका—'सर्वे' इत्यादि, सर्वे=निखिलाः, प्राणाः=प्राणिनः संसारिणः, प्रियायुषः=प्रियजीविता भवन्ति, यो जीवो यत्रोच्चनीचयोनौ जन्म गृह्णाति तत्रैव रमते जीवितुमिच्छति च विषकृमिन्यायेन; उक्तञ्च—

"अमेज्झमज्झे कीडस्स, सुरिंदस्स सुरालए।
समाणा जीवियाकंखा, तेसिं मच्चुभयं समं॥" इति।

छाया—"अमेध्यमध्ये कीटस्य, सुरेन्द्रस्य सुरालये।
समाना जीविताकाङ्क्षा, तयोर्मृत्युभयं समम्॥"

संयमजीवन का स्वरूप प्रकट किया, अब असंयमजीवन का स्वरूप प्रकट करते हैं—'सव्वे पाणा पियाउया' इत्यादि।

समस्त संसारी जीवों को जीवन प्रिय है, कोई भी जीव ऐसा नहीं है, जिसे अपने जीवन से ममता न हो, विष्ठा का कीडा भी अधिक से अधिक जीने की इच्छा रखता है। जो जीव जिस पर्याय में वर्तमान है उसे वही पर्याय प्रिय है। विष्ठा के कीडे की ममता को देखिये—वह यदि उस स्थान से अलग किया जाता है तो वह वहां से अलग होकर

સંયમ જીવનનું સ્વરૂપ પ્રકટ કર્યું, હવે અસંયમ જીવનનું સ્વરૂપ પ્રગટ કરે છે—'सव्वे पाणा पियाउया' ઈત્યાદિ.

સમસ્ત સંસારી જીવને જીવન પ્રિય છે, કોઇ પણ જીવ એવો નથી જેને પોતાના જીવનથી મમતા ન હોય વિષ્ટાનો કીડો પણ વધારેમાં વધારે જીવવાની ઇચ્છા રાખે છે. જે જીવ જે પર્યાયમાં વર્તમાન છે તેને તે જ પર્યાય પ્રિય છે. વિષ્ટાના કીડાની મમતાને જુઓ—તે કદાચ તે સ્થાનથી અલગ કરવામાં આવે તો

भी वहीं पर फिर से प्रविष्ट हो जाता है। वह अपने स्थान को जरा भी नहीं छोड़ना चाहता। इसका कारण सिर्फ एक यही है कि-उसे उसी अवस्था में रह कर अपना जीवन व्यतीत करना इष्ट है। विशाल वैभव के भोक्ता को जिस प्रकार जीने की इच्छा रहा करती है, तथा जिस प्रकार उसे अपना जीवन सबसे अधिक प्रिय है उसी प्रकार समस्त संसारी जीवों की यही हालत है-चाहे वे संज्ञी हों चाहे असंज्ञी। कोई भी प्राणी ऐसा नहीं मिलेगा-जिसे अपने जीवन में अधिकसे अधिक ममता न हो। एक भिखारी को जितना अपने जीवन से मोह है उतना ही मोह चक्रवर्ती को भी अपने जीवन से है। कोई अपना अनिष्ट नहीं चाहता। इस बात की पुष्टि करते हुए टीकाकार कहते हैं-"यो जीवो यत्रोच्चनीचयोनौ जन्म गृह्णाति तत्रैव रमते-जीवितुमिच्छति च विष कृमिन्यायेन" जो जीव जिस ऊँच नीच योनिमें जन्म धारण करता है उसे वही योनि प्रिय बन जाती है-वहीं पर वह आनंद मानता है। जैसे विषके कीडे को विषमें ही मजा आता है बात भी सत्य है कहाभी है-

" अमेज्झमज्झे कीडस्स, सुरिंदस्स सुरालए।
समाणा जीवियाकंखा, तेसिं मच्चुभयं समं " ॥ १ ॥

પણ તે ત્યાંથી અલગ થઈને પણ ત્યાં જ ફરીથી પ્રવિષ્ટ થાય છે, તે પોતાના સ્થાનને જરા પણ છોડવા ચાહતો નથી તેનું કારણ ફક્ત એક એ જ છે કે તેની તે અવસ્થામાં રહીને પોતાનું જીવન વ્યતીત કરવું ઈષ્ટ છે વિશાળ વૈભવના ભોક્તાને જે પ્રકારે જીવવાની ઈચ્છા રહ્યા કરે છે તથા જે પ્રકારે તેને પોતાનું જીવન બધાથી અધિક પ્રિય છે, તે પ્રકારે સમસ્ત સંસારી જીવોની તે જ હાલત છે, ભલે તે સંજ્ઞી હોય કે અસંજ્ઞી. કોઈ પણ પ્રાણી એવો નહિ મળે જેને પોતાના જીવનમાં અધિકથી અધિક મમતા ન હોય. એક ભિખારીને જેટલો પોતાનો જીવ વહાલો છે તેટલો જીવનનો મોહ ચક્રવર્તીને પણ હોય છે કોઈ પોતાનું અનિષ્ટ ચાહતું નથી. આ વાતની પુષ્ટિ કરતાં ટીકાકાર કહે છે કે—"यो जीवो यत्रोच्चनीचयोनौ जन्म गृह्णाति तत्रैव रमते जीवितुमिच्छति च विषकृमिन्यायेन" જે જીવ જે ઉચ્ચ નીચ યોનિમાં જન્મ ધારણ કરે છે તેની તે જ યોનિ પ્રિય બની જાય છે, ત્યાં જ તે આનંદ માને છે, જેમ વિષના કીડાને વિષમાં જ મજા આવે છે, વાત પણ સત્ય છે. કહ્યું પણ છે.

" अमेज्झमज्झे कीडस्स, सुरिंदस्स सुरालए।
समाणा जीवियाकंखा, तेसिं मच्चुभयं समं " ॥१॥

भुवनत्रयाधिपत्यप्राप्त्यपेक्षयापि स्वायुष्कस्येष्टतरत्वात्, अपि च सुखास्वादाः=सुखाभिलाषिणः, अमृतपानादपि स्वसुखानुभवस्य श्रेष्ठत्वात्, दुःखप्रतिकूलाः=दुःखानभिलाषुकाः, विषभक्षणादपि दुःखं प्रत्यधिकद्वेषवत्त्वात्, किञ्च-अप्रियवधाः-अप्रियः=अनिष्टः-वधो=मरणं येषां ते तथा। प्रियजीवनाः=प्रियं जीवनं येषां ते तथा, अनिशं तदर्थं प्रवृत्तत्वात्, अत एव जीवितुकामाः जीवितुं कामः=स्पृहा येषां ते जीवितुकामाः, वर्षशतायुष्कस्यान्तिमावस्थायामपि जीवितेच्छया नानाविधमणिमन्त्रयन्त्रौषधाद्यर्थं प्रवृत्तिदर्शनात्।

विष्ठा के कीडेकी और स्वर्ग के अपार वैभव के भोक्ता इन्द्रकी भी जीने की इच्छा और मरणका भय समान है, कोई नहीं चाहता कि हमें करालकाल के गालका कवल (ग्रास) बनना पड़े। क्यों कि तीन लोक के अधिपति बनने की अपेक्षा अपना जीवन अधिक प्रिय है।

लोक में अमृत का पान करना सबसे अधिक सुखकारी समझा जाता है, परन्तु लोक इससे भी अधिक सुख अपने सुखी होने में मानते हैं। अपने को सुखी बनाने के लिये लोग हर एक प्रकार के साधनों को जुटाने में कसर नहीं करते। किसी से भी यदि यह प्रश्न किया जाय कि-तुम अपने जीवन में क्या चाहते हो? तो शीघ्र ही वहां से यही उत्तर मिलेगा कि-हम अपने जीवन में शांति और सुख को चाहते हैं। "दुःखप्रतिकूलाः" जगत में कोई भी प्राणी दुःखको नहीं चाहता है, प्रत्येक प्राणी दुःखको प्रतिकूल मानता है, विष भक्षण कर लेगा किन्तु दुःख

વિષ્ટાના કીડાની અને સ્વર્ગના અપાર વૈભવના ભોક્તા ઇન્દ્રની બન્નેની જીવવાની ઇચ્છા અને મરણનું ભય બન્ને સમાન છે, કોઈ ચાહતું નથી કે હું કરાલકાલના ગાલનો ગ્રાસ બનું, કારણ કે ત્રણ લોકના અધિપતિ બનવાની અપેક્ષા પોતાનું જીવન અધિક પ્રિય છે.

લોકમાં અમૃતનું પાન કરવું તેને બધાથી અધિક સુખકારી માનવામાં આવે છે, પરંતુ લોક તેનાથી પણ અધિક સુખ પોતાને સુખી હોવામાં માને છે. પોતાને સુખી બનાવવા માટે લોક દરેક પ્રકારનાં સાધનોને અજમાવવામાં કસર કરતા નથી. કોઇથી એ પ્રશ્ન કરવામાં આવે કે-તમે તમારા જીવનમાં શું ચાહો છો, તો ત્યાંથી તરત જ એવો ઉત્તર મળશે કે-અમે અમારા જીવનમાં શાંતિ અને સુખને ચાહિએ છીએ. "दुःखप्रतिकूला" પ્રત્યેક પ્રાણી દુઃખને ચાહતું નથી, પ્રત્યેક પ્રાણી દુઃખને પ્રતિકૂળ માને છે, ઝેરનું પાન કરી લેશે પણ દુઃખ

भोगना नहीं चाहता। "अप्रियवधाः प्रियजीवनाः" संसार में जीवों को मरण अप्रिय होता है और जीवन प्रिय होता है। जीवों को अपना जीवन सर्व प्रकार से प्रिय है। चाहे जिस किसी भी उपाय से ये अपने जीवनके संरक्षण करनेमें ही भावनाशील रहते हैं। उस समय न्याय या अन्याय, धर्म या अधर्म आदि की इन्हें थोड़ी सी भी चिन्ता नहीं होती। इसका भी कारण यह है कि ये "जीवितुकामाः" हैं। शत वर्ष की आयुवाले को भी अन्तिम क्षणतक जीवन की इच्छा बनी ही रहती है। चाहे धनी हो या निर्धन हो, राजा हो या रंक हो, विद्वान् हो या मूर्ख हो, दीर्घायुष्क हो या अल्पायुष्क हो कोई भी क्यों न हो कोई यह नहीं चाहता कि मेरी मृत्यु हो जाय, अर्थात् मैं मरजाऊँ। सब ही अधिक से अधिक जीने के अभिलाषी रहा करते हैं। थोड़ा सा भी शारीरिक कष्ट आने पर "कहीं मैं मर न जाऊँ" इस ख्याल से अनेक प्रकार के मणि मन्त्र यन्त्र और औषधि वगैरह के उपचार में यथाशक्ति प्रयत्न करने में लग जाते हैं।

यह पूर्वोक्त कथन असंयमी जीवों की अपेक्षा से ही किया गया समझना चाहिये, क्यों कि उन्हें ही अपने प्राण वगैरह प्रिय होते हैं। वेही अपनी जीवनयात्रा के निर्वाह के लिये यद्वा तद्वा प्रवृत्ति किया

ભોગવવુ ચાહતા નથી. "अप्रियवधा प्रियजीवनाः" સંસારમાં જીવોને મરણ અપ્રિય લાગે છે જીવોને પોતાનું જીવન બધા પ્રકારે પ્રિય છે, ભલે કોઈ પણ કોઈ ઉપાયથી પોતાના જીવનનું સંરક્ષણ કરવામાં જ ભાવનાશીલ રહે છે. તે સમય ન્યાય અન્યાય ધર્મ અધર્મ આદિની તેને જરા પણ ચિંતા થતી નથી, તેનું પણ કારણ એ છે કે તે "जीवितुकामा" છે, સો વર્ષની આયુષ્યવાળાને પણ અન્તિમ ક્ષણ સુધી જીવનની ઈચ્છા બની રહે છે, ભલે તવંગર હોય અગર નિર્ધન હોય, રાજા હોય કે રંક હોય, વિદ્વાન હોય, કે મૂર્ખ હોય, દીર્ઘાયુષ્ક હોય કે અલ્પાયુષ્ક હોય કોઈ પણ કેમ ન હોય પણ કોઈ એ નથી ચાહતા કે મારૂં મોત થાય, અર્થાત્ હું મરી જાઉં, બધા જ અધિકથી અધિક જીવવાના અભિલાષી રહ્યા કરે છે. થોડુંક શારીરિક કષ્ટ આવવાથી "કદાચ હું મરી ન જાઉં" એવાં ખ્યાલથી અનેક પ્રકારના મણિ મન્ત્ર યન્ત્ર અને ઓષધિ વિગેરેના ઉપચારમાં યથાશક્તિ પ્રયત્ન કરવામાં લાગી જાય છે.

આ પૂર્વોક્ત કથન અસયમી જીવોની અપેક્ષાથી જ કરેલ સમજવાનું છે, કારણ કે તેને જ પોતાનો પ્રાણ વિગેરે પ્રિય હોય છે, તે જ પોતાના જીવન-યાત્રાના નિર્વાહ માટે યદ્વા તદ્વા પ્રવૃત્તિ કરે છે, દુઃખોથી ગભરાય છે, અને સદા

यतः सर्वेषां प्राणिनां गुरुकर्मणां जीवितम्=असंयमजीवितं प्रियम्=इष्टं भवति, न तु लघुकर्मणाम्, ततः किमित्याह–'त'–दित्यादि, तत्तस्मात्कारणाद् द्विपदं=दासी-दासकर्मकरादि, चतुष्पदं=हस्तिहयगोमहिष्यादि परिगृह्य=स्वायत्तीकृत्य ततस्तदेव द्विपदं चतुष्पदम् उपलक्षणादन्यदपि हिरण्य–सुवर्ण–धन–धान्यादिकं त्रिविधेन करणभूतेन योगत्रिक–करणत्रिकेण, अथवाऽऽत्मना परेणोभयेन, चेतनाचेतनमिश्ररूपेण वा अभियुज्य, अभि=आभिमुख्येन युक्त्वा=बन्धरोधादिना तत्तत्कल्पितसंज्ञया कशादिप्रहारेण वाहयित्वा=तेषु तेषु कर्मसु नियुज्य शिक्षयित्वेत्यर्थः। अपि च–तदेव संसिच्य क्रयविक्रयादिव्यवहारेणाभिवर्द्ध्य, अत्रापि 'त्रिविधेने'–त्यस्य

करते हैं। दुःखों से वे घबडाते हैं। और सदा सांसारिक सुखोंके अभिलाषी रहते हैं। संयमी जीवों में ये सब प्रवृत्तियां घटित नहीं होतीं। यद्यपि उन्हें भी अपने प्राण प्रिय होते हैं परन्तु जब संयम में कोई घोर परीषह उपसर्ग आकर उपस्थित हो जाते हैं तब वे अपने संयम की रक्षा के लिये अपने प्राणों की भी परवाह नहीं करते हैं। असंयमी जीवों को ही अपना असंयम जीवन प्रिय होता है, कारण कि ये गुरुकर्मी हैं। लघुकर्मी संयमी जीवों को ऐसा जीवन प्रिय नहीं होता। इनकी विचारधारा सदा आत्मकल्याणकारी मार्ग की ओर ही झुकती रहती है। असंयमजीवी रात दिन परिग्रह–दासीदास, नौकरचाकर, हाथीघोड़ा, गायभैंस, हिरण्यसुवर्ण, आदि के बढ़ाने की ओर ही अधिकाधिक लालायित होते रहते हैं। वे चेतन अचेतन तथा मिश्र रूप परिग्रह की जितनी भी मात्रा प्राप्त करते हैं–चाहे वह थोड़ी हो या अधिक हो उसी

સાંસારિક સુખના અભિલાષી રહે છે. સંયમી જીવોમાં આ બધી પ્રવૃત્તિઓ ઘટિત થતી નથી. જો કે તેને પણ પોતાનો પ્રાણ પ્રિય હોય છે પરંતુ જ્યારે સંયમમાં કોઇ ઘોર પરિષહ ઉપસર્ગ આવીને ઉપસ્થિત થાય છે ત્યારે તે પોતાના સંયમની રક્ષા માટે પોતાના પ્રાણોની પણ પરવાહ કરતા નથી.

અસંયમી જીવોને પોતાનું અસંયમ જીવન પ્રિય હોય છે, કારણ કે તે ગુરૂકર્મી છે. લઘુકર્મી સંયમી જીવોને એવું જીવન પ્રિય નથી હોતું, તેની વિચારધારા સદા આત્મકલ્યાણકારી માર્ગની તરફ જ લાગેલ રહે છે. અસંયમજીવી રાતદિન પરિગ્રહ–દાસીદાસ, નોકરચાકર, હાથીઘોડા, ગાયભેંસ, હિરણ્યસુવર્ણ આદિને વધારવામાં અધિકમાં અધિક મગ્ન રહે છે તે ચેતન, અચેતન તથા મિશ્રરૂપ પરિગ્રહની જેટલી પણ માત્રા પ્રાપ્ત કરે છે–ચાહે ભલે થોડી હોય કે

सम्बन्धः, तस्य=अर्थारम्भिणः, तत्र दासीदासहस्तिहयादिपरिग्रहे, या=यावत्परिमाणा मात्रा=परिग्रहांशः, सा अल्पा वा=स्तोका अचिरकालभोगक्षमा वा, बहुकावा=दीर्घकालभोगक्षमा वा, यद्वा प्रमाणतो मूल्यतो वाऽल्पा बहुका, अल्पत्व-बहुत्वे चापेक्षिके, अतः सर्वस्याऽप्यल्पत्व-बहुत्वयोः सम्भवात्, अल्पा बहुका वाऽर्थादिमात्रा यस्य, तत्र=अर्थादौ असंयमजीवी गृद्धः=मूर्च्छितः, कृताकृतलब्धालब्धाद्याशापाशैर्ग्रथितः सन् भोजनाय=भविष्यदुपभोगाय तद्धनं स्वायत्तीकृत्य तिष्ठति=तत्रैवासक्तो भवति, न ततो मनसाऽप्युपरमत इत्यर्थः, आरम्भपरिग्रहासक्तः केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं न शृणोति, धर्मश्रवणमन्तरेण न सम्यग्दर्शनम्, तदभावे सम्यग्ज्ञानाभावः, तदभावे मिथ्यात्वाभिवृद्धिस्तथा च संसारपरिभ्रमणं प्राणिनां भवतीति परिग्रहगृद्धो नात्महितैषी भवतीति वर्तुलकार्थः ॥ सू० ५ ॥

में अपनी आवश्यकता की पूर्ति न समझ कर उसके बढाने में ही मग्न बने रहते हैं। परिग्रह में अल्पता और बहुता यहां पर दो तरह से प्रकट की गई है-एक काल की अपेक्षासे और दूसरी मूल्य या प्रमाण की अपेक्षा से। थोड़ेसमय तक, अथवा अधिक समय तक परिग्रह का जीवों के भोग और उपभोग करने के काम में जो आना वह काल की अपेक्षा से परिग्रह में अल्पता या बहुता है, या जिनका मूल्य कम ज्यादा हो अथवा प्रमाण से जिनमें कमती बढ़तीपना हो यह मूल्य या प्रमाण की अपेक्षा से उन में अल्पता तथा बहुता है, क्यों कि अल्पत्व, बहुत्व, ये दोनों सापेक्ष हैं।

चार नौकर चाकरों एवं चार चतुष्पदादि कों की अपेक्षा दो नौकर चाकरों एवं दो चतुष्पदादिकों में प्रमाण की अपेक्षा से, उनके अधिक समय तक रहने की अपेक्षा से थोड़े समय तक रहनेवालों में काल की अपेक्षा से,

---

વધારે હોય તેમા તે પોતાની આવશ્યક્તાની પૂર્તિ ન સમજીને તેના વધારવામા જ મગ્ન બની રહે છે. પરિગ્રહમા અલ્પતા અને બહુતા આ ઠેકાણે બે પ્રકારે પ્રગટ કરેલ છે. એક કાળની અપેક્ષાથી અને બીજી મૂલ્ય અને પ્રમાણની અપેક્ષાથી. થોડા સમય સુધી અથવા અધિક સમય સુધી પરિગ્રહનુ જીવોને ભોગ અને ઉપભોગ કરવાના કામમા જે આવવુ તે કાળની અપેક્ષાથી પરિગ્રહમાં અલ્પતા અને બહુતા છે, અને જેનું મૂલ્ય ઓછુ અધિકુ હોય, અથવા પ્રમાણથી જેમાં વધઘટ પણ હોય એ મૂલ્ય અગર પ્રમાણની અપેક્ષાથી તેમા અલ્પતા અને બહુતા છે, કારણ કે અલ્પત્વ, બહુત્વ, એ બને સાપેક્ષ છે

ચાર નોકર ચાકરો અને ચાર ચતુષ્પદાદિકોની અપેક્ષા બે નોકર ચાકરો અને બે ચતુષ્પદાદિકોમા પ્રમાણની અપેક્ષાથી, તેના અધિક સમય સુધી રહેવાની અપેક્ષાથી

तथा उनके अधिक मूल्य की अपेक्षा कम मूल्यवालों में मूल्यकी अपेक्षा से अल्पत्व है। इस से विपरीत बहुत्व समझ लेना चाहिये।

असंयमी जीव चाहे परिग्रह की मात्रा उसके पास अल्प हो या अधिक हो फिर भी उसे उससे संतोष नहीं होता, वह उस अपने परिग्रह को क्रय विक्रय आदि उपायों द्वारा बढ़ाने की चेष्टा में ही रहता है। चतुष्पदादि जिस समय ठीक २ रास्ते पर नहीं चलते या किसी का नुकसान करते हैं, तब वह उन्हें मारता है, खाने पीनेको भी ठीक २ समय पर नहीं देता, उनके प्रति अशिष्ट शब्दों का प्रयोग करता है, और रस्सी आदि से बांधकर भी उनको छूटा या एकस्थान पर रखता है, उनकी गर्मी शर्दी की बाधा का भी ध्यान नहीं रखता, ये इतना बोझ ले जा सकते हैं या नहीं? इसकी भी उसे चिन्ता नहीं होती। वह भविष्यत्-काल में उपभोग करने के ख्याल से द्रव्य की सदा रक्षा करता रहता है, और उसमें वह इतना आसक्तिशाली बन जाता है कि मन से भी वह इसे नहीं छोड़ना चाहता। सच बात है-जो आरम्भ और परिग्रह के पुष्ट करने में ही आसक्तचित्त हैं वे केवलिप्रणीत धर्म से सदा विमुख रहते हैं। आरंभ और परिग्रह के सद्भाव में जीवों की प्रवृत्ति सर्वथा सावद्य रहती है।

થોડા સમયના રહેવાવાળામાં કાળની અપેક્ષાથી, તથા તેના અધિક મૂલ્યની અપેક્ષા થોડા મૂલ્યવાળામાં મૂલ્યની અપેક્ષાથી અલ્પત્વ છે. એનાથી વિપરીત બહુત્વ સમજી લેવું જોઇએ.

અસંયમી જીવ ચાહે પરિગ્રહની માત્રા તેની પાસે ભલે થોડીક હોય અગર વધારે હોય તો પણ તેનાથી સંતોષ થતો નથી. તે પોતાના પરિગ્રહને ક્રય વિક્રય આદિ ઉપાયો દ્વારા વધારવાની ચેષ્ટામાં જ રહે છે. ચતુષ્પદાદિ જે વખતે ઠીક ઠીક રસ્તા ઉપર નથી ચાલતા અગર કોઇનુ નુકસાન કરે છે ત્યારે તે તેને મારે છે, ખાવા પીવાનું પણ ઠીક ઠીક સમય ઉપર દેતા નથી, તેના પ્રતિ અશિષ્ટ શબ્દોનો પ્રયોગ કરે છે, અને રસ્સી આદિથી બાંધીને પણ તેને છુટો અગર એક સ્થાન પર રાખે છે, તેની ગર્મી શર્દીની બાધાનુ પણ ધ્યાન નથી રાખતા, એ આટલો બોજ ખેંચી શકશે કે નહિ તેની પણ તેને ચિંતા થતી નથી. તે ભવિ-ષ્યતકાળમા ઉપભોગ કરવાના ખ્યાલથી દ્રવ્યની સદા રક્ષા કરે છે, અને તેમાં તે એટલો આસક્તિશાળી બને છે કે મનથી પણ તે તેને છોડવા ચાહતો નથી. સાચી વાત છે-જે આરંભ અને પરિગ્રહ પુષ્ટ કરવામા જ આસક્તચિત્ત છે તે કેવલિપ્રણીત ધર્મથી સદા વિમુખ રહે છે આરંભ અને પરિગ્રહના સદ્ભાવમા જીવોની પ્રવૃત્તિ સર્વથા સાવદ્ય રહે છે.

योऽसंयमजीवी गृद्धोऽनर्थकरमर्थमुपार्जयन्नर्थपरिरक्षणं करोति किन्तु तस्य तद्धनमनेकप्रकारेण नश्यतीति दर्शयति–' तओ से ' इत्यादि ।

वीतरागप्रणीत धर्म में सर्वथा सावद्य प्रवृत्ति करने का निषेध है। इस बात को तब ही समझा जा सकता है कि जब वीतरागप्रणीत धर्म को सुनने जानने और उसके मनन करने का अवसर मिले, परन्तु जब वे सिद्धान्त को सुनते ही नहीं है तब इस सिद्धान्त को जान भी कैसे सकते हैं। अतः जहां पर इस प्रकार की प्रवृत्ति चालू है, जिन्हें अपने कर्तव्य का भान ही नहीं है, और जो जान बूझ कर भी खड्डे में पड़ रहे है, वे केवलिप्रणीत धर्म के सिद्धान्त को अभी तक समझे ही नहीं है। जिन सिद्धान्त के समझे विना समकित जैसी सुन्दर वस्तु कभी भी उनके हाथमें नहीं आसकती। इसके अभाव में सम्यग्ज्ञान का अभाव और उसके अभाव से मिथ्यात्व की वृद्धि, उसकी वृद्धि से संसार में परिभ्रमण ऐसे जीवों का अनिवार्य है, अतः जो आत्महित की कामना करनेवाले हैं उनका यह धर्म है कि–वे परिग्रह में गृद्ध न बनें। तभी संसारसागर से उनका आत्मोद्धार हो सकता है ॥ सू० ५ ॥

जो असंयमजीवी है और परिग्रह में ही आसक्तपरिणतिवाला बना हुआ है वह अनेक अनर्थोंका उत्पादक द्रव्य के संग्रह करने में ही तल्लीन रहता है। वह यद्यपि कमाये हुए अपने इस द्रव्य की हर एक

વીતરાગપ્રણીત ધર્મમા સર્વથા સાવદ્ય પ્રવૃત્તિ કરવાનો નિષેધ છે એ વાતને ત્યારે જ સમજી શકાય છે કે જ્યારે વીતરાગપ્રણીત ધર્મને સાંભળવા જાણવા અને તેનુ મનન કરવામા અવસર મળે. પરંતુ જ્યારે તે સિદ્ધાંતને સાંભળતો જ નથી ત્યારે તે સિદ્ધાંતને જાણી પણ કેવી રીતે શકે, માટે જે ઠેકાણે આ પ્રકારની પ્રવૃત્તિ ચાલુ છે, જેને પોતાના કર્તવ્યનું પણ ભાન નથી અને જે જાણી જોઈને પણ ખાડામાં પડે છે તે કેવલિપ્રણીત ધર્મના સિદ્ધાંતને હજુ સુધી સમજ્યા જ નથી. જે સિદ્ધાંતને સમજ્યા વિના સમકિત જેવી સુંદર વસ્તુ કોઈ વખત પણ તેના હાથમાં આવી શકતી નથી. તેના અભાવમા સમ્યગ્જ્ઞાનનો અભાવ, અને તેના અભાવથી મિથ્યાત્વની વૃદ્ધિ, તેની વૃદ્ધિથી સંસારમાં પરિભ્રમણ એવા જીવોને અનિવાર્ય છે અત. જે આત્મહિતની કામના કરવાવાળા છે, તેનો એ ધર્મ છે કે તે પરિગ્રહમા ગૃદ્ધ ન બને. ત્યારે જ સંસારસાગરથી તેનો આત્મોદ્ધાર થાય છે ॥ સૂ૦ ૫ ॥

જે અસંયમજીવી છે અને પરિગ્રહમાં જ આસક્તપરિણતિવાળા બનેલ છે તે અનેક અનર્થોના ઉત્પાદક દ્રવ્યનો સંગ્રહ કરવામા જ તલ્લીન રહે છે. તે જો કે પોતાના

मूलम्-तओ से एगया विविहं परिसिट्ठं संभूयं महोवगरणं भवइ, तंपि से एगया दायाया वा विभयंति, अदत्तहारो वा से अवहरइ, रायाणो वा से विलुंपंति, नस्सइ वा से, विनस्सइ वा से, अगारदाहेण वा से डज्झइ, इय से परस्सऽट्ठाए कूराइं कम्माइं बाले पकुव्वमाणे तेण दुक्खेण संमूढे विप्परिआसमुवेइ ॥ सू० ६ ॥

छाया-ततस्तस्यैकदा विविधं परिशिष्टं सम्भूतं महोपकरणं भवति, तदपि तस्यैकदा दायादा वा विभजन्ते, अदत्तहारो वा तस्यापहरति, राजानो वा तस्य विलुम्पन्ति, नश्यति वा तस्य, विनश्यति वा तस्य, अगारदाहेन वा तद्दह्यते, इति स परस्यार्थाय क्रूराणि कर्माणि बालः प्रकुर्वाणस्तेन दुःखेन सम्मूढो विपर्यासमुपैति ॥ सू० ६ ॥

टीका—'तत' इत्यादि, ततः संगृहीतधनात्, सङ्ग्रहकालाद्वा, एकदा=एकस्मिन् काले न सर्वदा कदाचिद्दिवा वा रात्रौ वा। यद्वा लाभान्तरायकर्मक्षयोपशमे चेत्यर्थः, तस्य=अर्थसङ्ग्रहशीलस्य विविधम्=अनेकप्रकारम् परिशिष्टम् उपभोगोर्वरितम् सम्भूतं सम्=सम्यग्रक्षणाय भूतं सञ्चितं, संवृतं वा भूम्यादिनिखा-

---

प्रकार से रक्षा करता है तो भी उसका वह द्रव्य अनेक प्रकार से नष्ट हो ही जाता है, इस बात को प्रकट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-'तओ से एगया' इत्यादि।

लाभान्तराय कर्म के क्षयोपशम से ही जीवों को द्रव्यादिकका लाभ होता है, यह शास्त्रसंमत सिद्धान्त है। इसके अभाव में अनेक प्रकार के किये गये प्रयत्न भी द्रव्यलाभ कराने में कारण नहीं होते हैं। इस लाभान्तराय कर्म के उदय में संगृहीत द्रव्य भी नष्ट हो जाता है। इस की स्थिति रहना भी इसी कर्म के क्षयोपशमाधीन है। जब इसका उदय

કમાએલાં દ્રવ્યની દરેક પ્રકારે રક્ષા કરે છે, તો પણ તેનું દ્રવ્ય અનેક પ્રકારથી નષ્ટ થઈ જ જાય છે, આ વાતને પ્રગટ કરતા સૂત્રકાર કહે છે—'तओ से' ઈત્યાદિ.

લાભાન્તરાય કર્મના ક્ષયોપશમથી જ જીવોને દ્રવ્યાદિક લાભ થાય છે, તે શાસ્ત્રસંમત સિદ્ધાંત છે. તેના અભાવમાં અનેક પ્રકારના કરેલા પ્રયત્ન પણ દ્રવ્ય લાભ કરાવવામાં કારણ નથી થતાં. આ લાભાન્તરાય કર્મના ઉદયમાં સંગૃહીત દ્રવ્ય પણ નષ્ટ થાય છે, તેની સ્થિતિ રહેવી પણ તે કર્મને ક્ષયોપશમાધીન છે.

तमित्यर्थः, महोपकरणं=द्विपदचतुष्पदादिसमूहो भवति। तस्य स धनसमूहोऽप्युपभोगाय न भवतीत्याह-'तदपी'-ति, एकदा=दुर्भाग्योदये, यद्वा कदाचित् 'दायादाः' दायं=विभाज्यद्रव्यमाददति=गृह्णन्तीति दायादाः=सगोत्राः, तस्य धनार्जनकष्टमनुभवतो जनस्य तदपि द्वीपान्तरगमन-दुरारोहपर्वतारोहण-खन्यादिखनन-राजसेवा-कृषिवाणिज्यादिरूपसावद्यव्यापारैः स्वपरसन्तापकैरुपभोगाय समुपार्जितसञ्चितविवर्द्धितं धनम् विभजन्ते=स्वस्वभागग्रहणाय विभागं कुर्वन्ति, पृथक्कुर्वन्तीत्यर्थः, अथवा अदत्तहारः, अदत्तमेव हरतीत्यदत्तहारश्चौरो वा तस्य धनमपहरति=चोरयति।

रहता है तब अनेक प्रकार के द्रव्यनाश होने के उपाय भी जीवों को स्वयमेव प्राप्त होते रहते हैं। उस समय बुद्धि में भी कुछ ऐसी विपरीतता आजाती है जिससे द्रव्य के व्यय होने के उपाय भी अच्छे और उपादेय प्रतीत होने लगते हैं। संसार में कौन यह चाहता है कि मेरा यह द्रव्यादिक नष्ट विनष्ट हो जाय? परन्तु सब कुछ विचारते हुए भी या उसकी रक्षा के उपाय करते हुए भी जो जीव राजा से रंक हो जाते हैं वे इसी बात के प्रबल प्रमाण हैं।

इस कर्म के क्षयोपशम होने पर जिस प्रकार जीवोंको द्रव्य के आने के अनेक उपाय एवं द्वार प्राप्त होते हैं उसी प्रकार इसके उदय में उसके विनाश के अनेक द्वार भी उन्हें मिल जाते हैं, यही बात सूत्रकार इस सूत्र में प्रकट कर रहे हैं—

उस अर्थसंग्रहशील व्यक्ति के पास लाभान्तराय कर्म के क्षयोपशम

જ્યારે તેનો ઉદય રહે છે ત્યારે અનેક પ્રકારના દ્રવ્યનાશ હોવાના ઉપાયો પણ જીવોને સ્વયમેવ પ્રાપ્ત થાય છે. તે સમય બુદ્ધિમાં પણ કોઈ એવી વિપરીતતા આવી જાય છે જેનાથી દ્રવ્યનો વ્યય હોવાના ઉપાયો પણ સારા અને ઉપાદેય પ્રતીત થવા લાગે છે સંસારમાં કોણ એ ચાહે છે કે મારૂં આ દ્રવ્યાદિક નષ્ટ વિનષ્ટ થાય, પરન્તુ ચારે બાજુથી વિચારતાં પણ તેની રક્ષાના ઉપાયો કરવા છતાં પણ જે જીવ રાજાથી રંક થાય છે તે આ વાતનું પ્રબલ પ્રમાણ છે.

આ કર્મના ક્ષયોપશમ થવાથી જે પ્રકારે જીવોને દ્રવ્ય આવવાના અનેક ઉપાય અને દ્વાર પ્રાપ્ત થાય છે તે પ્રકારે તેના ઉદયમાં તેના વિનાશના અનેક દ્વાર પણ તેને મળી રહે છે, એ વાત સૂત્રકાર આ સત્રમા પ્રગટ કરે છે—

તે અર્થસંગ્રહશીલ વ્યક્તિની પાસે લાભાન્તરાય કર્મનો ક્ષયોપશમ થવાથી

होने पर अनेक प्रकार का भोग उपभोग से बाकी बचा होने के कारण धनादि का संग्रह हो जाता है "धनको धन कमाता है" इस लोकोक्ति के अनुसार उसके संगृहीत द्रव्य से फिर अनेक उपायों द्वारा उसे द्रव्यादिककी प्राप्ति होने लगती है। भोग और उपभोग की आवश्यकताएँ भी जैसा जैसा लाभ होता है वैसे २ बढ़ती जाती है, और उनकी पूर्ति करनेमें भी द्रव्यादिक का व्यय होने लगता है। भोगविलासकी सामग्री जुटाने में तथा मौज मजा करने में लाभानुसार द्रव्य का व्यय होता है। आवश्यकता की पूर्ति से अथवा लेन-देन के व्यवहार से अवशिष्ट द्रव्य को लोग, या तो किसी बैंक में जमा करा देते हैं, या जमीन में उसे गाड़ कर रख देते हैं। जमीन में न गाड़े तो उसे तिजोरियों में भर कर भी एक जगह रखदेते हैं। उन्हें ऐसे अपने सगोत्रियों का समागम मिलता है जो इन्हें रात दिन दुःखी किया करते हैं। अविभक्त कुटुम्ब होनेसे किसी बातको लेकर परस्पर में जब कुछ अनबनसी हो जाती है तब आपस में अलग२ होने की परिस्थिति आती है। जब विभक्त होते हैं तब वे समस्त धनको बटवा लेते हैं। सगोत्रियों का समागम धनी व्यक्तियों को कदाचित् अनुकूल प्रवृत्ति करनेवाला भी मिल जावे और वे धन को अर्जन करने में कष्ट का अनुभव करनेवाले उस व्यक्ति के उस द्रव्य को

અનેક પ્રકારના ભોગ અને ઉપભોગથી બાકી બચવાને કારણે ધનાદિનો સંગ્રહ થાય છે "ધનથી ધન પ્રાપ્ત થાય છે" આ લોકોક્તિને અનુસાર તેના સંગૃહીત દ્રવ્યથી પછી અનેક ઉપાયો દ્વારા તેને દ્રવ્યાદિકની પ્રાપ્તિ થવા લાગે છે. ભોગ અને ઉપભોગની આવશ્યકતાઓ પણ જેમ જેમ લાભ થાય છે તેમ તેમ વધતી જાય છે. અને તેની પૂર્તિ કરવામાં પણ દ્રવ્યાદિકનો વ્યય થવા લાગે છે. ભોગ-વિલાસની સામગ્રી મેળવવામાં તથા મોજમજા કરવામાં લાભાનુસાર દ્રવ્યનો વ્યય થાય છે. આવશ્યકતાની પૂર્તિથી અથવા લેણદેણના વ્યવહારથી અવશિષ્ટ દ્રવ્યને લોક અગર કોઇ બેંકમાં જમા કરાવે છે અગર જમીનમાં તેને દાટીને રાખે છે. જમીનમાં ન દાટે તો તેને તિજોરીઓમાં ભરીને પણ એક જગ્યાએ રાખે છે. તેને એવા પોતાના સગોત્રિઓનો સમાગમ મળે છે જે તેને રાતદિવસ દુઃખી કરે છે. અવિભક્ત કુટુંબ હોવાથી કોઈ વાતને લઇને પરસ્પરમાં જ્યારે કાંઇક અણબનાવ થાય છે ત્યારે આપસ આપસમાં અલગ અલગ થવાની તૈયારી બને છે. જ્યારે વિભક્ત થાય છે ત્યારે તે સમસ્ત ધનને વહેંચી લે છે સગોત્રિયોનો સમાગમ ધની વ્યક્તિઓને કદાચિત્ અનુકૂળ પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા પણ મળી આવે,

जो बड़ी कठिनता से उसने द्वीपान्तरगमन से, दुरारोह पर्वतों के उल्लंघनसे, खानि में पड़े हुए उसके खोदने से, राजा की सेवा से, और अपने एवं पर को सन्ताप करनेवाले कृषि-वाणिज्यादि रूप सावद्य व्यापारों से पैदा किया है सञ्चित किया है और व्याज आदि द्वारा जिस को वृद्धि की है भले ही विभाजित न करें; परन्तु चोरों से द्रव्य की रक्षा करना एक मुश्किल कार्य है। धनी व्यक्तियों के अनेक मित्र और शत्रु हो जाते हैं। जिनका उससे काम निकलता रहता है वे उसके मित्र, और जिनका उससे काम नहीं निकलता वे उसके शत्रु हो जाते हैं। जो मित्र होते हैं वे भी कालान्तर में शत्रु, और जो शत्रु होते हैं वे भी कालान्तर में मित्र बनते हुए देखे जाते हैं। अतः जो पहिले मित्र बन कर शत्रु बन जाते हैं वे सब इसका भेद भाव जान कर चोरों को गुप्त रीति से सब प्रकार की इसकी प्रवृत्ति से परिचित करा देते हैं और अन्त में इसे लुटवा देते हैं। क्षण भर में यह अमीर से गरीब बन जाता है। यदि पुण्योदय से चोरोंको भी इसके द्रव्यको चुराने का साहस न जाग्रत हो और वे इसके ऊपर धाड़ न भी पाडे तो भी अधर्मी राजा की नजर से द्रव्यकी रक्षा करना मुश्किल ही है।

અને તે ધનને ઉપાર્જન કરવામા કષ્ટનો અનુભવ કરવાવાળા તે વ્યક્તિઓ તે દ્રવ્યને જે ઘણી મુશ્કેલીથી દરિયાપારથી, મહાન પર્વતોના ઉલ્લંઘનથી, ખાણુમાં પડેલાને તેના ખોદવાથી, રાજાની સેવાથી અને પોતાને તેમજ બીજાને સંતાપ કરવાવાળી ખેતી-વાણિજ્યાદિરૂપ સાવદ્ય વ્યાપારોથી પેદા કરેલ છે, સંચિત કરેલ છે, અને વ્યાજ આદિ દ્વારા જેની વૃદ્ધિ કરેલ છે, ભલે તે વિભાજીત ન કરે, પરંતુ ચોરોથી દ્રવ્યની રક્ષા કરવી એક મુશ્કેલ કાર્ય છે. પૈસાદાર વ્યક્તિઓના અનેક મિત્રો અને શત્રુઓ થાય છે જેનાથી જેનુ કામ થાય છે તે મિત્ર, અને જેનાથી જે કામ બનતું નથી તે શત્રુ બની જાય છે જે મિત્ર હોય છે તે પણ કાલાન્તરમા શત્રુ, અને જે શત્રુ હોય છે તે પણ કાલાન્તરમા મિત્ર બને છે તેમ દેખવામાં આવે છે. માટે જે પહેલાં મિત્ર બનીને શત્રુ બને છે તે બધા તેનો ભેદભાવ જાણીને ચોરોને ગુપ્ત રીતિથી સર્વ પ્રકારની તેની પ્રવૃત્તિથી પરિચિત કરી આપે છે, અને અન્તમાં તેને લુંટાવે છે. ક્ષણભરમા તે અમીરથી ગરીબ બની જાય છે. કદાચ પુણ્યોદયથી ચોરો તરફથી તેનું દ્રવ્ય ચોરવાનુ કદાચ સાહસ ન બને, અને તેઓ તેની તરફ ધાડ પણ ન પાડે તો પણ અધર્મી રાજાની નજરથી દ્રવ્યની રક્ષા થવી મુશ્કેલ છે.

अथवा राजानः=नृपास्तस्य धनं विलुम्पन्ति=विलुण्टन्ति अभियोगद्वारेण बलात्तद्धनं गृह्णन्तीत्यर्थः। अथवा तस्यार्थगृद्धस्य धनं स्वयमेव नश्यति, वाणिज्यादौ बहुमूल्येन क्रयणादल्पेन विक्रयणादित्यर्थः। 'विनश्यति' राजकोशे 'बैङ्क' पदवाच्ये संस्थापितं, भूम्यादौ वा निखातं तस्य राज्ञः परिवर्तनेनापगतात्, भूमौ यत्र निखातं दीर्घकालेन ततोऽपगमाद्वा विनश्यति=स्वयमेव नष्टं भवतीत्यर्थः।

राजा की जब लोलुप दृष्टि इसके धन पर पड़ती है तब वह जबर्दस्ती कोई ऐसा अभियोग लगा देता है कि जिससे उस विचारे का वह धन देखते२ लुटवा लिया जाता है।

यदि धार्मिक राजाके राज्य में बसने का धनीको सौभाग्य मिलता है और उसकी वजह से उसके धनकी हर एक प्रकार से रक्षा भी होती रहती है तो भी अधिक संग्रह की लालसा से या उसकी वृद्धि की तीव्र भावनासे जब धनी उसे किसी व्यापार में लगा देता है तो तेजी मंदी के समय क्रय विक्रय करने से अचानक जब व्यापार में घाटा आ जाता है तब वह कमाया हुआ द्रव्य सहसा हाथ से निकल जाता है, और वह धनी व्यक्ति फिर हाथ मलते ही रह जाता है। व्यापार में यदि पुण्य कर्म के उदय से अच्छा लाभ भी हो जाता है, तो लोग उसे बैंकों में जमा कर देते हैं या उसे जमीन वगैरह में गाड़ देते हैं। वहां उसकी सुरक्षा होती हो तो भी जब राज्य का परिवर्तन होता है तब बैंके भी प्रायः लुट जाती हैं, अथवा जब वह उस भूमि से बहुत समय के बाद गाडे

રાજાની જ્યારે લોલુપ દૃષ્ટિ તેના ધન ઉપર પડે છે ત્યારે તે જબરાઈથી કોઈ એવો અભિયોગ લગાવે છે કે જેનાથી તે બિચારાનું તે ધન દેખતા દેખતામાં લુંટાવી લઈ જાય છે.

કદાચ ધાર્મિક રાજાના રાજ્યમાં વસવાનો ધનીને સૌભાગ્ય મળે છે, અને તેના તરફથી તેના ધનની દરેક પ્રકારે રક્ષા પણ થાય છે તો પણ અધિક સંગ્રહની લાલસાથી અગર તેની વૃદ્ધિની તીવ્ર ભાવનાથી જ્યારે પૈસાદાર તે ધનને કોઈ વ્યાપારમાં લગાવી દે છે તો તેજી મંદીના સમયમાં ક્રય વિક્રય કરવાથી અચાનક જ્યારે વ્યાપારમાં નુકસાન આવે છે ત્યારે તે કમાએલું ધન સહસા હાથથી ગુમાવી દે છે, અને પછી તે પૈસાદાર વ્યક્તિ હાથ ઘસતો થઈ જાય છે, વ્યાપારમાં કદાચ પુણ્ય કર્મના ઉદયથી સારો લાભ પણ મળે છે તો લોક તેને બેંકોમા જમા કરાવી દે છે, અગર તેને જમીન વિગેરેમાં દાટી દે છે તે જગોએ તેની સુરક્ષા બને તો પણ જ્યારે રાજ્યનું પરિવર્તન થાય છે ત્યારે બેંકોને પણ લુટવામાં આવે છે, અથવા જ્યારે તે ભૂમિથી બહુ સમય બાદ દાટેલાં સ્થાનથી સ્થાનાન્તરિત

कथञ्चित्सुरक्षितमपि तद्धनं कांस्यद्रव्यसुवर्णरजतादिकम् अगारदाहेन=गेहदाहेन दह्यते, इत्यादिकारणैरुपार्जितस्याप्यर्थस्य बहुविधो नाशो भवति, अन्तराय-कर्मप्राबल्येनोपार्जयितुरुपभोगाय नैव भवतीत्यर्थः। उक्तञ्च—

"चत्वारो धनदायादा, धर्माग्निनृपतस्कराः ॥
तत्र ज्येष्ठापमानेन, त्रयः कुप्यन्ति सोदराः" ॥ १ ॥ इति।

हुए स्थान से स्थानान्तरित हो जाता है तब उसका मिलना भी मुश्किल हो जाता है। इस तरह से भी उसका विनाश होते देर नहीं लगती।

कथंचित् कांसा; द्रव्य, सुवर्ण, रजतादि रूप वह धन घर में सुरक्षित भी रहे तो भी अचानक घरमें आग लगजाने से उसका भी विनाश हो जाता है। उस समय बहुमूल्य वस्तुएँ खाकमें मिल जाती हैं। आग को बुझाने के लिये आये हुए लोगों के हाथ भी उस समय जो भी वस्तु लगती है वे उसे उठा कर ले जाते हैं। इस प्रकार इन पूर्वोक्त कारणों से उपार्जित द्रव्य का अन्तराय कर्म के प्रबल उदयमें अनेक रीति से विनाश होते देर नहीं लगती। नीतिकार भी यही बात कहते हैं—

"चत्वारो धनदायदाः, धर्माग्निनृपतस्कराः।
तत्र ज्येष्ठापमानेन, त्रयः कुप्यन्ति सोदराः ॥ १ ॥"

धन के हिस्सेदार चार हैं। १ धर्म, २ अग्नि, ३ राजा, और ४ चोर। जिस धनका सदुपयोग धर्म में नहीं होता है उस धनका अग्नि, राजा और चोरों के द्वारा विनाश और अपहरण होता है ॥ १ ॥

થાય છે ત્યારે તેનું મળવું પણ મુશ્કેલ બની જાય છે આવી રીતે પણ તેનો વિનાશ હોવામા વાર લાગતી નથી

કોઈ પણ પ્રકારે કાસા, દ્રવ્ય, સુવર્ણ, રજતાદિ રૂપ તે ધન ઘરમાં સુરક્ષિત રહે તો પણ અચાનક ઘરમાં આગ લાગવાથી તેનો પણ વિનાશ થઈ જાય છે. તેવા વખતે બહુમૂલ્ય વસ્તુઓ ખાક થાય છે આગને ઓલવવા આવેલા લોકોના હાથમાં પણ તે વખતે જે વસ્તુ પડે છે તે પણ ઉઠાવી લઈ જાય છે. આ પ્રકારે આ પૂર્વોક્ત કારણોથી ઉપાર્જીત દ્રવ્યનો અન્તરાય કર્મના પ્રબલ ઉદયમાં અનેક રીતિથી વિનાશ થવામા વાર લાગતી નથી નીતિકાર પણ એ વાત કહે છે–

"चत्वारो धनदायदाः, धर्माग्निनृपतस्करा ।
तत्र ज्येष्ठापमानेन, त्रय कुप्यन्ति सोदरा ॥ १ ॥"

ધનના હિસ્સેદાર ચાર છે. ૧ ધર્મ, ૨ અગ્નિ, ૩ રાજા અને ૪ ચોર. જે ધનનો સદુપયોગ ધર્મમાં નથી થતો તે ધનનો અગ્નિ, રાજા અને ચોરો દ્વારા વિનાશ અને અપહરણ થાય છે. ॥ ૧ ॥

बहुप्रकारैः स धनसञ्चयकारी परस्यार्थाय=अन्यार्थम्, दायादाद्यर्थमेव, क्रूराणि=शिरश्छेद-गलकर्तनादीनि कर्माणि=दुराचरणानि बालः=कर्तव्यशून्यचेताः प्रकुर्वाणः=प्रकर्षेण विदधानः सन्, तेन कटुकर्मविपाकोदयेन दुःखेन संमूढः=परिहृतमतिः रागद्वेषाभिभूततया कार्याकार्यमजानन् विपर्यासम्=वैपरीत्यं मिथ्यात्वम् उपैति=प्राप्नोति, अर्थार्थमनर्थकारी भवतीति तात्पर्यम् ॥ सू० ६ ॥

मूढाः सुखेप्सवो दुःखमवाप्नुवन्तीति न मया स्वबुद्ध्योच्यते, इति सुधर्मा स्वामी कथयति-'मुणिणा' इत्यादि ।

मूलम्—मुणिणा हु एयं पवेइयं, अणोहंतरा एए, नो य ओहं तरित्तए, अतीरंगमा एए नो य तीरं गमित्तए, अपारंगमा एए, नो य पारं गमित्तए, आयाणिज्जं च आयाय तंमि ठाणे न चिट्ठइ वितहं पप्पऽखेयन्ने तंमि ठाणंमि चिट्ठइ ॥सू०७॥

छाया—मुनिना हु एतत्प्रवेदितम्, अनोघन्तरा एते न चौघं तर्तुम्, अतीरंगमा एते, न च तीरं गन्तुम्, अपारंगमा एते, न च पारं गन्तुम्, आदानीयं चादाय तस्मिन् स्थाने न तिष्ठति, वितथं प्राप्याखेदज्ञस्तस्मिन् स्थाने तिष्ठति ॥ सू० ७ ॥

जिस धनका अन्तिम यह परिणाम होता है उस धनको संचित करनेवाले अज्ञान में पडे हुए हैं "परस्यार्थाय" सिर्फ दायाद वगैरह दूसरों के उपभोग के लिये ही उसके संग्रहार्थ भयंकर से भयंकर गलकर्तन, शिरश्छेदन जैसे निंदित दुराचारों को करता हुआ तज्जन्य कटुक कर्मके विपाकजनित दुःख से संतप्तचित्त बन कर्तव्याकर्तव्य के विवेक से रहित होकर मिथ्यात्वभावरूप विपर्यासपने को प्राप्त होता है अर्थात् वह धनके लिये अनेक अनर्थ करता है ॥ सू० ६ ॥

बाल अज्ञानी सुख की चाहना करते हैं परन्तु उन्हें दुःख की ही प्राप्ति होती है, इस विषय में श्रीसुधर्मा स्वामी अपनी निजी कल्पना का निषेध

જે ધનનો અન્તિમ આ પરિણામ થાય છે તે ધનનો સંચિત કરવાવાળા અજ્ઞાનમાં પડેલા છે "परस्यार्थाय" ફક્ત દાયાદ વિગેરે બીજાના ઉપભોગ માટે જ તેના સંગ્રહાર્થે ભયંકરથી ભયંકર ગલકર્તન, શિરચ્છેદન જેવા નિંદિત દુરાચારોને કરીને તજ્જન્ય કટુક કર્મના વિપાકજનિત દુઃખથી સંતપ્તચિત્ત બની કર્તવ્યાકર્તવ્યના વિવેકથી રહિત બની મિથ્યાત્વભાવરૂપ વિપર્યાસપણાને પ્રાપ્ત થાય છે, અર્થાત્ તે ધન માટે અનેક અધર્મ કરે છે ॥ સૂ૦ ૬ ॥

બાલ અજ્ઞાની સુખની ચાહના કરે છે પરંતુ તેને દુઃખની જ પ્રાપ્તિ થાય છે. આ વિષયમાં શ્રી સુધર્માસ્વામી પોતાની નિજી કલ્પનાનો નિષેધ કરીને કહે છે—

टीका—'मुनिने'-त्यादि। 'मुनिना' संसारस्य त्रिकालावस्थां मनुते यः स मुनिः=घातिकर्मचतुष्टयक्षयसमुद्भूतात्मस्वरूपस्तीर्थङ्करगणधरादिः, तेन, हु=निश्चयेन एतत्=पूर्वोक्तं वक्ष्यमाणं वा, तत्र पूर्वोक्तं परिग्रहासक्तिजनितसंसारपरिभ्रमणस्वरूपम्, असकृदुच्चैर्गोत्रोत्पत्त्यादिकं च प्र=प्रकर्षेण वेदितं=द्वादशपर्षदि प्ररूपितम् भिन्नभिन्नस्वरूपेण कथितमित्यर्थः। वक्ष्यमाणं प्रवेदितमाह–'अनोघन्तरा' इत्यादि,

करते हुए कहते हैं—'मुणिणा' इत्यादि।

"मुनि" यह शब्द 'मन्' धातु से निष्पन्न हुआ है। 'मन्' धातु का अर्थ जानना है। जो संसारी की त्रिकालसंबंधी समस्त गुण–पर्याय रूप अवस्थाओं को जानता है उसका नाम मुनि है, घातिया कर्मों के क्षय होने से जिन्हों को केवलज्ञान स्वरूप आत्मा के निजरूप की प्राप्ति हो चुकी है ऐसे तीर्थंकर, गणधरादि देव यहां 'मुनि' शब्द से लिये गये हैं। अपनी निजी कल्पना का परिहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि–पूर्वोक्त परिग्रहमें अत्यासक्तिवश जीव संसार में ही परिभ्रमण करता है, तथा "असकृदुच्चैर्गोत्रे असकृन्नीचैर्गोत्रे" इत्यादि सूत्रों (इसी उद्देश के प्रथमादि सूत्रों) में जो कहा गया है यह समस्त विषय, अथवा जो भी कुछ आगे कहा जावेगा वह सब मैंने अपनी निजबुद्धि से कल्पित कर नहीं कहा है, किन्तु तीर्थंकरादिक देवों ने अपनी २ परिषद में पृथक् पृथक् रूप से ऐसाही कहा है। उनकी परंपरा से जिस प्रकार यह विषय चला

'मुणिणा' ઇત્યાદિ.

"मुनि" આ શબ્દ 'मन्' ધાતુથી નિષ્પન્ન થયો છે. 'मन्' ધાતુનો અર્થ જાણવું થાય છે. જે સંસારીની ત્રિકાલસંબંધી સમસ્ત ગુણપર્યાયરૂપ અવસ્થાઓને જાણે છે તેનું નામ મુનિ છે. ઘાતિયા કર્મનો ક્ષય હોવાથી જેને કેવળ જ્ઞાનસ્વરૂપ આત્માના નિજરૂપની પ્રાપ્તિ થયેલ છે એવા તીર્થંકર ગણધરાદિ દેવ આ ઠેકાણે મુનિ–શબ્દથી લેવામાં આવેલ છે પોતાની નિજી કલ્પનાનો પરિહાર કરીને સૂત્રકાર કહે છે કે–પૂર્વોક્ત પરિગ્રહમાં અત્યાસક્તિવશ જીવ સંસારમાંજ પરિભ્રમણ કરે છે તથા "असकृदुच्चैर्गोत्रे असकृन्नीचैर्गोत्रे" ઇત્યાદિ સૂત્રો (આ ઉદ્દેશના પ્રથમાદિ સૂત્રો)માં જે કહેવામાં આવેલ છે તે સમસ્ત વિષય, અને જે આગળ કહેવામાં આવશે તે બધા મેં પોતાની નિજ બુદ્ધિથી કલ્પના કરી કહેલ નથી. પણ તીર્થંકરાદિક દેવોએ પોતપોતાની પરિષદમાં પૃથક્ પૃથક્ રૂપથી એમ જ કહેલ છે, તેની પરંપરાથી જે પ્રકારે આ વિષય ચાલ્યો

अनोघन्तराः=ओघो द्रव्यभावभेदेन द्विविधः–द्रव्यौघो नदीपूरादिकः, भावौघोऽष्टविधं कर्म संसारो वा येन यत्र दुःखितो भवति प्राणी, तमोघं तरन्तीत्योघन्तराः, न ओघन्तरा अनोघन्तराः=मिथ्यादर्शिनः कुतीर्थिकादयः पार्श्वस्थादयो वा, ज्ञानक्रियाप्रवहणविकलाः, ओघतरणव्यग्रमनसोऽपि तरणोपायविवेकाभावान्न तर्तुं प्रभवन्ति तदेवाह-

आ रहा है उसी के अनुसार मैंने भी यह प्रतिपादित किया है अतः मूल में यह सर्वज्ञोक्त होने से अप्रमाणभूत नहीं माना जा सकता।

वक्ष्यमाण विषय में सूत्रकार कहते हैं-'अनोघन्तरा' इत्यादि, 'अनोघन्तर' शब्दका अर्थ मिथ्यादृष्टि जीव है। जो ओघन्तर नहीं हैं, वे अनोघन्तर हैं। द्रव्य और भाव के भेद से ओघ दो प्रकार का है, नदी का पूर वगैरह द्रव्य–ओघ है, अष्टप्रकार कर्म अथवा संसार, भाव–ओघ है। जिसके द्वारा प्राणी जहां पर दुःखित होता है उस का नाम ओघ है, उस ओघ को जो तर जाते हैं–पार कर जाते हैं, वे ओघन्तर कहे जाते हैं। इनसे जो विपरीत हैं, वे अनोघन्तर–मिथ्यादृष्टि कुतीर्थिक या पासत्थादिक जीव हैं, क्यों कि मिथ्यादृष्टि जीव भाव–ओघ को पार नहीं करते हैं। भाव–ओघ को पार करने के लिये ज्ञान और क्रिया रूपी प्रवहण (नौका) की जरूरत होती है। जिस प्रकार मनुष्य विना नौका के समुद्र के पार नहीं जा सकता उसी प्रकार इस संसार य। अष्टविध कर्म रूपी समुद्रका पार करना भी विना ज्ञान और क्रिया के सर्वथा असंभव

આવે છે તે અનુસાર મેં પણ આ પ્રતિપાદન કર્યું છે માટે મૂળમાં આ સર્વજ્ઞોકત હોવાથી અપ્રમાણભૂત માની શકાતુ નથી

વક્ષ્યમાણ વિષયમાં સૂત્રકાર કહે છે–'अनोघंतरा' ઇત્યાદિ. अनोघन्तर શબ્દનો અર્થ મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ છે જે ઓઘન્તર નથી તે અનોઘન્તર છે. દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી ઓઘ બે પ્રકારે છે. નદીનુ પૂર વિગેરે દ્રવ્ય ઓઘ છે. અષ્ટપ્રકાર કર્મ અથવા સંસાર ભાવઓઘ છે જેના દ્વારા પ્રાણી જે જગ્યાએ દુઃખી થાય છે તેનુ નામ ઓઘ છે. તે ઓઘ જે તરી જાય છે–પાર કરે છે તે ઓઘન્તર કહેવાય છે. તેનાથી જે વિપરીત છે તે અનોઘન્તર–મિથ્યાદૃષ્ટિ કુતીર્થિક અગર પાસત્થાદિક જીવ છે, કારણ કે મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ ભાવ ઓઘને પાર કરતા નથી. ભાવ ઓઘને પાર કરવા માટે જ્ઞાન અને ક્રિયારૂપી પ્રવહણ (નૌકા) ની જરૂરત પડે છે. જેવી રીતે મનુષ્ય જહાજ વિના સમુદ્ર પાર કરી શકતો નથી તે પ્રકારે આ સંસાર અને અષ્ટવિધકર્મરૂપી સમુદ્રનો પાર કરવો તે જ્ઞાન અને ક્રિયા વગર સર્વથા અસંભવ છે. સમ્યગ્જ્ઞાન અને

न चौघमिति, ओघं तर्तुं न च समर्था भवन्तीत्यर्थः स्पष्टः। किं च-एते 'अतीरंगमाः' तीरं न गच्छन्तीत्यतीरंगमाः, एते वीतरागप्रणीतरत्नत्रयसमाराधनाभावात् तीरं गन्तुं समर्था न भवन्तीत्यर्थः, अपि च-'अपारंगमाः' पारस्तटस्तं गच्छन्तीति पारंगमाः, न पारंगमा अपारंगमाः, सम्यगुपदेशाभावात्पारगमनमनसोऽपि उत्सूत्रप्ररूपणात्,

---

है। सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र विकल जीवों को ही मिथ्यादृष्टि कहा गया है। सम्यक्ज्ञान के अभाव से सम्यग्दर्शन का अभाव भी स्वतः सिद्ध है, अतः उसे यहां प्रथक् रूपसे नहीं कहा।

मिथ्यादृष्टि जीव यद्यपि ओघ को पार करने के लिये लालायितमन रहते हैं परन्तु उनके पास पार करनेका उपायस्वरूप विवेकका अभाव होने से वे उसे पार नहीं कर सकते। यही बात "न चौघं तर्तुं" इस पद से सूत्रकार प्रकट करते हैं। संसाररूप समुद्र से पार होने के लिये सर्व प्रथम समकित की जरूरत पड़ती है। शास्त्र में समकित को खेवटिया की उपमा दी गई है। जिस प्रकार विना खेवटिया के नौका जीवों को जलाशय से पार नहीं उतार सकती, उसी प्रकार इस संसाररूप समुद्र से जीव विना समकित को पाये कभी भी पार नहीं उतर सकता। समकित के विषय में पीछे विवेचन किया जा चुका है।

मिथ्यादृष्टि जीव संसाररूपी समुद्र के तीर को और पार को पानेके लिये असमर्थ इसलिये हैं कि-ये "अतीरंगम" और "अपारंगम" हैं।

સમ્યક્ચારિત્ર વિકલ જીવો ને મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ કહેલ છે. સમ્યક્જ્ઞાનના અભાવથી સમ્યગ્દર્શનનો અભાવ પણ સ્વતઃ સિદ્ધ છે માટે તેને આ ઠેકાણે પૃથક્ રૂપથી કહેલ નથી.

મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ યદ્યપિ ઓઘનો પાર કરવા માટે લાલાયિત મન રાખે છે પરંતુ તેની પાસે પાર કરવાના ઉપાયસ્વરૂપ વિવેકનો અભાવ હોવાથી પાર કરી શકતા નથી તે વાત "न चौघं तर्तुं" એ પદથી સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે સંસાર રૂપ સમુદ્રનો પાર કરવા માટે સર્વ પ્રથમ સમકિતની જરૂર પડે છે. શાસ્ત્રમાં સમકિતને ખેવટીયાની ઉપમા આપેલ છે જે પ્રકારે ખેવટિયા વગર નૌકા જીવોને જલાશયથી પાર નહિ ઉતારી શકે, તે પ્રકારે આ સંસારરૂપ સમુદ્રથી જીવ વિના સમકિત મેળવ્યે કોઈ વખત પાર ઉતરી શકતા નથી. સમકિતના વિષયમાં પાછળ વિવેચન કરવામાં આવેલ છે

મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ સંસારરૂપી સમુદ્રના તીરનો પાર કરવાને માટે અસમર્થ એ માટે છે કે તે "अतीरंगम" અને "अपारंगम" છે. વીતરાગપ્રણીત રત્ન-

तत्रैव प्रवृत्तत्वात्, उन्मार्गप्रचारकत्वाच्च पारं गन्तुं प्रभवो न भवन्तीत्यर्थः। 'अतीरंगमाः' 'अपारंगमाः' इत्युभयत्रापि नञो 'भवन्ती'-त्यत्र भवनक्रियायामन्वये आर्षत्वादसमर्थसमासो बोध्यः। ते तीरं तितीर्षवोऽपि पारं पिपारयिषवोऽपि स्वाभिमतशास्त्रप्रवृत्तयो नैव तीरं गच्छन्ति, नापि पारं प्राप्नुवन्ति। लोके तीरपारयोरेकार्थत्वेऽपि अत्र तीरपदेन मोहनीयक्षयः, पारपदेन घातिकर्मक्षयो गृह्यत इति विशेषान्न पौनरुक्त्यम्। ओघं तितीर्षवोऽपि कुतो न तीरपारगामिनो भवन्तीत्याह-'आदानीय'-

---

वीतरागप्रणीत रत्नत्रय की आराधना का इनमें अभाव होने से ये 'अतीरंगम' और सम्यक् उपदेश की प्राप्ति का अभाव होने से पार प्राप्त करने के लिये अभिलाषी होते हुए भी ये उत्सूत्र के प्ररूपक और उन्मार्ग के प्रचारक होने की वजह से 'अपारंगम' हैं। लोक में तीर और पार शब्द का एक ही वाच्यार्थ होता है फिर भी सूत्र में जो इन दो शब्दोंका प्रयोग किया है, उससे यह बात ज्ञात होती है कि-तीर शब्द से घाती कर्मों का क्षय और पार शब्द से अघातिया कर्मोंका अभाव अर्थ होता है।

"आदानीयं चादाय तस्मिन् स्थाने न तिष्ठति" आदानीय शब्द का अर्थ मुक्ति जिससे प्राप्त की जाती है ऐसा चारित्र है। मिथ्यादृष्टि जीव परिग्रह में मूर्च्छित होने से अपनी कल्पनानुसार चारित्र का आराधन करते हैं। मुक्ति तो सम्यक्चारित्र के आराधन से प्राप्त होती है। जिसमें सावद्य प्रवृत्तिका लेश नहीं है उसका नाम सम्यक्चारित्र है। जैसे२ जीव गुणस्थानों की प्राप्ति करता जाता है वैसे२ गृहीतचारित्रमें उज्ज्वलता

त्रयनी આરાધનાનુ તેમા અભાવ હોવાથી તે 'अतीरंगम' અને સમ્યક્ ઉપદેશની પ્રાપ્તિનો અભાવ હોવાથી પાર પ્રાપ્ત કરવા માટે અભિલાષી હોવા છતા તે ઉત્સૂત્રના પ્રરૂપક અને ઉન્માર્ગના પ્રચારક હોવાથી 'अपारंगम' છે લોકમાં તીર અને પાર શબ્દનો એક જ વાચ્યાર્થ થાય છે તો પણ સૂત્રમાં જે બે શબ્દોનો પ્રયોગ કર્યો છે તેનાથી એ વાત જ્ઞાત થાય છે કે-તીર શબ્દથી ઘાતિયા કર્મોનો ક્ષય અને પાર શબ્દથી અઘાતિયા કર્મોનો અભાવ અર્થ થાય છે.

"आदानीयं चादाय तस्मिन् स्थाने न तिष्ठति"

આદાનીય શબ્દનો અર્થ મુક્તિ જેનાથી પ્રાપ્ત થાય છે એવું ચારિત્ર છે. મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ પરિગ્રહમા મૂર્છિત હોવાથી પોતાની કલ્પનાનુસાર ચારિત્રનું આરાધન કરે છે, મુક્તિ તો સમ્યક્ચારિત્રના આરાધનથી પ્રાપ્ત થાય છે. જેમાં સાવદ્ય પ્રવૃત્તિનો લેશ પણ નથી તેનુ નામ સમ્યક્ચારિત્ર છે. જેમ જેમ જીવ ગુણસ્થાનોની પ્રાપ્તિ કરતો જાય છે તેમ તેમ ગૃહીત ચારિત્રમા ઉજ્જવલતા આવતી જાય છે,

मित्यादि, स तीरपारजिगमिषुः आदानीयम्=आदीयते=प्राप्यते मोक्षोऽनेनेत्यादानीयं=चारित्रं, तदादाय=समाराधनज्ञानविषयीकृत्य तस्मिन्=चारित्रस्थाने न तिष्ठति परिग्रहमूर्च्छितत्वात्,

यद्वा—आदानीयं=दासीदासहस्त्यश्वरथधनधान्यसुवर्णादिकं, तद् आदाय=गृहीत्वा तत्र विमुह्य, अथवा मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगैरादानीयं=कर्म गृहीत्वा रत्नत्रयात्मके मोक्षमार्गे न तिष्ठति=आत्मानं न स्थापयति। न स केवलं सर्वज्ञोपदेशस्थाने तिष्ठति, प्रत्युत विपरीताचारमाचरतीत्याह—'वितथ'—मिति, अखेदज्ञः =परपीडानभिज्ञः, वितथं=मिथ्यात्वमोहनीयं प्राप्य=लब्ध्वा तत्रैव स्थाने=परिग्रहादिमूर्च्छायां तिष्ठति, तत्रैव जीवनं यापयतीत्यर्थः। शब्दादिकामगुणासङ्गसङ्गी षड्जीवनिकायसमारम्भवान् परिग्रहमूर्च्छितो ज्ञानावरणीयादिचिक्कणकर्माणि समुपार्जयन्नजस्रं नरकनिगोदादिव्यपदेशं लभत इत्याशयः ॥ सू० ७ ॥

आती जाती है। मिथ्यादृष्टि जीव समकित के अभाव में प्रथम गुणस्थानवर्ती होता है अतः वह समकितसहित चारित्र का आराधन नहीं कर सकता, इसलिये तीर और पारके लाभ से सदा वंचित रहा करता है।

अथवा—आदानीय शब्द का अर्थ—दासी, दास, हस्ति, अश्व, रथ, धन, धान्य और सुवर्णादिक परिग्रह भी है। मिथ्यादृष्टि जीव इसी परिग्रह में अत्यन्त आसक्त रहता है इस लिये वह रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग में कभी भी स्थिति का लाभ नहीं कर सकता। आदानीय शब्द का अर्थ कर्म भी है, इस कर्म को वह मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, प्रमाद और योगों द्वारा ग्रहण करता है। कर्मके सद्भाव में जीव शुद्ध आत्मस्वरूपरूप मुक्ति की प्राप्ति से दूर ही रहता है। इस विषय में पहिले लिखा जा चुका है। जब

મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ સમકિતના અભાવમાં પ્રથમગુણસ્થાનવર્તી થાય છે, માટે તે સમકિતસહિત ચારિત્રનુ આરાધન કરી શકતા નથી, માટે તીર અને પારના લાભથી વંચિત રહે છે

અથવા—આદાનીય શબ્દનો અર્થ – દાસી, દાસ, હસ્તિ, અશ્વ, રથ, ધન, ધાન્ય અને સુવર્ણાદિક પરિગ્રહ પણ છે, મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ આ પરિગ્રહમાં અત્યન્ત આસક્ત રહે છે, જેથી તે રત્નત્રયાત્મક મોક્ષમાર્ગમાં કોઈ વખત પણ સ્થિતિનો લાભ કરી શકતો નથી. આદાનીય શબ્દનો અર્થ કર્મ પણ છે. આ કર્મને તે મિથ્યાત્વ, અવિરતિ, કષાય, પ્રમાદ અને યોગોદ્વારા ગ્રહણ કરે છે, કર્મના સદ્ભાવમા જીવ શુદ્ધ આત્મસ્વરૂપરૂપ મુક્તિની પ્રાપ્તિથી દૂર જ રહે છે. આ વિષયમા પહેલા લખવામાં આવેલુ છે. જ્યા સુધી મુક્તિના

यो नरकादिव्यपदेशभाग् न भवति, यश्च भवति तं दर्शयति–' उद्देसो ' इत्यादि।

मूलम्–उद्देसो पासगस्स नत्थि, बाले पुण निहे कामसमणुन्ने असमियदुक्खे दुक्खी दुक्खाणमेव आवट्टं अणुपरियट्टइत्ति बेमि ॥ सू० ८ ॥

छाया—उद्देशः पश्यकस्य नास्ति, बालः पुनः स्निहः कामसमनुज्ञोऽशमितदुःखो दुःखी दुःखानामेवाऽऽवर्तमनुपरिवर्तते। इति ब्रवीमि ॥ सू० ८ ॥

टीका—' उद्देश ' इत्यादि, पश्यतीति पश्यः, पश्य एव पश्यकः=परिज्ञातसकलहेयोपादेयस्तीर्थङ्करगणधरादिस्तस्य विदितवेदितव्यस्य, उद्दिश्यते इत्युद्देशः=नरकादिव्यपदेशो नारकादिपर्यायव्यवहार इति यावत्, अत्र व्यपदेशार्थकोद्देशशब्दकथनेन नामकर्मणः सकलाप्युत्तरप्रकृतिर्ग्राह्या। नास्ति=नैव वर्तते तस्य सर्वज्ञत्वात्, न तस्य व्यपदेशापेक्षा, तस्मिन्नेव भवे तस्य मोक्षप्राप्तेः।

तक मुक्ति के कारणों की प्राप्ति नहीं होती तब तक मुक्ति नहीं मिल सकती है। मुक्तिका कारण रत्नत्रय है। जब तक जीव को इन तीनों की पूर्णता प्राप्त नहीं होती तब तक मुक्ति का मार्ग उसके हाथमें नहीं आता। मिथ्यादृष्टि जीव जब इस मार्ग की प्राप्ति से ही रहित है तब वह मुक्ति का लाभ भी कैसे कर सकता है? यही सर्वज्ञ का उपदेश है। इस सर्वज्ञ के उपदेश की ओर उस की जरा भी रुचि जाग्रत नहीं होती है, यही मिथ्यात्व का जोर है। इस जोर से वह अपनी मनमानी प्रवृत्ति करने में लगा रहता है, और इसी की वजह से वह परिग्रह में मूर्च्छित होता रहता है। परिग्रह के संग्रह करने में 'जीवों का विघात मेरे द्वारा होता है' इसकी ओर उसका लक्ष्य ही नहीं जाता, और अपना समस्त जीवन अविरत अवस्था में ही व्यतीत कर देता है।

કારણોની પ્રાપ્તિ થતી નથી ત્યાં સુધી મુક્તિ મળી શકતી નથી. મુક્તિનુ કારણ રત્નત્રય છે જ્યાં સુધી જીવને આ ત્રણેની પૂર્ણતા પ્રાપ્ત થતી નથી ત્યા સુધી મુક્તિનો માર્ગ તેના હાથમાં આવતો નથી. મિથ્યાદષ્ટિ જીવ જ્યારે આ માર્ગની પ્રવૃત્તિથી જ રહિત છે તો પછી તે મુક્તિનો લાભ પણ કેવી રીતે મેળવી શકે એ જ સર્વજ્ઞનો ઉપદેશ છે. આ સર્વજ્ઞના ઉપદેશ તરફ તેની જરા પણ રૂચિ જાગ્રત નથી થતી તે જ મિથ્યાત્વનુ જોર છે. તે જોરથી તે પોતાની મનમાની પ્રવૃત્તિ કરવામાં લાગ્યો રહે છે, અને તેના પ્રભાવે તે પરિગ્રહમા પણ મૂર્છિત થતો રહે છે. પરિગ્રહનો સંગ્રહ કરવામાં ' જીવોનો વિઘાત મારા દ્વારા થાય છે ' તે તરફ તેનું લક્ષ્ય પણ જતું નથી, અને પોતાનુ સમસ્ત જીવન અવિરત અવસ્થામાં જ વ્યતીત કરે છે.

इस सूत्र का सारांश यही है कि मिथ्यादृष्टि जीव सांसारिक विषय भोगों में आसक्त बन कर परिग्रह का संग्रह करता रहता है। इस प्रवृत्ति में उसके द्वारा षट्काय के जीवों का विघात भी होता है परन्तु उसकी वह प्रवृत्ति संयमयुक्त न होनेसे ज्ञानावरण आदि चिक्कण कर्मों के तीव्र अनुभागबंध में और तीव्र स्थितिबंध में प्रधान कारण बनती है, अतः वह मुक्तिसुख के लाभ से वंचित रहता है, इतना ही नहीं प्रत्युत चतुर्गति रूप संसार में नरकनिगोदादि के कष्टों का ही भोक्ता बनता है ॥ सू०७॥

नरकनिगोदादि कष्टोंका भोक्ता कौन होता है और कौन नहीं होता है? इसी विषय को फिर से इस सूत्र में अन्वयव्यतिरेकमुख से प्रतिपादन करते हैं-" उद्देसो पासगस्स नत्थि " इत्यादि।

देखनेवाले का नाम पश्य है, स्वार्थ में 'क' प्रत्यय होने से पश्यक शब्द बन जाता है। पश्य शब्द का जो अर्थ है वही पश्यक का है।

प्रश्न—संसार के संज्ञी और असंज्ञी चतुरिन्द्रियादि जितने भी जीव हैं वे सब देखनेवाले हैं अतः ये भी पश्यक हो जायेंगे, परन्तु इस सूत्र में इन पश्यकों का तो ग्रहण किया ही नहीं गया है, क्यों कि " उद्देशः पश्यकस्य नास्ति " इस कथन से उनमें उद्देश का अभाव नहीं है, वहां पर तो यह मनुष्यजातीय है, यह चतुरिन्द्रिय जातीय है, इत्यादि व्यवहार

આ સૂત્રનો સારાંશ એ છે કે–મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ સાંસારિક વિષયભોગોમાં આસક્ત બની પરિગ્રહનો સંગ્રહ કરતો રહે છે આ પ્રવૃત્તિમાં તે દ્વારા ષટ્કાય જીવોનો ઘાત પણ થાય છે, પરંતુ તેની તે પ્રવૃત્તિ સંયમયુક્ત ન હોવાથી જ્ઞાનાવરણ આદિ ચિક્કણ કર્મોના તીવ્ર અનુભાગબંધમાં પ્રધાન કારણ બને છે, માટે તે મુક્તિસુખના લાભથી વંચિત રહે છે, આટલું જ નહિ પ્રત્યુત ચતુર્ગતિરૂપ સંસારમાં નરકનિગોદાદિના કષ્ટોનો પણ ભોક્તા બને છે. ॥ સૂ૦ ૭ ॥

નરકનિગોદાદિ કષ્ટોનો ભોક્તા કોણ બને છે? અને કોણ બનતા નથી? તે વિષયને ફરીથી આ સૂત્રમાં અન્વયવ્યતિરેકમુખથી પ્રતિપાદન કરે છે- " उद्देसो पासगस्स नत्थि " ઇત્યાદિ

દેખવાવાળાનું નામ પશ્ય છે સ્વાર્થમાં 'क' પ્રત્યય હોવાથી પશ્યક શબ્દ બને છે, પશ્ય શબ્દનો જે અર્થ છે તેજ પશ્યકનો છે.

પ્રશ્ન—સંસારના સંજ્ઞી અને અસંજ્ઞી ચતુરિન્દ્રિયાદિ જેટલા પણ જીવ છે તે બધા દેખવાવાળા છે માટે તે પણ પશ્યક થઈ જશે પરંતુ આ સૂત્રમાં આ પશ્યકોનો તો ગ્રહણ કરવામાં આવેલ નથી, કારણ કે " उद्देशः पश्यकस्य नास्ति " આ કથનથી તેમાં ઉદ્દેશનો અભાવ નથી, તે જગ્યાએ તો એ મનુષ્યજાતીય છે,

होता ही है। उद्देश शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ-"उद्दिश्यते इति उद्देशः, नरकादिव्यपदेशो, नरकादिव्यवहार इति यावत्" यह नारकी है, अर्थात् यह नरकपर्यायविशिष्ट जीव है, इत्यादि व्यवहार को ही उद्देश कहा है। इस उद्देश का अभाव पूर्वोक्त संसारी जीवों में नहीं आता है, अतः "उद्देशः पश्यकस्य नास्ति" यह कैसे कहा गया है ?।

उत्तर—यहां पर पहिले यह जो कहा गया है कि-मिथ्यादृष्टि जीव परिग्रह में आसक्त बन कर षट्काय के जीवों के उपमर्दन करनेवाला होने से ज्ञानावरणादिक कर्मोंका बंध कर नरकनिगोदादि गतियों के अनन्त दुःखों का भोक्ता बनता है, परन्तु जो परिग्रह में आसक्त नहीं हैं वे षट्काय के जीवों के रक्षक होने से कर्मों के बंध करनेवाले नहीं होते, और क्रमशः केवलज्ञान को पाकर मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं, ऐसे जीव ही यहां पश्यक शब्द से ग्रहण किये हैं। वे साक्षात् तीर्थंकर गणधरादि देव हैं। जब तक वे मुक्ति नहीं प्राप्त कर लेते तब तक नाम कर्म की कुछ प्रकृतियों का सद्भाव होने से उनमें भी मनुष्यपर्याय विशिष्ट आदि का व्यवहार होता ही है, परन्तु भविष्य में उस प्रकार का व्यवहार उनमें सर्वथा नहीं होनेवाला है, इस भविष्यत्प्रज्ञापननय की

એ ચતુરિન્દ્રિયજાતીય છે, ઇત્યાદિ વ્યવહાર થાય જ છે ઉદ્દેશ શબ્દનો વ્યુત્પત્ત્યર્થ "उद्दिश्यते इति उद्देश-नरकादिव्यपदेशो, नरकादिव्यवहार इति यावत्" આ નારકી છે અર્થાત્ એ નરકપર્યાયવિશિષ્ટ જીવ છે, ઇત્યાદિ વ્યવહારને જ ઉદ્દેશ કહ્યો છે આ ઉદ્દેશનો અભાવ પૂર્વોક્ત સંસારી જીવોમા આવતો નથી, માટે "उद्देश· पश्यकस्य नास्ति" એ કેમ કહેવામાં આવેલ છે ?

ઉત્તર—આ જગ્યાએ પહેલાં એ કહેવામા આવેલ છે કે મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ પરિગ્રહમાં આસક્ત બની ષટ્કાય જીવોના ઉપમર્દન કરવાવાળા હોવાથી જ્ઞાનાવરણાદિક કર્મોનો બંધ કરી નરકનિગોદાદિ ગતિયોના અનંત દુઃખોના ભોક્તા બને છે, પરંતુ જે પરિગ્રહમા આસક્ત નથી તે ષટ્કાય જીવોના રક્ષક હોવાથી કર્મોના બંધ કરવાવાળા નથી બનતા, અને ક્રમશ· કેવળજ્ઞાનને મેળવી મુકિતને પ્રાપ્ત કરી લે છે. એવા જીવ જ અહી પશ્યક શબ્દથી ગ્રહણ કરેલ છે. તે સાક્ષાત્ તિર્થંકર ગણધરાદિ દેવ છે જ્યાં સુધી તે મુક્તિ પ્રાપ્ત નથી કરી લેતા ત્યાં સુધી નામકર્મની થોડી પ્રકૃતિયોનો સદ્ભાવ હોવાથી તેમા પણ મનુષ્યપર્યાયવિશિષ્ટ આદિનો વ્યવહાર થાય છે, પરંતુ ભવિષ્યમા તે પ્રકારનો વ્યવહાર તેમાં સર્વથા નહિ બનવાવાળો છે. આ ભવિષ્યત્પ્રજ્ઞાપનનયની અપેક્ષાથી

अपेक्षा से यहां पर भी "पश्यकस्य उद्देशो नास्ति" पश्यक को उद्देश नहीं है, यह कथन सुसंगत समझना चाहिये।

प्रश्न—कैसे जाना जाता है कि-उनमें आगे चलकर समस्त अवशिष्ट नामकर्म की प्रकृतियां सर्वथा क्षय हो जानेवाली है? प्रत्यक्ष से तो यह बात ज्ञात हो नहीं सकती, क्यों कि प्रत्यक्ष तो वर्तमानसंबंधी पदार्थ को ही ग्रहण करता है। उस प्रकार की पर्यायसंबंधी वर्तमान तो है नहीं। अनुमान भी इस विषय को नहीं जान सकता, क्यों कि तदविनाभावी कोई भी ऐसा हेतु नहीं है जो इस बात का अनुमापक हो, जिसके विना जो न हो उसको अविनाभावी कहते हैं।

उत्तर—यह तो हम भी मानते हैं कि-चक्षुरादिइन्द्रियजन्य ज्ञान रूप प्रत्यक्ष (सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष) इस प्रकार की अवस्थाको नहीं जान सकता, परन्तु अनुमानप्रमाण से इस बात की सिद्धि होती है कि-अवशिष्ट नामकर्म की प्रकृतियों का वहां पर सर्वथा क्षय होगा। यह कैसे कहा कि तदविनाभावी हेतु वहां पर नहीं है। "तस्य सर्वज्ञत्वात्" अर्थात् "वे सर्वज्ञ हैं" यही तदविनाभावी हेतु है। जिस प्रकार धूम वह्नि का अविनाभावी हेतु है उसी प्रकार घातिया कर्मों के अभाव से उत्पन्न

તે જગ્યાએ પણ "पश्यकस्य उद्देशो नास्ति" પશ્યકને ઉદ્દેશ નથી, એ કથન સુસંગત સમજવુ જોઈએ

પ્રશ્ન—કેવી રીતે જાણવામા આવે કે તેમા આગળ સમસ્ત અવશિષ્ટ નામકર્મની પ્રકૃતિયો સર્વથા ક્ષય થઈ જવાવાળી છે? પ્રત્યક્ષથી તો એ વાત જ્ઞાત થઈ શકતી નથી, કારણ કે પ્રત્યક્ષ તો વર્તમાનસંબંધી પદાર્થને જ ગ્રહણ કરે છે. તેવા પ્રકારની પર્યાયસંબંધી વર્તમાન તો છે નહિ. અનુમાનથી પણ આ વિષયને જાણી શકાતો નથી, કારણ કે તદવિનાભાવી કોઈ પણ એવો હેતુ નથી જે આ વાતનો અનુમાપક હોય. જેના વિના જે ન હોય તેને અવિનાભાવી કહે છે.

ઉત્તર—એ તો અમે પણ માનીએ છીએ કે-ચક્ષુરાદિઇન્દ્રિયજન્ય જ્ઞાનરૂપ પ્રત્યક્ષ (સાવ્યવહારિક પ્રત્યક્ષ) આ પ્રકારની અવસ્થાને જાણી શકતા નથી, પરંતુ અનુમાનપ્રમાણથી આ વાતની સિદ્ધિ થાય છે કે-અવશિષ્ટ નામકર્મની પ્રકૃતિઓનો ત્યાં સર્વથા ક્ષય થશે. એમ કેમ કહેવાય કે તદવિનાભાવી હેતુ ત્યાં નથી. "तस्य सर्वज्ञत्वात्" અર્થાત્ "તે સર્વજ્ઞ છે" એજ તદવિનાભાવી હેતુ છે, જેવી રીતે ધુમાડો આગનો અવિનાભાવી હેતુ છે, તેવી રીતે

सर्वज्ञ अवस्था भी शेष नामकर्म की प्रकृतियों का भविष्य में वहां विलय-होनेरूप साध्य की सिद्धि कराने में अविनाभावी हेतु है अतः इस अविनाभावी हेतु से वहां पर साध्यकी सिद्धि होने में कोई भी बाधा नहीं आती।

प्रश्न—अपने साध्य को सिद्ध करने में हेतु की सिद्धि प्रधान मानी जाती है। जिस साध्य का हेतु सिद्ध नहीं होता वह अपने साध्यकी सिद्धि नहीं कर सकता। साध्य असिद्ध होता है, हेतु तो सिद्ध होना चाहिये।

उत्तर—हेतु सिद्ध ही है-असिद्ध नहीं, भूत भविष्यत् और वर्तमान कालीन समस्त द्रव्य और उनकी अनन्तानन्तपर्यायों को हस्तामलकवत् एककालावच्छेदेन (एक कालमें) जाननेवाला होने से तीर्थंकरादि प्रभु सर्वज्ञ हैं। ज्ञानावरण आदि चार घातियाकर्मों के सर्वथा विनष्ट होने से उन्होंने अपनी जीवन्मुक्त अवस्था में केवलज्ञानरूपी सूर्य को प्राप्त करलिया है। इस प्रशस्ततम और असाधारण ज्ञान के द्वारा ही ये विश्व के समस्त पदार्थसार्थको जानते रहते हैं। इनका ज्ञान समस्त पदार्थों का ज्ञाता है, यह बात अनुमान प्रमाण से सिद्ध होती है, क्यों कि जब छद्मस्थ जीवों के ज्ञानगुण में जानने की हीनाधिकता पाई जाती है तो उससे यह बात

ઘાતિયા કર્મોના અભાવથી ઉત્પન્ન સર્વજ્ઞ અવસ્થા પણ શેષ નામકર્મની પ્રકૃતિયોના ભવિષ્યમા ત્યાં વિલયહોવારૂપ સાધ્યની સિદ્ધિ કરાવવામાં અવિનાભાવી હેતુ છે માટે આ અવિનાભાવી હેતુથી ત્યાં સાધ્યની સિદ્ધિ થવામાં કોઈ અડચણ આવતી નથી

પ્રશ્ન—પોતાના સાધ્યને સિદ્ધ કરવામાં હેતુની સિદ્ધિ પ્રધાન માનવામાં આવે છે જે સાધ્યનો હેતુ સિદ્ધ થતો નથી ને પોતાના સાધ્યની સિદ્ધિ કરી શકતો નથી સાધ્ય અસિદ્ધ થાય છે, હેતુ તો સિદ્ધ થવો જોઈએ

ઉત્તર—હેતુ સિદ્ધ જ છે અસિદ્ધ નહિ ભૂત ભવિષ્યત્ અને વર્તમાન કાલીન સમસ્ત દ્રવ્ય અને તેની અનન્તાનન્ત પર્યાયોને હસ્તામલકવત્ एककालावच्छेदेन (એક કાળમા) જાણવાવાળા હોવાથી તીર્થંકરાદિ પ્રભુ સર્વજ્ઞ છે. જ્ઞાનાવરણ આદિ ચાર ઘાતિયા કર્મોનો સર્વથા વિનષ્ટ થવાથી તેને પોતાની જીવનમુક્ત અવસ્થામાં કેવળજ્ઞાનરૂપી સૂર્યને પ્રાપ્ત કરેલ છે આ પ્રશસ્તતમ અને અસાધારણ જ્ઞાનદ્વારા વિશ્વના સમસ્ત પદાર્થોને જાણતા રહે છે. તેનું જ્ઞાન સમસ્ત પદાર્થોનું જ્ઞાતા છે. એ વાત અનુમાન પ્રમાણથી સિદ્ધ થાય છે કારણ કે જ્યારે છદ્મસ્થ જીવોને જ્ઞાનગુણમાં જાણવાની હીનાધિકતા મેળવી શકાય છે તો તેનાથી

यद्वा—पश्यकस्य=सर्वज्ञस्य उद्देशः=उपदेशः ' सुयं मे आउसं तेण '–मित्यादिः ' तंमि ठाणंमि चिट्ठइ ' इत्यन्तः पूर्वोक्तस्वरूपः, ' बाले पुण निहे ' इत्यारभ्य ' आणाए आराहिया वि भवइ ' इतिपर्यन्तवक्ष्यमाणस्वरूपो वा नास्ति=न तस्य प्रयोजनं वर्तत इत्यर्थः, सकललोकालोकपदार्थसार्थस्य हस्तामलकवत्केवलालोकविषयीभूतत्वात्। कं प्रत्युपदेशः ? इत्याह–' बालः ' इत्यादि। यः पुनः बालः=परिग्रहगृद्धो ज्ञानक्रियाविकलः, स्निह्यते इति स्निहः=विषयानुरागी, कामसमनुज्ञः–कामान

भी सिद्ध होती है कि एक ज्ञान ऐसा भी है कि जहां पर त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों का अवलोकन–ज्ञान युगपत् होता है। जिस प्रकार परिमाण की तरतमता आकाश में अनन्त हो कर ठहर जाती है इसी प्रकार ज्ञान की अनन्तता भी इनमें स्थित होकर अपना स्थान प्राप्त करती है। संसार में अनन्त पदार्थ हैं, उनमें कई सूक्ष्म हैं, कई बादर हैं, कई अन्तरित हैं, कई अनन्तरित हैं, कई निकट हैं, कई दूर हैं। इन सब का यथार्थ रूप से प्रतिपादन करना विना सर्वज्ञता के नहीं हो सकता, और इन अनन्त पदार्थों को जाननेवाला ज्ञान भी अनन्त ही होता है। जैनशास्त्र में ऐसे ज्ञान को ही केवलज्ञान कहा है, और इस ज्ञानसंपन्न आत्मा को सर्वज्ञ कहा है।

यह व्याख्या " नरक निगोदादि पर्यायों के दुःख सर्वज्ञ नहीं प्राप्त करते ? तथा वे इस प्रकार के व्यपदेश से रहित होते हैं ? " इस प्रकार के व्यतिरेकमुखसे की गई है। अब उद्देश की समाप्ति करते हुए सूत्रकार अन्वयमुख से व्याख्या करते हैं—

ते वात सिद्ध थाय छे के એક ज्ञान એવું પણ છે કે જ્યાં ત્રિકાલવર્તી સમસ્ત પદાર્થોનું અવલોકન–જ્ઞાન યુગપત્ થાય છે. જે પ્રકારે પરિણામની તરતમતા આકાશમાં અનન્ત બનીને અટકી જાય છે તે પ્રકારે જ્ઞાનની અનન્તતા પણ તેમાં સ્થિત બનીને પોતાનું સ્થાન પ્રાપ્ત કરે છે. સંસારમાં અનંત પદાર્થ છે, તેમાં કોઈ સૂક્ષ્મ છે, કોઈ બાદર છે, કોઈ અન્તરિત છે, કોઈ અનન્તરિત છે, કોઈ નિકટ છે, કોઈ દૂર છે. આ બધાનું યથાર્થરૂપથી પ્રતિપાદન કરવું સર્વજ્ઞતા વિના બની શકતું નથી, અને આ અનન્ત પદાર્થોને જાણવાવાળું જ્ઞાન પણ અનન્ત જ થાય છે. જૈનશાસ્ત્રમાં તેવા જ્ઞાનને જ કેવળજ્ઞાન કહે છે, અને આ જ્ઞાનસંપન્ન આત્માને સર્વજ્ઞ કહે છે

આ વ્યાખ્યા " નરકનિગોદાદિ પર્યાયોના દુઃખ સર્વજ્ઞ નથી પ્રાપ્ત કરતાં ? તથા તે આ પ્રકારના વ્યપદેશથી રહિત હોય છે?" આ પ્રકારે વ્યતિરેકમુખથી કહેવામા આવેલ છે. હવે ઉદ્દેશની સમાપ્તિ કરતાં સૂત્રકાર અન્વયમુખથી વ્યાખ્યા કરે છે—

=स्पृहा–मदनरूपान् सम्=सम्यक्, अनु=अनुकूलं जानातीति कामसमनुज्ञः=काम-गुणानुमोदकः, अत एव अशमितदुःखः–अशमितम्=अक्षीणं दुःखम्=अलब्धलाभाय लब्धपरिरक्षणाय च व्यग्रतया निरन्तरचिन्तनरूपं यस्य सोऽशमितदुःखः=विषय-कषायासक्तत्वेन नितान्तक्रान्तस्वान्तः, अत एव दुःखी=शारीरिक–मानसिक–पीडा-पीडितः, दुःखानाम्=ऐहिक–पारत्रिक–नानाविधानामेव, आवर्तं=संसारचक्रम्–

"बाले पुण णिहे" इत्यादि। "सुयं मे आउसं तेणं' यहां से लेकर "तंमि ठाणंमि चिट्ठइ" यहां तक का पूर्वोक्तस्वरूपवाला उपदेश तथा "बाले पुण णिहे" यहां से लेकर "आणाए आराहिया वि भवइ" यहां तक वक्ष्यमाण–आगे कहा जानेवाला–उपदेश सर्वज्ञ की अपेक्षा से नहीं कहा गया है। क्यों कि वे कृतकृत्य हैं, उन्हें किसी भी वस्तुसे प्रयोजन नहीं रहा है, केवलज्ञान की प्राप्ति होनेसे वे समस्त पदार्थों को हस्तामलकवत् साक्षात् जानते हैं, अतः यह उपदेश बालजीवों की अपेक्षा से है। बाल जीव वे हैं जो परिग्रह में आसक्त हैं, ज्ञानक्रिया से विकल हैं, विषयानुरागी हैं, कामगुणोंके अनुमोदक हैं, अलब्ध को प्राप्त करने के लिये तथा लब्ध की रक्षा करने के लिये जो व्यग्रचित होने से सदा चिंताशील बने रहते हैं, विषयकषायों में आसक्त होने की वजह से जिनका अन्तःकरण अत्यन्त दुःखित होता रहता है। इस लिये जो रात-दिन शारीरिक एवं मानसिक कष्टोंका अनुभव किया करते हैं तथा

'बाले पुण णिहे' ઈત્યાદિ. 'सुयं मे आउसं तेणं' અહીંથી લઈ 'तंमिठाणं-मिंचिट्ठइ" સુધીનો પૂર્વોક્તસ્વરૂપવાળો ઉપદેશ, તથા "बाले पुण णिहे" અંહીથી લઈને "आणाए आराहिया वि भवइ" અહી સુધી વક્ષ્યમાણ–આગળ કહેવામાં આવનાર–ઉપદેશ આ સર્વજ્ઞની અપેક્ષાથી કહેવામાં આવેલ નથી, કારણ કે તે કૃતકૃત્ય છે, તેને કોઇ પણ વસ્તુથી પ્રયોજન રહ્યું નથી. કેવળજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ હોવાથી તે સમસ્ત પદાર્થોને હસ્તામલકવત્ સાક્ષાત્ જાણે છે માટે આ ઉપદેશ બાલ જીવોની અપેક્ષાથી છે. બાલ જીવ તે છે જે પરિગ્રહમા આસક્ત છે, જ્ઞાનક્રિયાથી વિકલ છે, વિષયાનુરાગી છે, કામગુણોના અનુમોદક છે, અલબ્ધને પ્રાપ્ત કરવા, લબ્ધની રક્ષા કરવા માટે જે વ્યગ્રચિત્ત હોવાથી સદા ચિંતાશીલ બની રહે છે, વિષયકષાયોમાં આસક્ત હોવાથી જેનુ અંતઃકરણ અત્યંત દુઃખિત થતું રહે છે માટે જે રાત દિન શારીરિક અને માનસિક કષ્ટોનો અનુભવ કર્યા કરે છે, તથા

अनुपरिवर्तते=घटीयन्त्रन्यायेन मुहुर्मुहुः पर्यटति, यथा जलावर्ते पतितस्तृणादिस्तदावर्तमेवानुधावति पराधीनतया नोन्मज्जति च, तथैव विषयैकतानचित्तो वीतरागोपदेशपराङ्मुखो गुरुकर्मा जीवः संसारसागरस्य दुःखावर्तनिमग्नः सन् न कदाप्युद्धृतो भवतीति बालस्य संसारपरिभ्रमणं विज्ञाय तत्कारणपरिग्रहविषयादिषु गृद्धो मा भूदिति शिष्यं प्रत्युपदेश इति तात्पर्यम्। इति ब्रवीमीत्यस्यार्थस्तूक्त एव॥ सू० ८॥

॥ इति द्वितीयाध्ययनस्य तृतीयोद्देशः समाप्तः ॥ २-३ ॥

जिस प्रकार रहट घूमता रहता है उसी प्रकार जो नाना प्रकार के ऐहलौकिक एवं पारलौकिक दुःखोंको भोगते हुए इस संसारचक्रमें परिभ्रमण कर रहे हैं।

ऐसे बालजीव कि जिनका मन विषयों में लवलीन हो रहा है, वीतराग प्रभु के उपदेश से जो सर्वथा पराङ्मुख हो रहे हैं, गुरुकर्मी हैं, पानी के आवर्त में पडे हुए तृणकी तरह इस संसारसागर के दुःखरूपी आवर्त में निमग्न बन कभी भी वहांसे छुटकारा नहीं पा सकते हैं। जिस तरह पानी के आवर्त में पड़े हुए तृण की दशा होती है उसी प्रकार की इनकी भी दशा होती है। जैसे वह तृण उससे बाहर नहीं निकलने पाता प्रत्युत उसमें इधर-उधर चक्कर काटा करता है-कभी उसमें डूबता है और कभी उसी में ऊपर तैर आता है, ठीक इसी प्रकार से इन बालजीवोंका भी इस चतुर्गतिरूप संसारचक्रमें परिभ्रमण होता रहता है। ऐसा समझ कर संयमी मुनिका कर्तव्य है कि वह संसारपरिभ्रमण का

જે પ્રકાર રેંટ ઘુમતો રહે છે તે પ્રકારે જે નાનાપ્રકારના ઐહલૌકિક અને પારલૌકિક દુઃખોને ભોગવતાં આ સંસારચક્રમાં પરિભ્રમણ કરે છે.

આવા બાલ જીવો કે જેના મન વિષયોમાં લવલીન રહે છે, વીતરાગ પ્રભુના ઉપદેશથી જે સર્વથા પરાઙ્મુખ રહે છે, ગુરૂકર્મી છે પાણીમાં પડેલા તૃણ માફક આ સંસારસાગરના દુઃખરૂપી આવર્તમા નિમગ્ન બની કોઈ વખત પણ ત્યાંથી છુટકારો મેળવી શકતા નથી જેવી રીતે પાણીના આવર્તમાં પડેલા તૃણની દશા થાય છે તે પ્રકારે તેની પણ દશા થાય છે. જેવી રીતે તે તણખલુ તેનાથી બહાર નીકળી શકતું નથી પણ તેમાં ચક્કર લગાવ્યા કરે છે-કોઇ વખત તેમાં ડુબે છે તો કોઇ વખત ઉપર તરી આવે છે, ઠીક તે પ્રકારે આ બાલ જીવોના પણ ચાર ગતિરૂપ સંસાર ચક્રમાં પરિભ્રમણ થયા કરે છે. એવું સમજીને સંયમી મુનિનું કર્તવ્ય છે કે તે સંસારપરિભ્રમણનું કારણ જે વિષય અને પરિગ્રહાદિક

कारण जो विषय और परिग्रहादिक हैं उनमें गृद्ध न बने। इस प्रकार से सूत्रकार का शिष्य के प्रति यह उपदेश है। 'ब्रवीमि' इस पद का पहिले के प्रकरणों में अर्थ कहा जा चुका है ॥ सू० ८ ॥

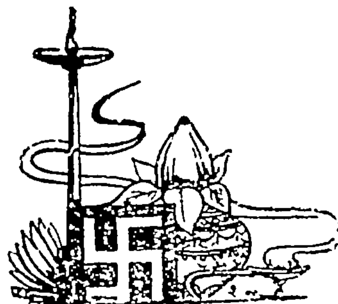
॥ दूसरे अध्ययनका तृतीय उद्देश संपूर्ण ॥



છે તેમાં ગૃદ્ધ ન બને. આ પ્રકારે સૂત્રકારનો શિષ્ય પ્રતિ આ ઉપદેશ છે. **इति ब्रवीमि** આ પદનો પહેલા પ્રકરણોમા અર્થ કરવામાં આવેલ છે.

॥ બીજા અધ્યયનનો ત્રીજો ઉદ્દેશ સંપૂર્ણ ૨-૩ ॥





॥ आचाराङ्गसूत्रे द्वितीयाध्ययनस्य चतुर्थोद्देशः ॥

तत्र पूर्वस्मिन्नुद्देशे 'उच्चैर्गोत्रोत्पत्त्यभिमानादिर्न कार्यः' इति प्रतिपादितम्, अत्र च 'भोगेष्वभिष्वङ्गो न कार्यः, तत्र रोगस्यावश्यं सद्भावा'-दिति दर्शयिष्यते।

अत्रानन्तरसूत्रसम्बन्धः-'दुक्खी दुक्खाणमेव आवट्टं अणुपरियट्टइ' इति, तानि च दुःखानि रोगकारणानि भवन्त्यतो रोगानेव दर्शयति।

॥ आचाराङ्गसूत्र के दूसरे अध्ययन का चौथा उद्देश ॥

तृतीय उद्देश का कथन हो चुका; अब चतुर्थ उद्देश का कथन प्रारंभ होता है। तृतीय उद्देश में संयमी मुनि को अपने संयम की रक्षा के लिए उच्च गोत्रमें उत्पत्ति होने का अभिमान आदि नहीं करना चाहिये यह भली भाँति समझा दिया गया है। इस चतुर्थ उद्देश में यह समझाया जायगा कि भोगों में संयमी मुनि के लिये अपने संयम की रक्षा करने के लिये अभिष्वंग-रागपरिणति-नहीं करना चाहिये। क्यों कि "भोग बुरे भवरोग बढ़ावैं वैरी हैं जग जी के" इस वाक्यके अनुसार एक तो वे भवरोग बढाते हैं, दूसरे उनके सेवन से अनेक शारीरिक रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं।

इस प्रकरण का "दुक्खी दुक्खाणमेव आवट्टं अणुपरियट्टइ" इस तृतीय उद्देश के अन्तिम सूत्र से संबंध है, इसलिये सूत्रकार उन्हीं रोगों का यहां पर वर्णन करेंगे, क्यों कि दुःख रोग के कारण हुआ करते हैं।

આચારાંગસૂત્રના બીજા અધ્યયનનો ચોથો ઉદ્દેશ.

ત્રીજા ઉદ્દેશનું કથન સમાપ્ત થયું. હવે ચોથા ઉદ્દેશનો પ્રારંભ થાય છે, ત્રીજા ઉદ્દેશમાં સંયમી મુનિએ પોતાના સંયમની રક્ષા માટે ઉચ્ચ ગોત્રમાં ઉત્પત્તિ થવાને કારણે અભિમાન આદિ નહિ કરવું જોઈએ, એ સારી રીતે સમજાવી દેવામાં આવેલ છે આ ચતુર્થ ઉદ્દેશમાં એ સમજાવવામાં આવશે કે-ભોગોમાં સંયમી મુનિએ પોતાના સંયમની રક્ષા માટે અભિષ્વંગ-રાગપરિણતિ નહિ કરવી જોઈએ, કારણ કે "भोग बुरे भवरोग बढावे वैरी है जगजी के" આ વાક્ય અનુસાર એક તો તે ભવરોગ વધારે છે, બીજું તેના સેવનથી અનેક શારીરિક રોગ પણ ઉત્પન્ન થાય છે

આ પ્રકરણના "दुक्खी दुक्खाण [illegible] अणुपरिय[illegible] [illegible] ત્રીજા ઉદ્દેશના અંતિમ સૂત્રથી સંબંધ છે માટે [illegible] રોગોના [illegible] [illegible]ન કરશે, કારણ કે રોગોના કારણથી દુઃખ [illegible]

कामभोगसेवनादासक्तिः, तया चार्तरौद्रध्यानं, ततश्च कर्मरजःसमुपार्जनम्, तेन चात्ममालिन्यं भवति, ततो ज्ञानादिगुणप्रणाशः, तेनोन्मार्गप्रवृत्तिः, तया चैहिक-पारत्रिकदुःखानि जायन्ते, दुःखानि च रोगादिना भवन्ति, तत्र दुःखहेतून् रोगानुपदर्शयति—' तओ से ' इत्यादि ।

कामभोगों के सेवन से जीव की उसमें आसक्ति बढ़ती है। आसक्ति से आर्त्त और रौद्रध्यान उत्पन्न होते रहते हैं। उन ध्यानों से जीव अशुभकर्मपरमाणुओं का बंध करता है। उससे आत्मा में मलिनता आती है। मलिनता के संबंध से ज्ञानादिक गुणोंका आवरण होने से जीवों की उन्मार्ग में प्रवृत्ति होती है। उस प्रकार की प्रवृत्ति से जीव इहलोक और परलोक-संबंधी अनंत यातनाओं को भोगता है। इस प्रकार परंपरा-संबंध से कामभोगसेवन तथा उस विषय की आसक्ति जीवको अनेक अनन्त कष्टों को देनेवाली होती है। परलोकसंबंधी दुःख जीवों को अशुभ कर्मोदय से प्राप्त होता है। वहां पर भी अनेक प्रकार के शारीरिक तथा मानसिक दुःख इस जीव को झेलने पड़ते हैं।

इसलोकसंबंधी दुःखों की भी यही परिस्थिति है, फिर भी व्यवहारी जीवों की दृष्टिमें दुःखादिक रोगाधीन होते हैं; इस अभिप्राय से सूत्रकार उन दुःखों के कारणभूत रोगों का वर्णन करते हुए कहते हैं-" तओ से " इत्यादि ।

કામભોગોના સેવનથી જીવની તેમાં આસક્તિ વધે છે. આસક્તિથી આર્ત્ત અને રૌદ્ર ધ્યાન ઉત્પન્ન થાય છે. તે ધ્યાનોથી જીવ અશુભ કર્મ પરમાણુઓનો બંધ કરે છે, તેથી આત્મામાં મલિનતા આવે છે. મલિનતાના સંબંધથી જ્ઞાનાદિક ગુણોનુ આવરણુ હોવાથી જીવોની ઉન્માર્ગમા પ્રવૃત્તિ થાય છે. આ પ્રકારની પ્રવૃત્તિથી જીવ આલોક અને પરલોક સંબંધી યાતનાઓને ભોગવે છે. આ પ્રકાર પરંપરાસંબધથી કામભોગસેવન, તથા તે વિષયની આસક્તિ જીવને અનેક અનંત કષ્ટોને દેવાવાળી હોય છે પરલોકસંબંધી દુ.ખ જીવોને અશુભ કર્મો-દયથી પ્રાપ્ત થાય છે. ત્યાં પણુ અનેક પ્રકારના શારીરિક તથા માનસિક દુ:ખ આ જીવને ભોગવવા પડે છે.

આલોકસંબંધી દુઃખોની પણુ એ જ પરિસ્થિતિ છે તો પણુ વ્યવહારી જીવોની દૃષ્ટિમાં દુ ખાદિક રોગાધીન થાય છે. આ અભિપ્રાયથી સૂત્રકાર આ દુઃખોના કારણુભૂત રોગોના વર્ણુન કરતાં કહે છે—" तओ से " ઇત્યાદિ.

|| आचाराङ्गसूत्रे द्वितीयाध्ययनस्य चतुर्थोद्देशः ||

तत्र पूर्वस्मिन्नुद्देशे 'उच्चैर्गोत्रोत्पत्त्यभिमानादिर्न कार्यः' इति प्रतिपादितम्, अत्र च 'भोगेष्वभिष्वङ्गो न कार्यः, तत्र रोगस्यावश्यं सद्भावा'-दिति दर्शयिष्यते।

अत्रानन्तरसूत्रसम्बन्धः-'दुक्खी दुक्खाणमेव आवट्टं अणुपरिवट्टइ' इति, तानि च दुःखानि रोगकारणानि भवन्त्यतो रोगानेव दर्शयति।

|| आचाराङ्गसूत्र के दूसरे अध्ययन का चौथा उद्देश ||

तृतीय उद्देश का कथन हो चुका; अब चतुर्थ उद्देश का कथन प्रारंभ होता है। तृतीय उद्देश में संयमी मुनि को अपने संयम की रक्षा के लिए उच्च गोत्रमें उत्पत्ति होने का अभिमान आदि नहीं करना चाहिये यह भली भाँति समझा दिया गया है। इस चतुर्थ उद्देश में यह समझाया जायगा कि भोगों में संयमी मुनि के लिये अपने संयम की रक्षा करने के लिये अभिष्वंग-रागपरिणति-नहीं करना चाहिये। क्यों कि "भोग बुरे भवरोग बढ़ावें वैरी हैं जग जी के" इस वाक्यके अनुसार एक तो वे भवरोग बढाते हैं, दूसरे उनके सेवन से अनेक शारीरिक रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं।

इस प्रकरण का "दुक्खी दुक्खाणमेव आवट्टं अणुपरियट्टइ" इस तृतीय उद्देश के अन्तिम सूत्र से संबंध है, इसलिये सूत्रकार उन्हीं रोगों का यहां पर वर्णन करेंगे, क्यों कि दुःख रोग के कारण हुआ करते हैं।

આચારાંગસૂત્રના બીજા અધ્યયનનો ચોથો ઉદ્દેશ.

ત્રીજા ઉદ્દેશનું કથન સમાપ્ત થયું. હવે ચોથા ઉદ્દેશનો પ્રારંભ થાય છે, ત્રીજા ઉદ્દેશમાં સંયમી મુનિએ પોતાના સંયમની રક્ષા માટે ઉચ્ચ ગોત્રમાં ઉત્પત્તિ થવાને કારણે અભિમાન આદિ નહિ કરવું જોઈએ, એ સારી રીતે સમજાવી દેવામાં આવેલ છે. આ ચતુર્થ ઉદ્દેશમાં એ સમજાવવામાં આવશે કે-ભોગોમાં સંયમી મુનિએ પોતાના સંયમની રક્ષા માટે અભિષ્વંગ-રાગપરિણતિ નહિ કરવી જોઈએ, કારણ કે "भोग बुरे भवरोग बढावे वैरी है जगजी के" આ વાકય અનુસાર એક તો તે ભવરોગ વધારે છે, બીજું તેના સેવનથી અનેક શારીરિક રોગ પણ ઉત્પન્ન થાય છે.

આ પ્રકરણના "दुक्खी दुक्खाणमेव आवट्टं अणुपरियट्टइ" આ ત્રીજા ઉદ્દેશના અંતિમ સૂત્રથી સંબંધ છે માટે સૂત્રકાર તે રોગોના આ ઠેકાણે વર્ણન કરશે, કારણ કે રોગોના કારણથી દુઃખ થયા કરે છે.

कामभोगसेवनादासक्तिः, तया चार्त्तरौद्रध्यानं, ततश्च कर्मरजःसमुपार्जनम्, तेन चात्ममालिन्यं भवति, ततो ज्ञानादिगुणप्रणाशः, तेनोन्मार्गप्रवृत्तिः, तया चैहिक-पारत्रिकदुःखानि जायन्ते, दुःखानि च रोगादिना भवन्ति, तत्र दुःखहेतून् रोगाननुपदर्शयति—' तओ से ' इत्यादि ।

कामभोगों के सेवन से जीव की उसमें आसक्ति बढ़ती है। आसक्ति से आर्त्त और रौद्रध्यान उत्पन्न होते रहते हैं। उन ध्यानों से जीव अशुभकर्मपरमाणुओं का बंध करता है। उससे आत्मा में मलिनता आती है। मलिनता के संबंध से ज्ञानादिक गुणोंका आवरण होने से जीवों की उन्मार्ग में प्रवृत्ति होती है। उस प्रकार की प्रवृत्ति से जीव इहलोक और परलोक-संबंधी अनंत यातनाओं को भोगता है। इस प्रकार परंपरा-संबंध से कामभोगसेवन तथा उस विषय की आसक्ति जीवको अनेक अनन्त कष्टों को देनेवाली होती है। परलोकसंबंधी दुःख जीवों को अशुभ कर्मोदय से प्राप्त होता है। वहां पर भी अनेक प्रकार के शारीरिक तथा मानसिक दुःख इस जीव को झेलने पड़ते हैं।

इसलोकसंबंधी दुःखों की भी यही परिस्थिति है, फिर भी व्यवहारी जीवों की दृष्टिमें दुःखादिक रोगाधीन होते हैं; इस अभिप्राय से सूत्रकार उन दुःखों के कारणभूत रोगों का वर्णन करते हुए कहते हैं-" तओ से " इत्यादि ।

કામભોગોના સેવનથી જીવની તેમાં આસક્તિ વધે છે. આસક્તિથી આર્ત્ત અને રૌદ્ર ધ્યાન ઉત્પન્ન થાય છે. તે ધ્યાનોથી જીવ અશુભ કર્મ પરમાણુઓનો બંધ કરે છે, તેથી આત્મામાં મલિનતા આવે છે. મલિનતાના સંબંધથી જ્ઞાનાદિક ગુણોનું આવરણ હોવાથી જીવોની ઉન્માર્ગમાં પ્રવૃત્તિ થાય છે. આ પ્રકારની પ્રવૃત્તિથી જીવ આલોક અને પરલોક સંબધી યાતનાઓને ભોગવે છે. આ પ્રકાર પરંપરાસંબધથી કામભોગસેવન, તથા તે વિષયની આસક્તિ જીવને અનેક અનંત કષ્ટોને દેવાવાળી હોય છે. પરલોકસંબંધી દુખ જીવોને અશુભ કર્મો-દયથી પ્રાપ્ત થાય છે. ત્યાં પણ અનેક પ્રકારના શારીરિક તથા માનસિક દુ:ખ આ જીવને ભોગવવા પડે છે.

આલોકસંબંધી દુ.ખોની પણ એ જ પરિસ્થિતિ છે તો પણ વ્યવહારી જીવોની દૃષ્ટિમા દુઃખાદિક રોગાધીન થાય છે. આ અભિપ્રાયથી સૂત્રકાર આ દુઃખોના કારણભૂત રોગોના વર્ણન કરતાં કહે છે—" तओ से " ઇત્યાદિ.

है तब यह विचारता है कि–जब मैं निरोग हो जाऊँगा तब नियम से निरन्तर इन विषयादिकों का मनमाफिक सेवन करूँगा। यदि मुझे नीरोगता प्राप्त करने में अपना सर्वस्व भी अर्पण कर देना पडे तो भी कोई चिन्ता की बात नहीं। जीवन रहेगा तो फिर धन हो जायगा। धन है भी किस लिये? यदि सांसारिक मौज मजा न देखी तो इस द्रव्य की प्राप्ति से लाभ ही क्या हुआ? इत्यादि अनेक प्रकार के संकल्प–विकल्पों से अशान्तचित्त बन निरन्तर संतप्त होता रहता है। इस प्रकार की संतप्तता का कारण सिर्फ इस जीव की विषयसंबंधी आसक्ति ही है। वे संयमी मुनि धन्य हैं जो विषयादिक सेवन के कटुकविपाक को जानकर इससे सर्वदा अपनी रक्षा करते रहते हैं। परन्तु जो इसके कटुक विपाक से अनभिज्ञ बने हुए हैं ऐसे कितनेक ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती जैसे मनुष्य ही इस विषयजाल में फंस कर अपना इहलोक और परलोक दोनों का बिगाड़ कर नाना प्रकार के कष्टों का अनुभव करनेवाले होते हैं। इस लिये विषयों को दोनों भवों में कष्टकारक जान कर संयमी मुनि को भोगासक्ति से सर्वदा अपनी रक्षा करने में सावधान रहना चाहिये। यही इस सूत्र का आशय है॥ सू० १॥

જાઇશ ત્યારે નિયમથી નિરંતર આ વિષયાદિકોનુ મનમાફક સેવન કરીશ. કદાચ મને નિરોગતા પ્રાપ્ત કરવામા પોતાનુ સર્વસ્વ પણ અર્પણ કરી દેવું પડે તો કોઇ ચિંતા નહિ, જીવન રહેશે તો પછી ફરીથી ધન થાશે. ધન કેના માટે છે? જો સંસારિક મોજમજા ન કરી તો આ દ્રવ્યની પ્રાપ્તિથી લાભ પણ શો?" ઇત્યાદિ અનેક પ્રકારના સંકલ્પ વિકલ્પોથી અશાંતચિત્ત બની નિરંતર સંતપ્ત રહ્યા કરે છે, આ પ્રકારની સંતપ્તતાનુ કારણ ફક્ત આ જીવની વિષયસંબંધી આસક્તિ જ છે.

તે સંયમી મુનિ ધન્ય છે જે વિષયાદિકસેવનના કટુક વિપાકને જાણીને તેનાથી સર્વદા પોતાની રક્ષા કરે છે, પરંતુ જે તેના કટુક વિપાકથી અનભિજ્ઞ બનેલા છે એવા કેટલાક બ્રહ્મદત્ત ચક્રવર્તી જેવા મનુષ્ય જ આ વિષયજાળમા ફસીને પોતાનો આલોક અને પરલોક બન્નેને બગાડીને નાના પ્રકારના કષ્ટોનો અનુભવ કરવાવાળા થાય છે વિષયોને બન્ને ભવોમાં કષ્ટકારક જાણીને સંયમી મુનિએ ભોગાસક્તિથી સર્વદા પોતાની રક્ષા કરવામાં સાવધાન રહેવું જોઇએ, એ જ આ સૂત્રનો આશય છે. ॥ સૂ૦ ૧ ॥

भोगसाधनस्य धनस्य विनशनशीलतां दर्शयति-'तिविहेण' इत्यादि।

मूलम्—तिविहेण जाऽवि से तत्थ मत्ता भवइ अप्पा वा बहुया वा, से तत्थ गड्ढिए चिट्ठइ भोयणाए, तओ से एगया विपरिसिट्टं संभूयं महोवगरणं भवइ, तं पि से एगया दायाया विभयंति, अदत्तहारो वा से अवहरइ, रायाणो वा से विलुंपंति, णस्सइ वा से, विणस्सइ वा से अगारदाहेण वा से डज्झइ, इय से परस्स अट्ठाए कूराणि कम्माणि बाले पकुव्वमाणे तेण दुक्खेण विप्परियासमुवेइ ॥ सू० २ ॥

छाया—त्रिविधेन याऽपि तस्य तत्र मात्रा भवति-अल्पा वा बहुका वा, स तत्र गृद्धस्तिष्ठति भोजनाय, ततस्तस्यैकदा विपरिशिष्टं सम्भूतं महोपकरणं भवति तदपि तस्यैकदा दायादा विभजन्ते, अदत्तहारो वा तस्य हरति, राजानो वा तस्य विलुम्पन्ति, नश्यति वा तस्य, विनश्यति वा तस्य, अगारदाहेन वा दह्यते तद्, इति स परस्यार्थाय क्रूराणि कर्माणि बालः प्रकुर्वाणस्तेन दुःखेन मूढो विपर्यासमुपैति ॥ सू० २ ॥

टीका—'त्रिविधेने'-त्यादि, एतस्य व्याख्या तु तृतीयोद्देशे प्रोक्ता। प्राग् धनस्य निस्सारता प्रदर्शिता, अत्र तु भोगसाधनस्य धनस्य क्षीणमाणतया तदभावादपि न भोगो भवितुमर्हतीति दर्शितम् ॥ सू० २ ॥

भोग के साधनभूत धनकी विनश्वरता दिखलाते हुए सूत्रकार कहते हैं-" तिविहेण जावि " इत्यादि।

इस सूत्र की व्याख्या तृतीय उद्देश में अच्छी तरह से की जा चुकी है। वहां पर सामान्यतया धनकी असारता प्रकट की है, यहां पर भोग और उपभोग में काम आनेवाले साधनभूत धन की असारता बतलाई गई है; कारण कि सांसारिक भोग और उपभोग का कारण धन होता है। इसके

ભોગોના સાધનભૂત ધનની વિનશ્વરતા દેખાડતાં સૂત્રકાર કહે છે—" तिविहेण जावि " ઇત્યાદિ.

આ સૂત્રની વ્યાખ્યા ત્રીજા ઉદ્દેશમાં સારી રીતે આપવામાં આવેલ છે. તે જગ્યાએ સામાન્યતયા ધનની અસારતા પ્રગટ કરેલ છે. આ ઠેકાણે ભોગ અને ઉપભોગમાં કામ આવવાવાળા સાધનભૂત ધનની અસારતા બતાવવામાં આવેલ છે, કારણ કે સાંસારિક ભોગ અને ઉપભોગનું કારણ ધન જ છે તેના સદ્ભાવમાં

एवं 'भोगे रोगः' इति प्रोक्तम्। अथ च भोगसाधनं धनमपि नश्वरं ततः किं विधेयमिति दर्शयति-'आसं च' इत्यादि।

सद्भाव में जीव सांसारिक मौज-मजा भोगने में अपनी शक्तिअनुसार कसर नहीं रखते; किन्तु भोग सदा दुःखदायी होते हैं। कहा भी है—

भोग बुरे भव रोग बढावैं, वैरी हैं जग जी के।
वेरस होंय विपाक समय अति, सेवत लागैं नीके॥
वज्र अगनि विष से विषधर से, ये अधिके दुखदाई।
धर्मरतन के चोर चपल अति, दुर्गतिपंथसहाई॥
मोह-उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानै।
ज्यों कोई जन खाय धतूरा, सो सब कंचन मानै॥
ज्यों ज्यों भोग सँजोग मनोहर, मनवांछित जन पावै।
तृष्णा नागिन त्यों त्यों डंकै, लहर जहर की आवै॥

उन भोगों की आशा से बाल अज्ञानी जीव प्राणातिपातादिक अनेक प्रकार के क्रूर कर्मों को करता हुआ विपरीतपने को प्राप्त होता है, अर्थात् मोक्षमार्ग से विमुख हो जाता है॥ सू० २॥

इस प्रकार जब भोग में रोग है और भोग का साधनभूत धन विनश्वर है तब क्या करना चाहिये? इसका प्रत्युत्तर देते हुए सूत्रकार कहते हैं-"आसं च" इत्यादि।

જીવ સાંસારિક મોજ-મજા ભોગવવામાં પોતાની શક્તિઅનુસાર કસર રાખતા નથી પણ ભોગ સદા દુઃખદાયી થાય છે. કહ્યું પણ છે—

"भोग बुरे भव रोग बढावैं, वैरी है जगजीके।
वेरस होय विपाक समय अति, सेवत लागैं नीके॥
वज्र अगनि विषसे विषधर से, ये अधिके दुखदाई।
धर्मरतनके चोर चपल अति, दुर्गतिपंथसहाई॥
मोह उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानै।
ज्यों कोई जन खाय धतूरा, सो सब कंचन मानै॥
ज्यों ज्यों भोग संजोग मनोहर, मनवांछित जन पावै।
तृष्णा नागिन त्यों त्यों डंकै, लहर जहर की आवै॥"

આવા ભોગોની આશાથી બાલ અજ્ઞાની જીવ પ્રાણાતિપાતાદિક અનેક પ્રકારનાં ક્રૂર કર્મો કરીને વિપરીતપણાને પ્રાપ્ત થાય છે, અર્થાત્ મોક્ષમાર્ગથી વિમુખ થાય છે. ॥ સૂ૦ ૨ ॥

આ પ્રકારે જ્યારે ભોગમાં રોગ છે. અને ભોગના સાધનભૂત ધન વિનશ્વર છે. ત્યારે શું કરવું જોઈએ? તેનો પ્રત્યુત્તર આપતાં સૂત્રકાર કહે છે-"आसं च" ઇત્યાદિ.

मूलम्—आसं च छंदं च विगिंच धीरे, तुमं चेव तं सल्लमाहट्टु, जेण सिया तेण नो सिया, इणमेव नावबुज्झंति जे जणा मोहपाउडा, थीलोभपव्वहिए ते भो वयंति एयाइं आयतणाइं, सो दुक्खाए मोहाए माराए नरगाए नरगतिरिक्खाए सययं मूढे धम्मं नाभिजाणइ उदाहु वीरे, अप्पमाओ महामोहे, अलं कुसलस्स पमाएणं संति मरणं संपेहाए भिदुरधम्मं संपेहाए नालं पास अलं ते एएहिं ॥ सू० ३ ॥

छाया—आशां च छन्दश्च वेविक्ष्व धीर ! त्वमेव तत् शल्यमाहृत्य येन स्यात् तेन नो स्यात्, इदमेव नाववुध्यन्ते ये जना मोहप्रावृताः, स्त्रीलोकप्रव्यथिताः, ते भो वदन्ति, एतान्यायतनानि, तत् (तेषां) दुःखाय मोहाय माराय नरकाय नरकात्, तिरश्चे, सततं मूढो धर्मं नाभिजानाति, उदाह वीरः, अप्रमादो महामोहे अलं कुशलस्य प्रमादेन शान्तिमरणं संप्रेक्ष्य भिदुरधर्मं संप्रेक्ष्य नालं पश्यालं ते एतैः ॥सू० ३॥

टीका—'आशां चे'त्यादि । हे धीर ! धिया=चारित्राराधनरूपया मत्या राजत इति धीरस्तत्संबोधने हे धीर !=हे संयमिन् ! यद्वा-धियं=बुद्धिम् ईरयति=प्रेरयति परीषहोपसर्गविजयार्थं यः स धीरस्तत्संबोधने हे धीर ! हे संयमिन् ! अथवा हे परीषहोपसर्गैरक्षोभ्य ! आशां=शब्दादिविषयस्पृहां, छन्दः=भोगस्याभिप्रायं च वेविक्ष्व=पृथक्कुरु-परित्यजेत्यर्थः । हे शिष्य ! त्वमेव

चारित्र को आराधन करनेवाली बुद्धि से जो शोभित होता है अथवा परीषह और उपसर्ग को जीतने के लिये जो बुद्धि को प्रेरित करता है यहां उसका नाम धीर है । संबोधन करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि-हे धीर ! हे संयमी ! अथवा परीषह और उपसर्ग को जीतनेवाले शिष्य ! तुम शब्दादि विषय की इच्छा और भोग की चाहना को अपने से पृथक् करो-छोड़ो; कारण कि व्रती का लक्षण "निःशल्यो व्रती" शल्यरहित होना बतलाया है। संयम को लेकर भी जो शब्दादिविषयों

ચારિત્રનું આરાધન કરવાવાળી બુદ્ધિથી જે શોભિત થાય છે, અથવા પરિષહ અને ઉપસર્ગને જીતવા માટે જે બુદ્ધિને પ્રેરિત કરે છે, આ ઠેકાણે તેનું નામ ધીર છે સંબોધન કરીને સૂત્રકાર કહે છે કે-હે ધીર! હે સંયમી! અથવા પરિષહ અને ઉપસર્ગને જીતવાવાળા શિષ્ય! તમે શબ્દાદિ વિષયની ઇચ્છા અને ભોગની ચાહનાઓને તમારાથી દૂર કરો-છોડો, કારણ કે-વ્રતીના લક્ષણ "नि शल्यो व्रती" શલ્યરહિત થવું બતાવેલ છે. સંયમને લઇને પણ જે શબ્દાદિ વિષયને ભોગ-

के भोगने की चाहना के वशवर्ती बना रहता है वह दंभका सेवन करनेवाला है। वे शब्दादिविषयोंको न भी भोगते हों तो भी उनकी परिणति तन्दुलमत्स्य के समान उस ओर लालसावाली होने से संयम का नाश करनेवाली मानी गई है। संयम को मूल से नाश करनेवाला शल्य है। मायाशल्य के सद्भाव से ही अव्रत भी व्रत जैसे मालूम पड़ते हैं। अतः सूत्रकार कहते हैं कि–हे शिष्य! तूं इस शल्य को दूर कर, व्यर्थ क्यों इसके फंदे में पड़कर अपने को दुःखी बना रहा है। दूसरे चाहे कुछ भी करते हों यह तुझे नहीं देखना है, तूं अपनी ही ओर देख "हुं तारूं रे संभाल तने बीजानी शी पड़ी" तूं क्या कर रहा है? इसी लिये सूत्रकार "त्वमेव" इस पद पर जोर देकर शिष्य से कह रहे हैं।

अथवा–शल्य शब्दका अर्थ–अष्टविध कर्म भी है, यह पहिले बतलाया जा चुका है कि–"तपसा निर्जरा च" तप, संयम पालन करने से संवर तो होता ही है परन्तु संचित कर्मों की निर्जरा भी होती है। चारित्राराधन के द्वारा आत्मा ज्यों २ अविरति, प्रमाद, कषाय, और अशुभ योगों का निग्रह करता जाता है त्यों २ इस आत्मा में अपूर्व २ उज्ज्वलता की जागृति होती जाती है। इस उज्ज्वलता की जागृति में आत्मा संवर और निर्जरा के द्वारा कर्मोंका क्रमशः नाश करता हुआ आगे २ के गुण-

---

વવાની ચાહનાને વશવર્તી બની રહે છે, તે શબ્દાદિ વિષયોને ભલે નહિ ભોગવતા હોય તો પણ તેની પરિણતિ તંદુલમત્સ્યસમાન તે તરફ લાલસાવાળી હોવાથી સંયમનો નાશ કરવાવાળી માનવામાં આવે છે. સંયમને મૂળથી નાશ કરવાવાળા શલ્ય છે. માયાશલ્યના સદ્‌ભાવથી અવ્રત પણ વ્રત જેવા માલમ પડે છે માટે સૂત્રકાર કહે છે કે–હે શિષ્ય! તું આ શલ્યને દૂર કર, વ્યર્થ શા માટે તેના ફંદામાં પડીને પોતાને દુઃખી બનાવે છે? બીજા ભલે કોઇ પણ કાર્ય કરતા હોય એ તારે જોવાનું નથી, તું ફક્ત તારી જ તરફ દેખ, "તું તારૂં રે સંભાળ, તને બીજાની શી પડી?" તુ શું કરી રહ્યો છે? તે માટે સૂત્રકાર "त्वमेव" આ પદ ઉપર જોર દઈને શિષ્યને કહે છે.

અથવા શલ્ય શબ્દનો અર્થ અષ્ટવિધ કર્મ પણ છે, એ પહેલાં બતાવવામાં આવેલ છે કે–"तपसा निर्जरा च" તપ, સંયમ પાલન કરવાથી સંવર તો થાય જ છે, પરંતુ સંચિત કર્મોની નિર્જરા પણ થાય છે. ચારિત્રારાધનદ્વારા આત્મા જેમ જેમ અવિરતિ, પ્રમાદ, કષાય, અને અશુભ યોગોનો નિગ્રહ કરતો જાય છે તેમ તેમ આ આત્મામાં અપૂર્વ ઉજ્જ્વલતાની જાગ્રતિ થતી જાય છે. આ ઉજ્જ્વલતાની જાગ્રતિમા આત્મા સંવર અને નિર્જરાદ્વારા કર્મોનો ક્રમશઃ નાશ કરીને આગળ આગળના ગુણસ્થાનોમાં ચઢતો જાય છે. એક સમય એવો

स्थानों में चढ़ता चला जाता है। एक समय ऐसा भी आता है कि जिसमें इस की आत्यंतिक शुद्धि हो जाती है। इस प्रकार कर्मोच्छेद में चारित्र को सर्वप्रथम स्थान प्राप्त हुआ है। अतः हे शिष्य! निर्दोष चारित्राराधन कर और इन कर्मों पर क्रमशः अथवा युगपत् विजय प्राप्त कर। विषय भोगों की चाह से ऐसे सुन्दरतम चारित्र को बिगाडने के लिये क्यों व्यर्थ में चेष्टा करता है? क्यों इसे नष्ट भ्रष्ट करता है? ऐसा करने से उल्टे अनन्त संसार वर्धन करनेवाले इन कर्मोंका बंधन दृढ़ ही होगा, जो तुझे भव२ में दुःखदाता होगा। अपने को दुःखी करने में तेरा ही अपराध है, इसमें और कोई निमित्त नहीं। इसी बात की पुष्टि "अष्ट विधं कर्म वा आहृत्य-परिगृह्य स्वात्मनि दुःखमुत्पादयसि" टीकाकारने इस पंक्तिसे की है। यह दृढ़ विश्वास रख-जिस भोगादिक की चाहना में पड़कर तूं संयम जैसे अमूल्य रत्न को कलंकित करने में संकोच नहीं करता है। क्या उन भोगादिकों को भोगने की तेरी यह भावना सफल हो जायगी? मान लिया संयमरत्न को वेंच कर तूंने भोगादिक वस्तुओंको खरीद भी लिया, परन्तु यदि तेरे प्रबल अन्तराय-भोगान्तराय का उदय है तो प्राप्त हुए उन भोगादिकों को तू नहीं भोग सकता। अथवा संयम

પણ આવે છે કે જેમા તેની આત્યંતિક શુદ્ધિ થઇ જાય છે. આ પ્રકારે કર્મો-ચ્છેદમાં ચારિત્રને સર્વપ્રથમ સ્થાન પ્રાપ્ત થયેલ છે. માટે હે શિષ્ય! નિર્દોષ ચારિત્રારાધન કર, અને એ કર્મો ઉપર ક્રમશ. અથવા યુગપત્ વિજય પ્રાપ્ત કર. વિષય ભોગોની ચાહનાથી એવા સુંદરતમ ચારિત્રને બગાડવા શા માટે વ્યર્થ ચેષ્ટા કરે છે? શા માટે તેને નષ્ટ ભ્રષ્ટ કરે છે? આવું કરવાથી ઉલ્ટા અનંત સંસારને વધારવાવાળા તે કર્મોના બંધન દૃઢ જ થશે, જે તને ભવભવમાં દુઃખ દાતા થશે, પોતાને દુ.ખી કરવામાં તારોજ અપરાધ છે, તેમાં કોઈ બીજું નિમિત્ત નથી. આ વાતની પુષ્ટિ "अष्टविधं कर्म वा आहृत्य परिगृह्य स्वात्मनि दुःख-मुत्पादयसि" ટીકાકારે આ પંક્તિથી કહ્યું છે. એ દૃઢ વિશ્વાસ રાખ, જે ભોગા-દિકની ચાહનામા પડીને તું સંયમ જેવા અમુલ્ય રત્નને કલંકિત કરવામાં સંકોચ કરતો નથી. શું તે ભોગાદિકોને ભોગવવાની તારી એ ભાવના સફળ થશે? માની લ્યે કે-આ સંયમરત્નને વેચીને તેં ભોગાદિક વસ્તુઓને ખરીદી લીધી, પરંતુ કદાચ તારા પ્રબળ અંતરાય-ભોગાન્તરાયનો ઉદય હોય તો પ્રાપ્ત થયેલ તે ભોગા-દિકોને તું ભોગવી શકતો નથી, અથવા સંયમની ઓટમાં બેસીને ભોગાદિકની

नान्यः, शल्यं=मायादिरूपम् अष्टविधं कर्म वा आहत्य=परिगृह्य स्वात्मनि दुःखमुत्पादयसि। यतो येनार्थादिना भोगप्राप्तिः स्यात् तेनैव कदाचिन्नो स्यात्, अन्तरायकर्मपरिणामस्याघटितघटनाघटकत्वात्। अन्तरायकर्मवैचित्र्यमिदं मोहप्रावृता न जानन्तीत्याह–'इदमेवे'-ति, 'मोहप्रावृताः' मोहेन=अज्ञानेन प्रावृताः=सम्यगवगुण्ठिताः, अज्ञानतमसाऽऽच्छादिता इत्यर्थः, ये जनाः तीर्थङ्करगणधराज्ञाविराधकाः इदमेव=भोगसाधनमप्यभोगसाधनं भवतीति कारणवैचित्र्यमेव नावबुध्यन्ते=न जानन्ति। भोगान्तरायोदयादज्ञानान्धा विपरीतमतयो हेतुवैचित्र्यं न मन्यन्ते। दृश्यते हि लोके भोगाय समवहितोऽपि कारणकलापोऽन्तरायोदयादनर्थाय भवति।

की ओट में बैठ कर भोगादिक की चाहना से तूने अन्य प्राणियों को रिझाकर किसी दूसरे बहाने से भोगादिक सामग्री को जुटाने में साधनभूत द्रव्यादिक का संग्रह भी करलिया तो तुझे यह कैसे विश्वास है कि इस द्रव्यादिक से मुझे उस मनोनुकूल सामग्री का लाभ अवश्य हो ही जायगा। विपरीत भी हो सकता है, कारण कि अघटित घटना को घटाने में पटु अन्तराय कर्म का उदय अभी तेरे बना हुआ है, उसका जब तक नाश नहीं होता तब तक प्राणी मनोऽनुकूल भोगादिकों को भोगने में सर्वथा असमर्थ रहता है, यही बात "जेण सिया तेण णो सिया" इन पदों से व्यक्त की है। जिस द्रव्यादिक साधन से भोगप्राप्ति होती है अन्तराय के उदय होने पर उसी से भी संभव है कि न भी हो। यह सब अन्तराय कर्म की ही विचित्रता है, परन्तु जिन की आत्मा मोह के उदय से आच्छादित हो रही है, तथा तीर्थंकर एवं गणधरादिकों की आज्ञा के विराधक हैं वे अन्तराय की इस विचित्रता को नहीं जानते।

ચાહનાથી તું અન્ય પ્રાણીઓને રીઝાવી કોઈ બીજા બહાનાથી ભોગાદિક સામગ્રી મેળવવામાં સાધનભૂત દ્રવ્યાદિકનો સંગ્રહ પણ કરી લે તો પણ તને એવો વિશ્વાસ કેમ છે કે–આ દ્રવ્યાદિકથી મને તે મનોનુકૂળ સામગ્રીનો લાભ અવસ્ય થઈ જ જશે? વિપરીત પણ બની શકે છે, કારણ કે અઘટિત ઘટનાને ઘટાડવામાં પટુ અન્તરાય કર્મનો ઉદય હજુ પણ તારે વિદ્યમાન છે. તેનો જ્યાં સુધી નાશ થશે નહિ ત્યાં સુધી પ્રાણી મનોઽનુકૂળ ભોગાદિકોને ભોગવવામાં સર્વથા અસમર્થ રહે છે. આ વાત "जेण सिया तेण णो सिया" આ પદોથી વ્યક્ત કરી છે. જે દ્રવ્યાદિકસાધનથી ભોગપ્રાપ્તિ થાય છે, અંતરાયનો ઉદય થતાં તેનાથી પણ સંભવ છે કે કદાચ ન પણ બને, આ બધી અન્તરાય કર્મની જ વિચિત્રતા છે, પરંતુ જેની આત્મા મોહના ઉદયથી આચ્છાદિત થઈ રહી છે, તથા જે તીર્થંકર અને ગણધરાદિકોની આજ્ઞાના વિરાધક છે તે અન્તરાયની આ વિચિત્રતાને જાણતા નથી.

यथा स्वभोगार्थं विपुलविभवसम्पादितं सकलजनाश्चर्यकारिकारुकलाकलापनिर्मापितं सकलेन्द्रियसुखावलम्बि-गगनचुम्बि-प्रासादमवलोकितुमुपरितनभागमुपगतो भवनशोभावलोकननिमग्नो भवनाधिपतिरारोहमार्गेणावतरन् कर्मवैचित्र्यात्पादस्खलनेन ततो निपत्य मृतिमवाप। अहो! पश्यन्तु महामोहस्महिमानम्।

सच बात है भोगान्तराय के उदय से जो अज्ञान से अन्ध हो रहे हैं, एवं जिनकी मति विपरीत बनी हुई है वे इस अन्तराय की विचित्रता को कि-जो पदार्थ भोगसामग्री का साधन है वही कालान्तर में अन्तरायादि निमित्त को पाकर उसका साधन नहीं होता है-नहीं माना करते हैं, परन्तु उनकी मान्यता या अमान्यता से कुछ भी नही हो सकता है। हम व्यवहार में यह बात प्रत्यक्ष देखते हैं कि-भोग के लिये एकत्रित किये गये कारणकलाप-साधन अन्तराय के उदय से अनर्थकारी हो जाते हैं।

जैसे किसी धनिक व्यक्तिने अपने उपभोग करने के लिये पूर्ण उपभोग की सामग्रीसमन्वित एक सर्वसुन्दर गगनतलचुम्बी प्रासाद बहुत चतुर कारीगरों द्वारा बनवाना प्रारंभ किया। धीरे २ वह बनकर पूर्ण तैयार हो गया। मकानमालिक उसकी शोभा का निरीक्षण करने लिये वहां गया। सब से ऊंचे खण्ड पर चढ़ कर उसने उसकी शोभा का सर्वाङ्गनिरीक्षण किया। पूर्ण शोभा से युक्त उसे देखकर वह आनन्द मग्न भी हुआ। कुछ देर बाद वह वहांसे वापिस लौटकर नीचे आने लगा,

સાચી વાત છે કે ભોગાન્તરાયના ઉદયથી જે અજ્ઞાનથી અંધ થઈ રહેલ છે, અને જેની મતિ વિપરીત બનેલ છે તે આ અંતરાયની વિચિત્રતાને કે-જે પદાર્થ ભોગ સામગ્રીનું સાધન છે તે કાલાન્તરમાં અંતરાયાદિક નિમિત્તને મેળવી તેનું સાધન બનતું નથી-માનતા પણ નથી, પરંતુ તેની માન્યતા અગર અમાન્યતાથી કાંઈ પણ બની શકતું નથી. અમે વ્યવહારમાં આ વાત પ્રત્યક્ષ દેખીએ છીએ કે-ભોગ માટે એકત્રિત કરવામાં આવેલ કારણકલાપ-સાધન અંતરાયના ઉદયથી અનર્થકારી બની જાય છે.

જેવી રીતે કોઈ ધનિક વ્યક્તિએ પોતાના ઉપભોગને માટે પૂર્ણ ઉપભોગની સામગ્રીસમન્વિત એક સર્વસુંદર ગગનચુંબી મહેલ ઘણા ચતુર કારીગરો દ્વારા બનાવવાનો પ્રારંભ કર્યો ધીરે ધીરે તે બનીને પૂર્ણ તૈયાર બની ગયો મકાનમાલિક તેની શોભાનું નિરીક્ષણ કરવા ત્યાં ગયો. સૌથી ઉંચા ખંડ ઉપર ચડીને તેણે તેની શોભાનું સર્વાંગ નિરીક્ષણ કર્યું પૂર્ણ શોભાથી યુક્ત તેને દેખીને તે આનંદમગ્ન પણ થયો, થોડા વખત પછી તે ત્યાંથી પાછો ફરીને નીચે આવવા લાગ્યો. પરંતુ વચમાં જ અશુભ ઉદયથી કોઈ એક સીડીના

मोहनीये कामप्राधान्येन स्त्रियाः प्राधान्यमिति दर्शयति-'स्त्री'-ति, स्त्रीलोकैः=कामिनीजनैः, प्रव्यथितः=प्रकर्षेण व्यथितः=अधीनीकृतः भोगाशापाशवद्धः सावधानुष्ठायी जनः। ते त्वन्यानपि मुहुरुपदेशादिना संसाराधोगर्ते पातयन्तीत्याह-'ते भो' इत्यादि। ते वनितावशवर्तिनो वदन्ति=कथयन्ति 'भो' इति संबोधने हे जनाः! एतानि=कामिन्यादीन्येव आयतनानि=भोगाधिष्ठानानि सुखकारणानीत्यर्थः। कामिन्यो हि कमनीयसुखकारणीभूताः सकलजगतो ललामरूपा निखिललोकामन्दानन्दसन्दोहदायिन्यो भवन्ति, किं भोगस्ताभिर्विना?, इत्यादि ब्रुवन्ति।

परन्तु बीच ही में अशुभोदय से किसी एक सीढ़ी पर से उसका पैर फिसल गया और वह वहां से नीचे गिर कर मर गया। इस दृष्टान्त से यही फलितार्थ निकलता है कि-जो सामग्री भोग के निमित्त होती है वही भोगान्तराय के उदय से कालान्तर में अनर्थ के लिये जीवों को हो जाती है। परन्तु कर्म की बलवत्ता ही कुछ ऐसी है, जो इस जीव को बाहिरी वस्तुओं में उन्मत्त बना रही है।

इसी मोहनीय के उदयमें भोगों की आशारूपपाश से बंधे हुए जीवों में काम की प्रधानता होने से वे स्त्रियों के द्वारा व्यथित किये जाते हैं, अधीन किये जाते हैं। शास्त्रकार कहते हैं कि-ऐसे जीव "इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः" हों तो कोई अचरज की बात नहीं है, परन्तु ये स्वयं बिगड़कर दूसरों को भी बिगाड़ने की बातें करते हैं, यही एक बड़ा आश्चर्य है। ये दूसरों से यही कहते हैं कि-"अरे भाई! इन स्त्री आदि पदार्थों के सेवन करने में ही संसार का सर्व सुख

પગથીયા ઉપરથી તેનો પગ લપસી ગયો; અને તે ત્યાંથી નીચે પડીને મરી ગયો. આ દાખલાથી એવું તાત્પર્ય નીકળે છે કે-જે સામગ્રી ભોગને નિમિત્ત હોય છે તે ભોગાન્તરાયના ઉદયથી કાલાન્તરમાં જીવોને અનર્થરૂપ પણ બની જાય છે. પરંતુ કર્મની બલવત્તા જ કોઇ એવી છે કે. જે આ જીવને બહારની વસ્તુઓમાં ઉન્મત્ત બનાવે છે

આ મોહનીયના ઉદયમાં ભોગોની આશારૂપ પાશથી બંધાયેલા જીવોમાં કામની પ્રધાનતા હોવાથી તે સ્ત્રિયોદ્વારા વ્યથિત કર્યે જાય છે અધીન કર્યે જાય છે. શાસ્ત્રકાર કહે છે કે-એવો જીવ इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः થાય તો કોઈ અચરજની વાત નથી પરંતુ તે પોતે બગડીને બીજાને પણ બગાડવાની વાતો કરે છે. એ પણ એક મોટું આશ્ચર્ય છે. તે બીજાઓને એમ કહે છે કે-"અરે ભાઈ આ સ્ત્રી આદિ પદાર્થોનું સેવન કરવામાં જ સંસારનું સર્વ સુખ સમાયેલું છે

किन्तु नैवं, प्रत्युत दुःखाद्यर्थमेवेत्याह–'तदि'–त्यादि, तेषां तत्=कामिनी-वशवर्तनं तासां सुखायतनकथनं चोभयमेव दुःखाय=ऐहिकपारत्रिकाऽकल्याणाय भवति। एवं सर्वत्र चतुर्थ्यन्ते योज्यम्। अपि च मोहाय=अज्ञानाय। किं च–माराय=मरणं मारस्तस्मै चरमकामदशार्थम्, कामस्य दशविधा अवस्थाः समुत्पद्यन्ते, तासु दशमावस्था मरणाख्या भवति। उक्तञ्च—

समाया है, ये ही सुख के कारण हैं"। मोहाभिभूत जीवों की दृष्टि में स्त्री ही उत्तम से उत्तम आनंद प्रदान करनेवाली वस्तु प्रतिभासित होती है। जगत के अनेक सुन्दर पदार्थों से भी वह अधिक सुन्दर उन्हें मालूम देती है। इसके विना संसार का मजा भी उनकी दृष्टि में फीका रहता है, परन्तु इस प्रकार की उनकी मान्यता केवल एक मोह का ही विलास है। जिस प्रकार अशुचि पदार्थ का सेवन करनेवाला वराह अपने को सुखी मानता है उसी प्रकार "नारीजघनरन्ध्रस्थविण्मूत्रमयचर्मणा" नारीके जघन के छिद्रस्थ चमड़े के सेवन से अज्ञानी मनुष्य भी अपने को सुखी मानता रहता है, परन्तु ज्ञानियों की दृष्टि में इस प्रकार के जीवों का व्यवहार गर्हित एवं निन्दित है। इसी बात को खुलाशा करते हुए कहते हैं कि–"तत् तेषां दुःखाय मोहाय" इत्यादि। स्त्रियों के अधीन रहना और उन्हें सुख का स्थान समझना ये दोनों बातें मानव जगत को इस लोक और परलोक में अकल्याणप्रद हैं, अज्ञान को देनेवाली हैं और काम की

તે જ સુખનું કારણ છે" મોહવશ જીવોની દૃષ્ટિમાં સ્ત્રી જ ઉત્તમમાં ઉત્તમ આનંદ આપવાવાળી વસ્તુ પ્રતિભાસિત થાય છે. જગતના અનેક સુંદર પદાર્થોથી પણ તે અધિક સુંદર તેને માલૂમ પડે છે. તેના વિના સંસારની મજા પણ તેની દૃષ્ટિમાં ફીકી રહે છે, પરંતુ આ પ્રકારનો તેનો કેવળ એક મોહનો જ વિલાસ છે. જે પ્રકારે અશુચિ પદાર્થનું સેવન કરવાવાળા ભૂંડ પ્રાણી પોતાને સુખી માને છે તેજ પ્રકારે "नारीजघनरन्ध्रस्थविण्मूत्रमय-चर्मणा" નારીના જાંઘના છિદ્રસ્થ ચામડાનું સેવન કરવાથી અજ્ઞાની મનુષ્ય પણ પોતાને સુખી માનતો રહે છે, પરંતુ જ્ઞાનીયોની દૃષ્ટિમાં આ પ્રકારના જીવોનો વ્યવહાર ગર્હિત અને નિન્દિત છે. આ વાતનો ખુલાસો કરીને કહે છે કે— तत् तेषां दुःखाय मोहाय ઇત્યાદિ. સ્ત્રિયોના આધીન રહેવું, અને તેને સુખનું સ્થાન સમજવું, એ બન્ને વાતો માનવજગતને આલોક અને પરલોકમા અકલ્યાણપ્રદ છે. અજ્ઞાનને દેવાવાળી છે. અને કામની અન્તિમ દશાને પહોંચાડવાવાળી છે.

" प्रथमे जायते चिन्ता, द्वितीये द्रष्टुमिच्छति ।
तृतीये दीर्घनिःश्वासश्चतुर्थे ज्वरमादिशेत् ॥ १ ॥
पञ्चमे दह्यते गात्रं, षष्ठे भक्तं न रोचते ।
सप्तमे च भवेत्कम्प, उन्मादश्चाष्टमे तथा ॥ २ ॥
नवमे प्राणसन्देहो, दशमे जीवितं त्यजेत् ।
कामिनां मदनोद्वेगा, जायन्ते दश ते क्रमी " ॥ ३ ॥ इति ॥

अत एवोक्तं 'माराये'-ति। किञ्च-मृत्वा नरकाय=दशविधक्षेत्रयातनास्थानाय, तथा च-'नरकतिरश्चे' अत्र 'नरक' इति लुप्तपञ्चमी, तेन नरकान्निर्गत्य यदि स जन्म लभते तर्हि प्रायस्तिर्यग्योनिष्वेवेत्यर्थः ।

अन्तिम दशा में पहुंचानेवाली हैं। काम की दश अवस्थाएँ बतलाई हैं, उनमें मरण ये काम की अन्तिम अवस्था है। कहा भी है—

" प्रथमे जायते चिन्ता द्वितीये द्रष्टुमिच्छति ।
तृतीये दीर्घनिःश्वासश्चतुर्थे ज्वरमादिशेत् ॥ १ ॥
पञ्चमे दह्यते गात्रं, षष्ठे भक्तं न रोचते ।
सप्तमे च भवेत्कम्पः, उन्मादश्चाष्टमे तथा ॥ २ ॥
नवमे प्राणसन्देहो, दशमे जीवितं त्यजेत् ।
कामिनां मदनोद्वेगा जायन्ते दश ते क्रमी" ॥ ३ ॥

अर्थ स्पष्ट है। स्त्रियों के संगम से जीव अनेक असाध्य रोगोंका घर बन कर आर्त रौद्र ध्यान की वजह से मर कर नरक में जा पड़ता है। वहां पर दश प्रकार की क्षेत्रीय यातना को भोगना है। नरक इन यातनाओं के

કામની દશ અવસ્થાઓ બતાવેલ છે. તેમાં મરણ એ કામની અન્તિમ અવસ્થા છે. કહ્યુ પણ છે—

" प्रथमे जायते चिन्ता द्वितीये द्रष्टुमिच्छति ।
तृतीये दीर्घनिःश्वासश्चतुर्थे ज्वरमादिशेत् ॥ १ ॥
पञ्चमे दह्यते गात्रं, षष्ठे भक्तं न रोचते ।
सप्तमे च भवेत्कम्प, उन्मादश्चाष्टमे तथा ॥ २ ॥
नवमे प्राणसन्देहो, दशमे जीवितं त्यजेत् ।
कामिनां मदनोद्वेगा, जायन्ते दश ते क्रमी " ॥ ३ ॥

અર્થ સ્પષ્ટ છે સ્ત્રિયોના સંગમ જીવોને નરકનું દુઃખ આપે છે, અને અંતમાં તેનાથી જીવ અનેક અસાધ્ય રોગોનુ ઘર બનીને આર્તરૌદ્ર ધ્યાનથી મરીને નરકમાં જાય છે. તે ઠેકાણે દશ પ્રકારની ક્ષેત્રીય યાતનાઓ ભોગવે છે. નરક આ યાતનાઓના

एवम्भूतः स्वात्महितं न जानातीत्याह–'सतत'–मित्यादि। सततं=नित्यं, मूढः=दर्शनमोहचारित्रमोहकर्मणा युक्तः धर्मं=जिनोक्तं श्रुतचारित्रलक्षणं न जानाति। एतत्सर्वं न मया स्वमत्या प्रोक्तं किन्तु–'उदाहे'–ति, वीरः=परिज्ञातसकलहेयोपादेयस्तीर्थङ्करादिः, उत्=प्राबल्येन आह=कथितवान्। अत्रार्षत्वाद् भूते लट्। किमित्याह–'अप्रमाद' इति, महामोहे=स्त्रीपुंनपुंसकवेदरूपे अप्रमादः=प्रमाद आसक्तिः

प्रधान स्थान हैं। वहां से निकल कर जीव प्रायः तिर्यंच योनि में ही जन्म धारण करता है। "नरक–तिरिक्खाए" अर्थात् नरक से निकल कर जीव जब जन्म धारण करता है तो वह प्रायः तिर्यंच योनि में ही उत्पन्न होता है, यह अर्थ इस पद से प्रतीत होता है।

जिनकी आत्मा नित्य चारित्रमोहनीय के उदय से मलिन बनी है वे जिनेन्द्र भगवान् द्वारा प्रतिपादित इस श्रुतचारित्र रूप धर्म को नहीं जानते हैं। इस प्रकार का कथन श्री अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामीका है, जिन्होंने जगत के समस्त हेयोपादेय तत्त्वों को अच्छी तरह जान लिया है। इस कथन में सूत्रकार महावीर स्वामी की प्ररूपणा प्रकट करने से तथा अपनी कल्पना का निषेध करने से उसमें प्रमाणता प्रकट करते हुए कहते हैं–"एतत्सर्वं न मया स्वमत्या प्रोक्तं किन्तु उदाह वीरः"। यह समस्त पूर्वोक्त कथन तथा जो कुछ आगे कहा जाता है वह सब मैंने नहीं किया है, किन्तु वीर भगवान्ने कहा है। भगवान् का उपदेश है कि जीवों को "अप्पमाओ महामोहे" स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसक वेद

પ્રધાન સ્થાન છે. ત્યાંથી નીકળીને જીવ પ્રાયઃ તિર્યંચ યોનિમા જ જન્મ ધારણ કરે છે. "नरकतिरक्खाए" નરકમાંથી નીકળી જીવ જ્યારે જન્મ ધારણ કરે છે ત્યારે તે તિર્યંચ યોનિયોમાં જ ઉત્પન્ન થાય છે. એ પૂર્વોક્ત અર્થ આ પદથી પ્રતીત થાય છે.

જેનો આત્મા કાયમ ચારિત્ર મોહનીયના ઉદયથી મલિન બનેલ છે તે જીનેન્દ્ર ભગવાન દ્વારા પ્રતિપાદિત આ શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મને જાણતો નથી. આ પ્રકારનું કથન શ્રી અંતિમ તીર્થંકર મહાવીર સ્વામીનું છે જેણે જગતના સમસ્ત હેયોપાદેય તત્વોને સારી રીતે જાણી લીધા છે. આ કથનમા સૂત્રકાર મહાવીર સ્વામીની પ્રરૂપણા પ્રગટ કરવાથી, તથા પોતાની કલ્પનાનો નિષેધ કરવાથી તેમાં પ્રમાણતા પ્રગટ કરતા કહે છે. "एतत्सर्वं न मया स्वमत्या प्रोक्तं किन्तु उदाहवीरः" આ સમસ્ત પૂર્વોક્ત કથન અને જે આગળ કહેવામાં આવશે તે બધા મે કરેલ નથી પણ વીર ભગવાને કરેલ છે. ભગવાનનો ઉપદેશ છે કે જીવોને "अप्पमाओ महामोहे" स्त्रीवेद, पुरुषवेद

न प्रमादोऽप्रमादः, स विधेयः, न तत्र प्रमादप्रमत्तेन भाव्यम्। अन्यदप्याह-'अल'-मित्यादि, 'कुशलस्य' कुशान्=भावकुशान् अष्टविधकर्माणि लुनाति=छिनत्तीति कुशलः=कर्मविदारणपरस्तस्य प्रमादेन=मद्य-विषय-कषाय-निद्रा-विकथारूपेण अलं=व्यर्थं, तत्र कुशले प्रमादस्यासम्भवात्। किं कृत्वा प्रमादं न करोतीत्याह-'शान्ती'-त्यादि, शान्तिमरणं, शमनं शान्तिः=सकलकर्मनाशः, अत एव शान्तिः=

रूप महामोह में आसक्ति नहीं करनी चाहिये। प्रमाद से संसार और अप्रमाद से मुक्ति का लाभ होता है। सूत्र में शान्ति और मरण इन शब्दों का वाच्य अर्थ क्रमशः अव्याबाधसुखलक्षण मोक्ष और चतुर्गतिरूप संसार है, क्यों कि "शमनं शान्तिः" शमन का नाम शांति है, वह समस्त कर्मों का अभावस्वरूप अवस्था है। इसका दूसरा नाम अव्याबाधसुखलक्षण मोक्ष भी है। वारंवार चतुर्गतियों में प्राणी जहां पर मरते रहते हैं उस का नाम मरण-संसार है। भावकुशरूप अष्टविध कर्मोंका जो छेदन करता है वह कुशल है, क्यों कि-"कुशान् लुनातीति कुशलः"। अष्ट प्रकार के कर्मों को विदारण करनेवाले का नाम कुशल है। "अलं कुशलस्य प्रमादेन" अर्थात् कुशल के लिये प्रमाद होता ही नहीं है। मद्य विषय कषाय निद्रा और विकथा के भेदसे प्रमाद पांच प्रकारका होता है। जो कर्मों को नाश करने में प्रयत्नशाली हो रहे हैं, वे कभी प्रमत्तदशासंपन्न नहीं होते हैं। कारण कि वे जानते हैं कि-प्रमाद से संसार में परिभ्रमण तथा अप्रमाद से शांति-अव्याबाधसुख-

અને નપુસકવેદ રૂપ મહામોહમા આસક્તિ કરવી જોઈએ નહિ પ્રમાદથી સંસાર અને અપ્રમાદથી મુક્તિનો લાભ થાય છે. સૂત્રમાં શાતિ અને મરણ આ શબ્દોનો વાચ્ય અર્થ ક્રમશઃ અવ્યાબાધસુખલક્ષણ મોક્ષ અને ચતુર્ગતિરૂપ સંસાર છે કારણ કે "शमनं शान्ति" શમનનુ નામ શાતિ છે તે સમસ્ત કર્મોની અભાવ સ્વરૂપ અવસ્થા છે. તેનુ બીજુ નામ અવ્યાબાધસુખલક્ષણ મોક્ષ પણ છે. વારંવાર ચતુર્ગતિમાં પ્રાણી જ્યા મરતા રહે છે તેનું નામ મરણ-સંસાર છે. ભાવકુશ રૂપ અષ્ટવિધ કર્મોનું જે છેદન કરે છે. તે કુશલ છે કારણ કે "कुशान् लुनातीति कुशल" આઠ પ્રકારના કર્મોનું વિદારણ કરવાવાળાનું નામ કુશળ છે "अलं कुशलस्य प्रमादेन" અર્થાત્ કુશળને માટે પ્રમાદ થતો જ નથી. મદ્યવિષય કષાય નિદ્રા અને વિકથાના ભેદથી પ્રમાદ પાંચ પ્રકારનો હોય છે, જે કર્મોનો નાશ કરવામાં પ્રયત્નશાળી હોય છે તે કોઈ વખત પ્રમત્તદશાસંપન્ન બનતાં નથી. કારણ કે તેઓ જાણે છે કે-પ્રમાદથી સંસારમાં પરિભ્રમણ અને અપ્રમાદથી શાંતિ

अव्याबाधसुखलक्षणो मोक्षः, 'मरणं' म्रियन्ते मुहुर्मुहुश्चतुर्गतिषु प्राणिनो यत्रेति तन्मरणं=संसारः, शान्तिश्च मरणं च शान्तिमरणं, तत् संप्रेक्ष्य='अप्रमादेन संसारोपरमः, प्रमादेन संसारपरिभ्रमणं भवतीति सम्यगालोच्य। अपि च-'भिदुरधर्म'-मिति, प्रमादो विषयाभिष्वङ्गः, स च शरीरे भवति ततो भिदुरो=भङ्गशीलो धर्मः=स्वभावो यस्य तद् भिदुरधर्म शरीरं, स्वत एव विनशनशीलत्वात्, सम्प्रेक्ष्य=विचार्य्य

स्वरूप मुक्ति का लाभ होता है। इस लिये इस अव्याबाध-सुख-स्वरूप शांति के लाभ से जो वंचित करानेवाला है उस प्रमाद से लाभ ही क्या हो सकता है, ऐसा विचार कर संयमी को प्रमाद कभी नहीं करना चाहिये। "भिदुरधर्मं संप्रेक्ष्य नालं पश्यालं ते एतैः" भंग होना जिसका स्वभाव हो उसका नाम भिदुरधर्म है, ऐसा यह शरीर है; क्यों कि यह स्वतः ही विनाशशील है। संयमी मुनिको इस बात का दृढ़ विश्वास करना चाहिये कि यह मेरा शरीर अवश्य ही विनश्वर है, क्यों कि यह पौद्गलिक पर्याय है, जो पर्याय होती है वह उत्पाद-व्यय-धर्म-विशिष्ट होती है। पुद्गल का स्वभाव ही पूरन-गलन-स्वरूप है। अतः इस विनश्वर वस्तु के मोह में फंस कर जो संयमी अपने संयमरूपी धन को प्रमाद-रूपी चोरों के जरिये लुटवा देते हैं वे महाप्रमादी हैं। संयम की आराधना करते हुए यदि इस शरीर का पतन होगा, तो उस दशा में कभी न कभी अवश्य अव्याबाध-सुख-रूप मोक्ष की प्राप्ति होगी; अन्यथा-इस संसार

અવ્યાબાધસુખસ્વરૂપ મુક્તિનો લાભ થાય છે માટે આ અવ્યાબાધસુખસ્વરૂપ શાંતિના લાભથી જે દૂર રખાવે છે તે પ્રમાદથી લાભ પણ કંઇ થતો નથી. એવો વિચાર કરી સંયમીએ પ્રમાદ કદી પણ કરવો જોઇએ નહિ. "भिदुरधर्मं संप्रेक्ष्य नालं पश्याल ते एतै." ભંગ થવું જેનો સ્વાભાવ છે તેનું નામ ભિદુરધર્મ છે, એવું આ શરીર છે, કારણ કે તે સ્વત: વિનાશશીલ છે. સંયમી મુનિએ આ વાતનો દૃઢ વિશ્વાસ કરવો જોઇએ કે આ મારૂં શરીર અવશ્ય જ વિનશ્વર છે. કારણ કે આ પૌદ્‌ગલિક પર્યાય છે, જે પર્યાય હોય છે તે ઉત્પાદ વ્યય ધર્મ વિશિષ્ટ હોય છે. પુદ્‌ગલનો સ્વભાવ જ પૂરન-ગલન સ્વરૂપ છે, માટે આ વિનશ્વર વસ્તુના મોહમાં ફસીને જે સંયમી પોતાના સંયમરૂપી ધનને પ્રમાદરૂપી ચોરો મારફત લુંટાવી દે છે તે મહાપ્રમાદી છે. સંયમની આરાધના કરતા કરતાં કદાચ આ શરીરનું પતન થશે તો તેવી દશામાં કોઈ ને કોઈ વખત અવશ્ય અવ્યાબાધ સુખરૂપ મોક્ષની પ્રાપ્તિ થશે. અન્યથા આ સંસારમાં પરિભ્રમણ કરતાં અનન્ત

प्रमादो न विधेय इति सम्बन्धः। भोगास्तु भुक्तपूर्वा अपि न तृप्तिजनकाः, इत्याह-'नाल'-मिति भोगाः परिभुक्ता अपि स्पृहानिवृत्तये नालं=न समर्था भवन्ति। उक्तञ्च—

" नग्गी तिप्पइ कट्ठेहिं, नावगाहिं महोदही।
न जमो सव्वभूएहिं, इत्थीहिं पुरिसो तहा " ॥ १ ॥

में परिभ्रमण करते हुए अनन्त कष्टों को भोगना पडेगा। शरीर का नाश अवश्यंभावी है, तो मैं संयम की विराधना करके इसे अविनश्वर अमर तो कर नहीं सकता! अतः इस विनश्वर वस्तु से जो मुझे परंपरा रूप से अविनश्वर वस्तुकी प्राप्ति हो जाती है तो यह सब से बड़ा भारी लाभ मुझे मिलता है; फिर क्यों प्रमादी बन कर इस शरीर के मोह में पड़ अपने संयम की विराधना करूँ ?। दोनों हालत में शरीर का नाश स्वयं सिद्ध है; फिर भी एक हालत अनंत आनंदप्रद और दूसरी हालत अनंत कष्टप्रद है, ऐसा विचार कर संयमी को कभी भी प्रमाद नहीं करना चाहिये। इसी लिये सूत्रकार ने " भिदुरधर्मं संप्रेक्ष्य " इस वाक्य के द्वारा संयमी जनको शिक्षा दी है। तथा आगे भी शिक्षा देते हुए वे प्रकट कर रहे हैं कि जिन पंचेन्द्रियों के भोग तुमने पहिले भोग लिये हैं वे भी तुम्हारी इच्छा की शांति करने के लिये समर्थशाली नहीं हैं, कहा भी है-

" नग्गी तिप्पइ कट्ठेहिं, नावगाहिं महोदही।
न जमो सव्वभूएहिं, इत्थीहिं पुरिसो तहा " ॥ १ ॥

કષ્ટોને ભોગવવા પડશે, શરીરનો નાશ અવશ્યંભાવી છે, તો હું સંયમની વિરાધના કરીને તેને અવિનશ્વર અમર તો કરી શકતો નથી, માટે આ વિનશ્વર વસ્તુથી જે મને પરંપરારૂપથી અવિનશ્વર વસ્તુની પ્રાપ્તિ થાય છે તો આ બધાથી મોટો લાભ મને મળે છે તો પછી શા માટે પ્રમાદી બનીને આ શરીરના મોહમા પડી પોતાના સંયમની વિરાધના કરૂં, બન્ને હાલતમા શરીરનો નાશ સ્વયં સિદ્ધ છે તો પણ એક હાલત અનંત આનંદપ્રદ અને બીજી હાલત અનંત કષ્ટપ્રદ છે. એવો વિચાર કરી સંયમીએ કોઇ વખત પણ પ્રમાદ નહિ કરવો જોઈએ, માટે સૂત્રકારે " भिदुरधर्मं संप्रेक्ष्य " આ વાકયદ્વારા સંયમી જનને શિક્ષા આપી છે. તથા આગળ પણ શિક્ષા આપતાં તે પ્રગટ કરે છે કે-જે પાંચ ઇન્દ્રિયોના ભોગ તમે પહેલા ભોગવી લીધા છે તે પણ તમારી ઇચ્છાની શાંતિ કરવા માટે સમર્થશાળી નથી, કહ્યુ પણ છે—

" नग्गी तिप्पइ कट्ठेहिं, नावगाहिं महोदही।
न जमो सव्वभूएहिं, इत्थीहिं पुरिसो तहा " ॥ १ ॥

छाया—नाग्निस्तृप्यति काष्ठै =र्नापगाभिर्महोदधिः ।
न यमः सर्वभूतैश्च, स्त्रीभिः पुरुषस्तथा ॥ १ ॥ इति

तत्सर्वं पश्य=बुध्यस्व, दृशेर्ज्ञानसामान्यार्थकत्वात्, अतो हे मेधाविन्! ते=तव सदुपदेशजिघृक्षोः एभिः=प्रमादमयैर्दुःखजनकैर्विषयोपभोगैः अलं=व्यर्थम्, एभिरात्मकल्याणं साध्यं नास्तीत्यर्थः ।

यद्वा-एतैर्विषयोपभोगैरव्याबाधसुखम्, अलम्=पर्याप्तं विशिष्टतरमित्यर्थः, अतर्कितोपनतमरणे संसारे सुखलवस्याऽसम्भवादव्याबाधसुखमेव सुखमिति तात्पर्यम् ॥ सू० ३ ॥

जिस प्रकार अग्नि काष्ठों से, समुद्र नदियों से, काल प्राणियों की मृत्यु से तृप्त नहीं होता है, उसी प्रकार मनुष्य भी स्त्रीसंभोग से कभी भी तृप्त नहीं होता है ॥ इसलिये हे मेधावी शिष्य! तुम भी यह अपने मन में दृढ धारणा कर लो कि प्रमाद–भय–दुःखजनक इन विषयभोगों से कभी भी आत्मकल्याण साध्य नहीं हो सकता, अतः इन की चाह की दाह में क्यों अपने संयमरूपी पवित्र धर्म की आहुति करने के लिये संकल्प विकल्प करते हो। यह तुमसे इसलिये कहा जाता है कि तुम सदुपदेश को ग्रहण करने की इच्छा रखते हो।

अथवा—यह समझो कि इस वैषयिक सुख की अपेक्षा अव्याबाध-सुख विशिष्टतर है। कारण कि संसारदशा भयवाली है, इसमें निर्भय अवस्था तो हो ही नहीं सकती। यदि थोड़ी देर के लिये यह असंभव भी संभवित कल्पित कर लिया जाय कि-"यहां प्राणी भयरहित है" तो भी

જે પ્રકારે અગ્નિ કાષ્ઠોથી, સમુદ્ર નદિઓથી, કાળ પ્રાણિઓની મૃત્યુથી તૃપ્ત થતો નથી, તે પ્રકારે મનુષ્ય પણ સ્ત્રી સંભોગથી કોઈ વખત પણ તૃપ્ત થતો નથી. માટે હે મેધાવી શિષ્ય! તમો પણ એ, પોતાના મનમાં દ્રઢ કરી લ્યો કે પ્રમાદ-ભય-દુઃખજનક આ વિષયભોગોથી કોઈ વખત પણ આત્મ-કલ્યાણ સાધ્ય થઈ શકતું નથી, માટે તેની ચાહનાની દાહમાં શા માટે પોતાના સંયમરૂપી પવિત્ર ધર્મની આહુતિ કરવા સંકલ્પ વિકલ્પ કરો છો. આ તમને એટલા માટે કહેવામા આવે છે કે તમે સદુપદેશને ગ્રહણ કરવાની ઈચ્છા રાખનાર છો.

અથવા એ સમજો કે આ વૈષયિક સુખની અપેક્ષા અવ્યાબાધ સુખ વિશિ-ષ્ટતર છે, કારણ કે સંસારદશા ભયવાળી છે. તેમા નિર્ભય અવસ્થા તો થઈજ શકતી નથી. કદાચ થોડા વખત માટે આ અસંભવ પણ સંભવિત માની લઈએ કે "આંહી પ્રાણી ભયરહિત છે" તો પણ ઠીક નહિ, કારણ કે—એ

प्रमादो न विधेय इति सम्बन्धः। भोगास्तु भुक्तपूर्वा अपि न तृप्तिजनकाः, इत्याह-'नाल'-मिति भोगाः परिभुक्ता अपि स्पृहानिवृत्तये नालं=न समर्था भवन्ति। उक्तञ्च—

" नग्गी तिप्पइ कट्ठेहिं, नावगाहिं महोदही।
न जमो सव्वभूएहिं, इत्थीहिं पुरिसो तहा " ॥ १ ॥

में परिभ्रमण करते हुए अनन्त कष्टों को भोगना पडेगा। शरीर का नाश अवश्यंभावी है, तो मैं संयम की विराधना करके इसे अविनश्वर अमर तो कर नहीं सकता! अतः इस विनश्वर वस्तु से जो मुझे परंपरा रूप से अविनश्वर वस्तुकी प्राप्ति हो जाती है तो यह सब से बड़ा भारी लाभ मुझे मिलता है; फिर क्यों प्रमादी बन कर इस शरीर के मोह में पड़ अपने संयम की विराधना करूँ ?। दोनों हालत में शरीर का नाश स्वयं सिद्ध है; फिर भी एक हालत अनंत आनंदप्रद और दूसरी हालत अनंत कष्टप्रद है, ऐसा विचार कर संयमी को कभी भी प्रमाद नहीं करना चाहिये। इसी लिये सूत्रकार ने " भिदुरधर्मं संप्रेक्ष्य " इस वाक्य के द्वारा संयमी जनको शिक्षा दी है। तथा आगे भी शिक्षा देते हुए वे प्रकट कर रहे हैं कि जिन पंचेन्द्रियों के भोग तुमने पहिले भोग लिये हैं वे भी तुम्हारी इच्छा की शांति करने के लिये समर्थशाली नहीं हैं, कहा भी है-

" नग्गी तिप्पइ कट्ठेहिं, नावगाहिं महोदही।
न जमो सव्वभूएहिं, इत्थीहिं पुरिसो तहा " ॥ १ ॥

કષ્ટોને ભોગવવા પડશે, શરીરનો નાશ અવશ્યભાવી છે, તો હું સંયમની વિરાધના કરીને તેને અવિનશ્વર અમર તો કરી શકતો નથી, માટે આ વિનશ્વર વસ્તુથી જે મને પરંપરારૂપથી અવિનશ્વર વસ્તુની પ્રાપ્તિ થાય છે તો આ બધાથી મોટો લાભ મને મળે છે તો પછી શા માટે પ્રમાદી બનીને આ શરીરના મોહમાં પડી પોતાના સંયમની વિરાધના કરૂં, બન્ને હાલતમાં શરીરનો નાશ સ્વયં સિદ્ધ છે તો પણ એક હાલત અનંત આનંદપ્રદ અને બીજી હાલત અનંત કષ્ટપ્રદ છે. એવો વિચાર કરી સંયમીએ કોઈ વખત પણ પ્રમાદ નહિ કરવો જોઈએ, માટે સૂત્રકારે " भिदुरधर्मं संप्रेक्ष्य " આ વાક્યદ્વારા સંયમી જનને શિક્ષા આપી છે. તથા આગળ પણ શિક્ષા આપતાં તે પ્રગટ કરે છે કે-જે પાંચ ઇંદ્રિયોના ભોગ તમે પહેલા ભોગવી લીધા છે તે પણ તમારી ઈચ્છાની શાંતિ કરવા માટે સમર્થશાળી નથી. કહ્યું પણ છે—

' नग्गी तिप्पइ कट्ठेहिं, नावगाहिं महोदही।
न जमो सव्वभूएहिं, इत्थीहिं पुरिसो तहा " ॥ १ ॥

छाया—नाग्निस्तृप्यति काष्ठै=र्नापगाभिर्महोदधिः ।

न यमः सर्वभूतैश्च, स्त्रीभिः पुरुषस्तथा ॥ १ ॥ इति

तत्सर्वं पश्य=बुध्यस्व, दृशेर्ज्ञानसामान्यार्थकत्वात्, अतो हे मेधाविन्! ते= तव सदुपदेशजिघृक्षोः एभिः=प्रमादमयैर्दुःखजनकैर्विषयोपभोगैः अलं=व्यर्थम्, एभिरात्मकल्याणं साध्यं नास्तीत्यर्थः ।

यद्वा-एतैर्विषयोपभोगैरव्याबाधसुखम्, अलम्=पर्याप्तं विशिष्टतरमित्यर्थः, अतर्कितोपनतमरणे संसारे सुखलवस्याऽसम्भवादव्याबाधसुखमेव सुखमिति तात्पर्यम् ॥ सू० ३ ॥

जिस प्रकार अग्नि काष्ठों से, समुद्र नदियों से, काल प्राणियों की मृत्यु से तृप्त नहीं होता है, उसी प्रकार मनुष्य भी स्त्रीसंभोग से कभी भी तृप्त नहीं होता है ॥ इसलिये हे मेधावी शिष्य! तुम भी यह अपने मन में दृढ़ धारणा कर लो कि प्रमाद–भय–दुःखजनक इन विषयभोगों से कभी भी आत्मकल्याण साध्य नहीं हो सकता, अतः इनकी चाह की दाह में क्यों अपने संयमरूपी पवित्र धर्म की आहुति करने के लिये संकल्प विकल्प करते हो। यह तुमसे इसलिये कहा जाता है कि तुम सदुपदेश को ग्रहण करने की इच्छा रखते हो।

अथवा—यह समझो कि इस वैषयिक सुख की अपेक्षा अव्याबाध-सुख विशिष्टतर है। कारण कि संसारदशा भयवाली है, इसमें निर्भय अवस्था तो हो ही नहीं सकती। यदि थोड़ी देर के लिये यह असंभव भी संभवित कल्पित कर लिया जाय कि-"यहां प्राणी भयरहित है" तो भी

જે પ્રકારે અગ્નિ કાષ્ઠોથી, સમુદ્ર નદિઓથી, કાળ પ્રાણિઓની મૃત્યુથી તૃપ્ત થતો નથી, તે પ્રકારે મનુષ્ય પણ સ્ત્રી સંભોગથી કોઈ વખત પણ તૃપ્ત થતો નથી. માટે હે મેધાવી શિષ્ય! તમો પણ એ, પોતાના મનમાં દ્રઢ કરી લ્યો કે પ્રમાદ-ભય-દુ:ખજનક આ વિષયભોગોથી કોઈ વખત પણ આત્મ-કલ્યાણ સાધ્ય થઈ શકતું નથી, માટે તેની ચાહનાની દાહમા શા માટે પોતાના સંયમરૂપી પવિત્ર ધર્મની આહુતિ કરવા સંકલ્પ વિકલ્પ કરો છો આ તમને એટલા માટે કહેવામા આવે છે કે તમે સદુપદેશને ગ્રહણ કરવાની ઈચ્છા રાખનાર છો.

અથવા એ સમજો કે આ વૈષયિક સુખની અપેક્ષા અવ્યાબાધ સુખ વિશિ-ષ્ટતર છે. કારણ કે સંસારદશા ભયવાળી છે તેમા નિર્ભય અવસ્થા તો થઈ જ શકતી નથી. કદાચ થોડા વખત માટે આ અસંભવ પણ સંભવિત માની લઈએ કે "આંહી પ્રાણી ભયરહિત છે" તો પણ ઠીક નહિ, કારણ કે—એ

भोगामिषगृद्धानां भोगस्याधिगमेऽनधिगमेऽपि महादुःखमेवेत्युपदिशति-'एयं पस्स' इत्यादि।

मूलम्—एयं पस्स मुणी, महब्भयं नाइवाइज्ज कंचणं, एस वीरे पसंसिए, जे न निव्विज्जइ आयाणाए न मे देइ न कुप्पिज्जा, थोवं लद्धुं न खिंसए, पडिसेहिओ परिणमिज्जा, एयं मोणं समणुवासिज्जासि-त्तिबेमि ॥ सू० ४ ॥

छाया—एतत्पश्य मुने! महद्भयं नातिपातयेत् कञ्चन एष वीरः प्रशंसितः यो न निर्विद्येत आदानाय न मे ददाति न कुप्येत्, स्तोकं लब्ध्वा न निन्देत्, प्रतिषिद्धः परिणमेत्, एतन्मौनं समनुवासयेः, ॥ इति ब्रवीति ॥ सू० ४ ॥

टीका—'एत'-दित्यादि। हे मुने!=हे अनगार! एतत्=कामभोगासेवनं, महद्भयं=भयजनकतया महादुःखरूपम्, मरणकारणत्वेन दुःखे महत्त्वम्, पश्य=सर्वथा दुःखजनकं जानीहि। उक्तञ्च—

ठीक नहीं; कारण कि-न मालूम कालका ग्रास हो कब जाना पडे। मृत्यु का जबर्दस्त भय प्रमादी प्रत्येक प्राणी को लगा ही रहता है। काल बाजे बजाता तो आता नहीं है कि जिससे उससे सचेत हो जाय। यह तो बिना विचार करनेवाले प्रत्येक जीवात्मा को अपने पंजे में फँसा लेता है। अतः संसारदशा भयवाली है और यहां पर निर्भयदशा रूप सुख का अंश मात्र भी प्राप्त होना सर्वथा असंभव है; अतः अव्याबाध सुख ही वास्तविक सुख है। इसकी प्राप्ति संयमाराधन से ही जीवों को होती है। ऐसा विचार कर संयमी मुनि को संयमभाव में कभी भी प्रमत्तदशायुक्त नहीं होना चाहिये ॥ सू० ३ ॥

ખબર નથી કે કાળનો ગ્રાસ બની ક્યારે જાવું પડે. આ પ્રકારે મૃત્યુનો ભય પ્રમાદી પ્રત્યેક પ્રાણીને લાગેલો જ રહે છે કાળ વાજુ વગાડતો તો આવતો જ નથી કે જેનાથી પ્રાણી ચેતી જાય, એ તો વિચાર નહિ કરવાવાળા પ્રત્યેક જીવાત્માને પોતાના પંજામા ફસાવે છે. માટે સંસારદશા ભયવાળી છે, અને આ ઠેકાણે નિર્ભયદશારૂપ સુખનો અંશમાત્ર પણ પ્રાપ્ત થવો સર્વથા અસંભવ છે માટે અવ્યાબાધસુખ જ વાસ્તવિક સુખ છે. તેની પ્રાપ્તિ સંયમારાધનથીજ જીવોને થાય છે એવો વિચાર કરી સંયમી મુનીએ સંયમભાવમાં કોઇ વખત પણ પ્રમત્તદશાયુક્ત થવું જોઇએ નહિ. ॥ સૂ૦ ૩ ॥

" एत्तो व उण्हतरिया, अण्णा का वेयणा गणिज्जंति ।
जं कामवाहिगहिओ, डज्झइ किर चंदकिरणेहिं " ॥ १ ॥ इति ।

छाया—एतस्मादुष्णतरा अन्याः का वेदना गण्यन्ते ।
यत्कामव्याधिगृहीतो, दह्यते किल चन्द्रकिरणैः ॥ १ ॥

भोग रूपी मांस में गृद्ध बने प्राणियों को भोगों की प्राप्ति होने पर अथवा नहीं होने पर बड़ा भारी दुःख ही होता है। इस बात का सूत्रकार उपदेश देते हुए कहते हैं—" एयं पस्स मुणी " इत्यादि ।

हे मुने ! कामभोग-विषयसेवन को तुम बहुत भारी भय-स्वरूप-अर्थात् मरणरूप भय का कारण होने से महादुःखरूप ही मानो। भावार्थ-कामभोग का सेवन सदा भय एवं दुःखदायी माना गया है। विषयसेवन से जीवों को अनेक दुःख होने का सदा भय बना रहता है। तथा अनेक प्रकार के दुःख उन्हें भोगने भी पड़ते हैं। महाकष्टों को भोगते२ जीव जब अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं, तब वे आत्मघात तक कर लिया करते हैं। इसलिये विषयसेवन सदा महादुःखदायी ही है, ऐसा समझ कर कभी भी अनगार को उस तरफ लालसापरिणति नहीं करनी चाहिये। कहा भी है—

" एत्तो व उण्हतरिया, अण्णा का वेयणा गणिज्जंति ।
जं कामवाहिगहिओ, डज्झइ किर चंदकिरणेहिं ॥ " इति ॥

ભોગરૂપી માંસમાં ગૃદ્ધ બનેલ પ્રાણિઓને ભોગોની પ્રાપ્તિ થવાથી અથવા નહિ મળવાથી ઘણું ભારી દુઃખ જ થાય છે આ વાતનો સૂત્રકાર ઉપદેશ આપી કહે છે—" एयं पस्स मुणी " ઇત્યાદિ.

હે મુનિ! કામભોગ-વિષયસેવનને તમે ઘણો ભયસ્વરૂપ અર્થાત્ મરણરૂપ ભયનું કારણ હોવાથી મહાદુઃખરૂપ જ માનો.

ભાવાર્થ—કામભોગનું સેવન સદા ભય અને દુઃખદાયી જ માનવામાં આવે છે. વિષયસેવનથી જીવોને અનેક દુઃખ થવાનો સદા ભય રહ્યા કરે છે, તથા અનેક પ્રકારના દુઃખ તેને ભોગવવા પણ પડે છે, મહાકષ્ટો ભોગવી ભોગવી જીવ જ્યારે અત્યંત દુઃખી થાય છે ત્યારે તે આત્મઘાત પણ કરે છે માટે વિષયસેવન સદા મહાદુઃખદાયી જ છે. એવું સમજીને કોઇ વખત પણ અણગારે તે તરફ લાલસાપરિણતિ નહિ રાખવી જોઇએ કહ્યુ છે—

" एत्तो व उण्हतरिया, अण्णा का वेयणा गणिज्जंति ।
जं कामवाहिगहिओ, डज्झइ किर चंदकिरणेहिं ॥ इति ॥

यद्वा यत्कामभोगासक्त आस्रवद्वारैर्हिंसादिषु प्रवर्तते तस्येह परत्र च महद्भयं भवतीति पश्य। इह लोके पुरुषवधकाऽलीकवादिचोरपारदारिकाणां मारदण्डन-जिह्वाच्छेदनबन्धघातादिकं च पश्य, परलोके नरकादिप्रपपातं पश्येति तात्पर्यम्। एवं तर्हि किं विधेयम्? इत्याह–'नातिपातये'–दित्यादि। मुनिः कञ्चन=कमपि प्राणिनं नातिपातयेत्=न प्राणैर्व्यपरोपयेत्; उपलक्षणं मृषावादाद्यास्रवाणामेतत्।

कामभोग से अधिक संसार में और कोई वेदना उष्णतर नहीं है, क्यों कि इस व्याधि का रोगी शीतलचंद्रकिरणों से भी अत्यंत संतप्त हो जाता है।

अथवा—कामभोगसेवन इस जीव को इस लोक में और परलोक में महाभयकारी होता है। क्यों कि कामभोग में आसक्त प्राणी हिंसादिक पापों में प्रवृत्ति करता रहता है। हिंसादिकों में प्रवृत्ति होने से जीव अशुभ कर्मों को बांधता है, और इसके फल को वह नरकादि योनियों में भोगता है। जो प्राणी हिंसक, झूठा, चौर और परदारलंपट होते हैं उन्हें इसी लोक में फांसी, राजदण्ड, जिह्वाछेदन, बंध और घातादिक अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं, तथा परलोक में नरकादि गतियों में उनको जन्म धारण करना पड़ता है। ऐसा समझ कर हे मुने! तुम इस ओर अपनी मानसिक परिणति को लालसावाली मत करो, किन्तु सदा इस प्रकार की प्रवृत्ति करो कि जिससे किसी भी जीव की विराधना न हो। सूत्र में "नातिपातयेत्" यह पद झूठ, चोरी आदि आस्रवों का उपलक्षक है,

કામભોગથી અધિક આ સંસારમાં બીજી કોઈ વેદના ઉષ્ણતર નથી, કારણકે, આ વ્યાધિના રોગી શીતલ ચંદ્રકિરણોથી પણ અત્યંત સંતપ્ત થાય છે.

અથવા કામભોગસેવન આ જીવને આલોકમાં અને પરલોકમાં મહા ભય કારી થાય છે. કારણ કે કામભોગમાં આસક્ત પ્રાણી હિંસાદિક પાપોમાં પ્રવૃત્તિ કરતા રહે છે હિંસાદિકોમાં પ્રવૃત્તિ હોવાથી જીવ અશુભ કર્મો બાંધે છે, અને તેના ફળને તે નરકાદિ યોનિઓમાં ભોગવે છે જે પ્રાણી, હિંસક, જુઠો, ચોર અને પરસ્ત્રીલંપટ હોય છે તેને આ લોકમા ફાંસી, રાજદંડ, જીભછેદન, બંધ અને ઘાતાદિક અનેક કષ્ટો ભોગવવા પડે છે, તથા પરલોકમાં નરકાદિ ગતિયોમાં તેને જન્મ ધારણ કરવો પડે છે. એવું સમજીને હે મુનિ! તમે આ તરફ પોતાની માનસિક પરિણતિને લાલસાવાળી બનાવો નહિ, પણ સદા એવી પ્રવૃત્તિ કરો કે જેનાથી કોઈ પણ જીવની વિરાધના ન થાય. સૂત્રમાં "नातिपातयेत्" આ પદ જુઠ, ચોરી આદિ આશ્રવોનું ઉપલક્ષક છે, અર્થાત્ સંયમી જીવોને પોતાની પ્રવૃત્તિ

परित्यक्तभोगाभिलापस्य पट्कायपरिपालकस्य गुणाधिगमो भवतीत्याह–'एप' इत्यादि। एपः=कामभोगस्पृहाभिप्रायविवेचनचतुर एक एव प्रमादपञ्चकरहितः, वीरः=कर्मरिपोर्नाशनाद्वीर इव वीरः, प्रशंसितः=तीर्थङ्करगणधरादिभिरभिनन्दितः। वीरस्वभावमाह–'यो न '–त्यादि। यो वीरः, 'आदानाय' आदीयते=अधिगम्यते निखिलकर्मक्षयसञ्जातसर्वविपयज्ञानं येन तदादानं=चारित्रानुष्ठानं, तस्मै न निर्विद्येत=न खिद्येत–'अन्ये लभन्तेऽशनवसनादिकं वराकोऽहं न लभे किमेतया

अर्थात्–संयमी जीवों को अपनी प्रवृत्ति इस प्रकार की करनी चाहिये कि जिससे उन्हें हिंसा, झूठ, चोरी आदि आस्रवों का बंध नहीं हो। जो संयमी मुनि इस प्रकार की शुभप्रवृत्तिवाला तथा कामभोग की इच्छा से रहित होता है, तथा पांच प्रमाद के वशवर्ती नहीं होता है वह वीर है और प्रशंसा का पात्र है। ऐसे मुनि की प्रशंसा तीर्थंकर गणधरादि देव भी किया करते हैं। प्रशंसा पाने का कारण यह है कि वह सदा अपनी इस प्रकार की प्रवृत्ति से क्रमशः भविष्य में कर्मशत्रुओं पर विजय प्राप्त करनेवाला हो जावेगा। धन्य हैं वे जो चारित्र अंगीकार करके किसी भी निमित्त के उपस्थित होने पर उस चारित्र से विरक्तिभाव पैदा नहीं करते। यहां "आदान" शब्द का अर्थ चारित्र का अनुष्ठान है, क्यों कि इस से ही सकल कर्मों के क्षय से उद्भूत सर्वपदार्थविषयक बोध–केवलज्ञान जीवों को प्राप्त होता है। "अशनवसनादिक दूसरों को तो प्राप्त हो रहे हैं मैं ऐसा अभागा हूं जो मुझे कोई पूछता भी नहीं है, इस चारित्र

એવા પ્રકારની કરવી જોઈએ કે જેનાથી તેને હિંસા જુઠ ચોરી આદિ આશ્રવોનો બંધ ન થાય

જે સંયમી મુનિ આ પ્રકારની શુભ પ્રવૃત્તિવાળા તથા કામભોગની ઈચ્છાથી રહિત હોય છે. તથા પાંચ પ્રમાદને તાબે થતા નથી તે વીર છે અને પ્રશંસા-પાત્ર છે. એવા મુનિની પ્રશંસા તીર્થંકરગણધરાદિ દેવ પણ કરે છે. પ્રશંસા મળવાનું કારણ એ છે કે–તે સદા પોતાની આ પ્રકારની પ્રવૃત્તિથી ક્રમશઃ ભવિ-ષ્યમાં કર્મશત્રુઓ પર વિજય પ્રાપ્ત કરવાવાળા થઇ જશે ધન્ય છે તેઓને જે ચારિત્ર અંગીકાર કરીને પછી કોઈ પણ કારણ ઉપસ્થિત થવા છતા પણ તે ચારિ-ત્રથી વિરક્તિભાવ પેદા કરતા નથી આહીં "આદાન" શબ્દનો અર્થ ચારિત્રનું અનુષ્ઠાન છે, કારણ કે તેનાથી જ સકલ કર્મોના ક્ષયથી ઉદ્‌ભૂત સર્વપદાર્થ-વિષયક બોધ–કેવળજ્ઞાન જીવોને પ્રાપ્ત થાય છે "અશનવસનાદિક બીજાને તો પ્રાપ્ત થતાં જ રહે છે અભાગી હું છું જે મને કોઇ પૂછતું પણ નથી. આ ચારિત્રને

परिगृहीतया दुर्लभलाभया प्रव्रज्यया' इत्येवं 'ढंढणाऽनगारवन्न स्वयमवमन्येतेति तात्पर्यम्। "बहुं परघरे अत्थि, विविहं खाइमसाइमं, ण तत्थ पंडिओ कुप्पे, इच्छा दिज्ज परो ण वा" ॥ इत्यादि भगवद्वचनात्।

अपि च-लाभालाभसमभावः सन् स्तोकम्=अल्पं भैक्षं लब्ध्वा=प्राप्य दातारम् अन्नादिकञ्च न निन्देत्=न जुगुप्सेत, किन्त्वेवं चिन्तयेत्, ममैवान्तरायोदयप्राबल्यमेतत्। किञ्च-प्रतिषिद्धः=निषिद्धः सन् परिणमेत्=निवर्तेत किञ्चिदपि दौर्मनस्यं न कुर्यात्, तं गृहस्थं परुषवाग्भिर्न तिरस्कुर्यात्, तंतनाटादिशब्दं न कुर्यादित्यर्थः।

के कि जिसमें लाभ दुर्लभ है अंगीकार करने से मुझे लाभ ही क्या हुआ" इस प्रकार ढंढण अनगार की तरह स्वयं अपने ग्रहण किये हुए चारित्र की उपेक्षा न करे। यह भी स्वप्न में विचार न करे कि-"देखो तो सही, इन गृहस्थों के यहां अशन पान खाद्य स्वाद्य आदि विविध वस्तुएँ मौजूद हैं परन्तु ये कितने अविनयी, अश्रद्धालु एवं लोभी हैं जो इनमेंसे मुझे कुछ भी नहीं देते हैं"। चाहे कुछ मिले या न मिले, अथवा थोड़ा मिले, साधु का यही परम कर्तव्य है कि वह इन अवस्थाओं में समभावशाली रहे। दाता की अथवा उसके दिये हुए अन्नादि की कभी भी निंदा न करे। अल्पलाभ होने पर यही एक मात्र विचार करे कि मेरा ही यह अन्तराय का प्रवल उदय है, जो यथेच्छ लाभ नहीं हो रहा है, अथवा नहीं हुआ है। आहारादिक के निमित्त परघरप्रवेश करते समय यदि वहां पर आहारादिक की याचना करने पर उस के लिये कोई निषेध भी करे तो उस समय मन में कोई जात का दुर्भाव न आने देवे, और न उस गृहस्थ का "तूं अधर्मात्मा है" इत्यादि कठोर शब्दों से तिरस्कार ही करे।

જેમાં લાભ દુર્લભ છે, અંગીકાર કરવાથી મને લાભ શું થયો." આ પ્રકારે ઢંઢણ અણગાર માફક સ્વયં પોતાના ગ્રહણ કરેલાં ચારિત્રની ઉપેક્ષા કરે નહિ. એવું પણ સ્વપ્નથી વિચાર ન કરે કે-"જુઓ! તે ગૃહસ્થોને ત્યાં અશન પાન ખાદ્ય સ્વાદ્ય આદિ વિવિધ વસ્તુઓ મોજુદ છે. પરંતુ એ બધા કેટલા અવિનયી અશ્રદ્ધાળુ અને લોભી છે જે તેમાંથી મને કાંઇ પણ દેતા નથી" ભલે મળે, ભલે ન મળે, ભલે જરાક મળે, સાધુનું એ પરમ કર્તવ્ય છે કે તે બંને અવસ્થામાં સમભાવી રહે. દાતાની અથવા તેનાથી અપાયેલા અન્નાદિની કોઈ વખત પણ નિંદા ન કરે. અલ્પલાભ થવાથી એ એક જ માત્ર વિચાર કરે કે-મારો આ અંતરાયનો પ્રબલ ઉદય છે કે જેથી મને યથેચ્છ લાભ થતો નથી, અથવા થયો નથી. આહારાદિક નિમિત્તે પરઘર પ્રવેશ કરતી વખતે ત્યાં આહારાદિકની યાચના કરવાથી કોઇ તેને માટે નિષેધ

उपसंहरन्नाह—'एत'-दित्यादि । एतत्=प्रव्रज्यानिर्वेदरूपम्—आदानाकोपनम्, अल्पानिन्दनम्, प्रतिषिद्धनिवर्तनं मौनं—मुनेरिदं मौनम्—अनगाराचरणं ज्ञानाचारादिकमित्यर्थः, हे शिष्य ! 'समनुवासयेः' सम्—सम्यक्प्रकारेण पूजा—सत्कार—गौरव-निदानराहित्येन अनुवासयेः—अनुपालयेरित्यर्थः, गणधरादिसेवितं निरतिचारं चारित्रं परिपालयेरिति तात्पर्यम् ॥ इति ब्रवीमीत्यस्यार्थस्तूक्त एव ॥ सू० ४ ॥

॥ इति द्वितीयाध्ययनस्य चतुर्थोद्देशः समाप्तः ॥ २-४ ॥

अन्त में उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं—ये जो पूर्वोक्त साधु का आचार प्रकट किया है कि—वह अपने ग्रहण किये हुए चारित्र के प्रति उपेक्षाभाव न रखे, अल्पलाभ में भी संतुष्ट रहे, निषेध करने पर परघर से शांतिपूर्वक वापिस हो जावे। अतः हे शिष्य ! तुम अच्छी तरह से अर्थात् पूजा, सत्कार, गौरव और निदान की भावना से रहित होकर गणधरादि-सेवित इस निरतिचार चारित्र का पालन करो। "इति ब्रवीमि" इन पदों का अर्थ पहिले स्पष्ट कर दिया गया है ॥ सू० ४ ॥

॥ इति द्वितीय अध्ययन का चौथा उद्देश समाप्त ॥ २-४ ॥

પણ કરે તો તે વખતે મનમાં કોઇ પણ જાતનો દુર્ભાવ લાવે નહિ, તેમજ તે ગૃહસ્થને "તું અધર્માત્મા છે" ઇત્યાદિ ખરાબ શબ્દોથી તિરસ્કાર પણ ન કરે.

અંતમા ઉપસંહાર કરતાં સૂત્રકાર કહે છે—આ જે પૂર્વોક્ત સાધુનો આચાર પ્રગટ કરેલ છે કે—તે પોતાનાં ગ્રહણ કરેલ ચારિત્ર પ્રતિ ઉપેક્ષાભાવ રાખે નહિ. અલ્પ લાભમાં પણ સંતુષ્ટ રહે. નિષેધ કરવાથી ઘરથી શાંતિપૂર્વક પાછા ફરી જાય. માટે હે શિષ્ય! તમે સારી રીતે અર્થાત્ પૂજા, સત્કાર, ગૌરવ અને નિદાનની ભાવનાથી રહિત થઈને તીર્થંકર ગણધરાદિકથી સેવિત નિરતિચાર ચારિત્રનું પાલન કરો. "इति ब्रवीमि" આ પદોનો અર્થ પહેલાં સ્પષ્ટ કરેલ છે ॥ સૂ૦૪ ॥

ઇતિ બીજા અધ્યયનનો ચોથો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૨-૪ ॥

॥ आचाराङ्गसूत्रे द्वितीयाध्ययनस्य पञ्चमोद्देशः ॥

अभिहितश्चतुर्थोद्देशोऽधुना पञ्चमस्य व्याख्या प्रारभ्यते। पूर्वं भोगाभिष्वङ्गं विहाय लोकनिश्रया शरीररक्षणार्थं विचरणीयमित्युक्तम्। अत्रापि तदेव प्रतिपादयिष्यते। तथा च विषयकषायकरालज्वालाजटिलसंसारदावानलत्रस्तो बालकुरङ्ग इव पलायमानो निर्बाधशान्तिप्राप्तये परिहृतभोगस्पृहो गृहीतपञ्चमहाव्रतो निरवद्यानुष्ठानपरः कायनिर्वहणार्थं लोकनिश्रया विहरति, आश्रयरहितस्य देहसाधनाऽसम्भवात्, देहस्यासद्भावे धर्मोऽपि भवितुं नार्हति। देहसद्भावश्च निश्रया भवति। निश्रा हि पञ्चधा, उक्तञ्च—

॥ आचरांगसूत्रके दूसरे अध्ययनका पांचवाँ उद्देश ॥

चतुर्थ उद्देश की व्याख्या समाप्त हो चुकी, अब यहां पंचम उद्देश की व्याख्या प्रारम्भ होती है। पहिले जो यह कहा गया है कि–भोगों से चित्तवृत्ति को हटाकर शरीररक्षा के लिये संयमी को लोक की नेसराय से विचरना चाहिये; यही विषय यहां पर स्पष्ट किया जायगा। मृग के बच्चे की तरह जो संयमीजन इस संसाररूपी दावानल से–कि जो विषय–कषायरूपी भयंकर ज्वाला से व्याप्त है–त्रस्त होकर निराबाध शांति लाभ के लिये इतस्ततः दौड़ा फिरता है, जिसने भोगों की इच्छा का परित्याग कर दिया है, पञ्चमहाव्रतों का जो आराधक है, और निर्दोष अनुष्ठान के आचरण करने में जो सर्वथा सावधान है वह अपने शरीरनिर्वाह के लिये लोक-निश्रा (नेसराय) से विचरता है; क्योंकि विना आश्रय के देह

આચારાંગ સૂત્રના બીજા અધ્યયનનો પાંચમો ઉદ્દેશ.

ચોથા ઉદ્દેશની વ્યાખ્યા સમાપ્ત થઈ. હવે પાંચમા ઉદ્દેશની વ્યાખ્યા શરૂ થાય છે. પહેલા જે એમ કહેવામાં આવેલ છે કે–ભોગોથી ચિત્તવૃત્તિને હટાવી શરીરરક્ષા માટે સંયમીએ લોકની નેસરાયથી વિચરવું જોઈએ આ જ વિષય આ ઠેકાણે સ્પષ્ટ કરવામાં આવશે.

મૃગના બચ્ચા માફક જે સંયમી જન આ સંસારરૂપી દાવાનલથી કે જે વિષયકષાયરૂપી ભયંકર જ્વાલાથી વ્યાપ્ત છે, ત્રાસીને નિરાબાધ શાંતિ લાભ માટે અહીં તહીં ફર્યા કરે છે. જેણે ભોગોની ઇચ્છાનો પરિત્યાગ કર્યો છે પંચમહાવ્રતોના જે આરાધક છે, અને નિર્દોષ અનુષ્ઠાનનું આચરણ કરવામાં જે સર્વથા સાવધાન છે તે પોતાના શરીરના નિર્વાહ માટે લોક–નિશ્રા (નેસરાય)થી વિચરે છે. કારણ કે આશ્રય વિના દેહની સાધના બની શકતી નથી. દેહની સાધના વિના ધર્મનું

" धम्मं णं चरमाणस्स पंच निस्साठाणा पण्णत्ता;
तं जहा–छक्काया, गणो, राया, गाहावई, सरीरं॥
(स्थानाङ्ग० स्थान ५। उ० ३।)

छाया—धर्मं खलु चरतः पञ्च निश्रास्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा–षट्कायाः, गणो, राजा, गाथापतिः, शरीरम्, इति।

यद्यपि देहस्य साधनानि–वसतिवस्त्रपात्राशनशयनासनादीनि सन्ति, तथापि तेषु प्रत्यहमाहारस्याऽऽवश्यकतया तस्य प्राधान्यं, स च गृहपतेः सकाशाद्गवेषयितव्यो भवति। स हि गृहस्थो निजपरिवारपोषणार्थमन्नादिकं समुत्पादयत्येव, ततः संयमजीवनरक्षणाय वृत्तिरेषण्या भवतीति।

की साधना नहीं हो सकती, देह की साधना के विना धर्म का आराधन नहीं हो सकता; अतः धर्म की आराधना करने के लिये देह की साधना, और देह की साधना के लिये लोक की नेसराय संयमी को आवश्यकीय है। नेसराय पांच प्रकार की है? कहा भी है—

" धम्मं णं चरमाणस्स पंच निस्साट्ठाणा पण्णत्ता;
तंजहा–छक्काया, गणो, राया, गाहावई, सरीरं"

अर्थात् धर्माराधन करनेवाले संयमीजन के पांच निश्रा-स्थान हैं–षट्-काय, गण, राजा, गाथापति और शरीर। यद्यपि देह की साधना के साधन–वसति, वस्त्र, पात्र, भोजन, शयन और आसनादिक हैं तो भी उन सबमें आहार की ही मुख्यता है। संयमीजन तीन करण तीनयोग पूर्वक सावद्य व्यापार से रहित होते हैं, अतः उस आहार की गवेषणा गृहस्थों के यहां करनी चाहिये, क्योंकि वे गृहस्थ अपने परिवार के पोषण के लिये

આરાધન બની શકતું નથી. અને ધર્મની આરાધના કરવા માટે દેહની સાધના, અને દેહની સાધના માટે લોકની નેસરાય સંયમીને આવશ્યક જ છે. નેસરાય પાંચ પ્રકારની છે. કહ્યુ પણ છે—

"धम्मं ण चरमाणस्स पंच निस्साट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा–छक्काया, गणो, राया, गाहावई, सरीरं"

અર્થાત્ ધર્મારાધન કરવાવાળા સંયમી જનો માટે પાંચ નિશ્રા–સ્થાન છે. ષટ્કાય, ગણુ, રાજા, ગાથાપતિ અને શરીર. કદાચ દેહની સાધનાના સાધન–વસતિ, વસ્ત્ર, પાત્ર, ભોજન, શયન અને આસનાદિક છે તો પણુ એ સઘળામાં આહારની મુખ્યતા છે. સંયમીજન સાવદ્ય વ્યાપારથી ત્રણુ કરણુ અને ત્રણુ યોગથી રહિત હોય છે. માટે તેવા આહારની ગવેષણા ગૃહસ્થોને ત્યાં કરવી જોઇએ, કારણ કે

अत्रानन्तरसूत्रसम्बन्धो यथा-'एवं मोणं समणुवासिज्जासि' इति। तत्र निरतिचारचारित्रपालनं तु लोकनिश्रया भवतीति कथितम्, अत्रापि मुनिना सम्यगाहारशुद्धिर्विचिन्तनीयेति दर्शयिष्यते।

गृहपतयो हि स्वीयपुत्रदुहित्राद्यर्थं शस्त्रसमारम्भं कुर्वन्तीति दर्शयति-'जमिणं' इत्यादि।

मूलम्-'जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं लोगस्स कम्मसमारम्भा कज्जंति तं जहा-अप्पणो से पुत्ताणं धूयाणं सुण्हाणं नाईणं धाईणं राईणं दासाणं दासीणं कम्मकराणं कम्मकरीणं आएसाए पुढोपहेणाए सामासाए पायरासाए संनिहिसंनिचओ कज्जइ, इहमेगेसिं माणवाणं भोयणाए ॥ सू० १ ॥

अशनादिक प्रतिदिन तैयार करते हैं। संयमी मुनि संयमजीवन की रक्षा के लिये अपनी आवश्यकतानुसार गृहस्थ के यहां से आहार आदि लेकर संयमयात्रा का निर्वाह करते हैं।

यहां पर "एवं मोणं समणुवासिज्जासि" इस अनन्तर सूत्र के साथ संबंध है-वहां 'निरतिचार चारित्र का पालन लोक-निश्रा से होता है' यह कहा है। इसमें भी 'संयमी मुनि को आहार की शुद्धि का अच्छी तरह से ध्यान रखना चाहिये' यह बात आगे चलकर प्रकट की जायगी।

गृहस्थ अपने पुत्र-पुत्री आदि के निमित्त शस्त्र-षट्कायसमारंभरूप सावद्य व्यापारों एवं भोजनादि साधनों के आरम्भों को किया करते हैं, यही बात सूत्रकार कहते हैं—"जमिणं" इत्यादि।

ગૃહસ્થ પોતાના પરિવારના પોષણ માટે અશનાદિક પ્રતિદિન તૈયાર કરે છે. સંયમી મુનિ સંયમજીવનની રક્ષા માટે પોતાની આવશ્યકતાનુસાર ગૃહસ્થને ત્યાંથી આહાર આદિ લાવીને સંયમયાત્રાનો નિર્વાહ કરે છે.

આ ઠેકાણે "एवं मोणं समणुवासिज्जासि" એ અનન્તરસૂત્ર સાથે સંબંધ છે. ત્યાં 'નિરતિચાર ચારિત્રનું પાલન લોકનિશ્રાથી થાય છે' એમ કહેલ છે. તેમાં પણ સંયમી મુનિએ આહારની શુદ્ધિનો સારી રીતે ધ્યાન રાખવો જોઈએ એ વાત આગળ ઉપર પ્રગટ કરવામાં આવશે.

ગૃહસ્થ પોતાના પુત્ર પુત્રી આદિ નિમિત્તે શસ્ત્ર-ષટ્કાય સમારંભરૂપ સાવદ્યવ્યાપારો અને ભોજનાદિ સાધનોના આરંભ કર્યા કરે છે તેજ બાત સૂત્રકાર કહે છે:—"जमिणं" ઇત્યાદિ.

छाया—यदिदं विरूपरूपैः शस्त्रैर्लोकाय कर्मसमारम्भाः क्रियन्ते, तद्यथा-आत्मने तस्य पुत्रेभ्यो दुहितृभ्यः स्नुषाभ्यो ज्ञातिभ्यो धात्रीभ्यो राजभ्यो दासेभ्यो दासीभ्यः कर्मकरेभ्यः कर्मकरीभ्य आदेशाय पृथक्प्रहेणकाय श्यामाशाय प्रातराशाय सन्निधिसंनिचयं क्रियते, इहैकेषां मानवानां भोजनाय ॥ सू० १ ॥

टीका—'यदिद'-मित्यादि। यद् इदम्=सुखदुःखप्राप्तिपरिहाररूपं प्रयोजनमुद्दिश्य विरूपरूपैः=बहुप्रकारैः शस्त्रैः=षट्कायसमारम्भरूपैः लोकाय=असंयतलोकाय-स्वशरीरपुत्रकलत्रादिरूपाय कर्मसमारम्भाः=षट्कायोपमर्दनरूपाः पचनपाचनादिसावद्यव्यापाराः क्रियन्ते, यद्वा कर्मणोऽष्टप्रकारकस्य समारम्भाः=उपार्जनोपायाः क्रियन्ते।

सुखप्राप्ति और दुःखपरिहार के प्रयोजन से गृहस्थीजन अपने शरीर पुत्रकलत्रारूप लोक के लिये अनेक प्रकार के षट्कायसमारंभरूप पचन-पाचनादि सावद्य व्यापार करते हैं, उनका दिग्दर्शन कराते हुए सूत्रकार कहते हैं—

गृहस्थ जीवन भोजन-कृषि-वाणिज्य आदि सावद्य व्यापार के विना चलता नहीं है। इसमें इस तरह के अनेक प्रकार का आरम्भ जीवों को करना ही पड़ता है। जहां आरंभ-समारंभ है वहां जीवों की हिंसा अवश्यंभावी है। हिंसा से आस्रव होता है, और इससे जीवों का संसार बंधन से छुटकारा होना बड़ा कठिन होता है। इसीलिये आत्मा को सावद्यनिवृत्तिरूप चारित्र आराधन करने की आवश्यकता है।

गृहस्थ लोक अपने लिये तथा पुत्रों के लिये पुत्रियों के लिये पुत्र-वधुओं के लिये, ज्ञातिभाईयों, सगे संबंधियों एवं कुटुम्बियों के लिये,

---

સુખપ્રાપ્તિ અને દુઃખપરિહારના પ્રયોજનથી ગૃહસ્થી જન પોતાનું શરીર પુત્ર કલત્રાદિરૂપ લોક માટે અનેક પ્રકારના ષટ્કાયસમારંભરૂપ પચનપાચનાદિ સાવદ્ય વ્યાપાર કરે છે તેનું દિગ્દર્શન કરાવીને સૂત્રકાર કહે છે—

ગૃહસ્થ જીવન ભોજન-કૃષિ-વાણિજ્ય આદિ સાવદ્ય વ્યાપાર વિના ચાલતું જ નથી. તેમાં આવા પ્રકારનાં અનેક પ્રકારે આરંભ જીવોને કરવાં જ પડે છે. જ્યાં આરંભ-સમારંભ છે ત્યાં જીવોની હિંસા અવશ્યંભાવી છે. હિંસાથી આશ્રવ થાય છે, અને તેનાથી જીવોનો સંસારબંધનથી છુટકારો થવો ઘણું કઠિન થઇ પડે છે, માટે આત્માને સાવદ્યનિવૃત્તિરૂપ ચારિત્ર આરાધન કરવાની આવશ્યકતા છે

ગૃહસ્થલોક પોતાના માટે તથા પુત્રો માટે. પુત્રિયો માટે, પુત્રવધુ માટે, જ્ઞાતિભાઇઓ, સગાં-સંબંધિઓ અને કુટુંબિઓ માટે, માતા-પિતા, સાસુ-સસરા

अथवा 'लोगस्से'-ति तृतीयार्थे षष्ठी, लोकेन कर्मसमारम्भाः क्रियन्त इति।

अत्रेदं तत्त्वम्, 'तं जहा' इति मूलपाठेन लोकायेति चतुर्थ्येवं साधीयसी-यदर्थं समारम्भस्तं पूर्वं सामान्यतो लोकपदेनोपदर्श्य विशेषतो दर्शयितुं 'तं जहा' इत्यस्य प्रतिपादनम्।

यदि च तृतीयार्थेऽपि षष्ठी, साऽपि सामान्यतः समारम्भा लोकेन क्रियन्त इत्युपदर्श्य किमर्थमिति जिज्ञासायां 'तंजहा' इत्यपि कथञ्चित्समाधानं भवितुमर्हति।

यदर्थं पाककृषिवाणिज्यादिसावद्यव्यापारमारभन्ते तान् दर्शयति-'तद्यथेति' तस्य समारम्भशीलस्य आत्मने=स्वशरीरार्थम्, आत्मशब्दोऽत्र शरीरवाचकः, स्वार्थं स्वयमेव समारभत इत्यर्थः।

माता-पिता सासू-ससुर आदि के लिये, स्वजनों के लिये, धायमाता के लिये, राजा के लिये दासी दास नौकर चाकर और पाहुनों के लिये, पृथक्-प्रहेणक के लिये. अर्थात् कन्याविवाह के उत्सव का भोजन, प्रस्थान के समय रास्ते में सुबह-शाम खाने के लिये साथ में दिये जाने वाला भोजन, तथा कांसा परोसा आदि पृथक्प्रहेणक कहलाता है, उसके लिये पचन-पाचनादिरूप अनेक सावद्य व्यापार करते हैं।

भावार्थ—सूत्रकार यहां पर यह बात स्पष्ट कर रहे हैं कि-गृहस्थ लोग अपने तथा अपने सगे संबंधियों एवं बाल-बच्चों वगैरह के लिये भोजन वगैरह आरम्भों को नितप्रति करते रहते हैं। सर्वविरति मुनि के शरीर की यात्रा का निर्वाह उनके यहां से मात्रानुसार प्राप्त भोजन से अच्छी तरह हो सकता है, इसलिये मुनि को सावद्य व्यापार करने की आवश्य-

---

આદિ માટે, સ્વજનો માટે, ધાવમાતા માટે, રાજા માટે, દાસી-દાસ નોકર-ચાકર માટે, મહેમાનો માટે, પૃથક્પ્રહેણકને માટે, અર્થાત્ કન્યાવિવાહના ઉત્સવનું ભોજન, મુસાફરી સમય રસ્તામાં સવારસાંજ ખાવા માટે સાથે આપવામાં આવતું ભોજન, અને કાંસા પિરસણું આદિ પૃથક્પ્રહેણક કહેવાય છે, તેને માટે પચન-પાચનાદિરૂપ અનેક સાવદ્ય વ્યાપાર કરે છે

ભાવાર્થ—સૂત્રકાર આ ઠેકાણે એ વાત સ્પષ્ટ કરે છે કે-ગૃહસ્થ લોક પોતાના તથા પોતાના સગાસંબંધિઓ અને છોકરાં-છૈયાં વિગેરે માટે ભોજન વિગેરે આરંભો હરહંમેશ કરતાં જ રહે છે. સર્વવિરતિ મુનિના શરીરની યાત્રાનો નિર્વાહ તેને ત્યાંથી માત્રાનુસાર પ્રાપ્ત ભોજનથી સારી રીતે થઈ શકે છે, માટે મુનિને સાવદ્ય વ્યાપાર કરવાની આવશ્યકતા જ નથી, સાવદ્ય વ્યાપારોથી હિંસા થવાના

किञ्च–पुत्रेभ्यः, दुहितृभ्यः=पुत्रीभ्यः, स्नुषाभ्यः=पुत्रवधूभ्यः, ज्ञातिभ्यः= पूर्वपश्चात्सम्बन्धिभ्यः, माता–पितृ–श्वश्रू–श्वशुरादिभ्य इत्यर्थः, स्वजनेभ्यः, धात्रीभ्यः=उपमातृभ्यः, राजभ्यः, दासेभ्यः=भृत्येभ्यः, दासीभ्यः, कर्मकरेभ्यः=परिचारकेभ्यः, कर्मकरीभ्यः=परिचारिकाभ्यः, आदिश्यते=आज्ञाप्यते परिजनः सत्कारार्थं यस्मिन्नागते स आदेशः=प्राघूर्णकादिस्तस्मै, पृथक्प्रहेणकाय' पृथक्=विभिन्नरूपेण प्रहेणकः=कस्मिंश्चिदुत्सवे भोजनोपायनं लोकेभ्यो दीयमानं पृथक्प्रहेणक इत्युच्यते।

कता ही नहीं है। सावद्य व्यापारों से हिंसा होने के कारण उस अवस्था में सर्वविरति संयम की आराधना हो ही नहीं सकती, इसलिये मुनि का संयम निर्दोष रीति से पल सके इस आशय से यह अवस्था परम्परा से की गई है।

मूल सूत्र में–"लोगस्स कम्मसमारंभा कज्जंति" यह पाठ है, इसकी संस्कृत छाया–"लोकाय कर्मसमारंभाः क्रियन्ते" होती है। जिसका अर्थ लोकों-असंयतों के लिये षट्काय के उपमर्दनरूप सावद्य व्यापारों का आरम्भ किया जाता है। अथवा लोक के द्वारा कर्मसमारम्भ किये जाते हैं, यह अर्थ भी होता है। पहिले सूत्रकार सावद्यव्यापाररूप कर्मसमारम्भ का निमित्त कारण सामान्यतया असंयत लोकों को बतलाते हुए इसी बात को विशेष रीति से खुलाशा करने के अभिप्राय से "तं जहा" इस पद से व्यक्त करते हैं। तथा "लोकों के द्वारा जो सावद्यव्यापाररूप कर्मसमारम्भ किया जाता है वह किस लिये किया जाता है"

કારણે આ અવસ્થામાં સર્વવિરતિ સંયમની આરાધના બની જ શકતી નથી માટે મુનિ સંયમને નિર્દોષ રીતિથી પાળી શકે એ આશયથી આ અવસ્થા પરંપરાથી કરવામાં આવેલ છે.

મૂળસૂત્રમાં—"लोगस्स कम्मसमारंभा कज्जंति" એ પાઠ છે. તેની સંસ્કૃત છાયા–"लोकाय कर्मसमारंभाः क्रियन्ते" છે જેનો અર્થ લોકો–અસંયતોને માટે ષટ્કાયના ઉપમર્દનરૂપ સાવદ્ય વ્યાપારોનો આરંભ કર્યો જાય છે, અથવા લોકદ્વારા કર્મસમારંભ કરાય છે એ પણ અર્થ થાય છે પહેલાં સૂત્રકાર સાવદ્યવ્યાપારરૂપ કર્મસમારંભના નિમિત્ત કારણ સામાન્યતયા અસંયત લોકોને બતાવીને તે વાતનો વિશેષ રીતિથી ખુલાસો કરવાના અભિપ્રાયથી "तंजहा" આ પદથી સ્પષ્ટ કરે છે. તથા "લોકો દ્વારા જે સાવદ્યવ્યાપારરૂપ કર્મ સમારંભ

यद्वा कन्यापरिणयोत्सवे कन्यापितृगृहे विभिन्नरूपेण यद्भोज्यं स पृथक्प्रहेणकः। अथवा प्रस्थानसमये जामातृभ्यो विभिन्नरूपेण दीयमानं पाथेयं पृथक्प्रहेणकपदेन कथ्यते, तस्मै। 'श्यामाशाय' श्यामायां रात्र्याम्, अशनमाशः=श्यामाशस्तस्मै। 'प्रातराशाय' प्रातः=प्रातःकाले आशो=भोजनं प्रातराशस्तस्मै कर्मसमारम्भाः क्रियन्ते। तमेव विशिनष्टि-'सन्निधिसन्निचयम्' इत्यादि, सन्निधानं सन्निधिः=अल्पकालस्थायिद्रव्याणां संग्रहकरणम्, दधि-भक्त-कृशर-व्यञ्जनादीनां स्थापनम्।

अपि च-'संनिचयः' सम्यग् निचयनं=सङ्ग्रहणं सन्निचयः=चिरस्थायिनां घृत-तैल-गुडादिद्रव्याणां सङ्ग्रहः, सन्निधिश्च संनिचयश्च सन्निधि-सन्निचयम्, तत् क्रियते। सूत्रे पुंस्त्वमार्षत्वात्। यद्वा-सन्निधेः=अशनवशनादेः सन्निचयः=सङ्ग्रहः क्रियते। किमर्थं सङ्ग्रहः क्रियते? इत्याह-'इहे'-ति। इह=संसारे एकेषां =कतिपयानां मानवानां=सम्बन्धिजनानां भोजनाय=भविष्यदुपभोगाय, विरूपरूपैः शस्त्रैः कर्मसमारम्भाः क्रियन्त इति।

लोकाः पुत्राद्यर्थं कर्माणि समारभन्त एव, तेभ्यः संयमयात्रां निर्वोढुं मात्रयाऽन्नादिकमादाय मुनिना वर्तितव्यमिति सूत्रतात्पर्यम् ॥ सू० १ ॥

इस प्रकार की जिज्ञासा होने पर उसका समाधान सूत्रकार ने "तं जहा" पद से किया है।

"सन्निधिसंनिचय" यहां दो पद हैं-१ 'सन्निधि' और दूसरा '२ संनिचय। दही, भात, कृशर-खीचडी, व्यञ्जन-शाक आदि 'सन्निधि' पदसे ग्रहण किये गये हैं। घृत, तैल, गुड आदि पदार्थ 'संनिचय' पद से गृहीत हुए हैं। अथवा सन्निधि-अशन वशन आदि का संनिचय-संग्रह करना वह सन्निधिसंनिचय है। कितनेक गृहस्थ अपने व संबंधिजनों के निमित्त भविष्यत्काल में उपभोग के अभिप्राय से धान्यादि अनेक पदार्थों का संग्रह कर लिया करते हैं। इस संग्रह में

થાય છે" તે શા માટે કરવામાં આવે છે, આ પ્રકારની જીજ્ઞાસા થવાથી તેનું સમાધાન સૂત્રકારે "तंजहा" પદથી કર્યું છે.

"सन्निधिसंनिचय" આંહી બે પદ છે. ૧ 'सन्निधि' અને બીજું ૨ 'संनिचय' દહીં. ભાત, ખીચડી, શાક આદિ 'सन्निधि' પદથી લેવામાં આવેલ છે. ઘી, તેલ. ગોળ આદિ પદાર્થ 'संनिचय' પદથી લેવામાં આવેલ છે. અથવા 'सन्निधि' અશન વસન આદિનો 'सनिचय' સંગ્રહ કરવો તે सन्निधिसंनिचय છે. કેટલાક ગૃહસ્થ પોતાને અને સબંધીજનોને નિમિત્ત ભવિષ્ય કાળમાં ઉપભોગના અભિપ્રાયથી ધાન્યાદિ અનેક પદાર્થોનો સંગ્રહ કરે છે. આ સંગ્રહમાં

भविष्यदुपभोगाय सन्निधि–सन्निचयप्रवृत्ते लोके संयमिना किं विधेयमित्याह–'समुट्ठिए' इत्यादि।

मूलम्–समुट्ठिए अणगारे आरिए आरियपन्ने आरियदंसी अयं संधि–त्ति अदक्खू, से नाईए नाईयावए न समणुजाणए सव्वामगंधं परिन्नाय निरामगंधो परिव्वए ॥ सू० २ ॥

छाया—समुत्थितोऽनगार आर्य आर्यप्रज्ञ आर्यदर्शी अयं सन्धिरिति अद्राक्षीत्, स नाददीत नादापयेत् न समनुजानीयात्, सर्वामगन्धं परिज्ञाय निरामगन्धः परिव्रजेत् ॥ सू० २ ॥

टीका—'समुत्थित' इत्यादि। समुत्थितः=सम्=समीचीनं चारित्राचरणे उत्थितः=समुत्थितः–संयमाराधनसमुद्यत इत्यर्थः, अनगारः=अविद्यमानमगारं गृहं यस्य सोऽनगारो द्रव्यभावगृहरहितः, आर्यः=आराद् दूरं गतो हेयधर्मेभ्यो यः

अनेक प्रकार से सावद्य व्यापार में प्रवृत्ति होने की वजह से त्रस एवं स्थावर जीवों की हिंसा होती ही है ॥ सू० १ ॥

आगामी समय के लिये अपने-अपने योग्य उपभोगादि साधन-समूह के संग्रह करने में तत्पर रहे हुए जनसमुदाय के बीच में संयमी मुनि को क्या करना चाहिये? इसके प्रत्युत्तर में सूत्रकार कहते हैं—'समुट्ठिए' इत्यादि।

जो निर्मल चारित्र के आचरण में उत्थित है, अर्थात् निर्दोष चारित्र के आराधन करने में जो अच्छी तरह से प्रयत्नशील है उसका नाम समुत्थित है। जिसके घर नहीं है उसका नाम अनगार है। अगार के दो

અનેક પ્રકારથી સાવદ્ય વ્યાપારમાં પ્રવૃત્તિ થાય છે જેથી તેમાં ત્રસ અને સ્થાવર જીવોની હિંસા થાય છે. ॥ સૂ૦ ૧ ॥

આગામી સમય માટે પોતપોતાના યોગ્ય ઉપભોગાદિ સાધન સમૂહનો સંગ્રહ કરવામાં તત્પર રહેલા જનસમુદાયની વચમાં સંયમી મુનિએ શું કરવું જોઈએ, તેના પ્રત્યુત્તરમા સૂત્રકાર કહે છે—'समुट्ठिए' ઈત્યાદિ.

જે નિર્મળ ચારિત્રના આચરણમાં ઉત્થિત છે અર્થાત્ નિર્દોષ ચારિત્રના આરાધન કરવામાં જે સારી રીતે પ્રયત્નશીલ છે તેનું નામ સમુત્થિત છે. જેને અગાર-ઘર નથી તેનું નામ અનગાર છે. અગારના બે પ્રકાર છે. એક દ્રવ્ય-અગાર અને બીજો

स आर्यः=श्रुतचारित्ररूपधर्माराधनयोग्यः । यद्वा-विषय-कषाय-काष्ठच्छेदकत्वेनाऽऽरासादृश्यादारा=रत्नत्रयं, तां याति=प्राप्नोति यः स आर्यः=सर्वथा सकलकल्मषराशिकलुषितवृत्तिरहित इत्यर्थः। 'आर्यप्रज्ञः' आर्या=श्रेष्ठा प्रज्ञा=मतिर्यस्य स आर्यप्रज्ञः हेयोपादेयविवेकवान् । एवमार्यदर्शी=आर्य-युक्तियुक्तं द्रष्टुं शीलं यस्येत्यार्यदर्शी=आरम्भजन्यकटुविपाकदर्शी। य एवम्भूतः पुनः 'अयं सन्धि'-रिति अयं=प्रत्यक्षोपलभ्यमानः सन्धिः-पारगमनाधःपतनयोर्मध्ये सन्धिरिव सन्धिः-आर्यक्षेत्र-सुकुलोत्पत्ती-न्द्रियनिर्वृत्ति-श्रद्धा-संवेग-रत्नत्रयप्राप्तिलक्षणं सन्धिस्थानम्, इति=इत्येवम् अद्राक्षीत्=अज्ञासीत् । यद्वा-अयं प्रत्यक्षनिर्दिष्टः सन्धिः-प्रतिलेखन-

प्रकार हैं। एक द्रव्य-अगार और दूसरा भाव-अगार। अनगार इन दोनों प्रकार के अगारों से रहित होता है। जो हेय धर्मों से सदा दूर रहता है उसका नाम आर्य है। आर्य-श्रुतचारित्ररूप धर्म के आराधन करने योग्य होता है, अथवा विषयकषायरूप काष्ठ का छेदक होने से आराकरोंत के सदृश रत्नत्रयरूप धर्म को जो प्राप्त करता है वह आर्य है, अर्थात् जिसकी सकल कल्मष-पापराशि से कलुषित परिणति नहीं है उसका नाम आर्य है। उत्तम जिसकी मति है, हेय और उपादेय के विवेक से जिसका अन्तःकरण युक्त है उसका नाम आर्यप्रज्ञ है। युक्तियुक्त देखने का जिसका स्वभाव है 'आरम्भजन्य पापों का विपाक भयंकर कष्टप्रद होता है' इस बात को भलीभाँति से जानता समझता है वह आर्यदर्शी है। संसार से पार होना एवं उसमें अधःपतन होना, इन दोनों के बीच में सन्धि के समान आर्यक्षेत्र, सुकुल में जन्म, इन्द्रियादिकों की पूर्णता श्रद्धा, संवेग और रत्नत्रय की प्राप्तिरूप संधिस्थान है। जो प्रत्यक्ष

ભાવ-અગાર. અનગાર આ બન્ને પ્રકારના અગારોથી રહિત હોય છે. જે હેય ધર્મોથી સદા દૂર રહે છે તેનુ નામ આર્ય છે. આર્ય-શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મનું આરાધન કરવા યોગ્ય હોય છે અથવા વિષયકષાયરૂપ કાષ્ઠના છેદક હોવાથી આરાકરવતના સદૃશ રત્નત્રયરૂપ ધર્મને જે પ્રાપ્ત કરે છે તે આર્ય છે. અર્થાત્ જેની સકલકલ્મષ-પાપરાશિ થી કલુષિત પરિણતિ નથી તેનુ નામ આર્ય છે. ઉત્તમ જેની મતિ છે. હેય અને ઉપાદેયના વિવેકથી જેનું અંતઃકરણ યુક્ત છે તેનું નામ આર્યપ્રજ્ઞ છે યુક્તિયુક્ત દેખવું એવો જેનો સ્વભાવ છે 'આરંભજન્ય પાપોનો વિપાક ભયંકર કષ્ટપ્રદ થાય છે' આ વાતને જે ભલીભાતિથી જાણે છે, તેમજ સમજે છે તે આર્યદર્શી છે, સંસારથી પાર થવુ અને તેમાં અધ.પતન થવું, એ બન્નેની વચ્ચમા સન્ધિસમાન આર્યક્ષેત્ર, સારા કુળમાં જન્મ, ઇન્દ્રિયોની પૂર્ણતા, શ્રદ્ધા, સંવેગ અને રત્નત્રયની પ્રાપ્તિરૂપ સંધિસ્થાન છે. જે આ પ્રત્યક્ષ

प्रतिक्रमणादिक्रियाया यः समुचितः काल इति योऽज्ञासीदित्यर्थः। एवंभूतः सः अनगारो नाददीत=अकल्पनीयमाहारादिकं न गृह्णीयात्, शास्त्रे तस्य प्रतिषिद्धत्वात्, षड्जीवनिकायारम्भदोषस्य मुनिना पूर्वं परित्यक्तत्वाच्च, नाऽऽदापयेत्=नान्यं ग्राहयेत्, न समनुजानीयात्=नापीतरं साधुं गृह्णन्तमनुमोदयेत्। यद्वा–नाऽद्यान्नाऽऽदयेदितिच्छाया, स मुनिरिङ्गालधूमादिपञ्चविधदोषदूषितमाहारं नाद्यात्=नाश्नीयात्, नादयेत्=नान्यं भोजयेत् अदन्तमन्यं न समनुजानीयात्।

अपि च किं कुर्यादित्याह–'सर्वामगन्ध'–मित्यादि। सर्वामगन्धम्, आमं च गन्धश्चानयोः समाहारद्वन्द्वे आमगन्धं, सर्वं च तदामगन्धमिति सर्वामगन्धम्=अशु-

---

प्रतिभासित बात को अच्छी तरह से जानता है, अथवा प्रतिलेखन, प्रतिक्रमणादि क्रियाओं के उचित अवसर का जो ज्ञाता है, यह बात "अयं सन्धिरिति अद्राक्षीत्" इस पद से प्रदर्शित की गई है। इस प्रकार का जो अनगार है वह अकल्पनीय आहारादिक को न स्वयं ग्रहण करता है, क्योंकि सदोष आहार का ग्रहण करना अनगार के लिये शास्त्र में निषिद्ध बतलाया गया है, इसका कारण–षट्काय के जीवों का आरम्भ अनगार ने पहिले से ही छोड़ दिया है, वह सदोष आहार स्वयं न ग्रहण करता है, न दूसरों से ग्रहण करवाता है, और न इस प्रकार के आहार को ग्रहण करने वाले अन्य किसी की अनुमोदना भी करता है।

अथवा "से नाईए नाईयावए" इन पदों की संस्कृत छाया "स न अद्यात् न आदयेत्" यह भी है, इसका अर्थ इस प्रकार है–इङ्गाल धूम आदि पांच प्रकार के दोषों से दूषित आहार को न स्वयं करे और न

પ્રતિભાસિત વાતને સારી રીતે જાણે છે, અથવા પ્રતિલેખન, પ્રતિક્રમણાદિ ક્રિયાઓના ઉચિત અવસરનો જે જ્ઞાતા છે, એ વાત "अयं सन्धिरिति अद्राक्षीत्" આ પદથી પ્રદર્શિત કરવામાં આવેલ છે. આ પ્રકારના જે અણગાર છે તે અકલ્પનીય આહારાદિકને સ્વયં ગ્રહણ કરતા નથી, કારણ કે સદોષ આહારનું ગ્રહણ કરવું અણગાર માટે શાસ્ત્રમા નિષિદ્ધ બતાવેલ છે તેનુ કારણ ષટ્કાયના જીવોનો આરંભ અણગારે પહેલાંથી જ છોડી આપેલ છે. તે સદોષ આહાર પોતે ગ્રહણ નથી કરતા. બીજાથી ગ્રહણ નથી કરાવતા, અને આ પ્રકારના આહાર ગ્રહણ કરવાવાળા અન્ય કોઈની અનુમોદના પણ નથી કરતા

અથવા 'से नाईए नाईयावए" આ પદોની સંસ્કૃત છાયા "न अद्यात् न आदयेत्" એ પણ છે એનો અર્થ આ પ્રકારે છે ઇંગાલ, ધૂમ આદિ પાંચ પ્રકારના દોષોથી દૂષિત આહારને ન સ્વયં કરે અને બીજાથી કરાવે નહિ, તથા

द्धाहारं परिज्ञाय=ज्ञ-परिज्ञया ज्ञात्वा निरामगन्धः, आमगन्धादशुद्धाहाराभ्निर्गतो यः स निरामगन्धः=उद्गमोत्पादनैषणागतद्विचत्वारिंशद्दोषदूषिताहाराग्राहकः सन् 'परिव्रजेत्'-परि=समन्ताद् व्रजेत्=विहरेत् रत्नत्रयसमाराधनतत्परो भवेदिति भावः। तीर्थङ्करनिर्दिष्टे समुचितावसरे प्रतिलेखन-प्रतिक्रमणादिक्रियां कुर्वन्नगार आर्यदेशोत्तमकुलादिकं मोक्षकारणं प्राप्य संसारपारावारमुत्तीर्य च सन्धिस्थानीये तत्तीरे वर्तमानो निखिलकर्मक्षयं कृत्वा ततो निष्क्रमितुकामोऽस्मीत्येवं परिज्ञावान् 'अधःकर्मादिदोषदूषिताहारो विषभक्षणमिवात्मगुणघातकः' इति सम्यगालोच्य तादृशमाहारं त्रिकरणत्रियोगैः परित्यज्य परिशुद्धमाहारादिकं भिक्षमाणो विहरेदिति समुदितार्थः ॥ सू० २ ॥

दूसरों को करावे, तथा करने वाले किसी अन्य की अनुमोदना भी न करे। "सर्वामगन्धं परिज्ञाय निरामगन्धः परिव्रजेत्" इसका अर्थ है अशुद्धआहार, अर्थात ज्ञ-परिज्ञाद्वारा इस प्रकार के आहार को अशुद्ध जानकर 'निरामगन्धः'-अशुद्ध आहार से भिन्न शुद्ध आहार को कि जो उद्गम (१६) उत्पादन (१६) एषणा (१०) संबंधी बयालीस (४२) दोषों से रहित होता है ग्रहण करे। यदि इस प्रकार के आहार का लाभ संयमी को नहीं होता है तो वह इस दूषित आहार को छोड़कर अपने रत्नत्रय की आराधना में तत्पर रहे। तीर्थंकर प्रभुने प्रतिलेखनादि क्रियाओं का जो समय निश्चित कर दिया है उस समय में उन२ क्रियाओं को करने वाला, तथा आर्य क्षेत्र का लाभ, उत्तम कुल में जन्म, रत्नत्रय की प्राप्ति आदि मोक्ष के कारणभूत संधिस्थानों को जिसने पाया है ऐसा अनगार

કરવાવાળા બીજા કોઈની અનુમોદના પણ ન કરે "सर्वामगन्धं परिज्ञाय निरामगन्धः परिव्रजेत्" આનો અર્થ છે અશુદ્ધ આહાર અર્થાત્ ज्ञ-પરિજ્ઞાદ્વારા આ પ્રકારના આહારને અશુદ્ધ જાણીને निरामगन्ध- અશુદ્ધ આહારથી ભિન્ન શુદ્ધ આહારને કે જે ઉદ્ગમ (૧૬) ઉત્પાદન (૧૬) એષણા (૧૦) સંબંધી ૪૨ બેતાલીસ દોષોથી રહિત હોય છે તેને ગ્રહણ કરે છે. કદાચ આ પ્રકારના આહારનો લાભ સંયમીને ન થાય તો તે આવા દૂષિત આહારને છોડીને પોતાના રત્નત્રયની આરાધનામાં તત્પર રહે

તીર્થંકર પ્રભુએ પ્રતિલેખનાદિ ક્રિયાઓનો જે સમય નિશ્ચિત કરી આપ્યો છે તે સમયમાં તે તે ક્રિયાઓને કરવાવાળા, તથા આર્યક્ષેત્રનો લાભ, ઉત્તમ કુળમાં જન્મ રત્નત્રયની પ્રાપ્તિ આદિ મોક્ષના કારણભૂત સંધિસ્થાનોને જેણે

निरामगन्ध इति निषेधे आमपदेन हननकोटित्रिकं, गन्धपदेन पचनकोटित्रिकं च प्रतिषिध्य क्रयणकोटित्रिकं निषेधयितुमुपदर्शयति–'आदिस्समाणे' इत्यादि।

मूलम्–**आदिस्समाणे कयविक्कयेसु से न किणे न किणावए किणंतं न समणुजाणए ॥ सू० ३ ॥**

छाया—आदिश्यमानः क्रयविक्रययोः स न क्रीणीयात्, न क्रापयेत्, क्रीणन्तं न समनुजानीयात् ॥ सू० ३ ॥

टीका—'आदिश्यमान' इति। क्रयविक्रययोः, क्रयश्च विक्रयश्चानयोरितरेतरयोगद्वन्द्वे क्रयविक्रयौ, तयोः–आदिश्यमानः=व्यपदेशमलभमानः–'अयं क्रयविक्रयकर्ते'–ति व्यपदेशभाग् न भवतीत्यर्थः ॥

'सकल कर्म को नाश कर मैं इस संसारसमुद्र से पार होने की दृढ भावना वाला हूँ' इस प्रकार के संसारसमुद्र के पार जाने के अभिप्राय से जो समन्वित हो रहा है वह अनगार आधाकर्मादि दोष से दूषित आहार को विषभक्षण की तरह आत्मगुण का घातक जानकर तीन करण और तीन योग से उसका परित्याग ही कर देवे, और शुद्ध निर्दोष आहार की प्राप्ति से अपने शरीर की यात्रा का निर्वाह करता हुआ संयममार्ग में विचरे ॥ सू० २ ॥

'निरामगन्ध' इस निषेध में 'आम' पद से हननकोटित्रिक तथा 'गन्ध' पद से पचनकोटित्रिक का प्रतिषेध करके क्रयणकोटित्रिक का निषेध करने के लिये सूत्रकार कहते हैं–'आदिस्समाणे' इत्यादि।

क्रय शब्द का अर्थ खरीदना और विक्रय शब्द का अर्थ वेचना

મેળવ્યા છે એવા અણુગાર "સકલ કર્મનો નાશ કરી હું આ સંસારસમુદ્રથી પાર થવાની દ્રઢ ભાવનાવાળો છું" આ પ્રકારે જે સંસાર સમુદ્રથી પાર જવાના અભિપ્રાયથી જે સમન્વિત થયેલ છે તે અણુગાર આધાકર્માદિ દોષથી દૂષિત આહારને વિષભક્ષણની માફક આત્મગુણના ઘાતક જાણીને ત્રણ કરણ અને ત્રણ યોગથી તેનો પરિત્યાગ કરે, અને શુદ્ધ નિર્દોષ આહારની પ્રાપ્તિથી પોતાના શરીરની યાત્રાનો નિર્વાહ કરીને સંયમ માર્ગમાં વિચરે ॥ સૂ૦ ૨ ॥

निरामगन्ध આ નિષેધમાં આમ–પદથી હનનકોટિત્રિક તથા ગંધ–પદથી પચનકોટિ ત્રિકનો પ્રતિષેધ કરીને ક્રયણકોટિત્રિકનો નિષેધ કરવાને માટે સૂત્રકાર કહે છે—'अदिस्समाणे' ઇત્યાદિ

ક્રય શબ્દનો અર્થ ખરીદવું. અને વિક્રય શબ્દનો અર્થ વેચવું, જે ક્રય-

यद्वा-' अदृश्यमानः ' इतिच्छाया, क्रय-विक्रययोः अदृश्यमानः=द्रव्याद्यभावा-त्क्रयविक्रयव्यवहारेऽदृश्यमानोऽकिञ्चनः सः=अनगारः आहारादिकं न क्रीणीयात् नान्यं क्रापयेत्, क्रीणन्तमन्यं न समनुजानीयात्=नानुमोदयेत् । एतेन हननादि-नवकोटिपरिशुद्धमाहारादिकं परिगृह्याङ्गारधूमादिदोषरहितं मुनिर्भुञ्जीतेति निगूढार्थः। अत्र क्रयपदेनोद्गमदोषाणां ग्रहणं, तेन चोत्पादनैषणादोषाः संगृहीता इति सूत्र-तात्पर्यम् ॥ सू० ३ ॥

है । जो क्रय-विक्रयरूप व्यापार को करता है वह व्यवहार में वेचने-खरीदने वाला कहा जाता है। मुनि, जो सर्वसावद्य क्रियाओं के त्यागी हो चुके हैं वे, क्रय-विक्रय रूप सावद्य व्यापार को नहीं कर सकते हैं। इस लिये सूत्रकार यहां इस बात का प्रदर्शन करते हुए कहते हैं कि-अनगार शुद्ध आहार के न मिलने पर आहारादिक अन्य से न खरीदे, और मिले हुए को अन्य किसी को न वेचे । क्योंकि इस प्रकार के व्यवहार करने से उसमें क्रय विक्रय का दोष लागू होता है, जो सिद्धान्तदृष्टि से मुनि के आचार से सर्वथा निषिद्ध है। अथवा " अदिस्समाणे " इस पद की संस्कृत छाया " अदृश्यमानः " यह भी होती है। इसका भाव यह है कि-अनगार अपने पास किसी भी प्रकार का द्रव्यादिक तो रखते ही नहीं हैं, क्योंकि वे सकल परिग्रह के त्यागी होते हैं, सचित्त अचित्त आदि समस्त परिग्रह के छोड़ने से ही उनमें अपरिग्रहता आती है। इसीको सूत्रकार यहां पर प्रकट करते हुए कहते हैं कि-जब मुनिके पास

વિક્રય રૂપ વ્યાપાર કરે છે તે વ્યવહારમાં વેચવાખરીદવાવાળા કહેવાય છે. મુનિ જે સર્વ સાવદ્ય ક્રિયાઓના ત્યાગી બનેલ છે તે ક્રય-વિક્રયરૂપ સાવદ્ય વ્યાપારને કરી શકતા નથી, માટે સૂત્રકાર આ ઠેકાણે આ વાતનુ પ્રદર્શન કરીને કહે છે કે-અણગાર શુદ્ધ આહાર ન મળવાને કારણે આહારાદિક બીજાથી ખરીદાવી શકે નહિ, અને મળેલ હોય તે એનાથી બીજાને વેચી શકાય નહિ કારણ કે આ પ્રકારનો વ્યવહાર કરવાથી તેમા ક્રય-વિક્રયનો દોષ લાગુ પડે છે, જે સિદ્ધાન્ત-દૃષ્ટિથી મુનિના આચારથી સર્વથા નિષિદ્ધ છે અથવા " अदिस्समाणे " આ પદની સસ્કૃત છાયા " अदृश्यमान. " એ પણ થાય છે. તેનો ભાવ એ છે કે-અણગાર પોતાની પાસે કોઇપણ પ્રકારનું દ્રવ્યાદિક તો રાખતા જ નથી, કારણ કે તે સકળ પરિગ્રહના ત્યાગી હોય છે. સચિત્ત અચિત્ત આદિ સમસ્ત પરિગ્રહના છોડવાથી જ તેનામાં અપરિગ્રહતા આવે છે માટે સૂત્રકાર આ ઠેકાણે પ્રગટ કરતાં કહે છે કે-જ્યારે તેની પાસે લેણદેણનો વ્યવહાર કરવામાં સહાયક બાહ્ય

लेन-देन के व्यवहार करने में सहायक बाह्य द्रव्यादिक सामग्री नहीं है तो वह उस प्रकार के व्यवहार करने में सर्वथा अकिञ्चित्कर है। तब शुद्ध निर्दोष आहार के न मिलने पर वह उस प्रकार की आहारादिक सामग्री को न तो स्वयं खरीदता है, और न दूसरों से खरीद करवाता है, और खरीद करते हुए अन्य को न भला जानता है, अतः नवकोटि-विशुद्ध आहार की ही उसे गवेषणा करनी चाहिये, और उसके प्राप्त होने पर मात्रानुसार उसे ग्रहण कर अपने संयम की रक्षा करने में ही सावधान रहना चाहिये। इसी को प्रकट करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि-

वह अनगार द्रव्यादिक के अभाव से क्रय विक्रय के व्यवहार में अकिञ्चन है, इसलिये आहारादिक को न स्वयं खरीदे और न दूसरों से उसे खरीदवावे, तथा इसे खरीदने वाले अन्य किसी की अनुमोदना भी न करे। इससे इस बात की पुष्टि की है कि-अनगार मन वचन काया से कृत, कारित एवं अनुमोदना द्वारा हननादि तीन, पचनादि तीन क्रयणादि तीन, एवं नवकोटि से विशुद्ध आहारादिक प्राप्त कर शरीर की पुष्टि के अभिप्राय से नहीं, किन्तु संयम की रक्षा के अभिप्राय से ही अंगारधूमादिदोषरहित हो उसका सेवन करे। सूत्र में कहे हुए क्रय विक्रय

દ્રવ્યાદિક સામગ્રી નથી તો તે એ પ્રકારનો વ્યવહાર કરવામાં સર્વથા અકિંચિત્કર છે, માટે શુદ્ધ નિર્દોષ આહારના ન મળવાથી તે એવા પ્રકારની આહારાદિક સામગ્રીને પોતે નથી ખરીદી શકતા, અને બીજાથી ખરીદાવી પણ શકતા નથી, અને ખરીદ કરવાવાળા બીજાને ભલો પણ જાણતા નથી, માટે નવકોટિવિશુદ્ધ આહારની જ તેણે ગવેષણા કરવી જોઈએ, અને તેના પ્રાપ્ત થવાથી માત્રાનુસાર તેને ગ્રહણ કરીને પોતાની સંયમની રક્ષા કરવામાં જ સાવધાન રહેવું જોઈએ. તેને પ્રગટ કરીને સૂત્રકાર કહે છે કે—

તે અણગાર દ્રવ્યાદિના અભાવથી ક્રય-વિક્રયના વ્યવહારમાં અકિંચન છે, માટે આહારાદિકને પોતે ન ખરીદે અને બીજાથી ખરીદાવે નહિ, તથા તે ખરીદવાવાળા બીજા કોઈની અનુમોદના પણ ન કરે. આથી આ વાતની પુષ્ટિ કરી છે કે—અણગાર મન, વચન કાયાથી કૃત કારિત અગર અનુમોદના દ્વારા હનનાદિ ત્રણ, પચનાદિ ત્રણ, ક્રયણાદિ ત્રણ, એમ નવ કોટિથી વિશુદ્ધ આહારાદિક પ્રાપ્ત કરી શરીરની પુષ્ટિના અભિપ્રાયથી નહિ પણ સંયમની રક્ષાના અભિપ્રાયથી અંગારધૂમાદિ-દોષરહિત થઈને તેનું સેવન કરે. સૂત્રમાં કહેલા ક્રય વિક્રય પદથી ઉદ્ગમ

पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टोऽनगारः कीदृशो भवतीत्याह—' से भिक्खू ' इत्यादि।

मूलम्—से भिक्खू कालन्ने बलन्ने मायन्ने खेयन्ने खणयन्ने विणयन्ने ससमयन्ने परसमयन्ने भावन्ने परिग्गहं अममायमाणे कालाणुट्ठाई अपडिण्णे दुहओ छेत्ता नियाइ ॥ सू० ४ ॥

छाया—स भिक्षुः कालज्ञो बलज्ञो मात्राज्ञः खेदज्ञः क्षणकज्ञो विनयज्ञः स्वसमयज्ञः परसमयज्ञो भावज्ञः परिग्रहममममायमानः कालानुष्ठायी, अप्रतिज्ञः, द्विधातश्छित्त्वा नियाति ॥ सू० ४ ॥

टीका—'स भिक्षु'-रित्यादि। सः-पूर्वोक्तः समुत्थितेत्यादिमुनिगुणगणयुक्तो भिक्षुः=चारित्रवान् कालज्ञः-कालं=प्रतिलेखनादिसमयं जानातीति कालज्ञः।

अथवा कालं=भिक्षाकालं जानातीति कालज्ञः, अकाले भैक्षाचरणेनात्मनः क्लेशाधिगमो ग्रामनिन्दा च जायते, ततश्च भगवदाज्ञाविराधकत्वेन खेदप्रकटनेन च चारित्रमालिन्यं भवत्यतोऽनुचितकाले भैक्षादिकं नाचरणीयमित्याद्यभिज्ञ इत्यर्थः। यद्वा कालं=सुभिक्षं दुर्भिक्षं दिनप्रमाणं रात्रिप्रमाणं वा जानातीति कालज्ञः।

पद से उद्गम दोषों का ग्रहण होता है, उससे उत्पादन और एषणा दोषों का भी ग्रहण हो जाता है ॥ सू० ३ ॥

इन पूर्वोक्त विशेषणों से युक्त अनगार कैसा होता है? इसका खुलासा करते हुए सूत्रकार कहते हैं—'से भिक्खू' इत्यादि।

वह चारित्रवान् अनगार कि जिसका वर्णन 'समुट्ठिए' इस द्वितीय सूत्र में किया जा चुका है वह; कालज्ञ-प्रतिलेखनादि क्रियाओं के अवसर का ज्ञाता होता है। अथवा 'कालज्ञ'-शब्द का अर्थ-काल का जानने वाला-ऐसा है। इससे यह बात सूत्रकार प्रकट करते हैं कि-साधु को भिक्षाचरण के काल में ही भिक्षा के लिये गमन करना चाहिये; क्योंकि अकाल में उसके निमित्त

દોષોનું ગ્રહણ થાય છે તેનાથી ઉત્પાદન અને એષણાદિ દોષોનો પણ ગ્રહણ થઈ જાય છે. (સૂ. ૩)

એવા પૂર્વોક્ત વિશેષણોથી યુક્ત અણુગાર કેવા હોય છે? તેનો ખુલાસો કરતાં સૂત્રકાર કહે છે—' से भिक्खू ' ઈત્યાદિ.

તે ચારિત્રવાન અણુગાર કે જેનું વર્ણન ' समुट्ठिए ' આ બીજા સૂત્રમાં કરવામાં આવેલ છે તે ' कालज्ञ '-' પ્રતિલેખનાદિ ક્રિયાઓના અવસરના જ્ઞાતા ' હોય છે, અથવા ' कालज्ञ ' શબ્દનો અર્થ ' કાળના જાણવાવાળા ' હોય છે. એથી આ વાત સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે કે—સાધુએ ભિક્ષાચરણના કાલમાં જ ભિક્ષા માટે જવું જોઈએ,

'बलज्ञः' बलं=स्वशक्तिं परशक्तिं वा यो जानाति स बलज्ञः=स्व-परबलाभिज्ञः, 'मात्राज्ञः' मात्रां जानाति यः स मात्राज्ञः, यावत्प्रमाणाहारादिग्रहणेन गृहस्थो न पुनरारम्भे प्रवर्तते। यद्वा—स्वसंयमयात्रानिर्वाहो यावताऽऽहारेण भवति, तावन्मात्राज्ञानकुशलइत्यर्थः। 'खेदज्ञः' खेदम्=अभ्यासं, संसारपरिभ्रमणजन्यं श्रमं वा

किया गया गमन एक तो अपने लिये क्लेशकारक होना है, दूसरे इस प्रकार की प्रवृत्ति से गाम में उस साधु की निंदा भी होती है। इसलिये आहार लेने के लिये जो मार्ग शास्त्रानुसार विहित है उससे विपरीत प्रवृत्ति करने वाले संयमी-साधु के चारित्र में भगवान् की आज्ञा का विराधक होने की वजह से, और अपने में खेद उत्पन्न करने के निमित्त से मलिनता आती है, इसलिये अकाल में भिक्षावृत्ति नहीं करनी चाहिये। 'कालज्ञ' शब्द का अर्थ यह भी होता है–जो सुभिक्ष-दुर्भिक्ष, दिनप्रमाण एवं रात्रि के प्रमाण को जानता है।

अपनी शक्ति एवं परकी शक्ति को जो जानता है वह बलज्ञ है। जितने प्रमाण का आहार लेने से गृहस्थ फिर दुवारा आरम्भ न करे, अथवा जितने आहार के ग्रहण से अपनी संयमयात्रा का निर्वाह हो सकता है, उतनी ही मात्रा में आहार लेना चाहिये। इस प्रकार की विधि में जो कुशल होता है उसका नाम मात्राज्ञ है।

अभ्यास, अथवा संसार में परिभ्रमण से उत्पन्न हुए क्लेश या षट्-

કારણ કે અકાળે તે નિમિત્તે થએલુ ગમન એક તો પોતાને માટે ક્લેશકારક થાય છે, બીજું આવા પ્રકારની પ્રવૃત્તિથી ગામમાં તે સાધુની નિંદા પણ થાય છે. માટે આહાર લેવા માટે જે માર્ગ શાસ્ત્રાનુસાર વિહિત છે તેનાથી વિપરીત પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા સંયમી સાધુના ચારિત્રમાં ભગવાનની આજ્ઞાના વિરાધક હોવાના મતલબથી, અને પોતાનામાં ખેદ ઉત્પન્ન કરવાના નિમિત્તથી મલિનતા આવે છે માટે અકાળમાં ભિક્ષાવૃત્તિ કરવી જોઇએ નહિ.

કાળજ્ઞ શબ્દનો અર્થ એ પણ થાય છે—જે સુભિક્ષ–દુર્ભિક્ષ દિનપ્રમાણ અને રાત્રિના પ્રમાણને જાણે છે.

પોતાની તેમજ બીજાની શક્તિને જે જાણે છે તે બલજ્ઞ છે, જેટલા પ્રમાણમાં આહાર લેવાથી ગૃહસ્થ ફરીથી બીજી વાર આરંભ ન કરે, અથવા જેટલા આહારના ગ્રહણથી પોતાની સંયમયાત્રાનો નિર્વાહ થાય છે એટલી જ માત્રામાં આહાર લેવો જોઇએ. આ પ્રકારની વિધિમાં જે કુશળ છે તેનું નામ માત્રાજ્ઞ છે.

અભ્યાસ અથવા સંસારમાં પરિભ્રમણથી ઉત્પન્ન થતાં ક્લેશ, અગર ષટ્કાયિક

यो जानाति स खेदज्ञः, यद्वा-खेदं=षड्जीवनिकायदुःखं जानातीति खेदज्ञः। यद्वा-'क्षेत्रज्ञ' इति-च्छाया, क्षेत्रमुत्तमकुलादिरूपं जानाति यः स क्षेत्रज्ञः। यद्वा-भैक्षादिलाभक्षेत्रपरिज्ञातेत्यर्थः। 'क्षणकज्ञः' क्षण एव क्षणकः प्रतिलेखन-भैक्षादिकर्तव्यकालस्तं जानातीति क्षणकज्ञः=नमस्कारपौरुष्यादिदशविधप्रत्याख्याना-वसरज्ञः। 'विनयज्ञः' विनयं द्रव्यक्षेत्रकालभावपेक्षया गुरुसमीपे यथोक्तप्रति-पत्तिलक्षणं जानाति यः स विनयज्ञः। यद्वा-विनयज्ञः=अभ्युत्थानाद्यभिवन्द-नाञ्जलिकरणादिविज्ञाता। यद्वा-गुरुसमीपे गर्वं न कुर्यान्न दीनो भवेत्, न मिथो-

---

कायिक जीवों के दुःखों का जो ज्ञाता है उसका नाम खेदज्ञ है। अथवा-"खेयन्ने" इसकी संस्कृत छाया "क्षेत्रज्ञः" यह भी होती है, जो उत्तम कुलादिकरूप क्षेत्र का ज्ञाता, अथवा भिक्षादिक लाभ के क्षेत्र को जो जानता है वह क्षेत्रज्ञ है।

प्रतिलेखन एवं भिक्षा करने योग्य काल का नाम क्षण है, इसको जो जानने वाला है उसका नाम क्षणज्ञ है। नमस्कार, पौरुष्यादि दश प्रकार के प्रत्याख्यान के अवसर को जानना यह इसका फलितार्थ है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से गुरु का आदर सत्कार करना जो जानता है उसका नाम विनयज्ञ है। गुरु जिस समय अपनी तरफ आवें या खड़े हों उस समय खड़े हो जाना, नमस्कार करना, हाथ जोडना आदि भी विनय है, इस प्रकार के व्यवहार को जानने वाला भी विनयज्ञ कहलाता है। अथवा-गुरु महाराज के समीप अहंकार न करना, दीनता जाहिर नहीं करनी, न उनकी गुप्त बात किसी को कहनी, इत्यादिरूप भी

જીવોના દુઃખોનો જે જ્ઞાતા છે તેનું નામ ખેદજ્ઞ છે. અથવા "खेयन्ने" તેની સંસ્કૃત છાયા 'क्षेत्रज्ञ.' એ પણ થાય છે. જે ઉત્તમકુલાદિરૂપ ક્ષેત્રનો જ્ઞાતા, અથવા ભિક્ષાદિક લાભના ક્ષેત્રનો જે જાણકાર છે તે ક્ષેત્રજ્ઞ છે.

પ્રતિલેખન અને ભિક્ષા કરવાયોગ્ય કાલનું નામ ક્ષણ છે, તેના જે જાણકાર છે તેનુ નામ ક્ષણજ્ઞ છે. નમસ્કાર પૌરૂષ્યાદિ દશ પ્રકારના પ્રત્યાખ્યાનના અવસરને જાણવો તે તેનું ફલિતાર્થ છે. દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવની અપેક્ષાથી ગુરૂનો આદર સત્કાર કરવો જે જાણે છે તેનું નામ વિનયજ્ઞ છે, ગુરૂ જે વખતે પોતાની તરફ આવે અગર ઉભા હોય તે વખતે ઉભા થવું, નમસ્કાર કરવો, હાથ જોડવા આદિ પણ વિનય છે. આ પ્રકારના વ્યવહારને જાણવાવાળા પણ વિનયજ્ઞ કહેવાય છે. અથવા ગુરૂ મહારાજની સમીપ અહંકાર ન કરવો, દીનતા જાહેર ન કરવી, તેની કોઇ ગુપ્ત વાત બીજાને ન કહેવી, ઇત્યાદિરૂપ પણ વિનય છે. જે આ પ્રકારના

रहस्यादि ब्रुवीतेत्यादिरूपो विनयस्तदभिज्ञ इत्यर्थः। 'स्वसमयज्ञः' स्वं=निजं समयं=सिद्धान्तं जानाति यः स स्वसमयज्ञः, एवं परसमयज्ञः-अन्यदीयसिद्धान्तज्ञाननिपुणः, 'स्वसिद्धान्ते तत्परता परसिद्धान्ते चोपेक्षा कार्या' इत्याद्यभिज्ञः, यथा परसमये स्नानादेरवश्यकर्तव्यत्वेन प्रतिपादितेऽपि स्वसमये तस्य मददर्पकरत्वेन मुनिना तत्परित्याज्यमेवेति यो वेत्तीत्यर्थः। उक्तञ्च—

स्नानं मददर्पकरं, कामाङ्गं प्रथमं स्मृतम्।
तस्मात्कामं परित्यज्य, नैव स्नान्ति दमे रताः। १। इति

विनय है। जो इस प्रकार के विनय का ज्ञाता होता है उसका नाम भी विनयज्ञ है। अपने सिद्धान्त और पर के सिद्धान्त के ज्ञाता को स्वसमयज्ञ एवं परसमयज्ञ कहते हैं। जो स्वसिद्धान्त का ज्ञाता होगा उसके हृदय में परसिद्धान्त के प्रति उपेक्षाभाव रहेगा-द्वेष उत्पन्न नहीं होगा। स्वसिद्धान्त के बोध से युक्त साधु के हृदय में परसिद्धान्तप्रतिपादित तत्त्वों के प्रति न राग होगा और न द्वेष ही-उनके प्रति उसकी सदा माध्यस्थ्य भावना ही रहेगी। समकिती के लिये परसिद्धान्त के तत्त्वों का बोध ही अपने सिद्धान्त में प्रतिप्रादित तत्त्वों के स्वरूप के प्रति अधिक श्रद्धा का कारण बनता है। अन्य सिद्धान्तकारों ने साधु अवस्था में भी स्नान वगैरह करना कर्तव्य बतलाया है, तब जैनसिद्धान्त में इसे उस अवस्था में मद और दर्पकारी माना गया है, इसलिये ही साधु इस प्रवृत्ति से सदा दूर रहते हैं। कहा भी है—

"स्नानं मददर्पकरं, कामाङ्गं प्रथमं स्मृतम्।
तस्मात्कामं परित्यज्य, नैव स्नान्ति दमे रताः॥ १॥"

વિનયના જ્ઞાતા હોય છે તેનું નામ પણ વિનયજ્ઞ છે. પોતાના સિદ્ધાંતનો અને બીજાના સિદ્ધાંતનો જે જ્ઞાતા છે તેને સ્વસમયજ્ઞ અને પરસમયજ્ઞ કહે છે. જે સ્વસિદ્ધાન્તના જ્ઞાતા હશે તેના હૃદયમાં પરસિદ્ધાંત પ્રતિ ઉપેક્ષાભાવ રહેશે-દ્વેષ ઉત્પન્ન થશે નહિ. સ્વસિદ્ધાન્તના બોધથી યુક્ત સાધુના હૃદયમાં પર સિદ્ધાન્તપ્રતિપાદિત તત્ત્વો પ્રતિ રાગ અને દ્વેષ થતો નથી તેના પ્રતિ તેની સદા મધ્યસ્થ ભાવનાજ રહેશે, સમકિતી માટે પરસિદ્ધાન્તના તત્ત્વોનો બોધ પોતાના સિદ્ધાંતમાં પ્રતિપ્રદિત તત્ત્વોના સ્વરૂપ પ્રતિ અધિક શ્રદ્ધાનું કારણ બને છે. અન્ય સિદ્ધાન્તકારોએ સાધુ અવસ્થામાં પણ સ્નાન વિગેરે કરવુ, કર્તવ્ય બતાવ્યું છે, ત્યારે જૈનસિદ્ધાન્તમાં તેને તે અવસ્થામાં મદ અને દર્પકારી માનેલ છે. માટે સાધુ આવી પ્રવૃત્તિથી સદા દૂર રહે છે. કહ્યું પણ છે—

परसमयनिरसनवीतरागसमयस्थापनचतुर इति यावत् । 'भावज्ञः' भावमन्तः-करणाशयं स्वीयं परकीयं वा यो जानाति स भावज्ञः=स्वपराशयवेत्ता, एवं 'परिग्रहं' परिगृह्यते यः स परिग्रहः, यावदाहारवस्त्रपात्रादिग्रहणेन संयममात्रा निर्वहति, ततोऽधिकस्यैषणीयस्यापि मूर्च्छाभावेन ग्रहणं परिग्रहस्तम् अममायमानः=अममी-कुर्वन्, तं मनसाऽप्यनाददान इत्यर्थः ।

किञ्च-कालानुष्ठायी=शास्त्रविहितकाले कर्तव्यकरणशीलः । पूर्वं 'कालज्ञः' इति कालं जानातीति ज्ञपरिज्ञया प्रोक्तम्, अत्र चावसरेऽनुष्ठानविधायीति आसेवन

अर्थ स्पष्ट है। इस प्रकार का साधु परसिद्धान्त का निरसन और स्वसिद्धान्त का संस्थापन करने में बड़ा चतुर रहता है। अपने और पर के मानसिक अभिप्राय के ज्ञाता का नाम भावज्ञ है। जितने आहार, वस्त्र, और पात्रादिकों से संयमयात्रा निभ सकती है उससे अधिक का मूर्च्छाभाव से ग्रहण करना परिग्रह है। इस परिग्रह का जो सर्वथा त्यागी होता है-मन से भी उसे ग्रहण करने की चाहना नहीं करता है वह परिग्रह की ममता नहीं करने वाला कहलाता है। जिस प्रतिलेखनादि क्रिया के करने का जो समय शास्त्र में नियत किया गया है उसी के अनुसार अपने आवश्यक कार्यों का करने वाला साधु कालानुष्ठायी कहलाता है। कालज्ञ में और कालानुष्ठायी में यही भेद है कि-कालज्ञ तो भिक्षादि आचरण के समय का ज्ञाता होता है, और कालानुष्ठायी उस २ काल में अपने कर्तव्य कर्मों का करने वाला होता है। ज्ञ-परिज्ञा की अपेक्षा कालज्ञ

"स्नानं मदर्पकरं, कामाङ्गं प्रथमं स्मृतम् ।
तस्मात्कामं परित्यज्य, नैव स्नान्ति दमे रताः" ॥ १ ॥

અર્થ સ્પષ્ટ છે આ પ્રકારનો સાધુ પરસિદ્ધાન્તનું નિરસન અને સ્વસિદ્ધાંતનું સંસ્થાપન કરવામાં ઘણા ચતુર રહે છે પોતાના અને બીજાના માનસિક અભિપ્રાયના જ્ઞાતાનું નામ ભાવજ્ઞ છે. જેટલો આહાર, વસ્ત્ર અને પાત્રાદિકોથી સંયમ-યાત્રા નભી શકે છે તેનાથી અધિક મૂર્ચ્છાભાવથી ગ્રહણ કરવું તે પરિગ્રહ છે. આ પરિગ્રહના જે સર્વથા ત્યાગી હોય છે, મનથી પણ તે ગ્રહણ કરવાની ચાહના નથી કરતા તે પરિગ્રહની મમતા નહિ કરવાવાળા કહેવાય છે જે પ્રતિલેખનાદિ ક્રિયા કરવાનો સમય શાસ્ત્રમાં નિયત કરેલ છે તે અનુસાર પોતાના આવશ્યક કાર્યોને કરવાવાળા સાધુ કાલાનુષ્ઠાયી કહેવાય છે. કાલજ્ઞમા અને કાલાનુષ્ઠાયીમાં એ ભેદ છે કે-કાલજ્ઞ તો ભિક્ષાદિ આચરણના સમયના જ્ઞાતા હોય છે, અને કાલાનુષ્ઠાયી તે તે કાલમાં પોતાના કર્તવ્ય કર્મોના કરવાવાળા હોય છે. જ્ઞ-પરિજ્ઞાની અપેક્ષા

परिज्ञया प्रतिपादितम् । 'अपि चाप्रतिज्ञः' अविद्यमाना प्रतिज्ञा यस्य सोऽप्रतिज्ञः प्रतिज्ञा च कषायप्राबल्येन भवति। यथा क्रोधाविर्भावान्नास्तिकमतानुयायिना पालकब्राह्मणेन स्कन्दकाचार्यस्य पञ्चशतशिष्यान् तैलयन्त्रे निष्पीड्यमानानवलोक्य स्कन्दकऋषिणा सकलराजधान्या विनाशप्रतिज्ञा कृता। मानोदयाद्बाहुबलिना 'यज्ज्येष्ठोऽहं पूर्वं प्रव्रजितानष्टनवतिसंख्यकान् कनीयसः स्वभ्रातृन् न वन्दे' इति प्रतिज्ञा व्यधायि। मायोदयान्मल्लीस्वामिजीवेन पूर्वभवेऽन्यमुनीन् प्रतार्य प्रत्याख्यानप्रतिज्ञाऽकारि। लोभोदयात्सुभूमचक्रवर्तिना सप्तमखण्डसाधनप्रतिज्ञा विहिता। एवमादि-

और आसेवन-परिज्ञा की अपेक्षा कालानुष्ठायी समझना चाहिये। "अप्रतिज्ञः" जिसके प्रतिज्ञा विद्यमान नहीं है उसका नाम अप्रतिज्ञ है। प्रतिज्ञा, कषाय की प्रबलता से होती है, जैसे क्रोध के आवेश से नास्तिकमतानुयायी पालक ब्राह्मण ने स्कन्दकाचार्य के पांच सौ शिष्यों को तेल के यन्त्र में पेल दिया था। इस बात को देखकर स्कन्दकऋषि ने समस्त राजधानी को नष्ट करने की प्रतिज्ञा की थी। मानकषाय के उदय से बाहुबली महाराज ने दीक्षित अपने से छोटे (९९) निन्यानवे भाइयों को इस ख्याल से वन्दन नहीं किया था कि 'मैं इनसे बड़ा हूं-और ये मुझ से छोटे हैं'। मायाकषाय के उदय से मल्ली स्वामी के जीवने पूर्वभव में अन्य मुनियों के साथ माया करके प्रत्याख्यान की प्रतिज्ञा की थी। लोभकषाय के उदय से सुभूमचक्रवर्ती ने सप्तम खंड को साधने की प्रतिज्ञा की, इत्यादि। इस प्रकार की कषायोदयजनित प्रतिज्ञा मुनियों को नहीं करनी चाहिये, इसीलिये यहां 'अप्रतिज्ञः' यह विशेषण दिया है। अथवा

કાલજ્ઞ અને આસેવન–પરિજ્ઞાની અપેક્ષા કાલાનુષ્ઠાયી સમજવું જોઈએ. "અપ્રતિજ્ઞ જેની પ્રતિજ્ઞા વિદ્યમાન નથી તેનુ નામ અપ્રતિજ્ઞ છે. પ્રતિજ્ઞા, કષાયની પ્રબલતાથી થાય છે. જેમ ક્રોધના આવેશથી નાસ્તિકમતાનુયાયી પાલક બ્રાહ્મણ સ્કન્દકાચાર્યના પાંચસો શિષ્યોને તેલના યંત્રમાં પિલ્યા હતા, તે વાતને દેખીને સ્કન્દકઋષિએ સમસ્ત રાજધાનીને નષ્ટ કરવાની પ્રતિજ્ઞા કરી હતી માનકષાયના ઉદયથી બાહુબલિ મહારાજે દીક્ષિત પોતાનાથી નાના (૯૯) નવાણું ભાઈઓને તેવા ખ્યાલથી વંદન ન કર્યું કે "હું તેમનાથી મોટો છું અને એ મારાથી નાના છે." માયાકષાયના ઉદયથી મલ્લી સ્વામીના જીવે પૂર્વ ભવમાં અન્ય મુનિઓ સાથે માયા કરીને પ્રત્યાખ્યાન પ્રતિજ્ઞા કરી હતી. લોભકષાયના ઉદયથી સુભૂમચક્રવર્તીએ સાત ખંડ સાધવાની પ્રતિજ્ઞા કરી, ઈત્યાદિ આવા પ્રકારની કષાયોદયજનિત પ્રતિજ્ઞા મુનિઓએ કરવી જોઈએ નહિ, માટે અહીંઆ

प्रतिज्ञा मुनिना न कार्येति तात्पर्यम् । यद्वा-भैक्षाचरणादौ 'ममैवाहारादिकं स्या'-दित्यादिप्रतिज्ञा न साधीयसी । अथवा-यथा स्याद्वादसिद्धान्ते 'ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः' इत्यस्ति तत्र एकतरेणैव तदधिगम इत्यादिप्रतिज्ञा न विधेयेत्यर्थः, पञ्च-महाव्रतातिरिक्ते कस्मिंश्चिदपि विषये प्रतिज्ञा न कर्तव्या मुनिना । यदिवा अप्र-तिज्ञः=अनिदानः मायाशल्यादिरहित इत्यर्थः । ईदृशोऽनगारः किं कृत्वा विहरती-त्याह—'द्विधातः' इत्यादि, द्विधातः=उभौ रागद्वेषावित्यर्थः छित्त्वा=व्यपनीय नियाति=नि=निश्चयेन याति=मोक्षमार्गं प्राप्नोति, पूर्वगुणसम्पन्नोऽपि रागवान् द्वेषवांश्च न मोक्षं लभत इति भावः ।

भिक्षा के समय में 'मुझे ही आहारादिक मिले' ऐसी प्रतिज्ञा नहीं करनी चाहिये, क्यों कि मुनि के लिये इस प्रकार की प्रतिज्ञा करना उचित नहीं है । ज्ञान और क्रिया इन दोनों से मुक्ति का लाभ स्याद्वादसिद्धान्त में प्रतिपादित किया गया है, परन्तु इस प्रकार की प्रतिज्ञा करना कि-'सिर्फ ज्ञानमात्र से या क्रियामात्र से ही मुक्ति होती है' उचित नहीं है । मुनियों को पंचमहाव्रतों के आराधन करने के सिवाय अन्य किसी भी विषय में प्रतिज्ञा नहीं करनी चाहिये ।

अथवा "अप्रतिज्ञः" इस शब्द का अर्थ-'मायादि तीन शल्यों रहित' होता है । अनगारों का सर्व संयम शल्यत्रय से रहित होकर ही निर्मल हो सकता है । इन पूर्वोक्तविशेषणविशिष्ट अनगार ही राग और द्वेषों का उन्मूलन कर "नियाति" निश्चय से मोक्ष के मार्ग को प्राप्त करता है । रागद्वेष के उन्मूलन के अभाव में इन पूर्वोक्तगुणसम्पन्न भी अनगार

"अप्रतिज्ञ" એ વિશેષણ આપેલ છે. અથવા—ભિક્ષાસમયમાં 'મનેજ આહારાદિક મળે' એવી પ્રતિજ્ઞા કરવી જોઈએ નહિ, કારણ કે મુનિ માટે આવા પ્રકારની પ્રતિજ્ઞા કરવી ઉચિત નથી. જ્ઞાન અને ક્રિયા આ બન્નેથી મુક્તિનો લાભ સ્યાદ્વાદસિદ્ધાન્તમા પ્રતિપાદિત કરેલ છે, પરંતુ એવા પ્રકારની પ્રતિજ્ઞા કરવી કે 'ફક્ત જ્ઞાનમાત્રથી અગર ક્રિયામાત્રથી જ મુક્તિ થાય છે' તે ઉચિત નથી. મુનિયોએ પંચ મહાવ્રતોનું આરાધન કરવા સિવાય બીજા કોઈ પણ વિષયમાં પ્રતિજ્ઞા નહિ કરવી જોઈએ

અથવા "अप्रतिज्ञः" આ શબ્દનો અર્થ 'માયાદિ ત્રણ શલ્યોથી રહિત' થાય છે. અણગારોનો સર્વ સંયમ શલ્યત્રયથી રહિત બનીને જ નિર્મળ થઈ શકે છે. આ પૂર્વોક્તવિશેષણવિશિષ્ટ અણગાર જ રાગ અને દ્વેષનું ઉન્મૂલન કરી "नियाति" નિશ્ચયથી મોક્ષના માર્ગને પ્રાપ્ત કરે છે રાગ દ્વેષના ઉન્મૂલનના

ननु शास्त्रे नानाविधाभिग्रहरूपा प्रतिज्ञाऽभिहिताऽत्र तु ‘ मुनिरप्रतिज्ञो भवे’-दिति कथितं तत्कथम् ? इत्यत्राह–द्विधेति, अत्र पक्षे द्विधेतिच्छाया, द्विधा=द्विप्रकारेण रागेण द्वेषेण च प्रतिज्ञां छित्त्वा=अकृत्वा नियाति=नियतं याति=संयमे विहरति, रागद्वेषवशेन मुनिरनेषणीयमपि गृह्णाति भुङ्क्ते चेति रागद्वेषवती प्रतिज्ञा मुनिना न विधेयेति भावः ॥ सू० ४ ॥

आचारविशेषं पुनरपि दर्शयति–‘ वत्थं ’ इत्यादि ।

मूलम्–वत्थं पडिग्गहं कंबलं पायपुंछणं उग्गहं च कडासणं एएसु चेव जाएज्जा ॥ सू० ५ ॥

छाया—वस्त्रं पतद्ग्रहं कम्बलं पादप्रोञ्छनमवग्रहं च कटासनमेतेषु चैव याचयेत् ॥ सू० ५ ॥

मुक्ति के लाभ से वंचित माना गया है ।

प्रश्न—शास्त्र में अनेक प्रकार की अभिग्रहरूप प्रतिज्ञाओं का कथन किया गया है, फिर यहां पर “ मुनिरप्रतिज्ञो भवेत् ” मुनि को प्रतिज्ञा-संपन्न नहीं होना चाहिये, यह कैसे कहा गया है ? ।

उत्तर—राग और द्वेष से जो प्रतिज्ञा की जाती है वह संयमी मुनि के लिये उचित नहीं है । तभी वह अपने संयम मार्ग में विचर सकता है । राग और द्वेष के वश होकर की गई प्रतिज्ञा से मुनि अनेषणीय भी आहारादिक को ग्रहण कर लेता है, इसलिये रागद्वेषवाली प्रतिज्ञाओं के करने का निषेध किया गया है । यह भाव “दुहओ छेत्ता नियाइ” इन पदों से प्रकट होता है अतः इस प्रकार की प्रतिज्ञा मुनिजनों को नहीं करनी चाहिये ॥ सू० ४ ॥

અભાવમાં આ પૂર્વોક્તગુણસંપન્ન પણ અણગાર મુક્તિના લાભથી વંચિત માનેલ છે.

પ્રશ્ન—શાસ્ત્રમાં અનેક પ્રકારની અભિગ્રહરૂપ પ્રતિજ્ઞાનું કથન કરેલ છે, વળી આ ઠેકાણે “ मुनिरप्रतिज्ञो भवेत् ” મુનિએ પ્રતિજ્ઞાસંપન્ન નહિ બનવું જોઈએ, એ કેમ કહેવામા આવેલ છે?

ઉત્તર—રાગ અને દ્વેષથી જે પ્રતિજ્ઞા કરવામાં આવે છે, સંયમી મુનિએ તેવી પ્રતિજ્ઞા નહિ કરવી જોઈએ. તો જ તે પોતાના સંયમ માર્ગમાં વિચરી શકે છે. રાગ અને દ્વેષથી કરેલી પ્રતિજ્ઞાથી મુનિ અનેષણીય પણ આહારાદિક ગ્રહણ કરી લે છે. માટે રાગ દ્વેષવાળી પ્રતિજ્ઞાઓ કરવાનો નિષેધ કરેલ છે. આ ભાવ “ दुहओ छेत्ता नियाइ ” એ પદોથી પ્રગટ થાય છે. માટે આવા પ્રકારની પ્રતિજ્ઞા મુનિજનોએ નહિ કરવી જોઈએ. ॥ સૂ૦ ૪ ॥

टीका—'वस्त्र'-मित्यादि । मुनिर्यथाऽऽहारं याचयेत् गृहस्थेभ्यस्तथैव एतेषु चैव =गृहपतिष्वेव वस्त्रं=वसनं पतद्ग्रहं=पात्रं वस्त्रग्रहणेन वस्त्रैषणा पतद्ग्रहग्रहणेन च पात्रैषणा च सङ्गृहीता, कम्बलं=रल्लकादिकम्, एतेनोर्णावस्त्रग्रहणम्, पादप्रोञ्छनं= रजोपहरणम्, अवग्रहम्=अवगृह्यते यः सोऽवग्रहो वसतेराज्ञा, शक्रेन्द्रराजगृहस्थ-शय्यातरसाधर्मिकभेदेनावग्रहः पञ्चधा, एतेनावग्रहप्रतिज्ञाः सर्वाः सङ्गृहीताः, तम-वग्रहम्, अपि च कटासनं कटश्च=संस्तारश्च आसनं च=पीठफलकादिकं चानयोः समाहारद्वन्द्वस्तत्कटासनम्, आस्यतेऽत्रेत्यासनं शय्या वा, संस्तारः सार्द्धहस्तद्वय-प्रमाणः, शय्या च शरीरप्रमाणा, एतत्सर्वं याचयेत्=गवेषयेत्, एषणीयं वस्त्रादिकं याचयेत् नानेषणीयम्, इति ॥ सू० ५ ॥

संयमी मुनि के विशेष आचार को पुनरपि प्रदर्शित करते हुए सूत्र-कार कहते हैं—'वत्थं' इत्यादि ।

अनगार जिस प्रकार गृहस्थों से आहार की याचना करता है उसी प्रकार उनसे वस्त्र, पात्र, कंबल, रजोहरण, रहने के लिये वसति-स्थान की और कटासन की भी याचना करे । सूत्र में वस्त्र के ग्रहण से वस्त्रैषणा और पात्र के ग्रहण से पात्रैषणा का ग्रहण किया गया है । कंबल से ऊनी कंबल जानना चाहिये, रेशमी आदि कम्बल नहीं । अवग्रह शब्द का अर्थ-वसति-स्थान में ठहरने की आज्ञा । अवग्रह, शक्रेन्द्र, राजा, गृहस्थ, शय्यातर, और साधर्मिक के भेद से ५ प्रकार का है । अवग्रह (आज्ञा) शब्द से अवग्रहसम्बन्धी समस्त प्रतिज्ञाओं का ग्रहण हुआ है । कट से संस्तारक एवं आसन से पीठफलकादि जानना चाहिये । आसन से अपने शरीरप्रमाण शय्या, तथा संस्तार से (२॥) ढाई हाथका

સંયમી મુનિના વિશેષ આચારને પુનરપિ પ્રદર્શિત કરતાં સૂત્રકાર કહે છે- 'वत्थं' ઈત્યાદિ

અણુગાર જેવી રીતે ગૃહસ્થોથી આહારની યાચના કરે છે તે પ્રકારે તેનાથી વસ્ત્ર, પાત્ર, કંબલ, રજોહરણ, રહેવાને મકાનની અને કટાસનની પણ યાચના કરે. સૂત્રમાં વસ્ત્રના ગ્રહણથી વસ્ત્રૈષણા અને પાત્રના ગ્રહણથી પાત્રૈષણાનું ગ્રહણ કહેવાય છે. કંબલથી ઉનની કંબલ જાણવી જોઈએ, રેશમી આદિ કંબલ નહિ. અવગ્રહ શબ્દનો અર્થ-વસતિ-સ્થાનમાં રહેવાની આજ્ઞા અવગ્રહ-શક્રેન્દ્ર, રાજા, ગૃહસ્થ, શય્યાતર, અને સાધર્મિઓના ભેદથી ૫ પ્રકારના છે. અવગ્રહ (આજ્ઞા) શબ્દથી અવગ્રહસંબંધી સમસ્ત પ્રતિજ્ઞાઓનું ગ્રહણ છે. કટથી સંસ્તારક અને આસનથી પીઠ-ફલકાદિ જાણવું જોઈએ. આસનથી પોતાના શરીર પ્રમાણ શય્યા, તથા સંસ્તારથી અઢી હાથનું બિછાનું-બિસ્તર સમજવો

मुनिर्मात्रयैवाहारादिकं गृह्णीयात्, लाभालाभादौ च मध्यस्थतामवलम्बेतेति दर्शयति-'लद्धे' इत्यादि ।

मूलम्—लद्धे आहारे अणगारो मायं जाणिज्जा से जहेयं भगवया पवेइयं लाभुत्ति न मज्जिज्जा, अलाभुत्ति न सोइज्जा बहुंपि लद्धुं न निहे परिग्गहाओ अप्पाणं अवसक्किज्जा अन्नहा ण पासए परिहरिज्जा ॥ सू० ६ ॥

छाया—लब्धे आहारेऽनगारो मात्रां जानीयात्, तद्यथेदं भगवता प्रवेदितम्, लाभ इति न माद्येत, अलाभ इति न शोचेत्, बह्वपि लब्ध्वा न स्निह्यात्, परिग्रहादात्मानमवष्वष्केत्, अन्यथानपश्यकः परिहरेत् ॥ सू० ६ ॥

टीका—'लब्धे' इत्यादि । अनगारः=मुनिः, लब्धे=सम्प्राप्ते आहारे उपलक्षणादन्यस्मिन्नपि वस्त्रपात्रशय्यासंस्तारकादावधिगते सति 'मात्रा' यावद्ग्रहणेन

बिछौना-बिस्तर समझना चाहिये । अनगार इन समस्त एषणीय वस्तुओं की ही गृहस्थों से याचना करे, अनेषणीयों की नहीं ॥ सू० ५ ॥

अनगार मात्राप्रमाण ही आहारादिकों को लेवे । उनके लाभ और अलाभ में मध्यस्थ भाव रखे, इस बात को सूत्रकार कहते हैं-'लद्धे आहारे' इत्यादि ।

इस सूत्र में 'आहार' यह शब्द उपलक्षण है, इससे वस्त्र, पात्र, शय्या, संस्तारक आदि का भी ग्रहण हो जाता है । आहार एवं वस्त्रादिक वस्तुओं को गृहस्थ के पास उतनी ही मात्रा में वोरना चाहिये कि जिससे वौराने वाले गृहस्थ को दुवारा आरंभ नहीं करना पड़े । तथा इतनी ही लेनी चाहिये कि जिनके लेने से अपनी संयमयात्रा का

જોઈએ. અણગાર આ સમસ્ત એષણીય વસ્તુઓની ગૃહસ્થોથી યાચના કરે, અનેષણીયોની નહિ. ॥ સૂ૦ ૫ ॥

અણગાર માત્રાપ્રમાણથી આહારાદિ લે, તેના લાભ-અલાભમાં મધ્યસ્થ ભાવ રાખે, આ વાતને સૂત્રકાર કહે છે—लद्धे आहारे ઈત્યાદિ.

આ સૂત્રમાં 'આહાર' આ શબ્દ ઉપલક્ષણ છે. તેનાથી વસ્ત્ર, પાત્ર, શય્યા, સંસ્તારક આદિનું ગ્રહણ થાય છે. આહાર અને વસ્ત્રાદિક વસ્તુઓને ગૃહસ્થોને પાસેથી એટલી માત્રામાં લેવી જોઈએ કે જેનાથી દેવાવાળા ગૃહસ્થને ફરીથી બીજી વાર આરંભ કરવો ન પડે, તથા એટલી જ માત્રા લેવી જોઈએ કે જે લેવાથી પોતાની સંયમયાત્રાનું પાલન થઈ શકે, અર્થાત્ જે સંયમયાત્રાનો નિર્વાહ

गृहपतिर्न पुनरारम्भे प्रवर्तेत, यावता चात्मनः संयमयात्रानिर्वाहो भवति, यथा च परिष्ठापनीयं न भवेत् तावती मात्रा, तां जानीयात्=बुध्येत मात्रातोऽधिकग्रहणे संयतमर्यादास्खलनात् । एतत्सर्वं 'जमिणं विरूवरूवेहिं' इत्युद्देशस्यादिमसूत्रमारभ्यै-तावत्पर्यन्तं न मया स्वबुद्ध्या प्रोक्तमिति दर्शयति-'तद्यथेत्यादि । तद्यथा-इदम् उद्देशारम्भतोऽव्यवहितसूत्रपर्यन्तमभिव्याप्य यदभिहितं तत्सर्वं भगवता प्रवेदितम्= उक्तम् । एतेन पूर्वोक्तसूत्रादभिहितार्थेऽवश्यकर्तव्यता प्रदर्शिता, अन्यथा भगवदाज्ञा विराधकत्वमापद्येतेति संसूचितम् । अपि चानगारः किं कुर्यादिति दर्शयति-'लाभ इती'-ति, लाभः=अशनवसनादेर्ममैवाधिगम इति चेतसि परिचिन्त्य न माद्येत=न मोदेत नाभिमानं कुर्यादित्यर्थः ।

निर्वाह हो सके, अर्थात् जो संयमयात्रा के निर्वाह करने में किसी तरह से बाधक न बन सके। लेते समय यह ध्यान अवश्य रखना चाहिये, ऐसा न हो कि-अधिक लेने पर परिष्ठापन करना पड़े। इतना ध्यान रखना ही मात्रा है। इस मात्रा की मर्यादा का उल्लंघन करने से यथावत्संयम का निर्वाह नहीं हो सकता।

श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामी से कहते हैं कि-यह सब कुछ जो इस उद्देश के प्रथम सूत्र से लगा कर यहां तक कहा गया है वह मैंने अपनी निज कल्पना से नहीं कहा है, किन्तु वीतराग प्रभु ने यह सब प्रकट किया है। इसलिये जो कुछ यहां तक कहा गया है संयमी मुनि का कर्तव्य है कि उस पर पूर्ण ध्यान रखे, और उसका अपने संयम को निर्मल बनाने के लिये अवश्य पालन करे, नहीं तो भगवान् की आज्ञा का विराधक बनना पड़ेगा।

કરવામાં કોઈ પણ પ્રકારે બાધક ન બની શકે. લેતી વખત એ ધ્યાન અવશ્ય રાખવુ જોઈએ, એવું ન બને કે અધિક લેવાથી પરિષ્ઠાપન કરવું પડે આટલુ ધ્યાન રાખવું તે માત્રા છે. આ માત્રાની મર્યાદાનું ઉલ્લંઘન કરવાથી બરોબર સંયમનો નિર્વાહ બની શકતો નથી.

શ્રી સુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામીને કહે છે કે:—આ બધું જે એ ઉદ્દેશના પ્રથમ સૂત્રથી લઈને અહીંઆ સુધી કહ્યુ છે તે મેં મારી પોતાની કલ્પનાથી કહેલ નથી. પણ વીતરાગ પ્રભુએ જ આ બધું પ્રગટ કરેલ છે. માટે જે કંઇ અહીંઆ સુધી કહ્યું છે તે ઉપર સંયમી મુનિનુ કર્તવ્ય છે કે તેના ઉપર પુરેપુરૂં ધ્યાન આપે, અને તેનું પોતાના સંયમને નિર્મળ બનાવવા માટે અવશ્ય પાલન કરે. નહિ તો ભગવાનની આજ્ઞાના વિરાધક બનવું પડશે.

अथवा 'लाभे' इति-च्छाया, लाभे सति वस्त्राहारादेरधिगमे च न माद्येत। एवमलाभे वस्त्रपात्रादेरप्राप्तौ 'धिग् हतभाग्यं मां यदन्यैर्लभ्यते अन्तरायोदयान्मया न लभ्यते' इति=एवं न शोचेत् शोकं न विदध्यात्, लाभालाभयोर्मध्यस्थभावमवलम्बेतेत्यर्थः। उक्तञ्च—

"लाभो वरमलाभोऽपि, मुनिरुभयस्मिन्दधाति माध्यस्थ्यम्।
लाभे प्राणपरिस्थितिरथचालाभे तपोवृद्धिः"॥ १॥ इति।

ऐसा कभी भी भाव न रखे कि—अशनादि-आहारवस्त्रादिक का लाभ मुझे ही होता है अन्य को नहीं। क्यों कि इस प्रकार की भावना से आत्मा में एक प्रकार का अहंकार उत्पन्न होता है जो संयम जीवन में सफेद वस्त्र में धब्बे की तरह बाधक होता है, अतः इस प्रकार का अहंकार कभी नहीं करना चाहिये। अथवा "लाभ इति न माद्येत" इसका अभिप्राय यह भी होता है कि आहार वस्त्रादिक का लाभ होने पर संयमी को हर्षित नहीं होना चाहिये, और अलाभ होने पर उसे "मुझ हतभागी-अभागे को धिक्कार है, दूसरों को तो सब कुछ मिलता है मुझे अन्तराय के उदय से कुछ भी नहीं मिलता" इस प्रकार का शोक भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि संयमजीवन की शोभा लाभ और अलाभ में मध्यस्थ भाव रखने से ही है। कहा भी है—

"लाभो वरमलाभोऽपि, मुनिरुभयस्मिन् दधाति माध्यस्थ्यम्।
लाभे प्राणपरिस्थिति-रथ चालाभे तपोवृद्धिः॥ १॥" इति॥

એવો ભાવ કોઈ વખત ન રાખે કે—'અશનાદિ—આહારવસ્ત્રાદિકનો લાભ મને જ થાય છે. બીજાને નહિ' કારણ કે આ પ્રકારની ભાવનાથી આત્મામાં એક પ્રકારનો અહંકાર ઉત્પન્ન થાય છે જે સંયમ જીવનમાં સફેદ વસ્ત્રમાં ડાઘાની માફક બાધક થાય છે. માટે આ પ્રકારનો અહંકાર કોઈ વખત કરવો ન જોઈએ. અથવા "लाभ इति न माद्येत" એનો અભિપ્રાય એ પણ થાય છે કે—આહારનો લાભ થવાથી સંયમીએ હર્ષિત નહિ થવું જોઈએ, અને અલાભ થવાથી તેણે "હું હતભાગી—અભાગીને ધિક્કાર છે, બીજાઓને બધું મળે છે, મને અંતરાયના ઉદયથી કાંઈ પણ મળતુ નથી." આવા પ્રકારનો શોક પણ નહિ કરવો જોઈએ, કારણ કે સંયમજીવનની શોભા લાભ અને અલાભમાં મધ્યસ્થભાવ રાખવામાં જ છે. કહ્યું પણ છે—

"लाभो वरमलाभोऽपि, मुनिरुभयस्मिन् दधाति माध्यस्थ्यम्।
लाभे प्राणपरिस्थिति-रथ चालाभे तपोवृद्धि॥ १॥" इति।

किं च-यद्यपि=केनापि कारणेन पुष्कलं लब्ध्वा=प्राप्य न स्निह्यात्=अन्नादौ गृहपतौ वा स्नेहं न कुर्यात्, अपि च परिग्रहात्संयमयात्रानिर्वाहमात्रातो मूर्च्छाभावे-नैषणीयस्याप्यधिकस्यानादानात् आत्मानम् अवष्वष्केत्=अपगमयेत्, तत आत्मानं निवर्तयेदित्यर्थः।

ननु संयमयात्रानिर्वाहार्थमावश्यकवस्त्रपात्रादीनामपि ग्रहणं परिग्रहपदेन वक्तु-

---

आहारादिक वस्तुएँ मिले तो भी ठीक, न मिले तो भी ठीक, मुझे तो दोनों अवस्थाओं में समता है। लाभ में प्राणों का रक्षण और अलाभ में तप की वृद्धि होगी। ऐसा विचार करना चाहिये।

किसी कारणवश यदि आहारादिक सामग्री किसी एक ही जगह से अधिक मिल जावे तो अन्नादिक सामग्री पर तथा देने वाले दाता-गृहस्थ पर रागभाव न करे-मध्यस्थ भाव रक्खे। इस प्रकार की प्रवृत्ति नहीं रखने से संयमी मुनि में दीनता, तथा सिंहवृत्ति के अभाव होने का प्रसंग आजाता है। संयमयात्रा का निर्वाहमात्रावाली आहारादिक सामग्री के अतिरिक्त अन्य सामग्री से अपने को दूर रखे, कारण कि एषणीय होने पर भी मूर्छाभाव से अधिक ग्रहण करने से उस में परिग्रह का दोष आता है, अतः इस प्रकार की प्रवृत्तिरूप परिग्रह से सदा अपनी रक्षा करता रहे।

प्रश्न—संयमयात्रा के निर्वाह के लिये जो आप आवश्यक वस्त्र पात्रादिकों का ग्रहण करना संयमी मुनि के लिये कह रहे हो सो यह

આહારાદિક વસ્તુઓ મળે તો પણ ઠીક છે, ન મળે તો પણ ઠીક છે, એમ મને તો બન્ને અવસ્થાઓમાં સમતા છે લાભમાં પ્રાણનું રક્ષણ અને અલાભમાં તપની વૃદ્ધિ થશે. એવો વિચાર કરવો જોઈએ

કોઈ કારણવશ કદાચ આહારાદિક સામગ્રી કોઈ એક જગ્યાથી અધિક મળી જાય તો અન્નાદિક સામગ્રીપર તથા દેવાવાળા દાતા ગૃહસ્થ પર રાગભાવ ન કરે-મધ્યસ્થભાવ રાખે. આ પ્રકારની પ્રવૃત્તિ નહિ રાખવાથી સંયમી મુનિમાં દીનતા, તથા સિંહવૃત્તિનો અભાવ હોવાનો પ્રસંગ આવી જાય છે. સંયમયાત્રાના નિર્વાહ માત્રાવાળી આહારાદિક સામગ્રીથી અતિરિક્ત અન્ય સામગ્રીથી પોતાને દૂર રાખે, કારણ કે એષણીય હોવા છતાં પણ મૂર્છાભાવથી અધિક ગ્રહણ કરવાથી તેમાં પરિગ્રહનો દોષ આવી જાય છે, માટે આ પ્રકારની પ્રવૃત્તિરૂપ પરિગ્રહથી સદા પોતાની રક્ષા કરતા રહે.

પ્રશ્ન—સંયમયાત્રાના નિર્વાહ માટે જે આપ આવશ્યક વસ્ત્ર પાત્રાદિકોનું ગ્રહણ કરવું સંયમી મુનિ માટે કહી રહ્યા છો તો તે કહેવું વ્યાજબી નથી,

मुचितम्, यतश्चानुकूले वस्तुनि रागः प्रतिकूले द्वेषश्च सञ्जायते, एवञ्च रागद्वेषयोरवश्यंभावान्मूर्च्छा, सैषा परिग्रहः 'मुच्छा परिग्गहो वुत्तो' इति वचनात्, तत्सद्भावे च कर्मबन्ध इति कथं संयमोपकरणस्य न परिग्रहत्वमिति चेदुच्यते—धर्मोपकरणे मुनीनां 'ममेद'-मिति न मोहो भवति। उक्तञ्च—

"अवि अप्पणोऽवि देहंमि नायरंति ममाइयं" इति। (दश. अ. ६ गा. २२)

ठीक नहीं है, कारण कि यह भी परिग्रह ही है, और परिग्रह का त्याग किये विना सर्वथा संयमाराधकता होती नहीं है। परिग्रहरूपता इनमें इसलिये है कि अनुकूल इनकी प्राप्ति में प्राप्तकर्ता को हर्ष, और प्रतिकूल प्राप्ति में पानेवाले को द्वेष होता है। जहां पर राग और द्वेष है वहां पर मूर्छा है, और मूर्छा का होना ही परिग्रह है। "मुच्छा परिग्गहो वुत्तो" मूर्छा ही परिग्रह है, ऐसा भगवान का कथन है, जहां इसका सद्भाव है वहां कर्मबन्ध अवश्य है, अतः वस्त्रपात्रादिक उपकरण को परिग्रह क्यों नहीं कहा गया है?।

उत्तर—सामान्यतया वस्त्रपात्रादिकों में परिग्रहता का हम निषेध नहीं करते हैं, किन्तु जो संयम के उपकारक हैं वे परिग्रहरूप नहीं हैं। यह एक विशेष विधि है, कारण कि मुनियों को उनमें "मम इदं" 'यह मेरे हैं' इस प्रकार की ममत्वभावरूप मूर्छा नहीं होती है। कहा भी है—
"अवि अप्पणोवि देहंमि, नायरंति ममाइयं" इति। (दश. अ. ६ गा. २२)

કારણ કે તે પણ પરિગ્રહ જ છે. અને પરિગ્રહનો ત્યાગ કર્યા વિના સર્વથા સંયમારાધકતા થતી નથી પરિગ્રહરૂપતા તેમાં એ માટે છે કે અનુકૂળ તેની પ્રાપ્તિમાં પ્રાપ્તકર્તા ને હર્ષ અને પ્રતિકૂળ પ્રાપ્તિમાં લેનારને દ્વેષ થાય છે, જે જગ્યોએ રાગ અને દ્વેષ છે ત્યાં મૂર્છા છે, અને મૂર્છાનું હોવું તે પરિગ્રહ છે. "मुच्छा परिग्गहो वुत्तो" મૂર્છા એ જ પરિગ્રહ છે, એવું ભગવાનનું કથન છે, જ્યાં તેનો સદ્‌ભાવ છે ત્યા કર્મબંધ અવશ્ય છે, માટે વસ્રપાત્રાદિક ઉપકરણને પરિગ્રહ કેમ માનેલ નથી?

ઉત્તર—સામાન્ય રીતે વસ્રપાત્રાદિકોમા પરિગ્રહતાનો અમે નિષેધ કરતા નથી જે સંયમના ઉપકારક છે તે પરિગ્રહરૂપ નથી. એ એક વિશેષ વિધિ છે, કારણ કે મુનિયોને તેમા "मम इदं" એ મારા છે, એ પ્રકારની મમત્વ ભાવરૂપ મૂર્છા થતી નથી. કહ્યુ પણ છે—

"अवि अप्पणो वि देहंमि नायरंति ममाइयं" इति (દશ. અ. ૬ ગા. ૨૨)

छाया—अप्यात्मनोऽपि देहे नाचरन्ति ममायितम् । इति । तेषां कर्मनिर्जरणार्थं स्वीकारात्, यश्च मूर्च्छया परिगृह्यते तस्य परिग्रहपदेनाभिधेयत्वाच्च। तत्परिहारे च संयमयात्राया अपि निर्वोढुमशक्यत्वात् ।

किञ्च—अन्यथानपश्यकः—पश्यतीति पश्यः, स एव पश्यकः, अन्यथा=अन्यप्रकारेण न पश्यकः=अन्यथानपश्यकः=धर्मोपकरणापरिग्रहदर्शी सन् परिग्रहं परिहरेत् । यथा गृहस्थो वस्त्रादिकं शरीरादिसुखसाधनं मन्यते न तथा मुनिः । स चेतद्धर्मोपकरणं मम धर्मसाधनमेव, न शरीरादिसुखसाधनमिति मन्यमानः परिग्रहं

साधुओं को जब अपने निज शरीर में ही मोह ममत्व नहीं होता है, तब शरीर से सर्वथा भिन्न उपकरणादिकों में ममत्वभाव कैसे हो सकता है । मुनि अवस्था में मात्रानुसार ग्रहण किये हुए वस्त्र पात्रादिक संयम के उपकारक होने से कर्मों की निर्जरा के ही साधक होते हैं, इसीलिये वे संयम अवस्था में स्वीकार किये जाते हैं । परिग्रह वहीं पर है कि जहां पर मूर्छाभाव से अपनाना होता है। इन पात्रादिकों का ग्रहण मूर्छाभाव से नहीं किया जाता है, अतः ये परिग्रहरूप नहीं हैं, प्रत्युत इनके अभाव में संयमयात्रा का यथावत् निर्वाह नहीं हो सकता, इसीलिये इनका ग्रहण करना आवश्यक बतलाया गया है। इसी बात की पुष्टि सूत्रकारने "अन्यथानपश्यकः परिहरेत्" इस वाक्य से की है। वस्त्र पात्रादिक धर्मोपकरण हैं, इनके विना संयम का यथावत् निर्वाह नहीं हो सकता, इसलिये इनका रखना आवश्यक है । इस प्रकार उनको परिग्रहरूप नहीं देखता हुआ अनगार इनसे अतिरिक्त धन-

સાધુઓને જ્યારે પોતાના શરીર ઉપર જ મોહ અને મમત્વ નથી થતો તો પછી શરીરથી સર્વથા ભિન્ન ઉપકરણાદિકોમાં મમત્વભાવ કેવી રીતે હોઈ શકે. મુનિ અવસ્થામાં માત્રાનુસાર ગ્રહણ કરેલા વસ્ત્રપાત્રાદિક સંયમના ઉપકારક હોવાથી કર્મોની નિર્જરાના જ સાધક બને છે, માટે તે સંયમ અવસ્થામાં સ્વીકાર કરવામાં આવે છે. પરિગ્રહ તે જગ્યો ઉપર છે કે જ્યાં મૂર્છાભાવથી લેવામાં આવે છે આ પાત્રાદિકોનું ગ્રહણ મૂર્છાભાવથી કરવામાં આવતું નથી, માટે તે પરિગ્રહરૂપ નથી પ્રત્યુત તેના અભાવમાં સંયમયાત્રાનો યથાવત્ નિર્વાહ થઈ શકતો નથી, માટે તેનું ગ્રહણ કરવુ આવશ્યક બતાવ્યું છે. આ વાતની પુષ્ટિ સૂત્રકારે "अन्यथानपश्यक परिहरेत्" આ વાક્યથી કરેલ છે. વસ્ત્રપાત્રાદિક ધર્મોપકરણ છે, તે વિના સંયમનો યથાવત્ નિર્વાહ થઈ શકતો નથી, માટે તેનું રાખવું આવશ્યક છે એ પ્રકારે તેને પરિગ્રહરૂપ નહિ દેખતા

परित्यजेत्, न तत्र ममत्वं कुर्यादित्यर्थः। समुचितमात्रयाऽऽहारादिग्राही मुनिर्लाभालाभहर्षविषादवर्जितः परिग्रहाग्रहनिवृत्तो रत्नत्रयसमाराधनतत्परो भवेदिति तात्पर्यम् ॥ सू० ६ ॥

केन दर्शितोऽयं मार्ग इति दर्शयति-'एस मग्गे' इत्यादि।

मूलम्—एस मग्गे आरिएहिं पवेइए जहेत्थ कुसलो नोपलिंपेज्जासि-त्ति बेमि ॥ सू० ७ ॥

छाया—एष मार्ग आर्यैः प्रवेदितः यथाऽत्र कुशलो नोपलिम्पयेः। इति ब्रवीमि ॥ सू० ७ ॥

टीका-'एष मार्ग' इत्यादि। एषः=पूर्वोक्तरूपः मार्गः श्रुतचारित्रलक्षणः आर्यैः=तीर्थङ्करगणधरादिभिः प्रवेदितः-प्र=प्रकर्षेण=द्वादशपरिषदि कथितः।

धान्यादि को परिग्रह समझकर छोड़ देता है। गृहस्थ जिस प्रकार वस्त्रादिकों को शारीरिक सुखादि का कारण मानकर उन्हें ग्रहण करता है उस प्रकार की भावना से मुनि नहीं। धर्मोपकरण से धर्म का ही साधन होता है-अन्य शरीरसुखादिक का नहीं। ऐसा मानकर ही मुनि ग्रहण करता है, और उनमें ममत्वभाव से रहित होता है। तात्पर्य यह है कि-अनगार को समुचित मात्रा में आहारादिक ग्रहण करने वाला, लाभ और अलाभ में समभावी; परिग्रह से विरत, और रत्नत्रय की आराधना में निमग्न होना चाहिये ॥ सू० ६ ॥

इस मार्ग के प्रदर्शक कौन हैं? इस बात को दिखलाते हुए सूत्रकार कहते हैं-'एस मग्गे' इत्यादि।

यह पूर्वोक्त श्रुतचारित्ररूप मार्ग तीर्थंकर गणधरादिक आर्य पुरुषोंने

અણગાર તેનાથી અતિરિક્ત ધનધાન્યાદિને પરિગ્રહ સમજીને છોડી દે છે. ગૃહસ્થ જેવી રીતે વસ્ત્રાદિકોને શારીરિક સુખાદિકનું કારણ માનીને તેને ગ્રહણ કરે છે તે પ્રકારની ભાવનાથી મુનિ નહિ ધર્મોપકરણથી ધર્મનું જ સાધન થાય છે-અન્ય શરીરસુખાદિકનું નહિ. એવું માનીને જ મુનિ તેને ગ્રહણ કરે છે, અને તેમાં મમત્વભાવથી રહિત થાય છે. તાત્પર્ય એ છે કે-અણગારે સમુચિત માત્રામા આહારાદિક ગ્રહણ કરવાવાળા, લાભ અને અલાભમા સમભાવી, પરિગ્રહથી વિરત, અને રત્નત્રયની આરાધનામાં નિમગ્ન થવું જોઈએ. ॥ સૂ૦ ૬ ॥

આ માર્ગનો પ્રદર્શક કોણ છે, આ વાતને બતાવતાં સૂત્રકાર કહે છે— 'एस मग्गे' ઈત્યાદિ.

આ પૂર્વોક્ત શ્રુતચારિત્રરૂપ માર્ગ તીર્થંકર ગણધરાદિક આર્ય પુરૂષોએ બાર

हे शिष्य! यथा=येन प्रकारेण त्वं कुशलः सन् आर्यक्षेत्रसुकुलजन्मादिकं, संसारार्णवतरिं बोधिं, सकलकर्मक्षपणसमर्थं चारित्रं च लब्ध्वा अत्र=इह तीर्थङ्करनिर्दिष्टमार्गेऽष्टविधकर्महेतुभूतेन पापकर्मणा नोपलिम्पयेः=नोपलिप्तो भवेस्तथा कुरुष्व, एतस्मिन्मार्गे स्थित एव मुनिः सम्यग्ज्ञानादिकं लभत इति भावः। इति-शब्दोऽधिकारसमाप्त्यर्थः, स चाहारादिगवेषणारूपः। यन्मया भगवत्समीपे श्रुतं तत्सर्वं त्वां ब्रवीमि=वच्मि। इति ॥सू० ७॥

परिग्रहादात्मनिवृत्तिश्च तत्कारणोन्मूलनं विना न सम्भवति, तत्कारणं च शब्दादयः पञ्च कामगुणाः, तेषामुन्मूलनं च दुष्करमिति दर्शयति–'कामा' इत्यादि।

मूलम्—**कामा दुरइक्कमा, जीवियं दुप्पडिबूहगं, कामकामी खलु अयं पुरिसे, से सोयइ जूरइ तिप्पइ पिट्टइ परितप्पइ ॥सू० ८॥**

बारह प्रकार की सभा में प्रकट किया है। उन्होंने कहा है कि–जो मनुष्य आर्यक्षेत्र, सुकुल में जन्म; संसाररूपी समुद्र के पार पहुंचने के लिये नौका स्वरूप बोधि, एवं सकल कर्मों के विनाशक चारित्र को प्राप्तकर तीर्थंकरादि प्रदर्शित इस मार्ग का अवलंबन करता है–इसमें प्रवृत्ति करता है वह पापकर्म से–जो अष्ट प्रकार के कर्मों के आस्रव का हेतु है–कभी भी उपलिप्त नहीं होता है, इसलिये हे शिष्य! तुम भी अपनी प्रवृत्ति को इस प्रकार की बनाओ, ताकि तुम भी इस विषय में कुशल बन पापकर्म से उपलिप्त न हो सको। सूत्र में 'इति' शब्द इस अधिकार की समाप्ति का सूचक है, अर्थात् हे शिष्य! आहारादिक की गवेषणारूप यह अधिकार जैसे मैंने भगवान् के निकट सुना है वैसा ही यहां तुम से प्रकट किया है, मेरी निजी कल्पना इस विषय में कुछ भी नहीं है ॥सू. ७॥

પ્રકારની સભામા પ્રગટ કરેલ છે. તેઓએ કહ્યું છે કે–જે મનુષ્ય આર્યક્ષેત્ર, સુકુળમાં જન્મ. અવ્યાબાધ સુખરૂપી સમુદ્રના પાર સ્વરૂપ બોધિ અને સકલ કર્મોના વિનાશક ચારિત્રને પ્રાપ્ત કરી તીર્થંકરાદિપ્રદર્શિત આ માર્ગનું અવલબન કરે છે–આમાં પ્રવૃત્તિ કરે છે તે પાપકર્મથી જે આઠ પ્રકારના કર્મોના આસ્રવનો હેતુ છે–કોઇ વખત પણ ઉપલિપ્ત થતો નથી. માટે હે શિષ્ય! તમો પણ તમારી પ્રવૃત્તિને એવા પ્રકારની બનાવો કે તમે પણ આ વિષયમાં કુશળ બની પાપ કર્મથી ઉપલિપ્ત ન થઈ શકો. સૂત્રમાં 'इति' શબ્દ આ અધિકારની સમાપ્તિનો સૂચક છે, અર્થાત્ હે શિષ્ય! આહારાદિકની ગવેષણારૂપ આ અધિકાર જેવો મેં ભગવાન પાસેથી સાંભળ્યો છે તેવો હું તને કહુ છું, મારી પોતાની કલ્પના આ વિષયમાં કાંઇ પણ નથી. ॥ સૂ૦ ૭ ॥

छाया—कामा दुरतिक्रमाः, जीवितं दुष्प्रतिबृंहणीयं, कामकामी खलु अयं पुरुषः, स शोचति जूर्यते तेपते पीड्यते परितप्यते ॥ सू० ८॥

टीका-'कामा' इत्यादि। कामाः-इच्छामदनभेदाद्विविधाः। तत्र-इच्छाकामाः-हिरण्यादिवाञ्छारूपाः, मदनकामाः=शब्दादिरूपाः, पूर्वस्य कारणं मोहनीयभेदौ हास्यरती, परस्य च कारणं मोहनीयभेदवेदोदयः। ततश्चोभयोरपि कामयोः प्रादुर्भावो मोहनीयादेव, एवञ्च कारणसत्त्वे कार्यभूतस्य कामस्योन्मूलनमशक्यम्।

परिग्रह से निवृत्ति, उसके कारणों का नाश किये विना नहीं हो सकती। उसके कारण शब्दादिक पांच काम गुण हैं। उनका उन्मूलन करना बड़ा कठिन है, इसी बात को प्रदर्शित करते हुए सूत्रकार कहते हैं—"कामा दुरइक्कमा" इत्यादि।

इच्छा और मदन के भेद से काम दो प्रकार का है। हिरण्यादिक की वाञ्छारूप इच्छाकाम है। इसका कारण मोहनीय कर्म का भेद हास्य और रति है। शब्दादिक पांच इन्द्रियों के विषय मदनकाम है। इनका भी कारण–मोहनीय कर्म का भेद–वेद–नोकषाय का उदय है। इस प्रकार इन दोनों कामों की उत्पत्ति मोहनीयकर्म के उदय से ही होती है। कारण के सद्भाव में कार्य का सद्भाव अवश्यंभावी है, इसीलिये सूत्र में सूत्रकार ने "दुरतिक्रमाः" इस पद से इनका उन्मूलन दुष्कर बतलाया है। जबतक मोहनीयरूप कारण का उदय है तब तक इनका अभाव हो ही नहीं सकता, अतः इनका प्रतीकार करना दुःशक्य है। जीवन का भी प्रति-

---

પરિગ્રહથી નિવૃત્તિ તેના કારણનો નાશ કર્યા વગર બની શકતી નથી. તેનું કારણ શબ્દાદિક પાંચ કામ ગુણ છે. તેનું ઉન્મૂલન કરવું ઘણું કઠિન છે આ વાતને પ્રદર્શિત કરતાં સૂત્રકાર કહે છે—'कामा दुरइक्कमा' ઈત્યાદિ.

ઈચ્છા અને મદનના ભેદથી કામ બે પ્રકારના છે. હિરણ્યાદિકની વાંચ્છારૂપ ઈચ્છાકામ છે, તેનું કારણ મોહનીય કર્મના ભેદ–હાસ્ય અને રતિ છે. શબ્દાદિક પાંચ ઈન્દ્રિયોનો વિષય મદન કામ છે. તેનું પણ કારણ–મોહનીય કર્મના ભેદ–વેદ–નોકષાયનો ઉદય છે. આ પ્રકારે બન્ને કામોની ઉત્પત્તિ મોહનીય કર્મના ઉદયથી જ થાય છે, કારણ સદ્‌ભાવમાં કાર્યનો સદ્‌ભાવ અવશ્યંભાવી છે, માટે સૂત્રમાં સૂત્રકારે "दुष्करं" આ પદથી તેનું ઉન્મૂલન દુષ્કર બતાવ્યું છે. જ્યાં સુધી મોહનીયરૂપ કારણનો ઉદય છે ત્યાં સુધી તેનો અભાવ થઈ જ શકતો નથી, માટે તેનો પ્રતિકાર કરવો દુઃશક્ય છે. જીવનનો પણ પ્રતિદિન

अत एव द्विविधा अपि कामा 'दुरतिक्रमाः' दुः=दुःखेनातिक्रमः=उन्मूलनं=विनाशो येषां ते दुरतिक्रमाः। अथवा–दुःखेनातिक्रम्यन्ते=उन्मूल्यन्ते ये ते दुरतिक्रमाः= दुःशक्यप्रतीकारा दुष्परिहरा इति यावत्।

किं च–जीवितं=भवग्रहायुष्कं प्रतिदिनमपचीयमानतया दुष्परिबृंहणीयं=वर्द्धयितुमशक्यं परिजीर्णच्छिन्नवस्त्रवत्सन्धातुमनर्हमित्यर्थः।

यद्वा–जीवितं–संयमजीवितं दुष्परिबृंहणीयं, संयमिनश्चारित्रान्तरायोदयात्कामाभिष्वङ्गे सति संयमजीवितस्य प्रत्यहं क्षीयमाणत्वात्।

दिन ह्रास हो रहा है। आयुकर्म का शास्त्रकारों ने अपकर्षण तो बतलाया है किन्तु उत्कर्षण नहीं, इसलिये आयुःकर्म का प्रतिसमय अपचय होने से जीवन भी अपचय की ओर ही बढ रहा है। ऐसा कोई भी कारण नहीं है जो जीवन को स्थिर, अथवा भुज्यमान आयु में एक समय भी वृद्धि कर सके, इसलिये जिस प्रकार बिलकुल जीर्ण फटे हुए वस्त्र का सीना अशक्य होता है उसी प्रकार आयुकर्म की वृद्धि होनी भी अशक्य है। ऐसा समझकर आत्महितैषी के लिये इन विषयादिकों में वाञ्छा नहीं करनी चाहिये। जीवन का जितना अंश इस प्रकार की प्रवृत्ति से सुरक्षित रह सके ऐसा ही प्रयत्न करते रहना चाहिये।

अथवा–जीवन शब्द का अर्थ संयमजीवन है। यह दुष्परिबृंहणीय (बढाना मुश्किल) इसलिये बतलाया जा रहा है कि यदि संयमी को चारित्रमोहनीय के उदय से कामगुणों में वाञ्छा उत्पन्न हो जावे तो

હ્રાસ થઈ રહ્યો છે, આયુકર્મનો શાસ્ત્રકારોએ અપકર્ષણ તો બતાવેલ છે, પણ ઉત્કર્ષણ નહિ, માટે આયુકર્મ પ્રતિસમય અપચય હોવાથી જીવન પણ અપચય ની તરફ જ વધી રહ્યુ છે એવું કોઈ પણ કારણ નથી જે જીવનને સ્થિર અથવા ભુજ્યમાન આયુમાં એક સમય પણ વૃદ્ધિ કરી શકે, માટે જે પ્રકારે બિલકુલ ફાટેલા વસ્ત્રનુ શીવવું અશકય થાય છે તે પ્રકારે આયુકર્મની વૃદ્ધિ થવી પણ અશકય છે. એવુ સમજીને આત્મહિતૈષી માટે આ વિષયાદિકોમાં વાંચ્છના નહિ કરવી જોઈએ જીવનનો જેટલો પણ અંશ આ પ્રકારની પ્રવૃત્તિથી સુરક્ષિત રહી શકે તેવો જ પ્રયત્ન કરતા રહેવો જોઈએ.

અથવા—જીવિત શબ્દનો અર્થ સંયમ જીવન છે. આ દુષ્પરિબૃંહણીય (વધારવું મુશ્કેલ)છે. એટલા માટે બતાવવામાં આવેલ છે કે કદાચ સંયમીને ચારિત્ર મોહનીયના ઉદયથી કામગુણોમાં વાંછના ઉત્પન્ન થઈ જાય તો તેનું તે સંયમ–

यतः कामा दुरतिक्रमा अत एव अयं पुरुषः खलु=निश्चयेन कामकामी–कामं द्विप्रकारं कमितुं शीलं यस्य स कामकामी=कामस्पृहाशीलो भवति, य ईदृशः सः= पूर्वोक्तप्रकारः अपहृतमनःसंकल्पः सन् किं करोतीत्याह–शोचतीति । शोचति= इष्टविषयाप्राप्तौ तन्नाशे वा शोकं करोति। अपि च–स एव जूर्यते=जूरणां करोति– अन्तर्दुःखेन शरीरं शोषयतीत्यर्थः, दीनः सन् बहु विलपति, तथाहि–

उसका वह संयमजीवन बिलकुल ही नष्ट हुआ समझना चाहिये। ऐसा तो हो नहीं सकता कि संयमजीवन बना रहे और कामगुणों की वाञ्छा भी अपना काम करती रहे। इसलिये ऐसी परिस्थिति में संयम-जीवन का पालन अशक्य ही है।

जब ये कामगुण दुरतिक्रम हैं तब ही तो प्राणी इनके अधीन बन इनकी ओर स्पृहाशील होकर आकृष्ट होता है। आकृष्ट होने पर भी जब इसका मानसिक संकल्प पूर्ण नहीं होता, अथवा इसकी मनचाही वस्तु इसे नहीं मिलती तब यह प्राणी शोकाकुल होता रहता है। यदि इसे मनचाही वस्तु मिल भी जाती है परन्तु ज्यों ही इसका वियोग हो जाता है तो इसके हृदय में अपार शोक का समुद्र उमडने लगता है। अनभीष्ट संयोग होने पर उसे दूर करने के लिये इसके चित्त में अनेक प्रकार के अशुभ संकल्प उठते रहते हैं। अनिष्ट वस्तु के संयोग में ऐसा ही होता है। प्राणी उस समय अन्तर्दुःख से अपने तन को भी सुखा देता है। कामी पुरुष स्वतः ही दीन बनकर प्रलाप करने लग जाता है।

જીવન બિલકુલ જ નષ્ટ થયેલ સમજવું જોઈએ. એવું તો બની જ શકતું નથી કે સંયમજીવન બની રહે અને કામગુણોની વાંછના પણ પોતાનું કામ કરતી રહે. માટે આવી પરિસ્થિતિમાં સંયમજીવનનું પાલન અશક્ય જ છે.

જ્યારે એ કામગુણ દુરતિક્રમ છે ત્યારે જ તો પ્રાણી તેના આધીન બની તેની તરફ સ્પૃહાશીલ બનીને આકૃષ્ટ થાય છે. આકૃષ્ટ થવા છતાં પણ જ્યારે તેનો માનસિક સંકલ્પ પૂર્ણ નથી થતો, અથવા તેની મનપસંદ વસ્તુ તેને નથી મળતી ત્યારે તે પ્રાણી શોકાકુલ થઈ રહે છે. કદાચ તેને મનપસંદ વસ્તુ મળી પણ જાય પરન્તુ જ્યાં તેનો વિયોગ થઈ જાય છે તો તેના હૃદયમાં અપાર શોકનો સમુદ્ર ઉભરાવા લાગે છે. અનભીષ્ટ સંયોગ બનવાથી તેને દૂર કરવા માટે તેના ચિત્તમાં અનેક પ્રકારના અશુભ સંકલ્પ વિકલ્પ ઉઠતા રહે છે. અનિષ્ટ વસ્તુના સંયોગમાં એવું જ થાય છે. પ્રાણી તે વખતે અંતર્દુઃખથી પોતાની જાતને પણ સુકાવી નાંખે છે. કામી પુરૂષ સ્વતઃ દીન બની પ્રલાપ કરવા લાગી જાય છે, આ વાત આ શ્લોકથી પ્રકટ કરવામાં આવે છે.

प्रथमतरमथेदं चिन्तनीयं तवासीद् ,-
बहुजनदयितेन प्रेम कृत्वा जनेन ॥
हतहृदय ! निराश ! क्लीव ! संतप्यसे किं,
नहि जड ! गततोये सेतुबन्धाः क्रियन्ते ॥ १ ॥ इति ।

अपि च=तेपते कुलादिमर्यादातः संचलति-निर्मर्यादो भवतीत्यर्थः । तथा पीड्यते=शारीरमानसदुःखैः क्लिश्यते । किं च-परितप्यते-परि=सर्वतो बाह्यमन्तश्च

यह बात इस श्लोक से प्रकट की जाती है—
"प्रथमतरमथेदं चिन्तनीयं तवासीद् ,
बहुजनदयितेन प्रेम कृत्वा जनेन ।
हतहृदय ! निराश ! क्लीव ! संतप्यसे किं,
नहि जड ! गततोये सेतुबन्धाः क्रियन्ते" ॥ १ ॥ इति ॥

कामियों की दशा ही कुछ ऐसी विलक्षण होती है कि जिस की वजह से वे अपनी कुल की मर्यादा तक को भी छोड़ देते हैं । शारीरिक एवं मानसिक दुःखों से वे सदा संतप्त रहा करते हैं । रातदिन पश्चात्ताप ही पश्चात्ताप किया करते हैं कि "यदि ऐसा उपाय करते तो यह बात बन जाती, ऐसा उपाय करते तो यह कामना फलीभूत हो जाती, अब क्या करें ?, ऐसा नहीं हुआ" इत्यादि पश्चात्ताप से बाहर भीतर जला करते हैं । मन में पश्चात्ताप करना भीतरी पश्चात्ताप है, और उसे शब्द से प्रकट करना बाह्य पश्चात्ताप है । मनोज्ञ पदार्थों की अप्राप्ति में अथवा पुत्रकलत्रादि पदार्थों के विनाश में दुःखी होना भी परिताप है । ये जो

प्रथमतरमथेदं चिन्तनीयं तवासीद्,-
बहुजनदयितेन प्रेम कृत्वा जनेन ।
हतहृदय ! निराश ! क्लीव ! संतप्यसे किं ,
नहि जड ! गततोये सेतुबन्धाः क्रियन्ते " ॥१॥ इति ॥

કામીઓની દશા જ કઇ એવી વિલક્ષણ થાય છે કે જે તે પોતાના કુળની મર્યાદાને પણ છોડી દે છે, શારીરિક અને માનસિક દુઃખોથી તે સદા સંતપ્ત રહ્યા કરે છે રાતદિન પશ્ચાતાપ જ કર્યા કરે છે કે—" કદાચ એવો ઉપાય કરત તો એ વાત બની જાત, આવો ઉપાય કરત તો તેમાં મારી કામના ફળીભૂત થાત, હવે શું કરૂં એવું બન્યુ નહિ" ઇત્યાદિ પશ્ચાત્તાપથી બહારથી તેમજ અંદરથી બળ્યા કરે છે, મનમાં પશ્ચાત્તાપ કરવો અંતરનો પશ્ચાતાપ છે, અને તેને શબ્દથી પ્રગટ કરવો તે બાહ્ય પશ્ચાતાપ છે. મનોજ્ઞ પદાર્થોની અપ્રાપ્તિમાં અથવા પુત્રકલત્રાદિ પદાર્થોના વિનાશમાં દુ:ખી થવું પણ પરિ-

तप्यते=पश्चात्तापसंतप्तो भवति । अथवा-हितामाप्तौ पुत्रकलत्रादिनाशे च परितप्यते । निखिलमिदं हि शोचनादिकं विषयासङ्गेन कलुषितान्तःकरणस्य दुःखावस्थाद्योतकम् ।

यदि वा यौवनधनमदमोहाभिभूतः काञ्चनकामिन्यादीन्युपभुज्य वृद्धावस्थायां निकटमरणकाले शोचति-' धिग् मां हतभाग्यं, यदवसरे सकलसुखदो धर्मो मया

शोचनादिक अवस्थाएँ यहां कामी पुरुषों की प्रकट की गई हैं ; वे समस्त ही विषय के सम्बन्ध से कलुषित-अन्तःकरणवाले व्यक्तियों की दुःखावस्था की द्योतक हैं ।

अथवा-' शोचति ' आदि पदों के अर्थ का समन्वय वृद्धावस्था के साथ भी इस प्रकार से होता है-यौवन और धन के मद से उन्मत्त तथा मोह के नशे से अचेत बना हुआ यह प्राणी कंचन कामिनी का उपभोग करते २ जब वृद्धावस्था का मेहमान होता है और अपना मरणकाल निकट देखता है तब वह शोकाकुल हो विचारता है-मुझ अभागे को धिक्कार है कि मैंने योग्य अवसर के प्राप्त होने पर भी सकल सुखदायी धर्म का अराधन नहीं किया, रात दिन यौवन और धन के मद से उन्मत्त होकर अशुभ का ही संग्रह किया, इसका फल क्या होगा? इस बात का जरा भी विचार नहीं किया; अब वृद्धावस्था आचुकी है, इसमें जिन २ कष्टों का मैं अनुभव कर रहा हूँ ये सब पूर्व

તાપ છે. આ જે શોચનાદિક અવસ્થાઓ આ ઠેકાણે કામી પુરૂષોની પ્રગટ કરેલ છે તે સમસ્ત વિષયના સંબંધથી કલુષિત અન્તઃકરણવાળી વ્યક્તિઓની દુઃખાવસ્થાની દ્યોતક છે.

અથવા—' शोचति ' આદિ પદોના અર્થનો સમન્વય વૃદ્ધાવસ્થામાં પણ આ પ્રકારે થાય છે-યૌવન અને ધનના મદથી ઉન્મત્ત તથા મોહના નશાથી અચેત બનેલ તે પ્રાણી કંચન કામિનીનો ઉપભોગ કરતાં કરતો જ્યારે વૃદ્ધાવસ્થાનો મહેમાન થાય છે અને પોતાનો મરણકાળ નિકટ આવેલો જાણીને શોકાતુર બની વિચારે છે કે ' મને અભાગીને ધિક્કાર છે કે મેં યોગ્ય અવસરની પ્રાપ્તિ હોવા છતાં પણ સુખદાયી ધર્મનું આરાધન ન કર્યું રાતદિન યૌવન અને ધનના મદથી ઉન્મત્ત બની અશુભનો જ સંગ્રહ કર્યો, તેનું ફળ શું મળશે ? એ વાતનો જરા પણ વિચાર ન કર્યો. હવે વૃદ્ધાવસ્થા આવી તેમાં જે જે કષ્ટોનો હું અનુભવ કરી રહ્યો છું તે બધા પૂર્વમાં ઉપાર્જિત અશુભ પરિણતિનું જ

नाचरितः' इति शोकं करोति। अशुभस्य परिणतिमनवधार्यैव तत्र या प्रवृत्तिर्विहिता सा वार्द्धक्ये दुःखदा भवति। उक्तञ्च—

"भवित्रीं भूतानां परिणतिमनालोच्य नियतां,
पुरा यद्यत् किञ्चिद्विहितमशुभं यौवनमदात्।
पुनः प्रत्यासन्ने महति परलोकैकगमने,
तदेवैकं पुंसां व्यथयति जराजीर्णवपुषाम्" ॥ १ ॥

'जूर्यते' इत्यादेरर्थस्तु पूर्ववत्। अतो मेधाविना पूर्वं कार्यं परिणतिमालोच्यैव करणीयं, येन पश्चात् पश्चात्तापो न भवेत्। उक्तञ्च—

में उपार्जित अशुभ-परिणति के ही फलरूप हैं। नीचे के श्लोक में यही बात प्रकट की गई है, जैसे—

"भवित्रीं भूतानां परिणतिमनालोच्य नियतां,
पुरा यद्यत् किञ्चिद्विहितमशुभं यौवनमदात्।
पुनः प्रत्यासन्ने महति परलोकैकगमने,
तदेवैकं पुंसां व्यथयति जराजीर्णवपुषाम्" ॥ १ ॥ इति।

वृद्ध अपने को दुःखी देखकर झूरता है, मानसिक एवं शारीरिक अनेक कष्टों का अनुभव करता है। दुःखी होने पर अपनी कुलमर्यादा का भी ध्यान नहीं रखता। इसलिये बुद्धिमान् पुरुष का कर्तव्य है कि प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ-काल में उसके फलाफल का विचार कर उस कार्य के करने में प्रवृत्ति करे। विना विचारे तथा उसकी सारता एवं असारता की पूरी विचारणा किये विना कोई भी कार्य नहीं करना चाहिये, नहीं तो पश्चात्ताप के सिवाय और कोई फल हाथ नहीं लगता

ફળરૂપ છે નીચેના શ્લોકમાં એજ વાત પ્રગટ કરવામાં આવેલ છે. જેમ—

" भवित्रीं भूतानां परिणतिमनालोच्य नियतां,
पुरा यद्यत् किञ्चिद्विहितमशुभ यौवनमदात्।
पुन प्रत्यासन्ने महति परलोकैकगमने,
तदेवैकं पुंसां व्यथयति जराजीर्णवपुषाम्" ॥ १ ॥ इति.

વૃદ્ધ પોતાને દુ.ખી દેખીને ઝુરે છે, માનસિક અને શારીરિક અનેક કષ્ટોનો અનુભવ કરે છે. દુઃખી થવાથી પોતાની કુળમર્યાદાનો પણ ખ્યાલ રાખતો નથી. તેથી બુદ્ધિમાન પુરૂષનું કર્તવ્ય છે કે પ્રત્યેક કાર્યના આરંભકાળમાં તેના ફળાફળનો વિચાર કરી તે કાર્યમાં પ્રવૃત્તિ કરે. વિચાર્યા વગર તથા તેની સારતા અને અસારતાની પૂરી તપાસ કર્યા વિના કોઈ પણ કાર્ય કરવું જોઈએ નહિ. નહિ તો પશ્ચાત્તાપ સિવાય

"उचितमनुचितं वा कुर्वता कार्यमादौ
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन ।
अतिरभसकृतानां कर्मणामाफलाप्ते,-
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः" ॥ १ ॥ इति ।

अतः परिग्रहकारणं शब्दादिकामगुणोऽवश्यमुन्मूलनीयो मुनिनेति तात्पर्यम् ॥ सू० ८ ॥

कः शोकादिकं न प्राप्नोतीति दर्शयति-'आययचक्खू' इत्यादि ।

मूलम्-आययचक्खू लोगविपस्सी लोगस्स अहोभागं जाणइ, उड्ढं भागं जाणइ, तिरियं भागं जाणइ, गड्ढिए लोए अणुपरियट्टमाणे संधिं विइत्ता इह मच्चिएहिं, एस वीरे पसंसिए जे बद्धे पडिमोयए, जहा अंतो तहा बाहिं, जहा बाहिं तहा अंतो, अंतो अंतो पूइदेहंतराणि पासइ पुढो वि सवंताइं पंडिए पडिलेहए ॥ सू० ९ ॥

है। नीचे के पद्य में यही बात दिखलाई गई है, जैसे—

"उचितमनुचितं वा कुर्वता कार्यमादौ,
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन ।
अतिरभसकृतानां कर्मणामाफलाप्ते,-
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः" ॥ १ ॥

इसलिये मुनिजन का कर्तव्य है कि वे जैसे भी हो सके परिग्रह के कारणभूत इन पूर्वोक्त कामगुणों का उन्मूलन करें ॥ सू० ८ ॥

बीजुं कांई पण फळ मळतुं नथी. नीचेना पद्यमां आज वात बताववामां आवी छे, जेम—

"उचितमनुचितं वा कुर्वता कार्यमादौ,
परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन ।
अतिरभसकृतानां कर्मणामाफलाप्ते,-
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः" ॥ १ ॥ इति ।

माटे मुनिनुं कर्तव्य छे के ज्यां सुधी बने त्यां सुधी परिग्रहना कारणभूत आ पूर्वोक्त कामगुणोनुं उन्मूलन करे. ॥ सू. ८ ॥

छाया—आयतचक्षुर्लोकविदर्शी लोकस्याधोभागं जानाति, ऊर्ध्वं भागं जानाति, तिर्यञ्चं भागं जानाति, गृद्धो लोकोऽनुपरिवर्तमानः सन्धिं विदित्वा इह मर्त्येषु, एष वीरः प्रशंसितो यो बद्धान् परिमोचयति, यथाऽन्तस्तथा वाह्यं, यथा वाह्यं तथाऽन्तः, अन्तः अन्तः पूतिदेहान्तराणि पृथगपि स्रवन्ति पण्डितः प्रत्युपेक्षेत।९।

टीका—' आयतचक्षुरित्यादि । आयतचक्षुः=आयतं=दीर्घं चक्षुः=ज्ञानचक्षुर्यस्य स आयतचक्षुः=ऐहिकपारत्रिकदुःखदर्शी–' कामा नियमतोऽनर्थवहुलाः' इत्यवधार्य तान् विहायाऽऽत्मसुखानुभवीत्यर्थः । किंच लोकविदर्शी, लोकं विषयासङ्गेन क्लिश्यमानं जनं वि=विशेषेण=कामाभिष्वङ्गेन लोके दुःखाधिक्यं, तत्त्यागेन च प्रशमसुखं भवति ' इत्येवंरूपेण द्रष्टुं शीलं यस्य स लोकविदर्शी–लोकदुःखाभिज्ञः,

शोकादिकों को कौन प्राप्त नहीं करता ? इसके लिये सूत्रकार कहते हैं–' आययचक्खू ' इत्यादि ।

इहलोकसम्बन्धी और परलोकसम्बन्धी दुःखों का ज्ञान जिससे होता है ऐसे ज्ञानचक्षु का ही यहां पर चक्षु-शब्द से ग्रहण किया गया है । उभयलोकसम्बन्धी दुःखों के ज्ञान से ही उस चक्षु में आयतता प्रकट की गई है । इसी आभ्यन्तर चक्षु से यह जाना जाता है कि कामगुण नियम से अनर्थकारी हैं । अतः इनका परित्याग कर आत्मसुख का अनुभवशाली होना चाहिये । इस प्रकार के पवित्र विचार से जो उस सुख का अनुभवी है, तथा जो लोकविदर्शी है–अर्थात् जो इस बात को जानता है कि यह लोक विषयों के सम्बन्ध से ही अधिक दुःखी हो रहा है, यदि प्रशम सुख यहां पर हो सकता है तो उनके सच्चे त्याग से ही हो सकता है । इस प्रकार से जिसके देखने का स्वभाव है उसका

શોકાદિકને કોણ પ્રાપ્ત નથી કરતા તેને માટે સૂત્રકાર કહે છે–' आयय-चक्खू ' ઈત્યાદિ.

આ લોકસંબંધી અને પરલોકસંબંધી દુઃખોનું જ્ઞાન જેને થાય છે એવા જ્ઞાનચક્ષુને આ ઠેકાણે ચક્ષુ–શબ્દથી ગ્રહણ કરેલ છે. બન્ને લોકસંબંધી દુઃખોના જ્ઞાનથી જ તે ચક્ષુમાં આયતતા પ્રગટ કરેલ છે. આ આભ્યન્તર ચક્ષુથી એમ જાણવામાં આવે છે કે કામગુણ નિયમથી અનર્થકારી છે, માટે તેનો પરિત્યાગ કરી આત્મસુખના અનુભવશાળી બનવું જોઈએ. આવા પ્રકારના પવિત્ર વિચારથી જે તેવા સુખના અનુભવી છે, તથા જે લોકવિદર્શી છે અર્થાત્ જે આ વાતને જાણે છે કે આ લોક વિષયોના સંબંધથી જ અધિક દુઃખી બની રહેલ છે. કદાચ પ્રશમ સુખ અહીં બની શકતું હોય તો તેના સાચા ત્યાગથી જ બની શકે છે. આવા પ્રકારથી જેને દેખવાનો સ્વભાવ છે તેનું નામ લોક-

यद्वा लोकस्य=पञ्चास्तिकायरूपस्य वि=विशेषम् ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्गतिसुखदुःखायुः-कारणकर्मरूपं द्रष्टुं शीलं यस्य स लोकविदर्शी। तदेवाह-'लोकस्ये-'त्यादि। लोकस्य अधोभागं=निम्नभागं भवनपतिनारकादिनिवासस्थानरूपं जानाति=ज्ञानविषयी-करोति, एवम्, ऊर्ध्वं भागम्=उपरितनभागं सौधर्मकल्पादिरूपं जानाति, तथा तिर्यञ्चं भागं=मध्यभागं पशुपक्षि-मनुष्यादिनिवासस्थानरूपं जानाति, लोकवि-दर्शी येन कर्मविपाकेन यस्मिँल्लोके यस्य प्राणिनो जन्म भवति तत्सर्वं जानातीत्यर्थः।

यद्वा—'लोकविदर्शी' लोकं=परिग्रहाद्यर्जनतत्परं गृद्धं विशेषेण द्रष्टुं शीलं यस्य स लोकविदर्शी। तदेव दर्शयति 'गृद्धः' इत्यादि। 'गृद्धः=कामभोगमूर्च्छितो लोकः=जनः अनुपरिवर्तमानः=चतुर्गतिषु भूयो भूयो जन्ममरणे प्राप्नुवन् वर्तते'

नाम लोकविदर्शी है। अथवा पञ्चास्तिकायरूप इस लोक के उर्ध्वलोक, अधोलोक एवं तिर्यग्लोक के सुख दुःख और आयुबंध के कारणरूप कर्म को जानने का जिसका स्वभाव है वह भी लोकविदर्शी है। लोकविदर्शी भवनपति और नारकी आदि के निवासस्थानभूत अधोभाग को, तथा सौधर्मकल्पादि रूप उर्ध्वभाग को और पशु, पक्षी, मनुष्यादिका निवासस्थानरूप मध्य लोक को जानता है। कहने का तात्पर्य यह है कि लोकविदर्शी जिस कर्मके विपाक से जिस लोक में जिस जीव का जन्म होता है उस सब विषय को भलीभांति जानता है।

अथवा परिग्रहादिक के उपार्जन तथा संग्रह करने में तत्पर और कामभोग में मूर्च्छित ऐसे इस लोक को विशेष रीति से देखने का जिस का स्वभाव है वह भी लोकविदर्शी है। वह यह बात भी जानता है कि जो प्राणी कामभोगों में आसक्त हैं वे चतुर्गतिरूप इस संसार में बार-

---

विदर्शी छे, અથવા પચાસ્તિકાયરૂપ આ લોકનો, ઉર્ધ્વલોક, અધોલોક અને તિર્યગ્-લોકના સુખદુઃખ અને આયુબંધના કારણરૂપ કર્મને જાણવાનો જેનો સ્વભાવ છે તે પણ લોકવિદર્શી છે. લોકવિદર્શી ભવનપતિ અને નારકી આદિના નિવા-સસ્થાનભૂત અધોભાગને, તથા સૌધર્મકલ્પાદિરૂપ ઉર્ધ્વભાગને, અને પશુ, પક્ષિ, મનુષ્યાદિના નિવાસસ્થાનરૂપ મધ્યલોકને જાણે છે કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે-લોકવિદર્શી જે કર્મના વિપાકથી જે લોકમાં જે જીવનો જન્મ થાય છે તે બધા વિષયને સારી રીતે જાણે છે.

અથવા પરિગ્રહાદિકનું ઉપાર્જન, તથા સંગ્રહ કરવામાં તત્પર અને કામ-ભોગોમાં મૂર્ચ્છિત એવા આ લોકને વિશેષ-રીતિથી દેખવાનો જેનો સ્વભાવ છે તે પણ લોકવિદર્શી છે. તે એ વાત પણ જાણે છે કે-જે પ્રાણી કામભોગોમાં આસક્ત છે તેનું ચતુર્ગતિરૂપ આ સંસારમાં વારંવાર જન્મ અને મરણ થયા કરે છે.

यथा शल्यहस्तवैद्योऽनाथमृतकं तृणैर्वेष्टयित्वा सप्ताहं यावज्जले संस्थाप्य शनैः शनैस्तस्य क्वथितमांसमपाकृत्य दर्शयति-पश्यन्तु भवन्तः, शरीरमिदं यथाऽन्तस्तथा वहिर्यथा वहिस्तथाऽन्तः, सर्वं च शरीरं त्वङ्मांसशोणितजाठरान्त्रमूत्रपुरीषाद्यशुचिपिण्डरूपमेवातः शरीरे कः शुचिवादः?। अशुचौ च शरीरे मुधैव मोहोऽज्ञानिनाम्। यद्वा-कुष्ठादिना जायमानां तस्य दुर्दशां दर्शयति-'यथाऽन्तः' इत्यादि।

गलत्कुष्ठिनो यथा अन्तः=शरीरमध्ये मूत्रपुरीषखेलशिङ्घाणपित्तशोणित-

---

से उत्पन्न होने की वजह से, तथा अतिमलिन मूत्र, पुरीष आदि को वहाने वाला होने से भीतर और बाहर सदा अत्यन्त अपवित्र ही है।

जैसे कोई डॉक्टर अनाथ मृतक को तृणों से लपेट कर सात दिन तक जल में उसे रख देता है और जब उसका चमड़ा धीरे २ सड़-गल जाता है तब उस चमड़े को वह उसके ऊपर से निकालकर उसके अस्थिपंजर को दिखलाकर कहता है कि-देखिये, यह शरीर जिस प्रकार भीतर है उसी प्रकार बाहर है। यह समस्त शरीर चमड़ा, मांस, शोणित, पेट संबंधी आतें, मूत्र और पुरीषादि अशुचि पदार्थों का पिण्डरूप ही है; अतः इस शरीर में शुचिता की मान्यता कहां तक शोभास्पद मानी जा सकती है? अशुचि शरीर में व्यर्थ ही अज्ञानी जन मोह करते हैं। तथा-कुष्ठादिक से जिस समय इस शरीर की दुर्दशा होती है उस समय की परिस्थिति का ध्यान दिलाते हुए भी यह कहा जाता है कि "यथान्तस्तथा बाह्य"-मिति।

एक ऐसा भी कोढ होता है कि जिससे शरीर के प्रत्येक अंग उपांग

शुક્ર અને લોહીના સંયોગથી ઉત્પન્ન થવાથી તથા અતિમલિન મૂત્ર, પુરીષ આદિને વહાવવાવાળા હોવાથી ભીતર અને બહાર સદા અત્યંત અપવિત્ર જ છે.

જેમ કોઇ ડૉકટર અનાથ મડદાને ઘાસથી લપેટી સાત દિવસ સુધી જળમાં તેને રાખે છે અને જ્યારે તેનું ચામડું ધીરે ધીરે સડી સડી ગળી જાય છે ત્યારે તે ચામડીને તેના ઉપરથી કાઢીને તેના અસ્થિપિંજરને દેખાડી કહે છે કે-દેખો, આ શરીર જેવી રીતે ભીતર છે તેવી રીતે બહાર છે, જે પ્રકારે બહાર છે તે પ્રકારે ભીતર છે. આ સમસ્ત શરીર-ચામડી, માંસ, શોણિત, પેટસંબંધી આંતરડા, મૂત્ર અને પુરીષાદિ અશુચિ પદાર્થોના પિંડરૂ[illegible] માટે આ શરીરમાં શુચિતાની માન્યતા કયાં સુધી[illegible] ભાસ્પદ માની [illegible] ાવે? અશુચિ શરીરમાં વ્યર્થ જ અજ્ઞાની[illegible] રે છે.

તથા—કુષ્ઠાદિકથી જે[illegible] શરીરની દુ[illegible] સમયની પરિસ્થિતિનું ધ્યાન આપીને પણ [illegible] વે છે કે " [illegible] વાહ્ય[illegible]

એ[illegible] પણ કોઢ [illegible] નાથી શ[illegible] પ્ર[illegible]

कृम्यादीनि भवन्ति तथा वहिः=शरीरवहिर्भागेऽपि पूयपूतिशोणितकृम्यादीनि स्रवन्ति भवन्ति। तदुपरि 'भिनभिनेति' शब्दं कुर्वाणैर्मक्षिकासहस्रैराक्रान्तं स्वशरीरं विज्ञाय स्वयमपि स्वात्मानं जुगुप्सते उद्विजते च। यच्छरीरदौर्गन्ध्येन सङ्क्रामकरोगभिया च यत्पार्श्वे परिजनोऽपि नोपवेष्टुमुत्सहते।

'जहा अंतो तहा बाहिं' इत्यादिना गूढतयोक्तमेवार्थं प्रकटीकुर्वन्नाह—'अंतो अंतो' इत्यादि। स आयतचक्षुर्लोकविदर्शी अन्तः अन्तः=शरीरस्य मध्ये मध्ये पूतिदेहान्तराणि–पूत्यन्तराणि=पूतिविशेषान्, तथा देहान्तराणि=देहावस्थाविशेषान् मांसरुधिरमेदोमज्जादिरूपाणि पूत्यन्तरदेहान्तराणीत्यर्थः, पश्यति=ज्ञानचक्षुषा विलोकयति,

---

गलने लग जाते हैं, इस रोगी को गलत्कुष्ठी कहते हैं। इसके शरीर के भीतर जैसे मूत्र, पुरीष, खेल–कान का मैल, शिङ्घाण-नाक का मैल, पित्त, शोणित और कृम्यादिक होते हैं वैसे ही शरीर के बाहिरी भागों में भी पीव, शोणित और कीडे वगैरह निकलते रहते हैं, हजारों मक्खियां भी भिन्-भिन् शब्द करती हुई उसके ऊपर मंडराती रहती हैं। ऐसी अपनी दशा देखकर वह स्वयं भी अपने से घृणा करने लग जाता है, और दुःखी भी होता रहता है। उसी समय उसके पास उस रोग के लग जाने के भय से तथा उसकी दुर्गंध से उसके परिजन तक भी बैठने की इच्छा तक भी नहीं करते। अतः इस शरीर की जब यह हालत हो तो फिर उसमें मोह करना ही व्यर्थ है।

ज्ञानी जन तो इस शरीर को सदा अपवित्र जानकर राग करने का स्थान ही नहीं मानते, उनकी दृष्टि में तो इस देह के समस्त भाग ही अति

ગળવા લાગે છે, આ રોગીને ગલત્કુષ્ઠી કહે છે તેના શરીરની ભીતર જેમ મૂત્ર –પુરીષ, બળખાં, કાનનો મેલ, શિઙ્‌ઘાણુ–નાકનો મેલ, પિત્ત, શોણિત અને ચરમીઆ આદિ થાય છે તેવી જ રીતે શરીરના બહારના ભાગમાં પણ પરૂ, શોણિત અને કીડા વિગેરે નીકળતા રહે છે. હજારો માખીઓ પણ બણુ–બણુ શબ્દો કરતી તેના ઉપર ફરતી રહે છે. એવી પોતાની દશા દેખીને તે પોતે પોતાની જાતની ઘૃણા કરવા લાગી જાય છે, અને દુ ખી પણ બને છે. તે વખતે તે રોગના લાગી જવાના ભયથી તથા તેની દુર્ગંધથી તેના પરિજન પણ તેની પાસે બેસવાની ઈચ્છા કરતા નથી. માટે આ શરીરની તેવી સ્થિતિ બનતી હોય તો પછી તે શરીર ઉપર મોહ રાખવો વ્યર્થ છે.

જ્ઞાનીજન તો આ શરીરને સદા અપવિત્ર જાણીને રાગ કરવાનું સ્થાનજ માનતા નથી, તેની દૃષ્ટિમા તો આ દેહના સમસ્ત ભાગ અતિ દુર્ગન્ધથી ઘૃણિતતર જ

तथा 'पुढो वि' पृथगपि=देहाद् बहिरपि 'सवंताइं 'स्रवन्ति=निःसरन्ति=स्यन्दमानानि पूतिदेहान्तराणि-पूत्यन्तराणि=विकृतदुर्गन्धरुधिराणि, देहान्तराणि=श्लेष्मादीनि, कुष्ठरोगिणां मांसादीनि च पश्यति। यद्येवं ततः किं कुर्यात्? इत्याह—'पण्डितः' इत्यादि। पण्डितः=परिज्ञातहेयोपादेयः, प्रत्युपेक्षेत=यथावस्थितरूपेण जानीयात्। एतत्सर्वं विदित्वाऽत्यन्ताशुचौ यौवनरूपसम्पन्नेऽपि शरीरे रागं न विदध्यादिति भावः। उक्तञ्च—

"मंसट्ठिरुहिरण्हारुवणद्धकलमलयमेयमज्जाहिं।
पुण्णंमि चम्मकोसे, दुग्गंधे असुइवीभच्छे॥ १॥
संचारिमजंतगलंतवच्चमुत्तंतसेअपुण्णंमि।
देहे हुज्जा किं रागकारणं असुइहेउम्मि"॥ २॥ इति॥

दुर्गंध से घृणिततर हैं। यदि उन भागों के दुर्गंध की याद की जावे तो वमन तक भी हो जावे। तथा इस देह में अपने २ स्थान में रही हुई जो जो मांस, रुधिर, मज्जा, शुक्र, वसा-(चरबी) तथा हड्डी वगैरह धातुएँ उपधातुएँ हैं वे सब ही, तथा कुष्ठादि-अवस्था में समस्त ही इन्द्रियां गल जाती हैं। अतः ज्ञानी जन इस क्षणविनश्वर एवं नित्य अशुचि शरीर में ममताशाली नहीं होते हैं। कहा भी है—

"मंसट्ठिरुहिरण्हारुवणद्धकलमलयमेयमज्जाहिं,
पुण्णंमि चम्मकोसे, दुग्गंधे असुइवीभच्छे॥ १॥
संचारिमजंतगलंतवच्चमुत्तंतसेअपुण्णंमि,।
देहे हुज्जा किं रागकारणं असुइहेउंम्मि"॥ २॥ इति

भावार्थ इसका यही है कि यह देह मांसादिक पदार्थों से युक्त

છે કદાચ તે ભાગોની દુર્ગન્ધની યાદ કરવામાં આવે તો ઉલટી પણ થાય છે તથા આ દેહમાં પોતપોતાના સ્થાનમા રહેલા જે જે માસ, રૂધિર, મેદ, મજ્જા, શુક, ચરબી તથા હાડકા વિગેરે ધાતુઓ, ' ઉપધાતુઓ છે તે બધી, તથા કુષ્ઠાદિ-અવસ્થામાં સમસ્ત ઇંદ્રિઓ પણ ગળી જવા માંડે છે, તેથી જ્ઞાનીજન આ ક્ષણવિનશ્વર અને નિત્ય અશુચિ શરીરમાં મમતાશાળી થતાં નથી. કહ્યું પણ છે—

"मंसट्ठरुहिरण्हारुवणद्धकलमलयमेयमज्जाहिं।
पुण्णम्मि चम्मकोसे. दुग्गंधे असुइवीभच्छे॥ १॥
संचारिमजंतगलतवच्चमुत्तंतसेअपुण्णंमि।
देहे हुज्जा किं रागकारणं असुइहेउम्मि"॥ २॥ इति,

ભાવાર્થ એ છે કે આ દેહ માંસાદિક પદાર્થોથી યુક્ત હોવાથી અશુચિ

छाया—मांसास्थिरुधिरस्नाय्ववनद्धकलमलकमेदोमज्जाभिः ।
पूर्णे चर्मकोशे दुर्गन्धेऽशुचिवीभत्से ॥ १ ॥
संचारिमयन्त्रगलद्वर्चोमूत्रान्त्रस्वेदपूर्णे ॥
देहे भवेत्किं रागकारणम् अशुचिहेतौ ॥ २ ॥ इति ॥ सू० ९ ॥ सू०

उक्तस्वरूपं शरीरं निर्वर्ण्य किं करोतीति दर्शयति–'से मइमं' इत्यादि।

मूलम्–से मइमं परिन्नाय मा य हु लालपच्चासी, मा तेसु तिरिच्छमप्पाणमावायए कासंकसे खलु अयं पुरिसे, बहुमाई कडेण मूढे पुणो तं करेइ लोहं वेरं वड्ढेइ अप्पणो, जमिणं परिकहिज्जइ इमस्स चेव परिवूहणयाए, अमरायइ महासड्ढी अट्टमेयं तु पेहाए अपरिण्णाए कंदइ ॥ सू० १० ॥

छाया—अथ मतिमन्! परिज्ञाय मा च हु लालाप्रत्याशी, मा तेषु तिरश्चीनमात्मानमापादयेः, कासंकषः खलु अयं पुरुषः, बहुमायी कृतेन मूढः पुनस्तत्करोति लोभं वैरं च वर्द्धयति आत्मनः, यदिदं परिकथ्यतेऽस्य चैव परिवृंहणाय अमरायते महाश्रद्धी आर्तमेतं तु प्रेक्ष्यापरिज्ञाय क्रन्दति ॥ सू० १० ॥

होने की वजह से अशुचि, दुर्गंधयुक्त, बीभत्स है। इसमें कोई भी ऐसी चीज नहीं है जो ज्ञानीजन के राग का कारण हो सके, अतः जो हेयोपादेय के ज्ञाता हैं उनका कर्त्तव्य है कि वे इस शरीर को जैसा इसका स्वभाव है उसी रूप से जानें। इस सबके कहने का तात्पर्य यही है कि यौवन से मदमाते रूप से युक्त भी इस अत्यन्त अपवित्र देह में पूर्वोक्त रीति से कथित इस शरीर का स्वरूप समझकर ज्ञानी–संयमी मुनि को राग नहीं करना चाहिये ॥ सू० ॥ ९ ॥

દુર્ગન્ધયુક્ત બીભત્સ છે તેમાં એવી કોઇ પણ ચીજ નથી કે જેને માટે જ્ઞાનીજનો રાગનું કારણ માની શકે, માટે જે હેયોપાદેયના જ્ઞાતા છે તેનું કર્તવ્ય છે કે આ શરીરને જેવો તેનો સ્વભાવ છે તેવા રૂપમાં જ માને. આ સઘળું કહેવાનો મતલબ એ છે કે–યૌવનના મદમાતા રૂપથી યુક્ત પણ આ અત્યન્ત અપવિત્ર દેહમાં પૂર્વોક્ત રીતિથી કથિત આ શરીરનુ સ્વરૂપ સમજીને જ્ઞાની સંયમી મુનિએ રાગ નહિ કરવો જોઈએ ॥ સૂ૦ ૯ ॥

टीका—'अथ मतिमन्नि'-त्यादि। अथ कायकामस्वरूपपरिज्ञानानन्तरं मतिमन्=हे मेधाविन्! परिज्ञाय=अशुचि अशुचिसम्भवं क्षणभङ्गुरं च शरीरं कटुविपाकं शब्दादिविषयस्वरूपं च ज्ञ-परिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्यान-परिज्ञया परित्यज्य 'च' समुच्चये 'हु'—वाक्यालङ्कारे 'लालप्रत्याशी' लाला=प्रक्षरदन्तुटन्मुखसलिलं, तां प्रत्यशितुं=पुनरशितुं शीलं यस्य स लालप्रत्याशी=लालाभक्षी मा भव। यथा विवेकविकलो बालो मुखनिस्सृतामधःपतन्तीं लालां पुनः पुनरास्वादयति तथैव त्वमपि परित्यक्तानां कामभोगानां पुनरभिलापं मा कुरुष्वेति तात्पर्यम्। अपि च तेषु मिथ्यात्वाविरत्यादिसंसारस्रोतस्सु आत्मानं तिरश्चीनं=प्रतिकूलगामिनं पतनशीलं मा आपादयेः=मा कुरु, जन्म-मरणप्रवाहे स्वात्मानं मा पातयेत्यर्थः, श्रुतचारित्रलक्षणपरमानन्दे स्थापयेति भावः।

ज्ञानीजन देह का उक्त स्वरूप जानकर क्या करते हैं? सो कहते हैं—'से मइमं' इत्यादि।

शिष्य का संबोधन करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि-हे मेधावी शिष्य! तुम शरीर और कामगुण के वर्णित स्वरूप से परिचित हो चुके हो, तथा यह भी जान चुके हो कि यह शरीर स्वयं अशुचि तथा अशुचि-कारणों से पैदा हुआ है; और क्षणभगुंर है, ये शब्दादि विषय भी कटुकविपाकवाले हैं, इसलिये इन सब बातों को ज्ञपरिज्ञा से जानकर और प्रत्याख्यान-परिज्ञा से इनका परित्याग कर अब लालप्रत्याशी-लार चाटने वाला मत बनो। अर्थात् जिस प्रकार विवेकविकल बालक मुखसे नीचे गिरती हुई अपनी लार को बारंबार चाटता है उसी तरह तुम भी परित्यक्त इन कामभोगों को फिर से भोगने की अभिलाषा मत करो। तथा मिथ्यात्व, और अविरति आदि

જ્ઞાનીજન દેહનું ઉક્તસ્વરૂપ જાણીને શું કરે છે, તે કહે છે 'से मइमं' ઇત્યાદિ

શિષ્યને સંબોધન કરીને સૂત્રકાર કહે છે કે-હે મેધાવી શિષ્ય! તમે શરીર અને કામગુણના વર્ણિત સ્વરૂપથી પરિચિત બની ચૂકેલ છો, તથા એ પણ જાણી ચૂક્યા છો કે-આ શરીર સ્વયં અશુચિ તથા અશુચિ કારણોથી પેદા થયેલ છે, અને ક્ષણભંગુર છે. એ શબ્દાદિ વિષય પણ કટુકવિપાકવાલા છે, માટે આ સઘળી વાતોને જ્ઞ-પરિજ્ઞાથી જાણીને પ્રત્યાખ્યાત-પરિજ્ઞાથી તેનો પરિત્યાગ કરી હવે લાલપ્રત્યાશી-લાળચાટનારા ન બનો. અર્થાત્ જેવી રીતે વિવેકવિકલ બાળક મુખથી નીચે ટપકતી પોતાની લાળને વારંવાર ચાટે છે તે માફક તમે પણ પરિત્યક્ત આ કામભોગોને ફરીથી ભોગવવાની અભિલાષા ન કરો. તથા મિથ્યાત્વ અને

न प्रमादवतः शान्तिरिति दर्शयति='कासंकपः' इत्यादि। अयं प्रमादी पु
कासंकषः–कस्यते=पीड्यते प्राणी यैस्ते कासाः शब्दादिविषयास्तान् कष
तदभिमुखं गच्छतीति 'कासंकपः' शब्दादिविषयलोलुपः। स हि समुदीयम
भोगस्पृहोऽहर्निशं 'कृतवानमुं करिष्ये चेमम्' इत्यादिनानाविधसंकल्पविकल्पव
पदे पदे विषीदन्न कदाचिदपि शान्तिमुपलभमान इत्यर्थः। किं च बहुमायी=म

जो संसार के स्रोत-कारण हैं, उनमें अपनी आत्मा को पतनशील
बनाओ; कारण कि ऐसा करने से जन्म और मरण के प्रवाह का क
भी अंत नहीं आ सकेगा। अतः जो इस प्रवाह को रोकने की चा
हो तो मिथ्यात्व आदि सांसारिक कारणों में अपने को मत फँसा
श्रुतचारित्ररूप परम आनन्द में ही अपने को स्थित करो।

प्रमादी आत्मा को शांति नहीं मिलती है यह मानी हुई बात
क्योंकि प्रमादी मनुष्य शब्दादि विषयों की ओर झुकता रहता है, उ
लोलुपी बना रहता है, इसके चित्त में भोगों की इच्छा निरन्तर
करती है, "मैंने इसको किया, इसको अब करूँगा" इत्यादि अ
संकल्प–विकल्पों के तांतों में फँसकर यह कभी भी सच्ची शांति
अनुभव नहीं कर सकता। क्षण-क्षण में विषादी बनता है, कारण
इसका एक संकल्प पूरा होता है और दूसरे को पूर्ण करने के लिये आकु
व्याकुल हो उठता है। जो शब्दादि–विषयों में लोलुप है उसका न
कासंकष है। "कास्यते पीड्यते प्राणी यैस्ते कासास्तान् कषति=तदा

અવિરતિ આદિ જે સંસારના સ્રોત–કારણ છે તેમાં પોતાના આત્માને પતનશી
બનાવો નહિ. કારણ કે એવું કરવાથી જન્મ અને મરણના પ્રવાહનો કોઈ વખ
પણ અંત આવી શકશે નહિ. માટે જો આ પ્રવાહને રોકવાની ચાહના હોય
મિથ્યાત્વ આદિ સાંસારિક કારણોમાં પોતાની જાતને ફસાવો નહિ. શ્રુતચારિ
રૂપ પરમ આનંદમાં જ પોતાને સ્થિર કરો

પ્રમાદી આત્માને શાંતિ મળતી નથી, એ માનેલી વાત છે, કારણ કે પ્રમા
મનુષ્ય શબ્દાદિ વિષયોની તરફ ઝુકતા રહે છે, તેમાં લોલુપી બની રહે છે, તે
ચિત્તમાં ભોગોની ઇચ્છા નિરન્તર રહ્યા કરે છે. "મેં આ બનાવ્યું, આ વસ્તુ
હમણા કરૂં છું અગર કરીશ" ઈત્યાદિ અનેક સંકલ્પ વિકલ્પોના તાંતામાં ફસી
તે સાચી શાંતિનો અનુભવ ક્યારેય પણ કરી શકતો નથી. ક્ષણે ક્ષણે વિષા
બની રહે છે, કારણ કે તેનો એક સંકલ્પ પુરો થાય છે ત્યાં બીજાને પુ
કરવામાં આકુલ–વ્યાકુલ થઈ જાય છે. જે શબ્દાદિક વિષયોમાં લોલુપ છે તે
નામ **कासंकप** છે, "कास्यते पीड्यते प्राणी यैस्ते कासाः, तान् कषति=तदभिमु

बहुलः नानाविधोपायैः परप्रतारणचतुर इत्यर्थः। शब्दादिविषयासक्तस्य कषायोदयोऽवश्यम्भावी ततो 'बहुमायी'-त्युपलक्षणं क्रोधादीनां त्रयाणां, तेन 'बहुक्रोधी' इत्यादि भवति। अपि च 'कृतेन मूढः' कृतेन=कर्तव्येन मूढः=विकलः, कार्यव्याकुलचित्तत्वेन भोजनादिसमये भोक्तुमप्यशक्नुवन् स पुनस्तन्मायादिकं तथा

मुखं गच्छति-इति कासंकषः" अर्थात् जिनके द्वारा प्राणी दुःखित होते हैं उनका नाम कास है, और वे शब्दादि विषय हैं, इनकी ओर जो प्रवृत्ति करता है उसका नाम कासंकष है।

शब्दादिक-विषयों में आसक्त प्राणी मायाबहुल होते हैं। अनेक प्रपंच रचकर दूसरों की प्रतारणा (ठगाई) करने का उनका ध्येय बना रहता है। इस कार्य में ये इतने चतुर होते हैं कि-भोले-भाले प्राणी इन की मायाचारी में बहुत जल्दी फँस जाते हैं। 'बहुमायी' पद अन्य क्रोध मान लोभ का उपलक्षक है। इससे शब्दादि-विषयों में फँसे हुए प्राणी बहुक्रोधी, बहुमानी, बहुलोभी होते हैं, ऐसा अर्थ भी इसी एक पद से गृहीत हो जाता है, कारण कि शब्दादिक विषयों में आसक्त प्राणियों के कषाय का उदय अवश्य होता है तथा ऐसे प्राणी कर्तव्य से भी विकल होते हैं अर्थात्-समयानुसार जो कर्म उन्हें करना चाहिये उनको नहीं करते। अन्य कार्यों में व्याकुलचित्त होने से, अधिक क्या कहा जाय ?; उनको खाने तक की भी फुरसत नहीं मिलती। रातदिन उन्हीं मायादिक

गच्छति-इति कासंकषः" અર્થાત્ જે દ્વારા પ્રાણી દુખિત થાય છે તેનું નામ કાસ છે અને તે શબ્દાદિ વિષય છે, તેની તરફ જે પ્રવૃત્તિ કરે છે તેનુ નામ कासंकष છે.

શબ્દાદિક વિષયોમા આસક્ત પ્રાણી માયાબહુલ હોય છે, અનેક પ્રપંચ રચીને બીજાને ઠગવાનો તેનો ધ્યેય બની રહે છે. તે કાર્યમાં તે એટલો ચતુર હોય છે કે ભોળા પ્રાણી તેની માયાજાળમાં બહુ જલ્દી ફસી જાય છે. બહુમાયીપદ અન્ય ક્રોધ માન લોભનો પણ ઉપલક્ષક છે, તેથી શબ્દાદિ વિષયોમા ફસેલાં પ્રાણી બહુક્રોધી, બહુમાની અને બહુલોભી હોય છે, એવો અર્થ પણ તેના એક પદથી ગ્રહિત થઇ જાય છે, કારણ કે શબ્દાદિ વિષયોમાં આસક્ત પ્રાણિયોને કષાયનો ઉદય અવશ્ય થાય છે, તથા એવો આત્મા કર્તવ્યથી પણ વિકલ થાય છે, સમયાનુસાર જે કર્મ તેણે કરવું જોઈએ તેતો કરતો નથી, અન્ય કાર્યોમાં વ્યાકુળચિત્ત હોવાથી તેને અધિક શું કહેવું ?; ખાવાપીવાની પણ ફુરસદ મળતી નથી. રાતદિન તેવા માયાદિક કાર્યોમાં જ ફસી રહે છે, લોભ

करोति येन आत्मनो लोभं वैरं च वर्द्धयते। शब्दादिविषयाऽप्राप्तिदुःखपीडितो हि कदाचिच्छब्दादिविषयान् प्राप्नोत्यपि किन्तु परिणतिविरसत्वात्सेविता अपि ते चिरकालदुःखदा एव भवन्ति। उक्तञ्च—

"खणमित्तसुक्खा बहुकालदुक्खा" इति। यदर्थमात्मनोऽनन्तसंसारजनकं वैरमुत्पादयति। तदाह-'यदिद'-मित्यादि। यद् यस्मात् अस्यैव क्षणभङ्गुरस्य शरीरस्य परिबृंहणाय=परिवर्द्धनाय-पुष्ट्यर्थं हिंसाद्यनेकसावद्यव्यापारान् करोति,

कार्यों के करने में ही फँसे रहते हैं, लोभ और वैरभाव को बढाते रहते हैं। लोभ से ही मायाचार करने में जीवों की प्रवृत्ति होती है। मायाचार से वैरभाव की वृद्धि होती है। थोड़ी देर के लिये मान लिया जाय कि शब्दादिविषयों की अप्राप्तिजन्य दुःखों से पीडित हुआ प्राणी कदाचित् उन शब्दादिकविषयों को प्राप्त कर भी ले, तो भी सेवन किये गये वे शब्दादिविषय परिणाम में विरस होने से भविष्यकाल में जीवों को चिरकाल तक दुःखदायी ही होते हैं। "खणमित्तसुक्खा बहुकालदुक्खा"-ये विषय क्षणमात्र सुखरूप भासते हुए भी अनन्त दुःखों के देनेवाले होते हैं। जिनके लिये जीव अनन्त संसार के जनक वैर को उत्पन्न करता है। उसी बात को सूत्रकार "जमिणं" इत्यादि से स्पष्ट करते हुए कहते हैं-संसार में जीवों द्वारा हिंसादिक अनेक सावद्य व्यापारों के करने में जो प्रवृत्ति की जाती है उसका प्रधान कारण एक निज शरीर की पुष्टि करने का मोह ही है। इस प्रकार के मोह के आधीन बना हुआ जीव स्वयं अपने आपको अनेक कष्टों को झेलता हुआ भी

અને વેરભાવને વધારતા રહે છે લોભથી જ માયાચાર કરવામાં જીવોની પ્રવૃત્તિ થાય છે, માયાચારથી વેરભાવની વૃદ્ધિ થાય છે. થોડા વખતને માટે માની લ્યો કે શબ્દાદિ-વિષયોની અપ્રાપ્તિજન્ય દુઃખોથી પીડિત થયેલ પ્રાણી કદાચ તે શબ્દાદિક-વિષયોને પ્રાપ્ત કરી લે તો પણ ભોગવવામા આવેલા તે શબ્દાદિ વિષય પરિણામમાં વિરસ થવાથી ભવિષ્યકાળમા જીવોને ચિરકાલ સુધી દુઃખદાયી જ થાય છે. કેમ કે-"खणमित्तसुक्खा बहुकालदुक्खा" આ વિષય ક્ષણમાત્ર સુખરૂપ લાગે છે પણ અનંત દુઃખોના દેવાવાળા હોય છે, જેના માટે જીવ અનંતસંસારજનક વૈરને ઉત્પન્ન કરે છે, આ વાતને સૂત્રકાર "जमिणं" ઇત્યાદિ પદોથી સ્પષ્ટ કરીને કહે છે-સંસારમાં જીવો હિંસાદિક અનેક સાવદ્ય વ્યાપારો કરવામાં જે પ્રવૃત્તિ કરે છે તેનુ પ્રધાન કારણ એક પોતાના શરીરની પુષ્ટિ કરવાનો મોહ જ છે. આવા પ્રકારના મોહને આધીન બનેલા જીવ પોતે પોતાની જાતને અનેક કષ્ટોથી દુઃખી બનાવતા છતાં પણ સુખી માને છે, અને

स्वयं क्लिश्यते च। इदमपरं कथ्यते–'अमरायते' इत्यादि, 'महाश्रद्धी' महती चासौ श्रद्धाऽर्थकामविषया महाश्रद्धा, साऽस्ति यस्य स महाश्रद्धी–भोगेषु तत्साधनेषु चातिश्रद्धावान् सन् अमरायते भोगवाञ्छयाऽर्थोपार्जनपर आत्मानममरमिव मन्यते। एतम्= अमरायमाणम् महाश्रद्धिनम् आर्तम्=शारीरमानसिकपीडापीडितं प्रेक्ष्य विवेकबुद्ध्या विचार्य, हे शिष्य! शब्दादिविषये मनो न निधेयमिति भावः। यश्च भोगगृद्धः

सुखी मानता रहता है, और अर्थ, काम और विषयों एवं उनके साधनों के जुटाने में ही रात-दिन वह तल्लीन बना रहता है। उसके हृदय में सदा यही दृढ़ विश्वास काम करता रहता है कि–'अर्थ कामादिक एवं उनके साधनों की प्राप्ति से ही जीवन सुखमय होता है, इनके विना जीवन का कोई मूल्य नहीं। शारीरिक साता ही जीवन की साता है, यह विना भोगों के होती नहीं, भोगों का भोगना भी विना अर्थोपार्जन किये बनता नहीं, अतः वे भोगों की वाञ्छा से प्रेरित होकर अर्थोपार्जन करने में तत्पर होते रहते हैं और सब कुछ साधनसंपन्न हो जाने पर अपने आपको अमर मानने लग जाते हैं। इस प्रकार भोग और उनके साधनों में श्रद्धासंपन्न तथा अपने आपको अमर मानने वाले प्राणियों को हे शिष्य! तुम कभी भी सुखी न समझो। वे तो सदा शारीरिक एवं मानसिक पीडाओं से व्यथित ही रहते हैं। ऐसा जानकर तुम शब्दादि-विषयों में अपने मनको कभी भी आसक्तियुक्त न करो।

અર્થ, કામ તથા વિષયો અને તેના સાધનોને મેળવવામાં જ રાત દિવસ તલ્લીન બની રહે છે. તેના હૃદયમાં સદા એ જ વિશ્વાસ કામ કરતો રહે છે કે 'અર્થ-કામાદિક અને તેના સાધનોની પ્રાપ્તિથી જ જીવન સુખમય થાય છે. તેના વિના જીવનનું કોઈ મૂલ્ય નથી શારીરિક શાતા જ જીવનની શાતા છે. એના વિના ભોગો થતા નથી. ભોગોનું ભોગવવું અર્થ ઉપાર્જન કર્યા વિના થતું નથી, તેથી તે ભોગોની વાંછનાથી પ્રેરિત થઈને અર્થ ઉપાર્જન કરવામાં તત્પર રહ્યા કરે છે. અને બધાસાધનસંપન્ન બનવાથી પોતે પોતાની જાતને અમર માનવા લાગી જાય છે. આ પ્રકારે ભોગ અને તેના સાધનોમાં શ્રદ્ધાસંપન્ન તથા પોતે પોતાની જાતને અમર માનવાવાળા પ્રાણીને હે શિષ્ય! તમે કોઈ વખત પણ સુખી ન માનો. એ તો સદા શારીરિક અને માનસિક પીડાઓથી વ્યથિત જ રહે છે. એવું સમજીને તમે શબ્દાદિ વિષયોથી પોતાના મનને કોઈ વખત પણ આસક્તિ-યુક્ત ન કરો.

सोऽपरिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञयाऽनर्थकामं तद्विपाकं चाबुद्ध्वा, प्रत्याख्यानपरिज्ञया च तमपरित्यज्य च क्रन्दति=इष्टविषयाप्राप्तौ स्पृहां, तन्नाशे शोकं चानुभूयोच्चै रोदिति। कामभोगासक्तश्चतुर्गतिकसंसारे भ्रामं भ्रामं नरकनिगोदादिष्वनन्तयातनां प्राप्नोतीति भावः ॥ सू० १० ॥

कामकटुविपाकमुपदर्श्य साम्प्रतमुपसंहरति-' से तं ' इत्यादि ।

मूलम्—से तं जाणह जमहं बेमि, तेइच्छं पंडिए पवयमाणे से हंता छेत्ता भेत्ता लुंपिता विलुंपिता उद्दविता, अकडं करिस्सामित्ति मन्नमाणे, जस्स विय णं करेइ, अलं बालस्स संगेणं, जे वा से कारइ बाले, न एवं अणगारस्स जायइ-त्ति बेमि॥ सू० ११॥

छाया—तत् (तस्मात्) तज्जानीत यदहं ब्रवीमि, चैकित्स्यं पण्डितः प्रवदन् स हन्ता छेत्ता भेत्ता लुम्पयिता विलुम्पयिता अपद्रावयिता, अकृतं करिष्यामि—इति मन्यमानः, यस्मै अपि च खलु करोति, अलं बालस्य सङ्गेन, यो वा तत्कारयति बालः, न एवमनगारस्य जायते ॥ सू० ११॥ इति ब्रवीमि ॥

"अपरिज्ञाय क्रन्दति"—जो विषय-भोगों में गृद्ध बने हुए हैं वे इन अर्थकामरूप भोगों को और इनके विपाक को ज्ञ-परिज्ञा से नहीं जानकर और प्रत्याख्यान-परिज्ञा से उनका परित्याग नहीं कर, इष्ट विषय की प्राप्ति की इच्छा से और उसके वियोग में शोक से सदा आकुल-व्याकुल बने रहते हैं। कामभोगों में आसक्त वे प्राणी चतुर्गतिरूप इस संसार में वारंवार भ्रमण कर नरक-निगोदादि की अनन्त वेदनाओं को पाते रहते हैं। ॥ सू० १० ॥

काम के कटुक विपाक को स्पष्टकर अब इसका उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं—' से तं ' इत्यादि।

"अपरिज्ञाय क्रन्दति" જે વિષય ભોગોમાં ગૃદ્ધ બનેલા છે, તેઓ આ અર્થકામ-રૂપ ભોગોને અને તેના વિપાકને જ્ઞ-પરિજ્ઞાથી નહિ જાણીને અને પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાથી તેનો પરિત્યાગ નહિ કરીને ઇષ્ટ વિષયની પ્રાપ્તિની ઇચ્છાથી તેના વિયોગમાં શોકથી સદા આકુળ-વ્યાકુળ બની રહે છે. કામભોગોમાં આસક્ત પ્રાણી ચતુર્ગતિ-રૂપ આ સંસારમાં વારંવાર ભ્રમણ કરી નરકનિગોદાદિની અનંત વેદનાઓને ભોગવતા રહે છે. ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

કામના કટુક વિપાકને સ્પષ્ટ કરીને હવે તેનો ઉપસંહાર કરતાં સૂત્રકાર કહે છે-' से तं ' ઈત્યાદિ.

टीका—'तदित्यादि । यस्मात्कामा दुःखमूलाः तत्तस्मात्कारणात् यत्पूर्वोक्तं वक्ष्यमाणं वा अहं ब्रवीमि तत्सर्वं यथावस्थितं यूयं जानीत–' कामभोगा हेयाः ' इति मदीयोपदेशमवश्यं शृणुतेत्यर्थः ।

ननु भवदुपदेशे किं वैलक्षण्यं यदुपदेशं वयं शृणुमः, अन्योपदेशादपि कामनिवृत्तिर्भवितुमर्हतीति चेदाह–'चैकित्स्य'–मित्यादि, पण्डितः=पण्डितम्मन्यः केवलं शब्दज्ञानी चैकित्स्यं कामचिकित्सामुत्पन्नरोगचिकित्सामिव कामसेवनमेव

हे शिष्य ! काम सदा दुःखों के मूल-कारण हैं, इसलिये इस विषय में पहिले जो कुछ कहा गया है, अथवा आगे भी जो कुछ कहा जावेगा वह सब यथार्थ है; इसमें थोड़ा सा भी संदेह के लिये स्थान नहीं है, ऐसा तुम विश्वास रखो। 'कामभोग सदा हेय हैं' यही हमारा उपदेश है। इस उपदेश की पुष्टि इस प्रकार से कामभोगों में हेयता के प्रदर्शन से भलीभांति हो जाती है। अतः मोक्षाभिलाषीजन को इस उपदेश का श्रवण करना चाहिये । इस प्रकार से शिष्यों के प्रति सूत्रकार का आदेश है ।

प्रश्न—इस आपके उपदेश में ही ऐसी क्या विलक्षणता है जिसके लिये यह उपदेश अवश्य सुना जाय, अन्य के उपदेश से भी कामादिक की निवृत्ति हो सकती है ?।

उत्तर—जो सिर्फ शब्दज्ञानी हैं, अपने आपको विद्वान् मानते हैं

હે શિષ્ય! કામ સદા દુઃખોનું મૂળ કારણ છે. માટે આ વિષયમાં પહેલાં જે કાંઈ કહેવામાં આવેલ છે અથવા આગળ પણ કહેવામા આવશે તે સઘળું યથાર્થ છે. તેમા જરા પણ સંદેહનુ સ્થાન નથી. એવો તમે વિશ્વાસ રાખો. કામભોગ સદા હેય-ત્યાજ્ય છે. એજ અમારો ઉપદેશ છે. આ ઉપદેશની પુષ્ટિ આ પ્રકારથી કામભોગોમાં હેયતાના પ્રદર્શનથી ભલી ભાંતિ થાય છે. માટે પ્રત્યેક મોક્ષાર્થીએ આ ઉપદેશનું શ્રવણ કરવું જોઈએ. આ પ્રકારથી શિષ્યો પ્રતિ સૂત્રકારનો આદેશ છે.

પ્રશ્ન—આ આપના ઉપદેશમા એવી કઈ વિલક્ષણતા છે જેના માટે આ ઉપદેશ અવશ્ય સાંભળવો પડે. બીજાના ઉપદેશથી પણ કામાદિકની નિવૃત્તિ થઈ શકે છે?

ઉત્તર—જે ફક્ત શબ્દજ્ઞાની છે, પોતે પોતાને વિદ્વાન માને છે એવી વ્યક્તિ

तच्चिकित्सां भवदन् सः=मिथ्योपदेष्टा परतीर्थिको विविधसावद्यव्यापारप्रवृत्तो भवति। तदेवाह-'हन्ते'त्यादि। हन्ता दण्डादिना, छेत्ता खड्गादिना, भेत्ता भल्लकादिना, लुम्पयिता ग्रन्थिच्छेदादिना, विलुम्पयिता आक्रमणादिना, अपद्रावयिता प्राणातिपातादिना भवति। किं कृत्वैतादृक्सावद्यव्यापारकारी भवतीत्याह-'अकृतं' यदन्येन केनापि पूर्वं कामचिकित्सनं न कृतं तदहं करिष्ये, इति=इत्थं मन्यमानः सः, यस्मै चोपदिशति सः, तदुभयमपि न केवलमुपदेष्टैव हननच्छेदन-

ऐसे व्यक्ति 'कामभोगादिकों की निवृत्ति उनके सेवन करने से ही होती है' ऐसा मानते हैं और कहते भी हैं—जैसे उत्पन्न हुए रोग की चिकित्सा दवाई से होती है उसी प्रकार कामादिकों की चिकित्सा भी उनके सेवनरूप दवा से ही होती है। इस प्रकार की मान्यतावाले सच्चे उपदेशक न होकर उल्टे मिथ्या उपदेशक ही हैं। ये पत्थर की नाव के समान हैं। जिस प्रकार पत्थर की नौका स्वयं डूब जाती है और साथ में बैठे हुए मनुष्यों को भी डुबा देती है, ठीक इसी प्रकार ये स्वयं एक तो सावद्य व्यापार में प्रवृत्त बने रहते हैं और जो इनकी मान्यता के अनुयायी होते हैं वे भी इन्हीं की मान्यता के पथिक बन जाते हैं, अर्थात्-ये स्वयं डूबते हैं और अपने अनुयायियों को भी डुबाते हैं, अतः इनके उपदेश से कामादिक की निवृत्ति नहीं हो सकती, किन्तु वीतराग के उपदेश से ही होती है। इसलिये इस उपदेश के सुनने की जरूरत है। यह उपदेश भी साक्षात् वीतराग प्रभु के ही मुख से निकला हुआ है। हे जम्बू! भगवान् से जैसा मैंने सुना है वैसा ही मैं तुझे कहता हूं। पर-

'કામભોગાદિકની નિવૃત્તિ, તેનું સેવન કરવાથીજ થાય છે' એવું માને છે. અને કહે પણ છે કે-' જેવી રીતે ઉત્પન્ન થયેલ રોગની ચિકિત્સા દવાથીજ થાય છે તે પ્રકારે કામાદિકની ચિકિત્સા પણ તેના સેવનરૂપ દવાથીજ થાય છે. એવી માન્યતાવાળા સાચા ઉપદેશક ન બનીને ઉલટા મિથ્યા ઉપદેશક જ છે એઓ પત્થરની નાવ સમાન છે. જેવી રીતે પત્થરની નૌકા પોતે ડૂબી જાય છે અને તેમાં બેઠેલા મનુષ્યોને પણ ડુબાવે છે, તે પ્રકારે આ પોતે પણ એકતો સાવદ્ય વ્યાપારમાં પ્રવૃત્ત રહે છે અને જે એની માન્યતાના અનુયાયી હોય છે તે પણ એની માન્યતાનાજ પથિક બની જાય છે. તે પોતે ડૂબે છે અને પોતાના અનુયાયિઓને પણ ડૂબાવે છે. માટે તેના ઉપદેશથી કામાદિકની નિવૃત્તિ થતી નથી, વીતરાગના ઉપદેશથી જ થાય છે, જેથી તે ઉપદેશને સાંભળવાની આવશ્યકતા છે. આ ઉપદેશ પણ સાક્ષાત્ વીતરાગ પ્રભુના મુખથી નિકળેલ છે. હે જમ્બૂ! ભગવાન પાસેથી જેવું મેં સાંભળ્યું છે તેવુંજ કહું છું.

तीर्थिकों का उपदेश मिथ्या इसलिये है कि उनके उपदेश से जीवों की सावद्य क्रियाओं में प्रवृत्ति हो जाती है। इसका कारण भी यही है कि वे स्वयं उन सावद्य क्रियाओं से विरक्त नहीं होते हैं, हनन-छेदन-भेदन-लुम्पन और विलुम्पनादिक अनेक अकृत्यों में उनकी प्रवृत्ति बनी रहती है। दण्डादिक से ताडन करने का नाम हनन है, इस क्रिया के कर्त्ता होने से वे हन्ता कहे जाते हैं। खड्गादिक से विदारण करने का नाम छेदन है, भाले वगैरह से भेदने का नाम भेदन, गांठ वगैरह के छेदनादिक करने का नाम लुम्पन और आक्रमणादिक करने का नाम विलुम्पन तथा प्राणातिपात आदि करने का नाम अपद्रावण है। इन २ क्रियाओं के कर्त्ता होने से वे छेत्ता, भेत्ता, लुम्पयिता, विलुम्पयिता और अपद्रावयिता कहे जाते हैं। इन २ क्रियाओं के करने में उनकी प्रवृत्ति इसलिये होती है कि-वे यह विचार करते हैं कि काम की यह चिकित्सा पूर्व में किसी ने नहीं की है हम इसे करेंगे। इस प्रकार की मान्यता से प्रेरित होकर वे जिनके लिये उपदेश करते हैं वे और स्वयं उपदेष्टा, ये दोनों पूर्वोक्त हनन और छेदनादिक व्यापारों को करते हैं, इसलिये करने वाले कराने वाले तथा उसका अनुमोदन करने वाले भी अज्ञानी माने गये हैं। अर्थात् ऐसे जीवों का ज्ञान सिर्फ शाब्दिक ही है।

પરતીર્થિઓનો ઉપદેશ મિથ્યા તેટલા માટે છે કે તેઓના ઉપદેશથી જીવોની સાવદ્ય વ્યાપારોમા પ્રવૃત્તિ થઈ જાય છે તેનું કારણ એ છે કે તેઓ પોતે તેવા સાવદ્ય વ્યાપારોથી વિરક્ત બનેલ નથી. હણવું, છેદવું, ભેદવું, લુમ્પન, અને વિલુમ્પનાદિક અનેક અકૃત્યોમાં તેઓની પ્રવૃત્તિ બની રહે છે દંડાદિકથી તાડન કરવાનું નામ હણવું છે આ ક્રિયાનો કર્ત્તા હોવાથી તે કર્ત્તા હણનાર કહેવાય છે. તલવાર આદિથી વિદારણ કરવાનું નામ છેદન છે, ભાલા વિગેરેથી ભેદવું તેનું નામ ભેદન, ગાંઠ વિગેરેનું છેદવું તેનું નામ લુમ્પન અને આક્રમણાદિક કરવાનું નામ વિલુમ્પન તથા પ્રાણાતિપાત આદિ કરવાનું નામ અપદ્રાવણ છે. આ બધી ક્રિયાઓનો કર્ત્તા બનવાથી તે છેત્તા, ભેત્તા, લુમ્પયિતા, વિલુમ્પયિતા અને અપદ્રાવયિતા કહેવામાં આવે છે આવી ક્રિયાઓના કરવામા તેઓની પ્રવૃત્તિ તેટલા માટે થાય છે કે-તે એવો વિચાર કરે છે કે આ કામની ચિકિત્સા પૂર્વમાં કોઇએ કરેલ નથી, અમે તે કરીશું. આવા પ્રકારની માન્યતાથી પ્રેરિત થઇને તે જેના માટે ઉપદેશ કરે છે તે અને સ્વયં ઉપદેષ્ટા એ બન્ને પૂર્વોક્ત હનન અને છેદનાદિક વ્યાપારો કરે છે, માટે કરનાર, કરાવનાર તથા તેની અનુમોદના કરનાર પણ અજ્ઞાની માનવામાં આવે છે. અર્થાત્ એવા જીવોનું જ્ઞાન ફક્ત શાબ્દિક જ છે.

भेदनादिसावद्यव्यापारान् करोति । यो वा तत् हननादिकं कारयति 'वा' शब्दात्तदनुमोदकोऽपि, बालः=अज्ञानी शब्दज्ञानमात्रावलम्बी भवति, अतो बालस्य=एतादृशस्य कर्तुः कारयितुरनुमोदयितुरज्ञानिनः संगेन=संसर्गेण, अलं=व्यर्थम् । अज्ञानिनः संसर्गोऽपि सर्पसंसर्ग इव सर्वथा परिवर्जनीय इति भावः । तस्मात्परतीर्थिकोपदेशः शब्दादिविषयकषायकलुषितत्वेन हननादिसावद्यक्रियासु प्रवृत्तिजनकतया च हेय एव, न चैतादृशो मदीयोपदेशः वीतरागभगवन्मुखात्साक्षाच्छ्रुतस्यैव परिकथ्यमानत्वादिति तात्पर्य्यम् । कस्यैवं न भवतीत्याह-'नैव'-मित्यादि ।

इसलिये जिस प्रकार सर्प का संसर्ग सर्वथा त्याज्य होता है उसी प्रकार ऐसे अज्ञानी जीवों का संसर्ग भी सदा छोड़ने योग्य शास्त्रकारों ने बतलाया है, अतः इसे अवश्य ही छोड़ देना चाहिये । इससे यह भाव निकलता है कि परतीर्थिकों का उपदेश शब्दादिक-विषय-कषायों से कलुषित होने की वजह से, तथा हननादिक सावद्यक्रियाओं में प्रवृत्ति का जनक होने से सदा हेय-त्याज्य है। जिस प्रकार का इनका उपदेश होता है ऐसा उपदेश मेरा नहीं हैं । क्योंकि यह जो उपदेश दिया गया है, वह साक्षात् वीतराग प्रभु के मुख से ही सुना हुवा दिया गया है, मनः कल्पित नहीं । जो द्रव्य एवं भाव दोनों प्रकार के अगार से रहित हैं, तथा शब्दादिक विषयों के कटुक फल से परिचित हैं ऐसे संयमी मुनि कभी भी इस प्रकार से काम की चिकित्सा का उपदेश नहीं देते हैं,

---

માટે જેવી રીતે સર્પનો સંસર્ગ સર્વથા ત્યાજ્ય હોય છે, તે પ્રકારે આવા અજ્ઞાની જીવોનો સંસર્ગ પણ સદા છોડવા યોગ્ય શાસ્ત્રકારોએ બતલાવેલ છે, માટે તેને અવશ્ય છોડી દેવો જોઈએ. આથી સાર એ નિકળે છે કે પરતીર્થિઓનો ઉપદેશ શબ્દાદિક-વિષય-કષાયોથી કલુષિત હોવાથી, તથા હણવું આદિ સાવદ્ય વ્યાપારની પ્રવૃત્તિનો જનક હોવાથી સદા હેય-ત્યાજ્ય છે. જેવી રીતે તેઓનો ઉપદેશ હોય છે, તે પ્રકારે મારો ઉપદેશ નથી કારણકે આ જે ઉપદેશ આપવામાં આવેલ છે તે સાક્ષાત વીતરાગ પ્રભુના મુખથી સાંભળેલો જે છે તેજ આપવામાં આવેલ છે. મનકલ્પિત નહિ. જે દ્રવ્ય અને ભાવ બન્ને પ્રકારના અગાર-ઘરથી રહિત છે, તથા શબ્દાદિક વિષયોના કટુક ફળથી પરિચિત છે એવા સંયમી મુનિ કોઈ વખત પણ આ પ્રકારથી કામની ચિકિત્સાનો ઉપદેશ દેતા નથી,

अनगारस्य=द्रव्यभावागाररहितस्य परिज्ञातशब्दादिविषयकटुविपाकस्य संयतस्य एवं कामचिकित्सोपदेशदानं तत्कारणं च न जायते=न कल्पते 'इति ब्रवीमि' इति पूर्ववद् व्याख्येयम् ॥ सू० ॥ सू० ११ ॥

इत्याचाराङ्गसूत्रस्याचारचिन्तामणिटीकायां द्वितीयाध्ययनस्य
पञ्चमोद्देशः समाप्तः ॥ २-५ ॥

और न उसके कारण ही बनते हैं। "इति ब्रवीमि" इन पदों की व्याख्या पहिले की जा चुकी है ॥ सू० ११ ॥

॥ आचारांगसूत्रके द्वितीय अध्ययन का
पंचम उद्देश समाप्त ॥ २-५ ॥

તેમજ તેનું કારણ પણ બનતા નથી. "इति ब्रवीमि" આ પદોની વ્યાખ્યા પહેલા આપવામા આવેલ છે ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

આચારાંગસૂત્રના બીજા અધ્યયનનો
પાંચમો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ૨-૫.



॥ आचाराङ्गसूत्रे द्वितीयाध्ययनस्य षष्ठोद्देशः ॥

अभिहितः पञ्चमोद्देशः, साम्प्रतं षष्ठ आरभ्यते । इहानन्तरोद्देशके शरीरपरिरक्षणाय लोकनिश्रया विहरन्नासक्तिरहितोऽनगारो लोके ममत्वं न कुर्यादित्यर्थोऽभिहितः, स एवात्र प्रतिपाद्यते–' सेतं ' इत्यादि ।

पूर्वोद्देशस्यान्तिमसूत्रे ' न हु एवं अणगारस्स जायइ ' संयमिन एवं न कल्पते, इति कथितम्, तस्यैव विशदीकरणायाह–' से तं ' इत्यादि ।

मूलम्—से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाय तम्हा पावकम्मं नेव कुज्जा न कारवेज्जा ॥ सू० १ ॥

छाया—स तत् सम्बुद्ध्यमान आदानीयं समुत्थाय तस्मात्पापकर्म नैव कुर्य्यात् न कारयेत् ॥ सू० १ ॥

॥ आचारांगसूत्रके दूसरे अध्ययनका छठा उद्देश ॥

द्वितीय अध्ययन का पंचम उद्देश संपूर्ण हुवा; अब यहां उसका छट्ठा उद्देश प्रारंभ किया जाता है। पंचम उद्देश में ' शरीर की रक्षा करने के लिये आसक्तिरहित होकर लोक की निश्रा से संयममार्ग में विचरना चाहिये, संयमी मुनि को लोक के साथ कभी भी ममत्व नहीं करना चाहिये '–यह बात कही गई है। इसी विषय की पुष्टि इस उद्देश में की जायगी ' सेतं ' इत्यादि।

पंचम उद्देश के " न हु एवं अणगारस्स जायइ " इस अन्तिम सूत्र में " संयमी को ऐसा नहीं कल्पता है " जो यह कहा है उसी को विशद करने के लिये कहते हैं–' से तं ' इत्यादि ।

આચારાંગસૂત્રના બીજા અધ્યયનનો છઠ્ઠો ઉદ્દેશ.

બીજા અધ્યયનનો પાંચમો ઉદ્દેશ સમાપ્ત થયો હવે છઠ્ઠા ઉદ્દેશનો આરંભ થાય છે. પાંચમાં ઉદ્દેશમાં શરીરની રક્ષા કરવા માટે આસક્તિ રહિત બનીને લોકની નિશ્રાથી સંયમીએ સંયમ માર્ગમાં વિચરવું જોઇએ. સંયમી મુનિએ લોકોની સાથે કોઈ વખત પણ મમત્વ નહિ કરવુ જોઈએ. આ વાત કહેવામાં આવેલ છે. તે વિષયની પુષ્ટિ આ ઉદ્દેશમાં કરવામાં આવશે–'सेतं' ઇત્યાદિ.

પાંચમાં ઉદ્દેશમાં "न हु एवं अणगारस्स जायइ" આ અંતિમ સૂત્રમાં "સંયમીને એવું કલ્પતું નથી. એમ કહેલ છે તેનુ વિશદ કરવાને માટે કહે છે—'से तं' ઇત્યાદિ

टीका—'स त-'दित्यादि। यः षड्जीवनिकायोपघातजनकं चिकित्सोपदेशं तदाचरणं च न करोति स पूर्वोक्तरूपोऽनगारः, तत्=चिकित्सोपदेशादिकं सम्बुद्धयमानः, सम्=सम्यक्प्रकारेण बुध्यमानः=ज्ञ-परिज्ञया ज्ञेयत्वेन, प्रत्याख्यान-परिज्ञया च हेयत्वेन जानानः आदानीयं=रत्नत्रयं समुत्थाय=गृहीत्वा।

यद्वा—सः पूर्वोक्तोऽनगारस्तदादानीयं=ज्ञानादिकं मोक्षैककारणमस्तीत्येवं सम्बुद्धयमानः=सम्यग् जानानः समुत्थाय=सम्यक्संयमाचरणेनोत्थाय 'सर्वसावद्यव्यापारं न करिष्यामी'-ति प्रतिज्ञाय, तं कदापि न कुर्यादित्यादि। यतः सर्वसाव-

---

जो अनगार षट्काय के जीवों का विराधक चिकित्सा के उपदेश को और उसके आचरण को नहीं करता है ऐसा पूर्वोक्त स्वरूपवाला वह अनगार ज्ञ-परिज्ञा से ज्ञेयपने और प्रत्याख्यान परिज्ञा से हेयपने उस चिकित्सोपदेशादिक को अच्छी तरह से जानता हुआ आदानीय-रत्नत्रय को ग्रहण कर प्राणातिपातादिरूप अठारह प्रकार के पापकर्मों को कभी भी न करे, न दूसरों से करावें, करने वाले एवं कराने वाले की अनुमोदना भी न करे।

अथवा-सूत्रमें आये हुए 'आदानीय' शब्द का अर्थ ज्ञानादिक भी है। जिसका अभिप्राय यह होता है कि-"मोक्ष के प्रधानकारण ज्ञानादिक हैं" इस बात को अच्छी तरह से जानने वाला वह अनगार "मैं समस्त सावद्य व्यापारों को नहीं करूंगा" इस प्रकार की प्रतिज्ञा करके अच्छी तरह से संयम की आराधना करता हुआ उस सावद्य व्यापार को कभी भी न करे। क्योंकि इस प्रकार की जब वह प्रतिज्ञा

જે અનગાર ષટકાય જીવોના વિરાધક ચિકિત્સાનો ઉપદેશ, અને તેનું આચરણ નથી કરતા, એવા પૂર્વોક્ત સ્વરૂપવાળા તે અનગાર જ્ઞ-પરિજ્ઞાથી જ્ઞેયપણું, અને પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાથી હેયપણું, તે ચિકિત્સોપદેશાદિકને સારી રીતે જાણીને આદાનીય-રત્નત્રયને ગ્રહણ કરી પ્રાણાતિપાતાદિ રૂપ અઢાર પ્રકારના પાપ કર્મને ક્યારેય પણ ન કરે ન બીજાથી કરાવે. કરનાર અને કરાવનારની અનુમોદના પણ ન કરે.

અથવા—સૂત્રમા આવેલા 'આદાનીય' શબ્દનો અર્થ જ્ઞાનાદિક પણ છે. જેનો અભિપ્રાય એ થાય છે કે-"મોક્ષના પ્રધાન કારણ જ્ઞાનાદિક છે." આ વાતને સારી રીતે જાણવાવાળા તે અણગાર "હું સમસ્ત પાપના વ્યાપારો નહી કરીશ" આવા પ્રકારની પ્રતિજ્ઞા કરીને સારી રીતે સંયમની આરાધના કરતા થકા તેવા સાવદ્ય વ્યાપારો કોઈ વખત પણ ન કરે. કારણકે જ્યારે તે આવા પ્રકારની

घ्व्यापाराकरणप्रतिज्ञाकारी तस्मात्कारणात् पापकर्म=पापजनकत्वात्पापरूपमेव कर्म प्राणातिपातादिरूपाष्टादशप्रकारकं नैव कुर्यात्=न कदाचिदपि समाचरेत्, न कारयेत् 'एवे-'त्यस्य निश्चयार्थकत्वात् कुर्वन्तं कारयन्तं वा नानुमोदयेत् ॥ सू० १ ॥

प्राणातिपातादिष्वेकं पापकर्म कुर्वन्नन्यस्यापि कर्ता भवतीति दर्शयति-'सिया तत्थ' इत्यादि ।

मूलम्---सिया तत्थ एगयरं विप्परामुसइ छसु अन्नयरंमि कप्पइ, सुहट्टी लालप्पमाणे सएण दुक्खेण मूढो विप्परियास-मुवेइ, सएण विप्पमाएण पुढो वयं पकुव्वइ, जंसिमे पाणा पव्वहिया, पडिलेहाए नो निकरणाए एस परिन्ना पवुच्चइ, कम्मोवसंती ॥ सू० २ ॥

छाया---स्यात्तत्रैकतरं विपरामृशति, षट्स्वन्यतरस्मिन् कल्पते, सुखार्थी लालप्यमानः स्वकेन दुःखेन मूढो विपर्यासमुपैति, स्वकेन विप्रमादेन पृथग्व्रतं प्रकुरुते, यस्मिन्निमे प्राणाः प्रव्यथिताः प्रत्युपेक्ष्य नो निकरणाय, एषा परिज्ञा प्रोच्यते कर्मोपशान्तिः ॥ सू० २ ॥

कर चुका है तब वह कैसे प्राणातिपातादिक अठारह प्रकार के पाप कर्मों को कर सकता है। जब नहीं कर सकता है तब वह उन पापकर्मों को करने वालों की तथा उन्हें कराने वालों की अनुमोदना भी कैसे कर सकता है? अर्थात् नहीं कर सकता। सूत्र में 'एव' शब्द निश्चय अर्थ में प्रयुक्त है, अतः यह निश्चित है कि अनगार कभी भी न स्वयं १८ अठारह प्रकार के पापस्थानों को करेगा, न करावेगा और न उन करने-कराने वालों की कभी अनुमोदना ही करेगा ॥ सू० १ ॥

પ્રતિજ્ઞા લીધેલ છે ત્યારે તે પછી પ્રાણાતિપાતાદિક અઢાર પ્રકારનાં પાપકર્મો કેવી રીતે કરી શકે? જો નથી જ કરી શકે તો પછી તેવા પાપ કર્મોના કરનારની તેને કરાવનારની અનુમોદના પણ કેવી રીતે કરી શકે? અર્થાત્ કરી શકતા નથી. સૂત્રમાં एव શબ્દ નિશ્ચય અર્થમાં પ્રયુક્ત છે, માટે એ નિશ્ચિત છે કે અણગાર કોઈ વખત પણ ૧૮ અઢાર પ્રકારના પાપસ્થાનોને કરે નહિ, કરાવે નહિ તેમજ તેઓની-કરનારાઓની અને, કરાવનારાઓની અનુમોદના પણ કરે નહિ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

टीका—'स्या-' दित्यादि । यः पुरुषः स्यात्=कदाचित् प्रमादवशेन तत्र=प्राणातिपातादिरूपपापकर्मसु एकतरं प्राणातिपातादिरूपं विपरामृशति=समारभते, यश्च षट्सु मध्ये अन्यतरस्मिन् पृथिवीकायादिके एकस्मिन्नपि समारभते स षट्सु जीवनिकायेषु कल्पते=समारभते, यथा कुलालशालाया उदकेन प्लावने एकजीवनिकायारम्भे षड्जीवनिकायारम्भो भवति तथैवात्रैकजीवनिकायविराधनायां षड्जीवनिकायविराधनाऽवश्यम्भाविनी । उक्तञ्च—

"जत्थ जलं तत्थ वणं, जत्थ वणं तत्थ निस्सिओ अग्गी ।
अग्गी वाउसहगया, तसा य तन्निसिया चेव" ॥१॥

छाया—यत्र जलं तत्र वनं यत्र वनं तत्र निःश्रितोऽग्निः ।
अग्निर्वायुसहगतस्त्रसाश्च तन्निःश्रिताश्चैव ॥ इति ।

प्राणातिपातादिक १८ प्रकार के पापस्थानों में से जो किसी एक भी पापस्थान का करनेवाला होता है वह अन्य पापस्थानों का भी करनेवाला है । इसी विषय को सूत्रकार प्रकट करते हैं—"सिया तत्थ" इत्यादि ।

जो पुरुष कदाचित् प्रमाद के वशवर्ती होकर प्राणातिपातादिक पापों में से किसी एक पाप कर्म को करता है, छहकाय के जीवों की विराधना में से किसी एक कायके जीवों की विराधना करता है, वह समस्त पापकर्मों का, एवं छहकाय के जीवों की विराधना का कर्त्ता माना जाता है। जैसे कुंभकार की शाला को जल से सींचने पर एक जीवनिकाय के आरंभ होने पर षड्जीवनिकाय का आरंभ होता है, उसी तरह यहां पर भी एक जीवनिकाय की विराधना में षट्काय के जीवों की विराधना भी अवश्य होती है । कहा भी है—

પ્રાણાતિપાતાદિક ૧૮ અઢાર પ્રકારના પાપસ્થાનોમાંથી જે કોઈ એક પણ પાપસ્થાનના કરનાર હોય છે તે અન્ય પાપસ્થાનોના કરનાર હોય છે. આ વિષયને સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે—"सिया तत्थ" ઇત્યાદિ.

જે પુરૂષ કદાચિત્ પ્રમાદને વશ બની પ્રાણાતિપાતાદિક પાપોમાંથી કોઈ એક પાપકર્મને કરે છે. છકાય જીવોની વિરાધનામાંથી કોઈ એક કાયના જીવોની વિરાધના કરે છે, તેને સમસ્ત પાપકર્મોનો અને છ કાય જીવોની વિરાધનાનો કર્તા માનવામાં આવે છે. જેવી રીતે કુંભારના ઘરને જલથી સીંચવાથી એક જીવ નિકાયનો આરંભ થવાથી ષટ્જીવનિકાયનો આરંભ થાય છે. તેવી રીતે આ ઠેકાણે પણ એક જીવ નિકાયની વિરાધનામાં ષટ્કાય જીવોની વિરાધના પણ અવશ્ય થાય છે. કહ્યું પણ છે—

एवं षट्सु व्रतेष्वाद्यव्रतविराधनायां षण्णामपि व्रतानां विराधना भवति, तद्यथा—संयमी प्राणातिपाते प्रवृत्तिं कुर्वन् हिंसादिदोषं स्पृशति, तेन प्रतिज्ञाभङ्गजन्यो मृषावादः। उक्तश्च—

"न करेमित्ति भणित्ता, तं चेव निसेवए पुणो सो उ।
पच्चक्खमुसावाई, मायानियडीपसंगो य।" इति।

छाया—न करोमीति भणित्वा, तदेव निषेवते स तु।
प्रत्यक्षमृषावादी, मायानिकृतिप्रसङ्गश्च॥

कश्चिज्जीवं घ्नतो घातयतो वा स जीवो नैव स्वशरीरं तस्मै हननाय नादात्, अतोऽदत्तादानमपि। सर्वं सावद्यं कर्मापरिग्राह्यं, तस्य ग्रहणात्परिग्रहोऽपि। यत्र

"जत्थ जलं तत्थ वणं, जत्थ वणं तत्थ निस्सिओ अग्गी।
अग्गी वाउसहगया, तसा य तन्निस्सिया चेव॥ १॥" इति।

"जहां जल है वहां वनस्पति है, जहां वनस्पति है वहां उसके निश्रित अग्नि होती है, जहाँ अग्नि होती है वहां वायुकाय है, जहां वायुकाय है वहां त्रसकाय नियम से होते हैं॥ १॥" इसी प्रकार छह ६ व्रतों में से प्रथम व्रत की विराधना होने पर छहों व्रतों की विराधना होती है। संयमी जब प्राणातिपात में प्रवृत्ति करता है उस समय हिंसादिदोषजन्य पाप का भागी होता हुआ प्रतिज्ञाभंगजन्य मृषावाद का भागी होता है। कहा भी है—

"न करेमित्ति भणित्ता, तं चेव निसेवए पुणो सो उ।
पच्चक्खमुसावाई, मायानियडीपसंगो य॥ १॥" इति।

'मैं हिंसादिक पापों को नहीं करूँगा' इस प्रकार की प्रतिज्ञा करने

"जत्थ जलं तत्थ वणं, जत्थ वणं तत्थ निस्सिओ अग्गी।
अग्गी वाउसहगया, तसा य तन्निस्सिया चेव" ॥१॥ इति।

"જ્યાં જળ છે ત્યાં વનસ્પતિ છે. જ્યાં વનસ્પતિ છે ત્યાં તેને નિશ્રિત અગ્નિ હોય છે. જ્યાં અગ્નિ છે ત્યાં વાયુકાય છે, જ્યાં વાઉકાય છે ત્યાં ત્રસકાય નિયમથી થાય છે ॥ ૧ ॥" આ પ્રકાર છ વ્રતોમાંથી પ્રથમ વ્રતની વિરાધના હોવાથી છ વ્રતોની વિરાધના થાય છે. સંયમી જ્યારે પ્રાણાતિપાતમાં પ્રવૃતિ કરે છે તે વખતે હિંસાદિ દોષજન્ય પાપનો ભાગી બનતો થકો પ્રતિજ્ઞાભંગજન્ય મૃષાવાદનો ભાગી થાય છે કહ્યું પણ છે—

"न करेमित्ति भणित्ता, तं चेव निसेवए पुणो सो उ।
पच्चक्खमुसावाई, मायानियडीपसंगो य" ॥ १ ॥ इति।

परिग्रहस्तत्र मैथुनं रात्रिभोजनं च जायत एव। ततश्च षट्स्वन्यतरस्मिन् प्रवृत्तो जनः सर्वेष्वपि प्रवर्तत एव। यद्वा–एकतरम्=एकमपि पापारम्भं य आचरति स सर्वमपि समारम्भं करोत्येव, उन्मार्गप्रवृत्तस्य तस्यैककरणे सर्वत्र प्रवृत्तिसद्भावात्।

वाला संयमी मुनि यदि उसी प्रत्याख्यात विषय में प्रवृत्ति करता है तो इस प्रकार की उसकी प्रवृत्ति से एक तो उसके गृहीतव्रत का भंग होता ही है, दूसरा उसका मृषावाद का दोष भी लगता है; क्योंकि उसने अपनी प्रतिज्ञा भंग करनेरूप मृषावाद का सेवन किया। जिस जीव की हिंसा करने में वह प्रवृत्त हो रहा है उस जीवने उसके लिये अपने शरीर को घात करने के निमित्त तो दिया नहीं है, अतः अदत्त का ग्रहीता होने से उसके लिये अदत्तादान का दोष भी लगता है। जितने भी सावद्यकर्म हैं वे अपरिग्राह्य हैं; उन अपरिग्राह्यों को ग्रहण करनेवाला होने से उसे परिग्रह के ग्रहण करने का दोष भी लागू होता है। जहां पर परिग्रह है वहां पर मैथुन एवं रात्रिभोजनजन्य दोष भी लगता ही है। इसलिये छह दे व्रतों में से अन्य एक भी व्रत की विराधना करने वाला मुनि समस्त व्रतों की विराधना करता है, यह बात भलीभांति सिद्ध हो जाती है। इसी प्रकार छह व्रतों में से एक भी व्रत का निर्दोष रीति से पालन करने वाला मुनि अन्य और भी व्रतों का पालक माना जाता है।

'હું હિંસાદિક પાપોને કરીશ નહિ.' આ પ્રકારની પ્રતિજ્ઞા કરવાવાળા સંયમી મુનિ કદાચ તે પ્રત્યાખ્યાત વિષયમાં પ્રવૃત્તિ કરે છે તો આ પ્રકારની તેની પ્રવૃત્તિથી એક તો તેના લીધેલા વ્રતનો ભંગ થાય છે. બીજું તેને મૃષાવાદનો દોષ પણ લાગે છે. કારણ કે તેણે પોતાની પ્રતિજ્ઞા ભંગ કરવારૂપ મૃષાવાદનું સેવન કર્યું. જે જીવની હિંસા કરવામાં તે પ્રવૃત્ત થઈ રહ્યા છે, તે જીવે તેના માટે પોતાનું શરીર ઘાત કરવાને નિમિત્તે તો આપેલ જ નથી માટે અદત્તનો પણ ગ્રહીતા હોવાથી તેને માટે અદત્તાદાનનો દોષ પણ લાગે છે. જેટલા પણ સાવદ્ય કર્મ છે તે અપરિગ્રાહ્ય છે. તે અપરિગ્રાહ્યોના ગ્રહણ કરવાવાળા હોવાથી તેને પરિગ્રહને ગ્રહણ કરવાનો દોષ પણ લાગુ થાય છે. જ્યાં પરિગ્રહ છે ત્યાં મૈથુન અને રાત્રિ ભોજનજન્ય દોષ પણ લાગે જ છે માટે છ વ્રતોમાંથી અન્ય એક પણ વ્રતની વિરાધના કરવાવાળા મુનિ સમસ્ત વ્રતોની વિરાધના કરે છે. આ વાત ભલીભાંતિ સિદ્ધ થઇ જાય છે. તે પ્રકારે છ વ્રતોમાંથી એક પણ વ્રતને નિર્દોષ રીતિથી પાલન કરવાવાળા મુનિ અન્ય બીજા પણ વ્રતોના પાલક માનવામાં આવે છે

किमर्थमयं पापकर्मणि प्रवर्तते ? इत्याह-'सुखार्थी-'त्यादि। सुखार्थी=पौद्गलिकसुखाभिलाषी लालप्यमानः=अत्यर्थं मुहुर्मुहुर्वा लपतीति लालप्यमानः, सुखार्थमुन्मत्तवन्मोहवशेन यद्वा तद्वा मुहुर्मुहुर्ब्रुवन्, नानाप्रकारान् धावनवल्गनादिकान् व्यापारान् विदधत्, सुखकारणानि च चेतसि चिन्तयन्, कृष्यादिव्यापारैः पृथिवीकायमुपमर्दयन्, तत्सेचनाद्यर्थमप्कायं, पाकाद्यर्थं तैजसकायं, ग्रीष्मसन्तापोप-

अथवा-किसी एक भी पापारम्भ का जो आचरण करता है वह अन्य समस्त पापारम्भों का आचरण करनेवाला होता ही है; क्योंकि जिसकी प्रवृत्ति उन्मार्ग में चालू है वह यदि एक भी पापारम्भ को करता है तो उस एक के करने में अन्य सब पापारम्भ के करने का सद्भाव आ ही जाता है।

पापकर्म में प्रवृत्ति होने का कारण एक केवल उसकी पौद्गलिक सुख प्राप्त करने की अभिलाषा ही है। अतः सुखार्थी होने के कारण से ही इसकी प्रवृत्ति पापकार्यों में होती है। जिस प्रकार उन्मत्त प्राणी नशा के आवेश से यद्वा-तद्वा बारंबार बोलता है और व्यर्थ में इधर-उधर दौड़ता फिरता है, उसी प्रकार यह भी मोह के आवेश से यद्वा-तद्वा बारंबार बोलता हुआ अनेक प्रकार की यहां से वहां दौड़-धूप किया करता है, 'मुझे इन कामों के करने से सुख प्राप्त होगा' इस प्रकार की विचारधारा से प्रेरित होकर कृषि आदि अनेक पृथिवीकायिक जीवों के उपमर्दन करने वाले व्यापारों को करता है, उसके सिंचन के लिये अप्काय जीवों की विराधना करता है, रसोई आदि बनाने के लिये

અથવા—કોઈ એક પણ પાપારમ્ભનો જે આચરણ કરે છે તે અન્ય સમસ્ત પાપારમ્ભોનું આચરણ કરવાવાળા હોય જ છે. કારણ કે જેની પ્રવૃત્તિ ઉન્માર્ગમાં લાગેલી છે તે કદાચ એક પણ પાપારંભ કરે તો તે એક કરવામાં અન્ય બધા પાપારંભ કરવાનો સદ્‌ભાવ આવી જ જાય છે.

પાપકર્મમાં પ્રવૃત્તિ હોવાનું કારણ એક કેવળ તેની પૌદ્‌ગલિક સુખ પ્રાપ્ત કરવાની અભિલાષા જ છે. અતઃ સુખાર્થી હોવાના કારણથી જ તેની પ્રવૃત્તિ પાપ કાર્યોમાં થાય છે જેવી રીતે ઉન્મત્ત પ્રાણી નશાના આવેશથી જેમ તેમ વારવાર બોલે છે અને વ્યર્થમાં અહીં તહીં દોડતા ફરે છે, તે પ્રકારે તે પણ મોહના આવેશથી જેમ તેમ વારંવાર બોલતાં અનેક પ્રકારની ત્યાંથી અહીં અને અહીંથી ત્યાં દોડધામ કરતા રહે છે. 'મને એ કામો કરવાથી સુખ પ્રાપ્ત થશે' આવા પ્રકારની વિચારધારાથી પ્રેરિત થઈને કૃષિ આદિ અનેક પૃથિવીકાયિક જીવોનું ઉપમર્દન કરવાવાળા વ્યાપારોને કરે છે, તેના સિંચન માટે અપકાય

शान्तये वायुकायम्, आहाराद्यर्थं वनस्पतिकायं, काष्ठादिनिःश्रितं त्रसकायं च विराधयन् स्वकेन स्वकृतकर्मजनितेन पूर्वभवे ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मरूपं दुःखतरुबीजं तथोप्तवान् यथाऽस्मिन् भवे स दुःखतरुः प्ररोहत्येव। तादृशेन दुःखेन शारीरिकमानसिकेन मूढः=व्याकुलितः परमार्थमजानन् हिताहितप्राप्तिपरिहारविकलः विपर्यासमुपैति प्राणिपीडनादिकं सावद्यव्यापारमाचरन् सुखस्य विपरीतं दुःखमेव फलं प्राप्नोतीत्यर्थः।

यद्वा–अल्पसुखदं सावद्यानुष्ठानमनुतिष्ठन्, सुखस्थानेऽनन्तकालिकं शारीरिकमानसिकदुःखमेव प्राप्नोतीति भावः। पुनरप्याह–'स्वकेने–'त्यादि। स्वकेन=

अथवा खेती आदि की रक्षा करने के लिये अग्नि का सहारा लेता है, इसमें अग्निकायिक एवं उसे प्रज्वलित करने के लिये वनस्पतिकाय तथा उसमें रहे हुए त्रसकाय जीवों की भी विराधना करता है, गर्मीजन्य संताप के शमन के लिये वायुकाय के जीवों का भी घात करता है। इस प्रकार यह जीव षट्काय के जीवों की विराधना करता हुआ तज्जन्य पापकर्मों के उदय से दुःखित बन हिताहित के विवेक से विकल होकर सदा विपर्यास–मिथ्यात्व को प्राप्त करता है। जीव पूर्वभव में जिस प्रकार के तीव्र, मन्द, मध्यमादि परिणामों से ज्ञानावरणीयादि आठ प्रकार के कर्मों को बांधता है उसी प्रकार से उनका फल भी उसी भव में अथवा आगामी भव में भोगता है, यह निश्चित सिद्धान्त है। दुःख भोगना भी इन्हीं कर्मों के उदयाधीन है। जिस प्रकार विना बीज के वृक्ष नहीं होता है उसी प्रकार विना

જીવોની વિરાધના કરે છે. રસોઇ આદિ બનાવવા માટે અથવા ખેતી આદિની રક્ષા કરવા માટે અગ્નિનો આશ્રય લે છે, તેમાં અગ્નિકાયિક અને તેને પ્રજ્વલિત કરવા માટે વનસ્પતિકાય તથા તેમાં રહેલા ત્રસકાય જીવોની પણ વિરાધના કરે છે. ગર્મીજન્ય સંતાપને શમાવવા માટે વાયુકાયના જીવોનો પણ ઘાત કરે છે. આ પ્રકાર આ જીવ ષટ્કાય જીવોની વિરાધના કરતાં તજ્જન્ય પાપકર્મોના ઉદયથી દુઃખિત બની હિતાહિતના વિવેકથી વિકલ બનીને સદા વિપર્યાસ–મિથ્યાત્વને પ્રાપ્ત કરે છે. જીવ પૂર્વભવમાં જેવા પ્રકારે તીવ્ર, મન્દ, મધ્યમાદિ પરિણામોથી જ્ઞાનાવરણીયાદિ આઠ પ્રકારના કર્મોને બાંધે છે. તે પ્રકારે તેનું ફળ પણ તે ભવમાં અથવા આગામી ભવમાં ભોગવે છે. એ નિશ્ચિત સિદ્ધાન્ત છે. દુઃખ ભોગવવું પણ તેના કર્મોના ઉદયાધીન છે. જે પ્રકારે બીજ વિના વૃક્ષ થતું નથી તે પ્રકારે અશુભ કર્મોદય વિના દુઃખ પણ જીવોને પ્રાપ્ત થતું નથી. પરભવના બાંધેલા કર્મ આગામી ભવમા પણ

निजार्जितेन विप्रमादेन वि=विविधेन पञ्चप्रकारेण प्रमादेन पृथक् जिनोक्तेषु पट्सु व्रतेषु छिन्नभिन्नरूपेण जिनशासनोक्तविपरीतं वा व्रतं प्रकुरुते ।

इदमत्र तत्त्वम्–षट्सु व्रतेषु प्रथमस्याचरणे द्वितीयस्यानाचरणं, तृतीयस्य चाचरण–मित्येवं छिन्नभिन्नरूपेण व्रतकरणम् ।

अशुभ कर्मोदय के दुःख भी जीवों को प्राप्त नहीं होता। परभव के बांधे हुए कर्म अगामी भव में भी उदय में आते रहते हैं। इसीलिये जीव उन अशुभ कर्मोदयजन्य दुःखों से हिताहित के विवेक से रहित होकर व्यथित होता रहता है। कभी शारीरिक कष्टों का अनुभव करता है तो कभी मानसिक पीडा से दुःखी होता रहता है। वास्तविक वस्तुस्थिति से अजान बनकर "सावद्य व्यापारों के आचरण से ही मैं सुखी होऊँगा" इस प्रकार की अपनी विपरीत कल्पना से सुख के स्थान में दुःख को ही प्राप्त करता रहता है। अथवा–सावद्य व्यापारों का करना सदा सुखदायी नहीं होता। अपनी आवश्यकता की पूर्ति होने पर जीवों को उसकी पूर्त्तिजन्य काल्पनिक अल्पसुख भले ही मिल जावे परन्तु वह सदा स्थायी नहीं। जिस सुख की आशा से इन सावद्य व्यापारों में जीव प्रवृत्ति किया करते हैं उनसे तो उन्हें उल्टे उस सुख के स्थान में अनन्तकाल तक भोगने योग्य शारीरिक एवं मानसिक दुःख ही प्राप्त होते हैं। ऐसा समझकर संयमी को कभी भी किसी भी प्राणातिपातादिक में प्रवृत्ति नहीं करना चाहिये।

ઉદયમાં આવે છે, માટે જીવ એ અશુભ કર્મોદયજન્ય દુઃખોથી હિતાહિતના વિવેકથી રહિત થઈને વ્યથિત થતા રહે છે. કોઈ વખત શારીરિક કષ્ટોનો અનુભવ કરે છે તો કોઇ વખત માનસિક પીડાથી દુઃખી થતા રહે છે. વાસ્તવિક વસ્તુસ્થિતિથી અજાણ બનીને "સાવદ્ય વ્યાપારોના આચરણથીજ હું સુખી થઇશ" એવા પ્રકારની પોતાની વિપરીત કલ્પનાથી સુખના સ્થાને દુઃખને જ પ્રાપ્ત કરે છે. અથવા—સાવદ્ય વ્યાપારોનું કરવું સદા સુખદાયી થતું નથી. પોતાની આવશ્યક્તાની પૂર્તિ થવાથી જીવોને તેની પૂર્તિજન્ય કાલ્પનિક અલ્પ સુખ ભલે મળી જાય પરંતુ તે સદા સ્થાયી નહિ જે સુખની આશાથી આ સાવદ્ય વ્યાપારોમાં જીવ પ્રવૃત્તિ કરે છે, તેનાથી તો તેને ઉલ્ટા તે સુખના સ્થાનમાં અનન્ત કાળ સુધી ભોગવવા યોગ્ય શારીરિક અને માનસિક દુઃખ જ પ્રાપ્ત થાય છે. એવું સમજીને સંયમીએ કોઇ વખતે પણ કોઈ પણ પ્રાણાતિપાતાદિકમાં પ્રવૃત્તિ કરવી જોઇએ નહિ.

इसी प्रकार जो अपने द्वारा उपार्जित मद्यादि पांच प्रकार के प्रमाद के वशवर्ती होकर जिनोक्त छह प्रकार के व्रतों का पालन छिन्न-भिन्नरूप से करते हैं, अथवा जिन भगवानने इन व्रतों के पालन करने की जो विधि बतलाई है उस विधि-विधान से विपरीत विधि-विधान को लेकर जो व्रतों का आराधन करते हैं, अथवा जिनशासनप्रतिपादित व्रतों से विपरीत व्रतों को जो पालते हैं, वे संसार में परिभ्रमण किया करते हैं। संयमी के लिये छह व्रतों का पालन आवश्यक बतलाया है, वह यदि पांच प्रकार के प्रमाद में पतित होकर अपनी इच्छानुसार प्रथम व्रत का आचरण करे और द्वितीय का आचरण न करे तथा तृतीय का आचरण करे अन्य का नहीं; तो इस प्रकार के व्रताराधन से उसके संसार के बंधन का अन्त नहीं आ सकता। अतः व्रतों के पालन करने की विधि जिस प्रकार शास्त्रों में वर्णित है उसी विधि से व्रतों की आराधना करनी चाहिये। जिन व्रतों का पालन संयमी के लिये बतलाया गया है उनके सिवाय यदि वह अन्य व्रतों की आराधना करता है तो इस प्रकार की उसकी स्वच्छंदवृत्ति उसके भव का अन्त करने वाली न होकर उल्टी उसके अनन्त संसार की बढ़ाने वाली ही होगी; क्यों कि इस प्रकार की निजमान्यता में वीतराग प्रभु की आज्ञा का भंग होता है। यह

આ પ્રકારે જે પોતાના દ્વારા ઉપાર્જિત મદ્યાદિ પાંચ પ્રકારના પ્રમાદને વશ બનીને જીનોક્ત છ પ્રકારના વ્રતોના પાલનને છિન્નભિન્ન રૂપમાં કરી નાંખે છે. અથવા જિન ભગવાને આ વ્રતોના પાલન માટે જે વિધિ બતાવી છે તે વિધિ–વિધાનથી વિપરીત વિધિ–વિધાન લઈને જે વ્રતોનું આરાધન કરે છે, અથવા જિન-શાસન પ્રતિપાદિત વ્રતોથી વિપરીત વ્રતોને જે પાળે છે તે સંસારમાં પરિભ્રમણ કર્યા કરે છે સંયમી માટે છ વ્રતોનું પાલન આવશ્યક બતાવ્યું છે, તે કદાચ પાંચ પ્રકારના પ્રમાદમાં પતિત થઈને પોતાની ઈચ્છાનુસાર પ્રથમ વ્રતનું આચરણ કરે અને બીજાનું આચરણ ન કરે, તથા ત્રીજાનું આચરણ કરે અન્યનું નહિ. તો આ પ્રકારના વ્રતારાધનથી તેના સંસારના બંધનનો અંત આવી શકતો નથી. માટે વ્રતોના પાલન કરવાની વિધિ જે પ્રકારે શાસ્ત્રોમાં વર્ણિત છે તેવી વિધિથી વ્રતોની આરાધના કરવી જોઈએ. જે વ્રતોનું પાલન સંયમી માટે બતાવ્યું છે તેના સિવાય કદાચ તે અન્ય વ્રતોની આરાધના કરે છે તો આવા પ્રકારની તેની સ્વચ્છંદવૃત્તિ તેના ભવનો અંત કરવાવાળી નથી બનતી. ઉલ્ટી તેને અનંત સંસાર વધારવા-વાળી થશે, કારણ કે આ પ્રકારની તેની માન્યતામાં વીતરાગ પ્રભુની આજ્ઞાનો

यद्वा-' वयं ' इत्यस्य ' वय-' मितिच्छाया, तत्र वयन्ति=परिभ्रमन्ति जन्तवः स्वेन कर्मणा यस्मिन् स वयः संसारस्तं प्रकुरुते-संसारे परिभ्रमतीत्यर्थः ।

अथवा 'वयः' इतिच्छाया, कारणस्य-ज्ञानावरणीयादिकर्मणः कार्येण-प्रमादेन सहाभेदात् स्वकेन विप्रमादेन=निजार्जितेनानेकविधेन मद्यादिरूपप्रमादजनकेन कर्मणा वयः=अवस्थाविशेषमेकेन्द्रियादिकं, पञ्चेन्द्रियेषु कललार्बुदादिरूपं, दारिद्र्य-दौर्भाग्याद्यात्मकं च प्रकुरुते ।

भंग ही महान् अनर्थ का और भव की अनन्त परंपरा का बढ़ानेवाला कारण माना गया है ।

अथवा-जो संयमी पांच प्रकार के प्रमादों का आसेवन करता है वह अपने संसार को बढ़ाता है, यह भी "वयं पकुव्वइ" इस पद से प्रकट होता है। "वयं" इसकी छाया "व्रतं" जब होती है तब पूर्वोक्त-रूप से उसका अर्थ संगत होता है। परन्तु जब "वयं" इसका अर्थ "वयन्ति=परिभ्रमन्ति जन्तवः स्वेन कर्मणा यस्मिन् स वयः" इस व्यु-त्पत्ति के अनुसार किया जावेगा तो उसका अर्थ संसार होगा; क्यों कि प्राणी अपने उपार्जित कर्मों के द्वारा संसार में ही परिभ्रमण करते रहते हैं ।

अथवा—"वयं" की छाया "वयः" जब होगी तब इसका यह भी अर्थ होगा कि निजार्जित मद्यादिकरूपप्रमादजनक कर्म से एकेन्द्रियादिक-रूप अवस्थाएँ, तथा पंचेन्द्रियों में गर्भ के अन्दर कलल अर्बुदादिरूप, तथा

ભંગ થાય છે તે ભંગ જ મહાન અનર્થનો, અને ભવની અનંત પરંપરાને વધા-રવાના કારણ રૂપ બને છે.

અથવા—જે સંયમી પાંચ પ્રકારના પ્રમાદોનું આસેવન કરે છે તે પોતાના સંસારને વધારે છે તે પણ " वयं पकुव्वइ " એ પદથી પ્રગટ થાય છે. " "वयं " તેની છાયા " व्रतं " જ્યારે હોય છે ત્યારે પૂર્વોક્ત રૂપથી તેનો અર્થ સંગત થાય છે. પરંતુ જ્યારે " वयं " તેનો અર્થ " वयन्ति=परिभ्रमन्ति जन्तवः स्वेन कर्मणा यस्मिन् स वयः " આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર કરવામાં આવે તો તેનો અર્થ સંસાર થશે; કારણ કે પ્રાણી પોતાના ઉપાર્જિત કર્મો દ્વારા સંસારમાં જ પરિભ્રમણ કરતા રહે છે.

અથવા " वयं "ની છાયા "वयः" જ્યારે થશે ત્યારે તેનો એ પણ અર્થ થશે કે પોતાના ઉપાર્જિત મદ્યાદિકરૂપ પ્રમાદજનક કર્મથી જીવોની એકેન્દ્રિયાદિક રૂપ અવસ્થાઓ, તથા પંચેન્દ્રિયોના ગર્ભની અંદર કલલ અર્બુદાદિરૂપ, તથા દારિ-

तत्र जन्तवः क्लिश्यन्त इत्याह–' यस्मि–' न्नित्यादि। यस्मिन्निजार्जितप्रमाद-जन्यकटुकर्मके, भवोपग्राहिचतुर्गतिके संसारेऽवस्थाविशेषे वा, इमे=प्रत्यक्षनिर्दिष्टाः प्राणाः=प्राणिनः प्रव्यथिताः=बहुविधव्यसनसम्पातेन पीडिता भवन्ति। ततः किं कुर्यादित्याह–' प्रत्युपेक्ष्ये '–त्यादि। तदेतत्सर्वं स्वकृतकर्मविपाकेन विविधप्रमादेन वा प्राणिनां प्रव्यथनं प्रत्युपेक्ष्य=समालोच्य निकरणाय–नितरां क्रियन्ते नानादुःखा-वस्थावन्तो जन्तवो येन तन्निकरणं दुःखोत्पादनं, येन कर्मणा प्राणिनो दुःखनिवह-मनुभवन्ति तत्कर्म निकरणं, तस्मै=तदर्थं–कर्म न कुर्यात्, प्राणिपीडाजनकं कर्म सर्वथा

दारिद्रय और दौर्भाग्यादिरूप अवस्थाएँ होती हैं। प्रमाद का कारण कर्म है और प्रमाद उसका कार्य है। इन दोनों में अभेद संबंध से यह अर्थ घटित हो जाता है। अर्थात् जीवों की एकेन्द्रियादिक तथा कलल अर्बुदादिरूप एवं दारिद्रय–दौर्भाग्यादिरूप अवस्थाएँ कर्मकृत मानी जाती हैं। परन्तु जो यहां पर प्रमादकृत उन्हें बतलाया गया है उसका कारण प्रमाद में उसके कारणभूत कर्म का अभेद–संबंध मानकर ही प्रकट किया गया है। इस प्रकार प्रमादजन्य इन अवस्थाविशेषों में, अथवा चतुर्गतिरूप इस संसार में ये समस्त प्राणी अनेक प्रकार के कष्टों के पड़ने से रातदिन पीडित होते रहते हैं। इसलिये जीवों की स्वकृत कर्म के विपाक से अथवा अनेक प्रकार के प्रमाद से दुःखित अवस्थाओं का अच्छी प्रकार विचार कर संयमी मुनि को प्राणिपीडाजनक कार्य सर्वथा छोड़ देना चाहिये। अनेक प्रकार की अवस्थाओं से युक्त प्राणी जिसके द्वारा किये जाते हैं, ऐसे दुःखों को उत्पादन करनेवाले कार्यों से जीव सदा दुःखों की परंपरा का ही अनुभव करते रहते हैं। ऐसे कार्य संयमी मुनि को

द्रय अने दुर्भाग्यादिरूप अवस्थाओ थाय छे प्रमादनुं कारण कर्म छे अने प्रमाद तेनुं कार्य छे आ बन्नेमां अभेद संबंधथी तेवो अर्थ घटित थइ जाय छे. अर्थात् जीवोनी एकेन्द्रियादिक तथा कलल अर्बुदादिरूप अवस्थाओ कर्मकृत मानवामां आवे छे, परंतु जे तेने आ जग्योए प्रमादकृत बतावेल छे तेनुं कारण प्रमादमां तेना कारणभूत कर्मनो अभेद–संबंध मानीने ज प्रगट करवामां आवेल छे. आ प्रकार प्रमादजन्य आ अवस्था–विशेषोमां अथवा चतुर्गतिरूप आ संसारमां ए समस्त प्राणी अनेक प्रकारना कष्टो पडवाथी रातदिन पीडित थया करे छे. माटे जीवोना स्वकृत कर्मना विपाकथी अथवा अनेक प्रकारना प्रमादथी दुःखित अवस्थाओनो सारी रीते विचार करी संयमी मुनिए प्राणिपीडाजनक कार्य सर्वथा छोडी देवुं जोइए. अनेक प्रकारनी दुःखित अवस्थाओथी

वर्जयेदित्यर्थः। ततोऽपि किमित्याह ‘एषे’-त्यादि। एषा=पूर्वोक्ता सर्वारम्भनिवृत्तिरूपा परिज्ञा=तत्त्वविचारणा ज्ञप्रत्याख्यानरूपा प्रोच्यते=प्रकर्षेण उच्यते=कथ्यते मया। सर्वारम्भपरित्यागे किमित्याह-‘ कर्मोपशान्ति-’रिति। कर्मोपशान्तिः=कर्मणामष्टविधानामुपशान्तिः=उपशमः कर्मक्षयो वा भवतीत्यर्थः॥ सू० २॥

सदा छोड़ देना चाहिये। इस प्रकार के कार्यों के परित्याग से आठ कर्मों की उपशान्ति-उपशम अथवा उनका क्षय होता है। इस प्रकार से यहां पर जो संयमी मुनि के लिये सर्वारंभनिवृत्तिरूप ज्ञपरिज्ञा और प्रत्याख्यानपरिज्ञा कही गई है, उसका कारण यही है कि संयमी मुनि अपनी प्रवृत्ति को प्रमाद से सदा सुरक्षित रखे। प्रमाद करने से नवीन कर्मों का बन्ध और उससे फिर प्रमाद इस प्रकार की परस्पर में कार्यकारणभाव की परंपरा चलती है, जिससे संयमी अपने लक्ष्य की सिद्धि से वंचित रहता है। अतः वह अपने लक्ष्य की सिद्धि करने के लिये ग्रहण किये हुए संयममार्ग की ओर उत्तरोत्तर वृद्धि करता हुआ अग्रसर होता रहे। इसी विचारणा से सुधर्मास्वामी कहते हैं कि यह जो सर्वारंभनिवृत्तिरूप परिज्ञा का कथन मैंने किया है उससे संयमी मुनि अपने अष्टविध कर्मों का निराकरण कर अपने लक्ष्य की सिद्धि कर लेता है॥ सू० २॥

યુક્ત પ્રાણી જે દ્વારા કરવામાં આવે છે, એવા દુઃખોને ઉત્પન્ન કરનાર કાર્યોનું નામ નિકરણ છે. એવા કાર્યોથી જીવ સદા દુઃખોની પરંપરાનો જ અનુભવ કરે છે. એવું કાર્ય સંયમી મુનિએ સદા છોડી દેવું જોઇએ. આવા પ્રકારના કાર્યના પરિત્યાગથી આઠ કર્મોની ઉપશાન્તિ-ઉપશમ અથવા તેનો ક્ષય થાય છે. આ પ્રકારે આ જગ્યાએ જે સંયમી મુનિ માટે સમારંભનિવૃત્તિરૂપ જ્ઞ-પરિજ્ઞા અને પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞા કહેલ છે તેનું કારણ એ છે કે સંયમી મુનિ પોતાની પ્રવૃત્તિને પ્રમાદથી સદા સુરક્ષિત રાખે. પ્રમાદ કરવાથી નવીન કર્મોનો બંધ અને તેનાથી પછી પ્રમાદ એ પ્રકારની પરસ્પરમાં કાર્યકારણ-ભાવની પરંપરા ચાલે છે. જેનાથી સંયમી પોતાના લક્ષની સિદ્ધિથી વંચિત રહે છે. માટે તે પોતાના લક્ષની સિદ્ધિ કરવા માટે ગ્રહણ કરેલા સંયમ-માર્ગની તરફ ઉત્તરોત્તર વૃદ્ધિ કરીને અગ્રેસર થતા રહે, એવી વિચારણાથી સુધર્મા સ્વામી કહે છે કે આ જે સર્વારંભ-નિવૃત્તિરૂપ પરિજ્ઞાનું કથન મેં કર્યું છે તેનાથી સંયમી મુનિ પોતાના અષ્ટ-વિધ કર્મોનું નિરાકરણ કરી પોતાના લક્ષની સિદ્ધિ કરી લે છે ॥ સૂ૦ ૨ ॥

शारीरिक-मानसिक-दुःखोत्पादनकारणं ममत्वबुद्धिरेव, तन्निवृत्त्या मुनिर्भवतीति दर्शयति-' जे ममाइयमइं ' इत्यादि ।

मूलम्-जे ममाइयमइं जहाइ, से चयइ ममाइयं,
से हु दिट्ठपहे मुणी, जस्स नत्थि ममाइयं ॥ सू० ३ ॥

छाया—यो ममायितमतिं जहाति स त्यजति ममायितम् । स हु दृष्टपथो मुनिर्यस्य नास्ति ममायितम् ॥ सू० ३ ॥

टीका—' यो ममायितमति '-मित्यादि । यः परिग्रहजन्यकटुविपाकज्ञो ' ममायितमतिं ' ममेत्येवंरूपो ममायितः परिग्रहस्तस्य मतिर्ममायितमतिस्तां ममायितमतिं जहाति=त्यजति, स एव ममायितं द्रव्यतः पुत्रकलत्रहिरण्यसुवर्णैश्वर्या-

शारीरिक एवं मानसिक दुःखों की उत्पत्ति का कारण एक ममत्व-बुद्धि ही है । उसका जबतक परिहार नहीं किया जावेगा तबतक वास्तविक मुनिपना नहीं आसकता है । इसलिये मुनि होने के लिये उसकी निवृत्ति होना आवश्यक है । इस बात को दिखाते हुए सूत्रकार कहते हैं—' जे ममाइयमइं ' इत्यादि ।

जो यह समझता है कि ' परिग्रह का संग्रह महादुःखदायी है, तथा इसका फल भी कटुक ही है ' वह कभी भी परिग्रह के उपार्जन करने में नहीं फँसता है, तथा जो इस बात को भी भलीभांति जान चुका है कि ' परिग्रह मात्र ही दुःखप्रद एवं परिणाम में अनेक अनर्थों का मूल है ' वह तो उस परिग्रह की अभिलाषा तक भी नहीं करता है, चाहे वह द्रव्य से पुत्र, कलत्र, हिरण्य, सुवर्ण, ऐश्वर्यादिरूप परिग्रह हो,

શારીરિક અને માનસિક દુખોની ઉત્પત્તિનુ કારણુ એક મમત્વ-બુદ્ધિ જ છે. તેનો જ્યાં સુધી પરિહાર નહિ કરવામાં આવે ત્યાં સુધી વાસ્તવિક મુનિપણું આવી શકતું નથી. માટે મુનિ હોવાથી તેની નિવૃત્તિ આવશ્યક છે. એ વાતને દેખાડીને સૂત્રકાર કહે છે-' जे ममाइयमइं ઇત્યાદિ.

જે એમ સમજે છે કે ' પરિગ્રહનો સંગ્રહ મહા દુખદાયી છે, તથા તેનું ફળ પણ કટુ જ છે ' તે કોઇ વખત પણ પરિગ્રહનો ઉપાર્જન કરવામાં ફસતા નથી, તથા જે આ વાતને ભલીભાંતિથી જાણે છે કે ' પરિગ્રહમાત્ર દુઃખપ્રદ અને પરિણામમાં અનેક અનર્થોનુ મૂળ છે'. તે તો તે પરિગ્રહની અભિલાષા સુદ્ધાં કરતા નથી, ભલે તે દ્રવ્યથી પુત્ર, કલત્ર, હિરણ્ય, સુવર્ણ, ઐશ્વર્યાદિરૂપ પરિગ્રહ

दिरूपं भावतो मूर्च्छारूपमात्मपरिणामं त्यजति=परिहरति-परिग्रहबुद्धिपरित्यागेन परिग्रहः सुत्यजो भवति। यस्य=अनिर्दिष्टनामधेयस्य ममायितं नास्ति स हु स एव 'दृष्टपथः' दृष्टो रत्नत्रयरूपः पन्थाः=मोक्षमार्गो येन स दृष्टपथः परिज्ञातमोक्षमार्गो मुनिः=अनगारो भवति। ममायितमतिपरित्यागेनावश्यं ममायितः परित्यक्तो भवति, तत्परित्यागे च द्रव्यभावरूपो ममायितव्यपदार्थसार्थो हिरण्यादिरूपोऽपि नियतं परिहृतो भवति। एवं पश्चानुपूर्व्या मैथुनमतिपरित्यागेन मैथुनं सुतरां परित्यक्तं भवति। इत्थं शेषव्रतेष्वपि योजनीयम्।

चाहे भाव से मूर्च्छारूप हो; इन दोनों प्रकार के परिग्रह का परित्याग करता है। जहां परिग्रहबुद्धि का परित्याग है वहां परिग्रह का परित्याग करना कोई कठिन कार्य नहीं है। यह तो अनायास ही हो जाता है। परिग्रह का अपनाना या बाह्यपदार्थों में परिग्रहरूपता लाना इच्छा के अधीन है। जब उस प्रकार की इच्छा ही नहीं है, तब बाह्यपदार्थों में परिग्रहता ही नहीं आसकती है। जिस व्यक्ति के पास इस प्रकार का परिग्रह नहीं है वही रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग का द्रष्टा मुनि कहा गया है।

इसका सारांश यही है कि जिसने परिग्रह की बुद्धि का परित्याग कर दिया है उसके परिग्रह का त्याग अवश्य होता है। इसके परित्याग से द्रव्यभावरूप हिरण्यादि तथा मूर्च्छारूप परिग्रह नियम से दूर हो जाते हैं। यहां पर परिग्रहमति के त्याग से जो परिग्रह का त्याग करना बतलाया गया है वह पश्चानुपूर्वी को लेकर कहा गया है। इससे यह भी समझ लेना चाहिये कि मैथुनमति के परित्याग से मैथुन का तथा चोरी

હોય, ભલે ભાવથી મૂર્ચ્છારૂપ હોય, આ બન્ને પ્રકારના પરિગ્રહનો પરિત્યાગ કરે છે. જ્યાં પરિગ્રહ-બુદ્ધિનો પરિત્યાગ છે, ત્યાં પરિગ્રહનો પરિત્યાગ કરવો કાંઇ કઠિન કાર્ય નથી. એ તો અનાયાસ જ બની શકે છે. પરિગ્રહને અપનાવવો અગર બાહ્ય પદાર્થોમાં પરિગ્રહરૂપતા લાવવી ઇચ્છાને આધીન છે. જ્યારે આવા પ્રકારની ઇચ્છા જ નથી ત્યારે બાહ્ય પદાર્થોમાં પરિગ્રહતા આવી શકતી નથી. જે વ્યક્તિની પાસે આવા પ્રકારનો પરિગ્રહ નથી તે જ રત્નત્રયરૂપ મોક્ષ માર્ગનો દ્રષ્ટા મુનિ કહેવાય છે.

તેનો સારાંશ એ છે કે જેણે પરિગ્રહની બુદ્ધિનો પરિત્યાગ કરેલ છે તેનાથી પરિગ્રહનો ત્યાગ અવશ્ય થાય છે. તેના પરિત્યાગથી દ્રવ્ય-ભાવરૂપ હિરણ્યાદિ તથા મૂર્ચ્છારૂપ પરિગ્રહ નિયમથી દૂર થઇ જાય છે આ ઠેકાણે પરિગ્રહમતિના ત્યાગથી જે પરિગ્રહનો ત્યાગ કરવો બતાવેલ છે તે પશ્ચાનુપૂર્વીને લઇને કહેલ છે. તેથી એ પણ સમજી લેવું જોઇએ કે મૈથુનમતિના પરિત્યાગથી મૈથુનનો, તથા ચોરી કરવાની

दण्डिशाक्यादयः परतैर्थिका यद्यपि किञ्चित्सचित्तादिपरित्यागिनोऽपि स्वमानपूजादिमूर्च्छावत्त्वादधःकर्मौद्देशिकादिभोजित्वाद्रागद्वेषानुगतत्वाच्च सपरिग्रहा एव दरीदृश्यन्ते। सर्वथा परिग्रहपरित्यागी मुनिरेव मोक्षमार्गं समारोहति नान्य इति तात्पर्यम् ॥ सू० ३ ॥

पुनर्मुनिकर्त्तव्यमाह–'तं परिन्नाय' इत्यादि।

मूलम्–तं परिन्नाय मेहावी विइत्ता लोगं वंता लोगसन्नं से मइमं परक्कमिज्जा--त्तिबेमि ॥ सू० ४ ॥

छाया—तं परिज्ञाय मेधावी विदित्वा लोकं वान्त्वा लोकसंज्ञां स मतिमान् पराक्रमेत। इति ब्रवीमि ॥ सू० ४ ॥

टीका—'त'-मित्यादि। मेधावी=विदितपरिग्रहकटुविपाकः तं ममायितं परिज्ञाय=ज्ञ-परिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्यान-परिज्ञया परिहृत्य च लोकं षड्जीवनि-

---

करने की मति के त्याग से चोरी का तथा झूठ बोलने की मति का त्याग करने से झूठ आदि का भी सहज में त्याग हो जाता है। इस कथन से दण्डी, शाक्यादि परमतावलंबी साधु यद्यपि कुछ२ सचित्तादि पदार्थों के परित्यागी होते हैं, परन्तु अपनी मानप्रतिष्ठा आदि में मूर्च्छा रखने से, आधाकर्म औद्देशिक आदि आहार के भोगने से और रागद्वेष-सहित होने से वे परिग्रहधारी ही हैं। जो परिग्रह के सर्वथा परित्यागी हैं वे ही मुनि हैं और वे ही मोक्षमार्ग पर चलने वाले हैं, अन्य नहीं; ऐसा समझना चाहिये। यही इस सूत्र का भावार्थ है ॥ सू० ३ ॥

फिर भी मुनि का कर्तव्य कहते हैं-'तं परिन्नाय' इत्यादि।

जिसने परिग्रह के कटुकविपाक को जान लिया है ऐसा मेधावी मुनि ज्ञपरिज्ञा से परिग्रह को जानकर प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उसका

मतिना त्यागथी चोरीनो तथा जुठ बोलवानी मतिना त्यागथी जुठ आदिनो सहजमां त्याग थई शके छे. आ कथनथी दंडी, शाक्यादि परमतावलंबी साधु जोके कोइ कोई सचित्तादि पदार्थोना परित्यागी होय छे परंतु पोतानी मान प्रतिष्ठा आदिमां मूर्छा राखवाथी आधाकर्म औद्देशिक आदि आहारना भोगववाथी अने रागद्वेष-सहित होवाथी ते परिग्रहधारी ज छे, जे परिग्रहना सर्वथा परित्यागी छे ते ज मुनिछे अने ते ज मोक्षमार्ग पर चालवावाळा छे, बीजा नहि; एवुं समजवुं जोईए. ए ज आ सूत्रनो भावार्थ छे ॥ सू० ३ ॥

फरी पण मुनिनुं कर्तव्य कहे छे-'तं परिन्नाय' इत्यादि.

जेणे परिग्रहना कटु विपाकने जाणी लीधा छे एवा मेधावी मुनि ज्ञपरिज्ञाथी परिग्रहने जाणीने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी तेनो सर्वथा परित्याग करी आपे छे. 'परि-

कायरूपं परिग्रहाग्रहिणं=परिग्रहजनितकटुविपाकमनुभवन्तं, यद्वा-लोकं कषायलोकमधःपतनशीलम् "अहो वयइ कोहेणं, माणेणं अहमा गई। माया गईपडिग्घाओ, लोहाओ दुहओ भयं"॥ (उत्तरा० अ० ९ गा. ५४) इतिवचनात्। अथवा-लोकम् आपातसुखदं परिणामकटुकं यथा—

"किंपाकफलसमाना विषया हि निषेव्यमाणरमणीयाः।
पश्चाद्भवन्ति कटुकास्त्रपुषिफलनिवन्धनैस्तुल्याः" इति ॥ १ ॥

सर्वथा परित्याग कर देवे। 'परिग्रह में आसक्त बना हुआ यह षड्जीवनिकायरूप लोक परिग्रह से उत्पन्न हुए कटुक-विपाक का ही हमेशा अनुभव करता रहता है' ऐसा समझकर लोकसंज्ञा-लोक की आहारादिक-मूर्च्छारूप संज्ञा का परित्याग कर हेयोपादेयविवेक से युक्त अन्तःकरण वाला बन वह मुनि संयम के अनुष्ठान करने में पुरुषार्थ करे।

सूत्र में "लोगं" इस पद का अर्थ एक तो षड्जीवनिकायरूप लोक होताहै, दूसरा अर्थ-कषायलोक, तथा आपाततः सुन्दर-थोडे समय के लिये अच्छा लगने वाला परन्तु परिणाम में दुःखप्रद विषय-भोगादिक भी होता है। क्रोधादिकषाय जीवों को कभी भी किसी भी अवस्था में सुखदायी नहीं हैं। इनके सेवन से जीवों का सदा अधःपतन ही होता है। कहा भी है-"अहो वयइ कोहेणं, माणेणं अहमा गई" इत्यादि। अर्थात् क्रोध से आत्मा का अधःपतन होता है और मान से अधमगति होती है। माया से शुभगति का प्रतिघात होता है और लोभ

ગ્રહમાં આસક્ત બનીને તે ષડ્જીવનિકાયરૂપ લોક પરિગ્રહથી ઉત્પન્ન થયેલ કટુક વિપાકનો જ હમેશાં અનુભવ કરતા રહે છે.' એવું સમજીને લોકસંજ્ઞા-લોકની આહારાદિક મૂર્ચ્છારૂપ સંજ્ઞાનો પરિત્યાગ કરીને હેયોપાદેયવિવેકથી યુકત અંતઃકરણવાળા બની તે મુનિ સંયમનું અનુષ્ઠાન કરવામાં પુરૂષાર્થ કરે.

સૂત્રમાં "लोगं" આ પદનો અર્થ એક તો ષડ્જીવનિકાયરૂપ લોક થાય છે, બીજો અર્થ કષાયલોક, તથા આપાતત સુંદર-થોડા વખત માટે સારૂં લાગનાર પરંતુ પરિણામમાં દુઃખરૂપ વિષયભોગાદિક પણ થાય છે. ક્રોધાદિ કષાય જીવોને કોઈ વખત પણ કોઇ પણ અવસ્થામાં સુખદાયી થતા નથી. તેના સેવનથી જીવોનું સદા અધઃપતન જ થાય છે. કહ્યું છે "अहो वयइ कोहेणं, माणेणं अहमा गई" ઈત્યાદિ. અર્થાત્ ક્રોધથી આત્માનું અધઃપતન થાય છે અને માનથી અધમગતિ થાય છે. માયાથી શુભગતિનો પ્રતિઘાત થાય છે. અને લોભથી ઈહલોક અને

विदित्वा=ज्ञात्वा लोकसंज्ञां लोकस्य=प्राणिगणस्य संज्ञा=आहारादिमूर्च्छारूपा, तां लोकसंज्ञां वान्त्वा=उद्गीर्य परित्यज्येत्यर्थः, स मतिमान् विदितहेयोपादेयः पराक्रमेत=संयमानुष्ठाने पराक्रमं कुर्यात्। इति-शब्दोऽधिकारसमाप्त्यर्थकः। ब्रवीमीत्यस्यार्थस्तूक्त एव ॥ सू० ४ ॥

संयमाचरणे पराक्रममाणः परिहृतममायितोऽनगारः कीदृशो भवतीत्याह—'नारइं सहइ' इत्यादि।

मूलम्—नारइं सहइ वीरे, वीरे न सहइ रइं।
जम्हा अविमणे वीरे तम्हा वीरे न रज्जइ॥ सू० ५॥

छाया—नारतिं सहते वीरो, वीरो न सहते रतिम्।
यस्मादविमना वीरस्तस्माद्वीरो न रज्यति ॥ सू० ५ ॥

से इह लोक एवं परलोक सम्बन्धी भय रहता है। तथा विषयभोगादिक भी किंपाकफल के समान ऊपर से ही मनोहर मालूम पड़ते हैं परन्तु परिणाम में जीवों के लिये नरक-निगोदादि गतियों के कारण बनते हैं। किंपाकफल का सेवन जिस प्रकार प्राणों का हरण करने वाला होता है उसी प्रकार ये भी भव२ में जीवों को अनन्त यातनाओं के देनेवाले होते हैं। ऐसा समझकर उस कषायलोक का संयमी मुनि सदा त्याग कर देवे।

यहां "इति" शब्द अधिकार की परिसमाप्ति का सूचक है "ब्रवीमि" पद का अर्थ पहिले कहा जा चुका है। ॥ सू० ४ ॥

संयम के पालन करने में पराक्रमशाली और परिग्रह का त्यागी अनगार कैसा होता है? सो कहते हैं-'नारइं सहइ' इत्यादि।

પરલોક સંબન્ધી ભય રહે છે તથા વિષય ભોગાદિક પણ કિંપાક ફળ સમાન ઉપરથી જ મનોહર માલૂમ પડે છે પરંતુ પરિણામમાં જીવો માટે નરક નિગોદાદિ ગતિઓનું કારણ બને છે. કિંપાક ફળનુ સેવન જે પ્રકારે પ્રાણોનું હરણ કરે છે તે પ્રકારે આ પણ ભવોભવમાં જીવોને અનંત યાતનાઓ દેનાર બને છે, એવું સમજીને તે કષાયલોકનો તથા વિષયલોકનો સંયમી મુનિ સદા ત્યાગ કરે.

અહીં "ઇતિ" શબ્દ અધિકારની પરિસમાપ્તિનો સૂચક છે. "ब्रवीमि" પદનો અર્થ પહેલાં કરવામાં આવેલ છે ॥ સૂ૦ ૪ ॥

સંયમનુ પાલન કરવામાં પરાક્રમશાલી અને પરિગ્રહના ત્યાગી અણગાર કેવા હોય છે. તે કહે છે-"नारइं सहइ" ઈત્યાદિ.

टीका—'नारति–' मित्यादि। वीरः=कर्मविदारणसमर्थः परिहृतपुत्रकलत्रादिः संयमी कदाचिन्मोहनीयोदयात्समुत्पन्नाम्, अरतिम्=चारित्रविषयामप्रीतिं न सहते=न क्षमते, एवमेव वीरः=पूर्वोक्तः रतिं=विषयानुरागं च न सहते=न क्षमते, धर्मध्यानपरायणो मुनिः समुत्पन्नमात्रामपि रतिमरतिं च निष्कासयतीत्यर्थः। वीरो=यस्मात्कारणात् रत्यरतिपरित्यागात् अविमनाः=तत्रानासक्तः, तस्मात् वीरः शब्दादिकामगुणेषु न रज्यति=मूर्च्छां न प्राप्नोति। अत्र वीर-शब्दस्य पुनः पुनरुपादानं कर्मरिपुरवश्यं विजेतव्य इति द्योतनायेति भावः॥ सू० ५॥

"नारतिं सहते वीरः" अर्थात् कर्मों के विनाश करने में जो शक्तिसंपन्न है, एवं जिसने पुत्रकलत्रादि परिग्रह का सर्वथा परिहार कर दिया है ऐसा वीर संयमी मुनि कदाचित् मोहनीय कर्म के उदय से चारित्र में उत्पन्न हुए अरति-परिणाम को कभी भी सहन नहीं कर सकता है, और न विषयों की तरफ खींचने वाली रति को कभी हृदय में स्थान दे सकता है; कारण कि ये दोनों प्रकार के परिणाम संयम एवं धर्मध्यान के विघातक हैं। संयमी का अन्तःकरण सदा धर्मध्यान में मग्न रहता है। कदाचित् कर्म की प्रबलता से इस तरह के परिणाम उसके चित्त में आ भी जावें तो वह मुनि ऐसे परिणामोंको अपने धर्मध्यान के प्रभाव से शीघ्रातिशीघ्र दूर कर देता है। इन परिणामों के प्रति उस संयमी की आसक्ति नहीं होती। इसीलिये इस प्रकार के रति-अरतिरूप परिणाम, विना किसी रुकावट के उसकी आत्मा से बहुत शीघ्र दूर हो जाते हैं। जैसे सूखे घड़े पर आई हुई बालु विना कुछ किये उस घडे

नारतिं सहते वीर અર્થાત્ કર્મોનો વિનાશ કરવામાં જે શક્તિસંપન્ન છે અને જેણે પુત્ર કલત્રાદિ પરિગ્રહનો સર્વથા ત્યાગ કરેલ છે એવા વીર સંયમી મુનિ કદાચિત્ મોહનીય કર્મના ઉદયથી ચારિત્રમાં ઉત્પન્ન થયેલ અરતિ પરિણામને કોઈ વખત પણ સહન કરી શકતા નથી, અને વિષયોની તરફ ખેંચવાવાળી રતિને પણ હૃદયમાં કોઈ વખત પણ સ્થાન ન આપે, એટલે આપી શકતા નથી. કારણ કે એ બન્ને પ્રકારના પરિણામ સંયમ અને ધર્મધ્યાનના વિઘાતક છે સંયમીનું અંતઃકરણ સદા ધર્મધ્યાનમાં જ મગ્ન રહે છે. કદાચ કર્મની પ્રબલતાથી આવા પ્રકારનું પરિણામ તેના હૃદયમાં આવી જાય તો તે મુનિ આવા પરિણામોને પોતાના ધર્મધ્યાનના પ્રભાવથી જલ્દી દૂર કરી નાંખે છે. આ પરિણામો તરફ તે સંયમીની આસક્તિ થતી નથી, માટે આ પ્રકારના રતિઅરતિરૂપ પરિણામ કોઈ જાતની રૂકાવટ વિના તેના આત્માથી જલ્દી દૂર થઇ જાય છે જેવી રીતે સુકા ઘડા ઉપર ઉડીને આવેલી ધુડ કાંઇ પણ કર્યા વિના તે ઘડાથી દૂર થઇ જાય છે તે પ્રકારે

ततः किमायातमिति दर्शयति–' सद्दे ' इत्यादि,

मूलम्—सद्दे य फासे अहियासमाणे, निव्विंद नंदिं इह जीवियस्स। मुणी मोणं समायाय, धुणे कम्मसरीरगं। पंतं लूहं च सेवंति, वीरा संमत्तदंसिणो। एस ओहंतरे मुणी तिन्ने मुत्ते विरए वियाहिए--त्तिबेमि ॥ सू० ६ ॥

छाया—शब्दान् च स्पर्शानधिसहमानो, निर्विन्द नन्दिमिह जीवितस्य, मुनिर्मौनं समादाय धुनीत कर्मशरीरकं, प्रान्तं रूक्षं च सेवन्ते वीराः सम्यक्त्वदर्शिनः, एष ओघन्तरो मुनिस्तीर्णो मुक्तो विरतो व्याख्यात इति ब्रवीमि ॥ सू० ६ ॥

टीका—' शब्दा'–नित्यादि, शब्दान् स्पर्शांश्च–इष्टाननिष्टांश्च, आद्यन्तग्रहणादितरेषां मध्यवर्तिनां रूपादीनामपि ग्रहणम्। अधिसहमानः=सम्यक् सहमानः राग-

---

से दूर हो जाती है, इसी प्रकार इन परिणामों की भी यही स्थिति होती है। इसीलिये संयमी मुनि शब्दादिक कामगुणों में मूर्च्छाभाव को प्राप्त नहीं होते हैं। सूत्र में सूत्रकार ने वार२ जो 'वीर' शब्द का प्रयोग किया है, उससे यही ध्वनित होता है कि कर्मरूपी शत्रु ऐसे संयमीजनों के द्वारा अवश्य जीतने के योग्य है ॥ सू० ५ ॥

इससे क्या सिद्ध होता है?–इस बातको दिखलाते हैं–" सद्दे य फासे" इत्यादि।

सूत्र में अन्तकी कर्ण–इन्द्रिय के विषय शब्द का और आदि की स्पर्शन–इन्द्रिय के विषय स्पर्श का निर्देश किया है। इससे मध्यवर्ती इतर इन्द्रियों के विषय–रूपादिकों का भी ग्रहण हो जाता है। शिष्य को संबोधन करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि हे मेधावी शिष्य! इन्द्रियों के इष्ट और अनिष्ट विषयों में तुम सर्वथा रागद्वेष मत करो। शास्त्र

આ પરિણામોની પણ તે સ્થિતિ છે. માટે સંયમી મુનિ શબ્દાદિક કામગુણોમાં મૂર્છાભાવને પ્રાપ્ત થતાં નથી. સૂત્રમાં સૂત્રકારે વારંવાર જે વીર શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો છે તેથી એ નક્કી થાય છે કે કર્મરૂપી શત્રુ એવા સંયમીજનોથી અવશ્ય જીતવા યોગ્ય છે ॥ સૂ૦ ૫ ॥

આથી શું સિદ્ધ થાય છે? એ વાતને બતાવે છે–"सद्दे य फासे" ઇત્યાદિ

સૂત્રમાં અન્તની કર્ણ ઇન્દ્રિયના વિષય–શબ્દનો અને આદિની સ્પર્શન ઇન્દ્રિયના વિષય–સ્પર્શનો ગ્રહણ થયેલ છે, આથી મધ્યવર્તી બીજી ઇન્દ્રિયોનો વિષય–રૂપાદિકોનો પણ ગ્રહણ થાય છે. શિષ્યને સંબોધન કરીને સૂત્રકાર કહે છે કે હે મેધાવી શિષ્ય! ઇંદ્રિયોના ઇષ્ટ અને અનિષ્ટ વિષયોમાં તમે સર્વથા રાગ

द्वेषावकुर्वाणः सन् , इह=तिर्यग्लोके जीवितस्य=असंयमजीवितस्य नन्दिं=प्रमोदं 'ममेदं धनादि भवति, भविष्यति, अभूच्च' इत्यादिविकल्परूपां मनस्तुष्टिं निर्विन्द= अनाद्रियस्व=अपाकुर्वित्यर्थः, ऐश्वर्यरूपबलादिषु सर्वत्र मनःसंकल्पविकल्पजालं महदनर्थकरमिति तात्पर्यम् ।

का यह उपदेश है कि "सद्देसु य भद्दयपावएसु सोयविसयमुवगएसु तुट्ठेण वा रुट्ठेण वा समणेण सया न होयव्वं" शब्द कर्णप्रिय हों या कर्णकटुक हों, इन्द्रियों के विषय चाहे मनोज्ञ हों, चाहे अमनोज्ञ हों; संयमी को उनमें कभी भी न तुष्ट होना चाहिये और न रुष्ट ही होना चाहिये। संसार में सभी प्रकार की सामग्री है। बुद्धिमान् संयमी वही है जो इनमें से किसी में भी न फँसे और सबमें समताभावसंपन्न बन अपने लक्ष्य की सिद्धि में तत्पर रहे। असंयमजीवन की जो यह आत्मपरिणति है कि 'मेरे पास पहिले इतना धनादि था, अब इतना है, आगे और हो जावेगा,'–इन सब का परित्याग कर दो। ढाई द्वीप में ही संयममार्ग की आराधना करने का सुवर्ण अवसर हाथ आता है; बाकी इस तिर्यग्लोक में इस संयमभाव की आराधना हो ही नहीं सकती। इसलिये ममत्वरूप संकल्पविकल्पमय मानसिक तुष्टि का परिहार करो, कारण कि इन ऐश्वर्य, रूप और बल आदि में किया गया मानसिक संकल्पविकल्प का जाल आत्मा के लिये महान् अनर्थकर होता है। ये पदार्थ हों

દ્વેષ ન કરો. શાસ્ત્રનો એ ઉપદેશ છે કે "सद्देसु य भद्दयपावएसु सोयविसयमुवगएसु, तुट्ठेण वा रुट्ठेण व समणेण सया न होयव्वं" ઇન્દ્રિયોના વિષય ભલે મનોજ્ઞ હોય અગર અમનોજ્ઞ હોય, શબ્દ ભલે કર્ણપ્રિય હોય, અગર કર્ણકટુક હોય, સંયમીએ તેમાં કોઇ વખત પણ ન આનંદ માનવો જોઇએ કે ન રૂષ્ટ થવું જોઇએ. સંસારમાં બધી સામગ્રી છે બુદ્ધિમાન્ સંયમી તે જ છે જે આમાંથી કોઇમાં પણ ન ફસે અને બધામાં સમતાભાવસંપન્ન બની પોતાના લક્ષ્યની સિદ્ધિમાં તત્પર રહે. અસંયમ જીવનની જે આ આત્મપરિણતિ છે કે 'મારી પાસે પહેલાં આટલું ધન હતું, હવે આટલું છે, આગળ વળી વધારે થઇ જશે' આ સઘળાનો પરિત્યાગ કરી આપો. અઢીદ્વીપમાં જ સંયમમાર્ગની આરાધના કરવાનો સુઅવસર હાથ આવે છે બાકી આ તિર્યગ્લોકમાં આ સંયમભાવની આરાધના બની જ શકતી નથી, માટે મમત્વરૂપ સંકલ્પવિકલ્પમય માનસિક તુષ્ટિનો પરિહાર કરો, કારણ કે એ ઐશ્વર્ય, રૂપ અને બલ આદિમાં કરેલા માનસિક સંકલ્પ વિકલ્પની જાલ આત્મા માટે મહાન અનર્થકારી છે. એ પદાર્થો

ततः किमायातमिति दर्शयति–' सद्दे ' इत्यादि,

मूलम्–सद्दे य फासे अहियासमाणे, निव्विंद नंदिं इह जीवियस्स । मुणी मोणं समायाय, धुणे कम्मसरीरगं । पंतं लूहं च सेवंति, वीरा संमत्तदंसिणो । एस ओहंतरे मुणी तिन्ने मुत्ते विरए वियाहिए--त्तिबेमि ॥ सू० ६ ॥

छाया—शब्दान् च स्पर्शानधिसहमानो, निर्विन्द नन्दिमिह जीवितस्य, मुनिर्मौनं समादाय धुनीत कर्मशरीरकं, प्रान्तं रूक्षं च सेवन्ते वीराः सम्यक्त्वदर्शिनः, एष ओघन्तरो मुनिस्तीर्णो मुक्तो विरतो व्याख्यात इति ब्रवीमि ॥ सू० ६ ॥

टीका—'शब्दा'–नित्यादि, शब्दान् स्पर्शांश्च–इष्टाननिष्टांश्च, आद्यन्तग्रहणादितरेषां मध्यवर्तिनां रूपादीनामपि ग्रहणम् । अधिसहमानः=सम्यक् सहमानः राग-

---

से दूर हो जाती है, इसी प्रकार इन परिणामों की भी यही स्थिति होती है । इसीलिये संयमी मुनि शब्दादिक कामगुणों में मूर्च्छाभाव को प्राप्त नहीं होते हैं । सूत्र में सूत्रकार ने बार२ जो 'वीर' शब्द का प्रयोग किया है, उससे यही ध्वनित होता है कि कर्मरूपी शत्रु ऐसे संयमीजनों के द्वारा अवश्य जीतने के योग्य है ॥ सू० ५ ॥

इससे क्या सिद्ध होता है ?–इस बातको दिखलाते हैं–" सद्दे य फासे " इत्यादि ।

सूत्र में अन्तकी कर्ण–इन्द्रिय के विषय शब्द का और आदि की स्पर्शन–इन्द्रिय के विषय स्पर्श का निर्देश किया है । इससे मध्यवर्ती इतर इन्द्रियों के विषय–रूपादिकों का भी ग्रहण हो जाता है । शिष्य को संबोधन करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि हे मेधावी शिष्य ! इन्द्रियों के इष्ट और अनिष्ट विषयों में तुम सर्वथा रागद्वेष मत करो । शास्त्र

આ પરિણામોની પણ તે સ્થિતિ છે. માટે સંયમી મુનિ શબ્દાદિક કામગુણોમા મૂર્છાભાવને પ્રાપ્ત થતાં નથી સૂત્રમાં સૂત્રકારે વારંવાર જે વીર શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો છે તેથી એ નક્કી થાય છે કે કર્મરૂપી શત્રુ એવા સંયમીજનોથી અવશ્ય જીતવા યોગ્ય છે ॥ સૂ० ૫ ॥

આથી શું સિદ્ધ થાય છે ? એ વાતને બતાવે છે–" सद्दे य फासे " ઇત્યાદિ

સૂત્રમાં અન્તની કર્ણ ઇન્દ્રિયના વિષય–શબ્દનો અને આદિની સ્પર્શન ઇન્દ્રિયના વિષય–સ્પર્શનો ગ્રહણ થયેલ છે, આથી મધ્યવર્તી બીજી ઇન્દ્રિયોનો વિષય–રૂપાદિકોનો પણ ગ્રહણ થાય છે. શિષ્યને સંબોધન કરીને સૂત્રકાર કહે છે કે હે મેધાવી શિષ્ય ! ઇંદ્રિયોના ઇષ્ટ અને અનિષ્ટ વિષયોમાં તમે સર્વથા રાગ

द्वेषावकुर्वाणः सन्, इह=तिर्यग्लोके जीवितस्य=असंयमजीवितस्य नन्दिं=प्रमोदं 'ममेदं धनादि भवति, भविष्यति, अभूच्च' इत्यादिविकल्परूपां मनस्तुष्टिं निर्विन्द= अनाद्रियस्व=अपाकुर्वित्यर्थः, ऐश्वर्यरूपबलादिषु सर्वत्र मनःसंकल्पविकल्पजालं महदनर्थकरमिति तात्पर्यम्।

का यह उपदेश है कि "सद्देसु य भद्दयपावएसु सोयविसयमुवगएसु तुट्ठेण वा रुट्ठेण वा समणेण सया न होयव्वं" शब्द कर्णप्रिय हों या कर्णकटुक हों, इन्द्रियों के विषय चाहे मनोज्ञ हों, चाहे अमनोज्ञ हों, संयमी को उनमें कभी भी न तुष्ट होना चाहिये और न रुष्ट ही होना चाहिये। संसार में सभी प्रकार की सामग्री है। बुद्धिमान् संयमी वही है जो इनमें से किसी में भी न फँसे और सबमें समताभावसंपन्न बन अपने लक्ष्य की सिद्धि में तत्पर रहे। असंयमजीवन की जो यह आत्मपरिणति है कि 'मेरे पास पहिले इतना धनादि था, अब इतना है, आगे और हो जावेगा,'–इन सब का परित्याग कर दो। ढाई द्वीप में ही संयममार्ग की आराधना करने का सुवर्ण अवसर हाथ आता है; बाकी इस तिर्यग्लोक में इस संयमभाव की आराधना हो ही नहीं सकती। इसलिये ममत्वरूप संकल्पविकल्पमय मानसिक तुष्टि का परिहार करो, कारण कि इन ऐश्वर्य, रूप और बल आदि में किया गया मानसिक संकल्पविकल्प का जाल आत्मा के लिये महान् अनर्थकर होता है। ये पदार्थ हों

દ્વેષ ન કરો શાસ્ત્રનો એ ઉપદેશ છે કે "सद्देसु य भद्दयपावएसु सोयविसयमुवगएसु, तुट्ठेण वा रुट्ठेण व समणेण सया न होयव्वं" ઇન્દ્રિયોનો વિષય ભલે મનોજ્ઞ હોય અગર અમનોજ્ઞ હોય, શબ્દ ભલે કર્ણપ્રિય હોય, અગર કર્ણકટુક હોય, સંયમીએ તેમાં કોઇ વખત પણ ન આનંદ માનવો જોઇએ કે ન રૂષ્ટ થવું જોઇએ. સંસારમાં બધી સામગ્રી છે બુદ્ધિમાન્ સંયમી તે જ છે જે આમાંથી કોઇમાં પણ ન ફસે અને બધામાં સમતાભાવસંપન્ન બની પોતાના લક્ષ્યની સિદ્ધિમાં તત્પર રહે. અસંયમ જીવનની જે આ આત્મપરિણતિ છે કે 'મારી પાસે પહેલાં આટલું ધન હતું, હવે આટલું છે, આગળ વળી વધારે થઇ જશે' આ સઘળાનો પરિત્યાગ કરી આપો. અઢીદ્વીપમાં જ સંયમમાર્ગની આરાધના કરવાનો સુઅવસર હાથ આવે છે. બાકી આ તિર્યગ્લોકમાં આ સંયમભાવની આરાધના બની જ શકતી નથી, માટે મમત્વરૂપ સંકલ્પવિકલ્પમય માનસિક તુષ્ટિનો પરિહાર કરો, કારણ કે એ ઐશ્વર્ય, રૂપ અને બલ આદિમાં કરેલા માનસિક સંકલ્પ વિકલ્પની જાલ આત્મા માટે મહાન અનર્થકારી છે. એ પદાર્થો

यद्वा-इह=मनुष्यजीविते वा पञ्चविधव्रतातीचाराणां मध्ये व्यतीतं निन्द, संजायमान संवृणु, भविष्यन्तं चातीचारं प्रत्याख्याहीत्याशयः। किमाश्रित्य नन्दिं निर्विन्देदित्याह-'मुनि-'रित्यादि। मुनिः=कर्मविपाकज्ञो यतिः, 'मौनं' मुनेरयं मौनः संयमो वाक्संयमो वा उपलक्षणतया काय-मनसोरपि संयमस्तं

तो आत्मा को इनसे कोई लाभ नहीं, नहीं हों तो इनके अभाव में आत्मा को कोई हानि नहीं। आत्मा की जो निज चीज है वह इनके संयोग और वियोग में न अच्छी होती है और न बिगड़ती ही है। ऐसा ख्यालकर बाह्य वस्तु में संयमी को अपना अन्तःकरण आसक्तियुक्त नहीं करना चाहिये।

अथवा—शिष्य को समझाते हुए सूत्रकार कहते हैं कि हे मेधावी! अपने मनुष्य जीवन को सफलित करने के लिये जो संयमजीवन तुमने अंगीकार किया है, उसमें जो ये पांच महाव्रतों की तुम आराधना कर रहे हो सो यह सदा ध्यान रखो कि इनमें जो पहिले अतीचार लग चुके हैं उनकी निंदा करो, वर्तमान में अतीचार न लगने पावें इसकी संभाल रखो, तथा आगामीकाल में लगने वाले अतीचारों का प्रत्याख्यान करो। कर्म के विपाक का ज्ञाता मुनि वाचिक संयम को, उपलक्षण से कायिक और मानसिक संयम को भलीप्रकार ग्रहण कर कार्मण-शरीर से अथवा कर्मजन्य इस औदारिक शरीर से रहित हो जाता है अर्थात् मोक्ष का भोक्ता बन जाता है।

હોય તો આત્માને એનાથી કોઈ લાભ નહિ. ન હોય તો તેના અભાવમાં આત્માને કોઈ હાનિ નહી. આત્માની જે નિજ ચીજ છે તે તેના સંયોગ અને વિયોગમાં નથી સારી બનતી અને બગડતી પણ નથી એવો ખ્યાલ કરી બાહ્ય વસ્તુમાં સંયમીએ પોતાનું અંતઃકરણ આસક્તિયુક્ત નહિ કરવું જોઈએ.

અથવા શિષ્યને સમજાવતા સૂત્રકાર કહે છે કે હે મેધાવી! પોતાના મનુષ્ય જીવનને સફળ બનાવવા માટે જે સંયમ જીવન તમે અંગીકાર કર્યું છે, તેનાં જે આ પાંચ મહાવ્રતોની તમે આરાધના કરી રહ્યા છો તો એ સદા ધ્યાનમાં રાખો કે તેમાં જે પહેલા અતિચાર લાગી ચુકેલ છે તેની નિંદા કરો. વર્તમાનમાં અતિચાર ન લાગી જાય તેની સંભાળ રાખો અને આવતા કાળમાં લાગવાવાળા અતિચારોનું પ્રત્યાખ્યાન કરો. કર્મના વિપાકના જ્ઞાતા મુનિ વાચિક સંયમને ઉપલક્ષણથી કાયિક અને માનસિક સંયમને ભલી પ્રકારે ગ્રહણ કરી કાર્મણશરીરથી અથવા કર્મજન્ય આ ઔદારિક શરીરથી રહિત થઈ જાય છે, અર્થાત્ મોક્ષનો ભાગી બની જાય છે.

'समादाय' सम्=सम्यक् आदाय=गृहीत्वा कर्मशरीरकं कार्मणशरीरमौदारिकं वा धुनीत=परिशातयेदपनयेदित्यर्थः, अथवा-'मुणी' इत्यस्य 'हे मुने!' इतिच्छाया, हे सम्यक्त्वदर्शिन्! मौनं=संयमं समादाय=सम्यग् गृहीत्वा कर्मशरीरकं धुनीहि पृथक्कुरु, तत्र ममत्वं न कुर्वेत्यर्थः। यतः कर्मशरीरे मुनेर्ममत्वं न भवति तस्मादेवाह-'प्रान्त-'मित्यादि। सम्यक्त्वदर्शिनः=वस्तुतत्त्वपरिज्ञानकुशलाः, यद्वा 'संमत्तदंसिणो' इत्यस्य 'समत्वदर्शिनः' इतिच्छाया, समत्वदर्शिनः=रागद्वेषवर्जिताः,

---

अथवा-"मुणी" इस शब्द की छाया 'मुने!' यह भी होती है। जिसका भाव यह है कि हे सम्यक्त्वदर्शी! तुम संयम को अच्छी तरह ग्रहण कर कर्मशरीर को अपने से पृथक् करो, अर्थात् यह समझो कि यह कर्मशरीर पुद्गल, जड, मूर्तिक है और मैं ज्ञाता द्रष्टा शुद्ध ज्ञानादिमय हूं। इस शरीर के बिगड़ने में मेरा कुछ नहीं बिगड़ता है, मैं इससे भिन्न हूं। इसलिये इसमें ममत्वबुद्धि करना ही व्यर्थ है। इसके पोषण के लिये जो वस्तुतत्त्वके परिज्ञान में कुशलमति हैं वे अन्त, प्रान्त, एवं ठंढा और रूक्ष आहार से इस कर्मशरीर की उचित संभाल करते हुए अपने संयमभाव की वृद्धि करने में सावधान रहते हैं, ऐसे मुनि ही वीर कहलाते हैं। परीषह और उपसर्ग आने पर भी वे अपने पथ संयममार्ग में रंचमात्र भी विचलित नहीं होते हैं। जहां पर समताभाव का स्रोत बहता है वहां पर आत्मा अत्यन्त बलिष्ठ होती है। इसी बातका ख्यालकर टीकाकारने "सम्मत्तदंसिणो" की दूसरी छाया "समत्व-

---

અથવા "मुणी" આ શબ્દની છાયા "मुने" એ પણ થાય છે, જેનો ભાવ એ છે કે હે સમ્યકત્વદર્શિ! તમે સંયમને સારી રીતે ગ્રહણ કરી કર્મશરીરને પોતાથી પૃથક્ કરો, અર્થાત્ એમ સમજો કે આ કર્મશરીર પુદ્ગલ, જડ મુર્તિક છે, અને હું જ્ઞાતા, દ્રષ્ટા, શુદ્ધ જ્ઞાનાદિમય છું. આ શરીરના બગડવામાં મારૂં કાંઈ પણ બગડતું નથી હું તેનાથી ભિન્ન છું તેથી તેમાં મમત્વબુદ્ધિ કરવી વ્યર્થ છે. તેના પોષણ માટે જે વસ્તુતત્વના પરિજ્ઞાનમાં કુશળમતિ છે, તે અન્ત પ્રાન્ત, ઠંડા અને રૂક્ષ આહારથી આ કર્મશરીરની ઉચિત સંભાળ કરતાં કરતાં પોતાના સંયમભાવની વૃદ્ધિ કરવામાં સાવધાન રહે છે. એવા મુનિ જ વીર કહેવાય છે. પરિષહ અને ઉપસર્ગ આવવા છતાં પણ પોતે સંયમમાર્ગમાં રજમાત્ર પણ વિચલીત થતા નથી. જે ઠેકાણે સમતાભાવનો પ્રવાહ જ વહે છે ત્યાં આત્મા અત્યંત બલિષ્ટ બને છે. આ વાતનો ખ્યાલ કરીને ટીકાકારે "समत्त-दंसिणो" ની બીજી છાયા "समत्वदर्शिनः" લખી છે આંત અને રૂક્ષ, દ્રવ્ય તથા

वीराः परीषहोपसर्गसहनसमर्था मुनयः, प्रान्तं=द्रव्यतः स्वाभाविकरसरहितं शीतल-पुराणकुलत्थादिकं स्तोकं वा, रूक्षं=द्रव्यत आगन्तुकघृतादिरसवर्जितं, भावतः प्रान्तं द्वेषविकलं धूमदोषवर्जितम्, भावतो रूक्षम्=रागरहितमङ्गारदोषवर्जितमाहारं च सेवन्ते=अश्नन्ति। यश्च प्रान्तरूक्षभोजी स किमाप्नोतीत्याह–'एष' इति, एषः= परिशुद्धप्रान्तरूक्षाहारसेवनेन कर्मशरीरं धुन्वानो मुनिः=अनगारः, 'ओघन्तरः'

दर्शिनः" लिखी है। प्रान्त और रूक्ष, द्रव्य तथा भाव के भेद से दो-दो प्रकार के हैं, उनमें द्रव्यप्रान्त स्वाभाविकरसवर्जित ठंढा पुराना कुलत्थ आदि, तथा प्रमाण में थोडा। भावप्रान्त द्वेषरहित धूमदोषवर्जित। द्रव्य-रूक्ष–घृत आदि रसवर्जित, और भावरूक्ष–रागरहित अङ्गारदोषवर्जित आहार। मुनि इस प्रकार का आहार करते हैं। इस प्रकार के आहार को अपने उपयोग में लेनेवाला अनगार कर्मशरीर क्षीण करता हुवा 'ओघन्तरः' संसाररूपी भाव ओघको "कडेमाणे कडे" इस वाक्य के अनुसार पार करने वाला हो जाता है। यद्यपि संसाररूपी समुद्र को अभी उसने पार नहीं किया है परन्तु पार करनेरूप क्रिया अभी उसकी चालू है–पार करने के सन्मुख हो रहा है, भविष्य में उसे पार करेगा फिर भी सूत्र में "तिण्णे–तीर्णः" जो इस भूतकृदन्त का प्रयोग किया गया है वह "क्रियमाणं कृतं" इस वाक्य के अनुसार किया हुआ समझना चाहिये। जैसे किसी कार्य की समाप्ति अभी हुई नहीं है, समाप्ति की ओर वह अग्रसर हो रहा है और भविष्य में पार होगा; परन्तु व्यवहार में

ભાવ ભેદથી બે પ્રકારે છે. તેમાં દ્રવ્યપ્રાંત–સ્વભાવિક રસવર્જિત ઠંડા પુરાણા કુલત્થ આદિ, તથા પ્રમાણમાં થોડું. ભાવપ્રાન્ત–દ્વેષરહિત–દોષરહિત, દ્રવ્યરૂક્ષ–ઘી આદિ રસ વર્જિત, અને ભાવરૂક્ષ–રાગરહિત અંગારદોષવર્જિત આહાર, મુની આવા પ્રકારનો આહાર કરે છે. આવા પ્રકારના આહારને પોતાના ઉપયોગમાં લાવવાવાળા અણગાર કર્મ-શરીરને ક્ષીણ કરીને "ओघन्तर" સંસારરૂપી ભાવ ઓઘને "कडेमाणे कडे" આ વાક્ય અનુસાર પાર કરવાવાળા થઈ જાય છે, જો કે સંસારરૂપી સમુદ્રને હજુ તેમણે ઓળંગેલ નથી પરંતુ ઓળંગવારૂપ ક્રિયા હજુ તેમની ચાલુ છે. ઓળંગવા માટે સન્મુખ થતાં જાય છે. ભવિષ્યમાં તેનો પાર કરશે તો પણ સૂત્રમાં "तिण्णे-तीर्ण." જે આ ભૂત કૃદંતનો ઉપયોગ કર્યો છે તે "क्रियमाणं कृतं" આ વાક્ય અનુસાર કરેલું સમજવું જોઈએ જેમ કોઈ કાર્યની સમાપ્તિ હજુ થયેલ નથી પણ સમાપ્તિના માર્ગ ઉપર છે અને ભવિષ્યમાં સમાપ્ત કરશે, પણ વ્યવહારમાં તે "થઈ ગયેલ

ओघं=भावौघं संसारं तरतीत्योघन्तरः, 'कडेमाणे कडे' इति वचनात्तीर्णः, मुक्तः= बाह्याभ्यन्तरममत्वरहितो भवति, किञ्च-स एव विरतः=विषयकषायसङ्गवर्जितः, व्याख्यातः=मुनित्वेन प्रसिद्धः । इति ब्रवीमीत्यस्यार्थस्तूक्त एव ॥ सू० ६ ॥

यश्च पूर्वोक्तविपरीतवर्ती स कीदृशो भवतीत्याह-'दुव्वसुमुणी' इत्यादि ।

मूलम्-दुव्वसुमुणी अणाणाए तुच्छए गिलाइ वत्तए एस वीरे पसंसिए, अच्चेइ लोगसंजोगं एस नाए पमुच्चइ ॥सू० ७॥

छाया—दुर्वसुमुनिरनाज्ञया तुच्छो ग्लायति वर्तयेत् एष वीरः प्रशंसितः अत्येति लोकसंयोगम्, एष न्यायः प्रोच्यते ॥ सू० ७ ॥

टीका—'दुर्वसुमुनि' रित्यादि, दुर्वसुमुनिः, वसु=द्रव्यं भव्यं कल्याणमिति यावत्, तच्च दुर्=दुष्टं विपरीतं दूरे स्थितं वा यस्य दुर्वसुः, स चासौ मुनिश्च दुर्वसु-

---

वह "होचुका" ऐसा कहा जाता है, उसी प्रकार यहां पर भी यही समझकर "तीर्णः" इस पदका प्रयोग किया गया है । जो 'ओघन्तर' होते हैं वे बाह्य और आभ्यन्तर परपदार्थों से ममत्वरहित होते हैं और विषयकषायों के संगसे रहित होकर मुनिरूपसे प्रसिद्ध कोटि में आते हैं । "इति ब्रवीमि" इन पदों का भावार्थ पहिले लिखा जा चुका है ॥ सू० ६ ॥

जो संयमी पूर्वोक्त स्वरूप से विपरीतवर्त्ती है वह कैसा होता है ? इस विषय को समझाते हैं-'दुव्वसुमुणी' इत्यादि ।

वह दुर्वसु मुनि है जो वीतराग प्रभु की आज्ञा से रहित होता हुआ स्वच्छन्द आचारविचारवाला होता है । वसु शब्द का अर्थ द्रव्य है, द्रव्य से मतलब धन से नहीं किन्तु भव्य अर्थात कल्याण से है ।

છે" એમ કહેવામાં આવે છે, તે પ્રકારે આ ઠેકાણે પણ તેવું સમજીને "तीर्णः" આ પદનો ઉપયોગ કરવામાં આવેલ છે. જે ઓઘન્તર બને છે તે બાહ્ય અને આભ્યંતરમાં પરપદાર્થોથી મમત્વરહિત બને છે, અને વિષય કષાયોના સંગથી રહિત બની મુનિરૂપથી પ્રસિદ્ધ કોટિમાં આવે છે. "इति ब्रवीमि" આ પદોનો ભાવાર્થ પહેલાં લખાઈ ચૂકેલ છે. ॥સૂ૦ ૬ ॥

જે સંયમી પૂર્વોક્ત સ્વરૂપથી વિપરીતવર્તી છે, તે કેવા હોય છે ? આ વિષયને સમજાવતાં સૂત્રકાર કહે છે—'दुव्वसुमुणि' ઇત્યાદિ

તે દુર્વસુ મુનિ છે કે જે વીતરાગ પ્રભુની આજ્ઞાથી રહિત થઇને સ્વચ્છંદ આચાર વિચારવાળા બને છે. વસુ શબ્દનો અર્થ દ્રવ્ય છે. દ્રવ્યનો તાત્પર્ય ધન નહિ પણ ભવ્ય અર્થાત્ કલ્યાણ છે. આ ભવ્ય-કલ્યાણ જેનાથી દૂર છે અથવા

मुनिः=मोक्षानर्हो रत्नत्रयविराधक इत्यर्थः, कुत इत्थमित्याह–'अनाज्ञये'त्यादि। अनाज्ञया वर्तमानः=वीतरागोपदेशविकलः स्वच्छन्दाचारी। ननु वीतरागोपदेशानुसारेण कुतो न वर्तते येन स्वैरित्वं स्यादिति चेन्न, लोकेऽममीकारो, रत्यरत्योर्विरोधः, शब्दादिविषये तटस्थता च, इत्येवंरूपतीक्ष्णासिधाराकल्पसदुपदेशपरिसेवनस्यातिदुष्करत्वेन स्वच्छन्दचारित्वस्य सुलभत्वात्। यश्चैतादृशः स तुच्छः=भावतुच्छो ज्ञानादिकलाविकलः सन् ग्लायति=संदेहविषयं पृष्टवन्तं कंचित् स वस्तुतत्त्वस्यापरिज्ञानात्त-

यह भव्य–कल्याण जिससे दूर है, अथवा जो भव्यभाव से दुष्ट–विपरीत है, वह दुर्वसु है। मुक्ति प्राप्ति के अयोग्य ऐसा रत्नत्रयका विराधक मुनि ही यहां दुर्वसु शब्द का वाच्यार्थ है। वीतराग प्रभु के उपदेश का नाम आज्ञा है। इस आज्ञा से भिन्न अनाज्ञा है। दुर्वसु मुनि वीतराग प्रभु की आज्ञा से विकल होता है अर्थात् स्वेच्छाचारी होता है। स्वेच्छाचारिता इसमें इसलिये आती है कि यह जो प्रभुका उपदेश है कि–" किसी भी पदार्थ में ममत्व नहीं रखना। रति अरति नहीं करना, तथा इन्द्रियों के शब्दादिविषयों में तटस्थ रहना " इसे रुचिकर नहीं होता, कारण कि यह तीक्ष्ण असिधारासदृश उनके सदुपदेश के सेवन को अतिदुष्कर मानता है। इसीलिये वह तुच्छ–भावतुच्छ है, अर्थात्–ज्ञानादिक कलासे विकल है। यदि वह सम्यग् ज्ञानसंपन्न होता तो कभी भी वीतराग प्रभु के उपदेश से बाह्यमतिवाला न होता। ज्ञानकला से विकल होकर ही तो वह दुःखित होता है। जब कोई उसकी स्वच्छन्द

જે ભવ્ય ભાવથી દુષ્ટ–વિપરીત છે તે દુર્વસુ છે. મુક્તિપ્રાપ્તિના માટે અયોગ્ય એવા રત્નત્રયના વિરાધક મુનિ જ આહી દુર્વસુ શબ્દનો વાચ્યાર્થ છે. વીતરાગ પ્રભુના ઉપદેશનું નામ આજ્ઞા છે આ આજ્ઞાથી ભિન્ન અનાજ્ઞા છે. દુર્વસુ મુનિ વીતરાગ પ્રભુની આજ્ઞાથી વિકળ બને છે અર્થાત્ સ્વેચ્છાચારી થાય છે. સ્વચ્છંદપણું તેઓમાં આ માટે આવે છે કે એવો જે પ્રભુનો આદેશ છે કે " કોઇપણ પદાર્થમાં મમત્વ રાખવું નહિ, રતિ અરતિ કરવી નહિ, તથા ઈન્દ્રિયોના શબ્દાદિ વિષયોમાં તટસ્થ રહેવું. " આ તેઓને રૂચિકર થતું નથી. કારણ કે આ તીક્ષ્ણ તલવારની ધાર સમાન તેના સદુપદેશને માનવું ઘણું કઠીન સમજે છે, તેથી તે તુચ્છ–ભાવતુચ્છ છે, અર્થાત્ જ્ઞાનાદિક કલાથી વિકળ છે. કદાચ તેઓ સમ્યગ્જ્ઞાનસંપન્ન હોત તો કદિ પણ વીતરાગ પ્રભુના ઉપદેશથી વિમુખ ન થાત. જ્ઞાનકળાથી વિકળ બની તે દુઃખી થાય છે જ્યારે કોઇ પણ તેની સ્વચ્છંદ પ્રવૃત્તિ દેખી વાસ્તવિક મુનિના

दुत्तरं कर्तुम् असमर्थो भवतीत्यर्थः। यद्वा-ज्ञानवानपि चारित्रशून्यः पूजासत्कारभयाद् मोक्षमार्गनिरूपणावसरे यथावस्थितं बोधयितुं लज्जत इवेत्यर्थः, यश्च तीर्थङ्कराज्ञा-

प्रवृत्ति देखकर वास्तविक मुनिके आचारविषयक प्रश्न उससे पूछता है तो वह वस्तुतत्त्व का वास्तविक ज्ञाता न होने से उसके प्रश्नका यथार्थ उत्तर नहीं दे सकता है, या जो कुछ कहता है वह स्वकपोलकल्पित ही कहता है जिसे लोग मानने को तैयार नहीं होते। इस प्रकार वह अपनी मान्यता में बट्टा लगने के अथवा पोल खुलने के डर से सदा दुःखी ही बना रहता है। अथवा-ज्ञानकलासम्पन्न हो तो भी यथार्थ चारित्र से वह शून्य है इसलिये जिस समय वह मोक्ष मार्ग की प्ररूपण करता है उस समय वह उसकी यथार्थ प्ररूपणा करने में लज्जित जैसा होता है, क्योंकि वह समझता है कि मैं स्वयं यथार्थ चारित्रशाली नहीं हूँ, यदि मैं वास्तविक वस्तुस्थिति का परिचय लोगों को करा दूँगा तो लोगों की दृष्टिमें मेरी मान्यता गिर जावेगी, लोग कहेंगे कि-महाराज! जैसी आप प्ररूपणा करते हैं उस प्रकार की क्रिया आप क्यों नहीं पालते?। इस प्रकार अपना मान-सम्मान के जाने के भय से वह लोगों को अन्धकार में ही रखता है, परन्तु उसे यह भय सदा लगा रहता है कि कहीं कोई यथार्थ वक्ता आकर वास्तविक वस्तुस्थिति का प्रतिपादन न करदे।

આચારવિષયનો પ્રશ્ન પૂછે છે તો તે વસ્તુતત્ત્વનો વાસ્તવિક જ્ઞાતા ન હોવાથી તેના પ્રશ્નનો ઉત્તર યથાર્થરૂપે આપી શકતો નથી. અગર જો કંઈ પણ જવાબ આપે છે તો તે સ્વકપોલકલ્પિત જ આપે છે, જે માનવાને લોક તૈયાર થતા નથી. આવા પ્રકારથી તે પોતાની માન્યતામાં ડાઘ લાગવાના ભયથી અથવા પોલ ખુલ્લી થવાના ભયથી સદા દુઃખી બની રહે છે, અથવા જ્ઞાનકલાસંપન્ન હોય તો પણ યથાર્થ ચારિત્રથી તે શૂન્ય છે, તેથી જે વખતે મોક્ષમાર્ગની પ્રરૂપણા કરે તે વખતે તે તેની યથાર્થ પ્રરૂપણા કરવામાં લજ્જિત બને છે, કારણ કે તે સમજે છે કે હું સ્વયં યથાર્થચારિત્રશાળી નથી, કદાચ હું વાસ્તવિક વસ્તુસ્થિતિનો પરિચય લોકોને કરાવી આપીશ તો લોકોની દૃષ્ટિમાં મારી માન્યતા નીચી પડશે, લોક બોલવા માંડશે કે-મહારાજ! જેવી આપ પ્રરૂપણા કરો છો તેવા પ્રકારની ક્રિયા આપ કેમ પાળતા નથી? આવા પ્રકારે પોતાનું માન સન્માન જવાના ભયથી તે લોકોને અંધારામાં જ રાખે છે, પરંતુ તેને સદા તે ભય લાગ્યો જ રહે છે કે કદાચ કોઈ યથાર્થવક્તા આવીને વાસ્તવિક વસ્તુસ્થિતિનું પ્રતિપાદન ન કરી નાંખે.

नुयायी स रत्नत्रयसमाराधकः सुवसुर्मुनिर्वस्तुतत्त्वपरिज्ञानान्न कदाचिदपि ग्लायति। एषः=सुवसुमुनिः वीरः=संयमानुष्ठानकुशलः प्रशंसितः=गणधरादिभिरभिनन्दितः, स एव च लोकसंयोगं-लोकेन=असंयमिलोकेन सह संयोगः=सम्बन्धो ममीकार इति यावत् लोकसंयोगस्तं, यद्वा-लोकसंयोगं-लोकैर्बाह्यभूतैर्हिरण्यसुवर्णधनधान्यमातापितृपुत्रकलत्रदुहित्रादिभिराभ्यन्तरै रागद्वेषादिभी रागद्वेषजन्यैरष्टविधकर्मभिर्वा सह संयोगं=सम्बन्धम् अत्येति=अतिक्रामयति स मुनिर्ममत्त्वादिभिः परिमुक्तो भवती-

ये लक्षण दुर्वसु मुनि के हैं, अब सुवसु मुनि के सम्बन्ध का वर्णन करते हैं—

वे सुवसु मुनि हैं जो वीतराग प्रभु की आज्ञा के आराधक हैं-रत्नत्रयमार्ग के पालने में सावधान हैं। वे वस्तुतत्त्व के वास्तविक ज्ञाता होने से कभी भी अन्यथा प्ररूपणा नहीं करते। प्ररूपणा के अनुसार ही अपनी प्रवृत्ति रखते हैं। जैसा कहते हैं वैसा स्वयं पालन करते हैं, इसलिये इनको किसी भी प्रकार का भय भी नहीं होता; ये वीर होते हैं। गणधरादिक देवोंने ऐसे ही सुवसु मुनियों की प्रशंसा की है। इन्हें वीर इसलिये कहा गया है कि-ये निर्दोष संयम के अनुष्ठान करने में कुशल होते हैं। असंयमी लोगों के साथ यदि कदाचित् इनका संयोग हो जाता है तो भी ये अपने मोक्षमार्ग से चलित नहीं होते हैं। अथवा बाह्यपरिग्रह-हिरण्य सुवर्ण धनधान्य माता-पिता पुत्र कलत्र आदि के साथ इनका सम्बन्ध हो जाता है तो ये उस सम्बन्धसे सदा बहिर्भूत

આ લક્ષણુ દુર્વસુ મુનિના છે, હવે સુવસુ મુનિના સંબંધનું વર્ણન કરે છે—

તે સુવસુ મુનિ છે જે વીતરાગ પ્રભુની આજ્ઞાના આરાધક છે. રત્નત્રય માર્ગનુ પાલન કરવામાં સાવધાન છે. તે વસ્તુતત્વના વાસ્તવિક જ્ઞાતા હોવાથી જે કોઇ વખત અન્યથા પ્રરૂપણા કરતા નથી. પ્રરૂપણા અનુસાર જ પોતાની પ્રવૃત્તિ રાખે છે. જેવું કહે છે તેવું સ્વયં પાલન કરે છે, તેથી તેને કોઈ પણ પ્રકારનો ભય રહેતો નથી. તે વીર બને છે. ગણધરાદિક દેવોએ એવા જ સુવસુ મુનિઓની પ્રશંસા કરી છે, તેમને વીર એટલા માટે કહેવામાં આવેલ છે કે તે નિર્દોષ સંયમનું અનુષ્ઠાન કરવામાં કુશળ હોય છે. અસંયમી લોકોનો સંગ કદાચ સંયોગથી બને તો પણ તે પોતાના મોક્ષમાર્ગથી ચલિત થતા નથી, અને બાહ્ય પરિગ્રહહિરણ્ય સુવર્ણ ધન ધાન્ય માતા પિતા પુત્ર કલત્ર આદિની સાથે તેનો સંબંધ થાય તો પણ તે તેવા સંબંધમાં સદા તે બહિર્ભૂત રહે છે. તેમાં તેની મમતા લાગતી નથી. આભ્યંતર પરિગ્રહ રાગ દ્વેષ આદિ, અથવા તેનાથી

त्यर्थः, किं तेनेत्याह–'एष' इत्यादि, एषः=लोकसंयोगातिक्रमो न्यायः=सन्मार्गः प्रोच्यते=कथ्यते, यद्वा–'नायः' इतिच्छाया, 'नायः' आत्मानं मोक्षं नयतीति नायः=मुमुक्षुरनगारः, आर्षत्वात्कर्तरि घञ्प्रत्ययः, भगवदाज्ञानुयायी सुवसुमुनिरेव मोक्षं लभत इति तात्पर्यम् ॥ सू० ७॥

साम्प्रतं भगवदुपदेशमेव दर्शयति–'जं दुक्खं' इत्यादि।

मूलम्–जं दुक्खं पवेइयं इह माणवाणं तस्स दुक्खस्स कुसला परिन्नमुदाहरंति, इय कम्मं परिन्नाय सव्वसो, जे अणन्नदंसी से अणन्नारामे, जे अणन्नारामे से अणन्नदंसी, जहा पुण्णस्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइ, जहा तुच्छस्स कत्थइ तहा पुण्णस्स कत्थइ, अवि य हणे अणाइयमाणे ॥ सू० ८॥

रहते हैं, उनमें इनकी ममता नहीं होती है। आभ्यन्तर परिग्रह–रागद्वेष आदि या इनसे उत्पन्न आठ कर्मों के साथ के सम्बन्ध को सदा ये नाश करने में उद्यत रहते हैं। ये कोई भी ऐसा कार्य या प्रयत्न नहीं करते कि जिससे रागद्वेषादिक या उनकी परम्परा बढे या इनसे उत्पन्न कर्मों का बन्ध दृढ होता रहे। सदा ये वैसा ही प्रयत्न करते हैं कि जिससे राग-द्वेषादिक का सम्बन्ध छूटे और संचित कर्मों की निर्जरा एवं आगामी कर्मों का संवर अर्थात् बन्ध का अभाव होता रहे। इस प्रकार का यह इनका लोकसंयोग–मातापितादि का सम्बन्ध–का त्याग ही सन्मार्ग है। अथवा "नाए" की छाया "नाय" भी है। आत्मा को जो मोक्ष प्राप्त कराता है वह नाय है, अर्थात् भगवान की आज्ञानुसार प्रवृत्ति करने वाला, ऐसा सुवसु मुनि ही मोक्ष का प्रापक होता है, अन्य नहीं ॥सू० ७॥

ઉત્પન્ન થતાં આઠ કર્મોના સંબંધનો નાશ કરવામાં સદા તે ઉદ્યમી રહે છે. તે કોઈ પણ એવું કાર્ય કે પ્રયત્ન નથી કરતા કે જેનાથી રાગ દ્વેષાદિક અગર તેની પરંપરા વધે, અગર તેનાથી ઉત્પન્ન કર્મોના બંધ દૃઢ થતાં રહે. સદા તે એવો જ પ્રયત્ન કરે છે કે જેનાથી રાગદ્વેષાદિકનો સંબંધ છુટે, અને સંચિત કર્મોની નિર્જરા અને આગામી કર્મોનો સંવર અર્થાત્ બંધનો અભાવ થતો રહે. આવા પ્રકારનો તેનો લોકસંયોગ–માતા પિતાદિકના સંબંધનો ત્યાગ જ સન્માર્ગ છે. અથવા "नाए"ની છાયા "नायः" પણ છે. આત્માને જેનાથી મોક્ષ પ્રાપ્ત થાય તે નાય છે, અર્થાત્ ભગવાનની આજ્ઞાનુસાર પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા એવા સુવસુ મુનિ જ મોક્ષના પ્રાપક બને છે, અન્ય નહિ॥ સૂ૦ ૭ ॥

छाया--यद्दुःखं प्रवेदितमिह मानवानां तस्य दुःखस्य कुशलाः परिज्ञामुदाहरन्ति-इति कर्म परिज्ञाय सर्वशः, योऽनन्यदर्शी सोऽनन्यारामः, योऽनन्यारामः सोऽनन्यदर्शी, यथा पुण्याय कथ्यते तथा तुच्छाय कथ्यते, यथा तुच्छाय कथ्यते तथा पुण्याय कथ्यते, अपि च हन्यादनाद्रियमाणः ॥ सू० ८ ॥

टीका-'यद्दुःख' मित्यादि, यत्=अनिर्दिष्टं दुःखं=शारीरिकमानसिकं, दुःख-जनकं कर्म वा यथा यत्र येन प्रकारेण कर्म वध्यते मुच्यते वा, यथा च विपाको भवति यथा च न भवति तत्सर्वं प्रवेदितं=तीर्थङ्करगणधरैः प्ररूपितम्। इह=अस्मिन् लोके कुशलाः=द्रव्यक्षेत्रकालभावपरिज्ञाननिपुणाः स्वसमयपरसमयज्ञाः परीपहोपसर्ग-सहनक्षमाः, कर्ममहासुभटघटाविघटनोपायघटकाः रागद्वेपमहोरगविपमविपशमन-विपवैद्याः, कपायानलसन्तापप्रशमनप्रवीणाः, विकटभवाटवीपारगमननिष्णाताः भावकुशलाः, मानवानां तस्य दुःखस्य पूर्वोक्तस्य प्राणातिपाताद्युपार्जितस्य कर्मणो वा परिज्ञाम्=कर्मोपार्जनतन्निरोधकारणपरिज्ञानम् उदाहरन्ति=उपदिशन्ति-वन्धो

अव फिर भी भगवान के उपदेश को कहते हैं-'जं दुक्खं' इत्यादि।

इस चतुर्गतिक रूप संसार में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है जो किसी न किसी तरह से दुःखी न हो। कोई शारीरिक तो कोई मानसिक दुःख से हर समय दुःखी ही वने रहते हैं। इन दुःखों का प्रदाता जीवों को अपने किये हुए कर्म के सिवाय और कोई नहीं है। यह वात हमें हमारे तीर्थङ्कर गणधरादि महापुरुषों ने अच्छी तरह से शास्त्रों में वत-लाई है। साथ में यह भी वतलाया है कि जिन कर्मों से हमें सुखदुःख प्राप्त होता है उन कर्मों को यह जीव किस प्रकार से कैसे वांधता है?, तथा उन कर्मों के उदय क्षय क्षयोपशमादि कैसे होते हैं? कैसे नहीं होते हैं?। उन्हीं के सिद्धान्तानुसार आचार्य आदि महर्षिगण भी-

---

હવે ફરીથી પણ ભગવાનનો ઉપદેશ કહે છે-'जं दुक्खं' ઈત્યાદિ.

આ ચતુર્ગતિરૂપ સંસારમાં એવું કોઈ પણ પ્રાણી નથી જે કોઈને કોઇ પ્રકારે દુઃખી ન હોય. કોઇ શરીરથી તો કોઇ મનથી દુઃખી તેવા પ્રકારે સદા દુઃખી બની રહે છે. આ દુઃખોનો પ્રદાતા જીવોને પોતાના કરેલા કર્મો સિવાય બીજું કોઇ પણ નથી. આ વાત અમને અમારા તીર્થંકરોએ તથા ગણધરાદિકે ઘણી સારી રીતે શાસ્ત્રોમાં બતાવી છે સાથે એ પણ બતાવેલ છે કે જે કર્મોથી અમોને સુખદુઃખ પ્રાપ્ત થાય છે તેવા કર્મોને આ જીવ કેવા પ્રકારે કેવી રીતે બાંધે છે? તથા તેવા કર્મોના ઉદય ક્ષય ક્ષયોપશમાદિ કેમ થાય છે? કેવી રીતે થતા નથી? તેના સિદ્ધાન્તાનુસાર આચાર્ય આદિ મહર્ષિગણ પણ-જે દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર,

बन्धहेतुस्तन्मोक्षो मोक्षहेतुश्च भवतीति सततं कथयन्तीत्यर्थः, अपि च इति=यत्पूर्वोक्तं कर्म=ज्ञानावरणीयादिकं तज्जन्यं यद्दुःखं तद्, यच्च प्राणिदुःखपरिज्ञातारः कुशला उदाहरन्ति तदपि च सर्वशः=सर्वप्रकारेण परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया योगत्रिककरणत्रिकैः परिहृत्य चास्रवद्वारेषु न वर्तेत, यद्वा सर्वशः=भेदप्रभेदपूर्वकं परिज्ञाय कथयति, अथवा सर्वशः=सर्वस्मात् केवलिनश्चतुर्दशपूर्वविदो वा सकाशात् परिज्ञाय=ज्ञात्वा, यदिवा सर्वशः=आक्षेपण्यादिभिश्चतुर्विधाभिः कथाभिः कथयति।

जो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के परिज्ञान में निपुण होते हैं, स्वसिद्धान्त और परसिद्धान्त के जो वेत्ता होते हैं, परीषह और उपसर्ग के सहने में जो शक्तिशाली होते हैं, कर्मरूपी महासुभटों की घटाको हटाने के उपायों के जुटाने में प्रवीण होते हैं, राग और द्वेषरूपी श्वेत और काले नाग के भयङ्कर विष को शमन करने में जो विषवैद्य के समान हैं, कषायरूपी अग्नि के ज्वालाजन्य सन्ताप को शान्त करने में जो कुशल हैं, और जो भयङ्कर इस संसाररूपी अटवी से पार होने में अद्वितीय निपुण होते हैं वे मनुष्यों के उस पूर्वोक्त दुःखकी, अथवा प्राणातिपातादि से उपार्जित ज्ञानावरणादिक अष्टविध कर्मों की परिज्ञा को निरन्तर प्रकट करते रहते हैं। वे अपने दिव्य उपदेशों द्वारा "कर्म किस तरह बंधते हैं ?, बंध के कौन-कौन से कारण हैं ?, बंध का अभाव कैसे होता है ? और मोक्षके कारण क्या है ?" इन सब बातोंको स्पष्ट कर समझाते हैं। उनके दिव्य उपदेशरूप शास्त्रका धर्मोपदेशकके निकट श्रवण

કાળ અને ભાવના પરિજ્ઞાનમાં નિપુણ હોય છે, સ્વસિદ્ધાંત અને પરસિદ્ધાંતના જે જાણકાર છે પરિષહ અને ઉપસર્ગ સહન કરવામાં જે શક્તિશાળી હોય છે, કર્મરૂપી મહાસુભટોની ઘટાને હઠાવવામાં ઉપાયો યોજવામાં જે નિપુણ હોય છે, રાગ અને દ્વેષરૂપી ધોળા અને કાળા નાગના ભયંકર વિષનું શમન કરવામાં જે વિષવૈદ્યસમાન છે, કષાયરૂપી અગ્નિની જ્વાલાજન્ય સંતાપને શાંત કરવામાં કુશળ છે અને જે ભયંકર આ સંસારરૂપી અટવીથી પાર થવામાં અદ્વિતીય નિપુણ હોય છે.–મનુષ્યોના તે પૂર્વોક્ત દુઃખોની, અથવા પ્રાણાતિપાતાદિથી ઉપાર્જીત જ્ઞાનાવરણાદિક અષ્ટવિધ કર્મોની પરિજ્ઞાને નિરંતર પ્રકટ કરતા રહે છે તે પોતાના દિવ્ય ઉપદેશોદ્વારા "કર્મ કેવી રીતે બધાય છે? બંધ શું છે? બંધના કયા કયા કારણો છે? બંધ કેવી રીતે થાય? અને મોક્ષનું કારણ શું છે?" આ બધી બાબતો સ્પષ્ટ રીતે સમજાવે છે. તેના દિવ્ય ઉપદેશરૂપ શાસ્ત્રના ધર્મોપદેશક નિકટ શ્રવણ કરવાવાળા તથા તેના મતાનુસાર ચાલનાર

धर्मोपदेशकः कीदृशो भवतीत्याह-'योऽनन्ये'-त्यादि, यः कश्चित् अनन्यदर्शी-अन्यं द्रष्टुं शीलं यस्य सोऽन्यदर्शी, न अन्यदर्शी=अनन्यदर्शी=अन्यदर्शनश्रद्धानरहितः-भगवदुपदिष्टवस्तुतत्त्वरुचिशीलो भवति स एव अनन्यारामः=रत्नत्रयातिरिक्तवस्तुरमणविरतो भवति। मिथ्यादृष्टिशास्त्रस्यानाप्तप्रणीतत्वात्तत्र न रमत इत्याशयः।

करनेवाले, तथा उनके मतानुसार चलनेवाले व्यक्तिका यह प्रधान कर्तव्य है कि वह उनके इस प्रकारके दिव्य उपदेशको-कि ज्ञानावरणीयादिक कर्मोंको यह जीव इस प्रकार बांधता है और तज्जन्य इन दुःखों को नितप्रति भोगता रहता है, इन सभी बातोंको-ज्ञ-परिज्ञासे जानकर और प्रत्याख्यान-परिज्ञासे तीन करण तीन योगोंद्वारा उन सबका त्याग करे, तथा 'फिरसे नवीन कर्मोंका आस्रव न हो' इस प्रकारसे अपनी प्रवृत्तिको संभालकर रखे।

धर्मोपदेशक कैसा होता है? इस बातका खुलासा करते हुए कहते हैं—'जे अणन्नदंसी' इत्यादि, तीर्थङ्करादिद्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तके सिवाय अन्य सिद्धान्तमें जिसकी उपादेयरूपसे आस्था नहीं होती है उसका नाम अनन्यदर्शी है। अन्य सिद्धान्तको ग्रहण करनेकी जिसकी दृष्टि होती है वह अन्यदर्शी है, इससे विपरीत अनन्यदर्शी है। जो अनन्यदर्शी है वही अनन्याराम है, अर्थात् जिसकी रुचि वीतराग प्रतिपादित तत्त्वोंमें ही एकतानरूपसे तल्लीन है। वह उनसे अतिरिक्त मिथ्यादृष्टियोंके शास्त्रोंमें कभी भी रतिशाली नहीं होता है प्रत्युत उनके

વ્યક્તિનું એ પ્રધાન કર્તવ્ય છે કે તે તેના આવા પ્રકારના દિવ્ય ઉપદેશને કે જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોને એ જીવ આ પ્રકારે બાંધે છે અને તજ્જન્ય તેવા દુઃખોને નિત્ય ભોગવતા રહે છે. આ સઘળી વાતોને-જ્ઞ-પરિજ્ઞાથી જાણીને, અને પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાથી ત્રણ કરણ ત્રણ યોગદ્વારા તે સઘળાનો ત્યાગ કરે, તથા 'ફરીથી નવીન કર્મોનો આશ્રવ ન બને' તેવા પ્રકારથી પોતાની પ્રવૃત્તિને સંભાળી રાખે.

ધર્મોપદેશક કેવા હોય છે? એ વાતનો ખુલાસો કરતાં કહે છે-'जे अणन्नदंसी' ઈત્યાદિ.

તીર્થંકરાદિદ્વારા પ્રતિપાદિત સિદ્ધાંત સિવાય અન્ય સિદ્ધાંતમાં જેની ઉપાદેય રૂપથી આસ્થા થતી નથી તેનુ નામ અનન્યદર્શી છે. બીજા સિદ્ધાંતને ગ્રહણ કરવાની જેની દૃષ્ટિ થાય છે તે અન્યદર્શી છે, તેનાથી વિપરીત અનન્યદર્શી છે. જે અનન્યદર્શી છે તે અનન્યારામ છે. અર્થાત્ જેની રૂચી વીતરાગપ્રતિપાદિત તત્ત્વોમાં જ એકતાન રૂપથી તલ્લીન છે, તે તેથી અતિરિક્ત મિથ્યાદૃષ્ટિઓના શાસ્ત્રોમાં કદી પણ રતિશાળી થતા નથી, બલ્કે તેના સિદ્ધાંતોની

सिद्धान्तका आलोडनकर जब वह उनकी मान्यताओंको तर्कणाकी कसोटी पर कसता है और जब वे अपनी यथार्थतासे शून्य साबित होती हैं तब इसकी दृष्टिमें जिनप्रतिपादित तत्त्वोंकी ओर ही सन्तोष उत्पन्न होता है। वह अपनेको धन्य इसलिये मानता है कि मुझे त्रिलोकीनाथ द्वारा प्रतिपादित धर्मकी शीतल छत्रछाया मिली है। सच्चे मणिकी कीमत काचखण्डके देखनेसे ही होती है। उपदेशक जब तक अपने सिद्धान्तका पूर्ण श्रद्धावाला नहीं होगा तब तक वह दूसरोंके लिये अपने सिद्धान्तका रहस्य हृदयंगम नहीं करा सकता। उपदेशक गुरुका कर्त्तव्य है कि वह पहिले अपने सिद्धान्तका पूर्ण रूपसे ज्ञाता हो, श्रोताओंकी चित्तवृत्तिको परखनेवाला हो, उनकी शंकाओंका युक्ति और आगमके अनुसार समाधान करनेवाला हो, सदाचारी हो, अपने उपदेशमें शंका समाधानके साथ अपने सिद्धान्तका पूर्ण व्यवस्थापक हो। इस प्रकारके उपदेशकका श्रोताओंके ऊपर असर जितना पडता है उतना और किसीका नहीं पड़ता, इसलिये सूत्रकारने उसकी प्रशंसा-अनन्याराम और अनन्यदर्शी, इन पदोंसे की है। उपदेशक अपने विषयका प्रतिपादन आक्षेपणी विक्षेपणी संवेगिनी और निर्वेदनी आदि चार प्रकारकी कथाओंमेंसे जिस कथाकी जहां आवश्यकता होती है उसी कथाका

આલોચના કરી જ્યારે તે તેમની માન્યતાઓને તર્કણાની કસોટી ઉપર કસે છે અને જ્યારે તે પોતાની યથાર્થતાથી શૂન્ય સાબિત થાય છે ત્યારે તેની દૃષ્ટિમાં જિનપ્રતિપાદિત તત્ત્વોની તરફ જ સંતોષ ઉત્પન્ન થાય છે. તે પોતાને ધન્ય તેટલા માટે માને છે કે મને ત્રિલોકીનાથદ્વારા પ્રતિપાદિત ધર્મની શીતળ છત્રછાયા મળી છે. સાચા મણિની કીંમત કાચના ટુકડા દેખવાથી થાય છે. ઉપદેશક જ્યાં સુધી પોતાના સિદ્ધાંતનો પૂર્ણ શ્રદ્ધાવાળો નહિ બને ત્યાં સુધી તે બીજાઓને પોતાના સિદ્ધાંતનું રહસ્ય હૃદયંગમ કરાવી શકતો નથી. ઉપદેશક ગુરૂનું કર્તવ્ય છે કે તે પહેલાં પોતાના સિદ્ધાંતના પૂર્ણ જ્ઞાતા હોય, શ્રોતાઓની ચિત્તવૃત્તિને પારખનાર હોય, તેની શંકાઓનું યુક્તિ અને આગમ અનુસાર સમાધાન કરવાવાળા હોય, સદાચારી હોય, પોતાના ઉપદેશમાં શંકા સમાધાન સાથે પોતાના સિદ્ધાંતનો પૂર્ણ વ્યવસ્થાપક હોય. આવા પ્રકારથી ઉપદેશકની શ્રોતાઓ ઉપર અસર જેટલી પડે છે તેટલી બીજી કશાથી થતી નથી. સૂત્રકારે તેની પ્રશંસા ‘અનન્યારામ અને અનન્યદર્શી’ આ પદોથી કરેલ છે. ઉપદેશક પોતાના વિષયનું પ્રતિપાદન આક્ષેપણી વિક્ષેપણી સંવેગિની અને નિર્વેદની આદિ ચાર પ્રકારની કથાઓમાંથી જે કથાની જ્યાં આવશ્યકતા હોય છે,

एवमुपदेशकस्वरूपमुपदर्श्य सर्वेभ्यः समान एव भगवदुपदेश इति दर्शयति-'यथे'त्यादि।

यथा=येन प्रकारेण पुण्याय=पुण्यवते भव्यजीवाय सुरेश्वरचक्रवर्तिमाण्डलिकाय च कथ्यते=उपदिश्यते, तथा=एवमेव तुच्छाय=द्रमककाष्ठहारकाय कथ्यते,

---

अवलम्बन करके उपदेश देते हैं। इसी बातको प्रकट करनेके लिये "सव्वसो" पदका सूत्रकारने सूत्रमें ग्रहण किया है। जिस विषयमें उपदेशक अकुशल होता है, अथवा जहां पर उसे सन्देह होता है उस विषयको वह स्वयं केवली अथवा श्रुतज्ञानीके पाससे जानकर बादमें उसका प्रतिपादन करता है। जिस समय केवलियोंका यहां पर अस्तित्व था उस समय भी धर्मोपदेशक थे। धर्मोपदेशकोंको जिस विषयमें शंका होती थी वे अपनी शंकाओंका समाधान उनके निकट करते थे, और उस विषयमें पूर्ण निष्णात बनते थे। यद्यपि वर्त्तमानकालमें इस क्षेत्रमें साक्षात् केवली विद्यमान नहीं हैं फिर भी उनके स्थानापन्न उनका उपदेश शास्त्रोंमें अब भी विद्यमान है। उपदेशक गुरु उन्हीं उपदेशोंका अब भी अपनी प्रवृत्ति तदनुकूल बनाकर प्रचार करते रहते हैं।

वीतराग प्रभुद्वारा प्रतिपादित विषय-चाहे वह दरिद्री हो, धनी हो, इन्द्र हो, चक्रवर्त्ती हो, माण्डलिक राजा हो, कोई भी क्यों न हो-सबके लिये समानरूपसे है, इसमें किसीभी जातिविशेष या वर्णविशेषका भेद नहीं रक्खा गया है। भगवानका उपदेश पक्षपातसे

तेवी કથાનું અવલંબન કરીને ઉપદેશ આપે છે. આ વાતને પ્રગટ કરવા માટે "सव्वसो" પદનું સૂત્રકારે સૂત્રમાં ગ્રહણ કરેલ છે. જે વિષયમાં ઉપદેશક અકુશળ હોય છે અથવા જે ઠેકાણે તેને સંદેહ થાય છે, તે વિષયને તે સ્વયં કેવળી અથવા શ્રુતજ્ઞાની પાસેથી જાણી લે છે, બાદમાં તેનું પ્રતિપાદન કરે છે. જે વખતે કેવળીઓનું અહીં અસ્તિત્વ હતું તે સમય પણ ધર્મોપદેશક હતા. ધર્મોપદેશકોને જે વિષયમાં શંકા થતી હતી તેઓ પોતાની શંકાઓનું સમાધાન તેમની પાસે કરતા હતા અને તે વિષયમાં પૂર્ણ નિષ્ણાત બનતા હતા. જો કે વર્તમાનકાળમાં આ ક્ષેત્રમાં સાક્ષાત્ કેવળી વિદ્યમાન નથી તો પણ તેના સ્થાનાપન્ન તેમનો ઉપદેશ શાસ્ત્રોમાં હજુ પણ વિદ્યમાન છે, ઉપદેશક ગુરૂ તેઓના ઉપદેશોનો હજુ પણ પોતાની પ્રવૃત્તિ તદનુકૂળ બનાવી પ્રચાર કરતા રહે છે.

વીતરાગ પ્રભુદ્વારા પ્રતિપાદિત વિષય-ચાહે કોઈ દરિદ્રી હોય, ધનીક હોય, ઇન્દ્ર હોય કે ચક્રવર્તી હોય, માંડલિક રાજા હોય, બીજા કોઈ પણ હોય-બધાને માટે સમાનરૂપ જ છે. તેમાં કોઇ પણ જાતિવિશેષ અગર વર્ણ વિશેષનો ભેદ રાખવામાં આવેલ નથી. ભગવાનનો ઉપદેશ પક્ષપાતથી રહિત હોય

एवं यथा तुच्छाय कथ्यते तथा पुण्याय कथ्यते । मेघो यथा स्थले जले च समभावेन वर्षति तथैवोपदेष्टाऽपि निरपेक्षमुच्चावचेभ्यः सर्वेभ्योऽनुग्रहबुद्धया समानमेवोपदिशति । अत्रायं विवेकः-उपदेशको हि द्रव्यक्षेत्रकालभावमनुसृत्य 'यथाऽयं नृपादिरभिगृहीतमिथ्यादृष्टिरनभिगृहीतमिथ्यादृष्टिर्वेत्यादि पूर्वमवधार्यैवोप-

विहीन होता है। जिस प्रकार मेघकी धारा जलमें और स्थलमें समानरूपसे बरसती है, उसे यह पक्षपात नहीं होता कि मुझे यहां बरसना चाहिये अथवा यहां नहीं बरसना चाहिये, इस प्रकारकी निरपेक्ष वृत्तिसे ही वह एकरूपसे मेघधारा बरसती है। इसी प्रकार भगवानके उपदेशमें भी भेदभावकी वृत्ति नहीं होती कि 'यह पुण्यात्मा है अतः इसके लिये मेरा यह उपदेश है, और यह पापी है इसके लिये मेरा यह उपदेश नहीं है'। पुण्यात्मासे लगाकर पापात्मा तक, और धनीसे लगा कर काष्ठहार-लकडहारे तक, तथा राजासे लगा कर रंक तक सबके लिये प्रभुका उपदेश एक रससे सना हुआ होता है फिर भी उपदेशकका कर्त्तव्य है कि वह उस उपदेशको द्रव्य क्षेत्र काल और भावके अनुसार श्रोताओं तक पहुंचावे। यह उपदेशककी ही कुशलता है। अन्यथा वह उस उपदेशसे अपने स्वयंकी हानि करनेवाला हो जाता है। जैसे राजसभामें बैठ कर धर्मोपदेश देनेवाला उपदेष्टा पहिले इस बातका अपने मनमें निर्णय कर लेवे कि यह राजा अभिगृहीतमिथ्यादृष्टि है या अनभिगृहीत मिथ्यादृष्टि है? फिर अपने उपदेशका प्रवाह चलावे। विना

છે. જેવી રીતે મેઘની ધારા જળમાં અને સ્થળમાં સમાન રૂપથી વરસે છે તેને એવો પક્ષપાત થતો નથી કે મારે આંહી જ વરસવું અને ત્યા વરસવું નહિ. એવા પ્રકારની નિરપેક્ષ વૃત્તિથી તે એકરૂપથી મેઘધારા વરસે છે. તેવા પ્રકારે ભગવાનના ઉપદેશમાં પણ ભેદભાવની વૃત્તિ હોતી નથી કે 'આ પુણ્યાત્મા છે માટે તેના માટે મારો આ ઉપદેશ છે, અને આ પાપી છે માટે તેના માટે મારો આ ઉપદેશ નથી.' પુણ્યાત્માથી લઈને પાપાત્મા સુધી અને ધનવાનથી લઈ ને કઠીયારા સુધી, રાજાથી રંક સુધી દરેકને માટે પ્રભુનો ઉપદેશ એક રસથી સરખો જ હોય છે, તો પણ ઉપદેશકનું કર્તવ્ય છે કે તે તે ઉપદેશને દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ, ભાવ, અનુસાર શ્રોતાઓને સંભળાવે, તે ઉપદેશકની જ કુશળતા છે અન્યથા તે તેવા ઉપદેશથી પોતાની જ હાનિ કરવાવાળા બની જાય છે. જેવી રીતે રાજસભામાં બેસીને ધર્મોપદેશ દેનાર ઉપદેશક પહેલાં એ વાતનો પોતાના મનમાં નિર્ણય કરી લે કે આ રાજા અભિગૃહીતમિથ્યાદૃષ્ટિ છે અગર અનભિગૃહીતમિથ્યાદૃષ્ટિ છે? પછી પોતાના

एवमुपदेशकस्वरूपमुपदर्श्य सर्वेभ्यः समान एव भगवदुपदेश इति दर्शयति-'यथे'त्यादि।

यथा=येन प्रकारेण पुण्याय=पुण्यवते भव्यजीवाय सुरेश्वरचक्रवर्तिमाण्डलिकाय च कथ्यते=उपदिश्यते, तथा=एवमेव तुच्छाय=द्रमककाष्ठहारकाय कथ्यते,

---

अवलम्बन करके उपदेश देते हैं। इसी बातको प्रकट करनेके लिये " सव्वसो " पदका सूत्रकारने सूत्रमें ग्रहण किया है। जिस विषयमें उपदेशक अकुशल होता है, अथवा जहां पर उसे सन्देह होता है उस विषयको वह स्वयं केवली अथवा श्रुतज्ञानीके पाससे जानकर बादमें उसका प्रतिपादन करता है। जिस समय केवलियोंका यहां पर अस्तित्व था उस समय भी धर्मोपदेशक थे। धर्मोपदेशकोंको जिस विषयमें शंका होती थी वे अपनी शंकाओंका समाधान उनके निकट करते थे, और उस विषयमें पूर्ण निष्णात बनते थे। यद्यपि वर्त्तमानकालमें इस क्षेत्रमें साक्षात् केवली विद्यमान नहीं हैं फिर भी उनके स्थानापन्न उनका उपदेश शास्त्रोंमें अब भी विद्यमान है। उपदेशक गुरु उन्हीं उपदेशोंका अब भी अपनी प्रवृत्ति तदनुकूल बनाकर प्रचार करते रहते हैं।

वीतराग प्रभुद्वारा प्रतिपादित विषय-चाहे वह दरिद्री हो, धनी हो, इन्द्र हो, चक्रवर्त्ती हो, माण्डलिक राजा हो, कोई भी क्यों न हो-सबके लिये समानरूपसे है, इसमें किसीभी जातिविशेष या वर्णविशेपका भेद नहीं रक्खा गया है। भगवानका उपदेश पक्षपातसे

તેવી કથાનુ અવલંબન કરીને ઉપદેશ આપે છે. આ વાતને પ્રગટ કરવા માટે " सव्वसो " પદનું સૂત્રકારે સૂત્રમાં ગ્રહણુ કરેલ છે. જે વિષયમાં ઉપદેશક અકુશળ હોય છે અથવા જે ઠેકાણે તેને સંદેહ થાય છે, તે વિષયને તે સ્વયં કેવળી અથવા શ્રુતજ્ઞાની પાસેથી જાણી લે છે, બાદમાં તેનું પ્રતિપાદન કરે છે. જે વખતે કેવળીઓનું અહીં અસ્તિત્વ હતું તે સમય પણુ ધર્મોપદેશક હતા. ધર્મોપદેશકોને જે વિષયમાં શંકા થતી હતી તેઓ પોતાની શંકાઓનુ સમાધાન તેમની પાસે કરતા હતા. અને તે વિષયમાં પૂર્ણ નિષ્ણાત બનતા હતા. જો કે વર્તમાનકાળમાં આ ક્ષેત્રમાં સાક્ષાત્ કેવળી વિદ્યમાન નથી તો પણ તેના સ્થાનાપન્ન તેમનો ઉપદેશ શાસ્ત્રોમાં હજુ પણ વિદ્યમાન છે, ઉપદેશક ગુરૂ તેઓના ઉપદેશોનો હજુ પણ પોતાની પ્રવૃત્તિ તદનુકૂળ બનાવી પ્રચાર કરતા રહે છે

વીતરાગ પ્રભુદ્વારા પ્રતિપાદિત વિષય-ચાહે કોઈ દરિદ્રી હોય, ધનીક હોય, ઇન્દ્ર હોય કે ચક્રવર્તી હોય, માંડલિક રાજા હોય, બીજા કોઈ પણ હોય-બધાને માટે સમાનરૂપ જ છે. તેમાં કોઇ પણ જાતિવિશેષ અગર વર્ણ વિશેષનો ભેદ રાખવામાં આવેલ નથી. ભગવાનનો ઉપદેશ પક્ષપાતથી રહિત હોય

एवं यथा तुच्छाय कथ्यते तथा पुण्याय कथ्यते । मेघो यथा स्थले जले च सम-भावेन वर्षति तथैवोपदेष्टाऽपि निरपेक्षमुच्चावचेभ्यः सर्वेभ्योऽनुग्रहबुद्ध्या समानमेवोपदिशति । अत्रायं विवेकः—उपदेशको हि द्रव्यक्षेत्रकालभावमनुसृत्य 'यथाऽयं नृपादिरभिगृहीतमिथ्यादृष्टिरनभिगृहीतमिथ्यादृष्टिर्वेत्यादि पूर्वमवधार्यैवोप-

विहीन होता है । जिस प्रकार मेघकी धारा जलमें और स्थलमें समान-रूपसे बरसती है, उसे यह पक्षपात नहीं होता कि मुझे यहां बरसना चाहिये अथवा यहां नहीं बरसना चाहिये, इस प्रकारकी निरपेक्ष वृत्तिसे ही वह एकरूपसे मेघधारा बरसती है । इसी प्रकार भगवानके उपदेशमें भी भेदभावकी वृत्ति नहीं होती कि 'यह पुण्यात्मा है अतः इसके लिये मेरा यह उपदेश है, और यह पापी है इसके लिये मेरा यह उपदेश नहीं है' । पुण्यात्मासे लगाकर पापात्मा तक, और धनीसे लगा कर काष्ठहार—लकडहारे तक, तथा राजासे लगा कर रंक तक सबके लिये प्रभुका उपदेश एक रससे सना हुआ होता है फिर भी उपदेशकका कर्त्तव्य है कि वह उस उपदेशको द्रव्य क्षेत्र काल और भावके अनुसार श्रोताओं तक पहुंचावे । यह उपदेशककी ही कुशलता है । अन्यथा वह उस उपदेशसे अपने स्वयंकी हानि करनेवाला हो जाता है । जैसे राज-सभामें बैठ कर धर्मोपदेश देनेवाला उपदेष्टा पहिले इस बातका अपने मनमें निर्णय कर लेवे कि यह राजा अभिगृहीतमिथ्यादृष्टि है या अन-भिगृहीत मिथ्यादृष्टि है ? फिर अपने उपदेशका प्रवाह चलावे । विना

છે. જેવી રીતે મેઘની ધારા જળમાં અને સ્થળમાં સમાન રૂપથી વરસે છે તેને એવો પક્ષપાત થતો નથી કે મારે આંહી જ વરસવું અને ત્યાં વરસવું નહિ. એવા પ્રકારની નિરપેક્ષ વૃત્તિથી તે એકરૂપથી મેઘધારા વરસે છે. તેવા પ્રકારે ભગવાનના ઉપદેશમા પણ ભેદભાવની વૃત્તિ હોતી નથી કે ' આ પુણ્યાત્મા છે માટે તેના માટે મારો આ ઉપદેશ છે, અને આ પાપી છે માટે તેના માટે મારો આ ઉપદેશ નથી.' પુણ્યાત્માથી લઈને પાપાત્મા સુધી અને ધનવાનથી લઈ ને કઠીયારા સુધી, રાજાથી રંક સુધી દરેકને માટે પ્રભુનો ઉપદેશ એક રસથી સરખો જ હોય છે, તો પણ ઉપદેશકનું કર્તવ્ય છે કે તે તે ઉપદેશને દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ, ભાવ, અનુસાર શ્રોતાઓને સંભળાવે, તે ઉપદેશકની જ કુશળતા છે અન્યથા તે તેવા ઉપદેશથી પોતાની જ હાનિ કરવાવાળા બની જાય છે. જેવી રીતે રાજસભામાં બેસીને ધર્મોપદેશ દેનાર ઉપદેશક પહેલાં એ વાતનો પોતાના મનમાં નિર્ણય કરી લે કે આ રાજા અભિગૃહીતમિથ્યાદૃષ્ટિ છે અગર અનભિગૃહીતમિથ્યાદૃષ્ટિ છે ? પછી પોતાના

दिशेत्, अन्यथोपदेशे बह्वपायसम्भवात्, तदेवाह—अपि चेत्यादि, अनाद्रियमाणः= अवमन्यमानो भूपादिः, उपदेशकविहितनिन्दः सन् हन्यादपि=सदुपदेशकं नाशयेदपि, 'अपि' सम्भावने, 'च'—शब्दादन्यदपि दण्ड-कशाताडनादिकमपि कुर्यात्,

"दशसूनासमश्चक्री, दशचक्रिसमो ध्वजः ॥
दशध्वजसमा वेश्या, दशवेश्यासमो नृपः ॥ १ ॥" इति,

इत्यादिनिन्दासूचिकामरुन्तुदां वाचमभिदधतमुपदेष्टारं प्रति राजा—'एष मुनिः सर्वधर्मबाह्यो राजधर्मानभिज्ञो नीतिधर्ममपि न जानाति, मोक्षधर्मस्तावद्दूराद-पेतः' इत्येवं ब्रुवन् क्रुध्यमानो यष्टिमुष्टिभिस्ताडयन् ततो निःसारयन् तत्र रुन्धन् वस्त्रादिकं लुण्टयन् चर्मादिच्छेदं कारयन् प्राणानप्यपहरेदतस्तादृशं नोपदिशे-दित्याशयः ॥ सू० ८ ॥

विचारे जो उपदेश दिया जायगा उसमें अनेक कष्टोंका उसे सामना करना पडेगा। उपदेशमें यदि किसी भी प्रकारसे राजाकी शानके विरुद्ध कोई शब्द उससे निकल जाता है, अथवा राजधर्मके प्रतिपादनमें कोई ऐसी बात आ जाती है जो उसकी प्रतिष्ठाके विरुद्ध पडती हो, तो इससे राजा अपना अपमान समझकर उस उपदेष्टाका प्राणघात तक कर देता है। यदि ऐसा न भी करे तो वह उसे दण्डविधान करता है, कोडोंसे भी पिटवाता है। इस श्लोकमें राजविरुद्ध बात प्रकट की गई है, जैसे—

" दशसूनासमश्चक्री, दशचक्रिसमो ध्वजः।
दशध्वजसमा वेश्या, दशवेश्यासमो नृपः ॥ १ ॥"

इस प्रकार राजनिन्दासूचक उपदेश यदि उपदेष्टा राजसभामें बैठ कर करे तो इससे राजाके हृदयमें अपार कष्ट होगा। ऐसे उपदेशसे

ઉપદેશનો પ્રવાહ ચલાવે. વગર વિચાર્યે જે ઉપદેશ આપવા માંડશે તો તેમાં તેને અનેક કષ્ટોનો સામનો કરવો પડશે. ઉપદેશમાં કદાચ કોઈ પણ પ્રકારથી રાજાની શાનની વિરૂદ્ધ કોઈ શબ્દ તેનાથી નિકળી જાય, અથવા રાજધર્મ પ્રતિ-પાદનમાં કોઈ એવી વાત આવી જાય જે તેની પ્રતિષ્ઠાની વિરૂદ્ધ પડે છે તો તેનાથી રાજા પોતાનું અપમાન સમજી તેવા ઉપદેશકનો પ્રાણઘાત પણ કરી નાંખે છે. કદાચ એવું ન પણ કરે તો તેને દંડ કરે છે, કોરડાથી માર મારે છે. આ શ્લોકમાં રાજવિરૂદ્ધ વાત પ્રગટ કરવામાં આવી છે. જેમ—

' दशसूनासमश्चक्री, दशचक्रिसमो ध्वज ।
दशध्वजसमा वेश्या, दशवेश्यासमो नृप ॥ १ ॥ "

આ પ્રકાર રાજનિંદાસૂચક ઉપદેશ કદાચ ઉપદેશક રાજસભામાં બેસીને કરે તેથી રાજાના હૃદયમાં અપાર કષ્ટ થશે. તેવા ઉપદેશથી મુનિ રાજાના ક્રોધનો

श्रोतारं परीक्ष्योपदेष्टा हिंसादिना नोपलिप्तो भवतीति दर्शयति-' एत्थं ' इत्यादि ।

मूलम्-एत्थं पि जाण सेयंति नत्थि, केयं पुरिसे कं च नए, एस वीरे पसंसिए जे बद्धे परिमोयए, उड्ढं अहं तिरियं दिसासु, से सव्वओ सव्वपरिन्नाचारी, न लिप्पइ छणपएण वीरे, से मेहावी जे अणुग्घायणखेयन्ने, जे य बंधपमुक्खमन्नेसी कुसले पुण नो बद्धे नो मुक्के ॥ सू० ९ ॥

मुनि राजाका कोपभाजन हो जायगा । राजा यह समझ लेगा कि यह मुनि सर्वधर्मसे बाह्य है, राजधर्म क्या है? इसे भी यह नहीं जानता है । अरे ! जब यह नीतिधर्म तक नहीं जानता है तो मोक्षधर्म की बात ही क्या कहनी ? यह बिलकुल जड-अबुध है । ऐसे व्यक्तियों के अस्तित्वकी क्या आवश्यकता है ? इस प्रकार राजा द्वारा उपेक्षित बन यष्टि-मुष्टि आदिजन्य अनेक कष्टोंको भोगता हुआ वह मुनि वहांसे निकाल दिया जाता है; अथवा कारागारमें बंद कर दिया जाता है । उसके वस्त्रादिक भी छीन लिये जाते हैं । शरीरका छेदन कर उसके प्राण तक भी ले लिये जाते हैं । इसलिये उपदेष्टाका यह सर्वप्रथम कर्त्तव्य है कि वह द्रव्य क्षेत्र काल और भावका अच्छी तरह विचार कर अपने उपदेशका प्रवाह बहावे । ऐसा उपदेश न करे कि जिससे स्वयंको अनेक कष्टोंका या प्राणोंके विनाशका सामना करना पडे ॥ सू० ८ ॥

ભોગ બનશે. રાજા એવું સમજી લેશે કે આ મુનિ સર્વ ધર્મથી બાહ્ય છે, રાજધર્મ શું છે? તે પણ આ જાણતો નથી. અરે ! જ્યારે આ નીતિધર્મ સુધી પણ જાણતો નથી તો મોક્ષધર્મની વાત જ શું કરવી ? આ બિલકુલ જડ-અબુધ છે, આવી વ્યક્તિઓના અસ્તિત્વની શું આવશ્યક્તા છે? આવા પ્રકારે રાજાદ્વારા ઉપેક્ષિત બની યષ્ટિ-મુષ્ટિ આદિ જન્ય અનેક કષ્ટોને ભોગવતાં તે મુનિને ત્યાંથી હાંકી કાઢે છે, અગર કારાગારમાં મોકલી દેવામાં આવે છે. તેના વસ્ત્રો પણ આંચકી લેવામાં આવે છે. તેના શરીરનું છેદન કરી તેનો પ્રાણ પણ લઈ લેવામાં આવે છે. માટે જ ઉપદેષ્ટાનું એ સર્વપ્રથમ કર્તવ્ય છે કે દ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાળ અને ભાવનો સારી રીતે વિચાર કરી પોતાના ઉપદેશનો પ્રવાહ ચલાવે. એવો ઉપદેશ ન આપે કે જેનાથી પોતાને અનેક કષ્ટોનો સામનો કરવો પડે અને પ્રાણ પણ ગુમાવે ॥ સૂ ૮ ॥

छाया—अत्रापि जानीहि श्रेय इति नास्ति, कोऽयं पुरुषः कं च नतः, एष वीरः प्रशंसितः, यो बद्धान् परिमोचयति, ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्षु दिशासु, स सर्वतः सर्वपरिज्ञाचारी, न लिप्यते क्षणपदेन वीरः, स मेधावी यः अणोद्घातनखेदज्ञः, यश्च बन्धप्रमोक्षान्वेषी कुशलः पुनर्नो बद्धो नो मुक्तः ॥ सू० ९ ॥

टीका—'अत्रापी'-त्यादि, अत्र=धर्मकथायां श्रेयः=कल्याणम् इति अपि=निश्चयेन नास्ति=न विद्यते प्रत्युत कर्मबन्धो भवतीति जानीहि=बुध्यस्व त्वमिति शेषः, इहैव तावन्नानिष्टमपि च परत्रापि तत्प्रसज्येतेत्यर्थः ।

जो उपदेष्टा श्रोताओंको समझकर द्रव्य क्षेत्र काल और भावके अनुसार उपदेश करता है वह किसीके भी कोपका अथवा दण्डादिकका पात्र नहीं होता है, यह समझाते हैं—" एत्थंपि जाण " इत्यादि ।

वक्ताको यह एकान्तरूपसे मानना चाहिये कि धर्मकथा करनेमें निश्चयसे कल्याण ही होता है, परन्तु विना द्रव्य क्षेत्र काल भावका ध्यान रखे धर्मकथा करे तो वह कर्मबन्धका कारण भी हो जाती है। वीतराग-भावसे जहां जय-पराजय होनेका कुछ भी ख्याल नहीं है, सिर्फ; ये प्राणी कैसे सद्धर्मका आश्रय करें? इसी सदभिप्रायसे जो कथा की जाती है, अथवा उपदेश दिया जाता है वही धर्मकथा है। द्रव्य क्षेत्रादिकका विचार किये विना ही जो उपदेश किया जायगा उससे संभवतः उपदेष्टा को अनेक अनर्थोंका सामना भी करना पडेगा, इसलिये धर्मकथाके करनेमें श्रेयका ध्यान रखना चाहिये, क्यों कि अपनी प्रकृतिके अनुसार जीवों को

જે ઉપદેષ્ટા શ્રોતાઓને સમજીને દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવ અનુસાર ઉપદેશ કરે છે તે કોઈના પણ ક્રોધના તેમજ દંડાદિકના પાત્ર થતા નથી તે સમજાવે છે—" एत्थंपि जाण " ઇત્યાદિ

વક્તાએ એકાંત રૂપથી માનવું જોઈએ કે ધર્મકથા કરવામાં નિશ્ચય કલ્યાણ જ થાય છે પરંતુ દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવનો ખ્યાલ રાખ્યા વિના ધર્મકથા કરે તો કર્મબંધનું કારણ પણ બની જાય છે

વીતરાગ ભાવથી જ્યાં જય પરાજય હોવાનો જરા પણ ખ્યાલ નથી, ફક્ત આ પ્રાણી કેવી રીતે સદ્ધર્મનો આશ્રય કરે ? એવા પ્રકારના સદ્ અભિપ્રાયથી જે કથા કરવામાં આવે છે, અથવા ઉપદેશ આપવામાં આવે છે તે જ ધર્મકથા છે. દ્રવ્યક્ષેત્રાદિકનો વિચાર કર્યા વિના જો ઉપદેશ આપવામાં આવે તો વિના સંદેહ ઉપદેષ્ટાને અનેક અનર્થોનો સામનો જ કરવો પડે, માટે ધર્મકથા કરવામાં શ્રેયનું ધ્યાન રાખવું જોઈએ. કારણ કે પોતાની પ્રકૃતિ અનુસાર પોતાને જે જે

यद्वा—अत्रापि यद्यद्विधिजल्पनं हिंसकोऽयं राजेत्यालोच्य पशुवधादिरूप हिंसाधर्ममण्डनात्मकं चार्वाकादिमतस्थापनं च, तत्र सर्वत्रापि श्रेयो नास्ति शास्त्रप्रतिषिद्धत्वात् । तर्हि कथमुपदिशेदित्याह–' कोऽय '–मित्यादि, श्रोतारं समीक्ष्योपदेष्टा चेतसि चिन्तयेत्, कोऽयं पुरुषः कं चायं धर्मं परिपृच्छति, सोऽयं कः किं पुण्यवान् उत तुच्छः ? । यद्वा—अयं वक्रो वा जडो वा वक्रजडो वा पुरुषः, कं च=देवविशेषं नतः=प्रणतः कं देवमुपास्ते वा ? ।

जो हितावह-इष्ट होता है वह अन्य जीवोंके लिये भी हितावह होगा, यह नहीं माना जा सकता । सम्यग्दृष्टि अथवा भव्यपुरुषके लिये जिस उपदेशसे आत्मकल्याण करनेकी ओर सतर्कता जागृत होती है उसी उपदेशसे मिथ्यादृष्टिमें सतर्कता जागृत न होकर प्रत्युत कलुषता जागृत हो सकती है ।

अथवा—" यह राजा हिंसक है " ऐसा विचार कर पशुवधादिरूप हिंसाधर्मका मण्डन, तथा चार्वाकादिक नास्तिक मतका स्थापनरूप कथन करना भी उपदेशकके लिये कल्याणप्रद मार्ग नहीं है । इससे अनेक अनर्थोंकी परम्परा बढती है । तथा इस प्रकारकी मान्यता भी शास्त्रप्रतिषिद्ध है । अतः दूसरोंकी मान्यतानुसार अपनी मान्यताको दबाकर उसकी हां में हां मिला कर जो उपदेशक उपदेश करता है वह कल्याणकारी मार्ग नहीं है । इस समस्त कथनसे ये दो बातें फलितार्थ होती हैं–एक तो अवसर देखे विना धर्मकथा करनेमें एकान्तरूपसे कल्याण नहीं है तथा दूसरोंकी मान्यतानुसार अपनी मान्यता बनाकर उपदेश देना, यह भी

હિતાવહ-ઇષ્ટ થાય છે તે તે અન્ય જીવો માટે પણ હિતાવહ થશે તેમ માની શકાતું નથી. સમ્યગ્દષ્ટિ અથવા ભવ્ય પુરૂષો માટે જે ઉપદેશથી આત્મકલ્યાણ કરવાની તરફ સતર્કતા જાગૃત થાય છે તે જ ઉપદેશથી મિથ્યાદષ્ટિમાં સતર્કતા જાગૃત થતી નથી બલ્કે કલુષતા જાગૃત થાય છે, અથવા " રાજા હિંસક છે " એવો વિચાર કરી પશુવધાદિરૂપ હિંસાધર્મનું મંડન તથા ચાર્વાકાદિક નાસ્તિકમતનુ સ્થાપન રૂપ કથન કરવું તે પણ ઉપદેશક માટે કલ્યાણપ્રદ માર્ગ નથી. તેનાથી અનેક અનર્થોની પરંપરા વધે છે. તથા આ પ્રકારની માન્યતા પણ શાસ્ત્રપ્રતિષિદ્ધ છે, માટે બીજાઓની માન્યતાનુસાર પોતાની માન્યતાઓને દબાવીને તેની હા માં હા મેળવી જે ઉપદેશક ઉપદેશ કરે છે તે કલ્યાણકારી માર્ગ નથી. આ સમસ્ત કથનથી એ બે વાતો સિદ્ધ થાય છે કે–એક તો અવસર દેખ્યા વિના ધર્મકથા કરવામાં એકાન્તરૂપથી કલ્યાણ નથી તથા, બીજાઓની માન્યતાનુસાર પોતાની માન્યતા બનાવીને ઉપદેશ આપવો એ પણ કલ્યાણકારી માર્ગ

यद्वा-कं=कतरं धर्मं=साङ्ख्यं बौद्धमन्यं वा नतः=प्रतिपन्नः, उपलक्षणात्, किमयं मिथ्यादृष्टिरुत सम्यग्दृष्टिः केन वाऽऽशयेनाहं पृष्टः?, इत्यादिकमपि समालोच्य धर्ममुपदिशेदित्यर्थः, चशब्दाद्देशकालादीनां समालोचना कर्तव्या। यश्चैवं विचार्योपदिशति, एषः=उपदेष्टा वादिमानमर्दनपूर्वकप्रवचनपरिमण्डन-समर्थः, प्रशंसितः=गणधरादिभिः श्लाघितः, यो बद्धान्=अष्टविधपाशनिगडितान्

कल्याणप्रद मार्ग नहीं है। यदि ऐसा है तो उपदेश कैसा होना चाहिये? इसके लिये सूत्रकार कहते हैं कि सर्वप्रथम उपदेष्टा श्रोताओंको भली प्रकार देख कर चित्तमें यह विचार करे कि जो यह मुझसे धर्मको पूछता है, वह पुण्यात्मा है या तुच्छात्मा है? अथवा वक्र है या जड है? अथवा वक्र-जड दोनों स्वभाववाला है? किस देवका उपासक है? किस मतका अनुयायी है—सांख्यमतका या बौद्धधर्मका?। उपलक्षणसे यह मिथ्यादृष्टि है अथवा सम्यग्दृष्टि है? यह भी जान लेना चाहिये। यह जो मुझसे धर्मविषयक प्रश्न पूछता है सो किस अभिप्रायसे पूछता है? इत्यादि समस्त बातोंका विचार कर उपदेशकको धर्मका उपदेश देना चाहिये। साथमें देशकालादिकका भी विचार करना आवश्यक है। जो उपदेशक इस प्रकारकी समस्त बातोंका विचार कर उपदेश करता है वह वादियोंके मानका मर्दन करता हुआ अपने सिद्धान्तकी स्थापना करनेमें समर्थ होता है। इस प्रकार गणधरादिकोंसे प्रशंसित वह उपदेशक आठ प्रकारके कर्मरूपी पाशसे जकडे हुए प्राणियोंको अपने धर्मोपदेशसे

નથી હવે આવું છે તો ઉપદેશ કેવો હોવો જોઇએ? તેને માટે સૂત્રકાર કહે છે કે-સર્વ પ્રથમ ઉપદેષ્ટા શ્રોતાઓને ભલી પ્રકાર દેખીને ચિત્તમાં એ વિચાર કરે કે જે આ મને ધર્મ વિષે પૂછે છે તે પુણ્યાત્મા છે યા તુચ્છાત્મા છે? અથવા વક્ર છે યા જડ છે? અગર વક્ર અને જડ બન્ને સ્વભાવવાળા છે? કયા દેવના ઉપાસક છે? કયા મતના અનુયાયી છે-સાંખ્યમતના યા બૌધધર્મના? ઉપલક્ષણથી મિથ્યાદૃષ્ટિ છે યા સમ્યગ્દૃષ્ટિ? એ પણ જાણી લેવુ જોઈએ આ જે મને ધર્મવિષયક પ્રશ્ન પૂછે છે તે કયા અભિપ્રાયથી પૂછે છે? ઈત્યાદિ સર્વ વાતોનો વિચાર કરી ઉપદેશકોએ ધર્મનો ઉપદેશ દેવો જોઈએ. સાથમાં દેશ-કાળાદિકનો પણ વિચાર કરવો આવશ્યક છે. જે ઉપદેશક આ પ્રકારની સમસ્ત વાતોનો વિચાર કરી ઉપદેશ આપે છે તે વાદિઓના માનનું મર્દન કરીને પોતાના સિદ્ધાંતની સ્થાપના કરવામાં સમર્થ થાય છે. આ પ્રકારે ગણધરાદિકોથી પ્રશંસિત તે ઉપદેશક આઠ પ્રકારના કર્મરૂપી પાશથી જકડાયેલાં પ્રાણીઓને પોતાના ધર્મ

प्राणिनो धर्मोपदेशेन परिमोचयति=संसारकारागारान्निष्काशयति स एव ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्षु लोकेषु सर्वतः=सर्वासु दिशासु दशसु दिक्ष्वित्यर्थः, सर्वपरिज्ञाचारी–सर्वा चासौ परिज्ञा सर्वपरिज्ञा तया ज्ञप्रत्याख्यानरूपया द्विविधयाऽऽचरितुं शीलं यस्य स सर्वपरिज्ञाचारी–समस्तहेयोपादेयकुशलः। अत्रायं विवेकः–ज्ञपरिज्ञा द्विविधा–छाद्मस्थिकी कैवलिकी च, तत्र छाद्मस्थिकी मतिश्रुत्यवधिमनःपर्यवभेदेन चतुर्विधा, कैवलिकी केवलज्ञानरूपैकैव, मूलोत्तरगुणभेदेन प्रत्याख्यानपरिज्ञाऽपि द्विविधा, यद्वा सर्वपरिज्ञाचारी यो विधिकथनगुणान् ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वाऽविधिकथनदोषांश्च

संसाररूपी कारागारसे मुक्त कर देता है। ऐसा उपदेशक ही उर्ध्वदिशा अधोदिशा तथा इस तिर्यग्लोकमें और समस्त दिशाओंमें सर्वपरिज्ञाचारी होता है। समस्तपरिज्ञाका नाम सर्वपरिज्ञा है। सर्वपरिज्ञासे जिस का आचरण करनेका स्वभाव है उसका नाम सर्वपरिज्ञाचारी है। परिज्ञा दो प्रकारकी है (१) ज्ञपरिज्ञा और (२) प्रत्याख्यानपरिज्ञा। इन दोनों प्रकारकी परिज्ञासे वह युक्त होता है, अर्थात् समस्त हेय और उपादेयमें वह कुशल हो जाता है। इसका भाव यह है कि–ज्ञपरिज्ञा दो प्रकारकी है–(१) छद्मस्थ–सम्बन्धी और (२) केवलज्ञानी–सम्बन्धी। छद्मस्थ–सम्बन्धी परिज्ञा–मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनः पर्यवज्ञानके भेदसे चार प्रकारकी है। केवलज्ञानी–सम्बन्धी परिज्ञा एक केवलज्ञानरूप ही है, उसके भेद नहीं है। प्रत्याख्यानपरिज्ञा भी मूलगुण और उत्तरगुणके भेदसे दो प्रकारकी है। जो उपदेशक विधिके कथनके गुणों को ज्ञपरिज्ञासे जान कर अविधि के कथनके दोषोंको प्रत्याख्यान-

ઉપદેશથી સંસારરૂપી કારાગારથી મુક્ત કરે છે. તેવા ઉપદેશક જ ઉર્ધ્વદિશા અધોદિશા તથા આ તિર્યગ્લોકમા અને સમસ્ત દિશાઓમાં સર્વ પરિજ્ઞાચારી થાય છે સમસ્તપરિજ્ઞાનું નામ સર્વપરિજ્ઞા છે. સર્વપરિજ્ઞાથી જેનું આચરણ કરવાનો સ્વભાવ છે તેનું નામ સર્વપરિજ્ઞાચારી છે. પરિજ્ઞા બે પ્રકારની છે. (૧) જ્ઞ–પરિજ્ઞા અને (૨) પ્રત્યાખ્યાન–પરિજ્ઞા, આ બન્ને પ્રકારની પરિજ્ઞાથી તે યુક્ત બને છે. અર્થાત્ સમસ્ત હેય અને ઉપાદેયમાં તે કુશળ બની જાય છે. તેનો ભાવ એ છે કે–જ્ઞપરિજ્ઞા બે પ્રકારની છે. (૧) છદ્મસ્થસંબંધી અને (૨) કેવળજ્ઞાની સંબંધી છદ્મસ્થસંબંધી પરિજ્ઞા–મતિજ્ઞાન, શ્રુતજ્ઞાન, અવધિજ્ઞાન અને મનઃપર્યવજ્ઞાનના ભેદથી ચાર પ્રકારની છે. કેવળજ્ઞાનીસંબધી પરિજ્ઞા એક કેવળજ્ઞાનરૂપ જ છે, તેના ભેદ નથી. પ્રત્યાખ્યાન–પરિજ્ઞા પણ મૂલગુણ અને ઉત્તરગુણના ભેદથી બે પ્રકારની છે. જે ઉપદેશક વિધિના કથનના ગુણોને જ્ઞ–પરિજ્ઞાથી જાણીને અને

प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरति, अत एव सर्वेति कथनं संगतम् । एवंभूतोऽसौ किमासादयतीत्याह-'न लिप्यत' इत्यादि, वीरः-प्रत्यात्मप्रदेशधर्मप्रभावप्रचार-शक्तिसम्पन्नः क्षणपदेन हिंसास्थानेनात्मसंयमविराधनारूपेण न लिप्यते=नोपलिप्तो भवति आक्रोशनोद्ध्वंसनवधादिनाऽऽत्मविराधको ज्ञानादिपञ्चाचारानाचरणेन

परिज्ञासे छोड देता है वह उपदेशक भी सर्वपरिज्ञाचारी कहलाता है। इस अपेक्षासे परिज्ञाके साथ 'सर्व' यह विशेषण संगत बैठता है। इस प्रकारका उपदेशक कि जो आत्माके प्रत्येक प्रदेशमें धर्मका प्रचार करने की शक्तिसे सम्पन्न है वह हिंसाके स्थानभूत अपनी आत्माकी विराधना से तथा संयमकी विराधनासे कभी भी उपलिप्त नहीं होता है। तात्पर्य यह कि वह उपदेशक-आक्रोशन, उद्ध्वंसन और वधादिकसे अपनी आत्माकी विराधना करनेवाला नहीं होता है, और न ज्ञानाचार दर्शनाचार और तपआचार आदि पांच प्रकारके आचारोंके अनाचरणसे संयमका ही विराधक होता है, क्यों कि वह इन दोनों प्रकारकी विराधना के कटुक फलको भली प्रकार जानता है। उसे यह पूर्ण रूपसे विश्वास है कि जो इन दोनों प्रकारकी या किसी भी एकप्रकारकी विराधनाका करनेवाला होता है उसे संसारमें ही भ्रमण करना पडता है, कारण कि इस प्रकारकी विराधनासे जीव अशुभ कर्मोंका ही वंध करता है और इनका फल चतुर्गतिरूप संसारमें भ्रमण करना है। इस संसारके

અવિધિના કથનના દોષોને પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાથી છોડી આપે છે તે ઉપદેશક પણ સર્વપરિજ્ઞાચારી કહેવાય છે આ અપેક્ષાથી 'પરિજ્ઞા'ની સાથે 'સર્વ' આ વિશેષણ સગત બેસે છે. આ પ્રકારના ઉપદેશક જે આત્માના પ્રત્યેક પ્રદેશમાં ધર્મનો પ્રચાર કરવાની શક્તિથી સંપન્ન છે, તે હિંસાના સ્થાનભૂત પોતાના આત્માની વિરાધનાથી તથા સયમની વિરાધનાથી કદિ પણ ઉપલિપ્ત થતા નથી. તાત્પર્ય એ છે કે તે ઉપદેશક-આક્રોશન ઉદ્ધ્વંસન અને વધાદિકથી પોતાના આત્માની વિરાધના કરવાવાળા થતા નથી, તેમજ જ્ઞાનાચાર, દર્શનાચાર અને તપઆચાર આદિ પાચ પ્રકારના આચારોના અનાચરણથી સયમના વિરાધક બનતા નથી, કારણ કે તે એ બન્ને પ્રકારની વિરાધનાના કટુ ફળને સારી રીતે જાણે છે તેને પૂર્ણ રીતે વિશ્વાસ છે કે જે આ બન્ને પ્રકારની અગર કોઈ પણ એક પ્રકારની વિરાધનાના કરવાવાળા હોય છે, તેને સંસારમાં જ ભ્રમણ કરવું પડે છે. કારણ કે આ પ્રકારની વિરાધનાથી જીવ અશુભ કર્મોનો જ બંધ કરે છે, અને તેનુ ફળ ચતુર્ગતિરૂપ સંસારમાં ભ્રમણ થાય છે, 'આ સંસારના કારણભૂત કર્મનો નાશ

संयमविराधको न भवतीत्यभिप्रायः । अन्यदपि वीरकर्तव्यमाह–' स मेधावी '-त्यादि,सः=मुनिः मेधावी=विदितात्मसंयमविराधनकटुकफलो यः अणोद्धातनखेदज्ञः-अणति=गच्छति येन प्राणिगणश्चतुर्गतिकसंसारं तदणं=कर्म, तस्य उत्=प्राबल्येन घातनम्=अपनयनम् अणोद्धातनं, तस्य तत्र वा खेदज्ञः=निपुणः, यश्च बन्धप्रमोक्षान्वेषी–बन्धस्य=प्रकृतिस्थित्यनुभावप्रदेशरूपस्य प्रमोक्षः=प्रकर्षेण मोक्षस्तदुपायो वा रत्नत्रयरूपस्तमन्वेष्टुं=गवेषयितुं शीलं यस्य स बन्धप्रमोक्षान्वेषी, योऽणोद्धातनखेदज्ञो यश्च बन्धप्रमोक्षान्वेषी स एव मेधावी भवतीति सम्बन्धः ।

कारणभूत कर्मको नाश करनेके लिये ही तो मैं ने यह मुनिवेष धारण किया है । इसी अभिप्रायकी पुष्टि सूत्रकार–" अणुग्घायणखेयन्ने " ' अणोद्धातनखेदज्ञः ' इस पदसे की है–" अणति=गच्छति येन प्राणिगणश्चतुर्गतिकसंसारे तद् अणं=कर्म, तस्य उत्=प्राबल्येन घातनम्=अपनयनं, तस्य तत्र वा खेदज्ञः " इति । अर्थात्–जिसके द्वारा प्राणिसमूह चतुर्गतिरूप इस संसारमें भ्रमण करता है वह अण–कर्म है, उस कर्मके विनाश करनेमें जो निपुण है वह अणोद्धातनखेदज्ञ है । जो बंधके नाश करनेका अथवा उसके नाश करनेके उपायोंके अन्वेषण करने का स्वभाववाला होता है वह संसारके कारणभूत कर्मके विनाश करनेमें कुशल होता है ।

शास्त्रमें बन्धके चार भेद बतलाये गये हैं—(१) प्रकृतिबन्ध, (२) स्थितिबन्ध, (३) अनुभागबन्ध, (४) प्रदेशबन्ध । इनका अत्यन्त अभाव होना वह बन्धप्रमोक्ष है । अथवा इनके अत्यन्त अभाव होनेमें कारणभूत

કરવા માટે જ મેં મુનિપણાનો વેશ લીધો છે.' આ અભિપ્રાયની પુષ્ટિ સૂત્રકાર " अणुग्घायणखेयन्ने " अणोद्धातनखेदज्ञः એ પદથી કરેલ છે. " अणति-गच्छति येन प्राणिगणश्चतुर्गतिकसंसारे तद् अणं=कर्म, तस्य उत्=प्राबल्येन घातनम्=अपनयनं, तस्य तत्र वा खेदज्ञः, इति, અર્થાત્ જેના દ્વારા પ્રાણીસમૂહ ચતુર્ગતિરૂપ આ સંસારમાં ભ્રમણ કરે તે अण=કર્મ છે. તે કર્મનો વિનાશ કરવામાં જે નિપુણ છે તે अणोद्धातनखेदज्ञ છે. જે બંધનો નાશ કરવાના, અથવા તેનો નાશ કરવાના ઉપાયોનું અન્વેષણ કરવાના સ્વભાવવાળા હોય છે તે સંસારના કારણભૂત કર્મનો વિનાશ કરવામાં કુશળ હોય છે.

શાસ્ત્રમાં બંધના ચાર ભેદ બતાવેલ છે. (૧) પ્રકૃતિબંધ (૨) સ્થિતિબંધ (૩) અનુભાગબંધ, અને (૪) પ્રદેશબંધ તેનો અત્યંત અભાવ થવો તે બંધપ્રમોક્ષ છે અથવા તેના અત્યંત અભાવ હોવાના કારણભૂત જે રત્નત્રયાદિક ઉપાય છે

ननु य एव अणोद्धातनखेदज्ञः स एव बन्धप्रमोक्षान्वेषी चेति पौनरुक्त्यं समापतितमिति चेन्न–'अणोद्धातनखेदज्ञः' इत्यनेन मूलोत्तरप्रकृतिभेदविशिष्टस्य योगनिमित्तेन प्राप्तस्य कषायस्थितिमतः कर्मणो बद्धस्पृष्टनिधत्तनिकाचितरूपबध्यमानावस्थायास्तद्दूरीकरणोपायस्य च सम्यग्ज्ञातेत्यस्यार्थस्याभिहितत्वाद् बन्धप्रमोक्षेत्यादिना च केवलं तद्दूरीकरणानुष्ठानस्याभिहितत्वात्।

जो रत्नत्रयादिक उपाय हैं उन्हें भी 'बन्धप्रमोक्ष' शब्दसे ग्रहण कर लिया गया है। बन्धप्रमोक्षका अथवा इनके उपायोंका अन्वेषण करनेका जिसका स्वभाव है वह बन्धप्रमोक्षान्वेषी है। जो अणोद्धातनकुशल और बन्धप्रमोक्षान्वेषी है वही मेधावी होता है।

शङ्का—जो अणोद्धातनमें कुशल है वही तो बन्धप्रमोक्षान्वेषी है। फिर इस प्रकारके कथनसे तो दोनों शब्दोंके अर्थोंमें परस्परमें समानता आजानेसे पुनरुक्तिदोषका प्रसङ्ग आता है।

उत्तर—यह बात नहीं है–"अणोद्धातनखेदज्ञ" इस शब्दसे "मूल और उत्तरभेद विशिष्ट योगके निमित्तसे गृहीत और कषायसे स्थितियुक्त, ऐसे कर्मोंकी बद्ध, स्पृष्ट, निधत्त और निकाचितरूप बध्यमान अवस्थाओंका और कर्मोंको दूर करनेवाले उपायोंका वह सम्यग्ज्ञाता है" यह अर्थ प्रतिपादित किया गया है। 'बन्धप्रमोक्षान्वेषी' इस शब्द से सिर्फ उनको दूर करनेवाले अनुष्ठानका प्रतिपादन किया गया है।

તેને પણ બંધપ્રમોક્ષ શબ્દથી ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે. બંધપ્રમોક્ષનું, અથવા તેના ઉપાયોનું અન્વેષણ કરવાનો જેનો સ્વભાવ છે તે બંધપ્રમોક્ષાન્વેષી છે. જે અણોદ્ઘાતનકુશળ અને બંધપ્રમોક્ષાન્વેષી છે તે જ મેધાવી હોય છે.

શંકા—જે અણોદ્ઘાતનમાં કુશળ છે તે જ બંધપ્રમોક્ષાન્વેષી છે, એ પ્રકારના કથનથી તો બન્ને શબ્દોના અર્થોમાં પરસ્પરમા સમાનતા આવવાથી પુનરૂક્તિ દોષનો પ્રસંગ આવે છે.

ઉત્તર—એ વાત નથી "अणोद्धातनखेदज्ञ" આ શબ્દથી "મૂલ અને ઉત્તરભેદવિશિષ્ટ યોગના નિમિત્તથી ગૃહીત અને કષાયથી સ્થિતિયુક્ત એવા કર્મોની બદ્ધ, સ્પૃષ્ટ, નિધત્ત અને નિકાચિતરૂપ બધ્યમાન અવસ્થાઓના, અને તેવા કર્મોને દૂર કરવાવાળાં ઉપાયોના તે સમ્યગ્જ્ઞાતા છે" આ અર્થ પ્રતિપાદિત કરેલ છે. તથા 'बन्धप्रमोक्षान्वेषी' આ શબ્દથી ફક્ત તેને દૂર કરનાર અનુષ્ઠાનનું પ્રતિપાદન કરેલ છે.

ननु यश्चैतादृशः स केवली छद्मस्थो वा? प्रोच्यते–केवलिनोऽणोद्घातेत्यादि-विशेषणासम्भवाच्छद्मस्थस्य ग्रहणम्। केवलिनस्तर्हि किं स्यादिति दर्शयति–'कुशल' इत्यादि। कुशलः=केवली तीर्थङ्करः सामान्यकेवली वा पुनः न बद्धः घातिकर्मणो नाशात्, न मुक्तः=भवोपग्राहिकर्मसत्त्वात्। बाह्याभ्यन्तरसावद्यानुष्ठानैश्च मुक्तः, भवोपग्राहिकर्मणः सत्त्वेन बद्धोऽपि।

यद्वा छद्मस्थ एव कुशलपदेनोच्यते, तेन कुशलः=प्राप्तरत्नत्रयः, न बद्धः=अनन्तानुबन्ध्यादिकषायानलोपशमादिसत्त्वात्, न मुक्तः=इदानीमपि तत्कर्मसत्त्वात्, अज्ञानाविरतिमिथ्यात्वैश्च मुक्तः, प्रशस्तैस्तु चारित्रतपोविनयादिभिर्वा न मुक्तः॥सू०९॥

शङ्का—जो ऐसा होता है वह कौन है? केवली है या छद्मस्थ?

उत्तर—केवलीमें "अणोद्घातनखेदज्ञ" इत्यादि विशेषण संभवित नहीं होते हैं, इन दोनों विशेषणोंसे तो केवल छद्मस्थका ही ग्रहण हुआ है। हां "कुशल" इस शब्दसे केवलीका ग्रहण होता है, वे चाहे सामान्यकेवली हों चाहे तीर्थङ्कर हों। वे न तो बद्ध हैं; क्यों कि उनके घाती कर्मोंका अभाव हो चुका है, और न मुक्त ही हैं, कारण कि भवोपग्राही कर्मोंका उनके सद्भाव है। यद्यपि बाह्य और आभ्यन्तर सावद्य कर्मोंसे वे मुक्त-रहित-हैं तो भी भवोपग्राही कर्मोंकी सत्ता होनेसे वे बद्ध भी हैं।

अथवा-'कुशल' इस पदसे छद्मस्थका ही ग्रहण हुआ है। जिसने रत्नत्रयको प्राप्त कर लिया है वह कुशल है। वह बद्ध नहीं है, क्यों कि इसके अनन्तानुबन्धी आदि कषायरूप अग्निका उपशमादि हो चुका है।

શંકા—જે એવા છે તે કોણ છે? કેવળી છે કે છદ્મસ્થ?

ઉત્તર—કેવળીમા "अणोद्घातनखेदज्ञः" ઈત્યાદિ વિશેષણો સંભવિત થતા નથી. આ બન્ને વિશેષણોથી તો કેવળ છદ્મસ્થનું જ ગ્રહણ થયેલ છે. હા "कुशल" આ શબ્દથી કેવળીનુ ગ્રહણ થાય છે તે ભલે સામાન્ય કેવળી હોય કે તીર્થંકર હોય. તેઓ બદ્ધ નથી, કારણ કે તેઓને ઘાતી કર્મોનો અભાવ થયેલ છે, અને મુક્ત પણ નથી. કારણ કે ભવોપગ્રાહી કર્મોનો તેને સદ્ભાવ છે. જો કે બાહ્ય અને આભ્યંતર સાવદ્ય કર્મોથી તેઓ મુક્ત-રહિત છે તો પણ ભવોપગ્રાહી કર્મોની સત્તા હોવાથી તેઓ બદ્ધ પણ છે.

અથવા "कुशल" આ પદથી છદ્મસ્થનું જ ગ્રહણ થયેલ છે. જેણે રત્નત્રય પ્રાપ્ત કરેલ છે તે કુશલ છે. તેઓ બદ્ધ નથી, કારણ કે તેના અનંતાનુબંધી આદિ કષાયરૂપ અગ્નિનું ઉપશમાદિ થઈ ચુકેલ છે. મુક્ત એટલા માટે નથી કે આ

यथैतादृशः केवली छद्मस्थो वा स यदनुष्ठितवान् यच्चानुतिष्ठति वा तदन्येनापि साधुनाऽनुष्ठेयमिति दर्शयति–' से जं च ' इत्यादि।

मूलम्–से जं च आरभे जं च नारभे, अणारद्धं च न आरभे छणं छणं परिणाय लोकसन्नं च सव्वसो ॥ सू० १० ॥

छाया—स यच्चारभते यच्च नारभते, अनारब्धं च नारभेत क्षणं क्षणं परिज्ञाय लोकसंज्ञां च सर्वशः ॥ सू० १० ॥

टीका—' स य '-दित्यादि, सः=तीर्थङ्करः सामान्यकेवली प्राप्तरत्नत्रयो मुनिर्वा ज्ञानावरणीयादिकर्मापनयनाय यत्कर्म तपःसंयमविनयादिकं च आरभते=विदधाति घटते=पराक्रमते, यतते वा, यच्च तद्विपरीतं संसारहेतुं मिथ्यात्वाविरत्यादिकं

मुक्त इसलिये नहीं है कि इस समय भी उसके उस उस कर्मका सद्भाव है। अज्ञान, अविरति और मिथ्यात्व, इनसे वह मुक्त–रहित है; परन्तु प्रशस्त चारित्र, तप और विनयादिसे मुक्त–रहित नहीं है ॥ सू० ९ ॥

इस प्रकारके चाहे केवली हों या छद्मस्थ, परन्तु उन्होंने जिसका आचरण किया और जो आचरण कर रहे हैं वह अन्य साधुको भी करना चाहिये, इस बातको कहते हैं–' से जं च ' इत्यादि।

तीर्थङ्कर सामान्यकेवली अथवा रत्नत्रयके धारी मुनि, ये " से " इस शब्दसे ग्रहण किये गये हैं। इन्होंने ज्ञानावरणीयादिक आठ कर्मोंके नाश करनेके लिये जिन तप संयम और विनयादिकोंका अनुष्ठान––पालन किया है, इनके पालन करनेमें जो पराक्रम दिखलाया है, तथा इनकी आराधना करनेमें जो प्रयत्न किये हैं, और इनसे विपरीत संसार

સમયે પણ તેઓને તે તે કર્મનો સદ્ભાવ છે અજ્ઞાન, અવિરતિ અને મિથ્યાત્વ, તેનાથી તે મુક્ત–રહિત છે પરંતુ પ્રશસ્ત ચારિત્ર, તપ અને વિનયાદિથી મુક્ત–રહિત નથી. ॥ સૂ૦ ૯ ॥

આવા પ્રકારના ભલે કેવળી હોય કે છદ્મસ્થ પરંતુ તેઓએ જેનું આચરણ કર્યું અને જે આચરણ કરે છે તે બીજા સાધુઓએ પણ કરવું જોઈએ. આ વાત કહે છે—' से जं च ' ઇત્યાદિ

તીર્થંકર, સામાન્યકેવળી અથવા રત્નત્રયધારી મુનિ, એ " से " શબ્દથી ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે. તેઓએ જ્ઞાનાવરણીયાદિક આઠ કર્મોનો નાશ કરવા માટે જે તપ સંયમ અને વિનયાદિનું અનુષ્ઠાન–પાલન કરેલ છે, તેનું પાલન કરવામાં જે પરાક્રમ બતાવેલ છે, તથા તેની આરાધના કરવામા જે પ્રયત્ન કરેલ છે, અને તેનાથી વિપરીત સંસારના કારણભૂત મિથ્યાત્વ તેમજ અવિરતિ

प्राणातिपातादिरूपाष्टादशपापस्थानानि च नारभते=न करोति न घटते न यतते न पराक्रमते वा। तद्विपरीतमाचरतीत्यर्थोऽपि। संयतैः पञ्चमहाव्रतपालनं विधेयं, संसारकारणं मिथ्यात्वाविरत्यादिकं च नासेवनीयमित्यभिप्रायः। तदेवाह–'अनारब्ध'-मित्यादि, अनारब्धं केवलिभिः प्राप्तरत्नत्रयैश्छद्मस्थैर्वा अनारब्धम्=अनाचीर्णं च द्विपञ्चाशत्प्रकारं नारभेत=न सेवेत, च शब्दाद्यदारब्धं तत्कुर्यादित्यर्थोऽपि। अनाचरणीयमेवाह—'क्षण'–मित्यादि, क्षणं क्षणं, क्षणनं क्षणः=हिंसनं, कार्यकारणयोरभेदाद् येन कर्मणा कारणभूतेन हिंसा कार्यरूपा समुत्पद्यते तत्कर्म क्षणः, तम् ,

के कारणभूत मिथ्यात्व एवं अविरति आदि तथा प्राणातिपातादिरूप अठारह (१८) पापस्थानों का जिस प्रकारसे इन्होंने परित्याग किया है, उनके छोडनेमें जो अपनी शक्ति प्रकट की है, और जिस प्रकारका प्रयत्न किया है, तथा इन अविरति आदिकोंसे विपरीत अपनी प्रवृत्ति बनाई है, संयतोंका कर्तव्य है कि वे भी पांच महाव्रतोंका इसी लगनके साथ पालन करें, और संसारके कारण–मिथ्यात्व अविरति आदि–का परित्याग करें, स्वप्नमें भी इनका सेवन न करें। केवलियोंने अथवा रत्नत्रयको प्राप्त हुए छद्मस्थ मुनियोंने जिनका सेवन नहीं किया, अर्थात् (५२) प्रकारके जिन अनाचीर्णों–अनाचारों–का अनुष्ठान नहीं किया उनका संयति कभी भी सेवन न करे।

सूत्रमें आये हुए "च" शब्दसे इस प्रकार अर्थ होता है कि जो उन्होंने पालन किया है वही वह पालन करे। उन्होंने क्या आचरण नहीं किया? इसको प्रकट करते हैं–'क्षणं क्षणं' इत्यादि। 'क्षण' शब्दका अर्थ हिंसा है। कार्य और कारणमें अभेद सम्बन्धकी विवक्षासे कारणभूत

આદિ તથા પ્રાણાતિપાતાદિરૂપ અઢાર (૧૮) પાપસ્થાનોનો જે પ્રકારે તેણે પરિત્યાગ કરેલ છે, તે છોડવામાં જે પોતાની શક્તિ પ્રગટ કરેલ છે, અને જે પ્રકારનો પ્રયત્ન કરેલ છે, તથા આ અવિરતિ આદિથી વિપરીત પોતાની પ્રવૃત્તિ બનાવી છે. સંયતોનું કર્તવ્ય છે કે તે પણ પાંચ મહાવ્રતોનું તેવી ભાવનાથી પાલન કરે અને સંસારનાં કારણ મિથ્યાત્વ અવિરતિ આદિનો પરિત્યાગ કરે. સ્વપ્નમાં પણ તેનું સેવન ન કરે. કેવળીઓએ, અથવા રત્નત્રયપ્રાપ્ત છદ્મસ્થ મુનિઓએ જેનું સેવન નથી કર્યું અર્થાત્ બાવન પ્રકારના જે અનાચારોનું અનુષ્ઠાન નથી કર્યું તેનું કોઈ પણ સંયતી સેવન ન કરે.

સૂત્રમાં આવેલાં "च" શબ્દથી એ પ્રકારે અર્થ થાય છે કે જે તેઓએ પાલન કરેલ છે તે જ તે પાલન કરે. તેઓએ શું આચરણ નથી કર્યું? તે પ્રગટ કરે છે–'क्षणं क्षणं' ઈત્યાદિ. 'ક્ષણ' શબ્દનો અર્થ હિંસા છે. કાર્ય અને કારણમાં અભેદસંબંધની વિવક્ષાથી કારણભૂત કર્મદ્વારા જે હિંસારૂપ કાર્ય ઉત્પન્ન થાય છે

तस्य वीप्सायां क्षणं-क्षणं, हिंसाजनकं सकलं कर्मेत्यर्थः, परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहृत्य च। यद्वा—क्षणः संयमाचारावसरः, तस्य वीप्सायां क्षणः क्षणस्तं परिज्ञाय ज्ञपरिज्ञया विदित्वा, आसेवनपरिज्ञया चाऽऽसेव्य विचरेत्। अपि च लोकसंज्ञां च लोकस्य=असंयतलोकस्य संज्ञा=संज्ञानं शब्दादिविषयासङ्गजन्य-सुखस्पृहा परिग्रहादिसंज्ञा वा, तां सर्वशः=सर्वप्रकारेण योगत्रिककरणत्रिकेण परिज्ञाय परिहृत्य, यद्वा—चशब्दादात्मौपम्येन क्षणनं न विदध्यात् "जह मम ण पियं दुक्खं जाणिय एमेव सव्वजीवाणं" इत्यादिवचनात्। सर्वथा प्राणातिपातादौ न प्रवर्तेत

जिस कर्मके द्वारा हिंसारूप कार्य उत्पन्न होता है उस कर्मका नाम क्षण है। यहाँ पर वीप्सा में 'क्षणं क्षणं' यह द्विरुक्ति है। तात्पर्य इसका यह है कि हिंसात्मक सकलकर्मों को संयमी ज्ञपरिज्ञासे जानकर और प्रत्याख्यानपरिज्ञासे इनका परित्याग कर विचरण करे।

अथवा-संयमके आचरण करनेके प्रत्येक अवसरको भी संयमी ज्ञपरिज्ञासे जानकर और आसेवनपरिज्ञासे इसका सेवन करे।

तथा लोकसंज्ञाका सर्व प्रकारसे परित्याग करे। असंयत लोकोंको शब्दादिक विषयोंके सम्बन्धसे उत्पन्न सुखकी जो चाहना होती है उसका नाम लोकसंज्ञा है। अथवा परिग्रहादिकसंज्ञाका नाम भी लोकसंज्ञा है। संयमी इस लोकसंज्ञाका सर्व प्रकारसे अर्थात् तीन करण तीन योगसे त्याग करे।

"लोकसञ्ज्ञां च सर्वशः" यहां पर जो "च" आया है उससे यह बात प्रकट की गई है कि संयमी समस्त जीवोंको अपने समान समझ कर कभी भी हिंसादिक कार्योंमें प्रवृत्ति न करे, क्योंकि आगमका

તે કર્મનું નામ ક્ષણ છે. અહીં વીપ્સાથી 'क्षण क्षण' આ દ્વિરૂક્તિ છે એટલે હિંસાજનક સકલ કર્મોને સંયમી જ્ઞપરિજ્ઞાથી જાણીને અને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી તેનો પરિત્યાગ કરી વિચરણ કરે.

અથવા સંયમનું આચરણ કરવાના પ્રત્યેક અવસરને પણ સંયમી જ્ઞપરિજ્ઞાથી જાણી અને આસેવનપરિજ્ઞાથી તેનું સેવન કરે.

તથા લોકસંજ્ઞાનો સર્વ પ્રકારથી પરિત્યાગ કરે, અસંયત લોકોને શબ્દાદિક વિષયોના સંબંધથી ઉત્પન્ન સુખની જે ચાહના થાય છે તેનું નામ લોકસંજ્ઞા છે. અથવા પરિગ્રહાદિકસંજ્ઞાનું નામ પણ લોકસંજ્ઞા છે, સંયમી આ લોકસંજ્ઞાનો સર્વ પ્રકારથી અર્થાત્ ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી ત્યાગ કરે.

"लोकसंज्ञां च सर्वशः" આ ઠેકાણે જે 'च' શબ્દ આવેલ છે તેનાથી એ વાત પ્રગટ કરી આપેલ છે કે સંયમી સમસ્ત જીવોને પોતાના સમાન સમજી કોઈ વખત પણ હિંસાદિક કાર્યોમાં પ્રવૃત્તિ ન કરે, કારણ કે આગમનું વાક્ય

संयमाचरणादौ च प्रवर्तेतेति सूत्राशयः ॥ सू० १० ॥

यश्च पूर्वोक्तसकलगुणविशिष्टस्तस्य किं भवतीत्याह–'उद्देसो' इत्यादि ।

मूलम्–उद्देशो पासगस्स नत्थि, वाले पुण निहे कामसमणुन्ने असमियदुक्खे दुक्खी दुक्खाणमेव आवट्टं अणुपरियट्टइ त्तिबेमि ॥ सू० ११ ॥

॥ इय वीयज्झयणस्स छट्ठो उद्देसो समत्तो ॥ २–६ ॥

छाया—उद्देशः पश्यकस्य नास्ति, वालः पुनः स्निहः कामसमनुज्ञोऽशमितदुःखो दुःखी दुःखानामेवावर्तमनुवर्तते, इति ब्रवीमि ॥ सू० ११ ॥

॥ इति द्वितीयाध्ययनस्य षष्ठ उद्देशः समाप्तः ॥ २–६ ॥

टीका—'उद्देश' इत्यादि । सूत्रमिदं तृतीयोद्देशे व्याख्यातमिति । इति ब्रवीमीत्यस्यार्थस्तु प्रथमाध्ययनोक्तदिशाऽवसेयः ॥ सू० ११ ॥

वाक्य है कि—" जह मम ण पियं दुक्खं, जाणिय एमेव सव्वजीवाणं" जिस प्रकार दुःख हमें अप्रिय है उसी प्रकार वह समस्त जीवोंको भी अप्रिय है। हिंसादिक कार्यों में जीवोंको दुःख पहुँचता है, ऐसा समझ कर संयमी जन कभी भी प्राणातिपातादिक कार्यों में प्रवृत्ति न करे, और न संयमाचरणसे मुख मोडे, अर्थात् संयम में प्रवृत्तिशाली बने, यही सूत्रका आशय है ॥ सू० १० ॥

जो संयमी पूर्वोक्त सकल गुणोंसे युक्त होता है उसके क्या होता है? इसका खुलासा करते हैं–'उद्देसो पासगस्स नत्थि' इत्यादि।

इस सूत्रका व्याख्यान इसी अध्ययनके तीसरे उद्देशमें लिखा जा चुका है। 'इति ब्रवीमि' इसका अर्थ प्रथम उद्देशके अनुसार जान लेना चाहिये ॥ सू० ११ ॥

॥ आचाराङ्ग सूत्रके लोकविजयनामक दूसरे अध्ययनके छट्ठे उद्देशका हिन्दी–भाषानुवाद समाप्त ॥ २–६ ॥

છે કે "जह मम ण पियं दुक्खं जाणिय एमेव सव्वजीवाणं" જે પ્રકારે દુઃખ અમને અપ્રિય છે તે પ્રકારે તે સમસ્ત જીવોને પણ અપ્રિય છે. હિંસાદિક કાર્યોમાં જીવને દુઃખ પહોંચે છે. એવું સમજીને સંયમી જન કદિ પણ પ્રાણાતિપાતાદિક કાર્યોમાં પ્રવૃત્તિ ન કરે, અને સંયમાચરણથી દૂર રહે નહિ, અર્થાત્ સંયમમાં પ્રવૃત્તિશાળી બને, એ જ સૂત્રનો આશય છે. ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

જે સંયમી પૂર્વોક્ત સકળ ગુણોથી યુક્ત બને છે. તેને શું થાય છે? તેનો ખુલાસો કરે છે–'उद्देसो पासगस्स नत्थि' ઈત્યાદિ

આ સૂત્રનું વ્યાખ્યાન આ અધ્યયનના ત્રીજા ઉદ્દેશમાં લખાઇ ગયેલ છે. 'इति ब्रवीमि' તેનો અર્થ પ્રથમ ઉદ્દેશ અનુસાર જાણી લેવો ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

उपसंहारः-

अस्मिन्नध्ययने हि लोकविजये सङ्गो न कार्यो बुधै-
र्मात्रादौ च महाव्रतेऽप्यदृढता मानोऽपि हेयस्तथा ॥
वैराग्यं विषये मुनेर्विहरणं लोकेऽपि निश्राख्यया
पुत्रादौ ममतां त्यजेन्निगदितं तूद्देशषट्कान्विते ॥ १ ॥

इत्याचाराङ्गसूत्रस्य लोकविजयाख्यद्वितीयाध्ययनस्य आचारचिन्तामणि-
टीकायां षष्ठ उद्देशः समाप्तः ॥ २-६ ॥

इतिश्री-विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलित-
ललितकलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मायक-वादिमानमर्दक
-श्रीशाहूछत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त - 'जैनशास्त्राचार्य'-पद-
भूषित-कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्म-
दिवाकर-पूज्यश्री-घासीलाल-व्रतिविरचितायाम् आचा-
राङ्गसूत्रस्याचारचिन्तामणिटीकायां लोकविजयाख्यं
द्वितीयमध्ययनं सम्पूर्णम् ॥ २ ॥

उपसंहार-

लोकविजय नामक इस प्रकरण, में ये छै उद्देश भरे,
मातादिकमें संग अदृढता, महाव्रतोंमें बुध न करे ।
मान तजन वैराग्य विषयमें, हो विहार जगनिश्रासे,
पुत्रादिकसे ममता हरनी छ उद्देश इस निश्रासे ॥ १ ॥

॥ इति आचाराङ्गसूत्रके लोकविजय-नामक दूसरे अध्ययनकी
आचारचिन्तामणि-टीकाका हिन्दीभाषानुवाद संपूर्ण ॥ २ ॥

—: ઉપસંહાર :—

લોકવિજય નામના બીજા અધ્યયનમાં આ છ ઉદ્દેશો બતાવ્યા છેઃ-જ્ઞાનીએ માતા વગેરેનો સંગ ત્યજવો મહાવ્રતોમાં દૃઢતા રાખવી. અભિમાન ત્યજવું. વિષયોથી વિરક્ત થવું. સંસારીઓને આશ્રયે વિહરવું. અર્થાત્ પચનપાચનાદિક સાવદ્ય ક્રિયાઓને ટાળતો થકો ગૃહસ્થોએ પોતાને માટે કરેલ નિરવદ્ય આહાર પાણીથી સંયમ-યાત્રાનો નિર્વાહ કરવો તથા પુત્ર વગેરેની મમતા ત્યજવી. એ છ ઉદ્દેશો તેમાં છે. ॥૧॥

આચારાંગ સૂત્રના લોકવિજય નામના બીજા અધ્યયનના છઠ્ઠા ઉદ્દેશનો
ગુજરાતી અનુવાદ સમાપ્ત. ૨-૬.

આ આચારાંગસૂત્રના લોકવિજય નામના બીજા અધ્યયનની આચાર-
ચિન્તામણિ-ટીકાનો ગુજરાતી અનુવાદ સંપૂર્ણ. ॥૨॥

। अथाचाराङ्गसूत्रस्य शीतोष्णीयनामकं तृतीयमध्ययनम् ।

द्वितीयाध्ययनकथनानन्तरं शीतोष्णीयं नाम तृतीयमध्ययनमभिधीयते। अस्य द्वितीयाध्ययनेन सहायमभिसम्बन्धः—शस्त्रपरिज्ञानामकाध्ययननिर्दिष्टविशिष्टव्रतभारधारिणो लोकविजयाख्यद्वितीयाध्ययनोक्तसंयममनुतिष्ठतोऽपास्तसमस्तकषायादिलोकस्य परमपदमारुरुक्षोरकस्मात् शीतोष्णाः=अनुकूलप्रतिकूलाः परीषहाः समुत्पद्यन्ते। तेषु स्त्रीपरीषहसत्कारपरीषहावेवानुकूलावन्ये विंशतिसंख्यकाः परीषहाः प्रतिकूलाः। तेषां हर्षविषादपरित्यागपूर्वकं प्रसहनं कर्तव्यमिति सम्बन्धाभिधायकमिदमध्ययनम्। अत्र चत्वार उद्देशाः सन्ति। तत्र—

आचाराङ्गसूत्रका शीतोष्णीयनामक तृतीय अध्ययन

द्वितीय अध्ययनके बाद अब इस शीतोष्णीय नामक तृतीय अध्ययन प्रारम्भ होता है। द्वितीय अध्ययनके साथ इस अध्ययनका इस प्रकारसे सम्बन्ध है कि शास्त्रपरिज्ञानामक अध्ययनमें जिन विशिष्ट व्रतोंके धारण करनेका विधान किया गया है उन व्रतोंके पालनेवाले, तथा लोकविजय नामक द्वितीय अध्ययनमें प्रतिपादित संयमके अनुष्ठान करनेवाले, समस्त कषायलोकके निराकरण करनेवाले और परमपद जो मोक्ष उसमें पहुंचनेकी इच्छावाले ऐसे संयमी मुनि अकस्मात् उत्पन्न शीत–उष्ण अर्थात् अनुकूल प्रतिकूल परीषहोंको सहन करते हैं। परीषह २२ बाईस प्रकारके हैं, उनमें स्त्रीपरीषह और सत्कारपरीषह ही अनुकूल हैं, बाकीके २० वीस परीषह प्रतिकूल हैं। इन सब परीषहोंको हर्ष विषाद

આચારાંગ સૂત્રનું શીતોષ્ણીયનામનું ત્રીજુ અધ્યયન.

બીજા અધ્યયન બાદ હવે શીતોષ્ણીય નામના ત્રીજા અધ્યયનનો આરંભ થાય છે. બીજા અધ્યયનની સાથે આ અધ્યયનનો એ પ્રકારે સંબંધ છે કે શસ્ત્ર–પરિજ્ઞા નામના અધ્યયનમાં જે વિશિષ્ટ વ્રતો ધારણ કરવાનું વિધાન કરેલ છે, તે વ્રતોના પાળવાવાળાં, તથા લોકવિજય નામના બીજા અધ્યયનમાં પ્રતિપાદિત સંયમનું અનુષ્ઠાન કરવાવાળાં, સમસ્ત કષાયલોકનું નિરાકરણ કરવાવાળાં અને પરમપદ જે મોક્ષ તેમાં પહોંચવાની ઈચ્છાવાળાં એવાં સંયમી મુનિ અકસ્માત્ ઉત્પન્ન શીત–ઉષ્ણ અર્થાત્ અનુકૂળ પ્રતિકૂલ પરિષહો સહન કરે છે. પરીષહ બાવીસ પ્રકારના છે. તેમાં સ્ત્રીપરીષહ અને સત્કારપરીષહ, એ બે પરીષહ જ અનુકૂળ છે. બાકીના ૨૦ બીસ પરીષહો પ્રતિકૂળ છે. આ સઘળાં પરીષહોને હર્ષ વિષાદ

प्रथमोद्देशे भावसुप्तानां दोषा जाग्रतां च गुणाः प्रदर्शिताः ॥ १ ॥

द्वितीये भावनिद्रावतां दुःखानुभवः प्रदर्शितः ॥ २ ॥

तृतीये संयमाचरणमन्तरेण केवलं दुःखसहनादेव श्रमणो न भवतीति कथितम् ॥ ३ ॥

चतुर्थे तु वान्तवत् कषायास्त्याज्याः, पापकर्मणश्च विरतिः, तथा विदित-वेद्यस्य संयमः प्रतिबोधितः, तथा क्षपकश्रेणिप्रविष्टानां च संयमिनां मोक्षो भवतीत्यावेदितम् ॥ ४ ॥

छोड कर संयमीको सहन करना चाहिये। इस प्रकारके सम्बन्धका प्रतिपादन करनेवाला यह अध्ययन है। इसमें ४ चार उद्देश हैं। उनमें-

प्रथम उद्देशमें भावसुप्त संयमियोंके दोष और जगते हुए संयमियोंके गुण दिखलाये गये हैं १।

द्वितीय उद्देशमें-'भावनिद्रावाले संयमियोंको दुःखोंका अनुभव करना पड़ता है' यह बात दिखलाई गई है २।

तृतीयउद्देशमें-'संयमाचरणके विना केवल दुःखोंके सहन करने मात्रसे साधु नहीं होता है' यह विषय प्रतिपादित किया गया है ३।

चतुर्थ उद्देशमें-' वमन-छर्दित किये हुए अन्नके समान कषाय त्याग करने योग्य हैं, पापकर्म परिहरणीय है, तथा पदार्थोंके स्वरूपको जानने-वाले संयमी मुनिके लिये संयम आराधनीय है, एवं क्षपकश्रेणिमें प्राप्त हुए साधुजनों को मुक्तिका लाभ अवश्यंभावी है' आदि सब विषय प्रकट किये गये हैं ४।

છોડીને સંયમીઓએ સહન કરવા જોઈએ. આ પ્રકારના સંબધનું પ્રતિપાદન કરવાવાળું આ અધ્યયન છે. તેમાં ચાર ઉદ્દેશ છે. તેમાં—

પ્રથમ ઉદ્દેશમાં ભાવસુપ્ત સંયમીઓના દોષ અને જાગતા સંયમીઓના ગુણ બતાવવામાં આવેલ છે. ૧.

બીજા ઉદ્દેશમાં ભાવનિદ્રાવાળા સંયમીઓને દુ:ખોનો અનુભવ કરવો પડે છે, એ વાત બતાવવામા આવી છે. ૨.

ત્રીજા ઉદ્દેશમાં 'સંયમાચરણ વિના કેવળ દુખો સહન કરવા માત્રથી કોઇ સાધુ બની શકતો નથી' એ વિષય પ્રતિપાદિત કરવામાં આવેલ છે. ૩.

ચોથા ઉદ્દેશમાં-' વમન-છર્દિત કરેલા અન્ન સમાન કષાય ત્યાગ કરવા યોગ્ય છે, પાપકર્મ પરિહરણીય છે તથા પદાર્થોના સ્વરૂપને જાણવાવાળા સંયમી મુનિ માટે સંયમ આરાધનીય છે, તેમજ ક્ષપકશ્રેણિમા પ્રાપ્ત થયેલાં સાધુજનોને મુક્તિનો લાભ અવશ્યંભાવી છે' આદિ સઘળા વિષય પ્રગટ કરવામા આવેલ છે. ૪.

द्वितीयाध्ययनस्य चरमसूत्रेणास्यैवमभिसम्बन्धः—तत्र " · दुःखी दुःखानामेवावर्तमनुपरिवर्तते " इत्युक्तं, तदिहापि " भावसुप्ता दुःखिनो दुःखानामेवावर्तमनुवर्तन्ते " इति प्रतिबोधयितुमाह—' सुत्ता अमुणी ' इत्यादि।

मूलम्-सुत्ता अमुणी, सया मुणिणो जागरंति ॥ सू० १ ॥

छाया—सुप्ता अमुनयः, सदा मुनयो जाग्रति ॥ सू० १ ॥

टीका—अमुनयः=गृहस्थाः सुप्ताः=भावतः सुप्ताः मिथ्यात्वाज्ञानमयनिद्राव्यामोहिताः हिंसाद्यास्रवद्वारेषु सततं प्रवृत्ताः सन्ति। सुप्ता हि द्विविधा भवन्ति द्रव्यतो भावतश्च। तत्र निद्राप्रमादवन्तो द्रव्यसुप्ताः, यद्वा—शिथिलितनयनप्रचाराङ्गोपाङ्गाविस्पष्टचेतनावस्थापन्नाः द्रव्यसुप्ताः। भावसुप्तास्त्वभिहिता एव।

द्वितीय अध्ययनके अन्तिम सूत्रके साथ इस अध्ययनका इस प्रकार सम्बन्ध है—उस अध्ययनका अन्तिम सूत्र "· · · · दुक्खी दुक्खाणमेव आवट्टं अणुपरियट्टइ " (दुःखी दुःखानामेवावर्त्तमनुपरिवर्तते) यह है, इसका भाव यह है कि-दुःखी दुःखोंकी परंपराका ही अनुवर्तन करते हैं। जिस प्रकार यह बात उस अध्ययनमें कही गई है उसी प्रकार यहां पर भी-' जो भावसुप्त दुःखी हैं वे दुःखोंकी ही परम्पराका अनुभव करते हैं ' इस विषयको समझानेके लिये कहते हैं-' सुत्ता अमुणी ' इत्यादि।

अमुनि शब्दका अर्थ गृहस्थ है। ये भावसे सुप्त-सोये हुए हैं। मिथ्यात्व अज्ञानमय निद्रासे व्यामोहित मतिवाले होते हुए ये प्राणातिपातादिक जो कर्मोंके आनेके द्वार हैं उनमें निरन्तर प्रवृत्तिशाली हैं। सुप्त दो प्रकारके होते हैं-(१) द्रव्यसे और (२) भावसे। निद्राप्रमाद-

---

બીજા અધ્યયના અંતિમ સૂત્રની સાથે આ અધ્યયનનો આ પ્રકારે સંબંધ છે, તે અધ્યયનનું અંતિમ સૂત્ર "······ 'दुक्खी दुक्खाणमेव आवट्टं अणु-परियट्टइ " ('''दुःखी दुःखानामेवावर्तमनुपरिवर्तते) એ છે. તેનો ભાવ એ છે કે દુઃખી દુઃખોની પરંપરાનું જ અનુવર્તન કરે છે, જેવી રીતે આ વાત તે અધ્યયનમાં કહેવામાં આવેલ છે તેવી રીતે આ ઠેકાણે પણ ' જે ભાવસુપ્ત દુઃખી છે તેઓ પણ દુ.ખોની જ પરંપરાનો અનુભવ કરે છે.' આ વિષયને સમજાવવા માટે કહે છે—' सुत्ता अमुणी ' ઈત્યાદિ.

અમુનિ શબ્દનો અર્થ ગૃહસ્થ છે. એ ભાવથી સુપ્ત-સુતેલા છે. મિથ્યાત્વ અજ્ઞાનમય નિદ્રાથી વ્યામોહિત મતિવાળા હોવા છતાં પ્રાણાતિપાતાદિક જે કર્મોના આવવાના દ્વાર છે તેમા નિરંતર પ્રવૃત્તિશાળી છે. સુપ્ત બે પ્રકારના હોય છે.—

द्रव्यसुप्तास्तस्करादिना मणिमाणिक्यरत्नाद्यपहारेण यथाऽन्तर्दाहदारिद्र्य-दौर्भाग्यादिलक्षणपरितापकलापमनुभवन्ति तथा भावसुप्ता अपि प्रमादादिना सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्राद्यात्मकरत्नापहाराद्दीर्घसंसारपरिभ्रमणेन जन्मजरामरणादिलक्षण-विविधपरितापकलापमनुभवन्ति ।

मुनयः=मोक्षमार्गादविचलन्तो लब्धसम्यग्बोधाः अनगाराः, सदा=अनवरतं जाग्रति=मिथ्यात्वादिनिद्रापगमेन इष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारार्थं यतनया गमनादि

शाली जो है वे द्रव्यसे सुप्त हैं। अथवा जिसमें नेत्रोंका प्रचार शिथिल हो जाता है तथा अङ्ग-उपाङ्गों की क्रिया भी जहां शिथिल हो जाती है, ऐसी अस्पष्ट चेतनाकी अवस्थासे जो युक्त हैं वे भी द्रव्यसे सुप्त हैं, अर्थात् निद्रावस्थावाले प्राणी द्रव्यसुप्त हैं। ये द्रव्यसुप्त जीव जिस प्रकार चोरों वगैरहके द्वारा मणि माणिक्य और रत्नादिक द्रव्यके चुराये जाने से अन्तर्दाह एवं दारिद्र्य दौर्भाग्यादिरूप अनेक सन्तापोंका अनुभव करते हैं उसी प्रकार भावसुप्त प्राणी भी प्रमाद आदिके द्वारा सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्ररूप रत्नोंके चुराये जानेसे दीर्घ संसारमें परिभ्रमणजन्य जन्म जरा और मरण आदि रूप अनेक सन्तापोंको भोगते रहते हैं।

मुनि सदा जगते हैं। मोक्षमार्गसे जो विचलित नहीं होते हैं उनका नाम मुनि है। ये निरन्तर सचेत रहते हैं, अर्थात् मिथ्यात्वादि निद्राके विनाश होनेसे इष्टकी प्राप्ति और अनिष्ट के परिहारके लिये यतनासे

(१) द्रव्यथी अने (२) भावथी. निद्राप्रमादशाळी जे छे तेओ द्रव्यथी सुप्त छे, अथवा जेमां आंखोनो प्रचार शिथिल थई जाय छे तथा अंग उपांगोनी क्रिया पण ज्यां शिथिल थई जाय छे, एवी अस्पष्ट चेतनानी अवस्थाथी जे युक्त छे तेओ पण द्रव्यथी सुप्त छे. अर्थात् निद्रावस्थावाळा प्राणी द्रव्यसुप्त छे. ए द्रव्यसुप्त जीव जे प्रकारे चोरो विगेरे द्वारा मणि-माणेक-रत्नादिक द्रव्य आदिना चोराई जवाथी अन्तर्दाह अने दारिद्र्य दुर्भाग्यादि-रूप अनेक संतापोनो अनुभव करे छे ते प्रकारे भावसुप्त प्राणी पण प्रमाद आदि द्वारा सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन अने सम्यक्चारित्रादिरूप रत्नो चोराई जवाथी दीर्घ संसारमां परिभ्रमणजन्य जन्म जरा अने मरण आदिरूप अनेक संतापोने भोगवतां रहे छे.

मुनि सदा जागता रहे छे. मोक्षमार्गथी जे विचलित थता नथी, तेनुं नाम मुनि छे. एओ निरंतर सचेत रहे छे, अर्थात् मिथ्यात्वादि निद्राना विनाश थवाथी इष्टनी प्राप्ति अने अनिष्टना परिहार माटे यतनाथी गमनादिक

कुर्वन्तः सम्यग्ज्ञानचारित्रोपार्जने प्रवृत्ताः सन्तीत्यर्थः। यद्यपि क्वचिदाचार्यानुज्ञया प्रथमपौरुष्याम् उत्सर्गतश्च द्वितीयतृतीयपौरुष्योर्दीर्घसंयमाधारभूतस्य शरीरस्य स्थित्यर्थं निद्रां भजन्ति तथापि मुनयः सदा भावतो जागरूका एव। धर्मापेक्षया सुप्तजाग्रदवस्थे इह परिगृहीते।

मुनयो द्विधा भवन्ति द्रव्यतो भावतश्च। तत्र द्रव्यमुनयस्तावत्-लिङ्गमात्रधारिणः, असंयमपरिणामपरिणताः, अवसन्नपार्श्वस्थादिकाः। एषां नात्राधिकारः, अमुनिकोटौ तेषां समाविष्टत्वात्। अधिकारश्चात्र भावमुनीनाम्। ते च भावमुनयः

गमनादिक क्रियाएँ करते हुए भी सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके उपार्जन करनेमें ही प्रवृत्तिशील रहा करते हैं। यद्यपि कभी २ आचार्य महाराज की आज्ञासे ये रात्रिकी प्रथम पौरुषी में, और उत्सर्ग से द्वितीय तृतीय पौरुषी में दीर्घ संयमके आधारभूत शरीरकी स्थितिके लिये निद्रा लेते हैं तो भी ये सदा भावसे जागरूक-जगते हुए-ही रहते हैं। सुप्त अवस्था और जाग्रत अवस्था का सम्बन्ध यहां धर्मकी अपेक्षासे ग्रहण किया गया है।

मुनि दो प्रकारके होते हैं-(१) द्रव्यसे और (२) भावसे। लिङ्गमात्रको धारण करनेवाले द्रव्यमुनि हैं। इनका परिणाम असंयममें परिणत रहा करता है। अवसन्न पासत्थादिक इसी श्रेणिके हैं। इनका यहां प्रकरण नहीं है, क्यों कि ये द्रव्यलिङ्गी अमुनियोंकी कोटिमें आते हैं। यहां पर भावमुनियोंका प्रकरण चल रहा है अतः उन्हींका यहां पर विचार होगा। वे भावमुनि चारित्रमोहनीय कर्मके क्षयोपशमसे तथा

ક્રિયાઓ કરતાં કરતાં પણ સમ્યગ્જ્ઞાન અને સમ્યક્ચારિત્રનું ઉપાર્જન કરવામાં જ પ્રવૃત્તિશીલ રહ્યા કરે છે. જોકે ક્યારેક આચાર્ય મહારાજની આજ્ઞાથી એ રાત્રિની પ્રથમ પોરસીમાં, અને ઉત્સર્ગથી દ્વિતીય તૃતીય પોરસીમા દીર્ઘ સંયમના આધારભૂત શરીરની સ્થિતિ માટે નિદ્રા લે છે તો પણ મુનિ સદા ભાવથી જાગરૂક-જાગતાં જ રહે છે. સુપ્ત અવસ્થા અને જાગ્રત અવસ્થાનો સંબંધ આંહી ધર્મની અપેક્ષાથી ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે.

મુનિ બે પ્રકારના હોય છે. (૧) દ્રવ્યથી અને (૨) ભાવથી. લિંગ માત્રનેધારણ કરવાવાળા દ્રવ્યમુનિ છે. તેનું પરિણામ અસંયમમાં પરિણત રહ્યા કરે છે. અવસન્ન પાસત્થાદિક તેવી શ્રેણિના છે. તેનું અહીં પ્રકરણ નથી, કારણ કે એ દ્રવ્યલિંગી અમુનિઓની કોટિમાં આવે છે. આ ઠેકાણે ભાવમુનિઓનું પ્રકરણ ચાલી રહ્યું છે. માટે તેઓનો આ ઠેકાણે વિચાર થશે. તે ભાવમુનિ ચારિત્રમોહનીય

चारित्रमोहनीयक्षयोपशमक्षयसमुत्पन्नस्वरूपपरायणाः, कषायोद्रेकरहिताः, समरसकन्दायमानाः, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राराधकाः, प्रशस्तयोगसाधकाः, समितिगुप्तिधारकाः, निश्चयव्यवहारप्रचारकाः, आस्रववर्जिताः संवेगादिलक्षणयुक्ताः, यथार्थोपयोगेन द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनयेन स्वरूपवेदिनः, कर्मरजोहारकाः, मुखोपरि सदोरकमुखवस्त्रिकाधारकाः, विंशतिस्थानकसमाराधकाः, देवासुरनरजनितत्रिविधोपसर्गसहनशीलाः, शास्त्रोक्ताचारविचारपरिपालकाः, ज्ञातपरमार्था भवन्ति। त एव सदा=निरन्तरं जाग्रति=प्रबुध्यन्ते–हेयोपादेयविवेकपूर्वकं सकलपरिषहप्रसहनं प्रकुर्वाणाः संयमानुष्ठानं समाचरन्तीत्यर्थः।

क्षयसे समुत्पन्न निज आत्मस्वरूपमें लवलीन रहते हैं। कषायोंके उद्रेक से रहित होते हैं। समतारूपी रसके कन्द होते हैं। पांच समिति और तीन गुप्तिके धारक होते हैं। निश्चय और व्यवहारके प्रचारक होते हैं। आस्रवद्वारोंसे रहित तथा संवेगादिक–लक्षणोंसे युक्त होते हैं। जिस नयका जहां उपयोग होता है वहां उसी नयका उपयोग करनेवाले होते हैं, अर्थात् जहां द्रव्यार्थिक नयकी प्रधानतासे वस्तुतत्त्वका निर्णय होता हो वहां पर्यायार्थिक नयकी गौणता कर उसी नयसे उसके स्वरूपका निर्णय करते हैं, जहां पर्यायार्थिक नयसे वस्तुके स्वरूपका निर्णय होता हो वहां उस नयसे इतर–द्रव्यार्थिक नयको गौणकर वस्तुके स्वरूपका निर्णय करते हैं; किन्तु अपने आग्रहसे किसी भी वस्तुका एकान्तरूपसे निर्णय या प्रतिपादन नहीं करते हैं। आत्माके ऊपर अनादि कालसे चढी हुई कर्मरूपी धूलिको नाश करनेवाले होते हैं। मुखपर दोरासहित मुख-

કર્મના ક્ષયોપશમથી તથા ક્ષયથી સમુત્પન્ન નિજ આત્મસ્વરૂપમાં આનંદિત રહે છે. કષાયોના ઉદ્રેકથી રહિત હોય છે. સમતારૂપી રસના કંદ હોય છે પાંચ સમિતિ અને ત્રણ ગુપ્તિના ધારક હોય છે નિશ્ચય અને વ્યવહારના પ્રચારક હોય છે- આશ્રવદ્વારોથી રહિત અને સંવેગાદિક લક્ષણોથી સહિત હોય છે જે નયનો જ્યાં ઉપયોગ થાય છે, ત્યાં તે નયનો ઉપયોગ કરવાવાળા હોય છે અર્થાત્ જ્યાં દ્રવ્યાર્થિક નયની પ્રધાનતાથી વસ્તુતત્વનો નિર્ણય થતો હોય ત્યાં પર્યાયાર્થિક નયની ગૌણતા કરી તે નયથી તેના સ્વરૂપનો નિર્ણય કરે છે. જ્યાં પર્યાયાર્થિક નયથી વસ્તુ સ્વરૂપનો નિર્ણય થતો હોય ત્યાં તે નયથી બીજા–દ્રવ્યાર્થિક–નયને ગૌણ કરી વસ્તુના સ્વરૂપનો નિર્ણય કરે છે, પણ પોતાના આગ્રહથી કોઈ પણ વસ્તુનો એકાન્તરૂપથી નિર્ણય અગર પ્રતિપાદન કરતા નથી. આત્માની ઉપર અનાદિ કાળથી ચઢેલી કર્મરૂપી ધૂળનો નાશ કરવાવાળાં હોય છે. મુખ ઉપર

ते हि दर्शनावरणीयकर्मविपाकोदयात् संयमाधारशरीरस्थित्यर्थं निद्रोपगता द्रव्यतः सुप्ता अपि दर्शनमोहनीयरूपमहानिद्रापगमात् सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्राराधकत्वेन सदा जागरूका एव । तत्र जिनकल्पिनो रात्रौ प्रहरमेकं स्थविरकल्पिनस्तूत्सर्गतः प्रहरद्वयं स्वपन्ति ।

वस्त्रिका-मुंहपत्तीके धारक होते हैं। वीस स्थानोंकी अच्छी तरह आराधना करनेवाले होते हैं। देव, असुर तथा मनुष्य, इन तीनों द्वारा किये गये तीन प्रकारके उपसर्गों को सहनेके स्वभाववाले होते हैं। शास्त्रोंमें जिन २ आचार-विचारोंका पालना बतलाया है उन २ आचार-विचारोंको पालनेवाले होते हैं। परमार्थके ज्ञाता होते हैं। ऐसे ये भावमुनि ही सदा जागरूक होते हैं, अर्थात् हेय और उपादेयके विवेकपूर्वक सकल परीपहों को जीतते हुए संयमके आराधनमें सदा दत्तावधान रहते हैं।

यद्यपि ये दर्शनावरणीय कर्मके विपाकोदयसे संयमके आधारभूत शरीरकी स्थितिके लिये निद्रा लेते हैं, इस अपेक्षासे ये द्रव्यसे सुप्त हैं, तो भी दर्शनमोहनीयरूप महानिद्राके विनाशसे उत्पन्न सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके आराधक होनेसे ये सदा जागरूक ही रहते हैं। जिनकल्पी मुनि रात्रिमें एक प्रहर सोते हैं, क्यों कि इनका इसी प्रकारका कल्प है। स्थविरकल्पी मुनि उत्सर्गसे दो प्रहर सोते हैं।

દોરાસહિત મુખવસ્ત્રિકા-મુહપત્તીના ધારક હોય છે. વીસ સ્થાનોની સારી રીતે આરાધના કરનારા હોય છે. દેવ, અસુર તથા મનુષ્ય એમ ત્રણે દ્વારા કરવામાં આવેલાં ત્રણ પ્રકારના ઉપસર્ગોને સહન કરવાના સ્વભાવવાળા હોય છે. શાસ્ત્રોમાં જે જે આચાર વિચારોનું પાલન કરવાનું બતાવેલ છે તે તે આચાર વિચારોના પાળવાવાળાં હોય છે. પરમાર્થના જ્ઞાતા હોય છે એવા એ ભાવમુનિ જ સદા જાગરૂક હોય છે, અર્થાત્ હેય અને ઉપાદેયના વિવેકપૂર્વક સકળ પરીપહોને જીતતાં સંયમના આરાધનમાં સદા દત્તાવધાન રહે છે

જો કે તેઓ દર્શનાવરણીય કર્મના વિપાકના ઉદયથી સંયમના આધારભૂત શરીરની સ્થિતિ માટે નિદ્રા લે છે, આ અપેક્ષાથી એ દ્રવ્યથી સુપ્ત છે તો પણ દર્શનમોહનીયરૂપ મહાનિદ્રાના વિનાશથી ઉત્પન્ન સમ્યગ્દર્શન સમ્યગ્જ્ઞાન અને સમ્યક્ચારિત્રના આરાધક હોવાથી સદા જાગરૂક જ રહે છે. જીનકલ્પી મુનિ રાત્રિમાં એક પ્રહર સુવે છે, કારણ કે તેનો આ પ્રકારનો કલ્પ છે. સ્થવિરકલ્પી મુનિ ઉત્સર્ગથી બે પ્રહર સુવે છે.

शयनं जागरणं चात्र धर्माराधनमधिकृत्याभिधीयते, अतो द्रव्यभावभेदेन सुप्तानां जाग्रतां च मध्ये कस्य धर्माराधनं भवति कस्य नेति भङ्गचतुष्टयं प्रदर्श्यते—

(१) द्रव्यतः सुप्तः, भावतो जागर्ति।

(२) भावतः सुप्तः, द्रव्यतो जागर्ति ।

(३) द्रव्यतोऽपि जागर्ति, भावतोऽपि जागर्ति ।

(४) द्रव्यतोऽपि सुप्तः, भावतोऽपि सुप्तः ।

अत्र प्रथमभङ्गवतो धर्माराधनं भवति १ । द्वितीयस्य न भवति २ ।

सोना और जागना, ये दोनों बातें धर्मके आराधन करनेकी अपेक्षासे यहां कही गई हैं। इसलिये द्रव्य और भावके भेदसे सोनेवालोंके तथा जागनेवालोंके बीचमें कौन धर्मका आराधक होता है, कौन नहीं होता है ? इस बातको चार भंगोंसे दिखलाते हैं—

(१) द्रव्यसे सुप्त है पर भावसे जाग्रत है।

(२) भावसे सुप्त है पर द्रव्यसे जाग्रत है।

(३) द्रव्यसे जाग्रत है और भावसे भी जाग्रत है।

(४) द्रव्यसे भी सुप्त है और भावसे भी सुप्त है।

इन चार भंगोंको लेकर जब विचार किया जाता है तो जो द्रव्यसे तो सुप्त है पर भावसे जाग्रत है, ऐसे प्रथम भंगवालेको धर्मका आराधन होता है। द्वितीय भंगवालेको नहीं होता है, कारण कि यह भावसे ही सुप्त है, द्रव्यजागरूकता तो धर्माराधनमें कार्यकारी ही नहीं है।

સુવું અને જાગવું એ બન્ને વાતો ધર્મનું આરાધન કરવાની અપેક્ષાથી અહીં કહેવામાં આવેલ છે, જેથી દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી સુવાવાળાની તથા જાગવાવાળાની વચમાં ધર્મનું આરાધન કોને થાય છે? અને કોને થતું નથી? આ વાતને ચાર ભંગોથી બતાવે છે.

(૧) જે દ્રવ્યથી સુપ્ત છે પણ ભાવથી જાગૃત છે.

(૨) જે ભાવથી સુપ્ત છે પણ દ્રવ્યથી જાગૃત છે.

(૩) જે દ્રવ્યથી જાગૃત છે અને ભાવથી પણ જાગૃત છે.

(૪) જે દ્રવ્યથી પણ સુપ્ત છે અને ભાવથી પણ સુપ્ત છે.

આ ચાર ભંગોને લઈને જ્યારે વિચાર કરવામાં આવે છે ત્યારે જે દ્રવ્યથી તો સુપ્ત છે પણ ભાવથી જાગૃત છે, એવા પ્રથમ ભંગવાળાને ધર્મનું આરાધન થાય છે, બીજા ભંગવાળાને નહિ, કારણ કે તે ભાવથી જ સુપ્ત છે. દ્રવ્ય જાગરૂકતા ધર્મારાધનમાં કાર્યકારી નથી,

तृतीयभङ्गवतो द्रव्यतो भावतश्च जाग्रतः सम्यग्ज्ञानादिरूपो धर्मः सुचारुरूपेण सम्पद्यते। मुनिना सदा तृतीयभङ्गवतैव भाव्यमतो भगवता कथितम्–"सुत्ता अमुणी सया मुणिणो जागरंति"–सुप्ता अमुनयः सदा मुनयो जाग्रति–इति। चतुर्थभङ्गवतश्च सर्वथा धर्माराधनं न भवति, तस्य मिथ्यात्वोदयप्राबल्यात् ४।

द्रव्यसुप्तो हि निद्रया भवति। सा च पञ्चविधा (१) निद्रा, (२) निद्रानिद्रा, (३) प्रचला (४) प्रचलाप्रचला (५) स्त्यानर्द्धिः।

तासु निद्रानिद्रा–प्रचलाप्रचला–स्त्यानर्द्धिरूपं निद्रात्रिकं दुरन्तम्। एतत्रिकोदये भवसिद्धिकोऽपि सम्यक्त्वं न लभते। अस्य बन्धो हि मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने

तृतीय भंगवालेको सुचारुरूपसे सम्यग्ज्ञानादिरूप धर्मकी आराधना होती है; कारण कि यह द्रव्यसे और भावसे–दोनों प्रकारसे सदा जागरूक है। मुनिको सदा इस तृतीय भंगवाला ही होना चाहिये। इसीलिये भगवानने कहा है कि–"सुत्ता अमुणी, सया मुणिणो जागरंति।" (सुप्ता अमुनयः सदा मुनयो जाग्रति)। चतुर्थ भंगवालेके धर्मका आराधन सर्वथा है ही नहीं; क्यों कि यह द्रव्य और भाव, इन दोनों प्रकारसे सोया हुआ है, अर्थात् इसमें मिथ्यात्वके उदयकी प्रबलता है।

द्रव्यकी अपेक्षासे सुप्तावस्था निद्रासे होती है। वह निद्रा पांच प्रकार की है—(१) निद्रा, (२) निद्रानिद्रा, (३) प्रचला, (४) प्रचलाप्रचला, (५) स्त्यानर्द्धि।

इनमें निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, और स्त्यानर्द्धि, ये तीन निद्राएँ जीवोंको बहुत दुःखदायी हैं। इन तीनोंके उदयमें भवसिद्धिक (मुक्तिगामी)

ત્રીજા ભંગવાળાને સુચારૂરૂપથી સમ્યગ્જ્ઞાનાદિરૂપ ધર્મની આરાધના થાય છે, કારણ કે તે દ્રવ્યથી અને ભાવથી–બન્ને પ્રકારથી સદા જાગરૂક છે. મુનિએ સદા આ ત્રીજા ભંગવાળા બનવું જોઈએ. માટે ભગવાને કહ્યું છે કે "सुत्ता अमुणी सया मुणिणो जागरंति।" (सुप्ताः अमुनयः सदा मुनयो जाग्रति) ચોથા ભંગવાળાને ધર્મનું આરાધન સર્વથા છે જ નહિ, કારણ કે એ દ્રવ્ય અને ભાવ, એ બન્ને પ્રકારથી પણ સુતેલ છે, અર્થાત્ તેમાં મિથ્યાત્વના ઉદયની પ્રબળતા છે.

દ્રવ્યની અપેક્ષાથી સુપ્તાવસ્થા નિદ્રાથી થાય છે તે નિદ્રા પાંચ પ્રકારની છે,–(૧) નિદ્રા, (૨) નિદ્રાનિદ્રા, (૩) પ્રચલા, (૪) પ્રચલાપ્રચલા, (૫) સ્ત્યાનર્દ્ધિ.

તેમાં નિદ્રાનિદ્રા, પ્રચલાપ્રચલા, અને સ્ત્યાનર્દ્ધિ, એ ત્રણ નિદ્રાઓ જીવોને ઘણી દુઃખદાયી છે, આ ત્રણના ઉદયમાં ભવસિદ્ધિક (મુક્તિગામી) જીવ પણ

सास्वादनगुणस्थाने चानन्तानुबन्धिकषायबन्धेन सह भवति, क्षयस्तु नवमाऽनिर्वृत्तिबादरगुणस्थानस्य नवसु भागेसु मध्ये प्रथमभागस्थकालस्य कियत्सु संख्येयांशेषु गतेषु सत्सु जायते। निद्राप्रचलयोरुदयः सामान्यदर्शनावरणीयकर्मोदयाद्भवति। बन्धोपरमोऽपूर्वकरणनामकाष्टमगुणस्थानकालस्य संख्येयभागान्ते जायते, तत्पश्चान्नूतनबन्धाभावात्। क्षयश्च क्षीणमोहाख्यद्वादशगुणस्थानस्य चरमसमयद्वयेऽवशिष्टे सति भवति। एतयोरुदयस्तु उपशान्तक्रोधोपशान्तमोहयोरपि भवतीति निद्राप्रमादस्य दुरन्तत्वं विज्ञेयम्।

जीव भी सम्यक्त्वको प्राप्त नहीं कर सकता है। इनका बन्ध मिथ्यादृष्टि नामक प्रथम गुणस्थानमें और सास्वादन नामक द्वितीय गुणस्थानमें अनन्तानुबन्धी कषायके बन्धके साथ जीवोंको होता है, और क्षय नवमें अनिवृत्तिबादर गुणस्थानके नौ ९ भागोंमेंसे प्रथम भागके कालके जब कितनेक संख्यात अंश व्यतीत हो जाते हैं तब होता है।

निद्रा और प्रचलाका उदय सामान्य दर्शनावरणीय कर्मके उदयसे होता है। इनके बन्धका अभाव अपूर्वकरण नामके आठवें गुणस्थानके संख्यातवें भागके अन्तमें होता है। उसके बाद इनके नूतन बन्धका अभाव हो जाता है। इनका क्षय भी क्षीणमोह नामके बारहवें गुणस्थानके अन्तिम दो समयों के अवशिष्ट रहने पर होता है। इन दोनोंका उदय दसवें और ग्यारहवें गुणस्थानक तकके जीवोंमें भी होता है। इसी लिये निद्राप्रमादकी दुरन्तता है, अर्थात् इसका अन्त होना बड़ा कठिन है।

સમ્યકત્વને પ્રાપ્ત કરી શકતા નથી. તેનો બંધ મિથ્યાદૃષ્ટિ નામના પ્રથમ ગુણસ્થાનમાં, અને સાસ્વાદન નામના બીજા ગુણસ્થાનમાં અનન્તાનુબંધી કષાયના બંધની સાથે જીવોને થાય છે, અને ક્ષય નવમાં અનિવૃત્તિબાદરગુણસ્થાનના નવ ભાગોમાંથી પ્રથમ ભાગના કાળના જ્યારે કેટલાક સંખ્યાત અંશ વ્યતીત થઈ જાય છે ત્યારે થાય છે.

નિદ્રા અને પ્રચલાનો ઉદય સામાન્ય દર્શનાવરણીય કર્મના ઉદયથી થાય છે. તેના બંધનો અભાવ અપૂર્વકરણ નામના આઠમા ગુણસ્થાનના સંખ્યાતમાં ભાગના અંતમા થાય છે. ત્યારબાદ તેને નૂતન બંધનો અભાવ થઇ જાય છે. તેનો ક્ષય પણ ક્ષીણમોહ નામના બારમા ગુણસ્થાનના અંતિમ બે સમયોના અવશિષ્ટ રહેવા પર થાય છે. એ બન્નેનો ઉદય દશમા અને અગીયારમા ગુણસ્થાન સુધીના જીવોમાં પણ થાય છે, માટે નિદ્રાપ્રમાદની દુરન્તતા છે, અર્થાત્ તેનો અંત થવો ઘણું કઠિન છે.

द्रव्यभावसुप्तविषये विवेकदक्षः सुखमनुभवति। यथा पथि तस्करादिभये समुपस्थिते विवेकी स्वात्मनः सापायनिरपायविषयकं विवेकमालम्ब्य पलायनादिकां क्रियां कुर्वाणः सुखभाग्भवति। एवं मुनिरपि सम्यग्ज्ञानात्मकविवेकवत्त्वेन सदा प्रमादादिभयाद् ज्ञानाचारादिसमाराधनावधानरूपां जाग्रदवस्थां बिभ्राणः शिवसुखभाग्भवति। उक्तञ्च—

द्रव्यसुप्त और भावसुप्तके विषयमें विवेकदक्ष प्राणी सुखका अनुभव करता है, अर्थात् जो मुनि इस बातको समझता है कि द्रव्यसुप्त अवस्था और भावसुप्त-अवस्था आत्माके लिये सदा दुःखदायी हैं, इसलिये इन अवस्थाओंका सदा परिहार करना चाहिये, इन अवस्थाओंमें वर्तमान प्राणीका कभी भी कल्याण नहीं होता है। इस तरह का विवेक जिस आत्मामें इन दोनों अवस्थाओंके प्रति जाग्रत हो जाता है वह इनसे सदा दूर रहता है। जिस प्रकार मार्ग में चौरादिकोंका भय उपस्थित होनेपर विवेकी व्यक्ति इस बातका विचार करता है कि इस ओर भय है इस ओर भय नहीं है। ऐसा विचार कर निर्भय स्थानकी ओर भागता है और सुखकी सांस लेता है। उसी प्रकार मुनि भी सम्यग्ज्ञानात्मक-विवेकशाली होनेसे सदा प्रमादादिकोंके भयसे ज्ञानाचारादिकोंकी सम्यक् आराधनामें अवधानरूप जागरूक अवस्थाको धारण करता हुआ मोक्ष सुखका भागी होता है। कहा भी है—

દ્રવ્યસુપ્ત અને ભાવસુપ્તના વિષયમાં વિવેકદક્ષ પ્રાણી સુખનો અનુભવ કરે છે, અર્થાત્ મુનિ આ વાતને સમજે છે કે ‘દ્રવ્યસુપ્ત અવસ્થા અને ભાવસુપ્ત અવસ્થા આત્મા માટે સદા દુઃખદાયી છે માટે તેવી અવસ્થાઓનો સદા પરિહાર કરવો જોઈએ. તેવી અવસ્થાઓમાં વર્તમાન પ્રાણીનું કદિ પણ કલ્યાણ થતું નથી’ એવા પ્રકારનો વિવેક જે આત્મામાં એ બન્ને અવસ્થાઓ પ્રતિ જાગૃત થઈ જાય છે તે તેનાથી સદા દૂર રહે છે. જે પ્રકારે માર્ગમાં ચોર આદિનો ભય ઉપસ્થિત હોવા છતાં વિવેકી વ્યક્તિ એ વાતનો વિચાર કરે છે કે, આ બાજુ ભય છે, આ બાજુ ભય નથી. પછી નિર્ભય સ્થાનની તરફ ભાગે છે અને સુખનો શ્વાસ લે છે. તે પ્રકારે મુનિ પણ સમ્યગ્જ્ઞાનાત્મક-વિવેકશાળી હોવાથી સદા પ્રમાદાદિકોના ભયથી જ્ઞાનાચારાદિકોની સમ્યક્ આરાધનામાં અવધાનરૂપ જાગરૂક અવસ્થાને ધારણ કરીને મોક્ષ સુખના ભાગી થાય છે. કહ્યું છે.—

" जागरह नरा णिच्चं जागरमाणस्स वड्ढए बुद्धी ।
जो सुयइ सो न धण्णो, जो जग्गइ सो सया धन्नो " । इति ।१ ॥

निद्राप्रमादश्चाज्ञानाद्भवति, तच्च प्राणिनामहितायेति श्रीसुधर्मास्वामी जम्बूस्वामिनमाह—' लोयंसि जाण, इत्यादि ।

मूलम्—लोयंसि जाण अहियाय दुक्खं, समयं लोगस्स जाणित्ता इत्थ सत्थोवरए ॥ सू० २ ॥

छाया—लोके जानीहि अहिताय दुःखं, समयं लोकस्य ज्ञात्वा अत्र शस्त्रोपरतः॥२॥

टीका—हे जम्बूः ! लोके=षड्जीवनिकायरूपे जिनशासने वा, दुःखं=दुःख-

---

" जागरह णरा णिच्चं, जागरमाणस्स वड्ढए बुद्धी ।
जो सुयइ सो न धण्णो, जो जग्गइ सो सया धन्नो ॥१॥ " इति ।

गाथाका अर्थ यह है कि–' हे भव्यो ! तुम सदा जागते रहो । क्यों कि जागनेवालोंकी बुद्धि बढ़ती है । जो सोता है वह धन्य नहीं है, जो जागता है वह सदा धन्य है ' ॥१॥

यह पहिले कहा जा चुका है कि सुप्त और जाग्रत अवस्था धर्माराधनकी अपेक्षासे ही समझना चाहिये ॥ सू० १ ॥

निद्राप्रमाद अज्ञानसे होता है, और अज्ञान प्राणियोंका सदा अहितकारी है, ऐसा विचार कर श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं– " लोयंसि जाण " इत्यादि ।

हे जम्बू ! षड्जीवनिकायस्वरूप इस लोकमें, अथवा जिनशासनमें,

" जागरह णरा णिच्चं, जागरमाणस्स वड्ढए बुद्धी ।
जो सुयइ सो न धण्णो, जो जग्गइ सो सया धन्नो " ॥१॥ इति ।

ગાથાનો અર્થ આ છે કે–હે ભવ્યો ! તમે સદા જાગતા રહો, કારણ કે જાગવાવાળાની બુદ્ધિ વધે છે જે સુતેલા છે તે ધન્ય નથી જે જાગતા છે તે જ સદા ધન્ય છે.

એ પહેલાં કહેવામાં આવ્યું છે કે સુપ્ત અને જાગૃત અવસ્થા ધર્મારાધનની અપેક્ષાથી જ સમજવી જોઈએ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

નિદ્રાપ્રમાદ અજ્ઞાનથી થાય છે, અને અજ્ઞાન પ્રાણિઓ માટે સદા અહિતકારી છે. એવો વિચાર કરી શ્રી સુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામીને કહે છે—' લોયંસિ જાણ ' ઇત્યાદિ.

હે જમ્બૂ ! ષડ્જીવનિકાયસ્વરૂપ આ લોકમાં અથવા જીનશાસનમાં દુઃખ

ति=पीडयतीति दुःखम्, इह दुःखशब्देनाज्ञानं प्राणातिपातादिरूपं कर्म वा गृह्यते खजनकत्वात्, तत् अहिताय=ऐहिकपारत्रिकदुःखाय जायते। तत्रैहिकं दुःखं णातिपातादिसावद्यानुष्ठानप्रवृत्तानां भावसुप्तानां भूपादिकृतं बन्धवधताडनशूरोपणादिकम्, पारत्रिकश्च दुखं नरकनिगोदादियातनारूपमिति ऐहिकपारत्रिकखहेतुभूतमज्ञानं कर्म वाऽस्तीति त्वं जानीहि=ज्ञपरिज्ञया बुध्यस्व। एतस्य फलश्च

ःख-अज्ञान अथवा प्राणातिपातादिरूप कार्य जीवोंके लिये इस लोकमें था परलोकमें अहितकारी माने गये हैं। यहां 'दुःख' शब्दका अर्थ-दुःखयति=पीडयतीति दुःखम्" जो जीवोंको पीडा पहुंचावे ऐसा अज्ञान, थवा हिंसादिक पापकर्म-है। अज्ञान अथवा हिंसादिक, जीवोंको सदा ःखदायी होते हैं, इस अपेक्षासे अज्ञानादिक दुःखके कारण हैं। फिर ी यहां पर इन्हें जो दुःखरूप कहा गया है वह कारणमें कार्यके उपचारसे कहा गया है। इन प्राणातिपातादिकरूप सावद्य अनुष्ठानोंमें वृत्ति करनेवाले भावसुप्त जीवोंको इस लोकमें राजा आदिके द्वारा कये गये बन्ध, वध, ताडन और शूलारोपण आदि अनेक कष्ट भोगने ड़ते हैं, तथा परलोकमें नरकनिगोदादिककी यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। सलिये जम्बूस्वामीको उद्देश करके सुधर्मास्वामी कहते हैं—

हे जम्बू! इस लोक और परलोकसम्बन्धी अनेक दुःखोंके कारण ाणातिपातादिक कर्म तथा अज्ञान हैं, ऐसा तुम ज्ञपरिज्ञासे जानो।

=અજ્ઞાન અથવા પ્રાણુતિપાતાદિરૂપ કાર્ય આ લોકમાં તથા પરલોકમાં જીવો માટે અહિતકારી માનવામાં આવેલ છે. અહીં દુઃખ શબ્દનો અર્થ-" दुःखयति पीडयतीति दुःखम् " જે જીવોને પીડા આપે એવું અજ્ઞાન અને હિંસાદિક પાપકર્મ છે. અજ્ઞાન અથવા હિંસાદિક કર્મ જીવોને સદા દુઃખદાયી થાય છે. આ અપેક્ષાથી અજ્ઞાનાદિક, દુઃખના કારણ છે તો પણ આ ઠેકાણે તેને જે દુઃખરૂપ કહેવામાં આવેલ છે તે કારણમાં કાર્યના ઉપચારથી કહેવામા આવેલ છે. આ પ્રાણુતિપાતાદિકરૂપ સાવદ્ય અનુષ્ઠાનોમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા ભાવસુપ્ત જીવોને આ લોકમાં રાજા આદિ દ્વારા કરવામાં આવેલ બંધ વધ તાડન અને શુળી આદિ અનેક કષ્ટોને ભોગવવા પડે છે, તથા પરલોકમાં નરકનિગોદાદિકની યાતનાઓ સહન કરવી પડે છે. એથી જમ્બૂસ્વામીને ઉદ્દેશ કરીને સુધર્માસ્વામી કહે છે.—

હે જમ્બૂ! આ લોક અને પરલોક સંબંધી અનેક દુઃખોનું કારણ પ્રાણુતિપાતાદિક કર્મ તથા અજ્ઞાન છે, એવું જ્ઞપરિજ્ઞાથી જાણો. એ જાણવારૂપ

" जागरह नरा णिच्चं जागरमाणस्स वड्ढए बुद्धी ।

जो सुयइ सो न धण्णो, जो जग्गइ सो सया धन्नो " । इति १ ॥

निद्राप्रमादश्चाज्ञानाद्भवति, तच्च प्राणिनामहितायेति श्रीसुधर्मास्वामी जम्बूस्वामिनमाह–'लोयंसि जाण, इत्यादि ।

मूलम्–**लोयंसि जाण अहियाय दुक्खं, समयं लोगस्स जाणित्ता इत्थ सत्थोवरए ॥ सू० २ ॥**

छाया–लोके जानीहि अहिताय दुःखं, समयं लोकस्य ज्ञात्वा अत्र शस्त्रोपरतः॥२॥

टीका–हे जम्बूः ! लोके=षड्जीवनिकायरूपे जिनशासने वा, दुःखं=दुःख-

---

"जागरह णरा णिच्चं, जागरमाणस्स वड्ढए बुद्धी ।

जो सुयइ सो न धण्णो, जो जग्गइ सो सया धन्नो ॥१॥" इति ।

गाथाका अर्थ यह है कि–'हे भव्यो ! तुम सदा जागते रहो । क्यों कि जागनेवालोंकी बुद्धि बढ़ती है । जो सोता है वह धन्य नहीं है, जो जागता है वह सदा धन्य है' ॥१॥

यह पहिले कहा जा चुका है कि सुप्त और जाग्रत अवस्था धर्माराधनकी अपेक्षासे ही समझना चाहिये ॥ सू० १ ॥

निद्राप्रमाद अज्ञानसे होता है, और अज्ञान प्राणियोंका सदा अहितकारी है, ऐसा विचार कर श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं– " लोयंसि जाण " इत्यादि ।

हे जम्बू ! षड्जीवनिकायस्वरूप इस लोकमें, अथवा जिनशासनमें,

" जागरह णरा णिच्चं, जागरमाणस्स वड्ढए बुद्धी ।

जो सुयइ सो न धण्णो, जो जग्गइ सो सया धन्नो" ॥१॥ इति ।

ગાથાનો અર્થ આ છે કે–હે ભવ્યો ! તમે સદા જાગતા રહો, કારણ કે જાગવાવાળાની બુદ્ધિ વધે છે. જે સુતેલા છે તે ધન્ય નથી જે જાગતા છે તે જ સદા ધન્ય છે.

એ પહેલાં કહેવામા આવ્યું છે કે સુપ્ત અને જાગૃત અવસ્થા ધર્મારાધનની અપેક્ષાથી જ સમજવી જોઇએ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

નિદ્રાપ્રમાદ અજ્ઞાનથી થાય છે, અને અજ્ઞાન પ્રાણિઓ માટે સદા અહિતકારી છે. એવો વિચાર કરી શ્રી સુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામીને કહે છે—' लोयंसि जाण-' ઇત્યાદિ.

હે જમ્બૂ ! ષડ્જીવનિકાયસ્વરૂપ આ લોકમાં અથવા જિનશાસનમાં દુ:ખ

यति=पीडयतीति दुःखम्, इह दुःखशब्देनाज्ञानं प्राणातिपातादिरूपं कर्म वा गृह्यते दुःखजनकत्वात्, तत् अहिताय=ऐहिकपारत्रिकदुःखाय जायते। तत्रैहिकं दुःखं प्राणातिपातादिसावद्यानुष्ठानप्रवृत्तानां भावसुप्तानां भूपादिकृतं बन्धवधताडनशूलारोपणादिकम्, पारत्रिकश्च दुखं नरकनिगोदादियातनारूपमिति ऐहिकपारत्रिक-दुःखहेतुभूतमज्ञानं कर्म वाऽस्तीति त्वं जानीहि=ज्ञपरिज्ञया बुध्यस्व। एतस्य फलञ्च

दुःख-अज्ञान अथवा प्राणातिपातादिरूप कार्य जीवोंके लिये इस लोकमें तथा परलोकमें अहितकारी माने गये हैं। यहां 'दुःख' शब्दका अर्थ-"दुःखयति=पीडयतीति दुःखम्" जो जीवोंको पीडा पहुंचावे ऐसा अज्ञान, अथवा हिंसादिक पापकर्म-है। अज्ञान अथवा हिंसादिक, जीवोंको सदा दुःखदायी होते हैं, इस अपेक्षासे अज्ञानादिक दुःखके कारण हैं। फिर भी यहां पर इन्हें जो दुःखरूप कहा गया है वह कारणमें कार्यके उपचारसे कहा गया है। इन प्राणातिपातादिकरूप सावद्य अनुष्ठानोंमें प्रवृत्ति करनेवाले भावसुप्त जीवोंको इस लोकमें राजा आदिके द्वारा किये गये बन्ध, वध, ताडन और शूलारोपण आदि अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं, तथा परलोकमें नरकनिगोदादिककी यातनाएँ सहनी पड़ती हैं। इसलिये जम्बूस्वामीको उद्देश करके सुधर्मास्वामी कहते हैं—

हे जम्बू! इस लोक और परलोकसम्बन्धी अनेक दुःखोंके कारण प्राणातिपातादिक कर्म तथा अज्ञान हैं, ऐसा तुम ज्ञपरिज्ञासे जानो।

=અજ્ઞાન અથવા પ્રાણાતિપાતાદિરૂપ કાર્ય આ લોકમાં તથા પરલોકમાં જીવો માટે અહિતકારી માનવામાં આવેલ છે. અહીં દુઃખ શબ્દનો અર્થ-" दुःखयति पीडयतीति दुःखम् " જે જીવોને પીડા આપે એવું અજ્ઞાન અને હિંસાદિક પાપકર્મ છે. અજ્ઞાન અથવા હિંસાદિક કર્મ જીવોને સદા દુઃખદાયી થાય છે. આ અપેક્ષાથી અજ્ઞાનાદિક, દુઃખના કારણ છે તો પણ આ ઠેકાણે તેને જે દુઃખરૂપ કહેવામાં આવેલ છે તે કારણમાં કાર્યના ઉપચારથી કહેવામાં આવેલ છે. આ પ્રાણાતિપાતાદિકરૂપ સાવદ્ય અનુષ્ઠાનોમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા ભાવસુપ્ત જીવોને આ લોકમાં રાજા આદિ દ્વારા કરવામાં આવેલ બંધ વધ તાડન અને શુળી આદિ અનેક કષ્ટોને ભોગવવા પડે છે, તથા પરલોકમાં નરકનિગોદાદિકની યાતનાઓ સહન કરવી પડે છે. એથી જમ્બૂસ્વામીને ઉદ્દેશ કરીને સુધર્માસ્વામી કહે છે.—

હે જમ્બૂ! આ લોક અને પરલોક સંબંધી અનેક દુઃખોનું કારણ પ્રાણાતિપાતાદિક કર્મ તથા અજ્ઞાન છે, એવું જ્ઞપરિજ્ઞાથી જાણો. એ જાણવારૂપ

दुःखहेतोरज्ञानरूपाद् द्रव्यभावस्वापान्निवर्तनमिति। ततः किं कुर्यादित्याह-लोकस्ये-त्यादि ' लोकस्य=प्राणिसङ्घस्य समयम्=आचारं ज्ञात्वा=दुःखहेतुं विचार्य, लोको हि भोगेच्छया प्राणिपीडनादिजनितं कर्म परिगृह्य नरकेषूत्पद्यते, ततः कथं चिन्निष्क्रान्तो धर्मोपार्जनहेतुभूतं मनुष्यजन्मावाप्य पुनरपि तत्तदेव कर्म करोति येन येन पुनरधोऽधः स्थानं व्रजति, न कदाचित्संसारदावानलाद् बहिर्यातीति लोकाचारः।

इस जाननेरूप क्रियाका फल अज्ञानरूप द्रव्यनिद्रा और भावनिद्रा से जीवका निवृत्त होना है। जीव जब इनसे निवृत्तिसंपन्न हो जाता है तब वह यह समझने लगता है कि-यह लोक भोगोंकी इच्छासे प्राणिपीडन आदि कृत्य करता है, और इस प्रकारके कृत्य करनेसे वह अशुभ कर्मोंका आस्रव कर बन्धक बनता है। उनके उदयमें इसको नरकादि अनेक कुगतियोंमें जन्म मरण करना पड़ता है। वहांसे निकलने पर यदि इसको किसी शुभ कर्मके उदयसे मनुष्यभवकी-जिसमें कि इसको धर्मोपार्जन करनेका अवसर मिलता है-प्राप्ति हो जाती है तो भी यह जीव बारंबार उन्हीं कुकृत्योंको करता है, जिनकी वजहसे इसको पुनः नरकादि गतियों में जाना पड़ता है। इस तरहसे इस जीवका कभी भी संसाररूपी दावानलसे बाहर आना नहीं हो सकता है। यही इस लोकका आचार है। इस आचारको-जिससे कि इसको अनेक अनेक संकटोंका सामना करना पड़ता है-जान कर तुम इस द्रव्यरूप एवं भावरूप शस्त्रसे सदा निवृत्त होओ।

ક્રિયાનું ફળ દુઃખનું કારણ જે અજ્ઞાનરૂપ દ્રવ્યનિદ્રા અને ભાવનિદ્રા છે તેનાથી જીવને નિવૃત્ત થવું છે જીવ જ્યારે તેનાથી નિવૃત્તિસંપન્ન થઇ જાય છે ત્યારે તે એવું સમજવા લાગે છે કે આ લોક, ભોગોની ઇચ્છાથી પ્રાણિ-પીડન આદિ કૃત્ય કરે છે અને આવા પ્રકારનું કૃત્ય કરવાથી તે અશુભ કર્મોનો આસ્રવ કરી બંધક બને છે તેના ઉદયમાં તેને નરકાદિ અનેક કુગતિઓમાં જન્મ મરણ કરવું પડે છે. ત્યાંથી નિકળીને કદાચ કોઈ શુભ કર્મના ઉદયથી મનુષ્યભવની-કે જેમાં તેને ધર્મોપાર્જન કરવાનો અવસર મળે છે-પ્રાપ્તિ થઇ જાય છે તો પણ તે જીવ વારંવાર તેજ કુકૃત્યો કરે છે કે જેનાથી તેને પુનઃ નરકાદિ ગતિઓમાં જવું પડે છે. આવી રીતે આ જીવને કદિ પણ સંસારરૂપી દાવાનળથી બહાર આવવાનું બની શકતું નથી. એજ આ લોકનો આચાર છે. આવા આચારને-કે જેનાથી તેને અનેક સંકટોનો સામનો કરવો પડે છે-જાણીને તમે આ દ્રવ્યરૂપ તેમજ ભાવરૂપ શસ્ત્રથી સદા નિવૃત્ત થાઓ.

यद्वा लोकस्य=जिनशासनस्य समयम्=आचारं ज्ञानाचारादिरूपं पञ्चविधं ज्ञात्वा=मोक्षसुखहेतुभूतं सम्यगवबुध्य, अत्र=षड्जीवनिकाये शस्त्रोपरतः=शस्त्रात् द्रव्यभावभेदभिन्नात् उपरतः=निवृत्तो भव। धर्मजागरणेन जागृहीत्यर्थः।

सर्वो हि लोकः शब्दादिविषयभोगेच्छया प्राणातिपातादिकं नानाविधं कर्म करोति, तेन नरकादियातनास्थानेषु घोरतरं दुःखमाप्नोति, अतः षड्जीवनिकाये शस्त्रोपरतो भवेति भावः।

अथवा लोकस्येति षष्ठ्याः सप्तम्यर्थे विधानात् लोके=प्राणिसङ्घे 'समयं' इत्यस्य समतामितिच्छाया तेन समतां स्वकीयदुःखादिना परदुःखादेस्तुल्यतां,

---

"समयं लोगस्स जाणित्ता इत्थ सत्थोवरए" इसका यह भी अर्थ होता है कि–'हे जम्बू! तुम जिनशासनके ज्ञानाचार आदिरूप पांच प्रकारके आचारको मोक्षसुखका कारण अच्छी तरहसे जानकर षड्जीवनिकायके विषयमें द्रव्य और भावरूप शस्त्रसे निवृत्त होओ, अर्थात्– सदा धर्मका आचरण करनेमें सतर्क रहो। भावनिद्रासे युक्त न बनो। सारांश इसका यही है कि–यह समस्त लोक शब्दादिक विषय भोगोंकी इच्छासे प्राणातिपातादिक अनेक प्रकारके दुष्कार्योंको करता है, उन से नरकादिक जो अनेक यातनाके स्थान हैं उनमें घोरातिघोर दुःखोंको भोगता है। इसलिये हे जम्बू! षड्जीवनिकायके विषयमें शस्त्रसे सदा अलग रहो।

अथवा "लोगस्स" इस षष्ठी विभक्तिके स्थानमें "लोके" इस सप्तमी विभक्तिका पाठ, तथा 'समयं'की छाया "समतां" मान कर ऐसा अर्थ हो जाता है कि–हे जम्बू! तुम सदा इस बातका भली प्रकार

"समयं लोगस्स जाणित्ता इत्थ सत्थोवरए" એનો એ પણ અર્થ થાય છે કે–હે જમ્બૂ! તમે જીનશાસનના જ્ઞાનાચાર આદિરૂપ પાંચ પ્રકારના આચારને મોક્ષ-સુખનું કારણ સારી રીતે જાણીને ષડ્જીવનિકાયના વિષયમાં દ્રવ્ય અને ભાવરૂપ શસ્ત્રથી નિવૃત્ત થાઓ. અર્થાત્ સદા ધર્મનું આચરણ કરવામા સતર્ક રહો. ભાવ નિદ્રાથી યુક્ત ન બનો. સારાંશ તેનો એ છે કે–આ સમસ્ત લોક, શબ્દાદિક વિષય-ભોગોની ઈચ્છાથી પ્રાણાતિપાતાદિક અનેક પ્રકારના દુષ્કાર્યો કરે છે, તેનાથી નરકાદિક જે અનેક યાતનાના સ્થાન છે તેમાં ઘોરાતિઘોર દુઃખો ભોગવે છે. તે માટે હે જમ્બૂ! ષડ્જીવનિકાયના વિષયમાં શસ્ત્રથી સદા અલગ રહો.

અથવા "लोगस्स" આ છઠ્ઠી વિભક્તિના સ્થાનમાં "लोके" આ સપ્તમી વિભક્તિનો પાઠ તથા 'समयं'ની છાયા "समतां" માનીને એવો અર્થ થઈ જાય છે કે–હે જમ્બૂ! તમે સદા આ વાતનો ભલી પ્રકારે વિચાર કરો કે જે પ્રકારે

'यथा मम दुःखादिकं भवति तथैवान्येषामप्येकेन्द्रियादीनां मृत्युभीरूणां सुखेच्छूनां तदुत्पद्यते' इत्यनुभवसिद्धामात्मोपमां ज्ञात्वा अत्र=अस्मिन् षड्जीवनिकायरूपे लोके शस्त्रोपरतो भवेत्यर्थः ॥ सू० २ ॥

षड्जीवनिकायलोके शस्त्रोपरतः सन् यथा मुनित्वं प्राप्नोति तदाह— 'जस्सिमे ' इत्यादि ।

मूलम्—जस्सिमे सद्दा य रूवा य रसा य गंधा य फासा य अभिसमन्नागया भवंति, से आयवं नाणवं वयवं धम्मवं बंभवं पन्नाणेहिं परियाणइ लोयं, मुणीति वुच्चे, धम्मविऊ उज्जू, आवट्टसोयसंगमभिजाणइ ॥ सू० ३ ॥

विचार करो कि जिस प्रकार हमें हिंसादिक कारणोंके उपस्थित होनेपर कष्टका अनुभव होता है उसी प्रकार दूसरे एकेन्द्रियादिक प्राणियोंको —जो सदा मृत्युसे डरते हैं और सुखके अभिलाषी हैं—हिंसादिक कारणोंके उपस्थित होने पर दुःख होता है। इस प्रकार अनुभवसिद्ध —"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्" इस वाक्यको अपने हृदयपटल पर उतार कर कभी भी किसी भी जीवको कष्ट न पहुंचे ऐसी प्रवृत्ति करो। परके दुःखोंका अपने दुःखोंके साथ मिलान कर सदा ज्ञानीको इस बातका दृढ़ विचार करना चाहिए कि संसार के एकेन्द्रियसे लगा कर पंचेन्द्रिय पर्यन्त समस्त जीव मृत्युसे डरतें हैं और सुखको चाहते हैं, इसलिये षड्जीवनिकायरूप लोकमें अपनी प्रवृत्ति सदा यतनाशाली बनानी चाहिये ॥ सू० २ ॥

અમને હિંસાદિક કારણો ઉપસ્થિત થવાથી કષ્ટનો અનુભવ થાય છે તે પ્રકારે બીજા એકેન્દ્રિયાદિક પ્રાણીઓને—કે જે સદા મૃત્યુથી ડરે છે અને સુખના અભિલાષી છે—હિંસાદિક કારણો ઉપસ્થિત થવાથી દુઃખ થાય છે, આવા પ્રકારે અનુભવસિદ્ધ—"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्" આ વાક્યને પોતાના હૃદયમાં ઉતારીને કોઇ વખત કોઈ પણ જીવને કષ્ટ ન પહોંચે તેવી પ્રવૃત્તિ કરો. પારકાના દુઃખોને પોતાના દુઃખોની સાથે મેળવી સદા જ્ઞાનીએ એ વાતનો દૃઢ નિશ્ચય કરવો જોઇએ કે સંસારના એકેન્દ્રિયથી લઈ પંચેન્દ્રિય પર્યન્ત સમસ્ત જીવ મૃત્યુથી ડરે છે અને સુખને ચાહે છે માટે ષડ્જીવનિકાય રૂપ લોકમાં પોતાની પ્રવૃત્તિ સદા યતનાશાળી બનાવવા જોઈએ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

छाया—यस्येमे शब्दाश्च रूपाणि च रसाश्च गन्धाश्च स्पर्शाश्चाभिसमन्वागता भवन्ति, स आत्मवान् ज्ञानवान् वेदवान् धर्मवान् ब्रह्मवान् प्रज्ञानैः परिजानाति लोकम्, मुनिरित्युच्यते, धर्मविद् ऋजुः, आवर्तस्रोतःसङ्गमभिजानाति ॥ सू० ३॥

टीका—यस्य मुनेः, इमे=प्रत्यक्षमनुभूयमानाः, शब्दाः रूपाणि रसा गन्धाः स्पर्शाश्च अनुकूलप्रतिकूलरूपाः, अभिसमन्वागताः-अभि=आभिमुख्येन, सम्यग्=इष्टानिष्टावधारणेन, अनु=शब्दादिस्वरूपावगमात् पश्चात्, आगताः=विज्ञाताः, भवन्ति-शब्दादिविषयाः परमार्थतः संसारकारणतयाऽऽत्मकल्याणाय न भवन्ति,

---

षडजीवनिकायरूप इस लोकमें द्रव्य और भावरूप शस्त्रसे उपरत होता हुआ जीव जिस प्रकारसे मुनिपनेको पाता है उसीका प्रतिपादन करते हैं—'जस्सिमे' इत्यादि।

जिस मुनिके लिये प्रत्यक्ष अनुभूत शब्द; रूप, रस, गन्ध और स्पर्श, ये पौद्गलिक गुण अनुकूल और प्रतिकूल होते हुए इष्ट और अनिष्टकी कल्पनाके कारण नहीं बनते हैं, अर्थात् वे शब्दादिक विषय पुद्गलके गुण हैं, इनसे मेरी आत्माका कोई भी उपकार या अपकार नहीं हो सकता है। इनमें इष्टानिष्टकी कल्पना करनेसे ये मेरे लिये संसारका कारण बनेंगे, क्यों कि ये स्वयं संसारके ही कारण हैं-मुक्तिके नहीं। मुक्तिके कारण वे ही होते हैं जिनसे इस आत्माका कल्याण होता है। इनसे तो मेरी आत्माका कुछ भी कल्याण नहीं हो सकता है, अतः इनमें इष्टानिष्टकी कल्पना कर मैं क्यों अपना विगाड़ करूँ। इनके स्वरूपको जाननेके बाद इस प्रकारके दृढ अध्यवसायसे इन शब्दादिकों

षड्जीवनिकायरूप आ लोकमां द्रव्य अने भावरूप शस्त्रथी उपरत बनीने जीव जे प्रकारे मुनिपणाने प्राप्त थाय छे तेनुं प्रतिपादन करे छेः—'जस्सिमे' इत्यादि.

जे मुनिना माटे प्रत्यक्ष अनुभूत-शब्द, रूप, रस, गंध अने स्पर्श, ए पौद्गलिक गुण अनुकूळ अने प्रतिकूळ होवा छतां इष्ट अने अनिष्टनी कल्पनाना कारण बनता नथी. अर्थात् ते शब्दादिक विषय पुद्गलनो गुण छे. तेनाथी मारा आत्माने कोई पण उपकार या अपकार बनी शकतो नथी. तेमां इष्टानिष्टनी कल्पना करवाथी ए मारा माटे संसारनुं कारण बनशे. कारण के ए स्वयं ज संसारनुं ज कारण छे, मुक्तिनुं नहि मुक्तिनुं कारण ते बने छे जेनाथी आ आत्मानुं कल्याण थाय छे, आनाथी तो मारा आत्मानुं कांई पण कल्याण बनी शकतुं नथी. माटे तेमां इष्टानिष्टनी कल्पना करीने शा माटे पोतानो बगाड करूं. तेना स्वरूपने जाण्या बाद आ प्रकारना दृढ अध्यवसायथी ते शब्दादिकोमां

अतस्तत्र मनोज्ञामनोज्ञविषयेषु यस्य रागद्वेषौ नोत्पद्येते इत्यर्थः, स आत्मवान्=ज्ञानादिगुणसम्पन्नः, यद्वा–आत्महिताचरणप्रवृत्तः, शब्दादिविषयेषु प्रवर्तमानमात्मानं तेभ्यः पृथक्कृत्य तुषाद् धान्यमिव रक्षितेत्यर्थः । ज्ञानवान्=हेयोपादेयविवेकवान्, शब्दादिविषये रागद्वेषौ कारणं, रागद्वेषतः कर्मबन्धः, तस्मात् संसारपरिभ्रमणं भवतीत्येवं विज्ञातेत्यर्थः। तथा वेदवान् वेद्यते ज्ञायते जीवाजीवादिस्वरूपमनेनेति वेदः=आचाराङ्गाद्यागमः, सोऽस्यास्तीति वेदवान्–आचाराद्यागमाधिगन्तेत्यर्थः, तथा–धर्मवान्–दुर्गतौ प्रपतन्तं जीवं धारयति रक्षतीति धर्मः–श्रुतचारित्रलक्षणः

में–चाहे ये अनुकूल हों चाहे प्रतिकूल हों–जिस प्राणीको राग और द्वेष नहीं होते हैं वही प्राणी आत्मवान् है, अर्थात् ज्ञानादि गुणोंसे संपन्न है, अथवा आत्महितकारी आचरणमें लवलीन है। जिस प्रकार तुषसे धान्य अलग किया जाता है उसी प्रकार शब्दादि विषयोंमें प्रवर्तमान अपनी आत्माको उनसे अलग कर वह उसकी रक्षा करनेवाला है। ज्ञानवान् है–हेय और उपादेयके विवेकवाला है। इष्ट और अनिष्ट शब्दादिक विषयोंमें प्रवृत्ति और निवृत्तिके कारण राग और द्वेष हैं। राग और द्वेषसे नवीन कर्मोंका बन्ध, और इससे जीवोंका संसारमें परिभ्रमण होता है। वेदवान् है–जीवादिक पदार्थोंका स्वरूप जिससे जाना जाता है उसका नाम वेद है, वे आचाराङ्ग आदि आगम हैं, इनका जो जाननेवाला है उसका नाम वेदवान् है। धर्मवान् है–दुर्गतिमें पड़ते हुए जीवों की रक्षा करता है उसका नाम धर्म है, वह धर्म श्रुतचारित्ररूप है, यह

ભલે તે અનુકૂળ હોય કે પ્રતિકૂળ હોય, જે પ્રાણીને રાગ અને દ્વેષ થતો નથી. તે પ્રાણી જ આત્મવાન છે. અર્થાત્ જ્ઞાનાદિ ગુણોથી સંપન્ન છે, અથવા આત્મહિતકારી આચરણમાં લવલીન છે. જેવી રીતે તુષથી ધાન્ય અલગ કરવામાં આવે છે તેવી રીતે શબ્દાદિક વિષયોમાં પ્રવર્તમાન પોતાના આત્માને તેનાથી અલગ કરી તે તેની રક્ષા કરવાવાળા છે, જ્ઞાનવાન્ છે–હેય અને ઉપાદેયના વિવેકવાળા છે–ઇષ્ટ અને અનિષ્ટ શબ્દાદિક વિષયોમાં પ્રવૃત્તિ અને નિવૃત્તિના કારણ રાગ અને દ્વેષ છે, રાગ અને દ્વેષથી નવીન કર્મોનો બંધ અને તેનાથી જીવોનું સંસારમાં પરિભ્રમણ થાય છે. આવા પ્રકારના જ્ઞાનથી તે સંપન્ન છે. વેદવાન છે–જીવાદિક પદાર્થોના સ્વરૂપ જેનાથી જાણી શકે છે તેનું નામ વેદ છે. તે આચારાંગ આદિ આગમ છે. તેના જે જાણનાર છે તેનું નામ વેદવાન્ છે. ધર્મવાન્ છે–દુર્ગતિમાં પડતા જીવોની જે રક્ષા કરે છે તેનું નામ ધર્મ છે. તે ધર્મ શ્રુતચારિત્રરૂપ છે. તે જેની પાસે છે અર્થાત્ જે આ ધર્મનો પાલક છે, તેનું

सोऽस्यास्तीति धर्मवान्। तथा ब्रह्मवान्-ब्रह्म=मोक्षसुखं, तदस्यास्तीति ब्रह्मवान्-मोक्षसुखाभिज्ञ इत्यर्थः, यद्वा ब्रह्म=अष्टादशविधं ब्रह्मचर्यं, तदस्यास्तीति ब्रह्मवान्, यद्वा-ब्रह्म=कामसेवनपरित्यागः तदस्यास्तीति ब्रह्मवान्, इत्थंभूतः संयमी प्रज्ञानैः=प्रकर्षेण ज्ञायते ज्ञेयं जीवाजीवादि यथावस्थितस्वरूपं यैस्तानि प्रज्ञानानि-मत्यादीनि, तैर्लोकं=पड्जीवनिकायस्वरूपं परिजानाति। यद्वा लोकं=शब्दादिविषयलोकं परिजानाति=ज्ञपरिज्ञया बन्धकारणत्वेन विज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरतीत्यर्थः।

यः खल्वात्मवान् ज्ञानवान् वेदवान् धर्मवान् ब्रह्मवान् स एव च मुनिरित्युच्यते। किं च-धर्मवित्=जीवाजीवद्रव्यस्वभावाभिज्ञः, ऋजुः=ऋजुमार्गस्य सम्यग्दर्शनज्ञान-

जिसके पास है, अर्थात् जो इस धर्मका पालक है उसका नाम धर्मवान् है। ब्रह्मवान् है-ब्रह्म शब्दका अर्थ मोक्षसुख है, वह जिसको है उसका नाम ब्रह्मवान् है अर्थात् मोक्षसुखका ज्ञाता है, अथवा १८ अठारह प्रकारके ब्रह्मचर्यका जो पालक होता है वह भी ब्रह्मवान् है, अथवा जो मैथुनका सर्वथा परित्यागी होता है वह भी ब्रह्मवान् है। इस प्रकारका संयमी अच्छी तरहसे जीवादिक पदार्थोंके स्वरूपको प्रकाशित करनेवाले प्रज्ञानों-मत्यादिक ज्ञानों-के द्वारा लोक-षड्जीवनिकाय-के स्वरूपको जानता है। अथवा लोक—शब्दादिकविषयरूप लोकको ज्ञपरिज्ञासे बन्धका कारण जानकर प्रत्याख्यानपरिज्ञासे उनका परिहार-त्याग कर देता है। जो आत्मवान्, ज्ञानवान्, वेदवान्, धर्मवान् और ब्रह्मवान् है वही मुनि कहा जाता है।

किञ्च—जो धर्मवित्=जीव-अजीव द्रव्यके स्वरूपका ज्ञाता है, तथा

નામ ધર્મવાન્ છે, બ્રહ્મવાન્ છે-બ્રહ્મ શબ્દનો અર્થ મોક્ષસુખ છે. જે તેને છે તેનું નામ બ્રહ્મવાન્ છે. અર્થાત્ મોક્ષસુખનો જ્ઞાતા છે, અથવા ૧૮ અઢાર પ્રકારના બ્રહ્મચર્યનો પાલક છે તે પણ બ્રહ્મવાન્ છે. અથવા જે મૈથુનનો સર્વથા પરિત્યાગી થાય છે તે પણ બ્રહ્મવાન્ છે. આવા પ્રકારનો સંયમી સારી રીતે જીવાદિક પદાર્થોના સ્વરૂપને પ્રકાશિત કરવાવાળાં પ્રજ્ઞાન-મત્યાદિક જ્ઞાનોદ્વારા લોક-ષડ્જીવનિકાય-ના સ્વરૂપને જાણે છે, અથવા લોક-શબ્દાદિકવિષયરૂપ લોકને જ્ઞપરિજ્ઞાથી બંધનું કારણ જાણીને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી તેનો પરિહાર-ત્યાગ કરે છે. જે આત્મવાન્, જ્ઞાનવાન્, વેદવાન્, ધર્મવાન્ અને બ્રહ્મવાન્ છે તેને જ મુનિ કહેવામાં આવે છે.

વળી—જે ધર્મવિત્-જીવ અજીવ દ્રવ્યના સ્વરૂપનો જ્ઞાતા છે તથા ऋजुः

चारित्रलक्षणस्यावलम्बनादकुटिलः, यद्वा-सरलचित्तः, आवर्तस्रोतःसङ्गम्=आवर्तो-भावावर्तो जन्मजरामरणाधिव्याधिव्यसनोपनिपातरूपः संसारः-उक्तञ्च—

"रागद्वेपवशाविद्धं, मिथ्यादर्शनदुस्तरम् ।
जन्मावर्त्ते जगत् क्षिप्तं, प्रमादाद् भ्राम्यते भृशम्" ॥ १ ॥ इति ।

स्रोतश्चात्र भावस्रोतः-शब्दादिविषयाभिलापः, आवर्तश्च स्रोतश्चावर्तस्रोतसी, तयोः सङ्गः=रागद्वेपकृतः सम्बन्धः, तम् अभिजानाति । संसारस्रोतःसङ्गो रागद्वेपकृतो भवतीति विज्ञाय यस्तं परिहरति, स एवावर्तस्रोतसोः सङ्गं विजानातीत्यर्थः ॥ सू० ३ ॥

ऋजुः=सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप मोक्षके सरल मार्गके अवलम्बनसे ऋजुपरिणामी-अकुटिल, अथवा सरलचित्त है वही इस वातको जान सकता है कि-आवर्त और स्रोतका सम्बन्ध रागद्वेपकृत है। आवर्त्त दो प्रकारका है-एक द्रव्य-आवर्त्त और दूसरा भाव-आवर्त्त, जलप्रवाहमें भँवर उठता है वह द्रव्य-आवर्त्त है। जन्म, जरा, मरण, आधि, व्याधि आदि अनेक उपद्रवोंका स्थानरूप संसार भाव-आवर्त्त है। कहा भी है—

"रागद्वेपवशाविद्धं, मिथ्यादर्शनदुस्तरम् ।
जन्मावर्त्ते जगत् क्षिप्तं, प्रमादाद् भ्राम्यते भृशम् " ॥ १॥ इति ।

अर्थात्—यह जगत् राग और द्वेषसे व्याप्त है, मिथ्या दर्शनसे युक्त होनेके कारण यह दुस्तर है, जन्मरूपी आवर्त्तमें पड़ा हुआ है और प्रमादसे इतस्ततः चारों गतियोंमें चक्कर काटता फिरता है ॥१॥

સમ્યગ્દર્શન સમ્યગ્જ્ઞાન અને સમ્યક્ચારિત્રરૂપ મોક્ષના સરલ માર્ગના અવલંબનથી ઋજુપરિણામી-અકુટિલ અથવા સરલચિત્ત છે તે જ આ વાતને જાણી શકે છે કે-આવર્ત્ત અને સ્રોતનો સંબંધ રાગદ્વેષકૃત છે. આવર્ત્ત બે પ્રકારના છે. એક દ્રવ્ય-આવર્ત્ત અને બીજું ભાવ-આવર્ત્ત. જળ પ્રવાહમાં જે ભૅવર પડે છે તે દ્રવ્ય-આવર્ત્ત છે. જન્મ, જરા, મરણ, આધિ, વ્યાધિ આદિ અનેક ઉપદ્રવોના સ્થાનરૂપ સંસાર ભાવ-આવર્ત્ત છે. કહ્યું છે—

"रागद्वेपवशाविद्धं, मिथ्यादर्शनदुस्तरम् ।
जन्मावर्ते जगत क्षिप्तं, प्रमादाद् भ्राम्यते भृशम् " ॥ १ ॥

અર્થાત્ આ જગત રાગ અને દ્વેષથી વ્યાપ્ત છે. મિથ્યાદર્શનથી યુક્ત હોવાને કારણે તે દુસ્તર છે. જન્મરૂપી આવર્તમાં પડેલ છે અને પ્રમાદથી ચારે ગતિઓમાં પરિભ્રમણ કરે છે ॥ ૧ ॥

आवर्तस्रोतसोः सङ्गमभिजानन् कं गुणं प्राप्नोतीत्याह–' सीउसिणच्चाई ' इत्यादि ।

मूलम्–सीउसिणच्चाई से निग्गन्थे अरइरइसहे फरुसयं नो वेएइ, जागर वेरोवरए वीरे, एवं दुःखा पमुक्खसि ॥ सू० ४॥

छाया—शीतोष्णत्यागी स निर्ग्रन्थः अरतिरतिसहः परुषतां नो वेत्ति, जागरो वैरोपरतः, वीर एवं दुःखात् प्रमोक्ष्यसे ॥ ३ ॥

टीका—स निर्ग्रन्थः=बाह्याभ्यन्तरग्रन्थरहितो निष्परिग्रह इति यावत्, शीतोष्णत्यागी=अनुकूलप्रतिकूलपरिषहं सहमानः, अनुकूलेऽनभिलापी, प्रतिकूले चानुद्वेगीत्यर्थः । अरतिरतिसहः=अरतिं संयमे, रतिमसंयमे सहमानः–संयमाराधने परीपहोपसर्गतः कदाचिदरतिरुत्पद्यते, कदाचिच्चासंयमे रतिरुत्पद्यते, तामरतिं रतिं

स्रोत भी द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकारका है । नदी आदिका प्रवाह द्रव्यस्रोत है । शब्दादिक विषयोंकी अभिलाषा भावस्रोत है। इन दोनोंका सम्बन्ध राग एवं द्वेषसे हुआ है, इस बातको जान कर जो उनके उस सम्बन्धका परिहार–त्याग कर देता है वही आवर्त्त और स्रोतके संगका परिज्ञाता कहा जाता है ॥ सू० ३ ॥

जो मुनि इस आवर्त्त और स्रोतके सम्बन्धको जान लेता है वह किस गुणको प्राप्त करता है ? सो कहते हैं–' सीउसिणच्चाई ' इत्यादि।

बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहसे रहित–निष्परिग्रही मुनि अनुकूल और प्रतिकूल परीषहोंको सहन करता हुआ अर्थात्–अनुकूल परीषहमें अभिलापी और प्रतिकूल परीषहमें उद्वेगी न बनता हुआ रति और अरति

સ્રોત પણ દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી બે પ્રકારનું છે. નદી આદિનો પ્રવાહ દ્રવ્યસ્રોત છે. શબ્દાદિક વિષયોની અભિલાષા ભાવસ્રોત છે. એ બન્નેનો સંબંધ રાગ અને દ્વેષથી થયેલ છે. તે વાતને જાણી જે તેના તે સંબંધનો પરિહાર–ત્યાગ કરે છે તે આવર્ત્ત અને સ્રોતના સંગનો પરિજ્ઞાતા કહેવાય છે ॥ સૂ૦ ૩ ॥

જે મુનિ આવર્ત્ત અને સ્રોતના સંબંધને જાણી લે છે તે કેવા ગુણોને પ્રાપ્ત કરે છે ? તે કહે છે—' सीउसिणच्चाई ' ઈત્યાદિ.

બાહ્ય અને આભ્યન્તર પરિગ્રહથી રહિત–નિષ્પરિગ્રહી મુનિ અનુકૂળ અને પ્રતિકૂળ પરીષહો સહન કરતાં થકાં અર્થાત્ અનુકૂળ પરીષહમાં અભિલાષી અને પ્રતિકૂળ પરીષહોમાં ઉદ્વેગી ન બનીને રતિ અને અરતિની ઉપેક્ષા કરી પરીષહોને કષ્ટજનક

च कर्मबन्धहेतुत्वादुपेक्षमाण इत्यर्थः। परुपतां=परीषहाणां पारुष्यं कष्टजनकत्वरूपं नो वेत्ति–न तान् पीडाकारित्वेन गृह्णाति, अपि तु कर्मबन्धोच्छेदार्थमुद्यतः संसारादुद्विग्नमनास्तान् साहाय्यकारित्वेनानुमन्यते इत्यर्थः।

किंच–स जागरः=मिथ्यात्वाविरतिप्रमादनिद्रापगमाज्जागर्तीति जागरः–श्रुतचारित्रधर्माराधने सदा जागरूक इत्यर्थः। वैरोपरतः–वैरं परापकारचिन्तनं, तस्मादुपरतः, अत एव–वीरः=कर्मवैरिविदारणसमर्थो भवति। हे शिष्य! एवम्=इत्थंभूतः श्रुतचारित्रधर्माराधने सदा जागरूकः परापकाराध्यवसायरहितः सन् दुःखात्=दुःखकारणात् कर्मणः प्रमोक्ष्यसे=मुक्तो भविष्यसि ॥ सू० ४॥

की उपेक्षा कर परीषहोंको कष्टजनक नहीं मानता है, किन्तु कर्मबन्ध के विनाश करनेकी ओर उद्यमी वह अनगार उन परीषहोंको उस कर्म विनाशरूप कार्य में अपने सहायक मानता है।

भावार्थ—परिग्रहमें आसक्तिसंपन्न व्यक्ति ही अनुकूल परीषहोंमें अभिलाषी और प्रतिकूल परीषहोंमें उद्वेगी बनता है। जिसके पास परिग्रह ही नहीं है ऐसे संयमी मुनिके लिये क्या प्रतिकूल परीषह क्या अनुकूल परीषह सब एक समान हैं। अनुकूलमें इसकी लालसा नहीं और प्रतिकूलमें इसको द्वेष नहीं, कारण कि इस सिद्धान्तको भलीभाँति जान चुका है कि–संसारके मूल कारण राग और द्वेष हैं। अनुकूलमें अभिलाषा होनी यह रागकी पर्याय है, और प्रतिकूलमें उद्वेग होना द्वेष की पर्याय है, अतः वह दोनों प्रकारके परीषहोंको समभावसे सहन करता है। परीषहो एवं उपसर्गोसे कदाचित् इसके चित्तमें संयमपरि-

---

માનતા નથી, પણ કર્મબંધનો વિનાશ કરવાની તરફ ઉદ્યમી તે અણુગાર તેવા પરીષહોને તે કર્મવિનાશરૂપ કાર્યમા પોતાના સહાયક માને છે.

ભાવાર્થ—પરિગ્રહમા આસક્તિસંપન્ન વ્યક્તિ જ અનુકૂળ પરીષહોમાં અભિલાષી અને પ્રતિકૂળ પ્રરીષહોમાં ઉદ્વેગી બને છે. જેની પાસે પરિગ્રહ જ નથી એવા સંયમી મુનિ માટે શુ પ્રતિકૂળ પરીષહ અને શુ અનુકૂળ પરીષહ ? સઘળા એકસમાન છે. અનુકૂળમાં તેની લાલસા નહિ અને પ્રતિકૂળમાં તેને દ્વેષ નહિ, કારણ કે એ આ સિદ્ધાંતને સારી રીતે જાણી ચુકેલ છે કે સંસારનું મૂળ કારણ રાગ અને દ્વેષ છે. અનુકૂળમાં અભિલાષા થવી તે રાગની પર્યાય છે અને પ્રતિકૂળમાં ઉદ્વેગ થવો તે દ્વેષની પર્યાય છે, માટે સંયમી મુનિ તે બન્ને પ્રકારના પરીષહોને સમભાવથી સહન કરે છે. પરીષહો તેમજ ઉપસર્ગોથી કોઇ વખત તેના ચિત્તમાં સંયમપરિણામ તરફ અરતિ અને અસંયમપરિણામ તરફ રતિ થઇ

णामके प्रति अरति और असंयमपरिणामके प्रति रति हो जाती हो सो भी बात नहीं है। क्यों कि यह इन दोनों प्रकारकी परिणतियोंको भी कर्मबन्धका कारण जान कर उनकी तर्फसे उपेक्षित रहता है। परीषहों को यह अपने लिये कष्टकारी नहीं मानता है प्रत्युत उन्हें अपने लक्षमें अधिकरूप जुटानेवाले होनेसे अपना सहायक ही मानता है। संसार शरीर और भोगोंसे जो निर्विण्ण-उदास होता है उसे परीषह और उपसर्ग अपने लक्ष्यसे नहीं गिरा सकते हैं। ऐसे व्यक्ति विघ्नकारक कारणकलापोंको-परीषहोंको कर्मबन्धके उच्छेदन करनेमें सुवर्णमें शुद्धि लानेके लिये अग्निरूप सहायककी तरह अपना सहायक माना करते हैं और उनका सहर्ष स्वागत करते हैं।

निर्ग्रन्थ मुनि मिथ्यात्व अविरति और प्रमादरूप निद्राके अभावसे श्रुतचारित्ररूप धर्मके आराधनमें सदा जागरूक रहता है, एवं परके अपकार करनेके विचाररूप वैरसे विरक्त होता हुआ कर्मरूपी वैरीको निवारण करनेमें समर्थ होता है। इसलिये हे शिष्य! तुम भी श्रुत चारित्ररूप धर्मकी आराधना करनेमें सदा जागरूक बन परके अपकार करनेके अध्यवसायसे रहित होकर दुःख एवं दुःखके कारण कर्मोंसे रहित हो जाओगे ॥ सू० ४ ॥

જતી હોય તે પણ વાત નથી. કારણ કે તે આ બન્ને પ્રકારની પરિણતિઓને પણ કર્મબંધનું કારણ જાણીને તેની તરફથી ઉપેક્ષિત રહે છે. પરિષહોને તે પોતાને માટે કષ્ટકારી માનતો નથી પ્રત્યુત તેને પોતાના લક્ષમાં અધિકરૂપ જોડવાવાળા હોવાથી પોતાના સહાયક જ માને છે. સંસાર, શરીર અને ભોગોથી જે ઉદાસ થાય છે તેને પરીષહ અને ઉપસર્ગ પોતાના લક્ષથી દૂર કરી શકતા નથી. એવી વ્યક્તિ વિઘ્નકારક કારણકલાપોને-પરીષહોને કર્મબંધનું ઉચ્છેદન કરવામાં સુવર્ણમાં શુદ્ધિ લાવવા માટે અગ્નિરૂપ સહાયકની માફક પોતાના સહાયક માન્યા કરે છે, અને તેઓનું સહર્ષ સ્વાગત કરે છે.

નિર્ગ્રન્થ મુનિ મિથ્યાત્વ અવિરતિ અને પ્રમાદરૂપ નિદ્રાના અભાવથી શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મનાં આરાધનમાં સદા જાગરૂક રહે છે અને પરનો અપકાર કરવાના વિચારરૂપ વેરથી વિરક્ત બનીને કર્મરૂપી વૈરીનું નિવારણ કરવામા સમર્થ થાય છે. માટે હે શિષ્ય! તમે પણ શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મની આરાધના કરવામાં સદા જાગરૂક બની પરના અપકાર કરવાના અધ્યવસાયથી રહિત થઈ દુઃખ અને દુઃખના કારણ કર્મોથી રહિત બની જશો. ॥ સૂ૦ ૪ ॥

यश्चावर्तस्रोतसोः सङ्गादजागरः, स तु संसारदुःखान्न विमुच्यत इत्याशयेनाह—'जरामच्चु०' इत्यादि।

मूलम्—**जरामच्चुवसोवणीए नरे सययं मूढो धम्मं नाभिजाणइ ॥ सू० ५ ॥**

छाया—जरामृत्युवशोपनीतो नरः सततं मूढो धर्मं नाभिजानाति ॥सू० ५॥

टीका—जरामृत्युवशोपनीतः=जरामरणपराधीनः, नरः=मनुष्यः, सततं=सर्वदा, मूढः=मोहनीयोदयाद् विवेकरहितः धर्मं=श्रुतचारित्रलक्षणं नाभिजानाति। भावसुप्तः संसारी मोक्षमार्गमप्राप्य पुनः पुनर्जरामृत्युवशंगतो दुःखान्तं नोपयातीति भावः ॥ सू० ५ ॥

ननु जरामृत्युपारवश्यादेव दुःखान्तो न भवति चेत्तर्हि तत्पारवश्यवारणाय मुमुक्षुणा किं कर्तव्यमिति जिज्ञासायामाह—'पासिय आउरपाणे' इत्यादि।

मूलम्—**पासिय आउरपाणे अप्पमत्तो परिव्वए। मंता एयं मइमं पास ॥ सू० ६ ॥**

छाया—दृष्ट्वा आतुरप्राणान् अप्रमत्तः परिव्रजेत्। मत्वा एतत् मतिमन् पश्य ॥ सू० ६ ॥

जो आवर्त्त और स्रोतके सम्बन्धसे जागरूक नहीं है वह संसारके दुःखोंसे छूट नहीं सकता। इस विषयमें कहते हैं—'जरामच्चु०' इ०।

जो आवर्त्त और स्रोतके सम्बन्धसे जागरूक नहीं हैं ऐसे मनुष्य जरा और मरणके आधीन होकर निरन्तर मोहनीय कर्मके उदय से विवेकरहित हो श्रुतचारित्ररूप धर्मको नहीं जानते हैं। इसका भाव यही है कि भावसुप्त संसारी मोक्षमार्गको नहीं प्राप्त कर बारंबार जरा और मृत्युके आधीन होकर कभी भी दुःखोंसे छुटकारा नहीं पाते हैं।५।

જે આવર્ત્ત અને સ્રોતના સંબંધથી જાગરૂક નથી તે સંસારના દુઃખોથી છુટી શકતા નથી. તે વિષયમાં કહે છે—'जरामच्चु०' ઇત્યાદિ.

જે આવર્ત્ત અને સ્રોતના સંબંધથી જાગરૂક નથી તેવા મનુષ્ય જરા અને મરણને આધીન બની નિરંતર મોહનીય કર્મના ઉદયથી વિવેકરહિત થઈ શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મને જાણતા નથી. આનો ભાવ એ છે કે ભાવસુપ્ત સંસારી મોક્ષ-માર્ગને પ્રાપ્ત કર્યા વિના વારંવાર જરા અને મૃત્યુને આધીન બની કદિ પણ દુઃખોથી છુટકારો મેળવતા નથી. ॥ સૂ૦ ૫॥

टीका—आत्मकल्याणार्थी मनुष्यः आतुरप्राणान्=भावस्वापजनितजरामरणपारवश्योपनीतदुःखसागरान्तःपातिप्राणिनः, दृष्ट्वा, अप्रमत्तः=भावजागरूकः सन् परिव्रजेत्=संयमाराधनतत्परो भवेत्। मतिमन्=हे मेधाविन् शिष्य! त्वमपि एतत्=सुप्तदूषणं जरामृत्युपारतन्त्र्यम्, मत्वा=ज्ञात्वा पश्य=चक्षुरुन्मीलय-संयमधर्मे जागृहीत्यर्थः ॥ सू० ६ ॥

यदि जरा और मृत्युकी परवशतासे जीवोंके दुःखोंका अन्त नहीं होता है तो फिर उनकी परवशताको दूर करनेके लिये मुमुक्षु प्राणियोंको क्या उपाय करना चाहिये? इस प्रकारकी जिज्ञासाका समाधान करनेके लिये कहते हैं—'पासिय आउरपाणे' इत्यादि।

"आत्मकल्याणका अभिलाषी मनुष्य भावनिद्रासे उत्पन्न, जरा और मरणकी परवशतासे प्राप्त दुःखरूपी सागरमें पडे हुए प्राणियोंको देख कर भावनिद्राका परित्याग करके संयमकी आराधना करनेमें सदा तत्पर रहे" प्रभुके इस सर्वोत्तम उपदेशसे हे मेधावी शिष्य! तुम भी भावनिद्राजन्य जरा और मरणकी परवशतारूप दूषणको जानकर सदा संयमरूप धर्ममें जागरूक रहो।

भावार्थ—प्रभुका उपदेश है कि-आत्मकल्याणकी कामना करनेवाला मनुष्य भावनिद्राका परित्याग करे, क्योंकि निद्राके सद्भावमें जरा और मरणजन्य अनेक दुःखोंका कभी भी अन्त नहीं आ सकता है। इन दुःखोंसे छुटकारा करनेवाला यदि कोई है तो वह भावनिद्राका अभाव

કદાચ જરા અને મૃત્યુની પરવશતાથી જીવોના દુઃખનો અંત થતો નથી તો પછી તેની પરવશતાને દૂર કરવા માટે મુમુક્ષુ પ્રાણિઓએ શો ઉપાય કરવો જોઈએ? આવા પ્રકારની જીજ્ઞાસાનું સમાધાન કરવા માટે કહે છે—'पासिय आउरपाणे' ઈત્યાદિ.

"આત્મકલ્યાણના અભિલાષી મુનિ ભાવનિદ્રાથી ઉત્પન્ન જરા અને મરણની પરવશતાથી પ્રાપ્ત દુઃખરૂપી સાગરમાં પડેલાં પ્રાણીઓને દેખીને ભાવનિદ્રાનો પરિત્યાગ કરીને સંયમની આરાધના કરવામાં સદા તત્પર રહે" પ્રભુના આ સર્વોત્તમ ઉપદેશથી હે મેધાવી શિષ્ય! તમે પણ ભાવનિદ્રાજન્ય જરા અને મરણની પરવશતારૂપ દૂષણને જાણીને સદા સંયમરૂપ ધર્મમાં જાગરૂક રહો.

ભાવાર્થ—પ્રભુનો ઉપદેશ છે કે-આત્મકલ્યાણની કામના કરવાવાળા મુનિ ભાવનિદ્રાનો પરિત્યાગ કરે, કારણ કે આ નિદ્રાના સદ્ભાવમાં જરા અને મરણ જન્ય અનેક દુઃખોનો કદિ પણ અંત આવી શકતો નથી. આ દુઃખોથી છુટકારો કરાવનાર જે કોઈ હોય તો તે ભાવનિદ્રાનો અભાવ છે. સંસારી પ્રાણી જે

किञ्च—

मूलम्—आरंभजं दुक्खमिणंति णच्चा, मायी पमाई पुणरेइ गब्भं।
उवेहमाणो सद्दरूवेसु अंजू, माराभिसंकी मरणा पमुच्चइ॥सू० ७॥

छाया—आरम्भजं दुःखमिदमिति ज्ञात्वा, मायी प्रमादी पुनरेति गर्भम्। उपेक्षमाणः शब्दरूपेषु (यः) ऋजुः, माराभिशङ्की (सः) मरणात् प्रमुच्यते ॥सू० ७॥

टीका—इदं=संसारपरिभ्रमणरूपं दुःखम्, आरम्भजम्=सावद्यक्रियानुष्ठानफलभूतम्, इति ज्ञात्वा आत्मकल्याणाय जागृहि। भावसुप्तः किं प्राप्नोतीत्याह—'मायी' इत्यादि। मायी=क्रोधादिकषाययुक्तः, कषायमध्यवर्तिमायाग्रहणेन पूर्वापरकषायाणामपि ग्रहणम्। प्रमादी=मद्यादिसेवी पुनः=वारं वारं, गर्भमेति=नरकादियातनामनुभूय सकलदुःखहेतुभूतं गर्भं प्राप्नोति।

है। संसारी प्राणी जो जन्म मरणके अनन्त कष्टोंको भोग रहे हैं उसका कारण भावनिद्राका सद्भाव ही है, ऐसा समझकर और प्रभुके उपदेश पर ध्यान देकर हे मतिमान् शिष्य! तुम अनर्थोत्पादक इस निद्राका परित्याग करो, अर्थात् संयमधर्ममें सदा जागरूक रहो, जिससे जरामरणजन्य कष्टोंसे तुम्हें छुटकारा मिले ॥ सू० ६ ॥

फिर भी कहते हैं—'आरंभजं' इत्यादि।

'सावद्य क्रियाओंके अनुष्टानका फल ही यह संसारका परिभ्रमणरूप दुःख है' ऐसा जानकर हे शिष्य! तुम आत्मकल्याणकी ओर अपनी प्रवृत्ति करो। यहां कषायोंके मध्यवर्त्ती मायाका ग्रहण करनेसे अन्य कषायोंका भी ग्रहण हो जाता है अतः भावसुप्त प्राणीके ये चिह्न हैं कि वह क्रोधादिक कषायोंसे युक्त होता है। प्रमादसेवी-मद्यादिकका सेवन

જન્મ મરણના અનંત કષ્ટોને ભોગવી રહ્યા છે તેનું કારણ ભાવનિદ્રાનો સદ્ભાવ જ છે. એવું સમજીને અને પ્રભુના ઉપદેશ ઉપર ધ્યાન આપીને હે મતિમાન્ શિષ્ય! તમે અનર્થોત્પાદક આ નિદ્રાનો પરિત્યાગ કરો, અર્થાત્ સંયમધર્મમાં સદા જાગરૂક રહો, જેથી તમને જરામરણજન્ય દુઃખોથી છુટકારો મળે ॥ સૂ૦ ૬ ॥

ફરી કહે છે—'आरंभजं' ઇત્યાદિ.

સાવદ્ય ક્રિયાઓના અનુષ્ઠાનનું ફળ જ આ સંસારના પરિભ્રમણરૂપ દુઃખ છે. એવું જાણીને હે શિષ્ય! તમે આત્મકલ્યાણની તરફ પોતાની પ્રવૃત્તિ કરો. અહીં કષાયોના મધ્યવર્ત્તી માયાનું ગ્રહણ કરવાથી અન્ય કષાયોનું પણ ગ્રહણ થાય છે, માટે ભાવસુપ્ત પ્રાણીનું એ ચિન્હ છે કે તે ક્રોધાદિ કષાયોથી યુક્ત બને છે, પ્રમાદસેવી-મદ્યાદિકનું સેવન કરવાવાળા બને છે "पुनरपि जननं पुनरपि

एवं भावसुप्तस्य दोषं पर्यालोच्य यः शब्दरूपेषु=इदमुपलक्षणं, तेन शब्दरूपरसगन्धस्पर्शेषु विषयेषु इत्यर्थः, उपेक्षमाणो=रागद्वेषरहितः ऋजुः=अवक्रहृदयो मायाप्रमादपरिवर्जितः, माराभिशङ्की=पुनः पुनर्मरणदुःखाभ्यागमशङ्कया भीरुः, तद्दुःखपरिहारार्थं श्रुतचारित्रधर्मे जागरूक इति यावत्, स मरणात् प्रमुच्यते ॥सू०७॥

किञ्च—

मूलम्—अप्पमत्तो कामेहिं, उवरओ पावकम्मेहिं, वीरे आयगुत्ते जे खेयन्ने ॥ सू० ८ ॥

करनेवाला होता है "पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्" वारंवार जन्म मरण और गर्भमें आगमन; इनसे उसका छुटकारा नहीं होता है। सावद्य क्रियाओंमें तत्पर प्राणी नरकनिगोदादिककी अनन्त यातनाओंको भोगता हुआ इनसे भी अधिक कष्टोंके स्थानभूत गर्भमें जाकर बसेरा करता है।

इस प्रकार भावसुप्त प्राणीकी जब यह दशा होती है तब संयमी मुनिका कर्तव्य है कि वह इस भावनिद्राका परिहार करे और पांच इन्द्रियोंके विषयों–शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श–में रागद्वेषरहित होकर मायाप्रमादसे अपनी प्रवृत्तिको सुरक्षित रखता हुआ वारंवार जन्म मरणके दुःखोंको प्राप्त होनेकी आशङ्कासे भयभीत होकर सांसारिक दुःखोंसे छुटकारा पानेके लिये श्रुतचारित्ररूप धर्ममें सदा जागरूक रहे। इस प्रकारकी प्रवृत्तिसे ही प्राणी मरणसे छूट सकता है, अन्यथा नहीं ॥ सू० ७ ॥

मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्" वारंवार જન્મ મરણ અને ગર્ભમાં આગમન, તેનાથી તેનો છુટકારો થતો નથી. સાવદ્ય ક્રિયાઓમાં તત્પર પ્રાણી નરકનિગોદાદિકની અનન્ત યાતનાઓને ભોગવતાં તેનાથી પણ અધિક કષ્ટોના સ્થાનભૂત ગર્ભમાં સ્થાન લે છે.

આવા પ્રકારે ભાવસુપ્ત પ્રાણીની જ્યારે આવી દશા થાય છે ત્યારે સંયમી મુનિનું એ કર્ત્તવ્ય છે કે તે આ ભાવનિદ્રાનો પરિત્યાગ કરે અને પાંચ ઈન્દ્રિયોના વિષયો–શબ્દ, રૂપ, રસ, ગંધ અને સ્પર્શો–માં રાગદ્વેષ રહિત બનીને માયા પ્રમાદથી પોતાની પ્રવૃત્તિને સુરક્ષિત રાખીને વારંવાર જન્મ મરણના દુઃખોને પ્રાપ્ત થવાની આશંકાથી ભયભીત બની સાંસારિક દુઃખોથી છુટકારો મેળવવા માટે શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મમાં સદા જાગરૂક રહે આવા પ્રકારની પ્રવૃત્તિથી જ પ્રાણી મરણથી છુટી શકે છે, અન્યથા નહિ ॥ સૂ૦ ૭ ॥

छाया—अप्रमत्तः कामैः, उपरतः पापकर्मभ्यः, वीरो गुप्तात्मा यः खेदज्ञः॥८॥

टीका—यः खेदज्ञः=संसारिणां दुःखाभिज्ञः, स कामैरप्रमत्तः=कामभोगकृत-प्रमादरहितः, पापकर्मभ्य उपरतः=मनोवाक्कायैः सावद्यव्यापारेभ्यो निवृत्तः, अतएव वीरः=कर्मविदारणसमर्थः, गुप्तात्मा=आत्मरक्षणपरायणः आत्मोद्धारकारीत्यर्थः ॥८॥

खेदज्ञस्य गुणमाह–' जे पज्जवज्जायसत्थस्स ' इत्यादि ।

मूलम्—जे पज्जवज्जायसत्थस्स खेयण्णे, से असत्थस्स खेयन्ने, जे असत्थस्स खेयण्णे, से पज्जवज्जायसत्थस्स खेयन्ने॥९॥

छाया—यः पर्यवजातशस्त्रस्य खेदज्ञः, सः अशस्त्रस्य खेदज्ञः, यः अशस्त्रस्य खेदज्ञः, स पर्यवजातशस्त्रस्य खेदज्ञः ॥ सू० ९ ॥

फिर भी कहते हैं—' अप्पमत्तो ' इत्यादि ।

जो संसारी जीवोंके दुःखोंका ज्ञाता है वह कामभोगजन्य प्रमादसे रहित होकर मन वचन और कायसे होनेवाले सावद्य व्यापारोंसे दूर रहता हुआ कर्मोंके नाश करनेमें समर्थ होता है, यही आत्मरक्षा है। इस अपनी रक्षा करने में वह तत्पर रहता है, अर्थात् अपनी आत्माका उद्धार करनेवाला होता है ॥ सू० ८ ॥

जो इस प्रकारसे निष्णात बन जाता है उसे क्या लाभ होता है ? सो बताते हैं–' जे पज्जवज्जाय० ' इत्यादि ।

' पर्यव ' शब्दका अर्थ–शब्दादि विषयोंके भेद–प्रकार, ' शस्त्र ' शब्दका अर्थ–प्राणिपीडनादि सावद्यकर्म, ' खेदज्ञ ' शब्दका अर्थ–प्राणियों के सावद्यक्रियाजन्य दुःखोंका ज्ञाता, होता है ।

ફરીથી કહે છે—' अप्पमत्तो ' ઇત્યાદિ.

જે સંસારી જીવોના દુઃખોનો જ્ઞાતા છે તે કામભોગજન્ય પ્રમાદથી રહિત બનીને મન વચન અને કાયાથી બનનાર સાવદ્ય વ્યાપારોથી દૂર રહીને કર્મોનો નાશ કરવામાં સમર્થ થાય છે. તે જ આત્મરક્ષા છે. આ પોતાની રક્ષા કરવામાં તત્પર રહે છે, અર્થાત્ પોતાના આત્માનો ઉદ્ધાર કરવાવાળો થાય છે. ॥ સૂ૦ ૮ ॥

જે આવા પ્રકારથી નિષ્ણાત બની જાય છે તેને શું લાભ થાય છે? તે બતાવે છે—' जे पज्जवज्जाय० ' ઇત્યાદિ

' પર્યવ ' શબ્દનો અર્થ–શબ્દાદિક વિષયોના ભેદ–પ્રકાર, ' શસ્ત્ર ' શબ્દનો અર્થ–પ્રાણિપીડનાદિ સાવદ્ય કર્મ, ' ખેદજ્ઞ ' શબ્દનો અર્થ–પ્રાણીઓના સાવદ્ય ક્રિયાજન્ય દુઃખોનો જ્ઞાતા, થાય છે.

टीका—यः पर्यवजातशस्त्रस्य–पर्यवाः=शब्दादिविषयप्रकाराः तेषु=तन्निमित्तं जातं शस्त्रं=पर्यवजातशस्त्रं=शब्दादिविषयविशेषोपभोगार्थं यत् प्राणिनां पीडनादिरूपं सावद्यकर्म, तस्य खेदज्ञः=सावद्यक्रियासमुत्पादितप्राणिदुःखाभिज्ञः, सः अशस्त्रस्य=निरवद्यक्रियारूपस्य संयमस्य खेदज्ञः=अभ्यासज्ञः, संयमाराधने यावदधिकदुःखसहनं तावदधिककर्मनिर्जरा भवतीत्यभिज्ञातेत्यर्थः। यश्चाशस्त्रस्य=संयमस्य खेदज्ञः, स पर्यवजातशस्त्रस्यापि खेदज्ञः।

भावार्थ—संसारी जीव शब्दादिक पांच इन्द्रियोंके विषयोंका उपभोग करनेकी लालसाके अधीन बनकर ही अपनी प्रवृत्तिको असंयमित बनाते हैं। उनकी इस असंयमित प्रवृत्तिसे त्रस-स्थावर प्राणियोंको अनेक प्रकारके कष्ट भोगने पड़ते हैं। असंयमी जीवोंकी अनर्गल प्रवृत्ति ही अन्य जीवोंके लिये अनेक प्रकारके कष्टोंको देनेवाली होती है। संयमी जीव इस बातका सदा विशेष ध्यान रखता है कि कहीं मेरी प्रवृत्तिसे प्राणियोंको दुःख न पहुँचे। इसलिये वह अपनी प्रवृत्तिको इतनी संयमित रखता है कि कोई भी प्राणी उससे दुःखी नहीं हो पाता। वह अपनी इस प्रकारकी प्रवृत्तिको उत्तरोत्तर बढ़ानेका इतना अधिक से अधिक अभ्यास करता है कि यह कभी न कभी वीतराग पदका धारक हो जाता है। वह जानता है कि मैं संयमके आराधनमें जितने अधिक दुःखोंको सहूँगा उतनी ही अधिक मेरे कर्मोंकी निर्जरा होगी, यही वीतरागपद तक पहुँचनेकी उत्तम सीढ़ी है। इस प्रकार जो निरवद्य क्रिया

ભાવાર્થ—સંસારી જીવ શબ્દાદિક પાંચ ઈન્દ્રિયોના વિષયોનો ઉપભોગ કરવાની લાલસાને આધીન બનીને જ પોતાની પ્રવૃત્તિને અસંયમિત બનાવે છે. તેની આ અસંયમિત પ્રવૃત્તિથી ત્રસ સ્થાવર પ્રાણીઓને અનેક પ્રકારના કષ્ટ ભોગવવા પડે છે. અસંયમી જીવોની સ્વચ્છંદ પ્રવૃત્તિ જ અન્ય જીવો માટે અનેક પ્રકારના કષ્ટોને દેવાવાળી બને છે. સંયમી જીવ આ બાબતનું સદા વિશેષ ધ્યાન રાખે છે કે કદાચ મારી પ્રવૃત્તિથી પ્રાણિઓને દુઃખ ન પહોંચે. તેટલા માટે તે પોતાની પ્રવૃત્તિને આટલી સંયમિત રાખે છે કે કોઈ પણ પ્રાણી તેનાથી દુઃખી થતો નથી. તે પોતાની આ પ્રકારની પ્રવૃત્તિને ઉત્તરોત્તર વધારવાનો એટલો અધિકથી અધિક અભ્યાસ કરે છે કે તે કોઈને કોઈ વખત વીતરાગપદનો ધારક બને છે, તે જાણે છે કે હું જેટલું સંયમ આરાધનમાં દુઃખ સહન કરીશ તેટલી જ મારે કર્મોની નિર્જરા થશે, આજ વીતરાગપદ સુધી પહોંચવાની ઉત્તમ સીડી છે. આ પ્રકારે જે નિરવદ્યક્રિયારૂપ સંયમનો અભ્યાસ કરવામાં કર્મઠ–કુશળ છે તે

अयं भावः—योऽनुकूलप्रतिकूलशब्दादिविषयप्राप्तिपरिहारार्थं सावद्यकर्मानुष्ठानं शस्त्ररूपं वेत्ति स संयममपि सर्वजीवोपकारकमशस्त्ररूपं जानाति। शस्त्राशस्त्ररूपतां विदंस्तत्र निवर्तते प्रवर्तते च। सकलसावद्यव्यापारेभ्यो निवृत्त्या संयमाराधने प्रवृत्त्या च मुनेः कर्मक्षयो भवतीति।

यद्वा-यः पर्यवजातशस्त्रस्य=पर्यवजातस्य=शब्दादिपर्यायजनितस्याष्टविधकर्मणः शस्त्रं=तपः तद्दहनजनकत्वात्, तस्य यः खेदज्ञः, सोऽशस्त्रस्य संयमस्यापि खेदज्ञः।

रूप संयमके अभ्यास करनेमें कर्मठ-कुशल-है वह जिन २ कार्योंसे प्राणियोंके प्राणोंको कष्ट पहुँचे ऐसी सावद्य क्रियाओंसे सदा विरक्त ही रहता है।

विस्तरार्थ—जो अनुकूल और प्रतिकूल शब्दादिक विषयोंकी प्राप्ति एवं परिहारके लिये सावद्य क्रियाको शस्त्ररूप मानता है, वह यह भी समझता है कि संयम सर्व जीवोंका उपकारक होनेसे अशस्त्ररूप है। इस प्रकार वह सावद्य क्रियामें शस्त्ररूपता और संयममें अशस्त्ररूपता जान कर अशस्त्ररूप संयममें प्रवृत्त होता है और शस्त्ररूप सावद्य क्रियाओंके अनुष्ठानसे विरक्त होता है। यह मानी हुई बात है कि-मुनिके, कर्मोंका नाश सकल सावद्य व्यापारोंकी निवृत्तिसे और संयमकी आराधनामें प्रवृत्ति करनेसे ही होता है।

अथवा—'पर्यव' शब्दका अर्थ-'शब्दादि पर्याय' है, 'जात' शब्द का अर्थ-'उत्पन्न' है, 'शस्त्र' शब्दका अर्थ 'तप' है। तात्पर्य इसका यह है कि-शब्दादि पर्यायोंसे उत्पन्न होनेवाले आठ प्रकारके कर्मोंका शस्त्र तप है,

---

જે જે કાર્યોથી પ્રાણીઓના પ્રાણોને કષ્ટ પહોંચે એવી સાવદ્ય ક્રિયાઓથી સદા વિરક્ત જ રહે છે.

વિસ્તરાર્થ—જે અનુકૂળ અને પ્રતિકૂળ શબ્દાદિક વિષયોની પ્રાપ્તિ તેમજ પરિહાર માટે સાવદ્ય ક્રિયાને શસ્ત્રરૂપ માને છે તે એ પણ સમજે છે કે સંયમ સર્વ જીવોના ઉપકારક હોવાથી અશસ્ત્રરૂપ છે, આ પ્રકારે તે તેમાં શસ્ત્ર અને અશસ્ત્રરૂપતા જાણીને અશસ્ત્રરૂપ સંયમમાં પ્રવૃત્ત થાય છે, અને શસ્ત્રરૂપ સાવદ્ય ક્રિયાઓના અનુષ્ઠાનથી વિરક્ત થાય છે. એ માનેલી વાત છે કે મુનિને કર્મોનો નાશ સકલ સાવદ્ય વ્યાપારોની નિવૃત્તિથી અને સંયમની આરાધનામાં પ્રવૃત્તિ કરવાથી જ થાય છે.

અથવા—'પર્યવ' શબ્દનો અર્થ શબ્દાદિ પર્યાય છે; 'जात' શબ્દનો અર્થ 'ઉત્પન્ન' છે. 'शस्त्र' શબ્દનો અર્થ 'તપ' છે. તેનું તાત્પર્ય એ છે કે શબ્દાદિ પર્યાયોથી ઉત્પન્ન હોવાવાળા આઠ પ્રકારના કર્મોનું શસ્ત્ર તપ છે, કારણ

योऽशस्त्रस्य खेदज्ञः, स पर्यवजातशस्त्रस्यापि खेदज्ञः। संयमतपःखेदज्ञस्यास्रवनिरोधादनादिभवोपार्जितकर्मणां क्षयो भवतीति भावः ॥ सू० ९ ॥

खेदज्ञस्य मुनेः कर्मक्षयात् किं फलं भवतीत्याह–'अकम्मस्स' इत्यादि।

मूलम्–अकम्मस्स ववहारो न विज्जइ, कम्मुणा उवाही जायइ॥ सू० १० ॥

छाया—अकर्मणो व्यवहारो न विद्यते। कर्मणा उपाधिर्जायते ॥ सू० १० ॥

टीका—अकर्मणः=अष्टविधकर्मरहितस्य व्यवहारः=नारकतिर्यग्देवमनुष्यादिव्यपदेशो न भवति। यश्च कर्मबन्धयुक्तः स एव नारकादिव्यपदेशभाग् भवती-

---

क्यों कि तप कर्मोंको जला कर नाश कर देता है। इस शस्त्र–तप–का जो खेदज्ञ–जानकार है वह मुनि अशस्त्र–संयम–का भी जानकार है। जो अशस्त्र–संयमका जानकार है वह शब्दादिपर्यायजनित आठ प्रकारके कर्मोंके विनाश करवाले शस्त्र–तप–का भी जानकार है। इन दोनोंको जाननेवाले मुनि के आस्रवका निरोध होनेसे अनादि भवोंसे संचित कर्मोंका क्षय होता है ॥ सू० ९॥

खेदज्ञ मुनिको कर्मोंका क्षय होनेसे क्या लाभ होता है? इसका खुलासा करते हैं—'अकम्मस्स' इत्यादि।

'अकर्मणः व्यवहारो न विद्यते' जो आठ प्रकारके कर्मोंसे रहित हो जाता है उसके चारों प्रकारकी गतियों के सर्वथा अभाव हो जानेसे उसके लिये नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव, इत्यादि शब्दोंका व्यव-

---

કે તપ કર્મોને બાળીને નાશ કરી નાંખે છે. આ શસ્ત્ર–તપનો જે ખેદજ્ઞ જાણકાર છે તે મુનિ અશસ્ત્ર–સંયમનો પણ જાણકાર છે, જે અશસ્ત્ર–સંયમનો જાણકાર છે તે શબ્દાદિપર્યાયજનિત આઠ પ્રકારના કર્મોનો વિનાશ કરવાવાવાળા શસ્ત્ર–તપનો પણ જાણકાર છે. એ બન્નેને જાણવાવાળા મુનિના આસ્રવનો નિરોધ હોવાથી અનાદિ ભવોથી સંચિત કર્મોનો ક્ષય થાય છે ॥ સૂ૦ ૯ ॥

ખેદજ્ઞ મુનિને કર્મોનો ક્ષય થવાથી શું લાભ થાય છે? તેનો ખુલાસો કરે છે–'अकम्मस्स' ઇત્યાદિ.

'अकर्मणः व्यवहारो न विद्यते' જે આઠ પ્રકારના કર્મોથી રહિત થાય છે તેને ચારે પ્રકારની ગતિઓનો સર્વથા અભાવ થઈ જવાથી નારક તિર્યંચ મનુષ્ય અને દેવ, ઇત્યાદિ શબ્દોનો વ્યવહાર થતો નથી આ પ્રકારના વ્યવહારનું કારણ

त्याह-'कर्मणा' इत्यादि। उपाधीयते व्यपदिश्यते येन स उपाधिः=विशेपणम्, यद्वा-उपाधिः=संसारपरिभ्रमणरूपः, कर्मणा=ज्ञानावरणीयादिना जायते। जीवस्य यावत् कर्मसंवन्धस्तावदुपाधिर्जायते-इत्यर्थः।

उपाधिस्त्रिधा-आत्मशरीरकर्मभेदात्। तत्रात्मोपाधिः-आत्मनो दुष्प्रयुक्तत्वम्, ततः कर्मोपाधिर्जायते। स एव शरीरोपाधित्वेन व्यपदिश्यते। नारकादिशरीरो-

---

हार नहीं होता है। इस प्रकारके व्यवहारका कारण कर्मवन्ध था, वह उसका नष्ट हो चुका है। कर्मवन्धसहित जीवके लिये ही यह व्यवहार घटित होता है, उससे रहित जीवके लिये नहीं। 'उपाधि' शब्दका अर्थ विशेषण है, कर्मवन्धसहित जीवके ही नारकी, मनुष्य आदि विशेषण संगत बैठते हैं। क्यों कि मनुष्यगति-नामकर्मके उदयसे जीव मनुष्य-विशेषणवाला होता है, नरकगति-नामकर्मके उदयसे जीव 'नारकी' इस विशेषणवाला होता है, इत्यादि। तात्पर्य यह कि-कर्मवन्धसहित जीवके तत्तत्कर्मोदयमें तत्तद्व्यपदेशता घटित होती है। अथवा संसारपरिभ्रमणका नाम भी उपाधि है। यह संसारपरिभ्रमणरूप उपाधि ज्ञानावरणीय आदि कर्मोंके संवन्धसे ही जीवको प्राप्त होती है। जीवको जब तक कर्मका सम्वन्ध रहता है तब तक ही उपाधिका सद्भाव रहता है।

आत्मा शरीर और कर्मके भेदसे उपाधि तीन प्रकारकी है। अशुभ वृत्ति-खोटा प्रणिधान आत्माकी उपाधि है। आत्मा जब अशुभ क्रियाओंमें प्रवृत्ति करता है या अशुभ प्रणिधानवाला

કર્મબંધ હતું તે તેને નાશ થઈ ચુકેલ છે. કર્મબંધસહિત જીવનો જ આ વ્યવહાર ઘટિત થાય છે. તેનાથી રહિત જીવનો નહિ.

'उपाधि' શબ્દનો અર્થ વિશેષણ છે કર્મબંધસહિત જીવને જ નારકી, મનુષ્ય આદિ વિશેષણ સંગત બેસે છે, કારણ કે મનુષ્યગતિ-નામકર્મના ઉદયથી જીવ મનુષ્યવિશેષણવાળા થાય છે, નરકગતિ-નામકર્મના ઉદયથી જીવ 'નારકી' એવા વિશેષણવાળા થાય છે, ઇત્યાદિ. તાત્પર્ય એ કે-કર્મબંધસહિત જીવને તત્તત્કર્મોદયમાં તત્તદ્વ્યપદેશતા ઘટિત થાય છે. અથવા સંસારપરિભ્રમણનું નામ પણ ઉપાધિ છે. આ સંસારપરિભ્રમણરૂપ ઉપાધિ જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોના સંબંધથી જીવને પ્રાપ્ત થાય છે. જીવને જ્યાં સુધી કર્મનો સંબંધ રહે છે ત્યાં સુધી જ ઉપાધિનો સદ્ભાવ રહે છે.

આત્મા, શરીર અને કર્મના ભેદથી ઉપાધિ ત્રણ પ્રકારની છે. અશુભવૃત્તિ -ખોટા પ્રણિધાન-વિચાર આત્માની ઉપાધિ છે. આત્મા જ્યારે અશુભ ક્રિયાઓમાં

पाधिना नारकादिरित्युच्यते, यथा-ज्ञानावरणीयादिकर्मणः सद्भावात् संसारिषु कश्चिन्मतिश्रुतावधिमनःपर्ययवान, कश्चिन्मन्दमतिः, कश्चिच्चक्षुर्दर्शनी कश्चिदचक्षुर्दर्शनी, कश्चित् सुखी कश्चिद्दुःखी, कश्चिन्मिथ्यादृष्टिः कश्चित् सम्यग्दृष्टिरित्यादिर्व्यवहारो भवतीति भावः ॥ सू० १० ॥

होता है तब इसके कर्मरूप उपाधि होती है। इससे ही जीव शरीर उपाधिवाला होता है। कर्म-उपाधिसे ही जीवोंको शरीर-उपाधि प्राप्त होती है। अशरीरीके कोई उपाधि नहीं होती। नारक आदि शरीरकी उपाधिसे जीव नारक आदि नामोंसे व्यवहृत होता है। उस-उस शरीरकी उपाधिसे जीव उस-उस नामवाला, या उस-उस पर्यायवाला होता है। जैसे-जब ज्ञानावरणीयादि कर्मके सद्भावसे संसारी जीवोंमें कोई मतिश्रुतज्ञानी, कोई मतिश्रुतअवधिज्ञानी, कोई मति, श्रुत, अवधि, और मनःपर्ययज्ञानी होता है, कोई मन्दबुद्धि होता है; कोई चक्षुदर्शनवाला, कोई अचक्षुदर्शनवाला, कोई सुखी, कोई दुःखी, कोई मिथ्यादृष्टि और कोई सम्यग्दृष्टि होता है तब उनमें 'यह मतिश्रुतज्ञानी है, यह मतिश्रुतअवधिज्ञानी है, यह मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्ययज्ञानी है, यह चक्षुदर्शनी है, यह अचक्षुदर्शनी है, यह सुखी है, यह दुःखी है, यह मिथ्यादृष्टि है और यह सम्यग्दृष्टि है' इत्यादि व्यवहार होता है ॥ सू० १० ॥

પ્રવૃત્તિ કરે છે અગર અશુભ પ્રણિધાનવાળા થાય છે ત્યારે તેને કર્મરૂપ ઉપાધિ થાય છે, તેનાથી જીવ શરીરઉપાધિવાળા થાય છે. કર્મઉપાધિથી જ જીવોને શરીર ઉપાધિ પ્રાપ્ત થાય છે. અશરીરીને કોઇ ઉપાધિ હોતી નથી. નારક આદિ શરીરની ઉપાધિથી જીવ નારક આદિ નામોથી વ્યવહૃત થાય છે તે તે શરીરની ઉપાધિથી જીવ તે તે નામવાળા અગર તે તે પર્યાયવાળા બને છે. જેવી રીતે જ્ઞાનાવરણીયાદિ કર્મના સદ્ભાવથી સંસારી જીવોમાં જ્યારે કોઈ મતિ શ્રુત અને મનઃપર્યવજ્ઞાની થાય છે. કોઈ મંદબુદ્ધિ હોય છે. કોઇ ચક્ષુદર્શનવાળા કોઇ અચક્ષુદર્શનવાળા, કોઇ સુખી કોઈ દુઃખી, કોઇ મિથ્યાદષ્ટિ અને કોઇ સમ્યગ્દષ્ટિ થાય છે ત્યારે તેમાં 'આ મતિશ્રુતજ્ઞાની છે, આ મતિ-શ્રુત-અવધિજ્ઞાની છે, આ મતિશ્રુત-અવધિ-મનઃપર્યવજ્ઞાની છે, આ ચક્ષુદર્શની છે, આ અચક્ષુદર્શની છે, આ સુખી છે, આ દુઃખી છે, આ મિથ્યાદષ્ટિ છે, અને આ સમ્યગ્દષ્ટિ છે' ઇત્યાદિ વ્યવહાર થાય છે ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

यद्येवं भवति, तर्हि मुनिना किं कर्तव्यमित्याह–' कम्मं च' इत्यादि ।

मूलम्=कम्मं च पडिलेहाए, कम्ममूलं च जं खणं ॥११॥

छाया—कर्म च प्रतिलेख्य, कर्ममूलं च यत् क्षणम् ॥ सू० ११ ॥

टीका—कर्म=ज्ञानावरणीयादि, यद्वा–प्रकृतिस्थित्यादिबन्धं, प्रतिलेख्य=संसारस्य कारणमिति पर्यालोच्य कर्ममूलं=प्राणिषु सावद्यव्यापारकरणं रागद्वेषमोहरूपं वा कर्मणः कारणमिति च पर्यालोच्य यत् क्षणं=क्षणनं–हिंसनं–प्राणातिपातादि, तत् परित्यजेदित्यर्थः । उक्तञ्च—

यदि ऐसा है तो मुनिको क्या करना चाहिये ? सो कहते हैं— 'कम्मं च' इत्यादि ।

जब यह निश्चित हो चुका कि कर्मरूप उपाधिसे ही जीवोंमें नारकादि व्यवहार होता है तो मुनिका कर्तव्य है कि वह ज्ञानावरणीयादि कर्मोंको, अथवा उनके प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध आदि बन्धोंको संसारका कारण जानकर कर्मों के मूल कारण सावद्य व्यापारको, अथवा राग द्वेष मोहको जान कर प्राणातिपातादिक जो कार्य हैं उनका सर्वथा परित्याग करे।

भावार्थ—जीवोंमें नारकादि व्यवहार कर्मकृत है, कर्म संसारका कारण है। कर्म जीवोंकी शुभाशुभरूप प्रवृत्तिसे उत्पन्न होते हैं। अशुभादि कर्मों से नारकादि व्यवहार होता है। अशुभादि कर्मोंका मूल कारण हिंसादि पाप या राग द्वेष और मोह हैं। इस लिए ज्ञानी मुनिका कर्तव्य है कि वह उनके मूल कारणोंका सर्वथा त्याग करे। कहा भी है—

જો આમ જ હોય તો મુનિએ શું કરવું જોઈએ ? તે કહે છે—'कम्मं च' ઈત્યાદિ.

જ્યારે એ નિશ્ચય થયો કે કર્મરૂપ ઉપાધિથી જ જીવોમાં નારકાદિ વ્યવહાર થાય છે તો મુનિનું કર્ત્તવ્ય છે કે તે જ્ઞાનાવરણીયાદિ કર્મોને અથવા તેના પ્રકૃતિબંધ, સ્થિતિબંધ આદિ બંધોને સંસારનું કારણ જાણીને તે કર્મોનું મૂલ કારણ સાવદ્ય વ્યાપારને, અને રાગદ્વેષ મોહને જાણીને પ્રાણાતિપાતાદિક જે કાર્ય છે તેનો સર્વથા પરિત્યાગ કરે.

ભાવાર્થ—જીવોમાં નારકાદિ વ્યવહાર કર્મકૃત છે, કર્મ સંસારનું કારણ છે. કર્મ જીવોની શુભાશુભરૂપ પ્રવૃત્તિથી ઉત્પન્ન થાય છે. અશુભાદિ કર્મોથી નારકાદિ વ્યવહાર થાય છે. અશુભાદિ કર્મોનું મૂળ કારણ હિંસાદિ પાપ. અથવા રાગદ્વેષ અને મોહ છે માટે જ્ઞાની મુનિનું કર્તવ્ય છે કે તે તેના મૂળ કારણનો સદા ત્યાગ કરે. કહ્યું છે—

"कर्मणो जायते कर्म, ततः संजायते भवः।
भवाच्छरीरदुःखं च, ततश्चान्यतरो भवः" ॥१॥ इति ॥ सू० ११ ॥

अपरं च मुनिकर्तव्यमाह-'पडिलेहिय' इत्यादि।

मूलम्—पडिलेहिय सव्वं समायाय दोहिं अंतेहिं अदिस्समाणे ॥ सू० १२ ॥

छाया—प्रतिलेख्य सर्वं समादाय द्वाभ्यामन्ताभ्यामदृश्यमानः ॥ सू० १२ ॥

टीका—प्रतिलेख्य=कर्मस्वरूपं पर्यालोच्य सर्वम्=सर्वज्ञप्रणीतमुपदेशं संयमं वा समादाय=गृहीत्वा अन्ताभ्याम्=अन्तकृद्भ्यां-कारणे कार्योपचारात्, आत्मनो ज्ञानादिगुणविघातकाभ्यां द्वाभ्यां=रागद्वेषाभ्याम् अदृश्यमानः=अनुपलक्ष्यमाणो वीतराग शब्दव्यपदेश्यो भवति ॥ सू० १२ ॥

"कर्मणो जायते कर्म, ततः संजायते भवः।
भवाच्छरीरं दुःखं च, ततश्चान्यतरो भवः ॥१॥" इति।

जीवोंको कर्मसे ही कर्मका बन्ध होता है। उससे भव-संसार होता है। भवसे शरीर, शरीरसे दुःख और दुःखोंसे फिर अन्य भव उन्हें मिलता रहता है ॥ १ ॥ सू० ११ ॥

फिर भी मुनिके कर्तव्य को कहते हैं—'पडिलेहिय' इत्यादि।

कर्म के स्वरूपकी पर्यायलोचना करके सर्वज्ञकथित उपदेशको अर्थात् संयमको ग्रहण कर आत्माके ज्ञानादिगुणोंके विघातक राग और द्वेष से रहित होता हुआ मुनि-आत्मा वीतराग शब्दका वाच्य हो जाता है।

भावार्थ—मुनिके अन्य कर्तव्य को प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं कि-वह कर्मके स्वरूपका विचार करे। कर्म के स्वरूपका विचार करनेसे

"कर्मणो जायते कर्म, ततः संजायते भवः।
भवाच्छरीरं दुःखं च, ततश्चान्यतरो भवः ॥१॥" ઈતિ.

જીવોને કર્મથી જ કર્મનો બંધ થાય છે. તેથી ભવ-સંસાર થાય છે. ભવથી શરીર, શરીરથી દુ:ખ અને દુઃખોથી વળી અન્યભવ તેને મળતો રહે છે ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

વળી પણ મુનિના કર્તવ્ય બાબત કહે છે-'पडिलेहिय' ઈત્યાદિ.

કર્મના સ્વરૂપની પર્યાલોચના કરીને સર્વજ્ઞકથિત ઉપદેશને અર્થાત્ સંયમને ગ્રહણ કરી આત્માના જ્ઞાનાદિ ગુણોના વિઘાતક રાગ અને દ્વેષથી રહિત બનીને મુનિ-આત્મા વીતરાગ શબ્દનો વાચ્ય થઈ જાય છે.

ભાવાર્થ—મુનિના બીજા કર્તવ્યને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે કે-તે કર્મના સ્વરૂપનો વિચાર કરવાથી તેને તેવો દૃઢ વિશ્વાસ થઈ જશે કે આત્માના

मूलम्—तं परिन्नाय मेहावी विइत्ता लोगं वंता लोगसन्नं से मइमं परक्कमिज्जासि-त्ति बेमि ॥ सू० १३ ॥

छाया—तत् परिज्ञाय मेधावी विदित्वा लोकं वान्त्वा लोकसंज्ञां स मतिमान् पराक्रमेत-इति ब्रवीमि ॥ सू० १३ ॥

टीका—तत्=कर्मणः कारणं रागद्वेषरूपं परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया कर्मबन्धहेतुं विज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यज्य लोकं विषयकषायव्यामोहितं संसारिणं

उसे यह दृढ विश्वास हो जावेगा कि—आत्माके ज्ञानादिक गुणोंका घातक यदि कोई हैं तो ये कर्म ही हैं, रागद्वेषको जो ज्ञानादिक गुणोंका घातक सूत्रकारने प्रकट किया है वह कारणमें कार्यके उपचारसे किया है। क्योंकि राग-द्वेषसे जीवोंके नवीन कर्मोंका बन्ध होता है, अतः राग द्वेष उनके बन्धमें कारण हैं, और कर्मोंका बन्ध कार्य है। इन कर्मोंका अभाव जब तक सर्वज्ञ प्रभुके उपदेशानुसार जीव अपनी प्रवृत्ति नहीं बनायेगा तब तक नहीं कर सकता, अर्थात् संयमकी आराधना विना इनका अभाव नहीं हो सकता। यदि उसे वीतराग बनना है तो उसका कर्तव्य है कि वह राग द्वेषका अन्त करनेके लिये उक्त विधिका पालन करे ॥सू०१२॥

इसी बातको सूत्रकार फिर पुष्ट करते हैं—'तं परिन्नाय' इत्यादि।

साधु कर्मोंके बन्धमें मूल कारण राग द्वेषको ज्ञपरिज्ञासे जान कर और प्रत्याख्यानपरिज्ञासे उनका त्याग करे। 'समस्त संसारी जीव विषय-कषायोंसे व्यामोहित हो रहे हैं इस लिये इन विषयोंकी वांछाको

જ્ઞાનાદિક ગુણોના ઘાતક જે કોઈ હોય તો તે કર્મ જ છે રાગ દ્વેષને જે જ્ઞાનાદિક ગુણોના ઘાતક સૂત્રકારે પ્રગટ કર્યા છે તે કારણમાં કાર્યના ઉપચારથી કરેલ છે. કારણ કે રાગ-દ્વેષથી જીવોને નવીન કર્મોનો બંધ થાય છે, માટે રાગ-દ્વેષ તેના બંધમાં કારણ છે, અને કર્મોનો બંધ કાર્ય છે. તે કર્મોનો અભાવ જ્યાં સુધી સર્વજ્ઞ પ્રભુના ઉપદેશાનુસાર જીવ પોતાની પ્રવૃત્તિ નહિ બનાવે ત્યાં સુધી કરી શકતો નથી. અર્થાત્ સંયમની આરાધના વિના તેનો અભાવ થઈ શકતો નથી, કદાચ તેને વીતરાગ બનવાનું છે તો તેનું કર્તવ્ય છે કે તે રાગ દ્વેષનો અંત કરવા માટે કહેલી વિધિનું પાલન કરે. ॥ સૂ૦ ૧૨ ॥

આ વાતને સૂત્રકાર ફરીથી પુષ્ટ કરે છે-'त परिन्नाय' ઇત્યાદિ.

સાધુ કર્મોના બંધમાં મૂલ કારણ રાગ દ્વેષને જ્ઞ-પરિજ્ઞાથી જાણીને અને પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાથી તેનો ત્યાગ કરે. 'સમસ્ત સંસારી જીવ વિષય કષાયોથી વ્યામોહિત થઈ રહેલ છે માટે તેવા વિષયોની વાંછાને સદા દૂર કરવી જોઈએ.'

विदित्वा, लोकसंज्ञां=विषयवाञ्छारूपां वान्त्वा=दूरीकृत्य स मतिमान्=साधुमर्यादारक्षणतत्परः सन् पराक्रमेत=संयमाराधने उद्युक्तो भवेत्। यद्वा—अष्टविधं कर्म क्षपयितुमुत्सहेत। संयमं गृहीत्वा न पश्चात्तापमवलम्बेत, सिंहत्वेन निष्क्रम्य शृगालत्वेन न विहरेत्। अत्र चतुर्भङ्गी वाच्या। इति ब्रवीमि पूर्ववत् ॥सू० १३॥

तृतीयाध्ययनस्य प्रथमोद्देशः समाप्तः ॥ ३-१ ॥

सदा दूर करना चाहिये' ऐसा विचार कर उसका सदा परिहार करे, और मुनिपनेकी मर्यादाकी रक्षा करनेमें तत्पर वह मतिमान् मुनि संयमकी आराधना करनेमें दत्तावधान रहे; क्योंकि संयमकी आराधनाके विना कर्मोंका नाश नहीं हो सकता, इस लिये आठ कर्मका नाश करनेके अभिप्राय से संयमकी आराधना करे। संयमको ग्रहण कर फिर पश्चात्ताप न करे, अर्थात्–सिंहवृत्तिसे संयमकी आराधना करे किन्तु इसकी आराधनामें शृगालवृत्तिको स्थान न दे। यहां इस विषयमें चतुर्भङ्गी समझनी चाहिये, वह इस प्रकार—

(१) सिंहवृत्तिसे निकले सिंहवृत्तिसे पाले। (२) सिंहवृत्तिसे निकले शृगालवृत्तिसे पाले। (३) शृगालवृत्तिसे निकले सिंहवृत्तिसे पाले। (४) शृगालवृत्तिसे निकले शृगालवृत्तिसे पाले।

इनमें पहला और तीसरा भंग श्रेष्ठ है ॥ 'इति ब्रवीमि' इसका अर्थ पहले कहा जा चुका है ॥ सू० १३ ॥

॥ तृतीय अध्ययनका प्रथम उद्देश समाप्त ॥ ३-१ ॥

એવો વિચાર કરી તેનો સદા પરિહાર કરે અને મુનિપણાની મર્યાદાની રક્ષા કરવામાં તત્પર તે મતિમાન્ મુનિ સંયમની આરાધના કરવામાં સાવધાન રહે; કારણ કે સંયમની આરાધના વિના કર્મોનો નાશ થઇ શકતો નથી, માટે આઠ કર્મોનો નાશ કરવાના અભિપ્રાયથી સંયમની આરાધના કરે, સંયમને ગ્રહણ કરી પછી પશ્ચાત્તાપ ન કરે, અર્થાત્ સિંહવૃત્તિથી સંયમની આરાધના કરે પણ તેની આરાધનામાં શિયાળવૃત્તિને સ્થાન ન આપે. આ ઠેકાણે આ વિષયમાં ચતુર્ભંગી સમજવી જોઈએ. તે આ પ્રકારે—

(૧) સિંહવૃત્તિથી નિકળે, સિંહવૃત્તિથી પાળે. (૨) સિંહવૃત્તિથી નિકળે શૃગાલવૃત્તિથી પાળે. (૩) શૃગાલવૃત્તિથી નિકળે, સિંહવૃત્તિથી પાળે. (૪) શૃગાલવૃત્તિથી નિકળે, શૃગાલવૃત્તિથી પાળે

તેમાં પહેલો અને ત્રીજો ભંગ ઉત્તમ છે. 'इति ब्रवीमि' એનો અર્થ પહેલાં કહેવામાં આવેલ છે. ૧૩

ત્રીજા અધ્યયનનો પ્રથમ ઉદ્દેશ સમાપ્ત ૩-૧.

तृतीयाध्ययनस्य द्वितीयोद्देशः ॥

तृतीयाध्ययनस्य प्रथमोद्देशके भावसुप्ताः प्रतिबोधिताः, अथ तेषां स्वापस्य फलं दुःखं भवतीत्यावेदयितुं द्वितीयोद्देशकं प्रस्तुवन्नाह—'जाइं च वुड्ढिं च' इत्यादि ।

मूलम्—जाइं च वुड्ढिं च इहऽज्ज पासे, भूएहिं जाणे पडिलेह सायं । तम्हाऽतिविज्जो परमंति णच्चा, सम्मत्तदंसी न करेइ पावं ॥ सू० १ ॥

छाया—जातिं च वृद्धिं च इह अद्य पश्य, भूतैर्जानीहि प्रतिलेख्य सातम् । तस्मात् अतिविद्यः परमम् इति ज्ञात्वा, सम्यक्त्वदर्शी न करोति पापम् ॥ सू० १ ॥

टीका—इह=संसारे अद्यैव=अस्मिन्नेव दिवसे, अलं कालक्षपणेनेति भावः; जातिम्=गर्भोत्पत्तिं वृद्धिं=बाल्यादिवृद्धावस्थापर्यन्तं वर्धनं प्राणिनां, पश्य=गर्भोत्पत्ति-

---

तीसरे अध्ययनका दूसरा उद्देश ॥

तृतीय अध्ययनके प्रथम उद्देशमें भावसुप्त प्राणियोंका निरूपण अच्छी तरहसे किया जा चुका है । इस द्वितीय उद्देशमें यह समझाया जावेगा कि उनकी इस निद्राका फल उन्हें दुःखके सिवाय कुछ नहीं होता है । इसी विषयको स्पष्ट करनेके लिये सूत्रकार इस द्वितीय उद्देश का प्रारंभ करते हुए प्रथम सूत्र कहते हैं—'जाइं च वुड्ढिं च' इत्यादि ।

शिष्यको संबोधन करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्य ! आज ही तुम इस बातका ज्ञानदृष्टिसे विचार करो, कल परसोंकी बात जाने दो, समय बीतानेसे क्या फायदा ? संसारमें प्राणियोंकी गर्भोत्पत्तिसे

ત્રીજા અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશ.

ત્રીજા અધ્યયનના પ્રથમ ઉદ્દેશમાં ભાવસુપ્ત પ્રાણીઓ વિષે સારી રીતે સમજાવેલ છે. આ બીજા ઉદ્દેશમાં એ સમજાવવામાં આવશે કે તેની આ નિદ્રાનું ફળ તેને દુઃખ સિવાય બીજું કાંઇ થતું નથી. આ વિષયને સ્પષ્ટ કરવા માટે સૂત્રકાર આ બીજા ઉદ્દેશનો આરંભ કરીને પ્રથમ સૂત્ર કહે છે—'जाइं च वुड्ढिं च' ઇત્યાદિ.

શિષ્યને સંબોધન કરીને સૂત્રકાર કહે છે કે હે શિષ્ય ! આજ જ તમે આ બાબતનો જ્ઞાનદૃષ્ટિથી વિચાર કરો, કાલ પરમદિવસની વાત જવા દો. સમય વીતાવવામાં શું ફાયદો ? સંસારમાં પ્રાણીઓની ગર્ભોત્પત્તિથી લગાવી બાલાદિ-

वृद्धिश्च प्राणिनां दुःखसहभाविन्येव भवतीति ज्ञानदृष्ट्याऽवलोकयेत्यर्थः। उक्तञ्च—

" जायमाणस्स जं दुक्खं, मरमाणस्स जंतुणो ।
तेण दुक्खेण संतत्तो, न सरइ जाइमप्पणो ॥ १ ॥
विरसरसियं रसंतो, तो सो जोणीमुहाउ निप्फिडइ ।
माऊए अप्पणोऽवि अ वेअणमउलं जणेमाणो ॥ २ ॥ "

लगाकर बालादि-वृद्धावस्थापर्यन्तकी सब अवस्थाएँ दुःखोंके साथ २ ही रहनेवाली हैं। संसारी प्राणीकी ऐसी कोई भी अवस्था नहीं है जिसमें दुःखोंका सम्बन्ध न हो। गर्भमें आना और वहां रहना यह एक महा दुःखमय है। यह प्राणी येन केन प्रकारेण वहां से सुरक्षित दशा में उत्पन्न हो जाता है और बाल-युवा-वृद्धावस्था तक पहुंच भी जाता है तो भी इन अवस्थाओंमें इस जीवको रंचमात्र भी साता नहीं मिलती है। दुःखोंके सिवाय यहां सुखों का नाम भी नहीं है। अतः गर्भोत्पत्ति और बालादि वृद्धावस्था तक की समस्त दशाएँ दुःखोंके साथ२ ही रहने वाली हैं। अन्यत्र भी यही बात कही है—

" जायमाणस्स जं दुक्खं, मरमाणस्स जंतुणो ।
तेण दुक्खेण संतत्तो, न सरइ जाइमप्पणो ॥ १ ॥
विरसरसियं रसंतो, तो सो जोणिमुहाउ निप्फिडइ ।
माऊए अप्पणोऽवि य, वेयणमउलं जणेमाणो ॥ २ " इति।

વૃદ્ધાવસ્થાપર્યન્તની સઘળી અવસ્થાઓ દુઃખોની સાથે ને સાથે રહેવાવાળી છે. સંસારી પ્રાણીની એક પણ અવસ્થા એવી નથી કે જેમાં દુઃખોનો સંબંધ ન હોય. ગર્ભમાં આવવું અને ત્યાં રહેવું એ એક મહાન દુઃખ છે. તે પ્રાણી કોઈ પ્રકારે ત્યાંથી સુરક્ષિત દશામાં ઉત્પન્ન થઇ જાય છે અને બાળ-યુવા-વૃદ્ધાવસ્થા સુધી પહોંચી પણ જાય છે તો પણ આ અવસ્થાઓમાં આ જીવને રજ માત્ર પણ સાતા મળતી નથી. દુઃખો સિવાય આંહી સુખોનું નામ પણ નથી. માટે ગર્ભોત્પત્તિ અને બાળાદિ વૃદ્ધાવસ્થા સુધીની સમસ્ત દશાઓ દુઃખોની સાથે જ રહેવાવાળી છે. અન્યત્ર પણ આ વાત કહેલ છે.—

" जायमाणस्स जं दुक्खं, मरमाणस्स जंतुणो ।
तेण दुक्खेण संतत्तो, न सरइ जाइमप्पणो ॥ १ ॥
विरसरसियं रसंतो, तो सो जोणीमुहाउ निप्फिडइ ।
माऊए अप्पणोऽवि य, वेयणमउलं जणेमाणो ॥ २ ॥ " इति

तथा-" हीणभिण्णस्सरो दीणो, विवरीओ विचित्तओ ।
दुब्बलो दुक्खिओ वसइ, संपत्तो चरिमं दसं" ॥३॥ इत्यादि ।

छाया—जायमानस्य यद्दुःखं म्रियमाणस्य जन्तोः ।
तेन दुःखेन संतप्तो न स्मरति जातिमात्मनः ॥ १ ॥
विरसरसितं रसन् ततः स योनिमुखाद् निस्सरति ।
मातुरात्मनोऽपि च वेदनामतुलां जनयन् ॥ २ ॥
हीनभिन्नस्वरो दीनो विपरीतो विचित्तकः ।
दुर्बलो दुःखितो वसति संप्राप्तः चरमां दशाम् ॥ ३ ॥

तथा—" हीणभिण्णसरो दीणो, विवरीओ विचित्तओ ।
दुब्बलो दुक्खिओ वसइ, संपत्तो चरिमं दसं। ॥१॥ " इति

उत्पन्न होनेवाले एवं मरनेवाले प्राणीको जो दुःख होता है उस दुःखसे संतप्त बना हुआ प्राणी अपनी उत्पत्तिका स्मरण तक नहीं करता ॥ १ ॥ जिस समय यह जीव योनिमुख-गर्भस्थानसे निकलता है उस समय बहुत बुरी तरहसे रोता है, क्यों कि उस समय वह अपनी माता के और अपने लिये अतुल-वर्णनातीत-वेदनाका कारण बनता है ॥२॥

तथा-फिर वह जब वृद्धावस्थामें पहुँचता है तब हीन बन जाता है। इसका स्वर अस्पष्ट-गरगर शब्दवाला हो जाता है, दशा इसकी दयनीय हो जाती है। तरुणावस्थामें इसकी जो हालत थी उससे भिन्न ही इसकी हालत हो जाती है। चित्त भी इसका ठिकाने नहीं रहता। उस समय यह दुर्बल और सदा दुःखित ही रहा करता है ॥ ३॥

तथा—" हीणभिण्णस्सरो हीणो, विवरीओ विचित्तओ ।
दुब्बलो दुक्खिओ वसइ, संपत्तो चरिमं दसं " ॥ ३ ॥ इति ।

ઉત્પન્ન થનાર અને મરનાર પ્રાણીને જે દુઃખ થાય છે તે દુઃખથી સંતપ્ત બનેલ પ્રાણી પોતાની ઉત્પત્તિનું સ્મરણ પણ કરતો નથી ॥૧॥ જે વખતે આ જીવ યોનિમુખ-ગર્ભસ્થાનથી નીકળે છે તે સમય ઘણી જ બુરી રીતે રડે છે, કારણ કે તે વખત તે પોતાને માટે તેમ જ પોતાની માતા માટે અતુલ-વર્ણનાતીત-વેદનાનું કારણ બને છે ॥ ૨ ॥

તથા વળી તે જ્યારે વૃદ્ધાવસ્થામાં પહોંચે છે ત્યારે હીન બની જાય છે. તેનો સ્વર અસ્પષ્ટ-ગરગર શબ્દવાળો બની જાય છે. તેની દશા દયાજનક થઈ પડે છે તરૂણ-અવસ્થામાં જે તેની હાલત હતી તે હાલતથી બીલકુલ ભિન્ન તેની હાલત થઇ જાય છે. ચિત્ત પણ તેનું ઠેકાણે રહેતું નથી. આ વખતે તે દુર્બળ અને સદા દુઃખી જ રહ્યા કરે છે. ॥ ૩ ॥

किञ्च—भूतैः=उच्चारादिचतुर्दशसु जीवोत्पत्तिस्थानेषु जातैर्भूतग्रामैः सह स्वात्मनः सातं=सुखं प्रतिलेख्य=पर्यालोच्य जानीहि। यथा तव सुखं प्रियमस्ति, तथाऽन्येषामपीति, यथा च तव दुःखे द्वेषः तथाऽन्येषामपीति ज्ञात्वा कस्यापि जीवस्य दुःखं नोत्पादनीयम्, एवं कृते दुःखं न प्राप्स्यसीति भावः।

तस्मात्—प्राणिनां सुखदुःखपर्यालोचनात्, अतिविद्यः=अतीव विद्या यस्य सः अतिविद्यः=तत्त्वपरिच्छेतृविद्याविभूषितः, परमं=परमश्रेयस्करं निर्वाणपदं तत्प्रापकं सम्यग्दर्शनादिकं वाऽस्ति, इति ज्ञात्वा सम्यक्त्वदर्शी=परमार्थदर्शी सन् पापं न करोति, सावद्यक्रियां न समाचरतीत्यर्थः॥ सू० १॥

तथा हे शिष्य! जीवोंकी उत्पत्तिके जो उच्चार (विष्टा) प्रस्रवण (मूत्र) आदि चौदह स्थान हैं उनमें उत्पन्न हुए जीवोंके साथ अपने सुख की पर्यालोचना करो, अर्थात् इस बातका सदा विचार करो कि जिस प्रकार सुख हमें प्रिय है उसी प्रकार अन्य जीवोंको भी वह प्रिय है, दुःख जिस प्रकार हमें अप्रिय-अनिष्ट है उसी प्रकार वह अन्य जीवोंको भी अनिष्ट है। ऐसा विचार कर या जानकर किसीको भी दुःख नहीं देना चाहिये। इस प्रकारसे विचार करने पर तुम स्वयं दुःख न पाओगे।

इस प्रकार प्राणियोंके सुख और दुःखकी पर्यालोचनासे वास्तविक तत्त्वका प्रकाशक ज्ञान जीवको प्राप्त होता है। उस ज्ञानसे युक्त वह मुक्तिपदको अथवा उसको प्राप्त करानेवाले सम्यग्दर्शनादिको परम-परमकल्याणकारी जानकर समदर्शी हो जाता है और सावद्य क्रियाओं को नहीं करता है॥ सू० १॥

તથા હે શિષ્ય! જીવોની ઉત્પત્તિના જે उच्चार=વિષ્ટા प्रस्रवण—મૂત્ર આદિ ચૌદ સ્થાન છે, તેમાં ઉત્પન્ન થયેલા જીવોની સાથે આપણા સુખની પર્યાલોચના કરો અર્થાત્ એ વાતનો સદા વિચાર કરો કે જે પ્રકારે સુખ અમોને પ્રિય છે તે પ્રકારે અન્ય જીવોને પણ પ્રિય છે. દુઃખ જે પ્રકારે અમોને અપ્રિય અનિષ્ટ છે તે પ્રકારે તે અન્ય જીવોને પણ અનિષ્ટ છે. એવો વિચાર કરી અગર જાણીને કોઇને પણ દુઃખ ન આપવું જોઈએ. આ પ્રકારનો વિચાર કરવાથી તમે સ્વયં દુઃખ પામશો નહિ.

આ પ્રકારે પ્રાણીઓના સુખ અને દુઃખોની પર્યાલોચનાથી વાસ્તવિક તત્વનું પ્રકાશક જ્ઞાન જીવને પ્રાપ્ત થાય છે તે જ્ઞાનથી યુક્ત તે મુક્તિપદને અથવા તેને પ્રાપ્ત કરાવનાર સમ્યગ્દર્શનાદિને પરમ—પરમકલ્યાણકારી જાણીને સમદર્શી થઇ જાય છે અને સાવદ્ય ક્રિયાઓ કરતા નથી॥ સૂ૦ ૧॥

मूलम्—उम्मुंच पासं इह मच्चिएहिं आरंभजीवी उभयाणुपस्सी। कामेसु गिद्धा निचयं करेंति, संसिच्चमाणा पुणरेंति गब्भं॥ सू० २॥

छाया—उन्मुञ्च पाशम् इह मर्त्यैः आरम्भजीवी उभयानुदर्शी। कामेषु गृद्धाः निचयं कुर्वन्ति, संसिच्यमानाः पुनर्यन्ति गर्भम्॥ सू० २॥

टीका—'उम्मुंच' इत्यादि। इह=मनुष्यलोके, मर्त्यैः=मनुष्यैः साकं, पाशं=बन्धनहेतुं कलत्रादिसम्बन्धम्, यद्वा—पाशं द्रव्यभावभेदाद् द्विविधं, द्रव्यतो रज्ज्वादिकं, भावतो विषयकषायादिरूपम्, उन्मुञ्च=उत्—उत्कर्षतः—अतिशयेन निराकुरु। पाशयुक्तो हि कामभोगेच्छया प्राणिहिंसादिकं करोतीत्याह—'आरम्भजीवी' इत्यादि।

'उम्मुं च पासं' इत्यादि। इस मनुष्यलोकमें मनुष्योंके साथ पाश—बन्धनके हेतु पुत्रकलत्रादि सम्बन्ध—का हे शिष्य! तुम सर्वथा परिहार करो। अथवा द्रव्य और भावके भेदसे पाश—बन्धन दो प्रकारका है। रस्सी आदि पदार्थ द्रव्यसे, विषयकषायादिक भावसे बन्धन है, इन दोनों प्रकारके बन्धनोंका सर्वथा त्याग करो।

भावार्थ—संसारमें जीवोंके लिये सबसे प्रबल बंधनका कारण पुत्रकलत्रादिका सम्बन्ध है। आत्मार्थी इस बन्धनके हेतुका जबतक त्याग नहीं करता तब तक वह आत्मकल्याणके मार्गपर आरूढ नहीं हो सकता, इसीलिये उसका सर्वथा त्याग करनेका यहां उपदेश दिया गया है। इस पाशसे युक्त प्राणी कामभोगकी इच्छासे प्राणिहिंसादिरूप आरंभोंको करता है।

'उम्मुंच पासं' ઇત્યાદિ, આ મનુષ્યલોકમાં મનુષ્યોની સાથે પાશ–બંધનના હેતુ પુત્રકલત્રાદિક સંબંધ–નો હે શિષ્ય! તમે સર્વથા પરિત્યાગ કરો. અથવા દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી પાશ–બંધન બે પ્રકારના છે. રસ્સી આદિ પદાર્થ દ્રવ્યથી, વિષય–કષાયાદિક ભાવથી બંધન છે એ બન્ને પ્રકારના બંધનનો સર્વથા ત્યાગ કરો.

ભાવાર્થ—સંસારમાં જીવો માટે બધાથી પ્રબળ બંધનનું કારણ પુત્રકલત્રાદિકનો સંબંધ છે. આત્માર્થી આ બંધનના હેતુનો જ્યાં સુધી ત્યાગ નથી કરતો ત્યાં સુધી તે આત્મ–કલ્યાણના માર્ગ ઉપર આગળ વધી શકતો નથી. માટે તેનો સર્વથા ત્યાગ કરવાનો આ ઠેકાણે ઉપદેશ આપેલ છે. આ પાશથી યુક્ત પ્રાણી કામભોગની ઇચ્છાથી પ્રાણિહિંસાદિરૂપ આરંભો કરે છે.

यस्तु-आरम्भजीवी=आरम्भेण जीवितुं शीलमस्येति सः, आरम्भप्रकल्पित-जीविकः, स उभयानुदर्शी=ऐहिकपारत्रिकदुःखभोगी भवतीत्यर्थः।

कामेषु=विषयोपभोगेषु, गृद्धाः=लोलुपाः, निचयम्=अष्टविधकर्मसंचयं कुर्वन्ति। संसिच्यमानाः=कामभोगादिजन्यकर्मरजसा श्लिष्यमाणाः पुनः=वारं वारं गर्भं यन्ति=उपयान्ति, संसारचक्रे घटीयन्त्रवद् भ्राम्यन्तीति भावः॥ सू० २॥

मूलम्-अवि से हासमासज्ज, हंता नंदीति मन्नइ।

अलं बालस्स संगेण, वेरं वड्ढइ अप्पणो॥ सू० ३॥

छाया--अपि स हासमासाद्य, हत्वा नन्दीति मन्यते।

अलं बालस्य सङ्गेन, वैरं वर्धयति आत्मनः॥ सू० ३॥

टीका--'अवि से' इत्यादि। सः=अज्ञः-विषयलोलुपो हासम्=मनोविनोदम् आसाद्य=स्वीकृत्य, हत्वाऽपि=प्राणिनो निहत्याऽपि नन्दी='क्रीडा' इति मन्यते।

आरंभसे जीनेका जिसका स्वभाव है वह आरंभजीवी है। महान् आरंभों द्वारा जो अपनी आजीविका करते हैं वे इस लोक और परलोक-दोनों-के दुःखोंको भोगते हैं। कारण कि विषयभोगोंमें गृद्ध-लोलुपी प्राणी अष्टविधकर्मोंका संचय करते हैं और इन कामभोगोंसे उपार्जित कर्मरूपी धूलिसे लिप्त होकर वे वारंवार अरहटके घटमालकी तरह इस संसाररूपी चक्रमें घूमते रहते हैं॥ सू० २॥

'अवि से' इत्यादि।

वह विषयी प्राणी मनोविनोदको पाकर, अर्थात् मनोविनोद करने के अभिप्रायसे प्रेरित होकर प्राणियोंकी हिंसा करके भी आनन्दित होता है। उस हिंसाको यह अपने मनोविनोदका साधन मान क्रीडा समझता है

આરંભથી જીવવાનો જેનો સ્વભાવ છે તે આરંભજીવી છે. મહાન આરંભોદ્વારા જે પોતાની આજીવિકા કરે છે તે આ લોક અને પરલોક બન્નેના દુઃખો ભોગવે છે, કારણ કે વિષયભોગોમા ગૃદ્ધ-લોલુપી પ્રાણી અષ્ટવિધ કર્મોનો સંચય કરે છે, અને આ કામભોગથી ઉપાર્જીત કર્મરૂપી ધૂળથી લિપ્ત બનીને તે વારંવાર રેંટના ઘટમાલની માફક આ સંસારરૂપી ચક્રમાં ઘૂમતો રહે છે ॥ સૂ૦ ૨ ॥

'अवि से' ઇત્યાદિ.

તે વિષયી પ્રાણી મનોવિનોદ માટે અર્થાત્ મનોવિનોદ કરવાના અભિપ્રાયથી પ્રેરિત બનીને પ્રાણીઓની હિંસા કરીને પણ આનંદિત થાય છે. તેવી હિંસાને તે પોતાના મનોવિનોદનું સાધન માની ક્રીડા સમજે છે. જુઠું બોલે છે, ઠગે છે

ब्रूते च मृषावादं यथा-मृगादयश्चैते मृगयार्थं धात्रा सृष्टाः, मृगया च क्रीडार्थं भवतीति। यदि मनोविनोदार्थमपि प्राणिनो हत्वा मोदते तर्हि मांसाद्युपभोगार्थं प्राणिनो निहत्य प्रमुदितो भवतीत्यत्र किमाश्चर्यम्। एवमदत्तादानादिदोषानपि स उपादत्ते। एवं चेत्तर्हि किं कर्तव्यं मुनिना? इत्याह--'अलम्' इत्यादि। बालस्य= अज्ञस्य संगेन=हास्यादिसङ्गेन प्राणातिपातादिरूपेण वा अलं=व्यर्थम्, अज्ञस्य यः संगो हास्यादिरूपः प्राणातिपातादिरूपो वा स सर्वथा वर्जनीय इत्यर्थः। बालस्य सङ्गकरणे दोषं दर्शयति-'वैरम्' इत्यादि। बालस्य सङ्गः आत्मनो वैरं=द्वेषं वर्द्धयति, नूतनभवानुषङ्गिवैरानुबन्धिकर्मणा बध्यते इत्यर्थः॥ सू० ३॥

और झूठ ही कहता है कि ये मृगादिक पशु शिकारके लिये ही विधाताने बनाये हैं। शिकार क्रीडा करनेके निमित्तसे ही की जाती है। शिकार करनेसे मनोविनोद होता है। यदि मनोविनोदके लिये भी प्राणियोंकी हिंसा कर जो आनन्द मानता है वह मांसादिक खानेके लिये यदि उनकी हिंसा कर हर्षित होता है तो इसमें कौनसी अचरजकी बात है?। इसी प्रकार विषयोंमें लंपट बना हुआ प्राणी चोरी कुशील आदि पापोंको भी करता है। इसलिये मुनिजनका कर्तव्य है कि वह ऐसे बाल-अज्ञानी की संगतिसे, मनोविनोदके कारण हास्यादिकोंसे, अथवा हिंसादिक पापोंसे दूर रहे। बाल-अज्ञानियोंकी संगति, मनोविनोदके कारण हास्यादिक एवं प्राणातिपातादिक पाप, मुनिके लिये सर्वथा वर्जनीय इस लिये हैं कि इनका संग वैर-द्वेषका वर्धक होता है। उस वैरभावकी वृद्धिसे नूतनभवानुषङ्गा और वैरानुबन्धी कर्मका बन्ध होता है॥सू० ३॥

કે-આ મૃગાદિક પશુ શિકાર માટે જ વિધાતાએ બનાવેલ છે શિકાર ક્રીડા કરવાના નિમિત્તથી જ કરવામા આવે છે શિકાર કરવાથી મનોવિનોદ થાય છે. કદાચ મનોવિનોદ માટે પ્રાણીઓની હિંસા કરી જે આનંદ માને છે તે માંસાદિક ખાવા માટે પણ કદાચ હિંસા કરી હર્ષિત થાય તો તેમાં કંઇ અચરજ નથી આ પ્રકારે વિષયોમાં લંપટ બનેલ પ્રાણી ચોરી કુશીલ આદિ પાપો પણ કરે છે. તેથી મુનિજનનું કર્તવ્ય છે કે તે આવા બાલ-અજ્ઞાનીની સંગતિથી, મનોવિનોદના કારણ હાસ્યાદિકોથી, અથવા હિંસાદિ પાપોથી દૂર રહે. બાલ-અજ્ઞાનીઓની સંગતિ, મનોવિનોદના કારણ હાસ્યાદિક અને પ્રાણાતિપાતાદિક પાપ, મુનિ માટે સર્વથા વર્જનીય આ માટે છે કે તેનો સંગ વેર-દ્વેષનો વર્ધક થાય છે. આ વેરભાવની વૃદ્ધિથી નૂતનભવાનુષંગી અને વેરાનુબંધી કર્મનો બંધ થાય છે. ॥ સૂ૦ ૩ ॥

यद्येवं तर्हि मुनिना किं कर्त्तव्यमित्याह-'तम्हा' इत्यादि।

मूलम्--तम्हाऽतिविज्जो परमंति णच्चा, आयंकदंसी न करेइ पावं। अग्गं च मूलं च विगिंच धीरे, पलिच्छिंदिया णं निक्कम्मदंसी ॥ सू० ४॥

छाया--तस्मात् अतिविद्यः परमम् इति ज्ञात्वा, आतङ्कदर्शी न करोति पापम्। अग्रं च मूलं च विविच्य धीरः, परिच्छिद्य खलु निष्कर्मदर्शी ॥ सू० ४॥

टीका--'तम्हा' इत्यादि। तस्माद्=बालसंगेन वैरवर्धनाद्, अतिविद्यः= सम्यग्ज्ञानवान्, परमं=सर्वोत्कृष्टं-सिद्धिगतिनामधेयं पदं, सर्वविरतिलक्षणं चारित्रं वा अस्तीति ज्ञात्वा, आतङ्कदर्शी=नरकनिगोदादिनानादुःखदर्शकः, पापं=पापानुबन्धि कर्म न करोति। अत्र करोतीत्युपलक्षणम्, न च परेण कारयति, नापि कुर्वन्तमन्यमनुमोदयति।

यदि ऐसा है तो मुनि को क्या करना चाहिये? सो कहते हैं-- 'तम्हा' इत्यादि।

बाल-अज्ञानीके संगसे वैरभावकी वृद्धि होती है। इसलिये जो अतिविद्य-सम्यग्ज्ञानसंपन्न है वह-'सिद्धिगतिनामक परमपद अथवा उसको प्राप्त करानेवाला सर्वविरतिलक्षण चारित्र परम श्रेयस्कर है' ऐसा जानकर नरकनिगोदादिकके अनेक दुःखोंका ज्ञाता, अर्थात् 'नरक निगोदादिकोंके दुःख जीवोंको तब तक भोगने पड़ते हैं कि जब तक सिद्धिपदकी प्राप्ति उन्हें नहीं होती' इस प्रकारका दृढश्रद्धावाला होता हुआ पापानुबन्धी कर्म नहीं करता है। "करोति" यह क्रिया अन्य क्रियाओंकी उपलक्षक है, इससे यह घटित होता है कि वह न दूसरोंसे पापकर्म कराता है और न पापकर्म करनेवालोंकी अनुमोदना ही करता है।

જો આ પ્રમાણે છે તો મુનિએ શું કરવું જોઇએ? તે કહે છે-'तम्हा' ઇત્યાદિ.

બાલ-અજ્ઞાનીના સંગથી વૈરભાવની વૃદ્ધિ થાય છે, માટે જે અતિવિદ્ય-સમ્યગ્જ્ઞાનસંપન્ન છે તે 'સિદ્ધિગતિનામક પરમપદ અથવા તેને પ્રાપ્ત કરાવનાર સર્વવિરતિલક્ષણ ચારિત્ર પરમ શ્રેયસ્કર છે' એવું જાણીને નરકનિગોદાદિકના અનેક દુઃખોના જ્ઞાતા અર્થાત્ 'નરક નિગોદાદિકોના દુઃખ જીવોને ત્યાં સુધી ભોગવવા પડે છે જ્યાં સુધી સિદ્ધિપદની પ્રાપ્તિ તેને થતી નથી' આ પ્રકારના દૃઢ શ્રદ્ધાવાળા બનીને પાપાનુબન્ધી કર્મ કરતા નથી "करोति" આ ક્રિયા અન્ય ક્રિયાઓની ઉપલક્ષક છે, તેથી એ ઘટિત થાય છે કે તે બીજાઓથી પાપકર્મ કરાવતા નથી અને પાપકર્મ કરવાવાળાઓની અનુમોદના પણ કરતા નથી.

किञ्च-अग्रं=भवोपग्राहिकर्मचतुष्टयं केवलिकर्मेत्यर्थः, मूलं=चतुर्विधं घातिकर्म, यद्वा मूलं=मोहनीयं कर्म, अग्रं=तदवशिष्टसप्तकर्माणि, मोहनीयक्षयेण विनाऽन्येषां कर्मणां क्षयो न भवति, तस्मान्मोहनीयस्य मूलत्वं सिध्यति। उक्तञ्च-

"नायगंमि हए संते, जहा सेणा विणस्सइ।
एवं कम्माणि णस्संति, मोहणिज्जे खयं गए" ॥ इति।

छाया--नायके हते सति, यथा सेना विनश्यति।
एवं कर्माणि नश्यन्ति, मोहनीये क्षयं गते ॥

परीषह एवं उपसर्गों से अविचलित होकर वह पृथक् पृथक् भेद प्रभेदों सहित-विस्तारपूर्वक इस बातकी पर्यालोचना करता है कि अग्र और मूल तपसंयमके विना आत्मासे पृथक्-अलग नहीं हो सकते हैं। भवोपग्राही अघातिया चार कर्म कि जो केवलिकर्म कहे जाते हैं, वे चार प्रकारके घातिया कर्म मूल हैं। अथवा मोहनीय कर्मका नाम मूल है। इससे अवशिष्ट सात कर्मोंका नाम अग्र है। मोहनीयके क्षय हुए विना अन्य कर्मों का क्षय नहीं होता है इसलिये मोहनीयमें मूलता सिद्ध होती है। कहा भी है—

"नायगम्मि हए संते, जहा सेणा विणस्सइ।
एवं कम्माणि णस्संति, मोहणिज्जे खयं गए" ॥ १ ॥

जैसे सेनापतिके मारे जाने पर सेना तितर-बितर होकर भाग जाती है उसी प्रकार मोहनीयके क्षय होने पर अन्य कर्म भी नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

પરીષહ અને ઉપસર્ગોથી અવિચલિત બનીને તે પૃથક્ પૃથક્ ભેદપ્રભેદો સહિત-વિસ્તારપૂર્વક આ વાતની પર્યાલોચના કરે છે કે અગ્ર અને મૂલ તપ સંયમ વિના આત્માથી પૃથક્-અલગ થઈ શકતા નથી. ભવોપગ્રાહી અઘાતિયા ચાર કર્મો કે જે કેવલિકર્મ કહેવાય છે તે ચાર પ્રકારના ઘાતિયા કર્મ મૂલ છે. અથવા મોહનીય કર્મનું નામ મૂલ છે. તેનાથી અવશિષ્ટ સાત કર્મોનું નામ અગ્ર છે. મોહનીયનો ક્ષય થયા વિના અન્ય કર્મોનો ક્ષય થતો નથી. માટે મોહનીયમાં મૂલતા સિદ્ધ થાય છે. કહ્યું છે—

"नायगम्मि हए संते, जहा सेणा विणस्सइ।
एवं कम्माणि णस्संति, मोहणिज्जे खयं गए" ॥ १ ॥

જેવી રીતે સેનાપતિના મરવાથી સેના છિન્નભિન્ન થઇ ભાગી જાય છે તે પ્રકારે મોહનીયનો ક્ષય થવાથી અન્ય કર્મ પણ નષ્ટ થઈ જાય છે. ॥૧॥

यद्वा-मूलं=मिथ्यात्वम्, अग्रं तु अष्टविधकर्मप्रकृतिरूपं तेषां मिथ्यात्वमूलत्वात्। उक्तञ्च—" ...... मिच्छत्तेणं उदिण्णेणं एवं खलु जीवे अट्ठ कम्मपगडीओ बंधइ" इति। धीरः=परीषहोपसर्गैरक्षोभ्यः सन् विविच्य पृथक् पृथग् भेदोपभेदैः सविस्तरं पर्यालोच्य, परिच्छिद्य=कर्माणि तत्कारणीभूतमिथ्यात्वादीनि तपः-संयमाभ्यां सर्वथा छित्वा=स्वात्मनः पृथक्कृत्य, पौद्गलिकस्य ज्ञानावरणीयादेः कर्मणश्छेदनं द्वैधीकरणरूपं न संभवति, किन्त्वात्मनः पृथक्करणमेवेति भावः। निष्कर्मदर्शी=स्वात्मानं निष्कर्माणं द्रष्टुं शीलमस्येति तथाविधो भवतीत्यर्थः। ज्ञानावरणीयदर्शनावरणीयकर्मापगमात् सर्वदर्शी भवतीति भावः ॥४

अथवा-'मूल' नाम मिथ्यात्वका है। 'अग्र' नाम आठ प्रकारके कर्मोंका है, क्यों कि आठों कर्मोंका मूलकारण मिथ्यात्व है। इसी लिए मिथ्यात्वको मूल-शब्दसे कहा है। कहा भी है—" ... मिच्छत्तेणं उदिण्णेणं एवं खलु जीवे अट्ठ कम्मपगडीओ बंधई।" इति मिथ्यात्वके उदयसे जीव आठ कर्मप्रकृतियोंको बांधता है।

इसलिये कर्मों के कारणभूत मिथ्यात्व आदिको तपसंयमद्वारा सर्वथा अपनी आत्मासे अलग कर वह निष्कर्मदर्शी हो जाता है।

सूत्रमें " परिच्छिद्य " पद आया है, जिसका अर्थ-" छेदन करके" ऐसा होता है। परन्तु पौद्गलिक ज्ञानावरणीयादि कर्मोंका तो छेदन हो नहीं सकता; अतः-' ज्ञानावरणीयादि कर्मोंको अपनी आत्मासे " परिच्छिद्य"-अलग करके' ऐसा अर्थ करना चाहिये, क्यों कि कर्मोंको आत्मासे पृथक् करना ही उनका छेदन है। आत्मासे कर्मोंके अलग होने

અથવા 'मूल' નામ મિથ્યાત્વનું છે. 'अग्र' નામ આઠ પ્રકારના કર્મોનું છે, કારણ કે આઠ કર્મોનું મૂલ કારણ મિથ્યાત્વ છે. માટે મિથ્યાત્વને મૂલ શબ્દથી કહેલ છે. કહ્યું છે "...मिच्छत्तेणं उदिण्णेणं एवं खलु जीवे अट्ठ कम्मपगडीओ बंधइ।" इति। મિથ્યાત્વના ઉદયથી જીવ આઠ કર્મપ્રકૃતિઓ બાંધે છે. માટે કર્મોના કારણભૂત મિથ્યાત્વ આદિને તપસંયમદ્વારા સર્વથા પોતાના આત્માથી જુદા કરી તે નિષ્કર્મદર્શી થઈ જાય છે.

સૂત્રમાં "परिच्छिद्य" પદ આવેલ છે. તેનો અર્થ "છેદન કરીને" એમ થાય છે. પરંતુ પૌદ્ગલિક જ્ઞાનાવરણીયાદિ કર્મોનું તો છેદન બની શકતું નથી માટે જ્ઞાનાવરણીયાદિ કર્મોને પોતાના આત્માથી "परिच्छिद्य"-જુદા કરીને, એવો અર્થ કરવો જોઈએ. કારણ કે કર્મોને આત્માથી પૃથક્ કરવા તે જ તેનું છેદન

अन्यदपि फलं निष्कर्मदर्शिनो भवतीत्याह-' एस मरणा पमुच्चइ' इत्यादि।

मूलम्-एस मरणा पमुच्चइ, से हु दिट्ठभए मुणी, लोगंसि परमदंसी विवित्तजीवी उवसंते समिए सहिए सया जए कालकंखी परिव्वए ॥ सू० ५ ॥

छाया-एष मरणात् प्रमुच्यते, स एव दृष्टभयो मुनिः, लोके परमदर्शी विविक्तजीवी उपशान्तः समितः सहितः सदा यतः कालाकाङ्क्षी परिव्रजेत् ॥ सू० ५ ॥

टीका—एषः=निष्कर्मदर्शी मरणात्=आयुःक्षयात् प्रमुच्यते, आयुष्यकर्मबन्धापगमादिति भावः। यद्वा-आवीचिमरणात् आवीचि=अनुसमयं निरन्तरं मरणं=मृत्युः संसारो वा, तस्मात् प्रमुच्यते। केवली भूत्वा अन्यान् वा मोचयति देशनादिना। स

पर जीव निष्कर्मदर्शी-अर्थात् कर्मरहित अपनी आत्माको देखनेके स्वभाववाला हो जाता है। इस प्रकारका स्वभाव जीवके ज्ञानावरणीय कर्मके विनाशसे उत्पन्न होता है। इसी अवस्थामें जीव सर्वज्ञ सर्वदर्शी होता है ॥ सू० ४ ॥

जो निष्कर्मदर्शी है उसे और भी दूसरा लाभ होता है, इस बातको प्रकट करते हैं—' एस मरणा पमुच्चइ ' इत्यादि।

यह निष्कर्मदर्शी आयुकर्मके बन्धके अभाव होनेपर मरणसे रहित हो जाता है। अथवा वह आवीचिमरणसे छूट जाता है। अनुसमय अर्थात् निरन्तर मरणको आवीचिरमण कहते हैं। अथवा मरण नाम संसारका है। केवली हो जानेसे आत्मा संसारबन्धनसे रहित हो जाता है। सिद्धस्थानमें विराजनेके निश्चयसे उसी भवमें अघातिया कर्मोंका

છે. આ ભાથી કર્મોના અલગ થવાથી જીવ નિષ્કર્મદર્શી—અર્થાત્ કર્મરહિત પોતાના આત્માને જોવાના સ્વભાવવાળો થઇ જાય છે. આ પ્રકારનો સ્વભાવ જીવને જ્ઞાનાવરણીય અને દર્શનાવરણીય કર્મના વિનાશથી ઉત્પન્ન થાય છે. આ અવસ્થામાં જીવ સર્વજ્ઞ સર્વદર્શી થાય છે ॥ સૂ૦ ૪॥

જે નિષ્કર્મદર્શી છે તેને બીજો પણ લાભ થાય છે. તે વાતને પ્રગટ કરે છે– ' एस मरणा पमुच्चइ ' ઇત્યાદિ.

આ નિષ્કર્મદર્શી આયુકર્મના બંધનો અભાવ થવાથી મરણથી રહિત થાય છે અને તે આવીચિમરણથી છુટી જાય છે. અનુસમય અર્થાત્ નિરન્તર મરણને આવીચિમરણ કહે છે અથવા મરણ નામ સંસારનું છે, કેવળી થઈ જવાથી આત્મા સંસારબંધનથી રહિત થાય છે, સિદ્ધસ્થાનમાં વિરાજવાના નિશ્ચયથી તેજ ભવમાં

दृष्टभय एव, दृष्टं भयम् इहलोकादि सप्तविधं येन स एव मुनिर्भवति । किं च लोके=उच्चारादिचतुर्दशस्थानसमुत्पन्ने जीवसमूहात्मके परमः=आत्मनः समुत्कर्षकारित्वात् संयमः, तं द्रष्टुं शीलमस्येति परमदर्शी, तथा-विविक्तं रागद्वेषरहितत्वादक्लिष्टं जीवितुं शीलमस्येति विविक्तजीवी, अत एव उपशान्तः=उपशमसमन्वितः, अत एव समितः मोक्षमार्गे सम्यग् इतः=प्राप्तः, तथा सहितः ज्ञानचारित्रयुक्तः, अत एव सदा यतः=अनवरतं प्रमादरहितः । उक्तगुणधारणं कियत्कालपर्यन्तमावश्य-

---

अभाव कर सिद्धपदका अधिकारी हो जाता है। केवली होकर यह अन्य जीवोंको भी सद्देशना द्वारा संसारपरिभ्रमण से छुड़ा देता है । इहलोकभय आदि सात प्रकारका भय जिसने देख लिया है वह दृष्टभय है । दृष्टभय ही मुनि होता है । तथा उच्चारादि चौदह स्थानोंमें समुत्पन्न जीवसमूहरूप लोकमें आत्माका उत्कर्षकारी होनेसे परम जो संयम उसको देखनेका जिसका स्वभाव है वह परमदर्शी है । तथा रागद्वेषरहित होनेसे अक्लिष्ट जीनेका जिसका स्वभाव है वह विविक्तजीवी है। यह निष्कर्मदर्शी विविक्तजीवी होता है। इसीलिये वह 'उवसंते' 'उपशान्तः'-उपशमसे युक्त होता है। कषायोंके उद्रेकका अभाव उपशम है । जब कषायोंमें बिलकुल मन्दता आ जाती है तब वह 'समिए' समितः-मोक्षके मार्गको प्राप्त हुआ कहलाता है । तथा 'सहिए' सहितः ज्ञान और चारित्रसे युक्त होनेसे वह 'सयाजए' सदायतः-निरन्तर यतनावान् अर्थात् प्रमादरहित होता है । इन पूर्वोक्त गुणोंके धारण करने

અઘાતિયા કર્મોનો અભાવ કરી સિદ્ધપદનો અધિકારી થાય છે. કેવળી બની તે અન્ય જીવોને પણ સદ્દેશનાદ્વારા સંસારપરિભ્રમણથી છોડાવે છે. ઈહલોક ભય આદિ સાત પ્રકારનો ભય જેણે જોઈ લીધેલ છે તે દષ્ટભય છે, દષ્ટભય જ મુનિ થાય છે. તથા ઉચ્ચારાદિ ચૌદ સ્થાનોમાં સમુત્પન્ન જીવસમૂહરૂપ લોકમાં આત્માના ઉત્કર્ષકારી થવાથી પરમ જે સંયમ તેને દેખવાનો જેનો સ્વભાવ છે તે પરમદર્શી છે. તથા રાગદ્વેષરહિત થવાથી અક્લિષ્ટ જીવવાનો જેનો સ્વભાવ છે તે વિવિક્તજીવી છે. તે નિષ્કર્મદર્શી વિવિક્તજીવી થાય છે. તેથી તે 'उवसंते' उपशान्तः-ઉપશમથી યુક્ત થાય છે. કષાયોના ઉદ્રેકનો અભાવ ઉપશમ છે, જ્યારે કષાયોમાં બિલકુલ મંદતા આવી જાય છે ત્યારે તે 'समिए' समितः-મોક્ષના માર્ગને પ્રાપ્ત કરેલો કહેવાય છે. તથા 'सहिए' सहितः-જ્ઞાન અને ચારિત્રથી યુક્ત થવાથી તે 'सयाजए' सदायतः-નિરંતર યતનાવાન્ અર્થાત્ પ્રમાદ રહિત થાય છે. આ પૂર્વોક્ત ગુણોને ત્યાં સુધી ધારણ કરવાની આવશ્યકતા છે

कमित्याह—कालाकाङ्क्षीति । कालं=मृत्युकालमाकाङ्क्षितुं शीलमस्येति कालाकाङ्क्षी, तथाविधः सन् परिव्रजेत्=यावत् पर्यायागतं पण्डितमरणं तावदाकाङ्क्षमाणो विविक्तजीवित्वादिगुणसमन्वितः संयमाराधने समुद्युक्तो भवेदित्यर्थः ॥ सू० ५ ॥

मूलम्—बहुं च खलु पावकम्मं पगडं । सच्चंमि धिइं कुव्वहा। एत्थोवरए मेहावी सव्वं पापकम्मं झोसइ ॥ सू० ६ ॥

छाया—बहु च खलु पापकर्म प्रकृतम् । सत्ये धृतिं कुरुध्व । अत्र उपरतो मेधावी सर्वं पापकर्म क्षोपयति ॥ सू० ६ ॥

टीका—'बहुं च' इत्यादि । खलु=निश्चयेन पापकर्म बहु=बन्धस्थानापेक्षया बहुविधं प्रकृतम्=प्रकथितं, प्रतिबोधितमित्यर्थः । यद्येवं तर्हि तदपगमार्थं किमाचरणीयमित्यत आह—'सत्ये' इत्यादि । हे शिष्य ! सत्ये—सद्भ्यो भव्ये-

की आवश्यकता तभी तक है जब तक कि उसे पण्डितमरण प्राप्त नहीं होता । यही बात सूत्रकार प्रकट करते हैं—'कालकंखी' इति, काल शब्द का अर्थ मृत्युकाल है, इसकी आकाङ्क्षा रखनेवालेको कालाकाङ्क्षी कहते हैं । जब तक पर्यायागत पण्डितमरण प्राप्त नहीं होता तब तक उसकी चाहना करता हुआ इन पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त होकर वह निष्कर्मदर्शी संयमकी आराधनामें प्रयत्नशाली या लवलीन रहे ॥ सू० ५ ॥

'बहुं च' इत्यादि ।

पापकर्म बन्धस्थानकी अपेक्षासे बहुत प्रकारका कहा गया है । वीतराग प्रभुने बारह प्रकारकी परिषद्—सभामें अपनी दिव्य देशनासे बन्धस्थानोंकी अपेक्षासे कर्मोंके अनेक भेद भव्य जीवोंको समझाये हैं । साथमें यह भी प्रकट किया है कि इन कर्मोंको आत्मासे दूर करनेका उपाय

કે ત્યાં સુધી તેને પંડિતમરણ પ્રાપ્ત નહિ થાય. આ વાત સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે—'कालकंखी' ઇતિ. કાલ શબ્દનો અર્થ મૃત્યુકાળ છે. તેની આકાંક્ષા રાખવાવાળાને કાલાકાંક્ષી કહે છે. ત્યાં સુધી પર્યાયાગત પંડિતમરણ પ્રાપ્ત નથી થતું ત્યાં સુધી તેની ચાહના કરીને પૂર્વોક્ત ગુણોથી યુક્ત થઈને તે નિષ્કર્મદર્શી સંયમની આરાધનામાં પ્રયત્નશાળી અગર લવલીન રહે ॥ સૂ૦ ૫ ॥

"बहुं च" ઇત્યાદિ.

પાપકર્મ બંધસ્થાનની અપેક્ષાથી ઘણા પ્રકારના કહેલ છે. વીતરાગ પ્રભુએ બાર પ્રકારની પરિષદ્—સભામાં પોતાની દિવ્યદેશનાથી બંધસ્થાનોની અપેક્ષાથી કર્મોના અનેક ભેદ ભવ્ય જીવોને સમજાવેલ છે. સાથે એ પણ પ્રગટ કરેલ છે કે આ કર્મોનો આત્માથી દૂર કરવાનો ઉપાય છે—"सच्चंमि धिइं कुव्वहा" सत्ये

भ्यो हितः सत्यः=संयमस्तस्मिन् धृतिं कुरुष्व। यद्वा-सत्यः=वीतरागप्रणीतागमः यथावस्थिततत्त्वस्वरूपप्रतिबोधनात् , तत्र भगवदाज्ञारूपे प्रवचने धृतिं=चित्तस्थैर्यं कुतर्कपरित्यागेन कुरुष्व। किंच-अत्र=अस्मिन् संयमे भगवत्प्रवचने वा, उपरतः= उप=सामीप्येन रतः=व्यवस्थितः-परायणः, मेधावी=हेयोपादेयविवेकनिपुणः, सर्वं-निरवशेषं पापकर्म झोषयति=शोषयति-क्षपयतीत्यर्थः ॥ सू० ६ ॥

कषायादिप्रमादयुक्तः किंगुणो भवतीत्याह-'अणेगचित्ते ' इत्यादि।

है-"सच्चम्मि धिइं कुव्वहा" सत्ये धृतिं कुरुष्व, सत्य-संयममें धैर्य धारण करो, इसलिये शिष्यको सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे शिष्य! तुम यदि इन कर्मों पर विजय करना चाहते हो तो-' सद्भ्यो हितः सत्यः- -संयमः ' सत्पुरुषोंके लिये हितकारी जो संयम है उसमें अटल रहो। उपसर्ग एवं परीषहोंके आने पर भी इस मार्गसे कभी भी विचलितचित्त न बनो। अथवा सत्य नाम वीतरागप्रणीत आगमका है, क्यों कि इस से ही जीवादिक तत्त्वोंके यथार्थस्वरूपकी प्ररूपणा होती है। भगवानके इस आज्ञास्वरूप प्रवचनमें कुतर्कोंका परिहार कर चित्तको स्थिर करो। कारण कि-इस संयममें अथवा वीतरागप्रणीत आगममें अच्छी तरहसे लवलीन चित्तवाला मनुष्य हेय और उपादेयके विवेकसे निपुणमति बन कर सम्पूर्ण पापकर्मोंको नष्ट कर देता है। सू० ६ ॥

कषायादिक प्रमादसे युक्त प्राणी किस २ गुणवाले होते हैं ? इसके लिये कहते हैं—' अणेगचित्ते ' इत्यादि।

धृति कुरुष्व, સત્ય-સંયમમાં ધૈર્ય ધારણ કરો એ માટે શિષ્યને સંબોધન કરીને કહે છે કે હે શિષ્ય! તમે જો આ કર્મો ઉપર વિજય કરવા માંગતા હો તો- 'सद्भ्यो हितः सत्यः- संयमः ' સત્ પુરૂષોને માટે હિતકારી જે સંયમ છે તેમાં અટલ રહો. ઉપસર્ગ અને પરીષહો આવવા છતાં પણ આ માર્ગથી કોઈ વખત પણ વિચલિત ન બનો અથવા સત્ય નામ વીતરાગપ્રણીત આગમનું છે, કારણ કે તેનાથી જ જીવાદિક તત્ત્વોના યથાર્થ સ્વરૂપની પ્રરૂપણા થાય છે. ભગવાનના આ આજ્ઞાસ્વરૂપ પ્રવચનમાં કુતર્કનો પરિહાર કરી ચિત્તને સ્થિર કરો, કારણ કે આ સંયમમાં અને વીતરાગપ્રણીત આગમમાં સારી રીતે લવલીન ચિત્તવાળા મનુષ્ય હેય અને ઉપાદેયના વિવેકથી નિપુણમતિ બનીને સંપૂર્ણ પાપકર્મો નષ્ટ કરી નાંખે છે. ॥ સૂ० ६ ॥

કષાયાદિ પ્રમાદથી યુક્ત પ્રાણી કયા કયા ગુણવાળા થાય છે? તેને માટે કહે છે-' अणेगचित्ते ' ઈત્યાદિ.

मूलम्—अणेगचित्ते खलु अयं पुरिसे, से केयणं अरिहए पूरित्तए, से अण्णवहाए अण्णपरियावाए अण्णपरिग्गहाए जणवयवहाए जणवयपरियावाए, जणवयपरिग्गहाए ॥ सू० ७ ॥

छाया—अनेकचित्तः खलु अयं पुरुषः, स केतनम् अर्हति पूरयितुम्। सोऽन्यवधाय, अन्यपरितापाय, अन्यपरिग्रहाय, जनपदवधाय, जनपदपरितापाय जनपदपरिग्रहाय ॥ सू० ७ ॥

टीका—अयं प्रत्यक्षविषयः संसारी पुरुषः खलु=निश्चयेन अनेकचित्तः=कृपिवाणिज्यसेवाद्यनेककृत्याश्रितचित्तो भवति। संसारसुखाभिलापिणश्चित्तमेकाग्रं न भवतीति भावः। अनेकचित्तः किं कुर्यादित्याह—'स केतनम्' इत्यादि। सोऽनेकचित्तः केतनं=भावकेतनम् इच्छां पूरयितुम् अर्हति? काकुवचनमेतत्; नार्हतीत्यर्थः। केतनं द्विविधं द्रव्यतो भावतश्च। तत्र द्रव्यकेतनं चालिनी, समुद्रो

यह संसारी पुरुप निश्चयसे कृषि वाणिज्य सेवा आदि अनेक कार्यों के करनेमें व्यग्रचित्तवाला बना रहता है। क्यों कि संसारी जीवोंकी अभिलापा सांसारिक अनेक सुखोंको प्राप्त करनेकी ओर सदा लगी रहती है, इसीलिये वे कृषि वाणिज्य आदि अनेक प्रकारके आजीविकोपयोगी कार्योंके संपादनमें रातदिन जुटे रहते हैं, अतः सांसारिक सुखोंके अभिलापी पुरुपोंका मन किसी एक विषयमें एकाग्र नहीं होता है। इस पर सूत्रकार कहते हैं कि-'से केयणं अरिहए पूरित्तए' स केतनमर्हः पूरयितुम्, अर्थात् उसकी इस प्रकारकी ये चेष्टाएँ क्या उस केतन—मानसिक अभिलापाकी पूर्त्ति कर सकती हैं? कदापि नहीं। सूत्रकारने यहां काकुवचनका प्रयोग किया है। केतन दो प्रकारका है-(१) द्रव्य-केतन

આ સંસારી પુરૂષ નિશ્ચયથી કૃષિ, વાણિજ્ય, સેવા આદિ અનેક કાર્યો કરવામાં વ્યગ્રચિત્તવાળા બની રહે છે. કારણકે સંસારી જીવોની અભિલાષા સાંસારિક અનેક સુખો પ્રાપ્ત કરવાની તરફ સદા લાગી રહે છે તેથી તે ખેતી, વાણિજ્ય આદિ અનેક પ્રકારના આજીવિકાના ઉપયોગી કાર્યોના સંપાદનમાં રાતદિવસ લાગ્યા રહે છે. માટે સાંસારિકસુખોના અભિલાષી પુરૂષોનું મન કોઈ એક વિષયમાં એકાગ્ર બનતું નથી. આ ઉપર સુત્રકાર કહે છે-'से केयणं अरिहए पूरित्तए'-स केतनमर्हः पूरयितुम्, અર્થાત્ તેની આ પ્રકારની આ ચેષ્ટાઓ શું તેના કેતન=માનસિક અભિલાષા-ની પૂર્તિ કરી શકે છે? કદાપિ નહિ. સૂત્રકારે આ ઠેકાણે કાકુવચનનો પ્રયોગ કરેલ છે. કેતન બે પ્રકારના છે.

वा। भावकेतनम् इच्छा, लोभः। अत्र भावकेतनापेक्षया केतनशब्दः प्रयुक्तः। उक्तं च भगवता—"जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढइ" इत्यादि।

अपरं च—"न शयानो जयेन्निद्रां, न भुञ्जानो जयेत् क्षुधाम्।
न कामयानः कामानां, लाभेनेह प्रशाम्यति"॥ १॥

(२) भाव-केतन। द्रव्य-केनन चालिनी अथवा समुद्र हैं, और इच्छा, लोभ, ये भाव-केतन हैं। यहां भाव-केतनकी अपेक्षासे 'केतन' शब्दका प्रयोग हुआ है। भगवानने यही बात कही है-"जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढइ।"

अर्थात्-जैसे जैसे लाभ होता है वैसे वैसे लोभ भी बढ़ता है। लाभसे लोभकी वृद्धि होती है। जो अनेक कार्योंमें व्यग्रचित्त बना रहता है वह क्या भाव-केतनरूप अपनी इच्छाओंकी पूर्त्ति कर सकता है? अर्थात् नहीं कर सकता? कहा भी है--

"न शयानो जयेन्निद्रां, न भुञ्जानो जयेत्क्षुधाम्।
न कामयानः कामानां, लाभेनेह प्रशाम्यति॥ १॥" इति।

जिस प्रकार सोनेसे निद्रा नहीं जीती जा सकती है, और खानेसे भूख नहीं जीती जा सकती है, उसी प्रकार काम-इच्छाओंमें फंसा हुवा मनुष्य इच्छाके अनुसार इष्ट वस्तुओंका लाभ होने पर भी उनसे शान्तिलाभ प्राप्त नहीं कर सकता है। फिर भी कहा है—

(१) द्रव्यકેતન, (२) ભાવકેતન. દ્રવ્યકેતન ચાલિની અથવા સમુદ્ર છે, અને ઈચ્છા અને લોભ, એ ભાવકેતન છે આ ઠેકાણે ભાવકેતનની અપેક્ષાથી 'કેતન' શબ્દનો પ્રયોગ થયેલ છે. ભગવાને એ જ વાત કહી છે—"जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढइ।"

અર્થાત્ જેમ જેમ લાભ થાય છે તેમ તેમ લોભ વધે છે. લાભથી લોભની વૃદ્ધિ થાય છે. જે અનેક કાર્યોમાં વ્યગ્રચિત્ત બની રહે છે. તે શું ભાવકેતનરૂપ પોતાની ઈચ્છાઓની પૂર્તિ કરી શકે છે? અર્થાત્ કરી શકતા નથી. કહ્યુ પણ છે-

"न शयानो जयेन्निद्रां, न भुञ्जानो जयेत्क्षुधाम्।
न कामयानः कामानां, लाभेनेह प्रशाम्यति"॥ १॥ इति।

જેવી રીતે સુઈ રહેવાથી નિદ્રા છતી શકાતી નથી અને ખાવાથી ભૂખ છતી શકાતી નથી તે પ્રકારે કામ-ઈચ્છાઓમા ફસેલો પ્રાણી-મનુષ્ય ઈચ્છાનુસાર ઈષ્ટવસ્તુઓનો લાભ થતાં છતાં પણ તેનાથી શાંતિલાભ પ્રાપ્ત કરી શકાતો નથી. વળી પણ કહ્યું છે—

किं च—" न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।

हविषा कृष्णवर्त्मेव, भूय एवाभिवर्धते "॥ २ ॥ इति।

इच्छापूरणार्थं व्याकुलितचित्तः किं करोतीत्याह–' से अण्णवहाए ' इत्यादि, यद्वा–' से के य णं अरिहए पूरित्तए ' इत्यस्य ' स कश्च तम् अर्हः पूरयितुम् ' इतिच्छाया। स एतादृशो जनः को वर्तते यः तम्=अनेकचित्तं पुरुषं पूरयितुम् अर्हः समर्थो भवेत्, कस्तदिच्छां पूरयेत्, न कोऽपीति भावः, यतः सोऽनेकचित्तः पुरुषः अन्यवधाद्यर्थं पर्युत्सुको भवति, तदेवाह सूत्रकारः–' से अण्णवहाए ' इत्यादि।

" न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।

हविषा कृष्णवर्त्मेव, भूय एवाभिवर्धते ॥ १ ॥ " इति।

कामविकार विषयभोगोंके सेवन करनेसे शान्त नहीं होता है। प्रत्युत जैसे घृतके डालने से अग्निकी ज्वाला बढ़ती है उसी प्रकार विषयोंके सेवनसे विषयवासनाकी वृद्धि होती है। अपनी इच्छाकी पूर्तिके लिये जीव क्या करता है? इसी बातको कहते हैं–' से अण्णवहाए ' इत्यादि।

अथवा " से के य णं अरिहए पूरित्तए " इस वाक्यकी छाया " स कश्च तम् अर्हः पूरयितुम् " ऐसी भी होती है। जिसका अर्थ इस प्रकार होता है–कौन ऐसा व्यक्ति हो सकता है कि जो अनेक चित्तवाले मनुष्यकी इच्छाओंकी पूर्त्ति करनेमें समर्थ हो सके? कारण कि वह अनेकचित्त पुरुष अन्यवध–दूसरेको मारना आदि अनेक सावद्य क्रियाओंके करनेमें उत्सुक बना रहता है। इसी बातको सूत्रकार स्वयं दिखलाते हैं–' से अण्णवहाए ' इत्यादि।

" न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।

हविषा कृष्णवर्त्मेव, भूय एवाभिवर्धते " ॥ १ ॥ इति ॥

કામવિકાર વિષયભોગનું સેવન કરવાથી શાંત થતો નથી, પણ જેમ ઘી નાંખવાથી અગ્નિની જ્વાળા વધે છે તે પ્રકારે વિષયોના સેવનથી વિષયવાસનાની વૃદ્ધિ થાય છે. પોતાની ઇચ્છાની પૂર્તિ માટે જીવ શું કરે છે? આ વાતને સૂત્રકાર સ્પષ્ટ કરે છે–' से अण्णवहाए ' ઇત્યાદિ.

અથવા " से के य णं अरिहए पूरित्तए " આ વાક્યની છાયા " स कश्च तम् अर्हः पूरयितुम् " એમ પણ થાય છે જેનો અર્થ આ પ્રકારે થાય છે–કોણ એવો પ્રાણી થઈ શકે છે કે જે અનેક ચિત્તવાળા મનુષ્યની ઇચ્છાઓની પૂર્તિ કરવામાં સમર્થ હોય? કારણ કે તે અનેકચિત્ત પુરૂષ અન્યવધ–બીજાને મારવું–આદિ અનેક સાવદ્ય ક્રિયાઓ કરવામાં ઉત્સુક બની રહે છે. આ વાતને બતાવે છે–' से अण्णवहाए ' ઇત્યાદિ.

स इच्छापूरणार्थं प्रवर्तमानः अन्यवधाय=अन्येषां प्राणिनां वधाय भवति। यथा-चौरः साहसिको वा धनापहरणार्थं धनिनं हन्ति, इत्यादि। तथा-अन्यपरितापाय=अन्येषां जीवानां परितापाय=शारीरमानसक्लेशाय भवति। तथा-अन्यपरिग्रहाय=अन्येषां=दासदासीनां गोमहिष्यादीनां च परिग्रहाय=स्वायत्तीकरणाय भवति। तथा-जनपदवधाय-मगधादयो जनपदास्तेषां वधाय। यथा-म्लेच्छा भूपतयो म्लेच्छधर्ममस्वीकुर्वन्तं जनपदं घ्नन्तीत्यादि। तथा-जनपदपरितापाय-जनपदानां

मनुष्य जब अपनी इच्छाकी पूर्त्तिके लिये प्रवृत्ति करता है तब उस की उस प्रवृत्तिसे अन्य प्राणियोंकी हिंसा होती है, अतः वह उसकी प्रवृत्ति अन्य जीवोंकी हिंसाका कारण बनती है। जैसे चोर अथवा साहसिक-डाकू-मनुष्य धनीके धनको चुरानेके लिये धनीको मार डालता है। उसकी प्रवृत्तिसे अन्य जीवोंको शारीरिक तथा मानसिक परिताप-क्लेश भोगना पड़ता है। फिर वह अपनी अभिलाषाओंकी पूर्त्तिके लिये दासी दास आदिको तथा गाय भैंस आदिको कहींसे चुरा लाकर उनका संग्रह करनेमें व्यस्त रहा करता है। जनपद-मगधादि देशोंको वह अपनी प्रवृत्तिसे त्रस्त-दुःखित कर दिया करता है। जैसे म्लेच्छ राजा म्लेच्छ धर्मको अस्वीकार करनेवाली प्रजाको मार डालते हैं। उसकी प्रवृत्ति लोकोंके परितापके लिये-प्राणियोंको मार्मिक कष्ट पहुंचानेके लिए होती है। अनुचित कर-टैक्सका लेना, अनुचित दण्ड देना, इत्यादिका नाम भी परिताप है। अधार्मिक भूपति अपनी इच्छाकी पूर्त्तिके लिये धन-

મનુષ્ય જ્યારે પોતાની ઇચ્છાની પૂર્ત્તિ માટે પ્રવૃત્તિ કરે છે ત્યારે તેની તે પ્રવૃત્તિથી અન્ય પ્રાણીઓની હિંસા થાય છે, માટે તે તેની પ્રવૃત્તિ બીજા જીવોની હિંસાનું કારણ બને છે; જેમ ચોર અથવા સાહસિક-ડાકૂ પૈસાવાળા માણસના ધન ચોરી જવા માટે પૈસાવાળાને મારી નાખે છે. તેની પ્રવૃત્તિથી અન્ય જીવોને શારીરિક તથા માનસિક પરિતાપ-કલેશ ભોગવવો પડે છે. તેમજ તે પોતાની અભિલાષાઓની પૂર્ત્તિ માટે દાસી-દાસ આદિ તથા ગાય-ભેંસ આદિ ક્યાંયથી ચોરી લાવીને તેનો સંગ્રહ કરવામાં વ્યસ્ત રહ્યા કરે છે. જનપદ-મગધાદિ દેશોને તે પોતાની પ્રવૃત્તિથી ત્રસ્ત-દુઃખિત કર્યા કરે છે. જેમ મ્લેચ્છ રાજા મ્લેચ્છધર્મને અસ્વીકાર કરનારી પ્રજાને મારી નાંખે છે. તેની પ્રવૃત્તિ લોકોના પરિતાપ માટે-પ્રાણીઓને માર્મિક કષ્ટ પહોંચાડવા માટે હોય છે. અનુચિત કરભોગ-ટેક્સ લેવો, અનુચિત દંડ આપવો, ઈત્યાદિનું નામ પણ પરિતાપ છે, અધાર્મિક રાજા પોતાની ઈચ્છાની પૂર્તિ માટે ધનસંગ્રહ કરવા નિમિત્ત પોતાની પ્રજાથી અનીતિ-

क्लेशाय, यथाऽनुचितकरग्रहणदण्डादिभिरधार्मिका भूपतयः। तथा–जनपदपरिग्रहाय=मगधादिजनपदानां परिग्रहाय भवति–स्वस्वत्वोत्पादनेन स्वायत्तीकरणाय, युद्धादिकं करोतीत्यर्थः ॥ सू० ७॥

मूलम्–आसेवित्ता एयमट्ठं इच्चेवेगे समुट्ठिया, तम्हा तं बीयं नो सेवे, निस्सारं पासिय नाणी ॥सू० ८॥

छाया—आसेव्य एतम् अर्थम् इत्येव एके समुत्थिताः, तस्मात्तं द्वितीयं नो सेवते निःसारं दृष्ट्वा ज्ञानी ॥ सू० ८ ॥

टीका—'आसेवित्ता' इत्यादि। इत्येव=इच्छापूरणार्थमेव एतम्=अर्थम्

संग्रह करनेके निमित्त अपनी प्रजासे अनीतिद्वारा धनका संग्रह करते हैं। किसीपर करकी वृद्धि करते हैं; किसीको अभियोगमें फंसा कर उस पर अधिक से अधिक दण्ड भी कर दिया करते हैं। इस प्रकारके भूपति अपनी प्रजाके लिये अपने अधिकृत देशके लिये क्लेशकारक या परितापदायक हुआ करते हैं। जनपदपरिग्रह–अर्थात् दूसरे राजाओं पर चढ़ाई कर वह उनके देशको अपने आधीन करनेका प्रयत्न–चेष्टा करते रहते हैं। मौका पाकर जब वह चढ़ाई कर देते हैं तब उस समय व्यर्थमें नरसंहार जैसा भयङ्कर काण्ड उपस्थित हो जाता है। उनकी इस प्रकारकी प्रवृत्ति धार्मिक नीतिसे ठीक नहीं है। क्यों कि इनकी इस प्रवृत्तिसे अन्य जीवोंको या जनपदको क्लेश तथा सन्ताप होता है ॥ सू० ७॥

'आसेवित्ता' इत्यादि।

इच्छाकी पूर्त्तिके लिये सातवें सूत्रमें प्रतिपादित दूसरे जीवोंका

દ્વારા ધનનો સંગ્રહ કરે છે. કોઈ ઉપર કરબોજાની વૃદ્ધિ કરે છે. કોઈને અભિયોગમાં ફસાવી તેની ઉપર અધિકમાં અધિક દંડ પણ કરી નાંખે છે. આ પ્રકારનો રાજા પોતાની પ્રજા માટે અગર પોતાના અધિકૃત દેશ માટે કલેશકારક અને પરિતાતાપદાયક થયા કરે છે. જનપદ પરિગ્રહ અર્થાત્ બીજા રાજાઓ ઉપર ચઢાઇ કરી તેના દેશને પોતાના અધિન કરવાના પ્રયત્નમાં રહે છે સમય મળતાં જ જ્યારે તે ચઢાઇ કરે છે ત્યારે તે વખત વ્યર્થમાં નરસંહાર જેવું ભયંકર કાંડ ઉપસ્થિત થાય છે, તેની આ પ્રકારની પ્રવૃત્તિ ધાર્મિક નીતિથી ઠીક નથી. કારણ કે તેની આ પ્રવૃત્તિથી અન્ય જીવોને અને જનપદને કલેશ તથા સંતાપ ઉત્પન્ન થાય છે ॥ સૂ૦ ૭॥

'आसेविचा' ઇત્યાદિ.

ઇચ્છાની પૂર્તિ માટે સાતમાં સૂત્રમાં પ્રતિપાદિત બીજા જીવોનો વધ પરિ-

अन्यवधपरितापपरिग्रहादिकम् आसेव्य पश्चात् तृप्तिहेतुत्वाभावान्निःसारं विज्ञाय, एके=भरतादयः समुत्थिताः=संयमाराधने प्रवृत्तास्तेनैव भवेन सिद्धिं लब्धवन्तः। तस्माद् यतो वान्तवद्भोगं परित्यज्य प्रतिज्ञा कृता 'पुनर्भोगार्थं मया न प्रवर्त्तिष्यते' इति, तस्माद् ज्ञानी=सम्यग्ज्ञानवान् विषयभोगं निस्सारं दृष्ट्वा, विषयभोगे कृतेऽपि तृप्त्यभावादिति भावः; भोगलिप्सया तं द्वितीयं=द्वितीयवारं नो सेवते, न पुनस्तत्रासक्तो भवतीति भावः ॥ सू० ८ ॥

न मनुष्याणामेव भोगो निःसारः किंतु देवानामपीत्याह 'उववायं' इत्यादि।

मूलम्—उववायं चवणं च णच्चा अणण्णं चर माहणे ॥सू०९॥

छाया—उपपातं च्यवनं च ज्ञात्वा अनन्यं चर माहन ! ॥ सू० ९ ॥

वध परिताप एवं परिग्रहादिका सेवन करके भी जब इच्छाकी तृप्ति नहीं होती है तब कोई भरतादिक जैसे महापुरुष संयमके आराधन करनेमें प्रवृत्त होते हैं और उसी भवमें मुक्तिका लाभ भी कर लिया करते हैं। इस लिये जो छर्दित-वमन किये हुए अन्नके समान भोगोंका परित्याग कर "फिर अब मैं भोगोंके सेवन करनेमें प्रवृत्ति नहीं करूँगा" इस प्रकारकी प्रतिज्ञा कर लिया करते हैं, सम्यग्ज्ञानसंपन्न वे ज्ञानी पुरुष विषयभोगोंमें निस्सारता जान कर, अर्थात् "विषयभोगोंके सेवन करने पर भी जीवोंको तृप्ति नहीं होती है" इस प्रकार समझ कर फिर भोगों के सेवन करनेकी इच्छासे दूसरे मृषावाद रूप पापका अथवा असंयम का सेवन नहीं करते हैं ॥ सू० ८ ॥

मनुष्योंके विषयभोग ही निस्सार नहीं हैं, किन्तु देवोंके भी विषयभोग निस्सार हैं; इसी बातको समझाते हैं-'उववायं' इत्यादि।

તાપ તેમજ પરિગ્રહાદિનું સેવન કરીને પણ જ્યારે ઈચ્છાની તૃપ્તિ થતી નથી ત્યારે કોઈ ભરતાદિક જેવા મહાપુરૂષ સંયમનું આરાધન કરવામાં પ્રવૃત્ત થાય છે અને તેજ ભવમાં મુક્તિનો લાભ પણ કરી લે છે. માટે વમન કરેલા અન્ન સમાન ભોગોનો પરિત્યાગ કરી "હવે પછી હું ભોગનું સેવન કરવામાં પ્રવૃત્તિ નહિ કરૂં" આવા પ્રકારની પ્રતિજ્ઞા કરી લે છે. સમ્યગ્જ્ઞાનસંપન્ન તે જ્ઞાની પુરૂષ વિષયભોગોમાં નિસ્સારતા જાણીને અર્થાત્ "વિષયભોગોનું સેવન કરવા છતાં જીવોને તૃપ્તિ થતી નથી" એવા પ્રકારે સમજીને પછી ભોગોનું સેવન કરવાની ઈચ્છાથી બીજા મૃષાવાદરૂપ પાપનું અને અસંયમનું સેવન કરતા નથી. ॥ સૂ૦ ૮ ॥

મનુષ્યોના જ વિષયભોગ નિસ્સાર છે, એમ નહિ; કિન્તુ દેવોના પણ વિષયભોગ નિસ્સાર છે. આ વાતને સમજાવે છે—'ઉવવાયં' ઇત્યાદિ.

टीका—हे माहन!=हे मुने! उपपातं=देवजन्म, च्यवनं=देवमरणं च ज्ञात्वा अनन्यं=अन्यो=मोक्षमार्गादितरः असंयमः, नान्योऽनन्यः असंयमाद्भिन्नः श्रुतचारित्रात्मको धर्मस्तं चर=समाचर ॥सू० ८॥

हे मुनि! देवोंके उपपात-जन्म, च्यवन-मरणको जानकर तुम अनन्य-जो श्रुतचारित्ररूप धर्म है उसका सेवन करो। भावार्थ-देवोंकी आयु सागरोंकी होती है। इतनी बड़ी आयु होते हुए भी विषयभोगोंसे तृप्ति नहीं होती। उन देवोंको वह आयु क्षणसदृश ही लगती है और व्यतीत हो जाती है। वहां के विषयभोग भी सदा स्थिर नहीं हैं, वे भी विनश्वर हैं। जन्म-मरणका चक्कर देवगतिमें देवोंको भी भोगना पड़ता है। अतः संबोधन करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि हे मुनि! 'मनुष्यलोकके विषयभोग ही असार हैं' यह बात नहीं है, किन्तु देवलोकके भी विषयभोग इसी तरह असार हैं। इस गतिमें संयमकी आराधना नहीं होती है, संयमकी आराधना मनुष्यगतिके सिवाय अन्य किसी भी गतिमें नहीं हो सकती है, अतः इस दुर्लभ मनुष्यजन्मको विषयभोगोंकी चाहनामें अथवा उनके सेवन करनेमें नष्ट कर देना यह बुद्धिमानका कर्तव्य नहीं है। यह मत समझो कि—'संयमकी आराधनासे हम देवपर्याय प्राप्त कर वहांके विषयभोगोंको भोगते हुए सुखी हो

હે મુનિ! દેવોના ઉપપાત-જન્મ, ચ્યવન-મરણને જાણીને તમે અનન્ય જે શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મ છે તેનું સેવન કરો.

ભાવાર્થ—દેવોનું આયુષ્ય સાગરોનુ હોય છે. આટલુ મોટુ આયુષ્ય હોવા છતાં પણ વિષયભોગોથી તૃપ્તિ થતી નથી. તે દેવોને તે આયુ ક્ષણસદૃશ જ લાગે છે અને વ્યતીત થઈ જાય છે. ત્યાંના વિષયભોગ પણ સદા સ્થિર નથી. તે પણ વિનશ્વર છે. જન્મ મરણનું ચક્કર દેવગતિમાં દેવોને પણ ભોગવવું પડે છે, માટે શિષ્યને સંબોધન કરીને સૂત્રકાર કહે છે—

હે મુનિ! મનુષ્યલોકના વિષયભોગ જ અસાર છે એ વાત નથી પણ દેવલોકના પણ વિષયભોગ આ માફક અસાર છે. આ ગતિમા સંયમની આરાધના થતી નથી. સંયમની આરાધના મનુષ્યગતિ સિવાય અન્ય બીજી કોઈ પણ ગતિમાં બની શકતી નથી. માટે આ દુર્લભ મનુષ્ય જન્મને વિષયભોગોની ચાહનામાં અને તેનું સેવન કરવામાં નષ્ટ કરી નાખવો તે બુદ્ધિમાનનું કર્તવ્ય નથી. એમ ન સમજશો કે 'સંયમની આરાધનાથી અમે દેવપર્યાય પ્રાપ્ત કરી ત્યાંના વિષય-

किं च—'से ण छणे' इत्यादि।

मूलम्—से ण छणे ण छणावए छणंतं णाणुजाणए ॥सू०१०॥

छाया-स न क्षणुयात्, न क्षाणयेत्, क्षण्वन्तं नानुजानीयात् ॥ १० ॥

टीका-सः=श्रुतचारित्रधर्माराधनपरो मुनिः, प्राणिनो न क्षणुयात्=न हन्यात्, न क्षाणयेत्=न घातयेत्, क्षण्वन्तं=घ्नन्तमन्यं नानुजानीयात्=नानुमोदयेदित्यर्थः॥

अथ चतुर्थव्रतसिद्ध्यर्थमुपदिशति-' निव्विंद' इत्यादि।

मूलम्—निव्विंद नंदिं, अरए पयासु, अणोमदंसी निसण्णे पावेहिं कम्मेहिं ॥ सू० ११ ॥

छाया—निर्विन्दस्व नन्दीम्, अरक्तः प्रजासु, अनवमदर्शी निषण्णः पापेभ्यः कर्मभ्यः ॥ सू० ११ ॥

टीका—प्रजासु=प्रजायन्ते सुतादयो यासु ताः प्रजाः=स्त्रियस्तासु, अरक्तः=अनासक्तः, तथा-अवमं=नीचं नीचफलोत्पादकत्वाद् मिथ्यादर्शनादि, तद्भिन्नम् अन-

---

जायेंगे' कारण कि वहांके विषयभोग भी असार ही हैं, अतः निदान रहित हो कर ही तुम श्रुतचारित्ररूप धर्मकी आराधना करो ॥ सू० ९॥

फिर भी कहते हैं-'से ण छणे' इत्यादि।

श्रुतचारित्ररूप धर्मकी आराधना करनेमें तत्पर हुआ मुनि कभी भी स्वयं प्राणियोंकी हिंसा न करे, दूसरोंसे हिंसा न करावे और हिंसा करनेवालोंकी अनुमोदना भी न करे ॥ सू० १० ॥

इसके बाद चतुर्थव्रत (ब्रह्मचर्यव्रत) की सिद्धिके लिये उपदेश करते हैं-'निव्विंद नंदिं' इत्यादि।

'प्रजायन्ते सुतादयो यासु ताः प्रजाः' पुत्रादि सन्तान जिनमें उत्पन्न

ભોગોને ભોગવતાં સુખી થઈ જશું.' કારણ કે ત્યાંના વિષયભોગ પણ અસાર જ છે. માટે નિદાનરહિત બનીને જ તમે શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મની આરાધના કરો. ॥સૂ૦૯॥

ફરી પણ કહે છે—'से ण छणे' ઈત્યાદિ.

શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મની આરાધના કરવામાં તત્પર બનેલ મુનિ કદિ પણ સ્વયં પ્રાણીઓની હિંસા ન કરે, બીજા પાસે હિંસા ન કરાવે અને હિંસા કરવાવાળાની અનુમોદના પણ ન કરે. ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

ત્યાર બાદ ચતુર્થવ્રત (બ્રહ્મચર્યવ્રત)ની સિદ્ધિ માટે ઉપદેશ કરે છે-'निव्विंद नंदिं' ઈત્યાદિ.

'प्रजायन्ते सुतादयो यासु ताः प्रजाः'—

પુત્રાદિ સંતાન જેમાં ઉત્પન્ન થાય છે તેનું નામ પ્રજા-સ્ત્રી છે. તથા અવમનામ

वमं, तद् द्रष्टुं शीलमस्येति—अनवमदर्शी=सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राराधनपरः, अत एव पापेभ्यः=पापकारणेभ्यः कर्मभ्यः=अष्टादशविधमैथुनेभ्यः निषण्णः=निवृत्तः सन् नन्दीं=वैषयिकं सुखं निर्विन्दस्व=जुगुप्सस्व । कामिनीकायस्यातिनिन्द्यत्वात्तत्सङ्गजनितसुखस्य हिंसादिपापहेतुत्वाच्च चतुर्थव्रताराधने सावधानो भवेत्यर्थः ॥सू० ११॥

किं च—'कोहाइ' इत्यादि ।

होती हैं उनका नाम प्रजा—स्त्री है । तथा अवम नाम मिथ्यादर्शन आदिका है। उससे भिन्न सम्यग्दर्शनादिक अनवम है । इस अनवमको देखनेका जिसका स्वभाव हो वह अनवमदर्शी है । शिष्योंको ब्रह्मचर्यव्रतके पालन करनेकी शिक्षा देते हुए सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्य ! तुम स्त्रियोंके विषयमें आसक्तचित्त न बनो, स्वप्नमें भी उनका ध्यान न करो। तथा जघन्य फलके उत्पादक होनेसे मिथ्यादर्शनादिक अवम हैं । उनसे विपरीत अनवम—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र हैं ।

इन सम्यग्दर्शनादिककी आराधनासे तुम्हें भ्रष्ट बनानेवाले जो पापके कारणभूत अठारह प्रकारके मैथुन हैं, उनसे निवृत्त हुए तुम नन्दी--वैषयिक सुखोंकी ओर सदा घृणादृष्टि रखो ।

भावार्थ--स्त्रियोंका शरीर सदा अतिनिन्द्य होता है । उसके सेवन से उत्पन्न हुआ वैषयिक सुख हिंसादिक पापोंका कारण होता है । ऐसी दृढश्रद्धा कर तुम चतुर्थ व्रतकी आराधनामें सावधान रहो ॥ सू० ११ ॥

फिर कहते हैं—'कोहाइमाणं' इत्यादि ।

મિથ્યાદર્શન આદિનું છે તેનાથી ભિન્ન સમ્યગ્દર્શનાદિક અનવમ છે. આ અનવમને દેખવાનો જેનો સ્વભાવ છે તે અનવમદર્શી છે. શિષ્યોને બ્રહ્મચર્યવ્રતનુ પાલન કરવાની શિક્ષા દેતા સૂત્રકાર કહે છે કે હે શિષ્ય ! તમે સ્ત્રીઓ માટે આસક્તચિત્ત ન બનો. સ્વપ્નમાં પણ તેનુ ધ્યાન ન કરો. તથા મિથ્યાદર્શનાદિક જઘન્ય ફલના ઉત્પાદક હોવાથી અવમ છે. તેનાથી વિપરીત અનવમ સમ્યગ્દર્શન, સમ્યગ્જ્ઞાન અને સમ્યક્ચારિત્ર છે. તેની આરાધનાથી તમને ભ્રષ્ટ બનાવનાર પાપના કારણભૂત અઢાર પ્રકારના મૈથુન છે. તેનાથી નિવૃત્ત બનીને તમે નન્દી–વૈષયિક સુખોની તરફ સદા ઘૃણાદૃષ્ટિ રાખો

ભાવાર્થ--સ્ત્રિઓનું શરીર સદા અતિનિન્દ્ય હોય છે. તેના સેવનથી ઉત્પન્ન થયેલ વૈષયિક સુખ હિંસાદિક પાપોનું કારણ બને છે એવી દૃઢ શ્રદ્ધા કરી તમે ચોથા વ્રતની આરાધનામાં સાવધાન રહો ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

વળી કહે છે—'कोहाइमाणं' ઇત્યાદિ

मूलम्—कोहाइमाणं हणिया य वीरे, लोभस्स पासे निरयं महंतं। तम्हा य वीरे विरए वहाओ, छिन्दिज्ज सोयं लहुभूयगामी ॥ सू० १२ ॥

छाया—क्रोधादिमानं हन्यात् च वीरः लोभस्य पश्य निरयं महान्तम्। तस्माच्च वीरो विरतो वधात् छिन्द्यात् शोकं लघुभूतगामी ॥ सू० १२ ॥

टीका—वीरः=कर्मविदारणसमर्थः, क्रोधादिमानं=क्रोधादीनां मानम् अनन्तानुबन्ध्यादिविशेषं हन्यात्=निवारयेत्। यद्वा-क्रोध आदिर्यस्य स क्रोधादिः, स चासौ मानश्च क्रोधादिमानः-क्रोधहेतुको गर्वस्तं हन्यादित्यर्थः। लोभस्यानन्तानुबन्ध्यादेर्विपाकं महान्तं=दुस्तरं निरयं=नरकं पश्य। उक्तञ्च—'मच्छा मणुआ य सत्तमिं पुढविं' इति। अतिलोभाविष्टा मनुष्यास्तन्दुलमत्स्यादयश्च सप्तमपृथिवी भाजो भवन्तीति भावः।

कर्मोंके विनाश करनेकी शक्तिसे संपन्न वीर क्रोधादिक कषायों के अभिमानको अर्थात् अनन्तानुबन्धी आदि क्रोध मान माया और लोभको दूर करे। अथवा-क्रोध है आदिमें जिसके वह क्रोधादि है। क्रोधादिरूप जो मान उसका नाम क्रोधादिमान है। जिस गर्वका हेतु क्रोध है उस क्रोधादिकारणक मानको वह नष्ट करे। अनन्तानुबन्धी आदि कषाय सम्बन्धी लोभके विपाकको सदा दुस्तर नरक ही समझना चाहिये। कहा भी है-"मच्छा मणुआ य सत्तमिं पुढविं" अति लोभसे युक्त मनुष्य और मत्स्य-तन्दुलमत्स्य आदि मरकर सातवें नरकमें जाते हैं। जब यह निश्चित सिद्धान्त है कि लोभसे युक्त प्राणी हिंसादिक पापकर्मों में प्रवृत्तियुक्त होनेसे मरकर नरक गतिमें जाते हैं तो जो कर्मोंको नाश करनेवाली शक्तिसे युक्त वीर हैं उन्हें प्राणियोंकी हिंसासे सदा

કર્મોના વિનાશ કરવાની શક્તિથી સંપન્ન વીર મુનિ, ક્રોધાદિક કષાયોના અભિમાનને અર્થાત્ અનન્તાનુબન્ધી આદિ ક્રોધ, માન, માયા અને લોભને દૂર કરે. અથવા ક્રોધ છે આદિમાં જેને તે ક્રોધાદિ છે. ક્રોધાદિરૂપ જે માન તેનું નામ ક્રોધાદિમાન છે. જે ગર્વનો હેતુ ક્રોધ છે, તે ક્રોધાદિકારણક માનનો તે નાશ કરે, અનન્તાનુબન્ધી આદિ કષાય સંબંધી લોભના વિપાકને સદા દુસ્તર નરક જ સમજવું જોઈએ, કહ્યુ છે-"मच्छा मणुआ य सत्तमिं पुढविं" અતિ લોભથી યુક્ત મનુષ્ય અને મત્સ્ય-તન્દુલમત્સ્ય આદિ મરીને સાતમી નરકમાં જાય છે. જ્યારે એ નિશ્ચિત સિદ્ધાંત છે કે લોભથી યુક્ત પ્રાણી હિંસાદિક પાપ કર્મોમાં પ્રવૃત્તિ યુક્ત હોવાથી મરીને નરક ગતિમાં જાય છે તો જે કર્મોનો નાશ કરવાવાળી શક્તિથી યુક્ત વીર છે તેને પ્રાણીઓની હિંસાથી સદા સર્વ રીતિથી દૂર જ રહેવું જોઈએ.

यद्येवं ततः किं कर्तव्यमित्याह–' तस्मात् ' इत्यादि । लोभाविष्टाः प्राणिहिंसनादौ प्रवृत्त्या नरकं प्राप्नुवन्ति, तस्माद् वीरः=कर्मविदारणोत्साहयुक्तो वधात्=प्राणिनां हिंसनाद् विरतः सर्वथा निवृत्तः स्यात् । किंच—लघुभूतगामी=लघुभूत आत्मा येन स लघुभूतो मोक्षः, तं गन्तुं शीलमस्येति लघुभूतगामी, यद्वा–' लघुभूतकामी ' इतिच्छाया, तत्र आत्मानं लघुभूतं कामयते इति लघुभूतकामी=मोक्षाभिलाषी, मोक्षमार्गारूढः शोकं, ' स्रोत ' इतिच्छायापक्षे स्रोतो=भावस्रोतोवा कर्मकारणं, छिन्द्यात्=व्यपनयेत् ॥ सू० १२ ॥

सर्वरीतिसे दूर ही रहना चाहिये । हिंसादिक पापकर्मोंसे सदा तीन करण तीन योगसे अर्थात् मन, वचन और काय, एवं कृत कारित और अनुमोदना से जो दूर रहता है वह कर्मबन्धके भारसे भारी नहीं होता है। ऐसे व्यक्तिकी आत्मामें स्वाभाविक रीतिसे लाघव गुणका आविर्भाव होता है और उससे ऊर्ध्वगतिकी प्राप्ति होती है । ' लघुभूत ' शब्दका अर्थ मोक्ष है, क्यों कि मुक्तिका लाभ उसी आत्माको होता है कि जिस से कर्मका भार उतर जाता है । कर्मका भार उतर जानेसे आत्मा स्वाभाविक रीतिसे लघु–हल्का हो जाता है । जो चीज वजनमें हल्की होती है वह स्वभावसे ही ऊपरकी ओर उठती है । आत्मा भी जब कर्मबन्धनसे रहित हो जाती है तब इसका भी स्वभाव स्वतः ऊर्ध्वगमन करने का हो जाता है । सकल कर्मोंका क्षय होना ही आत्माकी मुक्ति है । इस मुक्तिको प्राप्त करनेका जिसका स्वभाव है वह लघुभूतगामी है । अथवा ' लघुभूयगामी ' इस पदकी छाया ' लघुभूतकामी ' ऐसी भी होती है।

હિંસાદિક પાપકર્મોથી સદા ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી અર્થાત્ મન વચન કાયા અને કૃત કારિત અને અનુમોદનાથી જે દૂર રહે છે તે કર્મબંધના ભારથી ભારી થતા નથી. એવી વ્યક્તિના આત્મામાં સ્વાભાવિક રીતથી લાઘવ ગુણનો આવિર્ભાવ થાય છે અને તેનાથી ઉર્ધ્વગતિની પ્રાપ્તિ થાય છે ' લઘુભૂત ' શબ્દનો અર્થ મોક્ષ છે. કારણ કે મુક્તિનો લાભ તે આત્માને થાય છે કે જેથી કર્મનો ભાર ઉતરી જાય છે. કર્મનો ભાર ઉતરી જવાથી આત્મા સ્વાભાવીક રીતિથી લઘુ–હલકો બને છે. જે ચીજ વજનમા હલકી થાય છે તે સ્વભાવથી જ ઉપરની તરફ ઉઠે છે. આત્મા પણ જ્યારે કર્મબંધનથી રહિત થઈ જાય છે ત્યારે તેનો પણ સ્વભાવ સ્વતઃ ઊર્ધ્વગમન કરવાનો થઈ જાય છે. સકલ કર્મોનો ક્ષય થવો તે જ આત્માની મુક્તિ છે. તેવી મુક્તિને પ્રાપ્ત કરવાનો જેનો સ્વભાવ છે તે લઘુભૂતગામી છે. અને ' લઘુભૂયગામી ' આ પદની છાયા ' લઘુભૂતકામી ' એમ પણ

किंच—' गंथं ' इत्यादि।

मूलम्—गंथं परिण्णाय इहऽज्ज धीरे, सोयं परिण्णाय चरिज्ज दंते। उम्मज्ज लद्धुं इह माणुसेहिं, नो पाणिणं पाणे समारंभिज्जासि-त्ति बेमि ॥ सू० १३ ॥

छाया—ग्रन्थं परिज्ञाय इहाद्य धीरः, स्रोतः परिज्ञाय चरेद् दान्तः। उन्मज्जनं लब्ध्वा इह मानुष्येषु नो प्राणिनां प्राणान् समारभेथाः । इति ब्रवीमि ॥सू० १३॥

टीका—इह संसारे मनुष्यलोके वा, अद्यैव=कालानतिक्रमेण, धीरः सन् ग्रन्थं =बाह्याभ्यन्तरभेदाद् द्विविधं परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया बन्धकारणत्वेन विज्ञाय, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिवर्जयेत् । किं च स्रोतः=भावस्रोतो विषयासक्तिरूपं संसारं परिज्ञाय=ज्ञात्वा दान्तः=इन्द्रियनोइन्द्रियदमनशीलः चरेत्=संयममाचरेत् ।

इसका अर्थ यह होता है कि मोक्षका जो अभिलाषी है वह लघुभूतकामी है । मोक्षाभिलाषी मोक्षमार्गपर आरूढ होता हुआ शोक को, अथवा कर्मोंके आस्रवके कारणभूत भावस्रोतको अपनी आत्मासे सदा दूर करे ॥ सू० १२ ॥

और भी कहते हैं-' गंथं परिण्णाय ' इत्यादि ।

इस संसार अथवा मनुष्यलोकमें आत्मार्थी को समय विताना व्यर्थ है । जहां तक हो सके जल्दी से जल्दी धैर्यशाली बन कर बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहको ज्ञपरिज्ञासे बन्धका कारण जानकर प्रत्याख्यानपरिज्ञासे उसका त्याग करे। तथा विषयोंमें आसक्तिरूप संसार को जान कर पांच इन्द्रिय एवं मनका दमन करता हुआ संयमकी आराधनामें अपनेको लगावे ।

થાય છે તેનો અર્થ એ થાય છે કે મોક્ષનો જે અભિલાષી છે તે લઘુભૂતકામી છે. મોક્ષાભિલાષી મોક્ષ માર્ગ ઉપર આરૂઢ થઈને શોકને અથવા કર્મોના આસ્રવના કારણભૂત ભાવસ્રોતને પોતાના આત્માથી સદા દૂર કરે. ॥ સૂ૦ ૧૨ ॥

ફરી કહે છે—' गंथं परिण्णाय ' ઇત્યાદિ.

આ સંસાર અને મનુષ્ય લોકમાં આત્માર્થી માટે સમય વિતાવવો વ્યર્થ છે. જ્યાં સુધી બની શકે જલ્દીમાં જલ્દી ધૈર્યશાળી બનીને બાહ્ય અને આભ્યન્તર પરિગ્રહને જ્ઞપરિજ્ઞાથી બંધનું કારણ જાણી પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી તેનો ત્યાગ કરે, તથા વિષયોમાં આસક્તિરૂપ સંસારને જાણીને પાંચ ઈન્દ્રિય અને મનનું દમન કરીને સંયમની આરાધનામા પોતાને લગાડે.

यद्येवं ततः किं कर्तव्यमित्याह–' तस्मात् ' इत्यादि । लोभाविष्टाः प्राणिहिंसनादौ प्रवृत्त्या नरकं प्राप्नुवन्ति, तस्माद् वीरः=कर्मविदारणोत्साहयुक्तो वधात्=प्राणिनां हिंसनाद् विरतः सर्वथा निवृत्तः स्यात् । किंच—लघुभूतगामी=लघुभूत आत्मा येन स लघुभूतो मोक्षः, तं गन्तुं शीलमस्येति लघुभूतगामी, यद्वा–' लघुभूतकामी ' इतिच्छाया, तत्र आत्मानं लघुभूतं कामयते इति लघुभूतकामी=मोक्षाभिलाषी, मोक्षमार्गारूढः शोकं, ' स्रोत ' इतिच्छायापक्षे स्रोतो=भावस्रोतोवा कर्मकारणं, छिन्द्यात्=व्यपनयेत् ॥ सू० १२ ॥

सर्वरीतिसे दूर ही रहना चाहिये । हिंसादिक पापकर्मोंसे सदा तीन करण तीन योगसे अर्थात् मन, वचन और काय, एवं कृत कारित और अनुमोदना से जो दूर रहता है वह कर्मबन्धके भारसे भारी नहीं होता है। ऐसे व्यक्तिकी आत्मामें स्वाभाविक रीतिसे लाघव गुणका आविर्भाव होता है और उससे ऊर्ध्वगतिकी प्राप्ति होती है । ' लघुभूत ' शब्दका अर्थ मोक्ष है, क्यों कि मुक्तिका लाभ उसी आत्माको होता है कि जिस से कर्मका भार उतर जाता है । कर्मका भार उतर जानेसे आत्मा स्वाभाविक रीतिसे लघु–हल्का हो जाता है । जो चीज वजनमें हल्की होती है वह स्वभावसे ही ऊपरकी ओर उठती है । आत्मा भी जब कर्मबन्धनसे रहित हो जाती है तब इसका भी स्वभाव स्वतः ऊर्ध्वगमन करने का हो जाता है । सकल कर्मोंका क्षय होना ही आत्माकी मुक्ति है । इस मुक्तिको प्राप्त करनेका जिसका स्वभाव है वह लघुभूतगामी है । अथवा ' लघुभूयगामी ' इस पदकी छाया ' लघुभूतकामी ' ऐसी भी होती है।

હિંસાદિક પાપકર્મોથી સદા ત્રણ કરણ ત્રણ યોગથી અર્થાત્ મન વચન કાયા અને કૃત કારિત અને અનુમોદનાથી જે દૂર રહે છે તે કર્મબંધના ભારથી ભારી થતા નથી. એવી વ્યક્તિના આત્મામાં સ્વાભાવિક રીતથી લાઘવ ગુણનો આવિર્ભાવ થાય છે અને તેનાથી ઉર્ધ્વગતિની પ્રાપ્તિ થાય છે ' લઘુભૂત ' શબ્દનો અર્થ મોક્ષ છે. કારણ કે મુક્તિનો લાભ તે આત્માને થાય છે કે જેથી કર્મનો ભાર ઉતરી જાય છે. કર્મનો ભાર ઉતરી જવાથી આત્મા સ્વાભાવીક રીતિથી લઘુ–હલકો બને છે. જે ચીજ વજનમાં હલકી થાય છે તે સ્વભાવથી જ ઉપરની તરફ ઉઠે છે. આત્મા પણ જ્યારે કર્મબંધનથી રહિત થઈ જાય છે ત્યારે તેનો પણ સ્વભાવ સ્વતઃ ઊર્ધ્વગમન કરવાનો થઈ જાય છે. સકલ કર્મોનો ક્ષય થવો તે જ આત્માની મુક્તિ છે. તેવી મુક્તિને પ્રાપ્ત કરવાનો જેનો સ્વભાવ છે તે લઘુભૂતગામી છે. અને ' લઘુભૂયગામી ' આ પદની છાયા ' लघुभूतकामी ' એમ પણ

किंच—' गंथं ' इत्यादि।

मूलम्—गंथं परिण्णाय इहऽज्ज धीरे, सोयं परिण्णाय चरिज्ज दंते। उम्मज्ज लद्धुं इह माणुसेहिं, नो पाणिणं पाणे समारभिज्जासि-त्ति बेमि ॥ सू० १३ ॥

छाया—ग्रन्थं परिज्ञाय इहाद्य धीरः, स्रोतः परिज्ञाय चरेद् दान्तः। उन्मज्जनं लब्ध्वा इह मानुष्येषु नो प्राणिनां प्राणान् समारभेथाः। इति ब्रवीमि ॥सू० १३॥

टीका—इह संसारे मनुष्यलोके वा, अद्यैव=कालानतिक्रमेण, धीरः सन् ग्रन्थं =बाह्याभ्यन्तरभेदाद् द्विविधं परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया बन्धकारणत्वेन विज्ञाय, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिवर्जयेत्। किं च स्रोतः=भावस्रोतो विषयासक्तिरूपं संसारं परिज्ञाय=ज्ञात्वा दान्तः=इन्द्रियनोइन्द्रियदमनशीलः चरेत्=संयममाचरेत्।

इसका अर्थ यह होता है कि मोक्षका जो अभिलाषी है वह लघुभूतकामी है। मोक्षाभिलाषी मोक्षमार्गपर आरूढ होता हुआ शोक को, अथवा कर्मोंके आस्रवके कारणभूत भावस्रोतको अपनी आत्मासे सदा दूर करे ॥ सू० १२ ॥

और भी कहते हैं-' गंथं परिण्णाय ' इत्यादि।

इस संसार अथवा मनुष्यलोकमें आत्मार्थी को समय बिताना व्यर्थ है। जहां तक हो सके जल्दी से जल्दी धैर्यशाली बन कर बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहको ज्ञपरिज्ञासे बन्धका कारण जानकर प्रत्याख्यानपरिज्ञासे उसका त्याग करे। तथा विषयोंमें आसक्तिरूप संसार को जान कर पांच इन्द्रिय एवं मनका दमन करता हुआ संयमकी आराधनामें अपनेको लगावे।

થાય છે. તેનો અર્થ એ થાય છે કે મોક્ષનો જે અભિલાષી છે તે લઘુભૂતકામી છે. મોક્ષાભિલાષી મોક્ષ માર્ગ ઉપર આરૂઢ થઈને શોકને અથવા કર્મોના આસ્રવના કારણભૂત ભાવસ્રોતને પોતાના આત્માથી સદા દૂર કરે. ॥ સૂ૦ ૧૨ ॥

ફરી કહે છે—' गंथं परिण्णाय ' ઇત્યાદિ.

આ સંસાર અને મનુષ્ય લોકમાં આત્માર્થી માટે સમય વિતાવવો વ્યર્થ છે. જ્યાં સુધી બની શકે જલ્દીમાં જલ્દી ધૈર્યશાળી બનીને બાહ્ય અને આભ્યન્તર પરિગ્રહને જ્ઞપરિજ્ઞાથી બંધનું કારણ જાણી પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી તેનો ત્યાગ કરે. તથા વિષયોમાં આસક્તિરૂપ સંસારને જાણીને પાંચ ઈન્દ્રિય અને મનનું દમન કરીને સંયમની આરાધનામાં પોતાને લગાડે.

इह संसारहृदे मानुष्येषु=मनुष्यभवेषु, उन्मज्जनं=जन्मरूपं लब्ध्वा, मनुष्यभवादन्यत्र संपूर्णमोक्षमार्गप्राप्त्यसंभवादिदं दुर्लभमिति भावः; प्राणिनां=जीवानां

इस संसारमें मनुष्यभवकी प्राप्ति दुर्लभ है। यदि कोई पुण्यानुबन्धी पुण्यके उदयसे इस मनुष्यभवकी प्राप्ति तुम्हें हुई है तो तुम इस अमूल्य जीवनको व्यर्थ हिंसादिक कार्यों में लगाकर नष्ट न करो। इसी बात को समझाते हुए सूत्रकार शिष्योंके प्रति कहते हैं-मनुष्यभवके सिवाय अन्य किसी भी भवमें संपूर्ण मोक्षमार्गकी प्राप्ति जीवको नहीं होती है इसीलिये ज्ञानियोंने इसकी प्राप्ति दुर्लभ बतलाई है। इसे प्राप्तकर जीवोंके दस द्रव्य प्राणों (५ इन्द्रिय, ३ बल, १ आयु और १ श्वासोच्छ्वास-१०) का वियोग करनेमें ही इसे व्यर्थ गंवा देना यह बुद्धिमान मनुष्यका काम नहीं है। इस मनुष्यभवकी प्राप्तिकी सफलता तो जब ही है कि इससे संयमका आराधन किया जाय और मुक्तिमार्गका पथिक बना जाय। इसलिये हे शिष्य! तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम इस दुर्लभतम मनुष्यभवको पाकर व्यर्थ हिंसादिक कार्यों में न फंसकर मोक्षमार्गके पथिक बनो और अपने इस मनुष्यभवको सफल बनाओ, यही सूत्रका आशय है। अर्थात्-मनुष्यभवमें जन्म प्राप्त कर तुम प्राणियोंके प्राणोंका

આ સંસારમાં મનુષ્ય ભવની પ્રાપ્તિ મહા દુર્લભ છે. કદાચ કોઇ પુણ્યાનુબંધી પુણ્યના ઉદયથી આ મનુષ્યભવની પ્રાપ્તિ તમોને મળી છે તો તમો આ અમૂલ્ય જીવનને વ્યર્થ હિંસાદિક કાર્યોમાં લગાવી નષ્ટ ન કરો. આ વાતને સમજાવતાં સૂત્રકાર શિષ્યો પ્રતિ કહે છે-મનુષ્ય ભવ સિવાય બીજા કોઈ પણ ભવમાં સંપૂર્ણ મોક્ષમાર્ગની પ્રાપ્તિ જીવને થતી નથી. માટે જ્ઞાનીઓએ તેની પ્રાપ્તિ દુર્લભ બતાવી છે. તેને પ્રાપ્ત કરી જીવોના દશ દ્રવ્ય પ્રાણો (૫ ઇન્દ્રિય, ૩ બળ, ૧ આયુ અને ૧ શ્વાસોચ્છ્વાસ-૧૦)ને‌ા વિયોગ કરવામાં જ તેને વ્યર્થ ગુમાવવો તે બુદ્ધિમાન મનુષ્યનું કામ નથી.

આ મનુષ્યભવની પ્રાપ્તિની સફળતા તો ત્યારે જ છે કે તેનાથી સંયમનું આરાધન કરવામાં આવે અને મુક્તિ માર્ગનો પથિક બની જાય, તેથી હે શિષ્ય! તમારૂં કર્તવ્ય છે કે તમે આ દુર્લભ મનુષ્ય ભવ મેળવીને વ્યર્થ હિંસાદિક કાર્યોમાં ન ફસતાં મોક્ષમાર્ગના પથિક બનો, અને પોતાના આ મનુષ્યભવને સફળ બનાવો. એ જ સૂત્રનો આશય છે. અર્થાત્ મનુષ્યભવમાં જન્મ પ્રાપ્ત કરી તમે પ્રાણીઓના

प्राणान्=पञ्चेन्द्रियबलत्रयोच्छ्वासनिःश्वासायुष्करूपान् दशविधान् नो समारभेथाः =नातिपातयेरित्यर्थः । प्राणिनां प्राणातिपातं मा कृथा इति भावः । इति ब्रवीमि-इतिशब्दः उद्देशपरिसमाप्तिबोधकः, ब्रवीमि=यथा भगवन्मुखान्मया श्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः ॥ सू० १३ ॥

॥ इति तृतीयाध्ययनस्य द्वितीयोद्देशः सम्पूर्णः ॥ ३-२ ॥

व्यपरोपण मत करो । 'इति' शब्द इस उद्देशकी समाप्तिका सूचक है । "ब्रवीमि" यह पद बतलाता है कि जैसा मैंने भगवान्के मुखसे सुना है वैसाही तुमसे कहा है ॥ सू० १३ ॥

॥ तीसरे अध्ययनका दूसरा उद्देश समाप्त ॥ ३-२ ॥

પ્રાણોનો ઘાત ન કરો. "इति" શબ્દ આ ઉદ્દેશની સમાપ્તિનું સૂચક છે "ब्रवीमि" આ પદ બતાવે છે કે જેવું મેં ભગવાનના મુખથી સાંભળ્યું છે તેવું જ તમોને કહ્યું છે ॥ સૂ૦ ૧૩ ॥

ત્રીજા અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૩-૨ ॥



॥ अथ तृतीयाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः ॥

इहानन्तरद्वितीयोद्देशके जात्या वृद्ध्या च दुःखं, तद्भयाच्च शीतोष्णपरीषहसहनं च प्रतिबोधितम् । अथ तत्सहनमात्रेण पापकर्मानाचरणमात्रेण वा चारित्राचरणरहितः श्रमणो न भवतीति प्रतिबोधयितुं तृतीयोद्देशकं प्रस्तुवन् प्रथमं सूत्रमाह— 'संधिं लोगस्स' इत्यादि ।

मूलम्—संधिं लोगस्स जाणित्ता ॥ सू० १ ॥

छाया—सन्धिं लोकस्य ज्ञात्वा ॥ सू० १ ॥

। तीसरे अध्ययनका तीसरा उद्देश ।

इसके द्वितीय उद्देशमें प्राणियोंकी गर्भसे लगा कर बालादि वृद्धावस्था पर्यन्त सब ही अवस्थाएँ दुःखोंसे समन्वित हैं, उन दुःखोंसे भयभीत प्राणियोंको आत्मकल्याणके मार्गस्वरूप संयमकी आराधना करनी चाहिये, इस आराधनामें उन्हें शीत-उष्ण परीषहोंको सहन करना चाहिये, यह सब विषय बतलाया जा चुका है, अर्थात् मोक्षाभिलाषीके लिये यह सब समझाया जा चुका है। अब इस तीसरे उद्देशमें यह समझाया जायगा कि जो चारित्रके आचरणसे रहित है वह भले ही शीत उष्ण परीषहोंको सहे, पापकर्मोंको न भी करे तो भी वह श्रमण नहीं है। इसी अभिप्रायको ले कर सूत्रकार प्रथम सूत्रको कहते हैं-'संधिं' इत्यादि।

ત્રીજા અધ્યયનનો ત્રીજો ઉદ્દેશ

અગાઉના બીજા ઉદ્દેશમાં પ્રાણીઓની ગર્ભથી માંડી બાલાદિ વૃદ્ધાવસ્થા પર્યન્ત સઘળી અવસ્થાઓ દુઃખોથી ભરેલી છે, તે દુઃખોથી ભયભીત પ્રાણીઓને આત્મકલ્યાણના માર્ગસ્વરૂપ સંયમની આરાધના કરવી જોઈએ. આ આરાધનામાં તેણે શીત અને ઉષ્ણ પરીષહો સહન કરવા જોઈએ. આ સઘળા વિષયો બતાવવામાં આવેલ છે. અર્થાત્ મોક્ષાભિલાષીયો માટે આ સઘળું સમજાવવામાં આવેલ છે. હવે આ ત્રીજા ઉદ્દેશમાં એ સમજાવવામાં આવશે કે જે ચારિત્રના આચરણથી રહિત છે તે ભલે શીત અને ઉષ્ણ પરીષહો સહન કરે, પાપકર્મો પણ ભલે ન કરે, તો પણ તે શ્રમણ નથી. આ અભિપ્રાયને લઈને સૂત્રકાર પ્રથમ સૂત્ર કહે છે— 'સંધિં લોગસ્સ' ઈત્યાદિ.

संधानं सन्धिः=त्रुट्यतः पुनः संमीलनं, स द्विधा-द्रव्यसन्धिर्भावसन्धिश्चेति। तत्र द्रव्यसन्धिः=कुड्यवस्त्रादेः संधानं, भावसन्धिः=चारित्रमोहनीयक्षयोपशमः, तं ज्ञात्वा=विदित्वा ज्ञातव्रत इत्यर्थः, लोकस्य=क्षायोपशमिकादिभावलोकस्य प्रमादः श्रेयसे न भवति। यद्वा-सन्धिः=श्रुतचारित्रलक्षणो धर्माराधनावसरः, तं ज्ञात्वा लोकस्य=षड्जीवनिकायरूपस्य दुःखोत्पादनं न कुर्यात् ॥ सू० १ ॥

सर्वत्रात्मौपम्येन सुखं दुःखं वा जानीयादित्याह-'आयओ' इत्यादि।

मूलम्-आयओ बहिया पास, तम्हा न हंता न विघायए ॥२॥

छाया—आत्मतो वहिः पश्य। तस्मान्न हन्ता न विघातयेत् ॥ सू० २ ॥

टीका—आत्मतः यथाऽऽत्मनः सुखं प्रियं, दुःखमप्रियम्, तथा-वहिः= आत्मव्यतिरिक्तानां प्राणिनामपि पश्य=जानीहि। आत्मतुल्यं सुखं दुःखं सर्वप्राणिनां विज्ञाय किं कर्तव्यमित्याह-'तस्माद्' इत्यादि।

टूटी वस्तुको जोड़ना इसका नाम संधि है। वह दो प्रकारकी है— (१) द्रव्यसन्धि, (२) भावसन्धि। भींत और वस्त्र आदिका जोड़ना- यह द्रव्यसन्धि, और चारित्रमोहनीयका क्षयोपशम भावसन्धि है। इस सन्धिके ज्ञाता मुनिको क्षायोपशमिकादि भावलोकके विषयमें प्रमाद करना उचित नहीं है। अथवा श्रुतचारित्ररूप धर्मके आराधनका अवसर भी सन्धि है। इसको जानकर षड्जीवनिकायरूप लोकको दुःख उत्पन्न न करे ॥ सू० १ ॥

'समस्त संसारी जीवोंको सुख तथा दुःख मेरे ही समान प्रिय और अप्रिय हैं' ऐसा जानना चाहिये, इसे स्पष्ट करते हैं-'आयओ' इ०

संयमी जीव सदा इस बातका पूर्ण ध्यान रखे कि-जिस प्रकार मुझे सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है उसी प्रकार मुझसे भिन्न अन्य समस्त

ભાંગી ગયેલ વસ્તુને જોડવી તેનુ નામ સંધિ છે. તે બે પ્રકારની છે. (૧) દ્રવ્યસંધિ (૨) ભાવસંધિ. ભીંત અને વસ્ત્ર આદિનું જોડવું તે દ્રવ્યસંધિ અને ચારિત્રમોહનીયનો ક્ષયોપશમ ભાવસંધિ છે. આ સંધિના જ્ઞાતા મુનિને ક્ષાયોપશમિકાદિ ભાવલોકના વિષયમાં પ્રમાદ કરવો ઉચિત નથી. અથવા શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મનાં આરાધનનો અવસર પણ સંધિ છે તેને જાણીને ષડ્જીવનિકાયરૂપ લોકને દુઃખ ઉત્પન્ન ન કરે ॥ સૂ૦ ૧ ॥

સમસ્ત સંસારી જીવોને સુખ અને દુઃખ મારી જ માફક પ્રિય અને અપ્રિય છે, એવું જાણવું જોઈએ, તેને સ્પષ્ટ કરે છે-'आयओ' ઇત્યાદિ.

સંયમી જીવ સદા એ વાતનું પૂર્ણ ધ્યાન રાખે કે જે પ્રકારે મને સુખ પ્રિય અને દુઃખ અપ્રિય છે તે પ્રકારે મારાથી ભિન્ન અન્ય સમસ્ત સંસારી જીવોને

यतः सर्वेषां प्राणिनां सुखेऽभिलाषो दुःखे द्वेषः, तस्मात् तेषां न हन्ता=न प्राणातिपातकः स्यात्। अन्यैरपि तान् न विघातयेत्, घ्नन्तमन्यं नानुमोदयेत्। यद्यपि कुतीर्थिका उद्दिश्यभोजिनो द्रव्यलिङ्गिनो दण्डिनश्च स्वयं पाकादिभिः स्थूलान् प्राणिनो न घ्नन्ति, तथाप्यन्यैर्घातयन्ति॥ सू० २ ॥

संसारी जीवोंको भी यह सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है। इस लिये उन जीवोंके प्राणोंको मैं किसी भी रूपमें कष्ट न पहुँचाऊँ, दूसरोंसे भी उन्हें मैं कष्ट न पहुंचवाऊं, कष्ट देनेवाले या घात करनेवाले अन्यकी मैं अनुमोदना भी न करूँ। यद्यपि कुतीर्थिक-अन्यमतावलम्बी साधु सन्यासी, उद्दिष्टभोजी, द्रव्यलिङ्गी, तथा दण्डी आदि स्वयं रसोई आदि पकाकर नहीं खाते पीते हैं, इस प्रकार वे स्वयं स्थूल जीवोंकी हिंसा नहीं करते हैं फिर भी दूसरोंसे अपने लिये जीवोंकी हिंसा कराते ही हैं, क्यों कि वे अपने निमित्त पाकादि आरंभ दूसरोंसे कराते हैं, उस आरंभ में जो हिंसा होती है उसका निमित्त उन्हें होना पड़ता है।

भावार्थ—सच्चे मुनि होनेके लिये प्राणातिपातादिक पापोंका त्याग मन वचन और कायसे, एवं कृत कारित और अनुमोदनासे करना चाहिये तभी आत्मामें साधुता आती है। ऊपर-ऊपरसे हिंसादि पाप छोड़नेसे अथवा हिंसादिक पाप स्वयं न करने से मुनिपना नहीं आता है। उसकी प्राप्तिके लिये जिस प्रकार जीव स्वयं हिंसाका त्याग करता है, उसी प्रकार वह दूसरोंसे अपने निमित्त हिंसादिक नहीं करा सकता है, और

પણ આ સુખ પ્રિય અને દુઃખ અપ્રિય છે માટે તે જીવોને હું કોઇ પણ પ્રકારે દુઃખ ન પહોચાડું, બીજાથી પણ તેઓને દુઃખ ન પહોંચડાવું, કષ્ટ દેવાવાળા અને ઘાત કરવાવાળા બીજાઓની હું અનુમોદના પણ ન કરૂં. કદાચ કુતીર્થિક-અન્યમતાવલમ્બી સાધુ સંન્યાસી ઉદ્દિષ્ટભોજી દ્રવ્યલિંગી તથા દંડી વિગેરે સ્વયં રસોઈ આદિ પકાવીને ખાતા પીતા નથી, તે પ્રકારે તેઓ સ્વયં સ્થૂલ જીવોની હિંસા કરતા નથી તો પણ બીજાથી પોતાને માટે જીવોની હિંસા કરાવે છે જ. કારણ કે તેઓ પોતાના નિમિત્ત પાકાદિ આરંભ બીજાઓથી કરાવે છે. તે આરંભમાં જે હિંસા થાય છે તેનું નિમિત્ત તેને થવું પડે છે

ભાવાર્થ—સાચા મુનિ થવા માટે પ્રાણાતિપાતાદિક પાપોનો ત્યાગ મન વચન અને કાયાથી તેમજ કૃત કારિત અને અનુમોદનાથી કરવો જોઇએ, ત્યારે જ આત્મામા સાધુતા આવે છે. ઉપર-ઉપરથી હિંસાદિ પાપ છોડવાથી અને હિંસાદિક પાપ સ્વયં ન કરવાથી મુનિપણું આવતું નથી તેની પ્રાપ્તિ માટે જે પ્રકારે જીવ સ્વયં હિંસાનો ત્યાગ કરે છે તે પ્રકારે તે બીજાઓથી પણ પોતાને નિમિત્ત હિંસાદિક

पापकर्मानाचरणमात्रेण श्रमणो न भवति किं तु सम्यगास्रवनिरोधेनेत्याह-'जमिणं' इत्यादि।

मूलम्—जमिणं अन्नमन्नवितिगिच्छाए पडिलेहाए न करेइ पावं कम्मं, किं तत्थ मुणी कारणं सिया ?, समयं तत्थुवेहाए अप्पाणं विप्पसायए ॥ सू० ३ ॥

छाया—यदिदम् अन्योन्यविचिकित्सया प्रत्युपेक्ष्य न करोति पापं कर्म। किं तत्र मुनिः कारणं स्यात् ? समयं तत्रोत्प्रेक्ष्य आत्मानं विप्रसादयेत् ॥ सू० ३ ॥

टीका—यदिदं पापं=पापानुबन्धि कर्म=पचनपाचनपरिग्रहादिलक्षणम् अन्योन्यविचिकित्सया-विचिकित्सा=आशङ्का भयं लज्जा वा, अन्योन्यस्य=परस्परस्य या विचिकित्सा=आशङ्का, यद्वा-अन्योन्यस्मात्=परस्परतो भयं लज्जा वा, तया प्रत्यु-

---

न अपने लिये हिंसा करनेवालोंकी अनुमोदना ही कर सकता है। यदि ऐसा करता है तो वह साधु नहीं कहला सकता। जो साधु हो कर जीवहिंसाके भयसे स्वयं पाकादिक क्रिया तो नहीं करते हैं परन्तु उद्दिष्ट भोजन लेते हैं, तथा अपने लिये दूसरोंसे भोजन तैयार करवाते हैं वे नव कोटिसे हिंसा के त्यागी नहीं हैं, अतः वे साधु भी नहीं हैं ॥ सू० २ ॥

पाप कर्म नहीं करने मात्रसे प्राणी मुनि नहीं होता है किन्तु कर्मों के आस्रवको भली प्रकार रोकनेसे ही वह मुनि होता है, अब इसी बातको स्पष्ट करते हैं-'जमिणं' इत्यादि।

जो मुनि-अवस्थामें पापकर्मों के नहीं करनेके कारण हैं वे प्रत्यक्ष हैं। वे ये हैं-आशङ्का, भय अथवा लज्जा। अर्थात् मुनि हो कर भी जो पाप नहीं करता है उसमें प्रधान कारण परस्परकी अथवा एक दूसरेसे

કરાવતા નથી, અને પોતાને માટે હિંસા કરવાવાળાઓની અનુમોદના પણ કરતા નથી. કદાચ એવું કરે તો તેને સાધુ કહેવામાં આવતો નથી. જે સાધુ બની જીવ હિંસાના ભયથી સ્વયં પાકાદિક ક્રિયા નથી કરતા પરંતુ ઉદ્દિષ્ટ ભોજન લે છે. તથા પોતાને માટે બીજાઓથી ભોજન તૈયાર કરાવે છે તેઓ નવ કોટિથી હિંસાના ત્યાગી નથી તેમજ તેઓ સાચા સાધુ પણ નથી ॥ સૂ૦ ૨ ॥

પાપકર્મ નહિ કરવા માત્રથી મુનિ બનતા નથી પણ કર્મોના આસવને ભલી પ્રકાર રોકવાથી જ મુનિ થાય છે, તે વાતને સ્પષ્ટ કરે છે-'જમિણં' ઇત્યાદિ.

જે મુનિ અવસ્થામાં પાપકર્મો નહિ કરવાના કારણો છે તે પ્રત્યક્ષ છે. તે આ છે-આશંકા ભય અથવા લજ્જા. અર્થાત્ મુનિ બનીને પણ જે પાપ કરતા નથી તેમાં પ્રધાન કારણ પરસ્પરની અથવા એક બીજાઓથી પરસ્પરમાં આશંકા ભય

पेक्ष्य=मनसि विचार्य न करोति। तत्र=पापकर्मानाचरणे तस्य किं मुनिः=मुनित्वं कारणं स्यात्? न, यतस्तत्र पापकर्मानाचरणे अन्योन्यविचिकित्सैव कारणं, न तु मुनित्वम्। यस्तु मुनिर्भवति तस्यैव मुनित्वं पापकर्मानाचरणे कारणं भवतीति। यद्वा-'किम्'-इति काक्वा निर्देशः। 'मुणी' इति सप्तम्यन्तम्, ततश्च-'मुनौ'-इतिच्छाया। तत्र=तस्मिन् मुनौ=मुनित्वे किं पापकर्मानाचरणमेव कारणम्? अपि तु न, नहि अन्योन्यविचिकित्सया पापमननुतिष्ठन् मुनिर्भवतीति। तर्हि कथं मुनिर्भवति? इत्याह-'समयं तत्थुव्वेहाए' इत्यादि। तत्र समयम्=आगमम् उत्प्रेक्ष्य=पर्यालोच्य आत्मानं विप्रसादयेत्, जिनप्रवचनरहस्यपर्यालोचनेनात्मानमप्रमादशुभभावनादिभिर्विविधैरुपायैः प्रसन्नं कुर्यादित्यर्थः। शुभाध्यवसायपूर्वकमागमोक्तानुसारेण यदनुष्ठानं तत्सर्वं मुनित्वे कारणमिति भावः। इदं निश्चयनयाभिप्रायेण।

परस्परमें आशङ्का, भय अथवा लज्जा है, न कि मुनित्व। वह तो इन्हीं सब बातोंको मनमें विचार कर पापानुबन्धी कर्म जो पचन पाचन एवं परिग्रह आदि हैं उन्हें नहीं करता है।

अथवा-परस्परकी आशङ्का या भयादिसे पापकर्मोंका नहीं करना क्या यही मुनिपनाका कारण है? इस प्रकारकी आशङ्काका उत्तर देते हैं-'समयं तत्थुव्वेहाए' इत्यादि। समय शब्दका अर्थ 'आगम' तथा 'उत्प्रेक्ष्य' शब्दका अर्थ 'विचार कर' है, अर्थात्-जिनप्रतिपादित आगमके रहस्यका विचार कर 'अप्पाणं विप्पसायए' आत्मानं विप्रसादयेत्, मुनि अपनी आत्माको अप्रमाद एवं शुभ भावनादिक विविध उपायोंसे प्रसन्न करे। शुभ अध्यवसायपूर्वक आगमप्रतिपादित विधिके अनुसार जो अनुष्ठान मुनि-अवस्थामें करनेयोग्य कहे गये हैं वे सब करे, ये ही अनुष्ठान मुनिपनामें कारण हैं। यह कथन निश्चय नयके अभिप्रायसे किया है।

અથવા લજ્જા છે, ન કે મુનિત્વ. તેઓ (મુનિઓ) તો આ સઘળી વાતોનો મનમાં વિચાર કરી પાપાનુબંધી કર્મ જે પચન-પાચન અને પરિગ્રહ આદિ છે તેને કરતા નથી

અથવા—પરસ્પરની આશંકા અથવા ભયાદિથી પાપકર્મોનું નહિ કરવું તે શું મુનિપણાનું કારણ છે? આ પ્રકારની આશંકાનું સ્પષ્ટીકરણ કરે છે-'समयं तत्थुव्वेहाए' ઇત્યાદિ સમય શબ્દનો અર્થ 'आगम' તથા 'उत्प्रेक्ष्य' શબ્દનો અર્થ 'વિચાર કરી' છે અર્થાત્ જીનપ્રતિપાદિત આગમના રહસ્યનો વિચાર કરી 'अप्पाणं विप्पसायए' आत्मानं विप्रसादयेत्-મુનિ પોતાના આત્માને અપ્રમાદ અને શુભ ભાવનાદિક વિવિધ ઉપાયોથી પ્રસન્નકરે. શુભ અધ્યવસાયપૂર્વક આગમપ્રતિપાદિત વિધિ-અનુસાર જે અનુષ્ઠાન મુનિ અવસ્થામા કરવાયોગ્ય કહેવામા આવેલ છે તે સઘળા કરે તે જ અનુષ્ઠાન મુનિપણાનું કારણ છે આ કથન નિશ્ચયનયના અભિપ્રાયથી કરેલ છે.

यद्वा-परस्पराशङ्कया भयेन लज्जया वा यदाधाकर्मादीनि परिहरति, यथाकालं प्रतिलेखनादीनि करोति, मासक्षपणानि, आतापनादिकं च समाचरति, तदिदं सर्वं किं मुनित्वे कारणं स्यान्न वा? इति शिष्याशङ्कानिराकरणाय कथयति-'जमिणं' इत्यादि। अत्रोच्यते-जिनशासने पदार्थतत्त्वाधिगमाय नयद्वयमुपादीयते। तत्र तावन्निश्चयनयमाश्रित्य अन्योपाध्यनावेशेन परिवर्जिताऽकल्पनीयव्यापारत्वमेव मुनित्वे कारणम्। मुनित्वं हि शुभान्तःकरणपरिणामेन प्रवचनोक्तविधिनाऽनुष्ठितक्रियस्यैव भवति, नान्यस्य।

अथवा-परस्परकी आशङ्कासे भयसे या लज्जासे जो आधाकर्मादिक दोषोंका परिहार करता है, और समयानुसार पडिलेहनादिक क्रियाओंको करता है, मासखमण और आतापना आदि योगोंका अनुष्ठान करता है, ये सब क्रियाएँ क्या मुनिपनेमें कारण हैं या नहीं? इस प्रकार की शिष्यकी आशङ्काका परिहार करनेके लिये सूत्रकारने "जमिणं" इत्यादि सूत्र कहा है। जिनशासनमें पदार्थके स्वरूपको जाननेके लिये दो नयोंका विधान है-(१) निश्चय नय और (२) व्यवहार नय। इनमें प्रथम निश्चयनयकी अपेक्षासे जो अन्य किसी सांसारिक उपाधिके संसर्गसे रहित हो कर अकल्पनीय व्यापारसे दूर हो चुका है, इस प्रकारका उसका रहन-सहन ही उसके मुनिपनेमें कारणभूत है, क्यों कि शुभ अन्तःकरणके परिणामसे शास्त्रोक्त विधिके अनुसार अपनी क्रियाओंको करनेवाले व्यक्तिके ही मुनिपना होता है, अन्यको नहीं।

અથવા—પરસ્પરની આશંકાથી ભયથી, લજ્જાથી જે આધાકર્માદિક દોષોનો પરિહાર કરે છે, અને સમયાનુસાર પડિલેહનાદિક ક્રિયાઓ કરે છે, માસખમણ અને આતાપના આદિ યોગોનું અનુષ્ઠાન કરે છે, એ સઘળી ક્રિયાઓ શું મુનિપણાનુ કારણ છે યા નહિ? આ પ્રકારની શિષ્યની આશંકાનો પરિહાર કરવા માટે સૂત્રકાર "जमिणं" ઇત્યાદિ સૂત્ર કહેલ છે. જીનશાસનમા પદાર્થના સ્વરૂપને જાણવા માટે બે નયોનું વિધાન છે. (૧) નિશ્ચયનય અને (૨) વ્યવહારનય. તેમાં પ્રથમ નિશ્ચયનયની અપેક્ષાથી જે અન્ય કોઇ સાસારિક ઉપાધિના સંસર્ગથી રહિત થઇને અકલ્પનીય વ્યાપારથી દૂર થયેલ છે, આ પ્રકારનું તેનુ રહન-સહન જ તેના મુનિપણાનુ કારણભૂત છે કારણ કે શુભ અંતઃકરણના પરિણામથી શાસ્ત્રોક્ત વિધિ-અનુસાર પોતાની ક્રિયાઓને કરવાવાળી વ્યક્તિને જ મુનિપણું થાય છે. બીજાને નહિ.

व्यवहारनये तु यः परस्पराशङ्कया भयादिना वा केनचित् कारणेनाऽऽधाकर्मादि परिवर्जयति, प्रतिलेखनादिकं करोति, मासक्षपणादितपश्चाचरति, तस्य मुनित्वे तदनुष्ठानं कारणं भवत्येव, तादृशानुष्ठानस्य निश्चयनयाश्रितमुनित्वहेतु-शुभाध्यवसायजनकत्वात्। निश्चयमुपलब्धुं व्यवहारः शरणीकरणीयो भवति, यथा नद्यादितरणं करचरणप्रचालनादिव्यवहारेण विना नोपपद्यते, यथा वा रज्जु-सोपानाद्यालम्बनेन विना प्रसादशिखरारोहणं न संजायते ॥ सू० ३ ॥

आत्मनः प्रसन्नता संयमाराधनतत्परस्य भवति, अतस्तत्र प्रमादो न कार्य इत्याह–' अणण्णपरमं ' इत्यादि।

व्यवहार नयकी अपेक्षासे तो जो परस्परकी आशङ्का अथवा भयादिक किसी कारणके वशसे आधाकर्मादिक दोषोंका परिहार करता है, समयानुसार प्रतिलेखनादिक क्रियाओंको, एवं मासक्षपणादिक तपको आचरता है, उस व्यक्तिके मुनिपनेमें ये सब बातें कारण होती हैं। व्यवहार, निश्चयका हेतु होता है। इस प्रकारके व्यावहारिक अनुष्ठान निश्चयनयकी अपेक्षासे मुनिपनेके कारणभूत शुभ अध्यवसायके उत्पादक होते हैं। निश्चयको पानेके लिये व्यवहारका अवलम्बन करना ही पड़ता है। जैसे नदी आदिका तैरना हाथ पैर आदिके चलानेरूप व्यवहार क्रियाके विना, अथवा रज्जु–रस्सी या सीढी आदिके अवलम्बन विना मकानके ऊपर चढ़ना नहीं होता है॥ सू० ३ ॥

आत्मामें प्रसन्नता संयमके आराधनमें तत्पर मुनिको ही होती है। इस लिये संयमके आराधनमें मुनिको प्रमाद नहीं करना चाहिये, इस बातको प्रगट करते हैं—' अणण्णपरमं ' इत्यादि।

વ્યવહારનયની અપેક્ષાથી તો જે પરસ્પરની આશંકા અને ભયાદિક કોઈ કારણના વશથી આધાકર્માદિક દોષોનો પરિહાર કરે છે, સમયાનુસાર પ્રતિલેખનાદિ ક્રિયાઓને તેમજ માસક્ષપણાદિક તપને આચરે છે, તે વ્યક્તિના મુનિપણામાં એ સઘળી વાતો કારણ બને છે. વ્યવહાર, નિશ્ચયનો હેતુ થાય છે. આ પ્રકારના વ્યાવહારિક અનુષ્ઠાન નિશ્ચયનયની અપેક્ષાથી મુનિપણાના કારણભૂત શુભ અધ્ય-વસાયના ઉત્પાદક બને છે. નિશ્ચય મેળવવા માટે વ્યવહારનું અવલંબન લેવું જ પડે છે. જેમ નદી આદિનુ તરવું હાથપગ આદિના ચલાવવારૂપ વ્યવહાર કર્યા વગર, અને રજ્જુ–રસ્સી અગર સીડી આદિના અવલંબન વિના મકાન ઉપર ચઢવું બની શકતું નથી ॥ સૂ૦ ૩ ॥

આત્મામાં પ્રસન્નતા સંયમ આરાધનમા તત્પર મુનિને જ થાય છે, માટે સંયમ આરાધનમા મુનિએ પ્રમાદ નહિ કરવો જોઈએ. એ વાતને પ્રગટ કરે છે–' अणण्णपरमं ' ઈત્યાદિ.

मूलम्—अणण्णपरमं नाणी, नो पमायए कयाइ वि ।
आयगुत्ते सया वीरे, जायामायाइ जावए ॥सू० ४॥

छाया—अनन्यपरमं ज्ञानी नो प्रमादयेत् कदाचिदपि ।
आत्मगुप्तः सदा वीरः यात्रामात्रया यापयेत् ॥ सू० ४ ॥

टीका—ज्ञानी=सम्यग्दृष्टिः, अनन्यपरमं=नान्यत् परमम् उत्कृष्टं यस्मात्—अनन्यपरमं=चारित्रं, तत् कदाचिदपि नो प्रमादयेत्=कस्मिन्नपि काले चारित्रे प्रमादं न कुर्यादित्यर्थः । केनोपायेन प्रमादो वारणीयः? इत्यत आह—'आत्मगुप्त' इत्यादि । आत्मगुप्तः=आत्मना=इन्द्रियनोइन्द्रियेण गुप्तः, इन्द्रियनोइन्द्रियनिग्रही-

---

ज्ञानी-सम्यग्दृष्टि मनुष्य चारित्रमें किसी भी समय प्रमाद न करे। 'अनन्यपरम' शब्दका अर्थ चारित्र है, क्यों कि "अन्यत् परमं यस्मात् न" जिससे दूसरी कोई वस्तु उत्कृष्ट नहीं है वह अनन्यपरम है। शास्त्रमें साक्षात् मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला चारित्र ही बतलाया गया है अतः वही सर्वोत्कृष्ट है । प्रमाद चारित्रका विघातक होता है इसी लिये वह सम्यग्दृष्टिके लिये वर्जनीय कहा है । प्रमादको दूर करनेका उपाय बतलानेके लिये सूत्रकार कहते हैं-'आयगुत्ते' इत्यादि, अर्थात् मुनि को सदा आत्मगुप्त-इन्द्रिय और नोइन्द्रिय-मनका विजयी बनना चाहिये। इन पर जब तक विजयरूपी अङ्कुश वह प्राप्त नहीं कर लेता है तब तक इनके आधीन बना हुआ साधु प्रमादसे रहित नहीं हो सकता। जिह्वा-इन्द्रियकी लोलुपतासे वह मात्रासे भी अधिक आहार ले लेता है। इस से प्रमादकी वृद्धि होती है । तथा अधिक सरस-रसीला आहार लेनेसे

જ્ઞાની-સમ્યગ્દષ્ટિ મનુષ્ય ચારિત્રમાં કોઈ પણ સમય પ્રમાદ ન કરે. 'अनन्यपरम' શબ્દનો અર્થ ચારિત્ર છે કારણ કે "अन्यत् परमं यस्मात् न" જેનાથી બીજી કોઈ વસ્તુ ઉત્કૃષ્ટ નથી તે અનન્યપરમ છે. શાસ્ત્રમાં સાક્ષાત્ મોક્ષની પ્રાપ્તિ કરાવનાર ચારિત્ર જ બતાવવામાં આવેલ છે માટે તે જ સર્વોત્કૃષ્ટ છે. પ્રમાદ ચારિત્રનો વિઘાતક બને છે, માટે તે સમ્યગ્દષ્ટિ માટે વર્જનીય કહેલ છે પ્રમાદને દૂર કરવાનો ઉપાય બતાવવા માટે સૂત્રકાર કહે છે-'आयगुत्ते' ઈત્યાદિ. અર્થાત્ મુનિએ સદા આત્મગુપ્ત-ઈન્દ્રિય અને નોઇન્દ્રિય-મનના વિજયી બનવું જોઈએ તેના ઉપર જ્યાંસુધી વિજયરૂપી અંકુશ તે પ્રાપ્ત નથી કરી લેતા ત્યાં સુધી તેના આધીન બનેલા સાધુ પ્રમાદથી રહિત બની શકતા નથી. જીભ ઇન્દ્રિયની લોલુપતાથી તે માત્રાથી પણ અધિક આહાર લઈ લે છે. તેનાથી પ્રમાદની વૃદ્ધિ થાય છે. તથા અધિક સરસ-રસીલા આહાર લેવાથી ઇન્દ્રિયોને પણ

त्यर्थः, सदा=सर्वस्मिन् काले, वीरः=कर्मविदारणोत्साहवान्, यात्रामात्रया=यात्रा-संयमयात्रा तदर्थं या मात्रा=जिनप्रवचनोक्तमाहारादिप्रमाणं तया, शरीरं यापयेत्=निर्वहेत्-गमयेदित्यर्थः।

प्रमाणाधिकेनाहारेण राजपिण्डादिना वा इन्द्रियनिग्रहो न भवति, तस्माद् धर्मोपार्जनसहायभूतस्य शरीरस्य धारणार्थं प्रमाणोपेतमाहारमङ्गीकुर्यात्। एवं कृते सति प्रमादो न भवतीति भावः। उक्तञ्च—

" आहारार्थं कर्म कुर्यादनिन्द्यं, स्यादाहारः प्राणसंधारणार्थम्।
प्राणा धार्यास्तत्त्वजिज्ञासनार्थं, तत्त्वं ज्ञेयं येन दुःखाद् विमुच्येत् " ॥१॥ इति॥सू०४॥

इन्द्रियोंको भी उत्तेजना मिलती है, इससे चतुर्थ व्रतकी रक्षामें भी बाधा उपस्थित होती है। इसी बातका विचारकर सूत्रकार कहते हैं-'जाया-मायाए' यात्रामात्रया, इति, अर्थात्-संयमयात्राके निर्वाहयोग्य आहा-रादिकका उचित प्रमाणमें लेना बतलाते हैं। मुनि की सदा यही भावना रहनी चाहिये कि-मैं जैसे भी बने वैसे निर्दोष चारित्रकी आराधना करता हुआ कर्मोंको नष्ट करूँ। इस तरहके उत्साहसे संपन्न वह मुनि अपनी संयमरूपी यात्राकी निर्विघ्न परिसमाप्तिके लिये जिनप्रवचनमें प्रतिपादित प्रमाणके अनुरूप आहारादि ग्रहण करे। इससे ही अपने शरीरका निर्वाह करे। प्रमाणसे अधिक आहारके लेनेसे अथवा अक-ल्पनीय राजपिण्डादिकसे इन्द्रियोंका निग्रह नहीं होता है। इसलिये धर्मके उपार्जनमें सहायक शरीरकी रक्षाके लिये शास्त्रमें प्रतिपादित मात्रानुसार आहार लेना चाहिये। कहा भी है--

---

ઉત્તેજના મળે છે. તેથી ચતુર્થ વ્રતની રક્ષામાં પણ બાધા ઉપસ્થિત થાય છે. આ વાતનો વિચાર કરી સૂત્રકાર કહે છે—" जायामायाए " यात्रामात्रया, ઈતિ. અર્થાત્-સંયમયાત્રાના નિર્વાહયોગ્ય આહારાદિકનું ઉચિત પ્રમાણમાં લેવું બતાવેલ છે સદા મુનિની એ ભાવના રહેવી જોઈએ કે હું જ્યાંસુધી બને ત્યાં સુધી નિર્દોષ ચારિત્રની આરાધના કરીને કર્મોનો નાશ કરૂં, આવા પ્રકારના ઉત્સાહથી સંપન્ન તે મુનિ પોતાની સંયમરૂપી યાત્રાની નિર્વિઘ્ન પરિસમાપ્તિ માટે જીનપ્રવચનમાં પ્રતિપાદિત પ્રમાણને અનુરૂપ આહારાદિ ગ્રહણ કરે, તેનાથી જ પોતાના શરીરનો નિર્વાહ કરે. પ્રમાણથી અધિક આહાર લેવાથી અને અકલ્પનીય રાજપિંડાદિકથી ઈન્દ્રિ-યોનો નિગ્રહ બનતો નથી માટે ધર્મના ઉપાર્જનમાં સહાયક શરીરની રક્ષા માટે શાસ્ત્રમાં પ્રતિપાદિત માત્રાનુસાર આહાર લેવો જોઈએ. કહ્યું પણ છે—

आत्मगुप्तः कथं स्यादिति शिष्यजिज्ञासायामाह-'विरागं' इत्यादि।

मूलम्-विरागं रूवेसु गच्छिज्जा महया खुड्डएहिं वा ॥सू० ५॥

छाया—विरागं रूपेषु गच्छेत् महत्सु क्षुल्लकेषु वा ॥ सू० ५ ॥

"आहारार्थं कर्म कुर्यादनिन्द्यं, स्यादाहारः प्राणसंधारणार्थम्।
प्राणा धार्यास्तत्त्वजिज्ञासनार्थं, तत्त्वं ज्ञेयं येन दुःखाद् विमुच्येत्॥१॥"

आहारके लिये अनिन्द्य कर्म करे। आहारका ग्रहण प्राणोंकी रक्षा के निमित्त है। प्राणोंकी रक्षा तत्त्वोंकी जिज्ञासाके लिये है, और तत्त्व-ज्ञान अपनेको (जीवको) सांसारिक दु खोंसे छुड़ानेके लिये होता है॥

इसलिये साधुको आहारकी प्राप्तिके लिये अनिन्द्य कर्म (एषणा-समितियुक्त प्रवृत्ति) करना चाहिये निन्द्य कर्म नहीं। प्राणोंकी रक्षाके लिये ही आहार ग्रहण करना चाहिये, विषयादिकोंकी या प्रमादकी पुष्टि के लिये नहीं। तत्त्वोंकी विचारणा करनेके लिये ही प्राणोंकी रक्षा करनी चाहिये, दूसरे जीवोंकी हिंसादिकके लिये नहीं। तत्त्वज्ञानका विचार भी सांसारिक दुःखोंसे छूटनेके लिये करना चाहिये, मान माया आदि कषायकी पुष्टिके लिये नहीं। इसलिये संयमयात्राका निर्वाहके लिये मात्रानुसार आहार लेना चाहिये जिससे प्रमाद नहीं हो॥ सू० ४॥

मुनि—आत्मगुप्त—इन्द्रिय और मनका निग्रह करनेवाला कैसे बने? ऐसी शिष्यकी जिज्ञासाका समाधान करते हैं-'विरागं' इत्यादि।

"आहारार्थं कर्म कुर्यादनिन्द्यं, स्यादाहारः प्राणसंधारणार्थम्।
प्राणा धार्यास्तत्त्वजिज्ञासनार्थं, तत्त्वं ज्ञेयं येन दुःखाद् विमुच्येत्" ॥१॥

આહાર માટે અનિન્ધ કર્મ કરે. આહારનું ગ્રહણ પ્રાણોની રક્ષા નિમિત્ત છે. પ્રાણોની રક્ષા તત્ત્વોની જીજ્ઞાસા માટે છે, અને તત્ત્વજ્ઞાન પોતાને (જીવને) સાંસારિક દુ.ખોથી છોડાવવા માટે થાય છે.

માટે સાધુએ આહારની પ્રાપ્તિ માટે અનિન્ધ કર્મ (એષણાસમિતિયુક્ત પ્રવૃત્તિ) કરવું જોઈએ, નિન્ધ કર્મ નહિ. પ્રાણોની રક્ષા માટે જ આહાર ગ્રહણ કરવો જોઈએ, વિષયાદિકોની અને પ્રમાદની પુષ્ટિ માટે નહિ. તત્ત્વોની વિચારણા કરવા માટે જ પ્રાણોની રક્ષા કરવી જોઈએ – બીજા જીવોની હિંસાદિક માટે નહિ. તત્ત્વજ્ઞાનનો વિચાર પણ સાંસારિક દુ.ખોથી છુટવા માટે કરવો જોઈએ – માન માયા આદિ કષાયની પુષ્ટિ માટે નહિ માટે સંયમયાત્રાના નિર્વાહ માટે માત્રા-નુસાર આહાર લેવો જોઈએ જેથી પ્રમાદ ન થાય. ॥ સૂ૦ ૪ ॥

મુનિ, આત્મગુપ્ત-ઈન્દ્રિય અને મનનો નિગ્રહ કરનાર કેવી રીતે બને? એવી શિષ્યની જીજ્ઞાસાનુ સમાધાન કરે છે-'विरागं' ઇત્યાદિ.

टीका—रूपेषु=चक्षुर्विषयीभूतेषु मनोज्ञेषु रूपेषु विरागं गच्छेत्, रूपं हि शब्दाद्यपेक्षयाऽतीवाक्षिपति चित्तं, तस्मादिह रूपग्रहणम् । रूपेषु वैराग्यसद्भावे सति शेषविषयेष्वपि तस्य सुतरां संभवादिति भावः । महत्सु=दिव्यभावेन यान्यवस्थितानि रूपाणि तेषु, सूत्रे आर्पत्वादेकवचनम् , क्षुल्लकेषु=क्षुद्रेषु रूपेषु यथा तिरश्चां, मनुष्याणां तु मध्यमानि रूपाणि, तेष्वपि विरागं गच्छेदिति सम्बन्धः। आद्यन्तरूपग्रहणेन मध्यमानामपि ग्रहणम् । अत्र सप्तम्यर्थे तृतीया प्राकृतत्वात् । यद्वा—एकैकं रूपं त्रिविधं—दिव्यमध्यमक्षुद्रभेदात् । कुब्जादीनां क्षुद्राणि, अन्येषां मध्यमानि, केषांचित् पूर्वभवसुकृतिनां दिव्यानि रूपाणि भवन्ति ॥ सू० ५ ॥

साधुका कर्त्तव्य है कि वह चक्षुरिन्द्रियके विषयभूत जब जब सुंदर रूप हों तब-तब उनमें असारता की भावना भा कर उन से विरक्त होवे। सूत्रमें 'रूवेसु-रूपेषु' जो यह पद दिया है उससे सूत्रकार इस बातको बतलाते हैं कि रूप ही शब्दादिक विषयोंकी अपेक्षा चित्तको अपनी ओर अधिक आकृष्ट किया करते हैं। मुनिको जब रूपमें वैराग्यकी जागृति हो जावेगी तब अन्य रसादिक विषयोंमें तो स्वतः ही उसके चित्तमें वैराग्य जाग्रत हो जावेगा। इस लिये सूत्रकार कहते हैं कि जो बहुत ही ज्यादा सुन्दर स्वरूपवान्-दिव्य रूपवाला है, जैसे विशिष्ट रूप देवताओंमें मध्यम रूप मनुष्योंमें और सामान्य रूप तिर्यञ्चोंमें होते हैं-उनमें कभी भी इष्ट-अनिष्टकी कल्पना से अपने चित्तको वासित न करे, सदा उनमें विरक्त बुद्धि ही रखे। दिव्य, मध्यम और क्षुद्रके भेदसे रूप तीन प्रकार के हैं। कुब्ज आदिमें क्षुद्ररूप, इनसे अन्यमें मध्यम रूप और किन्हीं पुण्यात्माओंमें दिव्यरूप होते हैं ॥ सू० ५ ॥

સાધુનું કર્તવ્ય છે કે તે ચક્ષુરિન્દ્રિયના વિષયભૂત જ્યાં જ્યાં સુંદર રૂપ હોય ત્યાં ત્યાં તેમાં અસારતાની ભાવના ભાવીને તેનાથી વિરક્ત બને. સૂત્રમાં 'रूवेसु-रूपेषु' જે આ પદ આપેલ છે તેનાથી સૂત્રકાર એ વાતને સમજાવે છે કે રૂપજ શબ્દાદિક વિષયોની અપેક્ષા ચિત્તને પોતાની તરફ અધિક આકૃષ્ટ કર્યા કરે છે, મુનિને જ્યારે રૂપમાં વૈરાગ્યની જાગૃતિ થઈ જશે ત્યારે અન્ય રસાદિક વિષયોમાં તો સ્વતઃ જ તેના ચિત્તમાં વૈરાગ્ય જાગૃત થઇ જશે. માટે સૂત્રકાર કહે છે કે જે ઘણા જ સુંદર સ્વરૂપવાન દિવ્ય સ્વરૂપવાળા છે-જેવી રીતે વિશિષ્ટ રૂપ દેવતાઓમાં, મધ્યમરૂપ મનુષ્યોમાં, અને સામાન્ય રૂપ તિર્યંચોમાં હોય છે તેમાં કોઇ વખત પણ ઇષ્ટ-અનિષ્ટની કલ્પનાથી પોતાના ચિત્તને વાસિત ન કરે, સદા તેમાં વિરકત બુદ્ધિ જ રાખે દિવ્ય મધ્યમ અને ક્ષુદ્રના ભેદથી રૂપ ત્રણ પ્રકારના છે. કુબ્જ આદિમાં ક્ષુદ્રરૂપ, તેનાથી અન્ય મધ્યમ રૂપ અને કોઇ પુણ્યાત્માઓમા દિવ્ય રૂપ હોય છે ॥ સૂ૦ ૫ ॥

'किमालम्ब्यैतत् कर्तव्यमित्याह—' आगइं ' इत्यादि ।

मूलम्—आगइं गइं परिण्णाय दोहि वि अंतेहिं अदिस्समाणे । से न छिज्जइ न भिज्जइ न डज्झइ न हम्मइ कंचणं सव्वलोए ॥ सू० ६ ॥

छाया—आगतिं गतिं परिज्ञाय द्वाभ्यामन्ताभ्यामदृश्यमानः । स न छिद्यते न भिद्यते न दह्यते न हन्यते केनचित् सर्वलोके ॥ सू० ६ ॥

टीका—' आगतिं गति '-मिति, आगतिः=आगमनं, गतिर्गमनं, तत्र तिरश्चां मनुष्याणां चागतिश्चतुर्विधा भवति, नरकादिचतुर्विधगतितस्तेषामागमनसद्भावात् ।

क्या विचार कर रूपादिकों में विरक्त बुद्धिवाला बने ? सो कहते हैं—' आगइं ' इत्यादि ।

दूसरी गतिसे आनेका नाम आगति और दूसरी गतिमें जानेका नाम गति है । मनुष्य और तिर्यञ्चोंकी आगति चार प्रकारसे होती है, अर्थात् चारों गतियोंसे आकर जीव मनुष्य और तिर्यञ्च गतिमें जन्म लेते हैं । देव और नारकियोंकी आगति दो प्रकारसे होती है, अर्थात् तिर्यञ्च और मनुष्य गतिसे आ कर ही जीव देवगति और नरकगतिमें उत्पन्न होते हैं । गति भी उन सबकी इसी तरहसे होती है । मनुष्य एवं तिर्यञ्च गतिके जीव चारों गतियों में उत्पन्न हो सकते हैं परन्तु देवगति एवं नरक गतिके जीव मनुष्य और तिर्यञ्च गतिके सिवाय अन्य गतियोंमें जन्म नहीं लेते । देव च्यवकर दूसरे भवमें देवगतिमें और

શું વિચાર કરી રૂપાદિકોમાં વિરક્તબુદ્ધિવાળા બને ? તે કહે છે—' आगइं ' ઈત્યાદિ.

બીજી ગતિથી આવવાનું નામ આગતિ અને બીજી ગતિમાં જવાનું નામ ગતિ છે. મનુષ્ય અને તિર્યંચોની આગતિ ચાર પ્રકારની હોય છે. અર્થાત્ ચારે ગતિયોથી આવીને જીવ મનુષ્ય અને તિર્યંચ ગતિમાં જન્મ લે છે. દેવ અને નારકીઓની આગતિ બે પ્રકારની હોય છે, અર્થાત્ તિર્યંચ અને મનુષ્ય ગતિથી આવીને જીવ દેવગતિ અને નરકગતિમાં ઉત્પન્ન થાય છે. ગતિ પણ તે સઘળાઓની આ પ્રકારે જ હોય છે. મનુષ્ય અને તિર્યંચ ગતિનો જીવ ચારે ગતિઓમાં ઉત્પન્ન થઈ શકે છે પરંતુ દેવગતિ અને નરકગતિના જીવ મનુષ્ય અને તિર્યંચ ગતિના સિવાય અન્ય ગતિયોમાં જન્મ લેતા નથી. દેવ ચવીને બીજા ભવમાં

देवानां नारकिणां चागतिर्द्विविधैव, तेषां तिर्यग्मनुष्यगतिभ्यामेवाऽऽगमनात्। गतिरप्येवं भवति, केवलं मनुष्याणां गतिः पञ्चविधा प्रोक्ता, तेषां मोक्षगतिसंभवात्। तामागतिं गतिं च, परिज्ञाय=संसारचक्रे घटीयन्त्रवत् परिभ्रमणरूपामागतिं गतिं च बुद्ध्वा मनुष्याणां मोक्षगतिसंभवं चावगत्य स आगतिगतिस्वरूपाभिज्ञः, यद्वा-संसारदुःखभीतो मोक्षगतिसुखगवेषी, रूपादिषु विषयेषु अन्ताभ्याम्=स्वसत्तायां मुक्तेरन्तकारित्वादन्तौ=रागद्वेषौ ताभ्याम् द्वाभ्यामपि=रागद्वेषाभ्याम् अदृश्यमानः= अवर्तमानः, रागद्वेषरहित इत्यर्थः, न छिद्यते केनचित्=खड्गादिना, न भिद्यते कण्टकसूचीशूलादिना, न दह्यते दहनादिना, न हन्यते कशादिना नरकगत्यानुपू-

नरकगतिमें उत्पन्न नहीं होता। इसी प्रकार नारकी जीव भी नरकसे निकल कर दूसरे भवमें देवगति या नरकगतिमें उत्पन्न नहीं होता। मनुष्य एवं तिर्यञ्च तो मर कर दूसरे भवमें मनुष्य, तिर्यञ्च, देव और नरकगतिमें जन्म ले सकता है। मनुष्योंकी गति मुक्तिप्राप्तिकी अपेक्षासे पांच प्रकारकी भी कही गई है। इस प्रकार संसारचक्रमें घटी यन्त्रके समान परिभ्रमणरूप आगति और गति, एवं मनुष्योंमें मोक्षगतिकी संभवताको जानकर उनके स्वरूपका ज्ञाता, अथवा संसारके दुःखों से भयभीत हो कर मोक्षगतिके सुखका गवेषी वह साधु रूपादि विषयो में राग और द्वेषसे रहित हो कर सर्वलोकमें न किसीके द्वारा तलवार आदिसे हाथ पैर आदि में कभी छेदा जाता है, न कण्टकसूची शूलादिसे भेदा जाता है, न अग्नि आदिसे जलाया जाता है और न कोडे आदिसे मारा जाता है और न उसके नरकगत्यानुपूर्वी आदिका उदय

દેવગતિમાં અને નરકગતિમા ઉત્પન્ન થતા નથી. તે પ્રકારે નારકી જીવ પણ નરકથી નીકળી બીજા ભવમાં દેવ ગતિ અગર નરક ગતિમાં ઉત્પન્ન થતાં નથી. મનુષ્ય અને તિર્યંચ તો મરીને બીજા ભવમાં મનુષ્ય તિર્યંચ દેવ અને નરકગતિમા જન્મ લઇ શકે છે. મનુષ્યોની ગતિ મુક્તિપ્રાપ્તિની અપેક્ષાથી પાચ પ્રકારની પણ કહેવામાં આવેલ છે. આ પ્રકારે સંસારચક્રમા ઘટી-યંત્રની સમાન પરિભ્રમણરૂપ આગતિ અને ગતિ તેમજ મનુષ્યોમાં મોક્ષગતિની સંભવતાને જાણીને તેના સ્વરૂપના જ્ઞાતા અને સંસારના દુઃખોથી ભયભીત બનીને મોક્ષગતિના સુખના ગવેષી તે સાધુ, રૂપાદિ વિષયોમાં રાગ અને દ્વેષથી રહિત બનીને સર્વલોકમા કોઈનાથી પણ તલવાર આદિથી હાથ પગ આદિમાં કદિપણ છેદવામાં આવતા નથી. તેમજ કણ્ટક સૂચી શૂલાદિથી ભેદવામાં આવતા નથી. તેમજ નથી અગ્નિથી બાળવામાં આવતા, તેમજ નથી કોરડા આદિથી મારવામાં

न्यादिना वा। अयं भावः-तिर्यग्मनुष्यादीनामागतिगतिपरिज्ञानेन रागद्वेष-निवृत्तिः, तयोरभावाच्च छेदनादिना संसारदुःखानि न भवन्तीति ॥ सू० ६ ॥

होता है। 'अन्त' शब्दका अर्थ राग द्वेष है, क्यों कि ये दोनों "अन्त-कारित्वात्" अपनी सत्तामें जीवकी मुक्तिका अन्त-निरोध-करनेवाले होते हैं, इन दोनोंके सद्भाव में जीवको सच्चे स्वरूप-मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती है। इसका भावार्थ यह है—तिर्यञ्च अथवा मनुष्यादिकोंकी गति और आगतिके परिज्ञानसे साधुको अच्छे एवं बुरे रूपादिकोंमें राग द्वेष न हो कर प्रत्युत उनमें मध्यस्थता ही उसे रहती है। रागद्वेषकी निवृत्ति से, छेदनभेदनादिद्वारा सांसारिक दुःखोंका जो उसे अनुभव होता था वह फिर नहीं होता। क्यों कि दुःखोंका अनुभव करानेवाली जो राग-परिणति थी वह उसकी दूर हो चुकी है। दूसरा इसका भाव यह भी हो सकता है कि जब मुनिकी आत्मासे राग द्वेषका अभाव हो जाता है तो उसकी आत्मा अत्यन्त निर्मल एवं विशिष्ट प्रभावशाली हो जाती है। इस अवस्थामें कोई भी ऐसी शक्ति नहीं है जो उसे छेदन भेदन एवं ताडनादिजन्य दुःख पहुंचा सके। 'न हन्यते नरकगत्यानुपूर्व्यादिना वा' इस टीकाका भाव यह है कि-सर्वसंयमीके लिये नरकगति एवं तिर्यञ्च गतिका बन्ध नहीं होता है इस लिये उसकी आनुपूर्वीका भी उसे उदय नहीं होता है॥ सू० ६॥

આવતાં. અને નહિ તેને નરકગત્યાનુપૂર્વી આદિનો ઉદય થાય છે. 'અન્ત' શબ્દનો અર્થ રાગ દ્વેષ છે કારણ કે એ બન્ને "अन्तकारित्वात्" પોતાની સત્તામાં જીવની મુક્તિનો અંત કરવાવાળા હોય છે. એ બન્નેના સદ્ભાવમાં જીવને સચ્ચા સ્વરૂપ-મોક્ષ-ની પ્રાપ્તિ થતી નથી. તેનો ભાવાર્થ એ છે કે તિર્યંચ અથવા મનુ-ષ્યાદિકોની ગતિ અને આગતિના પરિજ્ઞાનથી સાધુને સારા તેમજ ખરાબ રૂપા-દિકોમાં રાગ દ્વેષ ન થઈને પ્રત્યુત તેમાં મધ્યસ્થતા જ તેને રહે છે. રાગદ્વેષની નિવૃત્તિથી, છેદન-ભેદનાદિ દ્વારા સાંસારિક દુઃખોનો જે તેને અનુભવ થતો હતો તે પછી થતો નથી. કારણ કે દુઃખોનો અનુભવ કરાવનારી જે રાગપરિણતિ હતી તે તેની દૂર થઇ ચૂકેલ છે. બીજું તેનો ભાવ એ પણ થઈ શકે છે કે જ્યારે મુનિના આત્માથી રાગ દ્વેષનો અભાવ થઇ જાય છે તો તેની આત્મા અત્યન્ત નિર્મળ અને વિશિષ્ટ પ્રભાવશાળી બની જાય છે. આ અવસ્થામાં એવી કોઇ પણ શક્તિ નથી કે જે તેને છેદન-ભેદન તેમજ માર મારવો આદિ દુઃખ પહોંચાડી શકે. 'न हन्यते नरकगत्यानुपूर्व्यादिना वा' આ ટીકાનો ભાવ એ છે કે સકલસંયમી માટે નરકગતિ અને તિર્યંચગતિનો બંધ થતો નથી તેથી તેને તેની આનુપૂર્વીનો પણ ઉદય થતો નથી॥ સૂ૦ ૬॥

मिथ्यादृष्टीनामागतिगतिज्ञानाभाव इत्याह-' अवरेण ' इत्यादि।

मूलम्—अवरेण पुव्वे न सरंति एगे किमस्स तीयं ? किं वाऽऽगमिस्सं ? भासंति एगे इह माणवा उ जमस्स तीयं तं आगमिस्सं ॥ सू० ७ ॥

छाया-अपरेण पूर्वं न स्मरन्ति एके किमस्य अतीतं ? किं वा आगमिष्यत् ? भाषन्ते एके इह मानवास्तु यदस्य अतीतं तद् आगमिष्यत् ॥ सू० ७ ॥

एके=अन्ये मिथ्यादृष्टयः, अपरेण=पश्चात्कालभाविना सह, पूर्वं=पूर्वकालिकं न स्मरन्ति, यथा-अस्य जीवस्य किम्=अनेन जीवेन कीदृशं दुःखं सुखं वाऽनुभूत?-मिति न स्मरन्ति। तथा-किं वा आगमिष्यत्=भविष्यत्कालिके नरकादिभवे कीदृशं दुःखं सुखं वाऽस्य जीवस्य भावीति न स्मरन्ति। यदि पुनरस्य जीवस्यातीतानागतगतिचिन्तनं कुर्यात्तर्हि वैराग्यं सुतरामुद्भवेत्। उक्तञ्च—

मिथ्यादृष्टियोंको जीवोंकी गति और आगतिका ज्ञान नहीं होता है, इस बातको कहते हैं-' अवरेण ' इत्यादि।

मिथ्यादृष्टि जीवोंके भविष्यत् कालमें होनेवाली अवस्थाओंके साथ पूर्वकालिक अवस्थाओंकी तथा भविष्यत्कालमें होनेवाली सुखदुःखादिकों के साथ पूर्वकालिक सुखदुःखादिकोंकी स्मृति नहीं होती है। जैसे इस जीवका समय पूर्व में कैसे२ सुखदुःखादिकोंसे बीता है ? अर्थात् नरक आदि पर्यायोंमें इस जीवने किस२ प्रकारके दुःख अथवा सुख भोगे हैं? एवं आगामी कालमें नरकादिक पर्यायोंमें यह जीव किस२ प्रकारके दुःख अथवा सुख भोगेगा ? इसका उन्हें स्मरण तक नहीं होता। यदि इस जीवकी अतीत एवं अनागत काल सम्बन्धी गतिका वार-वार विचार किया जाय तो जीवको वैराग्य स्वतः उत्पन्न हो जावे। कहा भी है—

મિથ્યાદૃષ્ટિઓને જીવોની ગતિ અને આગતિનું જ્ઞાન થતું નથી. એ વાતને કહે છે-' अवरेण ' ઇત્યાદિ

મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવોના ભવિષ્યકાળમા બનવાવાળી અવસ્થાઓની સાથે પૂર્વકાલિક અવસ્થાઓની તથા ભવિષ્યકાળમાં થવાવાળા સુખદુઃખાદિકોની સાથે પૂર્વકાલિક સુખદુ.ખાદિકોની સ્મૃતિ થતી નથી. આ જીવનો સમય પૂર્વમાં કેવા કેવા પ્રકારે સુખદુઃખોમા વીત્યો છે ? અર્થાત્ નરક આદિ પર્યાયોમાં આ જીવે કયા કયા પ્રકારના દુ.ખ અથવા સુખ ભોગવ્યા છે? તેમજ આગામી કાળમાં નરકાદિ પર્યાયોમાં આ જીવ કેવા કેવા પ્રકારના દુઃખ અથવા સુખ ભોગવશે ? તેનું તેને સ્મરણ સુદ્ધાં હોતું નથી. કદાચ આ જીવની અતીત તેમજ અનાગત કાળ સંબંધી ગતિનો વાર વાર વિચાર કરવામાં આવે તો જીવને વૈરાગ્ય સ્વતઃ ઉત્પન્ન થઈ જાય. કહ્યુ છે—

" केण ममेत्थुप्पत्ती ?, कहं इओ तह पुणोऽवि गंतव्वं ।
जो एत्तियंपि चिंतइ, इत्थं सो को न निव्विण्णो " ॥ १ ॥ इति ।

इह=अस्मिन् मनुष्यलोके, एके पुनर्महामिथ्यादृष्टयो मानवाः=मनुष्याः भाषन्ते=कर्मविपाकज्ञानाभावादेवं वदन्ति–अस्य जीवस्य यद् अतीतं=ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्य–शूद्र–गवा–ऽश्व–भवादि, तत्संस्कारवशात्तदेव पुनरन्यस्मिन् भवेऽपि आगमिष्यत्=भावीति ॥ सू० ७॥

ये तु संसारसिन्धुमुत्तीर्णास्ते पूर्वापरगतिवेदिनः सर्वज्ञा नैवं वदन्ति । तस्मात् कर्मक्षपणार्थं संयमः सेवनीय इत्याह–'नाईय'० इत्यादि ।

मूलम्–नाईयमट्ठं न य आगमिस्सं, अट्ठं नियच्छंति तहागया उ । विहूयकप्पे एयाणुपस्सी, निज्झोसइत्ता खवए महेसी ॥ सू० ८ ॥

" केण ममेत्थुप्पत्ती ? कहं इओ तह पुणोऽवि गंतव्वं ? ।
जो एत्तियं पि चिंतइ, इत्थं सो को ण णिव्विण्णो ॥१॥ " इति।

अर्थात् किस कारणसे मेरी इस पर्याय में उत्पत्ति हुई है ? क्या मुझे यहांसे फिर अब दूसरी पर्यायमें जाना पडेगा ? । जो इतना भी विचार करे तो कौनसा ऐसा जीव है जिसे वैराग्य जाग्रत न हो जाय ॥

इस संसारमें ऐसे भी महामिथ्यादृष्टि जीव हैं जो कर्मोंके विपाकके ज्ञानसे शून्य हो कर ऐसा कहते हैं कि–इस जीवका जो भव, चाहे वह ब्राह्मण सम्बन्धी हो, चाहे क्षत्रिय सम्बन्धी हो, चाहे वैश्य, शूद्र, गो और अश्व–घोडा–सम्बन्धी हो; व्यतीत हो चुका है, वही भव उन२ भवोंके संस्कारके वशसे आगामी कालमें फिरसे इसे प्राप्त होगा ॥७॥

" केण ममेत्थुप्पत्ती, कहं इओ तह पुणोऽवि गंतव्वं ? ।
जो एत्तियंपि चिंतइ, इत्थं सो को ण णिव्विण्णो " ॥ १ ॥ ઇતિ ।

અર્થાત્ કયા કારણથી મારી આ પર્યાયમાં ઉત્પત્તિ થઈ છે ? શું મને અહીંયાથી ફરીથી હવે બીજી પર્યાયમાં જવું પડશે ?. જો એટલો પણ વિચાર કરે તો કયો એવો જીવ છે જેને વૈરાગ્ય જાગૃત ન થાય ?

આ સંસારમાં એવા પણ મહામિથ્યાદષ્ટિ જીવ છે જે કર્મના વિપાકના જ્ઞાનથી શૂન્ય બનીને એવું કહે છે કે–આ જીવનો જે ભવ ભલે તે બ્રાહ્મણ સંબંધી હોય, ભલે ક્ષત્રિય સંબંધી હોય, ભલે વૈશ્ય, શૂદ્ર, ગાય અને અશ્વ–ઘોડા સંબંધી હોય–વ્યતીત થઈ ગયેલ છે તે જ ભવ તે તે ભવોના સંસ્કારના વશથી આગામી કાળમાં ફરીથી તેને પ્રાપ્ત થશે. ॥ સૂ૦ ૭ ॥

छाया—नातीतमर्थं न च आगमिष्यन्तम् अर्थं नियच्छन्ति तथागतास्तु। विधूतकल्प एतदनुदर्शी निर्जुष्य क्षपयेत् महर्षिः ॥ सू० ८ ॥

टीका–तथागताः=यथा तीर्थङ्करेण भाषितं तथैव गतं–ज्ञानं येषां ते तथागतास्तत्त्वज्ञानिनस्तु–अतीतमर्थं न नियच्छन्ति=चेतसि नानयन्ति, आगमिष्यन्तमर्थमपि न नियच्छन्ति। किं तु कर्मपरिणामवैचित्र्यात् कर्मानुसारि सुखं दुःखं वा प्राणिनां भवतीत्येवं निर्णयन्ति। तस्मात्–एतनुदर्शी=वर्तमानार्थानुदर्शी वर्तमानभवसंप्राप्तश्रुतचारित्रधर्माराधनपर इत्यर्थः, अतीतानागतस्वर्गादिसुखानभिचिन्तक इति यावत्, तथाचोक्तम्–

जो संसारसागरसे पार हो चुके हैं वे जीवोंकी पूर्वापर–गतिके ज्ञाता सर्वज्ञ भगवान् ऐसा नहीं कहते हैं, इसलिये कर्मोंको नाश करने के लिये संयमकी आराधना करनी चाहिये, इस बातको कहते हैं— 'नाईयमट्ठं' इत्यादि।

जैसा तीर्थङ्कर प्रभुने कहा है उसीके अनुसार जिनका ज्ञान है वे तथागत–तत्त्वज्ञानी अतीत अर्थ–अवस्था–को चित्तमें नहीं लाते हैं और न आगामी अर्थ को ही चित्तमें लाते हैं, किंतु 'प्राणियोंके सुख अथवा दुःख कर्मोंके अनुसार होते हैं' ऐसा ही वे निर्णय करते हैं। इसलिये वर्त्तमान भवमें प्राप्त श्रुतचारित्ररूप धर्मकी आराधनामें तत्पर–अर्थात् अतीत और अनागत काल सम्बन्धी स्वर्ग आदिके सुखोंका चिंतवन नहीं करनेवाला तथा विशुद्ध आचारवाला, अथवा अतीत एवं अनागतके संकल्पको दूर करनेवाला महामुनि निरतिचार संयमका आराधना करके पूर्वोपार्जित कर्मों का नाश करे। ज्ञानी का स्वरूप इस प्रकार कहा है—

જે સંસારસાગરથી પાર થઇ ચુકેલ છે તે જીવોની પૂર્વાપર ગતિના જ્ઞાતા સર્વજ્ઞ ભગવાન એવું કહેતા નથી. માટે કર્મોનો નાશ કરવા માટે સંયમની આરાધના કરવી જોઈએ. એ વાતને કહે છે–'नाईयमट्ठं' ઈત્યાદિ.

જેવું તીર્થંકર પ્રભુએ કહ્યું છે તેના અનુસાર જેનું જ્ઞાન છે તે તથાગત–તત્ત્વજ્ઞાની અતીત અર્થ–અવસ્થા–ને ચિત્તમાં લાવતા નથી. ન આગામી અર્થને ચિત્તમાં લાવે છે. પણ 'પ્રાણિયોના સુખ અથવા દુઃખ કર્મોના અનુસાર બને છે' એવો જ તે નિર્ણય કરે છે. માટે વર્તમાન ભવમાં પ્રાપ્ત જે શ્રુત ચારિત્રરૂપ ધર્મની આરાધનામાં તત્પર અર્થાત્ અતીત અને અનાગત કાળ સંબંધી સ્વર્ગ આદિના સુખોનું ચિંતવન નહિ કરવાવાળા, તથા વિશુદ્ધ આચારવાળા, અથવા અતીત અને અનાગતના સંકલ્પને દૂર કરવાવાળા મહામુનિ નિરતિચાર સંયમની આરાધના કરીને પૂર્વોપાર્જીત કર્મોનો નાશ કરે. જ્ઞાનીનું સ્વરૂપ આ પ્રકારે કહ્યુ છે—

"गतं शोचति यो नैव, भविष्यन्नैव वाञ्छति ।
वर्तते वर्तमाने यः, सैव ज्ञानी निगद्यते" ॥ १ ॥ इति ।

विधूतकल्पः=विधूतो=विशुद्धः कल्पः=आचारो यस्य सः, यद्वा-विधूतः=अपनीतः कल्पः=अतीतानागतसंकल्पो येन सः, महर्षिः=महामुनिः, निर्जुष्य=संयमं निरतिचारं समाराध्य, क्षपयेत्=पूर्वोपार्जितकर्माणि नाशयेत् ॥ सू० ८ ॥

कर्मक्षपणार्थं समुद्यतस्य महर्षेर्धर्मध्यानतः शुक्लध्यानतो वा यत् फलं भवति तदाह—'का अरई' इत्यादि ।

"गतं शोचति यो नैव, भविष्यन्नैव वाञ्छति ।
वर्त्तते वर्त्तमाने यः, सैव ज्ञानी निगद्यते ॥ १ ॥"

अर्थात्—'गई बात सोचे नहीं, आगम चिंते नांहि ।
वर्तमान वरते सही, सो ज्ञानी घटमांहि ॥'

जो बीती हुई बातों पर ध्यान नहीं देता, भविष्यकी बातोंकी चाहना नहीं करता, किन्तु वर्त्तमान अवस्था पर ही संभल कर रहता है, वही ज्ञानी कहलाता है ॥

इस श्लोकसे टीकाकार इस बातकी पुष्टि कर रहे हैं कि तत्त्वज्ञानी भूत भविष्यत् कालके सांसारिक सुखोंकी स्मृति एवं इच्छा न कर वर्त्तमान कालमें श्रुतचारित्ररूप धर्मकी आराधना करनेरूप अपनी अवस्थामें ही तत्पर रहता है ॥ सू० ८ ॥

कर्मों को नाश करनेमें कटिबद्ध महर्षि को धर्मध्यान या शुक्लध्यान से जो फल होता है उसको बतलाते हैं-'का अरई' इत्यादि ।

"गतं शोचति यो नैव, भविष्यन्नैव वाञ्छति ।
वर्त्तते वर्तमाने यः, सैव ज्ञानी निगद्यते ॥ १ ॥"

એટલે—'गई बात सोचे नहीं, आगम चिंते नाहिं ।
वर्तमान वरते सही, सो ज्ञानी घटमाहि ॥

જે વીતી ગએલી વાતો ઉપર ધ્યાન નથી દેતા, ભવિષ્યની વાતોની ચાહના નથી કરતા, પણ વર્તમાન અવસ્થા ઉપર જ સંભાળીને રહે છે તે જ જ્ઞાની કહેવાય છે.

આ શ્લોકથી ટીકાકાર આ વાતની પુષ્ટિ કરે છે કે તત્ત્વજ્ઞાની ભૂત ભવિષ્ય કાળના સાંસારિક સુખોની સ્મૃતિ તેમ જ ઈચ્છા ન કરી વર્તમાનકાળમાં શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મની આરાધના કરવારૂપ પોતાની અવસ્થામાં જ તત્પર રહે છે. ॥સૂ૦૮॥

કર્મોનો નાશ કરવામાં કટિબદ્ધ મહર્ષિના ધર્મધ્યાન યા શુક્લધ્યાનથી જે ફળ થાય છે તે કહે છે-'का अरई' ઈત્યાદિ.

मूलम्—का अरई ? के आणंदे ?, इत्थं पि अग्गहे चरे ।
सव्वं हासं परिच्चज्ज, आलीणगुत्तो परिव्वए ॥सू०९॥

छाया—का अरतिः ? क आनन्दः ? अत्रापि अग्रहश्चरेत् ।
सर्वं हास्यं परित्यज्य आलीनगुप्तः परिव्रजेत् ॥ सू० ९ ॥

टीका—ईप्सितस्याप्राप्त्या विनाशेन वा, तथा–अनिष्टप्राप्त्या वा यन्मनोदुःखं सा अरतिः, अभिलषितार्थस्य प्राप्तौ सत्यां यो हर्षः सुखं वा स आनन्दः, एतद्द्वयं धर्मशुक्लध्यानलग्नचित्तस्य महर्षेर्न भवति, तत्कारणाभावात् । इममेवार्थं कथयति–का अरतिः क आनन्द इति । महर्षेः का अरतिः ? क आनन्दः ? । मिथ्यादृष्टेरिवारतिरानन्दश्च महर्षेर्धर्मशुक्लध्यानावेशान्न समुद्भवत इति भावः । अत्रापि=अरतावानन्दे च, अग्रहः=अविचलितः सन् चरेत्=ध्यानमार्गे विहरेत् ।

इच्छित पदार्थकी अप्राप्ति से, अथवा उसके विनाशसे या अनिष्ट पदार्थके समागमसे जो मानसिक दुःख होता है उसका नाम अरति है। इष्ट पदार्थकी प्राप्ति होने पर जो हर्ष या सुख होता है उसका नाम आनन्द है । ये दोनों धर्मध्यान या शुक्लध्यानमें लवलीन चित्तवाले महर्षिके नहीं होते हैं, क्यों कि अरति और आनन्दके कारणोंका वहां अभाव हो चुका है। महर्षिके लिये, क्या अरति ? क्या आनन्द ?, दोनों सम हैं । मिथ्यादृष्टिको जिस प्रकार अरति और आनन्द होते हैं उस प्रकार महर्षिके वे दोनों धर्मध्यान और शुक्लध्यानके प्रभावसे नहीं होते हैं । इसलिये अरति और आनन्दमें चञ्चलचित्त न बन कर महर्षिको अपने ध्यानके मार्गमें लवलीन रहना चाहिये ।

ઇચ્છિત પદાર્થની અપ્રાપ્તિથી અથવા તેના વિનાશથી અગર અનિષ્ટ પદાર્થના સમાગમથી જે માનસિક દુ:ખ થાય છે તેનું નામ અરતિ છે. ઇષ્ટ પદાર્થની પ્રાપ્તિ થવાથી જે હર્ષ અથવાં સુખ થાય છે તેનું નામ આનંદ છે. એ બન્ને ધર્મધ્યાન અગર શુકલ ધ્યાનના લવલીન ચિત્તવાળા મહર્ષિને થતાં નથી. કારણ કે અરતિ અને આનંદના કારણોનો ત્યા અભાવ થઇ ચુકેલ છે મહર્ષિ માટે શું અરતિ કે શું આનંદ ? બન્ને સરખાં છે. મિથ્યાદૃષ્ટિને જેવી રીતે અરતિ અને આનંદ થાય છે, તે પ્રકારે મહર્ષિને તે બન્ને ધર્મધ્યાન અને શુક્લધ્યાનના પ્રભાવથી થતા નથી માટે અરતિ અને આનંદમાં ચંચળચિત્ત ન બનીને મહર્ષિએ પોતાના ધ્યાનના માર્ગમાં લવલીન રહેવું જોઇએ.

यद्वा-संयमाराधनपरायणस्य महर्षेः का अरतिः ? क आनन्दः ?। अयंभावः संयमाराधनतत्परस्य कुतश्चित् कारणात् प्रतिकूलपरीषहोपसर्गोपस्थितौ अरतिर्न भवति। स हि तदानीमेवं चिन्तयति-अनेनात्मना पूर्वभवेषु नरकनिगोदादौ क्षुत्पिपासादिजनितं वधबन्धनादिजनितं च यद् घोरतरं दुःखमनन्तवारं प्राप्तं तत्पुरतः किमेभिरल्पदुःखजनकैः परीषहोपसर्गैरिति। तथा-ऋद्धि-रस-शाताद्युपस्थितौ हर्षः सुखं वा नोत्पद्यते।

स हि तदानीमेवं विभावयति-अनेनात्मना पूर्वं देवभवेषु नरलोकदुर्लभं नानाविधऋद्ध्यादिसुखमनन्तशोऽनुभूतं, तस्य समुद्रसदृशस्य दिव्यसुखस्य पुरतः

अथवा-संयमकी आराधना करनेमें दत्तावधान महर्षिको अरति और आनन्दसे कोई प्रयोजन नहीं है।

तात्पर्य यह है-संयमकी आराधना करनेमें तत्पर महर्षिके जब किसी कारणसे प्रतिकूल परीषह और उपसर्गकी उपस्थिति होती है उस समय उसे उससे अरति नहीं होती है, किन्तु उसे उस समय यही विचार आता है कि इस आत्माने पूर्वभवमें नरकनिगोदादि गतियोंमें क्षुधा-तृषा-आदि-जनित एवं वध और बन्धन आदिसे उत्पन्न हुए जो घोरतर दुःख अनन्त वार पाये हैं उनके आगे अल्पदुःखजनक ये परीषह और उपसर्ग क्या चीज हैं ? तथा ऋद्धि, रस, शाता आदिकी उपस्थिति होने पर भी उसे हर्ष या सुख नहीं होता है, क्योंकि उस समय भी वह यही विचार करता है कि इस आत्माने पूर्व-देवभवोंमें, मनुष्यलोकमें दुर्लभ ऐसे अनेक प्रकारके ऋद्धि-आदिजन्य सुखोंको अनन्त वार भोगा है तो समु-

---

અથવા સંયમની આરાધના કરવામાં દત્તાવધાન મહર્ષિને અરતિ અને આનંદથી કોઇ પ્રયોજન જ નથી.

તાત્પર્ય એ છે કે—સંયમની આરાધના કરવામાં તત્પર મહર્ષિને જ્યારે કોઇ કારણથી પ્રતિકૂળ પરીષહ અને ઉપસર્ગની ઉપસ્થિતિ થાય છે તે વખત તેને તેનાથી અરતિ થતી નથી. પણ તેને તે વખત તેવો વિચાર આવે છે કે આ આત્માએ પૂર્વભવમાં નરક નિગોદાદિ ગતિયોમાં ક્ષુધા તૃષા આદિ જનિત તેમજ વધ અને બંધન આદિથી ઉત્પન્ન થયેલ જે ઘોરતર દુખ અનન્ત વાર ભોગવેલ છે તેની અપેક્ષા અલ્પ દુઃખજનક આ પરિષહ અને ઉપસર્ગ કઈ ચીજ છે? તથા ઋદ્ધિ રસ, શાતા આદિની ઉપસ્થિતિ હોવા છતાં પણ તેને હર્ષ અગર સુખ થતું નથી. કારણ કે તે સમય પણ તે એજ વિચાર કરે છે કે આ આત્માએ પૂર્વ દેવભવોમાં, મનુષ્યલોકમાં દુર્લભ એવા અનેક પ્રકારના ઋદ્ધિ આદિ જન્ય સુખોને

मूलम्—का अरई ? के आणंदे ?, इत्थं पि अग्गहे चरे ।
सव्वं हासं परिच्चज्ज, आलीणगुत्तो परिव्वए ॥सू० ९॥

छाया—का अरतिः ? क आनन्दः ? अत्रापि अग्रहश्चरेत् ।
सर्वं हास्यं परित्यज्य आलीनगुप्तः परिव्रजेत् ॥ सू० ९ ॥

टीका—ईप्सितस्याप्राप्त्या विनाशेन वा, तथा-अनिष्टप्राप्त्या वा यन्मनोदुःखं सा अरतिः, अभिलषितार्थस्य प्राप्तौ सत्यां यो हर्षः सुखं वा स आनन्दः, एतद्द्वयं धर्मशुक्लध्यानलग्नचित्तस्य महर्षेर्न भवति, तत्कारणाभावात् । इममेवार्थं कथयति-का अरतिः क आनन्द इति । महर्षेः का अरतिः ? क आनन्दः ? । मिथ्यादृष्टेरिवारतिरानन्दश्च महर्षेर्धर्मशुक्लध्यानावेशान्न समुद्भवत इति भावः । अत्रापि=अरतावानन्दे च, अग्रहः=अविचलितः सन् चरेत्=ध्यानमार्गे विहरेत् ।

इच्छित पदार्थकी अप्राप्ति से, अथवा उसके विनाशसे या अनिष्ट पदार्थके समागमसे जो मानसिक दुःख होता है उसका नाम अरति है। इष्ट पदार्थकी प्राप्ति होने पर जो हर्ष या सुख होता है उसका नाम आनन्द है। ये दोनों धर्मध्यान या शुक्लध्यानमें लवलीन चित्तवाले महर्षिके नहीं होते हैं, क्यों कि अरति और आनन्दके कारणोंका वहां अभाव हो चुका है। महर्षिके लिये, क्या अरति? क्या आनन्द?, दोनों सम हैं। मिथ्यादृष्टिको जिस प्रकार अरति और आनन्द होते हैं उस प्रकार महर्षिके वे दोनों धर्मध्यान और शुक्लध्यानके प्रभावसे नहीं होते हैं। इसलिये अरति और आनन्दमें चञ्चलचित्त न बन कर महर्षिको अपने ध्यानके मार्गमें लवलीन रहना चाहिये।

ઇચ્છિત પદાર્થની અપ્રાપ્તિથી અથવા તેના વિનાશથી અગર અનિષ્ટ પદાર્થના સમાગમથી જે માનસિક દુ:ખ થાય છે તેનું નામ અરતિ છે. ઇષ્ટ પદાર્થની પ્રાપ્તિ થવાથી જે હર્ષ અથવા સુખ થાય છે તેનું નામ આનંદ છે. એ બન્ને ધર્મધ્યાન અગર શુક્લ ધ્યાનના લવલીન ચિત્તવાળા મહર્ષિને થતાં નથી. કારણ કે અરતિ અને આનંદના કારણોનો ત્યાં અભાવ થઇ ચુકેલ છે મહર્ષિ માટે શું અરતિ કે શુ આનંદ ? બન્ને સરખાં છે. મિથ્યાદષ્ટિને જેવી રીતે અરતિ અને આનંદ થાય છે, તે પ્રકારે મહર્ષિને તે બન્ને ધર્મધ્યાન અને શુક્લધ્યાનના પ્રભાવથી થતા નથી માટે અરતિ અને આનંદમાં ચંચળચિત્ત ન બનીને મહર્ષિએ પોતાના ધ્યાનના માર્ગમાં લવલીન રહેવું જોઇએ.

यद्वा-संयमाराधनपरायणस्य महर्षेः का अरतिः ? क आनन्दः ? । अयंभावः-संयमाराधनतत्परस्य कुतश्चित् कारणात् प्रतिकूलपरीषहोपसर्गोपस्थितौ अरतिर्न भवति । स हि तदानीमेवं चिन्तयति-अनेनात्मना पूर्वभवेषु नरकनिगोदादौ क्षुत्पिपासादिजनितं वधबन्धनादिजनितं च यद् घोरतरं दुःखमनन्तवारं प्राप्तं तत्पुरतः किमेभिरल्पदुःखजनकैः परीषहोपसर्गैरिति । तथा-ऋद्धि-रस-शाताद्युपस्थितौ हर्षः सुखं वा नोत्पद्यते ।

स हि तदानीमेवं विभावयति-अनेनात्मना पूर्वं देवभवेषु नरलोकदुर्लभं नानाविधऋद्ध्यादिसुखमनन्तशोऽनुभूतं, तस्य समुद्रसदृशस्य दिव्यसुखस्य पुरतः

अथवा-संयमकी आराधना करनेमें दत्तावधान महर्षिको अरति और आनन्दसे कोई प्रयोजन नहीं है ।

तात्पर्य यह है-संयमकी आराधना करनेमें तत्पर महर्षिके जब किसी कारणसे प्रतिकूल परीषह और उपसर्गकी उपस्थिति होती है उस समय उसे उससे अरति नहीं होती है, किन्तु उसे उस समय यही विचार आता है कि इस आत्माने पूर्वभवमें नरकनिगोदादि गतियोंमें क्षुधा-तृषा-आदि-जनित एवं वध और बन्धन आदिसे उत्पन्न हुए जो घोरतर दुःख अनन्त वार पाये हैं उनके आगे अल्पदुःखजनक ये परीषह और उपसर्ग क्या चीज हैं ? तथा ऋद्धि, रस, शाता आदिकी उपस्थिति होने पर भी उसे हर्ष या सुख नहीं होता है, क्यों कि उस समय भी वह यही विचार करता है कि इस आत्माने पूर्व-देवभवोंमें, मनुष्यलोकमें दुर्लभ ऐसे अनेक प्रकारके ऋद्धि-आदिजन्य सुखोंको अनन्त वार भोगा है तो समुद्र

અથવા સંયમની આરાધના કરવામાં દત્તાવધાન મહર્ષિને અરતિ અને આનંદથી કોઇ પ્રયોજન જ નથી.

તાત્પર્ય એ છે કે—સંયમની આરાધના કરવામાં તત્પર મહર્ષિને જ્યારે કોઇ કારણથી પ્રતિકૂળ પરીષહ અને ઉપસર્ગની ઉપસ્થિતિ થાય છે તે વખત તેને તેનાથી અરતિ થતી નથી. પણ તેને તે વખત તેવો વિચાર આવે છે કે આ આત્માએ પૂર્વભવમાં નરક નિગોદાદિ ગતિયોમા ક્ષુધા તૃષા આદિ જનિત તેમજ વધ અને બંધન આદિથી ઉત્પન્ન થયેલ જે ઘોરતર દુઃખ અનન્ત વાર ભોગવેલ છે તેની અપેક્ષા અલ્પ દુઃખજનક આ પરિષહ અને ઉપસર્ગ કઇ ચીજ છે ? તથા ઋદ્ધિ રસ, શાતા આદિની ઉપસ્થિતિ હોવા છતાં પણ તેને હર્ષ અગર સુખ થતું નથી. કારણ કે તે સમય પણ તે એજ વિચાર કરે છે કે આ આત્માએ પૂર્વ દેવભવોમાં, મનુષ્યલોકમાં દુર્લભ એવા અનેક પ્રકારના ઋદ્ધિ આદિ જન્ય સુખોને

किमनेन बिन्दुतुल्येन ऋद्ध्यादिसुखेन? इति। उक्तञ्च—

"न तृप्तोऽसि यदा कामैः, सेवितैरप्यनेकशः।
स नाम तेषु वृत्तोऽन्तो, यतो वैराग्यमाप्नुहि" ॥ १ ॥ इति।

तस्मात्-अत्रापि=अस्मिन् अरत्यानन्दकारणेऽपि अग्रहः=तदनपेक्षमाणः-मध्यस्थभावमुपगतः सन् चरेत्=संयममार्गे विहरेत्।

तथा-सर्वं=समस्तं हास्यं=हासं, तत्स्थानं वा परित्यज्य, आलीनगुप्तः-तत्र-आलीनः-आङ्=मर्यादया-इन्द्रियनिरोधादिरूपया लीनः, गुप्तः-मनोवाक्कायकर्मभिः, यद्वा-गुप्तः=कूर्मवत्संवृतगात्रः, आलीनश्चासौ गुप्तश्चेत्यालीनगुप्तः, एवंभूतः सन्

के तुल्य उस सुखके सामने बिन्दुतुल्य इस ऋद्धि रस आदिके सुखकी क्या गिनती है। कहा भी है—

"न तृप्तोऽसि यदा कामैः, सेवितैरप्यनेकशः।
स नाम तेषु वृत्तोऽन्तो, यतो वैराग्यमाप्नुहि ॥ १॥"

हे आत्मन्! जब तूं अनन्तवार सेवन किये गये इन कामोंसे तृप्त नहीं हुआ; उल्टा इनके भोगने से तेरा ही अन्त हुआ तो फिर इन के भोगने से तुझे क्या लाभ है? अतः अब इन से वैराग्य ही लेना सर्वश्रेयस्कर है।

इसलिये उस संयमी को चाहिये कि वह अरति और आनन्द के कारणों में भी अग्रह-अनपेक्षावाला बन कर अर्थात् माध्यस्थ्यभाव रखता हुआ संयममार्ग में विचरे।

तथा—समस्त हास्य अथवा हास्यके स्थानभूत-जिनकी तीर्थङ्करादिकोंने निन्दा की है ऐसे-विषयकषायोंका परित्याग कर इन्द्रियनिग्रही एवं मन, वचन और कायसे सदा सावद्यक्रियासे रहित होते हुए अथवा

અનંતવાર ભોગવેલ છે તો સમુદ્રના તુલ્ય તે સુખની સામે બિંદુ તુલ્ય આ ઋદ્ધિ આદિના સુખની શું ગણના છે. કહ્યું પણ છે:—

"न तृप्तोऽसि यदा कामैः, सेवितैरप्यनेकशः।
स नाम तेषु वृत्तोऽन्तो, यतो वैराग्यमाप्नुहि ॥ १॥"

હે આત્મા! જ્યારે અનંત વાર સેવી ચુકેલા તે કામોથી જ્યારે તું તૃપ્ત ન થયો, ઉલ્ટું તેના ભોગવવાથી તારોએ અંત થયો, તો પછી તેના ભોગવવાથી તને શું લાભ છે? માટે તે વસ્તુથી વૈરાગ્ય જ લેવો સર્વ શ્રેયસ્કર છે.

તેથી તે સંયમીને જોઈએ કે તે અરતિ અને આનંદના કારણોમાં પણ અગ્રહ-અનપેક્ષાવાળા બની અર્થાત્ માધ્યસ્થ્ય ભાવ રાખીને સંયમ માર્ગમાં વિચરે.

તથા-સમસ્ત હાસ્ય અથવા હાસ્યના સ્થાનભૂત કે જેની તીર્થંકરોએ નિંદા કરેલ છે, એવા વિષયકષાયોનો પરિત્યાગ કરી ઇન્દ્રિયનિગ્રહી તેમજ મન, વચન

परिव्रजेत्-परि=समन्ताद् व्रजेत्=विहरेत्-संयमानुष्ठानविधायी भवेदित्यर्थः॥सू०९॥

स्वात्मनो वीर्यगुणावलम्बनेनैव मोक्षः प्राप्यते न तु परसाहाय्याश्रयणेनेति दर्शयितुं कथयति-'पुरिसा' इत्यादि।

मूलम्-पुरिसा! तुममेव तुमं मित्तं, किं बहिया मित्तमिच्छसि ॥ सू० १० ॥

छाया—पुरुष! त्वमेव तव मित्रं, किं बहिर्मित्रमिच्छसि ॥ सू० १० ॥

टीका—हे पुरुष!=पुरुषार्थसाधनसमर्थ! शिष्य! तव मित्रं त्वमेव=आत्मनः कल्याणार्थं समुद्यतस्य-गृहीतसंयमभारस्य तव सहायस्तवात्मैवास्तीत्यर्थः। श्रुतचारित्रधर्माचरणकरणेनैकान्ततोऽत्यन्ततश्च परमसुखजनकत्वात्प्रमादरहित आत्मैवात्मनो मित्रमुपकारी परमार्थतो, न त्वन्य इति भावः। बहिः=बाह्यं स्वात्मनो व्यतिरिक्तं, मित्रं=हितकारिणं सहायं, किम्=कुतः, इच्छसि=अन्वेषयसि।

कमठ-कच्छपके समान संवृतशरीर होते हुए वे महर्षि संयमकी आराधना करनेमें सावधान रहे ॥ सू० ९ ॥

अपनी आत्माके वीर्यगुणके अवलम्बन से ही मोक्ष प्राप्त होता है किन्तु दूसरोंकी सहायताके सहारे नहीं। इस बातको दिखलाने के लिये कहते हैं-'पुरिसा' इत्यादि।

पुरुषार्थ साधन करने में समर्थ हे पुरुष=हे शिष्य! तुम ही स्वयं अपने मित्र हो-अपनी आत्माके कल्याण करने में उद्यत हो कर जो तुमने यह संयमका भार अंगीकार किया है उसमें तुम्हारी आत्मासे अतिरिक्त और दूसरा कोई सहायक नहीं है। श्रुतचारित्ररूप धर्म के आचरण करने से आत्मा अप्रमादी बनता है। प्रमाद से रहित आत्मा ही आत्माका ऐकान्तिक

અને કાયાથી સદા સાવદ્ય ક્રિયાઓથી રહિત થઇને, અથવા કમઠ-કચ્છપના સમાન સંવૃતશરીર થઇને તે મહર્ષિ સંયમની આરાધના કરવામાં સાવધાન રહે. ॥સૂ૦૯॥

પોતાના આત્માના વીર્યગુણના અવલંબનથી જ મોક્ષ પ્રાપ્ત થાય છે, પણ બીજાઓની સહાયતાના સહારાથી થતો નથી. આ વાતને બતલાવવા માટે કહે છે—'पुरिसा' ઇત્યાદિ.

પુરૂષાર્થ સાધન કરવામાં સમર્થ હે પુરૂષ=હે શિષ્ય! તમો પોતે જ તમારી જાતના મિત્ર છો. પોતાના આત્માનું કલ્યાણ કરવામાં ઉદ્યોગી બની જે તમે સંયમનો ભાર અંગીકાર કરેલ છે, તેમાં તમારી આત્માથી અતિરિક્ત બીજા કોઈ સહાયક નથી. શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મનું આચરણ કરવાથી આત્મા અપ્રમાદી

स्वात्मव्यतिरिक्तस्य संसारकार्ये साहाय्यकारिणः पुत्रकलत्रादेः संसारिणस्तथा हिरण्यसुवर्णादेश्च जन्ममरणादिबहुविधानन्तव्यसनोपनिपातसंसारसागरान्तःपतनकारित्वादमित्रं मित्रं मन्यमानः किं मोहार्णवे स्वात्मानं निपातयसि ?, परमार्थतः श्रुतचारित्रधर्मानुष्ठानात्स्वात्मैव मित्रं, तद्विरोधिसावद्यक्रियानुष्ठानादमित्रं च स्वात्मैवास्तीति भावः । उक्तञ्च—

"अप्येकं मरणं कुर्यात्, संक्रुद्धो बलवानरिः ।
मारणानि त्वनन्तानि, जन्मानि च करोत्ययम् ॥" इति ॥ सू० १० ॥

तथा आत्यन्तिक परम सुखका जनक होनेसे उत्कृष्ट बन्धु है। इसलिये जब आत्माका आत्मासे अतिरिक्त इस अवस्थामें कोई वास्तविक दृष्टि से बन्धु-सहायक है ही नहीं; तो फिर हे आत्मन्! अपने से सदा भिन्न रहे हुओंको तुम अपना सहायक मानने की चाहना क्यों करते हो ?।

तात्पर्य यह है कि-आत्मासे सदा भिन्न रहे हुए ये सांसारिक समस्त पदार्थ, वे चाहे स्त्री, पुत्र, मित्र आदि हों, चाहे हिरण्य, सुवर्ण आदि हों; तुझे सांसारिक कार्यों में ही सहायक होते हैं, पारमार्थिक कार्यों में नहीं। आत्माको इनके ममत्वसे निरन्तर ही जन्म जरा और मरणादिक अनेक प्रकारसे अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है। इन कष्टोंके स्थानभूत इस संसारसमुद्र में उसे बारंवार गोते खाने पड़ते हैं। इसलिये इन्हें अपना सहायक मानना शत्रुको सहायक मानने जैसा है। अतः हे शिष्य! यह निश्चय विश्वास रखकर अपनी संयमयात्रा का निर्वाह करो और

બને છે. પ્રમાદથી રહિત આત્મા જ આત્માનો એકાંતિક તથા આત્યન્તિક પરમ સુખનો જનક હોવાથી ઉત્કૃષ્ટ બંધુ છે માટે જ્યારે આત્માનો આત્માથી અતિરિક્ત આ અવસ્થામા કોઈ વાસ્તવિક દૃષ્ટિથી બંધુ-સહાયક છે જ નહિ, તો પછી હે આત્મન્! પોતાનાથી સદા ભિન્ન રહેલાઓને તું પોતાના સહાયક માનવાની ચાહના શા માટે કરે છે?

ભાવાર્થ—આત્માથી સદા ભિન્ન રહેલા [illegible] સમસ્ત [illegible]
સ્ત્રી પુત્ર મિત્ર આદિ હોય, ચાહે હિરણ્ય સુ[illegible] હોય. તને [illegible]
કાર્યોમાં જ સહાયક બને છે [illegible] માર્થિક કાર્યો [illegible] માને તે
નિરંતર જ જન્મ, જરા [illegible] દિક અનેક [illegible] ત દ
કરવો પડે છે. તે કષ્ટો [illegible] આ સંસાર [illegible] રંવાર
પડે છે માટે તેના પોતા [illegible] નવા તે [illegible] માન
છે. માટે હે શિષ્ય! એ [illegible] રાખીને [illegible] યાત્ર

आत्मा यस्य मित्रं स कथं ज्ञातव्यः? इति शिष्यजिज्ञासायामाह—'जं जाणिज्जा' इत्यादि।

सोचो कि इस यात्रामें मेरा सहायक मेरी आत्मा ही है, अन्य-आत्म-बाह्य-कोई भी पदार्थ नहीं। जो इनकी सहायताकी अपेक्षावाले बनोगे तो अपनी आत्माको मोहरूपी समुद्रमें डुबोनेवाले होओगे। इसलिये इनके मोहमें फंस कर आत्माको मोहरूपी समुद्रमें डालनेकी चेष्टा न करो और परमार्थसे यह समझते हुए इस यात्रामें आगे बढ़ते रहो कि श्रुत-चारित्ररूप धर्मके अनुष्ठानसे आत्माका सहायक आत्मा ही है और तद्वि-रोधी सावद्यक्रियाओंके करनेसे आत्मा ही आत्माका शत्रु है। कहा भी है—

"अप्येकमरणं कुर्यात्, संक्रुद्धो बलवानरिः।
मरणानि त्वनन्तानि, जन्मानि च करोत्ययम्॥ १॥" इति।

अर्थ-बलवान से बलवान भी शत्रु अगर क्रुद्ध हो कर मारे तो एक ही जन्ममें मारता है, परन्तु सावद्य क्रियामें प्रवृत्त आत्मा स्वयं शत्रु बन कर अनन्तवार अपने आपको मारता है और जन्म लेता है। अर्थात् आत्मा ही अपना शत्रु बन कर चतुर्गति संसारमें जन्म मरण करता रहता है, किन्तु कभी भी मोक्षको प्राप्त नहीं होता॥ १॥ सू० १०॥

કરો, અને વિચારો કે-આ યાત્રામાં મારો સહાયક મારો આત્મા જ છે. બીજું બાહ્ય કોઇ પણ પદાર્થ નહિ જો તેની સહાયતાની અપેક્ષાવાળા બનશો તો પોતાના આત્માને મોહરૂપી સમુદ્રમાં બુડાવનારા બનશો, માટે તેના મોહમાં ફસીને આત્માને મોહરૂપી સમુદ્રમાં નાંખવાની ચેષ્ટા ન કરો, અને પરમાર્થથી એ સમજીને આ યાત્રામાં આગળ વધતા રહો. શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મના અનુષ્ઠાનથી આત્માનો સહાયક આત્મા જ છે, અને તેના વિરોધી સાવદ્ય ક્રિયાઓના કરવાથી આત્મા જ આત્માનો શત્રુ છે. કહ્યું છે—

"अप्येकमरणं कुर्यात्, संक्रुद्धो बलवानरिः।
मरणानि त्वनन्तानि, जन्मानि च करोत्ययम्" ॥ १ ॥ इति।

અર્થ:—બળવાનથી બળવાન પણ શત્રુ ક્રોધી થઇને મારે તો એક જ જન્મમાં મારે છે, પરંતુ સાવદ્ય ક્રિયામાં પ્રવૃત્ત આત્મા સ્વયં શત્રુ બનીને અનંત વાર પોતે પોતાને મારે છે, અને જન્મ લે છે. અર્થાત્ આત્મા જ પોતાનો શત્રુ બનીને ચતુર્ગતિ સંસારમાં જન્મ મરણ કરતો રહે છે, કિન્તુ કદી પણ મોક્ષ પ્રાપ્ત કરતો નથી ॥ ૧ ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

मूलम्—जं जाणिज्जा उच्चालइयं, तं जाणिज्जा दूरालइयं।
जं जाणिज्जा दूरालइयं, तं जाणिज्जा उच्चालइयं॥सू० ११॥

छाया—यं जानीयात् उच्चालयिकं तं जानीयाद् दूरालयिकम्।
यं जानीयाद् दूरालयिकं तं जानीयात् उच्चालयिकम्॥ सू० ११॥

टीका—यं पुरुषम् उच्चालयिकम्–उच्चः=कर्मापनयनभावसंपन्नः, आलयः–आ=समन्तात् लीयन्ते विचारा यस्मिन् स आलयः=अन्तःकरणम्, उच्चः आलयः उच्चालयः, सोऽस्यास्तीति–उच्चालयिकस्तम् कर्मणामपनेतारं जानीयात्, तं दूरालयिकं=कठिनतरतपःसंयमाराधनप्रापणीयत्वेन दूरे आलयः दूरालयः=मोक्षस्थानं, सोऽस्यास्तीति दूरालयिकस्तं मोक्षगामिनं जानीयात्। परस्परकार्यकारणभावप्रदर्शनायोक्तमर्थं गत–प्रत्यागतरूपेण कथयति–'यं जानीयाद्दूरालयिकम्'

जिसका आत्मा ही मित्र है ऐसे पुरुषकी पहिचान कैसे होती है? इसप्रकारकी शिष्यकी जिज्ञासा होने पर सूत्रकार कहते हैं—'जं जाणिज्जा' इत्यादि।

कर्मोंका जो अपनेता है उसका नाम उच्चालयिक, तथा मोक्षगामी का नाम दूरालयिक है। अर्थात्–जो उच्चालयिक=कर्मोंका नाश करनेवाला है वह दूरालयिक=मोक्षगामी है, ऐसा समझो। कठिनतर तप और संयमकी आराधना से प्राप्त होनेवाला होने के कारण दूर जो आलय–स्थान है उसका नाम दूरालय–मोक्ष है। यह जिसके होता है वह दूरालयिक अर्थात् मोक्षगामी है। परस्परमें कार्य–कारण भावका प्रदर्शन करानेके लिये उक्त अर्थको सूत्रकार गत–प्रत्यागत (हेर–फेर) रूपसे कहते हैं—जो दूरालयिक=मोक्षगामी–अर्थात् मुक्तिके मार्गपर आरूढ है, उसको

જેનો આત્મા જ મિત્ર છે એવા પુરૂષની ઓળખાણ કેવી રીતે થાય? આ પ્રકારની શિષ્યની જીજ્ઞાસા થવાથી સૂત્રકાર કહે છે—'जं जाणिज्जा' ઈત્યાદિ.

કર્મોના જે અપનેતા છે તેનું નામ उचालयिक તથા મોક્ષગામીનુ નામ दूरालयिक છે. અર્થાત્—જે ઉચ્ચાલયિક=કર્મોનો નાશ કરવાવાળા છે તે દૂરાલયિક=મોક્ષગામી છે, એમ સમજો. કઠિનતર તપ અને સંયમની આરાધનાથી પ્રાપ્ત થવાવાળા હોવાના કારણે દૂર જે આલય–સ્થાન છે. તેનું નામ દૂરાલય–મોક્ષ છે. તે જેને થાય છે તે દૂરાલયિક અર્થાત્ મોક્ષગામી છે પરસ્પરમાં કાર્યકારણ ભાવનું પ્રદર્શન કરાવવા માટે ઉક્ત અર્થને સૂત્રકાર ગત–પ્રત્યાગત (હેર–ફેર) રૂપથી કહે છે–જે દૂરાલયિક–મોક્ષગામી અર્થાત્ મુક્તિના માર્ગ ઉપર આરૂઢ છે

इत्यादि । यं पुरुषं दूरालयिकं मोक्षगामिनं मोक्षमार्गारूढं जानीयात्, तमुच्चालयिकं=कर्मणां तदास्रवद्वाराणां चापनेतारं कर्माणि दूरीकर्तुं कृतनिश्चयं सोत्साहं बद्धपरिकरमिति यावत् जानीयात् ॥ सू० ११ ॥

स्वात्मैव येन मित्रतयाऽङ्गीकृतः स किं फलं प्राप्नोतीत्याह–'पुरिसा' इत्यादि।

उच्चालयिक=कर्म और उनके आस्रवोंके द्वारोंका नाश करनेवाला समझो। क्यों कि वह कर्मों को दूर करनेके लिये कृतनिश्चय एवं उत्साहसंपन्न होता है। कर्मों के नाश करने में वह किसी भी प्रकारसे पीछे पैर नहीं रखता है, अर्थात् कटिबद्ध होता है।

भावार्थ—शिष्यने जो यह प्रश्न किया था कि आत्माको ही जो संयमयात्रामें सहायक मानता है उसकी पहिचान क्या है? इसका समाधान सूत्रकारने इस सूत्रसे किया है। वे कहते हैं कि जो संयमी इस प्रकारकी प्रवृत्ति करता है वह कर्मोंके दूर करने में सदा कटिबद्ध रहता है। इसी रूपसे वह दृष्टिपथ होता है। उसकी प्रत्येक क्रियाएँ ऐसी होती हैं कि जिनसे कर्मोंका आस्रव रुकता है और संचित कर्मों की निर्जरा होती रहती है। ऐसा संयमी मुनि ही मोक्षमार्ग पर आरूढ माना जाता है॥ सू० ११ ॥

अपनी आत्मा को ही जिसने मित्ररूपसे अंगीकार किया है वह संयमी किस फलको प्राप्त करता है? इसकेलिये कहते हैं—'पुरिसा' इत्यादि।

તેને ઉચ્ચાલયિક-કર્મ અને તેના આશ્રવદ્વારોનો નાશ કરવાવાળા સમજો. કારણ કે તે કર્મોને દૂર કરવા માટે કૃતનિશ્ચય તેમજ ઉત્સાહસંપન્ન બને છે. કર્મોનો નાશ કરવામાં તે કોઈ પણ પ્રકારે પાછળ પગલું ભરતાં નથી, અર્થાત્ કટિબદ્ધ થાય છે.

ભાવાર્થ—શિષ્યે જે આ પ્રશ્ન કરેલ હતો કે આત્માનેજ જે સંયમયાત્રામાં સહાયક માને છે તેની ઓળખાણ શું છે? તેનું સમાધાન સૂત્રકારે આ સૂત્રથી કરેલ છે, તે કહે છે કે જે સયમી આ પ્રકારની પ્રવૃત્તિ કરે છે તે કર્મોને દૂર કરવામાં સદા કટિબદ્ધ રહે છે. તેવા રૂપથી તે દૃષ્ટિપથ થાય છે. તેની દરેક ક્રિયાઓ એવી હોય છે કે જેનાથી કર્મોનો આસ્રવ રોકાય છે, અને સંચિત કર્મોની નિર્જરા થતી રહે છે, એવા સંયમી મુનિ જ મોક્ષ માર્ગપર આરૂઢ માનવામાં આવે છે. ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

પોતાના આત્માને જ જેણે મિત્રરૂપથી અંગીકાર કરેલ છે તે સંયમી કેવા ફળને પ્રાપ્ત કરે છે તેને માટે કહે છે–'पुरिसा' ઈત્યાદિ

मूलम्—पुरिसा! अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ एवं दुक्खा पमुच्चसि ॥ सू० १२ ॥

छाया—पुरुष ! आत्मानमेवाभिनिगृह्य एवं दुःखात् प्रमोक्ष्यसे ॥ सू०१२ ॥

टीका—हे पुरुष ! परमपुरुषार्थसाधनसमर्थ ! भव्य ! आत्मानमेव=स्वस्वरूपावलोकनं श्रुतचारित्रधर्माराधनं वा परित्यज्याऽनादिमिथ्यात्वाविरत्यादिवासनावशाद् विषयसंगार्थं बहिर्धावमानं स्वात्मानमेव अभिनिगृह्य=मोक्षसाधकधर्मानुष्ठानप्रबलतरसंस्कारेण ततः प्रतिनिवर्त्य, एवं=पुनःपुनरनेन प्रकारेण स्वात्मानं ज्ञानदर्शनचारित्रात्मनिष्ठं कुर्वन्, दुःखात्=दुःखकारणात् ज्ञानावरणीयादिकर्मबन्धात् प्रमोक्ष्यसे=मुक्तो भविष्यसि ॥ सू० १२ ॥

हे पुरुष—अर्थात् परम पुरुषार्थ—मोक्षके साधनमें समर्थ हे भव्य ! अपनी आत्माको वैषयिक मार्ग से हटा कर आत्मनिष्ठ करो, इसीसे तुम्हारे दुःखोंका अन्त होगा ।

भावार्थ—जो संयमी अपनी आत्माको ही संयम-मार्गके साधनमें सहायी मानता है उसे मुक्तिका लाभरूप फल प्राप्त होता है । संसारदशामें फंसे हुए व्यक्तियोंसे, अथवा संयमकी आराधनामें सांसारिक परपदार्थ की सहायताकी ही अपेक्षा रखनेवाले संयमी से स्वरूपका अवलोकन, अथवा श्रुतचारित्र रूप धर्मका आराधन नहीं हो सकता है । जब तक इस प्रकारकी प्रवृत्ति संयमी में उत्पन्न नहीं होती है तब तक वह अपने कर्त्तव्य-मार्गसे अलग ही रहता है । उसकी आत्मा अनादिकालसे संसक्त (लगा हुआ) मिथ्यात्व अविरति आदिकी भावनाके वशसे

હે પુરૂષ ! અર્થાત્ પરમપુરૂષાર્થ—મોક્ષના સાધનમા સમર્થ હે ભવ્ય ! પોતાના આત્માને વૈષયિક માર્ગથી હટાવી આત્મનિષ્ઠ કરો, તેનાથી તમારા દુ ખોનો અંત આવશે

ભાવાર્થઃ—જે સંયમી પોતાના આત્માને જ સંયમ માર્ગના સાધનમાં સહાયક માને છે. તેને મુક્તિના લાભરૂપ ફળ પ્રાપ્ત થાય છે. સંસારદશામાં ફસેલી વ્યક્તિયોથી, અથવા સંયમની આરાધનામાં સાંસારિક પરપદાર્થની સહાયતાની જ અપેક્ષા રાખવાવાળા સંયમીથી સ્વરૂપનું અવલોકન, અથવા શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મનું આરાધન બની શકતું નથી. જ્યાં સુધી આ પ્રકારની પ્રવૃત્તિ સંયમીમા ઉત્પન્ન નથી થતી ત્યાં સુધી તે પોતાના કર્તવ્ય માર્ગથી અલગ જ રહે છે. તેની આત્મા અનાદિ કાળથી સંસક્ત (લાગેલા) મિથ્યાત્વ અવિરતિ

अपि च—'पुरिसा' इत्यादि ।

मूलम्—पुरिसा ! सच्चमेव समभिजाणाहि, सच्चस्स आणाए से उवट्ठिए मेहावी मारं तरइ। सहिओ धम्ममायाय सेयं समणुपस्सइ ॥ सू० १३ ॥

विषयों की ओर चक्कर काटा करता है और मोक्षके साधक धार्मिक अनुष्ठानके संस्कारों से वञ्चित रहता है। इस बातका ख्याल कर सूत्रकार शिष्यजन के शिक्षार्थ कहते हैं कि–हे शिष्य! यदि तुम परमपुरुषार्थ मोक्ष के साधन करने में अपनेको शक्तिशाली समझते हो तो तुम स्वरूपका अवलोकन में, या श्रुतचारित्ररूप धर्मकी आराधना में अपने को विसर्जित कर दो। जो ऐसा नहीं करते, वे अनादिकालिक मिथ्यात्व एवं अविरति आदिकी लगी हुई वासनाके वश से विषयोंके संगके लिये बाहिरी पदार्थों में प्रवृत्ति करनेवाली अपनी आत्मा को उस ओर से हटा नहीं सकते। इसलिये तुम मोक्षके साधक धार्मिक अनुष्ठानके संस्कार को अपने आपमें प्रबलतर करो, ताकि विषयमार्ग की ओर बढ़ती हुई यह तुम्हारी आत्मा उस ओर न जा सके–उस तरफसे निवृत्त हो जावे। इस प्रकारके बार२ के अभ्यास से आत्माको अपने निजरूप–सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र–में स्थापित करते हुए तुम दुःखों के कारणभूत ज्ञानावरणीयादिक कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाओगे॥१२॥

આદિ ભાવનાના વશથી વિષયોની તરફ જ લાગ્યો રહે છે, અને મોક્ષના સાધક ધાર્મિક અનુષ્ઠાનના સંસ્કારોથી વંચિત રહે છે. આ વાતનો ખ્યાલ કરી સૂત્રકાર શિષ્યજનના શિક્ષાર્થ કહે છે કે.—હે શિષ્ય ! જો તું પરમપુરૂષાર્થ મોક્ષનુ સાધન કરવામાં પોતાને શક્તિશાળી સમજતો હોય તો તું સ્વરૂપના અવલોકનમાં અગર શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મની આરાધનામાં પોતાને વિસર્જિત કરી દે. જે આમ નથી કરતા તે અનાદિકાલિક મિથ્યાત્વ અને અવિરતિ આદિની લાગેલી વાસનાના વશથી વિષયોના સંગ માટે બહારના પદાર્થોમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા પોતાના આત્માને તે તરફથી હઠાવી શકતા નથી, માટે તમે મોક્ષના સાધક ધાર્મિક અનુષ્ઠાનના સંસ્કારને પોતે પોતામાં પ્રબલતર કરો, જેથી વિષયમાર્ગની તરફ વધતો એ તમારો આત્મા એ તરફ જઈ શકે નહિ–તે તરફથી નિવૃત્ત થઈ જાય. આ પ્રકારના વારંવારના અભ્યાસથી આત્માને–પોતાને નિજરૂપ–સમ્યગ્દર્શન સમ્યગ્જ્ઞાન અને સમ્યક્ચારિત્ર–માં સ્થાપિત કરીને તમે દુઃખોના કારણભૂત જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોના બંધનથી મુક્ત થઇ જશો ॥ સૂ૦ ૧૨ ॥

छाया—पुरुष ! सत्यमेव समभिजानीहि, सत्यस्याज्ञया स उपस्थितो मेधावी मारं तरति। सहितो धर्ममादाय श्रेयः समनुपश्यति ॥ सू० १३ ॥

टीका—हे पुरुष ! सत्यमेव समभिजानीहि—गुरुदेवं साक्षीकृत्य या श्रुतचारित्रधर्मस्य ग्रहणी तथाऽऽसेवनी च शिक्षा परिगृहीता, ताम् अविस्मरन् परिपालयेत्यर्थः। यद्वा—सत्यः=आगमस्तमेव समभिजानीहि=चरणकरणरूपमागमोक्तमर्थं प्रतिपालयेत्यर्थः। एतत् किमर्थमित्याह—'सत्यस्य' इत्यादि। सत्यस्य=गुरुदेवं साक्षीकृत्य परिगृहीतायाः श्रुतचारित्रधर्मस्य ग्रहण्या आसेवन्याश्च शिक्षायाः जिनप्रवचनस्य वा आज्ञया=अनुसरणेन उपस्थितः सन् मेधावी=हेयोपादेयविवेककुशलः, मारं=संसारार्णवं तरति=समुत्तीर्णो भवति। किं च—सहितः=हितेन ज्ञानादिना युक्तः धर्ममादाय=श्रुतचारित्रलक्षणं धर्मं गृहीत्वा श्रेयः=शुभं मोक्षपदं समनुपश्यति, तीर्थङ्करादिभिर्दृष्टं सम्यगवलोकयतीत्यर्थः ॥ सू० १३ ॥

फिर कहते हैं—'पुरिसा' इत्यादि।

हे पुरुष=परमपुरुषार्थ के साधन करने में समर्थ भव्य ! भगवान् तथा गुरुको साक्षी करके जो तुमने ग्रहणी—श्रुतचारित्ररूप धर्मको अंगीकार करनेवाली एवं आसेवनी=उस धर्मको निर्दोष रीतिसे पालन करनेवाली शिक्षा ग्रहण की है, उसे तुम स्वप्न में भी मत भूलो। इसका अन्तःकरणसे पालन करो। अथवा चरणकरणरूप आगमोक्त अर्थ—(चरणसत्तरी और करणसत्तरी) का पालन करो। जिनप्रवचनकी आज्ञा के अनुसार जो अपनी प्रवृत्ति करता है वह हेय और उपादेय के विवेकसे कुशल हो जाता है। इस कुशलताका यह फल है कि—वह संसारसमुद्र से पार हो जाता है। तथा—आत्माके हितकारी होनेसे हितरूप

ફરીથી કહે છે–'पुरिसा' ઈત્યાદિ.

હે પુરૂષ ! = પરમપુરૂષાર્થનું સાધન કરવામા સમર્થ ભવ્ય ! ભગવાન તથા ગુરૂને સાક્ષી કરીને જે તમે ગ્રહણી–શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મને અંગીકાર કરવાવાળી, અને આસેવની–તેને નિર્દોષ રીતિથી પાળવાવાળી શિક્ષા ગ્રહણ કરી છે તેને તમે સ્વપ્નમાં પણ ભૂલો નહિ. તેનું અંતઃકરણથી પાલન કરો. અને ચરણકરણરૂપ આગમોક્ત અર્થ (ચરણસત્તરી અને કરણસત્તરી)નું સેવન કરો. જીનપ્રવચનની આજ્ઞાનુસાર જે પોતાની પ્રવૃત્તિ કરે છે તે હેય અને ઉપાદેયના વિવેકથી કુશળ બની જાય છે. તે કુશળતાનું એ ફળ છે કે તે સંસારસમુદ્રથી પાર થઈ જાય છે, તેમજ આત્માના હિતકારી હોવાથી હિતરૂપ જ્ઞાનાદિ ગુણોથી યુક્ત

प्रमादरहितस्य महर्षेर्गुणा उक्ताः, अथ प्रमादवतो दोषान् दर्शयितुमाह- 'दुहओ' इत्यादि ।

मूलम्-दुहओ जीवियस्स परिवंदणमाणणपूयणाए, जंसि एगे पमायंति ॥ सू० १४ ॥

छाया-द्विहतो जीवितस्य परिवन्दनमाननपूजनार्थं, यस्मिन् एके प्रमाद्यन्ति॥

टीका-द्विहतः=द्वाभ्यां रागद्वेषाभ्यां हतः रागद्वेषवशीभतः जीवितस्य=चपलाविलासचञ्चलस्य क्षणभङ्गुरस्य जीवनस्य, सुखार्थं, तथा परिवन्दनमाननपूजनार्थे-परिवन्दनं=संस्तवः, यथा-'श्रीमान् आयुष्मान् भवे'-त्यादि, तदर्थं, तथा माननं=जनसत्कारः, यथा-'अभ्युत्थानासनदानादिभिर्जना मां मानयिष्यन्ती'-ति तदर्थं, तथा पूजनं, यथा-'समुपार्जितग्रामजनपदस्य मम दानमानप्रणामसेवादिभिर्जनाः पूजन करिष्यन्ती'-ति, तदर्थं प्राणातिपातादिषु प्रवर्तते। एवम्-एके=ये के

ज्ञानादि गुणोंसे युक्त वह संयमी श्रुतचारित्ररूप धर्मकी आराधना कर शुभ एवं तीर्थङ्करादिद्वारा दृष्ट ऐसे मुक्तिस्थानका दर्शक होता है ॥ सू० १३॥

पूर्व सूत्रमें प्रमादरहित महर्षिके गुणोंका कथन किया है, अब प्रमादसंपन्न प्राणीके दोषोंको दिखलाते हैं-'दुहओ' इत्यादि ।

जो मनुष्य, राग एवं द्वेष, इन दोनोंसे युक्त है वह बिजलीके चमकारे के समान क्षणभंगुर इस जीवनको सुखी करनेके लिये 'आप लक्ष्मीवान् हों, चिरंजीवी हों' इत्यादि रूपसे अपनी स्तुति करानेके लिये, 'लोग मुझे देख कर खडे होंगे, आसनादिकके प्रदानसे मेरा सन्मान करेंगे' इस प्रकार अन्य जनोंसे सत्कार प्राप्तिके लिये, तथा 'मुझे ग्रामाधिपति या नगराधिपति दान, मान, प्रणाम और सेवा-शुश्रूषा आदिसे प्रतिष्ठित करेंगे' इस प्रकार अपनी पूजाके लिये प्राणातिपातादिक अकृत्योंमें प्रवृत्ति करता है ।

ते संयमी श्रुतचारित्ररूप धर्मनी आराधना करी शुभ तेमज तीर्थंकरादिद्वारा दृष्ट एवा मुक्तिस्थानना दर्शक बने छे ॥ सू० १३ ॥

पूर्व सूत्रमां प्रमादरहित महर्षिना गुणोनु कथन करेल छे, हवे प्रमादसंपन्न प्राणीना दोषो कहे छे-'दुहओ' इत्यादि.

जे मनुष्य राग अने द्वेष, ए बन्नेथी युक्त छे ते वीजळीना चमकारा समान क्षणभंगुर आ जीवनने सुखी करवा माटे 'तमे लक्ष्मीवान् थाओ चिरंजीवी थाओ' इत्यादि रूपथी पोतानी स्तुति कराववा माटे, तथा 'लोक मने देखीने उभा थशे, आसनादिकना प्रदानथी मारूं सन्मान करशे' आ प्रकारे अन्य जनोथी सत्कार प्राप्ति माटे, तथा 'मने ग्रामाधिपति अगर नगराधिपति दान, मान, प्रणाम अने सेवा-शुश्रूषा आदिथी प्रतिष्ठित करशे.' आ प्रकारे पोतानी पूजा माटे प्राणातिपातादिक अकृत्योमां प्रवृत्ति

चन रागद्वेषाभिभूताः असंयमरताः स्वार्थे परार्थे वा यस्मिन्=परिवन्दनादौ प्रमाद्यन्ति= आर्तरौद्रध्यानलग्नेन चेतसा परिवन्दनादिरूपसावद्यव्यापारेषु प्रवृत्तिरूपं प्रमादं कुर्वन्ति । ते प्रमादकारिणः खलु निजात्मनो दुःखं न क्षपयन्ति; किन्तु कर्मोपचयेन स्वात्मानं दुःखार्णवे निपातयन्तीति भावः । यद्वा–'पमोयंति' इति पाठपक्षे 'प्रमोदन्ते' इति छाया । तस्यायमर्थः –' जंसि ' यस्मिन् परिवन्दनादौ ' एगे ' एके= केचित् प्रमोदन्ते=हृष्यन्ति–हर्षं प्राप्नुवन्ति, न तत्तस्य हितायेति भावः ॥ सू० १४॥

एतत्प्रतिपक्षभूतस्त्वप्रमादी यत् फलं प्राप्नोति तदाह–'सहिओ' इत्यादि ।

इस प्रकारकी चाहनावाले जो कोई भी मुनि हैं वे राग और द्वेषसे युक्त हैं और असंयममें आसक्त हैं। ऐसे प्राणी स्वार्थ अथवा परमार्थका कुछ भी ख्याल न कर सिर्फ अपनी ख्यातिलाभ पूजादिककी चाहनाके आधीन हो आर्त्त और रौद्र ध्यानमें संलग्नचित्त रहा करते हैं और सावद्य व्यापारोंमें प्रवृत्ति करनेरूप प्रमादका सेवन करते रहते हैं । ये प्रमादकारी प्राणी निश्चित ही अपनी आत्माके दुःखोंको दूर न कर प्रत्युत कर्मोंके संचयसे स्वयं अपनी आत्माको दुःखरूपी समुद्रमें धकेलते हैं। अथवा सूत्रमें 'पमायंति 'के स्थानमें कहीं 'पमोयंति' ऐसा भी पाठ है। उसका अर्थ इस प्रकार होता है–जिस परिवन्दन आदिमें कितनेक प्राणी हर्ष मनाते हैं किन्तु वह उसकी आत्मा के हितके लिये नहीं होता ॥सू०१४॥

इससे भिन्न प्रवृत्ति करनेवाला अप्रमादी मुनि जिस फलको पाता है वह दिखलाते हैं—' सहिओ ' इत्यादि ।

કરે છે. આ પ્રકારની ચાહનાવાળા જે કોઇ મુનિ છે તે રાગ અને દ્વેષથી યુક્ત છે. અને અસંયમમાં આસક્ત છે. એવા પ્રાણી સ્વાર્થ અથવા પરાર્થનો જરા પણ ખ્યાલ કરતા નથી, ફક્ત પોતાની ખ્યાતિલાભ અને પૂજાદિકની ચાહનાને આધીન થઈ આર્ત્ત અને રૌદ્ર ધ્યાનમાં સંલગ્નચિત્ત રહ્યા કરે છે, અને સાવદ્ય વ્યાપારોમાં પ્રવૃત્તિ કરવારૂપ પ્રમાદનું સેવન કરતા રહે છે. એ પ્રમાદકારી પ્રાણી નિશ્ચિત જ પોતાના આત્માને દુઃખોથી દૂર ન કરતાં પ્રત્યુત કર્મોના સંચયથી સ્વયં પોતાના આત્માને દુઃખરૂપી સમુદ્રમાં નાંખે છે. અથવા સૂત્રમાં 'पमायंति' ના સ્થાનમાં ક્યાંક ' पमोयंति ' એવો પણ પાઠ છે, તેનો અર્થ આ પ્રકારે થાય છે–જે પરિવંદન આદિમાં કેટલાક પ્રાણી હર્ષ મનાવે છે, પણ તે તેના આત્માના હિત માટે હોતું નથી ॥ સૂ૦ ૧૪ ॥

તેનાથી ભિન્ન પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા અપ્રમાદી મુનિ જે ફળને પામે છે તે બતાવે છે—' सहिओ ' ઇત્યાદિ.

मूलम्--सहिओ दुक्खमत्ताए पुट्ठो नो झंझाएति, पासिमं दविए लोगालोगपवंचाओ मुच्चइ-त्तिबेमि ॥ सू० १५ ॥

छाया—सहितो दुःखमात्रया स्पृष्टः न झञ्झायति, पश्येमं द्रविको लोकाऽऽलोकप्रपञ्चान्मुच्यते–इति ब्रवीमि ॥ सू० १५॥

टीका—सहितः=ज्ञानचारित्रयुक्तः, दुःखमात्रया शीतोष्णपरीषहसमुत्पन्नया व्याध्युपसर्गजनितया वाऽल्पया महत्या वा स्पृष्टो सन् न झञ्झायति=न व्याकुलीभवति, कषायं न कुर्यादित्यर्थः । किंच–हे शिष्य ! इमं=वक्ष्यमाणमर्थं, यद्वा–इममुक्तमर्थं 'संधिं लोगस्स जाणित्ता' इत्यारभ्य 'णो झंझाएति' इत्यन्तेन प्रतिबोधितं, पश्य=हेयोपादेयविवेकेन सम्यग् जानीहि । तमेवार्थं दर्शयितुमाह–'द्रविक'

ज्ञान एवं चारित्रसंपन्न संयमी मुनि शीत–उष्ण परीषहसे उत्पन्न अथवा कोई व्याधि या उपसर्गसे जनित दुःखकी थोड़ी या बहुत मात्रासे स्पृष्ट होता हुआ भी कभी भी आकुलितचित्त नहीं होता है। इस लिये हे शिष्य ! इस आगे कहे जानेवाले अर्थको अथवा "संधिं लोगस्स" यहां से लगाकर "णो झंझाएति" यहां तक जो कुछ अभी तक अर्थ प्रकट किया गया है उसको हेय और उपादेयके विवेकसे वासितअन्तःकरण हो तुम पूर्णरूपसे अपने ध्यानमें रखो। "संधिं लोगस्स" यहांसे प्रारंभकर "णो झंझाएति" यहां तक जो कुछ भी विषय कहा गया है उसका निचोड़ अर्थ यही है कि–रागद्वेषसे रहित मुनि चौदह (१४) राजुप्रमाण इस लोकमें प्रत्यक्षसे दिखते हुए चतुर्गतिमें भ्रमणरूप व्यवहारसे सदाके लिये मुक्त हो जाता है।

જ્ઞાન અને ચારિત્ર–સંપન્ન સંયમી મુનિ, શીત, ઉષ્ણ પરીષહથી ઉત્પન્ન થયેલ, અથવા કોઈ વ્યાધિ અગર ઉપસર્ગથી જનિત થોડી અગર વધારે દુઃખની માત્રાથી સ્પૃષ્ટ બનવા છતાં પણ કદિ પણ આકુલિતચિત્ત નથી થતાં. માટે હે શિષ્ય! આગળ કહેવામાં આવશે તે અર્થને અથવા "संधिं लोगस्स" અહીંયાથી લઈને 'णो झंझाएति' ત્યાં સુધી જે કંઈ અત્યાર સુધી અર્થ પ્રગટ કરેલ છે તેને હેય અને ઉપાદેયના વિવેકથી વાસિતઅંતઃકરણ બની તમે પૂર્ણરૂપથી પોતાના ધ્યાનમાં રાખો. "संधिं लोगस्स" ત્યાંથી પ્રારંભ કરી "णो झंझाएति" ત્યાં સુધી જે કંઈ પણ વિષય કહેવામાં આવેલ છે તેનો નિચોડ અર્થ એ છે કે–રાગદ્વેષથી રહિત મુનિ ચૌદ (૧૪) રાજુ પ્રમાણ આ લોકમાં પ્રત્યક્ષથી દેખાતાં ચતુર્ગતિમાં ભ્રમણરૂપ વ્યવહારથી સદાને માટે મુક્ત થઈ જાય છે.

इत्यादि। द्रविकः=रागद्वेषविनिर्मुक्तः मुनिरित्यर्थः, लोकाऽऽलोकप्रपञ्चात् चतुर्दश-रज्ज्वात्मकलोके आलोकात्=दृश्यमानात् प्रपञ्चात्=चतुर्गतिभ्रमणरूपाद् व्यवहाराद् मुच्यते=मुक्तो भवतीत्यर्थः। 'इति ब्रवीमि' अस्य व्याख्यानं प्राग्वत् ॥सू० १५॥

॥ तृतीयाध्ययनस्य तृतीयोद्देशः संपूर्णः ॥ ३-३ ॥

भावार्थ—"संधिं लोगस्स" इस सूत्रसे लगाकर "णो झंझाएति" यहां तक मुनिके सम्बन्धमें जो कुछ सूत्रकारने प्रकट किया है उस पर वह मुनि यदि हृदयकी लगनसे प्रवृत्तियुक्त होता है तो यह निश्चित है कि वह अवश्य ही राग और द्वेषसे रहित होता हुआ इस चौदह (१४) राजू प्रमाण लोकमें चारों गतियोंके भ्रमणसे मुक्त हो जाता है। 'तिबेमि' इति ब्रवीमि, इस पदका व्याख्यान पहिलेके समान है ॥ सू० १५ ॥

॥ तृतीय अध्ययनका तृतीय उद्देश समाप्त ॥ ३-३ ॥

ભાવાર્થ:—"संधिं लोगस्स" એ સૂત્રથી લગાવી "णो झंझाएति" ત્યાં સુધી મુનિના સંબંધમાં જે કાંઈ સૂત્રકારે પ્રગટ કરેલ છે તે ઉપર તે મુનિ જો હૃદયના ભાવથી પ્રવૃત્તિયુક્ત થાય છે તો એ નિશ્ચિત છે કે તે અવશ્ય જ રાગ અને દ્વેષથી રહિત બનીને આ ચૌદ (૧૪) રાજૂ પ્રમાણુલોકમાં ચાર ગતિ-ઓના ભ્રમણથી મુક્ત થઈ જાય છે 'तिबेमि' इति ब्रवामि-આ પદનુ વ્યાખ્યાન પહેલા સમાન છે. ॥ સૂ૦ ૧૫॥

ત્રીજા અધ્યયનનો ત્રીજો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૩-૩ ॥



। तृतीयाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः ।

इहानन्तरतृतीयोद्देशके "न केवलं पापकर्मानाचरणेन मुनिर्भवति, किंतु-अप्रमादशुभभावनापूर्वकसंयमानुष्ठानादेवे"-ति प्रतिबोधितं, तत्र शुभभावना=शुभाध्यवसायः, स च कषायवमनाद् भवति। तस्माद् वान्तवत् कषायास्त्याज्या इति बोधयितुं चतुर्थमुद्देशकं कथयन्नाद्यं सूत्रमाह 'से वंता' इत्यादि ।

यद्वा-श्रुतचारित्रलक्षणधर्मे जागरूको वैरोपरतः सन् जातिं वृद्धिं च विदित्वा निष्कर्मदर्शी यो लोकालोकप्रपञ्चात् प्रमुच्यते, स पुनरेवं प्रमुच्यते इति बोधयितुमाह-'से वंता' इत्यादि ।

तृतीय अध्ययनका चतुर्थ उद्देश ।

तीसरे अध्ययनके तीसरे उद्देशमें "केवल पापकर्मके नहीं करनेसे मुनि नहीं होता है किन्तु अप्रमाद तथा शुभभावनापूर्वक संयमके अनुष्ठानसे ही मुनि-अवस्था प्राप्त होती है" यह विषय समझाया गया है। अब-"शुभभावना शुभअध्यवसायरूप है। उस शुभअध्यवसायकी प्राप्ति कषायोंके त्यागसे ही होती है। इसलिये "वान्त-वमन किये हुए अन्नकी तरह कषाय छोड़ने योग्य हैं"-इस विषय को समझानेके लिये इस चतुर्थ उद्देशककी प्ररूपणा करते हुए सूत्रकार कहते हैं-'से वंता' इत्यादि ।

अथवा—जो श्रुतचारित्ररूप धर्ममें जागरूक संयमी वैरसे रहित होकर तथा जन्म और बाल्यादि-अवस्थाओंको दुःखसहभाविनी जान कर निष्कर्मदर्शी होता है वह लोग में दृश्यमान चतुर्गतियों में भ्रमणरूप प्रपंच

ત્રીજા અધ્યયનનો ચોથો ઉદ્દેશ.

ત્રીજા અધ્યયનના ત્રીજા ઉદ્દેશમાં "કેવલ પાપ કર્મ નહિ કરવાથી મુનિ થતાં નથી. પણ અપ્રમાદ તથા શુભભાવનાપૂર્વક સંયમના અનુષ્ઠાનથી જ મુનિ અવસ્થા પ્રાપ્ત થાય છે." આ વિષય સમજાવવામા આવેલ છે. હવે શુભ ભાવના શુભ અધ્યવસાયરૂપ છે. તે શુભ અધ્યવસાયની પ્રાપ્તિ કષાયોના ત્યાગથી થાય છે. માટે વાન્ત-વમન કરેલા અન્નની માફક કષાય છોડવા યોગ્ય છે. આ વિષયને સમજાવવા માટે આ ચોથા ઉદ્દેશની પ્રરૂપણા કરતાં સૂત્રકાર કહે છે-'से वंता' ઇત્યાદિ.

અથવા—જે શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મમાં જાગરૂક સંયમી વૈરથી રહિત બનીને તથા જન્મ અને બાલ્યાદિ અવસ્થાઓને દુ:ખસહભાવિની જાણીને નિષ્કર્મદર્શી થાય છે તે લોકમાં દૃશ્યમાન ચતુર્ગતિયોમાં ભ્રમણરૂપ પ્રપંચથી છુટી જાય છે.

मूलम्—से वंता कोहं च माणं च मायं च लोभं च, एयं पासगस्स दंसणं, उवरयसत्थस्स पलियंतकरस्स, आयाणं सगडब्भि ॥सू०१॥

छाया—स वमिता क्रोधं च मानं च मायां च लोभं च। एतत् पश्यकस्य दर्शनं उपरतशस्त्रस्य पर्यन्तकरस्य, आदानं स्वकृतभित् ॥ सू० १ ॥

टीका—सः=शुभाध्यवसायपूर्वकसंयमाराधनपरायणः श्रमणः, क्रोधं मानं मायां लोभ च वमिता=अपनेता भवति। अत्रैकपदेन क्रोधमानमायालोभानिति वक्तव्ये पृथक् पृथगुपादानमेकैकस्य क्रोधादेरनन्तानुबन्ध्यादिभेदेन चतुर्विधत्वं दर्शयति। तेषामुपशमो युगपन्न संभवति, तस्मादेकैकस्योपशमार्थं पृथक् पृथक् प्रयत्नो

से छूट जाता है। ये सब बातें तीसरे उद्देशकके अन्तिम सूत्रोंमें प्रकट कर दी गई हैं। परन्तु वह छूटता कैसे है ? सो कहते हैं—'से वंता' इत्यादि।

शुभअध्यवसायपूर्वक संयमकी आराधनामें तत्पर श्रमण–मुनि क्रोध, मान, माया और लोभका वमिता–अपनेता–नाशक होता है।

सूत्रमें " क्रोधं मानं मायां लोभं " इस प्रकार इन द्वितीयान्त पदोंका अलग अलग स्वतंत्र प्रयोग किया गया है, उसका कारण क्रोधादिकोंमें एकएकके अनन्तानुबन्धी आदिके भेदसे चार–चार भेदों को दिखाना है। अर्थात्–समास करने पर–" क्रोधमानमायालोभान् "–ऐसा एक पद बन जाता है, फिर भी इस एक पदका प्रयोग न कर जो प्रत्येक पद सूत्रमें स्वतन्त्र विभक्तिवाले रखे हैं उसका कारण क्रोध आदि, अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यानावरण एवं संज्वलनके भेदसे चार २ प्रकारके हैं, यह बतलाना है। तथा इनका उपशम एक साथ एक ही जगह नहीं होता है किन्तु

એ સઘળી વાતો ત્રીજા ઉદ્દેશના અંતિમ સૂત્રમાં તથા આ ઉદ્દેશના અન્ય સૂત્રોમાં પ્રગટ કરવામાં આવેલ છે પરન્તુ તે છુટે છે કેવી રીતે ? તે કહે છે—से वंता ઈત્યાદિ.

શુભ અધ્યવસાયપૂર્વક સંયમની આરાધનામાં તત્પર શ્રમણ–મુનિ ક્રોધ, માન, માયા અને લોભના વમિતા–અપનેતા–નાશક બને છે.

સૂત્રમાં " क्रोधं, मानं, माया, लोभं " આ પ્રકારે આ દ્વિતીયાન્ત પદોના અલગ અલગ સ્વતંત્ર પ્રયોગ કરેલ છે તેનું કારણ ક્રોધાદિકોમાં એક–એકના અનન્તાનુબંધી આદિના ભેદથી ચાર ચાર ભેદ બતાવવાના છે. અર્થાત્ સમાસ કરવાથી " क्रोधमानमायालोभान् " એવું એક પદ બને છે તો પણ આ એક પદનો પ્રયોગ ન કરીને જે પ્રત્યેક પદ સૂત્રમાં સ્વતંત્ર વિભક્તિવાળાં રાખેલ છે તેનુ કારણ ક્રોધ આદિ– અનન્તાનુબંધી, અપ્રત્યાખ્યાન, પ્રત્યાખ્યાનાવરણ અને સંજ્વલનના ભેદથી ચાર ચાર પ્રકારે છે, તે બતાવવાનું છે તથા તેનો ઉપશમ એક સાથે એક જ જગ્યા ઉપર

विधेय इति भावः। किं च-परमार्थतो मुनित्वं क्रोधादिकषायवमनादेव संपद्यते, नान्यथेति स्वबुद्ध्या नाहं कथयामि। किंतु तीर्थंकरस्य श्रीवर्धमानस्वामिनो निराव-रणज्ञानत्वाद् दृष्टिपथावतीर्णमिति बोधयितुमाह-'एतत् पश्यकस्य दर्शनम्' इत्यादि। एतत्=यदुक्तं क्रोधादिवमनकर्ता मुनिर्भवतीति, तदेतत् पश्यकस्य=पश्यति निरावरणज्ञानत्वाद् जानातीति पश्यः, स एव पश्यकस्तीर्थंकरः श्रीवर्धमानस्वामी, तस्य दर्शनम्=केवलालोकेनावलोकनम्, तदुपदेशान्मया ज्ञातमेतदिति भावः।

भिन्न २ समयमें भिन्न २ गुणस्थानोंमें होता है। इस कारण इनके प्रत्येक का उपशम करनेके लिये पृथक्-पृथक्-रूपसे प्रयत्न करना पड़ता है। इस समस्त अभिप्रायको स्पष्ट करनेके लिये सूत्रमें क्रोधादिक पदोंको असमा-सरूपसे स्वतन्त्र विभक्तिमें रखा है।

तथा-परमार्थ दृष्टिसे मुनिपना क्रोधादिकषायोंका निग्रह करनेसे ही प्राप्त होता हैं, अन्य रीतिसे नहीं। इस बातको सुधर्मा स्वामी कहते हैं-हे जम्बू! मैं अपनी निजी कल्पनासे नहीं कहता हूँ किन्तु तीर्थङ्कर श्री वर्धमान स्वामीने कि जिनका ज्ञान निरावरण है इस बातका साक्षात्कार किया है, अतः उन्हींके कथनानुसार कहता हूँ। इस अपने अभिप्रायको प्रकट करनेके लिये सूत्रमें-"एयं पासगस्स दंसणं" पद रखा है। क्रोधादिक कषायोंका वमन करनेवाला ही मुनि होता है, यह सिद्धान्त भगवान् वर्ध-मान स्वामीका है। "पश्यति=निरावरणज्ञानत्वात् जानातीति पश्यः, स एव पश्यकः" निरावरणज्ञानशाली होने से जो समस्त त्रिकालवर्त्ती पदार्थोंको

થતો નથી પણ ભિન્ન ભિન્ન સમયમાં ભિન્ન ભિન્ન ગુણસ્થાનોમાં થાય છે આથી પ્રત્યેકના ઉપશમ કરવા માટે પૃથક્-પૃથક્-રૂપથી પ્રયત્ન કરવો પડે છે. આ તમાંના સમસ્ત અભિપ્રાયને સ્પષ્ટ કરવા માટે સૂત્રમાં ક્રોધાદિક પદોને અસમાસ-રૂપથી સ્વતંત્ર વિભક્તિમાં રાખેલ છે.

અને પરમાર્થ દૃષ્ટિથી મુનિપણું ક્રોધાદિ કષાયોનો નિગ્રહ કરવાથી પ્રાપ્ત થાય છે. અન્ય રીતિથી નહિ. આ વાત માટે શ્રી સુધર્મા સ્વામી કહે છે-હે જમ્બૂ! મેં મારી પોતાની કલ્પનાથી આ કહ્યું નથી પણ તીર્થંકર શ્રી વર્ધમાન સ્વામી કે જેનું જ્ઞાન નિરાવરણ છે. તેમણે આ વાતનો સાક્ષાત્કાર કરેલ છે, માટે તેમના કથનાનુસાર કહું છું. આ પોતાના અભિપ્રાયને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રમાં—"एयं पासगस्स दंसणं" પદ રાખેલ છે. ક્રોધાદિક કષાયોનુ વમન કરનારા જ મુનિ બને છે. એ સિદ્ધાંત ભગવાન વર્ધમાન સ્વામીનો છે. "पश्यति-निरावरणज्ञानत्वात् जानातीति पश्यः, स एव पश्यकः" નિરાવરણજ્ઞાનશાળી હોવાથી જે સમસ્ત

पश्यकस्य विशेषणमाह–'उपरतशस्त्रस्य' इत्यादि। उपरतशस्त्रस्य=उपरतम्–अपगतं द्रव्यशस्त्रं खड्गादि, भावशस्त्रं कषायरूपं च यस्मात् सकाशात् स उपरतशस्त्रस्तस्य, अयं भावः–क्रोधादिकषायवमनमन्तरेण तीर्थंकरस्यापि सर्वपदार्थावभासकं निरावरणज्ञानं न भवति, एवं तदुपदेशानुसारिणाऽन्येन मुमुक्षुणाऽपि क्रोधादिकषायवमनं करणीयमिति। अपरविशेषणमाह–'पर्यन्तकरस्य' इति। पर्यन्तं=सर्वथा विनाशं कर्मणां करोति तच्छीलश्चेति पर्यन्तकरस्तस्यैतद् दर्शनमिति सम्बन्धः।

युगपत्–एकसाथ–जानते हैं वे पश्य हैं, पश्यको ही पश्यक कहते हैं। 'पश्यक' शब्द तीर्थङ्कर वर्धमान स्वामीका वाचक है। केवलज्ञानरूपी आलोक (प्रकाश) से देखनेका नाम दर्शन है। भगवानने यह समस्त विषय अपने केवलज्ञानरूप प्रकाशसे प्रत्यक्ष देखा है। श्री सुधर्मास्वामी कहते हैं कि उन्हींके उपदेशसे इसको मैंने जाना है अतः इसमें अन्यथापनकी आशङ्का हो ही नहीं सकती है। भगवानका ज्ञान निरावरण कैसे हुआ? इस बातको प्रकट करनेके लिये सूत्रकार 'उपरतशस्त्रस्य' इस विशेषण का प्रयोग करते हैं। शस्त्र दो प्रकारके हैं–(१) द्रव्यशस्त्र और (२) भावशस्त्र। तलवार आदि द्रव्यशस्त्र हैं। क्रोधादिक कषाय भावशस्त्र हैं। जब तक आत्मासे भावशस्त्रोंका अभाव–उच्छेद नहीं होता है तब तक ज्ञानमें निरावरणता नहीं आ सकती। भगवान् वर्धमान स्वामीने इनका अपनी आत्मासे सर्वथा विनाश कर दिया है, इसीलिये उनका ज्ञान निरावरण है। द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र जिससे सर्वथा दूर हो चुके

त्रिकाળवर्ती पदार्थोने युगपत्–એક સાથે જાણે છે તે પશ્ય છે. પશ્યને જ પશ્યક કહેવામાં આવે છે. 'પશ્યક' શબ્દ તીર્થંકર વર્ધમાન સ્વામીનો વાચક છે. કેવળજ્ઞાનરૂપી આલોક (પ્રકાશ) થી દેખવાનું નામ દર્શન છે. ભગવાને આ સમસ્ત વિષય પોતાના કેવળજ્ઞાનરૂપ પ્રકાશથી પ્રત્યક્ષ દેખેલ છે. શ્રી સુધર્મા સ્વામી કહે છે કે "તેમના ઉપદેશથી તે જ્ઞાન મેં જાણેલ છે. માટે તેમાં અન્યથાપણાની આશંકા બની શકતી જ નથી. ભગવાનનું જ્ઞાન નિરાવરણ કેવી રીતે થયુ? આ વાતને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર 'उपरतशस्त्रस्य' આ વિશેષણનો પ્રયોગ કરે છે. શસ્ત્ર બે પ્રકારના છે. (૧) દ્રવ્યશસ્ત્ર અને (૨) ભાવશસ્ત્ર. તલવાર આદિ દ્રવ્યશસ્ત્ર છે. ક્રોધાદિક કષાય ભાવશસ્ત્ર છે. જ્યાં સુધી આત્માથી ભાવશસ્ત્રોનો અભાવ–ઉચ્છેદ નથી થતો ત્યાં સુધી જ્ઞાનમાં નિરાવરણતા આવી શકતી નથી.

ભગવાન વર્ધમાન સ્વામીએ પોતાના આત્માથી તેનો સર્વથા વિનાશ કરી નાખેલ છે, માટે તેમનુ જ્ઞાન નિરાવરણ છે. દ્રવ્યશસ્ત્ર અને ભાવશસ્ત્ર જેનાથી

यथा तीर्थंकरः कषायशस्त्रविनिवर्तनात् सकलकर्मणां क्षपयिता, एवमन्योऽपि तदुपदेशानुसारी भव्यो भवतीत्याह—'आदानम्' इत्यादि। आदानम्=आदीयते =गृह्यते-आत्मप्रदेशैः सह श्लिष्यतेऽष्टविधं कर्म येन तदादानमष्टादशपापस्थानम्, तत्स्थितिहेतुत्वात् कषाया वाऽऽदानं तद्वमिता स्वकृतभिद् भवति। यः खलु कर्मणामादानं कषायादि निराकरोति, स स्वकृतकर्मणां भेत्ता भवतीत्यर्थः॥ सू०१॥

हैं उसका नाम उपरतशस्त्र है। जब तक आत्मासे कषायोंका वमन नहीं होगा तब तक, चाहे वे कोई भी क्यों न हों; निरावरणशाली नहीं हो सकते। ज्ञानमें जब तक निरावरणता नहीं आती है तब तक किसी भी पदार्थका साक्षात्कार नहीं हो सकता है। अतः समस्त पदार्थोंको हस्तामलकवत् प्रकट करनेवाला ज्ञान सर्वज्ञको कषायोंके वमनसे ही प्राप्त होता है। जब यह सिद्धांत निश्चित है तो उन्हींके उपदेशानुसार प्रवृत्ति करनेवालेअन्य मोक्षाभिलाषीजनको भी क्रोधादिक कषायोंका वमन करना आवश्यक है। क्रोधादिक कषायोंके वमन किये विना ज्ञानमें निरावरणता नहीं आती है। इसकी पुष्टि-'पलियंतकरस्स-पर्यन्तकरस्य' इस पदसे करते हैं। यद्यपि यह पद षष्ठयन्त है और पश्यकके विशेषणरूपसे ही प्रयुक्त हुआ है, परन्तु यह इस बातकी घोषणा करता है कि तीर्थङ्कर कषायरूप भावशस्त्रोंके नाशसे ही सकल कर्मोंके नाशक हुए हैं। अतः क्रोधादिक कषायोंका नाश सकल कर्मोंके नाश होनेमें तथा घातियाके नाशमें एवं केवलज्ञानरूपी निरावरण ज्ञानकी प्राप्तिमें कारण है। इस प्रकार परम्परासम्ब-

---

सर्वथा दूर थई चूकेल छे तेनु नाम उपरतशस्त्र छे, ज्यां सुधी आत्माथी कषायोनुं वमन नहि थाय त्यां सुधी, भले तेओ कोई पण केम न होय, निरावरणज्ञानशाळी बनी शकता नथी. ज्ञानमां ज्यां सुधी निरावरणता नथी आवती त्यां सुधी कोई पण पदार्थनो साक्षात्कार थतो नथी. माटे समस्त पदार्थोने हस्तामलकवत् प्रगट करवावाळुं ज्ञान सर्वज्ञने कषायोना वमनथी ज प्राप्त थाय छे. ज्यारे आ सिद्धांत निश्चित छे तो तेना उपदेशानुसार प्रवृत्ति करवावाळा अन्य मोक्षाभिलाषीजनने पण क्रोधादिक कषायोनु वमन करवुं आवश्यक छे. क्रोधादिक कषायोनुं वमन कर्या वगर ज्ञानमां निरावरणता आवती नथी. तेनी पुष्टि 'पलियंतकरस्स-पर्यन्तकरस्य' आ पदथी करे छे, जो के आ पद षष्ठयन्त छे, अने पश्यकना विशेषणरूपथी ज प्रयुक्त थयेल छे. तो पण आ ए वातनी घोषणा करे छे के तीर्थंकर कषायरूप भावशस्त्रोना नाशथी ज सकळ कर्मोना नाशक बनेल छे. माटे क्रोधादिक कषायोनो नाश सकळ कर्मोनो नाशमां तथा घातियाना नाशमां तेमज केवळज्ञानरूपी निरावरण ज्ञाननी प्राप्तिमां कारण छे. आ प्रकारे परंपरा-संबंधथी कषायोनुं

नन्वस्तु हेयोपादेयोपदेशेन परोपकारकरणात् तीर्थंकरत्वम्, कथमेतावता सर्वज्ञता तस्येति चेन्न, यतः सम्यग्ज्ञानरहितो यथोचितं हेयोपादेयोपदेशं कर्तुं न प्रभवति, यथावस्थितैकपदार्थज्ञानमपि न भवति सर्वज्ञतामन्तरेणेति प्रतिबोधयितुमाह–' जे एगं ' इत्यादि ।

यद्वा–ननु ' एतत् पश्यकस्य दर्शनम् ' इति यदुक्तं तत्र स पश्यकः किमेकमेव पदार्थं जानाति, आहोस्वित्–अनेकम् ? इति शिष्यजिज्ञासायामाह– ' जे एगं ' इत्यादि ।

न्धसे कषायोंका वमन निरावरण ज्ञानका उत्पादक माना जाता है। जो सकल कर्मोंका विनाश करता है, अथवा कर्मोंके विनाश करनेका जिसका स्वभाव है उसका नाम–" पर्यन्तकर " है, उसका यह सिद्धान्त है। जैसे तीर्थङ्कर कषायशस्त्रकी निवृत्तिसे सकल कर्मोंके विनाशक हुए हैं उसी तरहसे उनके उपदेशानुसार अपनी प्रवृत्ति रखनेवाला अन्य भव्यजन भी सकल कर्मोंका विनाशक होता है। इसी अभिप्रायको प्रकट करनेके लिये सूत्रमें ' आदानम् ' पद रखा है। आत्माके प्रदेशोंके साथ अष्टविध कर्म जिनसे दूध–पानीकी तरह एकक्षेत्रावगाहरूप होकर ठहरते हैं उनका नाम आदान है। वे अठारह पापस्थान हैं। अथवा कर्मों में स्थितिबन्धका कारण होनेसे कषायें भी आदान हैं, इनका वमन करनेवाला ' सगडब्भि ' स्वकृतभिद्–होता है, अर्थात् जो भव्य कर्मोंके आदानभूत कषायादिकोंका निराकरण–विनाश करता है वह अपने किये हुए कर्मोंका विनाशक होता है ॥ सू० १ ॥

वमन निरावरणु ज्ञाननु उत्पादक मानवामां आवे छे. जे सकळ कर्मोनो विनाश करे छे अथवा कर्मोनो विनाश करवानो जेनो स्वभाव छे तेनुं नाम " पर्यन्तकर " छे. तेनो ए सिद्धांत छे. जेम तीर्थंकर कषायशस्त्रनी निवृत्तिथी सकळ कर्मोना विनाशक बने छे ते माफक तेना उपदेशानुसार पोतानी प्रवृत्ति राखवावाळा अन्य भव्यजन पणु सकळ कर्मोना विनाशक बने छे. आ अभिप्रायने प्रगट करवा माटे सूत्रमां ' आदानम् ' पद राखेल छे. आत्माना प्रदेशोनी साथे अष्टविध कर्मो जेनाथी दूध–पाणीनी माफक एकक्षेत्रावगाहरूप बनीने रहे छे तेनुं नाम आदान छे ते अढार पापस्थानक छे. अथवा कर्मोमां स्थितिबंधनुं कारणु होवाथी कषायो पणु आदान छे. तेनुं वमन करवावाळा 'सगडब्भि'–स्वकृतभिद् थाय छे. अर्थात् जे भव्य कर्मोना आदानभूत कषायादिकोनुं निराकरणु–विनाश करे छे ते पोताना करेला कर्मोनो विनाशक बने छे. ॥ सू० १ ॥

मूलम्—जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ, जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ ॥ सू० २ ॥

छाया—य एकं जानाति स सर्वं जानाति, यः सर्वं जानाति स एकं जानाति॥सू०२॥

तीर्थङ्कर भगवान् जीवोंको हेय और उपादेयका उपदेश देते हैं। एतावता परके उपकारके कर्त्तृत्वसे उनमें तीर्थङ्करपना भले ही आ जावे इसमें हमें कोई विवाद नहीं है। परन्तु इससे उनमें सर्वज्ञता कैसे सिद्ध हो सकती है? ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिये। क्यों कि जब तक आत्मा में पदार्थोंका सम्यग-वास्तविक ज्ञान नहीं हो जाता है तब तक तीर्थङ्कर भगवान् उपदेश नहीं देते हैं। जीवोंको उपदेश देना सम्यग्ज्ञान अर्थात् केवलज्ञानके आधीन है। केवलज्ञान उत्पन्न होनेपर त्रिकालवर्त्ती समस्त पदार्थोंका वास्तविक स्वरूप दर्पणमें प्रतिबिम्बकी तरह प्रतिभासित होने लगता है। केवलज्ञानकी प्राप्ति ही सर्वज्ञता है। इस सर्वज्ञताके विना एक पदार्थका भी वास्तविक स्वरूप ज्ञात नहीं हो सकता है। इस बात को समझानेके लिये कहते हैं—'जे एगं' इत्यादि।

अथवा—यह जो अभी कहा है कि—'एयं पासगस्स दंसणं-एतत् पश्यकस्य दर्शनम्' सो शिष्य यहां पर यह प्रश्न करता है कि-सर्वज्ञ क्या एक ही पदार्थ को जानता है या अनेक पदार्थों को?' इस प्रकारके शिष्यके प्रश्नका उत्तर देते हैं—'जे एगं' इत्यादि।

તીર્થંકર ભગવાન જીવોને હેય અને ઉપાદેયનો ઉપદેશ આપે છે. એતાવતા બીજાના ઉપકારના કર્તૃત્વથી તેમાં તીર્થંકરપણું ભલે આવી જાય તેમાં અમને કોઇ વિવાદ નથી, પરંતુ તેથી તેમાં સર્વજ્ઞતા કેવી રીતે સિદ્ધ થાય છે? એવી શંકા કરવી જોઈએ નહિ. કારણ કે જ્યાં સુધી આત્મામાં પદાર્થોનું સમ્યગ્-વાસ્તવિક જ્ઞાન થતું નથી ત્યાં સુધી તીર્થંકર ભગવાન ઉપદેશ આપતા નથી. જીવોને ઉપદેશ આપવો સમ્યગ્જ્ઞાન અર્થાત્ કેવળજ્ઞાનને આધીન છે. કેવળજ્ઞાન ઉત્પન્ન થવાથી ત્રિકાળવર્તી સમસ્ત પદાર્થોનું વાસ્તવિક સ્વરૂપ દર્પણમાં પ્રતિબિંબની માફક પ્રતિભાસિત થવા માંડે છે કેવળજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ જ સર્વજ્ઞતા છે. આ સર્વજ્ઞતા વિના એક પણ પદાર્થનું વાસ્તવિક સ્વરૂપ જ્ઞાત થઈ શકતું નથી. આ વાતને સમજાવવા માટે કહે છે—'जे एगं' ઇત્યાદિ.

અથવા એ જે હમણા કહ્યુ કે 'एयं पासगस्स दंसण-एतत् पश्यकस्य दर्शनम्' જેથી શિષ્ય આ ઠેકાણે એ પ્રશ્ન કરે છે કે-સર્વજ્ઞ શું એક જ પદાર્થને જાણે છે કે અનેક પદાર્થોને? આ પ્રકારના શિષ્યના પ્રશ્નનો ઉત્તર આપે છે 'जे एगं' ઇત્યાદિ.

टीका-यः एकं=जीवद्रव्यम् अजीवद्रव्यं वा द्रव्यक्षेत्रकालभावतः, अतीतानागतवर्तमानैः सर्वपर्यायैश्च जानाति, स सर्वं जानाति । सकलपदार्थसम्यग्ज्ञानमन्तरेणैकस्य कस्यचित् पदार्थस्य द्रव्यक्षेत्रादिनाऽतीतानागतवर्तमानसर्वपर्यायतश्च ज्ञानं न संभवतीति भावः । इममेवार्थं बोधयितुं कार्यकारणभावं प्रदर्शयन्नाह—'यः सर्वं जानाति' इत्यादि । यः सर्वं=लोकान्तर्वर्ति सकलं पदार्थजातं जानाति, स एकं द्रव्यं घटादिकं जानाति । अतीतानागतवर्तमानसर्वपर्यायैस्तत्तत्स्वभावप्राप्त्याऽना-

जो एक जीव द्रव्यको, अथवा अजीव द्रव्यको द्रव्य क्षेत्र काल और भावसे एवं अतीत अनागत और वर्तमानकाल-सम्बन्धी पर्यायोंसे युक्त जानता है वह समस्त पदार्थों को जानता है । समस्त पदार्थों के सम्यग्ज्ञान हुए विना कोई एक विवक्षित पदार्थ द्रव्य क्षेत्र काल और भावसे एवं अतीत अनागत और वर्तमान समस्त पर्यायों से नहीं जाना जा सकता है । इसी अभिप्रायको समझानेके लिये कार्यकारणभाव दिखलाते हुए सूत्रकार कहते हैं-'जे सव्वं जाणइ' 'यः सर्वं जानाति' इति। जो इस लोकके भीतरके समस्त पदार्थों को जानता है वह एक घटादिक द्रव्यको भी जानता है । भूत भविष्यत् और वर्त्तमानकाल-सम्बन्धी जितनी भी उस द्रव्यकी पर्यायें हैं वे समस्त उस द्रव्यके स्वभाव हैं । इन पर्यायोंसे परिणत द्रव्य तत्तत्स्वभाववाला होता रहता है । इस प्रकार द्रव्यमें उन२ पर्यायोंसे तत्तत्स्वभावकी प्राप्ति होनेसे वह द्रव्य अपने अनादि अनन्तकालपनेसे (इस रूपसे हुआ, इस रूपसे हो रहा है और इस रूपसे

જે એક જીવદ્રવ્યને, અથવા અજીવદ્રવ્યને દ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાળ અને ભાવથી તેમજ અતીત અનાગત અને વર્તમાનકાળ-સબંધી સમસ્ત પર્યાયોથી યુક્ત જાણે છે તે સમસ્ત પદાર્થોને જાણે છે, સમસ્ત પદાર્થોનું સમ્યગ્જ્ઞાન થયા વિના કોઈ એક વિવક્ષિત પદાર્થનુ જ્ઞાન દ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાળ અને ભાવથી અને અતીત અનાગત અને વર્તમાન સમસ્ત પર્યાયોથી થઈ શકતું નથી, આ અભિપ્રાય સમજાવવા માટે કાર્ય-કારણ ભાવ દરસાવતાં સૂત્રકાર કહે છે-"जे सव्वं जाणइ-यः सर्वं जानाति" ઈતિ. જે આ લોકના ભીતરના સમસ્ત પદાર્થોને જાણે છે તે એક ઘટાદિક દ્રવ્યને પણ જાણે છે. ભૂત ભવિષ્ય અને વર્તમાનકાળ સંબંધી જેટલી પણ તે દ્રવ્યની પર્યાયો છે તે સમસ્ત, દ્રવ્યનો સ્વભાવ છે. તે પર્યાયોથી પરિણત દ્રવ્ય તત્તત્સ્વભાવવાળા બનતા રહે છે. આ પ્રકારે દ્રવ્યમાં તે તે પર્યાયોથી તત્તત્સ્વભાવની પ્રાપ્તિ થવાથી તે દ્રવ્ય પોતાના અનાદિ અનંતકાળપણાથી (આ રૂપથી બન્યા; આ રૂપથી બને છે અને હવે આ રૂપથી બનશે) તે તે

धनन्तकालतया समस्तवस्तुस्वभावपरिज्ञानादित्यर्थः। एकस्य वस्तुनः समग्रस्वरूपं सर्वज्ञ एव जानातीति भावः ॥ सू० २ ॥

एवं जानन् सर्वज्ञ एव सर्वजीवोपकारकमुपदेशं ददातीत्याह-'सव्वओ' इत्यादि।

यद्वा-सर्वज्ञः शिष्येभ्यः प्रमाददोषान् अप्रमादगुणांश्च कथयति-'सव्वओ' इत्यादि।

मूलम्-सव्वओ पमत्तस्य अत्थि भयं, सव्वओ अप्पमत्तस्य नत्थि भयं ॥ सू० ३ ॥

छाया-सर्वतः प्रमत्तस्य अस्ति भयं, सर्वतोऽप्रमत्तस्य नास्ति भयम् ॥ सू० ३ ॥

टीका-प्रमत्तस्य=मद्यादिप्रमादयुक्तस्य सर्वतः=द्रव्यक्षेत्रकालभावतः भयं=भयकारित्वात् कर्म अस्ति। प्रमादवान् खलु ज्ञानावरणीयादिकमष्टविधं कर्मोपचिनो-

---

होगा) उन उन स्वभावोंवाला जान लिया जाता है। अर्थात् एक वस्तुका समस्त स्वरूप सर्वज्ञ ही जानते हैं ॥ सू० २ ॥

इस प्रकार समस्त द्रव्योंको जाननेवाले सर्वज्ञ ही समस्त जीवोंके लिये हितकारी उपदेश देते हैं। इस बातको सूत्रकार दिखलाते हैं— 'सव्वओ' इत्यादि।

अथवा—सर्वज्ञ स्वयं अपने शिष्योंके प्रति प्रमादके दोषोंको और अप्रमादके गुणोंको प्रदर्शित करते हैं—'सव्वओ' इत्यादि।

मद्यादिप्रमादसेवी व्यक्ति, द्रव्य क्षेत्र काल और भावसे भय-भयकारी होनेसे कर्म-का बन्ध करता है। 'भय' शब्दका अर्थ कर्म है, क्यों कि कर्म जीवोंको सदा भयकारी होते हैं इसलिये यहां कार्यमें कारण का उपचार किया गया है। भय, कर्मों का कार्य है और कर्म, भय के कारण हैं। प्रमादवाला व्यक्ति निश्चयसे ज्ञानावरणीयादिक आठ प्रकार

સ્વભાવોવાળા જાણી લેવામાં આવે છે. અર્થાત્ એક વસ્તુનું સમસ્ત સ્વરૂપ સર્વજ્ઞ જ જાણે છે ॥ સૂ૦ ૨ ॥

આ પ્રકારે સમસ્ત દ્રવ્યોને જાણવાવાળા સર્વજ્ઞ જ સમસ્ત જીવોને માટે હિતકારી ઉપદેશ દે છે. આ વાતને સૂત્રકાર બતાવે છે—'सव्वओ' ઈત્યાદિ.

અથવા સર્વજ્ઞ સ્વયં પોતાના શિષ્યો પ્રતિ પ્રમાદના દોષોને અને અપ્રમાદના ગુણોને પ્રદર્શિત કરે છે-'सव्वओ' ઈત્યાદિ.

મદ્યાદિપ્રમાદસેવી જીવ દ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાળ અને ભાવથી ભય-ભયકારી હોવાથી કર્મનો બંધ કરે છે. 'ભય' શબ્દનો અર્થ કર્મ છે. કારણ કે કર્મ જ જીવોને સદા ભયકારી હોય છે. માટે આ ઠેકાણે કાર્યમાં કારણનો ઉપચાર કરેલ છે. ભય, કર્મોનું કાર્ય છે અને કર્મ, ભયનું કારણ છે. પ્રમાદવાળો જીવ

ति। स च द्रव्यतः सर्वैरात्मप्रदेशैः कर्म गृह्णाति, क्षेत्रतः=षट्सु दिक्षु, कालतोऽनुसमयं, भावतोऽष्टादशभिः स्थानैः, पञ्चविधेन वा प्रमादेन, एवं कर्म सर्वतः प्रमादिनं बध्नातीत्यर्थः। यद्वा-'सर्वतः' इत्यस्य 'सर्वत्र' इत्यर्थः। यथा चौरस्य करच्छेदन-शूलादिभेदन-कशादिताडन-कठिनतरराजकीययन्त्रणादिभयमस्मिन् लोके, परलोकेऽपि नरकनिगोदादियातनाभयं भवति, तथा-प्रमत्तस्य सर्वत्र भयमित्यर्थः। प्रमादरहितस्य तु नास्ति भयमित्याह-'सर्वतोऽप्रमत्तस्य' इत्यादि। अप्रमत्तस्य=प्रमादरहितस्य आत्मकल्याणाय संयमाराधने जाग्रत इत्यर्थः, सर्वतः= ऐहिकामुष्मिकदुःखकारणात् संसाराद् भयं नास्ति। प्रमादरहितस्य संसारो न भवतीत्यर्थः॥ सू० ३॥

के कर्मोंका वन्धक होता है। वह द्रव्यकी अपेक्षा समस्त आत्मप्रदेशोंसे कर्मोंका ग्रहण करनेवाला होता है। क्षेत्रकी अपेक्षा षट्-छह-दिशाओं में, कालकी अपेक्षा प्रत्येक समयमें, भावकी अपेक्षा अठारह (१८) पाप स्थानोंसे, अथवा पांच प्रकारके प्रमादसे कर्मोंका वन्धक होता है। इस प्रकार उसके सव तरफसे कर्मोंका वन्ध होता रहता है। अथवा 'सर्वतः' 'सर्व प्रकारसे' इसके स्थानमें 'सर्वत्र' ऐसा अर्थ करने पर-प्रमादी के लिये 'सर्वत्र'-सव जगह-भय होता है, ऐसा अर्थबोध होता है। यहां "भय" शब्दका अर्थ 'डर' है जिस प्रकार चोरके लिये इस लोकमें हाथोंके कटने, शूलादिसे भिदने, कशा-चावुक आदिसे ताडने आदि रूपसे कठिनतर राजकीय यन्त्रणाओं-कष्टों-के भोगने का भय होता है, तथा परलोकमें भी नरक-निगोदादिकके अनेक कष्टोंके सहनेका भय होता है, इसीतरहसे प्रमादी प्राणीको सर्वत्र भय ही भय है। आत्मकल्याण

નિશ્ચયથી જ્ઞાનાવરણીયાદિક આઠ પ્રકારના કર્મોનો બંધક થાય છે. તે દ્રવ્યની અપેક્ષા સમસ્ત આત્મપ્રદેશોથી કર્મોના ગ્રહણ કરવાવાળા બને છે. ક્ષેત્રની અપેક્ષા ષટ્-છ દિશાઓમાં, કાળની અપેક્ષા પ્રત્યેક સમયમાં, ભાવની અપેક્ષા અઢાર પાપસ્થાનોથી અથવા પાંચ પ્રકારના પ્રમાદથી કર્મોનો બંધક થાય છે, આ પ્રકારે તેને સઘળી બાજુથી કર્મોનો બંધ થતો રહે છે. અથવા 'સર્વત:=સર્વપ્રકારથી'તેના સ્થાનમાં 'સર્વત્ર' એવો અર્થ કરવાથી પ્રમાદી માટે 'સર્વત્ર' દરેક જગ્યાએથી ભય થાય છે, એવો અર્થબોધ થાય છે. આ ઠેકાણે ભય શબ્દનો અર્થ 'ડર' છે જે પ્રકારે ચોર માટે આ લોકમાં ખડ્ગાદિથી હાથોનું કાપવું, શૂલાદિથી ભેદાવું, કશા-ચાબુક આદિથી માર ખાવો આદિરૂપ કઠિનતર રાજકીય યંત્રણાઓ-કષ્ટો-ને ભોગવવાનો ભય હોય છે, તથા પરલોકમાં પણ નરકનિગોદાદિક અનેક કષ્ટોને સહનકરવાનો ભય હોય છે તેવી રીતે પ્રમાદી પ્રાણીને સર્વત્ર ભય જ ભય છે.

इह कषायाधिकारो वर्तते, तद्वमनं द्विविधम्–उपशमनवमनं, क्षपणवमनं च। तत्रोपशमनवमनं नामनमिति पर्यायस्तदभिप्रायेणाह—'जे एगं नामे' इत्यादि।

यद्वा–कषायाभावात् प्रमादाभावः, तदभावाच्च सकलमोहनीयाऽभावः, तस्मात् सकलकर्मक्षयः, तदेवमेकाभावे सति बहूनामभावः, बहूनामभावे सति एकाभावः; इत्येवं गतप्रत्यागतरूपेण कार्यकारणभावं दर्शयितुमाह—'जे एगं' इत्यादि।

करनेके लिये जो संयमकी आराधनामें जागरूक हैं ऐसे अप्रमादी प्राणीको कहीं भी भय नहीं होता है। वे न इस लोकमें दुःखी होते हैं और न परलोकमें। अधिक क्या कहा जाय? वे इस संसारके भयसे ही निर्मुक्त हो जाते हैं। इहलोकसम्बन्धी और परलोकसम्बन्धी दुःखका कारण यह संसार ही उन्हें फिरसे प्राप्त नहीं होता, अर्थात् वे सदा के लिये मुक्त हो जाते हैं ॥ सू० ३ ॥

यहां पर कषायका अधिकार है। कषायका वमन दो प्रकारका है– (१) उपशमनवमन, (२) क्षपणवमन। कषायोंका उपशम होना यह उपशमनवमन है, तथा कषायोंका क्षय होना यह क्षपणवमन है। उपशमन-वमनका पर्यायान्तर शब्द नामन है। इस अभिप्रायसे कहते हैं— 'जे एगं' इत्यादि।

अथवा—कषायोंके अभावसे प्रमादका अभाव, प्रमादके अभावसे समस्त मोहनीयका अभाव, उससे सकल कर्मोंका क्षय होता है। इस प्रकार एकका अभाव होने पर बहुतोंका अभाव, बहुतोंका अभाव होने

આત્મકલ્યાણ કરવા માટે જે સંયમની આરાધનામાં જાગરૂક છે એવા અપ્રમાદી પ્રાણીઓને કાંઇ પણ ભય હોતો નથી. તેઓ નથી આ લોકમાં દુ:ખી થતાં નથી પરલોકમાં દુઃખી થતાં અધિક શું કહેવું? તેઓ આ સંસારના ભયથી જ નિર્મુક્ત થઇ જાય છે. આ-લોકસંબંધી અને પરલોકસંબંધી દુઃખનું કારણ આ સંસાર જ તેને ફરીથી પ્રાપ્ત થતો નથી, અર્થાત્ તે સદાને માટે મુક્ત થઈ જાય છે ॥ સૂ૦ ૩ ॥

આ ઠેકાણે કષાયનો અધિકાર છે કષાયોનું વમન બે પ્રકારે છે. (૧) ઉપ-શમવમન (૨) ક્ષપણવમન કષાયોનું ઉપશમ થવું તે ઉપશમવમન છે. તથા કષાયોનું ક્ષય થવું તે ક્ષપણવમન છે. ઉપશમવમનનો પર્યાયાન્તર શબ્દ નામન છે. આ અભિપ્રાયથી કહે છે–'जे एगं' ઇત્યાદિ.

અથવા–કષાયોના અભાવથી પ્રમાદનો અભાવ, પ્રમાદના અભાવથી સમસ્ત મોહનીયનો અભાવ, તેનાથી સકળ કર્મોનો ક્ષય થાય છે. આ પ્રકારે એકનો અભાવ થવાથી બહુનો અભાવ, બહુનો અભાવ થવાથી એકનો અભાવ થાય છે.

मूलम्—जे एगं नामे से बहुं नामे, जे बहुं नामे से एगं नामे ॥ सू० ४॥

छाया—यः एकं नामयति स वहून् नामयति, यो वहून् नामयति, स एकं नामयति ॥ सू० ४ ॥

टीका—यः एकम्=अनन्तानुवन्धिनं क्रोधं नामयति=उपशमयति स वहून्=अप्रत्याख्यानादीन् तद्भेदान् मानादीन् वा नामयति ।

यद्वा—यः एकं सप्रकृतिकं मोहनीयं नामयति=उपशमयति, स वहूनि=तदवशिष्टानि सप्रकृतिकानि ज्ञानावरणीयादिकानि सर्वाण्यपि नामयति=उपशमयति। यो वहून्=स्थितिशेषान् नामयति=उपशमयति, स एकम्=अनन्तानुवन्धिनं क्रोधं मोहनीयं वा नामयति=उपशमयति। अत्र नामनम्–उपशमः क्षपणं वा। तथा चायमप्यर्थः—

पर एकका अभाव होता है। इस प्रकार गत–प्रत्यागत (हेर–फेर) से कार्य–कारण भावको दिखानेके लिये कहते हैं–' जे एगं ' इत्यादि।

जो अनन्तानुबन्धी क्रोधका उपशम करता है वह अप्रत्याख्यान आदि कषायोंका एवं अनन्तानुबन्धी लोभादिकोंका उपशम करता है। यद्वा–जो एक मोहनीय कर्मका उपशम करता है वह उससे अवशिष्ट ज्ञानावरणीय आदि समस्त कर्मप्रकृतियोंका भी उपशम करता है। जो स्थितिसे अवशिष्ट कर्मोंका उपशम करता है वह एक अनन्तानुबन्धी क्रोध अथवा मोहनीयका भी उपशम करता है। यहां नामन शब्दका अर्थ उपशमन अथवा क्षपण है। उपशमनकी अपेक्षासे यह व्याख्या की है। क्षपणकी अपेक्षासे व्याख्या इस प्रकार है—

આ પ્રકારે ગત–પ્રત્યાગત (હેર–ફેર)થી કાર્ય કારણ ભાવને બતાવવા માટે કહે છે–' जे एगं ' ઇત્યાદિ.

જે અનંતાનુબંધી કષાયોનો અને અનંતાનુબધી લોભાદિનો ઉપશમ કરે છે, આ ઠેકાણે જે એક મોહનીય કર્મનો ઉપશમ કરે છે તે તેનાથી અવશિષ્ટ જ્ઞાનાવરણીય આદિ સમસ્ત કર્મપ્રકૃતિયોનો પણ ઉપશમ કરે છે. જે સ્થિતિથી અવશિષ્ટ કર્મોનો ઉપશમ કરે છે તે એક અનન્તાનુબન્ધી ક્રોધ અથવા મોહનીયનો પણ ઉપશમ કરે છે. આ ઠેકાણે નામન શબ્દનો અર્થ ઉપશમ અથવા ક્ષપણ છે. ઉપશમની અપેક્ષાથી આ વ્યાખ્યા કરેલ છે. ક્ષપણની અપેક્ષાથી વ્યાખ્યા આ પ્રકારે છે—

यः एकम्-नामयति=क्षपयति, स बहूनपि नामयति=क्षपयति। एकस्यानन्तानुबन्धिनः क्रोधस्य क्षपको बहूनां=तद्भेदानामप्रत्याख्यानादीनां मानादीनां वा कषायाणां क्षपको भवतीति। यद्वा-एकस्य मोहनीयस्य क्षपकः, बहूनां तदवशिष्टानां सर्वासां प्रकृतीनां क्षपको भवतीति। तथा-यो बहूनां क्षपकः, स एकस्य क्षपक इति ॥सू० ४॥

बहुकर्मोपशमेनैककर्मोपशमेन वा विना मोहनीयस्योपशमो न भवति, तथा बहुकर्माभावमन्तरेण एककर्माभावमन्तरेण वा मोहनीयकर्मणः क्षयो न भवति। तस्मादेव कारणाज्जन्तूनां बहुविधदुःखसमुद्भव इत्याह-'दुक्खं' इत्यादि।

मूलम्-दुक्खं लोगस्स जाणित्ता वंता लोगस्स संजोगं जंति धीरा महाजाणं, परेण परं जंति, नावकंखंति जीवियं ॥सू० ५॥

छाया—दुःखं लोकस्य ज्ञात्वा वान्त्वा लोकस्य संयोगं यान्ति धीरा महायानं, परेण परं यान्ति, नावकाङ्क्षन्ति जीवितम् ॥ सू० ५ ॥

जो एकका क्षय करता है वह बहुतोंका क्षय करता है। एक अनन्तानुबन्धी क्रोधका क्षपक अप्रत्याख्यान आदि कषायोंका अथवा अपने भेदस्वरूप मानादि-कषायोंका क्षपक होता है। अथवा-एक मोहनीय कर्मका क्षपक बहुत-तदवशिष्ट (मोहनीय कर्मसे बाँकी रही) सब कर्म-प्रकृतियोंका क्षपक होता है। इसी प्रकार जो बहुतोंका क्षपक होता है वह एकका भी क्षपक होता है ॥ सू० ४ ॥

बहुत कर्मोंके उपशम विना अथवा एक कर्मके उपशम विना मोहनीय कर्मका उपशम नहीं होता है, तथा बहुत कर्मों के अभाव-क्षय-हुए विना मोहनीय कर्मका क्षय नहीं होता है। इसी कारणसे प्राणियोंको अनेक प्रकारके दुःखोंकी उत्पत्ति होती है। इसी बातको सूत्रकार प्रकट करते हैं—'दुक्खं' इत्यादि।

જે એકનો ક્ષય કરે છે તે બહુનો ક્ષય કરે છે. એક અનંતાનુબંધી ક્રોધનો ક્ષપક અપ્રત્યાખ્યાન આદિ કષાયોનો અથવા પોતાના ભેદસ્વરૂપ માનાદિ કષાયોનો ક્ષપક થાય છે. અથવા એક મોહનીય કર્મના ક્ષપક બહુ-તદવશિષ્ટ (મોહનીય કર્મથી બાકી રહી) સઘળી કર્મપ્રકૃતિયોનો ક્ષપક થાય છે. આ પ્રકારે બહુનો ક્ષપક થાય છે તે એકનો પણ ક્ષપક થાય છે. ॥ સૂ૦ ૪ ॥

બહુ કર્મોના ઉપશમ વિના, અથવા એક કર્મના ઉપશમ વિના મોહનીય કર્મનો ઉપશમ થતો નથી. તથા બહુ કર્મોનો અભાવ-ક્ષય વિના, અથવા એક કર્મનો અભાવ થયા વિના મોહનીય કર્મનો ક્ષય થતો નથી. તે કારણથી પ્રાણીયોને અનેક પ્રકારના દુઃખોની ઉત્પત્તિ થાય છે. આ વાતને સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે—'दुक्खं' ઇત્યાદિ.

टीका—लोकस्य=षड्जीवनिकायस्य दुःखं=दुःखकारणं कर्मास्तीति ज्ञात्वा लोकस्य=पुत्रकलत्रादेस्तथा हिरण्यसुवर्णादेश्च संयोगं=ममत्वलक्षणं सम्बन्धं परिग्रहं वाऽष्टविधकर्महेतुं वान्त्वा=परित्यज्य धीराः=कर्मविदारणसमर्था महायानं=यान्त्यनेन मोक्षमिति यानं चारित्रम्, तच्च भवकोटिदुर्लभतया महदस्तीत्याशयेन महायानमित्युच्यते। यान्ति=गच्छन्ति प्राप्नुवन्तीत्यर्थः।

ननु प्राप्तचारित्रस्य किमेकेनैव भवेन मोक्षः, उत पारंपर्येणेति शिष्यजिज्ञासायामुभयथाऽपि मोक्षो भवतीति बोधयितुमाह—' परेण परं यान्ति ' इति।

"इस षड्जीवनिकायरूप लोकके दुःखका कारण कर्म है" ऐसा जान कर कर्मों के नाश करनेमें शक्तिशाली धीर मुनि, पुत्र स्त्री आदि से, तथा हिरण्य सुवर्ण आदिसे ' ममेदं '–ममत्वभावरूप संयोगका अथवा अष्टप्रकारके कर्मोंके आस्रवके कारणरूप परिग्रहका सर्वथा त्याग कर चारित्र को अङ्गीकार करते हैं। " यान " शब्दका अर्थ चारित्र है—" यान्ति अनेन मोक्षमिति यानम् " अर्थात्–जिसके द्वारा मोक्षको प्राप्त करे उस का नाम " यान " है, क्यों कि इसकी प्राप्तिसे जीवोंको मुक्तिका लाभ होता है। " यान " के साथ जो " महा " विशेषण लगा हुआ है वह इसमें महत्ताका द्योतक है। चारित्रमें महत्ता इसी लिये है कि जीवोंको इसकी प्राप्ति करोडों भवोंमें भी दुर्लभ है। इसी अभिप्रायसे चारित्रको महायान कहा है।

जिसको चारित्र प्राप्त हो चुका है ऐसे मुनिकी मुक्ति उसी भवसे हो सकती है ? अथवा भवपरम्परासे ?, इस प्रकारकी शिष्यकी आशङ्काका

'આ 'ષડ્જીવનિકાયરૂપ લોકના દુઃખનું કારણ કર્મ છે.' એવું જાણીને કર્મોનો નાશ કરવામાં શક્તિશાળી ધીર મુનિ, પુત્ર સ્ત્રી આદિથી, તથા હિરણ્ય સુવર્ણ આદિથી 'ममेदं'–મમત્વભાવરૂપ સંયોગોનો, અથવા અષ્ટ પ્રકારના કર્મોના આશ્રવના કારણરૂપ પરિગ્રહનો સર્વથા ત્યાગ કરી ચારિત્રને અંગીકાર કરે છે. "यान" શબ્દનો અર્થ ચારિત્ર છે. "यान्ति अनेन मोक्षमिति यानम्" અર્થાત્ જેના દ્વારા મોક્ષને પ્રાપ્ત કરે તેનુ નામ "यान" છે, કારણ કે તેની પ્રાપ્તિથી જીવોને મુક્તિનો લાભ થાય છે. "यान"ની સાથે જે "महा" વિશેષણ લાગેલ છે. તે તેની મહત્તાનો દ્યોતક છે, ચારિત્રમાં મહત્તા એ માટે છે કે જીવોને તેની પ્રાપ્તિ કરોડો ભવોમાં પણ દુર્લભ છે તે અભિપ્રાયથી ચારિત્રને महायान કહેલ છે.

જેને ચારિત્રપ્રાપ્ત થઇ ચુકેલ છે તેવા મુનિની મુક્તિ તે ભવથી થઈ શકે છે? અથવા ભવપરંપરાથી ?, આ પ્રકારની શિષ્યની આશંકાનું સમાધાન કરતાં

तद्योग्यक्षेत्रकालप्राप्त्या लघुकर्मणस्तेनैव भवेन मोक्षः, अन्यस्य तु पारम्पर्येण भवति, इह तदेवोच्यते—

यथा—यथाशक्तिसमाराधितसंयमा आयुषोऽन्ते सति कर्मावशेषेण सौधर्मादिदेवलोकं गच्छन्ति, ततः परं पुनः कर्मभूमावार्यक्षेत्रे सुकुले जन्म लब्ध्वा श्रद्धासंयमादिधर्माराधनेन सौधर्मादिदेवलोकादपि विशिष्टतरं स्वर्गमनुत्तरोपपातिकं यावत् प्रयान्ति। ततः परं पुनरपि ततश्च्युतास्तत्समुचितमहाविदेहादिक्षेत्रं प्राप्य संपूर्णश्रुतचारित्रधर्मसमाराधनेन कृत्स्नकर्मक्षयादपुनरावृत्तिकं मोक्षमुपगच्छन्ति।

समाधान करते हुए सूत्रकार कहते हैं—उस मुनिकी मुक्ति दोनों प्रकार से होती है, इसी बातको स्पष्ट करते हैं–' परेण परं जंति–परेण परं यान्ति ' मुक्तिप्राप्तिके योग्य क्षेत्र और कालकी प्राप्तिसे लघुकर्मी जीवों की उसी भवसे, और अन्य जीवोंकी परम्परासे–अन्य-अन्य भवोंसे मुक्ति होती है। इसी बातको टीकाकार स्पष्ट करते हैं—जैसे कितनेक जीव अपनी शक्तिके अनुसार संयमका आराधन करते हैं और संयमका आराधन करते२ ही वे उस भव सम्बन्धी आयु का अन्त होने पर काल कर कर्मावशेषसे सौधर्मादि देवलोकोंमें उत्पन्न होते हैं। वहांकी ऋद्धिका गृद्धिरहित हो भोग करते२ उस भव सम्बन्धी आयुका भी अन्त करके वे कर्मभूमि आर्यक्षेत्र और सुकुलमें जन्म पा कर फिरसे श्रद्धा संयमादिक की आराधना करनेमें लवलीन होने के प्रभावसे आयुके अवसानमें सौधर्मादिक देवलोकोंसे भी आगे विशिष्टतर अनुत्तरोपपातिक विमानमें देव हो जाते हैं। वहां से च्यव कर

સૂત્રકાર કહે છે કે તે મુનિની મુક્તિ બન્ને પ્રકારથી થાય છે. આ વાતને સ્પષ્ટ કરે છે—' परेण परं जंति '–'परेण परं यान्ति ' મુક્તિ પ્રાપ્તિને યોગ્ય ક્ષેત્ર અને કાળની પ્રાપ્તિથી લઘુકર્મી જીવોની તે ભવથી, અને અન્ય જીવોની પરંપરાથી–અન્ય ભવોથી મુક્તિ થાય છે, આ વાતને ટીકાકાર સ્પષ્ટ કરે છે–જેવી રીતે કેટલાક જીવો પોતાની શક્તિ–અનુસાર સંયમનું આરાધન કરે છે અને સંયમનું આરાધન કરતાં કરતાંજ તેભવસંબંધી આયુનો અંત થવાથી તે મરીને કર્માવશેષથી સૌધર્માદિ દેવલોકોમાં ઉત્પન્ન થાય છે. ત્યાંની ઋદ્ધિનો ગૃદ્ધિરહિત થઇ ભોગ કરતાં કરતાં તેભવસંબંધી આયુનો પણ અંત કરીને તે કર્મભૂમિ આર્યક્ષેત્ર અને સુકુળમાં જન્મ પામીને ફરીથી શ્રદ્ધાસંયમાદિકની આરાધના કરવામાં લવલીન થવાના પ્રભાવથી આયુના અવસાનમાં સૌધર્માદિક દેવલોકોથી પણ આગળ વિશિષ્ટતર અનુત્તરોપપાતિક વિમાનમાં દેવ બને છે. ત્યાંથી ચવીને સંયમ આરાધનાને યોગ્ય મહાવિદેહાદિ

यद्वा-परेण=चतुर्थगुणस्थानेन, परं=चतुर्दशगुणस्थानं यावत्, यान्ति=अधितिष्ठन्ति।

यद्वा---परेण अनन्तानुवन्धिकषायक्षयेण, परं=मोहनीयक्षयं घाति-भवोपग्राहिकर्मणां वा क्षयं यान्ति।

एवंभूता धीराः, जीवितं=आयुः, नावकाङ्क्षन्ति=कियद् व्यतीतं, कियदवशिष्टमिति न विभावयन्ति-दीर्घजीवित्वमसंयमजीवित्वं वा नेच्छन्तीत्यर्थः ॥सू०५॥

संयम आराधनाके योग्य महाविदेहादि क्षेत्रोंमें जन्म प्राप्त कर फिर सम्पूर्ण श्रुतचारित्रधर्मकी आराधनाके प्रभावसे समस्त कर्मोंका क्षयकर अपुनरावृत्तिस्वरूप मोक्षस्थान में जा विराजते हैं।

भावार्थ---' चारित्रप्राप्त मुनि उसी भवसे अथवा अन्यभव-से भी क्या मोक्ष जाते हैं?' ऐसी शिष्यकी आशङ्काका शास्त्रकार उत्तर देते हैं कि-जो संयमकी आराधना करते हैं वे जीव उसी भवमें, अथवा उस भवमें मोक्ष न जा कर अन्य भवोंसे भी मुक्तिका लाभ कर लेते हैं। जब तक वे मुक्तिका लाभ नहीं कर लेते तब तक वे उत्तम मनुष्यपर्याय एवं देवपर्यायमें उत्पन्न होते रहते हैं। मुक्तियोग्य क्षेत्र और काल की प्राप्ति होते ही पूर्ण संयमकी आराधनाके प्रभावसे घातिया और अघातिया कर्मोंका सर्वथा विनाश कर पंचमगति-मुक्तिका लाभ कर लेते हैं।

अथवा---" परेण परं यान्ति " इसका यह भी अर्थ होता है कि-जो कर्मोंके नाश करनेकी शक्तिसे सम्पन्न वीर हैं वे 'परेण' चतुर्थ गुण-

---

ક્ષેત્રોમાં જન્મ પ્રાપ્ત કરી ફરીથી શ્રુતચારિત્ર ધર્મની આરાધનાના કારણથી સમસ્ત કર્મોનો ક્ષય કરી અપુનરાવૃત્તિસ્વરૂપ મોક્ષસ્થાનમાં જઈ બિરાજે છે.

ભાવાર્થ---'ચારિત્રપ્રાપ્ત મુનિ તે ભવથી અથવા અન્ય ભવથી પણ શું મોક્ષ જાય છે?' એવી શિષ્યની આશંકાનો શાસ્ત્રકાર ઉત્તર દે છે કે જે સંયમની આરાધના કરે છે- તે જીવ તેજ ભવમાં અથવા તે ભવથી મોક્ષ ન જતાં અન્ય ભવોથી પણ મુક્તિનો લાભ કરી લે છે. જ્યાં સુધી તે મુક્તિનો લાભ નથી કરી લેતા ત્યાં સુધી તે ઉત્તમ મનુષ્યપર્યાય તેમજ દેવપર્યાયમાં ઉત્પન્ન થતા રહે છે, મુક્તિયોગ્ય ક્ષેત્ર અને કાળની પ્રાપ્તિ થતાં જ પૂર્ણ સંયમની આરાધનાના ભાવથી તે ઘાતિયા અને અઘાતિયા કર્મોનો સર્વથા વિનાશ કરી પંચમગતિ-મુક્તિનો લાભ કરી લે છે.

અથવા---" परेण परं यान्ति " તેનો એ પણ અર્થ થાય છે કે જે કર્મોનો નાશ કરવાની શક્તિથી સંપન્ન વીર છે તે 'परेण' ચોથા ગુણસ્થાનથી લગાવી

स्थानसे लगा कर 'परं' चौदहवें गुणस्थानतक जाते हैं, अर्थात्—"अ-इ-उ-ऋ-ऌ" इन पांच ह्रस्व अक्षरोंके उच्चारण करनेमें जितना समय लगता है उतने समय प्रमाण उस चौदहवें गुणस्थानमें उनकी स्थिति होती है, बादमें वे मुक्तिको प्राप्त करते हैं।

अथवा-प्रथम 'पर' शब्दका अर्थ अनन्तानुबन्धी कषायका क्षय भी है। द्वितीय 'पर' शब्दका अर्थ-मोहनीयका नाश, अथवा घाति अघाति कर्मोंका विनाश है। इसका यह फलितार्थ होता है कि-अनन्तानुबन्धी कषायके क्षयसे वे मोहनीय का क्षय, अथवा घाति और अघाति कर्मोंका क्षय करते हैं।

भावार्थ—वीरोंको चतुर्थ गुणस्थानसे लगा कर जो चौदहवें गुणस्थान तककी प्राप्ति बतलाई गई है उसका यह तात्पर्य है कि समकितकी प्राप्ति जीवोंको चौथे गुणस्थानमें हो जाती है। समकितका लाभ ही जीवोंको साक्षात् (भावचरित्र की अपेक्षासे) या परम्परारूपसे मुक्तिका कारण होता है। जिस व्यक्तिको समकितका लाभ हो जाता है उस भव्यात्माका अर्द्धपुद्गल परावर्त्तनमात्र काल संसारमें रहनेका रहता है, उससे अधिक नहीं। धीरे२ वह अपनी उन्नति करता हुआ आगे २ के गुणस्थानों पर आरोहण कर परिणामोंकी विशुद्धिके प्रभावसे घातिया और अघातिया कर्मोंके नाश

'परं' ચૌદમા ગુણસ્થાનક સુધી જાય છે, અર્થાત્ "अ-इ-उ-ऋ-ऌ" આ પાંચ હ્રસ્વ અક્ષરોના ઉચ્ચારણ કરવામાં જેટલો સમય લાગે છે તેટલા સમય પ્રમાણ તે ચૌદમાં ગુણસ્થાનમાં તેની સ્થિતિ થાય છે, બાદમાં તે મુક્તિને પ્રાપ્ત કરે છે.

અથવા પ્રથમ "पर" શબ્દનો અર્થ અનંતાનુબંધી કષાયનો ક્ષય પણ છે. બીજો 'पर' શબ્દનો અર્થ મોહનીયનો નાશ અથવા ઘાતિ અઘાતિ કર્મોનો વિનાશ છે. તેનો એ ફલિતાર્થ થાય છે કે અનંતાનુબંધી કષાયના ક્ષયથી મોહનીયનો ક્ષય, અથવા ઘાતિ અને અઘાતિ કર્મોનો ક્ષય તે કરે છે.

ભાવાર્થ:—વીરોને ચોથા ગુણસ્થાનથી લઈને જે ચૌદમાં ગુણસ્થાન-સુધીની પ્રાપ્તિ બતાવવામાં આવી છે તેનો એ તાત્પર્ય છે કે સમકિતની પ્રાપ્તિ જીવોને ચોથા ગુણસ્થાનમાં થઇ જાય છે. સમકિતનો લાભ જ જીવોને સાક્ષાત્ (ભાવચારિત્રની અપેક્ષાથી) અગર પરંપરા-રૂપથી મુક્તિનું કારણ થાય છે. જે વ્યક્તિને સમકિતનો લાભ થઇ જાય છે તે ભવ્યાત્માનો અર્દ્ધપુદ્ગલપરાવર્તનમાત્ર કાલ સંસારમાં રહેવાનું રહે છે, તેનાથી અધિક નહિ. ધીરે ધીરે તે પોતાની ઉન્નતિ કરતાં કરતાં આગળ આગળના ગુણસ્થાનો ઉપર આરોહણ કરી પરિણામોની વિશુદ્ધિના પ્રભા-

से प्राप्त होनेवाली मुक्तिका स्वामी हो जाता है। इसी अभिप्रायको लेकर "अनन्तानुबन्धी कषायके क्षयसे मोहनीयका अथवा घाती अघाती कर्मोंका नाश कर वे मुक्तिको पाते हैं" यह बात कही गई है, क्यों कि अनन्तानुबन्धिचतुष्क और दर्शनमोहनीयत्रिकका जब तक आत्मामें क्षय आदि नहीं होता है तब तक समकित गुणकी प्राप्ति नहीं होती है। इस लिये अनन्तानुबन्धी कषायका क्षय आदि ही मोहनीयकर्मके नाश आदिमें कारण होते हैं। मोहनीयके अभाव होते ही शेषकर्म भी बहुत शीघ्रतासे नष्ट हो जाते हैं। टीकाकारने-"परेण" इस पदका अर्थ जो 'अनन्तानुबन्धिकषायक्षयेण' अर्थात्-अनन्तानुबन्धी कषायका क्षय रूप किया है, उसका अभिप्राय यह है कि शिष्यने जो यह प्रश्न किया है कि-"प्राप्तचरित्रवालेकी मुक्ति एक ही भवसे होती है या अन्य भवों से होती है?" सो इसका समाधान "अन्य भवोंसे होती है" ऐसा तो पहिले किया जा चुका है। यहां पर तो "क्या एक भवसे होती है?" इसका समाधान किया गया है, क्यों कि अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्क एवं दर्शनमोहनीयत्रिकके क्षयसे जीवोंको क्षायिक-सम्यक्त्वका लाभ होता है। क्षायिकसम्यक्त्वी यदि क्षपकश्रेणि पर आरूढ होते हैं तो नियमसे उसी भवसे मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

વથી ઘાતિયા અને અઘાતિયા કર્મોના નાશથી પ્રાપ્ત થવાવાળી મુક્તિનો સ્વામી થઈ જાય છે. આ અભિપ્રાયને લઇને 'અનંતાનુબંધી કષાયના ક્ષયથી મોહનીયનો અથવા ઘાતી અઘાતી કર્મોનો નાશ કરી તે મુક્તિને પ્રાપ્ત કરે છે.' એ વાત કહેવાઈ ગઈ છે. કારણ કે અનંતાનુબંધિચતુષ્ક અને દર્શનમોહનીયત્રિકનો જ્યાં સુધી આત્મામાં ક્ષય આદિ નથી થતો ત્યાં સુધી સમકિત-ગુણની પ્રાપ્તિ થતી નથી. તેથી અનંતાનુબંધી કષાયનો ક્ષય આદિ મોહનીય કર્મના નાશ આદિમાં કારણ થાય છે. મોહનીયનો અભાવ થતાં જ શેષ કર્મ પણ બહુ શીઘ્રતાથી વિનષ્ટ થઇ જાય છે. ટીકાકારે "परेण" આ પદનો અર્થ જે "अनन्तानुबधिकषायक्षयेण"-અર્થાત્ અનંતાનુબંધી કષાયનો ક્ષયરૂપ કરેલ છે તેનો અભિપ્રાય છે કે શિષ્યે જે એ પ્રશ્ન કરેલ છે કે—'પ્રાપ્તચારિત્રવાળાની મુક્તિ એક જ ભવથી થાય છે?' અથવા અન્ય ભવથી થાય છે.' તો તેનું સમાધાન 'અન્ય ભવોથી થાય છે' એવું તો પહેલાં કહી ચુકેલ છે. આ ઠેકાણે તો 'શું એક ભવથી થાય છે?' તેનું સમાધાન કરવામાં આવેલ છે. કારણ કે અનન્તાનુબંધિકષાયચતુષ્ક અને દર્શનમોહનીયત્રિકના ક્ષયથી જીવોને ક્ષાયિક-સમ્યકત્વનો લાભ થાય છે. ક્ષાયિકસમ્યકત્વી જો ક્ષપક શ્રેણી ઉપર આરૂઢ થાય છે તો તે નિયમથી તે ભવમાં મુક્તિ પ્રાપ્ત કરી લે છે.

यश्चानन्तानुबन्ध्यादिक्षपणप्रवृत्तः, स किमेकस्यैव क्षये प्रवर्तते उतानेकस्येत्याह –' एगं विगिंचमाणे ' इत्यादि ।

मूलम्—एगं विगिंचमाणे पुढो विगिंचइ, पुढो विगिंचमाणे एगं विगिंचइ ॥ सू० ६ ॥

ऐसे वीर " नावकाङ्क्षन्ति जीवितम् " इस बातका विचार नहीं करते हैं कि मेरी आयु कितनी व्यतीत हो गई है और कितनी अब बाकी है ? । क्यों कि दीर्घ आयुष्य भी मिला और उसमें असंयम जीवन रहा तो आत्माका इससे कोई हित नहीं हो सकता है । अतः उन्हें जो कुछ भी जीवन प्राप्त होता है उसीमें वे सन्तुष्ट रह कर अपने जीवनको सफल बनानेका प्रयत्न करते रहते हैं । जितनी भी आयु उनकी व्यतीत हो चुकी है वह, तथा आगे भी जो व्यतीत होती है वह सब आत्मोद्धार के सदुपायोंके सेवन करते२ ही व्यतीत होती है । असंयमजीवनकी चाहना इनमें होती नहीं है । अतः ऐसे जीव अपनी आयुके व्यतीत होनेका और उसके अवशिष्ट रहनेका विचार नहीं करते हैं, अर्थात् ये असंयम जीवन और दीर्घ जीवनकी चाहना नहीं करते हैं ॥ सू० ५ ॥

जो अनन्तानुबन्धी आदिके क्षय करनेमें प्रवृत्त हैं वह क्या एकके ही क्षय करनेमें प्रवृत्ति करता है ? अथवा अन्यके भी क्षय करनेमें प्रवृत्ति करता है ? इस आशङ्काका समाधान करनेके लिये कहते हैं–' एगं विगिंचमाणे ' इत्यादि ।

આવા વીર " नावकाङ्क्षन्ति जीवितम् " એ વાતનો વિચાર નથી કરતા કે મારી આયુ કેટલી વ્યતીત થઈ ગઇ છે અને હવે કેટલી બાકી છે ? કારણુ કે દીર્ઘ આયુષ્ય પણુ મળે અને તેમાં અસંયમ જીવન રહ્યું તો આત્માનું તેમાં હિત કોઈ પ્રકારે થતું નથી. માટે તેને જે કાંઈ જીવન પ્રાપ્ત થાય છે તેમાં તે સંતુષ્ટ રહી પોતાના જીવનને સફળ બનાવવા માટે પ્રયત્ન કરતા રહે છે. જેટલી પણુ આયુ તેની વ્યતીત થવાવાળી છે તે સઘળી આત્મોદ્ધારના સદુપાયોનુ સેવન કરતાં કરતાં વ્યતીત થાય છે, અસંયમ જીવનની ચાહના તેમાં થતી નથી. માટે તેવા જીવ પોતાની આયુના વ્યતીત થવાનો તથા તેના અવશિષ્ટ રહેવાનો વિચાર કરતા નથી. અર્થાત્ તે અસંયમ જીવન અને દીર્ઘ જીવનની ચાહના કરતા નથી. ॥ સૂ૦ ૫ ॥

જે અનન્તાનુબંધી આદિનો ક્ષય કરવામાં પ્રવૃત્ત છે તે શું એકનો જ ક્ષય કરવામાં પ્રવૃત્ત થાય છે ? અથવા અન્યનો પણુ ક્ષય કરવામાં પ્રવૃત્તિ કરે છે. આ શંકાનું સમાધાન કરવા માટે કહે છે—' एगं विगिंचमाणे ' ઇત્યાદિ.

छाया–एकं विवेचयन् पृथक् वेवेक्ति, पृथग् विवेचयन् एकं वेवेक्ति ॥सू०६॥

टीका–एकम्=अनन्तानुवन्धिनं क्रोधं, विवेचयन्=क्षपयन् क्षपकश्रेणिसमारूढः संयतः, पृथक्=अन्यदपि अनन्तानुवन्धिचतुष्टयं, मिथ्यात्व–मिश्र–सम्यक्त्व-मोहनीयत्रयं चेति मिथ्यात्वसप्तकं, वेवेक्ति=नियमतः क्षपयति। यो वद्धायुष्कः, सोऽपि त्रीन् भवान् नातिक्रामति। तृतीये भवे नियमतो मोक्षं प्राप्नोति। अवद्धायुष्कस्तु–मोहनीयस्य सप्तविंशतिं कर्मांशान् नियमतः क्षपयति, चत्वारि घातिकर्माणि वा, सिध्यन् वा चत्वारि केवलिकर्माणि क्षपयति।

अनन्तानुबन्धी क्रोधका क्षय करनेवाला क्षपकश्रेणिमें आरूढ संयत नियमसे अनन्तानुवन्धिचतुष्टय एवं मिथ्यात्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय, इन सात प्रकृतियोंका क्षय करता है। जो बद्धायुष्क (आयुकर्मका पहले बंध कर चुका है) वह भी तीन भवों को उल्लंघन नहीं करता, अर्थात् तृतीय भवमें नियमसे मुक्तिका लाभ कर लेता है। अवद्धायुष्क–(जिसने पहले आयुकर्मका वन्ध नहीं किया है वह) जीव मोहनीय कर्मकी २७ सत्ताईस प्रकृतियोंका नियमसे नाश करता है। अथवा चार घातिया कर्मोंका नाश कर के अवशिष्ट चार अघातिया कर्मोंका भी नाश कर देता है।

भावार्थ—पूर्वोक्त सात प्रकृतियोंके क्षयसे जिसने क्षायिक–सम्यक्त्वका लाभ किया है, और क्षायिक–सम्यक्त्वको ले कर क्षपकश्रेणि पर चढा है उस जीवकी मुक्ति नियमतः उसी भवसे हो जाती है। परंतु ऐसा जीव यदि बद्धायुष्क है तो वह उस भवसे मुक्तिका लाभ न कर

અનન્તાનુબંધી ક્રોધનો ક્ષય કરવાવાળા ક્ષપકશ્રેણિમાં આરૂઢ સંયત નિયમથી અનન્તાનુબંધિચતુષ્ટય અને મિથ્યાત્વમોહનીય, મિશ્રમોહનીય અને સમ્યક્ત્વમોહનીય, એ સાત પ્રકૃતિઓનો ક્ષય કરે છે. જે બદ્ધાયુષ્ક (આયુકર્મનો જે પહેલાં બંધ કરી ચુકેલ છે) તે પણ ત્રણ ભવોનું ઉલ્લંઘન નથી કરતા, અર્થાત્ ત્રીજા ભવમાં નિયમથી મુક્તિનો લાભ કરી લે છે. અબદ્ધાયુષ્ક (જેણે પહેલા આયુકર્મનો બંધ નથી કર્યો તે) જીવ મોહનીય કર્મની ૨૭ સતાવીસ પ્રકૃતિયોનો નિયમથી નાશ કરે, છે અથવા ચાર ઘાતીયા કર્મોનો નાશ કરીને અવશિષ્ટ ચાર અઘાતિયા કર્મોનો પણ નાશ કરી નાખે છે.

ભાવાર્થ—પૂર્વોક્ત સાત પ્રકૃતિયોના ક્ષયથી જેણે ક્ષાયિક–સમ્યક્ત્વનો લાભ કરેલ છે, અને ક્ષાયિક–સમ્યક્ત્વને લઇને ક્ષપકશ્રેણિ ચઢેલ છે તે જીવની મુક્તિ નિયમતઃ તે ભવથી થઇ જાય છે, પરંતુ તેવા જીવ કદાચ બદ્ધાયુષ્ક છે તો તે, તે

यद्वा-पृथक्=अन्यदपि मिथ्यात्वसप्तकं विवेचयन्=क्षपयन्, एकम्=अनन्तानुबन्धिक्रोधं वेवेक्ति=नियमतः क्षपयति ॥ सू० ६ ॥

केन गुणेन क्षपकश्रेणियोग्यतां प्राप्नोतीति बोधयितुं कर्मक्षपणोद्यतस्य विशेषणान्याह-'सड्ढी' इत्यादि ।

मूलम्-सड्ढी आणाए मेहावी ॥ सू० ७ ॥

छाया—श्रद्धी आज्ञया मेधावी ॥ सू० ७॥

टीका—श्रद्धी=मोक्षाभिलाषरूपा जिनमताभिरुचिः श्रद्धा, साऽस्यास्तीति तथाविधः; स हि केवलिनो भावितात्मनोऽनगारस्य वा समीपे धर्मं श्रुत्वा संयमं प्रतिपद्यते। आज्ञया=आर्हतागमानुसारेण प्रवर्तमानः, मेधावी=अप्रमत्तसंयमी क्षपकश्रेणियोग्यो भवति, नान्य इत्यर्थः ॥ सू० ७ ॥

दूसरे अथवा तीसरे भवमें तो नियमसे मुक्तिको प्राप्त करनेवाला होता है। यदि अबद्धायुष्क है तो वह उसी भवसे मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

इसी तरह—"पुढो विगिंचमाणे एगं विगिंचइ" अर्थात् मिथ्यात्वसप्तकका क्षय करनेमें प्रवृत्त संयत एक अर्थात् अनन्तानुबन्धी क्रोधका नियमसे क्षय करता है ॥ सू० ६ ॥

किस गुणसे मुनि क्षपकश्रेणिकी योग्यताको प्राप्त करता है? इस बातको समझानेके लिये कर्मोंके क्षय करनेमें उद्यत मुनिके विशेषणोंको कहते हैं-'सड्ढी' इत्यादि।

मोक्षकी अभिलाषारूप जिनमतकी ओर अभिरुचिका नाम श्रद्धा है। इस प्रकारकी श्रद्धासे सम्पन्नका नाम श्रद्धी-श्रद्धावान् है। श्रद्धावान् व्यक्ति केवली अथवा अन्य किसी भावितात्मा साधुके समीप धर्मका श्रवण कर संयमको ग्रहण करता है। अरिहन्तदेवद्वारा प्रति-

---

ભવમાં મુક્તિનો લાભ ન પામીને બીજા અથવા ત્રીજા ભવમાં તો નિયમથી મુક્તિને પ્રાપ્ત કરવાવાળા થાય છે. જો અબદ્ધાયુષ્ક છે તો તે તેજ ભવથી મુક્તિ પ્રાપ્ત કરી લે છે.

આવી રીતે "પુઢો વિગિંચમાણે એગં વિગિંચઇ" અર્થાત્ મિથ્યાત્વસપ્તકનો ક્ષય કરવામાં પ્રવૃત્ત સંયત એક અર્થાત્ અનંતાનુબંધી ક્રોધનો નિયમથી ક્ષય કરે છે. ॥ સૂ૦ ૬ ॥

કયા ગુણથી મુનિ ક્ષપક શ્રેણીની યોગ્યતાને પ્રાપ્ત કરે છે? આ વાતને સમજાવવા માટે કર્મોના ક્ષય કરવામાં ઉદ્યત મુનિના વિશેષણોને કહે છે-'સડ્ઢી' ઈત્યાદિ.

મોક્ષની અભિલાષારૂપ જીનમતની તરફ અભિરૂચિનું નામ શ્રદ્ધા છે, આ પ્રકારની શ્રદ્ધાથી સંપન્નનું નામ શ્રદ્ધી-શ્રદ્ધાવાન છે. શ્રદ્ધાવાન વ્યક્તિ કેવળી અથવા અન્ય કોઈ પણ ભાવિતાત્મા સાધુની સમીપે ધર્મનું શ્રવણ કરી સંયમને ગ્રહણ

किंच—'लोगं च' इत्यादि ।

मूलम्—लोगं च आणाए अभिसमिच्च अकुतोभयं ॥सू० ८॥

छाया—लोकं चाऽऽज्ञया अभिसमेत्य अकुतोभयम् ॥ सू० ८ ॥

टीका—च-शब्दः समुच्चयार्थः । लोकं=षड्जीवनिकायरूपम् , आज्ञया=जिनप्रवचनेन, अभिसमेत्य=विदित्वा, अकुतोभयम्=कुतश्चित् कारणादुत्पद्यमानस्य भयस्याभावो यथा भवति षड्जीवनिकायलोकस्य, तथारूपं संयमं कुर्यादित्यर्थः ॥सू०८॥

पादित आगमके अनुसार प्रवृत्ति करनेवाला अप्रमत्त संयमी जीव क्षपकश्रेणिके योग्य होता है, अन्य नहीं ।

भावार्थ—श्रद्धासम्पन्न व्यक्ति संयमकी आराधना कर जब सप्तमगुणस्थानवर्त्ती हो जाता है तभी वह क्षपकश्रेणिपर आरूढ होनेके योग्य माना जाता है ॥ सू० ७ ॥

और भी कहते हैं—"लोगं च" इत्यादि ।

यहां "च" शब्द समुचय अर्थमें है । मुनि इस षड्जीवनिकायरूप लोकको जिनप्रवचन–आगम–से जान कर 'जिस प्रकार भविष्यमें उस षड्जीवनिकायरूप लोकको अपनेद्वारा भयका अभाव हो' इस प्रकार संयमकी आराधना करता रहे ।

भावार्थ—संयमकी आराधना करनेकी आवश्यकता इसी लिये है कि जिससे अन्य जीवोंकी रक्षा होती रहे । असंयम प्रवृत्तिसे जीवोंका घात होता है । ऐसे व्यक्तियोंको इस लोक और परलोकमें सदा भयका

करे છે. અરિહંતદ્વારા પ્રતિપાદિત આગમ–અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા અપ્રમત્ત સંયમી જીવ ક્ષપકશ્રેણીને યોગ્ય થાય છે–અન્ય નહિ.

ભાવાર્થ:—શ્રદ્ધાસંપન્ન વ્યક્તિ સંયમની આરાધના કરી જ્યારે સાતમા ગુણસ્થાનવર્તી થઈ જાય છે ત્યારે તે ક્ષપક શ્રેણી પર આરૂઢ હોવાના યોગ્ય માનવામાં આવે છે. ॥ સૂ૦ ૭ ॥

વળી બીજું પણ કહે છે— "लोगं च" ઇત્યાદિ.

આ ઠેકાણે "च" શબ્દ સમુચ્ચય અર્થમાં છે. મુનિ આ ષડ્જીવનિકાયરૂપ લોકને જીનપ્રવચન–આગમથી જાણીને જે પ્રકારે ભવિષ્યમાં તે ષડ્જીવનિકાયરૂપ લોકને પોતાના દ્વારા ભયનો અભાવ હોય એ પ્રકારે સંયમની આરાધના કરતા રહે.

ભાવાર્થ—સંયમની આરાધના કરવાની આવશ્યકતા એટલા માટે છે કે જેનાથી અન્ય જીવોની રક્ષા થતી રહે, અસંયમ પ્રવૃત્તિથી જીવોનો ઘાત થાય છે. એવી

तदपि भयं षड्जीवनिकायलोकस्य शस्त्रादेव भवति । तस्य शस्त्रस्य किं प्रकर्ष-परम्पराऽस्ति ? नास्ति वा ? इति शिष्यजिज्ञासायाम् 'अस्ती'-ति बोधयितुमाह—'अत्थि' इत्यादि ।

यद्वा-शस्त्रतो भयं भवति, अतस्तत् परिहर्तव्यमित्याशयेन-शस्त्रं कथयति-'अत्थि' इत्यादि ।

मूलम्—अत्थि सत्थं परेण परं, नत्थि असत्थं परेण परं ॥सू०९॥

छाया—अस्ति शस्त्रं परेण परम् , नास्ति अशस्त्रं परेण परम् ॥ सू० ९ ॥

टीका-शस्त्रं=द्रव्यभावभेदाद् द्विविधं; तत्र द्रव्यशस्त्रं खड्गादिकं, तत् परेण परमस्ति, लोहकर्तृसंस्कारानुसारेण द्रव्यशस्त्रं तीव्रात् तीव्रतरमस्तीत्यर्थः । यद्वा—यत् पीडा-

---

सामना करना पड़ता है । संयमी जीव इस प्रकारके भयसे सदा निर्मुक्त रहते हैं ॥ सू० ८ ॥

इस षड्जीवनिकायरूप लोकके लिये भय शस्त्रसे ही होता है । यह बात जब निश्चित है तो क्या उस शस्त्रमें प्रकर्षकी परम्परा है या नहीं ? इस प्रकार की शिष्यकी आशङ्काका उत्तर कहते हैं-' अत्थि सत्थं ' इत्यादि ।

अथवा-शस्त्रसे भय होता है; अतः उसका परिहार करना चाहिये, इस आशयसे शस्त्रको कहते हैं-' अत्थि सत्थं ' इत्यादि ।

शस्त्र, द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकारका है । तलवार वगैरह द्रव्य शस्त्र हैं । इनमें प्रकर्षकी परम्परा, शस्त्रको बनानेवाले लुहारके संस्कार के अनुसार आती है । कोई तलवार अत्यन्त तीक्ष्ण होती है और कोई उससे भी अधिक । अथवा जो जीवको पीडाकारक होता है वही शस्त्र

વ્યક્તિઓને આ-લોક અને પરલોકમાં સદા ભયનો સામનો કરવો પડે છે. સંયમી જીવ આ પ્રકારના ભયથી સદા નિર્મુક્ત રહે છે. ॥ સૂ૦ ૮ ॥

આ ષડ્જીવનિકાયરૂપ લોકના માટે ભય શસ્ત્રથી જ થાય છે. એ વાત જ્યારે નિશ્ચિત છે તો શું તે શસ્ત્રમાં પ્રકર્ષની પરંપરા છે યા નહિ ? આ પ્રકારે શિષ્યની આશંકાનું ઉત્તર કહે છે—' अत्थि सत्थं ' ઇત્યાદિ.

અથવા શસ્ત્રથી ભય થાય છે, માટે તેનો પરિહાર કરવો જોઇએ; એ આશયથી શસ્ત્રને કહે છે—' अत्थि सत्थं ' ઇત્યાદિ.

શસ્ત્ર દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી બે પ્રકારે છે. તલવાર વિગેરે દ્રવ્ય-શસ્ત્ર છે. તેમાં પ્રકર્ષની પરંપરા, શસ્ત્રના બનાવવાળા લુહારના સંસ્કાર અનુસાર આવે છે, કોઇ તલવાર અત્યંત તીક્ષ્ણ હોય છે અને કોઇ તેનાથી પણ અધિક. અથવા જે જીવોને પીડાકારક થાય છે તે શસ્ત્ર છે, પીડાકારક એક જ વસ્તુથી અન્ય

कारकं तदेव शस्त्रमित्युच्यते। एकस्मात् पीडाजनकादन्यत् पीडाजनकं प्रादुर्भवति। यथा–खड्गाभिघातेन शिरःपीडा, ततो ज्वरः, ततोऽपि मूर्च्छोदय इति। भावशस्त्रस्य पारम्पर्यं त्वत्रैवोद्देशके 'जे कोहदंसी' इत्यादिनाऽनुपदं वक्ष्यति।

यथा शस्त्रस्य पारम्पर्यमस्ति, न तथा पारम्पर्यमशस्त्रस्यास्तीत्याह—'नास्ति' इत्यादि। अशस्त्रं संयमः, तत् परेण परं नास्ति–प्रकर्षपरम्परायुक्तं न भवतीत्यर्थः। यथा पृथिव्यादिजीवेषु स्वात्मना समभावः कर्तव्यः, तत्र–'एगे आया' इति भगवद्वचनाद् मन्दतीव्रभेदो नास्ति, तस्मात् तत्र समत्वसद्भावात् सामायिकस्य न प्रकर्षपारम्पर्यम्। यद्वा–शैलेश्यवस्थासंयमात्परः संयमो नास्ति, तदूर्ध्वं गुणस्थानाभावादिति भावः॥ सू० ९॥

है। पीडाकारक एक ही वस्तुसे अन्य अनेक बातें उत्पन्न होती हैं, जैसे तलवारद्वारा मारनेसे लगनेवालेके शिरमें पीडा, उससे ज्वर, उससे भी उसे मूर्छा आदि दुःख होते हैं। ये सब बातें द्रव्यशस्त्रमें प्रकर्ष परम्पराकी द्योतक हैं।

भावशस्त्रमें प्रकर्षकी परम्परा इसी उद्देशमें इसीके आगे "जे कोहदंसी" इस सूत्रमें कहेंगे। जिस प्रकार शस्त्रमें प्रकर्षकी परम्परा है उस प्रकार अशस्त्रमें प्रकर्षपरम्परा नहीं है, इस बातको "नत्थि" इस वाक्य से सूत्रकार प्रकट करते हैं—अशस्त्र नाम संयमका है, वह "परेण परं नास्ति" प्रकर्षपरम्परासे युक्त नहीं होता है। जैसे–पृथिवीकायिकादि जीवोंमें संयमीको आत्मतुल्यताकी भावना रखनी चाहिये, क्यों कि यह वचन है "एगे आया" आत्मा एक है। इस प्रकारकी भावनारूप संयम में मन्द और तीव्र भेद नहीं है। इस कारण समस्त पृथिवीकायिकादि

અનેક વાતો ઉત્પન્ન થાય છે. જેમ–તલવાર દ્વારા મારવાથી લાગવાવાળાના માથામાં પીડા, તેનાથી જ્વર, તેનાથી તેને મૂર્છા આદિ દુઃખ થાય છે એ સઘળી વાતો દ્રવ્યશસ્ત્રમાં પ્રકર્ષપરંપરાની દ્યોતક છે.

ભાવશસ્ત્રમાં પ્રકર્ષની પરંપરા આ જ ઉદ્દેશમાં એનાથી આગળના "जे कोहदंसी" એ સૂત્રમાં કહેવામાં આવશે. જે પ્રકારે શસ્ત્રમાં પ્રકર્ષની પરંપરા છે તે પ્રકારે અશસ્ત્રમાં પ્રકર્ષપરંપરા નથી. એ વાતને "नत्थि" ઇત્યાદિ વાક્યથી સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે. અશસ્ત્ર નામ સંયમનુ છે, તે "परेण परं नास्ति" પ્રકર્ષ–પરંપરાથી યુક્ત થતું નથી જેમ–પૃથિવીકાયાદિ જીવોમાં સંયમીએ આત્મ તુલ્યતાની ભાવના રાખવી જોઈએ, કારણ કે ભગવાનનુ એ વચન છે–'एगे आया' આત્મા એક છે. આ પ્રકારની ભાવનારૂપ સંયમમાં મન્દ અને તીવ્ર ભેદ નથી. એ કારણથી સમસ્ત પૃથિવીકાયાદિક જીવોમાં સમતાશાળી સંયમીના સામાયિક

भावशस्त्रं कथं परेण परमस्तीत्याह—' जे कोहदंसी ' इत्यादि ।

मूलम्—जे कोहदंसी से माणदंसी, जे माणदंसी से मायादंसी, जे मायादंसी से लोहदंसी, जे लोहदंसी से पेज्जदंसी, जे पेज्जदंसी से दोसदंसी, जे दोसदंसी से मोहदंसी, जे मोहदंसी से गब्भदंसी, जे गब्भदंसी से जम्मदंसी, जे जम्मदंसी से मारदंसी, जे मारदंसी से नरयदंसी, जे नरयदंसी से तिरियदंसी, जे तिरियदंसी से दुक्खदंसी ॥ सू० १० ॥

जीवोंमें समताशाली संयमीके सामायिकरूप चारित्रमें तीव्रमन्दरूप प्रकर्षकी परम्परा नहीं है। अथवा-शैलेशी अवस्थाके संयमसे आगे गुणस्थानका अभाव होनेसे और कोई पर-उत्कृष्ट-संयम नहीं है ।

भावार्थ—शैलेशी अवस्था चौदहवें गुणस्थानमें होती है, क्यों कि इसी गुणस्थानमें चारित्रकी पूर्णता होती है। यथाख्यात-चारित्रसे और कोई चारित्र तो ऐसा उत्कृष्ट है नहीं जो इससे भी अधिक उत्कृष्ट हो, इस लिये इस अवस्थाके चारित्रमें प्रकर्षकी परम्पराका निषेध है। चारित्रके भेदोंमें परस्पर प्रकर्षाप्रकर्षवृत्ति भले ही हो परन्तु किसी भी चारित्रमें निजमें प्रकर्षाप्रकर्षवृत्ति नहीं है । यथाख्यात-चारित्र स्वयं प्रकर्षकी अवधिस्वरूप है ॥ सू० ९ ॥

द्रव्यशस्त्रमें प्रकर्षपरम्पराको स्पष्ट कर अब 'भावशस्त्रमें वह प्रकर्षपरम्परा कैसे है ?' इसे स्पष्ट करनेके लिये कहते है-'जे कोहदंसी' इत्यादि।

રૂપ ચારિત્રમાં તીવ્રમંદરૂપ પ્રકર્ષની પરંપરા નથી. અથવા શૈલેશી અવસ્થાના સંયમથી આગળ ગુણસ્થાનનો અભાવ થવાથી બીજો કોઈ ઉત્કૃષ્ટ સંયમ નથી.

ભાવાર્થ—શૈલેશી અવસ્થા ચૌદમા ગુણસ્થાનમાં થાય છે, કારણ કે તે ગુણસ્થાનમાં ચારિત્રની પૂર્ણતા થાય છે. યથાખ્યાત-ચારિત્રથી બીજા કોઇ ચારિત્ર તો એવું ઉત્કૃષ્ટ છે નહિ કે જે એનાથી પણ અધિક ઉત્કૃષ્ટ હોય. માટે આ અવસ્થાના ચારિત્રમાં પ્રકર્ષની પરંપરાનો નિષેધ કરે છે. ચારિત્રના ભેદોમાં પરસ્પર પ્રકર્ષાપ્રકર્ષ વૃત્તિ ભલે હોય પરંતુ કોઈ પણ ચારિત્રમાં પોતામાં પ્રકર્ષાપ્રકર્ષવૃત્તિ નથી. યથાખ્યાત-ચારિત્ર સ્વયં પ્રકર્ષની અવધિસ્વરૂપ છે. ॥ સૂ૦ ૯ ॥

દ્રવ્યશસ્ત્રમાં પ્રકર્ષપરંપરાને સ્પષ્ટ કરીને હવે 'ભાવશસ્ત્રમાં તે પ્રકર્ષ પરંપરા કેવી રીતે છે?' તેને સ્પષ્ટ કરવા માટે કહે છે—' जे कोहदंसी ' ઇત્યાદિ.

छाया—यः क्रोधदर्शी स मानदर्शी, यः मानदर्शी स मायादर्शी, यो मायादर्शी स लोभदर्शी, यो लोभदर्शी स प्रेमदर्शी, यः प्रेमदर्शी स द्वेषदर्शी, यो द्वेषदर्शी स मोहदर्शी, यो मोहदर्शी स गर्भदर्शी, यो गर्भदर्शी स जन्मदर्शी, यो जन्मदर्शी स मारदर्शी, यो मारदर्शी स नरकदर्शी, यो नरकदर्शी स तिर्यग्दर्शी, यस्तिर्यग्दर्शी स दुःखदर्शी ॥ सू० १० ॥

टीका—यः क्रोधदर्शी क्रोधं पश्यति–भावयति क्रुध्यतीत्यर्थः, क्रोधं दर्शयतीति यावत्। यथा क्रुद्धस्य दृष्टिस्तीव्रा, प्रसन्नचित्तस्य तु सितकमलवद्धवला भवति। स मानदर्शी मानं पश्यति–भावयति, गर्वं दर्शयतीति यावत्। एवमग्रेऽपि योजनीयं यावत्–'स मोहदर्शी'ति। यो मोहदर्शी–मोहाऽऽक्रान्तः, स गर्भदर्शी गर्भं पश्यति–गर्भवासोद्भूतदुःखानुभवी भवतीत्यर्थः। एवं–'स तिर्यग्दर्शी'–ति

जो क्रोधदर्शी है अर्थात् क्रोधको देखता है–क्रोध करनेकी भावना करता है–क्रुद्ध होता है, दूसरे व्यक्ति पर क्रोध दिखलाता है, जैसे–'क्रुद्ध व्यक्तिकी दृष्टि तीव्र होती है, प्रसन्नचित्तवालेकी सफेद कमल जैसी धवल होती है' इस प्रकारसे जो दूसरोंके लिये दृष्टि वगैरह चिह्नोंसे अपनी क्रोधपरिणति दिखलाता है–प्रकट करता है वह मानदर्शी होता है–मानको देखता है–मान करनेकी भावना करता है, मान करता है–अन्यके लिये वह अपनी मानपरिणति प्रकट करता है। इसी प्रकार जो मानदर्शी है वह मायादर्शी होता है। जो मायादर्शी है वह लोभदर्शी है। जो लोभदर्शी है वह रागदर्शी है। जो रागदर्शी है वह द्वेषदर्शी है। जो द्वेषदर्शी है वह मोहदर्शी है। जो मोहदर्शी होता है वह गर्भदर्शी होता है। इसका भाव यह है कि–मोहदर्शी प्राणी गर्भा-

જે ક્રોધદર્શી છે અર્થાત્ ક્રોધને દેખે છે–ક્રોધ કરવાની ભાવના કરે છે–ક્રુદ્ધ થાય છે, બીજી વ્યક્તિના ઉપર ક્રોધ દેખાડે છે. જેમ–'ક્રુદ્ધ વ્યક્તિની દૃષ્ટિ તીવ્ર હોય છે. પ્રસન્ન ચિત્તવાળાની સફેદ કમળ જેવી ધવળ હોય છે.' એવા પ્રકારથી જે બીજાઓને માટે દૃષ્ટિ વિગેરે ચિન્હોથી પોતાની ક્રોધ–પરિણતિ દેખાડે છે–પ્રકટ કરે છે તે માનદર્શી થાય છે–માનને દેખે છે–માન કરવાની ભાવના રાખે છે, માન કરે છે–બીજાને માટે તે પોતાની માન–પરિણતિ પ્રગટ કરે છે. એ પ્રકારે માનદર્શી છે તે માયાદર્શી હોય છે. જે માયાદર્શી છે તે લોભદર્શી છે, જે લોભદર્શી છે તે રાગદર્શી છે. જે રાગદર્શી છે તે દ્વેષદર્શી છે, જે દ્વેષદર્શી છે તે મોહદર્શી છે જે મોહદર્શી છે તે ગર્ભદર્શી છે. તેનો ભાવ એ છે કે–મોહદર્શી પ્રાણી ગર્ભાવાસથી ઉત્પન્ન અનન્ત

यावदवगन्तव्यम् । यस्तिर्यग्दर्शी=तिर्यग्भवनिगोदसम्बन्धिदुःखदर्शी, स दुःखदर्शी –इह दुःखशब्देन सर्वतः समुत्कृष्टतमं निगोदभवसम्बन्धि दुःखं परिगृह्यते, तत् पश्यति=अनुभवतीत्यर्थः । एतेन गर्भदर्शीत्यादावपि दुःखदर्शित्वेन तिर्यग्दर्शिन एव दुःखदर्शित्वकथनमयुक्तमिति शङ्कावसरो नास्तीति बोध्यम् । अनेन–पारम्पर्यापन्नस्य सर्वस्य भावशस्त्रस्य निदानं क्रोधः, तथा सर्वतः समुत्कृष्टदुःखं निगोदभवेऽस्तीति ध्वनितम् ॥ सू० १० ॥

वाससे उत्पन्न अनन्त यातनाओंको भोगता है । इसी प्रकार जो गर्भदर्शी है वह जन्मदर्शी है । जो जन्मदर्शी है वह मरणदर्शी है। जो मरणदर्शी है वह नरकदर्शी है । जो नरकदर्शी है वह तिर्यग्दर्शी है, जो तिर्यग्दर्शी है अर्थात् तिर्यञ्चगतिस्वरूप निगोदके दुःखोंका अनुभवकर्त्ता है वह वहां के सर्वोत्कृष्ट दुःखोंका अनुभव करता है । यही भाव "स दुःखदर्शी" इस पदसे सूत्रकारने प्रकट किया है । यहां दुःख–शब्दसे सर्वोत्कृष्ट निगोदसम्बन्धी दुःखों का ही ग्रहण किया है। इस लिये "यो गर्भदर्शी" इत्यादि पद हैं उनमें भी दुःखदर्शित्व तो आता ही है, फिर भी जो तिर्यग्दर्शी में ही दुःखदर्शित्व स्वतन्त्र रूपसे प्रकट किया गया है वह अयुक्त है । इस प्रकारकी शङ्का करनेका यहां अवसर ही नहीं प्राप्त होता है । इस समस्त कथनसे यह ध्वनित होता है कि इस प्रकर्षपरम्पराप्राप्त भावशस्त्रका निदान–मूल कारण–क्रोध है और सबसे उत्कृष्ट दुःख निगोदभवमें है ।

યાતનાઓને ભોગવે છે એ પ્રકારે જે ગર્ભદર્શી છે તે જન્મદર્શી છે. જે જન્મદર્શી છે તે મરણદર્શી છે, જે મરણદર્શી છે તે નરકદર્શી છે જે નરકદર્શી છે તે તિર્યગ્દર્શી છે. જે તિર્યગ્દર્શી છે અર્થાત્ તિર્યચગતિસ્વરૂપ નિગોદના દુઃખોનો અનુભવકર્તા છે, તે ત્યાંના સર્વોત્કૃષ્ટ દુઃખોનો અનુભવ કરે છે. એ જ ભાવ. "स दुःखदर्शी" એ પદથી સૂત્રકારે પ્રગટ કરેલ છે. અહીં દુઃખ–શબ્દથી સર્વોત્કૃષ્ટ નિગોદસંબંધી દુઃખોનું જ ગ્રહણ કરેલ છે. માટે જે "गर्भदर्शी" ઈત્યાદિ પદ છે તેમાં પણ દુઃખ–દર્શિત્વ તો આવે જ છે તો પણ જે તિર્યગ્દર્શીમાં જ દુઃખ–દર્શિત્વ સ્વતંત્ર રૂપથી પ્રગટ કરેલ છે તે અયુક્ત છે. આ પ્રકારની શંકા કરવાનો આ ઠેકાણે અવસર જ પ્રાપ્ત થતો નથી, આ સમસ્ત કથનથી એ ધ્વનિત થાય છે કે આ પ્રકર્ષપરંપરાપ્રાપ્ત ભાવશસ્ત્રનું નિદાન–મૂલ કારણ–ક્રોધ છે. અને બધાથી ઉત્કૃષ્ટ દુઃખ નિગોદભવમાં છે.

यस्तु मुमुक्षुः, स क्रोधादिकं परिहरेदित्याह–' से मेहावी ' इत्यादि।

मूलम्–से मेहावी अभिणिवट्टिज्जा कोहं च माणं च मायं च लोहं च पेज्जं च दोसं च मोहं च गब्भं च जम्मं च मारं च नरयं च तिरियं च दुक्खं च। एयं पासगस्स दंसणं उवरयसत्थस्स पलियंतकरस्स ॥ सू० ११ ॥

छाया—स मेधावी अभिनिवर्तयेत् क्रोधं च मानं च मायां च लोभं च प्रेम च द्वेषं च मोहं च गर्भं च जन्म च मारं च नरकं च तिर्यञ्चं च दुखं च। एतत् पश्यकस्य दर्शनम्, उपरतशस्त्रस्य पर्यन्तकरस्य ॥ सू० ११ ॥

टीका—स मेधावी क्रोधादिमोहान्तं भावशस्त्रं, तथा–गर्भादिदुःखान्तं तत्प्रयोगफलभूतम्, अभिनिवर्तयेत्=परिहरेत्–अपनयेदित्यर्थः। क्रोधादिमोहान्तं भावशस्त्रं सर्वथा परिवर्जयेत्, येन गर्भदुःखादारभ्य निगोददुःखं यावत् सर्वमपि दुःखं न प्राप्नुयादिति भावः।

भावार्थ—ये क्रोधादिक पर–भाव ही भावशस्त्र हैं और क्रोधसे मान, मानसे माया, मायासे लोभ, इत्यादि रूपसे उनमें प्रकर्षपरम्परा है; यह बात प्रकट की गई है ॥ सू० १० ॥

जो मुमुक्षु–मोक्ष जानेकी इच्छा रखनेवाला हो उसको क्रोधादिकका परिहार कर देना चाहिये, इस बातको प्रकट करते हैं–'से मेहावी' इत्यादि।

वह मेधावी मुनि क्रोधसे लगाकर मोह तक भावशस्त्रका तथा उनके प्रयोगसे उत्पन्न उनके फलस्वरूप गर्भावासके दुःखोंसे लेकर निगोदके दुःखों तकका परिहार करे, अर्थात्–बुद्धिमानका कर्त्तव्य है कि वह क्रोधादिक कषायरूप भावशस्त्रका परित्याग करे। क्योंकि क्रोधादिकषायोंके करनेसे कर्त्ताको अनेक प्रकारके दुःखोंको भोगना पड़ता है। गर्भावासके दुःखों

ભાવાર્થ.—એ ક્રોધાદિક પર–ભાવ જ ભાવશસ્ત્ર છે, અને ક્રોધથી માન, માનથી માયા, માયાથી લોભ, ઇત્યાદિ રૂપથી તેમાં પ્રકર્ષપરંપરા છે, એ વાત પ્રગટ કરી છે. ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

જે મુમુક્ષુ–મોક્ષ જવાની ઇચ્છા રાખનારા હોય તેને ક્રોધાદિકનો પરિહાર કરી દેવો જોઈએ, આ વાતને પ્રગટ કરે છે–' से मेहावी ' ઇત્યાદિ.

તે મેધાવી મુનિ ક્રોધથી લઇ મોહ સુધી ભાવશસ્ત્રને તથા તેના પ્રયોગથી ઉત્પન્ન તેના ફળસ્વરૂપ ગર્ભાવાસના દુઃખોથી લઇને નિગોદના દુઃખો સુધીનો પરિહાર કરે; અર્થાત્ બુદ્ધિમાનનું કર્તવ્ય છે કે તે ક્રોધાદિકકષાયરૂપ ભાવશસ્ત્રનો પરિત્યાગ કરે, કારણ કે ક્રોધાદિ કષાયોના કરવાથી કર્તાને તેનાથી અનેક પ્રકારના દુઃખો ભોગવવા

एतच्च मया न स्वबुद्धिकल्पनया कथ्यते, किंतु भगवतस्तीर्थंकरस्य समीपे तदुपदेशवचनं यथा मया श्रुतं तथा निगद्यते, इत्याशयेनाह–' एतत् पश्यकस्य दर्शनम् ' इत्यादि । अत्रैवोद्देशे कृतव्याख्यानमेतत् ॥ सू० ११ ॥

असौ तीर्थंकरः कथंभूतः ? इत्यत आह–' आयाणं ' इत्यादि ।

मूलम्–आयाणं निसिद्धा सगडब्भि ॥ सू० १२ ॥

छाया—आदानं निषेद्धा स्वकृतभित् ॥ सू० १२ ॥

से भी अनन्तगुने कष्ट निगोदमें जीव इनके करनेके ही फलस्वरूप भोगता है । अतः मुनिके लिये क्रोधादि कषायोंका परिहार करना ही सर्वश्रेयस्कर है । इनका परिहार करनेसे फिर उसको गर्भवासादिक तथा निगोदके अनन्त कष्टोंको नहीं सहना पड़ता है । इनका त्याग करना ही उन दुःखोंके अभावका हेतु है । श्रीसुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं–हे जम्बू ! यह जो कुछ भी मैंने यहां तक प्रतिपादन किया है वह अपनी बुद्धिसे कल्पित कर नहीं किया है; किन्तु भगवान् तीर्थङ्कर श्रीवर्धमानस्वामीके समीप उनके उपदेशरूप वचन जैसा मैंने सुना है उसी तरहसे कहा है। इसी आशयसे श्री सुधर्मास्वामी " एयं पासगस्स दंसणं " इत्यादि सूत्र की साक्षी देते हैं । इस सूत्रका व्याख्यान इसी उद्देशके पहले सूत्रमें किया जा चुका है ॥ सू० ११ ॥

जिनका यह दर्शन है वे तीर्थङ्कर भगवान् कैसे होते हैं ? सो कहते हैं—' आयाणं ' इत्यादि ।

પડે છે. ગર્ભાવાસના દુઃખોથી અનંતગણુા કષ્ટ નિગોદમાં જીવ તેના કરવાના ફળ સ્વરૂપ ભોગવે છે, અતઃ મુનિ માટે ક્રોધાદિ કષાયોનો પરિહાર કરવો જ સર્વશ્રેયસ્કર છે તેનો પરિત્યાગ કરવાથી ફરીથી તેને ગર્ભાવાસાદિકના તથા નિગોદના અનંત દુઃખોને સહન કરવા પડતા નથી. તેનો ત્યાગ કરવું જ તે દુઃખોના અભાવનો હેતુ છે.

શ્રી સુધર્માસ્વામી જમ્બૂ સ્વામીથી કહે છે—હે જમ્બૂ ! આ જે કાંઈ પણ મેં અહીંયા સુધી પ્રતિપાદન કરેલ છે તે પોતાની બુદ્ધિથી કલ્પિત કરી કહેલ નથી, પણ ભગવાન તીર્થંકર શ્રી વર્ધમાન સ્વામીના સમીપે તેના ઉપદેશરૂપ વચન જેવું મેં સાંભળેલ છે તે જ મેં કહેલ છે. તે આશયથી શ્રી સુધર્માસ્વામી "एयं पासगस्स दंसणं" ઈત્યાદિ સૂત્રની સાક્ષી આપે છે. આ સૂત્રનું વ્યાખ્યાન આ ઉદ્દેશના પહેલા સૂત્રમાં કરવામાં આવેલ છે. ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

જેનુ આ દર્શન છે તે તીર્થંકર ભગવાન કેવા હોય છે ? તે કહે છે-'आयाणं' ઈત્યાદિ.

टीका- आदानमिति-आदानं कर्मोपादानं क्रोधं, निषेद्धा=अपनेता स्वकृत-भित्=पूर्वोपार्जितकर्मक्षपयिता भवतीत्यर्थः ॥ सू० १२ ॥

जम्बूस्वामी पृच्छति-' किमत्थि उवाही ' इत्यादि ।

मूलम्-किमत्थि उवाही पासगस्स ?, न विज्जइ नत्थित्ति बेमि ॥ सू० १३ ॥

छाया—किमस्ति उपाधिः पश्यकस्य, न विद्यते नास्तीति ब्रवीमि ॥ १३ ॥

टीका—पश्यकस्य=केवलिनः, उपाधिः उपाधीयते इत्युपाधिः, तत्र द्रव्योपाधिर्हिरण्यसुवर्णादिः, भावोपाधिर्ज्ञानावरणीयादिकं कर्म, यद्वा-उपाधीयते व्यप-

---

आदान=कर्मोंके उपादान-ग्रहण करनेमें प्रधानकारण ऐसे क्रोधका जो परिहार करता है वह अपने पूर्वोपार्जित कर्मोंका विनाशक होता है।

भावार्थ—अष्टविध कर्मोंका मूल कारण क्रोध है, ऐसा समझकर तीर्थङ्कर भगवानने इसका सर्वथा परिहार किया है । अतः इसके परिहारसे वे नवीन कर्मोंके बन्धक नहीं हुए, इतना ही नहीं; उनकी आत्मामें जो कुछ पूर्वसंचित कर्म थे उनको भी संवरकी प्राप्तिसे उन तीर्थङ्कर प्रभुने नष्ट कर दिये। इसलिये मोक्षाभिलाषी मुनिका कर्तव्य है कि वह वीतराग तीर्थङ्करप्रभुका आदर्श सामने रखकर उस मार्गका अनुसरण करे ॥सू०१२॥

अब उपाधि के विषय में कहते हैं—' किमत्थि ' इत्यादि ।

जम्बूस्वामी श्री सुधर्मास्वामीसे पूछते हैं कि-हे भदन्त! केवली भगवानके उपाधि है क्या ? श्री सुधर्मास्वामी कहते हैं कि उनके किसी भी प्रकारकी उपाधि नहीं है । हिरण्यसुवर्णादिरूप द्रव्य-उपाधि और

આદાન=કર્મોના ઉપાદાન-ગ્રહણ કરવામાં પ્રધાન કારણ જે ક્રોધ છે તેનો જે પરિહાર કરે છે તે પોતાના પૂર્વોપાર્જિત કર્મોનો વિનાશક બને છે.

ભાવાર્થ—અષ્ટવિધ કર્મોનું મૂલ કારણ ક્રોધ છે, એવું સમજીને તીર્થંકર ભગવાને તેનો સર્વથા પરિહાર કરેલ છે, માટે તેના પરિહારથી તે નવીન કર્મોના બંધક નથી થયાં, એટલું જ નહિ, જેટલા કંઇ તેની આત્મામાં પૂર્વ સંચિત કર્મ હતા તે સંવરની પ્રાપ્તિથી તે તીર્થંકર પ્રભુએ નષ્ટ કરી નાખ્યા. માટે મોક્ષાભિલાષી મુનીનું કર્તવ્ય છે કે તે વીતરાગ પ્રભુનો આદેશ સામે રાખીને તે માર્ગનું અનુસરણ કરે ॥ સૂ૦ ૧૨ ॥

હવે ઉપાધિના વિષયમાં કહે છે—' किमत्थि ' ઇત્યાદિ.

જમ્બૂ સ્વામી સુધર્મા સ્વામીને પૂછે છે કે હે ભદન્ત! કેવળી ભગવાનને ઉપાધિ છે કે નહિ? શ્રી સુધર્માસ્વામી કહે છે કે તેને કોઇ પણ પ્રકારની ઉપાધિ નથી. હિરણ્ય સુવર્ણાદિરૂપ દ્રવ્ય-ઉપાધિ અને જ્ઞાનાવરણીયાદિ કર્મ ભાવ-ઉપાધિ આ

दिश्यते येनेत्युपाधिः-कर्मजनितो नरकादिभवः, अस्ति किम्?। श्रीसुधर्मास्वामी उत्तरयति-न विद्यते। 'नास्ति' इति-उत्तरवाक्यार्थस्य दार्ढ्यबोधनाय, अध्ययन-समाप्तिसूचनाय वाऽर्थतः पुनः कथनम्। यद्वा-'न विद्यते' इत्यन्तं प्रश्नवाक्यम्। पश्यकस्योपाधिः किमस्ति, उत न विद्यते? अत्रोत्तरमाह-नास्तीति। अष्टविधं कर्म, कर्मजनितनरकादिभवो वा केवलिनो न भवतीत्यर्थः। तथा चोक्तं—

ज्ञानावरणीयादिकर्म भाव-उपाधि, इस प्रकारसे उपाधिके दो भेद हैं; इनमेंसे कोई भी उपाधि उनके नहीं है। अथवा कर्मजनित जो नरकादि पर्याय है वह भी उपाधि है, यह उपाधि भी उनमें नहीं है। प्रश्न और उत्तरके रूपमें यह सूत्र है, जैसे-"किमत्थि उवाही पासगस्स" किमस्ति उपाधिः पश्यकस्य ?, यहां तक प्रश्नवाक्य है "न विज्जइ नत्थि"-न विद्यते नास्ति, यह उत्तर वाक्य है। अर्थात् सर्वज्ञ-तीर्थङ्कर भगवानके उपाधि है कि नहीं? नहीं है। यहां पर "न विद्यते" इस क्रियाकी पर्यायवाची क्रिया जो "नास्ति" बतलाई है, सो उत्तरवाक्यके अर्थकी दृढ़ता समझानेके लिये, और अध्ययनकी समाप्ति सूचन करनेके लिये।

अथवा-"किमत्थि उवाही पासगस्स न विज्जइ" यहां तक प्रश्न-वाक्य है, और "नत्थि" यह उत्तरवाक्य है। अर्थात्-सर्वज्ञ-तीर्थङ्करको उपाधि है कि नहीं? यहां तक शिष्यका प्रश्न है। गुरुका उत्तर है— 'नत्थि'-नहीं है।

भावार्थ—केवली तीर्थङ्कर भगवानके न अष्टविध कर्मरूप उपाधि है और न कर्मजन्य-नरकादिपर्यायरूप उपाधि ही है, वे उपाधिसे निर्मुक्त

પ્રકારે ઉપાધિના બે ભેદ છે. તેમાંથી કોઈ પણ ઉપાધિ તેને નથી. અથવા કર્મજનિત જે નરકાદિ પર્યાય છે તે પણ ઉપાધિ છે, તે ઉપાધિ પણ તેમનામાં નથી. પ્રશ્ન અને ઉત્તરના રૂપમાં એ સૂત્ર છે, જેમ-"किमत्थि उवाही पासगस्स"-किमस्ति उपाधिः पश्यकस्य ? આંહી સુધી પ્રશ્નવાક્ય છે. "न विज्जइ नत्थि"-नविद्यते नास्ति એ ઉત્તર વાક્ય છે. અર્થાત્ સર્વજ્ઞ તીર્થંકર ભગવાનને ઉપાધિ છે કે નહિ ?, નથી. આ ઠેકાણે "न विद्यते" આ ક્રિયાની પર્યાયવાચી ક્રિયા જે "नास्ति" બતાવી છે તે ઉત્તરવાક્યના અર્થની દઢતા સમજાવવા માટે, અને અધ્યયનની સમાપ્તિ સૂચન કરવા માટે. અથવા—"किमत्थि उवाहो पासगस्स न विज्जइ" અહીં સુધી પ્રશ્નવાક્ય છે, અને 'नत्थि' આ ઉત્તરવાક્ય છે. અર્થાત્ સર્વજ્ઞ તીર્થંકરને ઉપાધિ છે કે નહિ ? અહીં સુધી શિષ્યનો પ્રશ્ન છે ગુરૂનો ઉત્તર છે-'नत्थि' નથી.

ભાવાર્થ—કેવળી તીર્થંકર ભગવાનને અષ્ટવિધકર્મરૂપ ઉપાધિ નથી, અને કર્મજન્ય નરકાદિપર્યાયરૂપ ઉપાધિ પણ નથી. તે તો ઉપાધિથી નિર્મુક્ત છે.

"दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं, प्रादुर्भवति नाङ्कुरः ।
कर्मबीजे तथा दग्धे, न रोहति भवाङ्कुरः" ॥ इति ॥

इति ब्रवीमि–इति=इदं, ब्रवीमि=यथा श्रुतं भगवन्मुखात् तथा कथयामीत्यर्थः ॥सू० १३॥

॥ तृतीयाध्ययनस्य चतुर्थोद्देशः समाप्तः ॥ ३–४ ॥

"तृतीयेऽध्ययने सुप्तजागरूकौ च वर्णितौ ।
सुप्तदुःखं मुनित्वे च, कारणं क्रोधवर्जनम्" ॥ १ ॥ इति ॥

॥ इतिश्री विश्वविख्यात–जगद्वल्लभ–प्रसिद्धवाचक–पञ्चदशभाषाकलितललित–कलापाऽऽलापक–प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक–वादिमानमर्दक–शाहू-छत्रपति–कोल्हापुरराजप्रदत्त–"जैनशास्त्राचार्य"–पदभूषित–कोल्हापुर-राजगुरु–बालब्रह्मचारि–जैनाचार्य–जैनधर्मदिवाकर–पूज्य–श्री-घासीलाल–व्रतिविरचितायाम् आचाराङ्गसूत्रस्याचारचिन्ता-मणिटीकायां शीतोष्णीयाख्यं तृतीयमध्ययनं संपूर्णम् ॥३॥

हैं। क्यों कि उनके कर्मरूपी बीज जल चुका है, कहा भी है—

"दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं, प्रादुर्भवति नाङ्कुरः ।
कर्मबीजे तथा दग्धे, न रोहति भवाङ्कुरः ॥ १ ॥" इति ।

जिस प्रकार बीजके नष्ट होनेपर अङ्कुर उत्पन्न नहीं होता है उसी प्रकार कर्मरूपी बीजके विनाश होने पर संसाररूपी अङ्कुर उत्पन्न नहीं होता है। 'त्ति बेमि' 'इति ब्रवीमि' इस प्रकार मैं कहता हूँ, अर्थात्–भगवानके मुखसे मैंने जैसा सुना है वैसा ही तुमसे कहता हूँ ॥सू० १३॥

तीसरे अध्ययन का चोथा उद्देश समाप्त ॥ ३–४ ॥

इस तृतीय अध्ययनके चार उद्देशोंमें यथाक्रमसे इस प्रकार विषय वर्णित हुए हैं।

કારણ કે તેને કર્મરૂપી બીજ બળી ગયેલ છે, કહ્યુ પણ છે—

"दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं, प्रादुर्भवति नाङ्कुर ।
कर्मबीजे तथा दग्धे, न रोहति भवाङ्कुरः" ॥ १ ॥

જેવી રીતે બીજનો નાશ થવાથી અંકુર ઉત્પન્ન થતાં નથી તે પ્રકારે કર્મરૂપી બીજનો વિનાશ થવાથી સંસારરૂપી અંકુર ઉત્પન્ન થતો નથી.

'त्ति बेमि' इति ब्रवीमि—આ પ્રકારે હું કહું છું. અર્થાત્ ભગવાનના મુખથી મેં જેવું સાંભળ્યું છે તેવું જ હું તમોને કહું છું. ॥ સૂ૦ ૧૩ ॥

ત્રીજા અધ્યયનનો ચોથો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૩–૪ ॥

આ ત્રીજા અધ્યયનના ચાર ઉદ્દેશોમાં યથાક્રમથી આ પ્રકારે વિષય વર્ણિત થયેલ છે.—

(१) प्रथम उद्देशमें भावसुप्त संयमियोंके दोष और संयममें जागरूक संयमियों के गुण प्रकट किये हैं।

(२) द्वितीय उद्देशमें भावनिद्रावाले संयमियोंको अनेक दुःखोंका अनुभव करना पड़ता है, यह विषय वर्णित किया गया है।

(३) तृतीय उद्देशमें संयमाचरणके विना केवल दुःखोंके सहनमात्र से कोई साधु नहीं कहला सकता, यह विषय प्रतिपादित किया है।

(४) चतुर्थ उद्देशमें छर्दित-वान्त-अन्नके समान कषाय त्यागने योग्य हैं, पापकर्म परिहरणीय हैं, तथा पदार्थोंके स्वरूपको जाननेवाले संयमीके लिये संयम आराधनीय है, इत्यादि समस्त विषय प्रकट किया गया है॥ ॥११॥

॥ यह आचाराङ्गसूत्रके शीतोष्णीयनामक तृतीय अध्ययनका
हिन्दी-भाषानुवाद समाप्त ॥३॥

---

(૧) પ્રથમ ઉદ્દેશમાં ભાવસુપ્ત સંયમિઓના દોષ અને જાગરૂક સંયમિઓના ગુણ પ્રકટ કરેલ છે.

(૨) બીજા ઉદ્દેશમાં ભાવનિદ્રાવાળા સંયમિઓને અનેક દુઃખોનો અનુભવ કરવો પડે છે. એ વિષય વર્ણિત કરેલ છે.

(૩) ત્રીજા ઉદ્દેશમાં સંયમાચરણ વિના કેવળ દુઃખોના સહન માત્રથી કોઇ સાધુ કહેવાતા નથી. એ વિષય પ્રતિપાદિત કરેલ છે.

(૪) ચોથા ઉદ્દેશમાં છર્દિત—વાન્ત અન્ન સમાન કષાય ત્યાગવાયોગ્ય છે. પાપકર્મ પરિહરણીય છે. તથા પદાર્થોના સ્વરૂપને જાણવાવાળા સંયમી માટે સંયમ આરાધનીય છે. ઈત્યાદિ સમસ્ત વિષય પ્રગટ કરેલ છે

આ આચારાંગસૂત્રના શીતોષ્ણીય નામના ત્રીજા અધ્યયનનો
ગુજરાતી—ભાષાનુવાદ સમાપ્ત ॥ ૩ ॥



। अथाचाराङ्गसूत्रस्य सम्यक्त्वनामकं चतुर्थमध्ययनम् ।

निरुपाधिकं संयमानुष्ठानं मुनित्वस्य मोक्षस्य च कारणमिति प्रागुक्ताध्ययनत्रयेण प्रतिपादितं, तद्धि सम्यक्त्वमन्तरेण न संभवतीत्यतः सम्यक्त्वाख्यं चतुर्थमध्ययनं कथयति । सम्यक्त्वप्रतिबोधकत्वादिदमध्ययनमपि सम्यक्त्वमुच्यते । यथा चतुःशालमध्यगतः प्रदीपः शालाचतुष्टयं प्रद्योतयति, तद्वदिदं मध्यगतमध्ययनं सर्वाध्ययनस्थमाचारमवभासयति । प्रसङ्गतस्तावत् सम्यक्त्वं निरूप्यते—

समश्नुते ज्ञानादिगुणं प्राप्नोतीति सम्यग्=जीवस्तस्य भावः सम्यक्त्वम् । तच्च तत्त्वार्थश्रद्धानम्, तत्त्वार्थेषु सर्वज्ञवीतरागोपदिष्टतया पारमार्थिकेषु जीवाजीवादिपदार्थेषु श्रद्धानं=रुचिरभिप्रीतिः । उक्तञ्च—

। आचाराङ्गसूत्रका सम्यक्त्वनामक चतुर्थ अध्ययन ।

उपाधिरहित संयमका आराधन, मुनिपनेका और मोक्षका कारण होता है, यह बात यद्यपि पहिले कहे गये तीन अध्ययनोंमें अच्छी तरह से प्रकट की जा चुकी है । परन्तु वह संयमाराधन सम्यक्त्वके विना नहीं हो सकता है । इसलिये सम्यक्त्व नामका चौथा अध्ययन कहा जाता है । जैसे आमने–सामनेके चार मकानों के चौक में रखा हुआ दीपक उन चारों ही मकानों को प्रकाशित करनेवाला होता है, ठीक इसी तरहसे सब अध्ययनों के मध्य में रहा हुआ यह अध्ययन भी समस्त अध्ययनों के आचार का प्रकाशक है । इसलिये प्रकरणवश उसीका निरूपण किया जाता है ।

ज्ञानादिक गुणों को जो प्राप्त करता है उसका नाम सम्यक् है। इस अपेक्षा से वह सम्यक् जीवस्वरूप है । उसका जो भाव उसे सम्यक्त्व

આચારાંગસૂત્રનું સમ્યક્ત્વનામનું ચોથું અધ્યયન.

ઉપાધિરહિત સંયમનું આરાધન મુનિપણાનું તથા મોક્ષનું કારણ થાય છે, આ વિષય પહેલાં ત્રણ અધ્યયનોમાં સ્પષ્ટ રીતે પ્રકાશિત કરવામાં આવેલ છે; પણ આ સંયમારાધન સમ્યક્ત્વ વિના બની શકતું નથી. માટે સમ્યક્ત્વ નામનું ચોથું અધ્યયન કહેવામાં આવે છે. જેવી રીતે ચાર મકાનોના ચોકમાં રાખેલ એક દીપક ચારે મકાનોને પ્રકાશિત કરે છે તેવી રીતે બધા અધ્યયનોના મધ્યમાં સ્થિત આ અધ્યયન બધા અધ્યયનોના આચારનું પ્રકાશક છે આ માટે પ્રકરણ વશ તેનું જ પ્રતિપાદન કરવામા આવે છે.

જ્ઞાનાદિક ગુણને જે પ્રાપ્ત કરે છે તેનું નામ સમ્યક્ છે. તે અપેક્ષાએ આ સમ્યક્ જીવસ્વરૂપ છે. એનો જે ભાવ તેને સમ્યક્ત્વ કહે છે. આ સમ્યક્ત્વ તત્ત્વાર્થશ્રદ્ધાનરૂપ છે. સર્વજ્ઞ વીતરાગ પ્રભુદ્વારા ભાષિત હોવાથી પારમાર્થિક સત્ય-

"जिनोक्ततत्त्वेषु रुचिः, शुद्धा सम्यक्त्वमुच्यते।" इति।

जिनोक्ततत्त्वेषु जीवाजीवादिपदार्थेषु या शुद्धा=अज्ञानसंशयविपर्ययनिराकरणेन निर्मला रुचिः=श्रद्धानं सा सम्यक्त्वमुच्यते।

कहते हैं। वह सम्यक्त्व तत्त्वार्थश्रद्धानरूप है। सर्वज्ञ वीतराग प्रभुके द्वारा कहे हुए होनेसे पारमार्थिक-सत्यस्वरूप जीव अजीवादिक पदार्थों में जो श्रद्धा-रुचि-प्रीति है उसीका नाम तत्त्वार्थश्रद्धान है। कहा भी है-

"जिनोक्ततत्त्वेषु रुचिः, शुद्धा सम्यक्त्वमुच्यते" इति।

अर्थात्—जिनेन्द्र भगवान् द्वारा कहे गये तत्त्वों में जो निर्दोष रुचि-प्रीति है, उसीका नाम सम्यक्त्व है।

विशेषार्थः—सर्वज्ञ, वीतराग और हितोपदेशी प्रभुके द्वारा प्रतिपादित किये गये जो जीव-अजीव आदि नौ पदार्थ हैं, वे यहां पर 'तत्त्व'-शब्दवाच्य हैं। 'तत्त्व' शब्द का अर्थ पारमार्थिक-वास्तविक है। 'श्रद्धान' शब्दका अर्थ रुचि-दृढ़ विश्वास-आस्था है। जीव अजीवादिक पदार्थ प्रभुद्वारा उपदिष्ट होने से सत्य-वास्तविक हैं। फलितार्थ इसका यही है-जीवादिक पदार्थ वीतराग प्रभुके द्वारा प्रतिपादित किये गये हैं, इसीलिये वे यथार्थ-सत्य तत्त्व हैं। उनमें जो दृढ़ विश्वास है उसी का नाम तत्त्वार्थश्रद्धान है। इसीका नाम सम्यग्दर्शन है।

સ્વરૂપ જીવ અજીવ આદિ પદાર્થોમાં જે શ્રદ્ધાન-રૂચિ પ્રીતિ છે એનું નામ તત્ત્વાર્થ-શ્રદ્ધાન છે. કહ્યુ છે—

"जिनोक्त तत्त्वेषु रुचिः, शुद्धा सम्यक्त्वमुच्यते" इति।

અર્થાત્—જિનેન્દ્ર ભગવાન દ્વારા જે તત્ત્વો કહેવાયા છે એમાં જે નિર્દોષ રૂચિ-પ્રીતિ છે એનું નામ સમ્યકૃત્વ છે.

વિશેષાર્થ:—સર્વજ્ઞ, વીતરાગ અને હિતોપદેશી પ્રભુદ્વારા પ્રતિપાદિત જે જીવ-અજીવ આદિ નવ પદાર્થ છે તે અહીંઆ તત્ત્વશબ્દવાચ્ય છે. તત્ત્વ-શબ્દનો અર્થ પારમાર્થિક-વાસ્તવિક છે. શ્રદ્ધાન-શબ્દનો અર્થ રૂચિ-દૃઢવિશ્વાસ-આસ્થા છે. જીવ અજીવ આદિ પદાર્થ પ્રભુદ્વારા ઉપદિષ્ટ હોવાથી સત્ય-વાસ્તવિક છે. એનો ફલિતાર્થ એ છે કેઃ—જીવાદિક પદાર્થ વીતરાગ પ્રભુદ્વારા પ્રતિપાદિત કરેલ છે. જેથી તે યથાર્થ-સત્ય તત્ત્વ છે, એમાં જે દૃઢ વિશ્વાસ છે તેનું નામ તત્ત્વાર્થ શ્રદ્ધાન છે. એનું જ નામ સમ્યગ્દર્શન છે

ननु यदुच्यते—"तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यक्त्व"—मिति; तत्र श्रद्धानं तथेतिप्रत्ययः, तीर्थंकरेण यथा प्रतिबोधितं तथैव वस्तुतो जीवाजीवादिपदार्थानां स्वरूपमिति निश्चयपूर्विका प्रीतिरूपा रुचिनाम्नी मानसी परिणतिः। इयं खल्वपर्याप्तकाद्यवस्थायां

रुचि (प्रीति) के साथ जो शुद्ध—निर्दोष विशेषण दिया गया है उसका भाव यही है कि वह रुचि (प्रीति) अज्ञान संशय और विपर्यय, इन तीन दोषों से रहित होनी चाहिये, तब ही वह निर्दोष रुचि है। जिसमें इन अज्ञानादि का सद्भाव है वह सत्य रुचि नहीं, किन्तु सदोष रुचि है।

विशेषार्थः—परस्पर विरुद्ध अनेक कोटि के स्पर्श करनेवाले ज्ञान को 'संशय' कहते हैं। जैसे—यह स्थाणु है कि पुरुष है?। विपरीत एक कोटिका निश्चय करनेवाला ज्ञान 'विपर्यय' कहलाता है—जैसे सीप को चांदी समझना। यह कुछ होगा, ऐसे प्रतिभासको अज्ञान या अनध्यवसाय कहते हैं, जैसे मार्ग चलते हुए को तृणस्पर्श वगैरह का ज्ञान। ये तीन—अज्ञान, संशय, विपर्यय, रुचिके दूषण हैं। इनसे रहित रुचि ही सम्यक्—यथार्थ रुचि कहलाती है।

शंका—"तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन है" ऐसा जो सम्यक्त्वका लक्षण कहा गया है, वहां "तथा" इस प्रकार के प्रत्यय—विश्वास का नाम ही श्रद्धान है। अर्थात्—'तीर्थङ्कर प्रभुने जीवादिक पदार्थों का जिस स्वरूपसे प्रतिपादन किया है, उन जीवादिक पदार्थों का वैसा ही स्वरूप है' इस प्रकार

રૂચિ (પ્રીતિ) ની સાથે જે શુદ્ધ—નિર્દોષ વિશેષણ આપવામા આવ્યુ છે તેના ભાવ એ છે કે તે રૂચિ (પ્રીતિ) અજ્ઞાન, સશય અને વિપર્યય, આ ત્રણ દોષોથી રહિત હોવી જોઈએ. ત્યારેજ તે નિર્દોષ રૂચિ છે. જેમાં આ અજ્ઞાનાદિનો સદ્ભાવ છે તે સત્ય રૂચિ નહીં; પણ સદોષ રૂચિ છે

વિશેષાર્થ.—પરસ્પર વિરૂદ્ધ અનેક કોટિના (પ્રકારના) સ્પર્શ કરવાવાળા જ્ઞાનને સંશય કહે છે, જેમ—આ સ્થાણુ છે કે પુરૂષ છે? વિપરીત એક કોટિના નિશ્ચય કરવાવાળા જ્ઞાનને વિપર્યય કહે છે, જેમ—છીપને ચાંદી જાણવી. આ કાંઈક હશે, આવા પ્રતિભાસને અજ્ઞાન અગર અનધ્યવસાય કહે છે, જેમ—માર્ગપર ચાલવાવાળાને તૃણસ્પર્શ વિગેરેનું જ્ઞાન, આ ત્રણ—અજ્ઞાન, સશય, વિપર્યય—રૂચિનાં દૂષણો છે. એનાથી રહિત રૂચી જ સમ્યક્—યથાર્થ—રૂચી કહેવાય છે.

શંકા—"તત્ત્વાર્થશ્રદ્ધાન સમ્યગ્દર્શન છે" એવું જે સમ્યક્ત્વનું લક્ષણ કહેવામાં આવે છે ત્યાં "તથા" આવા પ્રકારના પ્રત્યય—વિશ્વાસ—નું નામ જ શ્રદ્ધાન છે. અર્થાત્ 'તીર્થંકર પ્રભુએ જીવાદિક પદાર્થોને જે સ્વરૂપે પ્રતિપાદન કર્યા છે. એ જીવાદિક પદાર્થોના તેવા જ સ્વરૂપ છે' આવા પ્રકારની નિશ્ચયપૂર્વક જે

नेष्यते, सम्यक्त्वं तु तस्यामपीष्टं, षट्षष्टिसागरोपमरूपायाः साद्यपर्यवसितकालरूपायाश्च तस्योत्कृष्टस्थितेः प्रतिबोधनादिति कथं नागमविरोधः ? किंच-तत्त्वार्थश्रद्धानस्य रागात्मकरुचिरूपत्वेन वीतरागे तदभावात् तत्र सम्यक्त्वं कथमुपपद्येत?-

की निश्चयपूर्वक जो प्रीतिस्वरूप रुचि नाम की मानसिक परिणति है वही तत्त्वार्थ-श्रद्धान है। यह अपर्याप्तावस्था में घटित नहीं होती, परंतु सम्यक्त्व तो वहां पर भी माना गया है। कारण कि कुछ अधिक छासठ ६६ सागर एवं सादि अनन्त उस सम्यक्त्व की उत्कृष्ट स्थिति बतलाई गई है, तब तो आगम से विरोध ही आवेगा।

अर्थात्-आप तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यक्त्व का लक्षण करते हैं। लक्षण के दोष-अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असंभव है। जो लक्षण अपने संपूर्ण लक्ष्य में नहीं घटित होता; वहां अव्याप्ति दोष होता है। जो अपने लक्ष्य में रहते हुए अलक्ष्य में भी रहता है, वहां अतिव्याप्ति दोष होता है। तथा-जिस लक्षण का समन्वय लक्ष्य में नहीं होता, वहां असंभव दोष होता है। यहां प्रकृत में अव्याप्ति दोष होगा। क्योंकि शास्त्रकारों ने क्षायोपशमिक सम्यक्त्व की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक ६६ छासठ सागरोपम और क्षायिक सम्यक्त्व की स्थिति सादि और अनन्त मानी है। क्षायिक या क्षायोपशमिक सम्यक्त्व सहित मरण करनेवाले जीव के

પ્રીતિસ્વરૂપ રૂચિ નામની માનસિક પરિણતિ છે તે જ તત્ત્વાર્થશ્રદ્ધાન છે. એ અપર્યાપ્તાવસ્થામાં ઘટિત નથી થતી. પરન્તુ સમ્યકૃત્વ તો ત્યાં પણ માનેલ છે. કારણ કે ૬૬ છાસઠ સાગર ઝાઝેરી એવં સાદિ અનંત, એ સમ્યકૃત્વની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ કહેલી છે ત્યારે તો આગમથી વિરોધ આવશે.

અર્થાત્—આપ 'તત્ત્વાર્થશ્રદ્ધાન સમ્યકૃત્વ છે.' એ પ્રકારે સમ્યકૃત્વનુ લક્ષણ કહો છો લક્ષણના દોષ અવ્યાપ્તિ, અતિવ્યાપ્તિ અને અસંભવ છે. જે લક્ષણ પોતાના સમસ્ત લક્ષ્યમાં ઘટિત નથી હોતું, ત્યાં અવ્યાપ્તિ દોષ થાય છે જે પોતાના લક્ષ્યમાં અને અલક્ષ્યમાં પણ ઘટિત થાય છે ત્યાં અતિવ્યાપ્તિ દોષ થાય છે. અને જે લક્ષણનો સમન્વય લક્ષ્યમાં હોતો જ નથી, ત્યાં અસંભવ દોષ થાય છે. અહીંઆ પ્રકૃતમાં અવ્યાપ્તિ-દોષ આવશે, કેમ કે શાસ્ત્રકારોએ ક્ષાયોપશમિક-સમ્યકૃત્વની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ ૬૬ છાસઠ સાગરોપમ ઝાઝેરી અને ક્ષાયિક-સમ્યકૃત્વની સ્થિતિ સાદી અને અનંત માનેલી છે. ક્ષાયિક અથવા ક્ષાયોપશમિક સમ્યકૃત્વ સહિત મરવાવાળા જીવને

अत्रोच्यते-तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यक्त्वस्य कार्यम्। सम्यक्त्वं तु सम्यग्दर्शनापरनामधेयो मिथ्यात्वक्षयोपशमादिजन्यः प्रशमसंवेगादिलक्षणः शुभ आत्मपरिणामविशेषः।

अपर्याप्तावस्था में भी उस २ सम्यक्त्व का सद्भाव माना गया है; परन्तु तत्त्वार्थश्रद्धान वहां नहीं माना गया है। आप तो सम्यक्त्व का लक्षण तत्त्वार्थश्रद्धान कहते हैं।

तत्त्वार्थश्रद्धान अपर्याप्तावस्था के जीवों में नहीं होता; अतः वहां सम्यक्त्व का लक्षण नहीं घटेगा। लक्ष्य में लक्षणका नहीं घटना ही तो अव्याप्ति है, सो इस लक्षण में अव्याप्ति दोष अनिवार्य है। यदि आप कहेंगे कि हम अपर्याप्तावस्था के जीवों में सम्यक्त्व नहीं मानते तो आपको आगमविरोधरूप दोष आयेगा। क्योंकि आगम में अपर्याप्तावस्था के जीवों में भी सम्यक्त्व माना गया है।

तथा-सम्यक्त्व का यह लक्षण रागात्मकरुचिरूप होने से वीतराग अवस्था में घटित नहीं होता। कारण कि उस अवस्थामें रागात्मक रुचि का सर्वथा अभाव है। ऐसी परिस्थितिमें वहां सम्यक्त्व की उत्पत्ति का निर्वाह भी कैसे हो सकेगा?

समाधान—तत्त्वार्थश्रद्धान, यह सम्यक्त्व का लक्षण नहीं है; किन्तु उसका कार्य है। सम्यक्त्व, जिसका दूसरा नाम सम्यग्दर्शन है, एवं जो मिथ्यात्व के क्षायोपशमिकादिक से उत्पन्न होता है, तथा जिसके लक्षण प्रशम, संवेगादिक हैं, वह आत्मा का शुभपरिणामविशेष है।

અપર્યાપ્તાવસ્થામાં પણ તે તે સમ્યક્ત્વનો સદ્‌ભાવ માનેલ છે, પરન્તુ તત્ત્વાર્થશ્રદ્ધાન ત્યાં માનવામા નથી આવેલ આપ તો સમ્યક્ત્વનુ લક્ષણ તત્ત્વાર્થશ્રદ્ધાન કહો છો.

તત્ત્વાર્થશ્રદ્ધાન અપર્યાપ્તાવસ્થાના જીવોમા હોતું નથી, માટે ત્યાં સમ્યક્ત્વનું લક્ષણ ઘટશે નહિ લક્ષ્યમાં લક્ષણનો સમન્વય નહિ થવાથી જ અવ્યાપ્તિ થાય છે. માટે આ લક્ષણમાં અવ્યાપ્તિ-દોષ અનિવાર્ય છે. કદાચ આપ કહેશો કે અમે અપર્યાપ્તાવસ્થાના જીવોમાં સમ્યક્ત્વ નથી માનતા તો આપને આગમવિરોધરૂપ દોષ લાગશે, કેમ કે આગમમાં અપર્યાપ્તાવસ્થાના જીવોમાં પણ સમ્યક્ત્વ માનેલ છે.

તથા—સમ્યક્ત્વનું એ લક્ષણ રાગાત્મકરૂચિરૂપ હોવાથી વીતરાગ અવસ્થામાં ઘટિત નથી થતું, કારણ કે આ અવસ્થામા રાગાત્મક-રૂચિનો સર્વથા અભાવ છે, આવી પરિસ્થિતિમા ત્યાં સમ્યક્ત્વની ઉત્પત્તિનો નિર્વાહ પણ કેવી રીતે થઇ શકે?

સમાધાન—તત્ત્વાર્થ-શ્રદ્ધાન એ સમ્યક્ત્વનું લક્ષણ નથી, પણ તેનું કાર્ય છે, સમ્યક્ત્વ જેનુ બીજું નામ સમ્યગ્દર્શન છે, અને જે મિથ્યાત્વના ક્ષયોપશમાદિકથી ઉત્પન્ન થાય છે તથા જેનું લક્ષણ પ્રશમ, સંવેગાદિક છે તે આત્માનુ શુભ પરિણામવિશેષ છે.

अत्र मिथ्यात्वशब्देन मिथ्यात्वसप्तकं गृह्यते, तच्चानन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयं मिथ्यात्वमिश्रसम्यक्त्वमोहनीयत्रयं चेति। इह दर्शनमोहनीयभेदसप्तकं मिथ्यात्वमुच्यते। यद्यपि-अनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयं चारित्रमोहनीयस्य भेदस्तथापि मिथ्यात्वक्षयोपशमाद्यवसरे तत्पूर्वं तस्य क्षय उपशमो वाऽवश्यं भवतीति कृत्वा तदपि मिथ्यात्वशब्देन व्यपदिश्यते। एतच्चाग्रे सम्यक्त्वफलप्रकरणे स्फुटीभविष्यति।

यहां मिथ्यात्व-शब्द से मिथ्यात्वसप्तक का ग्रहण किया गया है। वे ये हैं—अनन्तानुबन्धी कषाय ४ और मिथ्यात्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय, एवं सम्यक्त्वमोहनीय ये तीन ३। ये सात दर्शनमोहनीय के भेद मिथ्यात्व कहे जाते हैं। यद्यपि अनन्तानुबन्धी ४ कषाय चारित्रमोहनीय के भेद हैं, तो भी मिथ्यात्वके क्षायोपशमादिक के अवसर में उसके पहिले उनका क्षय अथवा उपशम अवश्य ही हो जाता है, इसलिये मिथ्यात्व-शब्दसे उन चारों का भी व्यपदेश होता है।

विशेषार्थः—मिथ्यात्व यह उपलक्षण शब्द है। उपलक्षण का लक्षण है-"स्वबोधकत्वे सति स्वेतरबोधकत्वम्" अर्थात्-जो स्वबोधक होते हुए अपने से इतर का भी बोधक होता है वह उपलक्षण है। इससे सात प्रकृतियों का ग्रहण होता है। वे ७ प्रकृतियां ये हैंः—अनन्तानुबन्धी क्रोध, अनन्तानुबन्धी मान, अनन्तानुबन्धी माया और अनंतानुबंधी लोभ, तथा मिथ्यात्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय एवं सम्यक्त्वमोहनीय। मोहनीय कर्म के मूल भेद दो हैं—एक दर्शनमोहनीय, दूसरा चारित्रमोहनीय। इनमें दर्शन-

આ ઠેકાણે મિથ્યાત્વ શબ્દથી મિથ્યાત્વસપ્તકનું ગ્રહણ કરેલ છે. તે એ છે-અનંતાનુબંધી કષાય ચાર ૪, અને મિથ્યાત્વ-મોહનીય, મિશ્ર-મોહનીય, અને સમ્યક્ત્વ-મોહનીય, એ ત્રણ ૩, એ સાત દર્શન-મોહનીયના ભેદો મિથ્યાત્વ કહેવાય છે. કદાચ અનંતાનુબંધી ચાર ૪ કષાય, ચારિત્ર-મોહનીયના ભેદો છે તો પણ મિથ્યાત્વના ક્ષયોપશમાદિકના અવસરમાં એના પહેલાં એનો ક્ષય અથવા ઉપશમ અવશ્ય થઈ જાય છે, તેથી મિથ્યાત્વ-શબ્દથી આ ચારનું વ્યપદેશ થાય છે.

વિશેષાર્થઃ—મિથ્યાત્વ એ ઉપલક્ષણ શબ્દ છે ઉપલક્ષણનુ લક્ષણ છે-स्वबोधकत्वे सति स्वेतरबोधकत्वम्, અર્થાત્—સ્વબોધક હોવા છતાં જે પોતાથી બીજાના પણ બોધક થાય છે તે ઉપલક્ષણ છે. એથી સાત પ્રકૃતિયોનું ગ્રહણ થાય છે એ સાત પ્રકૃતિયો આ છેઃ—અનંતાનુબંધી ક્રોધ, અનંતાનુબંધી માન, અનંતાનુબંધી માયા અને અનંતાનુબંધી લોભ, તથા મિથ્યાત્વ-મોહનીય, મિશ્ર-મોહનીય અને સમ્યક્ત્વ-મોહનીય. મોહનીય કર્મના મૂળ ભેદ બે છે. એક દર્શન-મોહનીય, બીજો ચારિત્ર-મોહનીય.

मोहनीय के तीन भेद हैं–मिथ्यात्व (अशुद्धांश) १, मिश्र (अर्धशुद्धांश) २, और सम्यक्त्व (शुद्धांश) ३। इस कर्म के उदय में आत्माका गुण सम्यग्दर्शन प्रकट नहीं होता। अर्थात् यह कर्म आत्माके समकित गुणका घातक है। चारित्रमोहनीयके अनन्तानुबंधी–क्रोध, मान, माया और लोभ, अप्रत्याख्यान–क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यान–क्रोध, मान, माया, लोभ, संज्वलन–क्रोध, मान, माया, लोभ; एवं नव नोकषाय–हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद और नपुंसकवेद, ये २५ पचीस भेद हैं। यह कर्म आत्मा के चारित्रगुण का घातक होता है। इसके उदय में न तो सर्वसंयम का ही उदय होता है और न देशसंयम का ही। शङ्काकार का यहां पर यह कहना है कि सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में दर्शनमोहनीयत्रय का ही क्षयोपशमादिक कहना चाहिये; क्यों कि वह ही इसका प्रतिपक्षी कर्म है। चारित्रमोहनीय के भेद अनंतानुबंधि–चतुष्टय का क्षयोपशमादिक उसके साथ २ क्यों कहा। वह तो सिर्फ आत्मा के चारित्रगुण का ही घातक है?। इसका यह समाधान है कि–दर्शनमोहनीय के क्षयोपशमादिक के पहिले ही उनका (कषायों का) क्षयोपशमादि अवश्य हो जाता है, इसके विना उसका क्षयोपशम आदि

એમાં દર્શન–મોહનીયના ત્રણ ભેદ છે—મિથ્યાત્વ (અશુદ્ધાંશ) ૧, મિશ્ર (અર્ધ શુદ્ધાંશ) ૨, અને સમ્યક્ત્વ (શુદ્ધાંશ) ૩.

આ કર્મના ઉદયમાં આત્માનો ગુણ–સમ્યગ્દર્શન–પ્રગટ નથી થતું. અર્થાત આ કર્મ આત્માના સમકિત ગુણનું ઘાતક છે. ચારિત્રમોહનીયના અનંતાનુબંધી –ક્રોધ, માન માયા અને લોભ, અપ્રત્યાખ્યાન–ક્રોધ, માન, માયા, લોભ, પ્રત્યાખ્યાન –ક્રોધ, માન, માયા, લોભ, સંજ્વલન–ક્રોધ–માન–માયા–લોભ અને નવ નોકષાય–હાસ્ય, રતિ, અરતિ, ભય, શોક, જુગુપ્સા, સ્ત્રીવેદ, પુંવેદ અને નપુંસકવેદ, એ પચીસ ૨૫ ભેદ છે. આ કર્મ આત્માના ચારિત્રગુણનું ઘાતક છે. આના ઉદયમાં નથી સર્વસંયમનો ઉદય થતો કે નથી દેશસંયમનો શંકાકારનું અહીંયા એ કહેવાનું છે કે સમ્યગ્દર્શનની ઉત્પત્તિમાં દર્શનમોહનીયત્રયનું ક્ષયોપશમાદિક કહેવું જોઈએ કારણ કે તેજ એનું પ્રતિપક્ષી કર્મ છે. ચારિત્રમોહનીયના ભેદ અનંતાનુબંધિચતુષ્ટયના આની સાથેર ક્ષયોપશમાદિક કેમ કહ્યા? એ તો ફક્ત આત્માના ચારિત્રગુણના ઘાતક છે? એનું એ સમાધાન છે કે–દર્શન મોહનીયના ક્ષયોપશમાદિકના પહેલાં જ એનું (કષાયોનું) ક્ષયોપશમાદિ અવશ્ય થઇ જાય છે. આના વિના એનુ (મોહનીયનુ) ક્ષયોપશમ

उक्तश्च चावश्यकसूत्रे—

"से य सम्मत्ते पसत्थसम्मत्तमोहणिज्जकम्माणुवेयणोपसमक्खयसमुत्थे पसमसंवेगाइलिंगे सुहे आयपरिणामे पण्णत्ते" इति।

छाया—तच्च सम्यक्त्वं प्रशस्तसम्यक्त्वमोहनीयकर्मानुवेदनोपशमक्षयसमुत्थः प्रशमसंवेगादिलिङ्गः शुभः आत्मपरिणामः प्रज्ञप्त इति।

कार्ये कारणोपचारात् तत्त्वार्थश्रद्धानमपि सम्यक्त्वमुच्यते। तथा चोक्तं—

"जीवाइनवपयत्थे, जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं।
भावेण सद्दहंते, अयाणमाणे वि सम्मत्तं"॥ इति।

हो ही नहीं सकता। इसका खुलासा आगे सम्यक्त्व के फलके प्रकरणमें अच्छी तरह से हो जायगा।

आवश्यक सूत्रमें यही बात कही है—

"से य सम्मत्ते पसत्थसम्मत्तमोहणिज्जकम्माणुवेयणोवसमक्खयसमुत्थे पसमसंवेगाइलिंगे सुहे आयपरिणामे पण्णत्ते" इति। अर्थात्—वह सम्यग्दर्शन प्रशस्त सम्यक्त्वमोहनीय कर्म के अनुवेदन के उपशम और क्षय से उत्पन्न होता है, तथा प्रशमसंवेगादिक लिङ्गों से जाना जाता है, एवं यह आत्मा का शुभ परिणाम कहा गया है। तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यक्त्वका कार्य है, यह ऊपर कहा जा चुका है और सम्यक्त्व उसका कारण है। अतः कार्य में कारण के उपचार-आरोप से कार्य-तत्त्वार्थश्रद्धान भी सम्यक्त्वरूप से कह दिया जाता है। अन्यत्र भी ऐसा ही कहा है—

આદિ થઈ જ શકતું નથી. એનો ખુલાસો આગળ સમ્યક્ત્વના ફળના પ્રકરણમાં ઘણી જ સરલ રીતે થઈ જશે.

આવશ્યકસૂત્રમા આ વાત કહી છે—

"से य सम्मत्ते पसत्थसम्मत्तमोहणिज्जकम्माणुवेयणोवसमक्खयसमुत्थे पसमसंवेगाइलिंगे सुहे आयपरिणामे पण्णत्ते" इति।

અર્થાત્—આ સમ્યગ્દર્શન પ્રશસ્ત સમ્યક્ત્વ-મોહનીય કર્મના અનુવેદનના ઉપશમ અને ક્ષયથી ઉત્પન્ન થાય છે; તથા પ્રશમસંવેગાદિક લિંગોથી જાણવામાં આવે છે; અને તે આત્માના શુભ પરિણામ કહેવામાં આવે છે. તત્ત્વાર્થશ્રદ્ધાન સમ્યક્ત્વનું કાર્ય છે, એ ઉપર કહેવામાં આવેલ છે અને સમ્યક્ત્વ એનું કારણ છે, એથી કાર્યમાં કારણના ઉપચાર-આરોપથી કાર્ય-તત્વાર્થશ્રદ્ધાન પણ સમ્યક્ત્વ રૂપથી કહેવામાં આવે છે. બીજી જગ્યાએ એમ કહેવામાં આવેલ છે—

अस्य च लक्षणस्य मनोरहितेषु सिद्धादिष्वपि समन्वयो भवति ।

यद्वा–तत्त्वार्थश्रद्धानमिति लक्षणं सरागसम्यक्त्वस्यैव, अत एव स्थानाङ्गसूत्रे प्रोक्तम्–

"दसविहे सरागसम्मत्तदंसणे पण्णत्ते, तं जहा—

निसग्गुवएसरुई, आणारुई सुत्तवीयरुइमेव ।

अभिगमवित्थाररुई, किरिया–संखेव–धम्मरुई" ॥ १ ॥ इति।

एवं चापर्याप्तकादौ वीतरागे च रुच्यभावेऽपि न क्षतिः ।

"जीवाइनवपयत्थे, जे जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं ।

भावेण सद्दहंते, अयाणमाणे वि सम्मत्तं ॥" ॥१॥

अर्थात्–जीवादिक नव पदार्थों को जो जानता है उसको सम्यक्त्व होता है। तथा नहीं जानने पर भी उनका भाव से श्रद्धान करनेवाले के भी सम्यक्त्व कहा गया है। इस कथन से इस लक्षणका समन्वय मनरहित सिद्धादिकों में भी हो जाता है।

अथवा–"तत्त्वार्थश्रद्धान" यह लक्षण सराग सम्यक्त्व का ही समझना चाहिये, इसलिये स्थानाङ्गसूत्रमें "दसविहे" इत्यादि दस प्रकार का सराग सम्यग्दर्शन कहा गया है। जैसे—

"दसविहे सरागसम्मत्तदंसणे पण्णत्ते, तं जहा—

निसग्गुवएसरुई, आणारुई सुत्तवीयरुइमेव ।

अभिगमवित्थाररुई, किरिया–संखेव–धम्मरुई" ॥१॥

सरागसम्यग्दर्शनके दस प्रकार ये हैं—(१) निसर्गरुचि, (२) उप-

"जीवाइनवपयत्थे, जे जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं ।

भावेण सद्दहंते, अयाणमाणे वि सम्मत्तं" ॥ १ ॥

અર્થાત્—જીવાદિક નવ પદાર્થોને જે જાણે છે તેને સમ્યક્ત્વ થાય છે. અને ન જાણવા છતાં પણ ભાવથી તેનું શ્રદ્ધાન કરવાવાળાને પણ સમ્યક્ત્વ કહેવામા આવેલ છે. આ વાકયથી આ લક્ષણનો સમન્વય મનરહિત સિદ્ધાદિકોમાં પણ થાય છે.

અથવા—"તત્વાર્થશ્રદ્ધાન" એ લક્ષણ સમ્યક્ત્વનુ જ સમજવું જોઇએ; માટે સ્થાનાંગસૂત્રમાં "દશવિહે" ઇત્યાદિ દશ પ્રકારના સરાગ સમ્યગ્દર્શન કહ્યા છે. જેમ—

"दसविहे सरागसम्मत्तदंसणे पण्णत्ते, तं जहा—

निसग्गुवएसरुई, आणारुई सुत्त–वीय–रुइमेव ।

अभिगम–वित्थाररुई, किरिया- संखेव–धम्मरुई" ॥ १ ॥ इति ।

સરાગ સમ્યગ્દર્શનના દશ પ્રકાર આ છે—(૧) નિસર્ગરૂચિ, (૨) ઉપ-

वस्तुतस्तु-इदं सम्यक्त्वलक्षणं न तत्स्वरूपं, किंतु तल्लिङ्गं तद्व्यञ्जकमिति यावत्। व्यङ्ग्यभूतं सम्यक्त्वं हि मिथ्यात्वक्षयोपशमादिजन्यं शुद्धात्मपरिणामरूपं परमार्थतोऽनाख्येयं स्वानुभवगम्यमेव।

यथा वह्निव्यञ्जकस्य धूमस्यासद्भावेऽपि संतप्तायोगोलके वह्निरस्ति, तथा तत्त्वार्थाभिरुच्यभावेऽपि आत्मपरिणामरूपसम्यक्त्वमस्त्येव। अत एवोत्तराध्ययनसूत्रे प्रोक्तम्।

देशरुचि, (३) आज्ञारुचि, (४) सूत्ररुचि, (५) बीजरुचि, (६) अभिगम रुचि, (७) विस्ताररुचि, (८) क्रियारुचि, (९) सक्षेपरुचि, १० धर्मरुचि॥

इस अपेक्षासे अपर्याप्त अवस्था एवं वीतरागदशा में रागात्मक रुचिका अभाव होने पर भी उसके सद्भाव में किसी भी प्रकारकी क्षति नहीं आती।

यथार्थ में तो यह सम्यक्त्व का लक्षण-सम्यक्त्व का स्वरूप-नहीं है; किन्तु उसका व्यञ्जक एक लिङ्ग है। जो लिङ्ग होता है वह अपने लिङ्गी का बोधक या व्यञ्जक हुआ करता है। मिथ्यात्वके क्षयोपशमादिक से उत्पन्न होनेवाला, तथा शुद्ध आत्मपरिणामस्वरूप वह सम्यक्त्व तो वास्तवमें अनाख्येय-वचनके अगोचर ही है। जैसे-अग्निका अभिव्यञ्जक धूम हुआ करता है, परन्तु तप्त अयोगोलक (लोहे के पिण्ड) में उसके अभाव में भी अग्निका सद्भाव रहता है। उसी तरह से तत्त्वार्थश्रद्धान के अभाव में भी आत्मपरिणामस्वरूप सम्यक्त्वका सद्भाव सिद्धादिकों में रहता ही है। इसलिये उत्तराध्ययन सूत्र (अध्य० २८) में कहा है-

---

દેશરૂચિ, (૩) આજ્ઞારૂચિ, (૪) સૂત્રરૂચિ, (૫) બીજરૂચિ, (૬) અભિગમરૂચિ, (૭) વિસ્તારરૂચિ, (૮) ક્રિયારૂચિ, (૯) સંક્ષેપરૂચિ, (૧૦) ધર્મરૂચિ.

આ અપેક્ષાથી અપર્યાપ્ત અવસ્થા તેમજ વીતરાગ દશામાં રાગાત્મક રૂચિનો અભાવ હોવા છતાં પણ તેના સદ્ભાવમાં કોઇ પણ પ્રકારે ક્ષતિ આવતી નથી.

યથાર્થમાં તો આ સમ્યક્ત્વનું લક્ષણ-સમ્યક્ત્વનું સ્વરૂપ-નથી, પણ તેનું વ્યંજક એક લિંગ છે. જે લિંગ થાય છે તે પોતાના લિંગીના બોધક અગર વ્યંજક થયા કરે છે. મિથ્યાત્વના ક્ષયોપશમાદિકથી ઉત્પન્ન થવાવાલા, તથા શુદ્ધ આત્મપરિણામસ્વરૂપ એ સમ્યક્ત્વ તો વાસ્તવમાં અનાખ્યેય-વચનનું અગોચર છે, જેમ અગ્નિનો અભિવ્યંજક ધૂમ થયા કરે છે, પરંતુ તપ્ત અયોગોલક (લોહના પિંડ)માં એના અભાવમાં પણ અગ્નિનો સદ્ભાવ રહે છે. એવી રીતે તત્વાર્થશ્રદ્ધાનના અભાવમાં પણ આત્મપરિણામસ્વરૂપ સમ્યત્વનો સદ્ભાવ સિદ્ધાદિકોમાં પણ રહે છે. તેથી ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર અધ્ય૦ ૨૮ માં કહ્યુ છે—

"नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं" ॥१॥ इति।

अत्र ज्ञानादिकं जीवस्वरूपव्यञ्जकरूपं जीवलक्षणमुक्तं, तेन ज्ञानादीनामनभिव्यक्तावपि पृथिव्यादिपु जीवसद्भावः। शुद्धात्मपरिणामरूपं सम्यक्त्वं नान्यप्रमाणविषयस्तस्मात् स्वानुभवगम्यमेवेति निर्णीयते।

एतच्चात्रापि पञ्चमाध्ययने शुद्धात्मस्वरूपं प्रतिवोधतया भगवता वक्ष्यते—

"नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं ॥ १ ॥" इति।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप तथा वीर्य एवं उपयोग, ये जीवके लक्षण हैं।

इस गाथा में ज्ञानादिकों को जीवस्वरूपाभिव्यञ्जक जीवलक्षण कहा है, इससे पृथिव्यादिक एकेन्द्रिय जीवों में ज्ञानादिककी स्पष्टतः अभिव्यक्ति–प्रकटता नहीं प्रतीत होने पर भी वहां पर जीवत्वका सद्भाव सिद्ध होता है। सम्यक्त्व जो शुद्ध आत्मपरिणामस्वरूप है और जिसे अनाख्येय–वचनअगोचर–कहा गया है उसका कारण यही है कि वह अन्य किसी भी प्रमाण का विषय नहीं होता है। इसीलिये तो वह स्वानुभवगम्य कहा जाता है। यही बात आगे इसी शास्त्रके पञ्चमाध्ययन में शुद्ध आत्मस्वरूपका कथन करते समय भगवान स्वयं कहेंगे। जैसे—

"नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं" ॥ १ ॥ ઇતિ.

જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર, તપ તથા વીર્ય અને ઉપયોગ એ જીવના લક્ષણ છે.

આ ગાથામાં જ્ઞાનાદિને જીવસ્વરૂપાભિવ્યંજક જીવલક્ષણ કહે છે. એથી પૃથિવી આદિ એકેન્દ્રિય જીવોમાં જ્ઞાનાદિકની સ્પષ્ટતઃ અભિવ્યક્તિ પ્રગટ જોવામાં આવતી નથી તો પણ આ ઠેકાણે જીવનો સદ્ભાવ સિદ્ધ થાય છે. સમ્યક્ત્વ જે શુદ્ધ આત્મપરિણામસ્વરૂપ છે અને જેને અનાખ્યેય–વચનઅગોચર કહ્યું છે, એનું કારણ એ છે કે તે બીજા કોઈ પ્રમાણનો વિષય બનતો નથી, તેથી તો તે સ્વાનુભવગમ્ય કહેવાય છે. આ વાત આગળ આ શાસ્ત્રના પાંચમા અધ્યયનમાં શુદ્ધ આત્મસ્વરૂપનું કથન કરતી વખત ભગવાન સ્વયં કહેશે. જેમ—

"सव्वे सरा णियट्टंति तक्का जत्थ ण विज्जइ, मई तत्थ ण गाहिआ" इत्यादि।
छाया-"सर्वे स्वरा निवर्त्तन्ते, तर्का यत्र न विद्यते, मतिस्तत्र न ग्राहिता" इत्यादि।
स्वानुभवविषयत्वेऽपि सम्यक्त्वस्येक्षुक्षीरादिरसमाधुर्यविशेषाणामिव वाग्विषयत्वाऽभावादनाख्येयत्वम्। तथा चोक्तम्—

"इक्षुक्षीरगुडादीनां माधुर्यस्यान्तरं महत्।
तथापि न तदाख्यातुं सरस्वत्यापि पार्यते" ॥ २ ॥

"सव्वे सरा णियट्टंति तक्का जत्थ ण विज्जइ, मई तत्थ ण गाहिआ" इत्यादि।
समस्त स्वरोंकी वहां पर निवृत्ति होती है, तर्क भी वहां प्रवेश नहीं कर सकता है, एवं बुद्धि के भी वह अगम्य है। इत्यादि।

शुद्ध सम्यक्त्व को जो वचनातीत एवं स्वानुभवगम्य कहा है वह इस प्रकार से-जैसे-इक्षु-(गन्ना) और दुग्धादिककी मधुरता उपभोक्ता के ही अनुभवगम्य होती है। उससे यदि कोइ यह पूछे कि गन्ना कैसा मीठा है? दूध की मधुरता कैसी है?, तो वह इस वातको वचन से नहीं कह सकता, वह तो उनकी मधुरता अपने निजी अनुभव से ही जानता है। यही बात अन्यत्र भी कही है।

"इक्षु-क्षीर-गुड़ादीनां, माधुर्यस्यान्तरं महत्।
तथापि न तदाख्यातुं, सरस्वत्यापि पार्यते" ॥ १ ॥

यद्यपि गन्ना, दूध और गुड आदि मिष्ट पदार्थों की मधुरता में बहुत ही अन्तर है, तो भी उनके उस अन्तर को सरस्वती भी नहीं कह सकती ॥ १ ॥

"सव्वे सरा णियट्टंति तक्का जत्थ ण विज्जई। मई तत्थ ण गाहिया" ઈત્યાદિ.

સમસ્ત સ્વરોની જ્યાં નિવૃત્તિ થઇ જાય છે, ત્યાં તર્ક પણ પ્રવેશ કરી શકતો નથી. તેમ જ બુદ્ધિથી પણ તે અગમ્ય છે. ઈત્યાદિ. શુદ્ધ સમ્યક્ત્વને જે વચનાતીત અને સ્વાનુભવગમ્ય કહેલ છે તે આ પ્રકારે કે જેવી રીતે ઈક્ષુ (શેરડી) અને દુગ્ધાદિકની મધુરતા ઉપભોક્તાથી અનુભવગમ્ય હોય છે. કદાચ કોઇ તેને પૂછે કે શેરડી કેવી મીઠી છે? દૂધની મધુરતા કેવી છે?, તો તે આ વાતને વચનથી કહી શકશે નહિ. તે તો તેની મધુરતાને પોતાના નિજ અનુભવથી જ જાણે છે. આ વાત બીજી જગ્યોએ પણ કહેવામાં આવી છે—

"इक्षु-क्षीर-गुडादीनां, माधुर्यस्यान्तर महत्।
तथापि न तदाख्यातुं, सरस्वत्यापि पार्यते ॥ १ ॥" ઇતિ।

જો કે-શેરડી, દૂધ અને ગોળ આદિ મિષ્ટ પદાર્થોની મધુરતામાં ઘણો જ ભેદ છે તો પણ એ ભેદને સરસ્વતી પણ કહી શકતી નથી.

सम्यक्त्वभेदः—सम्यक्त्वं द्रव्यभावभेदाद् द्विविधम् । तत्र द्रव्यतः सम्यक्त्वं विशोधिता मिथ्यात्वपुद्गला एव । विशोधिता हि मिथ्यात्वपुद्गला अतिस्वच्छ-सूक्ष्मवस्त्रमिव दृष्टेरध्यवसायात्मकस्य सम्यक्त्वस्याऽऽवरका न भवन्ति, तस्मात् तत्र सम्यक्त्वोपचारः । भावतस्तु-मिथ्यात्वक्षयोपशमादिजन्यः शुभ आत्मपरिणामविशेषः ।

सम्यक्त्वके भेद—

सम्यक्त्व दो प्रकार का है-(१) द्रव्य-सम्यक्त्व, (२) भाव-सम्यक्त्व मिथ्यात्व प्रकृति के जो विशुद्ध पुद्गल हैं वे द्रव्यसम्यक्त्व है। ये विशुद्ध मिथ्यात्व के पुद्गल, जिस तरह सूक्ष्म वस्त्र दृष्टिका रोधक नहीं होता उसी तरह अध्यवसायस्वरूप सम्यक्त्व के प्रतिबन्धक नहीं होते। अर्थात् जैसे सूक्ष्मवस्त्र दृष्टिका प्रतिबन्धक नहीं होता, ठीक इसी प्रकार से वह मिथ्यात्व का शुद्ध पुंज सम्यकदर्शनरूप दृष्टिका रोधक नहीं होता । इस कारण उसे उपचार से सम्यक्त्व कहा गया है । मिथ्यात्व कर्म के क्षयोपशमादिक उत्पन्न हुआ आत्माका शुभ परिणाम भाव-सम्यक्त्व है । अन्य प्रकार से भी सम्यक्त्व दो प्रकार का है-(१) नैश्च-यिक-सम्यक्त्व, (२) व्यावहारिक-सम्यक्त्व । एक पौद्गलिक-सम्यक्त्व, दूसरा अपौद्गलिक-सम्यक्त्व । एक नैसर्गिक और दूसरा आधिगमिक सम्यक्त्व ।

સમ્યક્ત્વના ભેદ—

સમ્યક્ત્વ બે પ્રકારનું છે. (૧) દ્રવ્ય-સમ્યક્ત્વ (૨) ભાવ-સમ્યક્ત્વ, મિથ્યાત્વ પ્રકૃતિના જે વિશુદ્ધ પુદ્ગલ છે તે દ્રવ્ય-સમ્યક્ત્વ છે. જેવી રીતે સૂક્ષ્મ વસ્ત્ર દૃષ્ટિનું રોધક નથી થતું તેવી રીતે એ વિશુદ્ધ મિથ્યાત્વના પુદ્ગલ અધ્યવસાય-સ્વરૂપ સમ્યક્ત્વનાં પ્રતિબન્ધક નથી થતાં. અર્થાત્-જેવી રીતે સૂક્ષ્મ વસ્ત્ર દૃષ્ટિનું પ્રતિબંધક નથી થતું, ઠીક આ પ્રકારથી તે મિથ્યાત્વના વિશુદ્ધ પુદ્ગલ પુંજ સમ્યગ્દ-ર્શનરૂપ દૃષ્ટિનાં રોધક નથી થતા. આ કારણે તેને ઉપચારથી સમ્યક્ત્વ કહેવામાં આવે છે મિથ્યાત્વ કર્મના ક્ષયોપશમાદિકથી ઉત્પન્ન થયેલા આત્માના શુભ પરિણામ ભાવ-સમ્યક્ત્વ છે બીજા પ્રકારે પણ સમ્યક્ત્વ બે પ્રકારના છે (૧) નૈશ્ચયિક-સમ્યક્ત્વ (૨) વ્યાવહારિક-સમ્યક્ત્વ, એક પૌદ્ગલિક સમ્યક્ત્વ, બીજું અપૌ-દ્ગલિક-સમ્યક્ત્વ, એક નિસર્ગ અને બીજું અધિગમ-સમ્યક્ત્વ.

प्रकारान्तरैरपि सम्यक्त्वं द्विविधम्, यथा—नैश्चयिक—व्यावहारिकभेदाद् द्विविधम्, पौद्गलिकापौद्गलिकभेदाद् द्विविधम्, नैसर्गिकाधिगमिकभेदाद् द्विविधमिति।

तत्र मिथ्यात्वक्षयोपशमादिजन्यं शुद्धात्मपरिणामविशेषरूपं नैश्चयिकं सम्यक्त्वम्। व्यावहारिकं तु कुदेवकुगुरुकुधर्मपरित्यागपूर्वकं निश्चितरूपेण सुदेवसुगुरुसुधर्मस्वीकरणं रुचिरूपं तत्त्वार्थश्रद्धानादिकमपि।

तथा—अपनीतमिथ्यात्वस्वभावसम्यक्त्वपुञ्जगतपुद्गलवेदनसमुत्थं क्षायोपशमिकं वेदकं च पौद्गलिकं सम्यक्त्वम्। अपौद्गलिकं तु पुद्गलवेदनवर्जितं केवलजीवपरिणामरूपं क्षायिकमौपशमिकं च। नैसर्गिकमाधिगमिकं च सम्यक्त्वं प्रथमाध्ययने तृतीयोद्देशे प्रागेव वर्णितम्।

भाव-सम्यक्त्व का जो लक्षण कहा है वही नैश्चयिक-सम्यक्त्व का स्वरूप है। अर्थात् मिथ्यात्वकर्म के क्षयोपशमादिक से उत्पन्न हुआ आत्मा का शुभ अध्यवसायविशेष ही नैश्चयिक-सम्यक्त्व है। कुदेव, कुगुरु और कुधर्म का परिहार-त्याग-पूर्वक निश्चितरूप से सुदेव, सुगुरु और सुधर्म का स्वीकार करना, तथा रुचिरूप से तत्त्वार्थ का श्रद्धान करना आदि व्यवहार-सम्यक्त्व है। इसी प्रकार मिथ्यात्व स्वभाव जिस से दूर हो चुका है ऐसा जो सम्यक्त्वप्रकृति का पुंज है उसके भीतर रहे हुए पुद्गलों के वेदनसे उत्पन्न हुआ जो क्षायोपशमिकसम्यक्त्व एवं वेदक-सम्यक्त्व है वह पौद्गलिक-सम्यक्त्व है। उस पुद्गल के वेदन से रहित केवल जीव के परिणामस्वरूप जो क्षायिक-सम्यक्त्व और औपशमिक सम्यक्त्व है, वह अपौद्गलिक-सम्यक्त्व है। नैसर्गिक और आधिगमिक सम्यक्त्वका वर्णन प्रथम अध्ययन के तीसरे उद्देश में किया जा चुका है।

ભાવ-સમ્યક્ત્વનું જે લક્ષણ કહ્યુ છે તે નૈશ્ચયિક-સમ્યક્ત્વનું સ્વરૂપ છે. અર્થાત્ મિથ્યાત્વ કર્મના ક્ષયોપશમાદિકથી ઉત્પન્ન થયેલ આત્માનું શુભ અધ્યવસાયવિશેષ જ નૈશ્ચયિક-સમ્યક્ત્વ છે. કુદેવ, કુગુરૂ અને કુધર્મના પરિહાર-ત્યાગ-પૂર્વક નિશ્ચિતરૂપથી સુદેવ, સુગુરૂ અને સુધર્મનો સ્વીકાર કરવો, તથા રૂચિ-રૂપથી તત્ત્વાર્થનું શ્રદ્ધાન કરવું આદિ વ્યવહાર-સમ્યક્ત્વ છે. આ પ્રકારે મિથ્યાત્વ સ્વભાવ જેનાથી દૂર થઇ ગયેલ છે એવા જે સમ્યક્ત્વ પ્રકૃતિના પુંજ છે એની અંદર રહેલા પુદ્ગલોના વેદનથી ઉત્પન્ન થયેલા જે ક્ષાયોપશમિક-સમ્યક્ત્વ તેમજ વેદક-સમ્યક્ત્વ છે તે પૌદ્ગલિક સમ્યક્ત્વ છે. એ પુદ્ગલના વેદનથી રહિત કેવલ જીવના પરિણામસ્વરૂપ જે ક્ષાયિક-સમ્યક્ત્વ અને ઔપશમિક-સમ્યક્ત્વ છે આ અપૌદ્ગલિક સમ્યક્ત્વ છે. નિસર્ગ અને અધિગમ સમ્યક્ત્વનું વર્ણન પ્રથમ અધ્યયનના ત્રીજા ઉદ્દેશમાં કરવામાં આવેલ છે.

प्रकारान्तरेण सम्यक्त्वं दशधा, तद्यथा-(१) औपशमिक-(२) क्षायिक-(३) क्षायोपशमिक-(४) सास्वादन-(५) वेदकभेदात् पञ्चविधम्। तत्र प्रत्येकं नैसर्गिकाधिगमिकभेदाद् द्वैविध्ये दशविधत्वं भवति।

(१) अनन्तानुवन्धिकषायचतुष्टयोपशमानन्तरं मिथ्यात्व-मिश्र-सम्यक्त्व-मोहनीयकर्मणां सर्वथोपशमाज्जातो जीवस्य तत्त्वरुचिरूपः शुभपरिणामः औपशमिकं सम्यक्त्वम्। एतच्चोपशमश्रेणिप्रतिपन्नस्य जीवस्य भवति।

(२) तेषां सर्वथा क्षयेण निर्वृत्तं जीवस्य शुभपरिणामरूपं क्षायिकं सम्यक्त्वम्।

(३) क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वं प्रोच्यते—अनन्तानुवन्धिकपायचतुष्टय-

---

अन्य प्रकार से सम्यक्त्व दश प्रकार का भी कहा गया है, जैसे- (१) औपशमिक, (२) क्षायिक, (३) क्षायोपशमिक, (४) सास्वादन, और (५) वेदक। ये पांचों ही निसर्ग और अधिगम के भेद से दो दो प्रकारके होते हैं, इस प्रकार सम्यक्त्व के दश भेद हो जाते हैं।

(१) अनन्तानुवन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चार कषायों के उपशम (सत्ता में स्थित रहने)के बाद मिथ्यात्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय एवं सम्यक्त्वमोहनीय कर्म के सर्वथा उपशम से उत्पन्न हुआ जो तत्त्वरुचिरूप जीवका शुभ परिणामविशेष है वह औपशमिक-सम्यक्त्व है। यह सम्यक्त्व उपशम श्रेणिवाले जीव के होता है १।

(२) अनन्तानुवन्धी आदि (७) सात प्रकृतियों के सर्वथा क्षय से जो जीव को शुभ परिणाम उत्पन्न होता है वह क्षायिक-सम्यक्त्व है २।

(३) क्षायोपशमिक-सम्यक्त्व का लक्षण इस प्रकार है—

બીજા પ્રકારે સમ્યક્ત્વ દશ પ્રકારના પણ કહેવામાં આવે છે. જેમ- (૧) ઔપશમિક, (૨) ક્ષાયિક, (૩) ક્ષાયોપશમિક, (૪) સાસ્વાદન, અને (૫) વેદક. એ પાંચે નિસર્ગ અને અધિગમના ભેદથી બે બે પ્રકારના છે. એ રીતે સમ્યક્ત્વના દશ ભેદ થઈ જાય છે.

(૧) અનન્તાનુબન્ધી ક્રોધ માન માયા અને લોભ, એ ચાર કષાયોના ઉપશમ (સત્તામાં સ્થિત રહેવું) પછી મિથ્યાત્વ મોહનીય, મિશ્રમોહનીય અને સમ્યક્ત્વ મોહનીય કર્મોના સર્વથા ઉપશમથી ઉત્પન્ન થયેલાં જે તત્ત્વરૂચિરૂપ જીવના શુભ પરિણામવિશેષ છે તે ઔપશમિક-સમ્યક્ત્વ છે. આ સમ્યક્ત્વ ઉપશમ શ્રેણીવાળા જીવને થાય છે (૧).

(૨) અનંતાનુબંધી આદિ ૭ સાત પ્રકૃતિયોના સર્વથા ક્ષયથી જે જીવને શુભ પરિણામ ઉત્પન્ન થાય છે તે ક્ષાયિક-સમ્યક્ત્વ છે (૨).

(૩) ક્ષાયોપશમિક સમ્યક્ત્વના લક્ષણ આ પ્રકારે છે:—

क्षयान्तरं मिथ्यात्वमोहनीयकर्मणां क्षयोपशमात् सम्यक्त्वमोहनीयकर्मणामुदयाच्च संजात आत्मपरिणामः क्षायोपशमिकसम्यक्त्वम्। तत्रेदमवगन्तव्यम्—यदुदीर्णमुदयमागतं मिथ्यात्वमोहनीयं कर्म, तद्धि विपाकोदयेन वेदितत्वात् क्षयं प्राप्तम्, यच्च शेषसत्तायामनुदितं वर्तते, तदुपशान्तम्। उपशान्तं नाम—अनुदयावस्थापन्नम्। तत्र—मिथ्यात्वमिश्रपुञ्जावाश्रित्यानुदयावस्थापन्नं सम्यक्त्वपुञ्जमाश्रित्य तु अधिकांशतया उदीर्णावस्थापन्नम्। तदेवमुदितस्य मिथ्यात्वस्य क्षयेणानुदितस्य चोपशमेन सम्यक्त्वकर्मपुद्गलानां कियताश्चिद्वेदनेन च निर्वृत्तं=निष्पन्नं क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वमुच्यते।

अनन्तानुबन्धी चार कषायों के क्षय के अनन्तर, मिथ्यात्वमोहनीय कर्म के क्षयोपशम से, एवं सम्यक्त्वमोहनीय कर्म के उदय से जो आत्मा का परिणाम उत्पन्न होता है वही क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है, अर्थात् इस सम्यक्त्व में मिथ्यात्व के कुछ भागका क्षय हो जाता है और कुछ भागका उपशम रहता है, वह इस प्रकार से कि—मिथ्यात्वके जो सर्वघातिस्पर्द्धक हैं उनका तो उदयभावी क्षय (उदय में आये हुए सर्वघातिस्पर्द्धकों का विना फल दिये ही खिर जाना) हो जाता है, एवं उन्हीं के आगामी कालमें उदय आनेवाले निषेकों (कर्म पुद्गलोंके रचनाविशेषों) का सदवस्थारूप उपशम रहता है, और सम्यक्त्व प्रकृति जो देशघाती है उसका यहां पर उदय रहता है, अतः यहां पर मिथ्यात्वमोहनीय कर्म का जितना भी अंश उदय में आया है, वह तो विपाकरूप उदय से वेद लिया गया है, इसलिये उतने भाग का तो क्षय हो चुका है, एवं जो अवशिष्ट अवेदित भाग है कि जो अभी तक

અનંતાનુબંધી ચાર કષાયોના ક્ષયના અનન્તર મિથ્યાત્વ–મોહનીય કર્મના ક્ષયોપશમથી અને સમ્યક્ત્વ–મોહનીય કર્મના ઉદયથી જે આત્માનો પરિણામ–ભાવ–ઉત્પન્ન થાય છે તે ક્ષાયોપશમિક–સમ્યક્ત્વ છે. અર્થાત્ આ સમ્યક્ત્વમાં મિથ્યાત્વના કોઈ ભાગનો ક્ષય થઈ જાય છે અને કોઈ ભાગનો ઉપશમ રહે છે. તે એ પ્રકારથી કે મિથ્યાત્વના જે સર્વઘાતી સ્પર્દ્ધક છે તેનો તો ઉદય–ભાવી ક્ષય (ઉદયાગત સર્વઘાતિ સ્પર્દ્ધકોનું ફળ આપ્યા વિના તુટી જવું) થઇ જાય છે અને એના આગામી કાળમા ઉદય આવવાવાળા નિષેકો (કર્મ પુદ્ગલોના રચના વિશેષો) નો સદવસ્થારૂપ ઉપશમ રહે છે અને સમ્યક્ત્વપ્રકૃતિ જે દેશઘાતી છે એનો આંહી ઉદય રહે છે, એટલે અહીંયા મિથ્યાત્વમોહનીય કર્મનો જેટલો પણ અંશ ઉદયમાં આવ્યો તે તો વિપાકરૂપ ઉદયથી વેદવામાં આવેલ છે જેથી એટલા ભાગનો તો ક્ષય થઇ ગયેલ છે. અને જે અવશિષ્ટ અવેદિત ભાગ છે

आत्मपरिणामरूपस्य सम्यक्त्वस्यानावरकत्वादयं विशोधितपुद्गलपुञ्जोऽप्युपचारतः सम्यक्त्वमुच्यते। सम्यक्त्वपुद्गलवेदनसमुद्भूतत्वादिदं सम्यक्त्वं पौद्गलिकम्।

उदय में नहीं आया है-सिर्फ सत्ता में ही बैठा हुआ है, बस इसीका नाम सदवस्थारूप उपशम है, इसीको अनुदित=अनुदय अवस्था भी कहते हैं। यहां पर जो मिथ्यात्व की अनुदयावस्था कही गई है वह मिथ्यात्वके कुछ भाग की तथा मिश्रपुंजकी अपेक्षा को लेकर ही कही गई है, क्यों कि इनका यहां पर उदय नहीं है तथा सम्यक्त्वप्रकृतिका ही कितनेक अंश से उदय है। इसप्रकार उदित मिथ्यात्व के क्षय से और अनुदित उसी मिथ्यात्व के उपशम से और कितनेक सम्यक्त्व-कर्मके पुद्गलों के वेदन होनेसे यह क्षायोपशमिक सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। इस प्रकार से क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का लक्षण सुघटित हो जाता है।

यह सम्यक्त्व आत्मपरिणामरूप सम्यक्त्व का अनावारक-आवरण करनेवाला नहीं-होने से उपचार से सम्यक्त्व कहा गया है, क्यों कि इस सम्यक्त्वमें विशोधितपुद्गलपुंज का-सम्यक्त्व-प्रकृतिका उदय है और उसीके उदयरूप वेदन से यह सम्यक्त्व हुआ है, इसलिये पुद्गलजनित होने से यह पौद्गलिक है। इस पौद्गलिक कार्य को जो सम्यक्त्व कहा गया है वह इसी हेतु से कि वह आत्मपरिणामरूप जो सम्यक्त्व है उसका आवरण नहीं करता है।

જે હજુ સુધી ઉદયમા આવેલ નથી ફક્ત સત્તામાજ બેઠેલ છે, બસ એનું નામ સદવસ્થારૂપ ઉપશમ છે, એને અનુદિત-અનુદયઅવસ્થા પણ કહે છે. અહીંયા જે મિથ્યાત્વની અનુદયાવસ્થા કહેવાઇ છે તે મિથ્યાત્વના કોઇ ભાગની અને મિશ્રપુંજની અપેક્ષાએ કહેવાઈ છે. કારણ કે એનો આ જગ્યોએ ઉદય નથી, તથા સમ્યક્ત્વપ્રકૃતિનો થોડા ભાગે ઉદય છે. આ પ્રકારે ઉદિત મિથ્યાત્વના ક્ષયથી, અને અનુદિત એજ મિથ્યાત્વના ઉપશમથી અને કેટલાંક સમ્યક્ત્વકર્મના પુદ્ગલોના વેદન હોવાથી આ ક્ષાયોપશમિક સમ્યક્ત્વ ઉત્પન્ન થાય છે. આ પ્રકારથી ક્ષાયોપશમિક સમ્યક્ત્વના લક્ષણ સુઘટિત થઈ જાય છે.

આ સમ્યક્ત્વ આત્મ-પરિણામરૂપ સમ્યક્ત્વના અનાવારક-આવરણ કરવાં વાળાં નહિ-હોવાથી ઉપચારથી સમ્યક્ત્વ કહેવામાં આવેલ છે, કારણ કે આ સમ્યક્ત્વમાં વિશોધિતપુદ્ગલપુંજનો-સમ્યક્ત્વ પ્રકૃતિનો ઉદય છે અને એના ઉદયરૂપ વેદનથી એ સમ્યક્ત્વ થયેલ છે, માટે પુદ્ગલજન્ય હોવાથી આ પૌદ્ગલિક છે, અને આ પૌદ્ગલિક કાર્યને જે સમ્યક્ત્વ કહેલ છે તે આ હેતુથી કે તે આત્મપરિણામરૂપ જે સમ્યક્ત્વ છે એનુ આવરણ નથી કરતું.

ननु क्षायोपशमिकसम्यक्त्वस्यौपशमिकसम्यक्त्वात्को भेदः? इति चेदुच्यते- क्षायोपशमिके मिथ्यात्वदलिकवेदनं विपाकतो नास्ति, प्रदेशतस्तु विद्यते। औपशमिके तु प्रदेशतोऽपि नास्तीति विशेष इति।

(४) अथ सास्वादनं सम्यक्त्वमुच्यते—आस्वादनेन=सम्यक्त्वरसास्वादनेन सह वर्तत इति सास्वादनम्। यथा-क्षीरान्नं भुक्त्वा तद्विपये चित्तविकारेण यदि कश्चित् तद्वमति, तदाऽसौ वमनकाले क्षीरान्नरसमास्वादयति, तथा मिथ्यात्वोदये

शंका--क्षायोपशमिक-सम्यक्त्व में और औपशमिक-सम्यक्त्व में क्या भेद है? शंकाकारका अभिप्राय यहां पर इतना ही है कि जैसे क्षायोपशमिक-सम्यक्त्व में मिथ्यात्वका उदय नहीं है, उसी प्रकार से उपशमसम्यक्त्व में भी नहीं है; फिर इन दोनों में अन्तर क्या है?।

उत्तर--इन दोनों में अन्तर है और वह इस प्रकार से है कि क्षायोपशमिक सम्यक्त्व में मिथ्यात्वके दलियों का वेदन यद्यपि विपाकरूप से नहीं है परन्तु प्रदेशोदय से उनका वेदन वहां पर है ही। औपशमिक सम्यक्त्व में तो दोनों रूप से ही उनका वेदन नहीं है ३।

(४) अब सास्वादनसम्यक्त्व का स्वरूप कहते हैं--

'सह-आस्वादनेन वर्तते इति सास्वादनम्'-अर्थात् जो सम्यक्त्वरूप रसके आस्वादन से सहित हो उसका नाम सास्वादनसम्यक्त्व है। जैसे कोई व्यक्ति खीर खाकर पश्चात् चित्त में तद्विषयक विकार होनेपर वमन करता है उस समय में भी वह उसके रसास्वादका अनुभव करता है,

---

શંકા--ક્ષાયોપશમિક-સમ્યક્ત્વમાં અને ઔપશમિક-સમ્યક્ત્વમાં શો ભેદ છે? શંકાકારનો અભિપ્રાય આ ઠેકાણે એ છે કે જેવી રીતે ક્ષાયોપશમિક-સમ્યક્ત્વમાં મિથ્યાત્વનો ઉદય નથી તેવી જ રીતે ઉપશમ-સમ્યક્ત્વમાં પણ નથી તો પછી એ બન્નેમાં ભેદ શો છે?

ઉત્તર—એ બન્નેમા ભેદ છે અને તે આ પ્રકારે છે-ક્ષાયોપશમિક-સમ્યક્ત્વમાં મિથ્યાત્વના દલિયોનું વેદન છે, જો કે વિપાકરૂપથી નથી પરન્તુ પ્રદેશોદયથી એનું વેદન ત્યાં છે જ. ઔપશમિક-સમ્યક્ત્વમાં તો બન્ને રૂપથી તેનું વેદન છે જ નહિ. (૩)

(૪) હવે સાસ્વાદન-સમ્યક્ત્વનું સ્વરૂપ કહે છે:—

'सह आस्वादनेन वर्त्तते इति सास्वादनम्'-અર્થાત્ જે સમ્યક્ત્વરૂપ રસના આસ્વાદનથી સહિત છે એનું નામ સાસ્વાદન-સમ્યક્ત્વ છે, જેમકે કોઈ વ્યક્તિ દૂધપાક જમ્યા પછી ચિત્તમાં તદ્‌વિષયક વિકાર થવાથી વમન કરે છે એ સમયમાં પણ તે એના રસાસ્વાદનો અનુભવ કરે છે. આ પ્રકારે મિથ્યાત્વના ઉદયથી મિથ્યા-

सति मिथ्यात्वाभिमुखतयाऽनन्तानुबन्धिकषायोदयादौपशमिकसम्यक्त्वोपरि व्यलीकचित्तस्य तत्सम्यक्त्वमुद्वमतस्तद्रसास्वादनं जघन्यतः समयमात्रं, उत्कर्षतश्च षडावलिकायां भवति, तस्मादिदं सम्यक्त्वं सास्वादनमुच्यते। अस्मिन् सम्यक्त्वेऽनन्तानुबन्धिकषायोदयसत्त्वेनात्मपरिणामनैर्मल्याभावादव्यक्ता तत्त्वार्थानभिरुचिस्तिष्ठति, मिथ्यात्वे तु व्यक्ता, इत्येव तयोर्भेदः।

यद्वा-इदं सासादननाम्नाऽपि निगद्यते। तत्र-आयम्=औपशमिकसम्यक्त्वलाभं सादयति=अपनयतीत्यासादनम्=अनन्तानुबन्धिकषायवेदनम्। तस्मिन्

उसी प्रकार मिथ्यात्वके उदय होनेसे मिथ्यात्वप्राप्तिके सम्मुख हुआ जीव भी अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से जब औपशमिक सम्यक्त्वके ऊपर अरुचि-चित्तवाला होकर उसका वमन-त्याग कर देता है, अर्थात् -जब वह सम्यक्त्व उससे छूट जाता है, तब उसका आस्वादन भी उसे कमसे कम एक समय तक, और ज्यादा से ज्यादा छह आवलिकाल तक बना ही रहता है। इस कारण इस सम्यक्त्व को सास्वादनसम्यक्त्व कहा गया है। इस सम्यक्त्व में अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय का सद्भाव होने से (क्रोधादिकों में से किसी एक के उदयका सद्भाव होने से) आत्मा के परिणामों में यथावत् निर्मलता-विशुद्धि-का अभाव हो जाता है। इससे यहां तत्त्वार्थ के प्रति यद्यपि व्यक्त-प्रगट-रूप में अप्रीति-अरुचि नहीं है; फिर भी अव्यक्त रूपसे वह यहां है ही। इसीलिये तो मिथ्यात्व और सास्वादनमें इसी अप्रीति की व्यक्ताव्यक्तता से भेद माना गया है।

त्वप्राप्तिना सम्मुख थयेल जीव पण अनंतानुबंधी कषायना उदयथी ज्यारे औपशमिक-सम्यक्त्वना उपर अरुचिचित्तवाळा थईने एनो वमन-त्याग करे छे, अर्थात् ज्यारे ते सम्यक्त्व छुटी जाय छे त्यारे एनुं आस्वादन पण एने ओछामां ओछा एक समय सुधी अने वधारेमां वधारे छ-आवलिकाळ सुधी रहे छे. आ कारणे आ सम्यक्त्वने सास्वादन-सम्यक्त्व कहेवामां आवेल छे.

आ सम्यक्त्वमां अनंतानुबंधी कषायना उदयनो सद्भाव होवाथी (क्रोधादिकोमांथी कोई एकना उदयनो सद्भाव होवाथी) आत्माना परिणामोमां यथावत् निर्मळता-विशुद्धि-नो अभाव थई जाय छे, तेथी अहींया तत्त्वार्थना प्रति यद्यपि व्यक्त-प्रगट-रूपमां अप्रीति-अरुची नथी; तो पण अव्यक्तरूपथी ते अहींया छे ज. तेथी तो मिथ्यात्व अने सास्वादमां ए ज अप्रीतिनी व्यक्ताव्यक्तताथी भेद मानवामां आवे छे.

सति हि—अनन्तसुखदो निःश्रेयसतरुवीजभूत औपशमिकसम्यक्त्वलाभो जघन्यतः समयमात्रेण उत्कर्षतः षड्भिरावलिकाभिरपगच्छति। आसादनमित्यत्र पृषोदरादित्वाद् यकारलोपः, 'कृद्वहुल'-मिति कर्तर्यनट्। आसादनेन सह वर्तत—इति सासादनम्। अनन्तानुवन्धिकषायोदये सति औपशमिकसम्यक्त्वात् प्रपतन् मिथ्यात्वसंक्रमणाभिमुखः सन् यावत् मिथ्यात्वभूमिं न प्राप्नोति तदन्तराले वर्तमानस्य यत् सम्यक्त्वं तत् सासादनं भवति।

अथवा—यह सम्यक्त्व सासादन के नाम से भी कहा जाता है, अर्थात् इसका दूसरा नाम सासादनसम्यक्त्व भी है। 'आयं सादयति-अपनयतीत्यासादनम्; आसादनेन सह वर्तते-इति सासादनम्' अर्थात्-'आय' नाम औपशमिकसम्यक्त्वके लाभका है। उस लाभको जो हटाता है, उसे आसादन कहते हैं। उसके सहित होने से वह सासादन कहा जाता है। इस सम्यक्त्व की प्राप्तिरूप लाभको हटानेवाला अनंतानुवंधी कषाय के उदयका वेदन ही है। क्यों कि इसके होने पर अनन्त सुखदाता और निश्रेयस-मोक्षरूप वृक्षका वीजरूप जो औपशमिक सम्यक्त्व है उसका लाभ-सद्भाव कम से कम एक समय तक और अधिक से अधिक छह आवलिकाल तक ही रह कर फिर दूर हो जाता है। इसका फलितार्थ यही है कि औपशमिकसम्यक्त्वमें जो अनंतानुवंधी कषाय का उपशम है वह अपने काल-अन्तर्मुहूर्त-तक ही रहता है। इसके बाद जब उस कषाय का उदय हो जाता है तब यह जीव औप-

અથવા—આ સમ્યક્ત્વ સાસાદનના નામથી પણ કહેવામાં આવે છે. અર્થાત્ એનું બીજું નામ સાસાદન-સમ્યક્ત્વ પણ છે. 'आयं सादयति-अपनयतीत्यासादनम्, आसादनेन सह वर्त्तते इति सासादनम्' અર્થાત્ 'आय' નામ ઔપશમિક સમ્યક્ત્વના લાભનું છે. એ લાભને જે હઠાવે છે એને આસાદન કહે છે. એના સહિત હોવાથી તે સાસાદન કહેવાય છે.

આ સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિરૂપ લાભને હઠાવવાવાળા અનંતાનુબંધી કષાયના ઉદયનું વેદન જ છે, કારણ કે આના હોવાથી અનન્ત સુખ દેવાવાળા અને નિ-શ્રેયસ-મોક્ષ-રૂપ વૃક્ષના બીજસ્વરૂપ જે ઔપશમિક-સમ્યક્ત્વ છે એનો લાભ-સદ્ભાવ ઓછામાં ઓછા એક સમય સુધી અને વધારેમા વધારે છ આવલી કાળ સુધી રહીને પછી દૂર થઇ જાય છે એનો ફલિતાર્થ એ છે કે ઔપશ મિક સમ્યક્ત્વમાં જે અનંતાનુબંધી કષાયનો ઉપશમ છે તે પોતાના કાલ-અન્તર્મુહૂર્ત સુધી રહે છે. ત્યારબાદ જ્યારે એ કષાયનો ઉદય થઈ જાય છે

(५) वेदकसम्यक्त्वमुच्यते–वेदयति–अनुभवति सम्यक्त्वपुद्गलानिति वेदकोऽनुभविता, तदर्थान्तर्भूतत्वात् सम्यक्त्वमपि वेदकम् । सम्यक्त्वपुद्गलपुञ्जस्य बहुतरक्षपितस्य चरमपुद्गलानां ग्राससमये वेदकसम्यक्त्वं भवति । तथाहि–क्षपकश्रेणिप्राप्तोऽनन्तानुबन्धिकषायचतुष्टयमपि क्षपयित्वा मिथ्यात्वमिश्रपुद्गलपुञ्जान् क्षपयति,

शमिकसम्यक्त्वसे पतित होकर मिथ्यात्वके सम्मुख होता है–(अभी मिथ्यात्वमें प्राप्त नहीं हुआ है किन्तु उसके सम्मुख ही हुआ है); सो जब तक यह जीव मिथ्यात्वरूपी भूमि को प्राप्त नहीं हुआ है, अर्थात्–जब तक सम्यक्त्वरूपी पर्वत से गिर कर बीचमें ही है, तब तक उस जीवका जो सम्यक्त्व है उसका नाम सासादन है ४।

(५) वेदकसम्यक्त्व का स्वरूप—

वेदयति=अनुभवति सम्यक्त्वपुद्गलान्–इति वेदकः=अनुभविता, तदर्थान्तर्भूतत्वात् सम्यक्त्वमपि वेदकम् ।

अर्थात्–सम्यक्त्वप्रकृति के पुद्गलों का जो अनुभव करनेवाला है, उसे वेदक–अनुभविता कहते हैं। उससे अभिन्न होनेसे सम्यक्त्व भी वेदक कहलाता है। सम्यक्त्वप्रकृति के जितने भी पुद्गलपुंज हैं, उनमें से अधिकतर पुद्गलपुंजों का क्षय हो चुकने पर बाकी जो चरमपुद्गलपुंज रहते हैं उनके ग्रासके समीप (नष्ट करने के समय)में वह वेदकसम्यक्त्व होता है। क्षपकश्रेणीको प्राप्त हुआ जीव अनंतानुबंधिचतुष्टय

ત્યારે એ જીવ ઔપશમિક-સમ્યક્ત્વથી પતિત થઈ મિથ્યાત્વની સમ્મુખ થાય છે (હજુ મિથ્યાત્વમાં પ્રાપ્ત નથી થયો પણ એની સમ્મુખ થયો છે) માટે જ્યાં સુધી એ જીવ મિથ્યાત્વરૂપી ભૂમિને પ્રાપ્ત નથી થયો, અર્થાત્–જ્યાં સુધી સમ્યક્ત્વરૂપી પર્વતથી પડીને વચમાં જ છે તે સમય તે જીવનું જે સમ્યક્ત્વ છે તેનુ નામ સાસાદન છે (૪)

(૫) વેદક–સમ્યક્ત્વનુ સ્વરૂપ કહે છે—'वेदयति=अनुभवति सम्यक्त्वपुद्गलान् इति वेदकः=अनुभविता, तदर्थान्तर्भूतत्वात सम्यक्त्वमपि वेदकम्'

અર્થાત્—સમ્યક્ત્વપ્રકૃતિના પુદ્ગલોનો જે અનુભવ કરવાવાળો છે, એને વેદક–અનુભવિતા કહે છે. એનાથી અભિન્ન હોવાથી સમ્યક્ત્વ પણ વેદક કહેવાય છે સમ્યક્ત્વપ્રકૃતિના જેટલા પણ પુદ્ગલપુંજ છે, એમાંથી અધિકતર પુદ્ગલપુન્જનો નાશ થયા પછી બાકી જે ચરમ પુદ્ગલ રહે છે એના ગ્રાસની સમીપ (નાશ કરવાના સમય)મા તે વેદક–સમ્યક્ત્વ થાય છે. ક્ષપકશ્રેણીને પ્રાપ્ત થયેલા જીવ અનતાનુબંધિ–ચતુષ્ટયનું પણ ક્ષપણ કરીને મિથ્યાત્વપ્રકૃતિ

ततः परं सम्यक्त्वपुञ्जमपि उदीर्योदीर्यानुभवेन निर्जरयति, तेनोदीरणीयसम्यक्त्व-पुञ्जाभावो जायते, तदेवं चरमग्रासेऽवतिष्ठमानेऽद्यापि सम्यक्त्वपुद्गलानां कियतामपि वेद्यमानत्वात् वेदकं सम्यक्त्वमुपजायते। इदमपि सम्यक्त्वं पौद्गलिकं विज्ञेयम्।

क्षायोपशमिकसम्यक्त्वी जीवः सम्यक्त्वमोहनीयपुञ्जस्याधिकांशं क्षपयित्वा यदा सम्यक्त्वमोहनीयस्यान्तिमपुद्गलानां वेदनं करोति तदानीं जायमान आत्मपरिणामो वेदकसम्यक्त्वमिति निष्कर्षः। वेदकसम्यक्त्वप्राप्त्यनन्तरं क्षायिकसम्यक्त्वं लभ्यत एव।

का भी क्षपण करके मिथ्यात्वप्रकृति और मिश्रप्रकृति के पुद्गलपुंजोंका जब क्षय कर देता है तब उसके बाद सम्यक्त्वप्रकृति के पुंजोंकी अपने अनुभव से उदीरणा करके निर्जरा करता है। ऐसा करने से उदीरणीय-उदीरणा करने योग्य-सम्यक्त्वप्रकृति के पुंजों का अभाव हो जाता है। इस प्रकार अन्तिम ग्रास के रहने पर उस समय भी कितनेक अंतिम अंशवर्ती सम्यक्त्वप्रकृति के पुद्गलपुंजों का अनुभव होता है। इसका अनुभव करना ही वेदक-सम्यक्त्व है। यह सम्यक्त्व भी पौद्गलिक जानना चाहिये।

इसका फलितार्थ यही है-कि क्षायोपशमिक-सम्यक्त्ववाला जीव सम्यक्त्वमोहनीय कर्म के पुद्गलपुंजके अधिकांश भागका क्षय करके जब उसी सम्यक्त्वमोहनीय कर्म के अंतिम पुद्गलों का वेदन करता है उस समय में उत्पन्न होनेवाला आत्मपरिणाम वेदक-सम्यक्त्व है। वेदकसम्यक्त्व की प्राप्तिके बाद जीव क्षायिकसम्यक्त्व को प्राप्त कर ही लेता है।

અને મિશ્રપ્રકૃતિના પુદ્ગલપુંજોનો જ્યારે ક્ષય કરી નાખે છે ત્યારે પછી સમ્યક્ત્વપ્રકૃતિના પુંજની પોતાના અનુભવથી ઉદીરણા કરીને નિર્જરા કરે છે. એમ કરવાથી-ઉદીરણીય-ઉદીરણા કરવા યોગ્ય સમ્યક્ત્વ પ્રકૃતિના પુંજનો અભાવ થઇ જાય છે. આ પ્રકારે અન્તિમ ગ્રાસના રહેવાથી તે સમય પણ કેટલાક અંતિમ અંશવર્તી સમ્યક્ત્વપ્રકૃતિના પુદ્ગલપુંજોનો અનુભવ થાય છે. એનો અનુભવ કરવો તે વેદક-સમ્યક્ત્વ છે. આ સમ્યક્ત્વ પણ પૌદ્ગલિક જાણવું જોઇએ.

આનો ફલિતાર્થ એ છે કે ક્ષાયોપશમિક સમ્યક્ત્વવાળા જીવ સમ્યક્ત્વ-મોહનીય કર્મના પુદ્ગલપુંજના અધિકાંશ ભાગનો ક્ષય કરીને જ્યારે એ સમ્યક્ત્વ-મોહનીય કર્મના અંતિમ પુદ્ગલોનું વેદન કરે છે તે સમયમાં ઉત્પન્ન થવાવાળા આત્મપરિણામ વેદક-સમ્યક્ત્વ છે, વેદક-સમ્યકત્વની પ્રાપ્તિ પછી ક્ષાયિક-સમ્યક્ત્વને જીવ પ્રાપ્ત કરી જ લે છે.

नन्वेवं सति वेदकस्य क्षायोपशमिकात् को भेदः, सम्यक्त्वपुद्गलपुञ्जवेदनस्योभयत्रापि तुल्यत्वात्? अत्रोच्यते—वेदके खलु सर्वोदितसम्यक्त्वपुद्गलपुञ्जचरमग्रासवेदनम्, क्षायोपशमिकसम्यक्त्वकाले तु चरमग्रासवर्त्तिसम्यक्त्वपुद्गला अवशिष्टास्तिष्ठन्ति, तेन तद्वर्जितपुद्गलानां वेदनं भवति, इति विशेषोऽवधारणीय इति। उक्तञ्च-

शंका--यदि यही बात है कि इन दोनों सम्यक्त्वों में सम्यक्त्व प्रकृति के पुंजों का वेदन होता है तो फिर वेदकसम्यक्त्वका क्षायोपशमिकसम्यक्त्वसे भेद ही क्या रहा?

समाधान—वेदकसम्यक्त्व में सम्यक्त्वप्रकृति के चरमपुद्गलों का वेदन होता है, और क्षायोपशमिकसम्यक्त्व में इनसे अवशिष्टोंका। बस, यही इन दोनों में भेद है। इसी बात को "वेदके खलु सर्वोदितसम्यक्त्वपुद्गलपुञ्जचरमग्रासवेदनम्, क्षायोपशमिकसम्यक्त्वकाले तु चरमग्रासवर्तिसम्यक्त्वपुद्गला अवशिष्टास्तिष्ठन्ति"। इन पंक्तियोंमें टीकाकारने स्पष्ट किया है। अर्थात्-वेदकसम्यक्त्व में सम्यक्त्वप्रकृतिके उदित हुए समस्त पुद्गलपुंजोंमेंसे सिर्फ चरमग्रासवर्त्ती पुद्गलों का वेदन होता है। क्षायोपशमिक-सम्यक्त्व के समय में तो उस चरमग्रासवर्ती पुद्गलपुंज से अवशिष्ट सम्यक्त्वप्रकृति के पुद्गलपुंजों का वेदन होता है। कल्पना कीजिये-सम्यक्त्वप्रकृति के समस्त पुद्गलपुंजोंकी संख्या १०० है।

શંકા--જો એ વાત છે કે જ્યારે એ બન્ને સમ્યક્ત્વોમાં સમ્યક્ત્વપ્રકૃતિના પુંજોનું વેદન થાય છે તો પછી વેદક-સમ્યક્ત્વના ક્ષાયોપશમિક-સમ્યક્ત્વથી ભેદ જ શો રહ્યો?

સમાધાન—વેદક-સમ્યક્ત્વમાં સમ્યક્ત્વપ્રકૃતિના ચરમ પુદ્ગલોનું વેદન થાય છે, અને ક્ષાયોપશમિક-સમ્યક્ત્વમાં એનાથી અવશિષ્ટોનું વેદન થાય છે. બસ આજ આ બંનેમા ભેદ છે.

આજ વાતને "वेदके खलु सर्वोदितसम्यक्त्वपुद्गलपुञ्जचरमग्रासवेदनम् क्षायोपशमिकसम्यक्त्वकाले तु चरमग्रासवर्तिसम्यक्त्वपुद्गला अवशिष्टास्तिष्ठन्ति"

આ પંક્તિઓમા ટીકાકારે સ્પષ્ટ કરી છે. અર્થાત્ વેદક-સમ્યક્ત્વમાં સમ્યક્ત્વપ્રકૃતિના ઉદિત થયેલ બધા પુદ્ગલપુંજોમાંથી ફક્ત ચરમગ્રાસવર્તી પુદ્ગલોનુ જ વેદન થાય છે.

ક્ષાયોપશમિક-સમ્યક્ત્વના સમયમાં તો આ ચરમગ્રાસવર્તી પુદ્ગલપુંજથી અવશિષ્ટ સમ્યક્ત્વપ્રકૃતિના અવ્યવહિત પૂર્વવર્તી પુદ્ગલપુંજોનું વેદન થાય છે. કલ્પના કરિયે કે સમ્યક્ત્વ-પ્રકૃતિના સમસ્ત પુદ્ગલપુંજોની સંખ્યા ૧૦૦ છે.

"खीणे दंसणमोहे, तिविहम्मि वि खाइयं भवे सम्मं।
वेयगमिह सव्वोइय,-चरमिल्लयपुग्गलग्गासं ॥ १ ॥
उवसमसेढिगयस्स उ, होइ हु उवसामियं तु सम्मत्तं।
जो वा अकयतिपुंजो, अखवियमिच्छो लहइ सम्मं ॥ २ ॥
उवसमसम्मत्ताउ, चइउं मिच्छं अपावमाणस्स।
सासायणसम्मत्तं, तयंतरालम्मि छावलियं ॥ ३ ॥
मिच्छत्तं जमुइन्नं, तं खीणं अणुइयं च उवसंतं।
मिस्सीभावपरिणयं, वेइज्जंतं खओवसमं" ॥ ४ ॥ इति।

इनमें से ९९ वें तकके पुद्गलपुंजोंका वेदन क्षायोपशमिकसम्यक्त्वमें होगा, अन्तिम १०० वें का वेदन वेदकसम्यक्त्व में। इस अन्तिम १०० वें का वेदन क्षायोपशमिक-सम्यक्त्वमें नहीं होगा ५। औपशमिकसम्यक्त्वादिकों का स्वरूप इन गाथाओंमें भी संक्षेपरूप से इस प्रकार कहा है—

गाथा—खीणे दंसणमोहे, तिविहम्मि वि खाइयं भवे सम्मं।
वेयगमिह सव्वोइय,-चरमिल्लयपुग्गलग्गासं ॥ १ ॥
उवसमसेढिगयस्स उ, होइ हु उवसामियं तु सम्मत्तं।
जो वा अकयतिपुंजो, अखवियमिच्छो लहइ सम्मं ॥ २ ॥
उवसमसम्मत्ताउ, चइउं मिच्छं अपावमाणस्स।
सासायणसम्मत्तं, तयंतरालम्मि छावलियं ॥ ३ ॥
मिच्छत्तं जमुइन्नं, तं खीणं अणुइयं च उवसंतं।
मिस्सीभावपरिणयं, वेइज्जं तं खओवसमं ॥ ४ ॥ " इति।

આમાંથી ૯૯ સુધીના પુદ્‌ગલપુંજોનું વેદન ક્ષાયોપશમિક-સમ્યકત્વમા થશે. અન્તિમ ૧૦૦ માનું વેદન વેદક-સમ્યક્ત્વમાં થશે (૫).

ઔપશમિક-સમ્યક્ત્વાદિકોનું સ્વરૂપ આ ગાથાઓમાં પણ સંક્ષેપરૂપથી આ પ્રકારે કહ્યું છે—

"खीणे दंसणमोहे, तिविहम्मि वि खाइयं भवे सम्मं।
वेयगमिह सव्वोइय,-चरमिल्लयपुग्गलग्गासं ॥ १ ॥
उवसमसेढिगयस्स उ, होइ हु उवसामियं तु सम्मत्तं।
जो वा अकयतिपुंजो, अखवियमिच्छो लहइ सम्मं ॥ २ ॥
उवसमसम्मत्ताउ, चइउ मिच्छं अपावमाणस्स।
सासायण-सम्मत्तं, तयंतरालम्मि छावलियं ॥ ३ ॥
मिच्छत्तं जमुइन्नं, तं खीणं अणुइयं च उवसंतं।
मिस्सीभावपरिणयं, वेइज्जं तं खओवसमं" ॥ ४ ॥ इति ॥

छाया—क्षीणे दर्शनमोहे, त्रिविधेऽपि क्षायिकं भवति सम्यक् (सम्यक्त्वम्) ।
वेदकमिह सर्वोदित-चरमकपुद्गलग्रासम् ॥ १ ॥
उपशमश्रेणिगतस्य तु, भवति हु औपशमिकं तु सम्यक्त्वम् ।
यो वा अकृतत्रिपुञ्ज', अक्षपितमिथ्यात्वो लभते सम्यक् (सम्यक्त्वम्) ॥२॥
उपशमसम्यक्त्वात् च्युत्वा मिथ्यात्वमप्राप्नुवतः ।
सास्वादनसम्यक्त्वं, तदन्तराले पडावलिकम् ॥ ३ ॥
मिथ्यात्वं यदुदीर्णं, तत्क्षीणमनुदितं चोपशान्तम् ।
मिश्रीभावपरिणतं, वेद्यमानं क्षायोपशमम् (क्षायोपशमिकम्) ॥४॥ इति।

मिथ्यात्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीयरूप दर्शनमोहनीय कर्म के सर्वथा क्षय होने पर ही क्षायिक-सम्यक्त्व होता है, सब उदित पुद्गलों में चरम-अन्तिम-अंशवर्त्ती पुद्गलोंका वेदन होना वेदकसम्यक्त्व है ॥ १ ॥ उपशमश्रेणिप्राप्त जीवों को उपशमसम्यक्त्व का लाभ होता है। अथवा जिसने मिथ्यात्वकर्म के तीन पुंज नहीं किये हैं ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव के, तथा जिसने मिथ्यात्वका क्षय भी नहीं किया है किंतु उसका उपशम किया है उस जीव के उपशमसम्यक्त्व होता है। मिथ्यादृष्टि जीवके ७ प्रकृतियों (अनन्तानुबन्धी ४, मिथ्यात्वमोहनीय५, मिश्रमोहनीय६, सम्यक्त्वमोहनीय ७) के उपशमसे उपशमसम्यक्त्व होता है; ऐसा सिद्धान्तकारों ने कहा है। ८वें ९वें १०वें और ११ वें गुणस्थानमें उपशमसम्यक्त्व होता है, क्यों कि ये उपशमश्रेणि के स्थान हैं। तथा अनादि-मिथ्यादृष्टि जीव

" મિથ્યાત્વમોહનીય, મિશ્રમોહનીય અને સમ્યક્ત્વમોહનીયરૂપ દર્શનમોહનીય કર્મનો ક્ષય થયા પછી જ ક્ષાયિક-સમ્યક્ત્વ થાય છે, બધા ઉદિત પુદ્ગલોમાં ચરમ-અન્તિમ-અંશવર્તી પુદ્ગલોનું વેદન થવું વેદક-સમ્યક્ત્વ છે (૧)

ઉપશમશ્રેણિપ્રાપ્ત જીવોને ઉપશમ-સમ્યક્ત્વનો લાભ થાય છે. અથવા જેણે મિથ્યાત્વકર્મના ત્રણ પુંજ નથી કર્યા, એવા મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવને તથા મિથ્યાત્વનો ક્ષય કર્યો નથી પણ તેનો ઉપશમ કર્યો છે, એ જીવને ઉપશમ-સમ્યક્ત્વ થાય છે. મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવની સાત ૭ પ્રકૃતિયો (અનન્તાનુબંધી ૪, મિથ્યાત્વમોહનીય ૫, મિશ્રમોહનીય ૬, સમ્યક્ત્વમોહનીય ૭)ના ઉપશમથી ઉપશમસમ્યક્ત્વ થાય છે, એવું સિદ્ધાંતકારોએ કહ્યુ છે ૮ માં, ૯ માં, ૧૦ માં અને ૧૧ માં ગુણસ્થાનમાં ઉપશમસમ્યક્ત્વ થાય છે, કારણ કે એ ઉપશમશ્રેણીનું સ્થાન છે. તથા અનાદિ

यन्मिथ्यात्वमुदीर्णं तत् क्षीणम् । यत् अनुदितम् अनुदीर्णं तन्मिथ्यात्वं, मिश्रीभावपरिणतं=मिश्रमोहनीयं, च शब्दात् सम्यक्त्वदलिकं यदनुदीर्णमनुदितं तदपि, उपशान्तम्, अनुदीर्णानुदितमिथ्यात्वमिश्रसम्यक्त्वदलिकेतित्रयमुपशमावस्थमित्यर्थः । वेद्यमानम्=उदयावस्थां समापन्नं सम्यक्त्वदलिकं यत्र तत् क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वमुच्यते, इत्यर्थः ॥ ४ ॥

के सर्वप्रथम उपशमसम्यक्त्व होता है। यह जीव मिथ्यात्व कर्म के तीन पुंज नहीं करता है और न मिथ्यात्वका क्षय ही करता है ॥ २ ॥ उपशमसम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यात्व को नहीं प्राप्त हुए जीव के ही अन्तराल समय में कम से कम १ समय और अधिक से अधिक ६ आवलीकाल तक सास्वादन-सम्यक्त्व रहता है ॥ ३ ॥ उदय प्राप्त मिथ्यात्व का नाश और अनुदित मिथ्यात्वका उपशम, इन दो अवस्थाओं से मिश्रित क्षायोपशमिक-सम्यक्त्व है ॥ ४ ॥

इस सम्यक्त्व में उदयप्राप्त मिथ्यात्वका विनाश-क्षय होता है और अनुदीर्ण मिथ्यात्व का क्षय नहीं है; किन्तु उसका परिणमन मिश्र प्रकृति के रूपमें है, और इसका यहां पर उपशम है। इसी प्रकार सम्यक्त्वप्रकृति का पुंज भी जो अनुदीर्ण है वह भी उपशम अवस्था में है। यह बात भी श्लोकमें आये हुए 'च' शब्द से प्रकट है। अतः 'जो क्षय और उपशम से उत्पन्न होता है, वह क्षायोपशमिक-सम्यक्त्व है' इस प्रकार

મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવને સર્વ પ્રથમ ઉપશમસમ્યક્ત્વ થાય છે. આ જીવ મિથ્યાત્વ કર્મના ૩ ત્રણ પુંજ નથી કરતો, તેમજ મિથ્યાત્વનો ક્ષય પણ નહિ. (૨) ઉપશમસમ્યક્ત્વથી જુદા પડી મિથ્યાત્વને નહિ પ્રાપ્ત થયેલ જીવને અંતરાળ સમયમાં ઓછામાં ઓછું ૧ એક સમય અને વધારેમાં વધારે ૬ છ આવલીકાળ સુધી સાસ્વાદન-સમ્યક્ત્વ રહે છે. (૩)

ઉદયપ્રાપ્ત મિથ્યાત્વનો નાશ અને અનુદિત મિથ્યાત્વનો ઉપશમ, એ બે અવસ્થાઓથી મિશ્રિત ક્ષાયોપશમિકસમ્યક્ત્વ છે. (૪)

આ સમ્યક્ત્વમાં ઉદયપ્રાપ્ત મિથ્યાત્વનો વિનાશ-ક્ષય થાય છે, અને અનુદીર્ણ મિથ્યાત્વનો ક્ષય નથી, પણ એનું પરિણમન મિશ્રપ્રકૃતિના રૂપમાં છે, અને તેનો અહીંયા ઉપશમ છે. આ પ્રકારે સમ્યક્ત્વપ્રકૃતિનો પુંજ પણ જે અનુદીર્ણ છે તે પણ ઉપશમ અવસ્થામાં છે. આ વાત પણ શ્લોકમાં આવેલ "ચ" શબ્દથી પ્રગટ છે, માટે 'જે ક્ષય અને ઉપશમથી ઉત્પન્ન થાય છે, તે ક્ષયોપશમ-સમ્યક્ત્વ છે' એવી રીતે જે ક્ષાયોપશમિકસમ્યક્ત્વનું લક્ષણ કહ્યું છે, તે

प्रकारान्तरेणापि सम्यक्त्वस्य दशविधत्वं स्थानाङ्गादौ प्रतिबोधितम्, यथा-(१) निसर्गरुचिः, (२) उपदेशरुचिः, (३) आज्ञारुचिः, (४) सूत्ररुचिः, (५) बीजरुचिः, (६) अधिगमरुचिः, (७) विस्ताररुचिः, (८) क्रियारुचिः, (९) संक्षेपरुचिः (१०) धर्मरुचिरिति ।

तत्र-निसर्गः स्वभावस्तेन रुचिर्जिनोक्ततत्त्वाभिलापरूपा यस्य स निसर्गरुचिः १ । उपदेशो गुर्वादिभिर्वस्तुतत्त्वकथनं, तेन रुचिर्यस्य स उपदेशरुचिः २ ।

जो क्षायोपशमिक सम्यक्त्व का लक्षण कहा है, वह भी सुघटित हो जाता है; कारण कि यहां पर मिथ्यात्वमोहनीय मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीय प्रकृतियों के अनुदीर्ण पुंज उपशम-अवस्था में रहते हैं एवं उदीर्ण मिथ्यात्व का क्षय है, और सम्यक्त्व प्रकृति के दलोंका वर्तमान में उदय हो रहा है ।

प्रकारान्तर से भी सम्यक्त्व दस प्रकार का है, वह स्थानाङ्ग आदि सूत्रों में वर्णित है, जैसे-(१) निसर्गरुचि, (२) उपदेशरुचि, (३) आज्ञारुचि, (४) सूत्ररुचि, (५) बीजरुचि, (६) अधिगमरुचि, (७) विस्ताररुचि, (८) क्रियारुचि, (९) संक्षेपरुचि, (१०) धर्मरुचि ।

निसर्ग नाम स्वभाव का है; स्वभाव से ही जिस जीव को जिनोक्त तत्त्वों में रुचि-अभिलाषा होती है उसके यह सम्यक्त्व होता है। अर्थात्-स्वभाव से ही जीव की रुचि जिसके द्वारा जिनकथित तत्त्वों में हुआ करती है वह निसर्गरुचि है (१)। गुर्वादिक के उपदेश से तत्त्वों में जो

પણ સુઘટિત થઈ જાય છે, કારણ કે આ ઠેકાણે મિથ્યાત્વમોહનીય મિશ્રમોહનીય અને સમ્યક્ત્વમોહનીય પ્રકૃતિઓના અનુદીર્ણ પુંજ ઉપશમ અવસ્થામાં રહે છે, એવં ઉદીર્ણ મિથ્યાત્વનો ક્ષય છે અને સમ્યક્ત્વપ્રકૃતિના દળિઓનો વર્તમાનમાં ઉદય થાય છે.

પ્રકારાન્તરથી પણ સમ્યક્ત્વ દશ પ્રકારના છે, તે સ્થાનાંગ આદિ સૂત્રોમાં વર્ણિત છે. જેમઃ-(૧) નિસર્ગરૂચિ, (૨) ઉપદેશરૂચિ, (૩) આજ્ઞારૂચિ, (૪) સૂત્ર રૂચિ, (૫) બીજરૂચિ, (૬) અધિગમરૂચિ, (૭) વિસ્તારરૂચિ, (૮) ક્રિયારૂચિ, (૯) સંક્ષેપરૂચિ, (૧૦) ધર્મરૂચિ.

નિસર્ગ નામ સ્વભાવનું છે; સ્વભાવથી જ જે જીવને જીનોક્ત તત્ત્વોમાં રૂચિ-અભિલાષા થાય છે તેને આ સમ્યક્ત્વ થાય છે. અર્થાત્-સ્વભાવથી જ જીવની રૂચિ જેના દ્વારા જિનકથિત તત્ત્વોમાં થયા કરે છે, તે નિસર્ગરૂચિ છે (૧). ગુર્વાદિકના ઉપદેશથી તત્ત્વોમાં જે રૂચિ જીવને માટે પેદા કરવામાં આવે

आज्ञा=सर्वज्ञवीतरागवचनात्मिका, तत्र रुचिरभिलाषो यस्य स आज्ञारुचिः ३। सूत्रम्-आचाराङ्गादिकम्, आवश्यक-दशवैकालिकादिकं च, तेन रुचिर्यस्य स सूत्ररुचिः ४। बीजमिव बीजं यदेकमप्यनेकार्थबोधजनकं वचः, तेन रुचिर्यस्य स बीजरुचिः ५। अधिगमेन=विशिष्टपरिज्ञानेन रुचिर्यस्य सः अधिगमरुचिः ६। विस्तारः=सकलद्वादशाङ्गस्य नयैः पर्यालोचनम्, तेन परिवर्धिता रुचिर्यस्य स विस्तारुचिः ७। क्रिया=यथाविधि संयमानुष्ठानं तस्यां रुचिर्यस्य स क्रियारुचिः ८। संक्षेपः=संग्रहः, तत्र रुचिर्यस्य स संक्षेपरुचिः। विस्तरार्थपरिज्ञानाभावेन संक्षेपे रुचिर्भवति ९। धर्मास्तिकाये श्रुतधर्मादौ वा रुचिर्यस्य स धर्मरुचिः १०। इह सम्यक्त्वस्य जीवभेदेन कथनं गुणगुणिनोः कथंचिद्भेदोऽस्तीति बोधनार्थम्।

रुचि जीव के लिये पैदा करायी जाती है उसका नाम उपदेशरुचि है (२) सर्वज्ञ वीतराग प्रभुके वचनों में जो रुचि जीव को होती है उसे आज्ञारुचि कहते हैं (३)। आचाराङ्ग आदि अङ्गप्रविष्ट एवं आवश्यक, दशवैकालिक आदि अङ्गबाह्यों के द्वारा तत्त्वों में जीव की जो प्रीति-श्रद्धा कराई जाती है वह सूत्ररुचि नामका सम्यक्त्व है (४)। जिस प्रकार एक ही बीजसे अनेक फलोंकी उत्पत्ति हुआ करती है उसी प्रकार जिस एक वचन से अनेक पदार्थों की प्रतीति हो उसका नाम बीज है, उससे जिस जीवको तत्त्वों में रुचि जागृत होती है उसका नाम बीजरुचि है (५)। विशिष्ट ज्ञानको अधिगम कहते हैं, इसके द्वारा जिस जीवको तत्त्वों में रुचि होती है उसे अधिगमरुचि कहते हैं (६)। सम्पूर्ण नयोंके द्वारा सकल द्वादशांग का पर्यालोचन करना, इसका नाम विस्ताररुचि है। इसके द्वारा जीव की रुचि तत्त्वों में परिवर्धित कराई जाती है (७)। शास्त्र-

---

છે તેનું નામ **ઉપદેશરૂચિ** છે (૨). સર્વજ્ઞ વીતરાગ પ્રભુના વચનોમાં જે રૂચિ જીવની થાય છે તેને **આજ્ઞારૂચિ** કહે છે (૩) આચારાંગ આદિ અંગપ્રવિષ્ટ એમ જ આવશ્યક, દશવૈકાલિક, આદિ અંગબાહ્યો દ્વારા તત્ત્વોમાં જીવની જે પ્રીતિ-શ્રદ્ધા કરાવામાં આવે છે તે **સૂત્રરૂચિ** નામનું સમ્યકૃત્વ છે (૪). જેવી રીતે એકજ બીજથી અનેક ફલોની ઉત્પત્તિ થાય છે એ પ્રકારે એક જ વચનથી અનેક પદાર્થોની જે પ્રતીતિ થાય તેનું નામ બીજ છે, તેનાથી જે જીવને તત્ત્વોમાં રૂચિ જાગૃત થાય છે તેનું નામ **બીજરૂચિ** છે (૫). વિશિષ્ટ જ્ઞાનને અધિગમ કહે છે. એના દ્વારા જે જીવને તત્ત્વોમાં રૂચિ થાય છે એને **અધિગમરૂચિ** કહે છે (૬) સંપૂર્ણ નયોના દ્વારા સકલ દ્વાદશાગનુ પર્યાલોચન કરવું તેનુ નામ **વિસ્તારરૂચિ** છે, એના દ્વારા જીવની રૂચિ તત્ત્વોમાં પરિવર્ધિત કરવામા આવે

विहित विधिके अनुसार संयमका अनुष्ठान करना क्रिया है, इसमें जिस जीवकी रुचि होती है वह क्रियारुचि नामका सम्यक्त्व है (८)। संक्षेप नाम संग्रहका है, उसमें जो रुचि हो वह संक्षेपरुचि है। अर्थात्-जिस जीवको विस्तृतरूपसे पदार्थपरिज्ञान नहीं है उसको संक्षेपमें रुचि हुआ करती है। इसी अपेक्षा से इस सम्यक्त्व का नाम संक्षेपरुचि है। इस सम्यक्त्ववाला जीव जीवादिक पदार्थों में विस्ताररूप से रुचि-संपन्न नहीं होता; किन्तु संक्षेपरूप से ही उन्हें समझ कर उनमें दृढ आस्थावाला हो जाता है (९)। धर्मास्तिकायादिक जो अमूर्तिक पदार्थ हैं, उनमें अथवा श्रुत एवं धर्मादिकमें जीवको जिसके द्वारा रुचि होती है वह धर्मरुचि है (१०)। यद्यपि सम्यक्त्व आत्माका निजी गुण है, परन्तु इस दस प्रकार के सम्यक्त्व कथन में जो उसका जीव से भिन्न रूपमें जो कथन किया है वह इस बातकी पुष्टि करता है कि गुण और गुणीमें कथंचित् भिन्नता और कथंचित् अभिन्नता है। द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा से गुण और गुणी अभिन्न हैं। पर्यायार्थिक नयकी विवक्षा से ये दोनों लक्षण, संख्या आदिकी अपेक्षा से भिन्न २ हैं। यह दशप्रकार के सम्यक्त्व का वर्णन हुआ (१०)।

છે (૭) શાસ્ત્રવિહિત વિધિના અનુસાર સંયમનું જે અનુષ્ઠાન કરવું તે ક્રિયા છે, તેમાં જે જીવની રૂચિ થાય તે **ક્રિયારૂચિ** નામનું સમ્યક્ત્વ છે (૮). સક્ષેપ નામ સંગ્રહનું છે. એમા જેની રૂચિ હોય તે **સંક્ષેપરૂચિ** છે. અર્થાત્-જે જીવને વિસ્તૃતરૂપથી પદાર્થપરિજ્ઞાન નથી તેને સક્ષેપમાં રૂચિ થયા કરે છે, એ અપેક્ષાથી એ સમ્યક્ત્વનું નામ **સંક્ષેપરૂચિ** છે. આ સમ્યક્ત્વવાળા જીવ જીવાદિક પદાર્થોમાં વિસ્તારરૂપથી રૂચિસંપન્ન નથી થતા; પણ સંક્ષેપરૂપથી જ તેને સમજીને એમાં દઢ આસ્થાવાળા બની રહે છે (૯). ધર્માસ્તિકાયાદિક જે અમૂર્તિક પદાર્થ છે એમાં, અથવા શ્રુત એમજ ધર્માદિકમાં જીવની જેના દ્વારા રૂચિ થાય છે તે **ધર્મરૂચિ** છે (૧૦). યદ્યપિ સમ્યક્ત્વ આત્માનો નિજગુણ છે, પરંતુ આ દશ પ્રકારના સમ્યક્ત્વ કથનમાં તેનું જીવથી ભિન્નરૂપમાં જે કથન કર્યું છે તે એ વાતની પુષ્ટિ કરે છે કે ગુણ અને ગુણીમાં કથંચિત્ ભિન્નતા અને કથંચિત્ અભિન્નતા છે. દ્રવ્યાર્થિક નયની અપેક્ષાથી ગુણ અને ગુણી અભિન્ન છે, પર્યાયાર્થિક નયની વિવક્ષાથી એ બન્ને લક્ષણ સંખ્યા આદિની અપેક્ષાથી ભિન્નભિન્ન છે. આ દશ પ્રકારના સમ્યક્ત્વનું વર્ણન થયું ૧૦

(१) सम्यक्त्वस्थितिः ।

सास्वादनसम्यक्त्वस्य स्थितिरेकसमयमात्रं जघन्यतः, उत्कर्षतस्तु षडावलिकाः, औपशमिकसम्यक्त्वस्य स्थितिर्जघन्योत्कृष्टा चान्तर्मुहूर्तम् । वेदकसम्यक्त्वस्य स्थितिर्जघन्योत्कृष्टा चैकसमयमात्रम् । क्षायोपशमिकसम्यक्त्वस्य जघन्या स्थितिरेकसमयमात्रम्, उत्कृष्टा तु किंचिदधिकषट्षष्टिसागरोपमा, क्षायिकसम्यक्त्वस्य स्थितिः साद्यपर्यवसितकालरूपा ।

(२) सम्यक्त्वस्य प्रादुर्भावव्यवस्था ॥

एकभवमाश्रित्यौपशमिकसास्वादनसम्यक्त्वे जघन्यतः सकृदेव प्रादुर्भवतः । उत्कृष्टतस्तु पञ्चवारम् । वेदकसम्यक्त्वं जघन्यत उत्कृष्टतश्चैकवारं प्रादुर्भवति ।

---

(१) सम्यक्त्वकी स्थिति ।

सास्वादन सम्यक्त्वकी स्थिति जघन्य एक समय मात्र और उत्कृष्ट छह ६ आवलिका प्रमाण है, औपशमिक और वेदक सम्यक्त्वकी स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की है। क्षायोपशमिक सम्यक्त्वकी जघन्य एकसमयमात्र उत्कृष्ट कुछ अधिक ६६ छासठ सागर प्रमाण है, और क्षायिक सम्यक्त्वकी स्थिति सादि अनंत है ।

(२) सम्यक्त्वकी उत्पत्तिकी व्यवस्था—

एक भवकी अपेक्षा औपशमिक सम्यक्त्व और सास्वादन सम्यक्त्व जघन्यसे एक वार ही उत्पन्न होते हैं और उत्कृष्टसे पांच वार। वेदक सम्यक्त्व उत्कृष्टसे और जघन्य से एक ही वार उत्पन्न होता है ।

---

(१) સમ્યક્ત્વની સ્થિતિ

સાસ્વાદન સમ્યક્ત્વની સ્થિતિ જઘન્ય એક સમય માત્ર અને ઉત્કૃષ્ટ છ આવલિકાપ્રમાણુ છે. ઔપશમિક અને વેદક સમ્યક્ત્વની સ્થિતિ જઘન્ય અને ઉત્કૃષ્ટ અન્તર્મુહૂર્તની છે. ક્ષાયોપશમિક-સમ્યક્ત્વની જઘન્ય એકસમયમાત્ર, ઉત્કૃષ્ટ કાંઈ અધિક ૬૬ છાસઠ સાગર પ્રમાણુ છે, અને ક્ષાયિક-સમ્યક્ત્વની સ્થિતિ સાદિ અનંત છે.

(૨) સમ્યક્ત્વની ઉત્પત્તિની વ્યવસ્થા

એક ભવની અપેક્ષાએ ઔપશમિક સમ્યક્ત્વ અને સાસ્વાદન સમ્યક્ત્વ જઘન્યથી એક વાર જ ઉત્પન્ન થાય છે. અને ઉત્કૃષ્ટથી પાચ વાર. વેદક સમ્યક્ત્વ ઉત્કૃષ્ટથી અને જઘન્યથી એક જ વાર ઉત્પન્ન થાય છે. ક્ષાયોપશમિક સમ્યક્ત્વ જઘન્યથી એક વાર અને ઉત્કૃષ્ટથી અસંખ્યાતવાર ઉત્પન્ન થાય છે.

क्षायोपशमिकं जघन्यतः सकृत्, उत्कृष्टतस्त्वसंख्यातवारम्। क्षायिकं तु प्रादुर्भूतं सत् पुनर्न प्रतिनिवर्तते। प्रादुर्भावानन्तरमविच्छेदेन सर्वदा तिष्ठति।

(३) सम्यक्त्वस्याऽन्तरकालः।

औपशमिक-सास्वादन-क्षायोपशमिकसम्यक्त्वानां प्रत्येकमन्तरकालो जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्तम्, उत्कृष्टतस्तु देशोनार्द्धपुद्गलपरावर्तनकालः। वेदकस्याऽन्तरं न भवति, तदनन्तरं नियमतः क्षायिकसम्यक्त्वोत्पत्तेः संभवात्। क्षायिकसम्यक्त्वं साद्यनन्तं च, तस्य पुनर्निवृत्त्यभावादन्तरं न भवति।

क्षायोपशमिक सम्यक्त्व जघन्यसे एक बार और उत्कृष्टसे असंख्यात बार उत्पन्न होता है। क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न होनेके बाद फिर निवृत्त नहीं होता। वह तो उत्पन्न होनेके बाद अविच्छिन्नरूपसे सर्वदा रहता है।

(३) सम्यक्त्वका अन्तरकाल

औपशमिक, सास्वादन, और क्षायोपशमिक सम्यक्त्वमें से प्रत्येक का विरहकाल जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम अर्धपुद्गलपरावर्तनकाल प्रमाण है। वेदक-सम्यक्त्वमें विरहकाल संभवित नहीं है, क्यों कि इस सम्यक्त्व के अनंतर नियम से क्षायिक सम्यक्त्वका लाभ जीवको हो जाता है। क्षायिक-सम्यक्त्व में अंतरकाल नहीं है, कारण कि इसका सद्भाव होने पर जीव को मुक्तिका लाभ हो जाता है, इसी लिये यह सम्यक्त्व सादि और अनन्त है। एक बार समकित हो कर फिर छूट जाने पर फिर से उसकी प्राप्ति होने में जितना समय लगता है उसका नाम विरह-काल है। वेदक-सम्यक्त्वमें विरह-कालका अभाव

ક્ષાયિક સમ્યક્ત્વ ઉત્પન્ન થયા પછી ફરી નિવૃત્ત થતું નથી. તે તો ઉત્પન્ન થયા પછી અવિચ્છિન્નરૂપથી સર્વદા રહે છે.

(૩) સમ્યક્ત્વનો અંતરકાલ

ઔપશમિક, સાસ્વાદન અને ક્ષાયોપશમિક સમ્યક્ત્વ, એ પ્રત્યેકના વિરહકાલ જઘન્ય અંતર્મુહૂર્ત અને ઉત્કૃષ્ટ કાંઇ ઓછું અર્ધપુદ્ગલપરાવર્તનકાળ પ્રમાણ છે. વેદક સમ્યક્ત્વમાં વિરહકાળ સંભવિત નથી, કારણ કે આ સમ્યક્ત્વની પછી નિયમથી ક્ષાયિક-સમ્યક્ત્વનો લાભ જીવને થઈ જાય છે. ક્ષાયિક સમ્યક્ત્વમાં અંતરકાલ નથી, કારણ કે એનો સદ્‌ભાવ થવાથી જીવને મુક્તિનો લાભ થઈ જાય છે, તેથી આ સમ્યક્ત્વ સાદિ અને અનંત છે. એક વાર સમ્યક્ત્વ થઈને પછી જ્યારે તે છુટી જાય છે ત્યારે ફરીથી તેની પ્રાપ્તિ થવામાં જેટલો સમય લાગે છે તેનું નામ વિરહકાળ છે. વેદક-સમ્યક્ત્વમાં વિરહકાળનો અભાવ

(४) सम्यक्त्वस्य फलम्—

सम्यक्त्वे सति–असद्ग्रहः=आप्तवचनबाधितार्थेषु पक्षपातो न भवति। असद्ग्रहं प्रति मिथ्यात्वोदयस्य कारणत्वात् सम्यक्त्वस्य मिथ्यात्वक्षयोपशमजन्यत्वेन सम्यक्त्वसद्भावकाले मिथ्यात्वोदयाभावात्।

सम्यक्त्वे सति श्रुतश्रवणवाञ्छा, श्रुतचारित्रधर्मरागः, चतुर्विधतीर्थवैयावृत्त्यनियमश्च भवति। एषामुत्तरोत्तरं प्रति पूर्वपूर्वस्य हेतुत्वं बोध्यम्।

है, क्यों कि वेदक–सम्यक्त्व होने पर उसके बाद फिर क्षायिक–सम्यक्त्व होता है, वेदक–सम्यक्त्व नहीं। वेदक–सम्यक्त्वके छूटने पर यदि वेदक–सम्यक्त्व की प्राप्ति फिर से होती तो विरहकाल वहां संभवित होता। इस प्रकार क्षायिक–सम्यक्त्वके होने पर जीव अपनी स्थिति को पूर्ण कर मुक्तिस्थानका ही स्वामी बन जाता है, अतः एक बार क्षायिक सम्यक्त्वके होने पर फिर उसी जीवको क्षायिक–सम्यक्त्वकी प्राप्ति नहीं करनी पड़ती। अतः यहां पर भी विरहकाल संभवित नहीं।

(४) सम्यक्त्वका फल—

सम्यक्त्वके होते ही जीव कदाग्रहसंपन्न नहीं होता है। उसकी दृष्टि–श्रद्धा आप्तवचन से अबाधित पदार्थों में अनुरागवाली होती है, इनसे भिन्न पदार्थों में नहीं। क्योंकि कदाग्रह का कारण मिथ्यात्व का उदय बतलाया है और मिथ्यात्व के क्षयोपशमादिसे सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। सम्यक्त्वके होने पर मिथ्यात्वका अभाव हो जाता है। कारण के अभावमें कार्य का अभाव सुतरां सिद्ध ही है। कदाग्रह का कारण

છે; કારણ કે વેદક–સમ્યક્ત્વ થયા પછી ક્ષાયિક–સમ્યક્ત્વ થાય છે, વેદક–સમ્યક્ત્વ નહિ. વેદક–સમ્યક્ત્વના છુટ્યા પછી જો વેદક–સમ્યક્ત્વની ફરીથી પ્રાપ્તિ થતી હોત તો વિરહકાળ ત્યાં સંભવિત થાત. એ પ્રકારે ક્ષાયિક સમ્યક્ત્વ થયા પછી જીવ પોતાની સ્થિતિને પૂર્ણ કરીને મુક્તિસ્થાનનો સ્વામી બની જાય છે. તેથી એક વાર ક્ષાયિક–સમ્યક્ત્વ થતા તે જ જીવને પછીથી ક્ષાયિક–સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિ કરવી પડતી નથી, માટે આ ઠેકાણે પણ વિરહકાળ સંભવિત નથી.

(૪) સમ્યક્ત્વનું ફલ

સમ્યક્ત્વ થવાથી જીવ કદાગ્રહસંપન્ન થતો નથી, એની દૃષ્ટિ–શ્રદ્ધા આપ્ત વચનથી અબાધિત પદાર્થોમાં જ અનુરાગવાળી થાય છે, એથી ભિન્ન પદાર્થોમાં નહિ. કેમ કે કદાગ્રહનું કારણ મિથ્યાત્વનો ઉદય બતાવ્યો છે, અને મિથ્યાત્વના ક્ષયોપશમાદિથી સમ્યક્ત્વ ઉત્પન્ન થાય છે. સમ્યક્ત્વના હોવાથી મિથ્યાત્વનો અભાવ થઈ જાય છે. કારણના અભાવમાં કાર્યનો અભાવ સ્વતઃ સિદ્ધ છે. કદાગ્રહનું

मिथ्यात्व है। सम्यक्त्वी जीवके इसका अभाव है।

सम्यक्त्वके होने पर श्रुतश्रवण की अभिलाषा, श्रुतधर्मके प्रति अनुराग और चारित्रधर्मके प्रति अनुराग, एवं चतुर्विध संघ की वैयावृत्ति करनेका नियम जीवके जागृत होता है। इनमें आगे २ के प्रति पूर्व २ को कारणता है, अर्थात् श्रुतधर्मका अनुराग जीव के तब ही जागृत हो सकेगा जब उसके अन्तरंगमें श्रुतश्रवणकी इच्छा होगी, श्रुतश्रवणेच्छा के विना श्रुतमें अनुराग नहीं हो सकता, जब सद्गुणों में अनुराग है तो यह श्रुतभक्तिरूप कार्य श्रुतश्रवणके विना नहीं हो सकता, श्रुतश्रवण भी विना इच्छा के संभवित नहीं। श्रुतधर्मके अनुरागके प्रति श्रुतश्रवण की वाञ्छा कारण है। चारित्रधर्मके प्रति अनुराग भी जीवको तब ही होगा जब उसके अन्तरंग में श्रुतधर्मका अनुराग होगा। श्रुतानुराग का अभिप्राय यही है कि शास्त्रप्रतिपादित मार्ग पर दृढ आस्था। इस मार्ग पर दृढ आस्थावाला जीव ही चारित्रधर्मका स्वयं आराधन करनेवाला, अथवा उसके धारक मुनियों के प्रति अनुरागी बनता है, अनास्थावाला नहीं, अतः चारित्रधर्मके अनुराग का कारण श्रुतानुराग ही है। चारित्र धर्म में जब तक अनुराग नहीं होगा तब तक यह जीव किसी प्रकार भी चतुर्विध संघ की सेवा करने का नियमकर्ता नहीं हो सकता; अतः उन

કારણ મિથ્યાત્વ છે. સમ્યક્ત્વી જીવને એનો અભાવ છે

સમ્યક્ત્વના હોવાથી શ્રુતશ્રવણની અભિલાષા, શ્રુતધર્મ પ્રતિ અનુરાગ અને ચારિત્રધર્મ પ્રતિ અનુરાગ એમજ ચતુર્વિધ સંઘની વૈયાવૃત્તિ કરવાનો નિયમ જીવને જાગૃત થાય છે. એમાં આગળ૨ ના પ્રતિ પૂર્વ૨ માં કારણતા છે. અર્થાત્ શ્રુતધર્મનો અનુરાગ જીવને ત્યારે જ જાગૃત થાય છે, જ્યારે એના અંતરંગમાં શ્રુતશ્રવણની ઇચ્છા થાય છે. શ્રુતશ્રવણેચ્છા વિના શ્રુતમા અનુરાગ થઈ જ શકતો નથી. જ્યારે સદ્ગુણોમા અનુરાગ છે તો એ શ્રુતભક્તિરૂપ કાર્ય શ્રુત શ્રવણ વિના નથી થતુ. શ્રુતશ્રવણ પણ વગર ઇચ્છાએ સંભવિત નથી. શ્રુત ધર્મના અનુરાગની પ્રતિ શ્રુતશ્રવણની ઈચ્છા કારણ છે. ચારિત્રધર્મના પ્રતિ- અનુરાગ પણ જીવને ત્યારે જ થશે જ્યારે એના અંતરંગમાં શ્રુતધર્મનો અનુરાગ હોય. શ્રુતાનુરાગનો અભિપ્રાય એ છે કે શાસ્ત્રપ્રતિપાદિત માર્ગ પર દૃઢ આસ્થાવાળો જીવ જ ચારિત્રધર્મનું સ્વયં આરાધન કરવાવાળો, અથવા એના ધારક મુનિયોની પ્રતિ અનુરાગી બને છે, અનાસ્થાવાળો નહિ. માટે ચારિત્ર ધર્મના અનુરાગનું કારણ શ્રુતાનુરાગ જ છે. ચારિત્રધર્મમાં જ્યાં સુધી અનુરાગ નહિ થાય ત્યાં સુધી એ જીવ કોઈ પ્રકારે પણ ચતુર્વિધ સંઘની સેવા કરવાનો નિય-

नन्वसद्ग्रहस्य मिथ्यात्वोदयजन्यत्वेन सम्यक्त्वे सति तत्क्षयोपशमादस्तु तदभावः, किंतु श्रुतश्रवणेच्छादीनां ज्ञानचारित्रांशरूपत्वेन ज्ञानावरणीयचारित्रमोहनीयवीर्यान्तरायकर्मक्षयोपशमजन्यत्वात् कथं सम्यक्त्वफलरूपत्वं तेषाम्? इति चेत्,

---

की सेवा आदि करनेरूप नियम के प्रति चारित्रधर्मका अनुराग ही कारण होता है।

शङ्का--माना कि असद्ग्रह के मिथ्यात्वोदयजन्य होने से मिथ्यात्व के क्षयोपशम से उस असद्ग्रहका अभाव हो जाता है, परन्तु श्रुतश्रवणेच्छा वगैरह जो ज्ञान और चारित्रके अंगरूप हैं, इन्हें सम्यक्त्व का फल कैसे माना जा सकता है? कारण कि इनके रोधक ज्ञानावरणीय, चारित्रमोहनीय और वीर्यान्तर कर्म हैं, इनके क्षयोपशम से उनका प्रादुर्भाव होता है, अतः श्रुतश्रवणेच्छा वगैरह को सम्यक्त्वका फल न मानकर ज्ञानावरणीय आदि कर्मोंके क्षयोपशमका ही फल मानना चाहिये।

विशेषार्थ--शङ्काकारका अभिप्राय यह है कि श्रुतश्रवणेच्छा मिथ्यात्व के क्षयोपशमादिसे नहीं होती है; किन्तु वह श्रुतज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशमसे ही जीव को होती है। श्रुतज्ञानावरणीय कर्म ज्ञानावरणीय कर्म का एक भेद है। चारित्रधर्मके प्रति जीवका अनुराग भी चारित्रमोहनीय कर्म के क्षयोपशमाधीन है, अतः इसे भी सम्यक्त्व का फल न मान कर चारित्रमोहनीय के क्षयोपशम का ही फल मानना

મકર્તા નથી થતો. માટે એની સેવા કરવારૂપ નિયમની પ્રતિ ચારિત્રધર્મનો અનુરાગ જ કારણ રૂપ થાય છે.

શંકા—માન્યુ કે અસદ્ગ્રહ મિથ્યાત્વોદયજન્ય હોવાથી મિથ્યાત્વના ક્ષયોપશમથી એ અસદ્ગ્રહનો અભાવ થઈ જાય છે. પરંતુ શ્રુતશ્રવણેચ્છા વિગેરે જે જ્ઞાન અને ચારિત્રના અંશરૂપ છે એને સમ્યક્ત્વનુ ફળ કેવી રીતે માનવામાં આવે? કારણ કે એના રોધક જ્ઞાનાવરણીય ચારિત્રમોહનીય અને વીર્યાન્તરાય કર્મ છે. એના ક્ષયોપશમથી એનો પ્રાદુર્ભાવ થાય છે. માટે શ્રુતશ્રવણેચ્છા વિગેરેને સમ્યક્ત્વનું ફળ ન માનીને જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોના ક્ષાયોપશમનુ જ ફળ માનવું જોઈએ.

વિશેષાર્થ—શંકાકારનો એ અભિપ્રાય છે કે:—શ્રુતશ્રવણેચ્છા મિથ્યાત્વના ક્ષયોપશમાદિથી નથી થતી કિન્તુ તે શ્રુત જીવને જ્ઞાનાવરણીય કર્મના ક્ષયોપશમથી જ થાય છે. શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય કર્મ જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો એક ભેદ છે. ચારિત્રધર્મની પ્રતિ જીવનો અનુરાગ પણ ચારિત્રમોહનીય કર્મના ક્ષયોપશમાધીન છે. માટે એને સમ્યક્ત્વનુ ફળ ન માનીને ચારિત્રમોહનીયના ક્ષાયોપશમનું જ ફળ

अत्रोच्यते—मिथ्यात्वक्षयोपशमावसरे ज्ञानावरणीयानन्तानुबन्धिकषायरूप-चारित्रमोहनीयादिकर्मणामपि क्षयोपशमो भवतीति कृत्वा सम्यक्त्वे सति श्रुतश्रवणेच्छादयो भवन्तीत्युच्यते। यथा केवलज्ञानावरणक्षयजन्यमपि केवलज्ञानं चारित्रमोहनीयांशकषायक्षये सत्येव भवतीति। यथा वा मिथ्यात्वक्षयोपशमलभ्यमपि सम्यक्त्वमनन्तानुबन्धिकषायरूपचारित्रमोहनीयोदये सति न लभ्यते। उक्तञ्च—

उपयुक्त प्रतीत होता है। निष्कर्ष यही है कि श्रुतश्रवणेच्छादिकोंको सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका ही फल मानना चाहिये, सम्यक्त्व का नहीं।

समाधान—शङ्काकारकी शङ्का ठीक नहीं। कारण कि जिस समय मिथ्यात्वका क्षयोपशम होता है उस समय ज्ञानावरणीय और अनन्तानुबंधिकषायरूप चारित्रमोहनीयादिक कर्मों का भी क्षयोपशम होता है। इसी ध्येय को लेकर—'सम्यक्त्व के होने पर श्रुतश्रवणेच्छादिक होते हैं' ऐसा कहा गया है। जैसे—केवलज्ञान, केवलज्ञानावरणके क्षय से उत्पन्न होता है, परन्तु जब तक चारित्रमोहनीय कर्म के अंश—भेद-स्वरूप कषायों का क्षय नहीं होता तब तक केवलज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होती, अतः केवलज्ञान की उत्पत्ति इनके क्षय होने पर ही होती है। इसी प्रकार सम्यक्त्व भी यद्यपि मिथ्यात्वके क्षयोपशम से ही होता है, परन्तु जब तक अनंतानुबंधिकषायरूप चारित्रमोहनीयका उदय बना रहता है तब तक यह प्राप्त नहीं हो सकता है।

માનવું ઉપયુકત પ્રતીત થાય છે નિષ્કર્ષ એ છે કે શ્રુતશ્રવણેચ્છાદિકોને સમ્યગ્જ્ઞાન અને સમ્યક્ચારિત્રનું જ ફળ માનવું જોઈએ, સમ્યક્ત્વનુ નહિ.

સમાધાન—શંકાકારની શંકા ઠીક નહિ, કારણ કે જે વખતે મિથ્યાત્વનો ક્ષયોપશમ થાય છે તે વખતે જ્ઞાનાવરણીય અને અનંતાનુબંધિકપાયરૂપ ચારિત્રમોહનીયાદિક કર્મોનો પણ ક્ષય થાય છે.

એ ધ્યેયને લઈને જ—'સમ્યક્ત્વના થવાથી શ્રુતશ્રવણેચ્છાદિક થાય છે'—એવું કહેવામાં આવ્યું છે જેવી રીતે કેવળજ્ઞાન કેવળ જ્ઞાનાવરણના ક્ષયથી ઉત્પન્ન થાય છે; પરન્તુ જ્યાં સુધી ચારિત્રમોહનીય કર્મના અંશ—ભેદ—સ્વરૂપ કષાયોનો ક્ષય નથી થતો ત્યાં સુધી કેવળજ્ઞાનની ઉત્પત્તિ નથી થતી, માટે કેવળજ્ઞાનની ઉત્પત્તિ એનો ક્ષય થવાથી જ થાય છે. એવી જ રીતે સમ્યક્ત્વ પણ યદ્યપિ મિથ્યાત્વના ક્ષયોપશમથી જ થાય છે, પરંતુ જ્યાં સુધી અનંતાનુબંધિકપાયરૂપ ચારિત્ર મોહનીયનો ઉદય બન્યો રહે છે ત્યાં સુધી તે પ્રાપ્ત થતું નથી.

विशेषार्थ—कारण दो प्रकारके हुआ करते हैं-एक संनिकट-कारण दूसरा व्यवहित-कारण, संनिकट-कारण को मुख्य कारण और व्यवहित कारण को गौण कारण भी कहते हैं। प्रकृतमें श्रुतश्रवणेच्छादिकों का मुख्य कारण सम्यग्दर्शन ही है, क्यों कि विना सम्यग्दर्शन के इनका सद्भाव नहीं हो सकता, सम्यग्दर्शन के होने पर ही ये होते हैं, इसी लिये ये सम्यग्दर्शन के फलरूप से कहे गये हैं। "एक कार्य के अनेक कारण भी होते हैं, परन्तु जो मुख्य होता है वही प्रधान माना जाता है।" इस नीतिके अनुसार भले ही श्रुतश्रवणेच्छादिकों का कारण ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का क्षयोपशम भी हो, परन्तु ये सब व्यवहित कारण हैं। दृष्टान्त के लिये-केवलज्ञानकी प्राप्तिका मुख्य कारण केवल ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय ही है, परन्तु जब तक मोहनीय कर्मका क्षय नहीं होता, तब तक केवलज्ञानावरणीय कर्मका क्षय नहीं हो सकता।

"खीणमोहस्सणं अरहओ तओ कम्मंसा जुगवं खिज्जंति, तं जहा -नाणावरणिज्जं, दंसणावरणिज्जं, अंतराइयं" (स्था. स्था. ३ उ. ४)

यही बात इस सूत्रमें प्रगट की गई है। इसी तरह सम्यग्दर्शन भी मिथ्यात्व के क्षयोपशम से होता है, परन्तु जब तक अनंतानुबंधी कषाय

વિશેષાર્થ—કારણ બે પ્રકારે થયા કરે છે-એક સંનિકટ-કારણ, બીજું વ્યવહિત-કારણ. સંનિકટ-કારણને મુખ્ય કારણ અને વ્યવહિત કારણને ગૌણ કારણ પણ કહે છે. પ્રકૃતમા શ્રુતશ્રવણેચ્છાદિકોનું મુખ્ય કારણ સમ્યગ્દર્શન છે, કારણ કે સમ્યગ્દર્શન વિના તેનો સદ્ભાવ નથી થતો. સમ્યગ્દર્શનના થવાથી તે થાય છે, તેથી તે સમ્યગ્દર્શનના ફળરૂપથી કહેવામાં આવે છે. "એક કાર્યના અનેક કારણો પણ થાય છે પરંતુ જે મુખ્ય થાય છે તે જ પ્રધાન માનવામાં આવે છે" આ નીતિ-અનુસાર ભલે શ્રુતશ્રવણેચ્છાદિકોનું કારણ જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોનો ક્ષયોપશમ પણ હોય, પરંતુ એ બધા વ્યવહિત કારણ છે. દૃષ્ટાન્તને માટે-કેવળજ્ઞાનની પ્રાપ્તિનું મુખ્ય કારણ કેવળજ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ક્ષય જ છે, પરંતુ જ્યાં સુધી મોહનીયકર્મનો ક્ષય નથી થતો ત્યાં સુધી કેવળજ્ઞાનાવરણીય કર્મનો ક્ષય નથી થતો.

"खीणमोहस्स णं अरहओ तओ कम्मंसा जुगवं खिज्जंति, तं जहा—नाणावरणिज्जं, दंसणावरणिज्ज अंतराइयं (स्था. स्था. ३ उ ४)

આ વાત આ સૂત્રથી પ્રગટ કરી છે. એ પ્રકારે સમ્યગ્દર્શન પણ મિથ્યાત્વના ક્ષયોપશમથી થાય છે, પરન્તુ જ્યાસુધી અનંતાનુબંધી કષાયનો ક્ષયોપશમ નથી થતો ત્યાં સુધી મિથ્યાત્વનો ક્ષયોપશમ નથી થતો.

" पढमिल्लुयाण उदये नियमा, संजोयणा कसायाणं।
सम्मद्दंसणलंभं, भवसिद्धिया वि न लहंति " ॥ इति।

छाया—"प्राथमिकानामुदये नियमात् संयोजना कषायाणाम्।
सम्यग्दर्शनलाभं, भवसिद्धिका अपि न लभन्ते ॥ १ ॥

ननु वैयावृत्त्यनियमस्य तपःप्रभेदत्वेन चारित्रांशरूपत्वात् सम्यक्त्वे सति चावश्यंभावादविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानं विलुप्येत ? इति चेत् , न,—

का क्षयोपशम नहीं होता, तब तक मिथ्यात्व का क्षयोपशम नहीं हो सकता। इसी लिये मिथ्यात्वके क्षयोपशमके अवसर में अनंतानुबंधी कषायका क्षयोपशम अपेक्षणीय होता है। निष्कर्ष–श्रुतश्रवणेच्छादिकों का अव्यवहित–मुख्य–कारण सम्यग्दर्शन ही है, अतः ये उसके ही फल स्वरूप से यहां प्रकट किये गये हैं। कहा भी है—

" पढमिल्लुयाण उदये, नियमा संजोयणा कसायाणं।
सम्मद्दंसणलंभं, भवसिद्धिया वि न लहंति " ॥१॥ इति।

शङ्का—वैयावृत्यनियम को आपने सम्यक्त्व का फल कैसे कह दिया ? कारण कि वह तो अंतरंग चारित्रका एक भेद है। यदि इस वैयावृत्त्य नियमों का सम्यक्त्व के होने पर अवश्यंभाव माना जावे तो फिर अविरतसम्यग्दृष्टि नामका चतुर्थ गुणस्थान ही नहीं बन सकता, कारण कि इस अवस्था में भी आंशिक रूपसे चारित्रका सद्भाव इस मान्यता से सिद्ध हो जाता है।

એથી મિથ્યાત્વના ક્ષયોપશમના અવસરમા અનંતાનુબંધી કષાયનો ક્ષયોપશમ અપેક્ષણીય થાય છે નિષ્કર્ષ–શ્રુતશ્રવણેચ્છાદિકોનું અવ્યવહિત–મુખ્ય–કારણ સમ્યગ્દર્શન જ છે, માટે એ એના જ ફલસ્વરૂપથી અહીંયા પ્રગટ કરવામાં આવેલ છે કહ્યું પણ છે—

" पढमिल्लुयाण उदये, नियमा संजोयणा कसायाणं।
सम्मद्दंसणलंभं, भवसिद्धिया वि न लहंति " ॥ १ ॥ इति।

શંકા—વૈયાવૃત્ત્ય નિયમને આપે સમ્યક્ત્વનું ફળ કેવી રીતે કહ્યું, કારણ કે તે તો અન્તરંગ ચારિત્રનો એક ભેદ છે. યદિ સમ્યક્ત્વ થવાથી એનો અવશ્યંભાવ માનવામાં આવે તો પછી અવિરતસમ્યગ્દષ્ટિ નામનું ચતુર્થ ગુણસ્થાન બની શકતું નથી, કારણ કે આ અવસ્થામાં પણ આંશિક રૂપથી ચારિત્રનો સદ્ભાવ આ માન્યતાથી સિદ્ધ થાય છે.

वैयावृत्त्यनियमरूपचारित्रस्याल्पतमत्वेन चारित्रतया तद्विवक्षाया अभावात्। यथा-संमूर्च्छनजानां संज्ञासामान्यसत्त्वेऽपि विशिष्टसंज्ञाया अभावादसंज्ञित्वमङ्गीकृतम्। विरतत्वं हि महाव्रतादिरूपानल्पचारित्रसद्भाव एव स्वीक्रियते। यथा-एकरूप्यकमात्रधनेन धनवानयमिति न व्यपदिश्यते, यथा वा नाप्येकया गवा गोमान्; यथा वा एकेनैव शुण्ठीग्रन्थिना 'पंसारी' ति-भापापदव्यपदेश्यो वणिग् न भवतीति।

शङ्काकार की शङ्का का खुलासा इस प्रकार है-चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीवके चारित्रका सद्भाव नहीं माना गया है, कारण कि वह अविरत-दशासंपन्न है। उसके केवल एक सम्यग्दर्शनरूपी ज्योतिका प्रादुर्भाव है, चारित्र का नहीं। चारित्रका सद्भाव पंचमगुणस्थान से प्रारंभ होता है। अब यदि वैयावृत्त्यनियम को सम्यग्दर्शन का फल माना जावेगा तो सम्यग्दर्शन के होने पर इसका सद्भाव अवश्य मानना ही पडेगा। ऐसी दशा में चतुर्थगुणस्थानवर्त्ती जीवके भी आंशिकरूप से चारित्र का सद्भाव सिद्ध हो जाता है, तब वह अविरत न रह कर विरत ही सिद्ध हुआ।

समाधान—वैयावृत्यनियम चारित्र का एक भेद है, परन्तु वह पूर्ण चारित्र नहीं है, आंशिक चारित्र ही है, और यह यहां पर बहुत ही अल्प दशामें है, इस लिये उसकी चारित्ररूप से यहां विवक्षा नहीं है। महाव्रतादिरूप विशिष्ट चारित्र ही चारित्ररूपसे विवक्षित होते हैं, वे यहां पर नहीं हैं; अतः सम्यग्दर्शनका अस्तित्व होने पर भी इस दशामें इस प्रकारका कोई भी चारित्र यहां पर नहीं है। इसी लिये यह अविरत

શંકાકારની શંકાનો ખુલાસો આ પ્રકારે છે.— ચતુર્થગુણસ્થાનવર્તી જીવને ચારિત્રનો સદ્ભાવ માનવામાં નથી આવ્યો, કારણ કે તે અવિરતદશાસંપન્ન છે. તેને ફક્ત એક સમ્યગ્દર્શનરૂપી જ્યોતિનો પ્રાદુર્ભાવ છે, ચારિત્રનો નહિ. ચારિત્રનો સદ્ભાવ પંચમગુણસ્થાનથી પ્રારંભ થાય છે હવે જો વૈયાવૃત્યનિયમને સમ્યગ્દર્શનનું ફળ માનવામા આવે તો સમ્યગ્દર્શનના થવાથી એનો સદ્ભાવ અવશ્ય માનવો પડે. આવી દશામાં ચતુર્થગુણસ્થાનવર્ત્તી જીવને પણ આંશિકરૂપથી ચારિત્રનો સદ્ભાવ સિદ્ધ થાય છે, ત્યારે એ અવિરતિ ન રહીને વિરત જ સિદ્ધ થાય છે.

સમાધાન—વૈયાવૃત્યનિયમ ચારિત્રનો એક ભેદ છે, પરન્તુ તે પૂર્ણ ચારિત્ર નથી, આંશિક ચારિત્ર છે, અને તે અહીંયા ઘણો જ અલ્પ દશામાં છે, એથી એના ચારિત્રરૂપથી આ ઠેકાણે વિવક્ષા નથી. મહાવ્રતાદિરૂપ વિશિષ્ટ ચારિત્ર જ ચારિત્રરૂપથી વિવક્ષિત થાય છે, તે આ ઠેકાણે નથી, માટે સમ્યગ્દર્શનનું અસ્તિત્વ હોવા છતાં પણ આ દશામા આ પ્રકારનું કોઇ પણ ચારિત્ર આ ઠેકાણે નથી,

ननूपशान्तमोहादीनां सम्यक्त्वे सत्यपि कृतकृत्यतया श्रुतश्रवणेच्छादयो न भवन्ति, तथा च कार्यकारणभावनियामकान्वयव्यतिरेकविरहात् तेषां सम्यक्त्व-

---

सम्यग्दृष्टि कहलाता है। अल्पतम चारित्रके सद्भावसे यह चारित्ररूपसे विवक्षित नहीं हो सकता है। जैसे-संमूर्च्छजन्म से उत्पन्न हुए जीव अत्यन्त सामान्य संज्ञाका सद्भाव रहने पर भी विशिष्ट संज्ञाके अभाव होने से असंज्ञी ही कहे जाते हैं। हां, महाव्रतादिकरूप विशिष्ट चारित्र यदि कोई होता तो यह व्रती कहलाता। क्यों कि-समस्त महाव्रतरूपी चारित्रके सद्भाव में ही व्रतित्व स्वीकार किया जाता है। इसी वस्तु को टीकाकार कहते हैं--

"विरतत्वं हि महाव्रतादिरूपानल्पचारित्रसद्भाव एव स्वीक्रियते" इति।

ठीक है; जैसे-मात्र एक रुपया के रहने पर कोई धनी नहीं माना जाता है?, जैसे एक ही गाय के अस्तित्वमें कोई गोपाल नहीं कहा जाता है, और जैसे एक गांठ सोंठके रखने से कोई पंसारी नहीं होता है, उसी प्रकार इस अल्पतम आंशिक चारित्र के अस्तित्व से भी सम्यग्दृष्टि (अविरतदशासंपन्न सम्यग्दृष्टि जीव) चारित्री नहीं बन सकता।

शङ्का—उपशान्तमोहवाले जीवों के सम्यक्त्वके होने पर भी श्रुत-श्रवणेच्छादिक नहीं होते हैं, कारण कि वे कृतकृत्य हो चुके हैं। इस

તેથી આ અવિરતસમ્યગ્દૃષ્ટિ કહેવાય છે અલ્પતમ ચારિત્રના સદ્ભાવથી એ ચારિત્રરૂપથી વિવક્ષિત નથી થઈ શકતું. જેમ સમૂર્ચ્છન જન્મથી ઉત્પન્ન થયેલ જીવ અત્યન્ત સામાન્ય સંજ્ઞાનો સદ્ભાવ હોવા છતાં પણ વિશિષ્ટ સંજ્ઞાનો અભાવ હોવાથી અસંજ્ઞી કહેવાય છે. હાં, મહાવ્રતાદિકરૂપ વિશિષ્ટ ચારિત્ર યદિ કોઈ હોત તો તે વ્રતી કહેવાત ? કારણ કે-સમસ્ત મહાવ્રતરૂપી ચારિત્રના સદ્ભાવમાં જ વ્રતિત્વ સ્વીકાર કરવામાં આવે છે, એ જ વસ્તુને ટીકાકાર કહે છે---

" विरतत्वं हि महाव्रतादिरूपानल्पचारित्रसद्भाव एव स्वीक्रियते " ઇતિ.

ઠીક પણ છે; જેમ ફક્ત એક રૂપિયાના રહેવાથી કોઈ ધનવાન નથી કહેવાતો, જેમ એક ગાય રહેવાથી કોઇ ગોપાલ નથી કહેવાતો, અને જેમ સુંઠની એક ગાંઠ રાખવાથી કોઈ ગાંધી નથી થતો, તે પ્રકારે આ અલ્પતમ આંશિક ચારિત્રના અસ્તિત્વથી પણ સમ્યગ્દૃષ્ટિ (અવિરતદશાસંપન્ન સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવ) ચારિત્રી બની શકતો નથી.

શંકા-ઉપશાન્તમોહવાળા જીવોને સમ્યક્ત્વ હોવા છતાં પણ શ્રુતશ્રવણે-ચ્છાદિક નથી થતાં, કારણ કે તે કૃતકૃત્ય થયેલ છે, તેથી કાર્યકારણભાવનું નિયામક

फलत्व न संभवतीति चेत्, मैवम्, श्रुतश्रवणेच्छादीनां मोहोपशान्तिफलकत्वेन फलरूपेण तेष्वपि श्रुतश्रवणवाञ्छादिसद्भावात्, यद्वा-श्रावकावस्थायां यत् सम्यक्त्वं तदाश्रित्य श्रुतश्रवणेच्छादयो भवन्तीति विवक्षया तेषां सम्यक्त्वफलत्वं संभवत्येवेति।

लिये कार्यकारणभावके नियामक अन्वय और व्यतिरेकका विघटन होनेसे सम्यक्त्व और श्रुतश्रवणेच्छादिकों में परस्परमें कार्यकारणभाव नहीं बन सकता।

समाधान—श्रुतश्रवणेच्छादिकोंका मोहोपशांति फलवाले होनेसे फलरूपसे वहां पर सद्भाव है।

विशेषार्थ—अभी प्रतिवादीने जो सम्यग्दर्शन और श्रुतश्रवणेच्छादिकोंका यहां पर कार्यकारणभाव, अन्वय व्यतिरेक के न घटनेसे नहीं स्वीकार किया था उसका समाधान करते हुए आचार्य महाराज कहते हैं कि—हे शिष्य! उपशान्त मोहवाले जीवोंमें भी श्रुतश्रवणेच्छादिकों का सद्भाव है। यदि इनका यहां पर सद्भाव न माना जावे तो इन जीवोंकी उपशांतता हुई है वह घटित नहीं हो सकती। मोहकी उपशांतता श्रुतश्रवणेच्छादिकोंका फल है, और श्रुतश्रवणादिक सम्यग्दर्शनके फल स्वरूप हैं, एतावता वे निष्फल हों यह बात नहीं; कारण कि फल भी तो स्वयं फलवान् हुआ करते हैं, अतः उपशान्त मोहवाले जीवोंमें विद्यमान सम्यग्दर्शन सफल है; निष्फल नहीं, इस लिये सम्यग्दर्शन

અન્વય અને વ્યતિરેકનું વિઘટન હોવાથી સમ્યક્ત્વ અને શ્રુતશ્રવણેચ્છાદિકોમાં પરસ્પરમાં કાર્યકારણભાવ બની શકતો નથી

સમાધાન—શ્રુતશ્રવણેચ્છાદિકોનો મોહોપશાંતિ ફળવાળા હોવાથી ફળરૂપથી ત્યાં પણ સદ્ભાવ છે.

વિશેષાર્થ:—અત્યારે પ્રતિવાદીએ જે સમ્યગ્દર્શન અને શ્રુતશ્રવણેચ્છાદિકોના આ ઠેકાણે કાર્યકારણ-ભાવ અન્વયવ્યતિરેકના નહિ ઘટવાથી સ્વીકાર કરેલ નથી, એનું સમાધાન કરતા આચાર્ય મહારાજ કહે છે કે—ભાઈ! ઉપશાન્તમોહવાળા જીવોમા પણ શ્રુતશ્રવણેચ્છાદિકોનો સદ્ભાવ છે. જો તેનો ત્યાં સદ્ભાવ ન માનવામા આવે તો આ જીવોના મોહની જે ઉપશાંતતા થઇ છે તે ઘટિત થતી નથી. મોહની ઉપશાંતતા શ્રુતશ્રવણેચ્છાદિકોનુ ફળ છે, અને શ્રુતશ્રવણાદિક સમ્યગ્દર્શનનું ફળસ્વરૂપ છે, તેથી તે સમ્યગ્દર્શન નિષ્ફળ થાય એવી કોઇ વાત નહિ; કારણ કે ફળ પણ સ્વયં ફળવાન થયા કરે છે, તેથી ઉપશાન્તમોહવાળા જીવોમાં વિદ્યમાન સમ્યગ્દર્શન સફળ થાય છે; નિષ્ફળ નહિ. આ માટે

भावतो व्रताङ्गीकरणमपि सम्यक्त्वस्य फलं भवति, परन्तु सम्यक्त्वे सति कदाचित् तद् भवति, कदाचिन्न। यद्यपि ग्रन्थिभेदादेव सम्यक्त्वमुद्भवति सम्यक्त्ववांश्च व्रताङ्गीकरणमेवोपादेयतरं विजानाति; तथापि यावत्यां कर्मस्थितौ सत्यां सम्यक्त्वलाभो भवति तावत्यामेव व्रताङ्गीकरणं न संभवति। व्रताङ्गीकरणं प्रति चारित्रमोहनीयकर्मक्षयोपशमस्य सम्यक्त्वप्राप्तिकरणकर्मक्षयोपशमापेक्षयाऽधिकतरस्य कारणत्वात्।

और श्रुतश्रवणेच्छादिकों में परस्पर कार्यकारण संबंध सुघटित हो जाता है। अथवा—सम्यग्दर्शन और श्रुतश्रवणेच्छादिकों में जो कार्यकारण भाव संबंध कहा गया है वह श्रावक-अवस्था में होनेवाले सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा से समझ लेना चाहिये। श्रावक-अवस्था में विद्यमान सम्यक्त्व श्रुतश्रवणेच्छादिकों का जनक वहां पर होता है।

सद्भावनापूर्वक व्रतादिकों का अंगीकार करना भी सम्यक्त्व का फल है। यहां टीका में जो "अपि" शब्द दिया गया है उसका अभिप्राय यह है कि सम्यक्त्व के होने पर व्रतादिकों का आचरण कभी होता भी है और कभी नहीं भी होता। यह नियम नहीं कि सम्यक्त्व के होने पर व्रतादिक अनुष्ठानों का सद्भाव जीवों के होवे ही। यद्यपि रागद्वेषकी प्रबल ग्रन्थि के भेद से ही सम्यक्त्व उत्पन्न होता है, और सम्यक्त्वी जीव व्रतादिक अनुष्ठानों का अंगीकार करना श्रेयस्कर मानता है, परन्तु जितनी कर्म की स्थिति रहने पर सम्यक्त्वका लाभ होता है उतनी स्थितिमें व्रत

સમ્યગ્દર્શન અને શ્રુતશ્રવણેચ્છાદિકોમાં પરસ્પર કાર્યકારણ સંબંધ સુઘટિત થઈ જાય છે અથવા-સમ્યગ્દર્શન અને શ્રુતશ્રવણેચ્છાદિકોમા જે કાર્યકારણભાવ સંબંધ કહેવામાં આવ્યો છે તે શ્રાવક-અવસ્થામા બનવાવાળા સમ્યગ્દર્શનની અપેક્ષાથી સમજી લેવું જોઈએ. શ્રાવક-અવસ્થામાં વિદ્યમાન સમ્યક્ત્વ શ્રુતશ્રવણેચ્છાદિકોનો ઉત્પાદક ત્યાં અવશ્ય થાય છે.

સદ્ભાવનાપૂર્વક વ્રતાદિકોનુ અંગીકાર કરવુ તે પણ સમ્યક્ત્વનું ફળ છે. અહીંઆ ટીકામા જે "अपि" શબ્દ આવ્યો છે એનો અભિપ્રાય એ છે કે સમ્યક્ત્વના થવાથી વ્રતાદિકોનું આચરણ કોઈ વખત થાય પણ છે અને કોઈ વખત નથી પણ થતું. એ નિયમ નથી કે સમ્યક્ત્વના થવાથી વ્રતાદિક અનુષ્ઠાનોનો સદ્ભાવ જીવોને થાય જ. કદાચ રાગદ્વેષની પ્રબલ ગ્રન્થિના ભેદથી જ સમ્યક્ત્વ ઉત્પન્ન થાય છે, અને સમ્યક્ત્વી જીવ વ્રતાદિક અનુષ્ઠાનોનું અંગીકાર કરવું શ્રેયસ્કર માને છે, પરન્તુ જેટલી કર્મની સ્થિતિ રહેવાથી સમ્યક્ત્વનો

अत्रेदमवगन्तव्यम्-ज्ञानावरणीयादिकर्मस्थितेर्हि द्विप्रभृतिनवपर्यन्तसंख्यारूपे पल्योपमपृथक्त्वे वेदनादपगते सति भावतो व्रताङ्गीकरणं भवति। तत्रैवं क्रमः—

मोहनीयादिकर्मणामुत्कृष्टा स्थितिः सागरोपमकोटीकोटीसप्तत्यादिका, तन्मध्यात् तावतीं स्थितिं यथाप्रवृत्तिकरणेनादौ क्षपयति, येन पल्योपमानामसंख्येयभागन्यूना एकसागरोपमकोटीकोटी शेषा स्थितिर्भवति। ततो ग्रन्थिभेदेन सम्यक्त्वं प्राप्नोति। तदनन्तरं शेषकर्मस्थितेः पल्योपमपृथक्त्वे क्षपिते सत्यणुव्रतं लभते, एवमेव भावतो व्रतप्राप्तिर्भवति, परन्तु दीर्घतरकर्मस्थितौ सत्यामपि द्रव्यतोऽणुव्रतं महाव्रतं च भवति। तथा चोक्तम्—

का अंगीकार करना संभवित नहीं होता। सम्यक्त्व की प्राप्ति होना एक बात है और चारित्रकी प्राप्ति होना इस से भिन्न बात है। सम्यक्त्व की उत्पत्तिका कारण मिथ्यात्व (दर्शनमोहनीयादिक)का क्षयोपशमादिक हैं और चारित्र की उत्पत्तिका कारण चारित्रमोहनीय कर्मका क्षयोपशम है। यह क्षयोपशम, सम्यक्त्वकी प्राप्ति के कारण की अपेक्षा व्रत अंगीकार करनेमें अधिकतर रूपसे कारण माना गया है। सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर भी यदि चारित्रमोहनीय कर्मका क्षयोपशम नहीं हुआ है तो चारित्र की प्राप्ति जीवको नहीं होती है। सम्यक्त्वके होते ही चारित्रमोहनीय कर्मका क्षयोपशम नहीं होता है, किन्तु सम्यक्त्वके होने पर जब ज्ञानावरणीयादिक कर्मों की स्थिति अपनी२ स्थितिमेंसे दो से लगा कर नौ पल्य तक और घट जाती है तब ही जीव भावकी अपेक्षा व्रतोंको अंगीकार करता है। इसका क्रम इस प्रकार है-मोहनीयादि कर्मोंकी जितनी२

લાભ થાય છે તેટલી સ્થિતિમાં વ્રતનું અંગીકાર કરવું સંભવિત નથી. સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિ થવી એક વાત છે અને ચારિત્રની પ્રાપ્તિ થવી એનાથી ભિન્ન વાત છે સમ્યક્ત્વની ઉત્પત્તિનું કારણ મિથ્યાત્વના (દર્શનમોહનીયાદિના) ક્ષયોપશમાદિક છે. ચારિત્રની ઉત્પત્તિનું કારણ ચારિત્રમોહનીય કર્મનો ક્ષયોપશમ છે. આ ક્ષયોપશમ, સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિના કારણની અપેક્ષાએ વ્રત અંગીકાર કરવામા અધિકતર રૂપથી કારણ માનવામાં આવે છે. સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિ થાય તો પણ જો ચારિત્રમોહનીય કર્મનો ક્ષયોપશમ નહિ થયો હોય તો ચારિત્રની પ્રાપ્તિ જીવને નથી થતી. સમ્યક્ત્વના થવાથી જ ચારિત્રમોહનીય કર્મનો ક્ષયોપશમ નથી થતો; પણ સમ્યક્ત્વના થવાથી જ્યારે જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોની સ્થિતિ પોતપોતાની સ્થિતિમાંથી બેથી માંડીને નવ પલ્ય સુધી ઘટી જાય છે ત્યારે જીવ, ભાવની અપેક્ષા વ્રતોને અંગીકાર કરે છે. એનો ક્રમ આ પ્રકારે છે—

उत्कृष्ट स्थिति है वह जब अन्तःकोटाकोटीसागर प्रमाण रह जाती है तब ही जीव सम्यक्त्वप्राप्ति करने के योग्य होता है। जैसे मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति (७०) सत्तर कोडाकोडी सागर प्रमाण है। इस स्थितिको यथाप्रवृत्तिकरण परिणाम से जीव क्षय करता हुआ जब पल्यके असंख्यातवें भाग न्यून-कम एक कोडाकोडी सागर की कर लेता है तब राग-द्वेषरूपी प्रबल ग्रन्थि के भेदसे सम्यक्त्व को प्राप्त करता है। आयुकर्मको छोड़ कर इसी प्रकार शेष कर्मों की स्थिति भी अन्तःकोटाकोटीसागरप्रमाण रह जानी चाहिये। कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति में और जघन्य स्थितिमें जीव के सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं होती, यह नियम है। सम्यक्त्वकी प्राप्ति आयुकर्म को छोड़ कर शेष मोहनीयादि (७)सात कर्मों की अन्तः कोडाकोड सागरकी स्थिति रह जाने पर ही होती है। इसके बाद अवशिष्ट कर्मस्थिति जब पल्योपमपृथक्त्व प्रमाण क्षीण हो जाती है उस समय जीव भावकी अपेक्षा अणुव्रतरूप चारित्र की प्राप्ति करता है। इस कर्मस्थितिमें इतना जब परिवर्तन हो जाता है तब ही भावसे व्रतप्राप्ति हुआ करती है। इससे यह साबित होता है कि 'सम्यग्दर्शनके होने पर जीव भावसे व्रत-चारित्र प्राप्त कर ही लेता है' यह नियम नहीं है। दीर्घतर-उत्कृष्ट कर्मस्थितिमें द्रव्य से ही (भावशून्य)

મોહનીયાદિ કર્મોની જેટલી જેટલી ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ છે તે જ્યારે અન્તઃકોટાકોટી સાગર પ્રમાણ રહી જાય છે ત્યારે જ જીવ સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કરવાને યોગ્ય થાય છે. જેમ મોહનીય કર્મની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ (૭૦) સિત્તેર કોડાકોડી સાગર પ્રમાણ છે આ સ્થિતિનો યથાપ્રવૃત્તિકરણ પરિણામથી જીવ ક્ષય કરીને જ્યારે પલ્યના અસંખ્યાતમા ભાગ ન્યૂન કોડાકોડી સાગરની કરે છે ત્યારે રાગદ્વેષરૂપી પ્રબલ ગ્રન્થિના ભેદથી સમ્યક્ત્વને પ્રાપ્ત કરે છે, આયુકર્મને છોડીને આ જ પ્રકારે શેષ કર્મોની સ્થિતિ પણ અન્તઃકોટાકોટીસાગરપ્રમાણ રહેવી જોઈએ કર્મોની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિમાં અને જઘન્ય સ્થિતિમાં સમ્યક્ત્વની ઉત્પત્તિ જીવને નથી થતી, એ નિયમ છે. સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિ આયુકર્મને છોડીને શેષ મોહનીયાદિ (૭) સાત કર્મોની એક કોડાકોડ સાગરની સ્થિતિ રહેવાથી જ થાય છે. ત્યાર બાદ અવશિષ્ટ કર્મસ્થિતિ જ્યારે પલ્યોપમપૃથક્ત્વપ્રમાણ ક્ષીણ થઈ જાય છે તે વખતે જીવ, ભાવની અપેક્ષા અણુવ્રતરૂપ ચારિત્રની પ્રાપ્તિ કરે છે. આ પ્રકારે કર્મસ્થિતિમાં એટલું જ્યારે પરિવર્તન થાય છે ત્યારે ભાવથી વ્રતપ્રાપ્તિ થાય છે. એથી એ સાબિત થાય છે કે 'સમ્યગ્દર્શનના થવાથી જીવ, ભાવથી વ્રત-ચારિત્ર પ્રાપ્ત કરી જ લે છે' એ નિયમ નથી, દીર્ઘતર-ઉત્કૃષ્ટ કર્મસ્થિતિમાં દ્રવ્ય-

“ सव्वजियाणं जम्हा, सुत्ते गेविज्जगेसु उववाओ ।
भणिओ जिणेहिं सो न य, लिंगं मोत्तुं जओ भणियं ॥१॥
जे दंसणवावण्णा, लिंगग्गहणं करिंति सामन्ने ।
तेसिं पि य उववाओ, उक्कोसो जाव गेविज्जा ” ॥ २ ॥ इति ।

छाया—सर्वजीवानां यस्मात्सूत्रे ग्रैवेयकेषूपपातः ।
भणितो जिनैः स न च लिङ्गं मुक्त्वा यतो भणितम् ॥ १ ॥
ये दर्शनव्यापन्ना, लिङ्गग्रहणं कुर्वन्ति श्रामण्ये ।
तेषामपि चोपपात, उत्कर्षो यावद् ग्रैवेयकान् ॥ २ ॥ इति ।

अयमत्र सारांशः—यावत्यां कर्मस्थितौ सत्यां सम्यक्त्वं प्राप्तं, तन्मध्यात् पल्योपमपृथक्त्वरूपे स्थितिभागेऽनुक्रमेण वीर्योल्लासात् क्षपिते सति देशविरतो भवति।

अणुव्रत-महाव्रतरूप चारित्र प्राप्त करता है, जिसका फल कर्मक्षय नहीं है। द्रव्यचारित्रका अभिप्राय भावशून्य चारित्र है। यह चारित्र सम्यग्दर्शनमूलक नहीं होता। भावचारित्र ही सम्यग्दर्शनमूलक होता है। कहा भी है—

“ सव्वजियाणं जम्हा, सुत्ते गेविज्जगेसु उववाओ ।
भणिओ जिणेहिं सो न य, लिंगं मोत्तुं जओ भणियं ॥१॥
जे दंसणवावण्णा, लिंगग्गहणं करिंति सामन्ने ।
तेसिं पि य उववाओ, उक्कोसो जाव गेविज्जा ॥ २ ॥ ” इति।

इन सब पूर्वोक्त कथनका सारांश यही है कि-जितनी कर्मस्थितिके रह जाने पर सम्यक्त्वका लाभ हुआ है, उस स्थितिमें से कम से कम पल्योपमपृथक्त्व (दो से लगाकर ९ पल्य तक) प्रमाण स्थिति

थी જ (ભાવશૂન્ય) અણુવ્રત મહાવ્રતરૂપ ચારિત્ર પ્રાપ્ત કરે છે, જેનું ફળ કર્મક્ષય નથી દ્રવ્યચારિત્રનો અભિપ્રાય ભાવશૂન્ય ચારિત્ર છે. આ ચારિત્ર સમ્યગ્દર્શનમૂલક નથી થતું. ભાવચારિત્ર જ સમ્યગ્દર્શનમૂલક થાય છે. કહ્યું પણ છે—

“ सव्वजियाणं जम्हा, सुत्ते गेविज्जगेसु उववाओ ।
भणिओ जिणेहिं सो न य, लिंगं मोत्तुं जओ भणियं ॥ १ ॥
जे दंसणवावण्णा लिगग्गहणं करिंति सामन्ने ।
तेसिंपि च उववाओ उक्कोसो जाव गेविज्जा ” ॥ २ ॥ इति ।

આ બધા પૂર્વોક્ત કથનનો સાર એ છે કે જેટલી કર્મસ્થિતિના રહેવાથી સમ્યક્ત્વનો લાભ થાય છે, આ સ્થિતિમાંથી ઓછામાં ઓછું પલ્યોપમ પૃથક્ત્વ (બે થી માંડી ૯ પલ્ય સુધી) પ્રમાણ સ્થિતિ વીર્યોલ્લાસથી ક્ષપિત થઇ જાય

उत्कृष्ट स्थिति है वह जब अन्तःकोटाकोटीसागर प्रमाण रह जाती है तब ही जीव सम्यक्त्वप्राप्ति करने के योग्य होता है। जैसे मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति (७०) सत्तर कोडाकोडी सागर प्रमाण है। इस स्थितिको यथाप्रवृत्तिकरण परिणाम से जीव क्षय करता हुआ जब पल्यके असंख्यातवें भाग न्यून-कम एक कोडाकोडी सागर की कर लेता है तब राग-द्वेषरूपी प्रबल ग्रन्थि के भेदसे सम्यक्त्व को प्राप्त करता है। आयुकर्मको छोड़ कर इसी प्रकार शेष कर्मों की स्थिति भी अन्तःकोटाकोटीसागरप्रमाण रह जानी चाहिये। कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति में और जघन्य स्थितिमें जीव के सम्यक्त्व की उत्पत्ति नहीं होती, यह नियम है। सम्यक्त्वकी प्राप्ति आयुकर्म को छोड़ कर शेष मोहनीयादि (७) सात कर्मों की अन्तः कोडाकोड सागरकी स्थिति रह जाने पर ही होती है। इसके बाद अवशिष्ट कर्मस्थिति जब पल्योपमपृथक्त्व प्रमाण क्षीण हो जाती है उस समय जीव भावकी अपेक्षा अणुव्रतरूप चारित्र की प्राप्ति करता है। इस कर्मस्थितिमें इतना जब परिवर्तन हो जाता है तब ही भावसे व्रतप्राप्ति हुआ करती है। इससे यह साबित होता है कि 'सम्यग्दर्शनके होने पर जीव भावसे व्रत-चारित्र प्राप्त कर ही लेता है' यह नियम नहीं है। दीर्घतर-उत्कृष्ट कर्मस्थितिमें द्रव्य से ही (भावशून्य)

મોહનીયાદિ કર્મોની જેટલી જેટલી ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ છે તે જ્યારે અન્ત. કોટાકોટી સાગર પ્રમાણુ રહી જાય છે ત્યારે જ જીવ સમ્યકૃત્વ પ્રાપ્ત કરવાને યોગ્ય થાય છે. જેમ મોહનીય કર્મની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ (૭૦) સિત્તેર કોડાકોડી સાગર પ્રમાણુ છે. આ સ્થિતિનો યથાપ્રવૃત્તિકરણુ પરિણામથી જીવ ક્ષય કરીને જ્યારે પલ્યના અસંખ્યાતમા ભાગ ન્યૂન કોડાકોડી સાગરની કરે છે ત્યારે રાગદ્વેષરૂપી પ્રબલ ગ્રન્થિના ભેદથી સમ્યકૃત્વને પ્રાપ્ત કરે છે, આયુકર્મને છોડીને આ જ પ્રકારે શેષ કર્મોની સ્થિતિ પણ અન્તઃકોટાકોટીસાગરપ્રમાણુ રહેવી જોઈએ. કર્મોની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિમા અને જઘન્ય સ્થિતિમાં સમ્યકૃત્વની ઉત્પત્તિ જીવને નથી થતી, એ નિયમ છે. સમ્યકૃત્વની પ્રાપ્તિ આયુકર્મને છોડીને શેષ મોહનીયાદિ (૭) સાત કર્મોની એક કોડાકોડ સાગરની સ્થિતિ રહેવાથી જ થાય છે. ત્યાર બાદ અવશિષ્ટ કર્મસ્થિતિ જ્યારે પલ્યોપમપૃથકૃત્વપ્રમાણુ ક્ષીણુ થઈ જાય છે તે વખતે જીવ, ભાવની અપેક્ષા અણુવ્રતરૂપ ચારિત્રની પ્રાપ્તિ કરે છે. આ પ્રકારે કર્મસ્થિતિમાં એટલું જ્યારે પરિવર્તન થાય છે ત્યારે ભાવથી વ્રતપ્રાપ્તિ થાય છે. એથી એ સાબિત થાય છે કે 'સમ્યગ્દર્શનના થવાથી જીવ, ભાવથી વ્રત-ચારિત્ર પ્રાપ્ત કરી જ લે છે' એ નિયમ નથી, દીર્ઘતર-ઉત્કૃષ્ટ કર્મસ્થિતિમા દ્રવ્ય-

"सव्वजियाणं जम्हा, सुत्ते गेविज्जगेसु उववाओ ।
भणिओ जिणेहि सो न य, लिंगं मोत्तुं जओ भणियं ॥१॥
जे दंसणवावण्णा, लिंगग्गहणं करिंति सामन्ने ।
तेसिं पि य उववाओ, उक्कोसो जाव गेविज्जा" ॥ २ ॥ इति ।

छाया—सर्वजीवानां यस्मात्सूत्रे ग्रैवेयकेषूपपातः ।
भणितो जिनैः स न च लिङ्गं मुक्त्वा यतो भणितम् ॥ १ ॥
ये दर्शनव्यापन्ना, लिङ्गग्रहणं कुर्वन्ति श्रामण्ये ।
तेषामपि चोपपात, उत्कर्षो यावद् ग्रैवेयकान् ॥ २ ॥ इति ।

अयमत्र सारांशः—यावत्यां कर्मस्थितौ सत्यां सम्यक्त्वं प्राप्तं, तन्मध्यात् पल्योपमपृथक्त्वरूपे स्थितिभागेऽनुक्रमेण वीर्योल्लासात् क्षपिते सति देशविरतो भवति।

अणुव्रत-महाव्रतरूप चारित्र प्राप्त करता है, जिसका फल कर्मक्षय नहीं है । द्रव्यचारित्रका अभिप्राय भावशून्य चारित्र है । यह चारित्र सम्यग्दर्शनमूलक नहीं होता । भावचारित्र ही सम्यग्दर्शनमूलक होता है । कहा भी है—

"सव्वजियाणं जम्हा, सुत्ते गेविज्जगेसु उववाओ ।
भणिओ जिणेहि सो न य, लिंगं मोत्तुं जओ भणियं ॥१॥
जे दंसणवावण्णा, लिंगग्गहणं करिंति सामन्ने ।
तेसिं पि य उववाओ, उक्कोसो जाव गेविज्जा ॥ २ ॥" इति।

इन सब पूर्वोक्त कथनका सारांश यही है कि-जितनी कर्मस्थितिके रह जाने पर सम्यक्त्वका लाभ हुआ है, उस स्थितिमें से कम से कम पल्योपमपृथक्त्व (दो से लगाकर ९ पल्य तक) प्रमाण स्थिति

थी જ (ભાવશૂન્ય) અણુવ્રત મહાવ્રતરૂપ ચારિત્ર પ્રાપ્ત કરે છે, જેનું ફળ કર્મક્ષય નથી દ્રવ્યચારિત્રનો અભિપ્રાય ભાવશૂન્ય ચારિત્ર છે. આ ચારિત્ર સમ્યગ્દર્શનમૂલક નથી થતું. ભાવચારિત્ર જ સમ્યગ્દર્શનમૂલક થાય છે. કહ્યું પણ છે—

"सव्वजियाणं जम्हा, सुत्ते गेविज्जगेसु उववाओ ।
भणिओ जिणेहि सो न य, लिंगं मोत्तुं जओ भणियं ॥ १ ॥
जे दंसणवावण्णा लिंगग्गहणं करिंति सामन्ने ।
तेसिंपि य उववाओ उक्कोसो जाव गेविज्जा" ॥ २ ॥ इति ।

આ બધા પૂર્વોક્ત કથનનો સાર એ છે કે જેટલી કર્મસ્થિતિના રહેવાથી સમ્યક્ત્વનો લાભ થાય છે, આ સ્થિતિમાંથી ઓછામાં ઓછું પલ્યોપમ પૃથક્ત્વ (બે થી માંડી ૯ પલ્ય સુધી) પ્રમાણ સ્થિતિ વીર્યોલ્લાસથી ક્ષપિત થઈ જાય

देशविरतिप्राप्त्यनन्तरं संख्यातेषु सागरोपमेषु क्षपितेषु सर्वविरतिचारित्रं लभते। तदनन्तरमपि संख्यातेषु सागरोपमेषु क्षपितेषूपशमश्रेणिं प्रतिपद्यते। ततोऽपि संख्यातेषु सागरोपमेषु क्षपितेषु क्षपकश्रेणिर्भवति। ततस्तस्मिन्नेव भवे मोक्ष इति। एवं यस्य सम्यक्त्वमप्रतिपतितं तस्यैव देवमनुष्यभवेषु संसरणं कुर्वतो देशविरत्यादि-लाभो भवति। सम्यक्त्वं हि अनन्तानन्द-रूपानुपम मोक्षसुखस्य कारणम्। उक्तञ्च—

"जात्यन्धस्य यथा पुंसश्चक्षुर्लाभे शुभोदये।
सद्दर्शनं तथैवास्य, सम्यक्त्वे सति जायते॥ १॥
आनन्दो जायतेऽत्यन्तं, सात्त्विकोऽस्य महात्मनः।
सद्व्याध्युपगमे यद्वद्, व्याधितस्य सदौषधम्"॥ २॥ इति।

वीर्योल्लास से क्षपित हो जावे तब देशविरतिका लाभ होता है। देश-विरति-श्रावकचारित्र-पंचम गुणस्थान की प्राप्तिके अनन्तर संख्यात सागरप्रमाण स्थितिके क्षय होने पर सर्वविरति-मुनिव्रत-षष्ठगुण-स्थानकी प्राप्ति होती है। इसके बाद संख्यातसागरप्रमाण स्थितिके व्यतीत हो जानेपर उपशमश्रेणि और फिर संख्यातसागरप्रमाणस्थिति के क्षय होने पर क्षपकश्रेणिका लाभ होता है। फिर उसी भवसे उसको मुक्तिकी प्राप्ति हो जाती है। देशविरति आदि चारित्रका लाभ उसी जीवके होता है कि जिसने अपने सम्यक्त्व की विराधना देव मनुष्य भवोंमें रहते हुए नहीं की है। अर्थात् देवपर्याय में या मनुष्यपर्याय में जिसके सम्यक्त्वकी विराधना हो गई है उस जीवके देशविरति आदि चारित्र का लाभ नहीं होता। यह सम्यक्त्व अनन्तआनन्दरूप अनुपम मोक्ष-सुखका कारण है। जैसे कहा है—

त्यारे देशविरतिनो लाभ थाय छे देशविरति-श्रावकचारित्र पांचमा गुणस्थाननी प्राप्तिनी पछी संख्यातसागरप्रमाण स्थितिनो क्षय थवाथी सर्वविरति-मुनिव्रत-छट्ठा गुणस्थाननी प्राप्ति थाय छे त्यार बाद संख्यातसागरप्रमाण स्थितिना व्यतीत थई जवाथी उपशमश्रेणि, अने पछी संख्यातसागरप्रमाण स्थितिनो क्षय थवाथी क्षपकश्रेणीनो लाभ थाय छे वळी ए ज भवथी तेने मुक्तिनी प्राप्ति थई जाय छे. देशविरति आदि चारित्रनो लाभ ते ज जीवने थाय छे के जेणे पोताना सम्यक्त्वनी विराधना देव मनुष्य भवोमां रहीने नथी करी. अर्थात्-देवपर्यायमां अगर मनुष्यपर्यायमां जेने सम्यक्त्वनी विराधना थई गई छे ए जीवने देशविरति आदि चारित्रनो लाभ नथी थतो ते सम्यक्त्व अनंत आनंदरूप अनुपम मोक्षसुखनु कारण छे जेम कह्यु छे.—

अन्यच्च--"द्वारं मूलं प्रतिष्ठानमाधारो भाजनं निधिः।
द्विपट्कस्यास्य धर्मस्य, सम्यक्त्वं परिकीर्तितम्" ॥ ३ ॥
अपरं च--"सस्यानीवोपरक्षेत्रे, निक्षिप्तानि कदाचन।
न व्रतानि प्ररोहन्ति, जीवे मिथ्यात्ववासिते" ॥४॥ इति।

"जात्यन्धस्य यथा पुंसश्चक्षुर्लाभे शुभोदये।
सद्दर्शनं तथैवास्य, सम्यक्त्वे सति जायते ॥ १ ॥
आनन्दो जायतेऽत्यन्तं, सात्त्विकोऽस्य महात्मनः।
सद्बोध्युपगमे यद्वद्,-व्याधितस्य सदौषधम्" ॥ २ ॥
अन्यच्च-"द्वारं १ मूलं २ प्रतिष्ठान ३ माधारो ४ भाजनं ५ निधिः ६।
द्विषट्कस्यास्य धर्मस्य, सम्यक्त्वं परिकीर्तितम्" ॥ ३ ॥
अपरञ्च-"सस्यानीवोषरक्षेत्रे, निक्षिप्तानि कदाचन।
न व्रतानि प्ररोहन्ति जीवे मिथ्यात्ववासिते" ॥ ४ ॥

अर्थात्--जन्मान्ध पुरुषको शुभ कर्मोंके उदयसे नेत्रोंके खुल जाने पर जिस प्रकार सद्दर्शन (समस्त वस्तुओंका दीखना) होता है उसी प्रकार इस जीवको सम्यक्त्वका लाभ होने पर यथार्थ ज्ञान होता है ।१।

जिस प्रकार रोगीको श्रेष्ठ औषधसे आरोग्यप्राप्ति होने पर आनन्द होता है उसी प्रकार सद्बोधि (सम्यक्त्व) के प्राप्त होने पर उस महात्मा पुरुष को सात्त्विक अत्यानन्द होता है ॥ २ ॥

"जात्यन्धस्य यथा पुंसश्चक्षुर्लाभे शुभोदये।
सद्दर्शनं तथैवास्य, सम्यक्त्वे सति जायते ॥ १ ॥
आनन्दो जायतेऽत्यन्तं, सात्त्विकोऽस्य महात्मनः।
सद्बोध्युपगमे यद्वद्, व्याधितस्य सदौषधम्" ॥ २ ॥
अन्यच्च--"द्वारं१ मूलं२ प्रतिष्ठान३,-माधारो४ भाजनं५ निधिः ६
द्विपट्कस्यास्य धर्मस्य, सम्यक्त्वं परीकीर्तितम्" ॥ ३ ॥
अपरं च--"सस्यानीवोपरक्षेत्रे, निक्षिप्तानि कदाचन।
न व्रतानि प्ररोहन्ति, जीवे मिथ्यात्ववासिते" ॥ ४ ॥

અર્થાત્-જન્માંધ પુરૂષને શુભ કર્મના ઉદયથી નેત્રોના ખુલવાથી જે પ્રકારે સદ્દર્શન (હરેક વસ્તુઓનું દેખવું) થાય છે, તે પ્રકારે આ જીવને સમ્યક્ત્વનો લાભ થવાથી યથાર્થ જ્ઞાન થાય છે. (૧)

જે પ્રકારે રોગીને શ્રેષ્ઠ ઔષધિથી આરોગ્યપ્રાપ્તિ થવાથી આનંદ થાય છે તે પ્રકારે સદ્બોધિ (સમ્યક્ત્વ)ની પ્રાપ્તિ થવાથી તે મહાત્મા પુરૂષને સાત્વિક અત્યાનન્દ થાય છે. (૨)

ननु यदुक्तं सम्यक्त्वे सति कदाचिद् व्रताङ्गीकरणं नापि भवतीति, तत् कथं संभवति ? उच्यते—

यदा सम्यक्त्वलाभानन्तरं नवपल्योपमाधिकस्थितिको देवेषूत्पद्यते तदा तस्यामवस्थायां यावतीं स्थितिं क्षपयति तावतीमन्यां बध्नाति, ततो देशोनसागरोपमकोटीकोटीरूपाया अधिकृतकर्मस्थितेः पल्योपमपृथक्त्वस्यापगमो न भवतीति—अतो देवभवे देशविरतिलाभो न संभवति, तस्मात् सम्यक्त्वे सत्यपि व्रतानङ्गीकरणं सिद्धम्।

और भी—यह सम्यक्त्व बारह प्रकारके श्रावक धर्मका द्वार है १, मूल है २, प्रतिष्ठान (आलम्बन) है ३, आधार है ४, भाजन-पात्र है ५, और निधिरूप है ६ ॥ ३ ॥

फिर भी—जिस प्रकार ऊषर क्षेत्रमें बोये हुए बीज नहीं ऊगते हैं उसी प्रकार मिथ्यात्ववासित जीवमें व्रतोंका उदय नहीं होता ॥४॥

शङ्का—सम्यक्त्व के होने पर कदाचित् व्रतका लाभ नहीं भी होता है, यह बात कैसे संभव होती है ?।

समाधान—सम्यक्त्वके होने पर भी व्रतका लाभ नहीं होता, यह बात एक तो ऊपर कथित प्रकारसे प्रकट की गई है, और दूसरा प्रकार यह भी है—जिस जीवको सम्यक्त्वका लाभ हुआ है वह अपनी आयुके अन्तमें नौ पल्यसे अधिक स्थितिका बंध कर देवपर्याय में उत्पन्न हुआ उस समय वह उस पर्याय में से जितनी भी स्थितिका क्षय करता है उतनी और दूसरी स्थितिका बंध भी करता रहता है। सम्यक्त्वके उत्पादनके

ફરી—આ સમ્યક્ત્વ બાર પ્રકારના શ્રાવક ધર્મનું દ્વાર છે ૧, મૂલ છે ૨, પ્રતિષ્ઠાન (આલંબન) છે ૩, આધાર છે ૪, ભાજન-પાત્ર છે ૫ અને નિધિ છે ૬. (૩)

વળી—જે પ્રકારે ઉષર ક્ષેત્રમાં વાવેલા બીજ ઉગતા નથી તે પ્રકારે મિથ્યાત્વવાસિત જીવમા વ્રતનો ઉદય થતો નથી. (૪)

શંકા—સમ્યક્ત્વના થવાથી વ્રતનો લાભ કોઈ વખત નહી પણ થાય, આ વાત કેમ સંભવે છે?

સમાધાન—સમ્યક્ત્વના થવાથી પણ વ્રતનો લાભ નથી થતો, એ વાત એક તો ઉપર કથિત પ્રકારથી પ્રગટ કરી છે, અને બીજો પ્રકાર એ પણ છે—જે જીવને સમ્યક્ત્વનો લાભ થયો છે તે પોતાની આયુના અંતમાં નવ પલ્યથી અધિક સ્થિતિનો બંધ કરીને દેવપર્યાયમાં ઉત્પન્ન થયો, તે વખત તે પર્યાયમાં જેટલી સ્થિતિનો ક્ષય કરે છે તેટલી બીજી સ્થિતિનો તે બંધ પણ કરે છે. એ પ્રકારે સમ્યક્ત્વના ઉત્પાદનના સમયની

यस्य सम्यक्त्विनो व्रतप्राप्तिर्न भवति, स तु अव्रती सम्यग्दृष्टिः श्रावको निगद्यते।

किंच—सम्यक्त्वाभावे सति मोक्षो न लभ्यते। मिथ्यादृष्टिर्हि कुशास्त्रप्रतिबोधितां संयमनियमादिरूपां निवृत्तिमाचरन्नपि, स्वजनधनभोगान् परित्यजन्नपि, शीतोष्णक्षुत्पिपासादिभिर्दुःखस्य परां काष्ठामुपगच्छन्नपि सम्यक्त्वरहितत्वेन मोक्षसिद्धये न प्रभवति। सम्यक्त्वाभावे सति कर्मक्षयो न भवति। सम्यक्त्ववतामेव ज्ञानतपश्चारित्राण्यपि सफलीभवन्ति। सम्यक्त्वे सत्येव चाणुव्रतगुणव्रतशिक्षाव्रतानि भवितुमर्हन्ति, तस्मात् सम्यक्त्वं मोक्षस्य बीजमिति बोध्यम्।

समय की कुछ कम कोटाकोटीसागरोपम स्थितिमेंसे पल्योपम-पृथक्त्वरूप स्थितिका अपगम-अभाव नहीं होनेसे देवपर्यायमें देशविरति का लाभ संभवित नहीं होता।

जिस सम्यक्त्वीको व्रतप्राप्ति नहीं होती है वह सम्यग्दृष्टि श्रावक कहलाता है। इसको कभी न कभी (अर्धपुद्गलपरावर्तनकालके बाद) मुक्तिका लाभ अवश्य हो जाता है, परन्तु जिसके मूलमें सम्यक्त्व ही नहीं है उसको मुक्तिपद की प्राप्ति हो नहीं सकती। मिथ्यादृष्टि जीव (द्रव्यलिङ्गी मुनि जैसा) खोटे २ शास्त्रों के द्वारा प्रतिपादित संयम नियमादिरूप चारित्रका पालन करनेपर भी स्वजन धन एवं पांच इन्द्रियों के विषयों का परित्यागी होने पर भी, और अनेक प्रकारसे शीत उष्ण, भूख और प्यास आदि परीषहजन्य कष्टों का कठोर से कठोर सामना करते हुए भी सम्यक्त्व से रहित होनेके कारण ही मोक्षरूपी सिद्धि का भागी नहीं माना गया है। यह तो अटल सिद्धान्त है कि-सम्य-

---

કાંઈ ઓછી કોટાકોટીસાગરોપમ સ્થિતિમાંથી પલ્યોપમપૃથક્ત્વરૂપ સ્થિતિનો અપગમ-અભાવ નહિ થવાથી દેવપર્યાયમા દેશવિરતિનો લાભ સંભવિત થતો નથી.

જે સમ્યક્ત્વીને વ્રતપ્રાપ્તિ નથી થતી તે અવિરતસમ્યગ્દૃષ્ટિ શ્રાવક કહેવાય છે એને કોઈ વખત (અર્ધપુદ્ગલપરાવર્તન કાળની પછી) મુક્તિનો લાભ અવશ્ય થાય છે. પણ જેના મૂળમાં સમ્યક્ત્વ નથી તેને મુક્તિપદની પ્રાપ્તિ થતી નથી. મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ (દ્રવ્યલિંગી મુનિ જેવા) ખોટા ખોટા શાસ્ત્રોદ્વારા પ્રતિપાદિત સંયમનિયમાદિરૂપ ચારિત્રનું પાલન કરવાથી સ્વજન ધન અને પંચેન્દ્રિયોના વિષયોનો પરિત્યાગી હોવા છતા પણ, અને અનેક પ્રકારથી શીત, ઉષ્ણ, ભૂખ અને પ્યાસ આદિ પરિષહજન્ય કષ્ટોનો કઠોરમાં કઠોર સામનો કરવા છતા પણ સમ્યક્ત્વથી રહિત હોવાના કારણે મોક્ષરૂપી સિદ્ધિનો ભાગી માનવામાં આવતો નથી. એ તો અટલ સિદ્ધાંત છે કે:—સમ્યક્ત્વપ્રાપ્તિ વિના કર્મ ક્ષય

नन्वात्मपरिणामरूपं सम्यक्त्वं कथं विज्ञेयं भवेदिति चेत्, उच्यते—सम्यक्त्वकार्यरूपैः शमसंवेगनिर्वेदानुकम्पास्तिक्यैः साधुसामाचारीप्रवृत्त्यादिरूपैः सामायिकपौषधप्रतिक्रमणत्यागप्रत्याख्यानादिश्रावकाचाररूपैश्च बाह्यप्रशस्तव्यापारैरेतदवगन्तुं शक्यते। तत्र–

क्त्वप्राप्तिके विना कर्मक्षय होता ही नहीं है। सम्यक्त्वके विना ज्ञान और चारित्र निष्फल है। इनकी सफलता का मूल कारण यदि कोई है तो वह एक सम्यक्त्व ही है। सम्यक्त्वी जीव के ही ज्ञान तप चारित्र सफल होते हैं, अणुव्रत, गुणव्रत एवं शिक्षाव्रत-रूप श्रावकका देश चारित्र भी सम्यक्त्व के सद्भावमें ही सफल माना गया है, इस लिये सम्यक्त्व ही मोक्षका कारण है।

शङ्का—सम्यक्त्व तो आत्माका एक परिणाम है, उसका अस्तित्व कैसे जाना सकता है?

शङ्काकारका अभिप्राय यहां इस प्रकारका है कि जब सम्यक्त्व आत्माका एक परिणाम है तो वह भी अमूर्त्त ही होगा। अर्थात्–जिस प्रकार आत्मा अमूर्त्त है उसी प्रकार वह सम्यक्त्व भी अमूर्त्त होगा, फिर उसके अस्तित्वका बोध कैसे होता है?

इस शङ्काका समाधान करते हुए आचार्य महाराज कहते हैं कि–बात ठीक है; परन्तु उसके कार्यों से उसके अस्तित्व का भान होता है। शम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा, आस्तिक्य, साधुओंकी समाचारीरूप प्रवृत्ति आदि, एवं सामायिक, पोषध, प्रतिक्रमण, त्याग, प्रत्याख्यान

થતાં નથી, સમ્યક્ત્વ વિના જ્ઞાન અને ચારિત્ર નિષ્ફળ છે, એની સફળતાનુ મૂળ કારણ જો કોઇ હોય તો તે એક સમ્યક્ત્વ જ છે સમ્યક્ત્વી જીવને જ જ્ઞાન તપ ચારિત્ર સફળ થાય છે. અણુવ્રત, ગુણવ્રત અને શિક્ષાવ્રતરૂપ શ્રાવકનું દેશચારિત્ર પણ સમ્યક્ત્વના સદ્ભાવમા જ સફળ મનાય છે, તેથી સમ્યક્ત્વ જ મોક્ષનું કારણ છે

શંકા—સમ્યક્ત્વ તો આત્માનું એક પરિણામ છે, તેનુ અસ્તિત્વ કેવી રીતે જાણી શકાય? શંકાકારનો અભિપ્રાય આ ઠેકાણે આ પ્રકારનો છે કે જ્યારે સમ્યક્ત્વ આત્માનું એક પરિણામ છે તો તે પણ અમૂર્ત્ત થશે અર્થાત્–જે પ્રકારે આત્મા અમૂર્ત્ત છે તે પ્રકારે તે સમ્યક્ત્વ પણ અમૂર્ત્ત થશે, પછી તેના આસ્તિત્વનો બોધ કેવી રીતે થાય? આ શંકાનું સમાધાન કરતા આચાર્ય મહારાજ કહે છે કે—વાત ઠીક છે, પરતુ તેના કાર્યોથી તેના અસ્તિત્વનું ભાન થાય છે શમ, સવેગ નિર્વેદ, અનુકમ્પા, આસ્તિક્ય, સાધુઓની સમાચારીરૂપ પ્રવૃત્તિ આદિ, અને સા-

(१) शमरूपेण सम्यक्त्वपरिणामेन सर्वस्मिन्नपि काले प्रतिकूलकारिणेऽपि न क्रुध्यति ।

(२) संवेगाख्येन तेन 'सकलमहीमण्डलेश्वरस्य देवेन्द्रस्य च सुखं परमार्थतो दुःखमेव, कर्मजन्यत्वात् सावसानत्वादस्वाभाविकत्वाच्चेति मन्यमानो मोक्षादन्यत् किंचिन्न वाञ्छति, मोक्षो हि स्वाभाविकात्मपरिणामरूपः कर्माजन्यः पर्यवसानरहितो निरतिशयानन्दरूपश्चास्ति ।

आदि जो बाहर के प्रशस्त व्यापार हैं ये ही उसके कार्य हैं। इनसे ही उसके अस्तित्वका बोध होता है।

(१) शम--शमरूप सम्यक्त्वके परिणामवाला जीव किसी भी समय अपने से प्रतिकूल आचरण करनेवालों पर भी क्रोध नहीं करता है, अर्थात्-कषायों का शमनरूप यह परिणाम है, अथवा कषायों का शमन ही शम है।

(२) संवेग-संसाराद्भीरुता संवेगः--संसारसे भयभीत होना ही संवेग है। इस परिणामवाला जीव चक्रवर्ती और इन्द्र के भी वैषयिक सुखों को अपनी दृष्टिसे दुःखरूप ही मानता है। कारण कि वह उनका सुख, कर्म-(सातावेदनीय) के उदयाधीन होने से सान्त-नाशवान् है, एवं यह आत्मिक स्वभाव से प्रतिकूल है, और मोक्ष तो इससे विपरीत स्वभाववाला है, अतः उसके अतिरिक्त और कोई भी सांसारिक पदार्थ इसकी दृष्टि का मोहक नहीं बन सकता, इसलिए मोक्ष के अतिरिक्त और किसी भी पदार्थ की प्राप्तिकी वांछा इसके नहीं रहती। 'मोक्ष इससे विप-

---

માયિક પોષધ, પ્રતિક્રમણ, ત્યાગ, પ્રત્યાખ્યાન આદિ જે બાહ્ય પ્રશસ્ત વ્યાપાર છે તે જ તેના કાર્યો છે, તેનાથી જ તેના અસ્તિત્વનો બોધ થાય છે.

(૧) શમ—શમરૂપ સમ્યક્ત્વના પરિણામવાળો જીવ કોઈ વખત પોતાથી પ્રતિકૂળ આચરણ કરવાવાળા ઉપર પણ ક્રોધ કરતો નથી. અર્થાત્ કષાયોના શમનરૂપ આ પરિણામ છે, અથવા કષાયોનો શમનજ શમ છે.

(૨) સંવેગ-'संसाराद्भीरुता संवेगः' સંસારથી ભયભીત થવું તે સંવેગ છે. આ પરિણામવાળા જીવ ચક્રવર્તી અને ઇંદ્રોના વૈષયિક સુખોને પણ પોતાની દૃષ્ટિથી દુઃખરૂપ જ માને છે. કારણ કે તે એના સુખ. કર્મ (સાતાવેદનીય)ના ઉદયાધીન હોવાથી સાંત-નાશવાન છે, એ આત્મિકસ્વભાવથી જ પ્રતિકૂળ છે, અને મોક્ષ તો એનાથી વિપરીત સ્વભાવવાળો છે. એથી એનાથી અતિરિક્ત બીજો કોઈ પણ સાંસારિક પદાર્થ એની દૃષ્ટિનો મોહક નથી બની શકતો. તેથી મોક્ષના અતિરિક્ત કોઈ પણ પદાર્થની પ્રાપ્તિની વાંછના એને રહેતી નથી. 'મોક્ષ એથી

(३) निर्वेदाख्येन सम्यक्त्वपरिणामेन जीवो मन्यते–'नारकतिर्यङ्मनुष्यदेव-भवेषु सर्वेष्वेव दुःखमस्ति, अतः सर्वमेव जगन्निःसार'-मिति। अपि च ममत्वविष-वेगरहितो भवति।

(४) प्राणिवर्गं समन्तादवलोक्यानुकम्पाख्येन सम्यक्त्वपरिणामेन–'इमे संसारचक्रपरिभ्रान्ताः शारीरैर्मानसैश्च विविधदुःखैः पराभूताः सन्ती'-ति मत्वा स्वात्मौपम्येन तेषां दुःखान्यनुभूय स्वकीयपरकीयमात्राऽभावपूर्वकमभयदानेन, प्राणिनां

रीत स्वभाववाला है' इसका तात्पर्य यही है कि वह कर्म के उदय के आधीन नहीं है, अपितु आत्मा का निजस्वभाव है। एक बार जिस जीव को इसकी प्राप्ति हो जाती है उसको फिर इस संसारमें परिभ्रमण नहीं करना पड़ता, एवं जीव को वहां पर निरतिशय अनंत आनन्द की प्राप्ति होती है इसलिये वह मोक्ष स्वयं अपूर्व अनंत आनन्द का एक धाम है। संवेग परिणामवाला जीव इस प्रकारके मोक्षसुखकी ही अभिलाषा करता है।

(३) निर्वेद—निर्वेदगुणवाला जीव–'नरक, तिर्यञ्च देव और मनुष्यभवमें सर्वत्र ही दुःखका साम्राज्य छाया हुआ है इस लिये यह समस्त जगत दुःखका एक भाजन है' ऐसा समझ कर उसको निःसार–साररहित ही जानता है। ममतारूप जहर से वह दूर ही रहता है।

(४) अनुकंपा—दुःखी जीवों पर दयाभाव होना ही अनुकंपा है। इस गुणवाला जीव संसारस्थ समस्त प्राणिवर्ग को शारीरिक मानसिक

વિપરીત સ્વભાવવાળો છે' એનો તાત્પર્ય એ છે કે તે કર્મના ઉદયને આધીન નથી પણ આત્માનો નિજસ્વભાવ છે એક વાર જે જીવને મોક્ષની પ્રાપ્તિ થઈ ગઈ તો પછી એને આ સંસારમાં પરિભ્રમણ કરવું પડતું નથી. અને જીવને ત્યાં નિરતિશય અનંત આનંદની પ્રાપ્તિ થાય છે, તેથી તે મોક્ષ પોતે અપૂર્વ અનંત આનંદનો ધામ છે સંવેગપરિણામવાળો જીવ આવા પ્રકારના મોક્ષ–સુખનીજ અભિલાષા કરે છે.

(૩) निर्वेद—નિર્વેદગુણવાળો જીવ–' નરક, તિર્યંચ, દેવ અને મનુષ્ય ભવમાં સર્વત્ર દુઃખનું સામ્રાજ્ય જ પથરાયેલું છે, એથી સમસ્ત આ જગત દુઃખનું એક ભાજન છે' એવું સમજીને તેને નિઃસાર–સારરહિત માને છે. મમતારૂપી ઝેરથી તે દૂર જ રહે છે.

(૪) अनुकंपा—દુઃખી જીવો ઉપર દયા કરવી તેનું નામ અનુકંપા છે. આ ગુણવાળા જીવ સંસારના સમસ્ત પ્રાણિવર્ગને અનેક શારીરિક માનસિક કષ્ટોથી

रक्षणेन, मार्यमाणानां संकटान्मोचनेन, धर्मोपदेशेन मोक्षमार्गे योजनया च यथासामर्थ्यमनुग्रहं कुरुते ।

(५) आस्तिक्यपरिणामेन च 'यदिह तीर्थकरैः प्रतिबोधितं तत् सर्वमेव सत्यं, तथैव सर्वे जीवाजीवादयोऽर्थाः सन्ति निश्शङ्कम्' इति मन्यते । स च काङ्क्षादिविस्रोतसिकारहितो भवति ।

एवंभूतैः शमादिपरिणामैः सम्यक्त्वं विज्ञेयं भवितुमर्हति । लब्धसम्यक्त्वश्च सम्यग्दृष्टिरित्युच्यते । स चान्तर्मुहूर्तकालमपि सम्यक्त्वेन स्पृष्टश्चेदुत्कृष्टतो देशो-

---

अनेक कष्टों से व्यथित ही अनुभव किया करता है, और अपने समान ही उन्हें मान कर उनके उन दुःखों का स्वयं अनुभव करके निष्पक्ष दृष्टि से युक्त हो कर उनके उन दुःखों को दूर करने की यथाशक्ति कोशिश में रहता है । अपनी शक्तिके अनुसार उनकी रक्षा करता है । मरते हुए तथा घातकद्वारा मारे जाते हुए जीवों को यथाशक्ति बचाता है और मोक्षमार्गसे विपरीत जनों को सद्धर्मके उपदेश से भावित कर उन्हें मोक्षमार्ग में लगाने की अपनी शक्तिके अनुसार चेष्टा भी करता है ।

(५) आस्तिक्य—"जो जिनेन्द्रदेवने कहा है वह सर्व ही सत्य है" इस प्रकार दृढ आस्थावाली मति ही आस्तिक्य भाव है । इस आस्तिक्य भाववाला जीव जिनप्रतिपादित तत्त्वों में निश्शंक होकर दृढ आस्था-सम्पन्न होता है । वह जीव जिनवचनों में शंकाकाक्षादिरहित होता है ।

इन पूर्वोक्त शमादिभावरूप चिह्नोंसे सम्यक्त्व का अस्तित्व जाना जाता है । जीव यदि सम्यग्दर्शनका एक अंतर्मुहूर्त भी स्पर्श कर लेता

વ્યથિત જ અનુભવ કર્યા કરે છે. અને પોતાના સમાન જ તેઓને માનીને તેઓના તે દુઃખોનો અનુભવ સ્વયં કરીને નિષ્પક્ષદૃષ્ટિયુક્ત થઈ તેઓના તે દુઃખોને દૂર કરવાની યથાશક્તિ કોશિશમાં રહે છે, પોતાની શક્તિના પ્રમાણમાં તેની રક્ષા કરે છે. મરતા જીવોને તથા ઘાતકીદ્વારા મરાતા જીવોને યથાશક્તિ બચાવે છે, અને મોક્ષમાર્ગથી વિપરીત જનોને સદ્ધર્મના ઉપદેશથી ભાવિત કરી તેને મોક્ષમાર્ગમા લગાડવામાં પોતાની શક્તિ-અનુસાર ચેષ્ટા કરે છે.

(૫) આસ્તિક્ય—"જે જિનેન્દ્ર દેવે કહ્યાં છે તે સર્વે સત્ય છે." આ પ્રકારની દૃઢ આસ્થાવાળી મતિ જ આસ્તિક્ય ભાવ છે. આ આસ્તિક્યભાવવાળાં જીવ જિનપ્રતિપાદિત તત્ત્વોમા નિશંક થઈને દૃઢ આસ્થાવાળા થઈ જાય છે. તે જીવ જિન વચનોમાં શંકાકાંક્ષાદિરહિત હોય છે.

આ પૂર્વોક્ત શમાદિભાવરૂપ ચિહ્નોથી સમ્યક્ત્વનુ અસ્તિત્વ જાણવામા આવે છે. જીવ જો સમ્યગ્દર્શનનો એક અંતર્મુહૂર્ત પણ સ્પર્શ કરી લે તો તે નિયમથી

नार्धपुद्गलपरावर्त्तान्तरे नियमेन मोक्षं प्राप्नोति। अलमधिकेन, लब्धसम्यक्त्वः सुरगतिं नियमतो लभते। तथा चोक्तम्—

"अंतोमुहुत्तमित्तं,-पि फासिअं हुज्ज जेहिं सम्मत्तं।
तेसिं अवड्ढपुग्गल,-परिअट्टो चेव संसारो" ॥ १ ॥ इति।

छाया—अन्तर्मुहूर्त्तमात्रमपि स्पृष्टं भवेद् यैः सम्यक्त्वम्।
तेषामपार्द्धपुद्गलपरिवर्त्त एव संसारः ॥ १ ॥ इति।

अपरं च—"सम्मदिट्ठी जीवो, गच्छइ नियमा विमाणवासीसु।
जइ न विगयसंमत्तो, अहव न बद्धाउओ पुव्विं" ॥ १ ॥

है तो वह नियमसे ज्यादा से ज्यादा अर्धपुद्गलपरावर्तन काल तक ही इस संसार में रहता है और उसके बाद मोक्षस्थानको प्राप्त कर ही लेता है। कहा भी है—

"अंतोमुहुत्तमित्तं,-पि फासिअं हुज्ज जेहिं सम्मत्तं।
तेसिं अवड्ढपुग्गल,-परियट्टो चेव संसारो" ॥१॥ इति।

जिन जीवोंने एक अंतर्मुहूर्तमात्र भी सम्यक्त्वका स्पर्श किया है उन जीवों का संसार अर्ध पुद्गलपरावर्तनकाल तक ही अवशिष्ट रहता है। इस विषयमें अधिक क्या कहा जाय? सम्यग्दृष्टि जीव नियम से, यदि वह विगतसम्यक्त्व नहीं है, तथा बद्धायुष्क नहीं है तो, वैमानिक देवों में जन्म धारण करता है। कहा भी है—

"सम्मदिट्ठी जीवो, गच्छइ नियमा विमाणवासीसु।
जइ न विगयसंमत्तो, अहव न बद्धाउओ पुव्विं" ॥ १ ॥

વધારેમાં વધારે અર્ધપુદ્‌ગલપરાવર્તન કાળ સુધી જ આ સંસારમાં રહે છે, અને ત્યાર પછી મોક્ષસ્થાનને પ્રાપ્ત કરી જ લે છે કહ્યું છે—

"अंतोमुहुत्तमित्तं,-पि फासिअं हुज्ज जेहिं सम्मत्तं।
तेसिं अवड्ढपुग्गल,-परियट्टो चेव संसारो" ॥ १॥ इति।

જે જીવોએ એક અંતર્મુહૂર્ત માત્રપણ સમ્યક્ત્વનો સ્પર્શ કર્યો છે તે જીવોનો સંસાર અર્ધપુદ્‌ગલપરાવર્તનકાળ સુધી જ અવશિષ્ટ રહે છે, આ વિષયમાં વધારે શું કહેવું? સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવ, જો તે વિગતસમ્યક્ત્વ નથી તથા બદ્ધાયુષ્ક નથી તો નિયમથી તે વૈમાનિક દેવોમાં જન્મ ધારણ કરે છે. કહ્યુ છે:—

"सम्मद्दिट्ठी जीवो, गच्छइ नियमा विमाणवासीसु।
जइ न विगयसंमत्तो, अहव न बद्धाउओ पुव्विं ॥ १ ॥" इति।

छाया—सम्यग्दृष्टिर्जीवो, गच्छति नियमाद् विमानवासिषु ।
यदि न विगतसम्यक्त्वः, अथवा न बद्धायुष्कः पूर्वम् ॥ १ ॥

अन्यच्च- 'जं सक्कइ तं कीरइ, जं च न सक्कइ तयम्मि सद्दहणा ।
सद्दहमाणो जीवो, वच्चइ अयरामरं ठाणं" ॥ १ ॥ इति ।

छाया—यत् शक्नोति (कर्तुं) तत् क्रियते, यच्च न शक्नोति तस्मिन् श्रद्धा ।
श्रद्दधानो जीवो, व्रजति अजरामरं स्थानम् ॥ १ ॥ इति ।

नन्वेवं सम्यक्त्वेनैव मोक्षप्राप्तिश्चेत्तर्हि किं पुनस्तीव्रतरकष्टसाध्यैरहिंसादिव्रत-

---

सम्यग्दृष्टि जीव मर कर नियमसे वैमानिक देवों में उत्पन्न होता है यदि उसका सम्यक्त्व विगत (नष्ट) नहीं हुआ है, और सम्यक्त्वप्राप्तिके पहले अन्य गतियों को आयु नहीं बांधी है तो ॥ १ ॥

इसलिये प्रत्येक संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त प्राणी का कर्तव्य है कि वह ऐसे सुन्दर सम्यक्त्व को प्राप्त करनेका प्रयत्न करता रहे । कहा भी है—

"जं सक्कइ तं कीरइ, जं च न सक्कइ तयम्मि सद्दहणा ।
सद्दहमाणो जीवो, वच्चइ अयरामरं ठाणं" ॥ १ ॥ इति ।

जो शुभ कर्तव्य प्राणी से हो सकता हो वह आत्मवीर्य-बल पराक्रमको नहीं गोपते हुए अवश्य करना चाहिये । यदि न बन सके तो भी उसमें श्रद्धा रखनी ही चाहिये, क्यों कि शुद्ध श्रद्धाके प्रभावसे ही जीव अजर-अमर पदका अधिकारी बनता है ॥ १ ॥

शङ्का—यदि ऐसी ही बात है तो फिर तीव्रतर कष्टोंके द्वारा साध्य

સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવ મરીને નિયમથી વૈમાનિક દેવોમાં ઉત્પન્ન થાય છે. જો એનો સમ્યક્ત્વ વિગત નથી થયો અને તેને સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્તિના પહેલાં અન્ય ગતિની આયુ નહિ બાંધી હોય તો ॥ ૧ ॥

તેથી પ્રત્યેક સંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય પર્યાપ્ત પ્રાણીનું કર્તવ્ય છે કે તે આવા સુંદર સમ્યક્ત્વને પ્રાપ્ત કરવા પ્રયત્ન કરતો રહે. કહ્યુ છે—

"जं सक्कइ तं कीरइ, जं च न सक्कइ तयम्मि सद्दहणा ।
सद्दहमाणो जीवो, वच्चइ अयरामरं ठाणं" ॥ १ ॥ इति ।

જે શુભ કર્તવ્ય પ્રાણીથી બની શકતું હોય તે આત્મવીર્ય-બલ પરાક્રમને છુપાવ્યા વિના અવશ્ય કરવું જોઇએ. જો ન બની શકે તો પણ તેમાં શ્રદ્ધા રાખવી જ જોઇએ, કારણ કે શુદ્ધ શ્રદ્ધાના પ્રભાવથી જ જીવ અજર-અમર પદનો અધિકારી બને છે ॥ ૧ ॥

શંકા—જો આવી વાત છે તો પછી તીવ્રતર કષ્ટોદ્વારા સાધ્ય અહિંસાદિ

संयमतपःसमाराधनैः, तथाहि–पर्याप्तापर्याप्तकादिभेदवतां पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतीनां द्वीन्द्रियादिविविधत्रसानां च त्रिकरणत्रियोगैरुपमर्दनपरिहारपूर्वकरक्षणरूपमहिंसाव्रतं, तथा स्वस्वभेदैर्बहुविधमृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्रहपरिहाररूपाणि व्रतानि, शीतोष्णादिकठिनतरपरिषहसहनपूर्वकसप्तदशविधसंयमसमाराधनम्, अनशनाद्युग्रतरद्वादशविधतपश्चरणजनितशरीरादिशोषणेन धन्यमुनिवद् घोरतरकष्टसहनं चेति । तथा–किं पुनर्महाविस्तरदुरधिगमसामायिकादिद्वादशाङ्गरूपश्रुतज्ञानैरपि ? इति चेन्न,

---

अहिंसादि महाव्रत संयम और तप आदिके पालन एवं आराधन करने की आवश्यकता क्या है ? अर्थात्–एक सम्यग्दर्शन से ही जीवको मुक्ति का लाभ हो जावे तो पर्याप्त और अपर्याप्त–भेदविशिष्ट एकेन्द्रिय–पृथिवीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, और वनस्पतिकायके जीवों की, एवं द्वीन्द्रियादिक अनेक प्रकारके त्रस जीवों की कृत कारित अनुमोदना और मन वचन कायसे विराधना का त्याग करना, एवं उनका रक्षण करना जो अहिंसा–महाव्रत है उसका पालन १, तथा अनेक प्रकारके मृषावाद २, अनेक प्रकारके अदत्तादान–चोरी ३, मैथुन ४, एवं परिग्रह ५ का त्यागरूप पांच महाव्रतों का आराधन, एवं कठिनतर परिषहों के सहनपूर्वक (१७) सतरह प्रकारके संयम का सेवन करना, तथा धन्य मुनिकी तरह अनशनादिक (१२) बारह प्रकारके तपके आचरणसे उत्पन्न शरीरादिक शोषण से घोरतर कष्टों का सहन करना; ये सभी बिल्कुल ही व्यर्थ हैं ? तथा सामायिकादिद्वादशांगरूप श्रुतज्ञान, कि जो महा-

---

મહાવ્રત સંયમ અને તપ વિગેરેનું પાલન અને આરાધન કરવાની આવશ્યકતાજ શી છે ? અર્થાત્–એક સમ્યગ્દર્શનથી જ જીવને મુક્તિનો લાભ થઇ જાય તો પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત ભેદ–વિશિષ્ટ એકેન્દ્રિય–પૃથ્વીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય, અને વનસ્પતિકાય–ના જીવોની, અને બેઇન્દ્રિયાદિક અનેક પ્રકારના ત્રસ જીવોની કૃત કારિત અનુમોદના અને મનવચન કાયાથી વિરાધનાનો ત્યાગ કરવો, અને તેનુ રક્ષણ કરવુ જે અહિંસામહાવ્રત છે તેનું પાલન ૧, તથા અનેક પ્રકારના મૃષાવાદ૨, અનેક પ્રકારના અદત્તાદાન–ચોરી ૩, મૈથુન ૪, અને પરિગ્રહ ૫ ના ત્યાગરૂપ પાંચ મહાવ્રતોનું આરાધન, અને કઠિનતર પરિષહોનુ સહનપૂર્વક સતર પ્રકારે સંયમનું સેવન કરવું, તથા ધન્યમુનિની પેઠે અનશનાદિક બાર પ્રકારના તપના આચરણથી ઉત્પન્ન શરીરાદિક શોષણથી ઘોરતર કષ્ટોનુ સહન કરવુ, એ બધા બિલકુલ જ

ज्ञानचारित्रसमुत्पादनद्वारा सम्यक्त्वस्य मोक्षं प्रति कारणत्वात्, तथाहि—न केवलं सम्यक्त्वमात्रेण सिद्धिपदं लब्धुं शक्यते, किन्तु सम्यक्त्वकार्यस्य तदभिव्यञ्जकस्य चारित्रस्यैव मोक्षं प्रति साक्षात्कारणतया तेनैव तत्प्राप्तिर्भवितुमर्हति, सम्यग्ज्ञानमपि चारित्रोत्पादनद्वारेणैव मोक्षजनकम्। यतश्चारित्रपरिणामेनैव ज्ञानमपि मोक्षाय प्रभवति, न केवलं स्वसत्तामात्रेण। अत एव भगवताऽत्रैव प्रथमाध्ययने

विस्तारसम्पन्न एवं दुरधिगम है, उसका श्रवण, मनन आदि करना भी निस्सार ही है ?।

समाधान—शङ्काकारकी यह शङ्का ठीक नहीं है; क्यों कि स्वतन्त्र सम्यग्दर्शन मोक्षका कारण नहीं माना गया है। जब तक जीव को सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती है तब तक उसके ज्ञान और चारित्र मिथ्यारूप में रहते हैं। ज्ञान और चारित्रमें सम्यक्पना इसी सम्यक्त्व के द्वारा आता है, अतः सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की उत्पत्ति द्वारा ही सम्यक्त्व मोक्षका हेतु होता है। इसी अभिप्रायको ले कर सम्यक्त्व, मोक्ष का कारण कहा गया है। जब तक सम्यक्त्व पूर्ण ज्ञान और पूर्ण चारित्र को उत्पन्न नहीं कर देता तब तक वह मोक्षका कारण नहीं होता। मुक्ति सम्यक्चारित्र से ही प्राप्त होती है, इस कारण से सम्यक् चारित्र ही मुक्तिका साक्षात् कारण है। यह चारित्र सम्यक्त्व का कार्य और उसका अभिव्यंजक-प्रकाशक होता है।

વ્યર્થ છે ? તથા આમાયિકાદિદ્વાદશાંગરૂપ શ્રુતજ્ઞાન, કે જે મહાવિસ્તારસંપન્ન અને દુરધિગમ છે, તેનું શ્રવણ મનન આદિ કરવું પણ નિસ્સાર જ છે ?

સમાધાન—શંકાકારની શંકા ઠીક નથી, કારણ કે સમ્યગ્દર્શન મોક્ષનું સ્વતન્ત્ર કારણ માનવામાં આવ્યું નથી જ્યાં સુધી જીવને સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિ નથી થતી ત્યા સુધી તેનુ જ્ઞાન અને ચારિત્ર મિથ્યારૂપમાં રહે છે જ્ઞાન અને ચારિત્રમાં સમ્યક્પણું આ સમ્યક્ત્વદ્વારા આવે છે, એથી સમ્યગ્જ્ઞાન અને સમ્યક્ચારિત્રની ઉત્પત્તિ દ્વારા જ સમ્યક્ત્વ મોક્ષનો હેતુ થાય છે. આ અભિપ્રાયને લઈને જ સમ્યક્ત્વને મોક્ષનું કારણ કહેવામા આવ્યું છે. જ્યા સુધી સમ્યક્ત્વ પૂર્ણ જ્ઞાન અને પૂર્ણ ચારિત્રને ઉત્પન્ન નથી કરતું ત્યા સુધી તે મોક્ષનું કારણ નથી થતું. મુક્તિ સમ્યક્-ચારિત્રથી જ પ્રાપ્ત થાય છે, આ કારણથી સમ્યક્ ચારિત્ર જ મુક્તિનું સાક્ષાત્ કારણ છે. આ ચારિત્ર સમ્યક્ત્વનું કાર્ય અને તેનું અભિવ્યંજક (પ્રગટ કરવાવાળુ) થાય છે.

'से हु मुणी परिण्णायकम्मे' इति पुनः पुनर्वदता सम्यक्चारित्रमेव मोक्षप्राप्तिकारणमिति प्रतिबोधितम् । उत्तराध्ययनेऽपि—

"नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा ।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं"॥१॥ (अ०२८)

सम्यग्ज्ञान भी सम्यक्चारित्र को उत्पन्न करता हुआ मोक्षका कारण माना गया है । ज्ञानकी सत्ता भले ही आत्मा में हो परन्तु जब तक वह आत्मामें चारित्रपरिणाम को उत्पन्न नहीं कर देता, तब तक मोक्षका जनक नहीं हो सकता । इसी अभिप्राय को लेकर भगवान्ने इसी प्रथम अध्ययन में "से हु मुणी परिण्णायकम्मा" अर्थात्-जो छ काय के आरंभ को ज्ञपरिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्यागता है वही मुनि चारित्रवान् गिना जाता है । इस कथन द्वारा भी सम्यक्चारित्र को ही मोक्षप्राप्तिका कारण प्रकट किया है । उत्तराध्ययनके २८ वें अध्ययनमें भी इसकी पुष्टि की गई है । जैसे-

"नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा ।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं" ॥१॥

अर्थात्—सम्यग्दर्शनरहित आत्मामें सम्यग्ज्ञान नहीं होता । सम्यग्ज्ञान से रहित आत्मा को चारित्रगुणकी प्राप्ति नहीं होती । चारित्रगुण की प्राप्ति किये विना मोक्ष नहीं होता, एवं अमुक्तका निर्वाण नहीं होता ॥ १ ॥ उत्त० अ० २८ ॥

સમ્યગ્જ્ઞાન પણ સમ્યક્-ચારિત્રને ઉત્પન્ન કરતા મોક્ષનું કારણ માનવામાં આવે છે જ્ઞાનની સત્તા ભલે જ આત્મામા છે, પરંતુ જ્યાં સુધી તે આત્મામાં ચારિત્રપરિણામને ઉત્પન્ન નથી કરતું ત્યા સુધી મોક્ષનુ ઉત્પાદક નથી થતું આ અભિપ્રાયને લઈ ને ભગવાને આ પ્રથમ અધ્યયનમાં "से हु मुणी परिण्णायकम्मा" અર્થાત્-જે છ કાયના આરંભને જ્ઞપરિજ્ઞાથી જાણીને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી ત્યાગે છે તે જ મુનિ ચારિત્રવાન માનવામા આવે છે. આ કથન દ્વારા પણ સમ્યક્-ચારિત્રને જ મોક્ષપ્રાપ્તિનું કારણ પ્રગટ કર્યું છે. ઉત્તરાધ્યયન અધ્યયન ૨૮માં પણ એની પુષ્ટિ કરી છે જેમ—

"नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा ।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं" ॥१॥ उत्त०अ०२८॥

અર્થાત્—સમ્યગ્દર્શનરહિત આત્મામાં સમ્યગ્જ્ઞાન નથી થતું. સમ્યગ્જ્ઞાનથી રહિત આત્માને ચારિત્ર ગુણની પ્રાપ્તિ થતી નથી. ચારિત્રગુણની પ્રાપ્તિ કર્યા વિના મોક્ષ થતું નથી, અને અમુક્તનું (કર્મથી મુક્ત નહિ તેનું) નિર્વાણ થતું નથી. ૧

सूत्रकृताङ्गे च—"एवं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसइ किंचणं।
अहिंसा समयं चेव, एयावंतं वियाणिया ॥१॥" (अ० ११)

ज्ञानं हि क्रियापरिणामाऽनापन्नं सत् कमप्यर्थं साधयितुं न शक्नोति। यथा शास्त्राभ्यसनकुशलोऽपि तदर्थविज्ञाननिपुणोऽपि तदुक्तधर्मानाचरणेन तदभ्यसनादिकं सर्वं निष्फलीकुर्वन्नहि विद्वत्पदं लभते। यथा वा—औषधस्वरूपगुणप्रज्ञावतामपि वैद्यानां तत्सविधिसेवनक्रियामन्तरेण तत्प्रज्ञा नैरुज्यं न जनयति, यद्यौषधज्ञानवतामियमवस्था, तर्हि का वार्त्ता केवलं तन्नामरटनशीलानां जनानाम्। तथा चोक्तम्—

सूत्रकृताङ्गमें भी यही लिखा है—

"एवं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसइ किंचणं।
अहिंसा समयं चेव, एयावंतं वियाणिया" ॥१॥ (सू० अ० ११)

ज्ञान जब तक क्रियात्मक (चारित्ररूप) नहीं होता तब तक वह किसी भी इष्ट अर्थ की पुष्टि नहीं कर सकता। जैसे-शास्त्रके अभ्यास करनेमें कुशलमति व्यक्ति उसके अर्थका विशिष्ट ज्ञाता होकर भी जब तक शास्त्रविहित मार्ग को जीवनमें क्रियात्मकरूप नहीं देता तब तक वह उसके अभ्यास या ज्ञान से अपने किसी भी इच्छित कार्य की सिद्धि नहीं कर सकता है, और न वह यथार्थ विद्वत्ता के पदसे ही विभूषित हो सकता है। अतः उसको क्रियात्मक रूप देने के बिना जैसे उसका वह अभ्यास एवं ज्ञान निष्फल है, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन भी ज्ञान-क्रियाके अभाव में मोक्षका साधक नहीं होता है। वैद्यका औषधि-

---

સૂત્રકૃતાંગમાં પણ એ જ લખ્યું છે—

"एवं खु नाणिणो सारं, जं न हिंसइ किंचणं।
अहिंसा समयं चेव, एयावंतं वियाणिया" ॥१॥ सूत्र० अ० ११।

જ્ઞાન જ્યાં સુધી ક્રિયાત્મક (ચારિત્રરૂપ) નથી થતું ત્યાં સુધી તે કોઈ પણ ઇષ્ટ અર્થની પુષ્ટિ નથી કરી શકતું. જેમ શાસ્ત્રનો અભ્યાસ કરવામાં કુશલમતિ મનુષ્ય એના અર્થનો વિશિષ્ટ જ્ઞાતા હોવા છતાં પણ જ્યાં સુધી શાસ્ત્રવિહિત માર્ગને જીવનમાં ક્રિયાત્મકરૂપથી નથી ઉતારતો ત્યાં સુધી તે તેના અભ્યાસના જ્ઞાનથી પોતાના કોઈ પણ ઈચ્છિત કાર્યની સિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરી શકતો નથી, અને યથાર્થ વિદ્વત્તાના પદથી પણ તે વિભૂષિત થઈ શકતો નથી. એથી તેને ક્રિયાત્મક રૂપ આપ્યા વિના જેમ તેનો આ અભ્યાસ તેમજ જ્ઞાન નિષ્ફળ છે તે પ્રકારે સમ્યગ્દર્શન પણ જ્ઞાન-ક્રિયાના અભાવમાં મોક્ષનું સાધક થતું નથી. વૈદ્યનો ઔષધવિષયક અભ્યાસ અને પરિપક્વ જ્ઞાન ઔષધિસેવનના વિધિની

" शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा, यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान् ।
सुचिन्तितं चौषधमातुराणां, न नाममात्रेण करोत्यरोगम् " ॥ १ ॥

सम्यक्त्वसद्भावे शमसंवेगादयो गुणाः प्रसभमुदयन्ते, तदानीं कथमपि तदुदयं प्रतिरोद्धुं न कश्चन समर्थो भवति । उक्तञ्च—

" असमसुखनिधानं धाम संविग्नतायाः, भवसुखविमुखत्वोद्दीपने सद्विवेकः ।
नरनरकपशुत्वोच्छेदहेतुर्नराणां, शिवसुखतरुबीजं शुद्धसम्यक्त्वलाभः " ॥ १ ॥

विषयक अभ्यास, एवं परिपक्व ज्ञान क्या कभी औषधिसेवनके विधि की अनभिज्ञता में नीरोगता का कारण हो सकता है ? नहीं हो सकता। यदि हो सकता तो फिर उसका नाम रटनेवाले रोगी पुरुषों की बात ही क्या कहनी ? उन्हें भी उससे फायदा हो जाना चाहिये। कहा भी है—

" शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा,-यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्।
सुचिन्तितं चौषधमातुराणां, न नाममात्रेण करोत्यरोगम् " ॥ १ ॥

शास्त्रोंको पढ़कर भी मनुष्य मूर्ख रह जाते हैं। जो क्रियावान् है वही विद्वान् है। बीमार व्यक्तिको सुचिन्तित भी औषधि नाममात्र लेने से आरोग्यदायक नहीं होती ॥ १ ॥

सम्यक्त्वके सद्भावमें शमसंवेगादिक गुणोंकी उत्पत्ति अवश्य होती है, उनको रोकने के लिये कोई भी समर्थ नहीं हो सकता, क्यों कि यह सर्वगुणसम्पन्न है। कहा भी है—

" असमसुखनिधानं धाम संविग्नतायाः,
भवसुखविमुखत्वोद्दीपने सद्विवेकः।
नरनरकपशुत्वोच्छेदहेतुर्नराणां,
शिवसुखतरुबीजं शुद्धसम्यक्त्वलाभः " ॥ १ ॥

અનભિજ્ઞતામાં નીરોગતાનુ કારણ કોઇ વખત બની શકે છે ?—નથી બની શકતું જો બની શકે તો પછી તેનુ નામ લેવાવાળા રોગી પુરૂષોની વાત જ શું કહેવી ? તેને પણ તેનાથી ફાયદો થવા જોઇએ. કહ્યુ પણ છે—

" शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा,-यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान् ।
सुचिन्तितं चौषधमातुराणा, न नाममात्रेण करोत्यरोगम् " ॥ १ ॥

શાસ્ત્રનો અભ્યાસ કરીને પણ મનુષ્ય મૂર્ખ રહી જાય છે. જે ક્રિયાવાન છે તે વિદ્વાન છે બીમાર મનુષ્યને સુચિન્તિત પણ ઓષધિ નામમાત્ર લેવાથી આરોગ્યદાયક નથી થતી ॥ ૧ ॥

સમ્યક્ત્વના સદ્ભાવમા શમસંવેગાદિક ગુણોની ઉત્પત્તિ અવશ્ય થાય છે, એને રોકવાને માટે કોઈ સમર્થ થતું નથી. કારણ કે તે સર્વગુણસંપન્ન છે. કહ્યુ પણ છે—

किंच—" सम्यक्त्वरत्नान्न परं हि रत्नं, सम्यक्त्वबन्धोर्न परोऽस्ति बन्धुः ।
सम्यक्त्वमित्रान्न परं हि मित्रं, सम्यक्त्वलाभान्न परोऽस्ति लाभः" ॥ २ ॥
तदेवं सम्यक्त्वमिह मोक्षस्य बीजमिति सिद्धम् ।

सम्यक्त्वप्राप्तिक्रमः ।

अनादिमिथ्यादृष्टेर्जीवस्य सम्यक्त्वप्राप्तौ यथाक्रमं त्रीणि करणानि भवन्ति ।

यह सम्यक्त्व अनुपम सुखका निधान है, वैराग्यकी उत्पत्ति का कारण है, वैराग्यको प्रकट करने में शुद्ध विवेक है, चार गतिके दुःखोंका उच्छेद करने में कारण है और मोक्षसुखरूप वृक्षका यह बीज है॥ १ ॥

और भी कहा है—

" सम्यक्त्वरत्नान्न परं हि रत्नं, सम्यक्त्वबन्धोर्न परोऽस्ति बन्धुः ।
सम्यक्त्वमित्रान्न परं हि मित्रं, सम्यक्त्वलाभान्न परोऽस्ति लाभः" ॥२॥

सम्यक्त्व-रत्नसे कोई उत्कृष्ट रत्न नहीं है, इससे बढ़कर कोई बन्धु नहीं है । यह सम्यक्त्व परम मित्र है, और इसका लाभ ही परमलाभ है॥

इससे यह सिद्ध हुआ कि सम्यक्त्व मोक्षका मूल कारण है ।

सम्यक्त्वकी प्राप्तिका क्रम—

अनादिमिथ्यादृष्टि जीव जब सम्यक्त्वप्राप्तिके संमुख होता है उस समय उसके यथाक्रमसे तीन करण होते हैं-(१) यथाप्रवृत्तिकरण, (२) अपूर्वकरण, (३) अनिवृत्तिकरण ।

" असमसुखनिधानं धाम संविग्नतायाः, भवसुखविमुखत्वोद्दीपने सद्विवेकः ।
नरनरकपशुत्वोच्छेदहेतुर्नराणां, शिवसुखतरुबीजं शुद्धसम्यक्त्वलाभः " ॥१॥

આ સમ્યક્ત્વ અનુપમ સુખનું નિધાન છે. વૈરાગ્યની પ્રાપ્તિનું કારણ છે. વૈરાગ્યને પ્રગટ કરવામાં શુદ્ધ વિવેક છે ચાર ગતિના દુઃખના ઉચ્છેદ કરવામા કારણ છે અને મોક્ષસુખરૂપ વૃક્ષનું એ બીજ છે ॥ ૧ ॥ વળી પણ કહ્યું છે—

" सम्यक्त्वरत्नान्न परं हि रत्नं, सम्यक्त्वबन्धोर्न परोऽस्ति बन्धुः ।
सम्यक्त्वमित्रान्न परं हि मित्रं, सम्यक्त्वलाभान्न परोऽस्ति लाभः " ॥ २ ॥

સમ્યક્ત્વરત્નથી કોઇ ઉત્કૃષ્ટ રત્ન નથી એનાથી વધીને કોઇ બંધુ નથી. આ સમ્યક્ત્વ પરમ મિત્ર છે, અને એનો લાભ જ પરમ લાભ છે ॥ ૧ ॥

એથી એ સિદ્ધ થયું કે સમ્યક્ત્વ મોક્ષનું મૂળ કારણ છે

સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિનો ક્રમ

અનાદિમિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ જ્યારે સમ્યક્ત્વપ્રાપ્તિને સમ્મુખ થાય છે તે વખતે તેને યથાક્રમથી ત્રણ કરણ થાય છે—(૧) યથાપ્રવૃત્તિકરણ (૨) અપૂર્વકરણ, (૩) અનિવૃત્તિકરણ.

यथाप्रवृत्तिकरणम् , अपूर्वकरणम् , अनिवृत्तिकरणं चेति । यथा=अनादिसंसिद्धप्रकारेण प्रवृत्तिः=प्रवर्तमानं-यथाप्रवृत्ति, क्रियते कर्मक्षपणमनेनेति करणं-जीवपरिणामरूपम् । यथाप्रवृत्ति च तत् करणं चेति यथाप्रवृत्तिकरणम् ।

एवमुत्तरत्रापि करणशब्देन कर्मधारयो बोध्यः । एवं चानादिकालात् कर्मक्षपणप्रवृत्तोऽध्यवसायविशेषो यथाप्रवृत्तिकरणमिति फलितम् । एतानि त्रीण्यपि करणानि भव्यानां भवन्ति । अभव्यानां तु प्रथममेव यथाप्रवृत्तिकरणं भवति नेतरद्वयम् ।

अनादि परंपरा से जो प्रवर्त्तमान है वह यथाप्रवृत्ति है, तथा कर्म क्षय जिसके द्वारा किया जाता है वह करण है, यह करण जीवका परिणामस्वरूप ही है । यथाप्रवृत्तिरूप जो करण है उसका नाम यथाप्रवृत्तिकरण है । यह इसका निरुक्त-अर्थ है । इसी प्रकार आगे भी करण शब्द के साथ कर्मधारय समास का संबंध कर लेना चाहिये । इस प्रकार अनादि कालसे कर्मक्षय करनेमें प्रवृत्त जीवका परिणामविशेष ही यथाप्रवृत्तिकरण है, यही इसका फलितार्थ है । ये तीन करण भव्यों के होते हैं । अभव्यों के सिर्फ प्रथम ही करण होता है, अन्तके दो नहीं होते।

यथाप्रवृत्तिकरणरूप परिणाम जीवके होता ही रहता है । इसके द्वारा जीव उदयमें आये हुए ज्ञानावरणीयादिक आठ कर्मोंकी प्रकृतियों का क्षय करता रहता है । इस लिये इस परिणामके कर्मक्षय का कारण होने से जीव इसके बल पर यथासंभव कर्मस्थितिका क्षय करता हुआ घन-कठिनतर रागद्वेषरूपी ग्रन्थिके समीप तक पहुँच जाता है । यह ग्रन्थि

અનાદિ પરંપરાથી જે પ્રવર્ત્તમાન છે તે યથાપ્રવૃત્તિ છે, અને કર્મક્ષય જેના દ્વારા કરવામાં આવે છે તે કરણ છે. આ કરણ જીવના પરિણામસ્વરૂપ છે યથાપ્રવૃત્તિરૂપ જે કરણ છે તેનું નામ યથાપ્રવૃત્તિકરણ છે. તે એનો નિરૂક્ત-અર્થ છે. આ પ્રકારે આગળ પણ કરણ-શબ્દની સાથે કર્મધારયસમાસનો સંબંધ કરી લેવો જોઈએ. આ પ્રકારે અનાદિકાળથી કર્મક્ષય કરવામાં પ્રવૃત્ત જીવનું પરિણામ વિશેષ જ યથાપ્રવૃત્તિકરણ છે, તે તેનું ફલિતાર્થ છે એ ત્રણ કરણ ભવ્યોને થાય છે. અભવ્યોને ફક્ત પ્રથમ જ કરણ થાય છે, બાકીનાં બે નથી થતાં.

યથાપ્રવૃત્તિકરણરૂપ પરિણામ જીવને થતાં જ રહે છે એના દ્વારા જીવ ઉદયમાં આવેલા જ્ઞાનાવરણીયાદિક આઠ કર્મોની પ્રકૃતિયોનો ક્ષય કરતો રહે છે. તેથી આ પરિણામ કર્મક્ષયનું કારણ હોવાથી આ જીવ તેના બલ ઉપર યથાસંભવ કર્મસ્થિતિનો ક્ષય કરતાં ઘન-કઠિનતર રાગદ્વેષરૂપી ગ્રન્થિની સમીપ સુધી પહોંચી જાય છે. આ ગ્રન્થિ એટલી ગાઢ-પ્રબલતમ છે કે જેનું આ

अध्यवसायस्य सर्वदैव भावादुदयप्राप्तानां ज्ञानावरणीयाद्यष्टकर्मप्रकृतीनां क्षपणेन कर्मक्षयकारणतया यथाप्रवृत्तिकरणेन यथासंभवं कर्मस्थितिं क्षपयतो जीवस्य घनराग-द्वेषपरिणामरूपो ग्रन्थिरवतिष्ठते, यथाप्रवृत्तिकरणस्य मन्दविशुद्धिपरिणामरूपत्वेन ग्रन्थिभेदनसामर्थ्याभावात्।

ननु तर्हि यथाप्रवृत्तिकरणेन कियती कर्मस्थितिः क्षपिता भवति? उच्यते— यथा गिरिनद्यां पाषाणखण्डानि तद्वेगतो घर्षणादिना वर्तुलाकाराणि जायन्ते, एवमनादिकालतः पूर्वपूर्वकर्मवशाच्चतुर्गतिकसंसारसागरं प्राप्तस्यानन्तदुःखानि सहमानस्य जीवस्य परिणामस्वभावतयाऽनाभोगनिर्वर्तितेन यथाप्रवृत्तिकरणाख्येन विशुद्धिपरिणामेन दीर्घतराऽपि कर्मस्थितिस्तथा क्षपिता भवति यथाऽऽयुर्वर्जानां ज्ञानावरणीयादिकर्मणां सर्वेषां स्थितिः पल्योपमासंख्यातभागन्यूनैककोटीकोटी-सागरोपमप्रमाणाऽवशेषा तिष्ठति।

इतनी गाढ-प्रबलतम होती है कि जिसका इस परिणामके द्वारा भेदन करना सर्वथा अशक्य कार्य है। जीवको इस ग्रन्थिके देश तक पहुँचाना ही इस परिणाम का काम है। ग्रन्थिका भेदन इसके द्वारा इस लिये नहीं होता है कि यह परिणाम मन्दविशुद्धिवाला है।

शङ्का—आपका कथन ठीक है; परन्तु अभी तक यह मालूम नहीं हो रहा है कि इस परिणामके द्वारा कितनी कर्मस्थितिका क्षय होता है।

उत्तर—जैसे पर्वतीय नदी में पाषाणखण्ड नदीके प्रबल प्रवाह के वेगसे लुढ़कते हुए और इधर उधर से टकराते हुए स्वाभाविक रीतिसे गोलमोल हो जाता है, उसी प्रकार अनादिकालसे कर्मकी अनवच्छिन्न संतति (अटूट परंपरा) के वशीभूत रह कर चतुर्गतिस्वरूप इस संसार महासागरमें गोते

પરિણામદ્વારા ભેદન કરવું સર્વથા અશક્ય કાર્ય છે. જીવને આ ગ્રન્થિના દેશ સુધી પહોંચાડવું જ આ પરિણામનું કામ છે. ગ્રન્થિનું ભેદન એના દ્વારા તે માટે નથી થતું કે આ પરિણામ મન્દવિશુદ્ધિવાળું છે.

શંકા—આપનું કથન ઠીક છે; પરંતુ હજુ સુધી એ માલૂમ નથી કે આ પરિણામદ્વારા કેટલી કર્મસ્થિતિનો ક્ષય થાય છે

ઉત્તર—જેમ પર્વતીય નદીમાં પાષાણખંડ એના પ્રબલ પ્રવાહના વેગથી આમ-તેમ અથડાઈને ઘસાતો ઘસાતો સ્વાભાવિક રીતિથી ગોળમોલ થઈ જાય છે, તે જ પ્રકારે અનાદિ કાળથી કર્મની અનવચ્છિન્નસંતતિ-અતુટપરંપરાને વશીભૂત રહીને ચતુર્ગતિસ્વરૂપ આ સંસારમહાસાગરમાં ગોથા ખાતા અને અનંત દુઃખોની પરંપરાને સહન કરતા એ જીવને સ્વાભાવિક રીતિથી-વિના કોઈ

खाते, तथा अनंत दुःखों की परंपराको सहते हुए इस जीवके स्वाभाविक रीति से-विना किसी प्रयत्न के-विशुद्ध यथाप्रवृत्तिकरण नामका परिणाम प्रगट होता है, जिसके द्वारा यह जीव दीर्घतर कर्मस्थिति को भी इतनी खपा देता है कि जिससे आयुकर्म को छोड़ कर शेष ज्ञानावरणीयादिक समस्त सात कर्मोंकी स्थिति पल्य के असंख्यातवें भाग कम एक कोटाकोटीसागरप्रमाण अवशिष्ट रह जाती है।

विशेषार्थ—जैसे पर्वतप्रदेशमें बहनेवाली नदीका पत्थर उसकी प्रबल धारासे आहत हो इधर-उधर टकरा कर स्वाभाविक रीतिसे गोलमोल हो जाया करता है, उसी प्रकार अनादिकालसे कर्मके वशीभूत होकर संसाररूपी समुद्रमें पड़ा हुआ यह जीवरूपी पाषाणखण्ड भी चतुर्गतियों के दुःखरूपी प्रबलतम प्रवाहों से रात-दिन टकरा२ कर गोलमोलस्वरूप यथाप्रवृत्तिकरणरूप-अवस्थासंपन्न हो जाता है। जिस प्रकार नदीका पाषाण विना किसी प्रयत्न एवं अनाभोगरूपसे (स्वाभाविकरूपसे) गोल हो जाया करता है उसी प्रकार यह करण भी विना किसी प्रयत्न से-स्वाभाविकरूप से ही जीव को प्राप्त हो जाया करता है। यह जीव का विशुद्ध परिणाम है। इसके प्रभावसे उसके आयुकर्म को छोड़ कर अवशिष्ट (शेष) सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति घट कर पल्यके असं-

---

પ્રયત્ને વિશુદ્ધ યથાપ્રવૃત્તિકરણ નામનું પરિણામ પ્રાદુર્ભૂત (પ્રગટ) થાય છે. જેના દ્વારા આ જીવ દીર્ઘતર કર્મસ્થિતિને પણ એટલી ખપાવી દે છે કે જેથી આયુકર્મને છોડીને શેષ જ્ઞાનાવરણીયાદિક સમસ્ત સાત કર્મોની સ્થિતિ પલ્યના અસંખ્યાતમાં ભાગ હીન એકકોટાકોટિસાગરપ્રમાણ અવશિષ્ટ રહી જાય છે.

વિશેષાર્થ—જેમ પર્વતપ્રદેશમા વહેવાવાળી નદીનો પત્થર એની પ્રબલ ધારાથી અહીં-તહીં અથડાઈ કુટાઈને સ્વાભાવિક રીતિથી ગોળમોળ થઈ જાય છે, તે પ્રકારે અનાદિ કાળથી કર્મના વશીભૂત થઇને સંસારરૂપી સમુદ્રમાં પડી રહેલા આ જીવરૂપી પાષાણખંડ પણ ચતુર્ગતિના દુઃખરૂપ પ્રબલ પ્રવાહથી રાતદિન અથડાઇને ગોળમોલસ્વરૂપ યથાપ્રવૃત્તિકરણરૂપ-અવસ્થાસંપન્ન થઈ જાય છે. જેમ નદીના પાષાણ, કોઇ પ્રયત્ન વિના અને અનાભોગરૂપથી (સ્વાભાવિક રૂપથી) ગોળ થયા કરે છે તે પ્રકારે આ કરણ પણ કોઈ પ્રયત્ન વિના સ્વાભાવિક રૂપમાં જ જીવને પ્રાપ્ત થઇ જાય છે આ જીવનો વિશુદ્ધ પરિણામ છે. આના પ્રભાવથી એ જીવના આયુકર્મને છોડીને અવશિષ્ટ (શેષ) સાત કર્મોની

अत्रान्तरे च जीवस्य कर्मजनितो घनरागद्वेषपरिणामरूपः कर्कशनिविडचिररूढगूढवक्रग्रन्थिवद् दुर्भेद्यः कर्मस्थितिविशेषो ग्रन्थिर्भवति ।

अभव्योऽपि जीवः खलु यथाप्रवृत्तिकरणेन प्रागुक्तकर्मणां दीर्घतरस्थितिं ह्रासयन्नेककोटीकोटीसागरोपमप्रमाणां कर्तुमर्हति, परन्तु ग्रन्थिभेदनाय न समर्थो

ख्यातवें भाग कम एककोटाकोटिसागरप्रमाण (अन्तःकोटाकोटिसागरप्रमाण) रह जाती है ।

इसके बाद जीवके कर्मजनित-कर्मों से उत्पन्न की गई-और सघन कठिनतर रागद्वेष परिणामवाली कर्मों की विशेषस्थितिरूप एक ग्रन्थि होती है, जो अत्यन्त कठोर, सघन और पुरानी गूढ गांठके समान दुर्भेद्य होती है। जैसे-बहुत पुरानी कठोर गांठका-कि जो चिकनाई आदिके संबंधसे अत्यन्त चिपट गई है और जिसका फंदा भी नजर नहीं आ रहा है, एवं जो टेढी मेढी लगी हुई है; उसका खोलना दुःशक्य है, उसी प्रकार की यह कर्मस्थिति भी एक दुर्भेद्य गांठ है ।

अभव्य जीव भी इसी यथाप्रवृत्तिकरण द्वारा आयुकर्म सिवाय अन्य सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति को खपा कर एक कोटाकोटी सागर प्रमाण कर देता है; परन्तु ग्रन्थिभेदन नहीं कर सकता । इसके पश्चात् कोई ही महात्मा भव्य जीव यथाप्रवृत्तिकरण से भी अधिक विशुद्धिसंपन्न अपूर्व करण को प्राप्त करता है । इसके द्वारा वह घन रागद्वेषरूप अतिदृढ

ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ ઘટીને પલ્યના અસંખ્યાતમા ભાગ હીન એક કોટાકોટીસાગરપ્રમાણ (અન્તઃકોટાકોટિસાગરપ્રમાણ) રહી જાય છે.

ત્યાર બાદ જીવની કર્મજનિત-કર્મોથી ઉત્પન્ન થયેલી-અને સઘન કઠિનતર રાગદ્વેષપરિણામવાળી કર્મોની વિશેષ સ્થિતિરૂપ એક ગ્રન્થિ હોય છે, જે અત્યન્ત કઠોર, સઘન અને જુની ગૂઢ-ગાંઠની સમાન દુર્ભેદ્ય હોય છે. જેમ ઘણી જુની કઠણ ગાંઠનું, કે જે ચિકણાપણા વિગેરેના સંબંધથી અત્યન્ત ચોંટી ગયેલ છે, અને જેનો સાંધો પણ નજર નથી આવતો, અને જે વાંકીચુકી લાગેલી છે. એનું તોડવું જેમ અશક્ય હોય છે. તે જ પ્રકારની આ કર્મસ્થિતિ પણ એક દુર્ભેદ્ય ગાંઠ છે

અભવ્ય જીવ પણ આ યથાપ્રવૃત્તિકરણદ્વારા આયુકર્મ સિવાય અન્ય સાત કર્મોની ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિને ખપાવીને એકકોટાકોટીસાગરપ્રમાણ કરી દે છે. પરંતુ ગ્રન્થિભેદન કરી શકતા નથી. એના પશ્ચાત્ કોઈ પણ મહાત્મા ભવ્ય જીવ યથાપ્રવૃત્તિકરણથી પણ અધિકવિશુદ્ધિસંપન્ન અપૂર્વ-કરણને પ્રાપ્ત કરે છે. એના દ્વારા તે ઘન-રાગદ્વેષરૂપ અતિદૃઢ ગ્રન્થિને સર્વ પ્રકારથી છેદી

भवति। एतदनन्तरं कश्चिदेव महात्मा भव्यजीवस्तु यथाप्रवृत्तिकरणाख्यपरिणामादप्यधिकविशुद्धिपरिणामं प्राप्तुमर्हति, स एवापूर्वकरणाख्यः परिणामः। तं प्राप्यासौ निशितकुठारधारयेव परमविशुद्ध्या घनरागद्वेषातिदृढसंस्काररूपं ग्रन्थिं सर्वथा छिनत्ति भिनत्ति च।

यत् पूर्वं न जातं तदपूर्वम्, अपूर्वं च तत् करणं चेत्यपूर्वकरणम्। अयं परिणामः सकृदेव भवति, न तु पुनः पुनरिति। यथाप्रवृत्तिकरणं त्वभव्यानामप्यनन्तशः प्रादुर्भवति। तस्मादभव्या अपि यथाप्रवृत्तिकरणेन कर्म क्षपयित्वा ग्रन्थिं यावदनन्तशः समागच्छन्ति।

अपूर्वकरणपरिणामेन ग्रन्थेः सर्वथा भेदने कृते सति तदपेक्षयाऽप्यधिकविशुद्धिपरिणामो भवति, स त्वनिवृत्तिकरणपरिणामः। तदव्यवहितोत्तरकाले जीवः सम्यक्त्वं नियमतः प्राप्नोति, न चासौ सम्यक्त्वमनवाप्य निवर्तते, तस्मादनिवृत्ति-

---

ग्रन्थिको सर्व प्रकार से छिन्न-भिन्न कर डालता है। यह परिणाम जीव को पहिले कभी भी प्राप्त नहीं हुआ इसी लिये इसकी अपूर्वकरण संज्ञा है। जो पहिले न हुआ हो वह अपूर्व है। अपूर्व जो करण वह अपूर्वकरण है। वह परिणाम जीवके लिये एकवार ही होता है, वारंवार नहीं। यथाप्रवृत्तिकरण तो अभव्यों के अनन्तबार भी हो जाता है, इस लिये वे इस के द्वारा कर्मों का क्षपण कर ग्रन्थिदेश तक अनंतवार आ जाते हैं।

अपूर्वकरण-परिणाम से ग्रन्थिका सर्वथा भेद होने पर इसके अनन्तर इस से भी अधिक विशुद्ध परिणाम उत्पन्न होता है, जिस का नाम अनिवृत्तिकरण है। इसके द्वारा व्यवधानरहित इसीके उत्तरकालमें (इसी समय) जीव नियमसे सम्यक्त्व की प्राप्ति कर लेता है।

નાંખે છે અને ભેદી નાંખે છે. આ પરિણામ જીવને પહેલાં કોઈ વખત પણ પ્રાપ્ત નથી થયું તેથી એની અપૂર્વકરણ સંજ્ઞા છે જે પહેલા નથી થયું તે અપૂર્વ છે. અપૂર્વ જે કરણ તે અપૂર્વકરણ છે આ પરિણામ જીવને માટે એક વાર જ થાય છે, વારવાર નહિ. યથાપ્રવૃત્તિકરણ તો અભવ્યોને અનંત વાર પણ થાય છે. આથી તે એના દ્વારા કર્મોનુ ક્ષપણ કરીને ગ્રન્થિદેશ સુધી અનંતીવાર આવે છે.

અપૂર્વકરણ-પરિણામથી ગ્રન્થિનો સર્વથા ભેદ થવાથી એના પછી આનાથી પણ અધિક વિશુદ્ધ પરિણામ ઉત્પન્ન થાય છે, જેનુ નામ અનિવૃત્તિકરણ છે. એના દ્વારા વ્યવધાનરહિત એના ઉત્તરકાળમા (એ જ વખતે) જીવ નિયમથી સમ્યકત્વની પ્રાપ્તિ કરી લે છે આ પરિણામ સમ્યકત્વપ્રાપ્તિ કરાવ્યા

करणमित्युच्यते। तस्य स्थितिकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः, तदानीं जीवस्य वीर्यसमुल्लासोऽपूर्वकरणापेक्षया परिवर्धते। तस्यान्तर्मुहूर्तप्रमाणायां स्थितौ संख्येयेषु भागेषु गतेषु सत्स्वेकस्मिंश्च संख्येयतमे भागे शेषे तिष्ठति सति मिथ्यात्वप्रदेशवेद्यदलिकाभावकरणरूपम् अन्तरकरणं प्रवर्तते। अन्तरकरणाख्यस्य जीवपरिणामस्यापि स्थितिकालोऽन्तर्मुहूर्तप्रमाणः, परंत्वन्तर्मुहूर्तस्यासंख्यातभेदसद्भावेनानिवृत्तिकरणकालस्वरूपान्तर्मुहूर्तापेक्षया तदन्तिमभागवर्ती न्यूनोऽयमन्तरकरणकालोऽन्तर्मुहूर्तमिति।

अनिवृत्तिकरणस्यान्तिमे भागेऽन्तरकरणस्य कार्यं प्रारभ्यते, तद्यथा—अपूर्वकरणानिवृत्तिकरणलक्षणविशुद्धिपरिणामजनितसामर्थ्यसमन्वितो भव्यस्तदव्यवहितोत्त-

---

यह परिणाम सम्यक्त्व प्राप्त कराये विना छूटता ही नहीं है, इसी लिये इसका नाम "अनिवृत्तिकरण" पड़ा है। इसकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है, जीवके अपूर्वकरणकी अपेक्षा इस समय अधिक मात्रामें वीर्योल्लास बढ़ता है। अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थिति में से संख्यात भाग घटते २ जब उसका अन्तिम संख्यातवां भाग अवशिष्ट रह जाता है उस समय अन्तरकरण होता है। यह मिथ्यात्व के प्रदेशोंके वेदन करने योग्य दलियों के अभाव (क्षय) का कारण होता है। इसकी भी स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है। यह अन्तर्मुहूर्त जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। अनिवृत्तिकरण के कालका अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। अन्तर्मुहूर्तके भी असंख्यात भेद हैं।

अनिवृत्तिकरण के अंतिम भागमें अन्तःकरणका कार्य प्रारम्भ होता है। मिथ्यात्वके प्रदेशों के वेदन करने योग्य दलियों का अभाव करना ही अन्तरकरणका कार्य है। वह कार्य इसके द्वारा जीव जिस प्रकार से करता

વગર છુટતો જ નથી, તેથી તેનું નામ "અનિવૃત્તિકરણ" પડ્યું છે, એની સ્થિતિ અંતર્મુહૂર્તની છે જીવને અપૂર્વકરણની અપેક્ષા આ સમયે અધિક માત્રામાં વીર્યોલ્લાસ વધે છે અન્તર્મુહૂર્તપ્રમાણ સ્થિતિમાંથી સંખ્યાત ભાગ ઘટતાં ઘટતાં જ્યારે તેનો અંતિમ સંખ્યાતમો ભાગ અવશિષ્ટ રહી જાય છે તે વખતે અન્તરકરણ થાય છે આ મિથ્યાત્વના પ્રદેશોના વેદન કરવા યોગ્ય દલિયોના અભાવ (ક્ષય) નું કારણ થાય છે એની પણ સ્થિતિ અન્તર્મુહૂર્તની છે આ અન્તર્મુહૂર્ત જઘન્ય અન્તર્મુહૂર્ત છે અનિવૃત્તિકરણના કાળનું અંતર્મુહૂર્ત ઉત્કૃષ્ટ અંતર્મુહૂર્ત છે અંતર્મુહૂર્તના પણ અસંખ્યાત ભેદ છે

અનિવૃત્તિકરણના અંતિમ ભાગમાં અન્તઃકરણનું કાર્ય પ્રારંભ થાય છે. મિથ્યાત્વના પ્રદેશોના વેદન કરવા યોગ્ય દલિયોનો અભાવ કરવો, એ જ અંતર

रान्तर्मुहूर्तकाले उदेष्यमाणं मिथ्यात्वदलिकं द्विधा विधाय तत्रैकं दलिकमनिवृत्तिकरणान्तिमसमयपर्यन्ते उदयमानमिथ्यात्वदलिकेषु निक्षिपति, द्वितीयं दलिकं त्वनिवृत्तिकरणाव्यवहितोत्तरकालिकान्तर्मुहूर्तसमाप्त्यनन्तरकाले उदेष्यमाणैर्मिथ्यात्वदलिकैः सह संयोजयति। तथा चानिवृत्तिकरणकालाव्यवहितोत्तरकाले प्रथमोऽन्तर्मुहूर्तकाल एकस्तादृशः संजायते यत्र मिथ्यात्वकर्मणां किंचिदपि दलिकं नैव तिष्ठति। तथाचानेनान्तरकरणेन भव्यस्तस्मिन्नन्तर्मुहूर्ते उदययोग्यमिथ्यात्वदलिक-

है वह कहते हैं—जिसके अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दो विशुद्ध परिणामों से विशिष्ट शक्तिका विकास हुआ है ऐसा भव्य जीव व्यवधानरहित अनिवृत्तिकरण के उत्तर अन्तर्मुहूर्त-समय में आगामी कालमें उदय आने योग्य मिथ्यात्व दलियों के दो टुकडे-भाग करता है। उसमें एक टुकडे को अनिवृत्तिकरणके अन्तिमसमयपर्यन्त उदयागत मिथ्यात्वके दलियों में प्रक्षिप्त करता है, और दूसरे भागको अनिवृत्तिकरण के अव्यवहित उत्तरकालीन अन्तर्मुहूर्त की समाप्तिके अनन्तर (अन्तररहित) कालमें उदय आने योग्य मिथ्यात्व के दलियों के साथ संयुक्त करता है। इस तरह अनिवृत्तिकरण कालके व्यवधानरहित उत्तर कालमें प्रथम अन्तर्मुहूर्तकाल एक ऐसा काल होता है कि जिसमें मिथ्यात्व कर्मका एक भी दलिया शेष नहीं रहता। इस अन्तरकरण परिणाम के द्वारा भव्य जीव उस अन्तर्मुहूर्तकाल में उदय योग्य मिथ्यात्व के दलियों के प्रथम स्थितिरूप एक भागको उसके पूर्वकालवर्त्ती जो अ-

કરણનું કાર્ય છે, આ કાર્ય એના દ્વારા જીવ જે પ્રકારથી કરે છે તે કહે છે-જેને અપૂર્વકરણ અને અનિવૃત્તિકરણ, આ બે વિશુદ્ધ પરિણામોથી વિશિષ્ટ શક્તિનો વિકાસ થયો છે આવા ભવ્ય જીવ વ્યવધાનરહિત અનિવૃત્તિકરણની પછી અન્તર્મુહૂર્ત સમયમા આગામી કાળમા ઉદય આવવા યોગ્ય મિથ્યાત્વના દલિયોના બે ટુકડા-ભાગ કરે છે. એમાં એક ટુકડાને અનિવૃત્તિકરણના અંતિમ સમયના અન્તમાં ઉદયાગત મિથ્યાત્વના દલિયોમા પ્રક્ષિપ્ત કરે છે અને બીજા ભાગને અનિવૃત્તિકરણના અવ્યવહિત ઉત્તરકાલીન અન્તર્મુહૂર્તની સમાપ્તિના અનન્તર (અન્તરરહિત) કાળમાં ઉદય આવવા યોગ્ય મિથ્યાત્વના દલિયોની સાથે સંયુક્ત કરે છે. આ રીતે અનિવૃત્તિકરણકાળના વ્યવધાનરહિત ઉત્તર કાળમાં પ્રથમ અન્તર્મુહૂર્તકાળ એક એવો કાળ થાય છે કે જેમા મિથ્યાત્વ કર્મનો એક પણ દલિયું શેષ નથી રહેતું. આ અન્તરકરણ-પરિણામદ્વારા ભવ્ય જીવ આ અન્તર્મુહૂર્તકાળમાં ઉદયયોગ્ય મિથ્યાત્વના દલિયોના પ્રથમ સ્થિતિરૂપ એક ભાગને એનો પૂર્વકાળવર્ત્તી જે અનિવૃત્તિકરણનો

स्यैकभागं प्रथमस्थितिरूपं तत्पूर्वकालवर्त्यनिवृत्तिकरणस्य चरमभागे उदयमानमिथ्यात्वदलिकैः सह संयोज्य स्वोदयकालात् प्रागेवोदयं प्रापयति, तेन तस्य मिथ्यात्वदलिकस्य स्वोदयकाले उदयं प्रतिरुणद्धि। द्वितीयभागस्यापि द्वितीयस्थितिनाम्नस्तस्मादन्तर्मुहूर्तादव्यवहितोत्तरकाले उदेष्यमाणतया स्वोदयकाले उदयं प्रतिरोधयति; तदेवमनिवृत्तिकरणानन्तरोदययोग्यदलिकानां व्यवधानकरणादन्तरकरणमित्युच्यते।

निवृत्तिकरण का अन्तिम भाग है उसमें उदयमान मिथ्यात्व के दलियों के साथ संयुक्त करके उसे अपने निज उदयकालसे पहिले ही उदय में ले आता है, इस से वह भव्य जीव उस मिथ्यात्व के दलिये के उदय को उसके अपने उदयकालमें रोक देता है। तथा दूसरी स्थितिरूप मिथ्यात्वका जो द्वितीय भाग है, जो उस अन्तर्मुहूर्त से व्यवधानरहित उत्तर कालमें उदय में आने योग्य है; उसके उदय को उसके अपने उदयकाल में रोक देना है। इस प्रकार अनिवृत्तिकरण के अनन्तर उदययोग्य मिथ्यात्व के दलियों के उदय में व्यवधान करनेवाला होने से यह 'अन्तरकरण' कहलाता है। यह करण मिथ्यात्वके दलियों को अगले और पिछले भागमें मिला देना है। अनिवृत्तिकरण का अंतिम समय पूर्ण होने पर अन्तर्मुहूर्त तक मिथ्यात्वके दलियोंका किसी भी तरह से उदय नहीं हो सकता। उस समय जिन मिथ्यात्वके दलियोंका उदय संभव था, उनमेंसे कितनेक दलियोंमें अपने उदयकाल से पहिले ही उदयमें आने की योग्यता आती है, और कितनेक दलियोंमें अपने उदयकालसे

અંતિમ ભાગ છે તેમાં ઉદયમાન મિથ્યાત્વના દલિયોની સાથે સંયુક્ત કરીને તેને પોતાના નિજ ઉદયકાળથી પહેલા જ ઉદયમા લઈ આવે છે, આ કારણે તે ભવ્ય જીવ તે મિથ્યાત્વના દલિયાના ઉદયને તેના પોતાના ઉદયકાળમાં રોકી દે છે, અને બીજી સ્થિતિરૂપ મિથ્યાત્વનો જે બીજો ભાગ છે જે તે અન્તર્મુહૂર્તથી વ્યવધાનરહિત ઉત્તર કાળમાં ઉદયમાં આવવા યોગ્ય છે તેના ઉદયને તેના પોતાના ઉદયકાળમા રોકી દે છે આ પ્રકારે અનિવૃત્તિકરણના અનન્તર ઉદયયોગ્ય મિથ્યાત્વના દલિયોના ઉદયમાં વ્યવધાન કરવાવાળા હોવાથી આ 'અન્તરકરણ' કહેવાય છે

આ કરણ મિથ્યાત્વના દલિયોને આગળ અને પાછળના ભાગમાં જોડી આપે છે, અને અનિવૃત્તિકરણનો અંતિમ સમય પૂર્ણ થતાં તેની પછી અંતર્મુહૂર્ત સુધી મિથ્યાત્વના દલિયોનો કોઇ પણ પ્રકારથી ઉદય થતો નથી. તે જે મિથ્યાત્વના દલિયોનો ઉદય સંભવ હતો, તેમાંથી કેટલાક દલિયોમાં પોતાના ઉદયકાળના પહેલાં જ ઉદયમાં આવવાની યોગ્યતા આવે છે, અને કેટલાક દલિયોમાં પોતાના

अनिवृत्तिकरणान्तिमसमये व्यतीते सति यावदन्तर्मुहूर्तं कथमपि मिथ्यात्वदलिकानामुदयो न भवति तदानीं येषां मिथ्यात्वदलिकानामुदयसंभवस्तेषु केषांचिद् दलिकानां तत्पूर्वकाले, केषांचित् तत्पश्चात्कालेऽन्तरकरणेनोदयार्हता संपाद्यते। अनिवृत्तिकरणस्य चरमसमयपर्यन्तं मिथ्यात्वदलिकानामुदयसद्भावेन तावत्कालपर्यन्तं जीवो मिथ्यात्वी वर्तते, परं त्वनिवृत्तिकरणकाले व्यतीते सति सपदि जीवेनौपशमिकसम्यक्त्वं प्राप्यते, तदानीं मिथ्यात्वमोहनीयकर्मणो विपाकतः प्रदेशतश्च सर्वथोदयाभावात्, अत एव जीवस्य स्वाभाविकः सम्यक्त्वपरिणामः प्रकटीभवति। इदं च सम्यक्त्वमौपशमिकमित्युच्यते। उक्तञ्च—

"जा गंठी ता पढमं, गंठिं समइच्छओ भवे बीयं।
अणियट्टीकरणं पुण, सम्मत्तपुरक्खडे जीवे" ॥ १ ॥

छाया–यावद्ग्रन्थिस्तावत्प्रथमं (करणं) ग्रन्थिं समतिक्रामतो (भिन्दानस्य) भवेद् द्वितीयम्। अनिवृत्तिकरणं पुनः सम्यक्त्वपुरस्कृते जीवे (भवति) ॥ १ ॥ इति।

पीछे उदयमें आनेकी योग्यता आती है। अनिवृत्तिकरण के चरम समय पर्यन्त मिथ्यात्व के दलियों का उदय होनेसे उतने समय तक जीव मिथ्यात्वी रहता है, परन्तु ज्योंही अनिवृत्तिकरण का काल समाप्त हो जाता है त्यों ही जीव झटिति औपशमिक–सम्यक्त्व को प्राप्त कर लेता है। इस समय मिथ्यात्वमोहनीय कर्म का न तो विपाकोदय ही रहता है और न प्रदेशोदय ही। सर्वप्रकार से उसके उदय का इस समय अभाव रहता है। इसी लिये जीव का नैसर्गिक औपशमिकसम्यक्त्वरूप परिणाम उद्भूत (प्रगट) हो जाता है। कहा भी है—

"जा गंठी ता पढमं, गंठिं समइच्छओ भवे बीयं।
अणियट्टी करणं पुण, सम्मत्तपुरक्खडे जीवे" ॥ १ ॥

ग्रन्थिदेश तक जीवको पहुंचा देना यह यथाप्रवृत्तिकरण (प्रथम

ઉદયકાળની પછી ઉદયમા આવવાની યોગ્યતા આવે છે અનિવૃત્તિકરણના ચરમ સમયના અંતિમભાગમા મિથ્યાત્વના દલિયોનો ઉદય હોવાથી એટલા સમય સુધી જીવ મિથ્યાત્વી રહે છે, પરંતુ જ્યારે અનિવૃત્તિકરણનો કાળ સમાપ્ત થઈ જાય છે ત્યારે જ જીવ ઝટિતિ ઔપશમિક સમ્યક્ત્વને પ્રાપ્ત કરી લે છે આ સમયે મિથ્યાત્વમોહનીય કર્મના નથી વિપાકોદય જ રહેતા અગર નથી પ્રદેશોદય જ. સર્વ પ્રકારથી તેના ઉદયનો આ વખત અભાવ રહે છે તેથી જીવનું નૈસર્ગિક ઔપશમિકસમ્યક્ત્વરૂપ પરિણામ પ્રગટ થઈ જાય છે. કહ્યું છે—

"जा गंठी ता पढमं, गंठिं समइच्छओ भवे बीयं।
अणियट्टीकरणं पुण, सम्मत्तपुरक्खडे जीवे" ॥ १ ॥

अन्यच्च—

" काऊण गंठिभेयं, सहसंमइयाए पाणिणो कोइ ।
परवागरणा अन्ने, लहंति सम्मत्तवररयणं " ॥ २ ॥

सम्यक्त्वाधिकारी जीवो द्विविधः—(१) मन्दविशुद्धिपरिणामी, (२) तीव्रविशुद्धिपरिणामी चेति । तत्र–

(१) मन्दविशुद्धिपरिणामी भव्योऽपूर्वकरणमारूढो ग्रन्थिभेदं विधायाऽपि तीव्राध्यवसायाभावान्न मिथ्यात्वं त्रिपुञ्जीकर्तुं शक्नोति । ततोऽनिवृत्तिकरणं प्राप्या-

---

करण) का, और उसका भेदन करना–अपूर्वकरण (द्वितीय करण)का, और सम्यक्त्वके सन्मुख जीवको कर देना यह अनिवृत्तिकरण (तृतीय करण) का कार्य है ॥ १ ॥

फिर भी—

" काऊण गंठिभेयं, सहसंमइयाए पाणिणो केइ ।
परवागरणा अन्ने, लहंति सम्मत्तवररयणं " ॥ २ ॥

ग्रन्थिभेद करके कितनेक प्राणी निसर्ग–स्वभाव–जातिस्मरण आदि से सम्यक्त्व को प्राप्त करते हैं और कितनेक परके उपदेशसे पाते हैं।२।

सम्यग्दृष्टि (सम्यग्दर्शनसहित जीव) दो प्रकार के होते हैं– (१) मन्दविशुद्धिपरिणामवाले और (२) तीव्रविशुद्धिपरिणामवाले ।

इनमें से–(१) मन्दविशुद्धिपरिणामवाला भव्य जीव अपूर्वकरण परिणाम के अवलम्बन से ग्रन्थि का भेदन करके भी तीव्र अध्यवसाय के

ग्रन्थिदेश सुधी જીવને પહોંચાડવો એ યથાપ્રવૃત્તિકરણ (પ્રથમ કરણ)નું અને એનું ભેદન કરવું અપૂર્વકરણ (બીજા કરણ) નું, અને સમ્યક્ત્વની સન્મુખ જીવને કરવો, એ અનિવૃત્તિકરણ (ત્રીજા કરણ)નુ કાર્ય છે ॥ ૧ ॥ વળીઃ—

"काऊण गंठिभेयं, सहसंमइयाए पाणिणो केइ ।
परवागरणा अन्ने, लहंति सम्मत्तवररयणं " ॥ २ ॥

ગ્રન્થિભેદ કરીને કેટલાંક પ્રાણી નિસર્ગ–સ્વભાવ–જાતિસ્મરણ આદિથી સમ્યક્ત્વને પ્રાપ્ત કરે છે, અને કેટલાક બીજાના ઉપદેશથી મેળવે છે ॥ ૨ ।

સમ્યગ્દૃષ્ટિ (સમ્યગ્દર્શનસહિત જીવ) બે પ્રકારના હોય છે. (૧) મન્દ વિશુદ્ધિપરિણામવાળાં અને (૨) તીવ્રવિશુદ્ધિપરિણામવાળાં.

આમાંથી (૧) મન્દવિશુદ્ધિપરિણામવાળાં ભવ્ય જીવ અપૂર્વકરણ પરિણામના અવલંબનથી ગ્રન્થિનું ભેદન કરીને પણ તીવ્ર અધ્યવસાયનો અભાવ હોવાથી

अनिवृत्तिकरणान्तिमसमये व्यतीते सति यावदन्तर्मुहूर्तं कथमपि मिथ्यात्वदलिकानामुदयो न भवति तदानीं शेषां मिथ्यात्वदलिकानामुदयसंभवस्तेषु केषांचिद् दलिकानां तत्पूर्वकाले, केषांचित् तत्पश्चात्कालेऽन्तरकरणेनोदयार्हता संपाद्यते। अनिवृत्तिकरणस्य चरमसमयपर्यन्तं मिथ्यात्वदलिकानामुदयसद्भावेन तावत्कालपर्यन्तं जीवो मिथ्यात्वी वर्तते, परं त्वनिवृत्तिकरणकाले व्यतीते सति सपदि जीवेनौपशमिकसम्यक्त्वं प्राप्यते, तदानीं मिथ्यात्वमोहनीयकर्मणो विपाकतः प्रदेशतश्च सर्वथोदयाभावात्, अत एव जीवस्य स्वाभाविकः सम्यक्त्वपरिणामः प्रकटीभवति। इदं च सम्यक्त्वमौपशमिकमित्युच्यते। उक्तश्च—

"जा गंठी ता पढमं, गंठि समइच्छओ भवे बीयं।
अणियट्टीकरणं पुण, सम्मत्तपुरक्खडे जीवे" ॥ १ ॥

छाया—यावद्ग्रन्थिस्तावत्प्रथमं (करणं) ग्रन्थि समतिक्रामतो (भिन्दानस्य) भवेद् द्वितीयम्। अनिवृत्तिकरणं पुनः सम्यक्त्वपुरस्कृते जीवे (भवति) ॥ १ ॥ इति।

पीछे उदयमें आनेकी योग्यता आती है। अनिवृत्तिकरण के चरम समय पर्यन्त मिथ्यात्व के दलियों का उदय होनेसे उतने समय तक जीव मिथ्यात्वी रहता है, परन्तु ज्योंही अनिवृत्तिकरण का काल समाप्त हो जाता है त्यों ही जीव झटिति औपशमिक-सम्यक्त्व को प्राप्त कर लेता है। इस समय मिथ्यात्वमोहनीय कर्म का न तो विपाकोदय ही रहता है और न प्रदेशोदय ही। सर्वप्रकार से उसके उदय का इस समय अभाव रहता है। इसी लिये जीव का नैसर्गिक औपशमिकसम्यक्त्वरूप परिणाम उद्भूत (प्रगट) हो जाता है। कहा भी है—

"जा गंठी ता पढमं, गंठिं समइच्छओ भवे बीयं।
अणियट्टी करणं पुण, सम्मत्तपुरक्खडे जीवे" ॥१॥

ग्रन्थिदेश तक जीवको पहुंचा देना यह यथाप्रवृत्तिकरण (प्रथम

ઉદયકાળની પછી ઉદયમાં આવવાની યોગ્યતા આવે છે. અનિવૃત્તિકરણના ચરમ સમયના અંતિમભાગમા મિથ્યાત્વના દલિયોનો ઉદય હોવાથી એટલા સમય સુધી જીવ મિથ્યાત્વી રહે છે, પરંતુ જ્યારે અનિવૃત્તિકરણનો કાળ સમાપ્ત થઈ જાય છે ત્યારે જ જીવ ઝટિતિ ઔપશમિક સમ્યકૃત્વને પ્રાપ્ત કરી લે છે. આ સમયે મિથ્યાત્વમોહનીય કર્મના નથી વિપાકોદય જ રહેતા અગર નથી પ્રદેશોદય જ. સર્વ પ્રકારથી તેના ઉદયનો આ વખત અભાવ રહે છે તેથી જીવનું નૈસર્ગિક ઔપશમિકસમ્યકૃત્વરૂપ પરિણામ પ્રગટ થઈ જાય છે કહ્યું છે.—

"जा गंठी ता पढमं, गंठि समइच्छओ भवे बीयं।
अणियट्टीकरणं पुण, सम्मत्तपुरक्खडे जीवे" ॥ १ ॥

अन्यच्च—

"काऊण गंठिभेयं, सहसंमइयाए पाणिणो केइ।
परवागरणा अन्ने, लहंति सम्मत्तवररयणं" ॥ २ ॥

सम्यक्त्वाधिकारी जीवो द्विविधः—(१) मन्दविशुद्धिपरिणामी, (२) तीव्रविशुद्धिपरिणामी चेति। तत्र-

(१) मन्दविशुद्धिपरिणामी भव्योऽपूर्वकरणमारूढो ग्रन्थिभेदं विधायाऽपि तीव्राध्यवसायाभावान्न मिथ्यात्वं त्रिपुञ्जीकर्तुं शक्नोति। ततोऽनिवृत्तिकरणं प्राप्या-

---

करण) का, और उसका भेदन करना-अपूर्वकरण (द्वितीय करण)का, और सम्यक्त्वके सन्मुख जीवको कर देना यह अनिवृत्तिकरण (तृतीय करण) का कार्य है ॥ १ ॥

फिर भी—

"काऊण गंठिभेयं, सहसंमइयाए पाणिणो केइ।
परवागरणा अन्ने, लहंति सम्मत्तवररयणं" ॥ २ ॥

ग्रन्थिभेद करके कितनेक प्राणी निसर्ग-स्वभाव-जातिस्मरण आदि से सम्यक्त्व को प्राप्त करते हैं और कितनेक परके उपदेशसे पाते हैं।२।

सम्यग्दृष्टि (सम्यग्दर्शनसहित जीव) दो प्रकार के होते हैं- (१) मन्दविशुद्धिपरिणामवाले और (२) तीव्रविशुद्धिपरिणामवाले।

इनमें से-(१) मन्दविशुद्धिपरिणामवाला भव्य जीव अपूर्वकरण परिणाम के अवलम्बन से ग्रन्थि का भेदन करके भी तीव्र अध्यवसाय के

ગ્રન્થિદેશ સુધી જીવને પહોંચાડવો એ યથાપ્રવૃત્તિકરણ (પ્રથમ કરણ)નું અને એનું ભેદન કરવું અપૂર્વકરણ (બીજા કરણ)નું, અને સમ્યક્ત્વની સન્મુખ જીવને કરવો, એ અનિવૃત્તિકરણ (ત્રીજા કરણ)નું કાર્ય છે ॥ ૧ ॥ વળીઃ—

"काऊण गंठिभेयं, सहसंमइयाए पाणिणो केइ।
परवागरणा अन्ने, लहंति सम्मत्तवररयणं" ॥ २ ॥

ગ્રન્થિભેદ કરીને કેટલાંક પ્રાણી નિસર્ગ-સ્વભાવ-જાતિસ્મરણ આદિથી સમ્યક્ત્વને પ્રાપ્ત કરે છે, અને કેટલાક બીજાના ઉપદેશથી મેળવે છે ॥ ૨ ।

સમ્યગ્દૃષ્ટિ (સમ્યગ્દર્શનસહિત જીવ) બે પ્રકારના હોય છે. (૧) મન્દ વિશુદ્ધિપરિણામવાળાં અને (૨) તીવ્રવિશુદ્ધિપરિણામવાળાં.

આમાંથી (૧) મન્દવિશુદ્ધિપરિણામવાળાં ભવ્ય જીવ અપૂર્વકરણ પરિણામના અવલંબનથી ગ્રન્થિનું ભેદન કરીને પણ તીવ્ર અધ્યવસાયનો અભાવ હોવાથી

न्तरकरणं कृत्वाऽनुपदोक्तरीत्या प्रथममौपशमिकसम्यक्त्वं लभते । अयमौपशमिकसम्यक्त्वमन्तर्मुहूर्तमनुभूय तदनन्तरमवश्यं सर्वप्रतिपातेन पुनर्मिथ्यात्वी भवति ।

(२) यस्तीव्रविशुद्धिपरिणामी भवति, स खल्वपूर्वकरणमारूढो मिथ्यात्वं त्रिपुञ्जीकृत्य तदनन्तरमनिवृत्तिकरणे प्रविष्टः सम्यक्त्वपुञ्जोदयात् प्रथमतया क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वमवाप्नोति, परन्तु कृतत्रिपुञ्जोऽयं प्रथमतयौपशमिकसम्यक्त्वं न लभते ।

औपशमिकसम्यक्त्वं द्विविधम्–ग्रन्थिभेदजन्यम् , उपशमश्रेणिभावि चेति । तत्र प्रथमं ग्रन्थिभेदजन्यं मन्दविशुद्धिपरिणामिनो जीवस्य भवति, द्वितीयं तूपशम-

---

अभाव होनेसे मिथ्यात्व के तीन पुंज करनेकी शक्ति से शून्य रहता है, इसलिये यह अनिवृत्तिकरण को प्राप्त हो कर अन्तरकरण करके उपर्युक्त रीतिसे सर्व प्रथम औपशमिक सम्यक्त्व को प्राप्त करता है । औपशमिक सम्यक्त्वकी अन्तर्मुहूर्त्तपरिमित स्थितिका अनुभव कर पश्चात् उसके पूर्ण होते ही अवश्य सर्वप्रतिपात से वह पुनः मिथ्यात्वी हो जाता है ।

(२) जो तीव्रविशुद्धपरिणामी होता है वह अपूर्वकरण में रह कर मिथ्यात्व के तीन पुंज करके पश्चात् अनिवृत्तिकरण में प्रविष्ट होकर सम्यक्त्वमोहनीयपुंजके उदयसे सर्वप्रथम क्षायोपशमिक सम्यक्त्वका लाभ करता है, उपशम सम्यक्त्वका नहीं ।

औपशमिक सम्यक्त्वके दो भेद हैं । (१) ग्रन्थिभेदजन्य और दूसरा (२) उपशमश्रेणिभावि । इनमें ग्रंथिभेदजन्य उपशमसम्यक्त्व, मन्दविशुद्धिपरिणामवाले जीव के होता है । दूसरा उपशमश्रेणिप्राप्त जीव

મિથ્યાત્વના ત્રણ પુંજ કરવાની શક્તિથી શૂન્ય રહે છે. તેથી આ અનિવૃત્તિકરણને પ્રાપ્ત કરીને અને અન્તરકરણ કરીને ઉપર બતાવેલી રીતિથી સર્વ પ્રથમ ઔપશમિક સમ્યક્ત્વને પ્રાપ્ત કરે છે. અન્તર્મુહૂર્તની ઔપશમિક સમ્યક્ત્વની સ્થિતિનો અનુભવ કરીને પછી તેના પૂર્ણ થતા જ અવશ્ય સર્વપ્રતિપાતથી તે પુનઃ મિથ્યાત્વી થઈ જાય છે.

જે (૨) તીવ્રવિશુદ્ધપરિણામી હોય છે તે અપૂર્વકરણમાં રહીને મિથ્યાત્વના ત્રણ પુંજ કરીને પછી અનિવૃત્તિકરણમાં પ્રવિષ્ટ થઈને સમ્યક્ત્વમોહનીય પુંજના ઉદયથી સર્વ પ્રથમ ક્ષાયોપશમિક સમ્યક્ત્વનો લાભ કરે છે, ઉપશમ-સમ્યક્ત્વનો નહિ.

ઔપશમિક-સમ્યક્ત્વના બે ભેદ છે (૧) એક ગ્રન્થિભેદજન્ય અને બીજો (૨) ઉપશમશ્રેણિભાવી. આમાં ગ્રન્થિભેદજન્ય ઉપશમસમ્યક્ત્વ મન્દવિશુદ્ધિ-

श्रेणिगतस्य। तत्रोपशमश्रेणिगतः सम्यक्त्वी देशप्रतिपातेन सर्वप्रतिपातेन वा प्रतिपतति–मिथ्यात्वमवाप्नोति। अस्मिन् सम्यक्त्वे प्राप्ते सति जीवस्य पदार्थानां स्फुटतया निश्शङ्कं प्रतीतिर्जन्मान्धस्य नेत्रलाभे सतीव जायते। सदौषधसेवनेन रोगे प्रतिनिवृत्ते व्याधितेनेव मिथ्यात्वमहारोगेऽपगते सत्यपूर्व आनन्दोऽनुभूयते जीवेन।

ग्रन्थिभेदजन्यमौपशमिकसम्यक्त्वमनादिमिथ्यात्विभव्यानां भवति। इदं च प्रथमोपशमसम्यक्त्वमित्यपि कथ्यते। उपशमश्रेणिभाविन औपशमिकसम्यक्त्वस्य

को होता है। उपशमश्रेणिप्राप्त जीव नियमसे वहां से सर्वदेशके प्रतिपात से अथवा एकदेशके प्रतिपात से नीचे के गुणस्थानको प्राप्त हो जाता है।

जैसे––जन्मान्धको नेत्रके लाभ होने पर पदार्थों की प्रतीति विना किसी सन्देह के स्फुटरूपसे होने लगती है उसी प्रकार इस सम्यक्त्व के प्राप्त होने पर जीवादि पदार्थोंकी प्रतीति भी विना किसी सन्देह के स्फुटरूप से जीवको होती है। तथा जिस प्रकार निर्दोष औषध के सेवन से रोगके चले जाने पर रोगी पुरुष अपूर्व आनन्दका अनुभव करता है, उसी प्रकार मिथ्यात्व महारोगके नष्ट होने पर इस समकित वाला जीव भी अपूर्व आनन्दका अनुभव करता है।

ग्रंथिभेदसे उत्पन्न सम्यक्त्व (औपशमिक सम्यक्त्व) अनादिमिथ्यादृष्टिभव्यजीवों के होता है। इस सम्यक्त्वका दूसरा नाम प्रथ-

---

પરિણામવાળા જીવને થાય છે બીજું ઉપશમશ્રેણિપ્રાપ્ત જીવને થાય છે. ઉપશમશ્રેણિપ્રાપ્ત જીવ નિયમથી ત્યાંથી સર્વ દેશના પ્રતિપાતથી અથવા એક દેશના પ્રતિપાતથી નીચેના ગુણસ્થાનોમાં આવીને આખરે મિથ્યાત્વગુણસ્થાનને પ્રાપ્ત થઈ જાય છે.

જેવી રીતે જન્માંધને નેત્રનો લાભ થતાં જ પદાર્થોની પ્રતીતિ કોઈ જાતના સંદેહ વિના સ્ફુટરૂપથી થવા માંડે છે, તે પ્રકારે આ સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિ થતાં જ જીવાદિ પદાર્થોની પ્રતીતિ પણ કોઇ જાતના સંદેહ વગર સ્ફુટરૂપથી જીવને થાય છે. તથા જે પ્રકારે નિર્દોષ ઔષધના સેવનથી રોગનો નાશ થતાં જ રોગી પુરૂષ અપૂર્વ આનંદનો અનુભવ કરે છે તેવી રીતે મિથ્યાત્વ–મહારોગનો નાશ થતા જ આ સમ્યક્ત્વવાળા જીવ પણ અપૂર્વ આનંદનો અનુભવ કરે છે.

ગ્રન્થિ–ભેદથી ઉત્પન્ન સમ્યક્ત્વ (ઔપશમિક–સમ્યક્ત્વ) અનાદિમિથ્યાદૃષ્ટિ ભવ્ય જીવોને થાય છે. આ સમ્યક્ત્વનુ બીજું નામ પ્રથમોશમ–સમ્યક્ત્વ

प्राप्तिश्चतुर्थपञ्चमषष्ठसप्तमेषु कस्मिंश्चिद् गुणस्थाने भवितुमर्हति, परं तु अष्टमगुणस्थाने तत्प्राप्तिरवश्यमेव भवति ।

मिथ्यात्वं त्रिपुञ्जीकृत्य सम्यक्त्वपुञ्जोदयात् क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वमवाप्नोति-इति यदुक्तं, तत्रायं क्रमः—केवलिप्रभृतीनां वचः श्रुत्वा, जातिस्मरणादिना वा सम्यक्त्वस्वरूपं ज्ञात्वाऽपूर्वकरणे वर्धमानपरिणामो दर्शनमोहनीयापरनामकमिथ्यात्वपुद्गलान् युगपत् त्रिधा करोति, सम्यक्त्वमोहनीय–मिश्रमोहनीय–मिथ्यात्वमोहनीयभेदात् । तत्र तावत् सम्यक्त्वमोहनीयमुच्यते—

मोशमसम्यक्त्व भी है। उपशमश्रेणिगत जीवोंको जो समकित होता है वह उपशमश्रेणिभावि औपशमिकसम्यक्त्व है। यह सम्यक्त्व चौथे, पांचवें, छठवें और सातवें गुणस्थानों में से किसी एक गुणस्थानमें हो सकता है, परन्तु आठवें गुणस्थानमें तो उसकी प्राप्ति जीवको अवश्य ही हो जाती है।

मिथ्यात्वके तीन पुंज करने के बाद जीव उन तीन पुंजों में से एक सम्यक्त्वमोहनीयपुंजके उदयसे क्षायोपशमिक सम्यक्त्वकी प्राप्ति किया करता है। यह जो बात ऊपर कही गई है वहां पर इस प्रकारका क्रम समझना चाहिये। केवली वगैरह के वचन सुन कर अथवा जातिस्मरणादिक से सम्यक्त्वके स्वरूपको जान कर अपूर्वकरणमें जिसका परिणाम वृद्धिंगत हो रहा है, ऐसा जीव दर्शनमोहनीय कर्म को–जिसका दूसरा नाम मिथ्यात्व पुद्गल है उसको–एक साथ तीन भेदों में, अर्थात्—मिथ्यात्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्वमोहनीयके रूपमें परिणमाता है।

પણ છે. ઉપશમશ્રેણિગત જીવોને જે સમ્યક્ત્વ થાય છે તે ઉપશમશ્રેણિભાવી ઔપશમિક-સમ્યક્ત્વ છે. આ સમ્યક્ત્વ ચોથા, પાંચમા, છઠ્ઠા અને સાતમા ગુણ સ્થાનોમાંથી કોઇ એક ગુણસ્થાનમાં થઈ શકે છે, પરંતુ આઠમા ગુણસ્થાનમાં તો તેની પ્રાપ્તિ જીવને અવશ્ય જ થઇ જાય છે

મિથ્યાત્વના ત્રણ પુંજ કર્યા બાદ જીવ આ ત્રણ પુંજોમાથી એક સમ્યક્ત્વ-મોહનીયપુંજના ઉદયથી ક્ષાયોપશમિક સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિ કર્યા કરે છે. આ જે વાત ઉપર કહેવાઈ ગઇ છે ત્યાં આ પ્રકારનો ક્રમ સમજવો જોઇએ–કેવળી વિગેરેનું વચન સુણીને અથવા જાતિસ્મરણાદિકથી સમ્યક્ત્વના સ્વરૂપને જાણીને અપૂર્વકરણમા જેનો પરિણામ વૃદ્ધિંગત થઈ રહ્યો છે; એવો જીવ દર્શનમોહનીય કર્મને, જેનું બીજું નામ મિથ્યાત્વપુદ્ગલ છે તેને એકસાથ ત્રણ ભેદોમાં, અર્થાત્ મિથ્યાત્વ-મોહનીય, મિશ્રમોહનીય અને સમ્યક્ત્વમોહનીયના રૂપમાં પરિણમાવે છે.

सम्यक्त्वमोहनीयस्य स्वरूपम्–

यस्य कर्मणः प्रभावात् जीवाजीवादिनवतत्त्वेषु श्रद्धा समुत्पद्यते तत् सम्यक्त्वमोहनीयम्। यथा–उपनेत्रं नेत्रावरकं सदपि दृष्टिं न प्रतिरुणद्धि, तथैव सम्यक्त्वमोहनीयमावरणस्वरूपमपि सद् विशुद्धत्वात् तत्त्वात् श्रद्धानं नहि विघातयति, तस्मात् सम्यक्त्वमोहनीयकर्मत एव नवतत्त्वेषु श्रद्धा भवतीति सिद्धम्।

अपूर्वकरणाध्यवसायेन यस्य मिथ्यात्वपुद्गलपुञ्जस्य मिथ्यात्वस्वभावोऽपनीतः स शोधितमिथ्यात्वपुद्गलपुञ्जः, स एव तत्त्वार्थश्रद्धानरूपस्य जीवपरिणामस्यानावरकत्वादुपचारतः सम्यक्त्वमुच्यते।

सम्यक्त्वमोहनीयका स्वरूप इस प्रकार है–जिस कर्मके प्रभाव से जीवादिक नौ तत्त्वों में जीवको श्रद्धा उत्पन्न होती है उसका नाम सम्यक्त्वमोहनीय है। जिस प्रकार चश्मा नेत्रोंका प्रतिबन्धक होता हुआ भी पदार्थों के देखने में दृष्टिका विघात नहीं करता, उसी प्रकार यह सम्यक्त्वमोहनीय कर्म यद्यपि मिथ्यात्वका अंश होने से आवरण स्वरूप है तो भी उसका शोधित अंश होने की वजह से विशुद्ध है, इसलिये वह तत्त्वश्रद्धान का विघातक नहीं होता है। जीव को नव तत्त्वों में श्रद्धा इसी सम्यक्त्वमोहनीय के द्वारा उत्पन्न होती है। यद्यपि यह मिथ्यात्व का ही अंश है तो भी श्रद्धा का विघातक नहीं है, कारण कि अपूर्वकरणरूप परिणाम इसमें से श्रद्धाविघातक अंश को, कि जिसका दूसरा नाम मिथ्यात्व स्वभाव है; दूर कर देता है। यह शोधित मिथ्यात्वपुद्गलपुंज

સમ્યક્ત્વ મોહનીયનું સ્વરૂપ આ પ્રકારે છે–

સમ્યક્ત્વમોહનીયનું સ્વરૂપ—જે કર્મના પ્રભાવથી જીવાદિક નવ તત્ત્વોમાં જીવને શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થાય છે તેનું નામ સમ્યક્ત્વમોહનીય છે. જેવી રીતે ચશ્મા નેત્રોના પ્રતિબંધક હોવા છતાં પણ પદાર્થોના દેખવામાં દૃષ્ટિનો વિઘાત નથી કરતાં તેમ આ સમ્યક્ત્વમોહનીય કર્મ જો કે મિથ્યાત્વનો અંશ હોવાથી આવરણસ્વરૂપ છે તો પણ તેના શોધિત અંશ હોવાથી વિશુદ્ધ છે, તેથી તે તત્ત્વશ્રદ્ધાનનો વિઘાતક નથી થતુ. જીવને નવતત્ત્વોમાં શ્રદ્ધા આ સમ્યક્ત્વ–મોહનીય દ્વારા ઉત્પન્ન થાય છે, જો કે આ મિથ્યાત્વનો જ અંશ છે તો પણ શ્રદ્ધાનો વિઘાતક નથી. કારણ કે અપૂર્વકરણરૂપ પરિણામ આમાંથી શ્રદ્ધાવિઘાતક અંશોને જેનું બીજું નામ મિથ્યાત્વ–સ્વભાવ છે તેને દૂર કરે છે આ શોધિત મિથ્યાત્વપુદ્ગલપુંજ

यथा—सतुपकोद्रवा भक्षणेन मादका भवन्ति, त एव यद्यपनीततुपास्तक्रादिना शोधितास्तर्हि मदं न जनयन्ति, तथा मिथ्यात्वमोहनीयपुद्गलाः जीवं हिताहितज्ञानरहितं कुर्वन्ति । तत्र द्विस्थानकादिश्चतुःस्थानकान्तः सर्वघाती रसस्तिष्ठति । यदि स्वकीयविशुद्धपरिणामबलात्तेषां सर्वघातिरूपं रसं क्षपयति, तदा स्वाभाविकस्यैकस्थानकरसस्य सद्भावे मिथ्यात्वमोहनीयपुद्गला एव सम्यक्त्वमोहनीया उच्यन्ते । विशोधितत्वादिदं कर्म तत्त्वरुचिरूपसम्यक्त्वं न प्रतिरोधयति, परं त्वेतत्कर्मोदयादात्मस्वभावरूपमौपशमिकसम्यक्त्वं क्षायिकसम्यक्त्वं च न प्रादुर्भवति, सूक्ष्मतत्त्वसमालोचनायां शङ्काश्चोत्तिष्ठन्ति, यतः सम्यक्त्वे मालिन्यमुपजायते । अस्मादेव दोषादेतत् कर्म सम्यक्त्वमोहनीयं व्यपदिश्यते ।

है । यही शोधित मिथ्यात्वपुद्गलपुञ्ज तत्त्वार्थश्रद्धानरूप जीवके परिणाम का अनावारक होने की वजह से कारण में कार्य के उपचार से सम्यक्त्व कहा गया है ।

जैसे—सतुष (तुषयुक्त) कोद्रव (अन्नविशेष) खाने पर मादकता उत्पन्न करते हैं; परन्तु जब वे ही कोद्रव निस्तुष कर दिये जाते हैं और तक्र (छाछ) वगैरह के द्वारा उनका मादक अंश दूर कर दिया जाता है तब उनमें से मादकशक्तिका अभाव हो जाता है और खाने पर फिर वे मादकता पैदा नहीं करते । ठीक इसी तरह से यह मिथ्यात्वमोहनीय जब तक अशोधित अवस्था में रहता है तभी तक जीव को हिताहितविवेकसे शून्य करता रहता है; क्यों कि इसमें द्विस्थान से लेकर चतुःस्थान तक वाला सर्वघाती रस रहता है । परन्तु ज्यों ही इसमें से सर्वघाती रस का क्षय हो जाता है त्यों ही यह शुद्ध अवस्थावाला पुञ्ज कह-

છે. આ જ શોધિત મિથ્યાત્વપુદ્ગલપુંજ તત્ત્વાર્થશ્રદ્ધાનરૂપ જીવના પરિણામનો અનાવારક હોવાથી કારણમાં કાર્યના ઉપચારથી સમ્યક્ત્વ કહેવાય છે.

જેમ સતુપ (તુષયુક્ત) કોદ્રવ (અન્નવિશેપ) ખાવાથી માદકતા ઉત્પન્ન કરે છે; પરન્તુ જ્યારે તે જ કોદ્રવ નિસ્તુપ કરી દેવામા આવે છે અને તક્ર (છાસ) વિગેરે દ્વારા તેનો માદક અંશ દૂર કરવામા આવે છે ત્યારે તેમાંથી માદક શક્તિનો અભાવ થઇ જાય છે, અને ખાવાથી ફરી તે માદકતા પેદા કરતું નથી. ઠીક આ પ્રકારે આ મિથ્યાત્વમોહનીય જ્યાં સુધી અશોધિત અવસ્થામાં રહે છે ત્યાં સુધી જીવને હિતાહિતવિવેકથી શૂન્ય કરતુ રહે છે, કારણ કે આમાં દ્વિસ્થાનથી લઈને ચારસ્થાનવાળા સર્વઘાતી રસ રહે છે, પરંતુ જ્યારે જ તેમાંથી સર્વઘાતી રસનો ક્ષય થઇ જાય છે. ત્યારે જ શુદ્ધ અવસ્થાવાળા પુંજ

लाने लगता है। मिथ्यात्वप्रकृति यह सर्वघातिप्रकृति है। इसमें बहुत भाग सर्वघातिरस है और शेष एक भाग देशघातिरस है। कर्मों में मन्द, तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम इस प्रकारकी चार शक्तिरूप रस रहता है। इनमेंसे इस मिथ्यात्व कर्ममें तीव्र, तीव्रतर और तीव्रतम ये तीन शक्तियां-जिन्हें सर्वघातिरस कहा गया है-हैं। यदि कोई भव्य जीव अपने विशुद्ध परिणामके बलसे इसमें से इन तीन शक्तिरूप सर्वघातिरसका क्षय कर देता है तो उसमें स्वभावतः एक स्थानक रसका ही सद्भाव रहता है। इस परिस्थिति में मिथ्यात्वमोहनीय का नामान्तर ही सम्यक्त्वमोहनीय हो जाता है। शुद्ध होनेसे यह कर्म यद्यपि तत्त्वरुचिरूप सम्यक्त्व का प्रतिरोधक नहीं होता है तो भी इसके सद्भाव में एक तो आत्मस्वभावरूप औपशमिकसम्यक्त्व, एवं क्षायिकसम्यक्त्व का प्रादुर्भाव नहीं होता, दूसरे इसके अस्तित्व में सूक्ष्म तत्त्व की गवेषणा करते समय शङ्काओंका भी उत्थान हो जाया करता है; जिससे समकित में मलिनता आ जाती है। इसी दोषकी वजह से इस कर्मकी "सम्यक्त्वमोहनीय" यह संज्ञा पड़ी है।

કહેવાવામાં આવે છે. મિથ્યાત્વપ્રકૃતિ એ સર્વઘાતિ પ્રકૃતિ છે. એમાં ઘણો ભાગ સર્વઘાતિ રસ છે અને શેષ એક ભાગ દેશઘાતિ રસ છે. કર્મોમાં મંદ, તીવ્ર, તીવ્રતર અને તીવ્રતમ, આ પ્રકારની ચાર શક્તિરૂપ રસ રહે છે. એનાંથી આ મિથ્યાત્વ કર્મમાં તીવ્ર, તીવ્રતર અને તીવ્રતમ, એ ત્રણ શક્તિઓ-જેને સર્વઘાતિ રસ કહેવામાં આવે છે-રહે છે. જો કોઇ ભવ્ય જીવ પોતાના વિશુદ્ધ પરિણામના બળથી એમાંથી આ ત્રણ શક્તિરૂપ સર્વઘાતિ રસનો ક્ષય કરી દે છે તો તેમાં સ્વભાવત એક સ્થાનક રસનો જ સદ્ભાવ રહે છે આ પરિસ્થિતિમાં મિથ્યાત્વમોહનીયનું નામાન્તર જ સમ્યક્ત્વમોહનીય થઇ જાય છે. શુદ્ધ હોવાથી તે કર્મ જો કે તત્ત્વરૂચિરૂપ સમ્યક્ત્વનુ પ્રતિરોધક નથી થતું તો પણ એના સદ્ભાવમા એક તો આત્મસ્વભાવરૂપ ઔપશમિકસમ્યક્ત્વ અને ક્ષાયિકસમ્યક્ત્વનો પ્રાદુર્ભાવ નથી થતો, બીજું એના અસ્તિત્વમાં સૂક્ષ્મ તત્ત્વોની ગવેષણા કરતી સમય શંકાઓની પણ ઉત્પતિ થઈ જાય છે; જેથી સમ્યક્ત્વમાં મલિનતા આવી જાય છે. આ દોષના કારણથી આ કર્મની "સમ્યક્ત્વમોહનીય" એ સંજ્ઞા પડી છે.

॥ मिश्रमोहनीयम् ॥

येषां केचिदंशाः सतुषाः केचिद् विशुद्धास्तैः कोद्रवैः साम्यं मिश्रमोहनीयपुद्गलानाम् । एतत्कर्मोदयात्तत्त्वरुचिर्नोत्पद्यते, न चातत्त्वरुचिरपि । मिश्रमोहनीयकर्मपुद्गलेषु द्विस्थानको रसः सर्वघाती विद्यते ।

॥ मिथ्यात्वमोहनीयम् ॥

सतुषकोद्रवसमा मिथ्यात्वमोहनीयपुद्गलाः, तस्मादेतत्कर्मोदयाज्जीवो हितमहितरूपेण जानाति, हितरूपेण चाहितमपि । मिथ्यात्वमोहनीयकर्मपुद्गलेषु चतुःस्थानकस्त्रिस्थानको द्विस्थानकश्च रसो भवति ।

मिश्रमोहनीय–

जिन कोद्रवों का कुछेक अंश सतुष हैं और कुछेक अंश निस्तुष हैं, उन कोद्रवों के साथ मिश्रमोहनीय के पुद्गलों की समानता जानना चाहिये । इस कर्म के उदयसे न तो तत्त्वरुचिरूप सम्यक्त्व उत्पन्न होता है, और न अतत्त्वरुचि मिथ्यात्व ही । इस कर्म के पुद्गलों में सर्वघातिरस का द्वितीय (तीव्रतर) अंश है ।

मिथ्यात्वमोहनीय–

सतुष कोद्रवों के स्थानापन्न मिथ्यात्वमोहनीय के पुद्गल हैं । इस कर्म के उदय से जीव अहितकारी पदार्थों को हितकारी और हितकारी पदार्थों को अहितकारी मानता रहता है । इस कर्म के पुद्गलों में चतुःस्थानक, त्रिस्थानक और द्विस्थानक रस रहता है।

મિશ્રમોહનીય—

જે કોદ્રવોના કોઇ કોઇ અંશ સતુષ છે અને કોઇ કોઈ અંશ નિસ્તુષ છે, એ કોદ્રવોની સાથે મિશ્રમોહનીયના પુદ્ગલોની સમાનતા સમજવી જોઇએ. આ કર્મના ઉદયથી નથી તત્ત્વરૂચિરૂપ સમ્યક્ત્વ ઉત્પન્ન થતું અને નથી અતત્ત્વરૂચિરૂપ મિથ્યાત્વજ. આ કર્મના પુદ્ગલોમાં સર્વઘાતિ રસનો બીજો (તીવ્રતર) અંશ છે.

મિથ્યાત્વમોહનીય–

સતુષ કોદ્રવોના સ્થાનાપન્ન મિથ્યાત્વમોહનીયના પુદ્ગલો છે. આ કર્મના ઉદયથી જીવ અહિતકારી પદાર્થોને હિતકારી, અને હિતકારી પદાર્થોને અહિતકારી માનતો રહે છે. આ કર્મના પુદ્ગલોમાં ચતુઃસ્થાનક, ત્રિસ્થાનક, અને દ્વિસ્થાનક રસ રહે છે.

एकस्य चतुर्थांशश्चतुःस्थानकः, तृतीयांशस्त्रिस्थानकः, द्वितीयांशो द्विस्थानक उच्यते। यश्च रसः स्वाभाविकः स एकस्थानक इति बोध्यम्। शुभाशुभफलप्रदा कर्मणां तीव्रतमा शक्तिश्चतुस्थानकरसः, तथा तीव्रतरा शक्तिस्त्रिस्थानकरसः, तीव्रा शक्तिर्द्विस्थानकरसोऽवगन्तव्यः। मन्दशक्तिस्त्वेकस्थानको रस इत्यन्यत्र विस्तरः।

अथैतेषां त्रिविधानां पुद्गलानां किं परस्परं संक्रमो भवति, किं वा न? उच्यते-भवतीति। प्रवर्धमानपरिणामः सम्यग्दृष्टिः मिथ्यात्वदलिकात् पुद्गलानाकृष्य मिश्रे सम्यक्त्वे च संक्रमयति। मिश्रपुद्गलानां संक्रमो द्वयोर्भवति-सम्यक्त्वे

एक रस का चतुर्थांश चतुःस्थानक, तृतीय अंश त्रिस्थानक, और द्वितीय अंश द्विस्थानक होता है। अर्थात् शुभ और अशुभरूप अपने२ फल देनेवाले प्रत्येक कर्मों के तीव्रतम अंश की चतुःस्थानक, तीव्रतर अंश की त्रिस्थानक और द्वितीय तीव्र अंश की द्विस्थानक एवं प्रथम मन्द अंश की एक स्थानक संज्ञा है। प्रथम अंश स्वाभाविक है। इसीलिये उसे एक स्थानक कहा है। इस विषयका खुलासा अन्य शास्त्रों में विस्तार से किया गया है।

प्रश्न–इन तीन प्रकार के पुद्गलों का परस्पर में संक्रमण होता है या नहीं?

उत्तर—हां, होता है। जिसका अध्यवसाय अहर्निश वृद्धिंगत हो रहा है ऐसा सम्यक्त्वी जीव मिथ्यात्वके दलिये से पुद्गलपुञ्जको खींच कर मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृति के पुद्गलपुञ्जोंमें उन्हें संक्रमित करता है। मिश्रप्रकृति के पुद्गलोंका संक्रमण मिथ्यात्व और सम्यक्त्व, इन दोनों प्रकृतियों में होता है। प्रवर्धमानपरिणामवाला सम्यग्दष्टि जीव

એક રસનો ચતુર્થાંશ ચતુઃસ્થાનક, તૃતીય અંશ ત્રિસ્થાનક, અને દ્વિતીય અંશ દ્વિસ્થાનક હોય છે. અર્થાત્ શુભ અને અશુભ-રૂપ પોતપોતાનાં ફળ દેવાવાળાં પ્રત્યેક કર્મોની તીવ્રતમ અંશની ચતુઃસ્થાનક, તીવ્રતર અંશની ત્રિસ્થાનક અને દ્વિતીય તીવ્ર અંશની દ્વિસ્થાનક અને પ્રથમ મંદ અંશની એકસ્થાનક સંજ્ઞા છે. પ્રથમ અંશ સ્વાભાવિક છે, તેથી તેને એક સ્થાનક કહે છે આ વિષયનો ખુલાસો બીજા શાસ્ત્રોમાં વિસ્તારથી આપ્યો છે.

પ્રશ્ન—આ ત્રણ પ્રકારના પુદ્ગલોના પરસ્પરમાં સંક્રમણ થાય છે કે નહિ?

ઉત્તર—હાં, થાય છે. જેનો અધ્યવસાય અહર્નિશ વૃદ્ધિગત થતો રહે છે એવો સમ્યક્ત્વી જીવ મિથ્યાત્વના દલિયાથી પુદ્ગલપુંજને ખેંચીને મિશ્ર અને સમ્યક્ત્વ-પ્રકૃતિના પુદ્ગલ પુંજોમાં એને સંક્રમિત કરે છે. મિશ્રપ્રકૃતિના પુદ્ગલોના સંક્રમણ મિથ્યાત્વ અને સમ્યક્ત્વ, એ બને પ્રકૃતિઓમાં થાય છે. પ્રવર્ધમાન

मिथ्यात्वे च। तत्र प्रवर्धमानपरिणामः सम्यग्दृष्टिर्मिश्रपुद्गलान् सम्यक्त्वे संक्रमयति, मिथ्यादृष्टिस्तु तान् मिथ्यात्वे। स च सम्यक्त्वदलिकात् पुद्गलान् आकृष्य मिथ्यात्व एव संक्रमयति, न तु मिश्रे। तस्य सम्यक्त्वांशाभावात्।

सम्यग्दर्शनप्राप्तौ सत्यां हीयमानपरिणामस्तु मिश्रपुद्गलान् मिथ्यात्वपुद्गलांश्च न सम्यक्त्वपुद्गलान् करोति, न च तस्य केचिदन्ये शोधितपुद्गलाः सन्ति, यान् संप्रति प्रस्तुतसम्यक्त्वपुञ्जनिष्ठाकाले वेदयेत्। ततः सम्यक्त्वपुद्गलानामन्तिमग्रासं वेदयित्वा पूर्वं लब्धसम्यक्त्वोऽपि पश्चान्मिथ्यात्वमेव संक्रामति।

मिश्रप्रकृति से मिश्रपुद्गलपुञ्ज को खींच कर सम्यक्त्वप्रकृतिके रूपमें, और मिथ्यादृष्टि जीव उन्हीं पुद्गलों को मिथ्यात्व प्रकृति के रूपमें परिणमाता है। तथा सम्यक्त्वप्रकृति के दलिये से पुद्गलों को लेले कर वही मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व में ही उनका संक्रमण किया करता है, मिश्रमें नहीं; कारण कि उसके सम्यक्त्वका अंश भी नहीं है।

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होने पर भी जिसका परिणाम हीयमान है ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव मिश्रप्रकृति के पुद्गलपुंजों का, एवं मिथ्यात्व-प्रकृति के पुद्गलपुंजोंका सम्यक्त्वप्रकृति के पुद्गलपुंजों में संक्रमण नहीं करता; कारण कि उसके निकट दूसरे कोई शोधित पुद्गल नहीं हैं कि जिन्हें वह वर्तमान में प्राप्त सम्यक्त्वप्रकृति के पुद्गलोंके समाप्ति काल में वेदन कर सके। इसलिये वह जीव यद्यपि लब्धसम्यक्त्व है तो भी हीयमानपरिणामवाला होने से सम्यक्त्वप्रकृति के अन्तिम ग्रास का वेदन कर पीछे से मिथ्यात्व में ही संक्रमण करता है।

પરિણામવાળા સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ મિશ્રપ્રકૃતિથી મિશ્ર પુદ્ગલપુંજને ખેંચીને સમ્યક્ત્વ પ્રકૃતિના રૂપમાં, અને મિથ્યાદષ્ટિ જીવ તે જ પુદ્ગલોને મિથ્યાત્વપ્રકૃતિના રૂપમા પરિણમાવે છે. તથા સમ્યક્ત્વપ્રકૃતિના દલિયાથી પુદ્ગલોને લઇ-લઇને તે મિથ્યાદષ્ટિ જીવ મિથ્યાત્વમાં જ તેનું સક્રમણ કર્યા કરે છે, મિશ્રમાં નહિ; કારણ કે તેને સમ્યક્ત્વનો અશ પણ નથી.

સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ થતાં પણ જેના પરિણામ હીયમાન છે એવો સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ મિશ્રપ્રકૃતિના પુદ્ગલપુંજોનું અને મિથ્યાત્વપ્રકૃતિના પુદ્ગલપુંજોનું સમ્યક્ત્વપ્રકૃતિના પુદ્ગલપુંજોમા સંક્રમણ નથી કરતો. કારણ કે એની નજીક બીજા કોઈ શોધિત પુદ્ગલ નથી કે જેને તે વર્તમાનમાં પ્રાપ્ત સમ્યક્ત્વપ્રકૃતિના પુદ્ગલોની સમાપ્તિ કાળમાં વેદન કરી શકે. તેથી તે જીવ જો કે લબ્ધસમ્યક્ત્વ છે તો પણ હીયમાન પરિણામવાળા હોવાથી સમ્યક્ત્વપ્રકૃતિના અંતિમ ગ્રાસનો વેદન કરી પછીથી મિથ્યાત્વમાં જ સંક્રમણ કરે છે.

मिथ्यात्वपुञ्जस्य क्षयाभावे यः सम्यग्दृष्टिः स त्रिपुञ्जी, क्षीणे तु मिथ्यात्वपुञ्जे द्विपुञ्जी, मिथ्यात्वपुञ्जस्य मिश्रपुञ्जस्य च क्षये त्वेकपुञ्जी, सम्यक्त्वपुञ्जस्यापि क्षये तु क्षायिकसम्यक्त्वी भवतीति।

कारणवशात् सम्यक्त्वप्राप्तावष्टौ दृष्टान्ताः सन्ति। यथा–(१) गिरिनदीप्रस्तरः (२) पन्थाः, (३) ज्वरः, (४) वस्त्रम्, (५) जलम्, (६) पिपीलिका, (७) पुरुषः (८) कोद्रवश्चेति।

(१) यथाप्रवृत्ताख्ये करणे गिरिनदीप्रस्तरदृष्टान्तः, यथा गिरिनद्यां प्रस्तरखण्डास्तद्वेगतो घर्षणादिना वर्तुला जायन्ते, एवं यथाप्रवृत्तकरणप्रभावाद् दीर्घतराया अपि कर्मस्थितेस्तावत् क्षपणं भवति यावता ग्रन्थिरूपः शेषोऽवतिष्ठते।

मिथ्यात्वपुंज का जिसने क्षय नहीं किया है ऐसा जीव समकित की प्राप्ति होने पर त्रिपुंजी, मिथ्यात्व के क्षय होने पर द्विपुंजी, और मिथ्यात्वपुंज एवं मिश्रपुंजके क्षय होनेपर एकपुंजी (सम्यक्त्वपुंजवाला) होता है, तथा एक पुंज–सम्यक्त्वप्रकृति के क्षय होने पर क्षायिकसम्यक्त्वी हो जाता है।

समकितप्राप्ति में आठ दृष्टान्त हैं—(१) गिरिनदीप्रस्तर, (२) मार्ग, (३) ज्वर, (४) वस्त्र, (५) जल, (६) कीड़ी, (७) पुरुष, और ८वां कोद्रव। इनका खुलासा अर्थ इस प्रकार है—

(१) पहिला दृष्टान्त यथाप्रवृत्तिनामक करणमें है। जैसे–पर्वत ऊपरसे बहनेवाली नदीमें पत्थरों के टुकडे उसके प्रवाह के वेगसे इधर–उधर घिसे जाकर गोल हो जाते हैं, इसीप्रकार यथाप्रवृत्तिकरण के प्रभाव से उत्कृष्ट भी कर्मस्थिति घटते २ इतनी कम रह जाती है जिसकी वजह से

મિથ્યાત્વપુંજનો જેણે ક્ષય નથી કર્યો એવો જીવ સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિ થતાં ત્રિપુંજી, મિથ્યાત્વનો ક્ષય થતાં દ્વિપુંજી, મિથ્યાત્વપુંજ અને મિશ્રપુંજનો ક્ષય થતાં એકપુંજી (સમ્યક્ત્વપુંજવાળો) થાય છે, તથા એક પુંજ–સમ્યક્ત્વપ્રકૃતિનો ક્ષય થતાં જ ક્ષાયિકસમ્યક્ત્વી થઇ જાય છે.

સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિમાં આઠ દૃષ્ટાન્તો છે. (૧) ગિરિનદીપ્રસ્તર, (૨) માર્ગ, (૩) જ્વર, (૪) વસ્ત્ર, (૫) જળ, (૬) કીડી, (૭) પુરૂષ, અને (૮) કોદ્રવ. એનો સ્પષ્ટ અર્થ આ પ્રકારે થાય છે—

(૧) પહેલો દૃષ્ટાન્ત યથાપ્રવૃત્તિનામવાળા કરણમાં છે. જેમ પર્વતથી વહેવાવાળી નદીમાં પત્થરનો ટુકડો તેના પ્રવાહના વેગથી અહીં–તહીં ઘસડાઇ જેમ ગોળ થઇ જાય છે, તે પ્રકારે યથાપ્રવૃત્તિકરણના પ્રભાવથી ઉત્કૃષ્ટી

(२) अनिवृत्तिकरणं सम्यक्त्वपुरस्कृते जीवे भवति। कथं तत् सम्यक्त्वं भवति? उच्यते—उपदेशतः स्वयं वा। तत्र पथिदृष्टान्तः—यथा कश्चिन्नष्टपथः पुरुषोऽन्यं दृष्ट्वा तदुपदेशतो मार्गमारोहति, कश्चित् स्वयमेवोहापोहं कृत्वा, तथा कश्चिदाचार्यादीनामुपदेशतः सम्यक्त्वं लभते, कश्चित् स्वयमेव जातिस्मरणादिना।

(३) ज्वरदृष्टान्तोऽप्यत्रैव, यथा—ज्वरितःकश्चिदौषधादारोग्यं लभते, कश्चित्तु तद् विनैव लङ्घनादिना; तथाऽत्रापि कस्यचिन्मिथ्यात्वं गुर्वाद्युपदेशतो नश्यति, कस्यचित्तु स्वयमेव तत्त्वपर्यालोचनतः।

यह जीव ग्रन्थिदेश तक पहुँच जाता है। अर्थात्—इस करण के प्रभाव से उत्कृष्ट भी कर्मस्थिति क्षय होते २ ग्रंथि रूपमें अवशिष्ट रह जाती है।

(२) सम्यक्त्व के संमुख हुए जीव के अनिवृत्तिकरण होता है। समकित की प्राप्ति के दो उपाय हैं—(१) गुर्वादिकका उपदेश, (२) निसर्ग। यहां पर मार्ग का दृष्टान्त है। जैसे—कोई २ मार्ग भूला पथिक उसी मार्ग पर चलते हुए दूसरे को देख कर या उससे पूछ कर तथा कोई २ स्वयं तर्क-वितर्क करके अपने मार्ग की प्राप्ति कर लिया करते हैं, उसी तरह कोई २ प्राणी आचार्यादिक गुरुओं के उपदेश से, और कोई २ स्वयं अपने आप जातिस्मरणादिक साधनों से समकित का लाभ कर लेते हैं।

(३) ज्वर का दृष्टान्त भी यहीं पर घटित होता है। जैसे—किसी रोगी का ज्वर ओषधि के सेवन से और किसी २ का विना ओषधि के केवल लंघनादिक करने से शान्त हो जाता है, उसी प्रकार किसी २ जीव

કર્મસ્થિતિ ઘટતી ઘટતી એટલી ઓછી રહી જાય છે કે જેના કારણથી એ જીવ ગ્રન્થિદેશ સુધી પહોંચી જાય છે, અર્થાત્ આ કરણના પ્રભાવથી ઉત્કૃષ્ટી કર્મસ્થિતિ ક્ષય થતાં થતા ગ્રન્થિરૂપમા અવશિષ્ટ રહી જાય છે.

(૨) સમ્યક્ત્વના સન્મુખ થયેલ જીવને અનિવૃત્તિકરણ થાય છે. સમ્યક્ત્વની પ્રાપ્તિના બે ઉપાયો છે—(૧) ગુર્વાદિકનો ઉપદેશ, (૨) નિસર્ગ. આ ઠેકાણે માર્ગનો દૃષ્ટાન્ત છે. જેમ કોઇ કોઈ માર્ગભૂલ્યા મુસાફિર તે માર્ગ પર ચાલતાં બીજાને દેખીને અગર તેને પૂછીને, તથા કોઇ કોઈ સ્વય તર્ક વિતર્ક કરીને પોતાના માર્ગની પ્રાપ્તિ કરી લે છે. તેવી રીતે કોઈ કોઈ પ્રાણી આચાર્યાદિક ગુરૂઓના ઉપદેશથી અને કોઇ સ્વયં પોતે પોતાના જાતિસ્મરણાદિક સાધનોથી સમ્યક્ત્વનો લાભ કરી લે છે.

(૩) જ્વરનો દાખલો પણ આ ઠેકાણે ઘટિત થાય છે. જેમ કોઈ કોઈ રોગીનો જ્વર ઓષધીના સેવનથી, અને કોઇ કોઇનો ઓષધિ વિના લંઘનાદિક કરવાથી

(४-५) तीव्रविशुद्धिपरिणामिजीवस्य प्रथमतया क्षायोपशमिकसम्यक्त्वं भवति, तत् खल्वपूर्वकरणवशात्। तत्रापूर्वकरणेन जीवो मिथ्यात्वदलिकं त्रिधा करोति, तद्यथा-(१) मिथ्यात्वं, (२) सम्यग्मिथ्यात्वं, (३) सम्यक्त्वं चेति। तत्र (४) वस्त्रं, (५) जलं चेति दृष्टान्तद्वयम्। यथा किंचिद् वस्त्रं जलं वा मलिनं भवति, किंचिदीषद् विशुद्धं, किंचित् शुद्धम्, तथा मिथ्यात्वदलिकमप्यपूर्वकरणवशात् किंचिन्मिथ्यात्वरूपं मलिनं भवति, किंचित् सम्यग्मिथ्यात्वरूपमीषद् विशुद्धं, किंचित् सम्यक्त्वरूपं शुद्धम्।

का मिथ्यात्व गुर्वादिक के उपदेश से, और किसी २ का अपने आप तत्त्वों की पर्यालोचना से नष्ट हो जाता है।

(४-५) तीव्रविशुद्धपरिणामवाले जीव के अपूर्वकरण के प्रभाव से सर्वप्रथम क्षायोपशमिकसम्यक्त्व होता है। अपूर्वकरण के प्रभाव से ही जीव मिथ्यात्व के (३) तीन भाग करता है—(१) मिथ्यात्व, (२) सम्यग्मिथ्यात्व, (३) सम्यक्त्व। यहां पर वस्त्र और जल ये दो दृष्टान्त घटित होते हैं। जैसे-कोई वस्त्र अथवा जल अत्यन्त मलिन होता है, और कोई उससे कुछ कम मलिन, और कोई २ बिल्कुल साफ-निर्मल होता है, उसी तरह से जीव अपूर्वकरण के प्रभाव से मिथ्यात्व के तीन टुकडे कर देता है, उनमें कोई टुकड़ा बिल्कुल मलिन, और कोई टुकड़ा कुछ कम मलिन, एवं कोई टुकड़ा बिल्कुल साफ-शुद्ध होता है। बिल्कुल मलिन टुकड़े का नाम मिथ्यात्व, कुछ कम मलिन टुकड़े का नाम सम्यग्मिथ्यात्व, और सर्वथा शुद्ध टुकड़े का नाम सम्यक्त्व है।

શાંત થઇ જાય છે, તે પ્રમાણે કોઇ કોઈ જીવનો મિથ્યાત્વ ગુર્વાદિકના ઉપદેશથી, અને કોઈ કોઈનો પોતાની મેળે તત્ત્વોની પર્યાલોચનાથી નષ્ટ થઇ જાય છે.

(૪-૫) તીવ્ર વિશુદ્ધ પરિણામવાળા જીવને અપૂર્વકરણના પ્રભાવથી સર્વપ્રથમ ક્ષાયોપશમિક-સમ્યક્ત્વ થાય છે. અપૂર્વકરણના પ્રભાવથી જ જીવ મિથ્યાત્વના ત્રણ ભાગ કરે છે-(૧) મિથ્યાત્વ, (૨) સમ્યગ્મિથ્યાત્વ, (૩) સમ્યક્ત્વ. આ ઠેકાણે વસ્ત્ર અને જળ, આ બે દૃષ્ટાન્ત ઘટિત થાય છે. જેમ કોઈ વસ્ત્ર અથવા જળ અત્યન્ત મલિન છે, અને કોઈ એનાથી ઓછું મલિન, અને કોઇ કોઇ બિલ્કુલ સાફ-નિર્મળ હોય છે, તેમજ જીવ અપૂર્વકરણના પ્રભાવથી મિથ્યાત્વના પણ ત્રણ ભાગ કરી નાંખે છે. તેમાં કોઈ ભાગ બિલ્કુલ મલિન અને કોઇ ભાગ થોડો મલિન, કોઈ ભાગ તદ્દન સાફ-શુદ્ધ હોય છે. તદ્દન મલિન ભાગનું નામ મિથ્યાત્વ, થોડા ઓછા મલિન ભાગનુ નામ સમ્યગ્મિથ્યાત્વ, અને સર્વથા શુદ્ધ ભાગનુ નામ સમ્યક્ત્વ છે

(६) नन्वभव्याः कथं तस्मिन् यथाप्रवृत्तिकरणेऽवतिष्ठन्ते, कथं वा ततः प्रतिपतन्ति, ?, भव्या वा ग्रन्थिं भित्त्वा कथं ततः परतो गच्छन्ति ?; अत्रोच्यते—पिपीलिकादृष्टान्तात् । तथाहि-काश्चित् पिपीलिका अनाभोगतो बिलान्निस्सृत्य इतस्ततो गन्तुं प्रवृत्ताः, काश्चिदपूर्वकरणेन वृक्षादावारूढाः, तासामपि मध्ये पक्षरहितास्तत्रैव तिष्ठन्ति, ततः प्रत्यवरोहन्ति च । काश्चित् पक्षोद्भवेन तत उड्डीयन्ते । इह यथा पिपीलिकानामितस्ततो गमनं यथाप्रवृत्तिकरणेन, वृक्षादावारोहणमपूर्वकरणेन, उड्डयनमनिवृत्तिकरणेन, तथाऽत्रापि ग्रन्थिदेशगमनं यथाप्रवृत्ति-

(६) अभव्य जीव कैसे यथाप्रवृत्तिकरणमें स्थित होते हैं? और कैसे फिर वहां से च्युत हो जाते हैं? तथा भव्य जीव ग्रन्थि का भेदन कर कैसे उससे आगे बढ़ जाते हैं ?, ऐसी शंका को दूर करने के लिए पिपीलिका-दृष्टान्त की सार्थकता है ।

जैसे कितनेक पिपीलिकाएँ (कीडियां) यों ही अपने बिलसे बाहर निकल कर इधर-उधर घूमने लगती हैं, और इनमेंसे कितनीक पिपीलिकाएँ अपूर्वकरण से वृक्षादिक के ऊपर चढ़ जाती हैं । अनन्तर उनमें पांखरहित कितनीक वहीं पर रह जाती हैं, और कितनीक वहां से उतर आती हैं, और कितनीक पिपीलिकायें कि जिनके पर होते हैं वे वहांसे उड़ जाती हैं । जैसे पिपीलिकाओं का इधर-उधर भ्रमण यथाप्रवृत्तिकरणसे होता है, वृक्षादिक पर उनका चढ़ना अपूर्वकरण से होता है, एवं वहां से उनका उड़ जाना अनिवृत्तिकरणसे होता है, उसी प्रकार जीवका ग्रन्थिदेश तक जाना-यथाप्रवृत्तिकरणके द्वारा होता है, ग्रन्थिका

(६) અભવ્ય જીવ કેવીરીતે યથાપ્રવૃત્તિકરણ કરે છે ? અને કેવી રીતે પછી ત્યાંથી પતિત થઇ જાય છે ? તથા ભવ્ય જીવ ગ્રન્થિનુ ભેદન કરીને કેવી રીતે એનાથી આગળ વધી જાય છે ? આવી શંકાને દૂરકરવાને માટે પીપીલિકાઓ (કિડીઓ)ના દૃષ્ટાન્તની સાર્થકતા છે. જેમ કેટલીક પિપીલિકાઓ (કીડિઓ) એમજ પોતાના દરથી બાહર નિકળીને અહીંતહીં ફરવા લાગે છે, અને તેઓમાંથી કેટલીક કીડિઓ વૃક્ષાદિકની ઉપર ચઢી જાય છે. બાદમા તેઓમાંથી પાંખરહિત કેટલીક કીડિઓ ત્યાં જ રહી જાય છે, અને કેટલીક કીડિઓ ત્યાંથી ઉતરી આવે છે, તથા કેટલીક કીડિઓ-કે જેઓ પાંખસહિત હોય છે તેઓ ત્યાંથી ઉડી જાય છે. જેમ કીડિઓનુ અહીંતહીં ફરવું યથાપ્રવૃત્તિકરણથી થાય છે, વૃક્ષાદિની ઉપર તેઓનુ ચઢવું અપૂર્વકરણથી થાય છે, અને ત્યાંથી તેઓનુ ઉડવું અનિવૃત્તિકરણથી થાય છે; તે જ પ્રમાણે જીવનું ગ્રન્થિદેશ સુધી જવુ તે યથાપ્રવૃત્તિકરણદ્વારા થાય

करणेन, ग्रन्थिभेदनमपूर्वकरणेन, सम्यक्त्वमनिवृत्तिकरणेन। पक्षरहितास्तु यथा वृक्षादौ स्थितास्ततः प्रत्यवरोहन्ति, तथाऽध्यवसायस्य मान्द्यात् कोऽपि तीव्रविशोधिरहितोऽपूर्वकरणेन ग्रन्थिभेदं कर्तुमुद्यतोऽपि तीव्ररागद्वेषपरिणामोदयात् तत्रैव तिष्ठति, पश्चात् तत एव परावर्तते।

(७) अत्रैव पुरुषदृष्टान्तोऽपि–यथा त्रयो मनुष्याः भयङ्करं पन्थानं भयेन गच्छन्तः सायंकाले समागते त्वरमाणा व्रजन्ति। अत्रान्तरे खड्गहस्तौ द्वौ चौरौ पार्श्वद्वयतः संप्राप्तौ।तौ चैवमाक्षिपतः–"क्व गच्छथ यूयं? युष्माकमिदानीं मरणं

भेदन करना यह अपूर्वकरण के द्वारा होता है, और समकित की प्राप्ति करना यह अनिवृत्तिकरण के द्वारा होता है। पक्षरहित पिपीलिकाएँ जैसे वृक्षादिक पर चढ़ कर वहां से फिर उतरती हैं उसी प्रकार अध्यवसाय की मन्दतासे जीव भी तीव्रविशुद्धिसम्पन्न परिणाम के विना अपूर्वकरण के द्वारा ग्रन्थिभेद करनेमें उद्यत होता हुआ भी तीव्र राग–द्वेष परिणामके उदयसे वहीं पर ठहर जाता है और पीछे वहां से लौट आता है; आगे नहीं बढ़ सकता।

(७) यहीं पर पुरुषका दृष्टान्त भी लागू पड़ता है। जैसे तीन मनुष्य भय से संत्रस्त हो विकट मार्ग से जाते हुए सायंकाल के समय अपने स्थानकी ओर बहुत ही शीघ्रतासे आगे बढ़ रहे थे, इनमें से एकके पास ही तलवार थी। इसी समय तलवार लिये हुए दो चोर भी जो इनके पीछे लगे हुए थे, वे उनके सामने आ कर बोले—'तुम लोग कहां जाते हो? जो कुछ हो हमें दे दो, नहीं तो तुम्हारी इस समय मृत्यु निकट

છે. ગ્રન્થિનું ભેદન કરવું, તે અપૂર્વકરણદ્વારા થાય છે, અને સમકિતની પ્રાપ્તિ કરવી તે અનિવૃત્તિકરણ દ્વારા થાય છે. પાંખરહિત કીડિઓ જેમ વૃક્ષાદિની ઉપર ચઢીને ઉતરે છે. તે પ્રમાણે અધ્યવસાયની મંદતાથી જીવ પણ તીવ્ર વિશુદ્ધ–સંપન્ન પરિણામના અભાવે અપૂર્વકરણદ્વારા ગ્રન્થિભેદ કરવામાં તૈયાર હોવા છતાં પણ તીવ્રરાગદ્વેષપરિણામના ઉદયથી ત્યાં જ રોકાઇ જાય છે અને પછી ત્યાંથી ફરી આવે છે અને આગળ વધી શકતાં નથી.

(૭) એ જ ઠેકાણે પુરૂષનો દૃષ્ટાન્ત પણ લાગુ પડે છે જેમ–સાયંકાળની વખત વિકટ માર્ગથી જતાં ત્રણ મનુષ્ય ભયથી દુઃખી હતા, અને પોતાના સ્થાનની તરફ ઘણી જ શીઘ્રતાથી આગળ વધી રહ્યા હતા તેમાં એકની પાસે તલવાર હતી. આ વખતે તલવારવાળા બે ચોર જે તેમની પછવાડે પડ્યાં હતાં તે એમની સામે આવી બોલ્યા '–તમે લોક ક્યાં જાઓ છો? તમારી પાસે જે હોય

समायातम् ” इति । तत्रैकः पुरुषस्तौ समापतन्तौ विलोक्य प्रथमत एव निवृत्तः, द्वितीयस्तद्वाक्यश्रवणेन खड्गदर्शनेन च संजातभयस्तत्रैव स्थितः, तृतीयस्तु परमसाहसिकः प्रकटीकृतकृपाणस्तौ द्वावपि चौरौ पश्चात्कृत्य तत् स्थानमतिक्रान्तः ।

इह त्रयाणामपि या प्रथमतः क्रमेण गतिः सा यथाप्रवृत्तिकरणम्, यत्तु तद्भयं तदपूर्वकरणम्, यच्च तौ पराजित्य तत्परतो गमनं तत् तृतीयमनिवृत्तिकरणं द्रष्टव्यम् । यच्च ततः पलायनं तत् पतनम् ।

(८) अपूर्वकरणेन मिथ्यात्वं त्रिधा करोतीति यदुक्तं तत्र कोद्रवदृष्टान्तः । स तु प्रागेव निरूपितः ।

है’ यह सुनते ही उनमें से एक पुरुष तो पहिले से ही कहीं भाग गया। दूसरा उनकी बात सुन कर और तलवार देख कर वहीं पर चुपचाप खड़ा रह गया। तीसरेने जो परमसाहसी था अपनी तलवार निकाल कर उनका सामना किया और उन्हें परास्त कर आगे बढ़ गया।

यहां तीनों का गमन करना यह यथाप्रवृत्तिकरण के, तथा उनमें से दूसरे का भयान्वित हो कर वहीं पर खडे रहना यह अपूर्वकरणके और तीसरे का चोरोंको परास्त कर आगे बढ़ना यह अनिवृत्तिकरणके स्थानापन्न समझना चाहिए। तथा भागना यह पतन का स्थानापन्न है।

(८) अपूर्वकरण–परिणाम के द्वारा यह जीव जो मिथ्यात्वके तीन खण्ड करता है वहां पर कोद्रव का दृष्टान्त लागू पड़ता है। इस दृष्टान्त का समन्वय पहिले किया जा चुका है।

તે અમોને આપી દ્યો, નહિ તો તમારો મોત આ વખતે નજીક છે’ આ સાંભળતાં જ તેમાંથી એક પુરૂષ તો પહેલેથી જ ક્યાંક ભાગી ગયો, બીજો તેમની વાત સાંભળી અને તલવાર દેખીને ચુપચાપ ઉભો રહ્યો, ત્રીજો જે ઘણો સાહસિક હતો તેણે પોતાની તલવાર કાઢીને સામો થઇ ગયો અને તેમને ભગાડીને આગળ વધી ગયો

આ ઠેકાણે ત્રણેનું જવું તે યથાપ્રવૃત્તિકરણનું, તથા આમાંથી બીજાનું ભયભીત થઈ ત્યા રોકાઈ જવું તે અપૂર્વકરણનું, અને ત્રીજાનું ચોરોને હરાવીને આગળ વધવું તે અનિવૃત્તિકરણનું સ્થાનાપન્ન સમજવું જોઈએ. જે ભાગવું તે પતનનું સ્થાનાપન્ન છે

(૮) અપૂર્વકરણ પરિણામ દ્વારા આ જીવ જે મિથ્યાત્વના ત્રણ ખંડ કરે છે ત્યાં કોદ્રવનો દૃષ્ટાન્ત લાગૂ પડે છે. આ દૃષ્ટાન્તનો સમન્વય પહેલાં જ કરવામાં આવ્યો છે.

आर्हतधर्म एव श्रद्धेय इति बोधयितुं श्रीसुधर्मास्वामी कथयति-'से वेमि' इत्यादि।

मूलम्—से बेमि, जे अईया जे य पडुप्पन्ना जे य आगमिस्सा अरहंता भगवंतो ते सव्वेवि एवमाइक्खंति एवं भासंति एवं पण्णविंति एवं परूविंति——सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता न हंतव्वा, न अज्जावेयव्वा, न परिघेत्तव्वा, न परियावेयव्वा, न उद्दवेयव्वा॥ सू० १॥

छाया—तद् ब्रवीमि, ये अतीता ये च प्रत्युपन्नाः ये चागमिष्यन्तः अर्हन्तो भगवन्तस्ते सर्वेऽपि एवमाख्यान्ति, एवं भाषन्ते, एवं प्रज्ञापयन्ति, एवं प्ररूपयन्ति—सर्वे प्राणाः सर्वे भूताः सर्वे जीवाः सर्वे सत्त्वाः न हन्तव्याः, न आज्ञापयितव्याः, न परिग्रहीतव्याः, न परितापयितव्याः, नापद्रावयितव्याः॥ सू० ॥ १ ॥

तीर्थंकरैर्गणधरैश्च स्वस्वशिष्येभ्यो यत् सम्यक्त्वमुक्तं तदहं ब्रवीमि=कथयामि। यद्वा-'से' इत्यस्य स इतिच्छाया। येन मया भगवतः श्रीवर्धमानस्वामिनस्तीर्थंकरस्य सकाशे तद्वचनेन तत्त्वज्ञानं लब्धं, सोऽहं ब्रवीमि। भगवदुक्तमेवार्थं कथयामि, तस्मान्मम वाक्यं श्रद्धेयमिति भावः।

अर्हन्त प्रभुके द्वारा प्रतिपादित धर्म ही श्रद्धा करनेके योग्य है। इस बातका प्रतिबोध करानेके लिये श्रीसुधर्मास्वामी जम्बूस्वामी से कहते हैं——'से वेमि' इत्यादि।

हे जम्बू! तीर्थङ्करों ने एवं गणधरादिकों ने अपने २ शिष्योंके लिये जिस सम्यक्त्वका उपदेश दिया है उसी सम्यक्त्वका मैं व्याख्यान करता हूं। अथवा भगवान श्रीवर्धमान तीर्थङ्कर के निकट जो उनके वचनोंद्वारा सुना है, वही मैं कहता हूँ, किन्तु अपनी तर्फसे कुछ भी नहीं कहता हूँ।

'અર્હંત પ્રભુદ્વારા પ્રતિપાદિત ધર્મ જ શ્રદ્ધા કરવાયોગ્ય છે' આ વાતનો પ્રતિબોધ કરવાને માટે શ્રી સુધર્માસ્વામી કહે છે-'से वेमि' ઇત્યાદિ.

હે જમ્બૂ! તીર્થંકરોએ તેમ જ ગણધરાદિકોએ પોતપોતાના શિષ્યોને માટે જે સમ્યક્ત્વનો ઉપદેશ આપ્યો છે તે સમ્યક્ત્વનું હું પણ વ્યાખ્યાન કરૂં છું. અથવા ભગવાન્ શ્રી વર્ધમાન તીર્થંકર પાસે તેમના વચનોથી જે સાંભળ્યું છે તે હું કહું છું પણ મારી તરફથી કાંઈ પણ કહેતો નથી.

अतीताः=अतीतकालिका अनन्ताः, ये च प्रत्युत्पन्नाः=वर्तमानकालिकाः-पञ्च-भरतेषु पञ्चैरवतेषु पञ्चमहाविदेहेषु वर्तमानाः, ये च आगमिष्यन्तः=भविष्यत्काले आगामिनोऽनन्ताः, ते सर्वे=अर्हन्तो भगवन्तः एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण, आख्यान्ति=परप्रश्नावसरे कथयन्ति ।

अत्र वर्तमानग्रहणमुपलक्षणं, तेनातीतानागतयोरपि ग्रहणम् । तथा च-एवमाचख्युः, एवमाख्यास्यन्तीत्यपि योजनीयम् । एवं सर्वत्र क्रियासु योजनीयम् । तथा-एवं भाषन्ते=सुरनरपरिषदि सर्वजीवानां स्वस्वभाषापरिणामिन्याऽर्धमागध्या भाषया ब्रुवन्ति । तथा-एवं प्रज्ञापयन्ति=हेतुदृष्टान्तादिना प्रकर्षेण बोधयन्ति । तथा-एवं प्ररूपयन्ति=तत्तद्भेदं प्रदर्श्य प्रकर्षेण निर्णयन्ति ।

अतीतकाल में जितने भी अनन्त तीर्थङ्कर हुए हैं, तथा पांच भरत, पांच ऐरवत और पांच महाविदेह क्षेत्र में जितने विद्यमान हैं, और भविष्यत्कालमें जितने भी तीर्थङ्कर होंगे उन सबोंने दूसरों के प्रश्नावसरमें इसी प्रकार से कहा है, कहते हैं और कहेंगे । यहां पर " आख्यान्ति " यह वर्तमानकालिक क्रिया है, इससे भूत और भविष्यत्-कालीन क्रिया भी समझ लेना चाहिए । आगे भी जहां पर वर्तमान क्रियापदका प्रयोग हो, वहां पर भूत और भविष्यत्-कालीन क्रियापदका उपलक्षण से अध्याहार कर लेना चाहिये ।

" एवं भाषन्ते " उन समस्त तीर्थङ्कर महाप्रभुओंने देव, मनुष्यों की सभामें अपनी अर्धमागधी भाषाके द्वारा, जो भाषा समस्त जीवोंकी भाषामें परिणत हो जाती है; इस प्रकार स्पष्ट कहा है ।

અતીતકાળમાં જેટલા પણ અનંત તીર્થંકર થયાં છે, તથા પાંચ ભરત પાંચ ઐરવત અને પાંચ મહાવિદેહ ક્ષેત્રમાં જેટલાં વિદ્યમાન છે, અને ભવિષ્યકાળમાં જેટલાં પણ તીર્થંકર થશે તે બધા બીજાના પ્રશ્નાવસરમાં આ પ્રકારથી કહ્યું છે, કહે છે અને કહેશે. આ ઠેકાણે " आख्यान्ति " તે વર્તમાનકાલિક ક્રિયા છે, એથી ભૂત અને ભવિષ્યકાલિક ક્રિયા પણ સમજી લેવી જોઈએ. આગળ પણ જે ઠેકાણે વર્તમાનકાલિક ક્રિયાપદનો પ્રયોગ છે, ત્યાં પણ ભૂત અને ભવિષ્યકાલિક ક્રિયાપદનો ઉપલક્ષણથી અધ્યાહાર કરી લેવો જોઈએ.

" एवं भाषन्ते " આ સમસ્ત તીર્થંકર મહાપ્રભુઓએ દેવ મનુષ્યોની સભામાં પોતાની અર્ધમાગધીભાષાદ્વારા-જે ભાષા સમસ્ત જીવોની ભાષામાં પરિણત થઈ જાય છે—આ પ્રકારે સ્પષ્ટ કહ્યું છે.

सर्वेऽर्हन्तो भगवन्त एवं किमाख्यान्तीति जिज्ञासायामाह–'सव्वे पाणा' इत्यादि । सर्वे=निरवशेषाः प्राणाः=प्राणिनः पृथिव्यादयः स्थावराः, द्वीन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियपर्यन्ताः त्रसाश्चेत्यर्थः, इन्द्रियादिप्राणानां यथासंभवं धारणात् तेषु प्राणित्वमस्तीति भावः । तथा सर्वे भूताः=भवन्ति भविष्यन्त्यभूवन्निति च भूताः चतुर्दशभूतग्रामरूपाः, तथा–सर्वे जीवाः=जीवन्ति जीविष्यन्त्यजीविषुरिति जीवाः नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवरूपाश्चतुर्गतिकाः, तथा सर्वे सत्त्वाः=स्वकृतकर्मजन्यसुखदुःखसत्तावन्तः । तत्त्वानां भेदपर्यायैः प्रतिबोधनमर्हन्तो भगवन्तः कुर्वन्तीति कृत्वा पर्यायशब्दनिर्देशः । यद्वा–सर्वप्राणिषु पुनः पुनर्दयाभावसमुत्पादनाय पर्यायशब्दनिर्देशः । न हन्तव्याः=दण्डादिभिर्न ताडयितव्या इत्यर्थः । नाज्ञापयितव्याः=अनभिमतकार्येषु न प्रवर्तयितव्याः, न परिग्रहीतव्याः=इमे भृत्यादयो ममेति कृत्वा परिग्रहरूपेणस्वाधीनतया न स्वीकर्तव्याः, न परितापयितव्याः=न अन्नपानाद्यवरोधनेन ग्रीष्मातपादौ स्थापनेन च पीडनीयाः, नापद्रावयितव्याः=न विषशस्त्रादिना मारयितव्याः ॥सू० १॥

'एवं प्रज्ञापयन्ति' हेतु दृष्टान्तादिक के द्वारा अच्छी तरह से समझाया है, और 'एवं प्ररूपयन्ति' भेदप्रभेदपूर्वक स्पष्ट रीति से निर्णय किया है ।

समस्त तीर्थङ्करों ने क्या कहा ? इस प्रकार की जिज्ञासा होने पर भगवान् कहते हैं—'सव्वे पाणा' इत्यादि ।

समस्त प्राणी, समस्त भूत, समस्त जीव और समस्त सत्त्वों को अर्थात् किसी को भी 'न हंतव्वा' डंडे आदि से न हने । 'न अज्जावेयव्वा' न इनको मारनेके लिये आज्ञा दे । 'न परिघेतव्वा' 'ये भृत्यादिक मेरे अधीन हैं' ऐसा समझ कर उन्हें दास नहीं बनावें । 'न परियावेयव्वा' अन्नपानी आदि बंध करके तथा धूप आदिमें रख कर न पीड़ा पहुंचावे 'न किलामेयव्वा' बन्धनादि से न खेद पहुंचावे 'नउद्दवेयव्वा' इनका

'एवं प्रज्ञापयन्ति' હેતુદૃષ્ટાન્તાદિકથી સારી રીતે સમજાવ્યું છે અને "एवं प्ररूपयन्ति" ભેદપ્રભેદપૂર્વક સ્પષ્ટ રીતિથી નિર્ણય કર્યો છે

સમસ્ત તીર્થંકરોએ શું કહ્યું ? આ પ્રકારની જાણવાની ઈચ્છા થવાથી ભગવાન કહે છે—'सव्वे पाणा' ઈત્યાદિ.

સમસ્ત પ્રાણી, સમસ્મ ભૂત, સમસ્ત જીવ અને સમસ્ત સત્વોને અર્થાત્ કોઈને પણ 'न हंतव्वा' લાકડી આદિથી ન મારે 'न अज्जावेयव्वा' ન મારવાને માટે આજ્ઞા આપે, 'न परिघेतव्वा' 'આ નોકરાદિ મારી આજ્ઞામા છે' એવું સમજીને તેઓને દાસ ન બનાવે. 'न परियावेयव्वा' અન્ન પાણી આદિ બંધ કરીને તથા તડકા આદિમાં રાખીને ન પીડા પહોંચાડે. 'न किलामेयव्वा' બંધનાદિથી ખેદ ન

विष शस्त्रादिक से प्राणवियोग न करें। प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व, ये यद्यपि जीव के ही पर्यायवाची शब्द हैं, फिर भी भिन्न२ रूपसे जो इनका यहां पर निर्देश किया है वह पर्यायभेद मान कर ही किया है, और पर्यायभेद से अर्थभेद होता है इसलिये यहां पुनरुक्ति दोषकी संभावना नहीं है। जो इन्द्रियादिक दश प्राणोंको यथासंभव धारण करते हैं वे प्राणी कहलाते हैं। वे त्रस और स्थावरके भेद से दो प्रकारके होते हैं। द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रियपर्यन्त जीव त्रस, और एकेन्द्रिय-पृथिवीकायादिक जीव स्थावर हैं। ये सब हैं, होंगे एवं हुए हैं, इसलिये भूत कहलाते हैं। ये चौदह प्रकारके हैं। ये सब जीते हैं, आगे भी जीयेंगे और भूतकाल में जीये, इसलिये इनकी 'जीव' संज्ञा सार्थक है। नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवके भेदसे ये चार गतिवाले हैं। तथा ये समस्त ही अपने२ कर्मोदयजन्य सुख दुःखोंकी सत्तावाले होते रहते हैं; इसलिये सत्त्व हैं।

तीर्थङ्कर प्रभु तत्त्वों की विवेचना, भेद और पर्यायों के द्वारा किया करते हैं, इस कारणसे पर्याय-शब्दोंका निर्देश किया गया है। अथवा 'सर्व जीवों के ऊपर अत्यन्त दया रखनी चाहिये' इस बात को बार बार समझाने के अभिप्राय से भी इन पर्याय शब्दोंका कथन है॥ सू० १॥

પહોંચાડે. 'न उद्दवेयव्वा' વિષ શસ્ત્રાદિકથી તેના પ્રાણોનો વિયોગ ન કરે. પ્રાણી, ભૂત, જીવ અને સત્ત્વ, આ બધા શબ્દો જો કે જીવના જ પર્યાય શબ્દો છે તો પણ ભિન્ન ભિન્ન રૂપથી જેઓનો આ ઠેકાણે નિર્દેશ કર્યો છે તે પર્યાયભેદ માનીને જ કર્યો છે, અને પર્યાયભેદથી અર્થભેદ થાય છે, માટે આ ઠેકાણે પુન-રૂક્તિ દોષની સંભાવના નથી. જે ઇન્દ્રિયાદિક દશ પ્રાણોને યથાસંભવ ધારણ કરે છે તે પ્રાણી કહેવાય છે તે ત્રસ અને સ્થાવરના ભેદથી બે પ્રકારે હોય છે. બેઇન્દ્રિયથી લઇને પંચેન્દ્રિયપર્યન્ત જીવ ત્રસ, અને એકેન્દ્રિય-પૃથ્વીકાયાદિક જીવ સ્થાવર છે. આ બધા-છે; થશે તેમજ થએલ છે, તેથી ભૂત કહેવાય છે તે ચૌદ પ્રકારના છે. એ બધા જીવે છે આગળ પણ જીવશે અને ભૂતકાળમાં જીવ્યા તેથી તેની 'જીવ' સંજ્ઞા સાર્થક છે. નારકી, તિર્યંચ, મનુષ્ય અને દેવના ભેદથી એ ચાર ગતિવાળા છે. તથા એ સમસ્ત પોતપોતાનાં કર્મોદયજન્ય સુખ દુઃખોની સત્તાવાળા હોય છે તેથી સત્ત્વ છે.

તીર્થંકરપ્રભુ તત્ત્વોની વિવેચના, ભેદ અને પર્યાયો દ્વારા કરે છે. આ ખ્યાલથી પણ પર્યાય-શબ્દોનો નિર્દેશ કરવામાં આવ્યો છે. અથવા 'સર્વ જીવોની ઉપર અત્યંત દયા રાખવી જોઈએ' આ વાતને વારવાર સમજાવવાના અભિપ્રાયથી આ પર્યાય-શબ્દોનું કથન છે ॥ સૂ० ૧ ॥

सम्यक्त्वमुद्भावयितुम् आर्हतधर्मस्य महिमानमाह—'एस धम्मे' इत्यादि।

मूलम्—एस धम्मे सुद्धे निइए सासए समिच्च लोयं खेयण्णेहिं पवेइए, तं जहा—उट्ठिएसु वा अणुट्ठिएसु वा, उवट्ठिएसु वा अणुवट्ठिएसु वा, उवरयदंडेसु वा अणुवरयदंडेसु वा, सोवहिएसु वा अणोवहिएसु वा, संजोगरएसु वा असंजोगरएसु वा।सू०२॥

छाया—एष धर्मः शुद्धः नित्यः शाश्वतः समेत्य लोकं खेदज्ञैः प्रवेदितः। तद् यथा—उत्थितेषु वा अनुत्थितेषु वा, उपस्थितेषु वा अनुपस्थितेषु वा, उपरतदण्डेषु वा अनुपरतदण्डेषु वा, सोपधिकेषु वा अनुपधिकेषु वा, संयोगरतेषु वा असंयोगरतेषु वा ॥ सू०२ ॥

टीका—एषः=अनन्तरोक्तः सर्वार्हद्भगवत्प्ररूपितः, धर्मः=सर्वप्राणिप्राणातिपातविरमणादिरूपः, शुद्धः=निर्मलः—पापानुबन्धरहित इत्यर्थः। आर्हतधर्मादन्यस्तु धर्मत्वेन यः शाक्यादेरभिमतः स खल्वसर्वज्ञसरागोपदिष्टत्वेन हिंसादिदोषानुबन्धसद्भावेन च न शुद्ध इति भावः।

सम्यक्त्वका उद्भावन करनेके लिये जिनेन्द्रप्रतिपादित धर्मकी महिमा कहते हैं—'एस धम्मे' इत्यादि।

समस्त जीवों के घात करनेका निषेधरूप यही धर्म—जिसे समस्त तीर्थङ्करोंने प्रतिपादित किया है—पापानुबंध से रहित होनेसे निर्मल है, इसके अतिरिक्त बौद्धादिकों का अभिमत जो सिद्धान्त है वह हिंसादिदोषविशिष्ट होनेसे निर्मल नहीं है; यह बात 'निर्मल' इस पद से प्रकट होती है। पञ्चमहाविदेहों में सदा वर्तमान होने के कारण यह अविनाशी—ध्रौव्यस्थितिवाला है, शाश्वतगति—मोक्षका कारण होनेसे, अथवा नित्य होनेसे यह शाश्वत है, अतः यही धर्म श्रद्धा करने योग्य एवं ग्रहण करने

સમ્યક્ત્વ પ્રગટ કરવા માટે જીનેન્દ્ર પ્રતિપાદિત ધર્મનો મહિમા કહે છે—'एस धम्मे' ઇત્યાદિ.

સમસ્ત જીવોના ઘાત કરવાના નિષેધરૂપ આ જ ધર્મ કે જેને સમસ્ત તીર્થંકરોએ પ્રતિપાદિત કર્યો છે, પાપાનુબંધથી રહિત હોવાથી નિર્મળ છે. એનાથી અતિરિક્ત બૌદ્ધાદિકોનો અભિમત જે સિદ્ધાંત છે તે હિંસાદિદોષવિશિષ્ટ હોવાથી નિર્મળ નથી, આ વાત "निर्मल" આ પદથી પ્રગટ થાય છે. પંચમહાવિદેહોમા સદા વર્તમાન હોવાથી આ અવિનાશી—ધ્રુવ સ્થિતિવાળો છે. શાશ્વતગતિ—મોક્ષનું કારણ હોવાથી, અથવા નિત્ય હોવાથી તે શાશ્વત છે. તેથી આ જ

अत एवैष नित्यः=अविनाशी, सर्वदा पञ्चसु महाविदेहेषु सद्भावात्। तथा शाश्वतः शाश्वतगतिकारणत्वात्, यद्वा-यतो नित्यस्तस्माच्छाश्वतः। अयमेव धर्मः श्रद्धेयो ग्राह्यश्चेत्यत्र हेतुं प्रदर्शयन् विशेषणान्तरमाह-'समेत्य' इत्यादि। लोकं=षड्जीवनिकायं दुःखदावानलान्तःपतितं, समेत्य=केवलज्ञानेन प्रत्यक्षतया विज्ञाय, खेदज्ञैः=सर्वप्राणिदुःखाभिज्ञैस्तीर्थकरैः, प्रवेदितः=प्रतिबोधितः। धर्मोऽयं मया न स्वमनीषाकल्पित इति च सुधर्मस्वामिना शिष्यमुद्दिश्य सूचितम्।

तीर्थंकराणामुपदेशो यथा भवति, तं प्रकारमाह—तद् यथेत्यादि। यथा=येन प्रकारेण तत् प्रतिबोधितं तत् प्रदर्शयामीत्यर्थः। उत्थितेषु वा-उत्थिताः=धर्माचरणार्थमुद्यताः, तेषु वा, तथा-अनुत्थितेषु=अनुत्थिताः-तद्विपरीतास्तेषु वा। उत्थिताऽनुत्थितसाधारणस्तदुपदेशो भवतीत्यर्थः।

योग्य है। यह अन्य विशेषणों के द्वारा खुलासा करते हुए श्रीसुधर्मास्वामी कहते हैं कि-समस्त जीवों के नाना प्रकारके क्लेशोंके ज्ञाता श्री तीर्थङ्कर प्रभुने दुःखरूपी दावानलसे जलते हुए इस षड्जीवनिकायस्वरूप लोक को अपने केवलज्ञानसे प्रत्यक्ष कर इसी धर्मका उपदेश दिया है, अतः धर्मके आदि प्रवर्तक श्री तीर्थङ्कर प्रभु ही हैं। इस प्रकार श्रीसुधर्मास्वामी अपने शिष्य जम्बूस्वामीसे सूचित किया है कि मैंने अपनी कल्पना से कुछ भी नहीं कहा है।

उन तीर्थङ्करोंका उपदेश-प्रवाह जिस एकरूपसे जहां २ वहा उसी को प्रकट करते हुए श्रीसुधर्मास्वामी कहते हैं कि-उनका उपदेश सिर्फ उन्हीं जीवोंके लिये नहीं हुआ जो धर्माचरण करनेमें उत्थित-उद्यत थे, किन्तु जो अनुत्थित-अनुद्यत थे उन्हें भी प्रभुने धर्म समझाया, अर्थात्

ધર્મ, શ્રદ્ધા કરવા યોગ્ય અને ગ્રહણ કરવાયોગ્ય છે, આ વાતનો અન્ય વિશેષણોદ્વારા ખુલાસો કરતાં શ્રી સુધર્માસ્વામી કહે છે કે-સમસ્ત જીવોના નાના પ્રકારના કલેશોના જ્ઞાતા શ્રી તીર્થંકરપ્રભુએ દુ ખરૂપી દાવાનળથી બળતાં આ ષડ્જીવનિકાયસ્વરૂપ લોકને પોતાના કેવળજ્ઞાનથી પ્રત્યક્ષ કરીને આ જ ધર્મનો ઉપદેશ આપ્યો છે. એથી આ ધર્મના આદિપ્રવર્તક શ્રી તીર્થંકરપ્રભુ જ છે, આ પ્રકારે શ્રીસુધર્માસ્વામી પોતાના શિષ્ય જંબુસ્વામીને સૂચિત કરે છે કે-મેં મારી પોતાની કલ્પનાથી કાંઈ પણ નથી કહ્યુ

આ તીર્થંકરોનો ઉપદેશ-પ્રવાહ જે એકરૂપથી જ્યાં જ્યાં થયો તેને જ પ્રકાશિત કરતાં શ્રીસુધર્માસ્વામી કહે છે કે-એમનો ઉપદેશ કેવલ તેવા જીવો માટે નહીં થયો કે જે ધર્માચરણ કરવામાં ઉદ્યત હતા, કિન્તુ જે જીવો ધર્માચરણ કરવામાં અનુદ્યત હતા તેમને પણ પ્રભુએ ધર્મ સમજાવ્યો. અર્થાત્ એમનો ઉપ-

यद्वा—द्रव्यतः ये उत्थिताः, अनुत्थिताः, तेषु तेषु वा। यथा—उत्थितेष्वेकादशसु गणधरेषु श्रीवर्धमानस्वामिना भगवता धर्म उपदिष्टः। अनुत्थितेषु यथा चण्डकौशिकादिषु। तथा—उपस्थितेषु वा =धर्मं श्रोतुं ग्रहीतुं वा ये वाञ्छन्ति ते उपस्थितास्तेषु वा, यथा चिलातिपुत्रादिषु। अनुपस्थितेषु वा=तद्विपरीता अनुपस्थिताः तेषु वा, यथा—इन्द्रनागादिषु, अनिच्छयाऽपि श्रवणेन कर्मपरिणामवैचित्र्यात् तेषां क्षयोपशमसंभवात्, यथा रोहकचोरस्य क्षयोपशमः संजातः। उपस्थितानुपस्थितेष्वपि समानस्तदुपदेशो भवतीत्यर्थः।

उनके उपदेशका प्रवाह उभयसाधारण (दोनोंके लिये समान) था। अथवा जो जीव धर्माचरण से उस समय बाह्य भी थे, किंतु भगवानके दिव्य उपदेशका पान कर जो सुमार्ग में आनेकी योग्यता रखते थे; उन्हें भी प्रभुने धर्मका उपदेश दिया। जैसे—ग्यारह (११) गणधर जो द्रव्यतः उत्थित थे उन्हें श्रीवर्धमानप्रभुने सद्धर्मका स्वरूप समझा कर सन्मार्गगामी किया। अनुत्थितों में भी इसी प्रकार से प्रभुके उपदेशका प्रवाह बहा है, जैसे चण्डकौशिकादिकों में। धर्मको सुननेकी अभिलाषा रखनेवाला चिलातिपुत्रादिकोंको, और अनुपस्थित—इससे बहिर्भूत इन्द्रनागादिकों को भी प्रभुने अपने धर्म के उपदेशका पान कराया है। धर्मके जाननेकी अभिलाषा से रहित प्राणी को भी जो धर्म सुनाया जाता है उसका कारण यही है कि जिस प्रकार अनिच्छा से पिया हुआ भी अमृत अपने गुण को प्रकट करता है उसी प्रकार श्रुतधर्म भी कर्म के परिणमनकी विचित्रता से क्षयोपशम का कारण होता हुआ अपना प्रभाव

દેશપ્રવાહ બન્નેને માટે સાધારણ—બરાબર છે. અથવા જે જીવો ધર્માચરણથી તે વખત બહાર પણ હતા, કિન્તુ ભગવાનના દિવ્ય ઉપદેશનું પાન કરીને જે સુમાર્ગમાં આવવાની યોગ્યતા રાખતા હતા, તેને પણ ભગવાને ઉપદેશ આપ્યો જેમ ગ્યારહ (૧૧) ગણધરો જે દ્રવ્યથી ઉત્થિત હતા તેઓને શ્રીવર્ધમાન પ્રભુએ સદ્ધર્મનું સ્વરૂપ સમજાવીને સન્માર્ગ તરફ વાળ્યા. અનુત્થિતોમાં પણ આ પ્રકારે પ્રભુનો ઉપદેશપ્રવાહ ચાલ્યો છે, જેમ ચંડકૌશિકાદિકોમાં ઉપસ્થિત—ધર્મને સાંભળવાની અભિલાષા રાખવાવાળા ચિલાતિપુત્રાદિકોને, અને અનુપસ્થિત—એનાથી બહિર્ભૂત ઈન્દ્રનાગાદિકોને પણ પ્રભુએ પોતાના ધર્મના ઉપદેશનુ પાન કરાવ્યુ છે ધર્મ સાંભળવાની અભિલાષાથી રહિત પ્રાણીને પણ જે ધર્મ સંભળાવવામાં આવે છે તેનુ કારણ એ જ છે કે જે પ્રકારે અનિચ્છાથી પિવાએલુ પણ અમૃત પોતાના ગુણને પ્રગટ કરે છે, તે જ પ્રકારે શ્રુતધર્મ પણ કર્મના પરિણમનની વિચિત્રતાથી ક્ષયોપશમનું કારણ થતાં પોતાનો પ્રભાવ પ્રગટ કરે છે.

तथा–उपरतदण्डेषु वा–एकेन्द्रियादीन् प्राणिनो दण्डयतीति दण्डो मनोवाकायरूपः, उपरतो दण्डो येषां ते उपरतदण्डाः–मुनयः, तेषु वा, तद्विपरीता अनुपरतदण्डाः–गृहस्थाः, तेषु वा। एतदुभयसाधारणोऽप्युपदेशस्तेषामित्यर्थः।

तथा–सोपधिकेषु वा इति। उपधीयते=गृह्यते इत्युपधिः द्रव्यतो हिरण्यसुवर्णादिः, भावतो रागद्वेषादिः, सहोपधिना वर्तन्त इति सोपधिका–भरतादयस्तेषु वा। अनुपधिकेषु वा–न विद्यते उपधिर्येषां तेऽनुपधिकाः–काष्ठहारादयस्तेषु वा। एतद्द्वयेऽपि तीर्थंकरोपदेशः समान एव भवतीत्यर्थः।

प्रकट करता है। इस विषयमें रोहतक चोरका दृष्टान्त शास्त्रों में प्रसिद्ध ही है। इसी प्रकार उपस्थितों और अनुपस्थितों में, उपरतदंडवालों में और अनुपरतदंडवालों में, सोपधिकों में और निरुपधिकों में, तथा संयोगरतों में और असंयोगरतों में भी प्रभुका धार्मिक उपदेश एक ही सरीखा हुआ है। जो प्रभु का धार्मिक उपदेश सुननेकी अभिलाषासे समवसरण में आते हैं वे 'उपस्थित' कहलाते हैं, और इससे विपरीत 'अनुपस्थित'। एकेन्द्रियादिक स्थावर और द्वीन्द्रियादिक त्रस जीवों की हिंसाके कारणभूत मानसिक, वाचिक एवं कायिक व्यापारों से जो निवृत्त हो चुके हैं वे 'उपरतदण्ड' कहे जाते हैं, जैसे मुनिराज। इससे उल्टे 'अनुपरतदण्ड' हैं जैसे गृहस्थ। जो ग्रहण की जावे उसे 'उपधि' कहते हैं। यह दो प्रकार की है–एक 'द्रव्य–उपधि' दूसरी 'भाव–उपधि'। 'द्रव्य–उपधि'–हिरण्यसुवर्णादि, और 'भाव–उपधि' रागद्वेषादि हैं। इस उपधिसे युक्त जो होते हैं वे 'सोपधिक' जैसे भरतादिक, और इस उपधिसे रहित जो हैं

આ વિષયમાં રોહતક ચોરનો દૃષ્ટાન્ત શાસ્ત્રમાં પ્રસિદ્ધ છે. આ પ્રકારે ઉપસ્થિતો અને અનુપસ્થિતોમાં, ઉપરતદંડવાળાઓમાં અને અનુપરતદંડવાળાઓમાં, સોપધિકોમાં અને નિરૂપધિકોમાં, તથા સંયોગરતોમાં અને અસંયોગરતોમાં પણ પ્રભુનો ધાર્મિક ઉપદેશ એક જ સરખો છે. જે પ્રભુનો ધાર્મિક ઉપદેશ સાંભળવાની ભાવનાથી સમવસરણમાં આવે છે તેઓ 'उपस्थित' કહેવાય છે. અને તેનાથી વિપરીત 'अनुपस्थित.' એકેન્દ્રિયાદિક સ્થાવર અને બેન્દ્રિયાદિક ત્રસ જીવોની હિંસાના કારણભૂત માનસિક વાચિક અને કાયિક વ્યાપારોથી જે નિવૃત્ત થઈચુકેલાં તે 'उपरतदण्ड' કહેવાય છે, જેમ મુનિઓ. એનાથી ઉલટાં "अनुपरतदण्ड" છે, જેમ ગૃહસ્થો. જે ગ્રહણ કરવામાં આવે તેને 'उपधि' કહે છે આ બે પ્રકારની છે. એક દ્રવ્ય–ઉપધિ અને બીજી ભાવ–ઉપધિ. દ્રવ્ય–ઉપધિ હિરણ્યસુવર્ણાદિ અને ભાવ–ઉપધિ રાગદ્વેષાદિ છે. આ ઉપધિસહિત જે હોય છે તે 'सोपधिक' જેમ

तथा-संयोगरतेषु वा-संयोगः पुत्रकलत्रादिसम्बन्धस्तस्मिन् रता=आसक्ताः संयोगरताः=गृहस्था देशविरतिश्रावकास्तेषु वा। असंयोगरतेषु-असंयोगः=संयमस्तत्र रता असंयोगरताः=उपशमश्रेण्यादिसम्पन्नास्तेषु वा। एतदुभयविधेष्वपि समान एव तदुपदेशो भवतीत्यर्थः।

अयं भावः—तीर्थंकराणामुपदेशः सूर्योदय इव प्रबोध्यविशेषमनपेक्ष्य प्रवर्तते, तस्मात् तत्र नास्ति रागद्वेषपक्षपातादिदोषलेशावसर इति ॥ सू० २ ॥

सम्यक्त्वस्य स्वरूपमाह—'तच्चं' इत्यादि।

मूलम्-तच्चं चेयं तहा चेयं अस्सिं चेयं पवुच्चइ ॥सू०३॥

छाया—तथ्यं चेदं तथा चेदं अस्मिंश्चेदं प्रोच्यते ॥ सू० ३ ॥

टीका—इदं=भगवद्वचनं तथ्यं च=सत्यमेव। अत्र सूत्रे चकारो नियमार्थः।

वे 'निरुपधिक' हैं, जैसे कठियारादिक। पुत्रकलत्रादिक के मोहमें जो फंसे हुए हैं ऐसे गृहस्थ 'संयोगरत' जैसे देशविरति श्रावक, और इनके त्यागी संयमी साधु 'असंयोगरत' कहलाते हैं जैसे उपशमश्रेण्यादिसंपन्न। इसका फलितार्थ यही है कि जिस प्रकार सूर्यका उदय ऊंचनीच के पक्षपात से रहित हो कर समस्त जगतको प्रकाश देता है ठीक उसी तरह प्रभुका दिव्य धार्मिक उपदेश भी उत्थित और अनुत्थितादिकों के पक्षपात विना समस्त जीवोंके हितके लिये एक ही जैसा होता है, कारण कि पक्षपातादिदोषों का कारण रागद्वेष ही है, और प्रभु वीतरागी हैं, इसलिये वे पक्षपातादि दोषों से रहित हैं ॥ सू० २ ॥

सम्यक्त्व के स्वरूप को प्रकट करते हुए श्री सुधर्मास्वामी कहते हैं- 'तच्चं चेयं' इत्यादि।

भगवान् तीर्थङ्कर प्रभुके वे वचन सत्य ही हैं, कारण कि जिन प-

ભરતાદિક અને આ ઉપધિરહિત જે છે તે 'निरुपधिक' છે, જેમ કઠિયારાદિક. પુત્રકલત્રાદિના મોહમાં જે ફસેલા છે એવા ગૃહસ્થી 'संयोगरत' જેમ દેશવિરતિ શ્રાવક. અને તેના ત્યાગી સંયમી સાધુ 'असंयोगरत' કહેવાય છે, જેમ ઉપશમ-શ્રેણ્યાદિસંપન્ન. એનો ભાવ એ છે કે જેમ સૂર્યનો ઉદય ઉંચનીચના પક્ષપાતથી રહિત થઈને સમસ્ત જગતને પ્રકાશ આપે છે તે જ માફક પ્રભુનો દિવ્ય ધાર્મિક ઉપદેશ પણ ઉત્થિત અને અનુત્થિતાદિકોના પક્ષપાતથી રહિત થઈને સમસ્ત જીવના હિતને માટે એક જ સરખો હોય છે, કેમ કે પક્ષપાતાદિ દોષોનું કારણ રાગ-દ્વેષ જ છે અને પ્રભુ વીતરાગી છે, તેથી તે પક્ષપાતાદિદોષથી રહિત છે ॥ સૂ૦ ૨ ॥

સમ્યક્ત્વના સ્વરૂપને પ્રકટ કરીને શ્રીસુધર્માસ્વામી કહે છે-'तच्चं चेयं' ઈત્યાદિ.

ભગવાન તીર્થંકર પ્રભુના તે વચનો સત્ય જ છે, કારણ કે જે પદાર્થોનું જે

इदं=तद्वाक्यार्थरूपं वस्तु, तथा च=तथैव-तीर्थकरभगवद्‌भिर्यथा प्ररूपितं तथैव वस्तुसद्‌भावोऽपीत्यर्थः। एकेन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियान्ताः स्थावरत्रसरूपाः सर्वे प्राणिनो न हन्तव्याः, एप धर्मः शुद्धो नित्यः शाश्वत इत्यादि यथा प्ररूपितं तद्वाक्यार्थोऽपि तथैव विद्यते, तस्मात् सत्यमेवेदं वचनमिति भावः। अनेन श्रद्धानलक्षणं सम्यक्त्वं प्ररूपितम्। अस्मिंश्चेदं प्रोच्यते इति-इदं=श्रद्धानलक्षणं सम्यक्त्वम्, अस्मिंश्च=आर्हतप्रवचनविपय एव प्रोच्यते=विधेयतया प्रकर्षेणोपदिश्यते। केवलमार्हत-प्रवचनविपये पुनः पुनरतिशयेन वा श्रद्धानलक्षणं सम्यक्त्वमास्थेयमित्युपदिश्यते तिर्थंकरैरित्यर्थः॥ सू० ३॥

दार्थों का जिस स्वरूप का भगवानने अपनी दिव्यवाणीद्वारा प्रतिपादन किया है उन पदार्थों का स्वरूप और उनका अस्तित्व उसी प्रकार से है; अन्यथा नहीं। इस प्रकारका तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व सिर्फ अर्हन्त प्रभुके द्वारा प्रतिपादित वचनों में ही विश्वास रखने से जीवों को प्राप्त होता है।

इस सूत्रमें तीन वार "च" शब्दका प्रयोग किया है वह नियम का द्योतक है। इससे यह समझना चाहिये कि भगवानने जो त्रस स्थावर जीवों को नहीं मारनेरूप शुद्ध, नित्य, शाश्वत धर्म के उपदेशरूप वचन कहे हैं वे सत्य हैं। कारण कि जिन पदार्थों का प्रतिपादन प्रभुने अपनी वाणी द्वारा किया है उन पदार्थों का स्वरूप ठीक वैसा ही है, अर्थात्—भगवान् के वचन इसलिये प्रमाण हैं कि उन वचनों के प्रतिपाद्य अर्थ में किसी भी प्रकार से विसंवादादिक नहीं देखा जाता। अर्थ

સ્વરૂપમા ભગવાને પોતાની દિવ્ય વાણીદ્વારા પ્રતિપાદન કર્યું છે તે પદાર્થોનું સ્વરૂપ અને તેનું અસ્તિત્વ તે પ્રકારનુ જ છે, અન્યથા નહિ. આ પ્રકારનું તત્ત્વાર્થશ્રદ્ધાન-રૂપ સમ્યક્ત્વ ફક્ત અર્હતપ્રભુદ્વારા પ્રતિપાદિત વચનોમાં જ વિશ્વાસ રાખવાથી જીવોને પ્રાપ્ત થાય છે.

આ સૂત્રમાં જે ત્રણ વાર "ચ" શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો છે તે નિયમનો દ્યોતક છે. તેથી એ સમજવાનું છે કે ભગવાને જે ત્રસ સ્થાવર જીવને નહિ મારવારૂપ શુદ્ધ, નિત્ય, શાશ્વત ધર્મના ઉપદેશરૂપ વચન કહ્યુ છે તે સત્ય જ છે, કારણ કે જે પદાર્થોનું પ્રતિપાદન પ્રભુએ પોતાની વાણીદ્વારા કર્યું છે તે પદાર્થોનું સ્વરૂપ તેવું જ છે. અર્થાત્ ભગવાનનું વચન એટલા માટે પ્રમાણ છે કે તે વચનોના પ્રતિપાદ્ય અર્થમાં કોઇ પણ પ્રકારથી વિસંવાદાદિક નથી દેખાતુ.

उक्तरीत्या सम्यक्त्वरूपं प्रदर्श्य, तत्प्राप्त्यनन्तरं तत्र स्थिरीकरणाय सम्यग्दृष्टेः कर्तव्यं प्रतिबोधयति—'तं आइत्तु' इत्यादि।

मूलम्—तं आइत्तु न निहे न निक्खिवे जाणित्तु, धम्मं जहा-तहा ॥ सू० ४ ॥

छाया—तत् आदाय न निह्नुवीत, न निक्षिपेत्, ज्ञात्वा धर्मं यथा-तथा ॥४॥

टीका—तत्=सम्यग्दर्शनापरनामकं सम्यक्त्वम्, आदाय=गृहीत्वा प्राप्येति यावत्, धर्मं=श्रुतचारित्ररूपं, यथा-तथा=येन केनापि प्रकारेण गुरूपदेशादिना ज्ञात्वा, यद्वा-धर्मं वस्तुस्वभावं ज्ञात्वा न निह्नुवीत, सम्यक्त्वं तत्कार्याऽकरणेन नाऽऽच्छादयेदित्यर्थः। प्रशमसंवेगनिर्वेदानुकम्पादिभिः सम्यक्त्वं प्रकाशयेदिति

की प्रमाणतासे ही वचनमें प्रमाणता आती है। जब प्रतिपाद्य अर्थरूप धार्मिक उपदेश विसंवाद आदि से रहित है तो फिर क्यों नहीं उसके प्रतिपादक वचनों में सत्यता आवेगी? अवश्य ही आवेगी। इस प्रकारकी दृढ़ आस्था ही तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व है॥ सू० ३॥

पूर्वोक्त रीतिसे सम्यक्त्वका स्वरूप प्रकट कर उसकी प्राप्तिके बाद उसमें सुस्थिर करनेके लिये सम्यग्दृष्टि जीव का कर्तव्य प्रकट करते हुए श्री सुधर्मास्वामी कहते हैं—'तं आइत्तु न निहे' इत्यादि।

जीव उस समकित को प्राप्त कर गुरूपदेशादिकरूप जिस किसी भी प्रकारसे श्रुतचारित्ररूप धर्म को अथवा वस्तुस्वभावको जान कर उस समकित को आच्छादित नहीं करे और न उसको छोड़े। समकित को प्राप्त कर लेने पर समकिती जीव को प्रशम, संवेग, निर्वेद और

અર્થની પ્રમાણતાથી જ વચનમા પ્રમાણતા આવે છે. જ્યારે પ્રતિપાદ્ય-અર્થરૂપ ધાર્મિક ઉપદેશ વિસંવાદ આદિથી રહિત છે તો પછી તેના પ્રતિપાદક વચનોમાં કેમ સત્યતા ન આવે? અવશ્ય જ આવે. આ પ્રકારની દૃઢ આસ્થા જ તત્ત્વાર્થ શ્રદ્ધાનરૂપ સમ્યક્ત્વ છે॥ સૂ૦ ૩ ॥

પૂર્વોક્ત રીતિથી સમ્યક્ત્વનું સ્વરૂપ પ્રગટ કરીને તેની પ્રાપ્તિ પછી તેમાં સુસ્થિર કરવાને માટે સમ્યગ્દષ્ટિ જીવનું કર્તવ્ય પ્રગટ કરતાં શ્રીસુધર્માસ્વામી કહે છે-'તં આઇત્તુ ન નિહે' ઈત્યાદિ.

જીવ તે સમકિતને પ્રાપ્ત કરી ગુરૂ-ઉપદેશ આદિ કોઇ પણ પ્રકારે શ્રુત ચારિત્રરૂપ ધર્મને અથવા વસ્તુસ્વભાવને જાણીને તે સમકિતને ઢાંકે નહિ, અને તેને છોડે પણ નહિ. સમકિત મેળવ્યા પછી સમકિતી જીવને શમ, સંવેગ નિર્વેદ

भावः। न निक्षिपेदिति तत् सम्यक्त्वं न त्यजेत्। यदि संसर्गादिना मिथ्यादृष्टयो मिथ्यात्वं स्थापयेयुः, तदा स्वात्मनः सामर्थ्यगुणं प्रकाशयेदित्यर्थः। यद्वा-न निक्षिपेदिति—निक्षेपणं=छर्दनं वमनमित्यर्थः, यथा कश्चिद् आचार्यसमीपे व्रतानि गृहीत्वा पश्चात् कालान्तरे तत्परतो निक्षिप्योत्प्रव्रजति, पुनरागत्य गृह्णाति, तथा न सम्यक्त्वं कदापि परित्यजेत्, किंतु यावज्जीवमनुपालयेदित्यर्थः। यद्वा-धर्मं=यथाऽवस्थितं धर्मं श्रुतचारित्ररूपं, तथा तेनैव प्रकारेण ज्ञात्वा तं श्रुतधर्मं चारित्र-धर्मं च न निक्षिपेत्-न त्यजेत् ॥ सू० ४ ॥

अनुकम्पा आदि जो समकित के कार्य हैं वे प्राप्त हो जाते हैं, उनसे ही समकितका अस्तित्व जाना जाता है, अतः इन कार्यों को करने से समकिन का प्रकाश होता है, नहीं करने पर उसका आच्छादन होता है। यदि कदाचित् मिथ्यादृष्टियों की संगति भी हो जावे और वे मिथ्यात्व की ओर ले जाने का प्रयत्न भी करें तो भी उस समय अपनी शक्ति का प्रकाशन कर समकित का परित्याग नहीं करना चाहिये। अथवा जैसे कोई जीव आचार्य के समीप व्रतों को धारण कर पश्चात् कालान्तर में उनके निकट उनका वमन-त्याग कर चला जाता है, और फिर आकर उन्हें धारण कर लेता है, उस प्रकार इस सम्यक्त्वका वमन नहीं करना चाहिये, किंतु प्राप्त होने पर इसको प्रयत्नपूर्वक यावज्जीवन पालते रहना चाहिये। अथवा-समकित के कार्यरूप श्रुतचारित्रधर्म की जिस प्रकार से अवस्थिति है उसी रूपसे उन्हें जान कर फिर नहीं छोड़ना चाहिये ॥४॥

અને અનુકમ્પા આદિ જે સમકિતના કાર્ય છે તે પ્રાપ્ત થઇ જાય છે. તેનાથી જ સમકિતનું અસ્તિત્વ જાણવામા આવે છે માટે તે કાર્યોને કરવાથી સમકિતનો પ્રકાશ થાય છે, અને નહિ કરવાથી તે ઢંકાઇ જાય છે, અને કદાચ મિથ્યાદષ્ટિઓની સંગત પણ થઈ જાય અને તેને મિથ્યાત્વની તરફ લઇ જવાનો પ્રયાસ પણ કરે તો પણ તે વખત પોતાની શક્તિનો પ્રકાશ કરી સમકિતનો ત્યાગ નહિ કરવો જોઇએ અથવા જેમ કોઈ જીવ આચાર્યની સમીપ વ્રતોને ધારણ કરીને પછી કાળાન્તરમા તેની નજીક તેનો વમન-ત્યાગ કરી ચાલ્યો જાય છે અને ફરી આવીને જેમ તેને ધારણ કરી લે છે તે પ્રકારે આ સમ્યક્ત્વનો વમન -ત્યાગ કરવો નહિ જોઈએ, પણ પ્રાપ્ત થયા પછી તેને પ્રયત્નપૂર્વક જાવજીવ-જીવનપર્યન્ત પાળનાં રહેવું જોઈએ. અથવા સમકિતના કાર્યરૂપ શ્રુતચારિત્ર ધર્મની જે પ્રકારે અવસ્થિતિ છે તે રૂપમાં તેને જાણીને છોડવું ન જોઇએ ॥સૂ૦ ૪॥

अपरं च सम्यग्दृष्टिकर्तव्यमाह—'दिट्ठेहिं' इत्यादि ।

मूलम्—दिट्ठेहिं निव्वेयं गच्छिज्जा ॥ सू० ५ ॥

छाया—दृष्टेषु निर्वेदं गच्छेत् ॥ सू० ५ ॥

टीका—दृष्टेषु=दृष्टिपथसमागतेषु ऐहिकेष्टानिष्टशब्दादिविषयेषु, अस्योपलक्षणार्थत्वात् स्वर्गादिसम्बन्धिष्वपि, निर्वेदं=वैराग्यं, गच्छेत्=कुर्यादित्यर्थः। यदा यदा-शब्दाः श्रवणगोचराः, रसा आस्वादिताः, गन्धा आघ्राताः, स्पर्शा वा स्पृष्टा भवन्ति, तदा तदा भावयेत्-शब्दादयः खलु पुद्गलास्त एव कदाचित् प्रियशब्दादिरूपेण कदाचिदप्रियशब्दादिरूपेण परिणमन्ते, अतः तेषु पुद्गलपरिणामरूपेषु को रागः कश्च वा द्वेष इति ॥ सू० ५ ॥

और भी सम्यग्दृष्टिका कर्तव्य कहते हैं-'दिट्ठेहिं' इत्यादि ।

दृष्ट पदार्थों में निर्वेद-इष्टानिष्ट शब्दादि विषयोंमें विरक्तभाव हो, संसार के जितने भी मनोज्ञ और अमनोज्ञ पंचेन्द्रियों के विषयभूत शब्दादि पदार्थ हैं उनमें सम्यग्दृष्टि जीवको विरक्त भाव रखना चाहिये, कारण कि ये शब्दादि सब पौद्गलिक हैं । जो कभी मनोज्ञ प्रतीत होते हैं वे ही कालान्तर में अमनोज्ञ रूपसे भी परिणमित होते हुए देखे जाते हैं। अथवा जो एक की अपेक्षा मनोज्ञ हैं वे ही दूसरे की अपेक्षा अमनोज्ञ हो जाते हैं । निम्ब हमारी अपेक्षा अमनोज्ञ है परन्तु ऊँटकी अपेक्षा मनोज्ञ है । फलितार्थ यही है कि संसार का कोई भी पदार्थ सर्वथा न मनोज्ञ है न अमोज्ञ है, मनकी कल्पनाशक्ति ही उसको मनोज्ञ और अमनोज्ञ रूपसे भान कराती है, अतः उनमें राग द्वेष करना समकिती जीवका कर्तव्य

બીજું પણ સમ્યગ્દૃષ્ટિનુ કર્તવ્ય કહે છે-"दिट्ठेहिं". ઇત્યાદિ.

દેખીત પદાર્થોમાં નિર્વેદ-ઇષ્ટ અને અનિષ્ટ શબ્દાદિ નિષયોમાં વિરક્તભાવ હોય, સંસારના જેટલા પણ મનોજ્ઞ અને અમનોજ્ઞ ૫ ચેન્દ્રિયોના વિષયભૂત શબ્દ આદિ પદાર્થ છે તેમાં સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવને વિરક્તભાવ રાખવો જોઇએ, કારણ કે એ બધા પૌદ્ગલિક છે જે કોઇ વખત મનોજ્ઞ પ્રતીત થાય છે તે જ કાળાન્તરમાં અમનોજ્ઞરૂપથી પણ પરિણમિત થતાં દેખવામાં આવે છે. અથવા જે એકની અપેક્ષા મનોજ્ઞ છે, તે બીજાની અપેક્ષા અમનોજ્ઞ થઇ જાય છે લીંબડો આપણી અપેક્ષાએ મનોજ્ઞ છે, પરંતુ ઊંટની અપેક્ષાએ મનોજ્ઞ છે. ફલિતાર્થ એ છે કે સંસારનો કોઇ પણ પદાર્થ સર્વથા મનોજ્ઞ પણ નથી તેમજ અમનોજ્ઞ પણ નથી મનની કલ્પના-શક્તિ જ તેને મનોજ્ઞ અને અમનોજ્ઞ પ્રતિફળિત કરાવે છે, માટે તેમા રાગદ્વેષ કરવો તે સમકિતી જીવનું કર્તવ્ય નથી. એ જ પ્રકારે સ્વર્ગાદિક સુખોની

किंच—“ नो लोगस्से. ” त्यादि ।

मूलम्—नो लोगस्सेसणं चरे ॥ सू० ६ ॥

छाया—नो लोकस्यैषणां चरेत् ॥ सू० ६ ॥

टीका—लोकस्य प्राणिवर्गस्य, एषणाम्–एषणा=अनुकूलेषु शब्दादिविषयेषूपा-

नहीं है। इसी प्रकार स्वर्गादिक सुखोंकी वाञ्छा करना भी समकितीके लिये योग्य नहीं। अनुकूल शब्दों के सुनने से हर्षित होना, एवं प्रतिकूल शब्दों के सुनने से दुःखित होना, स्वादिष्ट रसादिकों के मिलनेसे आनन्द मानना, और प्रतिकूल रसादिकोंकी प्राप्तिमें आकुलित हो जाना, सुगन्धित पदार्थों के सूंघने में प्रेम प्रदर्शित करना, और दुर्गंधित वस्तुओं पर अरुचि रखना, कोमलादि स्पर्शों में प्रमुदितमन होना, एवं कठिनादि स्पर्शों के होने पर म्लानवदन होना; यह समकिती के लिये सर्वथा अयोग्य ही है। समकिती तो समदृष्टि होता है। इस तरह की रागद्वेषमयी विषमदृष्टि उसमें नहीं होनी चाहिये। प्रतिकूल और अनुकूल शब्दादिकों की प्राप्ति में उसे यही भावना करनी चाहिये कि ये सब पुद्गल की पर्यायें सदा बदलती रहती हैं–पर्यायें स्थिररूप नहीं हैं, अतः इन अस्थिर पर्यायों में राग करनेसे और द्वेष रखने से मुझे कौनसा लाभ हो सकता है ? ॥ सू० ५ ॥

तथा—‘ नो लोगस्स ’ इत्यादि ।

सम्यग्दृष्टि जीव लोकैषणा न करे, जिस प्रकार लोक, अनुकूल

ઇચ્છા પણ સમકિતીને માટે યોગ્ય નથી. અનુકૂળ શબ્દ સાંભળીને હર્ષિત થવું, અને પ્રતિકૂળ શબ્દ સાંભળીને દુઃખી થવું, સ્વાદિષ્ટ રસાદિક મળવાથી આનંદ માનવો, અને પ્રતિકૂળ રસાદિકથી વ્યાકુળ થવું, સુગંધિત પદાર્થોના સૂંઘવામાં પ્રેમ દેખાડવો અને દુર્ગન્ધિત વસ્તુઓ ઉપર અરૂચિ રાખવી, કોમલાદિ સ્પર્શમાં આનંદિત થવું અને કઠણ આદિ સ્પર્શોમાં મોઢું બગાડવું, આ બધું સમકિતીને માટે સર્વથા અયોગ્ય જ છે, સમકિતી તો સમદષ્ટિ હોય છે. આવા પ્રકારની રાગદ્વેષવાળી વિષમદષ્ટિ તેને હોવી જોઈએ નહિ. પ્રતિકૂળ અને અનુકૂળ શબ્દ વિગેરેમાં તેણે ભાવના રાખવી જોઈએ કે આ બધા પર્યાયો છે. પર્યાય સદા બદલાતી જ રહે છે, પર્યાય સ્થિરરૂપ નથી, માટે આ અસ્થિર પર્યાયોમાં રાગ કરવાથી અને દ્વેષ રાખવાથી મને શું લાભ થવાનો છે ॥ સૂ૦ ૫ ॥

તથા–‘ ‘ नो लोगस्से ’ ઈત્યાદિ.

સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ લોકૈષણા કરે નહિ, અર્થાત્–જે પ્રકારે લોક, અનુકૂળ શબ્દો

देयबुद्धिः, प्रतिकूलेषु हेयबुद्धिस्तां न चरेत्=न कुर्यात् ॥ सू० ६ ॥

लोकैषणाचरणस्य फलमाह--"जस्स नत्थि" इत्यादि । यद्वा-सम्यक्त्वालाभे सम्यग्ज्ञानं न भवतीत्याह--'जस्स नत्थि' इत्यादि ।

मूलम्—जस्स नत्थि इमा जाई अण्णा तस्स कओ सिया ॥७॥

छाया--यस्य नास्ति इयं जातिः अन्या तस्य कुतः स्यात् ॥ सू० ७ ॥

टीका—यस्य साधोः इयं जातिः=लोकैषणाबुद्धिः नास्ति, तस्य अन्या=अन्यविधा सावद्यव्यापारप्रवृत्तिः कुतः स्यात् । भोगेच्छा हि लोकैषणा, तत्परित्यागेन सावद्यक्रियासु प्रवृत्तिर्नोपजायते, इति भावः ।

शब्दादिकों में उपादेय-बुद्धि एवं प्रतिकूल विषकण्टकादिकों में हेय-बुद्धि रखते हैं उस प्रकार समकिती जीवको अनुकूल पदार्थों में उपादेय-बुद्धि और प्रतिकूल पदार्थों में हेयबुद्धि नहीं रखनी चाहिये, अपि तु मध्यस्थ-भाव रखना चाहिये ॥ सू० ६ ॥

लोकैषणा का फल कहते हैं-'जस्स नत्थि' इत्यादि ।

इस प्रकार लोकैषणा की बुद्धि रखनेवाले जीवके सावद्य व्यापारों से निवृत्ति नहीं हो सकती है। भोगेच्छारूप ही लोकैषणा है । जिस साधु को इस प्रकारकी लोकैषणा नहीं है उसकी प्रवृत्ति शब्दादि विषयों में नहीं होती है । अनुकूल प्रतिकूल पदार्थों में हेयोपादेयबुद्धि रखनेवाला व्यक्ति नियमतः इस प्रकार के कार्यों में प्रवृत्ति कर अपनी मनोवृत्तिको दूषित किया करता है, जबकि समकिती निरन्तर अपनी प्रवृत्ति को निर्मल बनाने की ही कोशिश में रहता है, अतः इस प्रकारकी प्रवृत्ति

આદિમાં ઉપાદેય બુદ્ધિ અને પ્રતિકૂળ વિષ કાંટા વિગેરેમાં હેયબુદ્ધિ રાખે છે તે પ્રમાણે આ સમકિતી જીવને અનુકૂળ પદાર્થોમાં ઉપાદેયબુદ્ધિ અને પ્રતિકૂળ પદાર્થોમાં હેયબુદ્ધિ રાખવી જોઈએ નહિ, બલ્કે મધ્યસ્થ ભાવ રાખવો જોઇએ ॥ સૂ૦ ૬ ॥

લોકૈષણાનું ફળ કહે છે—'जस्स नत्थि' ઈત્યાદિ.

આ પ્રકારની લોકૈષણાની બુદ્ધિ રાખવાવાળા જીવને વ્યાપારોમાંથી નિવૃત્તિ થતી નથી ભોગેચ્છારૂપ જ લોકૈષણા છે. જે સાધુને આ પ્રકારની લોકૈષણા નથી થતી તેની પ્રવૃત્તિ શબ્દ આદિ વિષયોમાં થતી નથી. અનુકૂળ પ્રતિકૂળ પદાર્થોમાં હેય-ઉપાદેય-બુદ્ધિ રાખવાવાળા જીવ નિયમથી આ પ્રકારના કાર્યોમાં પ્રવૃત્તિ કરીને પોતાની મનોવૃત્તિને દૂષિત કર્યા કરે છે, જ્યારે સમકિતી હમેશા પોતાની પ્રવૃત્તિને નિર્મળ બનાવવાની મહેનત કર્યા કરે છે, માટે આ પ્રકારની પ્રવૃત્તિ

यद्वा-इयम्=उपक्रान्ता, ज्ञातिः=सम्यक्त्वरूपा परिणतिः, यस्य नास्ति, तस्यान्या=विवेकिनी परिणतिः सावद्यानुष्ठानपरिहारकारिणी कुतः स्यादित्यर्थः ॥सू०७॥

सम्यक्त्वे शिष्यमतिस्थिरीकरणार्थं पुनराह-'दिट्ठं सुयं' इत्यादि ।

मूलम्-दिट्ठं सुयं मयं विण्णायं जं एयं परिकहिज्जइ ॥सू०८॥

छाया—दृष्टं श्रुतं मतं विज्ञातं यदेतत् परिकथ्यते ॥ सू० ८ ॥

टीका—यदेतत् सम्यक्त्वं मया परिकथ्यते, तत् दृष्टं=तीर्थकरैः केवलालोकेनावलोकितम्, ततः श्रुतं=गणधरादिभिः श्रवणविषयीकृतं, मतं=लघुकर्मणां

मनोवृत्ति को दूषित करनेवाली होने से ही समकिती के लिये हेय बतलाई गई है।

अथवा—'सम्यक्त्व की अप्राप्ति में सम्यग्ज्ञान नहीं होता है' इस बात को भी इसी सूत्र में कहते हैं—'जस्स नत्थि' इत्यादि ।

जिस जीवके पास सम्यक्त्वपरिणति नहीं है उसको सावद्य व्यापारोंसे हटानेवाली विवेकपरिणति भी कैसे हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती है ॥ सू० ७ ॥

सम्यक्त्वमें शिष्यकी बुद्धिको दृढ करने के लिये सुधर्मास्वामी फिरसे कहते हैं—'दिट्ठं सुयं' इत्यादि ।

जिस समकितका मैंने वर्णन किया है वह दृष्ट, श्रुत, अनुमत और विज्ञात है । यहां पर सुधर्मास्वामी समकितके विषयमें खुलासा करते हुए कहते हैं कि—हे जम्बू! जिस समकितका यहां वर्णन किया गया है वह मैंने अपनी बुद्धि से नहीं कहा है; किंतु 'दृष्टं'—तीर्थङ्करों ने उसका

મનોવૃત્તિને દૂષિત કરવાવાળી હોવાથી જ સમકિતીને માટે હેય છે, એમ કહ્યુ છે.

અથવા સમ્યક્ત્વની અપ્રાપ્તિમાં સમ્યગ્જ્ઞાન થતું નથી આ વાતને પણ આ સૂત્રમાં કહે છે-'जस्सनत्थि' ઇત્યાદિ

જે જીવની પાસે સમ્યક્ત્વપરિણતિ નથી તેને સાવદ્ય વ્યાપારોથી દૂર કરવાવાળી વિવેકપરિણતિ પણ કેવી રીતે થઈ શકે ? અર્થાત્ થઈ શકતી નથી ।।સૂ૦૭।।

સમ્યક્ત્વમા શિષ્યની બુદ્ધિને દૃઢ કરવાને માટે સુધર્માસ્વામી ફરીથી કહે છે—'दिट्ठं सुयं' ઇત્યાદિ.

જે સમકિતનું મેં વર્ણન કર્યુ છે તે દૃષ્ટ, શ્રુત, અનુમત અને વિજ્ઞાત છે. આ ઠેકાણે સુધર્માસ્વામી સમકિતવિષયમા ખુલાસો કરીને કહે છે કે-હે જમ્બુ ! જે સમકિતનુ આ ઠેકાણે વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે તે મેં પોતાની બુદ્ધિથી નથી કર્યું, પણ 'दृष्टं' તીર્થંકરોએ તેનો પોતાના કેવળજ્ઞાનરૂપી પ્રકાશથી સાક્ષા-

भव्यानां मतं, विज्ञातं=ज्ञानावरणीयक्षयोपशमात्, अतः सम्यक्त्वलाभे तद्रक्षणे च प्रयतितव्यमित्यर्थः ॥ सू० ८ ॥

ये तु सम्यक्त्वमुपेक्षन्ते तेषामनन्तदुःखमयी संसारगतिर्नैव विरमतीत्याह– '**समेमाणा पलेमाणा**' इत्यादि ।

मूलम्–समेमाणा पलेमाणा पुणो पुणो जाइं पकप्पंति ॥सू० ९॥

छाया—समायन्तः प्रलीयमानाः पुनः पुनर्जातिं प्रकल्पयन्ति ॥सू० ९॥

टीका—समायन्तः–समागच्छन्तः=आर्हतागमविषये श्रद्धानलक्षणसम्यक्त्वाकरणेन मातापित्रादिभिः सह संसारसम्बन्धं कुर्वन्तः, प्रलीयमानाः=मृत्युवशाद् मातापित्रादिभ्यो वियुज्यमानाः, यद्वा–प्रलीयमानाः=शब्दादिविषयेषु समासक्तिं कुर्वाणाः पुनः पुनः=अनन्तशः जातिम्=एकेन्द्रियादिरूपां प्रकल्पयन्ति। सम्यक्त्वमनवाप्ताः संसारदुःखतो न मुच्यन्त इति भावः ॥ सू० ९ ॥

अपने केवलज्ञानरूपी प्रकाश से साक्षात्कार किया है, 'श्रुतं'–गणधरादिकोंने उनसे सुना है, 'मतं'–हलुकर्मी भव्योंने उसे माना है, और 'विज्ञातम्'–अपने ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशमानुसार उन्होंने इसे जाना है, अतः सम्यक्त्वका लाभ होने पर उस की रक्षा करने में सदा सावधान रहना चाहिये ॥ सू० ८॥

जो व्यक्ति इस सुन्दर समकितके प्रति उपेक्षा भाव रखता है उसके इस अनन्त दुःखरूप संसारका अन्त नहीं आता, यही बात कहते हैं– "**समेमाणा**" इत्यादि ।

जो प्राणी प्रभुप्रतिपादित आगमकी श्रद्धारूप इस समकितसे शून्य रहता है वह संयोग वियोग को पाता हुआ जन्म मरण कर बारंबार एकेन्द्रियादिक भवों में भटकता फिरता है ।

त्कार कर्यो छे. 'श्रुतं' गणुधराद्विकोએ तेमनाथी सांलળ्युं छे. 'मतं' હળુકર્મી ભव्योએ ते मान्यु छे, अने 'विज्ञातम्' पोताना ज्ञानावरणीय कर्मना क्षयोपशम अनुसार तेओने तेमणे જાણ્યા છે, તેથી સમ્યક્ત્વનો લાભ થઈ ગયા પછી તેની રક્ષા કરવામાં હમેશાં સાવધાન રહેવુ જોઈએ ॥ સૂ૦ ૮ ॥

જે જીવ આ સુંદર સમકિત પ્રત્યે ઉપેક્ષાભાવ રાખે છે તેનો આ અનંત દુઃખરૂપ સંસારનો અંત આવતો નથી. આ વાત કહે છે–'समेमाणा' ઈત્યાદિ.

જે પ્રાણી પ્રભુપ્રતિપાદિત આગમની શ્રદ્ધારૂપ આ સમકિતથી શૂન્ય રહે છે તે સંયોગ–વિયોગને મેળવતો જન્મ મરણ કરીને વારવાર એકેન્દ્રિયાદિક ભવોમાં ભટકતો ફરે છે.

यद्येवं ततः किं कर्तव्यमित्याह–" अहो य राओ य " इत्यादि।

मूलम्–अहो अ राओ य जयमाणे धीरे सया आगयपण्णाणे पमत्ते बहिया पास अप्पमत्ते सया परिक्कमिज्जासि–त्तिबेमि ।सू१०।

॥ पढमो उद्देसो समत्तो ॥ ४–१ ॥

छाया—अहश्च रात्रिं च यतमानो धीरः सदा आगतप्रज्ञानः प्रमत्तान् बहिः पश्य, अप्रमत्तः सदा पराक्रमेथाः, इति ब्रवीमि ॥ सू. १० ॥

॥ प्रथम उद्देशः समाप्तः ॥

टीका––अहश्च रात्रिं च=अहर्निशं, यतमानः=मोक्षप्राप्तये समुद्युक्तः, धीरः= मिथ्यादृष्टिभिः संसर्गादिना स्थापितेऽपि मिथ्यात्वे विशुद्धिपरिणामधारामनवरु-

जो प्राणी इस समकित के लाभसे वंचित रहता है वह अनन्त काल तक अनन्त बार माता–पिताके साथ 'ये मेरे माता–पिता हैं, मैं इनका पुत्र हूँ' इस प्रकारका संबंध करता है, और अन्तमें मृत्युका ग्रास बनकर एकेन्द्रियादिक कुयोनियों में भ्रमण करता है।

अथवा शब्दादिविषयों में आसक्ति धारण कर अनन्तवार एके-न्द्रियादिक पर्यायों में उत्पन्न होता रहता है, तथा वहांके अनन्त कष्टोंको सहन करता रहता है। अर्थात्–असम्यक्त्वी जीव संसार के दुःखसे कभी भी छुटकारा नहीं पाता ॥ सू० ९ ॥

अगर ऐसा हो तो क्या करना चाहिये? सो कहते हैं–' अहो य राओ य ' इत्यादि।

हे जम्बू! तुम अहर्निश मोक्षप्राप्तिके लिये प्रयत्नशील बनो, और धीर वीर बन कर सदा उत्तरोत्तर हेयोपादेयके विवेक से विशिष्ट

જે પ્રાણી આ સમકિતના લાભથી વંચિત રહે છે તે અનંતકાળસુધી અનંતી વાર માતા–પિતાની સાથે ' આ મારા માતા–પિતા છે, હું એમનો પુત્ર છું ' આ પ્રકારના સંબંધ કરે છે, અને છેવટમાં મરીને એકેન્દ્રિયાદિક કુયોનિઓમાં ભ્રમણ કરે છે અથવા શબ્દ આદિ વિષયોમાં આસક્તિ ધારણ કરી અનંતીવાર એકે-ન્દ્રિયાદિક પર્યાયોમાં ઉત્પન્ન થાય છે, તથા ત્યાંના અનંત દુઃખોને સહન કરતો રહે છે. અર્થાત્–અસમ્યક્ત્વી જીવ સંસારના દુઃખોથી ક્યારે પણ છુટતો નથી. ॥સૂ૦૯॥

જો આ પ્રમાણે છે તો શું કરવું જોઈએ ? તે કહે છે—'અહો ય રાઓ ય' ઇત્યાદિ.

હે જમ્બૂ! તમે અહર્નિશ મોક્ષપ્રાપ્તિને માટે પ્રયત્નશીલ બનો, અને ધીર વીર બનીને હમેશાં ઉત્તરોત્તર હેયોપાદેયના વિવેકથી વિશિષ્ટ બનીને અસંયમી

न्धानः, अत एव सदा=सर्वस्मिन् काले, आगतप्रज्ञानः=उत्तरोत्तरप्रवर्धमानहेयोपादेयविवेकपरिणामः सन्, प्रमत्तान्=असंयतान्, बहिः=आर्हतधर्माद्बहिरवस्थितान् अलब्धसम्यक्त्वान् इति यावत्, पश्य। दृष्ट्वा च अप्रमत्तः=पञ्चविधप्रमादरहितः सन् सदा=अविच्छेदेन पराक्रमेथाः=मोक्षतरुबीजस्य सम्यक्त्वस्य लाभार्थं रक्षणार्थंच

हो कर असंयमी जीवों के संसर्ग से सदा दूर रहो। एवं स्वकर्तव्य में अप्रमत्त हो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति और उसका रक्षण करने के लिए, अथवा कर्म शत्रुओं पर विजय पानेके लिये कटिबद्ध रहो। हे जम्बू! मैंने जैसा भगवान से सुना है वैसा ही तुम्हें कहता हूं।

इस सूत्रमें जम्बूस्वामीको संबोधन करते हुए श्रीसुधर्मास्वामी कहते हैं कि–हे जम्बू! जब प्रत्येक प्राणीका लक्ष्य मोक्षकी प्राप्ति करनेका है तो उसका यह प्रधान कर्तव्य है कि वह सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करनेके लिये अहर्निश–सदा कटिबद्ध रहे, कारण कि—एक तो इसके अभाव में मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती, दूसरे सांसारिक अनन्त कष्टों का अन्त भी नहीं आ सकता। यद्यपि यह बात निश्चित है कि मिथ्यादृष्टि जीव अपने संसर्ग से मिथ्यात्वकी स्थापना करनेमें कसर नहीं रखते हैं तो भी भव्य जीवका कर्तव्य है कि वह ऐसे समयमें अपनी विशुद्ध परिणामधाराको न रोके; किन्तु परिणामों में विशुद्धता जिस प्रकारसे बढे उस प्रकार से उसको बढ़ाने का उत्तरोत्तर प्रयत्न करता

જીવોના સંસર્ગથી સદા દૂર રહો, અને સ્વકર્તવ્યમાં અપ્રમત્ત થાવ, સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ અને તેના રક્ષણને માટે, અથવા કર્મશત્રુઓ ઉપર વિજય મેળવવાને માટે કટિબદ્ધ રહો. હે જમ્બુ! મેં જેમ ભગવાન પાસેથી સાંભળ્યું છે તેમ તમને કહું છું.

આ સૂત્રમાં જમ્બૂસ્વામીને સંબોધન કરીને શ્રીસુધર્માસ્વામી કહે છે કે–હે જમ્બૂ! જ્યારે દરેક પ્રાણીનુ લક્ષ મોક્ષની પ્રાપ્તિ કરવાનું છે તો તેનું એ મુખ્ય કર્તવ્ય છે કે પહેલાં સમ્યગ્દર્શનની પ્રાપ્તિ કરવાને માટે હમેશાં તૈયાર રહે, કારણ કે એક તો તેના અભાવમાં મુક્તિની પ્રાપ્તિ થતી નથી, તેમજ બીજું સાંસારિક અનંત દુ:ખોનો અંત પણ નથી આવતો જો કે આ વાત નિશ્ચિત છે કે મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ પોતાના સંસર્ગથી મિથ્યાત્વની સ્થાપના કરવામાં કસર રાખતો નથી, તો પણ ભવ્ય જીવનું કર્તવ્ય છે કે તે આવા સમયમાં પોતાની વિશુદ્ધ પરિણામધારાને ન રોકી રાખે; પણ પરિણામોમાં વિશુદ્ધતા જે પ્રકારે વધે તે પ્રકારે, તેને વધારવામાં ઉત્તરોત્તર પ્રયત્ન કરતા રહે. એનાથી હેયોપાદેયનો વિવેક જાગશે

विशुद्धिपरिणामप्रकर्षे सोत्साहं प्रयतमानो भव । यद्वा–पराक्रमेथाः=अष्टविधकर्मशत्रून् विजेतुं विशुद्धिपरिणामप्रकर्षेण वीर्यगुणसामर्थ्यमुद्भावयेत्यर्थः । इति=अधिकारपरिसमाप्तौ, ब्रवीमि=भगवन्मुखाद्यथा श्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः ॥ सू० १० ॥

॥ इति चतुर्थाध्ययने प्रथम उद्देशः सम्पूर्णः ॥ ४–१ ॥

रहे । इससे हेयोपादेयका विवेक जागृत होगा और इस विवेकबुद्धिसे वह यह समझ सकेगा कि 'जो समकिनसे शून्य हैं वे इस धर्मसे बहिर्भूत हैं अतः मैं भी पांच प्रकारके प्रमादोंका त्याग कर मोक्षतरु का बीजस्वरूप समकिनकी प्राप्ति करनेमें, और प्राप्त समकित की रक्षा करने में कारणभूत विशुद्ध परिणाम धाराके बढ़ानेमें सदा यत्न करता रहूं।' अथवा 'इस अनन्त संसारमें अनन्तकष्टप्रदाता कर्मरूप शत्रु ही हैं; अतः इन्हें परास्त करनेके लिये भी मैं अपने भीतर विशुद्ध परिणामोंकी धारा बहा कर वीर्यगुणस्वरूप अपनी शक्तिका विकास करूं तो अवश्य ही सफलता प्राप्त कर लूंगा' इस प्रकार सदा उस भव्य जीव को उत्साहित रहना चाहिये ॥ सू० १० ॥

॥ चतुर्थ अध्ययन का प्रथम उद्देशक संपूर्ण ॥ ४–१ ॥

અને આ વિવેકબુદ્ધિથી તે એ સમજી શકશે કે 'જે સમકિતથી શૂન્ય છે તે આ ધર્મથી બહિર્ભૂત છે, તેથી હું પણ પાંચ પ્રકારના પ્રમાદોને ત્યાગીને મોક્ષવૃક્ષના બીજસ્વરૂપ સમકિતની પ્રાપ્તિ કરવામા, અને મેળવેલાં સમકિતની રક્ષા કરવામાં કારણભૂત વિશુદ્ધ પરિણામધારાને વધારવામાં હમેશાં યત્ન કરતો રહુ.' અથવા– 'આ અનન્ત સંસારમાં અનંત દુઃખ આપવાવાળા કર્મરૂપ શત્રુ જ છે, તેનો પરાજય કરવાને માટે પણ મારા અંતરની વિશુદ્ધ પરિણામોની ધારા વહાવીને વીર્યગુણ–સ્વરૂપ મારી શક્તિનો વિકાસ કરૂં તો અવશ્ય સફળતા પ્રાપ્ત થશે' એવા પ્રકારે હમેશા ભવ્ય જીવે ઉત્સાહી રહેવું જોઈએ. ॥ સૂ૦ ૧૦॥

ચોથા અધ્યયનનો પ્રથમ ઉદ્દેશ સંપૂર્ણ ॥ ૪–૧ ॥



॥ अथ चतुर्थाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः ॥

इहानन्तरप्रथमोद्देशके सम्यग्दर्शनं प्रतिबोधितम् । तच्च नवतत्त्वश्रद्धानात्मकम् । तत्र–किं तत्त्वं संसारकारणं ? किं च मोक्षकारणम् ? इत्युभयोर्निर्णयमन्तरेण मुमुक्षोः सम्यग्दर्शनं न संभवतीत्यतः सम्यक्त्वप्रतिबोधनप्रसङ्गागते आस्रवनिर्जरे संसारमोक्षहेतुभूते प्रतिबोधयितुमाह—'जे आसवा' इत्यादि ।

मूलम्–जे आसवा ते परिस्सवा, जे परिस्सवा ते आसवा ।

जे अणासवा ते अपरिस्सवा, जे अपरिस्सवा ते अणासवा ॥सू०१॥

छाया—ये आस्रवास्ते परिस्रवाः, ये परिस्रवास्ते आस्रवा ।

ये अनास्रवास्ते अपरिस्रवाः, ये अपरिस्रवास्ते अनास्रवाः ॥ सू० १ ॥

॥ चौथे अध्ययन का दूसरा उद्देश ॥

सम्यक्त्व नामक चतुर्थ अध्ययनके प्रथम उद्देशकमें सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझा दिया गया है । वहां यह कहा गया है कि–वह सम्यग्दर्शन नव तत्त्वों की श्रद्धास्वरूप है । वे नवतत्त्व ये हैं—१ जीव, २ अजीव, ३ पुण्य, ४ पाप, ५ आस्रव, ६ संवर, ७ निर्जरा, ८ बन्ध और ९ मोक्ष । मोक्षाभिलाषी को जब तक यह निश्चय नहीं हो जाता कि इनमें से कौनसा तत्त्व संसारका कारण है और कौनसा मोक्षका, तब तक उसके समकित की प्राप्ति नहीं हो सकती, अतः उसके लिये इस सम्यक्त्वबोधन के प्रकरणमें आये हुए तत्त्वों मेंसे 'आस्रव संसार का और निर्जरा मोक्षका कारण है' इस बातको स्पष्ट करने के लिए कहते हैं— 'जे आसवा' इत्यादि ।

ચોથા અધ્યાયનો બીજો ઉદ્દેશ

સમ્યક્ત્વ નામના ચોથા અધ્યયના પહેલા ઉદ્દેશામા સમ્યગ્દર્શનનુ સ્વરૂપ સમજાવવામાં આવ્યુ છે ત્યા બતાવવામા આવ્યું છે કે–તે સમ્યગ્દર્શન નવ તત્ત્વોની શ્રદ્ધાસ્વરૂપ છે. આ નવ તત્ત્વ નીચે પ્રમાણે છેઃ—

જીવ ૧, અજીવ ૨, પુણ્ય ૩, પાપ ૪, આસ્રવ ૫, સંવર ૬, નિર્જરા ૭, બંધ ૮, અને મોક્ષ ૯.જ્યાં સુધી મોક્ષાભિલાષીને એ નિશ્ચય નથી થતો કે આમાંથી કયું તત્ત્વ સંસારનું કારણ છે? અને કયું મોક્ષનું ?, ત્યા સુધી તેને સમકિતની પ્રાપ્તિ થતી નથી, એથી તેને માટે આ સમ્યક્ત્વબોધનના પ્રકરણમાં આવેલ તત્ત્વોમાંથી આસ્રવ સંસારનું અને નિર્જરા મોક્ષનું કારણ છે, આ વાતને સ્પષ્ટ કરવાને માટે કહે છે– 'जे आसवा' ઇત્યાદિ.

त्रिशुद्धिपरिणामप्रकर्षे सोत्साहं प्रयतमानो भव। यद्वा-पराक्रमेथाः=अष्टविधकर्मशत्रून् विजेतुं विशुद्धिपरिणामप्रकर्षेण वीर्यगुणसामर्थ्यमुद्भावयेत्यर्थः। इति=अधिकारपरिसमाप्तौ, ब्रवीमि=भगवन्मुखाद्यथा श्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः॥ सू० १०॥

॥ इति चतुर्थाध्ययने प्रथम उद्देशः सम्पूर्णः॥ ४-१॥

रहे। इससे हेयोपादेयका विवेक जागृत होगा और इस विवेकबुद्धिसे वह यह समझ सकेगा कि 'जो समकितसे शून्य हैं वे इस धर्मसे बहिर्भूत हैं अतः मैं भी पांच प्रकारके प्रमादोंका त्याग कर मोक्षतरु का बीजस्वरूप समकितकी प्राप्ति करनेमें, और प्राप्त समकित की रक्षा करने में कारणभूत विशुद्ध परिणाम धाराके बढ़ानेमें सदा यत्न करता रहूं।' अथवा 'इस अनन्त संसारमें अनन्तकष्टप्रदाता कर्मरूप शत्रु ही हैं; अतः इन्हें परास्त करनेके लिये भी मैं अपने भीतर विशुद्ध परिणामोंकी धारा बढ़ा कर वीर्यगुणस्वरूप अपनी शक्तिका विकास करूं तो अवश्य ही सफलता प्राप्त कर लूंगा' इस प्रकार सदा उस भव्य जीव को उत्साहित रहना चाहिये॥ सू० १०॥

॥ चतुर्थ अध्ययन का प्रथम उद्देशक संपूर्ण॥ ४-१॥

અને આ વિવેકબુદ્ધિથી તે એ સમજી શકશે કે 'જે સમકિતથી શૂન્ય છે તે આ ધર્મથી બહિર્ભૂત છે, તેથી હું પણ પાંચ પ્રકારના પ્રમાદોને ત્યાગીને મોક્ષવૃક્ષના બીજસ્વરૂપ સમકિતની પ્રાપ્તિ કરવામાં, અને મેળવેલા સમકિતની રક્ષા કરવામા કારણભૂત વિશુદ્ધ પરિણામધારાને વધારવામાં હમેશાં યત્ન કરતો રહૂં.' અથવા-'આ અનન્ત સંસારમાં અનંત દુઃખ આપવાવાળા કર્મરૂપ શત્રુ જ છે, તેનો પરાજય કરવાને માટે પણ મારા અંતરની વિશુદ્ધ પરિણામોની ધારા વહાવીને વીર્યગુણસ્વરૂપ મારી શક્તિનો વિકાસ કરૂં તો અવશ્ય સફળતા પ્રાપ્ત થશે' એવા પ્રકારે હમેશાં ભવ્ય જીવે ઉત્સાહી રહેવું જોઈએ. ॥ સૂ૦ ૧૦॥

ચોથા અધ્યયનનો પ્રથમ ઉદ્દેશ સંપૂર્ણ ॥ ૪-૧ ॥



॥ अथ चतुर्थाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः ॥

इहानन्तरप्रथमोद्देशके सम्यग्दर्शनं प्रतिबोधितम् । तच्च नवतत्त्वश्रद्धानात्मकम् । तत्र-किं तत्त्वं संसारकारणं ? किं च मोक्षकारणम् ? इत्युभयोर्निर्णयमन्तरेण मुमुक्षोः सम्यग्दर्शनं न संभवतीत्यतः सम्यक्त्वप्रतिबोधनप्रसङ्गागते आस्रवनिर्जरे संसार-मोक्षहेतुभूते प्रतिबोधयितुमाह—'जे आसवा' इत्यादि ।

मूलम्—जे आसवा ते परिस्सवा, जे परिस्सवा ते आसवा ।
जे अणासवा ते अपरिस्सवा, जे अपरिस्सवा ते अणासवा ॥सू०१॥

छाया—ये आस्रवास्ते परिस्रवाः, ये परिस्रवास्ते आस्रवा ।
ये अनास्रवास्ते अपरिस्रवाः, ये अपरिस्रवास्ते अनास्रवाः ॥ सू० १ ॥

॥ चौथे अध्ययन का दूसरा उद्देश ॥

सम्यक्त्व नामक चतुर्थ अध्ययनके प्रथम उद्देशकमें सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझा दिया गया है । वहां यह कहा गया है कि-वह सम्यग्दर्शन नव तत्त्वों की श्रद्धास्वरूप है । वे नवतत्त्व ये हैं—१ जीव, २ अजीव, ३ पुण्य, ४ पाप, ५ आस्रव, ६ संवर, ७ निर्जरा, ८ बन्ध और ९ मोक्ष । मोक्षाभिलाषी को जब तक यह निश्चय नहीं हो जाता कि इनमें से कौनसा तत्त्व संसारका कारण है और कौनसा मोक्षका, तब तक उसके समकित की प्राप्ति नहीं हो सकती, अतः उसके लिये इस सम्यक्त्वबोधन के प्रकरणमें आये हुए तत्त्वों मेंसे 'आस्रव संसार का और निर्जरा मोक्षका कारण है' इस बातको स्पष्ट करने के लिए कहते हैं—'जे आसवा' इत्यादि ।

ચોથા અધ્યાયનો બીજો ઉદ્દેશ

સમ્યક્ત્વ નામના ચોથા અધ્યયના પહેલા ઉદ્દેશામા સમ્યગ્દર્શનનુ સ્વરૂપ સમજાવવામાં આવ્યું છે ત્યાં બતાવવામા આવ્યુ છે કે–તે સમ્યગ્દર્શન નવ તત્ત્વોની શ્રદ્ધાસ્વરૂપ છે. આ નવ તત્ત્વ નીચે પ્રમાણે છે:—

જીવ ૧, અજીવ ૨, પુણ્ય ૩, પાપ ૪, આસ્રવ ૫, સવર ૬, નિર્જરા ૭, બંધ ૮, અને મોક્ષ ૯. જ્યાં સુધી મોક્ષાભિલાષીને એ નિશ્ચય નથી થતો કે આમાંથી કયું તત્ત્વ સસારનું કારણ છે ? અને કયું મોક્ષનું ?, ત્યાં સુધી તેને સમકિતની પ્રાપ્તિ થતી નથી, એથી તેને માટે આ સમ્યક્ત્વબોધનના પ્રકરણમાં આવેલ તત્ત્વોમાંથી આસ્રવ સંસારનું અને નિર્જરા મોક્ષનું કારણ છે, આ વાતને સ્પષ્ટ કરવાને માટે કહે છે– 'जे आसवा' ઇત્યાદિ.

टीका—ये आस्रवाः=अष्टविधं कर्मास्रवति यैस्ते आस्रवाः=कर्मबन्धहेतवो विषयाः, ते परिस्रवाः=परि=समन्तात् स्रवति=अपगच्छति अष्टप्रकारं कर्म यैस्ते परिस्रवाः=कर्मनिर्जराहेतवः, विषयसुखाऽऽसक्तानां स्रक्चन्दनवनितादयो विषयाः कर्मबन्धजनकत्वादास्रवा भवन्ति, त एव सेवनचिन्तनादिभिः संसारानन्तदुःखकरणतया प्रतीयमाना हेयोपादेयविवेकवतां तत्त्वज्ञानिनां वैराग्यजनकत्वात् परिस्रवा भवन्ति। यथा भरतस्य आस्रवाः परिस्रवरूपेण परिणता बभूवुः, यथा वा–समुद्रपालस्य, यथा वा नमिराजर्षेः। तथा चोक्तम्—

'ये आस्रवाः' जो किसी अपेक्षासे कर्मबन्धके हेतु हैं 'ते परिस्रवाः' वे ही किसी दूसरी अपेक्षासे कर्मोंकी निर्जराके भी हेतु हैं। 'ये परिस्रवाः' जो निर्जरा के हेतु हैं 'ते आस्रवाः' वे आस्रव के भी हेतु हैं। 'ये अनास्रवाः' जो आस्रवसे भिन्न हैं 'ते अपरिस्रवाः' वे कर्मबन्ध के भी कारण हैं। 'ये अपरिस्रवाः' जो कर्मबन्धके कारण हैं 'ते अनास्रवा' वे कर्मबन्ध के कारण नहीं भी हैं।

(१) 'ये आस्रवास्ते परिस्रवाः' ज्ञानावरणादिक आठ प्रकारके कर्म जिनके द्वारा आते हैं ऐसे कर्मबन्ध के कारणरूप जो विषयकषायादिक हैं उन्हें आस्रव कहते हैं। तथा जिनके द्वारा अष्ट प्रकारके कर्म सर्वथा निर्जरित होते हैं, ऐसे निर्जरा के कारण जो तपसंयमादिक हैं उन्हें परिस्रव कहते हैं। विषयसुखों में आसक्त मनवालेके लिये माला चन्दन एवं वनितादिक जो पांच इन्द्रियों के विषय हैं वे कर्मबन्धके कारण होनेसे आस्रव होते हैं, कारण कि वह उनके सेवनसे अपने को परमसुखी मानता है, एवं उन्हें

'ये आस्रवाः' જે કોઈ અપેક્ષાથી કર્મબંધના હેતુ છે 'ते परिस्रवाः' તે જ કોઈ બીજી અપેક્ષાએ કર્મોની નિર્જરાના હેતુ છે. 'ये परिस्रवा.' જે નિર્જરાના હેતુ છે 'ते आस्रवाः' તે આસ્રવના પણ હેતુ છે. 'ये अनास्रवाः' જે આસ્રવથી ભિન્ન છે 'ते अपरिस्रवा' તે કર્મબંધના પણ કારણ છે. 'ये अपरिस्रवाः' જે કર્મબંધના કારણ છે 'ते अनास्रवा' તે કર્મબંધના કારણ હોતા પણ નથી.

(१) 'ये आस्रवास्ते परिस्रवा.' જ્ઞાનાવરણ[illegible] ના કર્મ જે દ્વાર
આવે છે એવા કર્મબંધના કારણરૂપ જે વિષય[illegible] ને આસ્રવ કહે[illegible]
તથા જે દ્વારા આઠ પ્રકારના કર્મ સર્વથા નિર્જ[illegible] એવા નિર્જરાન
કારણ છે તેને પરિસ્રવ કહે છે. વિષયસુખોમા[illegible] ાને માળા,
અને [illegible] પાંચ ઇન્દ્રિયોના વિષય છે [illegible] કારણ
આસ્રવ [illegible] કે તે તેના સેવનથી પો[illegible] માને છે,

"यथाप्रकारा यावन्तः संसारावेशहेतवः।
तावन्तस्तद्विपर्यासा,-निर्वाणसुखहेतवः"॥ १ इति ॥

शाश्वत-नित्य समझता है, 'ये मेरे हैं और मैं इनका हूं' इस प्रकारकी उसकी सदा मान्यता होती है, उनके बिगाड़में अपना बिगाड़, और उनके सुधारमें अपना सुधार मानता है, तब ज्ञानी कि जिसके हृदयमें हेयोपादेयका विवेक जागृत हो रहा है और जो कर्म के उदयसे इनका सेवन भी करता है फिर भी इनसे अपनेको जलमें कमल की तरह सर्वथा भिन्न ही देखता है, ये ही पांच इन्द्रियोंके विषय उसको सांसारिक अनन्त कष्टोंके कारणरूप प्रतीत होनेसे वैराग्य के जनक, परिस्रव-होते हैं, इस कारण उसके लिये ये आस्रव कर्मकी निर्जराके ही कारण हैं। जैसे छह खण्डों का राज्य करनेवाले भरतचक्रवर्ती के लिये एवं समुद्रपाल तथा नमि राजर्षिके लिये वे ही पदार्थ जो अज्ञानीके लिये आस्रव के कारण थे, निर्जरा के ही कारण हुए। जैसे कहा है--

"यथाप्रकारा यावन्तः, संसारावेशहेतवः।
तावन्तस्तद्विपर्यासाः, निर्वाणसुखहेतवः"॥ १॥ इति।

अर्थात्—जिस प्रकारके जितने संसारपरिभ्रमण के कारण होते हैं, उनसे विपरीत प्रकारके उतने ही मोक्षसुखके कारण होते हैं॥ १॥

શાશ્વત-નિત્ય સમજે છે. 'આ મારા છે અને હુ તેમનો છુ' આ પ્રકારની તેની સદા માન્યતા રહે છે. તેના બગડવામાં પોતાનુ ખરાબ થએલ, અને તેના સુધારામાં પોતાનો સુધારો માન્યા કરે છે. ત્યારે જ્ઞાની કે જેના હૃદયમાં હેયોપાદેયનો વિવેક જાગ્રત થયેલ છે અને કર્મના ઉદયથી તેનું સેવન પણ કરે છે તો પણ તેનાથી પોતાને જળમા કમળની માફક સર્વથા ભિન્નપણે દેખે છે. આ પાંચ ઈન્દ્રિયોના વિષયો તેને સાંસારિક અનન્ત દુઃખોનું કારણરૂપ પ્રતીત થવાથી તેના માટે તે વૈરાગ્યના કર્તા બને છે, આ કારણ તેના માટે તે કર્મની નિર્જરાના જ કારણ છે. જેમ છ ખડનું રાજ્ય કરવાવાળા ભરત ચક્રવર્તીને માટે અને સમુદ્રપાલ તથા નમિરાજર્ષિને માટે તે જ પદાર્થો, જે અજ્ઞાનીને માટે આસવના કારણ હતા; નિર્જરાના જ કારણ થયા. જેમ કહ્યું છે—

"यथाप्रकारा यावन्तः, संसारावेशहेतवः।
तावन्तस्तद्विपर्यासाः, निर्वाणसुखहेतवः"॥ १॥ इति।

અર્થાત્—જે પ્રકારના જેટલા સંસારપરિભ્રમણના કારણ થાય છે, તેનાથી વિપરીત પ્રકારના તેટલા જ મોક્ષસુખના કારણ થાય છે. (૧)

टीका—ये आस्रवाः=अष्टविधं कर्मास्रवति यैस्ते आस्रवाः=कर्मबन्धहेतवो विषयाः, ते परिस्रवाः=परि=समन्तात् स्रवति=अपगच्छति अष्टप्रकारं कर्म यैस्ते परिस्रवाः=कर्मनिर्जराहेतवः, विषयसुखाऽऽसक्तानां स्रक्चन्दनवनितादयो विषयाः कर्मबन्धजनकत्वादास्रवा भवन्ति, त एव सेवनचिन्तनादिभिः संसारानन्तदुःखकरणतया प्रतीयमाना हेयोपादेयविवेकवतां तत्त्वज्ञानिनां वैराग्यजनकत्वात् परिस्रवा भवन्ति। यथा भरतस्य आस्रवाः परिस्रवरूपेण परिणता बभूवुः, यथा वा—समुद्रपालस्य, यथा वा नमिराजर्षेः। तथा चोक्तम्—

'ये आस्रवाः' जो किसी अपेक्षासे कर्मबन्धके हेतु हैं 'ते परिस्रवाः' वे ही किसी दूसरी अपेक्षासे कर्मोंकी निर्जराके भी हेतु हैं। 'ये परिस्रवाः' जो निर्जरा के हेतु हैं 'ते आस्रवाः' वे आस्रव के भी हेतु हैं। 'ये अनास्रवाः' जो आस्रवसे भिन्न हैं 'ते अपरिस्रवाः' वे कर्मबन्ध के भी कारण हैं। 'ये अपरिस्रवाः' जो कर्मबन्धके कारण हैं 'ते अनास्रवा' वे कर्मबन्ध के कारण नहीं भी हैं।

(१) 'ये आस्रवास्ते परिस्रवाः' ज्ञानावरणादिक आठ प्रकारके कर्म जिनके द्वारा आते हैं ऐसे कर्मबन्ध के कारणरूप जो विषयकषायादिक हैं उन्हें आस्रव कहते हैं। तथा जिनके द्वारा अष्ट प्रकारके कर्म सर्वथा निर्जरित होते हैं, ऐसे निर्जरा के कारण जो तपसंयमादिक हैं उन्हें परिस्रव कहते हैं। विषयसुखों में आसक्त मनवालेके लिये माला चन्दन एवं वनितादिक जो पांच इन्द्रियों के विषय हैं वे कर्मबन्धके कारण होनेसे आस्रव होते हैं, कारण कि वह इनके सेवनसे अपने को परमसुखी मानता है, एवं उन्हें

'ये आस्रवा' જે કોઈ અપેક્ષાથી કર્મબંધના હેતુ છે 'ते परिस्रवाः' તે જ કોઈ બીજી અપેક્ષાએ કર્મોની નિર્જરાના હેતુ છે 'ये परिस्रवाः' જે નિર્જરાના હેતુ છે 'ते आस्रवाः' તે આસ્રવના પણ હેતુ છે. 'ये अनास्रवाः' જે આસ્રવથી ભિન્ન છે 'ते अपरिस्रवा.' તે કર્મબંધના પણ કારણ છે 'ये अपरिस्रवाः' જે કર્મબંધના કારણ છે 'ते अनास्रवाः' તે કર્મબંધના કારણ હોતા પણ નથી.

(૧) 'ये आस्रवास्ते परिस्रवाः' જ્ઞાનાવરણાદિક આઠ પ્રકારના કર્મ જે દ્વારા આવે છે એવા કર્મબંધના કારણરૂપ જે વિષયકષાયાદિક છે તેને આસ્રવ કહે છે. તથા જે દ્વારા આઠ પ્રકારના કર્મ સર્વથા નિર્જરિત થાય છે, એવા નિર્જરાના જે કારણ છે તેને પરિસ્રવ કહે છે. વિષયસુખોમાં આસક્તમનવાળાને માળા, ચંદન અને સ્ત્રી આદિક જે પાંચ ઇન્દ્રિયોના વિષય છે તે કર્મબંધનાં કારણ હોવાથી આસ્રવ થાય છે, કારણ કે તે તેના સેવનથી પોતાને ઘણો સુખી માને છે, અને તેને

"यथाप्रकारा यावन्तः संसारावेशहेतवः।
तावन्तस्तद्विपर्यासा,-निर्वाणसुखहेतवः" ॥ १ इति ॥

शाश्वत-नित्य समझता है, 'ये मेरे हैं और मैं इनका हूं' इस प्रकारकी उसकी सदा मान्यता होती है, उनके बिगाड़में अपना बिगाड़, और उनके सुधारमें अपना सुधार मानता है, तब ज्ञानी कि जिसके हृदयमें हेयोपादेयका विवेक जागृत हो रहा है और जो कर्म के उदयसे इनका सेवन भी करता है फिर भी इनसे अपनेको जलमें कमल की तरह सर्वथा भिन्न ही देखता है, ये ही पांच इन्द्रियोंके विषय उसको सांसारिक अनन्त कष्टोंके कारणरूप प्रतीत होनेसे वैराग्य के जनक, परिस्रव-होते हैं, इस कारण उसके लिये ये आस्रव कर्मकी निर्जराके ही कारण हैं। जैसे छह खण्डोंका राज्य करनेवाले भरतचक्रवर्ती के लिये एवं समुद्रपाल तथा नमि राजर्षिके लिये वे ही पदार्थ जो अज्ञानीके लिये आस्रव के कारण थे, निर्जरा के ही कारण हुए। जैसे कहा है—

"यथाप्रकारा यावन्तः, संसारावेशहेतवः।
तावन्तस्तद्विपर्यासाः, निर्वाणसुखहेतवः" ॥ १ ॥ इति।

अर्थात्—जिस प्रकारके जितने संसारपरिभ्रमण के कारण होते हैं, उनसे विपरीत प्रकारके उतने ही मोक्षसुखके कारण होते हैं ॥ १ ॥

શાશ્વત-નિત્ય સમજે છે 'આ મારા છે અને હું તેમનો છું' આ પ્રકારની તેની સદા માન્યતા રહે છે. તેના બગડવામાં પોતાનુ ખરાબ થએલ, અને તેના સુધારામા પોતાનો સુધારો માન્યા કરે છે. ત્યારે જ્ઞાની કે જેના હૃદયમાં હેયોપાદેયનો વિવેક જાગ્રત થયેલ છે અને કર્મના ઉદયથી તેનું સેવન પણ કરે છે તો પણ તેનાથી પોતાને જળમા કમળની માફક સર્વથા ભિન્નપણે દેખે છે. આ પાંચ ઈન્દ્રિયોના વિષયો તને સાંસારિક અનન્ત દુઃખોનું કારણરૂપ પ્રતીત થવાથી તેના માટે તે વૈરાગ્યના કર્તા બને છે, આ કારણ તેના માટે તે કર્મની નિર્જરાના જ કારણ છે જેમ છ ખંડનું રાજ્ય કરવાવાળા ભરત ચક્રવર્તીને માટે અને સમુદ્રપાલ તથા નમિરાજર્ષિને માટે તે જ પદાર્થો, જે અજ્ઞાનીને માટે આસ્રવના કારણ હતા; નિર્જરાના જ કારણ થયા. જેમ કહ્યુ છે—

"યથાપ્રકારા યાવન્તઃ, સંસારાવેશહેતવઃ।
તાવન્તસ્તદ્વિપર્યાસાઃ, નિર્વાણસુખહેતવઃ" ॥ ૧ ॥ ઇતિ।

અર્થાત્—જે પ્રકારના જેટલા સંસારપરિભ્રમણના કારણ થાય છે, તેનાથી વિપરીત પ્રકારના તેટલા જ મોક્ષસુખના કારણ થાય છે. (૧)

रागद्वेषमलिनमनसो वैषयिकसुखोन्मुखस्य सर्वं संसारकारणं भवति, यथा निम्बरसाक्रान्तरसनस्य क्षीरशर्करादिकं सर्वं मधुरं कटुतया परिणमते । सम्यग्दृष्टेस्तु विषयवितृष्णस्य सर्वं स्रक्चन्दनवनिताऽऽदिकमशुचि दुःखकारणं चेति भावयतः प्रादुर्भूतसंवेगस्य तदेव मोक्षजनकं भवति ।

उक्तार्थमेव द्रढयितुं परावृत्य कथयति—" जे परिस्सवा " इत्यादि । य एव परिस्रवाः=निर्जराहेतवस्तपःसंयमादयस्त एव कर्मोदयप्रतिरुद्धशुभपरिणामस्य सावद्यक्रियाप्रवृत्तस्य जन्तोर्ऋद्धिरससातगौरवप्राप्तिमनसः आस्रवा भवन्ति । कर्मनिर्जरार्थं यावन्ति संयमस्थानानि तावन्त्येव कर्मबन्धनायासंयमस्थानानि । यथा नागेश्वरीब्राह्मण्याः परिस्रवा आस्रवरूपेण परिणता बभूवुः ॥

राग द्वेषसे आकुल एवं वैषयिक सुखमें लवलीन जीवके लिये पंचेन्द्रियों के सभी विषय संसारके कारण होते हैं। जैसे–नीम के रसपान करनेसे जिसकी जीभका स्वाद कटु (कडुआ) हो चुका है ऐसे व्यक्ति के लिये मीठा पदार्थ भी कडुआ प्रतीत होता है। सम्यग्दृष्टि जीवके लिये, कि जिसका चित्त विषयादिकोंसे वितृष्ण–तृष्णारहित हो चुका है, वे ही माला चन्दन आदि समस्त विषय अपवित्र और दुःखके ही कारणरूप प्रतीत होते हैं, अत इनसे उनका चित्त सदा विरक्त रहा करता है, इसलिये उनके प्रति संवेगभाव की जागृति होनेसे वे ही वस्तुएं उसके लिये निर्जराका काम करती हैं।

निर्जरा ही मोक्षका कारण है, इसी बातको दृढ करनेके लिये ऊपर कहे हुए अर्थको ही घुमाकर कहते हैं–(२) " ये परिस्रवास्ते आस्रवाः ' इत्यादि। जो तपसंयमादिक भाव ज्ञानी के 'परिस्रवाः' निर्जरा के कारण होते हैं, वे ही अज्ञानी के कि–जिस की अपने कर्मके

રાગદ્વેષથી વ્યાકુળ તેમજ વૈષયિક સુખમા રાચેલાં જીવોને માટે પાંચ ઈન્દ્રિયોના બધા વિષયો સંસારના કારણ થાય છે, જેમ લીંબડાનો રસ પીવાથી જેની જીભનો સ્વાદ કડવો બનેલ છે તેવી વ્યક્તિને માટે મીઠો પદાર્થ પણ કડવો લાગે છે. સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ કે જેનું ચિત્ત વિષયાદિકની તૃષ્ણાથી રહિત છે તે માળા, ચન્દન આદિ સમસ્ત વિષયોને અપવિત્ર અને દુઃખનુ કારણ માને છે, તેથી તે વિષયોથી તેનું ચિત્ત હમેશા વિરક્ત રહ્યા કરે છે. આ માટે તેના પ્રતિ સંવેગભાવની જાગ્રતિ થવાથી તે જ વસ્તુઓ તેને માટે નિર્જરાનું કામ કરે છે.

નિર્જરા જ મોક્ષનુ કારણ છે. આ વાતને દૃઢ કરવાને માટે ઉપર કહેલા અર્થને જ ફેરવીને કહે છે–(૨) 'ये परिस्रवास्ते आस्रवाः' ઈત્યાદિ. જે તપ, સંયમ આદિ ભાવો જ્ઞાની માટે 'परिस्रवाः' નિર્જરાના કારણ થાય છે, તે અજ્ઞાની માટે–

ये अनास्रवाः=आस्रवेतराः-व्रतविशेषाः, तेऽपि कर्मोदयवशादशुभाध्यवसायवतो जन्तोरपरिस्रवाः=कर्मबन्धकारणानि भवन्ति, यथा वान्तसम्यक्त्वस्य मुनेः। तथा-ये अपरिस्रवाः=कर्मबन्धहेतवः ते प्रवचनोपकारादिना क्रियमाणाः अनास्रवाः भवन्ति, कर्मबन्धजनका न भवन्तीत्यर्थः, यथा वालग्लानाद्यर्थं नित्यपिण्डादिग्राहकस्य।

यद्वा—अत्र सूत्रे चतुर्भङ्गी प्रोच्यते, तथाहि—

उदयसे शुभ परिणामधारा रुकी हुई है, सावद्य क्रियाओं के करनेमें ही जिसकी प्रवृत्ति चालू रहती है, और जो ऋद्धि, रस, सात गौरवकी प्राप्ति करनेके अभिप्राय से ही तप संयमादिकोंका आराधन करता है उसके आस्रव-नवीन २ कर्मों के आने के द्वार होते हैं। समकितके विना की गई समस्त ही क्रियाएं कर्मबन्धका कारण होती हैं। अज्ञानियों के तपसंयमादिक, समकित के अभावमें मिथ्यारूप-असंयमरूप होते हैं, अतः वे उसके निर्जराके हेतु न हो कर उल्टे आस्रवके ही कारण बनते हैं। समकिती के कर्मनिर्जराके लिये जितने भी संयमस्थान हैं उतने ही अज्ञानियों के कर्मबन्धके लिये असंयमस्थान भी हैं। इस विषयमें नागेश्वरी ब्राह्मणीका दृष्टान्त प्रसिद्ध है, उसके लिए परिस्रव आस्रवरूपसे परिणत हुए हैं।

(३) 'ये अनास्रवास्ते अपरिस्रवाः'—जिनसे कर्मबन्ध नहीं होता ऐसे जो व्रतविशेष हैं वे भी, कर्मोदयके वशसे जिसके अध्यवसाय अशुभ हो रहे हैं ऐसे अज्ञानी जीवके लिये कर्मबन्धके ही कारण होते हैं।

જેની પોતાના કર્મના ઉદયથી શુભપરિણામધારા બન્ધ છે, સાવદ્ય-ક્રિયાઓ કરવામાં જ જેની પ્રવૃત્તિ ચાલુ છે, અને જે ઋદ્ધિ, રસ, સાત ગૌરવની પ્રાપ્તિ કરવામાં જ તપસંયમાદિનું આરાધન કરે છે તેને માટે આસ્રવના-નવા નવા કર્મોના આવવાના-દ્વાર થાય છે સમકિત વગર કરવામાં આવેલી બધી ક્રિયાઓ કર્મબંધના કારણ થાય છે અજ્ઞાનિઓના તપ સંયમાદિ સમકિતના અભાવમાં મિથ્યારૂપ-અસંયમરૂપ થાય છે, તેથી તે નિર્જરાના હેતુ ન થઈને આસ્રવના જ કારણ બને છે. સમકિતીના કર્મનિર્જરાને માટે જેટલા પણ સંયમ-સ્થાનો છે તેટલા જ અજ્ઞાનિઓના કર્મબંધના માટે અસંયમ-સ્થાનો પણ છે. આ વિષયમા નાગેશ્વરી બ્રાહ્મણીનું દૃષ્ટાંત પ્રસિદ્ધ છે. તેને માટે પરિસ્રવ, આસ્રવરૂપથી પરિણત થયેલ છે.

(૩) 'ये अनास्रवास्ते अपरिस्रवाः' જેનાથી કર્મબંધ નથી થતા એવા જે વ્રત-વિશેષ છે તે પણ કર્મોદયના વશથી જેના અધ્યવસાય અશુભ જ રહેલા છે, એવા અજ્ઞાની જીવને માટે કર્મબંધના જ કારણ બને છે.

(१) ये आस्रवास्ते परिस्रवाः, (२) ये आस्रवास्ते अपरिस्रवाः,

(३) ये अनास्रवास्ते परिस्रवाः, (४) ये अनास्रवास्ते अपरिस्रवाः,

(१) ये आस्रवाः-आस्रवन्ति=कर्म संचिन्वन्तीत्यास्रवाः=कर्मबन्धकर्तारो जीवाः, त एव परिस्रवाः=कर्मनिर्जराकर्तारः। अस्मिन् प्रथमभङ्गे सर्वे संसारिणो जीवाः प्रविष्टाः, ते हि प्रतिक्षणमिथ्यात्वादिभिरागन्तुकानां कर्मणां बन्धं, पूर्वार्जितानां च निर्जरां कुर्वन्ति।

तथा-(२) ये आस्रवास्ते अपरिस्रवाः, इति द्वितीयभङ्गवर्त्तिनो जीवाः

---

(४) 'ये अपरिस्रवास्ते अनास्रवाः' जो कर्मके बन्ध कराने में कारण होते हैं वे ही प्रवचनके उपकारके अभिप्रायसे किये हुए होने से कर्मबन्धके कारण नहीं होते, जैसे बालग्लानादिके लिये नित्यपिण्डादि का ग्रहण करना। इस सूत्रमें आदि अंत के दो ही भंग बतलाये गये हैं, मध्य के नहीं, उनका ग्रहण करने पर इस सूत्रमें चतुर्भङ्गी इस प्रकार से बनती है—

(१) ये आस्रवाः—ते परिस्रवाः, (२) ये आस्रवाः—ते अपरिस्रवाः

(३) ये अनास्रवाः—ते परिस्रवाः, (४) ये अनास्रवाः-ते अपरिस्रवाः

१-यहां पर प्रथम भङ्ग में समस्त संसारी जीवों का समावेश हो जाता है, कारण कि वे ही जीव प्रतिक्षण मिथ्यात्वादिक जो कर्मबन्धके कारण हैं उनसे कर्मोंका बन्ध करते रहते हैं, और पूर्वोपार्जित संचित कर्मों की निर्जरा भी किया करते हैं।

२-द्वितीय भङ्ग शून्य है; कारण-ऐसे कोई भी जीव नहीं हैं जो

---

(४) 'ये अपरिस्रवाः ते अनास्रवाः' જે કર્મબંધ કરાવવામાં કારણ બને છે, પ્રવચનના ઉપકાર કરવાના અભિપ્રાયથી કરવામાં આવેલ તે જ કર્મબંધના કારણ થતા નથી, જેમ બાળ-ગ્લાનાદિ માટે નિત્યપિંડાદિનું ગ્રહણ કરવું. આ સૂત્રમાં આદિઅંતના બે ભંગ બતાવેલ છે. મધ્યના નહિ. આના ગ્રહણ કરવાથી આ સૂત્રમાં ચતુર્ભંગી આ પ્રકારે બને છે—

(૧) ये आस्रवाः — ते परिस्रवाः, (२) ये आस्रवाः — ते अपरिस्रवाः,

(૩) ये अनास्रवाः — ते परिस्रवाः, (४) ये अनास्रवाः — ते अपरिस्रवाः।

(૧) અહીં પ્રથમ ભંગમાં સમસ્ત સંસારી જીવોનો સમાવેશ થઈ જાય છે, કારણ કે તે જ જીવ પ્રતિક્ષણ મિથ્યાત્વાદિક જે કર્મબંધના કારણ છે તેઓથી કર્મનો બંધ કરે છે, અને પૂર્વોપાર્જિત સંચિત કર્મોની નિર્જરા કરે છે.

(૨) બીજો ભંગ શૂન્ય છે; કારણ કે એવો કોઈ પણ જીવ નથી જે આસ્રવકર્તા

केऽपि नोपलभ्यन्ते, कुतः ? ये-आस्रवाः-कर्मबन्धकर्त्तारस्तेऽवश्यमेव कर्मनिर्जराकर्त्तारो भवन्ति, तस्मात्ते-अपरिस्रवाः=कर्मनिर्जरायाः अकर्त्तारो न भवन्ति।

तथा-(३) ये अनास्रवाः=कर्मबन्धस्याऽकर्त्तारस्ते परिस्रवाः=पूर्वकर्मनिर्जराकर्त्तारः, इत्येतस्मिन् तृतीयभङ्गे चायोगिकेवलिनश्चतुर्दशगुणस्थानवर्तिनः सन्ति।

तथा—(४) ये अनास्रवास्ते अपरिस्रवाः, इति चतुर्थभङ्गे सिद्धाः सन्ति, तेषामनास्रवत्वादपरिस्रवत्वाच्च। अत्राद्यन्तभङ्गौ सूत्रे गृहीतौ। आद्यन्तभङ्गग्रहणेन मध्यमभङ्गद्वयं सुतरां गृह्यते॥

यद्वा-ये आस्रवाः=कर्मबन्धकर्त्तारो जीवास्ते परिस्रवाः=कर्मनिर्जराकर्त्तारो भवन्ति। तथा-ये परिस्रवाः=कर्मनिर्जराकर्त्तारस्ते आस्रवाः=पुनर्नवीनकर्मबन्धकर्त्तारो भवन्ति।

आस्रवकर्ता होते हुए भी निर्जरा के कर्ता नहीं, जो कर्मबन्धके कर्ता होते हैं वे अवश्य ही कर्मकी निर्जरा के भी कर्ता होते हैं।

३-तृतीय भङ्गमें अयोगिकेवलिनामक चौदहवें गुणस्थान में रहनेवाले जीवोंका ग्रहण है, कारण कि उनके नवीन कर्मोंके बन्धका अभाव है, और पूर्वोपार्जित कर्मों की निर्जरा का सद्भाव है।

४-चतुर्थ भङ्ग में सिद्ध जीवोंका ग्रहण किया गया है, वहां पर न कर्मों का आस्रव है और न उनकी निर्जरा ही है।

अथवा-जो जीव आस्रव-कर्मबन्धके करनेवाले हैं वे परिस्रव-कर्मनिर्जराके करनेवाले हैं, तथा-जो परिस्रव-कर्मनिर्जरा के करनेवाले हैं वे आस्रव-फिरसे नवीन कर्मों के बन्ध करनेवाले हैं।

હોવા છતાં નિર્જરાનો કર્તા ન હોય? જે કર્મબંધનો કર્તા હોય છે તે અવશ્ય જ કર્મની નિર્જરાનો પણ કર્તા હોય છે

(૩) ત્રીજા ભંગમા અયોગિકેવળી નામના ચૌદમા ગુણસ્થાનમાં રહેવાવાળા જીવોનું ગ્રહણ છે, કારણ કે તેને નવા કર્મના બંધનો અભાવ છે, અને પૂર્વોપાર્જીત કર્મોની નિર્જરાનો સદ્‌ભાવ છે.

(૪) ચોથા ભંગમાં સિદ્ધ જીવોનુ ગ્રહણ કરેલુ છે. ત્યાં નથી કર્મોનુ આસ્રવ અને નથી તેઓની નિર્જરા.

અથવા-જે જીવો આસ્રવ-કર્મોના બંધ કરવાવાળા છે તે પરિસ્રવ-કર્મનિર્જરાના કરવાવાળા છે, તથા જે પરિસ્રવ-કર્મનિર્જરાના કરવાવાળા છે તે આસ્રવ-ફરી નવીન કર્મોના બંધ કરવાવાળા છે.

नन्वेवं 'ये परिस्त्रवास्ते आस्त्रवाः' इति स्वीकारे त्रयोदशे सयोगिकेवलिगुणस्थाने ऐर्यापथिकक्रियया समागतं कर्म निर्जरयतो मुनेः पुनर्नवीनकर्मबन्धापत्तौ सत्यां कर्मबन्धपरम्परोच्छेदः कदापि न स्यात्, तथा च-आगमोक्तमोक्षवादस्य वैयर्थ्यं प्रसज्येत ? इति चेत्, उच्यते—

त्रयोदशगुणस्थानसमागतकर्मणो निर्जरा यदि जीवेन प्रयत्नविशेषेण क्रियेत तर्हि यथोक्तरीत्या तन्निर्जराकर्तुर्मुनेः पुनरपि नवीनकर्मबन्धकर्तृत्वमापद्येत, परन्तु नैवं भवति, यतः-तस्य कर्मणो निर्जरा स्वभावादेव जायते ।

शंका—"जो निर्जरा करनेवाले हैं वे नवीन कर्मका बन्ध करनेवाले हैं" इस प्रकारके पूर्वोक्त भङ्गकी स्वीकृतिमें सयोगि-केवलिनामक तेरहवें गुणस्थानवर्त्ती जीवों के भी नवीन कर्मबन्धका सद्भाव मानना पडेगा; कारण कि वहां पर निर्जरा भी होती है और ईर्यापथ क्रियासे नवीन कर्मोंका बन्ध भी होता है। इस प्रकार की मान्यता के अनुसार तो वहां कभी भी कर्मबन्ध की परम्परा का उच्छेद ही नहीं हो सकेगा; फिर आगममें जिस मुक्तिवाद का समर्थन किया हुआ मिलता है वह सर्वथा असंगत ही ठहरेगा ?

उत्तर—यह आपका कहना तब ठीक हो सकता, जब कि त्रयोदश गुणस्थानवर्त्ती जीवके आगत कर्मों की निर्जरा किसी प्रयत्न विशेषसे साध्य होती मानी जाती, परंतु ऐसी मान्यता तो है ही नहीं, क्यों कि वहां पर आगत कर्मों की निर्जरा स्वतः-स्वभाव से ही होती है।

શંકા—'ये परिस्रवास्ते आस्रवाः' અર્થાત્-"જે નિર્જરા કરવાવાળા છે તે નવીન કર્મોના બંધ કરવાવાળા છે." આ પ્રકારે જો માનવામાં આવે તો સયોગિકેવળીનામના તેરમાં ગુણસ્થાનવર્તી જીવોને પણ નવા કર્મના બંધનો સદ્ભાવ માનવો પડશે, કારણ કે ત્યાં નિર્જરા પણ થાય છે અને ઇર્યાપથક્રિયાથી નવા કર્મનો બંધ પણ થાય છે. આવા પ્રકારની માન્યતાના અનુસાર તો ત્યાં કોઇ વખત પણ કર્મબંધની પરંપરાનો ઉચ્છેદ થઇ શકે નહિ, તો પછી આગમમાં જે મુક્તિવાદનું સમર્થન કરેલું છે તે સર્વથા અસંગત જ થઇ જશે.

ઉત્તર—આ આપનું કહેવું ત્યારે સંગત થાય, જ્યારે ત્રયોદશગુણસ્થાનવર્તી જીવના આગત-કર્મોની નિર્જરા કોઇ પ્રયત્નવિશેષાધીન માનવામાં આવે, પરન્તુ એવી માન્યતા તો છે જ નહિ, કેમ કે તે ઠેકાણે આગત (આવેલા) કર્મોની નિર્જરા સ્વભાવથી જ થાય છે.

अत्र परिस्रवपदार्थं जीवप्रयत्नकृता निर्जरा परिगृह्यते, एवं च नोक्तदोषप्रसङ्गः। त्रयोदशगुणस्थाने उक्तकर्मैव जीवो निर्जरयति, प्रथमसमये ऐर्यापथिककर्मणो बन्धः, द्वितीये तद्वेदनं, तृतीये च तन्निर्जरेत्येवं क्रमेण बन्धो निर्जरा चेति द्वयं सयोगिकेवलिगुणस्थानं यावत् प्रवर्त्तते। तत्रत्या निर्जरा न जीवप्रयत्नजनिता किंतु स्वभावादेवेति पुनः पुनः स्मृतिपथमानेतव्यम्।

तथा-चतुर्दशगुणस्थानवर्तिजीवोऽपि नैतद्वाक्यविषयः। तस्याघातिकर्मचतुष्टयनिर्जराकर्तृत्वं प्रयत्नविशेषमनपेक्ष्य भवति, केवलज्ञानोत्पत्तौ सत्यां तत्सामर्थ्यादवशिष्टकर्मचतुष्टयनिर्जराया अवश्यम्भावनिष्पत्तेः।

"परिस्रव" इस शब्द में जीवके प्रयत्न से होनेवाली निर्जरा का ही ग्रहण किया गया है, अतः उस गुणस्थानवर्त्ती जीव के नवीन कर्मबंध के प्रति कर्तापन किसी प्रकार भी संभवित नहीं हो सकता है। वहां प्रथम समय में ईर्यापथ क्रियासे आगत कर्मका बंध होता है, द्वितीय समयमें उसका वेदन और तृतीय समयमें उसकी निर्जरा। इस प्रकारका क्रम उस जीव के तब तक चालू रहता है जब तक उस जीव के उस गुणस्थानवर्त्तीपना रहता है, अतः यह मानना कि-उसके आगत कर्मों की निर्जरा किसी प्रयत्नविशेषाधीन होती है, यह एक भ्रम ही है, क्यों कि उन कर्मों की निर्जरा तो स्वाभाविक ही है।

तथा चौदहवें गुणस्थानवर्त्ती जीवमें अवशिष्ट अघातिया कर्मोंकी निर्जरा के प्रति कर्तृत्व प्रयत्नविशेषके विना स्वतः ही है, कारण कि केवलज्ञानकी उत्पत्ति होने पर उसके प्रभावसे उन अघातिया कर्मों की

"परिस्रव" આ શબ્દમાં જીવના પ્રયત્નથી થવાવાળી નિર્જરાનુ જ ગ્રહણ કરેલ છે, તેથી આ ગુણસ્થાનવર્તી જીવનુ નવીન કર્મબન્ધ કરવામાં કર્તાપણું કોઇ પણ પ્રકારે સભવિત થઈ શકતું નથી. ત્યા પ્રથમ સમયમાં ઇર્યાપથક્રિયાથી આગત (આવતા) કર્મનો બધ થાય છે, બીજા સમયમા તેનુ વેદન અને ત્રીજા સમયમાં તેની નિર્જરા આ પ્રકારનો ક્રમ તે જીવને ત્યાં સુધી ચાલુ રહે છે જ્યાં સુધી તે જીવને તે ગુણસ્થાનવર્તીપણુ રહે છે. આથી એમ માનવુ કે 'તેના આગત કર્મની નિર્જરા કોઈ પ્રયત્નવિશેષાધીન હોય છે.' એ એક ભ્રમ જ છે, કારણ કે તે કર્મોની નિર્જરા તો સ્વભાવથી જ થાય છે.

તથા—ચૌદમા ગુણસ્થાનવર્તી જીવમાં અવશિષ્ટ (બાકી રહેલા) અઘાતિયા કર્મોની નિર્જરા પ્રતિ કર્તાપણુ કોઇ એક પ્રયત્ન વગર સ્વતઃ જ છે. તેનું કારણ એ છે કે કેવળજ્ઞાનની ઉત્પત્તિ થતાં જ તેના પ્રભાવથી તે અઘાતિયા કર્મોની

एवञ्च—'ये आस्रवास्ते परिस्रवाः, ये परिस्रवास्ते आस्रवाः' इति पूर्वार्द्धवाक्यं चतुर्गतिभ्रमणाधिकारिजीवाभिप्रायेण कथितम्। 'ये अनास्रवास्ते अपरिस्रवाः, ये अपरिस्रवास्ते अनास्रवाः' इत्युत्तरार्द्धवाक्यं तु सिद्धापेक्षया; ते हि—नवीनकर्मबन्धकर्तृत्वाऽभावादनास्रवाः, सकलपूर्वकर्मक्षयेण नवीनकर्मबन्धाभावेन च निर्जरणीयकर्माभावात्कर्मनिर्जराया अकर्त्तारस्तस्मादपरिस्रवाः।

तथा—सकलपूर्वकर्मक्षयेण नवीनकर्मानागमनेन च निर्जरणीयकर्माभावात्कर्मनिर्जराया अकर्तृत्वाद् अपरिस्रवाः, नवीनकर्मबन्धकर्तृत्वाभावाच्च अनास्रवाः, इति।

निर्जरा नियमसे होती है, इसे रोकनेवाली कोई भी शक्ति नहीं है, इसलिये चौदहवें गुणस्थानवर्त्ती जीवके प्रति भी यह आक्षेप नहीं होता।

इस प्रकार "ये आस्रवास्ते परिस्रवाः, ये परिस्रवास्ते आस्रवाः" यह पूर्वार्ध वाक्य चतुर्गतियों में भ्रमण करनेके अधिकारी जीवों की अपेक्षा से ही कहा गया है। तथा—"ये अनास्रवास्तेअपरिस्रवाये: अपरिस्रवास्ते अनास्रवाः" यह उत्तरार्द्ध वाक्य सिद्धों की अपेक्षासे कहा गया है, कारण कि एक तो वे नवीन कर्मबन्धके कर्ता नहीं हैं इससे वे अनास्रव हैं। दूसरे उनमें पूर्वके सकल कर्मोंका क्षय और आगामी नवीन कर्मबंधका अभाव भी हो चुका है, इसलिये निर्जराके भी कर्ता नहीं माने गये हैं। इसलिये वे अपरिस्रव हैं। तथा—उनमें पूर्वसंचित सकल कर्म के क्षय से और नवीन कर्मों के नहीं आने के कारण निर्जरा करने योग्य कर्मोंके अभाव से कर्मोंकी निर्जराके कर्त्ता नहीं होने के कारण वे अपरिस्रव हैं, और नवीन कर्मोंके बन्ध नहीं करने के कारण वे अनास्रव हैं।

નિર્જરા નિયમથી થઈ જાય છે, તેને રોકવાવાળી કોઈ પણ શક્તિ નથી, માટે ચૌદમા ગુણસ્થાનવર્તી જીવના પ્રતિ પણ આ આક્ષેપ થઈ શકતો નથી.

આ પ્રકારે "ये आस्रवास्ते परिस्रवाः, ये परिस्रवास्ते आस्रवाः" આ પૂર્વાર્ધ વાક્ય ચતુર્ગતિયોમાં ભ્રમણ કરવાવાળા જીવોની અપેક્ષાથી જ કહેલ છે તથા—"ये अनास्रवास्ते अपरिस्रवाः. ये अपरिस्रवास्ते अनास्रवाः" આ ઉત્તરાર્ધ વાક્ય સિદ્ધોની અપેક્ષાએ કહેલ છે. કારણ કે એક તો તે નવા કર્મબંધના કર્તા નથી તેથી તે અનાસ્રવ છે બીજું તેમાં પૂર્વના સકળ કર્મનો ક્ષય અને. આગામી નવા કર્મબંધનો અભાવ પણ થઈ ચુકેલ છે, માટે નિર્જરા કરવાયોગ્ય કર્મોના અભાવ થવાથી તે નિર્જરાના પણ કર્તા માનવામાં આવેલ નથી, માટે તે અપરિસ્રવ છે તથા—તેમા પૂર્વસંચિત સકળ કર્મના ક્ષયથી, અને નવીન કર્મોનાં નહિ આવવાથી, નિર્જરા કરવાયોગ્ય કર્મોનો અભાવ થવાથી કર્મોની નિર્જરાના કર્તા નહિં હોવાને લીધે તે અપરિસ્રવ છે. અને નવીન કર્મો તો બંધ નહીં કરવાથી તે અનાસ્રવ છે.

यद्वा—अनास्रवापरिस्रवयोः क्रमं दर्शयति—'येऽनास्रवास्तेऽपरिस्रवाः' इति। ये प्रथमे समयेऽनास्रवा भवन्ति—कर्मबन्धका न भवन्ति, ते तत्पश्चात् समये अपरिस्रवा भवन्ति—कर्मनिर्जरका न भवन्ति, बद्धस्यैव कर्मणो निर्जरणीयत्वात्। एवं येऽपरिस्रवास्तेऽनास्रवा इति बोध्यम्। एतदपि व्याख्यानं सिद्धापेक्षया ॥ सू० १ ॥

यद्येवं ततः किम्? इत्याह—'एए पए' इत्यादि।

मूलम्—एए पए संबुज्झमाणे लोयं च आणाए अभिसमिच्चा पुढो पवेइयं ॥ सू० २ ॥

छाया—एतानि पदानि संबुध्यमानः लोकं चाज्ञयाऽभिसमेत्य पृथक् प्रवेदितम्।२।

टीका—एतानि=अनन्तरोक्तानि, पदानि='ये आस्रवास्ते परिस्रवाः' इत्यादीनि संबुध्यमानः=सम्यग् जानन्, तथा लोकं=षड्जीवनिकायम् आस्रवागतकर्मणा

अथवा—अनास्रव और अपरिस्रव के क्रमको दिखाते हैं—"ये अनास्रवास्ते अपरिस्रवाः' जो प्रथम समयमें अनास्रव हैं—कर्मबन्ध के कर्ता नहीं हैं, वे उसके बाद के समय में अपरिस्रव हैं—कर्म की निर्जरा करनेवाले नहीं हैं, कारण कि जो कर्मोंसे बंधा हुआ होता है वही उनकी निर्जरा करनेवाला भी होता है। जो कर्मोंसे बंधा हुआ ही नहीं है वह निर्जरा भी किसकी करेगा। इसी प्रकार "ये अपरिस्रवास्ते अनास्रवाः" यह वाक्य भी समझ लेना चाहिये। यह विवरण भी सिद्धोंकी अपेक्षा से ही किया गया है ऐसा समझना चाहिये ॥ सू० १ ॥

यदि ऐसा है तो इससे क्या? इसका उत्तर कहते हैं—'एए पए संबुज्झमाणे' इत्यादि।

इन पूर्वोक्त पदों को अच्छी तरहसे जाननेवाला कौनसा ऐसा प्राणी होगा जो आस्रवसे आये हुए कर्मों से बंधे हुए, और तप एवं संयम के

અથવા—અનાસ્રવ અને અપરિસ્રવના ક્રમને બતાવે છે—

"ये अनास्रवास्ते अपरिस्रवाः" જે પ્રથમ સમયમા અનાસ્રવ છે—કર્મબંધના કર્તા નથી તે ત્યારબાદના સમયમાં અપરિસ્રવ છે-કર્મની નિર્જરા કરવાવાળાં નથી, કારણ કે જે કર્મોથી બંધાએલા રહે છે તે તેની નિર્જરા કરવવાવાળા પણ હોય છે. જે કર્મોથી બંધાયેલા જ નથી તે નિર્જરા પણ કોની કરશે?. આ જ પ્રકારે "ये अपरिस्रवास्ते अनास्रवाः" આ વાક્ય પણ સમજી લેવું જોઈએ આ વિવેચન પણ સિદ્ધોની અપેક્ષાથી જ કરેલ છે ॥ સૂ૦ ૧ ॥

જો એમ છે તો તેનાથી શું? આનુ ઉત્તર કહે છે-'एए पए संबुज्झमाणे' ઇત્યાદિ।

તે પૂર્વોક્ત પદોને ઘણી સારી રીતે જાણનાર કોણ તેવો પ્રાણી હશે જે આસ્રવથી આવેલા કર્મોથી બંધાયેલા અને તપ સંયમના આરાધનથી રહિત આ

वध्यमानं, तपःसंयमसमाराधनेन च मुच्यमानम्, आज्ञया=आर्हतागमानुसारेण, अभिसमेत्य=सम्यग् विज्ञाय, पृथक्=अन्यान्यप्रकारेण प्रवेदितं च=अतीतानागतवर्तमानैः सर्वतीर्थंकरैः प्रबोधितं बन्धकारणं निर्जराकारणं च, अभिसमेत्य=ज्ञात्वा, को नाम धर्माचरणे प्रवृत्तो न भवेत्? अपि तु भवेदेवेत्यर्थः॥ सू० २॥

आर्हतप्रवचनानुसारी चतुर्दशपूर्वधरादिरपि जीवानां हिताय प्रवेदयतीत्याह- 'आघाइ नाणी' इत्यादि।

मूलम्—आघाइ नाणी इह माणवाणं संसारपडिवण्णाणं संबुज्झमाणाणं विन्नाणपत्ताणं अट्टावि संता अदुवा पमत्ता अहासच्चमिणं—तिबेमि ॥ सू० ३ ॥

छाया—आख्याति ज्ञानी इह मानवेभ्यः संसारप्रतिपन्नेभ्यः संबुध्यमानेभ्यः विज्ञानप्राप्तेभ्यः, आर्ता अपि सन्तः अथवा प्रमत्ताः यथासत्यमिदम् इति ब्रवीमि॥३॥

टीका—ज्ञानी=प्रवचनज्ञानसंपन्नः, इह=प्रवचने प्रोक्तं धर्मं मानवेभ्यः, आख्याति-इत्यन्वयः, मनुष्याणां सर्वसंवरचारित्रसंभवात्तेभ्य उपदिशतीत्यर्थः।

आराधनसे रहित इस षड्जीवनिकायरूप लोकको तथा अतीत, अनागत और वर्तमान समस्त तीर्थङ्करों द्वारा भिन्न २ प्रकारसे उपदिष्ट बंधके कारणों एवं निर्जरा के कारणों को जिनागमसे जान कर धर्माचरण करने में प्रवृत्त नहीं होगा ? अपितु अवश्य ही होगा॥ सू० २॥

अर्हत प्रभुके प्रवचनानुसार प्रवृत्ति करनेवाले चतुर्दशपूर्व के पाठी गणधरादिक भी जीवों के हितके लिये ही उपदेश करते हैं; यही बात प्रकट की जाती है-'आघाइ नाणी' इत्यादि।

जिनेन्द्रोपदिष्ट प्रवचनके ज्ञानसे संपन्न ज्ञानी गणधरादिक शास्त्रविहित धर्मका प्रतिपादन, हेयोपादेय-विवेकशील संसारी मनुष्यों के

षड्जीवनिकायरूप લોકને, તથા અતીત અનાગત અને વર્તમાન સમસ્ત તીર્થંકરો દ્વારા જુદા જુદા પ્રકારથી ઉપદિષ્ટ બંધના કારણોને અને નિર્જરાના કારણોને જીનાગમથી જાણીને ધર્માચરણ કરવામા પ્રવૃત્ત ન થાય ? પરન્તુ અવશ્ય જ થાય. ॥સૂ૦૨॥

અર્હન્ત પ્રભુના પ્રવચન અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરનાર ચતુર્દશ-ચૌદ પૂર્વના પાઠી ગણધરાદિક પણ જીવના હિતને માટે જ ઉપદેશ કરે છે. આ વાત પ્રગટ કરવામાં આવે છે-'आघाइ नाणी' ઈત્યાદિ.

જીનેન્દ્ર ભગવાને કહેલાં પ્રવચનના જ્ઞાનથી સંપન્ન જ્ઞાની ગણધરાદિક શાસ્ત્રવિહિત ધર્મનું પ્રતિપાદન હેયોપાદેયવિવેકશીલ સંસારી મનુષ્યોને માટે કરે છે. આ સૂત્રમાં

कथंभूतेभ्यो मानवेभ्यः ? संसारप्रतिपन्नेभ्यः=चतुर्गतिषु वर्तमानेभ्यः, केवलिप्रभृतीनामुपदेशश्रवणप्रयोजनं नास्तीति भावः। संसारिष्वपि धर्मग्रहणयोग्या एव उपदेशार्हा इत्यत आह–संबुध्यमानेभ्य इति, यथोपदिष्टं धर्मज्ञातृभ्य इत्यर्थः। असंज्ञिनो नोपदेशार्हाः, इत्यतस्तान् व्यावर्तयितुं विशेषणान्तरमाह–विज्ञानप्राप्तेभ्य इति हेयोपादेयज्ञानवद्भ्यः–सर्वथापर्याप्तकेभ्यः संज्ञिभ्य इत्यर्थः।

लिये करते हैं। इस सूत्रमें जिनेन्द्रप्रतिपादित सद्धर्मका उपदेश संसारी मानवों के लिये जो प्रकट किया गया है उसका कारण यही है कि उनमें ही सर्वसंवर और सर्वविरतिरूप चारित्र के आराधन करने की योग्यता रही हुई है। उनमें भी जो धर्मग्रहण करनेकी योग्यता से सम्पन्न होते हैं उन्हें ही धर्मका उपदेश दिया जाता है, और वहीं पर वह असरकारक होता है। जो अपर्याप्तावस्थामें रहे हुए हैं वे धार्मिक उपदेशके पात्र नहीं हैं। यही बात ' संबुध्यमान ' और ' विज्ञानप्राप्त ' इन दो विशेषणों से प्रकट की गई है। जो धार्मिक उपदेशको यथावत् नहीं समझ सकते वे उस उपदेश से लाभ भी कुछ नहीं प्राप्त कर सकते। एवं जो अपर्याप्त हैं, असंज्ञी हैं, उन पर भी उपदेश अपना कुछ भी प्रभाव नहीं दिखा सकता। मनके विना विचारशक्तिका अभाव होनेसे वे उस लाभसे सर्वथा वंचित ही रहते हैं, अतः जो संज्ञी हैं, जिनमें ' यह हेय है यह उपादेय है ' इस प्रकारका ज्ञान जागृत हो रहा है, वहीं पर दिया गया धार्मिक उपदेश अपना प्रभाव प्रकट करता है।

જિનેન્દ્રપ્રતિપાદિત સદ્ધર્મનો ઉપદેશ સંસારી જીવોને માટે જે પ્રગટ કરવામાં આવેલ છે તેનું કારણ એ જ છે કે તેમાં સર્વ–સંવર અને સર્વ–વિરતિરૂપ ચારિત્રનું આરાધન કરવાની યોગ્યતા રહેલી છે. તેમાં પણ જે ધર્મ ગ્રહણ કરવાની યોગ્યતાથી સંપન્ન હોય છે તેને જ ધર્મનો ઉપદેશ આપવામાં આવે છે, અને ત્યાં જ તે અસરકારક પણ થાય છે. જે અપર્યાપ્તાવસ્થામાં રહેલાં છે તે ધાર્મિક ઉપદેશને પાત્ર નથી, આ વાત ' संबुध्यमान ' અને ' विज्ञानप्राप्त ' આ બે વિશેષણોથી પ્રગટ કરેલ છે. જે ધાર્મિક ઉપદેશને યથાવત્ નથી સમજી શકતા તે એ ઉપદેશથી કાંઇ પણ લાભ પ્રાપ્ત કરી શકતા નથી. તેમજ જે અપર્યાપ્ત છે–અસંજ્ઞી છે તેની ઉપર પણ ઉપદેશ પોતાનો કાંઈ પણ પ્રભાવ પાડી શકતો નથી. મન વગર વિચાર–શક્તિનો અભાવ હોવાથી તે એ લાભથી સર્વથા દૂર જ રહે છે, પણ જે સંજ્ઞી છે જેમાં ' આ હેય છે, આ ઉપાદેય છે ' આવા પ્રકારના જ્ઞાનની જાગૃતિ છે તેવાઓને ધર્મનો ઉપદેશ પોતાનો પ્રભાવ બતાવી શકે છે.

ज्ञानीका दिया गया धार्मिक उपदेश इस पद्धति का होता है जो पूर्वोक्त-विशेषणविशिष्ट मानवों में अपने कर्तव्य मार्गकी अवश्य २ जागृति करता हुआ उन्हें धर्मकी भावनासे भावित कर देना है। यदि कोई किसी कारण से आतुर-पीडित या प्रमत्त-प्रमाददशावाला भी हो तो भी वह उस उपदेशद्वारा प्रतिबोधित हो जाता है। यही "अट्टावि संता अदुवा पमत्ता" इस पद से स्पष्ट किया गया है। किसी कारणवश जो आर्तध्यानमें लवलीन हैं, अथवा रागद्वेष आदि कारणों से या वैषयिक किसी भी संबंध से जो प्रमत्त हो रहे हैं; ऐसे मानव भी ज्ञानी के दिव्य उपदेश से धार्मिक लाभसे संपन्न हुए हैं। जैसे-आर्त चिलातिपुत्र वगैरह और प्रमत्त शालिभद्रादिकोंने धर्मका लाभ ज्ञानीके उपदेशसे लिया है।

इस सूत्रमें "मनुष्यों के लिये ज्ञानी धर्मका उपदेश देते हैं" यह जो प्रकट किया गया है, उसका कारण यह है कि-उनमें सर्वसंवर और सर्वविरतिरूप चारित्राराधन करनेकी अधिकारिता है। यद्यपि प्रभुका धार्मिक आख्यान-स्रोत मेघधाराकी तरह एकसी धारामें सर्वत्र पक्षपात रहित वहता है। उनकी पर्षदा-समवसरण-में जो (१२) बारह प्रकारकी परिषद होती है उसमें सबके लिये प्रभुकी दिव्यवाणी एकरूपमें विना किसी भेदभावके उन २ जीवोंकी भाषामें परिणत होती है।

જ્ઞાનીએ આપેલ ધાર્મિક ઉપદેશ પણ આ પદ્ધતિનો હોય છે જે પૂર્વોક્ત વિશેષણ-વિશિષ્ટ મનુષ્યોમાં પોતાના કર્તવ્ય માર્ગની અવશ્ય અવશ્ય જાગ્રતિ કરતાં કરતાં તેમાં ધર્મની ભાવના ભરી દે છે. કદાચ કોઇ કોઈ કારણથી પીડિત અગર પ્રમાદદશાવાળા પણ હોય તો પણ તે આ ઉપદેશદ્વારા પ્રતિબોધિત થઈ જાય છે, માટે "अट्टा वि संता अदुवा पमत्ता" આ પદોથી સ્પષ્ટ કરેલ છે. કોઇ કારણ વશ જે આર્ત્તધ્યાનમાં તત્પર છે, અથવા રાગદ્વેષ આદિ કારણોથી યા વૈષયિક કોઇ પણ સંબંધથી જે પ્રમત્ત થઈ રહ્યા છે; એવા મનુષ્ય પણ જ્ઞાનીના દિવ્ય ઉપદેશથી ધાર્મિક લાભ પ્રાપ્ત કરે છે, જેમ આર્ત્ત-ચિલાતિપુત્ર વિગેરે, અને પ્રમત્ત—શાલિભદ્રાદિકોએ ધર્મનો લાભ જ્ઞાનીના ઉપદેશથી લીધો છે.

આ સૂત્રમાં "મનુષ્યોને માટે જ્ઞાની ધર્મનો ઉપદેશ આપે છે" આ જે પ્રગટ કરેલ છે તેનું કારણ એ છે કે-તેમાં સર્વ-સંવર અને સર્વ-વિરતિરૂપ ચારિત્ર આરાધન કરવાની યોગ્યતા છે. પ્રભુનુ ધાર્મિક આખ્યાનસ્રોત વરસાદધારાની માફક એક ધારાથી સર્વત્ર પક્ષપાતરહિત વહે છે તેમની પર્ષદા-સમવસરણ-માં જે બાર પ્રકારની પરિષદ ભરાય છે તેમાં બધાને માટે પ્રભુની દિવ્ય વાણી કોઈ પણ ભેદભાવ વિના-એક રૂપમાં તે તે જીવોની ભાષામાં પરિણત થાય છે,

ज्ञानी यथा धर्ममाख्याति तथा दर्शयति-' आर्त्ताअपि ' इत्यादि । आर्त्ताअपि =कुतश्चित् कारणात् आतुरा अपि, अथवा रागद्वेषोदयात् अन्यस्माद् वा विषय-संगवशात् प्रमत्ता अपि सन्तः प्रतिबुध्यन्ते, यथा-आर्त्ताश्चिलातिपुत्रादयः, प्रमत्ताः शालिभद्रादयो धर्मं विदन्ति स्म, तथा ज्ञानी पुरुषो धर्ममुपदिशतीत्यर्थः। एतस्मिन् विषये श्रद्धानं विधेयमिति दर्शयितुमाह—' यथासत्यमिदम् ' इति । मया यत् कथितं कथ्यमानं च तदिदं यथासत्यं सत्यमनतिक्रम्य वर्त्तते-इत्यर्थः, मुमुक्षुर-

---

फिर भी जो यहां पर मनुष्यों के लिये ज्ञानी पुरुष धर्मका उपदेश देते हैं उसका कारण उनमें सर्वसंवर और सर्वविरतिरूप चारित्राराधन करने की योग्यता ही है । और उसी योग्यता को लक्षमें रख कर यह कहा गया है।

मनुष्यों के सिवाय अन्यगतियों के जीवों में यह योग्यता नहीं है। तिर्यञ्चगतिके जीव (५) पांच गुणस्थानों से आगे नहीं बढ़ सकते हैं। देवगति के जीवों में (४) चार गुणस्थान ही पाये जाते हैं, अन्य गुणस्थान नहीं। मनुष्यों में ही (१४) चौदह गुणस्थानोंके आराधन करनेकी योग्यता है । इतना होने पर भी जो पर्याप्त नहीं हैं किन्तु अपर्याप्तदशावर्त्ती हैं, वे उपदेशके पात्र ही नहीं है ।

' निर्वृत्त्यपर्याप्तक ' वे हैं—जिनकी अभी पर्याप्तियां पूर्ण नहीं हुई हैं, एक अन्तर्मुहूर्त में नियम से पूर्ण हो जावेंगी । ' लब्ध्यपर्याप्तक ' वे हैं-जो पर्याप्तियों की पूर्णतासे रहित हैं, और अन्तर्मुहूर्त में जिनका मरण

તો પણ જે આ ઠેકાણે ' મનુષ્યોને માટે જ્ઞાની પુરૂષ ધર્મનો ઉપદેશ આપે છે ' આવું જે કહેવામા આવ્યુ છે તેનું કારણ તેમાં સર્વ–સંવર અને સર્વ–વિરતિરૂપ ચારિત્ર આરાધન કરવાની યોગ્યતા જ છે. અને તે યોગ્યતાને ધ્યાનમાં રાખીને આ કહેવામાં આવેલ છે.

મનુષ્ય સિવાય બીજી ગતિઓના જીવોમાં આ યોગ્યતા નથી. તિર્યંચ ગતિના જીવો પાંચ ગુણસ્થાનથી આગળ વધી શકતા નથી. દેવગતિમાં જીવોને ચાર ગુણસ્થાન જ દેખાય છે, બીજા ગુણસ્થાનો નથી. મનુષ્યોમાં જ ચૌદ ગુણ-સ્થાન આરાધન કરવાની યોગ્યતા છે. આટલું હોવા છતાં જે પર્યાપ્ત નથી પણ અપર્યાપ્તદશાવર્તી છે તે ઉપદેશને પાત્ર નથી

' निर्वृत्यपर्याप्तक ' તે છે, જેની હજુ પર્યાપ્તિઓ પુરી થઇ નથી, એક અંતર્મુહૂર્તમાં નિયમથી પૂર્ણ થશે. ' लब्ध्यपर्याप्तक ' તે છે જે પર્યાપ્તિઓની પૂર્ણ-તાથી રહિત છે, અને અંતર્મુહૂર્તમાં જેનું મરણ અવશ્યંભાવી છે, તે સંમૂર્ચ્છિમ

स्मिन् विषये सम्यक्त्वं कुर्यादिति भावः। इति=इदं ब्रवीमि=यथा मया भगवद्वाक्यं श्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः। दुर्लभं सम्यक्त्वं चारित्रं वा प्राप्य प्रमादो न कर्तव्य इति भावः॥ सू० ३॥

प्रमादवतां संसारिणां पुनः पुनर्मरणं जन्म च निरवसानं भवतीति बोधयितुमाह —'नाणागमो' इत्यादि।

अवश्यंभावी है। ये संमूर्च्छिम मनुष्य होते हैं। इसी बातको प्रकट करने के लिये सूत्र में 'संवुध्यमान' और 'विज्ञानप्राप्त' ये दो विशेषण दिये गये हैं।

कैसी २ दशासंपन्न जीवों ने प्रभुकी धर्मदेशना से धर्मलाभ लिया है, यह बात चिलातिपुत्र और शालिभद्र आदिके दृष्टान्तसे स्पष्ट की गई है। इनका कथानक शास्त्रों में वर्णित है।

हे जम्बू! इस विषयमें जो मैंने कहा है, अथवा आगे भी जो कहा जायगा वह सब सर्वथा सत्य ही है। मुमुक्षुका कर्तव्य है कि वह इस विषयमें पूर्ण श्रद्धालु हो, कारण कि प्रभुके मुख से जैसा सुना है वैसा ही मैं तुझे कहता हूं, अतः हे जम्बू! दुर्लभ सम्यक्त्व और चारित्रको प्राप्त कर प्रमादका सेवन न करो, यही बारबार कहना है ॥सू० ३॥

प्रमादी संसारी जीवोंका पुनः पुनः मरण और जन्म निरंतर होता रहता है, यही प्रकट किया जाता है–'नाणागमो' इत्यादि।

મનુષ્ય હોય છે, આ જ વાતને પ્રગટ કરવાને માટે સૂત્રમાં 'संवुध्यमान' અને 'विज्ञानप्राप्त' એ બે વિશેષણો આપેલા છે

કેવી કેવી દશાવાળા જીવોને પ્રભુની ધર્મદેશનાથી ધર્મનો લાભ થયેલ છે તે વાત ચિલાતિપુત્ર અને શાલિભદ્ર આદિના દૃષ્ટાન્તથી સ્પષ્ટ છે. (આની કથા શાસ્ત્રોમાં વર્ણવેલી છે)

હે જમ્બૂ! આ વિષયમાં જે મે કહ્યુ છે અને આગળ પણ જે કહેવામાં આવશે તે બધું સાચું જ છે. મોક્ષાભિલાષીનું કર્તવ્ય છે કે તે આ વિષયમાં પૂર્ણ શ્રદ્ધાળુ રહે; કારણ કે પ્રભુના મુખથી જેવું સાંભળ્યું છે તેવું જ હું તમોને કહું છું, માટે હે જમ્બૂ! દુર્લભ સમ્યક્ત્વ અને ચારિત્રને પ્રાપ્ત કરીને પ્રમાદનું સેવન ન કરો, એ જ વારંવાર કહેવાનુ છે. ॥ સૂ૦ ૩ ॥

પ્રમાદી સંસારી જીવોના વારંવાર મરણ અને જન્મ નિરંતર થયા કરે છે, તેને પ્રગટ કરવામાં આવે છે–' नाणागमो ' ઈત્યાદિ.

मूलम्—नाणागमो मच्चुमुहस्स अत्थि, इच्छा पणीया वंकानि-केया कालग्गहीया निचये निविट्ठा पुढो पुढो जाइं पकप्पयंति ।सू०४।

छाया—नाऽनागमो मृत्युमुखस्यास्ति, इच्छा प्रणीता वङ्कानिकेताः, काल-गृहीता निचये निविष्टाः पृथक् पृथग् जातिं प्रकल्पयन्ति ॥ सू० ४ ॥

टीका—मृत्युमुखस्यानागमः संसारिणां नास्तीत्यन्वयः । एवंभूतः कश्चिदपि संसारी नास्ति, य उपक्रमेण निरुपक्रमेण वा मृत्युमुखे नाऽऽपततीत्यर्थः । उपक्रमो =निमित्तं-दण्डकशाशस्त्ररज्जुविषादयः, निरुपक्रमो=निमित्ताभावः । तथा चोक्तम्—

" नश्यति नौति याति वितनोति करोति रसायनं क्रियां,
चरति गुरुव्रतानि विवराण्यपि विशति विशेषकातरः ।
तपति तपांसि खादति मितानि करोति च मन्त्रसाधनं,
तदपि कृतान्तदन्तयन्त्रक्रकचक्रमणैर्विदार्यते " ॥ १ ॥ इति,

ऐसा कोई संसारी जीव नहीं है जो कि उपक्रम-निमित्तसे अथवा अनुपक्रम-विना निमित्त से मृत्युके मुखमें नहीं पड़ता हो। कहा भी है—

" नश्यति नौति याति वितनोति करोति रसायनक्रियां,
चरति गुरुव्रतानि विवराण्यपि विशति विशेषकातरः ।
तपति तपांसि खादति मितानि करोति च मन्त्रसाधनं,
तदपि कृतान्तदन्तयन्त्रक्रकचक्रमणैर्विदार्यते ॥ १ ॥" इति ।

अर्थात्—कायर पुरुष मृत्युके भयसे चाहे कहीं भग जाय, या मृत्यु की लाचारी करे, कहीं चला जाय, कोई प्रपञ्च करे, अथवा अमर होनेके लिये रसायन क्रिया (कायाकल्प) करे, तथा बड़े २ व्रत करे, पहाड़ों की गुफाओं में छिप जावे, अनेक प्रकारके तप तपे, परिमित खोराक खावे,

---

એવો કોઈ સંસારી જીવ નથી જે નિમિત્તથી અથવા વગર નિમિત્તથી મૃત્યુના મુખમાં ન પડતા હોય. કહ્યુ છે—

" नश्यति नौति याति वितनोति करोति रसायनक्रियां,
चरति गुरुव्रतानि विवराण्यपि विशति विशेषकातरः ।
तपति तपांसि खादति मितानि करोति च मन्त्रसाधनं,
तदपि कृतान्तदन्तयन्त्रक्रकचक्रमणैर्विदार्यते " ॥ १ ॥ इति ।

અર્થાત્—કાયર પુરૂષ મૃત્યુના ભયથી ભલે કોઇ જગ્યાએ ભાગી જાય, અથવા મૃત્યુની લાચારી કરે, કોઈ જગ્યાએ ચાલી જાય, કોઇ પ્રપંચ કરે, અથવા અમર થવાને માટે રસાયન ક્રિયા (કાયાકલ્પ) કરે, તથા મોટા વ્રત કરે, પહાડોની ગુફાઓમાં છુપાઇ જાય, અનેક પ્રકારના તપ કરે, પરિમિત ખોરાક ખાય, મંત્ર-

ये तु रागान्धतया प्रमत्ता धर्मं नाभिजानन्ति ते किंभूता भवन्तीत्याह-'इच्छा' इत्यादि। इच्छया=विषयसुखवाञ्छया, प्रणीताः=विषयाभिमुखं प्रकर्षेण नीताः, इच्छापरतन्त्रा इत्यर्थः। यद्वा-इहेन्द्रियाद्यनुकूला प्रवृत्तिरिच्छा, तया संसाराभिमुखं

मन्त्रसाधना करे; तो भी वह कराल कालके तीखे दांतों से चीरा ही जाता है, अर्थात् किसी प्रकार भी प्राणी मृत्यु से नहीं बच सकता ॥१॥

उपक्रम—मृत्युका निमित्त कारण। जैसे-दण्ड, चाबुक, शस्त्र, रस्सी, विष आदि। निरुपक्रम—निमित्त रहित-आयुके पूर्ण होने पर अपने-आप मृत्युको प्राप्त होना।

इस सूत्र में यह प्रकट किया जा रहा है कि जो राग और द्वेषसे अन्धे होकर प्रमादी हुए हैं और धर्म को नहीं जान रहे हैं वे विषय-सुख की वाञ्छा से ही विषयों में आसक्त होते हैं। अपनी उस अभि-लाषा की पूर्त्तिकरनामात्र ही वे अपना परम कर्तव्य समझते हैं। इस समय उन्हें न्याय अन्याय का कुछ भी ध्यान नहीं रहता है। इच्छा की पूर्ति करनामात्र ही एक लक्ष्य होता है। इन्द्रियों के अनुकूल प्रवृत्तिका नाम ही इच्छा है। जो इन्द्रियोंके इन्हें अनुकूल जचा उसमें ही अन्धे होकर ये गिर पड़ते हैं, 'इसका भविष्यमें क्या परिणाम होगा?' यह विचार इन्हें नहीं रहता। इच्छाओंके आधीन बने हुए मनुष्य संसारकी ओर ही दौड़ लगा रहे हैं। निवृत्तिमार्गसे वे दूर हैं। निवृत्तिमार्गकी प्राप्ति

સાધના કરે તો પણ તે કરાળકાળના તીખા દાંતથી ચિરાઈ જ જાય છે, અર્થાત્ પ્રાણી મૃત્યુથી કોઈ પ્રકારે પણ બચી શકતો નથી. ॥ ૧ ॥

उपक्रम—મૃત્યુનું નિમિત્તકારણ, જેમ-દંડ, ચાબુક, શસ્ત્ર, રસ્સી, વિષ આદિ.

निरुपक्रम—નિમિત્તરહિત-આયુષ્ય પુરૂ થવાથી આપમેળે મૃત્યુને વશ થવું.

આ સૂત્રમાં એમ કહેવામાં આવેલ છે કે જેઓ રાગ અને દ્વેષથી અંધ બનીને પ્રમાદી બને છે અને ધર્મને જાણતા નથી તેઓ વિષયસુખની ઈચ્છાથી વિષયોમાં આસક્ત બને છે. પોતાની આ ઈચ્છાને પૂર્ણ કરવામાં જ પોતાનું પરમ કર્તવ્ય સમજે છે આ વખતે ન્યાય અન્યાયનો કોઈ ખ્યાલ રાખતો નથી. ઈચ્છાને પૂર્ણ કરવાનો જ માત્ર એક ખ્યાલ રાખે છે ઈન્દ્રિયોને અનુકૂળ પ્રવૃત્તિનું નામ જ ઈચ્છા છે. જે ઈન્દ્રિયોને અનુકૂળ ગમ્યું તેમાં જ અંધ બનીને તેઓ પડે છે. 'એનું ભવિષ્યમાં શું પરિણામ આવશે?' આ વિચાર એને નથી આવતો. ઈચ્છાઓને આધીન બનેલો મનુષ્ય સંસારની તરફ જ દોટ લગાવે છે. નિવૃત્તિ માર્ગથી તે દૂર છે. નિવૃત્તિ માર્ગની પ્રાપ્તિ વિના ઈચ્છાઓ પર અંકુશ થતો

प्रणीता इत्यर्थः। अत एव—वङ्कानिकेताः वङ्कः असंयमस्तस्य आ—समन्तात् निकेताः आश्रयाः, अत एव-कालगृहीताः=कालेन-मृत्युना गृहीताः-पुनःपुनर्मरणदुःखभागिनः, यद्वा—कालगृहीताः—गृहीतः कालो यैस्ते कालगृहीताः, आर्षत्वान्निष्ठान्तस्य परनिपातः, धर्माचरणाय कालाभिसन्धायिनः—'वृद्धावस्थायां परुद् वा परारि वा तनयदुहितृपरिणयानन्तरं वा धर्मं करिष्यामः' इत्येवं संकल्पकारिण इत्यर्थः। अत एव निचये निविष्टाः=द्रव्यतो हिरण्याद्युपचये, भावतः कर्मोपचये निविष्टाः=संलग्नाः सन्तः, पृथक् पृथक् अन्यामन्याम् जातिम्=एकेन्द्रियादिकाम् अनन्तवारं प्रकल्पयन्ति

विना, इच्छाओं पर अंकुश नहीं हो सकता है, यह निर्विवाद सिद्ध है। जहां तक प्रवृत्तिमार्ग है वहीं तक संसार है। निवृत्तिमार्गकी प्राप्ति ही संसारका साक्षात् या परम्परारूपसे अन्त है। इच्छाओं पर विजय पाना यही तो संयमभाव है। इसके विपरीत असंयमभाव है। असंयमी जीव धर्मकी प्राप्ति करने में काल—समयका बहाना किया करते हैं— "अभी तो जवानीका समय है सांसारिक आनन्द भोग लूं, वृद्धावस्था आने पर धर्म धारण कर लूंगा। अथवा आगामी वर्ष में या उसके बाद के वर्ष में अथवा पुत्र—पुत्रियों का विवाह करके फिर धर्म करूंगा।" इस प्रकार का विचार करते २ ही वे काल के ग्रास बन जाते हैं और धर्मके लाभ से वंचित रह जाते हैं। विषयेच्छा के आधीन बना हुआ संसारी मनुष्य जिस किसी प्रकारसे हिरण्य—सुवर्णादिक परिग्रहके संचय करने में ही अपने जीवन के अधिकांश भाग को नष्ट कर देता है, और उपार्जित कर्मानुसार एकेन्द्रियादिक योनियोंमें अनंतवार जन्ममरण के अनंत

નથી, તે નિર્વિવાદ સિદ્ધ છે. જ્યા સુધી પ્રવૃત્તિમાર્ગ છે ત્યા સુધી સસાર છે. નિવૃત્તિમાર્ગની પ્રાપ્તિ સસારનો સાક્ષાત્ અગર પરંપરાથી અંત છે. ઇચ્છાઓ ઉપર વિજય મેળવવો તે જ સયમ—ભાવ છે. તેથી વિપરીત અસંયમભાવ છે. અસયમી જીવ ધર્મની પ્રાપ્તિ કરવામાં સમયનુ બહાનું બતાવે છે—'હજી તો જુવાનીનો સમય છે, સાંસારિક આનદ ભોગવી લઉં, વૃદ્ધાવસ્થા આવ્યા પછી ધર્મ ધારણ કરી લઈશ. અથવા—આગામી વર્ષમાં, અગર તેના બાદના વર્ષમાં, અથવા પુત્ર—પુત્રીઓના વિવાહ થયા પછી ધર્મ કરીશ' આવા પ્રકારના વિચાર કરી કરીને તે કાળનો ગ્રાસ બની જાય છે, અને ધર્મના લાભથી વંચિત રહી જાય છે. વિષયેચ્છાને આધીન બનેલા સસારી મનુષ્ય જે કોઇ પ્રકારથી હિરણ્ય—સુવર્ણાદિક પરિગ્રહનો સંચય કરવામાં જ પોતાના જીવનના અધિકાંશ ભાગને નષ્ટ કરે છે, અને ઉપાર્જીત—કર્માનુસાર એકેન્દ્રિયાદિક યોનિયોમાં અનંત વાર જન્મ મરણના

=जनयन्ति । रागद्वेषवशात्प्रमादिनः संसारिणो धर्ममनवबुध्य इन्द्रियानुकूलविषये मोहं प्राप्य पुनः पुनः कर्मोपचयं कुर्वन्तस्तद्‌बन्धात् मच्युता न भवन्तीति भावः ॥४॥

प्रमादवतां पुनः पुनर्जातिप्रकल्पने का हानिर्भवतीति शिष्यजिज्ञासायामाह— ' इहमेगेसिं तत्थ तत्थ ' इत्यादि ।

मूलम्—इहमेगेसिं तत्थ तत्थ संथवो भवइ । अहोववाइए फासे पडिसंवेयंति ॥ सू० ५ ॥

छाया—इहैकेषां तत्र तत्र संस्तवो भवति । अथऔपपातिकान् स्पर्शान् प्रति संवेदयन्ति ॥ सू० ५ ॥

टीका=अस्मिन् लोके, एकेषां=मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषायवतां, तत्र-तत्र= नरकादियातनास्थानेषु, संस्तवः=प्रकर्षेण परिचयो भवति, तत्र पुनः-पुनर्गमनवशा·

कष्टों को सहन करता रहता है । सारांश यह है कि-रागद्वेषके वश से संसारी जीव धर्म को नहीं समझ कर इन्द्रियां और मन के अनुकूल विषयों में मुग्ध होकर वारंवार कर्मपरंपरा की वृद्धि करता हुआ कर्मों से रहित नहीं होता है ॥ सू० ४ ॥

प्रमादशाली जीवों की एकेन्द्रियादिक योनियों में जन्म धारण करने पर क्या हानि होती है ? ऐसी शिष्यकी जिज्ञासा होने पर उत्तर देते हैं—' इहमेगेसिं ' इत्यादि ।

इस संसार में मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद और कषायवाले जीवों का छेदन, भेदन, बन्धन आदि कष्टों के स्थानभूत नरकादिमें वारम्बार उत्पन्न होने से उन नरकादिकोंके साथ अधिक परिचय हो जाता है, इससे वे वहां के दुःखों को भोगते रहते हैं ।

અનંત દુઃખોને સહન કરતા રહે છે. આ કથનનો સાર એ છે કે—રાગ દ્વેષના કારણથી સંસારી જીવ ધર્મને નહિ સમજીને ઈન્દ્રિયો અને મનના અનુકૂળ વિષયોમાં મુગ્ધ થઈને વારંવાર કર્મપરંપરાની વૃદ્ધિ કરે છે, અને કર્મોથી રહિત થતા નથી. ॥સૂ૦ ૪॥

પ્રમાદશાળી જીવોની એકેન્દ્રિયાદિક યોનિયોમાં જન્મ ધારણ કરવાથી શું નુકસાન થાય છે ? એવી શિષ્યની જીજ્ઞાસા થવાથી ઉત્તર આપે છે-'इहमेगेसिं' ઇત્યાદિ.

આ સંસારમાં મિથ્યાત્વ, અવિરતિ, પ્રમાદ અને કષાયવાળા જીવોને છેદન ભેદન, બન્ધન આદિ દુ:ખોના સ્થાનભૂત નરકાદિમાં વારંવાર ઉત્પન્ન થવાથી તે નરકાદિકોની સાથે અધિક પરિચય થઈ જાય છે, તે ત્યાંના દુઃખોને ભોગવતા રહે છે.

दिति भावः। तत्परिचये सति किं भवतीत्याह-'अधऔपपातिकान्'- इत्यादि। भोगेच्छापरतन्त्रतयेन्द्रियानुकूलाऽऽचरणेन नरकादिस्थानं संप्राप्ताः, अधऔपपातिकान्=नरकादिसम्बन्धिनः, स्पर्शान्=दुःखानि प्रतिसंवेदयन्ति=अनुभवन्ति ॥५॥

ननु भोगेच्छाविवशाः सर्वेऽपि अधऔपपातिकान् स्पर्शान् प्रतिसंवेदयन्ति, किं वा तेषु कश्चिदेवेति जिज्ञासायामाह—'चिट्ठं कूरेहिं' इत्यादि ।

मूलम्—चिट्ठं कूरेहिं कम्मेहिं चिट्ठं परिचिट्ठइ । अचिट्ठं कूरेहिं कम्मेहिं नो चिट्ठं परिचिट्ठइ ॥ सू० ६ ॥

छाया—तिष्ठन् क्रूरेषु कर्मसु भृशं परितिष्ठति । अतिष्ठन् क्रूरेषु कर्मसु नो भृशं परितिष्ठति ।

यद्वा—भृशं क्रूरैः कर्मभिः भृशं परितिष्ठति । अभृशं क्रूरैः कर्मभिः नो भृशं परितिष्ठति ॥ सू० ६ ॥

जो कर्मबन्ध के कारण मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद और कषाय के सेवन करनेमें ही रातदिन संलग्न रहते हैं, एवं विषयभोगों की इच्छा के आधीन होने से धार्मिक आचारविचार से शून्य हैं, इन्द्रियों के अनुकूल आचरण करने में ही जो लगे हैं वे मृत्यु के ग्रास बनकर नरकादियोनियों में-कि जहां पर छेदन, भेदन, बन्धनादि अपार कष्ट हैं-वार वार उत्पन्न होते हैं और वहां के उन अनन्त कष्टों को भोगते रहते हैं ॥सू०५॥

क्या विषयभोगोंकी इच्छा के पराधीन बने हुए समस्त ही प्राणी नरकादियोनियों के कष्टों को भोगते हैं या उनमें से कोई २ ? इस प्रकार के प्रश्नका उत्तर कहते हैं—'चिट्ठं कूरेहिं' इत्यादि ।

જે મનુષ્ય કર્મબંધના કારણ મિથ્યાત્વ અવિરતિ પ્રમાદ અને કષાયના સેવન કરવામાં રાત-દિન રચ્યો-પચ્યો રહે છે, અને વિષયભોગોની ઇચ્છાને અધીન હોવાથી ધાર્મિક આચાર વિચારથી શૂન્ય છે, ઇન્દ્રિયોના અનુકુળ આચરણ કરવામાં જ જે લાગેલ છે, તે મૃત્યુનો ગ્રાસ બનીને નરકાદિ યોનિયોમાં કે જે ઠેકાણે છેદન-ભેદન બંધનાદિ અપાર દુઃખો છે, ત્યા વારંવાર ઉત્પન્ન થાય છે અને ત્યાના તે અનન્ત દુઃખોને ભોગવતો રહે છે. ॥સૂ૦ ૫॥

શું વિષયભોગોની ઇચ્છાને પરાધીન બનેલા સમસ્ત પ્રાણી નરકાદિ યોનિયોમાં દુઃખોને ભોગવે છે કે તેમાંથી કોઇ કોઈ ભોગવે છે? આ પ્રકારના પ્રશ્નના જવાબમાં કહે છે—'चिट्ठं कूरेहिं' ઇત્યાદિ.

टीका—क्रूरेषु=घोरतरपरिणामेषु वधबन्धादिषु, कर्मसु=क्रियासु, तिष्ठन्=प्रवृत्तः, भृशम्=अत्यर्थं-चिरं नरके परितिष्ठति-तत्र वैतरणीतरणाऽसिपत्रपाताऽऽदि-जनितं घोरतरं दुःखमनुभवन् दीर्घकालमत्रस्थितो भवतीत्यर्थः। क्रूरेषु कर्मसु अतिष्ठन्=अप्रवृत्तस्तु भृशं=सर्वथा नरके नो परितिष्ठति=उपस्थितो न भवति, न तत्रोत्पद्यते इत्यर्थः।

यद्वा—भृशं क्रूरैः=अतिकुटिलैः प्राणातिपातादिभिः कर्मभिः=व्यापारैः, भृशम्=अत्यर्थं-चिरं नरके परितिष्ठति। एवम् अभृशं क्रूरैः=मन्दक्रूरैः कर्मभिः नरके भृशम्=अत्यर्थं-चिरं नो परितिष्ठति, श्रेणिकवत् ॥ सू० ६ ॥

जिनका परिणाम घोरतर है, ऐसे वध-बंधनादिक जो क्रूर कर्म हैं उनमें प्रवृत्ति करनेवाला प्राणी मरकर नरकों में उत्पन्न होता है, और चिरकाल तक अनेक सागरपर्यन्त वहां के दुःख भोगना, वैतरणी नदी में तैरना, शाल्मली-सेमर जातके वृक्षोंके तलवार की धार के सदृश पत्तों के गिरने से देह का चीरे जाना आदि जो भयंकर दुःख हैं उन्हें भोगता हुआ वहीं पर अपनी भुज्यमान आयुको व्यतीत करता है। जो इन क्रूर कर्मों के सेवन में प्रवृत्ति नहीं करता है वह नरक-निगोद में उत्पन्न नहीं होता है।

अथवा—अतिकुटिल जो प्राणातिपात आदि कर्म हैं उनके द्वारा यह प्राणी चिरकाल तक नरक में निवास करता है और मन्द क्रूर कर्मों के द्वारा वहां चिरकाल तक नहीं, किन्तु कुछ काल तक ही श्रेणिक राजा की तरह रहता है ॥ सू० ६ ॥

જેના પરિણામ ઘોરતર છે એવા વધ બંધનાદિક જે જે ક્રૂર કર્મ છે તેમા પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા પ્રાણી મરીને નરકમાં ઉત્પન્ન થાય છે, અને ચિરકાળ સુધી અનેક સાગર પર્યન્ત ત્યાંના દુઃખને ભોગવવું, વૈતરણી નદીમાં તરવું, શાલ્મલી-સેમર જાતના વૃક્ષોના તલવારની ધાર જેવા પાંદડાઓના પડવાથી દેહનું ચીરાઈ જવું આદિ જે ભયંકર દુઃખો છે તેઓને ભોગવતાં ભોગવતા ત્યાં જ પોતાના ભુજ્યમાન આયુષ્યને વ્યતીત કરે છે. જે આવા ક્રૂર કર્મોનુ સેવન કરવામાં પ્રવૃત્તિ કરતા નથી તે નરક-નિગોદમાં ઉત્પન્ન થતા નથી.

અથવા—અતિકુટિલ જે પ્રાણાતિપાત આદિ કર્મો છે તેઓ દ્વારા આવા પ્રાણી ચિરકાળ સુધી નરકમાં નિવાસ કરે છે, અને મંદ ક્રૂર કર્મો દ્વારા ત્યાં ચિરકાળ સુધી નહિ પણ કાંઈક ઓછા સમય સુધી શ્રેણિક રાજાની માફક રહે છે. ॥સૂ૦૬॥

एवं को वदति, यस्य वचनेऽस्माकं श्रद्धा समुत्पद्येत ? इति जिज्ञासायामाह-'एगे वयंति' इत्यादि ।

मूलम्-एगे वयंति अदुवावि नाणी, नाणी वयंति अदुवावि एगे ॥ सू० ७ ॥

छाया-एके वदन्ति अथवाऽपि ज्ञानिनः । ज्ञानिनो वदन्ति अथवाऽपि एके ॥७॥

टीका-एके=चतुर्दशपूर्वधराः श्रुतकेवलिनो यद् वदन्ति, अथवा ज्ञानिनः निरावरणज्ञानवन्तः सर्वज्ञा अपि तदेव वदन्ति । उक्तार्थमेव परावर्त्य कथयति-' ज्ञानिनः' इत्यादि । ज्ञानिनः=निरावरणज्ञानवन्तः केवलिनो यद् वदन्ति, अथवा-एकेऽपि=

श्री जम्बूस्वामी श्रीसुधर्मास्वामी से पूछते हैं कि—हे भदन्त ! ऐसी प्ररूपणा कौन करते हैं कि जिनके वचनों में हम श्रद्धा करें ? श्री सुधर्मा स्वामी कहते हैं-' एगे वयंति ' इत्यादि ।

इस प्रकारका प्रतिपादन चतुर्दश पूर्व के पाठी श्रुतकेवली श्रीगणधरादिक देव करते हैं, और यही बात निरावरणज्ञानशाली श्री सर्वज्ञ भगवान भी कहते हैं । दोनों का इस विषयमें एक मत है। इस विषय की आचार्य महाराज फिर पुष्टि करते हैं कि-जिस अर्थका प्रतिपादन केवली करते हैं उसीका प्रतिपादन श्रुतकेवली महाराज करते हैं। कारण कि केवली और श्रुतकेवली के कथनमें रंचमात्र भी फरक नहीं होता है। केवली भगवान केवलज्ञानविशिष्ट होते हैं, और श्रुतकेवली चौदह पूर्व के पाठी होते हैं; अतः ये दोनों यथार्थवक्ता हैं। यद्यपि केवली और श्रुतकेवली के ज्ञानमें प्रत्यक्ष और परोक्ष के रूपसे भिन्नता है; परन्तु वस्तु-

---

શ્રી જમ્બૂસ્વામી શ્રી સુધર્માસ્વામીને પૂછે છે કે—હે ભદન્ત ! આવી પ્રરૂપણા કોણ કરે છે જે તેના વચનોમાં અમે શ્રદ્ધા કરીએ ? શ્રી સુધર્માસ્વામી કહે છે—' एगे वयंति ' ઇત્યાદિ.

આ પ્રકારનો પ્રતિપાદન ચતુર્દશ પૂર્વના પાઠી, શ્રુતકેવળી, શ્રીગણધરાદિક દેવ કરે છે, અને આ વાત નિરાવરણજ્ઞાનશાળી શ્રી સર્વજ્ઞ ભગવાન પણ કહે છે. આ વિષયમાં બન્નેના એક મત છે આ વિષયની આચાર્ય મહારાજ ફરીથી પુષ્ટિ કરે છે કે જે અર્થનું પ્રતિપાદન કેવળી કરે છે તેજ અર્થનું પ્રતિવાદન શ્રુતકેવળી મહારાજ કરે છે, કારણ કે કેવળી અને શ્રુતકેવળીના વચનોમાં જરા પણ ફરક પડતો નથી કેવળી ભગવાન કેવળજ્ઞાન-વિશિષ્ટ છે અને શ્રુતકેવળી ચૌદ પૂર્વના પાઠી છે, માટે આ બન્ને યથાર્થવક્તા છે. જો કે કેવળી અને શ્રુતકેવળીના જ્ઞાનમા પ્રત્યક્ષ અને પરોક્ષ રૂપથી ભિન્નતા છે પરન્તુ વસ્તુસ્વરૂપના પ્રતિપાદન કરવામાં અગર

श्रुतकेवलिनोऽपि तदेव वदन्ति। दिव्यज्ञानवन्तः केवलिनः, चतुर्दशपूर्वधराः श्रुतकेवलिनश्चेत्युभये यथार्थवादित्वादेकमेवार्थं वदन्ति, न तु विरुद्धमिति भावः ॥७॥

एवं वक्ष्यमाणेऽप्यर्थे तेषामेकवाक्यताऽस्तीत्याह—'आवंती' इत्यादि।

मूलम्—**आवंती केयावंती लोयंसि समणा य माहणा य पुढो विवायं वयंति—"से दिट्ठं च णे, सुयं च णे, मयं च णे, विण्णायं च णे, उड्ढं अहं तिरियं दिसासु सव्वओ सुपडिलेहियं च णे—सव्वे पाणा सव्वे भूया सव्वे जीवा सव्वे सत्ता हंतव्वा अज्जावेयव्वा परिघेतव्वा परियावेयव्वा उद्दवेयव्वा, इत्थवि जाणह, नत्थित्थ दोषो, "—अणारियवयणमेयं ॥ सू० ८ ॥**

छाया——यावन्तः कियन्तो लोके श्रमणाश्च ब्राह्मणाश्च पृथग् विवादं वदन्ति—"तत् दृष्टं च नः, श्रुतं च नः, मतं च नः, विज्ञातं च नः, ऊर्ध्वमधस्तिर्यग् दिशासु सर्वत्र सुप्रतिलेखितं च नः—सर्वे प्राणाः, सर्वे भूताः सर्वे जीवाः सर्वे सत्त्वाः हन्तव्याः आज्ञापयितव्याः परिग्रहीतव्याः परितापयितव्याः अपद्रावयितव्याः, अत्रापि जानीत, नास्त्यत्र दोषः" अनार्यवचनमेतत् ॥ सू० ८ ॥

टीका——लोके=मनुष्यलोके यावन्तः कियन्तः=बहव इत्यर्थः श्रमणाः=दण्डिशाक्यादयः, ब्राह्मणाः=औद्देशिकभोजिनः पृथक्=अन्यप्रकारेण विवादं=धर्मविरुद्धवचनं वदन्ति। तद्विवादस्वरूपं दर्शयितुमाह——'तद् दृष्टम्' इत्यारभ्य यावत्

स्वरूप के प्रतिपादन करने में जरा भी भिन्नता नहीं है। केवली और श्रुतकेवली यथार्थवक्ता होनेसे एक ही अर्थका प्रतिपादन करते हैं, विरुद्ध अर्थका नहीं ॥ सू० ७ ॥

इसी प्रकार आगे कहे जानेवाले अर्थ में भी एकवाक्यता होती है; वह दिखलाते हैं——"आवंती केयावंती' इत्यादि।

इस लोकमें जितने भी श्रमण और ब्राह्मण हैं वे सब धर्मके विरुद्ध पृथक् २ रूपसे प्ररूपणा करते हैं और कहते हैं कि—"जो कुछ भी हमारी

તેને જાણવામાં બનેના જ્ઞાનમા જરા પણ ભિન્નતા નથી. કેવળી અને શ્રુતકેવળી યથાર્થવક્તા હોવાથી એક જ અર્થનો પ્રતિપાદન કરે છે, વિરૂદ્ધ અર્થનો નહિ. ॥સૂ૦૭॥

આ જ પ્રકારે આગળ કહેવામાં આવનાર અર્થમાં પણ એકવાકયતા થાય છે, તે બતાવે છે—'आवंती केयावंती' ઈત્યાદિ

આ લોકમાં જેટલા પણ શ્રમણ એટલે દંડી શાકયાદિક અને બ્રાહ્મણ એટલે ઔદ્દેશિક આહાર લેવાવાળા છે તે બધા, ધર્મની વિરૂદ્ધ જુદા જુદા રૂપે પ્રરૂપણા

'नास्त्यत्र दोषः' इति। 'तद् दृष्टं च नः' इति, यद्वयं वक्ष्यामस्तदस्माकं दृष्टम्-दिव्यज्ञानेन प्रत्यक्षीकृतम्। 'नः' इति कर्त्तुः सम्बन्धसामान्यविवक्षायां षष्ठी। यद्वा-अस्माकमाचार्यैर्दृष्टम्। श्रुतं च नः=अस्माकं श्रुतं च आचार्यादिभ्यः। मतं च नः=युक्तियुक्तत्वादस्माकम् अस्मदाचार्याणां वा अभिमतम्। विज्ञातं च नः=पदार्थानां भेदपर्यायैरस्माकम्, अस्मदाचार्याणां वा विज्ञातम्। एतच्च-ऊर्ध्वम्, अधः, तिर्यक्षु दिशासु-दशसु दिक्षु इत्यर्थः; सर्वतः=प्रत्यक्षादिभिः सर्वैः प्रमाणैः सर्वप्रकारेण वा सुप्रतिलेखितं च नः=मनःप्रणिधानादिनाऽस्माकमस्मदाचार्याणां वा सुष्ठु पर्यालोचितं च। यद् दृष्टं श्रुतं मतं विज्ञातं सुप्रतिलेखित, तत्स्वरूपं प्रदर्शयति-"सर्वे प्राणाः" इत्यादि। सर्वे प्राणाः सर्वे भूताः सर्वे जीवाः सर्वे सत्त्वा हन्तव्याः, आज्ञापयितव्याः, परिग्रहीतव्याः, परितापयितव्याः, अपद्रावयितव्याः, एतद् वाक्यं प्राग्-

---

मान्यता है वह हमारी देखी हुई है, हमारी सुनी हुई है, हमारी मानी हुई है और हमारी जानी हुई है, तथा ऊर्ध्व (उंची) अधः (नीची) और तिर्यग् (तिरछी), इन समस्त दिशाओं में हमने अथवा हमारे आचार्योंने अच्छी तरह से इसका पर्यालोचन भी किया है कि—समस्त प्राणी, समस्त भूत, समस्त जीव, और समस्त सत्त्व मारने योग्य हैं, मारनेके लिए आज्ञा देने के योग्य हैं, मारनेके लिए ग्रहण करनेके योग्य हैं, परितापित करनेके योग्य हैं और विष-शस्त्रादिक के द्वारा वध करने योग्य हैं। यह हमारा अभिमत निर्दोष है।" ये सब अनार्यों के वचन हैं, आर्यों के नहीं।

स्पष्टार्थ—परस्परविरुद्धार्थ का कथन अल्पज्ञता के होने पर ही होता है। केवली और श्रुतकेवली पदार्थों के जानकार होते हैं; अतः उन्होंने

करे छे अने कहे छे—"जे कांई अमारी मान्यता छे ते अमारी देखेली छे, अमारी सांभळेली छे, अमारी मानेली छे अने अमारी जाणेली छे तथा उर्ध्व-(उंची) अधः (नीची) अने तिर्यग् (तिरछी) आ समस्त दिशाओमां अमे तथा अमारा आचार्योए घणी सारी रीते तेनुं पर्यालोचन कर्युं छे के समस्त प्राणी, समस्त भूत, समस्त जीव, अने समस्त सत्त्व मारवा योग्य छे, मारवा माटे आज्ञा आपवा योग्य छे, मारवा माटे ग्रहण करवा योग्य छे, परितापित करवा योग्य छे. अने विष शस्त्रादिक द्वारा वध करवा योग्य छे, आ अमारो अभिप्राय निर्दोष छे." आ बधा अनार्योना वचन छे, आर्योना नथी.

स्पष्टार्थ—परस्पर विरुद्धार्थनुं कथन अल्पज्ञता होवाथी थाय छे. केवळी अने श्रुतकेवळी पदार्थोना जाणकार छे, माटे तेमणे जे कांइ प्रतिपादन कर्युं

जो कुछ भी प्रतिपादन किया है वह निर्दोष एवं परस्परविरुद्धार्थता से रहित है। अल्पज्ञों के वचनों में यह बात नहीं पाई जाती, उनके वचन सदोष और परस्परविरुद्धार्थप्ररूपक हुआ करते हैं। यही बात इस सूत्र में भाष्यरूपसे प्रकट की गई है।

दुनिया में जितने भी ब्राह्मण या श्रमण, दण्डी, बुद्धमतानुयायी आदि हैं वे सब धर्मतत्त्व के यथार्थ स्वरूपसे अनभिज्ञ हैं। उनकी मान्यता परस्परविरुद्धार्थप्ररूपक है। हिंसादिक पापों के सेवन करनेमें इनकी मान्यतानुसार कोई दोष नहीं है।

वे ऐसे ही इन अकृत्यों की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि-जो कुछ हमारे यहां कहा गया है वह कपोलकल्पित-असत्य नहीं है; किंतु हमने अपने दिव्यज्ञानसे इसका साक्षात्कार किया है। अथवा—हमारे आचार्यों ने अपने दिव्यज्ञानसे इसका साक्षात्कार किया है। हमने यह अपने आचार्यादिकों से सुना है। युक्तियुक्त होनेसे हमें या हमारे आचार्योंके लिये यह मान्य है। पदार्थों का भेद पर्यायों द्वारा विश्लेषण करने से हमने और हमारे आचार्यों ने यह भेद अच्छी तरह जान भी लिया है। प्रत्येक दिशामें हमने तथा हमारे आचार्यों ने प्रत्यक्षादि प्रमाणों से इसका भली-प्रकार शान्तचित्त होकर निर्णय भी कर लिया है कि-समस्त प्राणी, समस्त

છે તે નિર્દોષ અને પરસ્પર વિરૂદ્ધતાર્થી રહિત છે. અલ્પજ્ઞોના વચનોમાં આ વાત દેખવામા આવતી નથી તેના વચન સદોષ અને પરસ્પર વિરૂદ્ધાર્થપ્રરૂપક થયા કરે છે. આ વાત આ સૂત્રમા ભાષ્યરૂપથી પ્રગટ કરેલ છે.

સંસારમાં જેટલા શ્રમણ, દંડી બુદ્ધમતાનુયાયી આદિ છે અને બ્રાહ્મણ-ઔદ્દેશિક આહારના લેવાવાળા છે ધર્મતત્વના યથાર્થ સ્વરૂપથી અનભિજ્ઞ છે, તેમની માન્યતા પરસ્પરવિરૂદ્ધાર્થપ્રરૂપક છે, હિંસાદિક પાપોનું સેવન કરવામાં તેમની માન્યતા મુજબ કોઈ દોષ નથી તે આવા કૃત્યોની પુષ્ટિ કરતા કહે છે કે-જે કંઈ અમોને કહેવામાં આવ્યુ છે તે કપોળકલ્પિત-અસત્ય નથી; પણ અમે પોતાના દિવ્યજ્ઞાનથી એનો સાક્ષાત્કાર કરેલ છે. અથવા-અમારા આચાર્યોએ પોતાના દિવ્ય જ્ઞાનથી એનો સાક્ષાત્કાર કરેલ છે. અમોએ આ અમારા આચાર્યાદિકોથી સાભળ્યું છે. યુક્તિયુક્ત હોવાથી અમોને તેમજ અમારા આચાર્યોને માટે માન્ય છે, પદાર્થોના ભેદ પર્યાયોદ્વારા પૃથક્કરણ કરવાથી અમો અને અમારા આચાર્યોએ આ ભેદો સારી રીતે જાણી લીધેલ છે પ્રત્યેક દિશામાં અમે તથા અમારા આચાર્યોએ પ્રત્યક્ષાદિ પ્રમાણોથી તેનો સારી રીતે શાંતચિત્તે નિર્ણય પણ કર્યો છે કે—સમસ્ત પ્રાણી,

व्याख्यातम् । अत्र धर्मविषये–मन्दिरनिर्माणप्रतिमाप्रतिष्ठादौ, अपिशब्दादौद्देशिके, तथा–विहारादौ श्रावकं सार्थीकृत्य स्वसेवाद्यर्थमनुज्ञाप्य तत्कृताऽऽहारादिग्रहणे च जानीत, अत्र=अस्मिन्नुक्तविषये नास्ति दोषः=नास्ति पापानुबन्ध इति । अनार्यवचनमेतदिति। आराद् याताः=सर्वसावद्यव्यापारेभ्यो दूरं गता इति–आर्याः, तद्विपरीता अनार्याः–क्रूरकर्माणः, तेषां प्राण्युपमर्दकं वचनमेतत्॥ सू० ८ ॥

भूत, समस्त जीव और समस्त सत्त्व मारने योग्य हैं, मारनेकी आज्ञा देने योग्य हैं, मारने के लिये ग्रहण करने योग्य हैं, परितापित करनेयोग्य हैं और विषशस्त्रादिकों के द्वारा वध करनेयोग्य हैं । प्राणी सत्त्व आदि शब्दों का व्युत्पत्तिसिद्ध अर्थ पहिले प्रकट किया जा चुका है ।

इसी प्रकार जिनप्रतिपादित धर्म में भी मंदिरादिक के निर्माण करने की एवं जिनप्रतिमा बनवा कर उसकी प्रतिष्ठा करने की जो प्रथा चालू है वह पद्धति भी सदोष है, उपादेय नहीं है । तथा साधुओ में औद्देशिक आहार ग्रहण करने की एवं विहारादिक करते समय अपनी सेवा करवाने के बहाने से श्रावकों को साथ लेकर उनके द्वारा तैयार किये आहारादिक लेनेकी एक प्रकार की जो प्रथा सी चल पड़ी है, और उसमें जो दोष–पापानुबंध नहीं मानते हैं, प्रत्युत इसका किसी दूसरे रूपसे समर्थन करते हैं; यह सब पूर्वोक्त कथन अनार्यों का ही समझना चाहिये ।

सावद्य व्यापार से जो दूर रहते हैं उनकी आर्यसंज्ञा और विप-

સમસ્ત ભૂત, સમસ્ત જીવ, અને સમસ્ત સત્ત્વ મારવા યોગ્ય છે, મારવાની આજ્ઞા દેવા યોગ્ય છે, મારવા માટે ગ્રહણ કરવા યોગ્ય છે, પરિતાપિત કરવા યોગ્ય છે, અને વિષશસ્ત્રાદિક દ્વારા વધ કરવા યોગ્ય છે. પ્રાણી સત્ત્વ આદિ શબ્દોનો વ્યુત્પત્તિસિદ્ધ અર્થ પહેલાં જ પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે

આ પ્રકારે જીનપ્રતિપાદિત ધર્મમાં પણ મંદિરાદિક નિર્માણ કરવાનું, તેમજ જિનપ્રતિમા બનાવી તેની પ્રતિષ્ઠા કરવાની જે પ્રથા ચાલુ છે તે પદ્ધતિ પણ સદોષ છે, ઉપાદેય નથી. તથા સાધુઓમાં ઔદ્દેશિક આહાર લેવાની તેમજ વિહારાદિક કરતી વખતે પોતાની સેવા કરવાના બહાને શ્રાવકોને સાથે લઈને તેના દ્વારા તૈયાર કરેલા આહાર પાણી લેવાની એક પ્રકારની જે પ્રથા ચાલુ થઈ છે, અને તેમાં જે દોષ–પાપાનુબંધ નથી માનતા, અને દરેક તે બાબતને બીજારૂપથી સમર્થન કરે છે તે બધા પૂર્વોક્ત કથન અનાર્યોના જ સમજવા જોઈએ

સાવદ્ય વ્યાપારથી જે દૂર રહે છે તેની આર્ય સંજ્ઞા, અને તેનાથી વિપરીતની

ये तु आर्यास्ते किं वदन्तीति शिष्यजिज्ञासायामाह–' तत्थ जे ' इत्यादि ।

मूलम्–तत्थ जे आरिया ते एवं वयासी–"से दुद्दिट्ठं च भे, दुस्सुयं च भे, दुम्मयं च भे, दुव्विण्णायं च भे, उड्ढं अहं तिरियं दिसासु सव्वओ दुप्पडिलेहियं च भे; जं णं तुब्भे एवं आइक्खह, एवं भासह, एवं परूवेह, एवं पण्णवेह–सव्वे पाणा ४, हंतव्वा ५, इत्थ वि जाणह नत्थित्थ दोसो" अणारियवयणमेयं ॥ सू० ९॥

छाया—तत्र ये आर्यास्त एवमवादिषुः–तद् दुर्दृष्टं च वः, दुःश्रुतं च वः, दुर्मतं च वः, दुर्विज्ञातं च वः, ऊर्ध्वम् अधः तिर्यग् दिशासु सर्वतः दुष्प्रतिलेखितं च वः, यत् खलु यूयमेवम् आख्याथ, एवं भाषध्वे, एवं प्ररूपयथ, एवं प्रज्ञापयथ––सर्वे प्राणाः ४ हन्तव्याः ५ । अत्रापि जानीत, नास्त्यत्र दोषः ।" अनार्यवचनमेतत् ॥ सू० ९ ॥

टीका—ये देशतो भाषातश्चारित्रतश्चार्यास्ते, तत्र=उक्तविषये, एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादिषुः=उक्तवन्तः–' तद् दुर्दृष्टं च वः ' इत्यादि । युष्माभिर्यदुक्तं–' तद् दृष्टं च नः ' इति, तद् वः=युष्माकं युष्मदाचार्याणां वा दृष्टं दुर्दृष्टम्=

रीत की अनार्यसंज्ञा है । ये क्रूरकर्मी होते हैं । यह प्राणियों के पीडाकारक समस्त पूर्वोक्त कथन इन्हीं अनार्यों का प्रतिपादित किया हुआ है ।८।

यदि यह पूर्वोक्त समस्त धर्मविरुद्ध कथन अनार्यों का है तो फिर आर्यों की मान्यता कैसी है ? इस प्रकार शिष्यकी जिज्ञासा का समाधान किया जाता है—' तत्थ जे आरिया ' इत्यादि ।

इस पूर्वोक्त कथनमें आर्यों की इस प्रकार की प्रत्युत्तररूप मान्यता है, अर्थात्–देश से, भाषा से और चारित्र से जो आर्य हैं उनका इस प्रकार का कथन है कि–आपने व आपके आचार्यों ने जो देखा है, जो

અનાર્ય સંજ્ઞા છે. તે ક્રૂરકર્મી હોય છે પ્રાણીઓને માટે પીડાકારક આ સમસ્ત પૂર્વોક્ત કથન આ અનાર્યોના જ પ્રતિપાદિત કરેલાં છે. ॥ સૂ૦ ૮ ॥

આ પૂર્વોક્ત સમસ્ત ધર્મવિરૂદ્ધ કથન અનાર્યોના છે તો પછી આર્યોની માન્યતા કેવી છે? આ પ્રકારની શિષ્યની શંકાનુ સમાધાન કરે છે—' तत्थ जे आरिया' ઇત્યાદિ.

આ પૂર્વોક્ત કથનમાં આર્યોની આ પ્રકારની પ્રત્યુત્તરરૂપ માન્યતા છે, અર્થાત્–દેશથી ભાષાથી અને ચારિત્રથી જે આર્ય છે તેનું આ પ્રકારનું કથન છે કે–તમોએ તમારા આચાર્યોએ જે દેખ્યું છે, સાંભળ્યું છે, માન્યું છે અને જે

=दुष्टं दृष्टं न तु सम्यग् दृष्टमित्यर्थः । एवं यावत् " दुष्प्रतिलेखितं च वः" इति स्वयमूहनीयम् । पुनरपि त एवार्याः प्रागुक्तश्रमणादिवचनं हिंसादिप्रवर्तकतया सदोषमिति बोधयितुं यद्वादिषुस्तदाह-' यत् खलु यूयमेवम् ' इत्यादि । एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण यूयं यद्वचनमाख्याथ, एवं यद् भाषध्वे, एवं यत् प्रज्ञापयथ, एवं यत् प्ररूपयथ-सर्वे प्राणाः ४ हन्तव्याः ५ इत्यादि, यावत्-नास्त्यत्र दोष इति, तदेतत् सर्वमनार्यवचनं=हिंसादिप्रवर्तकतया पापानुबन्धि वचनं युष्मदाचार्याणां वेत्यर्थः ॥ सू० ९ ॥

सुना है, जो माना है, और जो जाना है एवं प्रत्येक दिशामें जिसकी प्रत्यक्षादि प्रमाणों के द्वारा अच्छीतरह से छान-बीन की है; वह सर्वथा सदोष है—वह आपका व आपके आचार्यों का देखना, सुनना, मानना, एवं जानना और पर्यालोचना करना दोषोंसे रिक्त नहीं है, अतः आपने व आपके आचार्यों ने जो देखा है वह सुन्दर निर्दोष नहीं देखा, जो सुना है वह निर्दोष नहीं सुना, जो माना है वह निर्दोष नहीं माना, जो जाना है वह निर्दोष नहीं जाना, एवं जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा प्रत्येक दिशामें पर्यालोचना की है वह भी निर्दोष नहीं की। यह सब उनका व आपका नाममात्रका ही देखना सुनना वगैरह हुआ है, कारण कि यह आपका पूर्वोक्त कथन जीवों की हिंसादिक पापों में प्रवृत्ति की जागृति करानेवाला है, अतः ' समस्त प्राणी, समस्त जीव, समस्त भूत और समस्त सत्त्व मारने योग्य हैं, मारने की आज्ञा देनेयोग्य है, मारने के लिए ग्रहण करने योग्य हैं, परितापित करनेयोग्य है और विष-श-

---

જાણ્યું છે તેમજ પ્રત્યેક દિશામા જેની પ્રત્યક્ષાદિ પ્રમાણોદ્વારા સારી રીતે શોધ કરી છે તે સર્વથા સદોષ છે. તે તમારૂં તેમજ તમારા આચાર્યોનું દેખવું, સાભળવું, માનવુ, તેમજ જાણવુ અને પર્યાલોચના કરવી તે દોષોથી મુક્ત નથી, માટે તમોએ તેમજ તમારા આચાર્યોએ જે દેખ્યું છે તે સુંદર-નિર્દોષ નથી દેખ્યું, જે સાભળ્યું છે નિર્દોષ નથી સાભળ્યુ, જે માન્યું તે નિર્દોષ નથી માન્યું, તેમજ જે જાણ્યુ છે તે નિર્દોષ નથી જાણ્યુ, અને જે પ્રત્યક્ષાદિપ્રમાણોદ્વારા પ્રત્યેક દિશામાં પર્યાલોચના કરી છે તે પણ નિર્દોષ નથી કરી, આ બધુ તેઓનું તેમજ તમારૂં નામમાત્રનુ દેખવુ સાભળવુ વિગેરે થયુ છે, કારણ કે તમારૂં પૂર્વોક્ત કથન જીવોની હિંસાદિક પાપોમા પ્રવૃત્તિ જાગ્રત કરવાવાળુ છે, માટે ' સમસ્ત પ્રાણી, સમસ્ત ભૂત, સમસ્ત જીવ, અને સમસ્ત સત્ત્વ મારવા યોગ્ય છે, મારવાની

एवं केवलिनो दण्डिशाक्यादीनां वादे हिंसादिदोषसद्भावाद्धर्मविरोधं प्रदर्श्य स्वमतं प्रतिबोधयितुं वदन्ति-'वयं पुण' इत्यादि।

मूलम्—वयं पुण एवमाइक्खामो, एवं भासामो, एवं पन्नवेमो, एवं परूवेमो—सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता ण हंतव्वा, ण अज्जावेयव्वा, ण परिघेतव्वा, ण परियावेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा। एत्थवि जाणह, णत्थित्थ दोसो। आरियवयणमेयं ॥सू० १०॥

स्त्रादिकों के द्वारा वध करने योग्य हैं, इसमें कोई दोष नहीं है।' यह जो आपका कथन है, आपका भाषण है, आपकी प्रज्ञापना है, आपकी प्ररूपणा है, तथा इसे जो आपने निर्दोष प्रकट किया है; वे सब अनार्यों के ही वचन हैं और सदोष हैं, कारण कि आपके व आपके आचार्यों के इन वचनों में प्रवृत्ति करनेवाला प्राणी केवल पापका ही उपार्जन करनेवाला होता है, धर्मका नहीं, अतः अनार्यवचन होने से ये त्याज्य ही हैं। इस पूर्वोक्त कथन का तात्पर्य यही है कि यह सब कथन धर्मविरुद्ध होनेसे जीवों में असदाचार की प्रवृत्ति का कारण होने से सदोष एवं पापानुबन्ध का हेतु है, अतः अनार्य वचन होने से यह सर्वथा निन्दनीय एवं गर्हणीय है ॥ सू० ९॥

केवली भगवान इस प्रकार दण्डी शाक्यादिकों के कथन में हिंसादिक दोषों का सद्भाव होनेसे धर्मविरुद्धता प्रदर्शित कर अपना सिद्धान्त प्रकट करनेके लिये कहते हैं—'वयं पुण' इत्यादि।

આજ્ઞા દેવા યોગ્ય છે, મારવાને ગ્રહણ કરવા યોગ્ય છે, પરિતાપિત કરવા યોગ્ય છે, અને વિષશસ્ત્રાદિકો દ્વારા વધ કરવા યોગ્ય છે, આમા કાંઈ પણ દોષ નથી' આ પ્રકારે જે તમારૂં કથન છે, તમારૂં ભાષણ છે, તમારી પ્રજ્ઞાપના છે, તમારી પ્રરૂપણા છે, તથા એને જે તમોએ નિર્દોષ પ્રગટ કરેલ છે તે બધા અનાર્યોના જ વચનો છે અને સદોષ છે, કારણ કે તમારા તેમજ તમારા આચાર્યોના આ વચનોમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળાં પ્રાણી કેવળ પાપના જ ઉપાર્જન કરવાવાળા બને છે, ધર્મના નહી, માટે અનાર્યવચન હોવાથી તે તજવા યોગ્ય છે આ પૂર્વોક્ત કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે આ બધા કથન ધર્મ-વિરૂદ્ધ હોવાથી જીવોને અસદાચારની પ્રવૃત્તિનું કારણ હોવાથી સદોષ અને પાપાનુબંધનો હેતુ છે, માટે અનાર્યવચન હોવાથી તે સર્વથા નિન્દનીય તેમજ ગર્હણીય છે. ॥સૂ૦ ૯॥

કેવળી ભગવાન આ પ્રકારે દંડી શાક્યાદિકોના કથનમા હિંસાદિક દોષોનો સદ્ભાવ હોવાથી ધર્મ-વિરૂદ્ધતા પ્રદર્શિત કરી પોતાનો સિદ્ધાંત પ્રગટ કરવાને માટે કહે છે-'वयं पुण' ઈત્યાદિ.

छाया—वयं पुनरेवमाख्यामः, एवं भाषामहे, एवं प्रज्ञापयामः, एवं प्ररूपयामः- सर्वे प्राणाः सर्वे भूताः, सर्वे जीवाः, सर्वे सत्त्वाः, न हन्तव्याः १, न आज्ञापयितव्याः २, न परिग्रहीतव्याः ३, न परितापयितव्याः ४, न अपद्रावयितव्याः ५। अत्रापि जानीत, नास्त्यत्र दोषः। आर्यवचनमेतत् ॥ सू० १० ॥

टीका—वयं पुनरित्यादि। अत्र पुनः-शब्द उक्तश्रमणादिवैलक्षण्यद्योतनाय। यथा धर्मविरुद्धवादो न भवति, तथा वयम् एवं=वक्ष्यमाणरीत्या आख्यामः, एवं भाषामहे, एवं प्रज्ञापयामः, एवं प्ररूपयामः-सर्वे प्राणाः ४ न हन्तव्याः ५। एतानि पदानि प्राग् व्याख्यातानि। अत्रापि-अत्रैव=अस्मिन् उक्तविषये-सर्वे प्राणाः ४ न हन्तव्याः ५, इत्यत्रैव जानीत=यूयमवबुध्यध्वम्, अत्र=अस्मिन्-अस्मद्वाक्ये

इस सूत्रमें "पुनः" यह शब्द पूर्वोक्त श्रमणादिकों की मान्यतासे केवलियों की मान्यतामें भिन्नप्रकारता का द्योतन करनेवाला है, अर्थात् केवलियों का कथन इस प्रकारका नहीं है, किन्तु ऐसा है कि जिससे उसमें किसी भी प्रकार धर्मसे विरोध नहीं आ सकता है। उनका कहना है कि हम तो इस प्रकार का कथन करते हैं, भाषण करते हैं, प्रज्ञापना करते हैं, प्ररूपणा करते हैं कि-समस्त प्राणी, समस्त जीव, समस्त भूत और समस्त सत्त्व न मारने योग्य हैं, न मारनेकी आज्ञा देने योग्य हैं, न मारनेके लिए ग्रहण करने योग्य हैं, न परितापित करने योग्य हैं और न विषशस्त्रादिकों के द्वारा वध करने योग्य ही हैं। (इन समस्त पदों का विवरण पहिले लिखा जा चुका है) यह हमारा कथन हिंसादिक पापों में जीवों की प्रवृत्ति करानेवाला नहीं होनेसे प्रमाणरूप निर्दोष है। यह आप अच्छी तरहसे समझ लें। यही

આ સૂત્રમા 'પુન' આ શબ્દ પૂર્વોક્ત શ્રમણાદિકોની માન્યતાથી કેવળીયોની માન્યતામાં ભિન્ન-પ્રકારતા પ્રકાશિત કરે છે. અર્થાત્-કેવળીઓનું કથન આ પ્રકારનું નથી પણ આમ છે જેનાથી કોઇ પણ પ્રકારે ધર્મથી વિરોધ આવી શકતો નથી. એમનું કહેવું છે કે-અમે તો આ પ્રકારનુ કથન કરીએ છીએ, ભાષણ કરીએ છીએ, પ્રજ્ઞાપના કરીએ છીએ અને પ્રરૂપણા કરીએ છીએ કે સમસ્ત પ્રાણી, સમસ્ત ભૂત, સમસ્ત જીવ અને સમસ્ત સત્ત્વ મારવા યોગ્ય નથી, મારવાની આજ્ઞા દેવા યોગ્ય નથી, મારવાને માટે ગ્રહણ કરવા યોગ્ય નથી, પરિતાપિત કરવા યોગ્ય નથી, તેમજ વિષ અને શસ્ત્રાદિકોથી વધ કરવાને યોગ્ય નથી. (આ સમસ્ત પદાર્થોનું વિવેચન પહેલાં કરવામાં આવ્યું છે) આ અમારૂં કથન હિંસાદિક પાપોમાં જીવોની પ્રવૃત્તિ કરવાવાળુ નહિ હોવાથી પ્રમાણરૂપ નિર્દોષ છે. એ તમો સારી રીતે સમજી

एवं केवलिनो दण्डिशाक्यादीनां वादे हिंसादिदोषसद्भावाद्धर्मविरोधं प्रदर्श्य स्वमतं प्रतिबोधयितुं वदन्ति–'वयं पुण' इत्यादि।

मूलम्–वयं पुण एवमाइक्खामो, एवं भासामो, एवं पन्नवेमो, एवं परूवेमो–सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता ण हंतव्वा, ण अज्जावेयव्वा, ण परिघेतव्वा, ण परियावेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा। एत्थवि जाणह, णत्थित्थ दोसो। आरियवयणमेयं॥सू० १०॥

स्त्रादिकों के द्वारा वध करने योग्य हैं, इसमें कोई दोष नहीं है।' यह जो आपका कथन है, आपका भाषण है, आपकी प्रज्ञापना है, आपकी प्ररूपणा है, तथा इसे जो आपने निर्दोष प्रकट किया है; वे सब अनार्यों के ही वचन हैं और सदोष हैं, कारण कि आपके व आपके आचार्यों के इन वचनों में प्रवृत्ति करनेवाला प्राणी केवल पापका ही उपार्जन करनेवाला होता है, धर्मका नहीं, अतः अनार्यवचन होने से ये त्याज्य ही हैं। इस पूर्वोक्त कथन का तात्पर्य यही है कि यह सब कथन धर्मविरुद्ध होनेसे जीवों में असदाचार की प्रवृत्ति का कारण होने से सदोप एवं पापानुबन्ध का हेतु है, अतः अनार्य वचन होने से यह सर्वथा निन्दनीय एवं गर्हणीय है ॥ सू० ९॥

केवली भगवान इस प्रकार दण्डी शाक्यादिकों के कथन में हिंसादिक दोपों का सद्भाव होनेसे धर्मविरुद्धता प्रदर्शित कर अपना सिद्धान्त प्रकट करनेके लिये कहते हैं—'वयं पुण' इत्यादि।

આજ્ઞા દેવા યોગ્ય છે, મારવાને ગ્રહણ કરવા યોગ્ય છે, પરિતાપિત કરવા યોગ્ય છે, અને વિપશઆદિકો દ્વારા વધ કરવા યોગ્ય છે, આમાં કાંઈ પણ દોષ નથી' આ પ્રકારે જે તમારૂં કથન છે, તમારૂં ભાષણ છે, તમારી પ્રજ્ઞાપના છે, તમારી પ્રરૂપણા છે, તથા એને જે તમોએ નિર્દોષ પ્રગટ કરેલ છે તે બધા અનાર્યોના જ વચનો છે અને સદોષ છે. કારણ કે તમારા તેમજ તમારા આચાર્યોના આ વચનોમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળાં પ્રાણી કેવળ પાપના જ ઉપાર્જન કરવાવાળા બને છે, ધર્મના નહીં, માટે અનાર્યવચન હોવાથી તે તજવા યોગ્ય છે. આ પૂર્વોક્ત કથનનું તાત્પર્ય એ છે કે આ બધા કથન ધર્મ–વિરુદ્ધ હોવાથી જીવોને અસદાચારની પ્રવૃત્તિનું કારણ હોવાથી સદોષ અને પાપાનુબંધનો હેતુ છે, માટે અનાર્યવચન હોવાથી તે સર્વથા નિન્દનીય તેમજ ગર્હણીય છે ॥સૂ૦ ૯॥

કેવળી ભગવાન આ પ્રકારે દંડી શાકયાદિકોના કથનમાં હિંસાદિક દોષોનો સદ્ભાવ હોવાથી ધર્મ–વિરૂદ્ધતા પ્રદર્શિત કરી પોતાનો સિદ્ધાંત પ્રગટ કરવાને માટે કહે છે–'वयं पुण' ઈત્યાદિ.

छाया—वयं पुनरेवमाख्यामः, एवं भाषामहे, एवं प्रज्ञापयामः, एवं प्ररूपयामः-सर्वे प्राणाः सर्वे भूताः, सर्वे जीवाः, सर्वे सत्त्वाः, न हन्तव्याः १, न आज्ञापयितव्याः २, न परिग्रहीतव्याः ३, न परितापयितव्याः ४, न अपद्रावयितव्याः ५ । अत्रापि जानीत, नास्त्यत्र दोषः । आर्यवचनमेतत् ॥ सू० १० ॥

टीका—वयं पुनरित्यादि । अत्र पुनः-शब्द उक्तश्रमणादिवैलक्षण्यद्योतनाय । यथा धर्मविरुद्धवादो न भवति, तथा वयम् एवं=वक्ष्यमाणरीत्या आख्यामः, एवं भाषामहे, एवं प्रज्ञापयामः, एवं प्ररूपयामः-सर्वे प्राणाः ४ न हन्तव्याः ५ । एतानि पदानि प्राग् व्याख्यातानि । अत्रापि-अत्रैव=अस्मिन् उक्तविषये-सर्वे प्राणाः ४ न हन्तव्याः ५, इत्यत्रैव जानीत=यूयमवबुध्यध्वम्, अत्र=अस्मिन्-अस्मद्वाक्ये

इस सूत्रमें "पुनः" यह शब्द पूर्वोक्त श्रमणादिकों की मान्यतासे केवलियों की मान्यतामें भिन्नप्रकारता का द्योतन करनेवाला है, अर्थात् केवलियों का कथन इस प्रकारका नहीं है, किन्तु ऐसा है कि जिससे उसमें किसी भी प्रकार धर्मसे विरोध नहीं आ सकता है। उनका कहना है कि हम तो इस प्रकार का कथन करते हैं, भाषण करते हैं, प्रज्ञापना करते हैं, प्ररूपणा करते हैं कि-समस्त प्राणी, समस्त जीव, समस्त भूत और समस्त सत्त्व न मारने योग्य हैं, न मारनेकी आज्ञा देने योग्य हैं, न मारनेके लिए ग्रहण करने योग्य हैं, न परितापित करने योग्य हैं और न विषशस्त्रादिकों के द्वारा वध करने योग्य ही हैं। (इन समस्त पदों का विवरण पहिले लिखा जा चुका है) यह हमारा कथन हिंसादिक पापों में जीवों की प्रवृत्ति करानेवाला नहीं होनेसे प्रमाणरूप निर्दोष है। यह आप अच्छी तरहसे समझ लें। यही

આ સૂત્રમાં 'પુનઃ' આ શબ્દ પૂર્વોક્ત શ્રમણાદિકોની માન્યતાથી કેવળીયોની માન્યતામા ભિન્ન-પ્રકારતા પ્રકાશિત કરે છે. અર્થાત્-કેવળીઓનું કથન આ પ્રકારનું નથી પણ આમ છે જેનાથી કોઇ પણ પ્રકારે ધર્મથી વિરોધ આવી શકતો નથી. એમનું કહેવું છે કે-અમે તો આ પ્રકારનું કથન કરીએ છીએ, ભાષણ કરીએ છીએ, પ્રજ્ઞાપના કરીએ છીએ અને પ્રરૂપણા કરીએ છીએ કે સમસ્ત પ્રાણી, સમસ્ત ભૂત, સમસ્ત જીવ અને સમસ્ત સત્ત્વ મારવા યોગ્ય નથી, મારવાની આજ્ઞા દેવા યોગ્ય નથી, મારવાને માટે ગ્રહણ કરવા યોગ્ય નથી, પરિતાપિત કરવા યોગ્ય નથી, તેમજ વિષ અને શસ્ત્રાદિકોથી વધ કરવાને યોગ્ય નથી. (આ સમસ્ત પદાર્થોનું વિવેચન પહેલાં કરવામાં આવ્યું છે) આ અમારૂં કથન હિંસાદિક પાપોમાં જીવોની પ્રવૃત્તિ કરવાવાળું નહિ હોવાથી પ્રમાણરૂપ નિર્દોષ છે. એ તમો સારી રીતે સમજી

दोषो नास्ति; हिंसादिप्रवर्तकत्वाभावादिति भावः। एतच्च आर्यवचनम्=देशतो भाषातश्चारित्रतश्च ये आर्यास्तेषां वाक्यं, तस्मान्नास्त्यत्र दोष इत्यर्थः ॥ सू० १० ॥

दण्डिशाक्यादीनां पाषण्डिनां धर्मविरुद्धवादप्रशमनाय केवलिनो यद् वदन्ति तदाह—' पुव्वं निकाय ' इत्यादि।

मूलम्—पुव्वं निकाय समयं पत्तेयं पत्तेयं पुच्छिस्सामो, हं भो पवाउया ! किं भे सायं दुक्खं असायं? समिया पडिवण्णे यावि एवं बूया—सव्वेसिं पाणाणं सव्वेसिं भूयाणं सव्वेसिं जीवाणं सव्वेसिं सत्ताणं असायं अपरिनिव्वाणं महब्भयं दुक्खं-तिबेमि ॥सू० ११॥

छाया—पूर्वं निकाय्य समयं प्रत्येकं प्रत्येकं प्रक्ष्यामः, हं भोः प्रावादुकाः ! किं युष्माकं सातं दुःखम् असातम्? सम्यक्प्रतिपन्नांश्च अप्येवं ब्रूयात्—सर्वेषां प्राणानां सर्वेषां भूतानां सर्वेषां जीवानां सर्वेषां सत्त्वानां असातम् अपरिनिर्वाणं महाभयं दुःखम्—इति ब्रवीमि ॥ सू० ११ ॥

टीका—भोः प्रावादुकाः ! वयं पूर्वम्=आदौ, समयम्=आगमम् आगमोक्तमर्थं, निकाय्य=व्यवस्थाप्य, युष्मान् प्रत्येकं प्रत्येकं प्रक्ष्यामः, दुःखं युष्माकं किं सातं=मनोऽनुकूलं, किं वा असातम्=मनःप्रतिकूलम्?

देशसे, भाषासे और चारित्रसे जो आर्य हैं उनका कथन है, इसी कारण यह निर्दोष है। आर्य देशमें जो उत्पन्न हुए हैं वे देशसे आर्य, आर्योंकी भाषा जो बोलते हैं वे भाषासे आर्य और चारित्र का जो आराधन करते हैं वे चारित्रसे आर्य कहलाते हैं ॥ सू० १० ॥

दण्डीशाक्यादिक पाखण्डियों के धर्मविरुद्ध कथनको शान्त करने के लिये केवलियों का जो कथन है वह कहा जाता है—' पुव्वं निकाय ' इत्यादि।

हे वादियों ! हम सबसे प्रथम आगमोक्त-अर्थतत्त्वकी व्यवस्था कर के आप लोगों में से प्रत्येक को यह पूछते हैं कि आप दुःख किसे मानते

છે. દેશથી, ભાષાથી અને ચારિત્રથી જે આર્ય છે તેનું આ જ કથન છે, આ માટે જ આ નિર્દોષ છે. આર્ય દેશમાં જે ઉત્પન્ન થયા છે તે દેશથી આર્ય, આર્યોની ભાષા બોલે છે માટે ભાષાથી આર્ય અને ચારિત્રનું જે આરાધન કરે છે તે ચારિત્રથી આર્ય કહેવાય છે ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

દંડીશાક્યાદિક પાખંડિયોના ધર્મવિરૂદ્ધ કથનને શાંત કરવા માટે કેવળીયોનું જે કથન છે તે કહે છે—' पुव्वं निकाय ' ઇત્યાદિ

હે વાદવિવાદ કરવાવાળા! અમે સૌથી પ્રથમ આગમોક્ત અર્થ-તત્ત્વ ની વ્યવસ્થા કરીને તમારે લોકોમાંથી દરેકને પૂછીએ છીએ કે તમો દુઃખ કોને માનો છો? જે

एवं पृष्टाः सन्तो यदि ते 'दुःखं सातम्' इति ब्रूयुस्तदा तेषां प्रत्यक्षागमलोकविरोध आपद्येत, यदि तु दुःखमसातम्' इति वदेयुस्तदा सम्यक्-प्रतिपन्नान्=यथार्थमर्थं ज्ञातवतः प्रावादुकान् स्वतः स्तम्भितवाक्प्रचारान्, अप्येवम्-अपिशब्दः संभावनार्थद्योतकः; एवं संभाव्यते-दुःखं भवतामेव नासातरूपं, किंतु सर्वेषामपि प्राणिनां सर्वेषामपि भूतानां सर्वेषामपि जीवानां सर्वेषामपि सत्त्वानां दुःखम्-असातं=मनःप्रतिकूलम्-अप्रियमित्यर्थः। तथा-अपरिनिर्वाणम्=अशान्तं

हैं? जो शाता-मनके अनुकूल है वह दुःख है? या जो अशाता-मनके प्रतिकूल है वह दुःख है?

मनके अनुकूल शाताको यदि दुःख माना जावे तो इसमें प्रत्यक्ष तथा आगम प्रमाणसे और लोकसे भी विरोध आता है, कारण कि मन अपने अनुकूल पदार्थके सेवनमें सुख मानता है, यह प्रत्यक्षसिद्ध बात है। आगममें भी 'मनोऽनुकूलं सुखं' यह लिखा हुआ है, अर्थात मनोऽनुकूल पदार्थों की प्राप्ति शातावेदनीय कर्मके उदयसे ही जीवोंको प्राप्त होती है, ऐसा शास्त्रका वचन है। लोक भी मनोऽनुकूल पदार्थके सेवनमें सुख है-ऐसा ही कहते और मानते हैं।

मनके प्रतिकूल अशाता को यदि दुःख माना जावे तो जो यथार्थवक्ता-समझदार प्रवादी है और जो इस विषय में केवल मौन हैं उनसे हम यही कहेंगे कि जिस प्रकार अशाता तुम्हें दुःखरूप प्रतीत होती है उसी तरहसे समस्त प्राणियों को, समस्त भूतों को, समस्त जीवों को और समस्त सत्त्वोंको यह अशाता महाघोर और उनके प्राणों को कष्ट

શાતા-મનને અનુકૂળ છે તે દુઃખ છે? અગર જે અશાતા-મનને પ્રતિકૂળ છે તે દુઃખ છે?

મનને અનુકૂળ-શાતાને કદાચ દુઃખ માનવામાં આવે તો તેમાં પ્રત્યક્ષ તથા આગમપ્રમાણથી અને લોકથી પણ વિરોધ આવે છે, કારણ કે મન પોતાના અનુકૂળ પદાર્થના સેવનમાં સુખ માને છે એ પ્રત્યક્ષ-સિદ્ધ વાત છે આગમમાં પણ 'मनोऽनुकूलं सुखं' એમ લખેલ છે, અર્થાત્-મનના અનુકૂળ પદાર્થોની પ્રાપ્તિ જીવોને શાતાવેદનીય કર્મના ઉદયથી જ થાય છે, એવું શાસ્ત્રનું વચન છે, લોક પણ 'મનને અનુકૂલ પદાર્થના સેવનમાં સુખ છે' એવું જ કહે છે તેમ જ માને છે મનને પ્રતિકૂળ અશાતાને કદાચ દુઃખ માનવામાં આવે તો જે યથાર્થવક્તા-સમજદાર પ્રવાદી છે અને જે આ વિષયમાં કેવળ મૌન છે તેને પણ અમે એ જ કહીશું કે —જે પ્રકારે અશાતા તમોને દુઃખરૂપ પ્રતીત થાય છે તે માફક સમસ્ત પ્રાણિ, સમસ્ત ભૂતો, સમસ્ત જીવો અને સમસ્ત સત્ત્વોને આ અશાતા મહાઘોર

घोरमित्यर्थः। तथा–महाभयम्=निखिलप्राणिप्राणोद्वेजकत्वान्महाभयरूपम्। इत्येवं ब्रूयात्='प्रत्येकं प्रत्येकं गणयित्वा, सर्वे प्राणिनो न हन्तव्या नाज्ञापयितव्या न परिग्रहीतव्या न परितापयितव्याः, नापद्रावयितव्याः, यतो हिंसादिकरणे दोषः प्रसज्येत' इत्येवं वचनं वदेदित्यर्थः। यस्तु हिंसादिकरणे दोषो नास्तीति वदति, तदनार्यवचनम्–इति प्रत्यक्षानुमानोपमादिप्रमाणैः सिद्धमिति भावः। इति ब्रवीमीति पूर्ववद् व्याख्याऽवगन्तव्या ॥ सू० ११ ॥

॥ चतुर्थाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ ४-२ ॥

पहुंचानेवाली होनेसे महाभयरूप प्रतीत होती है, अतः समस्त प्राणी, समस्त भूत, समस्त जीव और समस्त सत्त्व न मारने योग्य है, न मारने की आज्ञा देने योग्य हैं, न मारनेके लिए ग्रहण करनेयोग्य हैं न परितापित करने योग्य हैं और न वध करने योग्य हैं। अशाता देनेसे हिंसादिक दोषोंका भागी होना पड़ता है। जो हिंसादिक पापों के करने में दोष नहीं मानते हैं वे अनार्य हैं और "हिंसादिक पापों के करनेमें दोष नहीं है" उनके ये वचन अनार्यवचन ही हैं। श्री सुधर्मास्वामी कहते हैं—हे जम्बू! जैसा मैंने भगवान के समीप सुना है वैसा ही कहता हूँ ॥ सू० ११ ॥

॥ चौथे अध्ययनका दूसरा उद्देश समाप्त ॥ ४-२ ॥

તેમના પ્રાણીને દુઃખ પહોચાડવાવાળી હોવાથી મહાભયરૂપ પ્રતીત થાય છે, માટે સમસ્ત પ્રાણી, સમસ્ત ભૂત, સમસ્ત જીવ અને સમસ્ત સત્ત્વ નહિ મારવાયોગ્ય છે, નહિ મારવાની આજ્ઞા દેવા યોગ્ય છે, નહિ મારવાને ગ્રહણ કરવા યોગ્ય છે, નહિ પરિતાપિત કરવાને યોગ્ય છે, નહિ વધ કરવા યોગ્ય છે અશાતા દેવાથી હિંસાદિક દોષોનું ભાગી બનવું પડે છે. જે હિંસાદિક પાપો કરવામાં દોષ નથી માનતા તે અનાર્ય છે, અને "હિંસાદિક પાપો કરવામાં દોષ નથી" એમ જે તેનું વચન છે આ અનાર્યવચન છે. સુધર્માસ્વામી કહે છે—હે જમ્બૂ! જેવું મેં ભગવાન સમીપે સાંભળ્યું છે તેવું કહું છું. ॥ સૂ० ૧૧ ॥

ચોથા અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૪-૨ ॥

अथ चतुर्थाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः ।

इहानन्तरद्वितीयोद्देशके दण्डिशाक्यादिपापण्डिमतनिराकरणेन सम्यक्त्वं स्थिरीकृतम् । सत्यपि सम्यक्त्वे निरवद्यतपश्चरणमन्तरेण कर्मक्षयो न भवतीत्यत स्तत्र प्रवर्तयितुं तृतीयोद्देशकं कथयति । तत्र प्रथमं धर्मवहिष्क्रान्तस्यानार्यतया तदुपेक्षा करणीयेति वोधयितुमाह—'उवेहि णं' इत्यादि ।

मूलम्—उवेहि णं बहिया य लोगं, से सव्वलोगंमि जे केइ विण्णू ॥ सू० १ ॥

छाया—उपेक्षस्व खलु वहिश्च लोकम्, स सर्वलोके ये केचिद् विज्ञः ॥ सू०१ ॥

टीका—–वहिः=धर्माद् वहिष्क्रान्तं लोकं खलु=निश्चयेन उपेक्षस्व=मा अनुसर । दण्डिशाक्यादिपापण्डिमतं मा अनुमन्यस्वेत्यर्थः । धर्मवहिष्क्रान्तलोकोपेक्ष-

---

चौथे अध्ययनका तीसरा उद्देश

इस पीछेके द्वितीय उद्देश में दण्डी शाक्यादिक पाखण्डियोंकी मान्यताका निराकरण करके सम्यक्त्वको सुस्थिर किया; परन्तु इतने मात्र से कर्मक्षय नहीं हो सकता, कर्मक्षय तो निरतिचार तपश्चरण से ही होता है, इसलिये उस तपमें जीवों की प्रवृत्ति कराने के लिये इस तृतीय उद्देशका कथन प्रारंभ किया जाता है। इसमें सर्वप्रथम धर्मसे बहिर्भूत जो व्यक्ति हैं वे अनार्य हैं और उनके साथ रागद्वेष न करते हुए उपेक्षाभाव ही रखना चाहिये, इस बातका परिज्ञान कराने के लिये कहते हैं—'उवेहि णं' इत्यादि ।

धर्मसे बहिर्भूत व्यक्तियों की सदा उपेक्षा ही करनी चाहिए। अर्थात्–दण्डी शाक्यादिक जो धर्मसे बहिर्भूत हैं, धर्मका यथार्थ स्वरूप

ચોથા અધ્યયનનો ત્રીજો ઉદ્દેશ.

પાછળનાં બીજા ઉદ્દેશમાં દંડી–શાક્યાદિક પાખંડીઓની માન્યતાનું નિરાકરણ કરીને સમ્યક્ત્વને સુસ્થિર કર્યું, પણ આટલાથી જ કર્મક્ષય થઈ શકે નહિ. કર્મક્ષય તો નિરતિચાર તપશ્ચરણથી જ થાય છે, માટે તે તપમાં જીવોની પ્રવૃત્તિ કરવાને માટે આ ત્રીજા ઉદ્દેશના કથનનો પ્રારંભ કરવામાં આવે છે. આમાં સર્વ-પ્રથમ ધર્મથી બહિર્ભૂત જે વ્યક્તિ છે તે અનાર્ય છે અને તેની સાથે રાગ દ્વેષ ન કરતા ઉપેક્ષા ભાવ જ રાખવો જોઈએ, આ વાતનું પરિજ્ઞાન કરવાને માટે કહે છે—'उवेहि णं' ઈત્યાદિ

ધર્મથી બહિર્ભૂત વ્યક્તિયોની સદા ઉપેક્ષા જ રાખવી જોઈએ. અર્થાત્–દંડી શાક્યાદિક જે ધર્મથી બહિર્ભૂત છે, ધર્મનું યથાર્થ સ્વરૂપ નથી જાણતા તેમજ

यस्य गुणमाह–'स सर्वलोके' इत्यादि। योऽनार्यं मत्वा धर्मबहिष्क्रान्तलोकं नानुसरति, स सर्वलोके=समस्ते मनुष्यलोके, ये केचिद् विद्वांसस्ततोऽप्यधिको विज्ञः=विद्वानित्यर्थः ॥ सू० १ ॥

नहीं जानते हैं एवं हिंसादिक पाप कार्यों में जीवों को प्रवर्त्तित कराने के लिये मिथ्या उपदेश करते हैं, उनका अनुसरण नहीं करना चाहिये। जिस प्रकार घासके तृण के ऊपर समझदार जीवके हृदयमें न राग होता है और न द्वेष ही होता है; किन्तु सदा माध्यस्थ्यभाव रहता है। इसी प्रकार जो आर्हत धर्म के विपरीत चलनेवाले हैं और उससे अपनी वृत्ति को विरुद्ध बनाये हुए हैं उनके प्रति भी भगवान् का यही आदेश है कि हे महानुभावों ! तुम भी राग द्वेष न करके उनके प्रति उपेक्षाभाव ही रक्खो; कारण कि इस उपेक्षाभावसे आत्मामें शांति की मात्रा अधिक रूपमें जागृत होती रहती है। नवीन कर्मों का बंध, जो उसके प्रति रागद्वेष करने से उत्पन्न होता है वह रुक जाता है, अतः धर्मबहिर्भूत मनुष्यों को अनार्य समझ कर जो उनका अनुसरण नहीं करता है वह मनुष्य इस लोकमें जितने भी विद्वान् हैं उन सबसे अधिक विज्ञ–विद्वान् है। यहां पर जो उस व्यक्ति को समस्त विद्वानों से अधिक विद्वान् बतलाया गया है, वह तत्त्वों का सम्यक् प्रकारसे जाननेवाले होनेसे ही समझना चाहिये, कारण कि वह समकिती जीव अपने प्रयोजनभूत तत्त्वों से ही मतलब

હિંસાદિક પાપ કાર્યોમાં જીવોની પ્રવૃત્તિ કરાવવામાં મિથ્યા ઉપદેશ આપે છે તેનું અનુસરણ નહિ કરવું જોઈએ. જેમ ઘાસના તણખલા ઉપર સમજદાર જીવના હૃદયમાં રાગ તેમજ દ્વેષ હોતો નથી પણ હમેશાં મધ્યસ્થ ભાવ રહે છે, તે પ્રકારે જે આર્હત ધર્મથી વિપરીત ચાલવાવાળા છે, અને તેનાથી જેની વૃત્તિ વિરૂદ્ધ બનેલી છે તેના પ્રત્યે પણ ભગવાનનો એ જ આદેશ છે કે–હે દેવાનુપ્રિય ! તમો રાગ દ્વેષ ન કરતા તે પ્રત્યે ઉપેક્ષા ભાવજ રાખો, કારણ કે આ ઉપેક્ષાભાવથી આત્મામાં શાંતિની માત્રા અધિક રૂપમાં જાગ્રત થાય છે. નવીન કર્મોના બંધ, જે તે પ્રત્યે રાગ દ્વેષ કરવાથી ઉત્પન્ન થાય છે તે રોકાઈ જાય છે, તેથી ધર્મવિમુખ મનુષ્યોને અનાર્ય સમજીને જે તેનું અનુસરણ નથી કરતા તે મનુષ્ય આ લોકમાં જેટલા વિદ્વાનો છે તે બધા કરતા પણ અધિક વિદ્વાન્ છે, પણ આ ઠેકાણે તે વ્યક્તિ જેને બધા વિદ્વાનો કરતા વધારે જાણવાવાળો બતાવેલ છે તે તત્ત્વોના સમ્યક્ પ્રકારથી જાણવાવાળા હોવાથી જ સમજવું જોઈએ, કારણ કે તે સમકિતી જીવ પોતાના પ્રયોજન–ભૂત તત્ત્વોથી જ મતલબ રાખે છે. એનાથી વિમુખ તત્ત્વોમાં

ननु ते विद्वांसः कथं विज्ञेयाः ? इति शिष्यजिज्ञासायामाह—'अणुवीइ' इत्यादि।

मूलम्—अणुवीइ पास, निक्खित्तदंडा जे केइ सत्ता पलियं चयंति, नरा मुयच्चा धम्मविउ-त्ति अंजू, आरंभजं दुक्खमिणं-ति णच्चा, एवमाहु संमत्तदंसिणो ॥ सू० २॥

छाया—अनुविचिन्त्य पश्य, निक्षिप्तदण्डाः ये केऽपि सत्त्वाः पलितं त्यजन्ति, नरा मृतार्चा धर्मविदः ऋजवः आरम्भजं दुःखम् इदमिति ज्ञात्वा एवमाहुः सम्यक्त्वदर्शिनः ॥ सू० २ ॥

टीका—अनुविचिन्त्य=पुनः पुनः पर्यालोच्य, पश्य=ज्ञानदृष्ट्या विलोकय, ये केऽपि सत्त्वाः=जीवाः, निक्षिप्तदण्डाः=परित्यक्तमनोवाकायमयसावद्यव्यापाररूप-दण्डाः सन्तः, पलितं=पुरातनं कर्मेत्यर्थः, अनादिकालवस्थायित्वेन चिरन्तनं कर्मापि

रखता है, इनसे बहिर्भूत तत्त्वों में उसकी सदा उपेक्षा ही बनी रहती है। जहां अपने में स्वपरका विवेक जागृत हो रहा है वही दुनियां में विद्वानों से भी अधिक विद्वान् है। अनेक शास्त्रों का अध्येता हो कर भी जो इस ज्ञानसे शून्य है वह विद्वान् होकर भी सिद्धान्तज्ञों की दृष्टि में मूर्ख ही है ॥ सू० १ ॥

जिनधर्म से बहिर्भूत व्यक्तियों के प्रति उपेक्षाभाव धारण करनेवाला मनुष्य विद्वान् क्यों बतलाया गया है? इस प्रकार शिष्य की जिज्ञासा होने पर कहते हैं—'अणुवीइ' इत्यादि।

जो मनुष्य बारंबार विचार करके तथा ज्ञानदृष्टि से देखकर मन, वचन और कायके सावद्यव्यापाररूप दण्डों से रहित हो जाता है वही अनादिकालसे आत्माके साथ एकक्षेत्रावगाहरूप होने से आबद्ध चिर-

---

तेनी सदा उपेक्षा ज रहे छे. जे जीवमां स्व-परनो विवेक जाग्रत रहे छे ते ज संसारमां सौ विद्वानो करता पण अधिक विद्वान छे. अनेक शास्त्रोनो जाणकार होवा छतां पण जे ज्ञानथी शून्य छे ते विद्वान होवा छतां पण सिद्धांतोनी दृष्टिमा मूर्ख ज छे. ॥ सू० १ ॥

जिनधर्मथी विमुख व्यक्तियो प्रति उपेक्षाभाव धारण करवावाळा मनुष्यने विद्वान केम मानवामा आवेल छे? आ प्रकारनी शिष्यनी जिज्ञासा थवाथी कहे छे—'अणुवीइ' इत्यादि.

जे मनुष्य वारंवार विचार करीने तथा ज्ञान दृष्टिथी जोई मन, वचन अने कायाना सावद्यव्यापाररूप दंडोथी रहित थई जाय छे ते ज अनादि काळथी एक ज क्षेत्रमां रहेवावाळा होवाथी आत्मानी साथे बंधायेला पुरातन अष्टविध

पलितसादृश्यात्पलितमित्युच्यते; त्यजन्ति, आत्मनो मालिन्यकरणाद्रजोरूपमष्टविधं कर्मापनयन्ति ते विद्वांस इति भावः। ये निक्षिप्तदण्डाः सन्तोऽष्टविधं कर्म क्षपयन्ति, एवंभूताः के जीवविशेषाः सन्तीति शिष्यजिज्ञासायामाह—'नरा'इत्यादि।

न्तन अष्टविध कर्मों को, जो वस्त्रादिकों को धूलके समान आत्मा को मलिन कर रहे हैं; अपनेसे दूर कर देता है, और वही विद्वान् भी है। शिष्यने जो यह प्रश्न किया था कि 'जिनधर्म से बहिर्भूत व्यक्तियों में उपेक्षाभाव धारण करनेवाला व्यक्ति उत्तम विद्वान् क्यों बन जाता है?' उसका ही यह समाधान है-'वेत्तीति विद्वान्'-अर्थात् जिसके भीतर स्वपर का विवेक जागृत हो रहा है वही विद्वान् है। इस प्रकारकी विद्वत्ता प्राप्त करनेके लिये सर्वप्रथम इस बातका ज्ञानदृष्टिसे अवश्य विचार करना चाहिये कि ये कर्म जो अनादि कालसे मेरी आत्मा के साथ क्षीर-नीरकी तरह संबंधित हो रहे हैं, इसका कारण क्या है?, सूक्ष्म विचार करने पर ज्ञात होगा कि इनके साथ अभी तक संबंध होनेका कारण मन, वचन और कायकी सावद्य प्रवृत्ति ही है, अतः जैसे २ यह प्रवृत्ति रुकेगी वैसे२ नवीन कर्मों का आस्रव रुकेगा और संचित कर्मों की निर्जरा होगी। मन और कायकी सावद्य प्रवृत्ति को रोकनेके लिये तप संयम के आराधन करनेकी पूर्ण आवश्यकता शास्त्रकारों ने बतलाई है। तप संयम के आराधन करने से सावद्य व्यापारों का जितने २ अंश में अभाव होगा उतने२

કર્મોને-ધૂળ જેમ વસ્ત્રાદિકોને મલિન કરે છે તેમ આત્માને જેઓ મલિન કરી રહ્યા છે તેઓને-પોતાથી દૂર કરી નાખે છે, અને તે જ વિદ્વાન પણ છે. શિષ્યે જે પ્રશ્ન કરેલો હતો કે 'જીનધર્મથી વિમુખ વ્યક્તિઓમાં ઉપેક્ષાભાવ ધારણ કરવાવાળી વ્યક્તિને ઉત્તમ વિદ્વાન કેમ માનવામાં આવે છે?' તેનું આ સમાધાન છે-'वेत्तीति विद्वान्'—અર્થાત્ જેની અંદર સ્વ-પરનો વિવેક જાગૃત છે તે જ વિદ્વાન છે. આ પ્રકારની વિદ્વત્તા પ્રાપ્ત કરવા માટે સર્વ પ્રથમ આ વાતનું જ્ઞાનદૃષ્ટિથી વિચાર અવશ્ય કરવો જોઈએ કે આ કર્મો જે અનાદિ કાળથી મારા આત્માની સાથે દૂધ-પાણીની માફક એક થઇ રહ્યા છે તેનું કારણ શું છે? સૂક્ષ્મ વિચાર કરવાથી જ્ઞાત થશે કે એની સાથે હજી સુધી સંબંધ રહેવાનું કારણ મન, વચન અને કાયાની સાવદ્ય પ્રવૃત્તિ જ છે, માટે જેમ જેમ આ પ્રવૃત્તિ રોકાશે તેમ તેમ નવા કર્મોનો આસ્રવ અને સંચિત કર્મોની નિર્જરા થશે. મન, વચન અને કાયાની સાવદ્ય પ્રવૃત્તિ રોકવાને માટે તપ સંયમ આરાધન કરવાની આવશ્યકતા શાસ્ત્રકારોએ બતાવી છે. તપ સંયમની આરાધના કરવાથી સાવદ્ય વ્યાપારોનો જેટલા જેટલા અંશે અભાવ થશે, તેટલા તેટલા અંશે આત્મામાં

नराः=मनुष्याः, तेषामेव निरवशेषकर्मक्षपणसामर्थ्यमस्तीति भावः। तत्रापि साधारणतया न सर्वे मनुष्या अशेषकर्मक्षपणसामर्थ्यवन्तः-इति बोधयितु तद्विशेषणमाह-'मृतार्चा' इति।

अंशमें आत्मा में निर्मलता जागृत होगी। इस निर्मलता के आते ही स्वतः शब्दादि विषयों में जीवको उपेक्षाभावकी जागृति हो जाती है। मनुष्य को तप संयम ही उत्तम विद्वत्ता के स्थान पर लाकर रखनेवाला होता है, इसीलिये सिद्धान्तकारों ने ऐसे मनुष्यको विद्वानोंमें श्रेष्ठ माना है।

यहां पर 'पलित' शब्द का अर्थ 'पुरातनकर्म' है। अनादिकालिक होने के कारण पुरातन कर्म भी पलित=श्वेतकेश सदृश हैं, अतः उन्हें यहां पलित कहा गया है। इसका अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार मनुष्य पलित-सफेद केश को शीघ्र उखाड़ डालता है उसी प्रकार मन, वचन और कायकी सावद्य प्रवृत्ति को त्याग करनेवाला मनुष्य भी उन पुरातन कर्मों को शीघ्र नष्ट कर देता है। यह काम सामान्य जीवों से नहीं हो सकता इसलिये इस कार्य के करनेवाले विशेष जीव ही होते हैं, इसी बातको प्रकट करने के लिये सूत्रकार इस सूत्रमें "नराः" इस पदका विन्यास करते हैं; क्यों कि समस्त कर्मों के विनष्ट करने की साक्षात् शक्ति मनुष्य में ही रही हुई है। इनमें भी सभी मनुष्य समस्त कर्मों के क्षपण करने में समर्थ नहीं होते हैं; यही बात "मृतार्चा" इस पदसे प्रकट की गई है।

નિર્મળતા જાગૃત થશે. આ નિર્મળતા આવવાથી શબ્દાદિ વિષયોમાં જીવને ઉપેક્ષા ભાવની જાગૃતિ થાય છે. મનુષ્યને તપ સંયમ જ વિદ્વત્તાના સ્થાન પર લાવીને રાખવાવાળાં છે, માટે સિદ્ધાંતકારોએ આવા મનુષ્યને વિદ્વાનોમાં ઉત્તમ માનેલ છે.

આ ઠેકાણે 'પલિત' શબ્દનો અર્થ 'પુરાતનકર્મ' છે. અનાદિકાલિક હોવાના કારણે પુરાતન કર્મો પણ પલિત-શ્વેતકેશસદૃશ છે, માટે તેઓને અહીં પલિત કહ્યા છે. આનો અભિપ્રાય આ છે કે-જે પ્રકારે મનુષ્ય પલિત-સફેદ વાળને શીઘ્ર ઉખાડી નાખે છે તે પ્રકારે મન વચન કાયાની સાવદ્ય પ્રવૃત્તિનો ત્યાગ કરવાવાળા મનુષ્ય પણ આ પુરાણા કર્મોને શીઘ્ર નષ્ટ કરી દે છે. આ કામ સામાન્ય જીવથી થઇ શકતું નથી, માટે આ કાર્યને કરવાવાળા કોઇક જ જીવ હોય છે. આ વાતને પ્રગટ કરવાને માટે સૂત્રકારે આ સૂત્રમાં "नराः" આ પદ રાખ્યુ છે; કેમ કે બધા કર્મોનો નાશ કરવાની સાક્ષાત્ શક્તિ મનુષ્યમાં જ રહેલી છે. આમાં પણ બધા મનુષ્યો સકળ કર્મોનો ક્ષય કરવામા સમર્થ થતા નથી. આ વાત 'मृतार्चा' આ શબ્દથી પ્રગટ કરવામાં આવી છે.

संस्काररहित्यात् मृतेव मृता-अर्चा शरीरं येषां ते मृतार्चाः, शुश्रूषाविभूषादिवर्जितशरीरा इत्यर्थः । यद्वा-अर्चा अर्चिः, तत्सादृश्यात् क्रोधोऽप्यर्चा, स च कषायमात्रोपलक्षणम् । तथा च-मृता नष्टा अर्चा कषायरूपा येषां ते मृतार्चाः, कषायरहिता इत्यर्थः । किंच-धर्मविदः=श्रुतचारित्रधर्मज्ञानवन्तः,

"मृतेव मृता अर्चा-शरीरं येषां ते मृतार्चाः" अर्थात्-शारीरिक-शुश्रूषाविभूषारूपसंस्काररहित होनेसे मृतके समान है शरीर जिनका ऐसे अपने शरीरमें निस्पृहवृत्ति रखनेवाले मनुष्यशिरोमणि ही इन कर्मों पर विजय लाभ करते हैं । अथवा "अर्चा-अर्चिः" अर्थ है ज्वाला। जिस प्रकार अग्निकी ज्वाला लाल होती है उसी प्रकार क्रोध भी लाल होता है; अतः ज्वालाके सादृश्य से क्रोध को भी अर्चा कहा है। क्रोध यह अन्य कषायों का उपलक्षण है, इससे मान, माया और लोभ का भी ग्रहण हो जाता है। जिनकी आत्मासे कषायरूप अर्चा नष्ट हो चुकी है, अर्थात् जो कषायरहित हो चुके हैं वे मनुष्य ही अष्टविध कर्मों के नष्ट करनेमें विशिष्टशक्तिशाली होते हैं। संसारमें बहुत से ऐसे भी बहुत से मनुष्य होते हैं कि जिन्हें शारीरिक शृङ्गार करने का जीवन में अवसर तक ही प्राप्त नहीं होता है, भील आदि ऐसे ही मनुष्यों में हैं; अतः इनकी भी यह अवस्था कर्मक्षपण के योग्य मानी जानी चाहिये ? इस प्रकारकी आशंकाको दूर करनेके लिये ही "मृतार्चा"

"मृतेव मृता अर्चा=शरीरं येषां ते मृतार्चाः" અર્થાત્ શારીરિક શુશ્રૂષા વિભૂષારૂપ સંસ્કાર રહિત હોવાથી મૃતકસદૃશ જેનું શરીર છે, આવા પોતાના શરીરમાં નિસ્પૃહ વૃત્તિ રાખવાવાળા મનુષ્યશિરોમણિ જ આ કર્મો ઉપર વિજય લાભ કરે છે. અથવા "अर्चा-अर्चिः"નો અર્થ જ્વાળા છે. જે પ્રકારે અગ્નિની જ્વાળા લાલ હોય છે તે પ્રકારે ક્રોધ પણ લાલ છે, માટે જ્વાળાની સદૃશતાથી ક્રોધને પણ અર્ચા કહે છે, ક્રોધ-શબ્દ બીજા કષાયોનું ઉપલક્ષણ છે. આમાં માન, માયા અને લોભનો પણ સમાવેશ થાય છે જેના આત્માથી કષાયરૂપી અર્ચાનો નાશ થયેલ છે, અર્થાત્-જે કષાયરહિત છે તે જ મનુષ્ય આઠ પ્રકારના કર્મોનો ક્ષય કરવામાં વિશિષ્ટશક્તિશાળી છે. સંસારમાં એવા પણ ઘણા માણસો છે કે જેને શારીરિક શૃંગાર કરવાનો અવસર જીવનમાં કોઈ વખત પણ પ્રાપ્ત થતો નથી, ભીલ આદિ એવા મનુષ્યો છે, માટે તેની પણ આ અવસ્થા કર્મક્ષપણયોગ્ય માનવી જોઈએ ? આ પ્રકારની શંકાને દૂર કરવાને માટે જ "मृतार्चा" શબ્દનો અર્થ "कषायरहित"

अत एव ऋजवः=सरलहृदयाः, अमायिन इत्यर्थः। मनुष्याः किं कृत्वा एवं भवन्तीती जिज्ञासायामाह—'आरम्भजम्' इत्यादि। इदं सर्वप्राणिप्रत्यक्षं दुःखम्

शब्दका अर्थ "कषायरहित" किया है। यद्यपि असाता-अशुभ कर्म के तीव्र उदय होने से वे उस प्रकारकी सामग्री से रहित हैं फिर भी वे उस जातकी कषाय से रहित नहीं हैं, अतः शारीरिक संस्कार से रहित होकर भी जो कषायोंसे रहित होते हैं वे ही कर्मक्षपण करनेमें शक्ति-सम्पन्न होते हैं। सच्चे शारीरिक संस्कार से विहीन वे होंगे जो इस शरीर को अपवित्र एवं मल, रुधिर, राध (पीव) की थैली मान कर निस्सार समझेंगे। शारीरिक संस्कार करना यह एक जातकी कषाय है। इस प्रकार के मनोभाव की जागृति आत्मामें विना श्रुतचारित्र धर्म के ज्ञान हुए नहीं हो सकती, अतः 'धर्मविदः' यह विशेषण इसी बातकी पुष्टि करता है। धर्मके यथार्थ स्वरूप को जान कर उस पर श्रद्धा रखनेवाला मनुष्य ही धार्मिक नियमों को अपनी आत्मामें उतारनेकी चेष्टा या उत्साह से सम्पन्न होता है। धार्मिक ज्ञान भी उसीकी आत्मामें अपना प्रभाव प्रकट करता है और वही 'अमायावी' सरल हृदयवाला होता है। मायावी-दुरंगी चाल चलने वाले-मनुष्य धर्मका सेवन करते हुए भी उससे जैसा फल प्राप्त उन्हें होना चाहिये वैसे फलसे सदा वंचित ही रहते हैं। यही बात सूत्रकारने "ऋजवः" इस पदसे स्पष्ट की है।

કર્યો છે. જો કે અસાતા-અશુભ કર્મ-નો તીવ્ર ઉદય હોવાથી તે તેવા પ્રકારની સામગ્રીથી રહિત છે તો પણ તે તેવા પ્રકારના કષાયથી રહિત નથી, માટે શારીરિક સંસ્કારથી રહિત થઈને પણ જે કષાયોથી રહિત થાય છે તે જ કર્મક્ષપણ કરવામાં શક્તિસંપન્ન થાય છે સાચા શારીરિક સંસ્કારથી દૂર તેજ થશે જે આ શરીરને અપવિત્ર અને મળ, લોહી, રસ્સીની થેલી માનીને નિસ્સાર સમજશે. શારીરિક સંસ્કાર કરવો તે પણ એક જાતનો કષાય છે. આ પ્રકારના મનોભાવની જાગૃતિ આત્મામાં શ્રુતચારિત્ર ધર્મનુ જ્ઞાન થયા વગર થતી નથી માટે 'ધર્મવિદઃ' આ વિશેષણ આ વાતની પુષ્ટિ કરે છે. ધર્મના યથાર્થ સ્વરૂપને જાણીને તેના ઉપર શ્રદ્ધા રાખવાવાળા મનુષ્ય જ ધાર્મિક નિયમોને પોતાના આત્મામા ઉતારવાની ચેષ્ટા અને ઉત્સાહ રાખે છે. ધાર્મિક જ્ઞાન પણ તેના જ આત્મામાં પોતાનો પ્રભાવ પાડે છે, અને તે જ 'अमायावी' સરળ હૃદયવાળો હોય છે. માયાવી—માયા-કપટથી ચાલવાવાળો-મનુષ્ય ભલે તે ધર્મનુ સેવન કરતો હોય તો પણ જેવું ફળ તેને મળવું જોઈએ તેવા ફળથી તે સદા વંચિત જ રહે છે. આ વાતનુ સ્પષ્ટીકરણ સૂત્રકારે "ऋजवः" આ પદથી કર્યું છે.

आरम्भजम्=कृषिवाणिज्यादिसकलसावद्यव्यापार आरम्भः, तस्माज्जातम्, इति ज्ञात्वा=' आरम्भे कृते सति प्राणिनां दुःखमुत्पद्यते ' इति विदित्वा ततो निवृत्ता नराः सर्वं कर्म क्षपयन्तीत्यर्थः । अस्मिन् विषये श्रद्धानं विधेयमिति बोधयितुमाह –एवमाहुः सम्यक्त्वदर्शिन इति । सम्यक्त्वदर्शिनः=सम्यक्त्व प्राप्ताः केवलिप्रभृतयः, अथवा समत्वदर्शिनः=रागद्वेषाभावेन एकेन्द्रियादिसर्वजीवे तुल्यभावेनावलोकिनः एवम्=उक्तरीत्या आहुः=वदन्ति । तस्मादत्र श्रद्धानं विधेयमितिभावः ।२।

कुतः सम्यक्त्वदर्शिनो वदन्तीति जिज्ञासायामाह–' ते सव्वे ' इत्यादि ।

कृषि–खेती, वाणिज्य–व्यापार आदि सावद्य कार्योंका नाम आरंभ है। इस आरम्भ से ही समस्त जीवों को दुःख उत्पन्न होता है और इस दुःखका समस्त ही जीव अपने २ स्वानुभवरूप प्रत्यक्ष से साक्षात् अनुभव करते हैं, ऐसा समझ कर जो मनुष्य उस सावद्य व्यापारसे निवृत्त हो जाते हैं वे ही समस्त कर्मों का क्षय करते हैं । इस प्रकार के इस कथनमें भव्य प्राणियों को श्रद्धा करना चाहिये । इस प्रकारकी सूचना करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि–इस प्रकार का यह कथन समकित को प्राप्त हुए केवली आदि महापुरुषोंने, अथवा जो समदर्शी हैं, समस्त जीवोंको राग द्वेष के अभाव होनेसे अपने तुल्य समझते हैं–उन्होंने किया है । इस विषयमें निश्शङ्क होकर दृढ श्रद्धा ही करनी चाहिये ॥ सू० २ ॥

सम्यक्त्वदर्शी केवली आदि ऐसा क्यों कहते हैं ? इस प्रकारकी शिष्यकी जिज्ञासा शांत करनेके लिये सूत्रकार कहते है–' ते सव्वे ' इत्यादि ।

ખેતી, વ્યાપાર આદિ સાવદ્ય કાર્યોનું નામ આરંભ છે. આ આરંભથી જ સર્વ જીવોને દુઃખ ઉત્પન્ન થાય છે, અને આ દુઃખને સર્વ જીવ પોતપોતાના સ્વાનુભવરૂપ પ્રત્યક્ષથી સાક્ષાત્ અનુભવ કરે છે. એવું સમજીને જે મનુષ્ય આવા સાવદ્ય વ્યાપારથી નિવૃત્ત થઈ જાય છે તે જ સર્વ કર્મોનો ક્ષય કરે છે આવા પ્રકારના આ કથનમાં ભવ્ય પ્રાણિઓએ શ્રદ્ધા રાખવી જોઈએ. આ પ્રકારની સૂચના કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે–આવા પ્રકારનું આ કથન સમકિતને પ્રાપ્ત થયેલાં કેવળી આદિ મહાપુરૂષોએ, અથવા સમદર્શી છે, રાગદ્વેષ રહિત હોવાથી સર્વ જીવોને પોતાના તુલ્ય માને છે, તેઓએ કર્યું છે, આ વિષયમાં નિશ્શંક થઈને દઢ શ્રદ્ધા જ રાખવી જોઈએ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

સમ્યક્ત્વદર્શી કેવળી આદિ આ પ્રકારે કેમ કહે છે ? આ પ્રકારની શિષ્યની જીજ્ઞાસાને શાન્ત કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે—' ते सव्वे ' ઈત્યાદિ.

मूलम्-ते सव्वे पावाइया दुक्खस्स कुसला परिण्णमुदाहरंति इय कम्म परिण्णाय सव्वसो ॥ सू० ३ ॥

छाया-ते सर्वे प्रावादिकाः दुःखस्य कुशलाः परिज्ञामुदाहरन्ति इति कर्म परिज्ञाय सर्वशः ॥ सू० ३ ॥

टीका—यतस्ते सर्वे सर्वविदः, प्रावादिकाः=प्र=प्रकर्षेण आ=धर्ममर्यादापुरस्सरं वदितुं शीलं येषां ते प्रावादिनस्त एव प्रावादिकाः-यथावस्थितार्थं प्रतिबोधयितुं वाग्मिन इत्यर्थः। दुःखस्य=शारीरमानसदुःखकारणस्य, कारणे कार्योपचारात् अष्टविधकर्मण इति यावत्, अपनोदने कुशलाः=प्रवीणाः सन्तः, सर्वशः= सर्वप्रकारैः मूलोत्तरप्रकृतिप्रकारैरित्यर्थः, कर्म परिज्ञाय इति=अनया रीत्या परिज्ञां

वे समस्त सर्वज्ञ केवली भगवान् कि जिनका स्वभाव धार्मिक-मर्यादा के अनुसार ही बोलने-उपदेश देनेका है, अर्थात्-जो वाग्मी-यथावस्थित पदार्थका प्रतिबोधन करनेमें पटु हैं और जो शारीरिक और मानसिक दुःखके कारणभूत अष्टविध कर्म को नष्ट करने में कुशल हैं, मूल और उत्तर प्रकृति के भेदसे विविधरूप (८ और १४८) कर्मको जान कर ज्ञपरिज्ञा और प्रत्याख्यानपरिज्ञाके भेदसे दो प्रकार की परिज्ञाका प्रतिपादन करते हैं, अर्थात्-'ज्ञ' परिज्ञा से अष्ट प्रकार के कर्म को जान कर 'प्रत्याख्यान' परिज्ञा से उस समस्त कर्मका परिहार करे, ऐसा कहते हैं।

परिज्ञा दो प्रकारकी है (१) ज्ञपरिज्ञा, (२) प्रत्याख्यानपरिज्ञा। ज्ञाता ज्ञपरिज्ञासे कर्मों के स्वरूपादिक को जानकर प्रत्याख्यानपरिज्ञासे-ज्ञानपूर्वक त्यागसे उनके नाश करने में उद्यमशील होता है। कर्मों की मूल

તે બધા સર્વજ્ઞ કેવળી ભગવાન, જેઓનો સ્વભાવ ધાર્મિક મર્યાદા અનુસાર જ બોલવાનો-ઉપદેશ દેવાનો-છે, અર્થાત્ જે વાગ્મી યથાવસ્થિત પદાર્થનું પ્રતિબોધન કરવામાં કુશળ છે, અને જે શારીરિક અને માનસિક દુઃખના કારણભૂત આઠ પ્રકારના કર્મોનો નાશ કરવામા કુશળ છે, મૂળ અને ઉત્તર પ્રકૃતિના ભેદથી વિવિધરૂપ (આઠ કર્મ અને એકસો અડતાલીસ પ્રકૃતિરુપ કર્મ) કર્મને જાણીને જ્ઞ-પરિજ્ઞા અને પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાના ભેદથી બે પ્રકારની પરિજ્ઞાનું પતિપાદન કરે છે. અર્થાત્-'જ્ઞ' પરિજ્ઞાથી આઠપ્રકારના કર્મને જાણીને 'પ્રત્યાખ્યાન' પરિજ્ઞાથી તે સમસ્ત કર્મનો નાશ કરે, એમ કહે છે.

પરિજ્ઞા બે પ્રકારની છે (૧) જ્ઞ-પરિજ્ઞા, (૨) પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞા. જ્ઞાતા જ્ઞ-પરિજ્ઞાથી કર્મોના સ્વરૂપાદિક જાણીને પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાથી જ્ઞાનપૂર્વક ત્યાગથી તેનો નાશ કરવામાં ઉદ્યમશીલ રહે છે. કર્મોની મૂલ પ્રકૃતિઓ ૮ છે, અને ઉત્તર

ज्ञप्रत्याख्यानभेदात् द्विविधाम्, उदाहरन्ति=कथयन्ति । ज्ञपरिज्ञया अष्टविधं कर्म सर्वथा परिज्ञाय, प्रत्याख्यानपरिज्ञया तत् सर्वं परिहरेदिति वदन्तीत्यर्थः ॥३॥

यदि सर्वज्ञाः कर्मपरिज्ञामुदाहरन्ति, तस्मात् किं कर्तव्यम् ? इति शिष्यजिज्ञासायामाह—'इह आणाकंखी' इत्यादि ।

मूलम्—इह आणाकंखी पंडिए अणिहे, एगमप्पाणं संपेहाए धुणे सरीरं ॥ सू० ४ ॥

छाया—इह आज्ञाकाङ्क्षी पण्डितः अस्निहः, एकमात्मानं संप्रेक्ष्य धुनीयात् शरीरम् ॥ सू० ४ ॥

प्रकृतियां ८ हैं और उत्तरप्रकृतियां १४८ हैं। सूत्रमें 'दुःख' शब्द से उसके कारणभूत कर्मों का कारण में कार्य के उपचार से ग्रहण किया है। केवली भगवान् वे हैं जो समस्त जीवों को धार्मिक मर्यादा के अनुसार ही हितका उपदेश देते हैं और स्वयं जो अष्ट कर्मों में से चार घातिया कर्मों को नष्ट कर चुके हैं, अवशिष्ट चार अघातिया कर्मोंका नाश करने में जो लगेहुए हैं, शारीरिक और मानसिक आधि व्याधि जिनमें नहीं है, और जो यही प्रवचन करते हैं कि जो दुःखसे छूटने की अभिलाषा रखते हैं उनका कर्तव्य है कि वे पहिले दुःखके कारणभूत कर्मों के ज्ञाता बनें और फिर ज्ञानपूर्वक चारित्रके आराधन से उनका समूल विच्छेद करें ॥ सू० ३ ॥

यदि सर्वज्ञ भगवान् कर्मपरिज्ञा का कथन करते हैं तो इससे भव्य जीवों का क्या कर्तव्य है ? ऐसी शिष्य की जिज्ञासा होने पर कहते हैं—'इह आणाकंखी' इत्यादि ।

પ્રકૃતિઓ ૧૪૮ છે, સૂત્રમાં 'દુઃખ' શબ્દથી તેના કારણભૂત કર્મોનું કારણમાં કાર્યના ઉપચારથી ગ્રહણ કરેલ છે. કેવળી ભગવાન તે છે જે સર્વ જીવોને ધાર્મિક મર્યાદા અનુસાર જ હિતનો ઉપદેશ આપે છે, અને પોતે આઠ કર્મમાંથી ચાર ઘાતિયા કર્મોનો નાશ કરી ચૂકયા છે, અવશિષ્ટ રહેલા ચાર અઘાતિયા કર્મોનો નાશ કરવામાં જે લાગેલ છે, શારીરિક અને માનસિક આધિ-વ્યાધિ જેઓમાં નથી, અને જેઓનું પ્રવચન આ પ્રકારનું છે કે-જે દુઃખથી છુટવાની અભિલાષા રાખે છે તેમનું કર્તવ્ય એ છે કે-પહેલા દુઃખના કારણભૂત કર્મોને જાણે અને પછી જ્ઞાનપૂર્વક ચારિત્રનું આરાધન કરવાથી તેનો સમૂળો નાશ કરે ॥ સૂ૦ ૩ ॥

યદિ સર્વજ્ઞ ભગવાન કર્મ પરિજ્ઞાનું કથન કરે છે તો તેથી ભવ્ય જીવોનું શું કર્તવ્ય છે ? એવી શિષ્યની જીજ્ઞાસા થવાથી કહે છે-'इह आणाकंखी' ઇત્યાદિ.

टीका--इह=अस्मिन् मनुष्यलोके, आज्ञां=सर्वज्ञनिदेशं काङ्क्षितुं शीलमस्येति आज्ञाकाङ्क्षी सम्यक्त्वस्य दृढीकरणेन पुनः पुनरार्हतागमश्रवणमननसमाराधनशीलः, अत एव पण्डितः=हेयोपादेयविवेकनिपुणः, अत एव अस्निहः=स्निह्यतीति स्निहः रागवान्, न स्निह इत्यस्निहः, स्निह इत्युपलक्षणं, तेन रागद्वेषरहित इत्यर्थः, आत्मानम् एकं=स्वजनधनशरीरादिभ्यः पृथग्भूतं संप्रेक्ष्य=विविच्य-पर्यालोच्य शरीरं =स्वदेहं धुनीयात्=निर्ममत्वभावेन निराद्रियेत, कञ्चुके सर्प इव शरीरे ममत्वं परित्यजेदित्यर्थः। अयं भावः-स्वजनधनशरीरादिषु क्षणभङ्गुरत्वादिदोषदर्शनेन रागापगमो भवति। तदनन्तरमयमात्मा-एक एवास्तीति पर्यालोचयति। यथा--

इस मनुष्यलोकमें सर्वज्ञ भगवानकी एकमात्र आज्ञाके समाराधन करनेके स्वभाववाला हेयोपादेय के विवेक करनेमें निपुणमतिवाला और रागद्वेषसे विरक्तबुद्धिवाला भव्य जीव अपनी आत्माकी पर्यालोचना करके शरीर को निर्ममत्व-भावसे रखे।

शरीर में जितना अधिक ममत्व होगा उतना ही अधिक इस संसार के चक्रमें फँसेगा। 'ममेदं' भावसे शरीरकी सेवा ही आत्मकल्याण से विमुख होनेकी निशानी है, अतः सूत्रकार यहां पर इसी बातका उल्लेख करते हुए उपदेश देते हैं कि-हे भव्य ! तुम सर्व प्रथम समकित को दृढ करो। इसकी दृढता होने पर तुम्हें अपने कल्याण का मार्ग अपने आप ज्ञात होने लगेगा। उस समय तुम्हारा आत्मस्वभाव शब्दादि विषयों की ओर न झुक कर प्रभुप्रतिपादित आगमके श्रवण, मनन और उसके समाराधन की ओर ही झुकेगा। उससे तुम समझ सकोगे कि हमारा

આ મનુષ્યલોકમાં સર્વજ્ઞ ભગવાનની એક માત્ર આજ્ઞાનું આરાધન કરવાનાં સ્વભાવવાળા, હેયોપાદેયના વિવેક કરવામાં નિપુણ મતિવાળા અને રાગ દ્વેષથી વિરક્ત બુદ્ધિવાળા ભવ્ય જીવ પોતાના આત્માની પર્યાલોચના કરીને શરીરને નિર્મમત્વ ભાવથી રાખે.

શરીરમાં જેટલો અધિક મમત્વ હશે તેટલો જ અધિક આ સંસારના ચક્રમાં ફસાશે. 'ममेदं' ભાવથી-'આ મારૂં છે'-એવા ભાવથી શરીરની સેવા જ આત્મકલ્યાણથી વિમુખ થવાની નિશાની છે, માટે સૂત્રકાર આ ઠેકાણે આ વાતનો ઉલ્લેખ કરીને ઉપદેશ આપે છે કે-હે ભવ્ય ! તમો પહેલાં સમકિતને દૃઢ કરો. સમકિતની દૃઢતા હોવાથી તમને તમારા કલ્યાણનો માર્ગ આપમેળે જાણવામાં આવશે. એવે વખતે તમારો આત્મસ્વભાવ શબ્દાદિ વિષયોની તરફ ન જતાં પ્રભુપ્રતિપાદિત આગમનુ શ્રવણ મનન અને તેના આરાધનની તરફ જ વળશે,

उपादेय क्या है और हेय क्या है ? इस प्रकार का परिपक्व-पुष्ट विवेक जब आत्मामें स्थिरता धारण कर लेगा तब बाह्य पदार्थों में जो राग और द्वेषकी भावना जागृत हो जाया करती है वह रुक जायगी, यहां तक कि जो शरीर, आत्माका अत्यन्त निकट सम्बन्धी है उसके प्रति भी 'ममेदं' भावका सर्वथा ह्रास हो जावेगा और 'तप-संयम ही उपादेय वस्तु है' इसका भान अच्छी तरह से होने लगेगा।

तात्पर्य इसका यही है कि कर्म के स्वरूपको जान कर मनुष्य सांसारिक पदार्थों की ओर से उपेक्षाभाव धारण करे। इससे मोह की न्यूनता होते २ समकित की उत्पत्ति और पुष्टि होगी। इसकी पुष्टि होने पर आर्हत प्रवचनके आराधन की ओर ही ध्यान आकृष्ट होगा। इससे हेयोपादेय का विवेक जागृत होकर आत्माको परपदार्थों की ओर रागद्वेष की परिणति से रहित करेगा; तब ज्ञात होगा कि यह आत्मा स्वजन-स्त्री-पुत्र-मित्रादिकों से और शरीर से सर्वथा भिन्न-जुदा है, उनके साथ इसका किसीभी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। उनके सुधार-बिगाड़ में इसका यत्किंचित् भी सुधार-बिगाड़ नहीं है। इस प्रकार की धारणा परिपुष्ट होने पर ज्ञानी आत्मा जैसे कञ्चुक (कांचली) को सर्प निर्ममत्वभावसे छोड़ देता है उसी प्रकार इस शरीर में 'ममत्व' भाव

અને તેથી તમો સમજી શકશો કે આમાંનું ઉપાદેય શું છે અને હેય શું છે? આ પ્રકારનો પરિપક્વ-પુષ્ટ વિવેક જ્યારે આત્મામાં સ્થિર થશે ત્યારે જ બહારના પદાર્થોમાં જે રાગ દ્વેષની ભાવના જાગૃત થાય છે તે રોકાઈ જશે, ત્યાં સુધી કે શરીર આત્માનું અત્યંત નિકટ સંબંધી છે તેના પ્રતિ પણ 'ममेदं' ભાવનો-'આ મારૂં છે' એવા ભાવનો સર્વથા નાશ થઈ જશે, અને 'તપ સંયમ જ ઉપાદેય વસ્તુ છે' તેનું ભાન સારી રીતે થઈ જશે

આનો અભિપ્રાય એ છે-મનુષ્યનું કર્તવ્ય છે કે તે સાંસારિક પદાર્થો પ્રતિ ઉપેક્ષાભાવ ધારણ કરે આથી મોહની અલ્પતા થતાં થતાં સમકિતની ઉત્પત્તિ અને પુષ્ટિ થશે. સમકિતની પુષ્ટિ થતાં જ આર્હત પ્રવચનનું આરાધન કરવાની તરફ ધ્યાન દોરાશે, અને તેથી હેયોપાદેયનો વિવેક જાગૃત થઈ આત્માને પરપદાર્થોની તરફ રાગદ્વેષપરિણતિરહિત કરશે, ત્યારે ભાન થશે કે આ આત્મા સ્વજન સ્ત્રી પુત્ર મિત્રાદિકોથી અને શરીરથી સર્વથા જુદો છે, તેની સાથે આત્માનો કોઈ પ્રકારનો સંબંધ નથી. તેમના સુધરવા બગડવામાં તેનો એટલે આત્માનો જરા પણ સુધારો-બગાડો નથી. આ પ્રકારની ધારણા પાકી થવાથી સાપ જેમ કાંચળીને મમતા વગર છોડી દે છે તે રીતે જ તે જ્ઞાની

“ कायः संनिहितापायः, संपदः पदमापदाम् ।
समागमाः सापगमाः, सर्वमुत्पादि भङ्गुरम् ॥ १ ॥
नायमत्यन्तसंवासः, कस्यचित् केनचित् सह ।
अपि स्वेन शरीरेण, किमुतान्यैः पृथग्जनैः ॥ २ ॥

का परित्याग करता है। वह जानता है कि इन स्वजन धन और शरीरादिकों के साथ जो इस ज्ञाता द्रष्टा आत्मा का सम्बन्ध हुआ है वह केवल संयोगमात्र है। संयोगसम्बन्धवालों का वियोग अवश्यंभावी है। ज्ञान और आत्मा का जिस प्रकार तादात्म्यसम्बन्ध है उस प्रकार का सम्बन्ध इसके साथ इनका नहीं है, अतः इनका यह संयोग क्षणभंगुर है, और आत्माका स्वभाव शाश्वत है, फिर क्षणिक पदार्थोंके साथ राग करनेसे लाभ ही क्या है ?। इस प्रकारके विवेकपूर्ण सद्विचारों से जब उनके प्रति उसकी दृष्टि रागरहित होती है और आत्मस्वभावकी ओर विशेष उन्मुख होती है तब वह विचारता है कि–मैं एकाकी हूं, संसारमें मेरा कोई नहीं है और मैं भी किसीका नहीं हूं। कहा भी है–

“ कायः संनिहितापायः, संपदः पदमापदाम् ।
समागमाः सापगमाः, सर्वमुत्पादि भंगुरम् ॥ १ ॥
नायमत्यन्तसंवासः, कस्यचित् केनचित्सह ।
अपि स्वेन शरीरेण, किमुतान्यैः पृथग्जनैः ॥ २ ॥

આત્મા આ શરીરના મમત્વભાવનો ત્યાગ કરે છે તે જ્ઞાની જાણે છે કે–આ સ્વજન ધન અને શરીરાદિકોની સાથે જે આ જ્ઞાતા દ્રષ્ટા આત્માનો સંબંધ થયેલ છે તે કેવળ સંયોગમાત્ર છે. સંયોગ–સંબંધવાળાઓનો વિયોગ અવશ્યંભાવી છે. જ્ઞાન અને આત્માનો જે પ્રકારે તાદાત્મ્ય સંબંધ છે તે પ્રકારનો સંબંધ તેની સાથે તેનો નથી, માટે આ તેનો સંયોગ ક્ષણભંગુર છે, અને આત્માનો સ્વભાવ શાશ્વત છે, પછી ક્ષણિક પદાર્થોની સાથે રાગ કરવાથી લાભ જ શું છે?, આવા પ્રકારના વિવેકપૂર્ણ સદ્‌વિચારોથી જ્યારે તેના પ્રતિ તેની દૃષ્ટિ રાગ–રહિત થાય છે, અને આત્મસ્વભાવની તરફ વિશેષ ઉન્મુખ થાય છે ત્યારે આ રીતે વિચારે છે કે–હું એકલો જ છું, સંસારમાં મારૂં કોઈ નથી, અને હું પણ કોઈનો નથી. કહ્યું પણ છે—

“ कायः संनिहितापायः, संपदः पदमापदाम् ।
समागमाः सापगमाः, सर्वमुत्पादि भंगुरम् ॥ १ ॥
नायमत्यन्तसंवासः, कस्यचित्केनचित्सह ।
अपि स्वेन शरीरेण, किमुतान्यैः पृथग्जनैः ॥ २ ॥

मातापितृसहस्राणि, पुत्रदारशतानि च ।
संसारेष्वनुभूतानि, यान्ति यास्यन्ति चापरे " ॥ ३ ॥

अपरं च—" एकः प्रकुरुते कर्म, भुनक्त्येकश्च तत्फलम् ।
जायते म्रियते चैक,–एको याति भवान्तरम् " ॥ ४ ॥

अन्यच्च —" सदैकोऽहं न मे कश्चित्, नाहमन्यस्य कस्यचित् ।
न तं पश्यामि यस्याहं, नासौ भावीति यो मम " ॥ ५ ॥

किंच— " न खलु विघटिताः पुनर्घटन्ते,
न च घटिताः स्थिरसंगतं श्रयन्ते ।
पिपतिषुमवशं रुजन्ति वश्याः
तटतरुमाप इवाऽऽपगागणस्य " ॥ ६ ॥ इति ।

तस्मात् स्वजनधनशरीरादिषु ममत्वं परिवर्जयेदिति ॥ सू० ४ ॥

मातापितृसहस्राणि, पुत्रदारशतानि च ।
संसारेष्वनुभूतानि, यान्ति यास्यन्ति चापरे " ॥ ३ ॥ इति ।

तथा " एकः प्रकुरुते कर्म, भुनक्त्येकश्च तत्फलम् ।
जायते म्रियते चैक,–एको याति भवान्तरम् ॥ ४ ॥
सदैकोऽहं न मे कश्चित्, नाहमन्यस्य कस्य चित् ।
न तं पश्यामि यस्याऽहं, नासौ भावीति यो मम ॥ ५ ॥
न खलु विघटिताः पुनर्घटन्ते,
न च घटिताः स्थिरसंगतं श्रयन्ते ।
पिपतिषुमवशं रुजन्ति वश्याः,
तटतरुमाप इवापगागणस्य " ॥ ६ ॥ इति ।

मातापितृसहस्राणि, पुत्रदारशतानि च ।
संसारेष्वनुभूतानि, यान्ति यास्यन्ति चापरे" ॥ ३ ॥ इति ।

तथा—" एकः प्रकुरुते कर्म, भुनक्त्येकश्च तत्फलम् ।
जायते म्रियते चैक,–एको याति भवान्तरम् ॥ ४ ॥
सदैकोऽहं न मे कश्चित्, नाहमन्यस्य कस्यचित् ।
न तं पश्यामि यस्याहं, नासौ भावीति यो मम ॥ ५ ॥
न खलु विघटिताः पुनर्घटन्ते,
न च घटिताः स्थिरसंगतं श्रयन्ते ।
पिपतिषुमवशं रुजन्ति वश्याः,
तटतरुमाप इवाऽऽपगागणस्य" ॥ ६ ॥ इति ।

यह शरीर जो मुझे प्राप्त हुआ है उसका पतन अवश्यंभावी है। संपत्ति अनेक विपत्तियों की जननी है। इष्टमित्रादिकों का समागम ध्रुव नहीं है। सब पदार्थ उत्पत्ति और विनाश स्वभाववाले है ॥ १ ॥ यहां पर किसी का किसी के साथ निवास स्थिर नहीं है। दूसरों की तो बात ही क्या करनी ? अरे ! इस शरीर के साथ भी तो आत्माका सम्बन्ध स्थिर नहीं है ॥ २ ॥ इस अनन्त संसारमें जो मेरे हजारों माता-पिता हो गये वे दूसरे ही थे, अभी जो हैं वे दूसरे ही हैं; आगे जो होंगे वे भी दूसरे ही होंगे ॥ ३ ॥ फिर भी कहा है—

यहां पर जीव अकेला ही शुभाशुभ कर्मोंका कर्त्ता है और अकेला ही शुभाशुभ फलोंका भोक्ता है। यह अकेला ही मरता है और अकेला ही भवान्तरमें जाता है ॥ ४ ॥

मैं सदा अकेला हूँ, न मेरा कोई है और न मैं किसीका हूँ। मैं जिनका हूँ ऐसे अपने पिता-पितामहादिकों को आज नहीं देख रहा हूँ, क्यों कि वे कालकवलित हो गये। और ऐसा भी कोई नहीं होगा जिसका मैं होऊँ। अर्थात्-मेरे कालकवलित हो जाने पर मैं भी अपने पुत्रादिकों का नहीं रहूँगा ॥ ५ ॥ जो इस संसारसे परलोकवासी हो गये हैं वे अब मिलनेके

આ શરીર જે મને પ્રાપ્ત થયેલ છે, તેનો નાશ જરૂર છે. સંપત્તિ અનેક વિપત્તિઓની માતા છે. ઇષ્ટ મિત્રોનો સમાગમ પણ ધ્રુવ નથી. જે ઉત્પત્તિશીલ પદાર્થો છે તે બધા ક્ષણભંગુર છે. (૧) અહીંઆ કોઈનો કોઇની સાથે નિવાસ સ્થિર નથી. બીજાની તો વાત જ શી કરવી ? અરે ! આ શરીરની સાથે આત્માનો સંબંધ પણ સ્થિર નથી. (૨) આ અનંત સંસારમાં જે મારા હજારો માતા પિતા અને સેંકડો પુત્રો અને સ્ત્રિઓ થઇ ગયા તે બીજા જ હતા, અને જે અત્યારે છે તે પણ બીજા જ છે, અને જે આગળ થશે તે પણ બીજા જ થશે. ॥૩॥ વળી પણ કહ્યું છે—

અહીં જીવ એકલો જ શુભાશુભ કર્મોનો કર્તા છે, અને એકલો જ શુભાશુભ ફળોનો ભોક્તા છે. તે એકલો જ મરે છે અને એકલો જ ભવાન્તરમાં જાય છે. (૪)

હમેશાં હું એકલો છું, મારો કોઈ નથી, તેમ જ હું પણ કોઇનો નથી, જેનો હું છું એવા પોતાના બાપ દાદાઓને આજે હું જોતો નથી, કેમ કે-તે બધા કાળકવળિત થઇ ગયા, અને એવો પણ કોઇ નહિ થશે જેનો હું થાઉં. અર્થાત્- મારૂં શરીર છુટ્યા પછી હું પણ પોતાના પુત્રાદિકોનો રહીશ નહિ (૫) જે આ સંસારથી પરલોકવાસી થયા છે તે હવે મળવાના નથી, જે કાલ

किंच—कसेहि अप्पाणं ' इत्यादि ।

मूलम्—कसेहि अप्पाणं जरेहि अप्पाणं ॥ सू० ५ ॥

छाया—कृशं कुरु आत्मानं जारय आत्मानम् ॥ सू० ५ ॥

टीका—आत्मानं=शरीरम्, इह आत्मशब्दः शरीरवाची गृह्यते; कृशं कुरु= तपश्चरणादिना शरीरशोषणे प्रवृत्तो भवेदित्यर्थः । तथा—आत्मानं=शरीरं जारय= जीर्णं कुरु, तपश्चरणेन तथा कुरु यथा जराजीर्णमिव भवेदित्यर्थः । शुश्रूषाविभूषापरि- हारेण शरीरस्य निःसारतामापादय, स्वदेहं निर्बलं रूक्षं च कुरुष्वेति भावः ॥सू०५॥

नहीं; जो अभी साथमें रह रहे हैं वे भी सदा साथ रहनेके नहीं । जिस प्रकार नदियों के तट पर खड़े हुए वृक्षोंको उनका जल उखाड़ कर फेंक देता है इसी प्रकार मेरे ये स्वजनादिक मुझे हर तरह से आत्मस्वरूप से उखाड़ देनेकी कोशिश में लगे हुए हैं ॥ ६ ॥

इसलिये मनुष्यको चाहिये कि इन संयोगी पदार्थों से ममत्वरहित होकर आत्मकल्याणके मार्गका पथिक बने ॥ सू० ४ ॥

भगवान् अपनी दिव्यदेशनामें भव्य जीवोंको समझाते हुए कहते हैं— ' कसेहि अप्पाणं ' इत्यादि ।

हे भव्य ! तू इस शरीरका तपस्या आदि शुभ साधनों के द्वारा शोषण कर, तथा तपस्या भी ऐसी कर कि जिससे यह शरीर जरा- वृद्धावस्था से जीर्ण हुए के समान हो जावे ।

शरीरके प्रति ममता रख कर उसकी सेवा शुश्रूषा और विभूषा आदि न कर; किन्तु तपश्चर्या के द्वारा इसे निर्बल और रूक्ष बना ॥सू० ५॥

સાથે રહે છે તે પણ હમેશાં સાથે રહેનાર નથી. જેવી રીતે નદીના કિનારા ઉપરના વૃક્ષોને તેનું પાણી ઉખાડીને ફેંકી દે છે તેવી જ રીતે મારા આ સ્વજનાદિક મને કોઈ પ્રકારે આત્મ સ્વરૂપથી ઉખાડી દેવાની કોશિશમાં લાગેલાં છે. (૬)

માટે મનુષ્યોને સમજવું જોઈએ કે—આ સંયોગી પદાર્થોથી મમત્વ-રહિત થઈ ને આત્મકલ્યાણના માર્ગમા આગળ વધે ॥ સૂ૦ ૪ ॥

ભગવાન પોતાની દિવ્યદેશનામાં ભવ્ય જીવોને સમજાવતા કહે છે— ' कसेहि अप्पाणं ' ઈત્યાદિ.

હે ભવ્ય ! તું આ શરીરનું તપ આદિ શુભસાધનદ્વારા શોષણ કર, અને તપ પણ એવી રીતે કર કે જેથી તારૂં આ શરીર જરા-વૃદ્ધાવસ્થાથી જીર્ણ જેવું થઈ જાય. શરીર પ્રતિ મમતા રાખીને તેની સેવા શુશ્રૂષા અને વિભૂષા આદિ ન કર, કિન્તુ તપશ્ચર્યાદ્વારા તેને નિર્બળ અને રૂક્ષ બનાવ. ॥ સૂ૦ ૫ ॥

किमर्थम् इत्येतदिति जिज्ञासायामाह--'जहा जुन्नाइं' इत्यादि ।

मूलम्--जहा जुन्नाइं कट्ठाइं हव्ववाहो पमत्थइ, एवं अत्तसमाहिए अणिहे ॥ सू० ६ ॥

छाया--यथा जीर्णानि काष्ठानि हव्यवाट् प्रमथ्नाति, एवम् आत्मसमाहितः अस्निहः ॥ सू० ६ ॥

टीका--यथा हव्यवाट्=अग्निः, जीर्णानि=असाराणि शुष्काणि, काष्ठानि प्रमथ्नाति=त्वरितं भस्मसात् करोति, एवम्=अनेन प्रकारेण अस्निहः=शब्दादिविषयेषु रागरहितः सन्, शरीरादौ निर्ममो भूत्वा, इति फलितार्थः; आत्मसमाहितः=आत्मनि=आत्मनः शुभपरिणामे सम्यग्दर्शनादौ समाहितः=सावधानः आत्मनिष्ठ इत्यर्थः, अतएव-अस्निहः शब्दादिविषयेषु रागरहितः सन् ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मकाष्ठानि प्रमथ्नातीत्यर्थः ॥ सू० ६ ॥

इस प्रकार शरीरको निर्बल और रूक्ष करनेकी आवश्यकता क्यों है ? इसको कहते हैं-' जहा जुन्नाइं ' इत्यादि ।

जिस प्रकार शुष्क काष्ठको अग्नि शीघ्र भस्म कर देती है उसी प्रकार शब्दादि विषयों में निर्मम होकर केवल आत्माके शुभपरिणामरूप समकित आदिमें सावधान-आत्मनिष्ठ हुआ मनुष्य ज्ञानावरणीयादिक अष्ट प्रकारके कर्मरूप काष्ठको जला देता है-नष्ट कर देता है।

शरीरमें जब तक ममत्वभाव रहता है तब तक यथावत् तपश्चर्यादिक साधनों का अनुष्ठान नहीं हो सकता है, अतः यथावत् तपश्चर्यादिक अनुष्ठानों को करने के लिये शरीरमें निर्ममत्व भावकी जागृति अवश्य आवश्यकीय है। ऐसा होने पर यथावत् अनुष्ठित तपश्चर्यादिक साधनों से कर्मों का नाश अवश्यंभावी है ॥ सू० ६ ॥

આ પ્રકારે શરીરને નિર્બળ અને રૂક્ષ બનાવવાની આવશ્યક્તા શા માટે? તો કહે છે—' जहा जुन्नाइं ' ઇત્યાદિ.

જેમ સુકા લાકડાને અગ્નિ જલ્દી બાળી નાંખે છે તેમ શબ્દાદિ વિષયોમાં મમતા વગર થઈને ફક્ત આત્માના શુભપરિણામરૂપ સમકિત આદિમા સાવધાન-આત્મનિષ્ઠ થયેલો મનુષ્ય જ્ઞાનાવરણીયાદિક આઠ પ્રકારના કર્મરૂપ કાષ્ઠોને બાળી નાંખે છે-નાશ કરે છે.

શરીરમાં જ્યાં સુધી મમતાભાવ રહે છે ત્યાં સુધી બરોબર રીતે તપશ્ચર્યાદિક સાધનોનુ અનુષ્ઠાન બનતું નથી, માટે બરોબર રીતે તપશ્ચર્યાદિક અનુષ્ઠાનોને કરવા શરીરમાં નિર્મમત્વ ભાવની જાગૃતિની ખાસ જરૂર છે. આમ થવાથી સરખી રીતે અનુષ્ઠિત તપશ્ચર્યાદિકસાધનોદ્વારા કર્મોનો અવશ્ય નાશ થાય છે. ॥ સૂ૦ ૬ ॥

उक्तरीत्या रागनिवृत्तिं प्रदर्श्य द्वेषनिवृत्तिमाह–' विगिंच कोहं ' इत्यादि।

मूलम्–विगिंच कोहं अविकंपमाणे इमं निरुद्धाउयं संपेहाए ॥७॥

छाया–वेविक्ष्व क्रोधम् अविकम्पमानः इमं निरुद्धायुष्कं संप्रेक्ष्य ॥ सू० ७ ॥

टीका––इमं=मनुष्यलोकं, निरुद्धायुष्कम्=अवधितायुष्कं संप्रेक्ष्य=पर्यालोच्य, अविकम्पमानः क्रोधजनितकम्परहितः प्रशमगुणसमन्वितः सन्नित्यर्थः, क्रोधम्–प्रज्वलनरूपातिक्रूराध्यवसायः क्रोधस्तं वेविक्ष्व=परित्यज, क्रोधमितिपदं सकलकषायोपलक्षणम् ॥ सू० ७ ॥

पूर्वोक्त रीतिसे रागकी निवृत्ति प्रकट कर अब द्वेषकी निवृत्ति कहते हैं। ' विगिंच कोहं ' इत्यादि।

इस मनुष्यलोकको अवधित–नियमित आयुवाला जान क्रोधसे उत्पन्न हुए विकार–परिणामसे रहित होकर अर्थात् प्रशमगुणसम्पन्न होकर आत्माको जलानेवाले क्रूर अध्यवसायस्वरूप इस क्रोधका, उपलक्षणसे–मान, माया और लोभ का भी त्याग कर।

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार रागभाव त्याज्य है उसी प्रकार द्वेषभाव भी त्याज्य है, अतः जब किसी भी सचेतन, अचेतन वस्तु पर द्वेष होता है तब आत्मामें क्रोध पैदा होता है; क्रोधसे शरीरमें कंप की जागृति होती है; शारीरिक कंप से आत्माके प्रदेशोंमें भी एक प्रकार की परिस्पंदरूप क्रिया होती है जिससे उस हालतमें अधिक श्वास–उच्छ्वास चलने लगते हैं, अधिक श्वासोच्छ्वासों के चलने से आयुकर्म के अविभागी प्रतिच्छेदों-विभागों-का ह्रास होता है, और इस तरहसे अकालमें ही आयु-

---

પૂર્વોક્ત રીતિથી રાગની નિવૃત્તિ પ્રગટ કરી, હવે દ્વેષની નિવૃત્તિ કહે છે–' विगिंच कोहं ' ઇત્યાદિ

આ મનુષ્યલોકને અવધિ'ત–નિયમિત આયુવાળો જાણીને ક્રોધથી ઉત્પન્ન થયેલ વિકારપરિણામથી રહિત થઈ અર્થાત્ પ્રશમગુણસંપન્ન થઈ આત્માને બાળવાવાળા ક્રૂરઅધ્યવસાયસ્વરૂપ આ ક્રોધનો, ઉપલક્ષણથી માન માયા અને લોભનો ત્યાગ કર. તાત્પર્ય એ છે કે–જે પ્રકારે રાગભાવ ત્યાજ્ય છે તે પ્રકારે દ્વેષભાવ પણ ત્યાજ્ય છે, માટે જ્યારે કોઈ પણ સચેત–અચેત વસ્તુ ઉપર દ્વેષ થાય છે ત્યારે આત્મામાં ક્રોધ પેદા થાય છે ક્રોધથી શરીર ધ્રુજવા માંડે છે શરીરના ધ્રુજવાથી આત્માના પ્રદેશોમાં પણ એક પ્રકારની પરિસ્પંદરૂપ ક્રિયા થાય છે જેથી તેવી હાલમાં અધિક શ્વાસ–ઉચ્છ્વાસ ચાલવા લાગે છે, અધિક શ્વાસોચ્છ્વાસોના ચાલવાથી આયુકર્મના અવિભાજ્ય પ્રતિછેદો–વિભાગો–નો હ્રાસ

किंच--' दुक्खं च जाण ' इत्यादि।

मूलम्--दुक्खं च जाण अदु आगमेस्सं, पुढो फासाइं च फासे, लोयं च पास विफंदमाणं ॥ सू० ८ ॥

छाया--दुःखं च जानीहि अथ आगामि, पृथक् स्पर्शान् च स्पृशेत्, लोकं च पश्य विस्पन्दमानम् ॥ सू० ८॥

टीका--क्रोधादिवशात् त्रिकरणत्रियोगैः प्राणातिपातादिकरणे समुत्पद्यमानं

कर्म की स्थिति पूर्ण हो जाती है, अतः भगवान् का कथन है कि कषाय-रूप क्रोध करते समय इस बातका प्रत्येक आत्महितैषी जीवको विचार करना चाहिये कि जिस प्रकार घड़ी की चाबी उसके नीचे चलते हुए गोले को अधिक-बारंबार घुमानेसे असमयमें खाली हो जाती है उसी प्रकार कषायादि करने से आयुकर्म की स्थिति भी असमयमें खिर जाती है। आयुकर्म की निर्जरा तो होती है परन्तु बद्ध आयु में उत्कर्षण (अधिकता) नहीं होता। जिस प्रकार जीव सात कर्मों को प्रत्येक समय बांधता और निर्जीर्ण करता है उस प्रकार आयुकर्म को नहीं बांधता। जितनी कुछ आयुकर्म की स्थिति बंध चुकी वह उतनी ही रहेगी, उसमें फिर वृद्धि नहीं हो सकती। हां ! बाह्य निमित्तों को लेकर उसमें अप-कर्षण (ह्रास) जरूर होता है ॥ सू० ७ ॥

फिर भगवान कहते हैं--' दुक्खं च जाण ' इत्यादि।

यह निश्चित है कि-क्रोधादिक कषायके आधीन होकर जब जीव

થાય છે, અને આવી રીતે અકાળે આયુકર્મની સ્થિતિ પૂર્ણ થઇ જાય છે, માટે ભગ-વાનનું કથન છે કે-કષાયરૂપ ક્રોધ કરતી વખતે પ્રત્યેક આત્મહિતૈષી જીવને વિચાર કરવો જોઈએ કે જેમ ઘડીયાળની ચાવી તેની નીચે ચાલતા લોલકને વારંવાર અધિક ઘુમાવવાથી અસમયમાં ખાલી થઈ જાય છે, તેમ કષાયાદિ કરવાથી આયુ-કર્મની સ્થિતિ પણ અસમયમાં ખલાસ થઈ જાય છે. આયુ કર્મની નિર્જરા તો થાય છે પણ બદ્ધ-બાંધેલા આયુમાં ઉત્કર્ષણ (અધિકપણું) નથી હોતું. જેવી રીતે જીવ સાત કર્મોને પ્રત્યેક સમય બાંધે છે, અને તેની નિર્જરા કરે છે, તેવી રીતે આયુકર્મને નથી બાંધતો જેટલી પણ આયુકર્મની સ્થિતિ બંધાએલી છે તે તેટલી જ રહેશે. તેમા વધારો થઈ શકતો નથી. હા, બાહ્ય નિમિત્તો લઇને તેમાં અપકર્ષણ (હ્રાસ) અવશ્ય થાય છે ॥ સૂ૦ ૭ ॥

વળી ભગવાન કહે છે--' दुक्खं च जाण ' ઈત્યાદિ.

એ નિશ્ચિત છે કે-ક્રોધાદિક કષાયને આધીન થઈ જ્યારે જીવ કરવું,

प्राणिनां दुःखं जानीहि, यद्वा-क्रोधादिना प्रज्वलितात्मनो यन्मानसं दुःखमुपजायते तज्जानीहि। अथ-आगामि=क्रोधजनितकर्मविपाकोदयाज्जायमानमनागतकालिकं दुःखं च जानीहि। आगामिनो दुःखस्य प्राप्तिस्थानमाह-'पृथक्' इत्यादि। पृथक्=अन्यत्र नरकनिगोदादौ स्पर्शान्=दुःखानि च क्रोधी स्पृशेत्=अनुभवेत्। अत्र चकारः समुच्चयार्थः, क्रोधप्रज्वलितात्मनो न केवलं वर्तमानकालिक एव मनस्तापः किं तु भविष्यत्कालेऽपि नरकादौ क्रोधजनितकर्मफलभूतं दुःखं भवतीत्यर्थः। मोक्ष-

करना कराना और अनुमोदना, इन तीन करणों से, एवं मन, वचन तथा काय से दूसरे जीवों की हिंसादिक करने में प्रवृत्त होता है तब उन प्राणियों को दुःख अवश्य उत्पन्न होता है। अथवा-क्रोधादि कषाय से आत्मा जब संतप्त हो जाता है तब उसके लिये अवश्य मानसिक कष्ट होता है। तथा क्रोध कषाय करते समय जीव जिन कर्मों का बंध करता है और जब वे तीव्र अनुभागरूपसे उदयमें आते हैं तब उनका फल दुःखरूप ही होता है। इस फलकी प्राप्ति जीवको नरकनिगोदादि गतियों में वहां के अनंत कष्टों को भोगने के रूपमें होती है।

यहां पर 'चकार' समुच्चय अर्थ को प्रकट करता है, अर्थात्-क्रोधसे संतप्त आत्मा केवल वर्तमानकालमें (उसी भव में) ही मनस्तापरूप दुःखको नहीं भोगता है; किन्तु आगामी कालमें (परभवमें) भी नरकादि गतियों में उस क्रोधसे जनित कर्मके फलरूप दुःखका अनुभव करता है, इसलिये क्रोधादिक कषायों को छोड़ कर मोक्ष मार्ग में प्रवृत्ति

કરાવવું, અને અનુમોદવું, આ ત્રણ કારણોથી, અને મન, વચન, કાયાથી બીજા જીવોની હિંસા આદિ કરવામાં પ્રવૃત્ત થાય છે ત્યારે આ પ્રાણીઓને દુઃખ અવશ્ય થાય છે. અથવા-ક્રોધાદિ કષાયથી આત્મા જ્યારે સંતપ્ત થઈ જાય છે ત્યારે તેને માટે માનસિક કષ્ટ અવશ્ય થાય છે તથા ક્રોધકષાય કરતી વખતે જીવ જે કર્મોનો બંધ કરે છે, અને જ્યારે તે તીવ્ર અનુભાગરૂપથી ઉદયમાં આવે છે ત્યારે તેનું ફળ દુઃખરૂપ જ થાય છે. આ ફળની પ્રાપ્તિ જીવને નરકનિગોદાદિ ગતિઓમાં ત્યાંના અનંત કષ્ટોના ભોગવવારૂપે થાય છે.

આ ઠેકાણે 'ચकार' સમુચ્ચય અર્થને પ્રગટ કરે છે, અર્થાત્-ક્રોધથી સંતપ્ત આત્મા કેવળ વર્તમાનકાળમાં (આ ભવમાં જ) મનતાપરૂપી દુઃખને ભોગવતો નથી, પરંતુ આગામી કાળમાં (પરભવમાં) પણ નરકાદિ ગતિઓમાં તે ક્રોધથી ઉત્પન્ન થયેલાં કર્મના ફળરૂપ દુઃખનો અનુભવ કરે છે, માટે ક્રોધાદિકષાયોને

मार्गे प्रवर्तयितुमाह--'लोकं च' इत्यादि। विस्पन्दमानं=दुःखागमभयात् कम्पमान लोकं=जीवनिकायं पश्य, प्रशमसमन्वितः सन् दुःखभयात्कम्पमानं जीवलोकं दयादृष्ट्याऽवलोकयेत्यर्थः ॥ सू० ८ ॥

कराने के लिये सूत्रकार कहते हैं कि-हे भव्य! दुःखकी प्राप्ति के भयसे कंपायमान इस षड्जीवनिकाय को तूं देख, अर्थात् प्रशमभाव से युक्त होकर दुःखके भयसे त्रस्त जीवलोक को सदा तूं दयादृष्टिसे देख।

बन्ध चार प्रकारका है—प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध। इनमें योगसे प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध होते हैं। कषायसे स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध होते हैं। रंगका काम कपड़ेको रंगने का है परन्तु हर्रा और फिटकरी के समागमसे जिस प्रकार वह रंग कपडे पर गहरा हो जाता है उसी प्रकार कषाय की अल्पता और अधिकता कर्मोंके स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धकी अल्पता और अधिकता में कारण होती है, अत एव कषाय यदि तीव्र होगी, तो कर्मों का तीव्र स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध होगा। कषाय मध्यमांशवाली होगी तो उनका मध्यमांश बंध होगा। बुद्धिपूर्वक प्राणातिपातादि सावद्य व्यापार करते समय जीवको अनन्तानुबन्धी क्रोधकषाय का तीव्रतम अंश होता है, ऐसी हालतमें जीव को जो कर्मों का बंध होगा वह तीव्रतम स्थिति और अनुभागबंध को ही लेकर होगा। ऐसी हालतमें

છોડીને મોક્ષમાર્ગમાં પ્રવૃત્તિ કરાવવા સૂત્રકાર કહે છે કે-હે ભવ્ય! દુઃખના ભયથી કંપાયમાન આ ષડ્જીવનિકાયને તું દેખ, અર્થાત્-પ્રશમભાવથી યુક્ત થઈ દુઃખના ભયથી ત્રાસેલા જીવલોકને સદા તું દયાદૃષ્ટિથી દેખ.

બંધ ચાર પ્રકારના છે-પ્રકૃતિબંધ, સ્થિતિબંધ, અનુભાગબંધ અને પ્રદેશબંધ. આમા યોગથી પ્રકૃતિબંધ અને પ્રદેશબંધ થાય છે. કષાયથી સ્થિતિબંધ અને અનુભાગબંધ થાય છે. રંગનુ કામ કપડાને રંગવાનું છે પરંતુ હરડા અને ફટકડીથી જે પ્રકારે તે રંગ વધારે ગાઢો થાય છે તે પ્રકારે કષાયની અલ્પતા અને અધિકતા કર્મોના સ્થિતિબંધ અને અનુભાગબંધની અલ્પતા અને અધિકતામાં કારણ થાય છે, માટે કષાય જો તીવ્ર હશે તો કર્મનો સ્થિતિબંધ અને અનુભાગબંધ તીવ્ર થશે. કષાય મધ્યમાંશવાળો હશે તો કર્મનો સ્થિતિબંધ અને અનુભાગબંધ મધ્યમ થશે. બુદ્ધિપૂર્વક પ્રાણાતિપાતાદિ સાવદ્ય વ્યાપાર કરતી વખતે જીવને અનંતાનુબંધી ક્રોધકષાયનો તીવ્રતમ અંશ થાય છે, તેવી હાલતમાં જીવને જે તે સમયે કર્મોનો બંધ થશે તે તીવ્રતમ સ્થિતિબંધ અને અનુભાગબંધને જ લઈને

जब उनका अपने अबाधाकाल को छोड़ कर उदय आवेगा तब वह भी तीव्रतम रूपसे ही अपना फल देगा, अतः जीव या तो इसी भवमें तज्जन्य दुःखादिकों का पूर्ण भोक्ता होगा, और यदि अवशिष्ट बचेंगे तो उनका फल उसे नरकनिगोदादि में जाकर भोगना पडेगा। यही बात इस सूत्र में प्रकट की गई है। 'चकार' शब्द जो सूत्रमें पड़ा है वह यह भी प्रकट करता है कि-क्रोधकषाय के वश होकर प्राणातिपातादिक में प्रवृत्ति करनेवाला जीव तज्जन्य दुःख को इस भवमें और परभवमें (नरकनिगोदादिकों में) भी भोगता है।

क्रोधकषाय से जिस समय आत्मा संतप्त हो जाता है उस समय उस आत्मा का मन संतप्त होता है, मनका संतप्त होना ही भावहिंसा है। मनके संताप से अशुभ कर्मों का आस्रव होता है।

अन्तमें सूत्रकार उपसंहार करते हुए कहते हैं कि जब क्रोधादिक कषायोंके करने से जीवों को दुःख भोगना पड़ता है और संसार में कोई भी प्राणी दुःख को नहीं चाहता, सब सुखके ही अभिलाषी हैं, तो भव्य का कर्तव्य है कि वह इस दुःख के अभावरूप मोक्ष मार्ग में प्रवृत्ति करे। संसार में थोड़ा सा भी सुख नहीं है। जिसे जीवने सुख मान रखा है वह काल्पनिक है। आकुलता का जब तक सर्वथा अन्त नहीं हो

થશે એવી સ્થિતિમાં જ્યારે પોતાના અબાધાકાળને છોડીને તેનો ઉદય થશે ત્યારે તે પણ તીવ્રતમરૂપથી જ પોતાનું ફળ આપશે, માટે જીવ કાં તો આ ભવમા જ તજ્જન્ય દુઃખાદિકોને પૂર્ણરૂપે ભોગવશે, અને જો અવશિષ્ટ બચશે તો તેનું ફળ તેણે નરક નિગોદાદિમાં જઈ ને ભોગવવું પડશે આ જ વાત આ સૂત્રમાં પ્રગટ કરવામા આવી છે. 'चकार' શબ્દ જે સૂત્રમાં છે. તે એમ પ્રગટ કરે છે કે—ક્રોધ-કષાયને વશ થઈ પ્રાણાતિપાતાદિકમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળાં જીવ તજ્જન્ય દુઃખને આ ભવમાં અને પરભવમા (નરકનિગોદાદિકોમાં) પણ ભોગવે છે.

ક્રોધ-કષાયથી જે વખતે આત્મા સંતપ્ત થઈ જાય છે, તે વખતે તે આત્માનું મન સંતપ્ત થાય છે મનનું સંતપ્ત થવું એ જ ભાવહિંસા છે

મનના સંતાપથી અશુભ કર્મોના આસ્રવ થાય છે. અંતમાં સૂત્રકાર ઉપસંહાર કરતાં કહે છે કે—જ્યારે ક્રોધાદિક કષાયો કરવાથી જીવોને દુઃખ ભોગવવું પડે છે અને સંસારમા કોઈ પણ પ્રાણી દુઃખને નથી ચાહતો, બધા સુખના જ અભિલાષી છે. ત્યારે ભવ્ય પ્રાણીનું કર્તવ્ય છે કે આ દુઃખના અભાવરૂપ મોક્ષમાર્ગમાં પ્રવૃત્તિ કરે, સંસારમા થોડું પણ સુખ નથી, જીવે જેને સુખ માન્યું છે તે કાલ્પનિક છે. આકુળતાનો જ્યાં સુધી સર્વથા અંત નથી થતો ત્યાં

ये तु एवं न सन्ति, ते कथं भवन्ति ? इत्यत आह-'जे निव्वुडा' इत्यादि।

मूलम्-जे निव्वुडा पावेहिं कम्मेहिं अणियाणा ते वियाहिया ॥९॥

छाया--ये निर्वृताः पापेषु कर्मसु अनिदाना· ते व्याख्याताः ॥ सू० ९ ॥

टीका--ये भगवत्तीर्थंकरोपदेशे श्रद्धावन्तस्तदुपदेशधारणया क्रोधादिकषायानलप्रशमनान्निर्वृताः=शीतीभूताः, अत एव पापेषु कर्मसु अनिदानाः=निदानरहिताः, ते व्याख्याताः=मोक्षसुखस्थानरूपेण कथिताः, इह लोके औपशमिकसुखवत्त्वेन ख्यातिमुपगता भवन्तीत्यर्थः ॥ सू० ९ ॥

जाता, तब तक सुख प्राप्त नहीं हो सकता। सांसारिक जीवन का एक भी क्षण विना आकुलता के नहीं है। उस आकुलतारूप परिणति का अभाव तो मोक्षमार्ग में ही है, इसलिये प्रत्येक आत्मकल्याणाभिलाषी जीवको उस मार्ग में ही लगने की परमावश्यकता है। जबतक उस मार्ग में नहीं लगा जावेगा तब तक दुःख और आकुलता का अन्त नहीं हो सकता। मोक्षमार्ग में लगा हुआ प्राणी अवश्य ही दुःख की प्राप्ति के भय से त्रस्त इस प्रत्यक्ष में दिखनेवाले षड्जीवनिकाय को प्रशमभावसे समन्वित होकर दयादृष्टि से देखेगा। किसीको भी स्वप्न तक में सताने की भावना नहीं करेगा। उसकी भावना यही सदा रहेगी कि ये दुःख से कैसे छूटें ? ॥ सू० ८ ॥

जो क्रोधादि कषायों से रहित होते हैं वे कैसे होते हैं ? सो कहते हैं -'जे निव्वुडा' इत्यादि।

भगवान् तीर्थङ्कर के उपदेश में जो श्रद्धासम्पन्न हैं, अर्थात्-उनके दिव्य उपदेश की धारणा से जो क्रोधादिक कषाय रूप अग्निके शमन होने

સુખ પ્રાપ્ત થતું નથી, સાંસારિક જીવનમાં એક પણ ક્ષણ આકુળતા વગર નથી. આ આકુળતારૂપ પરિણતિનો અભાવ તો મોક્ષમાર્ગમાં જ છે, માટે આત્મકલ્યાણ ઇચ્છવાવાળા પ્રત્યેક જીવને તે માર્ગમાં જ લાગવાની પરમ આવશ્યકતા છે જ્યાં સુધી જીવ તે માર્ગમાં નહિ જશે, ત્યાં સુધી દુઃખ અને આકુળતાનો અંત થઈ શકતો નથી મોક્ષમાર્ગમાં લાગેલા પ્રાણી જરૂર જ દુઃખ આવવાના ભયથી ત્રાસેલા આ પ્રત્યક્ષમાં દેખાતા ષડ્જીવનિકાયને પ્રશમભાવથી સમન્વિત થઈ દયાદષ્ટિથી જોશે, કોઈને પણ સ્વપ્નમાં પણ સતાવવાની ભાવના ગણશે નહિ. તેની ભાવના સદા એવી જ રહેવાની કે ક્યારે આ પ્રાણી દુઃખથી છૂટે ॥ સૂ૦ ૮ ॥

જે ક્રોધાદિ કષાયોથી રહિત છે તે કેવા છે ? તે કહે છે-'જે નિવ્વુડા' ઇત્યાદિ.

ભગવાન તીર્થંકરના ઉપદેશમાં જેને શ્રદ્ધા છે અર્થાત્-પ્રભુના દિવ્ય ઉપદેશની ધારણાથી જેનો ક્રોધાદિકકષાયરૂપ અગ્નિ શાંત થઈ ગયેલ છે, અને તેથી

से सर्वदा शांत हो चुके हैं, और इसीलिये पापकर्मों में जो निदानबन्ध से रहित हैं वे परम सुख के स्थानरूप से कहे गये हैं।

टीकाकारने जो क्रोधादिक कषायों के लिये अग्नि की उपमा दी है वह सार्थक है, कारण कि जिस प्रकार अग्नि से अत्यन्त तप्त लोहे का गोला पानी में डालने पर अपने चारों ओर के पानी को खींचता है उसी प्रकार यह आत्मा भी जब कषायों से अत्यन्त संतप्त हो जाता है तब अपनी चारों ओर भरी हुई कार्मणवर्गणाओं को मन, वचन, कायरूप नालियों से खींचता है। खाया हुआ अन्न जिस प्रकार रस-रुधिर-आदि रूपमें परिणत होता है उसी प्रकार गृहीत वे कार्मणवर्गणाएँ भी ज्ञानावरणादिक-कर्मरूपसे एकही साथ परिणत हो जाती हैं। कर्मरूप से बंधी हुई इन कार्मणवर्गणाओं की चार प्रकार की अवस्थाएँ होती हैं, प्रकृतिबंध, स्थिति-बंध अनुभागबंध और प्रदेशबंध। यह निश्चित है कि जब कोई एक पदार्थ किसी दूसरे पदार्थ को आवृत करता है या उसकी शक्ति का घात करता है तब आवरण करनेवाले पदार्थ में-'आवरण करने का स्वभाव, आवरण करने का काल, आवरणकी शक्ति की हीनाधिकता और आवरण करने-वाले पदार्थ का परिमाण, ये चार अवस्थाएँ एक साथ प्रकट होती हैं। यही बात इन बंध के भेदों में भी समझना चाहिये। आत्मा आव्रियमाण है

તે સર્વથા શાંત થયેલ છે. આથી જે પાપકર્મોમાં નિદાનબંધથી રહિત છે તેને પરમ સુખના સ્થાનરૂપ કહેવામાં આવેલ છે. ટીકાકારે ક્રોધાદિક કષાયોને માટે જે અગ્નિની ઉપમા આપી છે તે બરાબર છે, કારણ કે જે પ્રકારે અગ્નિથી અત્યન્ત તપાવેલો લોખંડનો ગોળો પાણીમાં નાંખવાથી પોતાના ચારે બાજુના પાણીને ખેંચે છે તે પ્રકારે જ્યારે આત્મા પણ કષાયોથી અત્યન્ત સંતપ્ત થાય છે ત્યારે પોતાની ચારે બાજુ ભરેલી કાર્મણવર્ગણાઓને મન-વચન-કાયારૂપ નાળિયોથી ખેંચે છે. જેવી રીતે ખાધેલું અનાજ રસ રૂધિર આદિ રૂપમાં પરિણત થાય છે તે પ્રકારે ગૃહીત આ કાર્મણ વર્ગણાઓ પણ જ્ઞાનાવરણાદિક કર્મ રૂપથી એક જ સાથે પરિણત થઇ જાય છે. કર્મ-રૂપથી બાંધેલી આ કાર્મણવર્ગણાઓની ચાર પ્રકારની અવસ્થાઓ થાય છે-પ્રકૃતિબંધ સ્થિતિબંધ, અનુભાગબંધ અને પ્રદેશબંધ, એ નિશ્ચિત છે કે જ્યારે કોઇ એક પદાર્થ કોઇ બીજા પદાર્થને આવૃત કરે છે અગર તેની શક્તિનો ઘાત કરે છે ત્યારે આવરણ કરનાર પદાર્થોમા-આવરણ કરવાનો સ્વભાવ ૧, આવરણ કરવાનો કાળ ૨, આવરણની શક્તિની હીનાધિકતા ૩, અને આવરણ કરનાર પદાર્થનું પરિમાણ ૪. આ ચાર અવસ્થાઓ એક સાથે પ્રગટ થાય છે, આ વાત બંધના ભેદોમાં પણ સમજવી

और कर्म आवरण हैं, अतः कर्म की भी बंध के समय में चार अवस्थाएँ प्रगट होती हैं। ये चारों अवस्थाएँ कर्मबंध के प्रथम समय में ही सुनिश्चित हो जाती हैं। उदाहरणार्थ—जिस समय हम लालटेनको वस्त्रसे ढांकते हैं उसी समय उस आवरण करनेवाले वस्त्रमें चार अवस्थाएँ स्पष्टतः प्रतिभासित होती हैं—

(१) वस्त्रका स्वभाव लालटेन के प्रकाशको आवृत करना (२) निश्चित काल तक लालटेन के प्रकाश को आवृत किये रहना (३) लालटेन के प्रकाश आवृत करने की शक्ति का वस्त्र में हीनाधिक रूपसे पाया जाना और (४) आवृत करने वाले वस्त्र का परिमाण।

उन गृहीत कार्मणवर्गणाओं का प्रत्येक कर्म में बटवारा इस प्रकार से होता है। यदि आयुकर्म का भी बंध हो रहा है तो आयुकर्म को सब से थोड़ा द्रव्य मिलता है। नामगोत्रमें प्रत्येक को इससे अधिक द्रव्य मिलता है तो भी इन दोनों कर्मों का द्रव्य समान रहता है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय में प्रत्येक को इससे अधिक द्रव्य मिलता है तो भी इनका द्रव्य परस्पर समान होता है। इससे मोहनीय कर्म को अधिक द्रव्य मिलता है और इससे वेदनीय कर्मको अधिक द्रव्य मिलता है। घातिया कर्मों को जो द्रव्य मिलता है इसमें जो सर्वघाति द्रव्य है

જોઇએ. આત્મા આવ્રિયમાણુ છે અને કર્મ આવરણુ છે, માટે બંધ સમયમાં કર્મની પણુ ચાર અવસ્થાઓ પ્રગટ થાય છે આ ચારે અવસ્થાઓ કર્મ-બંધના પ્રથમ સમયમા જ સુનિશ્ચિત થઇ જાય છે. દાખલા તરીકે જ્યારે બત્તીને વસ્ત્રથી ઢાંકીએ ત્યારે આવરણુ કરવાવાળા તે વસ્ત્રમા ચાર અવસ્થાઓ સ્પષ્ટ પ્રતિભાસિત થાય છે—

(૧) વસ્ત્રનો સ્વભાવ બત્તીના પ્રકાશને રોકવું. (૨) નિશ્ચિત સમય સુધી બત્તીના પ્રકાશને રોકી રાખવો. (૩) બત્તીનો પ્રકાશ આવૃત કરવાની શક્તિનો વસ્ત્રમાં હીનાધિકરૂપથી સદ્‌ભાવ. (૪) આવૃત કરનાર વસ્ત્રનું પરિમાણુ. ગ્રહણુ કરવામાં આવેલી તે કાર્મણુવર્ગણુાઓની વહેંચણી પ્રત્યેક કર્મમાં આ પ્રકારે થાય છે—જો આયુ કર્મનો બંધ થઇ રહ્યો છે તો આયુ કર્મને બધાથી થોડું દ્રવ્ય મળે છે, નામ-ગોત્રમાં પ્રત્યેકને તેથી અધિક દ્રવ્ય મળે તો પણુ આ બન્ને કર્મોના દ્રવ્ય સમાન રહે છે. જ્ઞાનાવરણુ, દર્શનાવરણુ અને અંતરાયમાં પ્રત્યેકને તેથી અધિક દ્રવ્ય મળે છે તો પણુ તેઓનું દ્રવ્ય પરસ્પર સમાન હોય છે. એનાથી મોહનીય કર્મને અધિક દ્રવ્ય મળે છે અને વેદનીય કર્મને એનાથી પણુ અધિક દ્રવ્ય મળે છે. ઘાતિયા કર્મોને જે દ્રવ્ય મળે છે તેમાં જે સર્વઘાતિક દ્રવ્ય છે તે સર્વઘાતિક દ્રવ્યનો

उक्तार्थमुपसंहरन्नाह--' तम्हा ' इत्यादि ।

मूलम्—तम्हा अतिविज्जो नो पडिसंजलिज्जासि-त्ति बेमि ॥सू०१०॥

छाया—तस्मात् अतिविद्वान् न प्रतिसंज्वलेः—इति ब्रवीमि ॥ सू० १० ॥

टीका—हे शिष्य ! तस्मात्=यतः क्रोधादिकषायवान् अनन्तदुखं प्राप्नोति तस्मात्, त्वम्–अतिविद्वान्–आर्हतागमपरिशीलनजनितसम्यग्ज्ञानवान् सन् न प्रतिसंज्वलेः=क्रोधवह्निनाऽऽत्मानं न प्रतापयेरित्यर्थः । कषायेषु क्रोधस्य प्राधा-

---

वह सर्वघाति द्रव्य का अनन्तवां भाग होता है, और जो देशघाति द्रव्य है वह देशघाति द्रव्य का अनन्तबहुभाग होता है। इसमें भी देशघाति द्रव्य का बटवारा देशघाती प्रकृतियों में ही होता है, सर्वघाति द्रव्य का बटवारा सर्वघाती देशघाती दोनों प्रकारकी प्रकृतियों में होता है, और नौ नोकषायों को देशघाती द्रव्य ही प्राप्त होता है, सर्वघाती नहीं ॥ सू० ९॥

उक्त अर्थका उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं—' तम्हा अतिविज्जो ' इत्यादि ।

जब यह निर्विवाद सिद्ध है कि क्रोधादिक कषायवाले जीव अनन्त यातनाओं को इस लोक और परलोक में भोगते हैं तो हे शिष्य ! अर्हत-प्रतिपादित आगम के परिशीलन से सम्यग्ज्ञानसंपन्न होते हुए तुम क्रोध-रूप अग्नि से अपनी आत्मा को कभी भी प्रज्वलित नहीं करना। यहां

અનંતમો ભાગ હોય છે, અને જે દેશઘાતિક દ્રવ્ય છે તે દેશઘાતિક દ્રવ્યનો અનંત બહુભાગ હોય છે. આમાં પણ દેશઘાતી દ્રવ્યની વહેંચણી દેશઘાતિ પ્રકૃતિયોમાં જ થાય છે, સર્વઘાતિ દ્રવ્યની વહેંચણી સર્વઘાતિ દેશઘાતિ બન્ને પ્રકારની પ્રકૃતિયોમાં થાય છે, અને નવનોકષાયોને દેશઘાતિ દ્રવ્ય જ પ્રાપ્ત થાય છે, સર્વઘાતિ નહિ ॥ સૂ૦ ૯ ॥

ઉક્ત અર્થના ઉપસંહાર કરતાં સૂત્રકાર કહે છે–' तम्हा अतिविज्जो ' ઇત્યાદિ.

જ્યારે આ નિર્વિવાદ સિદ્ધ છે કે ક્રોધાદિક કષાયવાળા જીવ અનંત યાતનાઓને આ લોકમાં અને પરલોકમાં ભોગવે છે ત્યારે હે શિષ્ય ! अतिविद्वान्–અર્હંત પ્રતિપાદિત આગમનના પરિશીલનથી સમ્યગ્જ્ઞાનસંપન્ન થતાં તમે ક્રોધરૂપ અગ્નિથી પોતાના આત્માને કોઈ વખતે પણ સળગાવશો નહિ આ જગ્યાએ ક્રોધની પ્રધા-

न्यात् क्रोधप्रतिषेधेनाऽन्येपामपि कपायाणां प्रतिषेधः कर्तव्य इति बोधितम्।

इति=अयमुद्देशकः समाप्यते। ब्रवीमि=भगवतः समीपे यथा श्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः ॥ सू० १० ॥

॥ चतुर्थाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः समाप्तः ॥ ४-३ ॥

पर क्रोध की प्रधानता बतलाई है, इससे अन्य कषायों का भी परित्याग समझ लेना चाहिये। हे जम्बू! मैंने भगवान् के समीप जैसा सुना है वैसा ही तुझे कहता हूँ।

॥ चौथे अध्ययनका तीसरा उद्देश समाप्त ॥ ४-३ ॥

नता બતાવી છે તેથી બીજા કષાયોનો પણ પરિત્યાગ સમજી લેવો જોઈએ.

હે જમ્બૂ! ભગવાનની પાસે જેવું મેં સાંભળ્યું છે તેવું જ તને કહું છું.

ચોથા અધ્યયનનો ત્રીજો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૪-૩ ॥



। अथ चतुर्थाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः ।

इहानन्तरतृतीयोद्देशकेऽनवद्यतपो वर्णितम् । तच्च संयमव्यवस्थितस्यैव संपूर्णतया भवति, तस्मात् संयमं प्रतिबोधयितुं चतुर्थोद्देशकं कथयन्नादौ गृहीतप्रव्रज्यस्य कर्तव्यमाह-' आवीलए ' इत्यादि ।

मूलम्-आवीलए पवीलए निप्पीलए जहित्ता पुव्वसंजोगं हिच्चा उवसमं ॥ सू० १ ॥

छाया-आपीडयेत् प्रपीडयेत् निष्पीडयेत् त्यक्त्वा पूर्वसंयोगं हित्वा उपशमम् ॥

टीका--पूर्वसंयोगं=पूर्वकालिकं मातापित्रादिसम्बन्धं, उपलक्षणात्पश्चात्संयोगं श्वशुरादिसम्बन्धमपि त्यक्त्वा, यद्वा-पूर्वः=अनादिभवसमायातत्वेन प्राक्तनोऽसंयमः, तेन सह संयोगः पूर्वसंयोगस्तं त्यक्त्वा, तथा-उपशमं=कर्मोपशमकार-

---

॥ चौथे अध्ययनका चौथा उद्देश ॥

इसके पहिले तृतीय उद्देशक में निरवद्य-निर्दोष तप का वर्णन किया जा चुका है, परन्तु निर्दोष तप की आराधना संपूर्ण रीति से जब तक जीव संयम में स्थित नहीं हो सकता तब तक उससे नहीं हो सकती; अतः संयम को प्रतिबोधित करने के लिये इस चतुर्थ उद्देशक का प्रारम्भ किया जाता है। उसमें भी जिसने दीक्षा धारण की है, उसका सर्व प्रथम क्या कर्तव्य है ? इसका निरूपण सूत्रकार करते हैं-' आवीलए ' इत्यादि।

पूर्वकालिक--पूर्वकाल से सम्बन्ध रखनेवाले मातापिता आदि के तथा पश्चात्कालिक-श्वशुरादि के सम्बन्ध को, अथवा अनादि जन्मपरम्परा से संबंधित होने के कारण प्राक्तन असंयम भाव के अभी तक के

ચોથા અધ્યયનનો ચોથો ઉદ્દેશ.

આ પહેલાં ત્રીજા ઉદ્દેશમાં નિરવધ-નિર્દોષ તપનું વર્ણન કરેલ છે, પરન્તુ નિર્દોષ તપની આરાધના સંપૂર્ણ રીતિથી જ્યાં સુધી જીવ સંયમમાં સ્થિત નથી થતો ત્યાં સુધી થઈ શકતી નથી; માટે સંયમને પ્રતિબોધિત કરવાને માટે આ ચોથા ઉદ્દેશનો પ્રારંભ થાય છે. તેમાં પણ જેણે દીક્ષા ધારણ કરેલી છે. તેનું સર્વ પ્રથમ શું કર્તવ્ય છે તેનું નિરૂપણ સૂત્રકાર કરે છે-' આવીલએ ' ઇત્યાદિ.

પૂર્વકાળથી સંબંધ રાખનાર માતા પિતા આદિના, તથા પછીના કાળમાં સંબંધ રાખવાવાળા શ્વશુરાદિના સંબંધને, અથવા અનાદિ જન્મપરંપરાથી સંબંધિત હોવાને કારણે પૂર્વકાલિક જે અસંયમભાવ છે તેના આજ સુધીના સંબંધને છોડી

मूलम्—दुरणुचरो मग्गो वीराणं अनियट्टगामीणं ॥ सू० ३॥

छाया—दुरनुचरो मार्गो वीराणामनिवृत्तगामिनाम् ॥ सू० ३ ॥

टीका—मार्गः=संयमरूपः पन्थाः अनिवृत्तगामिनां=न निवर्तते यस्मात् सः -अनिवृत्तो=मोक्षः, तत्र गन्तुं शीलं येषां ते-अनिवृत्तगामिनस्तेषां, वीराणां=कर्मविदारणसमर्थानां प्रमादरहितानां दुरनुचरः-दुःखेन सह अनु=पूर्वपूर्वतीर्थंकरेभ्यः पश्चात् चर्यते=गम्यते इति दुरनुचरः=दुःखानुगम्यः-सदुःखमनुसेव्योऽस्ति, तस्मात् पुनः पुनः संयमानुष्ठानोपदेशः क्रियत इति भावः ॥ सू० ३ ॥

तन्मार्गानुचरणं प्रमादपरित्यागाद् भवतीत्याह-' विगिंच ' इत्यादि ।

मूलम्—विगिंच मंससोणियं, एस पुरिसे दविए वीरे आयाणिज्जे वियाहिए जे धुणाइ समुस्सयं वसित्ता बंभचेरंसि ॥सू० ४॥

छाया—विविङ्क्ष्व मांसशोणितम्, एष पुरुषो द्रविको वीर आदानीयो व्याख्यातो यो धुनाति समुच्छ्रयम् उषित्वा ब्रह्मचर्ये ॥ सू० ४ ॥

टीका—मांसशोणितं स्वशरीरस्थं विविङ्क्ष्व=अपनय-अन्तप्रान्ताहारादिना अन-

---

यह संयम रूप मार्ग, मुक्ति को प्राप्त करने की इच्छावाले पुरुष जो कि वीर-कर्मों के नष्ट करने में शक्तिशाली एवं अप्रमादी हैं उनके लिये भी दुरनुचर-अर्थात् अतिकष्टसाध्य है, क्यों कि पूर्व-पूर्व तीर्थङ्करों ने इस के आचरण करने की जो विधि प्रदर्शित की है उसी के अनुसार यह आचरित किया जाता है, अतः इसके अनुष्ठान करने का वारंवार उपदेश दिया जाता है ॥ सू० ३ ॥

उस संयमरूप मार्गका आचरण प्रमाद के त्याग से होता है, इसी बात की पुष्टि करते हैं-' विगिंच मंससोणियं ' इत्यादि ।

संयमी अपने शरीर के मांसशोणित को सुखावे, अर्थात् अन्तप्रान्त

આ સંયમરૂપ માર્ગ, મુક્તિને પ્રાપ્ત કરવા ઇચ્છનાર પુરૂષ જે વીર એટલે કે કર્મનો ક્ષય કરવામાં શક્તિશાળી અને અપ્રમાદી છે તેના માટે પણ દુરનુચર અર્થાત્ અતિકષ્ટસાધ્ય છે, કારણ કે પહેલાંના તીર્થંકરોએ તેનું આચરણ કરવાની જે વિધિ બતાવી છે તદનુસાર જ એનું આચરણ કરવામાં આવે છે, માટે એનું અનુષ્ઠાન કરવાનો ઉપદેશ વારંવાર કરવામાં આવેલ છે. ॥ સૂ૦ ૩ ॥

આ સંયમરૂપ માર્ગનું આચરણ પ્રમાદના ત્યાગથી થાય છે આ વાતની પુષ્ટિ કરે છે—વિગિંચ મંસસોણિયં ' ઇત્યાદિ

સંયમી પોતાના શરીરના માંસ લોહીને સુકાવે, અર્થાત્ અંત-પ્રાંત આહા-

उपशमाश्रयणस्य फलं प्रदर्शयन् गृहीतप्रव्रज्यस्य मुमुक्षोः कर्तव्यमाह—'तम्हा अविमणे' इत्यादि।

मूलम्—तम्हा अविमणे वीरे सारए समिए सहिए सया जए ॥ सू० २ ॥

छाया—तस्मात् अविमना वीरः स्वारतः समितः सदा यतेत ॥ सू० २ ॥

टीका—तस्मात्=उपशमाश्रयणात्, वीरः=कर्मविदारणसमर्थः अविमनाः=संयमाराधने खेदरहितः, अत एव स्वारतः=सुष्ठु आरतः=यावज्जीवनमर्यादया संयमाऽऽचरणे तत्परः, समितः=समितिसमन्वितः, सहितः—हितेन सह सहितः—सम्यग्ज्ञानादिगुणयुक्तः, सदा=सर्वकालं यतेत=संयमाराधनभारोद्वहनप्रतिज्ञामङ्गीकृत्य तत्परिपालनार्थं प्रयतमानो भवेदित्यर्थः ॥ सू० २ ॥

पुनः पुनः संयमानुष्ठानोपदेशे हेतुं प्रदर्शयन्नाह—'दुरणुचरो' इत्यादि।

उपशमसंयम के आश्रय करने के फलको दिखाते हुए सूत्रकार जिसने दीक्षा अंगीकार कर ली है ऐसे मोक्षाभिलाषी मुनि का कर्तव्य बतलाते हैं—'तम्हा अविमणे' इत्यादि।

उपशमसंयम के आश्रय करनेसे कर्म को नष्ट करने की शक्ति से संपन्न जीव संयम के आराधन करने में खेदरहित होकर यावज्जीवन संयम के आराधना में तत्पर होता हुआ समिति से और सम्यग्दर्शन-ज्ञानादि गुणों से युक्त होकर सर्वदा संयम के आराधनरूपी भार को वहन करने की प्रतिज्ञा को अंगीकार कर उसके पालन करने में प्रयत्नशील बने ॥ सू० २ ॥

पुनः पुनः संयम के अनुष्ठान करने के उपदेश में कारण प्रकट करते हुए सूत्रकार कहते हैं—'दुरणुचरो' इत्यादि।

ઉપશમ-સંયમના આશ્રય કરવાના ફળને દેખાડતા સૂત્રકાર જેણે દીક્ષા અંગીકાર કરેલી છે એવા મોક્ષાભિલાષી મુનિનું કર્તવ્ય કહે છે-'तम्हा अविमणे' ઇત્યાદિ

ઉપશમ-સંયમનો આશ્રય કરવાથી કર્મને નષ્ટ કરવાની શક્તિવાળાં જીવ સંયમનું આરાધન કરવામાં ખેદરહિત થઈને યાવજ્જીવન સંયમના આરાધનમાં તત્પર બનીને સમિતિથી અને સમ્યગ્દર્શનજ્ઞાનાદિ ગુણોથી યુક્ત થઈને હમેશાં સંયમના આરાધનરૂપી ભારને વહન કરવાના નિયમને અંગીકાર કરીને તેનું પાલન કરવામાં પ્રયત્નશીલ બને ॥ સૂ૦ ૨ ॥

વારંવાર સંયમનું અનુષ્ઠાન કરવાના ઉપદેશમાં કારણ પ્રગટ કરીને સૂત્રકાર કહે છે—'दुरणुचरो' ઇત્યાદિ.

मूलम्—दुरणुचरो मग्गो वीराणं अनियट्टगामीणं ॥ सू० ३॥

छाया—दुरनुचरो मार्गो वीराणामनिवृत्तगामिनाम् ॥ सू० ३ ॥

टीका—मार्गः=संयमरूपः पन्थाः अनिवृत्तगामिनां=न निवर्तते यस्मात् सः—अनिवृत्तो=मोक्षः, तत्र गन्तुं शीलं येषां ते—अनिवृत्तगामिनस्तेषां, वीराणां=कर्मविदारणसमर्थानां प्रमादरहितानां दुरनुचरः—दुखेन सह अनु=पूर्वपूर्वतीर्थंकरेभ्यः पश्चात् चर्यते=गम्यते इति दुरनुचरः=दुःखानुगम्यः—सदुःखमनुसेव्योऽस्ति, तस्मात् पुनः पुनः संयमानुष्ठानोपदेशः क्रियत इति भावः ॥ सू० ३ ॥

तन्मार्गानुचरणं प्रमादपरित्यागाद् भवतीत्याह—' विगिंच ' इत्यादि ।

मूलम्—विगिंच मंससोणियं, एस पुरिसे दविए वीरे आयाणिज्जे वियाहिए जे धुणाइ समुस्सयं वसित्ता बंभचेरंसि ॥सू० ४॥

छाया—वेविक्ष्व मांसशोणितम्, एष पुरुषो द्रविको वीर आदानीयो व्याख्यातो यो धुनाति समुच्छ्रयम् उषित्वा ब्रह्मचर्ये ॥ सू० ४ ॥

टीका—मांसशोणितं स्वशरीरस्थं वेविक्ष्व=अपनय—अन्तप्रान्ताहारादिना अन-

---

यह संयम रूप मार्ग, मुक्ति को प्राप्त करने की इच्छावाले पुरुष जो कि वीर—कर्मों के नष्ट करने में शक्तिशाली एवं अप्रमादी हैं उनके लिये भी दुरनुचर—अर्थात् अतिकष्टसाध्य है, क्यों कि पूर्व—पूर्व तीर्थङ्करों ने इस के आचरण करने की जो विधि प्रदर्शित की है उसी के अनुसार यह आचरित किया जाता है, अतः इसके अनुष्ठान करने का वारंवार उपदेश दिया जाता है ॥ सू० ३ ॥

उस संयमरूप मार्गका आचरण प्रमाद के त्याग से होता है, इसी बात की पुष्टि करते हैं—' विगिंच मंससोणियं ' इत्यादि ।

संयमी अपने शरीर के मांसशोणित को सुखावे, अर्थात् अन्तप्रान्त

આ સંયમરૂપ માર્ગ, મુક્તિને પ્રાપ્ત કરવા ઇચ્છનાર પુરૂષ જે વીર એટલે કે કર્મનો ક્ષય કરવામાં શક્તિશાળી અને અપ્રમાદી છે તેના માટે પણ દુરનુચર અર્થાત્ અતિકષ્ટસાધ્ય છે, કારણ કે પહેલાના તીર્થંકરોએ તેનું આચરણ કરવાની જે વિધિ બતાવી છે તદનુસારે જ એનું આચરણ કરવામાં આવે છે, માટે એનુ અનુષ્ઠાન કરવાનો ઉપદેશ વારંવાર કરવામાં આવેલ છે. ॥ સૂ० ૩ ॥

આ સંયમરૂપ માર્ગનુ આચરણ પ્રમાદના ત્યાગથી થાય છે આ વાતની પુષ્ટિ કરે છે—વિગિંચ મસસોણિયં ' ઇત્યાદિ.

સંયમી પોતાના શરીરના માસ લોહીને સુકાવે, અર્થાત્ અન્ત–પ્રાંત આહા-

शनादितपसा वा शरीरं शोषयेत्यर्थः। शरीरशोषणस्य फलमाह–'एष' इत्यादि। एष=स्वशरीरशोषकः पुरुषः–मोक्षार्थी जनो द्रविकः=द्रवः=संयमः स विद्यते यस्यासौ, संयमीत्यर्थः, तथा–वीरः=कर्मविदारणसमर्थः, तथा–आदानीयः=भव्यानां ग्राह्यः श्रद्धेयवचन इत्यर्थः, व्याख्यातः=तीर्थकरैः कथितः। यश्च ब्रह्मचर्ये=ब्रह्मचर्याख्यमहाव्रते संयमे वा उषित्वा=स्थित्वा–तत्परो भूत्वेति यावत्, समुच्छ्रयं=कर्मोपचयं धुनाति=ह्रासयति–अपचयतीत्यर्थः, सोऽपि–आदानीयो व्याख्यात इति सम्बन्धः॥४॥

प्रमादरहितानां गुणान् प्रदर्श्य प्रमादवतां दोषानाह–'नित्तेहिं' इत्यादि।

मूलम्–नित्तेहिं पलिच्छिन्नेहिं आयाणसोयगढिए बाले अव्वोच्छिन्नबंधणे अणभिक्कंतसंजोए तमंसि अवियाणओ आणाए लंभो नत्थि-त्ति बेमि॥ सू० ५॥

छाया–नेत्रैः प्रतिच्छन्नैः आदानस्रोतोगृद्धो बालः अव्युच्छिन्नबन्धनः अनभिक्रान्तसंयोगः तमसि अविजानत आज्ञाया लाभो नास्ति–इति ब्रवीमि॥ सू० ५॥

टीका–नेत्रैः=चक्षुरादिभिरिन्द्रियैः, प्रतिच्छन्नैः=स्वस्वविषयतोऽपवारितैः–

आहारादिक से अथवा अनशनादिक तप के द्वारा शरीर का शोषण करे।

इस क्रिया का आचरण करनेवाला वह मोक्षाभिलाषी संयमी जीव कर्मों को नष्ट करने की शक्ति से समन्वित होता हुआ भव्य पुरुषों के लिये उपादेयवचनवाला होता है, ऐसा तीर्थङ्करों ने कहा है। तथा जो ब्रह्मचर्य में अथवा संयम में तत्पर होकर कर्मों को नष्ट करता है वह भी भव्यों के लिये माननीयवचनवाला होता है॥ सू० ४॥

प्रमादसहित व्यक्तियों में क्या क्या दोष उत्पन्न होते हैं? यह बात सूत्रकार कहते हैं–'नित्तेहिं' इत्यादि।

अपने२ विषयों से अपवारित–प्रतिरुद्ध चक्षुरादिक इन्द्रियों से युक्त

आहारादिकथी अथवा अनशनादिक तप द्वारा शरीरनुं शोषण करे.

आ क्रियानुं आचरण करवावाळो ते मोक्षाभिलाषी संयमी जीव कर्मोने नष्ट करवानी शक्तिथी संपन्न थई भव्य पुरुषो माटे उपादेय वचनवाळो थई जाय छे, एम तीर्थंकरोए कह्युं छे. तथा जे ब्रह्मचर्यमां अने संयममां तत्पर थई कर्मोनो नाश करे छे ते पण भव्योने माटे माननीय–वचनवाळो थाय छे.॥ सू० ४॥

प्रमादसहित व्यक्तिओमां शुं शुं दोष उत्पन्न थाय छे? आ वात सूत्रकार कहे छे–'नित्तेहिं' इत्यादि.

पोतपोताना विषयोथी निवारित चक्षु–आदि इन्द्रियोथी युक्त थईने, प्रज्ञा-

प्रतिरूद्वैर्युक्तोऽपि, ब्रह्मचर्ये स्थितोऽपि, आदानीयो भूत्वाऽपि, यदि-आदानस्रोतोगृद्धः=आदीयते=गृह्यते सावद्यक्रियाप्रवृत्तेन यत्-तदादानं=संसारबीजरूपं कर्म, तस्य स्रोतांसि=शब्दादिविषयभोगाः, तत्र गृद्धः=आसक्तो भवति, तर्हि स बालः=मोहोदयान्मूढः सन् अव्युच्छिन्नबन्धनः=अव्युच्छिन्नं बन्धनं यस्य स तथोक्तः-अत्रुटितकर्मबन्धः स्यादित्यर्थः। किं च—स बालः अनभिक्रान्तसंयोगः स्यादित्यन्वयः। अनभिक्रान्तः=अनतिलङ्घितः संयोगः=मातापित्रादिसम्बन्धः, अथवा-असंयमसंबन्धो येन सः-अनभिक्रान्तसंयोगः स्यादित्यर्थः। यः पूर्वं गृहीतप्रव्रज्यः पश्चाद् विषयभोगासक्तो भवति चेत्तर्हि स मूढः कदापि=शतसहस्रभवान्तेऽपि कर्मबन्धोच्छेदं नाप्नोति, नापि मातापित्रादिसांसारिकसम्बन्धावसानं पश्यतीति वर्तुलार्थः।

होकर भी, ब्रह्मचर्य में स्थित रह कर भी, तथा आदानीय-लोकमान्य हो कर भी जो आदानस्रोतोगृद्ध, अर्थात् शब्दादि विषयभोगों में आसक्त हो जाता है उस बाल-अज्ञानी का कर्मबन्ध कभी भी नष्ट नहीं होता, और न वह माता-पिता आदि के सम्बन्ध को, अथवा असंयम के भाव को ही अपने से दूर कर सकता है।

तथा-अज्ञानरूप अंधकार में रहने वाला वह बाल अज्ञानी, कि जो अपने हितको ही नहीं समझता है, भगवान् तीर्थङ्कर के उपदेशरूप प्रवचनका लाभ नहीं ले सकता।

विशेषार्थः—संयम का लक्षण सिद्धान्तकारों ने 'इन्द्रियवृत्तिनिरोधः संयमः' इन्द्रियों की वृत्ति का निरोध करना ही बतलाया है। इन्द्रियों की वृत्ति का निरोध कर लेने पर भी यदि संयमी व्यक्ति के हृदय में उनके विषयभूत पदार्थों के सेवन के प्रति लालसा याने रागभाव बना हुआ है

ચર્યમાં સ્થિત રહીને અને આદાનીય-લોકમાન્ય પણ થઈને જે આદાનસ્રોતોગૃદ્ધ-અર્થાત્ શબ્દાદિ વિષયભોગોમાં આસકત બની જાય છે તે બાળ-અજ્ઞાનીનો કર્મબન્ધ ક્યારે પણ છૂટતો નથી અને તે માતા-પિતા-આદિના સંબધને અથવા અસયમભાવને પોતાથી દૂર કરી શકતો નથી. તથા અજ્ઞાનરૂપ અંધકારમાં રહેનાર તે બાળ અજ્ઞાની જે પોતાના હિતને પણ સમજતો નથી તેને ભગવાન તીર્થંકરના ઉપદેશરૂપ પ્રવચનનો લાભ પણ મળી શકતો નથી.

વિશેષાર્થ—સંયમનું લક્ષણ સિદ્ધાન્તકારોએ 'इन्द्रियवृत्तिनिरोधः संयमः' ઈન્દ્રિયોની વૃત્તિનો નિરોધ કરવો, તેમ બતાવેલ છે ઇન્દ્રિયોની વૃત્તિનો નિરોધ કરી લેવા છતા પણ જો સંયમી વ્યક્તિના હૃદયમાં તેના વિષયભૂત પદાર્થોના સેવન કરવાની લાલસા એટલે રાગભાવ થાય તો શાસ્ત્રકારની દૃષ્ટિમાં તે વ્યક્તિ

तस्य बालस्य तमसि=मोहरूपे भावान्धकारे वर्तमानस्य, अत एव-अविजानतः= आत्महितमनवबुध्यमानस्य आज्ञायाः=भगवत्तीर्थंकरोपदेशरूपस्य प्रवचनस्य लाभो नास्ति । अनादिमिथ्यात्वप्रतिच्छन्नविवेकज्ञानस्य महामोहवशादाऽऽर्हतप्रवचन-श्रवणे प्रवृत्त्यभावाद् हेयोपादेयविवेकानर्हत्वाच्च सम्यक्त्वलाभासंभव इति भावः। यद्वा-आज्ञा=बोधिः-सम्यक्त्वम् , तस्या लाभो नास्तीत्यर्थः । इति=एतद् ब्रवीमि यथा भगवद्वचनं श्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः ॥ सू० ५ ॥

तो शास्त्रकारों की दृष्टिमें वह व्यक्ति असंयमी ही है । चाह उन२ पदार्थों का सेवन नहीं कर रहा है, ब्रह्मचर्य जैसे महाव्रत में वह स्थित हो, अन्य भव्य प्राणी भी उसके उपदेश को श्रद्धाकी दृष्टि से देखते और मानते हों; तो भी उसके संसार के कारणभूत कर्मों का बन्ध कभी भी नष्ट नहीं हो सकता । ऐसा व्यक्ति एक प्रकार का 'बकवृत्ति' ही है। वह उपर से शुभ्र-निर्दोष प्रतीत होते हुए भी भीतर से अशुभ्र-मलिन ही है । दिखाने के लिये ही उसने बाह्यरूपमें माता-पितादिक अथवा अ-संयमभावों से संबंध छोड़ रक्खा है, भीतर से नहीं, अतः ऐसे व्यक्तियों को-कि जिन्हें वास्तविक रीति से हेयोपादेय का विवेक नहीं है, जो यह भी नहीं समझते हैं कि मेरा स्वयंका हित किस में है ? इतने गहरे अंध-कार में पडे हुए हैं उन्हें वीतराग प्रभु की वाणीका रसास्वाद कभी भी नहीं आ सकता ।

'आदीयते यत्-तत् आदानम्' अर्थात्-सावद्य क्रिया में प्रवृत्ति रख-

અસંયમી જ છે, ભલે તે પદાર્થોનું સેવન તે ન કરતો હોય, બ્રહ્મચર્ય જેવા મહા વ્રતમાં ભલે તે સ્થિત હોય, બીજા ભવ્ય પ્રાણી પણ તેના ઉપદેશને શ્રદ્ધાની દૃષ્ટિથી દેખતા અને માનતા હોય, તો પણ તેના સંસારના કારણભૂત કર્મોનો બંધ કોઈ વખત પણ નષ્ટ થતો નથી એવી વ્યક્તિ એક પ્રકારના 'બકવૃત્તિ' જ છે. તે ઉપરથી શુભ્ર-નિર્દોષ દેખાતા છતાં પણ અંતરથી અશુભ્ર-મલિન જ છે. દેખાડવાને જ માટે તેણે બાહ્યરૂપમાં માતા-પિતાદિક, અથવા અસંયમ ભાવોથી સંબંધ છોડી દીધેલ હોય છે, પણ અંતરથી નહિ, માટે આવી વ્યક્તિ-ઓને-કે જેઓને વાસ્તવિક રીતિથી હેયોપાદેયનો વિવેક હોતો નથી, અને જેઓ એટલા ગાઢ અંધકારમાં પડેલા હોય છે કે મારૂં સ્વયંનું-પોતાનું હિત શેમાં છે ? એની પણ જેઓને સમજ હોતી નથી; તેઓને વીતરાગ પ્રભુની વાણીનો રસાસ્વાદ ક્યારે પણ આવી શકતો નથી.

आदीयते यत् तत् आदानम्—અર્થાત્-સાવદ્ય ક્રિયામાં પ્રવૃત્તિ રાખનાર પ્રાણી દ્વારા જે ગ્રહણ કરવામાં આવે છે તે આદાન-કર્મ છે, અને તે સંસારના બીજરૂપ

नेवाले प्राणी के द्वारा जो ग्रहण किया जाता है वह आदान-कर्म है, और वह संसार का बीजरूप है। बीज से ही वृक्ष तैयार होता है, विना बीज के नहीं; यह संसाररूप महावृक्ष भी इस कर्मरूप बीज का ही फल है। इस से यह फलितार्थ निकलता है कि बीज की किसी निमित्त से अंकुरोत्पादन शक्ति विनष्ट हो जाती है तब वह जिस प्रकार अपने कार्य को नहीं कर सकता है उसी प्रकार राग-द्वेषादिक कषायों के अभाव में गृहीत कार्मणवर्गणाओं की भी जीवको परतन्त्रादिरूप करने की, अथवा जीव के ज्ञानादिक गुणों का घात आदि करने की शक्ति नष्ट हो जाती है। इस आदान का स्रोत शब्दादिक इन्द्रियों के विषयभोग ही हैं, उनमें जो गृद्ध-आसक्त है वह आदानस्रोतोगृद्ध है। जो मोह के उदय से पर-पदार्थों में तल्लीन है एवं हेयोपादेय के ज्ञान से विकल है वही यहां पर बाल है। जो मोहाधीन-आत्मज्ञान से रहित है-चाहे वह व्याकरणादिक एवं न्यायशास्त्रादि ग्रन्थों का अध्येता भी क्यों न हो वह बाल-मूर्ख ही है। संयम को ग्रहण कर पश्चात् प्रबल मोह के उदय से असंयमभाव को प्राप्त करनेवाले बडे से बडे विद्वान् भी शास्त्रों में 'बाल' नामसे वर्णित किये गये हैं। यही बात टीकाकार इस प्रकार से प्रकट करते हैं--

છે બીજથી જ વૃક્ષ તૈયાર થાય છે, બીજ વિના નહિ. આ સંસારરૂપ મહાવૃક્ષ પણ આ કર્મરૂપ બીજનું જ ફળ છે. આથી એ સારાંશ નિકળે છે કે—જ્યારે કોઈ પણ નિમિત્તથી બીજની અંકુરોત્પાદનશક્તિ નષ્ટ થઈ જાય છે ત્યારે તે જે પ્રકારે પોતાના કાર્યને નથી કરી શકતું તે પ્રમાણે રાગદ્વેષાદિક કષાયોના અભાવમાં ગૃહીત કાર્મણવર્ગણાઓની પણ જીવને પરતંત્રાદિરૂપ કરવાની, અથવા જીવના જ્ઞાનાદિક ગુણોનો ઘાત આદિ કરવાની શક્તિનો નાશ થાય છે. આ 'આદાન'નું સ્રોત (માર્ગ) શબ્દાદિક ઇન્દ્રિયોના વિષયભોગ જ છે, આમાં જે ગૃદ્ધ-આસક્ત છે તે આદાનસ્રોતોગૃદ્ધ છે, એટલે કર્મ આવવાના કારણોમા ગૃદ્ધ રહે છે જે મોહના ઉદયથી પરપદાર્થોમાં આસકત છે તેમજ હેયોપાદેયના જ્ઞાનથી વિકળ છે તે જ આ ઠેકાણે બાળ છે. જે મોહાધીન-આત્મજ્ઞાનથી રહિત છે, ભલે તે વ્યાકરણાદિક અને ન્યાય શાસ્ત્રોના ગ્રંથોનો અભ્યાસી કેમ ન હોય તો પણ તે બાળ-મૂર્ખ જ છે. મોટામા મોટો વિદ્વાન પણ સંયમને ગ્રહણ કરી પાછળથી પ્રબળ મોહના ઉદયથી અસંયમભાવને પ્રાપ્ત કરવાવાળો મોટામા મોટો વિદ્વાન પણ શાસ્ત્રોમાં 'બાળ' આ નામથી કહેવામાં આવ્યો છે. એ જ વાતને ટીકાકાર આ સારાંશથી પ્રગટ કરે છે—

"यः पूर्वं गृहीतप्रव्रज्यः पश्चाद् विषयभोगासक्तो भवति चेत्तर्हि स मूढः कदापि=शतसहस्रभवान्तेऽपि कर्मबन्धोच्छेदं नाप्नोति, नापि मातापित्रादिसांसारिकसंबन्धावसानं पश्यतीति।"

जो पहिले दीक्षा अंगीकार कर के भी फिर पीछे मोह के प्रबल उदय से पांच इन्द्रियों के विषयभोगों में आसक्त हो जाता है वह मूढ है–बाल है। उसके कर्म के बन्ध का उच्छेद–अवसान लाखों भवों में भी नहीं हो सकता, और न वह मातापितादिरूप सांसारिक संबंध का अंत ही कर सकता है। 'तमसि' यह पद गाढ अन्धकार का वाचक सप्तमी विभक्ति का एक वचन है। जिस प्रकार अन्धकार में वर्तमान व्यक्ति अपने हाथ पर भी रखी हुई वस्तु का अवलोकन नहीं कर सकता है, ठीक इसी प्रकार मोहरूप भावान्धकार में रहा हुआ व्यक्ति भी अपनी आत्मा में ही समाये हुए अपने हितरूप कर्तव्य को नहीं जान सकता है। ऐसे जीव के लिये भगवान् तीर्थङ्कर प्रभु की उपदेशरूप वाणी का भी लाभ नहीं हो सकता है, कारण कि अनादिकालिक मिथ्यात्व से उसका विवेकज्ञान लुप्त हो रहा है, और प्रबल मोह के उदय से अर्हन्तप्रभु की वाणी का लाभ लेने में असमर्थ बन रहा है, अतः उस की उनकी वाणीके श्रवण करने में अन्तरंग

"यः पूर्वं गृहीतप्रव्रज्यः पश्चाद् विषयभोगासक्तो भवति चेत्तर्हि स मूढः कदापि=शतसहस्रभवान्तेऽपि कर्मबन्धोच्छेदं नाप्नोति, नापि मातापित्रादिसांसारिक-सम्बन्धावसानं पश्यतीति"

જે પહેલા દીક્ષા અંગીકાર કરીને પછી મોહના પ્રબળ ઉદયથી પાંચ ઇન્દ્રિયોના વિષયભોગોમાં આસક્ત થઈ જાય છે તે મૂઢ છે–બાળ છે, તેના કર્મના બંધનો ઉચ્છેદ લાખો ભવોમાં પણ નથી થતો, તેમ જ તે માતાપિતાદિરૂપ સંબંધનો પણ અંત લાવી શકતો નથી

"तमसि" આ પદ ગાઢ અંધકારનું વાચક સાતમી વિભક્તિનુ એકવચન છે જે પ્રકારે અંધકારમાં કોઈ માણસ પોતાના હાથ ઉપર પણ રાખેલી વસ્તુને દેખી શકતો નથી તે પ્રકારે મોહરૂપ ભાવ–અંધકારમાં રહેલો જીવ પણ આત્મામાં રહેલાં પોતાના હિતરૂપ કર્તવ્યને જાણી શકતો નથી, એવા જીવને ભગવાન તીર્થંકર પ્રભુની ઉપદેશ વાણીનો પણ લાભ થઈ શકતો નથી, કારણ કે અનાદિ કાળના મિથ્યાત્વથી તેનું વિવેકજ્ઞાન લુપ્ત થયેલું છે, અને પ્રબળ મોહના ઉદયથી તે અર્હન્તપ્રભુની વાણીનો લાભ લેવામાં અસમર્થ બનેલ છે, તેથી તેને તેમની વાણીનું શ્રવણ કરવામાં અંતરંગથી પ્રવૃત્તિ પણ થતી નથી, અથવા હોય

भावतमसि वर्तमानस्य बालस्य कथं सम्यक्त्वलाभासम्भवः? इति जिज्ञासायामाह—'जस्स नत्थि' इत्यादि।

मूलम्—जस्स नत्थि पुरा पच्छा मज्झे तस्स कुओ सिया ?।६।

छाया—यस्य नास्ति पुरा पश्चात् मध्ये तस्य कुतः स्यात् ॥ सू० ६ ॥

टीका—यस्य=मोहतमसि वर्तमानस्य जीवस्य पुरा=पूर्वस्मिन् काले पश्चात्=भविष्यत्काले नास्ति=पूर्वं सम्यक्त्वं नाभूत्, अग्रेऽपि न तद् भविष्यति, तस्य मध्ये=मध्यभवे-वर्तमानजन्मनि, कुतः स्यात्=कथं भवेत्—न भवेदित्यर्थः। "आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा" इति लोकन्यायस्य सर्वानुभवसिद्धत्वादिति भावः। अव्यवहारराश्यपेक्षयैतत्।

से प्रवृत्ति ही नहीं होती। अथवा हेयोपादेय के विवेक के अयोग्य होने से ऐसे मनुष्य को सम्यक्त्व का लाभ असम्भव है, यह भी "आज्ञायाः लाभो नास्ति" इस वाक्य का अर्थ होता है, क्यों कि-'आज्ञा' का द्वितीय अर्थ बोधि-समकित है उसका लाभ ऐसे मनुष्य को होता नहीं ॥ सू० ५ ॥

भावान्धकार में रहा हुआ बाल जीव सम्यक्त्व के लाभ से वंचित रहता है। इसीकी पुष्टि सूत्रकार करते हैं—'जस्स नत्थि पुरा' इत्यादि।

मोहरूपी अन्धकार में रहनेवाला अज्ञानी जीव पूर्व जन्ममें और आगामी जन्ममें समकित के लाभ से वंचित रहता है तो मध्य अर्थात् वर्तमान जन्म में वह समकित का लाभ कर लेगा यह कैसे सम्भव हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता। "आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथा" जिसकी सत्ता आदि और अन्त में नहीं है उसकी सत्ता वर्त्तमान में भी नहीं होती है। यह एक सामान्य सा नियम है।

પાદેયના વિવેકને અયોગ્ય હોવાથી આવા મનુષ્યને સમ્યક્ત્વનો લાભ અસંભવ છે આ પણ "आज्ञायाः लाभो नास्ति" આ વાકયનો અર્થ થાય છે, કેમ કે 'આજ્ઞા'નો બીજો અર્થ બોધિ એટલે સમકિત છે, તેનો લાભ આવા મનુષ્યને થતો નથી. ॥ સૂ૦ ૫ ॥

ભાવ-અંધકારમાં રહેલાં બાળ જીવ સમ્યક્ત્વના લાભથી વંચિત રહે છે આની પુષ્ટિ સૂત્રકાર કરે છે-'जस्स नत्थि पुरा' ઇત્યાદિ.

મોહરૂપી અંધકારમાં રહેનાર અજ્ઞાની જીવ પૂર્વ જન્મમાં અને આવતા જન્મમાં સમકિતના લાભથી વંચિત રહે છે, તો પછી મધ્ય અર્થાત્ વર્તમાન જન્મમાં તે સમકિતનો લાભ કરી લેશે, તેનો સંભવ કેવી રીતે હોય? અર્થાત્ સંભવ હોતો નથી. "आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा"—જેની સત્તા આદિ અને અંતમાં નથી તેની સત્તા વર્તમાનમાં પણ નથી હોતી, એ એક સામાન્ય નિયમ છે.

यद्वा–यस्त्वतीतं सुखं न स्मरति, नापि भविष्यत्कालिकं वाञ्छति, तस्य वर्तमानसुखेऽपि रागो नैव स्यादित्याह–'जस्स नत्थि' इत्यादि । यस्य भोगविपाकं जानतः, पुरा=पूर्वं–पूर्वभुक्तसुखानुस्मरणं नास्ति, पश्चात्=पश्चाद्भावी–आगामिभोगाभिलाषो नास्ति. तस्य मध्ये=वर्तमानकाले कुतः भोगेच्छा स्यात् । मोहनीयकर्मोपशमात्तस्य भोगेच्छा नैव भवेदिति भावः ॥ सू० ६ ॥

प्रश्न—जिन्हों ने पूर्व में समकित प्राप्त नहीं किया है और भविष्य में जो नहीं प्राप्त करेंगे, ऐसे ही जीव तो वर्तमान में समकित की प्राप्ति किया करते हैं। यदि " आदावन्तेऽपि यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथा " यह अटल नियम मान लिया जायेगा तो फिर किसी भी जीवको समकित का लाभ नहीं हो सकेगा ?

उत्तर—यह कथन अव्यवहार राशिमें रहनेवाले जीवों की अपेक्षा से ही समझना चाहिये। व्यवहार राशिमें रहे हुए जीवोंकी अपेक्षासे नहीं।

अथवा इस सूत्रका व्याख्यान इस प्रकारसे भी होता है—

भोगों के विपाक को महा कष्टप्रद जान कर जो पूर्व में भोगे हुए पांच इन्द्रियोंके विषयसुख का स्मरण तक नहीं करता है और उस सुख की भविष्यत्कालिक प्राप्ति की वाञ्छा से सर्वथा दूर है, ऐसे व्यक्ति को वर्तमानकाल में प्राप्त वह सुख भोगेच्छारूप राग का कारण कैसे हो सकता है ? अर्थात् नहीं हो सकता ।

પ્રશ્ન—જેઓએ પૂર્વમાં સમકિત પ્રાપ્ત નથી કર્યું અને આવતા કાળમાં પણ જેઓ સમકિત પ્રાપ્ત કરશે નહિ, આ પ્રકારના જ જીવો વર્તમાનમાં સમકિતની પ્રાપ્તિ કરે છે. જો " आदावन्तेऽपि यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथा " આ અટલ નિયમ માનવામાં આવે તો પછી કોઇ પણ જીવને સમકિતનો લાભ થઈ શકે નહિ ?

ઉત્તર—આ કથન અવ્યવહાર-રાશિમાં રહેનાર જીવોની અપેક્ષાથી જ સમજવું જોઈએ, વ્યવહાર-રાશિમાં રહેલાં જીવોની અપેક્ષાએ નહિ.

અથવા આ સૂત્રનું વ્યાખ્યાન આ પ્રકારે પણ થાય છે–ભોગોના વિપાકને મહા કષ્ટપ્રદ જાણીને જે પૂર્વમાં ભોગવેલા પાંચ ઇન્દ્રિયોના વિષયસુખનું સ્મરણ સુદ્ધાંત કરતો નથી, અને તે સુખની ભવિષ્યમાં પણ પ્રાપ્તિની વાંછાથી સર્વથા દૂર છે, એવા જીવને વર્તમાનકાળમાં પ્રાપ્ત તે સુખ ભોગેચ્છારૂપ રાગનું કારણ કેવી રીતે હોઇ શકે ? અર્થાત્ નથી થતું.

यस्य कालत्रयेऽपि भोगेच्छा नास्ति, स किंभूतः स्यादित्याह-'से हु' इत्यादि।

मूलम्-से हु पन्नाणमंते बुद्धे आरंभोवरए। सम्ममेयंति पासह। जेण बंधं वहं घोरं परियावं च दारुणं॥ सू० ७॥

छाया—स हु प्रज्ञानवान् बुद्धः आरम्भोपरतः। सम्यगेतदिति पश्यत। येन बन्धं वधं घोरं परितापं च दारुणम्॥ सू० ७॥

टीका—हु=यतः-भोगाभिलाषरहितः, तस्मात् स प्रज्ञानवान्=जीवाजीवादिपदार्थानां सम्यग्ज्ञाता, अत एव बुद्धः=तत्त्वज्ञः, आरम्भोपरतः=आरम्भः=सावद्यव्यापारस्तस्मादुपरतो=निवृत्तः। एतद्=आरम्भोपरमणं, सम्यक्=सम्यक्त्वमस्ति। सम्यक्त्वे सति हि आरम्भनिवृत्तिरुपजायते, तस्मात् सम्यक्त्वकार्यतयाऽऽरम्भोप-

---

बात भी ठीक है; जिसके मोहनीय कर्म का उपशम हो चुका है उस व्यक्ति के लिये भोगेच्छा-विषयसुखों को भोगने की लालसा-हो ही कैसे सकती है? भोगेच्छा यह मोहनीय कर्म का ही एक कार्य है, अतः जब मोहनीय कर्म ही उपशम अवस्थामें है तब भोगेच्छारूप कार्य का आविर्भाव हो भी कैसे सकता है॥ सू० ६॥

जिसके त्रिकाल में भी भोगेच्छा नहीं है उसकी प्रशंसा करते हुए सूत्रकार कहते हैं—'से हु' इत्यादि।

भोगों को भोगने की अभिलाषा से रिक्त होने के कारण वह संयमी जीवाजीवादिक नव तत्त्वों के वास्तविक स्वरूप का ज्ञाता बन कर तत्त्वज्ञ होता हुआ आरम्भ-सावद्यव्यापाररूप प्रवृत्ति-से परे हो जाता है, यही सम्यक्त्व है। यद्यपि आरम्भनिवृत्ति, समकित का कार्य है; क्यों

વાત પણ ઠીક છે, જેને મોહનીય કર્મનો ઉપશમ થયેલ છે તે વ્યક્તિને માટે ભોગેચ્છા-વિષયસુખોને ભોગવવાની લાલસા જ કેવી રીતે થઈ શકે ?, ભોગેચ્છા તે મોહનીય કર્મનું જ એક કાર્ય છે, માટે જ્યારે મોહનીય કર્મ જ ઉપશમ અવસ્થામાં છે ત્યારે ભોગેચ્છારૂપ કાર્યનો આવિર્ભાવ કેવી રીતે થઇ શકે ? અર્થાત્-થઈ શકતો નથી ॥ સૂ૦ ૬ ॥

જેને ત્રણ કાળમા પણ ભોગેચ્છા નથી તેની પ્રશંસા કરતાં સૂત્રકાર કહે છે—'से हु' ઈત્યાદિ.

ભોગોને ભોગવવાની અભિલાષાથી રિકત હોવાના કારણે જીવાજીવાદિક નવ તત્ત્વોના વાસ્તવિક સ્વરૂપના જ્ઞાતા તે સંયમી તત્ત્વજ્ઞ બનીને આરંભ-સાવદ્ય વ્યાપારરૂપ પ્રવૃત્તિથી દૂર થઈ જાય છે, એ જ સમ્યક્ત્વ છે, જો કે આરંભની

रमणमपि सम्यक्त्वशब्दव्यपदेश्यमिति भावः। इति=एवं पश्यत=यूयं जानीत। यतः-येन=आरम्भोपरमणरूपेण कारणेन घोरं=घोरदुःखजनकं कर्मबन्धं, वधं, दारुणं=दुःसहं परितापं=शारीरं मानसं च दुःखं नाप्नोतीत्यर्थः, तस्मात् सकलसावद्यव्यापारेभ्यो निवर्तितव्यमिति भावः। यद्वा-येन=आरम्भेण सावद्यानुष्ठानेन घोरं बन्धं वधं दारुणं परितापं च प्राप्नोति तस्मादारम्भादुपरतो भवेदित्यर्थः ॥ सू० ७ ॥

कि समकित के होने पर ही आरम्भनिवृत्ति होती है, तो भी कारण में कार्य के उपचार से ही आरम्भनिवृत्ति को समकित कहा गया है, ऐसा समझना चाहिये।

जीव इस सावद्य व्यापार के परित्याग से ही कर्मबन्ध, वध और और दुःसह शारीरिक एवं मानसिक कष्टों से सदा बचता है, इस लिये आत्महितैषी का कर्तव्य है कि वह इस सावद्यव्यापाररूप क्रिया से सदा दूर रहे।

विशेषार्थ—यह निश्चित सिद्धान्त है कि सावद्य व्यापार से जीवों के परिणामों में दुर्वृत्ति सदा जागृत रहती है। उससे जीव तरह-तरह के साधनों के जुटाने में ही अपने जीवन को बिता देता है। ऐसा क्यों होता है? जब हम इसका सूक्ष्म निरीक्षण करते हैं तो हमें इस की तह का पता अच्छी तरह से लग जाता है कि वह यह विषयभोगेच्छा ही है।

इसके फंदमें फसा हुआ जीव ज्ञाता एवं तत्त्वज्ञ बनने का ढोंग ही करता है। उसके पास में निज के हित के लिये कुछ भी नहीं होता।

નિવૃત્તિ સમકિતનુ કાર્ય છે, કારણ કે સમકિતના થવાથી જ આરંભનિવૃત્તિ થાય છે, તો પણ કારણમા કાર્યના ઉપચારથી આરંભનિવૃત્તિને જ સમકિત કહેવામા આવેલ છે, એમ સમજવુ જોઇએ

જીવ આ સાવદ્ય-વ્યાપારના પરિત્યાગથી કર્મબંધ, વધ અને દુ.સહ શારીરિક માનસિક કષ્ટોથી સદા બચે છે, માટે આત્મહિતૈષીનુ કર્તવ્ય છે કે તે સદા આ સાવદ્ય-વ્યાપારથી દૂર રહે.

વિશેષાર્થ—એ નિશ્ચિત સિદ્ધાન્ત છે કે સાવદ્ય વ્યાપારોથી જીવોના પરિણામોમા સદા દુર્વૃત્તિ જાગૃત રહે છે, તે થકી જીવ તરહ-તરહના સાધનોને એકત્રિત કરવામા જ પોતાના જીવનને વ્યતીત કરી દે છે. એમ કેમ બને છે? જ્યારે અમો તેનું સૂક્ષ્મ નિરીક્ષણ કરીએ છીએ ત્યારે અમોને ચોકસપણે તેનુ સમાધાન મળી જાય છે કે તે આ વિષય ભોગેજ છો

એની પકડમા ફસેલા જીવ જ્ઞાતા અને તત્ત્વજ્ઞ બનવાના ઢોંગ જ કરે છે તેની પાસે પોતાના હિતને માટે કાંઇ પણ હોતું નથી, પોતાના વિષય કષાયની

अपने विषयकषाय की पुष्टि जैसे भी हो, उसके लिये वह विहित अ-विहित सब तरह के उपायों को काम में लाता है। ऊपर से ही वह साधु-वेषधारी है, भीतर से वह अपने सच्चे हितके साधनों का नाश करता है। संसार में धर्मका पतन भी इसी की ओट लेकर हुए हैं और हो रहे हैं तथा आगे भी होंगे।

यह बड़ी बलवती व्याधि है। इसकी चिकित्सा सद्गुरु ही कर सकते हैं, अतः उनका कथन है कि सर्व प्रथम आत्महितैषी जीव इसकी चि-कित्सा कराने के लिये अपने में योग्यता लावे। यह योग्यता एक ही भवमें जीव को प्राप्त नहीं हो सकती। जो भी वर्त्तमान भवमें योग्य हुए हैं वे सब पूर्वके आराधक जीव थे, अतः इस व्याधि की चिकित्सा कराने की योग्यता प्राप्त करने की जीवमें कटिबद्धता होनी चाहिये। यह कटिबद्धता ही समकित है, चाहे यह स्वभाव से हो या परके उपदेश से।

यह तो निश्चित है कि इस प्रकार की योग्यता से संपन्न आत्मा भोगों में लालसावाला नहीं होता। उसकी प्रवृत्ति वहां पर तपे हुए लोहे पर पांव रखने जैसी ही होती है, अतः धीरे २ अपनी उन्नति करता हुआ विषय-भोगेच्छा से सदा के लिये दूर हो जाता है और सावद्य व्यापारों को अनेक

પુષ્ટિ માટે તે વિહિત અવિહિત બધા પ્રકારના ઉપાયો કરે છે. ઉપરથી જ તે સાધુવેષધારી છે પણ અ તરથી તે પોતાના સાચા હિતના સાધનોનો નાશ જ કરે છે. સંસારમાં ધર્મનું પતન પણ આવા જીવોના નિમિત્તે થયુ છે, થઈ રહેલુ છે અને આગળ પણ થશે

આ મોટી બળવાન વ્યાધિ છે એની ચિકિત્સા સદ્‌ગુરૂ જ કરી શકે છે. માટે તેમનુ કથન છે–સર્વ પ્રથમ આત્મહિતૈષી જીવ તેની ચિકિત્સા કરાવવા માટે પોતાનામાં યોગ્યતા લાવે. યોગ્યતા એક જ ભવમા જીવને પ્રાપ્ત થતી નથી. જે વર્તમાન ભવમા યોગ્ય થયેલ છે તે બધા પૂર્વના આરાધક જીવ હતા, માટે આ વ્યાધિની ચિકિત્સા કરાવવાની યોગ્યતા પ્રાપ્ત કરવા માટે જીવમાં કટિબદ્ધતા હોવી જોઇએ આ કટિબદ્ધતા જ સમકિત છે, ભલે તે સ્વભાવથી હોય અગર પારકાના ઉપદેશથી હોય.

આ નિશ્ચિત છે કે આવી યોગ્યતાથી સંપન્ન આત્મા ભોગોમા લાલસા રાખનાર નથી થતા તેની પ્રવૃત્તિ ત્યાં તપેલા લોઢા ઉપર પગ રાખવા જેવી થાય છે, માટે તે ધીરે ધીરે પોતાની યુક્તિ–પ્રયુક્તિથી વિષય ભોગેચ્છાથી સદાને માટે દૂર

किं कृत्वा सावद्यव्यापारं परित्यजेदिति जिज्ञासायामाह-'पलिच्छिंदिय'इत्यादि।

मूलम्—पलिच्छिंदिय बाहिरगं च सोयं, निकम्मदंसी इह मच्चिएहिं ॥ सू० ८ ॥

छाया—प्रतिच्छिद्य बाह्यकं च स्रोतः निष्कर्मदर्शी इह मर्त्येषु ॥ सू० ८॥

टीका—-बाह्यकं=बहिर्भवं हिरण्यरजतमातापित्रादिसम्बन्धरूपं, यद्वा-प्राणातिपातादिकं स्रोतः=आस्रवं कर्मबन्धकारणं, च-शब्दाद् रागद्वेषात्मकं विषयाभिलाषरूपं वा आन्तरं स्रोतो वा प्रतिच्छिद्य=प्रतिरुध्य, इह=अस्मिन् लोके, मर्त्येषु=मनुष्येषु मध्ये निष्कर्मदर्शी=कर्मणो निष्क्रान्तः निष्कर्मा=मोक्षः, तं द्रष्टुं शीलमस्येति निष्कर्मदर्शी=मोक्षाभिलाषी सन् सावद्यव्यापारं परित्यजेदित्यर्थः। यद्वा-इह=अस्मिन् लोके मर्त्येषु=मनुष्येषु बाह्यकं स्रोतः प्रतिच्छिद्य निष्कर्मदर्शी भवति, मोक्षं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ सू० ८ ॥

प्रकार के घोर वध, बंधन और दारुण परिताप का कारण समझ कर उनसे सर्वथा विरक्त ही रहता है॥ सू० ७ ॥

इसी विषयकी पुष्टि करते हुए सूत्रकार कहते हैं-'पलिच्छिंदिय'इत्यादि

माता-पिता आदिक सचित्त, सुवर्ण-रजतादिक अचित्त परिग्रहरूप अथवा हिंसादिक पापरूप बहिरङ्ग स्रोतका एवं रागद्वेष अथवा विषयाभिलाषरूप अन्तरंग स्रोत का निरोध कर इस लोक के अन्दर मनुष्योंमें बसनेवाला निष्कर्मदर्शी--मोक्षाभिलाषी जीव सावद्य व्यापार का परित्याग करे।

शास्त्रकारों ने परिग्रह दो प्रकार का बतलाया है। (१) बाह्य परिग्रह और (२) अन्तरङ्ग परिग्रह। धनधान्यादिक और मातापितादिक बाह्य परिग्रह है, विषयाभिलाषादिक तथा द्वेषादिक अन्तरङ्ग परिग्रह है। 'परिग्रह'

થઈ જાય છે, અને સાવદ્ય વ્યાપારોને અનેક પ્રકારના ઘોર બધ, બંધન અને દારૂણ-પરિતાપનું કારણ સમજીને તેનાંથી સર્વથા વિરક્તજ રહે છે. ॥ સૂ૦૭ ॥

આ વિષયની પુષ્ટિ કરતાં સૂત્રકાર કહે છે—'पलिच्छिंदिय' ઇત્યાદિ.

માતા-પિતા-આદિક સચિત્ત, સુવર્ણ રજતાદિક અચિત્ત પરિગ્રહરૂપ અથવા હિંસાદિક-પાપરૂપ બહિરંગ સ્રોત (માર્ગ) નો તેમજ રાગ દ્વેષ અથવા વિષયાભિલાષારૂપ અંતરંગ સ્રોતનો નિરોધ કરી આ લોકની અંદર મનુષ્યોમાં વસવાવાળો નિષ્કર્મદર્શી-મોક્ષાભિલાષી જીવ સાવદ્ય વ્યાપારનો પરિત્યાગ કરે.

શાસ્ત્રકારોએ પરિગ્રહ બે પ્રકારનો બતાવેલ છે (૧) બાહ્ય પરિગ્રહ અને (૨) અંતરંગ પરિગ્રહ. ધન-ધાન્યાદિક અને માતા-પિતાદિક બાહ્ય પરિગ્રહ છે, અને વિષયાભિલાષાદિક, તથા રાગ-દ્વેષાદિક અંતરંગ પરિગ્રહ છે. પરિગ્રહ શબ્દનો

शब्द का अर्थ यही है कि जिससे जीव कर्मोंका ग्रहण करे। अर्थात् ममत्वभावसे ग्रहण करने को परिग्रह कहते हैं। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग, ये सब अन्तरङ्ग-परिग्रह हैं। इन्हींसे जीव नवीन२ कर्मों का बन्ध किया करता है।

जिस प्रकार नौकामें पानी आने का कारण छिद्र होता है, उसी प्रकार आत्मामें नवीन २ कर्मों के आनेके लिये परिग्रह छिद्र के स्थानापन्न माना गया है। जैसे-मिथ्यादर्शनजन्य कर्मों का बंध (१) प्रथम गुणस्थान तक; अविरतिजन्य कर्मों का बन्ध (४) चतुर्थ गुणस्थान तक, प्रमादजन्य कर्मोंका बन्ध (६) षष्ठ गुणस्थान तक, कषायजन्य कर्मोंका बन्ध (१०) दशवें गुणस्थान तक, और योगजन्य कर्मों का बन्ध सयोगकेवलीनामक (१३) तेरहवें गुणस्थान तक जीवोंके होता है। स्रोत शब्द का अर्थ प्रवाह भी है। जिस प्रकार जलाशयों में प्रवाह के द्वारा पानी आता है उसी प्रकार अंतरङ्ग और बहिरङ्ग परिग्रहरूप प्रवाहद्वारा आत्मामें नवीन २ कर्मोंका बंध हुआ करता है, अतः संयमी जीव बाह्य परिग्रह से सर्वथा विरक्त हो जाता है। अन्तरङ्ग परिग्रह से भी वह अपने पदके अनुसार विरक्त ही रहता है। इसीलिये सूत्रकार कहते हैं कि जिस संयमी मुनिका लक्ष एक मोक्ष प्राप्ति करने का ही है वह मनुष्यलोकमें रहता हुआ भी सावद्य

અર્થ એ જ છે કે જેનાથી જીવ કર્મોને ગ્રહણ કરે, અર્થાત્ મમત્વ-ભાવથી ગ્રહણ કરવું તેને પરિગ્રહ કહે છે. મિથ્યાત્વ, અવિરતિ, પ્રમાદ, કષાય અને યોગ, એ બધા અંતરંગ-પરિગ્રહ છે, એનાથી જ જીવ નવા નવા કર્મોનો બંધ કરે છે

જેમ નૌકામાં પાણી આવવાનુ કારણ છિદ્ર છે તેમ આત્મામાં નવા નવા કર્મોને આવવાને માટે પરિગ્રહ છિદ્ર છે મિથ્યાદર્શનજન્ય કર્મોનો બંધ, પ્રથમ ગુણસ્થાન સુધી, અવિરતિજન્ય કર્મોનો બંધ ચોથા ગુણસ્થાન સુધી, પ્રમાદજન્ય કર્મોનો બંધ છઠ્ઠા ગુણસ્થાન સુધી, કષાયજન્ય કર્મોનો બંધ દશમા ગુણસ્થાન સુધી અને યોગજન્ય કર્મોનો બંધ સયોગકેવળીનામક તેરમા ગુણસ્થાન સુધી જીવોને થાય છે. સ્રોત શબ્દનો અર્થ પ્રવાહ પણ છે, જેમ જળાશયોમાં પ્રવાહ-દ્વારા પાણી આવે છે તેમ આ અંતરંગ અને બહિરંગ પરિગ્રહરૂપ પ્રવાહદ્વારા આત્મામાં નવા નવા કર્મોનો બંધ થયા કરે છે, માટે સંયમી જીવ બાહ્ય-પરિગ્રહથી સર્વથા વિરક્ત થઈ જાય છે અંતરંગ પરિગ્રહથી પણ તે પોતાના પદના અનુસાર વિરક્ત જ છે આ માટે જ સૂત્રકારનું કથન છે કે જે સંયમી મુનિનુ લક્ષ્ય એક મોક્ષપ્રાપ્તિ કરવાનું જ છે તે મનુષ્ય લોકમાં રહેવા છતાં પણ સાવદ્ય

ननु कर्मोपादानरूपं स्रोतः किं कृत्वा प्रतिच्छेद्यमिति जिज्ञासायामाह— 'कम्मुणो' इत्यादि।

मूलम्—कम्मुणो सफलत्तं दट्ठूणं तओ निज्जाइ वेयवी॥सू०९॥

छाया—कर्मणः सफलत्वं दृष्ट्वा ततो निर्याति वेदवित् ॥ सू० ९ ॥

टीका—मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगैः क्रियते इति कर्म=ज्ञानावरणीयादिकम्, तस्य, सफलत्वं=ज्ञानावरणादिस्वस्वफलजननावश्यम्भावं, दृष्ट्वा वेदवित्—वेद्यते तत्त्वान्यनेनेति वेदः=आर्हतागमः, तं वेत्तीति वेदवित्—सर्वज्ञोपदेशजन्यसम्यग्ज्ञानवानित्यर्थः, ततः=कर्मणः कर्मबन्धकरणात् निर्याति=दूरीभवति, कर्मबन्धननिबन्धनसकलसावद्यव्यापारं परिवर्जयतीत्यर्थः॥ सू० ९ ॥

व्यापारों से सदा विरक्त रहे। जिससे जीवों को थोडे से भी कष्टादिक का अनुभव हो ऐसी कोई भी क्रिया वह न करे। सावद्यक्रिया करनेवाले मनुष्यों के सम्पर्क में रहते हुए भी अपने को उस व्यापार से बचा कर रखना यही तो संयमी मुनिकी विशेषता है।

निष्कर्मदर्शी—इस शब्द का अर्थ मोक्षाभिलाषी है, क्यों कि कर्मों के सम्बन्ध से रहित जो स्थान है वह निष्कर्म है, उस स्थान को देखने का जिस का स्वभाव है ऐसा जीव निष्कर्मदर्शी कहलाता है। सूत्रमें "च" शब्द अन्तरङ्ग परिग्रह का बोधक है॥ सू० ८॥

संयमी मुनि क्या समझ कर कर्मों के आने में कारणरूप इस स्रोत को बन्द करे? इस प्रकार की जिज्ञासा का समाधान करते हुए सूत्रकार कहते हैं—'कम्मुणो' इत्यादि।

कर्मों को अपने २ फल का देनेवाला जानकर वह ज्ञानी—संयमी मुनि उन कर्मों से और उनके कारणों से दूर ही रहता है।

વ્યાપારોથી સદા વિરક્ત રહે. જેનાથી જીવોને થોડા પણ કષ્ટાદિકને અનુભવ થાય તેવું કોઈ કાર્ય તેઓ ન કરે. સાવદ્ય-વ્યાપાર કરવાવાળા મનુષ્યોનાં સંપર્કમા રહેવા છતાં પણ પોતાની જાતને તેવા વ્યાપારથી દૂર રાખવું, એ જ સંયમી મુનિની વિશેષતા છે.

'निष्कर्मदर्शी' આ શબ્દનો અર્થ મોક્ષાભિલાષી છે, કારણ કે કર્મોના સંબંધથી રહિત જે સ્થાન છે તે નિષ્કર્મ છે; તે સ્થાનને દેખવાનો જેનો સ્વભાવ છે તેવો જીવ નિષ્કર્મદર્શી કહેવાય છે. સૂત્રમાં "च" શબ્દ અંતરંગ પરિગ્રહનો બોધક છે. ॥સૂ૦ ૮॥

શું સમજીને સંયમી મુનિ કર્મોને આવવાના કારણરૂપ આ સ્રોતને બંધ કરે? આ પ્રકારની જીજ્ઞાસાનું સમાધાન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે.—'कम्मुणो' ઇત્યાદિ.

કર્મોને પોતપોતાના ફળને દેવાવાળા જાણીને તે સંયમી મુનિ તે કર્મોથી અને તેના કારણોથી દૂર જ રહે છે.

ममैव नायमाशयः किन्तु सर्वेषामर्हतामिति दर्शयितुं भगवान् प्राह-'जे खलु भो' इत्यादि ।

यद्वा--सम्यक्त्वमुक्तं, निरवद्यं तपश्चारित्रमपि, इदानीं तत्फलमाह--'जे खलु भो' इत्यादि ।

मूलम्–जे खलु भो! वीरा समिया सहिया सयाजया संघडदंसिणो आओवरया अहातहा लोयं उवेहमाणा पाईणं पडीणं दाहिणं उईणं इय सच्चंसि परिविचिट्ठिंसु ॥ सू० १० ॥

छाया-ये खलु भो! वीराः समिताः सहिताः सदायताः संघटदर्शिनः, आत्मोपरताः यथातथा लोकमुपेक्षमाणाः प्राचीनं प्रतीचीनं दक्षिणम्, इति सत्ये परिव्यस्थुः ॥१०॥

मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योगों के द्वारा जो किये जाते हैं वे कर्म हैं। ये ज्ञानावरणीयादिक के भेद से आठ प्रकारके हैं। आत्मा के साथ इनका सम्बन्ध अनादिकाल से हो रहा है। कोई भी कर्म जब तक अपना फल नहीं देता तब तक वह आत्मा से नष्ट नहीं होता; यह नियम है, अतः वह वेदवित्=सम्यग्ज्ञानी पुरुष कर्मोंसे और उन कर्मों के कारण मिथ्यादर्शनादिकोंसे, तथा मिथ्यादर्शनादिके कारण कषायों से सदा दूर ही रहता है। अर्थात् कर्मबन्ध के कारणभूत समस्त सावद्य व्यापार का वह त्याग कर देता है ॥ सू० ९ ॥

इस कथन में सब तीर्थङ्करों की सम्मति प्रदर्शित करते हैं-'जे खलु भो' इत्यादि। अथवा समकित को कहा और निर्दोष तप चारित्र को भी कहा; अब उसका फल कहते हैं-'जे खलु भो' इत्यादि।

મિથ્યાદર્શન, અવિરતિ, પ્રમાદ, કષાય અને યોગદ્વારા જે કરવામાં આવે છે તે કર્મ છે. તે જ્ઞાનાવરણીયાદિકના ભેદથી આઠ પ્રકારના છે. આત્માની સાથે તેને સંબંધ અનાદિ કાળથી થઇ રહ્યો છે. કોઈ પણ કર્મ જ્યાં સુધી પોતાનુ ફળ નથી આપતું ત્યા સુધી તે આત્માથી નષ્ટ થતું નથી; એ નિયમ છે. તેથી તે વેદ-વિત્=સમ્યગ્જ્ઞાની પુરૂષ કર્મોથી અને તે કર્મોના કારણ મિથ્યા–દર્શનાદિકો અને મિથ્યાદર્શનાદિકોના કારણ કષાયોથી સદા દૂરજ રહે છે. અર્થાત્ કર્મબંધના કારણભૂત સમસ્ત સાવદ્ય વ્યાપારનો તે સદા ત્યાગ કરી દે છે. ॥ સૂ૦ ૯ ॥

આ કથનમા બધા તીર્થંકરોની સંમતિ પ્રદર્શિત કરે છે–'जे खलु भो' ઇત્યાદિ. અથવા સમકિત કહ્યુ, નિર્દોષ તપ ચારિત્ર પણ કહ્યું; હવે તેનું ફળ કહે છે–'जे खलु भो' ઇત્યાદિ.

टीका—'भो' इति शिष्यामन्त्रणार्थः। स वक्ष्यमाणविषये शिष्यस्य पुनः पुनरवधानार्थमामन्त्रणं द्योतयति। भोः शिष्य! ये केचन वीराः=कर्मविदारणार्थमुत्साहवन्तः, समिताः=समितियुक्ताः, सहिताः=स्वहितार्थमुद्युक्ताः सम्यग्ज्ञानादियुक्ता वा, सदायताः=सर्वदा संयमाराधनसावधानाः, संघटदर्शिनः=हेयोपादेयस्य निरन्तरदर्शिनः, यद्वा—अव्याबाधानन्दस्वरूपमोक्षाभिलाषिणः, आत्मोपरताः—

पांच समितियों में लवलीन, आत्महित की प्राप्ति में उद्यमी अथवा सम्यग्ज्ञानादिक गुणों से युक्त, सर्वदा संयम की आराधना करनेमें सावधान, हेयोपादेय के विवेक से युक्त अथवा अव्याबाध—आनन्द—स्वरूप मोक्षके अभिलाषी, कषायविशिष्टआत्मासे सदा परे रहनेवाले और यथावस्थितकर्मलोक की अथवा शब्दादिविषयों की सदा उपेक्षा करने वाले, कर्मों को विदारण करने में उत्साहशाली जो कोई भव्य वीर पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशा में हुये हैं वे सब सत्य—मोक्षस्थानमें स्थित हो चुके हैं।

सूत्रकार इस सूत्र में निर्दोष तप—चारित्र की आराधना का फल प्रकट करते हुए शिष्यों से कह रहे हैं कि जिन भव्यवीरों ने पांच समितियों का निर्दोष रीतिसे पालन किया है, आत्महित की प्राप्ति में जिन्होंने कुछ भी नहीं बाकी रखा, निर्दोष संयम की आराधना करने में ही जिन्हों ने अपने जीवन को विताया, हेयोपादेय के सुन्दर विवेक से जिन्होंने मोह—ममत्व पर विजय प्राप्त की, जिन्होंने कषाय के उदय को

પાંચ સમિતિઓમાં રાચવાવાળા, આત્મહિતની પ્રાપ્તિમાં ઉદ્યમી, અથવા સમ્યગ્જ્ઞાનાદિક ગુણોથી યુક્ત, સર્વદા સંયમની આરાધના કરવામા સાવધાન, હેયોપાદેયના વિવેકથી યુક્ત, અથવા અવ્યાબાધ—આનંદસ્વરૂપ મોક્ષના અભિલાષી, કષાયવિશિષ્ટ આત્માથી સદા દૂર રહેવાવાળાં, અને યથાવસ્થિત કર્મલોકની અથવા શબ્દાદિવિષયોની સદા ઉપેક્ષા કરવાવાળાં કર્મોનું વિદારણ કરવામા ઉત્સાહશાળી જે ભવ્ય વીરો, પૂર્વ, પશ્ચિમ, ઉત્તર અને દક્ષિણ દિશાઓમાં થયાં છે તે બધા સત્ય—મોક્ષસ્થાનમા સ્થિત થઇ ચૂકેલ છે.

સૂત્રકાર આ સૂત્રમાં નિર્દોષ તપ—ચારિત્રની આરાધનાનું ફળ પ્રગટ કરીને શિષ્યોને કહે છે કે જે ભવ્ય વીરોએ પાંચ સમિતિઓનું નિર્દોષ રીતિથી પાલન કર્યું છે, આત્મહિતની પ્રાપ્તિમાં જેમણે કાંઇ પણ બાકી ન રાખ્યું, નિર્દોષ સંયમની આરાધના કરવામાં જ જેમણે પોતાના જીવનને વીતાવ્યા, હેયોપાદેયના સુંદર વિવેકથી જેઓએ મોહ મમત્વ ઉપર વિજય પ્રાપ્ત કર્યો, જેઓએ કષાયના

आत्मनः=कषायात्मन उपरताः=निवृत्ताः यथातथा=यथावस्थितं, लोकं=कर्मलोकं, शब्दादिविषयलोकं वा, उपेक्षमाणाः=दृष्ट्याऽपश्यन्त आसन्, ते प्राच्यादिदिक्ष्ववस्थिताः, सत्ये=सत्यसुखजनकत्वात् सत्यो=मोक्षमार्गः, तत्र, परिव्यस्थुः=स्थितवन्तः, इदमुपलक्षणम्–नेनानागतवर्तमानयोरपि क्रियापदे संयोजनीये, यथा— ये वीराः सन्ति ते वर्तमानकाले पञ्चदशकर्मभूमिषु संख्येयास्तिष्ठन्ति, ये च भविष्यन्ति, ते चानागतकालेऽनन्ताः स्थास्यन्तीति ॥ सू० १० ॥

निष्फल किया और इस कर्ममय लोक की अथवा शब्दादिक पांचइन्द्रियों के विषयों की तरफ थोड़ा सा भी ध्यान नहीं दिया, उन भव्यवीरों ने-चाहे वे किसी भी दिशा में क्यों न रहें हों–नियम से मोक्ष को अपने हाथ में कर लिया है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की एकता के विना मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती, यह जैनसिद्धान्त का अटल नियम है। पांचसमिति वगैरह के पालन में अपने को विसर्जित कर देना यह बात सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की आराधना से ही आत्माको उपलब्ध होती है। सूत्र में "वीर" शब्द इसी बात की पुष्टि करता है। बाह्य जगत में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करनेवाले लाखों क्या करोड़ों भी मनुष्य मिल सकते हैं, परन्तु जो अपने आत्मशत्रुओं–कर्मों पर विजय प्राप्त करने की कोशिश में हैं वे लाखों में क्या करोड़ों में भी एक दो मिलेंगे। पांच समितियों में लवलीन रहना, आत्महित की प्राप्ति में सदा उद्यम करते रहना, सर्वदा संयम की आराधना में जरा भी प्रमादशील न बनना, हेयोपादेय के विवेक में थोड़ी सी

ઉદયને નિષ્ફળ બનાવ્યો અને આ કર્મમય લોકની અથવા શબ્દાદિક પાંચ ઇન્દ્રિયોના વિષયોની તરફ થોડું પણ ધ્યાન નથી આપ્યુ તેવા ભવ્ય વીરોએ ભલે તેઓ કોઇ પણ દિશામા હોય તો પણ નિયમથી મોક્ષને પ્રાપ્ત કરેલ છે. સમ્યગ્દર્શન સમ્યગ્જ્ઞાન અને સમ્યક્ચારિત્રની એકતા વિના મોક્ષની પ્રાપ્તિ થતી નથી, એ જૈન-સિદ્ધાંતનો અટલ નિયમ છે પાંચ સમિતિ વિગેરેના પાલનમાં પોતાને વિસર્જીત કરી દેવું, એ વાત સમ્યગ્દર્શન, સમ્યગ્જ્ઞાન અને સમ્યક્ચારિત્રની આરાધનાથી જ આત્માને ઉપલબ્ધ થાય છે સૂત્રમા જે "વીર" શબ્દ છે તે આ વાતની જ પુષ્ટિ કરે છે. બાહ્ય જગતમાં શત્રુઓ પર વિજય કરનારાઓ લાખો તો શું પણ કરોડો મનુષ્યો મળી રહેશે, પરંતુ પોતાના આત્મશત્રુઓ–કર્મ પર વિજય પ્રાપ્ત કરવાની કોશિશમાં હોય તેવા લાખો બલ્કે કરોડોમાં પણ એક–બે મળશે. પાંચ સમિતિઓમાં રચ્યા રહેવું, આત્મહિતની પ્રાપ્તિમા સદા ઉદ્યમ કરતા રહેવુ, સર્વદા સંયમની આરાધનામાં જરા પણ પ્રમાદશીલ ન બનવુ, હેયોપાદેયના

भी भूल न आने देना, कषायों से सदा सावधान रहना और शब्दादिक विषयों में सदा उपेक्षाभाव रखना, ये सब बातें-क्रियाएँ कर्मशत्रुओं पर विजय पाने में सैन्य का काम देती हैं। मोक्षाभिलाषी आत्मा सेनापति है, कर्मों की मूल-उत्तर-प्रकृतिरूप सेना शत्रुसैन्य है, उस पर विजय प्राप्त करने में इस योद्धा की ये पूर्वोक्त क्रियाएँ एक अक्षौहिणी सेना जैसी हैं, अतः यह आत्मा नियमसे कर्मसेना का पराभव कर अपने स्वभाव से ही मोक्ष का पूर्ण भोक्ता बन जाता है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

सूत्र में "भो" शब्द शिष्यों के संबोधन के लिये आया है। वह भगवान् के कहे गये वचनों में शिष्यों का पुनः पुनः ध्यान आकर्षित करने के लिये कहा गया है। मूल में 'परिविचिट्ठिंसु' यह भूतकालिक क्रियापद है। यह वर्तमान और भविष्यत्कालिक क्रियापद का भी उपलक्षण है। इसका अभिप्राय यह है कि भूतकाल में जितने भी वीर हुए हैं उन सबने तो मोक्ष का मार्ग प्राप्त कर ही लिया है, वर्तमान में भी जो पांच भरतक्षेत्र, पांच ऐरवत क्षेत्र और पांच महाविदेह क्षेत्र में संख्यात वीर हैं वे और अनागत कालमें जो अनंत वीर होंगे वे सब मोक्षके भोक्ता बनेंगे।

कर्मों के विदारण करने में उत्साहसम्पन्न को 'वीर,' पांच समितियों

વિવેકમાં જરા પણ ભૂલ ન આવવા દેવી, કષાયોથી સદા સાવધાન રહેવુ, આ બધી વાતો-ક્રિયાઓ-કર્મશત્રુઓ ઉપર વિજય મેળવવામાં સૈન્યનુ કામ કરે છે. મોક્ષાભિલાષી આત્મા સેનાપતિ છે. કર્મોની મૂળ-ઉત્તરપ્રકૃતિરૂપ સેના શત્રુસૈન્ય છે, તેના ઉપર વિજય પ્રાપ્ત કરવામાં આ યોદ્ધાની તે પૂર્વોક્ત ક્રિયાઓ એક અક્ષૌહિણી સેના જેવી છે, માટે તે આત્મા નિયમથી કર્મસેનાનો પરાભવ કરીને પોતાના સ્વભાવથી જ મોક્ષનો પૂર્ણ ભોક્તા બની જાય છે, તેમાં જરા પણ સંદેહ નથી.

સૂત્રમાં "ભો" શબ્દ શિષ્યોના સંબોધનને માટે આવેલ છે, તે ભગવાને કહેલા વચનોમાં શિષ્યોનું વારંવાર ધ્યાન આકર્ષિત કરવાને માટે કહેવામાં આવેલ છે મૂળમાં 'परिविचिट्ठिंसु' આ ભૂતકાલિક ક્રિયાપદ છે. આ વર્તમાન અને ભવિષ્યકાલિક ક્રિયાપદનુ પણ ઉપલક્ષણ છે, આનો અભિપ્રાય એ છે કે—ભૂતકાળમાં જેટલા વીરો થયેલા છે તે બધાએ મોક્ષનો માર્ગ પ્રાપ્ત કરી જ લીધેલ છે. વર્તમાનમાં પણ જે પાંચ ભરતક્ષેત્ર, પાંચ ઐરવત ક્ષેત્ર અને પાંચ મહાવિદેહ ક્ષેત્રમા સંખ્યાત વીરો છે, તેઓ અને આવતા કાળમાં જે અનંત વીરો થશે તેઓ બધા મોક્ષના ભોક્તા બનશે.

કર્મોનું વિદારણ કરવામાં ઉત્સાહસમ્પન્નને 'વીર,' પાંચ સમિતિઓનું પાલન

तेषां सत्यावस्थायिनां ज्ञानमाह—'साहिस्सामो' इत्यादि।

मूलम्—साहिस्सामो नाणं वीराणं समियाणं सहियाणं सयाजयाणं संघडदंसीणं आओवरयाणं अहातहा लोयमुवेहमाणाणं, किमत्थि उवाही? पासगस्स न विज्जइ, नत्थि-त्ति बेमि॥सू०११॥

छाया—साधयिष्यामो ज्ञानं वीराणां समितानां सहितानां सदायतानां संघटदर्शिनाम् आत्मोपरतानां यथातथा लोकमुपेक्षमाणानां, किमस्ति उपाधिः पश्यकस्य? न विद्यते नास्ति, इति ब्रवीमि॥सू० ११॥

टीका—तेषां वीराणां समितानां सहितानां सदायतानां संघटदर्शिनाम् आत्मोपरतानां यथातथा लोकमुपेक्षमाणानां ज्ञानम्=अभिप्रायं, साधयिष्यामः=कथ-

---

के पालन करनेवाले को 'समित,' आत्मकल्याण में उद्यमशाली अथवा ज्ञानादिक गुणों से युक्त को 'सहित', सर्वदा संयम की आराधना में सावधान को 'सदायत,' हेयोपादेय के विवेक से युक्त अथवा अव्याबाध आनन्दस्वरूप मोक्ष की अभिलाषावाले को 'संघटदर्शी' और कषायों से उपरत-निवृत्त जीवों को 'आत्मोपरत' कहते हैं॥ सू० १०॥

मोक्षमार्ग में रहनेवाले उन वीर-आत्माओं के ज्ञान के विषय में सूत्रकार कहते हैं:-'सहिस्सामो नाणं' इत्यादि।

हम वीर, समित, सहित, सदायत, संघटदर्शी, आत्मोपरत, यथावस्थित लोक की उपेक्षा करनेवाले उन मोक्षमार्ग के पथिकों के ज्ञान के विषय में आगे कथन करेंगे। अभी तो इतना ही कहते हैं कि उन वीरादिविशेषणविशिष्ट आत्माओं के कर्मजनित कोई भी उपाधि नहीं है।

કરવાવાળાને 'समित', આત્મકલ્યાણમાં ઉદ્યમશાળી અથવા જ્ઞાનાદિક ગુણોથી યુક્તને 'सहित', સર્વદા સંયમની આરાધનામાં સાવધાનને 'सदायत', હેયોપાદેયના વિવેકથી યુક્ત અથવા અવ્યાબાધઆનંદસ્વરૂપ મોક્ષની અભિલાષાવાળાને 'संघटदर्शी' અને કષાયોથી ઉપરત-નિવૃત્ત જીવોને 'आत्मोपरत' કહે છે. ॥સૂ૦ ૧૦॥

મોક્ષમાર્ગમાં રહેવાવાળા તે વીર-આત્માઓના જ્ઞાનના વિષયમાં સૂત્રકાર કહે છે—"साहिस्सामो नाणं" ઈત્યાદિ

અમે વીર, સમિત, સહિત, સદાયત, સંઘટદર્શી, આત્મોપરત અને યથાવસ્થિત લોકની ઉપેક્ષા કરવાવાળાં તે મોક્ષના પથિકોના જ્ઞાનના વિષયમાં આગળ કહીશું. હમણાં તો આટલું કહીએ છીએ કે તે વીરાદિવિશેષણવિશિષ્ટ આત્માઓને કર્મજનિત (કર્મથી થનારી) કોઈપણ ઉપાધિ નથી.

विद्यामः । वीरादिविशेषणशब्दा अनन्तरपूर्वसूत्रे व्याख्याताः । शिष्यः पृच्छति-किमस्ति उपाधिरिति । किं तेषां महापुरुषाणामुपाधिरस्ति ?, उत्तरवाक्यमाह-'पश्यकस्य' इत्यादि । पश्यकस्य=सम्यग्दर्शनादिकं मोक्षमार्गं पश्यतीति पश्यः, स एव पश्यकः, तस्य कर्मजनितोपाधिर्न विद्यते नास्ति, इति ब्रवीमि=मया यथा भगवद्वाक्यं श्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः ॥ सू० ११ ॥

चतुर्थाध्ययनस्य चतुर्थोद्देशः समाप्तः ॥ ४-४ ॥

भावार्थ—जब तक जीव अपने शुद्धस्वरूप-निर्विकार आनन्द-स्वरूप मुक्तिको प्राप्त नहीं कर लेता है तब तक वह कर्मों से निर्लिप्त नहीं हो सकता है । ऐसी अवस्था में जब तक सांसारिक दशा है अथवा संसार में रहना है तब तक कर्मों के चक्कर में प्रत्येक प्राणी फँसा हुआ ही है । जो कर्मों का कर्ता है वह उसके फल का भी भोक्ता माना जाता है । यद्यपि यह नियम अटल है परन्तु ज्ञानी जीव उसके अपवादस्वरूप हैं, क्यों कि चारित्रमोहनीय के उदयसे जब तक चारित्र का अभाव उनकी आत्मामें नहीं हुआ है तब तक दर्शनमोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न होनेवाला कर्मबन्ध उनको नहीं होता है । जितने अंश में परपदार्थों से निवृत्ति है उतने अंशों में आत्मा में शुद्धि का सद्भाव भी है, अर्थात् दर्शनमोहनीय कर्म के उपशम, क्षय और क्षयोपशम से जितनी भी आत्मा से अतत्त्वश्रद्धानपरिणति का अंत होगा उतनी ही आत्मजागृति-रूप शुद्धपरिणति का विकास वहां पर होगा ।

ભાવાર્થ—જ્યાં સુધી જીવ પોતાના શુદ્ધસ્વરૂપ-નિર્વિકાર આનંદ-સ્વરૂપ મુક્તિને પ્રાપ્ત નથી કરી લેતો, ત્યાં સુધી તે કર્મોથી નિર્લિપ્ત થતો નથી. આવી અવસ્થામાં જ્યાં સુધી સાંસારિક દશા છે, અથવા સંસારમાં રહેવાનું છે ત્યાં સુધી કર્મોના ચક્કરમાં પ્રત્યેક પ્રાણી ફસાયેલાં જ છે. જે કર્મોનો કર્તા છે તે તેના ફળનો પણ ભોક્તા મનાય છે. જો કે આ નિયમ અટલ છે છતાં પણ જ્ઞાની જીવ તેના અપવાદસ્વરૂપ છે, કેમ કે ચારિત્રમોહનીયના ઉદયથી જ્યાં સુધી ચારિત્રનો અભાવ તેના આત્મામાં નથી થયો ત્યાં સુધી દર્શન-મોહનીય કર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન થનાર કર્મબંધ તેને થતું નથી. જેટલા અંશમાં પરપદાર્થોની નિવૃત્તિ છે તેટલા અંશોમાં આત્મામાં શુદ્ધિનો સદ્ભાવ પણ છે, અર્થાત્ દર્શન-મોહનીય કર્મના ઉપશમ, ક્ષય, અને ક્ષયોપશમથી આત્મામાં જેટલી પણ અતત્ત્વશ્રદ્ધાન પરિણતિનો અંત થશે તેટલી જ આત્મજાગૃતિરૂપ શુદ્ધ પરિણતિનો વિકાસ ત્યાં થશે.

सम्यक्त्वकरया, युक्त्या, सम्यक्त्वं तत्फलानि च ।
विदूष्यानार्यवचनं, चतुर्थेऽध्ययनेऽब्रवीत् ॥ १ ॥ इति ।

॥ इतिश्री-विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-कलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-शाहू-छत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-"जैनशास्त्राचार्य"-पदभूषित-कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर पूज्य-श्रीघासीलाल-व्रतिविरचितायाम् आचाराङ्गसूत्रस्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां सम्यक्त्वाख्यं चतुर्थमध्ययनं सम्पूर्णम् ॥ ४ ॥

समकित के प्राप्त होते ही आत्मा में आत्मस्वरूप का भान होने से आंशिक रूप में सम्यग्ज्ञान और स्वानुभव में रमणरूप आंशिक चारित्र भी समकिती को उत्पन्न हो जाता है, अतः यहां पर सूत्रकार मोक्षमार्ग के पथिकों को कर्मजन्य उपाधिका अभाव बतलाते हैं, क्यों कि अज्ञानी जीवों को ही कर्मजन्य उपाधि हुआ करती है, ज्ञानी जीवों के नहीं।

इस प्रकरण की समाप्ति करते हुए श्री सुधर्मास्वामी कहते हैं कि हे जम्बू ! जिस प्रकार से मैंने यह भगवान के समीप सुना है उसी प्रकार मैं कहता हूं ॥ सू० ११ ॥

चौथे अध्ययनका चौथा उद्देश समाप्त ॥ ४-४ ॥

चौथे अध्ययन में जो विषय कहे गये हैं उनका संक्षिप्त वर्णन श्लोक द्वारा करते हैं—'सम्यक्त्वकरया' इत्यादि।

સમકિત પ્રાપ્ત થતાં જ આત્મામાં આત્મસ્વરૂપનું ભાન થવાથી આશિક રૂપમા સમ્યગ્જ્ઞાન અને સ્વાનુભવમાં રમણરૂપ આંશિક ચારિત્ર પણ સમકિતીને ઉત્પન્ન થાય છે, માટે આ ઠેકાણે સૂત્રકાર મોક્ષમાર્ગના પથિકોને કર્મજન્ય ઉપાધિનો અભાવ બતાવે છે, કેમકે અજ્ઞાની જીવોને જ કર્મજન્ય ઉપાધિ થાય છે, જ્ઞાની જીવોને નહિ.

આ પ્રકરણની સમાપ્તિ કરતા શ્રી સુધર્માસ્વામી કહે છે કે હે જમ્બૂ ! જે પ્રકારે મેં ભગવાનની સમીપ આ સાંભળ્યુ છે તે પ્રકારે હું કહું છું. ॥સૂ૦૧૧॥

ચોથા અધ્યયનનો ચોથો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૪-૪ ॥

ચોથા અધ્યયનમાં જે વિષય કહેવાયા છે તેનું સંક્ષિપ્ત વર્ણન શ્લોકદ્વારા કરે છે—'सम्यक्त्वकरया' ઇત્યાદિ.

सम्यक्त्व को पुष्ट करनेवाली युक्ति से सम्यक्त्व का वर्णन तथा अनार्यों के वचनों का निराकरण करके सम्यक्त्वका फल इस चौथे अध्ययन में कहा गया है ॥ १ ॥

यह आचाराङ्गसूत्रके सम्यक्त्व नामके चौथे अध्ययनकी आचार-चिन्तामणि-टीकाका हिन्दीभाषानुवाद सम्पूर्ण ॥ ४ ॥

સમ્યક્ત્વને પુષ્ટ કરવાવાળી યુક્તિથી સમ્યક્ત્વનું વર્ણન, તથા અનાર્યોના વચનોનુ નિરાકરણ કરીને સમ્યક્ત્વનુ ફળ આ ચોથા અધ્યયનમાં કહ્યું છે. ॥ ૧ ॥

આ આચારાંગસૂત્રના સમ્યક્ત્વનામના ચોથા અધ્યયનની આચાર-ચિંતામણિ-ટીકાનો ગુજરાતી અનુવાદ સંપૂર્ણ ॥ ૪ ॥



શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

ગરેડીઆ કુવા રોડ – ગ્રીન લોજ પાસે

રાજકોટ



સમિતિની શરૂઆત તા. ૧૮-૧૦-૪૪ થી
તા. ૩૧-૧-૫૭ સુધીમાં દાનવીર મહાશયો
તરફથી મળેલી રકમોની નામાવલી.



(રૂા. ૨૫૦ થી ઓછી રકમો આ યાદીમાં સામેલ કરેલ નથી.)



આદ્ય મુરબ્બીશ્રી–૪

(ઓછામા ઓછી રૂ. ૫૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧૦૦૦૦	શેઠ શાંતિલાલ મંગળદાસભાઈ, પ્રમુખ સાહેબ	અમદાવાદ
૬૦૦૦	શેઠ હરખચંદ કાલીદાસભાઈ (હા. શેઠ લાલચંદભાઈ, જેચંદભાઈ, નગીનદાસભાઈ, વૃજલાલભાઈ તથા વલ્લભદાસભાઈ)	ભાણવડ
૫૨૫૧	કોઠારી જેચંદભાઈ અજરામર હા. હરગોવિંદભાઈ જેચંદ	રાજકોટ
૫૦૦૧	શેઠ ધારશીભાઇ જીવનભાઈ	સોલાપુર

મુરબ્બીશ્રીઓ–૨૦

(ઓછામાં ઓછી રૂા. ૧૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

૩૬૦૫	વકીલ જીવરાજ વર્ધમાન હા. કોઠારી કહાનદાસભાઈ તથા વેણીલાલભાઈ	જેતપુર
૩૬૦૪	દોશી પ્રભુદાસ મુળજીભાઈ	રાજકોટ
૩૨૮૯ાાના	મહેતા ગુલાબચંદ પાનાચંદ	,,
૩૧૦૬	સંઘવી પીતામ્બરદાસ ગુલાબચંદ	જામનગર
૨૫૦૦	શેઠ શામજીભાઈ વેલજી વીરાણી	રાજકોટ
૨૦૦૦	નામદાર ઠાકોર સાહેબ લખધીરસીંહજી બહાદુર	મોરબી
૨૦૦૦	શેઠ લહેરચંદ કુંવરજી હા. શેઠ ન્યાલચંદભાઈ લહેરચંદ	સીધપુર
૨૦૦૦	શાહ છગનલાલ હેમચંદ વસા હા. મોહનલાલભાઈ તથા મોતીલાલભાઈ	મુંબઈ
૧૯૬૩	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	મોરબી
૧૦૦૧	શેઠ આત્મારામ માણેકલાલ	અમદાવાદ
૧૦૦૧	શેઠ માણેકલાલ ભાણજીભાઈ	પોરબંદર
૧૦૦૦	શેઠ સોમચંદ તુલસીદાસ	રતલામ
૧૦૦૦	કોઠારી છબીલદાસ હરખચંદ	મુંબઈ
૧૦૦૦	કોઠારી રંગીલદાસ હરખચંદ	શીહોર
૧૦૦૨	બગડીઆ જગજીવનદાસ રતનશી	દામનગર
૧૦૦૧	શ્રીમાન ચંદ્રસિંહજી મહેતા (રેલ્વે મેનેજર સાહેબ)	કલકત્તા
૧૦૦૧	મહેતા પોપટલાલ માવજીભાઈ	જામજોધપુર
૧૦૦૧	મહેતા મોમચંદ નેણશીભાઈ (કરાંચીવાળા)	મોરબી
૧૦૦૧	શાહ હરીલાલ અનુપચંદ	ખંભાત
૧૦૦૨	દોશી કપુરચંદ અમરશી હા દલપતરામ કપુરચંદ દોશી	જામ જોધપુર

સહાયક મેમ્બરો–૨૧

(ઓછામાં ઓછી રૂા. ૫૦૦ ની રકમ આપનાર)

૭૫૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા. શેઠ ઝુંઝાભાઇ વેલસીભાઈ	વઢવાણ શહેર
૭૫૦	મોદી કેશવલાલ હરચંદ	સાબરમતી
૭૦૦	શેઠ નરોત્તમદાસ ઓઘડભાઈ	જોરાવરનગર
૫૦૧	શેઠ શીવલાલ ડમરભાઈ	લીંબડી
૫૦૦	કામદાર તારાચંદ પોપટલાલ ધોરાજીવાળા	રાજકોટ
૫૦૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	થાનગઢ
૫૦૦	શેઠ તારાચંદજી પુખરાજજી	ઔરંગાબાદ
૫૦૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ ૧૫૦ શેઠ શેષમલજી જીવરાજજી ૧૨૫ ,, અનરાજજી લાલચંદજી ૧૨૫ ,, ધુકડચંદજી રૂપચંદજી ૧૦૦ ,, ડગડુમલજી ચાંદમલજી ૫૦૦	ઔરંગાબાદ
૫૦૦	મહેતા મોહનલાલ કપુરચંદ	રાજકોટ
૫૦૦	શેઠ ગોવીંદજી પોપટભાઈ	રાજકોટ
૫૦૦	મહેતા મુળચંદ રાઘવજી હા. મગનલાલભાઇ તથા દુર્લભજીભાઈ	પ્રાફા
૫૦૦	શેઠ હરખચંદ પરસોત્તમ હા ભાઈ ઈન્દુકુમાર	ચોરવાડ
૫૦૧	શેઠ ખીમજી બાવાભાઈ હા. તેમના પુત્રો ફુલચંદભાઈ નાગરદાસભાઈ, ગુલાબચંદભાઈ તથા જમનાદાસભાઈ	મુંબઈ
૫૦૧	શેઠ મણીલાલ મોહનલાલ ડગલી હા. શેઠ મુલજીભાઈ મણીલાલ	મુંબઈ
૫૦૧	શેઠ ઈશ્વરલાલ પુરૂષોતમદાસ	અમદાવાદ
૫૦૧	શેઠ ચંદુલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ
૫૦૧	સ્વ કાંતીલાલભાઈના સ્મરણાર્થે હ. શેઠ બાલચંદ સાકરચંદ	મુંબઈ
૫૦૦	અ. સૌ. બેન મણીગૌરી મગનલાલ તે મહેતા સોમચંદ તુલસીદાસનાં ધર્મપત્નિ	રતલામ
૫૦૧	સ્વ પીતાશ્રી નંદાજીના સ્મરણાર્થે હ. વેણીચંદ શાંતીલાલ (જાબુઆવાળા)	મેઘનગર

૭૫૧	શાહ રંગજીભાઇ મોહનલાલ	અમદાવાદ
૫૦૧	કામદાર રતીલાલ દુર્લભજી જેતપુરવાળા	મુંબઈ

પ્રથમ વર્ગના મેમ્બરો–૧૮૫

(ઓછામાં ઓછી રકમ રૂા. ૨૫૦ આપનાર)

૪૦૨	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	ધ્રાફા
૪૦૦	ધી વાડીલાલ ડાઇંગ એન્ડ પ્રિન્ટીંગ વર્કસ	રાજકોટ
૩૫૩	શેઠ રતનશી હીરજીભાઈ હા. ગોરધનદાસભાઈ	જામજોધપુર
૩૦૧	શેઠ જેચંદભાઈ માણેકચંદ	ભાણવડ
૨૫૧	સઘવી માણેકચંદ માધવજી	ભાણવડ
૨૫૧	શેઠ લાલજીભાઈ માણેકચંદ (લાલપુરવાળા)	ભાણવડ
૨૫૧	શેઠ રામજી ઝીણાભાઈ	ભાણવડ
૨૫૧	પંચમીયા ભવાનભાઈ કાળાભાઈ	વઠીઆ
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	વાંકાનેર
૨૫૧	શેઠ રતીલાલ ન્યાલચંદ	રાજકોટ
૨૫૦	બાબુ પરશુરામ છગનલાલ શેઠ (ઉદેપુરવાળા)	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ મગનલાલ છગનલાલ વિશ્રામ (ધ્રાફાવાળા)	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ જેઠાલાલ ગોરધનદાસ	ઉપલેટા
૨૫૧	સ્વ બહેન સંતોક કચરા હા. આતમચંદભાઈ, છોટાલાલભાઈ તથા અમૃતલાલભાઈ વાલજી (કલ્યાણવાળા)	ઉપલેટા
૨૫૧	શેઠ ખુશાલચંદભાઈ કાનજીભાઈ હા. શેઠ પ્રતાપભાઈ	ઉપલેટા
૪૭૭	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	ખાખીજાળીયા
૨૫૧	શેઠ છોટાલાલ કેશવજી	જામનગર
૨૫૧	શાહ લક્ષ્મીચંદ કપુરચંદ	જેતલસર જંકશન
૨૫૧	શાહ ચતુરદાસ ઠાકરશીભાઈ	જામનગર
૨૫૧	ખંઢેરીયા કાન્તીલાલ ત્ર્યંબકલાલ (સ્ટેશન માસ્તર)	સુરેન્દ્રનગર
૨૫૧	શાહ કેશવલાલ જેચંદ	વેરાવલ
૨૫૧	શાહ ખીમચંદ સોભાગચંદ વસનજી	વેરાવલ
૨૫૧	સ્વ. બાખડા વચ્છરાજ તુલસીદાસનાં ધર્મપત્ની કમળબાઈ તરફથી હા. માણેકચંદભાઈ તથા કપુરચંદભાઈ	ગોંડલ
૨૫૧	શેઠ છગનલાલ નાગજીભાઈ	મુંબઈ
૨૫૧	ઘેલાણી ત્રીકમજી લાધાભાઈ	જુનાદેવ

૨૫૧	શેઠ ગીરધરલાલ કરમચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ છોટાલાલ વખતચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	ગોસલિયા હરિલાલ લાલચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ પ્રેમચંદ માણેકચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ માણેકલાલ ભગવાનદાસ	ખંભાત
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા. શેઠ મોહનલાલ ઇચ્છારામ	ખંભાત
૨૫૧	શેઠ રમણીકલાલ એ. કપાસી	આણંદ
૨૫૧	બહેન સુરીબહેન (લક્ષ્મીબેન) હા. મહેતા હરીલાલ પીતામ્બરદાસ	પાલણપુર
૨૫૦	શેઠ વાડીલાલ નેમચંદ વકીલ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ વીઠલદાસ મોદી માસ્તર	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ નાગરદાસ માણેકચંદ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ મણીલાલ જીવણલાલ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ નાગરદાસ વાઘજીભાઈ	અમલનેર
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	અમલનેર
૨૫૧	શેઠ મનુભાઈ મુળચંદ (ઇન્જીનીયર સાહેબ)	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ શાંતિલાલ પ્રેમચંદ [તેમનાં ધર્મપત્નીના વરસીતપ પ્રસંગે ખુશાલીના]	રાજકોટ
૨૫૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા. ચંપાલાલજી મારવે	ડોંડાઇચા
૨૫૧	શેઠ મોતીલાલજી રણજીતલાલજી હીંગડ	ઉદેપુર
૨૫૦	શેઠ બાદરમલજી સુરજમલજી બેન્કર્સ	યાદગીરી
૨૫૦	શેઠ ગોપાલજી મીઠાભાઈ	હાટીના માળીયા
૨૫૧	ઉદાણી ન્યાલચંદ હાકેમચંદ [વકીલ]	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ પ્રજારામ વીઠલજી	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ મેઘરાજજી દેવીચંદજી મહેતા	મદ્રાસ
૨૫૧	પટેલ ગોવીંદલાલ ભગવાનજી	કોલકી
૩૦૨	પટેલ ખીમજી જેઠાભાઈ વાઘાણી	કોલકી
૨૫૧	શેઠ હકીમચંદ દીપચંદ ગોંડલવાળા [સ્ટેશન માસ્તર ભક્તિનગર]	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ વસનજી નારણજી	જામખંભાળીયા
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	જામખંભાળીયા
૨૫૧	શેઠ કીશનલાલ પૃથ્વીરાજ	ખીચન (પાલી)
૨૫૧	શેઠ પદમસી ભીમજી કોફરીયા	ભાણવડ

૨૫૧	અ. સૌ. બહેન બચીબહેન બાબુભાઈ	ધોરાજી
૨૫૧	શેઠ નેમચંદ સવજીભાઈ મોદી	લાલપુર
૨૫૦	શ્રી સ્થા. જૈન સંઘ હા. પ્રમુખ શેઠ પ્રેમચંદ ભગવાનલાલ	નંદુરબાર
૨૫૧	શેઠ અમૃતલાલ હીરજીભાઈ જસાપરવાળા હા. નરભેરામભાઈ	જેતપુર
૨૫૧	દોશી છોટાલાલ વનેચંદ	જેતપુર
૨૫૧	કામદાર લીલાધર જીવરાજના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્ની બાઈ ઝબકબહેન તરફથી હા. ભાઇ શાંતિલાલ	જેતલસર
૨૮૭	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	જામજોધપુર
૨૫૧	સ્વ. બહેન વિજયાગૌરી રાયચંદ હા. શેઠ રાયચંદ પાનાચંદ	ધોરાજી
૨૫૦	ગાંધી પોપટલાલ જેચંદભાઈ	ધોરાજી
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા. પ્રમુખ રાયચંદ વૃજલાલ અજમેરા	વીંછીયા
૨૫૧	શેઠ મુળચંદ પોપટલાલ હા. મણીલાલભાઈ તથા જેસીંગલાલભાઈ	લાલપુર
૨૫૧	શેઠ મણીલાલ મીઠાભાઈ હા. હરિલાલભાઈ હાટીના માળીયાવાળા	જુનાગઢ
૨૫૧	સ્વ. વસાણી હરગોવીંદદાસ છગનલાલના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્ની બાઈ છબલબેન તરફથી	બોટાદ
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	ચુડા (ઝાલાવાડ)
૨૫૧	શેઠ મગનલાલજી બાગરેચા	ઉદેપુર
૨૫૧	શેઠ ચાપશીભાઇ સુખલાલ	સુરેન્દ્રનગર
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	બોટાદ
૨૫૧	સ્વ. પૂજ્ય માતુશ્રી સમરતબાઈના સ્મરણાર્થે હા. ડોકટર સાહેબ નરોત્તમદાસ ચુનીલાલ કાપડીયા	રાણપુર
૨૫૧	સ્વ તુરખીયા લહેરચંદ માણેકચંદ સુદામડાવાળાના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્ની જીવતીબાઈ તરફથી હા જયંતીલાલ લહેરચંદ	ડભાસ
૨૫૧	શ્રી સ્થા. જૈન મોટા સંઘ	ધ્રાંગધ્રા
૨૫૧	શાહ દીલીપકુંવર સવાઈલાલ હા શેઠ સવાઈલાલ ત્ર્યંબકલાલ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	શેઠ છોટુભાઈ હરગોવીંદદાસ કટોરીવાળા	મુંબઈ
૨૫૧	રા. રા નાથાલાલ ડી. મ્હેતા	મોમ્બાસા
૨૫૧	સંઘવી પ્રાણલાલ લવજીભાઈ	જામખંભાળીયા

૨૫૧	બાવીશી મણીલાલ ચત્રભુજના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્ની બાઈ મણીબેન તરફથી હા. ભાઈ રસીકલાલ, અનીલકાંત તથા વિનોદરાય	આસનસોલ
૨૫૦	શેઠ માણેકલાલ અમુલખરાય મ્હેતા	ઘાટકોપર
૨૫૧	ભાવસાર ખોડીદાસ ગણેશભાઈ	ધંધુકા
૨૫૧	શાહ પોપટલાલ ધનજીભાઈ	ધંધુકા
૨૫૧	સ્વ ગુલાબચંદભાઈના સ્મરણાર્થે હા. વોરા પોપટલાલ નાનચંદ	ધંધુકા
૨૫૧	શેઠ ચત્રભુજ વાઘજીભાઈ વસાણી	ધંધુકા
૨૫૧	સ્વ. મોહનલાલ નરસીદાસના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્ની સુરજબેન મોરારજી તરફથી	બરવાળા
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	પાણશણા (લીંબડી)
૨૫૧	સંઘાણી મુળશંકર હરજીવનભાઈના સ્મરણાર્થે હા. તેમના પુત્રો જયંતિલાલભાઈ તથા રમણીકલાલભાઈ	ઉપલેટા
૨૫૧	શાહ મગનલાલ ગોકળદાસ હા. રતીલાલ મગનલાલ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	સંઘવી મુળચંદ બેચરભાઈ હા. જીવનલાલ ગફલદાસ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	બ્હેન સુર્યબાળા નૌતમલાલ જસાણી [વરસીતપનાં પારણાંની ખુશાલીમાં]	રાજકોટ
૨૫૧	શાહ રાયચંદ ઠાકરશીના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ શાંતીલાલ રાયચંદ	લખતર
૨૫૧	ભાવસાર હરજીવનદાસ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ ત્રીભોવનદાસ હરજીવનદાસ	લખતર
૨૫૧	શાહ તલકશી હીરાચંદના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ અમૃતલાલ તલકશી	લખતર
૨૫૧	શાહ ચુનીલાલ માણેકચંદ	લખતર
૨૫૧	શેઠ વૃજલાલ સુખલાલ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	શેઠ કાંતિલાલ નાગરદાસ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	વોરા ચત્રભુજ મગનલાલ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	સંઘવી શીવલાલ હીમજીભાઈ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	શાહ દેવશીભાઈ દેવકરણ	વઢવાણ શહેર

૨૫૧ શાહ જાદવજી ઓઘડભાઈ સદાદવાળાના સ્મરણાર્થે
હા. ભાઈ શાંતીલાલ જાદવજી લખતર
૨૫૧ ભાવસાર ચુનીલાલ પ્રેમચંદભાઈ સુરેન્દ્રનગર
૨૫૧ શ્રી વર્ધમાન શ્વેતામ્બર સ્થા. શ્રાવક સંઘ
હા. શેઠ કેસરીમલજી અનોપચંદજી ગુગળીયા મલાડ (મુંબઈ)
૨૫૧ દોશી ઠાકરશી ગુલાબચંદના સ્મરણાર્થે તેમનાં
ધર્મપત્ની સમરતબેન વૃજલાલ તરફથી
હા. ભાઈ જયંતિલાલ ઠાકરશી લખતર
૩૦૦ શાહ અમુલખ ઉર્ફે બચુભાઈ નાગરદાસનાં ધર્મપત્ની
અ. સૌ. બેન લીલાવંતીના વરસી તપનાં પારણાની
ખુશાલીમાં હા. ભાઈ કાંતીલાલ નાગરદાસ વીરમગામ
૨૫૧ કામદાર કેશવલાલ હીમતરામ પ્રોફેસરસાહેબ (ગોંડલવાળા) વડોદરા
૨૫૧ શેઠ ડુંગરશી હંસરાજ વીસરીયા મુંબઈ
૨૫૧ શેઠ ધનરાજ મુળચંદ મુથા લોનાવાલા (પુના)
૨૫૧ મ્હેતા નાનાલાલ છગનલાલનાં ધર્મપત્ની
સ્વ. ચંચળબેન તથા પુરીબેનના સ્મરણાર્થે
હા. ભાઈ મનહરલાલ નાનાલાલ મુ. વણી (વીરમગામ)
૨૫૧ દોશી ચુનીલાલ ફુલચંદ મોરબીવાળા મુ. શાલબની (બંગાળ)
૩૦૧ શાહ હીરાચંદ છગનલાલ હા. શાહ ચીમનલાલ હીરાચંદ સાણંદ
૨૫૧ શેઠ મોહનલાલ જેઠાભાઈના સ્મરણાર્થે
હા. શેઠ આત્મારામ મોહનલાલ કલોલ
૨૫૧ શાહ રમણીકલાલ કાળીદાસ તથા અ. સૌ. કાંતાબેન
રમણીકલાલ (ધ્રાંગધ્રાવાળા) મુંબઈ
૨૫૧ ડોકટર મયાચંદ મગનલાલ હા. ડો. રતનચંદ મયાચંદ કલોલ
૨૫૧ સ્વ. શાહ નાથાલાલ ઉમેદચંદના સ્મરણાર્થે
હા. શાહ રતીલાલ નાથાલાલ કલોલ
૨૫૧ શ્રી સ્થા. દરીયાપુરી જૈન સંઘ હ. ભાવસાર
દામોદરદાસ ઈશ્વરભાઈ કડી
૨૫૧ શાહ મણીલાલ તલકચંદના સ્મરણાર્થે
હા. મારફતીયા ચંદુલાલ મણીલાલ કલોલ
૨૫૧ અ. સૌ. ચંપાબેન હ. શેઠ જીવરાજ લાલચંદ દોશી સાણંદ
૨૫૧ પટેલ મહાસુખલાલ ડોસાભાઈ સાણંદ

૨૫૧	શાહ શાકરચંદ કાનજીભાઈ	સાણંદ
૨૫૧	શાહ હીંમતલાલ હરજીવનદાસ	મુંબઈ
૨૫૧	શાહ જીતેન્દ્રકુમાર વાડીલાલ માણેકચંદ (રાજ સીતાપુરવાળા)	સાબરમતી
૨૫૧	અ. સૌ. સમરતબેન પ્રેમચંદ % પ્રેમચંદ માણેકચંદ (રાજ સીતાપુરવાળા)	સાબરમતી
૨૫૧	શા. કાંતીલાલ ત્રીભોવનદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	સ્વ. શેઠ ઉજમશી નાનચંદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા. શેઠ ચુનીલાલ નાનચંદ	વીરમગામ
૨૫૧	સ્વ. શાહ મણીલાલ લક્ષ્મીચંદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા. ખીમચંદભાઇ	વીરમગામ
૨૫૧	સ્વ. શેઠ હરીલાલ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ અનુભાઈ હરીલાલ	વીરમગામ
૨૫૧	સંઘવી જેચંદભાઈ નારાણદાસ	વીરમગામ
૨૫૧	સ્વ. શાહ વેલશીભાઈ સાકરચંદના સ્મરણાર્થે હા. ચીમનલાલ વેલશી કન્નાજવાળા	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	પારેખ મણીલાલ ટોકરશી લાતીવાળા તરફથી મોટીબેનના સ્મરણાર્થે	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ નારાણદાસ નાનજીભાઈના સુપુત્ર વાડીભાઈનાં ધર્મપત્ની અ. સૌ. નારંગીબેનના વરસીતપ નિમીત્તે હા. શાંતીભાઇ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ પોપટલાલ મોહનલાલ	અમદાવાદ
૨૫૦	શેઠ પ્રેમચંદ સાકરચંદ	અમદાવાદ
૩૫૧	લાલા પુરણચંદજી જૈન (સેન્ટ્રલબેંકવાલા)	દીલ્હી
૨૫૧	સ્વ. છબીલદાસ ગોકળદાસના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્નિ કમળાબેન તરફથી હા. મંજુલા કુમારી	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ રતીલાલ વાડીલાલ	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ લાલભાઈ મંગળદાસ	”
૨૫૧	અ. સૌ. કમળાબેન તે કામદાર ગોરધનદાસ મગનલાલનાં ધર્મપત્નિ (વઢવાણવાળા)	રંગુન
૨૫૧	વોરા ડોસાભાઈ લાલચંદ સ્થા. જૈન સંઘ હા. વોરા નાનચંદ શીવલાલ	વઢવાણ શહેર

૨૫૧	વોરા ધનજીભાઇ લાલચંદ સ્થા. જૈન સંઘ હા. વોરા પાનાચંદ ગોખરદાસ	વઢવાણુ શહેર
૨૫૧	સ્વ. અમૃતલાલ વર્ધમાનના સ્મરણાર્થે હા. કહાનજીભાઈ અમૃતલાલ દોશી	અમદાવાદ
૨૫૧	શ્રી વીરમગામ સ્થા. જૈન શ્રાવિકા સઘ	વીરમગામ
૨૫૧	સ્વ. ત્રિભોવનદાસ દેવચંદ તથા સ્વ. અ. સૌ. ચંચળ બેનના સ્મરણાર્થે હા. ડોકટર હિંમતલાલ સુખલાલ	,,
૨૫૧	શાહ મુલચંદ કાનજીભાઈ તરફથી હા. શાહ નાગરદાસ ઓઘડભાઈ	,,
૨૫૧	શેઠ મોહનલાલ પીતાંબરદાસ હા. ભાઈ કેશવલાલ તથા મનસુખલાલભાઈ	,,
૨૫૧	શાહ રતનશી મોણુશીની કુા.	મુંબઈ
૨૫૧	ભાવસાર ભોગીલાલ જમનાદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ શીવજી માણેકભાઈ	બેરાઝા કચ્છ
૨૫૧	શાહ લુણાજી ગુલાબચંદ (સંજેલી)	પંચમહાલ
૨૫૧	શ્રી સ્થા. જૈન સંઘ હા. શાહ પ્રેમચંદ દલીચંદ (સંજેલી	,,
૨૫૧	શાહ કુંવરજી ગુલાબચંદ (લીમડી)	,,
૨૫૧	શાહ પાનાચંદ સંઘજીભાઈ હા. ત્રંબકલાલ રતીલાલ	મુંબઈ
૩૦૧	શાહ અમુલખભાઈ મુળજી હા. પ્રકાશચંદ અમુલખ	હારીજ
૩૦૧	સ્વ. બેન ચંદ્રકાંતાના સ્મરણાર્થે હા. અમુલખ મુળજીભાઈ	,,
૨૫૧	સ્વ. પદમશી સુરચંદના સ્મરણાર્થે હા. શીવલાલ પદમશી	મેસાણા
૨૫૧	શાહ ગોકળદાસ શામજી ઉદાણી	એડન કેમ્પ
૨૫૧	ખાટવીયા ગીરધરલાલ પ્રમાણુંદ હા. અમીચંદ ગીરધરલાલ	ખાખીજાળીયા
૨૫૧	શ્રીમતિ અ સૌ. બેન ચદ્રાવતી તે શ્રીમાન બહોતલાલજી નાહરનાં ધર્મપત્નિ હા. શેઠ રણુજીત લાલજી હીંગડ	ઉદેપુર
૨૫૧	સ્વ. શેઠ વીરચંદભાઈ જેસીંગ લખતરવાળાના સ્મરણાર્થે હા. કેશવલાલ વીરચંદ શેઠ	મુંબઈ
૨૫૧ા=	છાજેડ ઘાસીરામ ગુલાબચંદ (લીમડી)	પંચમહાલ
૨૫૧	મહેતા પ્રભુદાસ મુળજીભાઇ	ધોરાજી
૩૦૧	શ્રીમતી હીરાબેન નથુભાઈના વરસીતપ નીમીતે હા. નથુભાઈ નાનચંદ શાહ	વીરમગામ
૨૫૧	સ્વ. મણિયાર પરસોતમ સુંદરજીના સ્મરણાર્થે હા. સાકરચંદ પરસોતમ	,,

૨૫૧	શેઠ મણીલાલ શીવલાલ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ ત્રીભોવનદાસ ભગવાનજી પાનેલીવાળા	જામજોધપુર
૨૫૧	શાહ નટવરલાલ ચંદુલાલ	અમદાવાદ
૩૦૧	શાહ ત્રીભોવનદાસ છગનલાલ	ગોધરા
૨૫૧	શાહ નરસીદાસ ત્રીભોવનદાસ	અમદાવાદ
૩૦૧	બીપીનચંદ્ર તથા ઉમાકાંત ચુનીલાલ ગોપાણી હા. ગોપાણી ચુનીલાલ માણેકચંદ	રાણપુર
૨૫૧	શ્રી શાહપુર દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈન ઉપાશ્રય હા. વહીવટ કરનાર શેઠ ઈશ્વરદાસ પુરષોતમદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	શ્રી છીપાપોળ દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈન સંઘ હ. શેઠ ચંદુલાલ અમૃતલાલ	”
૨૭૭	શ્રી સ્થાનકવાસી છકોટી જૈન સંઘ હ મહેતા ચુનીલાલ વેલજી	માડવી (કચ્છ)
૨૫૧	વકીલ મણીલાલ કેશવલાલ મહેતા	વડોદરા
૨૫૧	વોરા મણીલાલ પોપટલાલ	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ ચીનુભાઈ બાલાભાઈ C/o શાહ બાલાભાઈ મહાસુખરામ	”
૨૫૧	શા. ભાઈલાલ ઊજમશી	અમદાવાદ
૨૫૧	સ્વ. કેશવલાલ મુળજીભાઈનાં ધર્મપત્ની, સ્વ. અમૃતબાઈના સ્મરણાર્થે હ ભાઈલાલ કેશવલાલ થાનગઢવાળા	સુરેન્દ્રનગર
૨૫૧	પુરીબેન ચીમનલાલ કલ્યાણજી સંઘવી લીમડીવાળાના સ્મરણાર્થે હ. વાડીલાલ મોહનલાલ કોઠારી	સાણુદ
૨૫૧	પારેખ નેમચંદ મોતીચંદ મુળીવાળાના સ્મરણાર્થે હ. ભીખાલાલ નેમચંદ	સાણંદ
૨૫૧	સંઘવી નારણદાસ ધરમશીના સ્મરણાર્થે હ જયંતીલાલ નારણદાસ	સાણંદ
૨૫૧	શા. પ્રવિણચંદ્ર નરસીદાસ સાણંદવાળા	બોડેલી (ગુજરાત)
૨૫૧	મહેતા અમૃતલાલ જેઠાલાલ સીવીલ ઈન્જીનીયર સાહેબ	લાખેરી (રાજસ્થાન)
૨૫૧	ડો. કુ. સરસ્વતી બ્હેન શેઠ	અમદાવાદ
૨૫૧	શ્રી સૌરાષ્ટ્ર સ્થા. જૈન સંઘ	અમદાવાદ

પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનાં બનાવેલાં સૂત્રો.

કાશ્મીર.....થી.....કન્યાકુમારી

તેમજ **કરાંચી.....થી.... કલકત્તા**

સુધી

દરેક સ્થળે હોંશથી વંચાય છે.

કારણ કે

આવી રીતે શાસ્ત્રો તૈયાર કરવાનું અનોખું કાર્ય
હજુ સુધી કોઇ કરી શકયું નથી

* * *

શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સમાજ

ઉ પ રાં ત

**શ્રી દેરાવાસી સંપ્રદાયના મહાન આચાર્યશ્રી રામવિજયસૂરીજી
તથા અન્ય મુનિવરોએ**

તેમજ

તેરાપંથી મહાસભા કલકત્તાવાળાએ આ સૂત્રો અપનાવ્યાં છે.

* * *

દેશ-પરદેશના મેમ્બરો સૂત્રો વાંચી જૈન ધર્મના શ્રુતજ્ઞાનનો અણુમોલો
લાભ લઇ રહ્યા છે.

હસણાંજ લંડનની ઈન્ડીઆ ઓફીસ લાયબ્રેરીએ આ સૂત્રો મંગાવ્યા છે.

* * *

આપ રૂપીઆ ૨૫૧-૦-૦ મોકલી મેમ્બર તરીકે નામ નોંધાવી હપ્તે હપ્તે લગભગ રૂપીઆ પાંચસો સુધીની કિંમતના શાસ્ત્રો વિના મૂલ્યે મેળવી શકો છો.

વધુ વિગત માટે લખો :

ઠે. ગ્રીન લૉજ પાસે,
ગરેડીઆકુવા રોડ
રાજકોટ.

મંત્રિ
શ્રી અખિલ ભારત શ્વે. સ્થા. જૈન
શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ.

આપ આ સમિતિના કાર્યમાં કઈ રીતે મદદગાર થઈ શકો ?

રૂ. ૫૦૦૦) ઓછામાં ઓછા આપીને સંસ્થાના આદ્ય મુરબ્બીશ્રી તરીકે મુબારક નામ લખાવી શકો છો, આપનો ફોટો તથા આપનુ જીવનચરીત્ર શાસ્ત્રમાં છાપવામાં આવે છે.

રૂ. ૩૦૦૦) ઓછામાં ઓછા આપીને આપના વડીલના સ્મરણાર્થે એક શાસ્ત્ર આપના નામથી છપાવી શકો છો સમીતિને એક શાસ્ત્ર છપાવવામાં લગભગ રૂ. ૬૦૦૦) થી રૂ. ૮૦૦૦) ખર્ચ થાય છે. તે છતાં ત્રણ હજારમાં આપને નામે શાસ્ત્ર બહાર પાડવામાં આવશે.

રૂ ૨૫૧) ઓછામાં ઓછા આપીને લાઈફ મેમ્બર તરીકે આપનું નામ દાખલ કરાવી શકો છો આપને ૩૨ સૂત્રો તથા તેના તમામ ભાગો મફત મળી શકે છે. (રૂ. ૫૦૦ ની કીંમતનાં શાસ્ત્રો હફતે હફતે આપને મળી શકે છે.)

સ્થાનકવાસી સમાજમાં આ એક જ સંસ્થા શાસ્ત્રો ચાર ભાષામાં પ્રગટ કરીને સર્વ ઉપયોગી વાંચન રજુ કરે છે આપને જ્યારે કોઈ શાસ્ત્રની જરૂર હોય ત્યારે તેમજ કોઈ સાધુ મુનીરાજને વહોરાવવાની ઈચ્છા હોય ત્યારે શાસ્ત્ર બીજેથી નહિ મંગાવતાં આ સમિતિ પાસેથી મંગાવી લેવા વિનંતી છે.

એક અપીલ

દીક્ષા પ્રસગે

વરસીતપ અને બીજી તપશ્ચર્યાઓનાં પારણા પ્રસંગે

મહાવીર જયંતી, પર્યુષણ, તથા દીવાળી જેવા તહેવાર પ્રસંગે

લગ્નપ્રસંગ તથા પુત્ર જન્મની ખુશાલીમાં.

વડીલોના સ્મરણાર્થે તેમની તીથી પ્રસંગે તેમજ બીજા સર અવસરે બનતી મદદ આ સંસ્થાને મોકલવા ખાસ નોંધ રાખશો.

પુજ્ય મહાત્મા તથા મહાસતિજીને

નમ્ર પ્રાર્થના

પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રી રાત દીવસના અથાગ પરીશ્રમ સાથે એક કંતાનના કકડા પર બેસીને સમાજના ભવિષ્યના વારસદાર માટે આગમ સંશોધન કરી અણમોલો વારસો તૈયાર કરી રહ્યા છે, તે કાર્યમાં અનેક મહાત્માઓ પ્રશંસા બતાવીને સક્રીય સહકાર આપી રહ્યા છે. આપને અમારી નમ્ર વિનંતી છે કે આવા મહદ કાર્યમાં ઉપદેશ દ્વારા મદદગાર થઇ શકો તેટલી સમાજને આપની જરૂર છે માટે વગર વીલંબે સારા જૈન સમાજના ઉત્કર્ષ કાર્યમાં આપનો ફાળો નોંધાવો.

